Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MADHURI NO. 1-6 • G.K.U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111026

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17/2/92 - 2 प्रति
E-22/135/10 Usha

111026

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111026

111026

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०.....
स्थान सं०.....
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

संपादक

पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
षाण्मासिक मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूँदी-नरेश

राव राजा बुधसिंह

(१७४२-१७६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

N. K. Press, Lucknow.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक संख्या मुक्तिः
पुस्तक सं०.....
आगत सं०.....
तिथि०.....
गुरुकुल पुस्तकालय कांगड़ी.

साहित्य

वर्ष ७
खंड २

माघ, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८५ वि०)

संख्या १
पूर्ण संख्या ७९

आत्म-शिक्षा

तौ कहा जो सज्यो हेम हथ्यारन पाग सँवारी लखी परछाँहीं ;
नीके गयंद हयंदन पै चढ़े भेरि नगारे हैं फौजन माहीं।
ठाठ फजीहति को 'निधितोष' जु पै रन मैं तरवारि न बाँहीं ;
मेरे सिपाही विचारि ले तू इन बातन ते मनसूरई नाँहीं।

तोषनिधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय राजशास्त्र

(१)

अथ धर्मार्थफलाय राज्याय नमः । (सोमदेव सूरि)
यथा राजन इसि पदे पदानि संलीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि ;
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान्निबोध ।
(महाभारत)

प्रारंभिक विवेचना

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के प्राचीन इतिहास, साहित्य, सभ्यता व विज्ञानों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। इनके ग्रंथों का अध्ययन करने से यही परिणाम निकलता है कि भारतीय लोग सदा से धार्मिक, आध्यात्मिक व पारलौकिक विषयों के चिंतन में लगे रहे हैं। इस देश के विचारकों ने सांसारिक विषयों तथा उनसे संबंध रखनेवाले शास्त्रों को सदा हेय समझा, और उन पर विचार करने के लिये कभी अपने दिमाग़ों को कष्ट नहीं दिया। यहाँ के राज्य सदा धर्माधिकारियों के अधीन रहे। राजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों का विकास ही इस देश में नहीं हुआ। इन विषयों पर जो थोड़ा-बहुत विचार प्राचीन भारतीयों ने किया, वह भी धर्म का अंग बनाकर, धर्म-शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित मर्यादा में रहकर। कुछ योरपीय तथा अमेरिकन विद्वानों के उद्धरण उपस्थित करना इस बात को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त होगा।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने लिखा है—"हिंदू-जाति स्वभाव से ही दार्शनिक है। उसके सब संघर्ष विचारों के संघर्ष रहे हैं..... अतः यह समुचित रीति से कहा जा सकता है कि भारत का संसार के राजनीतिक इतिहास में कोई स्थान नहीं है[1]।"

प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड का मत है—"भारतीय इतिहास के प्रारंभ से ही धार्मिक संस्थाएँ, यहाँ की जनता के चरित्र और प्रगति पर, इतना अधिक प्रभाव रखती हैं, जितना कि अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। ... ..प्रत्येक हिंदू ब्राह्मण का जीवन चार आश्रमों में विभक्त है, धर्म-भीरु ब्रह्मचर्य आश्रम, परमात्मा से डरनेवाला और यज्ञ-रत गृहस्थ, विचारमान् वानप्रस्थ और पर्यटनशील, संसार से उपरत संन्यासी। कम-से-कम उनके धार्मिक विधान का सिद्धांत तो यही है। इस विधान में राष्ट्र के हितों और जनता की उन्नति के लिये कोई अवसर नहीं हो सकता[1]।"

श्रीयुत हीगल का कहना है—"प्राच्य संसार में सदाचार के भाव और बाह्य नियमों में कोई भेद नहीं किया जाता। इन दोनों का पूर्णरूप से एकात्म्य किया जाता है। यही बात धर्म और राष्ट्र के विषय में है। उनमें भी कोई भेद नहीं किया जाता। इन देशों में प्रायः एक ही प्रकार की शासन-व्यवस्था ज्ञात थी, वह है दैव-तन्त्र (Theocracy)[2]।"

एक अन्य स्थान पर हीगल महोदय लिखते हैं—"न केवल चीन, पर्शिया और टर्की में ; पर वस्तुतः संपूर्ण एशिया के इतिहास में स्वेच्छाचारिता-पूर्ण एकतंत्र शासन दिखाई देते हैं। इन देशों में राजा की ओर से भयंकर अत्याचार किए गए, और वहाँ की जनता ने अत्याचारों के विरुद्ध असंतोष भी प्रकट किया। पर भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ राजा की ओर से अत्याचार होना एक साधारण बात है। जहाँ के लोगों में वैयक्तिक स्वतंत्रता का भाव ही नहीं है, जिससे कि उनके दिलों में अत्याचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह पैदा होना तो दूर रहा, असंतोष-मूलक विरोध का भाव भी उत्पन्न नहीं होता[3]।"

प्रोफ़ेसर विल्लोबी का मत है कि एशिया में "स्वतंत्रता का वास्तविक विचार न कभी क्रिया में प्रकट हुआ, और न सिद्धांतों में।..... वेदों और मनुस्मृति के अनुसार स्वेच्छाचारी राजा ही एक-मात्र शासक होना चाहिए। प्राच्य देशों के प्रारंभिक लेखों में राजनीतिक विषयों पर भी कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों एवं सूत्र-रूप वचनों में कोई-कोई विचार पाए जाते हैं, और निस्संदेह इनमें से कुछ विचार, उदाहरण के तौर पर कान्फ़्यूसियस के शिष्य मैन्सियस के प्रसिद्ध वचन, उदार भी हैं। परंतु चूँकि

१. Max—Müller History of Ancient Sanskrit Literature, p. 31.

१ Religion of the Veda, pp. 4-5.
२ Hegel—Philosophy of History, p. 112.
३ Ibid. p. 161.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये विचार धार्मिक और आचार-विषयक सिद्धांतों से मिला दिए गए हैं, और पहले से स्थापित किन्हीं सामान्य सिद्धांतों से कोई संबंध नहीं रखते, अतः राजनीतिशास्त्र का इतिहास लिखते हुए इनका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता[1]।"

प्रोफ़े० डनिंग ने भी यही व्यवस्था दी है। उनका विचार है कि प्राच्य देशों की आर्य-जातियों ने अपनी राजनीति को कभी धार्मिक, आध्यात्मिक व पारलौकिक परिस्थितियों से पृथक् नहीं किया। केवल योरप के आर्य ही इस प्रकार के लोग हैं, जिनके संबंध में 'राजनीतिक'-शब्द का समुचित रूप से व्यवहार किया जा सकता है[2]।

पाश्चात्य विद्वानों के इन थोड़े-से उद्धरणों में वे संपूर्ण बातें साररूप से आ जाती हैं, जो आधुनिक विवेचकों द्वारा भारतीय सभ्यता व साहित्य के संबंध में प्रतिपादित की जाती हैं। न केवल पाश्चात्य, किंतु प्राच्य विद्वान् भी इन्हीं बातों पर विश्वास करने लग गए हैं। भारतीय लोगों का भी धीरे-धीरे यह विश्वास होता जाता है कि हमारी सभ्यता का मुख्य तत्त्व त्याग और परलोक-विषयक-चिंतन है। भारत के प्राचीन साहित्य में यदि कोई रत्न इस प्रकार के हैं, जिन्हें गर्व के साथ संसार के सम्मुख रक्खा जा सकता है, तो वे केवल उपनिषद् व वेदांत द्वारा प्रतिपादित तत्त्व-ज्ञान हैं। भारत का संसार को यदि कोई संदेश है, तो वह है 'अध्यात्मवाद'।

हम भारतीय राजशास्त्र का अध्ययन करने में प्रवृत्त हुए हैं, अतः हमारे लिये आवश्यक है कि इन स्थापनाओं पर संक्षिप्त रूप से विवेचना करके ही आगे बढ़ें। आधुनिक विद्वानों के जिन मतों की हमें समीक्षा करनी है, उन्हें हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं—

(१) भारत के राजनीति-विषयक विचार व क्रियाएँ सदा धर्मशास्त्र व धार्मिक विश्वासों के अधीन रही हैं।

(२) भारतीय सभ्यता का स्वरूप त्यागमय और अध्यात्म पर है।

(३) भारतीय जनता ने राजनीतिक अत्याचारों के विरुद्ध कभी आवाज़ नहीं उठाई।

हम इन तीनों स्थापनों की समीक्षा करेंगे।

भारत के राजनीति-विषयक विचारों पर धर्मशास्त्र का कितना प्रभाव है, यह बात कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से अच्छी प्रकार समझी जा सकती है। अर्थशास्त्र का प्रथम प्रकरण है, विद्या-समुद्देश। उसमें आचार्य चाणक्य ने इस प्रकार विचार किया है—

"आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति ये चार विद्याएँ हैं।

मानव-संप्रदाय का मत है कि त्रयी, वार्ता और दंडनीति ये तीन ही विद्याएँ हैं। आन्वीक्षकी त्रयी का ही एक भाग है।

बार्हस्पत्य-संप्रदाय का मत है कि वार्ता और दंडनीति ये दो ही विद्याएँ हैं। त्रयी (तीनों वेद) तो दुनियादार लोगों ने अपनी आजीविका चलाने के लिये सहारे के तौर पर बना लिए हैं।

औशनस-संप्रदाय का मत है कि दंडनीति ही एक विद्या है। अन्य सब विद्याओं का आरंभ और विकास इसी एक के साथ संबद्ध है।

परंतु आचार्य चाणक्य का मत है कि चारों ही विद्या हैं, क्योंकि विद्या वह है, जिससे धर्म और अर्थ का परिज्ञान व सिद्धि हो[1]।"

इस उद्धरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में कम-से-कम दो ऐसे संप्रदाय—बार्हस्पत्य और औशनस—अवश्य विद्यमान थे, जो 'त्रयी' को विद्या तक मानने को भी तैयार न थे। मानव-संप्रदाय और आचार्य चाणक्य चार विद्याएँ मानते थे, परंतु राजशास्त्र (जिसे कि कौटिल्य की परिभाषा में दंडनीति शब्द से कहा गया है) त्रयी के अधीन था, यह नहीं कहा जा सकता। कौटिल्य स्वयं अपने भाव को स्पष्ट करते हैं—

"त्रयी विद्या में यह निश्चित किया जाता है कि धर्म क्या है, और अधर्म क्या है। वार्ता में 'अर्थ' और 'अनर्थ' का निश्चय होता है। दंडनीति द्वारा 'नय' और 'अनय' तथा 'बल' और 'अबल' का निर्णय होता है[2]।" इस प्रकार आचार्य चाणक्य के अनुसार त्रयी, वार्ता और दंडनीति के विचारणीय विषय एक दूसरे से सर्वथा पृथक्

१. Willoughby—Political Theories of the Ancient World, pp. 16-17.

२. Dunning—A History of Political Theories, Ancient and Mediaeval, Introduction, pp. xix—xx.

१. कौ० अर्थशास्त्र १, १

२. तथा १, १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। साथ ही, यह बात भी ध्यान देने-योग्य है कि आन्वीक्षकी में चाणक्य ने केवल आस्तिक दर्शनों का ही समावेश नहीं किया। लोकायत-जैसे नास्तिक दर्शन भी आन्वीक्षकी के अंतर्गत हैं। कौटिल्य की अपनी सम्मति में भी वार्ता और दंडनीति—इन विद्याओं का सबसे अधिक महत्त्व है। वह लिखता है—

"अन्य तीनों विद्याओं का मूल दंडनीति में ही है[1]।"

"संपूर्ण सांसारिक जीवन दंडनीति पर ही आश्रित है[2]।"

" 'अर्थ' ही सबसे प्रधान है, धर्म और काम का मूल 'धर्म' में ही है[3]।"

शुक्रनीति में भी इसी प्रकार चार विद्याओं का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही, दंडनीति के महत्त्व का वर्णन कर उसमें लोक की स्थिति प्रतिपादित की गई है[4]। मनुस्मृति में भी विद्याओं का यह चतुर्विभाग स्वीकृत किया गया है[5], यह चतुर्विध विद्या-समुद्देश स्पष्टरूप से सूचित करता है कि प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्र, वार्ता तथा दंडनीति को समान महत्त्व देते थे, और राजशास्त्र के विचारक स्वाभाविक रूप से इन चारों में भी दंडनीति को अधिक उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण समझते थे। साथ ही, प्राचीन भारत में कुछ इस प्रकार के संप्रदाय भी विद्यमान थे, जो धर्म और पारमार्थिक तत्त्व-ज्ञान को विद्या न मानने से ही संतुष्ट न थे, पर उन्हें दुनियादार लोगों द्वारा रोज़ी कमाने के लिये बनाया गया ढकोसला समझते थे।

प्राचीन भारत के विचारक केवल धर्मशास्त्र, अध्यात्म-विद्या व परलोक के ही चिंतन में नहीं लगे रहते थे। वे अन्य सांसारिक विषयों की विवेचना 'छोटे-छोटे वाक्यों व सूत्रमय वचनों में' धर्मशास्त्र के अंतर्गत रूप से ही नहीं करते थे, अपितु विविध इहलौकिक विषयों पर स्वतंत्र विद्या के तौर पर विस्तृत ग्रंथों में विचार किया करते थे। यह बात प्राचीन भारत की विद्याओं की विविधता द्वारा अच्छी प्रकार स्पष्ट की जा सकती है।

१. 'दंडमूलास्तिस्रो विद्याः' कौ० अर्थ० १, ५

२. 'तस्यामायत्ता लोकयात्रा' कौ० अर्थ० १, ४

३. 'अर्थ एव प्रधान' इति कौटिल्यः। अर्थमूलौ हि धर्मकामावितिं।

४. शुक्रनीति प्रथम अध्याय, श्लोक १५२-१५४

५. मनुसंहिता, अध्याय ७, श्लोक ४३

शुक्र नीति के अनुसार विद्याओं की कोई संख्या नहीं की जा सकती। वे अनंत हैं। इसी प्रकार कलाएँ भी असंख्यात हैं। पर यदि फिर भी विभाग करना ही हो, तो विद्याओं के ३२ और कलाओं के ६४ विभाग किए जा सकते हैं[1]। शुक्राचार्य द्वारा प्रतिपादित इन विद्याओं का विभाग हमारे विवेचन के लिये अत्यंत उपयोगी है—

१. ऋग्वेद २. यजुर्वेद ३. सामवेद ४. अथर्ववेद ५. आयुर्वेद ६. धनुर्वेद ७. गांधर्ववेद ८ तंत्रशास्त्र ९. शिक्षा १०. व्याकरण ११. कल्प १२. निरुक्त १३. ज्योतिष १४. छंद १५. मीमांसा १६. तर्कशास्त्र १७. सांख्यशास्त्र १८. वेदान्त १९. योग २०. इतिहास २१. पुराण २२. स्मृतिशास्त्र २३. नास्तिकदर्शन २४. अर्थशास्त्र २५. कामशास्त्र २६. शिल्पशास्त्र २७. अलंकार २८. काव्य २९. देशभाषा ३० अवसरोक्ति ३१. यावनदर्शन ३२. विविध देशों के धर्म[2]। इन विद्याओं की सूची पर दृष्टि डालने से यह अच्छी तरह समझ में आ सकता है कि प्राचीन भारत में वेद, दर्शन और अध्यात्म-विद्याओं के सिवा अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकार, आयुर्वेद, धनुर्वेद, इतिहास आदि का भी अच्छी प्रकार अनुशीलन किया जाता था। साथ ही, नास्तिकदर्शन और यावनदर्शनों का अध्ययन भी प्रचलित था।

आचार्य शुक्र ने जिन ६४ कलाओं का वर्णन किया है, उनमें नाचना, गाना, बाजा बजाना, विविध भाँति के वस्त्रों तथा आभूषणों से स्त्री-पुरुषों को सजाना, बिस्तर तैयार करना, भवनों के लिये नानाविध शय्याओं तथा अन्य उपकरणों को तैयार करना, अनेक प्रकार के व्यायाम, धातु-रस आदि की विद्या, शराब बनाना, चीरा-फाड़ी करना, क़वायद करना आदि मुख्य हैं[3]। यहाँ सब कलाओं का परिगणन करने की आवश्यकता नहीं। हमारा अभिप्राय केवल यह है कि यह स्पष्ट कर दिया जाय कि प्राचीन भारतीय अध्यात्मविद्या के चिंतन के सिवा कुछ अन्य कार्य भी किया करते थे। जिस प्रकार शुक्रनीति में ६४ कलाओं का वर्णन है, उसी प्रकार वात्स्यायन के कामसूत्र में भी है[4]।

१. शुक्रनीतिसार, चतुर्थ अध्याय, तृतीय प्रकरण श्लोक २३-२५

२. तथा श्लोक २७-३०

३. तथा श्लोक ६७-९९

४. वात्स्यायन कामसूत्र १,१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के प्राचीन साहित्य में और भी अनेक स्थानों पर विद्याओं का विभाग करने का प्रयत्न किया गया है। छांदोग्योपनिषद् में महर्षि सनत्कुमार के पूछने पर मुनि नारद ने अपने-आप पढ़ी हुई विद्याओं का परिगणन किया है। उनमें वैदिक-साहित्य के सिवा इतिहास, पुराण, पित्र्यविद्या, राशिविद्या, दैवविद्या, भूतविद्या, युद्धनीति, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या, खानिविद्या आदि का भी वर्णन है[1]। जातक-ग्रंथों में स्थान-स्थान पर अष्टादश विद्याओं का उल्लेख है[2]। साथ ही, पृथक् रूप से शिल्पविद्या[3], हस्तिविद्या[4], धनुर्विद्या[5], मंत्रविद्या[6], चिकित्साशास्त्र तथा विविध प्राणियों की बोली समझने की[7] विद्याओं का भी वर्णन है। जातक-साहित्य की तरह वायुपुराण में भी विद्याओं के अठारह विभाग किये गए हैं[8]।

विद्याओं के इस विभाग को देखकर यह अच्छी प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय इस लोक के साथ संबंध रखनेवाले विज्ञानों का अनुशीलन धर्मशास्त्र का अंग बनाकर नहीं करते थे। इन सब बातों को सम्मुख लाने पर श्रीयुत विल्लोबी की इस स्थापना का कोई आधार नहीं रहता कि भारतीयों व अन्य प्राच्य लोगों के राजनीति-विषयक व अन्य इहलोक-संबंधी विचार धार्मिक और आचार-विषयक मंतव्यों के साथ बुरी तरह से मिले हुए हैं, उनमें भेद नहीं किया जा सकता।

प्राचीन भारत में केवल राजनीतिक विचार ही धर्म-शास्त्र से स्वतंत्र होकर विकसित नहीं हुए थे, अपितु राज-शास्त्र के प्रतिपादक राजनीतिक क्रियाओं के लिये धर्म के अनुसरण की कोई आवश्यकता नहीं समझते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धार्मिक दृष्टि से घृणित-से-घृणित कार्य करने की अनुमति दी गई है। वेश्या, शराब, द्यूत आदि का उपयोग चाणक्य के अनुयायियों के लिये सामान्य बात है। गुप्तचरों को अपनी कार्य-सिद्धि के लिये जो उपाय बताए गए हैं; उनमें धर्म के सिद्धांतों को कोई स्थान नहीं। उनमें उप-योगिता ही सबसे बड़ा हेतु है। धार्मिक विश्वासों का अनुसरण कौटिल्य राजनीतिक कार्यों में आवश्यक नहीं समझता। आचार्य चाणक्य की सम्मति में राजनीतिक क्रियाओं में राजकीय पुरुषों का अपना प्रयत्न ही सबसे बढ़कर उपयोगी है। दैव व भाग्य के भरोसे बैठे रहना सर्वथा निरर्थक है। वह लिखता है—"नक्षत्र आदि को पूछने से क्या लाभ है? जो बहुत अधिक नक्षत्र आदि को पूछता है, उसके अर्थ सिद्ध नहीं होते। अर्थ का साधक (नक्षत्र) तो अर्थ ही है। तारे क्या कर सकते हैं? कार्य में चतुर व्यक्ति सैकड़ों प्रकार के साधनों द्वारा अर्थ को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे हाथी हाथी को पकड़ता है, ऐसे ही अर्थ अर्थ को पकड़ता है[2]।" ये भाव उन लोगों के नहीं हो सकते, जो अपनी क्रियाओं को धार्मिक विश्वासों के अधीन छोड़कर, भाग्य के भरोसे पर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठते हों।

शुक्राचार्य और भी अधिक ज़ोरदार शब्दों में इसी बात का प्रतिपादन करते हैं—"बुद्धिमान् लोग पौरुष को बड़ा मानते हैं। प्रयत्न करने में असमर्थ नपुंसक लोग भाग्य-भाग्य कहते रहते हैं[3]।" इसी प्रकार शांतिपर्व में राजा के लिये सबसे महत्त्व-पूर्ण बात यह कही गई है कि वह 'उत्थान'-शील हो[4], भाग्य पर आश्रित न रहे।

भारत के राजनीतिक विचारकों ने अपने राजशास्त्र और राजनीतिक क्रियाओं को धार्मिक विश्वासों से केवल पृथक् ही नहीं कर लिया था, अपितु अपने राजनीतिक उपयोगितावाद को दृष्टि में रखकर धार्मिक सिद्धांतों को बदलने में भी संकोच नहीं किया था। भारतीय धर्म-प्रतिपादकों ने सत्य को सबसे बड़ा धर्म माना है।

---

१. छांदोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक
२. The 'Jatak', edited by E.B Cowel, Vol I, p 126.
३. Ibid Vol V, p 92.
४. Ibid Vol. II, p. 32.
५. Ibid Vol. II p. 60.
६. Ibid Vol. II, p. 68; Vol. IV, p. 283.
७. Ibid Vol. III, p. 249.
८. वायुपुराण (३, ६, २२)

---

१. कौ० अर्थशास्त्र ११,१
२. कौटिलीय अर्थशास्त्र १,४
३. शुक्रनीतिसार १,४८
४. महाभारत, शांति-पर्व ५८,१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार सत्य में प्रतिष्ठित है, इस सिद्धांत का प्रतिरोध धार्मिक दृष्टि से नहीं किया जा सकता। परंतु भारतीय राजशास्त्र के प्रणेता इस सिद्धांत को मानने को उद्यत नहीं। महाभारत के शांति-पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को सत्य और अनृत का रहस्य समझाया है। वह कहता है—"ऐसे अवसर होते हैं, जहाँ सत्य न बोलकर झूठ बोलना चाहिए। ऐसे समयों में सत्य झूठ और झूठ सत्य हो जाता है[1]।" फिर इस विषय को स्पष्ट करते हुए बार-बार कहते हैं—"ऐसे स्थान पर सत्य की अपेक्षा झूठ बोलना अधिक श्रेयस्कर है। यह मेरी धारणा है[2]।" अपने पक्ष को युक्ति-युक्त कहने में भी भीष्म को संकोच नहीं है। उनके अनुसार "धर्म वह है, जो धारण करे[3]।" और यदि किन्हीं अवस्थाओं में धारण के लिये ही अनृत आवश्यक हो, तो वहाँ अनृत बोलना ही धर्म होगा। भीष्म का यह सिद्धांत ठीक है या नहीं, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं। हमें तो यह प्रदर्शित करना है कि भारत के जो राजशास्त्र-प्रणेता राजनीति को ही एक-मात्र विद्या मानने को उद्यत हों, जिनमें से कुछ विचारक त्रयी को दुनियादारों का बनाया हुआ ढकोसला कहने में संकोच न करते हों, जो अपनी राजनीतिक उपयोगिता को दृष्टि में रखकर धर्म की नई व्याख्या करने को उत्सुक हों, उनके विषय में यह धारणा कि उनके विचार व क्रियाएँ धार्मिक विश्वासों का अतिक्रमण नहीं करतीं, सर्वथा निराधार और असंगत है। प्राचीन भारत के विचारकों ने अपने मस्तिष्क को सीमा-विशेष से संकुचित नहीं किया था। वे स्वतंत्र विचार व तत्त्व-मीमांसा में प्रवृत्त होकर किन्हीं तंग दीवारों में बँधना नहीं पसंद करते थे। वे अपनी बुद्धि को पूरी स्वच्छंदता से सोचने का अवसर देते थे।

अब हम पाश्चात्य विद्वानों के इस मंतव्य पर विचार करेंगे कि भारतीय सभ्यता का स्वरूप इस प्रकार का है कि उससे सांसारिक विषयों में उन्नति करने का कोई अवसर नहीं रहता। श्रीयुत ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार भारत की वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण राष्ट्र के हितों और जनता की उन्नति का कोई मौक़ा नहीं मिल सकता। कारण यह कि हिंदू ब्राह्मण का संपूर्ण जीवन त्याग और अध्यात्मवाद में व्यतीत हो जाता है। निस्संदेह, भारतीय सभ्यता का मुख्य आधार वर्णाश्रम-व्यवस्था ही है। पर क्या वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप सर्वथा परलोकमय हो सकता था? वर्ण और आश्रम के स्वरूप को ठीक तरह से न समझकर ही भारत की सभ्यता पर यह आरोप पाश्चात्य विद्वानों ने किया है। चार वर्णों में केवल ब्राह्मण-वर्ण ही इस प्रकार का है, जिसके जीवन का आदर्श त्याग और अध्यात्म-चिंतन है। परंतु ब्राह्मणों की संख्या कुल समाज का चतुर्थांश कभी नहीं हो सकती। बहुत ही थोड़े-से लोग इस प्रकार के होंगे, जो अपनी असाधारण योग्यता और समाहित वृत्तियों के कारण ब्राह्मण-पद के अधिकारी बनेंगे। किसी भी समाज में इनकी संख्या एक या दो फ़ी सदी से अधिक नहीं हो सकती। शेष तीन वर्णों को सांसारिक विषयों पर ध्यान देना है। आर्थिक उत्पत्ति या राष्ट्र-सेवा में अपने जीवन को व्यतीत करना है। जो सुख इस प्रकृति द्वारा मनुष्यों को दिया गया है, उसका उपभोग करना है। इसी प्रकार आश्रमों को लीजिए। ब्रह्मचर्य-आश्रम योग्यता प्राप्ति के लिये है। किसी भी समाज-संगठन में इसकी उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गृहस्थ-आश्रम तो सांसारिक सुखों के लिये है ही। वानप्रस्थ और संन्यास के अधिकारी चारों वर्णों के लोग नहीं हैं। संन्यासी तो केवल ब्राह्मण ही बन सकते हैं। वानप्रस्थ यद्यपि अन्य वर्ण के लोग भी हो सकते हैं, पर अन्य वर्णों के लिये वह वृद्धावस्था के स्वाभाविक रिटायर्ड जीवन के सिवा अन्य कुछ नहीं है। इस प्रकार संन्यासी बनने का अधिकार व अवसर बहुत ही कम लोगों को है। हमें तो संदेह है कि प्राचीन भारत में संन्यासियों की संख्या एक हज़ार में एक के हिसाब से होती थी। इस तरह इस देश के सामाजिक संगठन में वे लोग जो वस्तुतः त्याग व अध्यात्म-परता के साथ अपने जीवनों को व्यतीत करते थे, संख्या में बहुत कम थे। पर उनकी उपयोगिता सामाजिक दृष्टि से भी कम न थी। इनके त्याग व अध्यात्मवाद का समाज के

१. 'भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्;
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं वाप्यनृतं भवेत्?'
महा० शांति० १०९, ५

२. 'श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति हि धारणा।'
महा० शांति० १०९, २१

३. महा० शांति० १०९-१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये बड़ा भारी मूल्य था। परंतु इनके सिवा अन्य संपूर्ण जनता तो प्रत्यक्षतः ही सांसारिक विषयों में लगी रहती थी। यही कारण है कि भौतिक सभ्यता की दृष्टि से भी प्राचीन भारत अन्य किसी देश से पीछे न था। पाश्चात्य विद्वान् जिस वर्णाश्रम-व्यवस्था को भारतीय सभ्यता की सबसे बड़ी निर्बलता मानते हैं, वस्तुतः वही यहाँ की सबसे महत्त्व-पूर्ण विशेषता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था में इहलोक और परलोक, त्याग और भोग तथा भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का जैसा उत्तम समन्वय हुआ है, वैसा अन्यत्र कहीं ढूँढ़ सकना संभव नहीं है। यही कारण है कि जहाँ भारत के ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों और संन्यासियों ने उच्च-से-उच्च अध्यात्मविद्या का आविष्कार किया, वहाँ इस देश के शासकों, अमात्यों और मंत्रियों द्वारा अत्यंत उन्नत समाजशास्त्र, वार्ता और दंडनीतिशास्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। मानवीय जीवन के इन विविध तत्त्वों का ऐसा सुंदर समुत्तुलन अन्यत्र नहीं मिल सकता।

एक बात और है, जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए। जिस अर्थ में 'धर्म'-शब्द भारतीय साहित्य में आया है, उस पर पाश्चात्य विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया। भारतीय लेखकों व विचारकों के लिये 'धर्म' का विशेष अर्थ है, जो अँगरेज़ी के 'रिलिजन' (Religion), थियोलोजी (Theology) आदि शब्दों से सूचित नहीं किया जा सकता। फ्रेंच-भाषा का (ड्रोय्) (Droit) व जर्मन-भाषा का रेक्ट (Recht)-शब्द भी योरपियन लोगों को 'धर्म'-शब्द का वास्तविक अभिप्राय नहीं बता सकता। वहाँ धर्म किन्हीं परंपरागत विश्वासों व अज्ञात सत्ताओं को सूचित नहीं करता। भारतीय साहित्य में 'धर्म' वह है, जिससे समाज का धारण होता है। अधिक व्यापक अर्थों में वे सब शाश्वत नियम जो इस संसार का धारण करते हैं, 'धर्म'-शब्द से कहे जाते हैं। भारत के स्मृतिकारों, राजशास्त्र-प्रणेताओं और अन्य विचारकों ने समाज व सामूहिक जीवन का धारण करनेवाले नियमों के लिये ही 'धर्म'-शब्द का व्यवहार किया है। यही कारण है कि ऐतरेय ब्राह्मण में राजा को धर्म का रक्षक कहा है[1]। यही कारण है कि बृहदारण्यकोपनिषद् में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है—'वह धर्म है, जिसके कारण बलवान् निर्बलों को नहीं खा जाते, जिसके कारण राजा अबलों की रक्षा करता है। इस 'धर्म' की उत्पत्ति इस कारण हुई है कि इसके बिना काम नहीं चल सकता। यही धर्म है, जिसके कारण क्षत्र आपत्तियों से रक्षा करता है[1]।' उपनिषदों में 'धर्म' का यह रूप देखकर वस्तुतः आश्चर्य होता है। जब उपनिषद्-जैसे अध्यात्मपरक ग्रंथ धर्म का यह रूप लेते हैं, तो इस शब्द का सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने यह नहीं किया। उन्होंने धर्म का अर्थ 'थियोलोजी' करके उद्घोषित कर दिया कि भारत का राजशास्त्र, भारत की सब क्रियाएँ, भारत का संपूर्ण जीवन 'थियोलोजी' पर आश्रित था। यदि 'धर्म' के इस रूप को सम्मुख रखकर हम भारतीय साहित्य का अध्ययन करेंगे, तो हम कभी वह ग़लती नहीं करेंगे, जो श्रीमान् हीगल और ब्लूमफ़ील्ड ने की है।

क्या भारतीयों ने राजा के अत्याचार के विरुद्ध कभी आवाज़ नहीं उठाई? श्रीयुत हीगल चाहे कुछ कहें, पर भारतीय इतिहास के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतीय जनता का राजतंत्र-राज्यों के शासन पर भी बहुत अधिक अधिकार था। साहित्य से उद्धरण देने की अपेक्षा दो-तीन ऐतिहासिक उदाहरण ही हमारे पक्ष को पुष्ट करने के लिये पर्याप्त होंगे। मौर्य-वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को उसके सेनानी पुष्यमित्र ने इसलिये राज्यसिंहासन से च्युत कर दिया था, क्योंकि वह 'प्रतिज्ञादुर्बल' था[2]। राजा नागदश को प्रजा ने मारकर राज्य-च्युत कर दिया था, और उसके स्थान पर शैशुनाग-वंश के संस्थापक राजा शुशुनाग ने राज्य प्राप्त किया था[3]। महाभारत में राजा वेण की कथा आती है,

१. 'धर्मस्य गोप्ता' ऐतरेय ब्राह्मण ८, २६

१. 'स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत धर्मं तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति।'

बृहदारण्यकोपनिषद् १, ४. १४

२. 'प्रतिज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं विवेश पुष्यमित्रः स्वामिनम्।' हर्षचरित्र

३. महावंश, चतुर्थ अध्याय, श्लोक १५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे कि धर्म-विरुद्ध आचरण करने के कारण राज्य से बहिष्कृत कर दिया गया था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में राजच्युत राजाओं के लिये सौत्रामणि-यज्ञ का विधान किया गया है[1]।

यदि प्राचीन नीति-ग्रंथों से इस विषय को स्पष्ट करना हो, तो बहुत-से उद्धरण पेश किए जा सकते हैं; पर उनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हीगल महोदय की स्थापना को निराधार सिद्ध करने के लिये इतनी बातें ही पर्याप्त हैं।

सत्यकेतु विद्यालंकार

कब ?

प्रियतम कब आवेंगे ?—कब ?
कुछ भी देर हुई तो मेरे
सुमन सूख जावेंगे सब ।
सखि, तब फिर तूने किस बल पर,
चुन रक्खे प्रसून अंचल-भर ;
नहीं ठहर सकते जो पल-भर ।
शीघ्र सूख जानेवाले ये
सुमन सूख जावेंगे जब,
प्रियतम तब आवेंगे,—तब !
प्रियतम कब आवेंगे ?—कब ?
कुछ भी देर हुई तो मेरे
दीपक बढ़ जावेंगे सब ।
सखि, तब सजग स्नेह से खाली,
दीपावलि किसलिये उजाली,
रहे न पल-भर जिसकी लाली ?
सत्वर बढ़ जानेवाले ये
दीपक बढ़ जावेंगे जब,
प्रियतम तब आवेंगे,—तब !

सियारामशरण गुप्त

अफ़ग़ानिस्थान का अभ्युदय

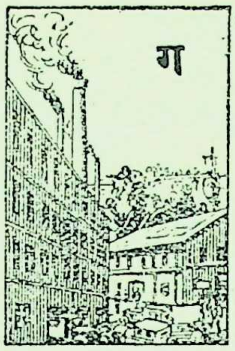

गत योरपीय महासमर के बाद योरप में जहाँ-जहाँ ज़ेकोस्लोवाकिया, युगोस्लेविया, पोलैंड आदि कई स्वतंत्र राष्ट्रों ने अपने अभ्युत्थान द्वारा एक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया, वहीं एशिया में टर्की और अफ़ग़ानिस्थान की उन्नति और अभ्युत्थान विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दस वर्षों में संसार के कई राष्ट्रों ने जो उन्नति की है, वह इतिहास की कायापलट करनेवाली है। टर्की अपने राष्ट्रपति मुस्तफ़ा कमालपाशा की अध्यक्षता में जिस प्रकार उन्नति कर रहा है, स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता और विशाल हृदयता के जो भाव वहाँ प्रचारित हो रहे हैं; तथा अवनति के गहरे गढ़े में गिरानेवाले दक़ियानूसी विचारों एवं कार्यों का जिस प्रकार वहाँ अंतिम संस्कार किया जा रहा है, वह संसार के प्रत्येक परतंत्र, पीड़ित, पतित और अवनत राष्ट्र के लिये अनुकरणीय है। एशिया का दूसरा जो राष्ट्र, इन ८-१० वर्षों में आशातीत उन्नति करके एक अत्यंत अल्प और नगण्य-सा होते हुए भी, आज संसार के बड़े-से-बड़े राष्ट्रों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगा है, वह अफ़ग़ानिस्थान है। अभी हाल में अफ़ग़ानिस्थान के बादशाह अमानुल्लाख़ाँ ने अपनी योरप तथा एशिया-यात्रा में अपने राजनीतिक ज्ञान, जागरूकता, दूरदर्शिता आदि सर्वतोमुखी प्रतिभा का जो विलक्षण परिचय दिया है, और योरप के बड़े-से-बड़े राष्ट्रों तक ने शाह अमानुल्ला का जिस शान-शौकत से स्वागत-सत्कार किया था, उससे संसार को उसकी महानता, अभ्युदय और विशेषता का और भी स्पष्ट परिचय मिल गया है। इस विशेषता के कारण विशेष हैं। अफ़ग़ानिस्थान आज संसार की वर्तमान उन्नति की घुड़दौड़ में किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। वहाँ आज अनेक प्रकार के सुधार-आंदोलन बड़े धड़ल्ले से आगे बढ़ाए जा रहे हैं, नई-से-नई और अच्छी-से-अच्छी बातें और वैज्ञानिक साधनों से देश को संपन्न करने का प्रयत्न पूर्ण-रूप से जारी है। योरप-यात्रा के बाद से बादशाह ने वहाँ सुधारों की आँधी उठा रक्खी है।

---

१ Jayasval-Hindu Polity, Part II, p. 41.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने थोड़े समय में, किसी भी देश में, इतने अधिक सुधार कभी भी न देखने में आए। इसके साथ ही अफ़ग़ानिस्थान की भौगोलिक स्थिति, उसका नव सैनिक संघटन तथा संसार के विभिन्न राष्ट्रों के साथ उसका पारस्परिक मैत्री संबंध आदि बातें ऐसी हैं कि कोई भी राष्ट्र उसकी उपेक्षा न करने ही को नहीं, बल्कि समुचित स्वागत-सत्कार करने को मजबूर है। पर इन सब बातों से समुचित लाभ उठानेवाली और संसार की आँखों के सामने अफ़ग़ानिस्थान की महत्ता को दर्शानेवाली एक और ही विशेष शक्ति है। यह शक्ति न होती, तो अफ़ग़ानिस्थान को आज संसार की राजनीति में यह महत्त्व-पूर्ण स्थान न प्राप्त हुआ होता। वह शक्ति और कोई नहीं, वहाँ का बादशाह अमानुल्लाख़ाँ है।

बादशाह अमानुल्लाख़ाँ

अफ़ग़ानिस्थान के शासक अभी कुछ दिन पहले तक 'अमीर' कहलाते थे। परंतु वर्तमान शासक अमानुल्लाख़ाँ ने अफ़ग़ानिस्थान को पूर्ण स्वतंत्र किया, और 'अमीर' के पद को 'बादशाह' के रूप में परिणत कर दिया। अफ़ग़ानिस्थान के विद्यमान अभ्युदय का सारा श्रेय आप ही को दिया जायगा। २० फ़रवरी, १९१९ ई० को आप अफ़ग़ानिस्थान के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए, और तब से सदा राज्य की, हर प्रकार की, उन्नति में लगे रहते आए हैं। आप अपने पिता अमीर हबीबुल्लाख़ाँ के तृतीय पुत्र हैं। आपका जन्म १ जून, १८९२ ई० में हुआ था। आप एक बड़े ही परिश्रमी, राष्ट्रवादी, धर्म-परायण, सुधारक और उन्नत विचारों के व्यक्ति हैं। आप फ़ारसी, उर्दू, तुर्की, फ़्रेंच और अँगरेज़ी (?) जानते हैं। आप अपनी प्रजा और अपने देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति और आत्मोद्धार समझते हैं, और न केवल उनका यह विचार-मात्र है, बल्कि जी-जान से लगकर अपने इस विचार को वे कार्य-रूप में परिणत करते हैं। आपकी, हाल की, योरप-एशिया-यात्रा का मुख्य उद्देश्य संसार को अफ़ग़ानिस्थान की महत्ता जताना और दुनिया के वर्तमान विभिन्न प्रकार के वायुमंडल से पूरी वाक़फ़ियत प्राप्त करना ही था, और अपने इस अनुभव से आप अपने देश को अधिक-से-अधिक उन्नत करना चाहते हैं। एक हिंदुस्थान के राजे हैं, जो साल में छः महीने से भी अधिक प्रायः प्रतिवर्ष योरप के सैर-सपाटे में ही अपनी प्रजा की गाढ़ी-कमाई के लाखों रुपए पानी की तरह बहाते हैं, और प्रजा की उन्नति और सुधार करना तो दूर रहा, उल्टे उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते, और उनके साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार करवाते हैं! कितना अंतर है? एक अपना जीवन प्रजा की भलाई के ही लिये अर्पित कर देता है, और एक अपने जीवन—सुख-शौक़—के लिये लाखों प्रजा के ही जीवन का सत्यानाश कर देता है! बादशाह अमानुल्ला यह अच्छी तरह जानते और समझते हैं कि अपने देश को अधिक-से-अधिक श्रेष्ठ बनाने के लिये, उसे संसार के बड़े और स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच समान पद दिलाने के लिये तथा अपनी स्वतंत्रता को सदा सुरक्षित रखने के लिये, यह अत्यंत आवश्यक है कि अपने देश को सब प्रकार से, दुनिया के उन्नत राष्ट्रों के समकक्ष बनाए बिना काम नहीं चल सकता; और इसीलिये आप अफ़ग़ानिस्थान की उन्नति में इस प्रकार संलग्नता के साथ जुटकर प्रत्येक दिशा में सुधार कर रहे हैं। आपने अपने देश के लोगों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा देने के लिये विदेशियों को बुला रक्खा है। आपकी धार्मिक सहिष्णुता और ग़ैर-मुस्लिम-प्रेम अत्यंत प्रशंसनीय है। आपके राज्य में हिंदू और मुसलमानों को समान अधिकार प्राप्त हैं, और हिंदुओं पर मुसलमानों द्वारा किसी प्रकार की ज़्यादती नहीं होने पाती। योरप जाते वक़्त बंबई में, हिंदुस्थानी मुसलमानों को, हिंदुओं के प्रति भ्रातृ-भाव के साथ रहने का, गो-कुशी के संबंध में हिंदुओं के धार्मिक भावों का ख़याल रखने का और मुल्लाओं के भयंकर संकुचित विचारों को तोड़-फोड़कर अंत कर देने का, जो अमूल्य उपदेश आपने दिया था, वह बादशाह की विशाल हृदयता, धार्मिक सहिष्णुता और राष्ट्रीयता का अत्यंत ज्वलंत उदाहरण है। आपके आज़ादी के भावों का अनुमान एक इसी बात से किया जा सकता है कि बिना किसी प्रकार के आंदोलन और बिना किसी के कहे-सुने आपने अफ़ग़ानिस्थान से अनियंत्रित शासन-प्रणाली का १९२२ ई० में अंत कर दिया तथा नियंत्रित राजतंत्र के रूप में प्रजासत्तात्मक शासन-प्रणाली प्रचलित कर दी! प्राचीन बुरी प्रथाओं को तोड़कर नई लाभकारी बातों को अपनाने का ताज़ा दृष्टांत आपने अपनी गत योरप-यात्रा में स्पष्ट दर्शा दिया है, और महारानी सूरिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पहले सदा तथा योरप जाते वक्त बंबई तक परदे में रहती थीं, जहाज़ पर चढ़ते ही उनसे परदा उतरवा फेंका और महारानी सारे योरप में अपने पति (बादशाह) के साथ बिना परदा किए खुले आम सबों से मिलती-जुलती, बातें करती और भ्रमण करती रहीं। महारानी सूरिया भी बहुत उन्नत विचारों की महिला हैं, और बादशाह के सभी सुधार-संबंधी विचारों का न केवल समर्थन करती हैं, बल्कि उसके अनुसार सदा आचरण भी करती हैं। अभी उस दिन ईरान परदा-प्रथा की बुराई को दर्शाते हुए, उसको दूर करने के संबंध में, आपने जो विचार प्रकट किए थे, वे आपकी बुद्धि-विचक्षणता-ज्ञान-प्राचुर्य और विशाल हृदयता के परिचायक हैं।

बादशाह अमानुल्ला का व्यक्ति-गत जीवन और दिनचर्या भी कुछ कम आकर्षक नहीं है। आप सुबह तड़के ही उठते हैं, और कभी पैदल तथा कभी मोटर पर घूमने के लिये अकेले ही निकल जाते हैं। घूमने के लिये किसी खुले मैदान वा अच्छी हवादार जगह ही में जाना आप आवश्यक नहीं समझते, और कभी-कभी शहर की तंग गलियों तक में घूमते-फिरते हैं, जिससे आप नगर की सफ़ाई और सफ़ाई-विभाग के काम की भी जाँच कर लेते हैं। घूमकर लौटने के बाद आप जल-पान करते तथा राज-काज में जुट जाते हैं। इस प्रकार सुबह के आठ बजे से शाम के छः बजे तक लगे रहते हैं। इस बीच में ही दोपहर और तीसरे पहर आप खाना खाते तथा जल-पान भी कर लेते हैं। आपका खाना बड़ा सादा होता है। जिसमें काबुली रोटी तथा दो-तीन प्रकार के भेड़ का गोश्त होता है। मिठाई आप बहुत कम खाते हैं, पर फलों से आपकी विशेष रुचि है। दिन का काम ख़तम कर आप कुछ देर टेनिस खेलते, और उसके बाद मोटर पर हवा खाने निकल जाते हैं। इस समय रास्ते में कहीं-कहीं आप लोगों की शिकायतें सुनते तथा रास्ते में अगर कोई थका-माँदा आदमी मिल गया, तो उसे मोटर पर चढ़ाकर उसके निवास-स्थान तक पहुँचा आते हैं। आप कभी भी किसी व्यक्ति को डाटते नहीं, और बड़े प्यार के साथ लोगों से बर्ताव करते हैं। आप अपनी मृदुलता, मिलन-सारी और प्रजा-वत्सलता के लिये प्रसिद्ध हैं। दिन में आप कभी भी राजमहल (जहाँ महारानी रहती हैं) नहीं जाते। शाम को घूमकर लौटने के बाद राजमहल में जा महारानी के साथ भोजन करते, और फिर उनके साथ रहते हैं। प्राच्य राजाओं में आपकी यह एक महान् विशेषता समझनी चाहिए कि आप बहुविवाह की बात कभी सोचते तक नहीं। आपका दांपत्य-जीवन बड़ा ही सरस, बहुत ही सुंदर और सर्वथा अनुकरणीय है। इस समय आपके तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं।

देश का क्षेत्रफल और जन-संख्या

अफ़ग़ानिस्थान का क्षेत्रफल लगभग २,७०,००० वर्ग-मील और जन-संख्या लगभग ८०,००,००० है। देश के प्रधान नगर काबुल (राजधानी), क़ंधार और हिरात हैं, जहाँ क्रमशः २,००,०००; ३१,५०० और २०,००० मनुष्य रहते हैं। यहाँ की भाषा फ़ारसी और परतो है, तथा यहाँ के रहनेवाले मुख्यतः इस्लाम-धर्मावलंबी हैं।

शासन-प्रबंध

सारे देश का कार्य एक मंत्रिमंडल द्वारा होता है। मंत्रिमंडल में युद्ध, परराष्ट्रनीति, स्वराष्ट्रनीति, शिक्षा, व्यापार, न्याय, सार्वजनिक रक्षा और आय-विभाग के मंत्री होते हैं। ये मंत्री अपने-अपने विभाग के कार्य के लिये ज़िम्मेदार होते हैं, और बादशाह, जो स्वयं ही मंत्रिमंडल के अध्यक्ष हैं, मंत्रियों के कामों की देखभाल करते हैं। प्रत्येक विभाग के मंत्री के लिये बादशाह से मिलने के लिये अलग-अलग दिन नियत हैं, और उन दिनों में वे राजा से मिलकर अपनी बात पेश करते, राय देते और बादशाह की अनुमति पूछते हैं। यहाँ पर दस्तूर-शाही (स्टेट-एसेंबली) और क़वानीन मुल्की (लेजिस्लेटिव-एसेंबली)-नामक दो व्यवस्थापक सभाएँ हैं, जिनमें शासन-संबंधी बातों पर विचार हुआ करता है। अभी हाल में दस्तूर-शाही 'जिरग़ा' (पार्लमेंट) के रूप में बदल दी गई है। इस 'जिरग़ा' में प्रजा के १५० प्रतिनिधि ३ वर्ष के लिये चुने जायँगे। जिरग़ा ने पिछले दिनों महत्त्व-पूर्ण निर्णय किए हैं, जिनका ज़िक्र यथासमय किया गया है। प्रांतीय विभाजन की दृष्टि से अफ़ग़ानिस्थान, काबुल, क़ंधार, हिरात, मज़ारशरीफ़ और कतग़नबदख़्शाँ-नामक ५ मुख्य प्रांतों में विभाजित है। पर इनके सिवा जलालाबाद, ख़ोस्त, फरह और मैमना नाम के चार और छोटे प्रांत भी हैं। प्रत्येक प्रांत एक गवर्नर के अधिकार में है, जिनमें बड़े प्रांत के गवर्नर को 'नायबुल-हुकुमह' और छोटे प्रांत के गवर्नर को 'हाकिम-आला' कहते हैं। शरअ-क़ानून (जो क़ुरान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवलंबित हैं) यहाँ का क़ानून है, पर १९२१ ई० में कुछ अन्य क़ानूनों की भी रचना हुई। लोगों के मामले-मुक़दमों के निपटारे के लिये देश-भर में छोटी और बड़ी दो प्रकार की अदालतें हैं तथा सबसे बड़ी अदालत—हाई-कोर्ट—एक-मात्र काबुल में है, जिसमें निचली अदालतों के मुक़दमों की अपील हुआ करती है। सप्ताह में एक दिन स्वयं बादशाह भी प्रजा की फ़रियाद सुनते, और उसका निर्णय देते हैं। मुक़दमों का फ़ैसला बहुत जल्द किया जाता है, और फ़ैसला होते ही अपराधी को सज़ा भी तुरंत दे दी जाती है।

शिक्षा-प्रचार

जनता में अधिक-से-अधिक शिक्षा-प्रचार करने के लिये, सरकार की ओर से, पूरी कोशिश की जा रही है। प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य है। जो लोग अपने लड़कों को पढ़ने के लिये मदरसे में नहीं भेजते, उन्हें सज़ा दी जाती है। सरकारी कर्मचारियों पर ख़ास तौर से निगाह रक्खी जाती है, और उन्हें अपने लड़कों को स्कूल न भेजने की हालत में अपनी नौकरी तक से हाथ धोना पड़ता है। इस वर्ष सरकार ने यह भी हिदायत की है कि शिक्षक लोग लड़कों के आचरण की पूरी देखभाल करें, और स्कूल-कालेज के समय के बाद भी उनकी निगरानी किया करें। प्रारंभिक तथा माध्यमिक स्कूल तो देश-भर में खुले हुए हैं, पर कालेज सिर्फ़ काबुल में हैं। इनमें एक कालेज भूतपूर्व अमीर हबीबुल्ला (शाह अमानुल्ला के पिता) द्वारा स्थापित तथा शेष दो वर्तमान अमीर द्वारा स्थापित हुए हैं। इनमें, एक में, फ़ौजी शिक्षा दी जाती है। उच्च तथा विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी रूस, इटली, फ़्रांस, जर्मनी आदि योरपीय देशों में भेजे जाते हैं। इस समय २०० विद्यार्थी इन देशों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और २० शीघ्र ही इँगलैंड में भी भेजे जानेवाले हैं। साथ ही बहुत-से योग्य जर्मन, तुर्की और फ़्रेंच विद्वान् अफ़ग़ानिस्थान में भी शिक्षा-प्रदान करने के लिये रक्खे गए हैं। स्त्रियों में पर्याप्त शिक्षा प्रचार के लिये भी प्रचुर प्रयत्न हो रहा है, और जगह-जगह कन्या-पाठशालाएँ स्थापित हो रही हैं। वर्तमान बादशाह की माता ने, काबुल में, एक कन्या-पाठशाला खुलवाई है। जिसमें, इस समय, लगभग २,००० कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इस वर्ष २५ कन्याएँ भी विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजी गई हैं।

सैनिक शक्ति-संघटन

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही दिनों बाद बादशाह अमानुल्लाख़ाँ ने अपनी सेना की शिक्षा और संघटन के लिये कुछ तुर्की आफ़िसर नियुक्त किए। उसके बाद कुछ जर्मन-आफ़िसर भी रक्खे गए, तथा देश के प्रमुख नगरों में सैनिक विद्यालय खोले गए। इस बार 'जिरगा' ने यह निश्चय किया है कि अब १७ वर्ष की अवस्था से ऊपर के प्रत्येक आदमी को अनिवार्य रूप से तीन वर्ष तक सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी होगी, तथा फ़ौज में काम करना होगा। बड़े-बड़े ओहदेदारों और आफ़िसरों को काबुल के फ़ौजी महाविद्यालय में विशेष-रूप से फ़ौजी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। युद्ध के समय बादशाह यहाँ के सरहदी आदमियों को बुला लेते हैं। ये लोग शस्त्रास्त्रों के चलाने में बड़े निपुण, शरीर से बहुत बलवान् और लड़ने में बड़े बहादुर होते हैं। अपने देश में शिक्षा प्राप्त करने के सिवा कुछ आदमी फ़्रांस में भी उच्च सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गए हैं। बादशाह ने अपनी इस योरप-यात्रा में टर्की से एक बड़ी महत्त्व-पूर्ण संधि की है। उस संधि में यह तय हुआ है कि टर्की अपने यहाँ से बड़े-बड़े विशेषज्ञ सैनिक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक और विद्वानों को अफ़ग़ानिस्थान में अफ़ग़ानियों को शिक्षा और सहायता देने के लिये भेजेगा *। उसी दिन बादशाह ने घोषित किया कि फ़्रांस से ५० हज़ार नई राइफलें मँगाई जा रही हैं। इसके लिये प्रत्येक पुरुष से ३) और प्रत्येक राजकर्मचारी से उसकी एक महीने की तनख़्वाह 'कर' के रूप में वसूल की जायगी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुछ ही दिनों के अंदर अफ़ग़ानिस्थान की सैनिक शक्ति सब प्रकार की नई पद्धतियों से परिपूर्ण और भली भाँति संघटित हो जायगी। हवाईजहाज़ की शिक्षा के लिये भी एक स्कूल खोला जा चुका है, जहाँ कुछ जर्मन-आफ़िसर अफ़ग़ानी विद्यार्थियों को वायुयानविद्या की शिक्षा देते हैं। इसके साथ ही कुछ आदमी मास्को में भी, इसकी शिक्षा प्राप्त करने के लिये, भेजे गए हैं। जलालाबाद में चार हवाई स्टेशन

* इसके अनुसार टर्की-सरकार ने कई प्रमुख जेनरलों को काबुल भेज दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाए जा रहे हैं। इस समय अफ़ग़ानिस्थान के पास १८ हवाईजहाज़ हैं। इन बाह्य साधनों के अलावा अफ़ग़ानिस्थान की प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति—उसकी पथरीली ज़मीन, पहाड़ी मैदान आदि—भी ऐसी है, जो उसके लिये एक ज़बर्दस्त सैनिक शक्ति का काम अलग से करती है।

कृषि और खनिज-पदार्थ

अफ़ग़ानिस्थान का बहुत भाग पथरीला और पहाड़ी होने के कारण खेती के उपयुक्त नहीं है, पर तो भी शेष ज़मीन में सिंचाई द्वारा नाज, फल और तरकारियों की काफ़ी खेती होती है। यहाँ जाड़े में मुख्यतः जौ, गेहूँ आदि और गर्मी में धान, मकाई, बाजरा तथा विविध प्रकार के दाल वाले नाज होते हैं। सेब, नाशपाती, अंगूर, अनार, किशमिश, बादाम, छुहाड़े, बेर, तरबूज़, ख़रबूज़े आदि अनेक प्रकार के फल यहाँ बहुत अधिक पाए जाते हैं, और ये इतने सस्ते होते हैं कि अंगूर अधिकांश जगहों पर अपने मौसिम में दो पैसे सेर बिका करता है। इनके सुस्वाद और मीठेपन का तो कहना ही क्या? कहते हैं, बाबर ने हिंदुस्थान फ़तह कर चुकने के बाद, एक बार कहा था हिंदुस्थान-जैसे इतने बड़े देश में मुझे अफ़ग़ानिस्थान का जैसा मीठा तरबूज़ खाने को कहीं भी न मिला। यहाँ के बहुत-से आदमी प्रायः इन फलों को खाकर ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। ये फल यहाँ से बाहर बहुत भेजे जाते हैं। चौपायों में भेड़, बकरे, ऊँट और घोड़े अधिकतर होते हैं। पर इन सबमें भेड़ वहाँ का सर्वश्रेष्ठ पशु है। यहाँ के भेड़ क़द में काफ़ी बड़े होते हैं। यहाँवाले अधिकतर इनका ही मांस खाते हैं। इनके ऊन और चमड़े के व्यापार की यहाँ बहुत प्रधानता है, तथा विदेशों में भेजी जानेवाली चीज़ों में इसकी मात्रा सबसे अधिक है। रेशमी कपड़े भी यहाँ तैयार होते हैं।

अनेकप्रकार के बहुमूल्य खनिज-पदार्थ भी यहाँ बहुतायत से पाए जाते हैं, जिनमें तेल सबसे अधिक पाया जाता है। इसके सिवा ताँबा, शीशा, लोहा और कोयला भी काफ़ी पाया जाता है, तथा भू-गर्भ-शास्त्र-विशारदों का ख़याल है कि अभी वहाँ कुछ ऐसे और भी खनिज-पदार्थ हैं, जिनका अभी तक पता नहीं चल सका है। क़ंधार में एक सोने की खान है, तथा बदख़्शाँ-नामक नगर बेश क़ीमती पत्थरों के लिये प्रसिद्ध है।

व्यापार-मार्ग और रेलवे

अच्छी सड़कों की कमी, रेलवे-लाइन के न होने तथा व्यापार-कार्य के योग्य नदियों के न होने के कारण अफ़ग़ानिस्थान का व्यापार अभी तक पर्याप्त-रूप में उन्नति नहीं कर पाया है। परंतु इन दिनों इसके लिये पूरी कोशिश की जा रही है कि व्यापारिक साधनों और मार्गों का अच्छा-से-अच्छा प्रबंध हो। अब तक ऊँटों और टट्टुओं पर ही मुख्यतया व्यापार होता आया है। पर अब मोटर-रोड और रेलवे निकालने की बातें सोची जा रही हैं। कई अच्छी-अच्छी सड़कें बन भी चुकी हैं। अफ़ग़ानिस्थान में रेलवे-लाइन के खुल जाने से अफ़ग़ानिस्थान को व्यापार आदि का लाभ होगा, सो तो होगा ही, साथ ही संसार का एक बड़ा भारी लाभ यह होगा कि हिंदुस्थान और योरप, बल्कि एशिया और योरप के आवागमन के लिये स्थल-मार्ग खुल जायगा, और फिर बड़े मज़े में कलकत्ते से काबुल होते हुए मास्को, वार्सा और बर्लिन तक रेलें दौड़ा करेंगी। अँगरेज़ों को इस स्थल-मार्ग के खुलने से बड़ा भय हो रहा है, क्योंकि इस प्रकार भारत और चीन के मार्गों पर उनका एकाधिपत्य और नियंत्रण नहीं रह जाता। परंतु अफ़ग़ानिस्थान अपनी उन्नति और भलाई के सामने अँगरेज़ों की घातक नीति का पृष्ठपोषण भला क्यों करने लगा? इस रेलवे-लाइन के खुलने में कोई विशेष कठिनाई भी नहीं है, क्योंकि अफ़ग़ानिस्थान चारों तरफ़ से रेलवे-लाइनों से घिरा हुआ है। चारों ओर से रेलें आती हैं, और अफ़ग़ानिस्थान की सरहद पर आकर रुक जाती हैं। रूस की रेल हिरात के सामने तथा एक दूसरी लाइन बलख़ के सामने तरमीज़ पर आकर रुकती है। इसी प्रकार इधर दक्षिण में ब्रिटिश-रेलवे-लाइन शम्मान, नुश्की, दज़दप और ख़ैबर-घाटी से कुछ आगे लंदीकोतल तक जाकर रुक जाती है। तरमीज़ से लंदीकोतल की दूरी सिर्फ़ ३०० मील की है, और इन दोनों स्टेशनों को जोड़ने से, बड़ी सुविधा से, रेलवे-लाइन तैयार हो जायगी। हाल की ख़बर है कि तीन रेलवे-लाइनें खोलने का निश्चय हो चुका, और यह काम फ़्रांस तथा जर्मनी के विशेषज्ञों के सिपुर्द कर भी दिया गया। अब आशा है, निकट भविष्य में ही, अफ़ग़ानिस्थान में रेलवे-लाइन खुल जायगी। मेमन और जहानाबाद में बेतार-के-तार के स्टेशन भी खोले जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदेशिक व्यापार

अफ़ग़ानिस्थान का वैदेशिक व्यापार-संबंध प्रधानतया हिंदुस्थान और रूस से है, पर जर्मनी और फ्रांस से भी थोड़ा-सा व्यापार होता है। इटली, जापान आदि देशों से भी उसने व्यापारिक संधियाँ की हैं। १९२१ ई० में भारत-सरकार और अफ़ग़ानिस्थान के बीच जो संधि हुई थी, उसमें अफ़ग़ानिस्थान को पूरी स्वतंत्रता के साथ, बिना किसी प्रकार का 'कर' लिए, ब्रिटिश भारत से सब प्रकार की वस्तुएँ आयात-निर्यात करने की बात भारत-सरकार ने स्वीकार की थी। इसी प्रकार की संधि, अफ़ग़ानिस्थान ने रूस के साथ भी कर ली है। हिंदुस्थान से अफ़ग़ानिस्थान में रेशम, रुई, चाय, काग़ज़, कपड़ा सीने की मशीनें, नील तथा अन्य प्रकार के रंग, चीनी, चाँदी, मोमबत्ती, लोहा, चमड़ा, घी आदि पदार्थ जाते हैं, तथा अफ़ग़ानिस्थान से घोड़े, गलीचे, ऊन, भेड़ों के चमड़े, मेवे, तरकारियाँ आदि चीज़ें भारत को आती हैं। रूस से वह चमड़ा, चीनी आदि चीज़ें मँगाता, तथा फल, ऊनी कपड़े आदि भेजता है। जर्मनी से अफ़ग़ानिस्थान में आनेवाली चीज़ें विविध प्रकार के कल-पुर्ज़े, रँगाई के सामान, चमड़े, सीमेंट आदि और फ्रांस से आनेवाली चीज़ें बिजली और तार के सामान, अस्त्र-शस्त्र, मोटरकार आदि हैं।

उद्योग-धंधे

उद्योग-धंधों की उन्नति के लिये भी अफ़ग़ानिस्थान में पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। बादशाह छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धंधों के बड़े हिमायती हैं, तथा उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन दे रहे हैं; आप स्वयं देशी कपड़ों और अधिक-से-अधिक देशी वस्तुओं का ही इस्तेमाल करते हैं, तथा सरकारी नौकरों को भी देशी कपड़े और देशी जूते ही इस्तेमाल करने का नियम बना रखा है। अपने देश के उद्योग-धंधों और कला-कौशल की उन्नति का ख़याल रखते हुए अफ़ग़ान-सरकार ने संरक्षण नीति से काम ले, पुस्तकों और लड़ाई के सामान के सिवा अन्य सभी विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात 'कर' लगा रखा है। कुछ विदेशी वस्तुओं पर तो दो सौ फ़ीसदी तक 'कर' लगाया गया है। काबुल में सरकार की ओर से विभिन्न प्रकार की फ़ैक्टरियाँ खुली हुई हैं, और उनसे सर्वसाधारण आम तौर से लाभ उठाते हैं। फ़ैक्टरियों में विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा और जानकारी के लिये क्लासों द्वारा शिक्षा दी जाती है। अभी तक उद्योग-धंधों की शिक्षा के लिये स्कूल-कालेजों की स्थापना नहीं हो पाई है। काबुल के सिवा अन्य मुख्य नगरों में, हथियारों के बनाने के लिये, बहुत-से कारख़ाने खुले हुए हैं; जिनमें बर्छी, भाले, तलवारें, पिस्तौलें आदि तैयार होती हैं। बड़ी-बड़ी बंदूकें तथा नए प्रकार के अन्य अस्त्र-शस्त्र जर्मनी और जापान से मँगाए जाते हैं। अपने देश के व्यापार को किन उपायों के अवलंबन से अधिक-से-अधिक उन्नत किया जा सकता है, इसके लिये, सरकार की ओर से एशिया और योरप में भ्रमण करने के लिये, आदमी रखे गए हैं। बादशाह अपने देश के उद्योग-धंधों और व्यवसायों को ऐसा उन्नत कर देना चाहते हैं कि अफ़ग़ानिस्थान एशिया का स्वीटज़रलैंड हो जाय। यहाँ पर क़ुरानी क़ानून प्रचलित है, और उसमें ब्याज लेना वर्जित है, इसलिये अभी तक, यहाँ पर, बैंकों का प्रादुर्भाव नहीं हो पाया है।

अन्य बातें

अफ़ग़ानिस्थान की कुल वार्षिक आय ५ करोड़ रुपए है। यह रक़म इसके लिये माक़ूल नहीं कि बादशाह अपने मनोवांछित-रूप में देश के विभिन्न उन्नतिशील कामों में लगा सकें। इसलिये अब उनका विचार है कि विदेशों के कुछ धनिकों को बुलाकर वहाँ पर वाणिज्य-व्यवसाय करने की इजाज़त दी जाय। कृषि की उन्नति के लिये सिंचाई तथा उसके नए प्रकारों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, तथा नए ढंग की कृषिशालाएँ खोली जा रही हैं। यहाँ के अख़बारों पर सरकार का पूरा नियंत्रण है। रूसी लोगों ने यहाँ के अख़बार, बिजली आदि के काम को ख़ूब अपना रखा है। सरकार की ओर से 'अमने-अफ़ग़ान' और 'इत्तिहादे-मशरकी'-नामक दो अख़बार निकलते हैं। पर ग़ैर-सरकारी अख़बारों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। यहाँ पर मालगुज़ारी आदि 'कर' प्रायः नाज अथवा उत्पन्न-पदार्थ के ही रूप में दी जाती है, पर सोने और चाँदी के सिक्के भी प्रचलित हैं। १५ काबुली रुपया वहाँ के सोने के 'अमानिया'-नामक एक सिक्के के बराबर होता है। अर्द्ध अमानिया, दो अमानिया और ५ अमानिया के भी सिक्के प्रचलित हैं। काबुली रुपया ८ पेंस या लगभग ७ आने के बराबर होता है। तार अभी केवल काबुल और पेशावर के ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच लग सका है, पर टेलिफ़ोन की व्यवस्था प्रायः सभी बड़े-बड़े नगरों में हो गई है। काबुल के शाही महलों तथा कुछ उच्च कर्मचारियों के घरों में बिजली की रोशनी भी लग गई है। डाक की व्यवस्था में भी परिवर्तन किया जा रहा है, और उसका नए ढंग से संघटन हो रहा है। विदेशी डाक सीधे अफ़ग़ानिस्थान को नहीं पहुँच पाती। वह पहले पेशावर आती है, और वहाँ से भारतीय डाक-विभाग द्वारा अफ़ग़ानिस्थान की सरहद पर भेज दी जाती है, और वहाँ से अफ़ग़ान-सरकार के डाक-विभाग द्वारा वह देश के हर हिस्से में पहुँचाई जाती है। जूलाई के अंत में प्रतिवर्ष यहाँ स्वातंत्र्य-दिवस का उत्सव, एक सप्ताह तक, मनाया जाता है। इस मौक़े पर बड़ा आनंदोल्लास, बड़ा समारोह रहता है। बादशाह, उत्सव के पहले दिन, अपने शूरवीर योद्धाओं और स्वातंत्र्य-संग्राम (यह युद्ध, सन् १९१९ ई० में, अँगरेज़ों और अफ़ग़ानों के बीच हुआ था) के लड़ाकों की, वीरता की, तारीफ़ करते तथा अफ़ग़ानिस्थान के उन्नतिशील और उज्ज्वलभविष्य की प्रोत्साहन-भरी बात सुनाते हैं। उत्सव-सप्ताह में अनेक प्रकार के वीरोचित कार्य, खेल-कूद, घुड़दौड़ आदि दिखलाए जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यह सप्ताह अफ़ग़ानियों में स्वतंत्रता, जीवन-जागृति और अतुल उत्साह-प्रदान करने का काम करता है। गत वर्ष भी, अगस्त-महीने में, अफ़ग़ानिस्थान की नई ग्रीष्मकालीन राजधानी पाग़मान में बड़े समारोह के साथ दसवाँ स्वातंत्र्य-दिवस मनाया गया। उत्सव में अफ़ग़ानियों के सिवा लगभग १०० भारतीयों ने भी भाग लिया। अफ़ग़ानियों में क़रीब १०० महिलाएँ भी उपस्थित थीं, जो सभी योरपियन-पोशाक में थीं। बादशाह को प्रजा की ओर से जो अभिनंदन-पत्र दिया गया, उसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि अफ़ग़ान की उन्नति तथा स्वातंत्र्य-रक्षा के लिये मेरा सर्वस्व उसके लिये समर्पित है। पर, इसके साथ ही में आपसे भी पूर्ण सहयोग की आशा करता हूँ, जिसके बिना मेरा उद्देश्य सफल नहीं हो सकता।

राजनीतिक प्रगति और अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति

वर्तमान बादशाह अमानुल्लाख़ाँ के राज्यारोहण करने के साथ ही अफ़ग़ानिस्थान में स्वातंत्र्य-सूर्य का पूर्ण प्रताप प्रकाशमान होता है। सन् १९१९ ई० तक अफ़ग़ानिस्थान अँगरेज़ों के संरक्षण में था। उसे भारत-सरकार से प्रतिवर्ष १८ लाख रुपया मिलता था, और इसके बदले वैदेशिक मामलों में उसे अँगरेज़ों का मुँह ताकना पड़ता था। परंतु बादशाह अमानुल्ला ने गद्दी पर बैठते ही इन १८ लाख रुपयों पर लात मार दी, अफ़ग़ानिस्थान को पूर्ण स्वतंत्र घोषित कर दिया, तथा अपने देश की पूरी स्वतंत्रता दूसरे राष्ट्रों से मनवाने का मौक़ा ढूँढ़ता रहा। उस समय रूस में सोवियट-शासन स्थापित हो चुका था। १९१९ ई० में रूस ने अफ़ग़ानिस्थान के साथ संधि करके उसे पूर्ण स्वतंत्र स्वीकार किया। अँगरेज़ों के हृदय में यह संधि शूल की नाईं शूलने लगी, और उन्होंने तत्कालीन-संधि के बिलकुल बर्ख़िलाफ़ उसी समय अफ़ग़ानिस्थान पर चढ़ाई कर दी, और अफ़ग़ानिस्थान में हवाई जहाज़ों द्वारा गोले बरसाने लगे; पर अफ़ग़ानिस्थान को कुचल डालना कुछ मामूली बात न थी। एक तो अफ़ग़ानी वीरों ने शुरू में ही अँगरेज़ी फ़ौज का ज़बरदस्त मुक़ाबिला कर, उन्हें अपनी वर्तमान वीरता और पराक्रम का ख़ासा परिचय दे दिया था। दूसरे उस समय हिंदुस्थान की पूरी सहानुभूति अफ़ग़ानिस्थान के साथ थी, और हिंदुस्थानी जलियाँवाला-बाग़ हत्याकांड, ख़िलाफ़त आदि मामलों के कारण न केवल अँगरेज़ों से क्षुब्ध और नाराज़ ही थे, बल्कि उनमें जीवन, जागृति और स्वतंत्रता के भाव हिलोरें मार रहे थे, जिसके फल-स्वरूप देश-भर में असहयोग-आंदोलन ने प्रचंड रूप धारण कर लिया था, और अँगरेज़ों के दिल दहल उठे थे। तीसरे अँगरेज़ों के सैनिक भी महासमर में लड़ते-लड़ते परेशान-से हो गए थे, तथा फिर शीघ्र ही कोई लड़ाई लड़ने को तैयार न थे। उधर अफ़ग़ानिस्थान यों मुक़ाबिला करने को तैयार तो था, पर उसके पास इतनी शक्ति कहाँ थी कि अँगरेज़-जैसे विशाल सैनिक सत्ताधारी का समुचित सामना कर पाता? पर परिस्थिति अपने अनुकूल देख, वह तना हुआ था। अँगरेज़ों ने परिस्थिति सर्वथा अपने विपरीत पाई, फल-स्वरूप २२ नवंबर, १९२१ ई० को दोनों में संधि हो गई। कहने को अँगरेज़ जीते, पर मतलब में अफ़ग़ानिस्थान। इस संबंध में प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० आर्नाल्ड टायनबी ने बिलकुल ठीक कहा है—"अमीर ने अपनी पराजय के पुरस्कार में जो कुछ वह चाहता था, पा लिया; और भारत-सरकार को विजय के मूल्य में अफ़ग़ानिस्थान की परराष्ट्रनीति पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, जिस पर उसका ४० वर्ष से अधिकार चला आता था, अपना हाथ हटा लेना पड़ा *।" अफ़ग़ानिस्थान की पूर्ण स्वतंत्रता अँगरेज़ों को स्वीकार करनी पड़ी। संधि में क़ाबुल तथा लंदन में अपने-अपने राजदूत रखने और दिल्ली, कलकत्ता, कराँची, बंबई, कंधार एवं जलालाबाद में अफ़ग़ान-आफ़िसर नियुक्त करने की बात स्वीकार की गई। अफ़ग़ान-सरकार को सब प्रकार की चीज़ें बिना किसी 'कर' के ब्रिटिश-भारत से होकर ले जाने की स्वीकृति मिली। इसी प्रकार अपने देश से बाहर भेजनेवाली चीज़ों में भी अफ़ग़ानिस्थान को पूरी स्वतंत्रता प्रदान की गई †। संक्षेप में उस संधि का यही मतलब है।

इसके बाद अफ़ग़ानिस्थान ने धीरे-धीरे संसार की राजनीति में अपना प्रभाव जमाना शुरू किया, और टर्की, ईरान, फ़्रांस, जर्मनी आदि योरपीय राष्ट्रों से, मैत्री की संधियाँ कीं। इन राष्ट्रों ने अफ़ग़ानिस्थान को एक पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार किया। फल-स्वरूप आज अफ़ग़ानिस्थान-जैसा एक बहुत छोटा-सा राष्ट्र संसार के बड़े-से बड़े स्वाधीन राष्ट्रों की श्रेणी में शान के साथ बैठता है। उसके राजदूत इन दिनों लंदन, मास्को, बर्लिन, पेरिस, अंगोरा आदि राजधानियों में रह रहे हैं। हाल की यात्रा में इन सभी राष्ट्रों ने अफ़ग़ानिस्थान के बादशाह का बड़े सम्मान के साथ स्वागत-सत्कार किया। अफ़ग़ान-बादशाह ने इस यात्रा द्वारा, इन राष्ट्रों से अपना मित्रभाव और भी दृढ़ और स्थायी कर लिया है। बादशाह ने रूस, टर्की, ईरान आदि देशों से इस बार फिर नई संधियाँ भी की हैं। इन संधियों द्वारा अफ़ग़ानिस्थान ने अपना अंतर-राष्ट्रीय परिस्थिति और भी दृढ़ कर ली है।

हिंदुस्थान और रूस के बीच में होने के कारण अफ़ग़ानिस्थान एक मध्यवर्ती (Buffer State) राष्ट्र बन गया है। यह भी उसकी महत्ता का एक ख़ास गुण है। अफ़ग़ानिस्थान इन सब बातों को अच्छी तरह समझता, और महसूस करता है। रूस और इँगलैंड के सिवा योरप के अन्य राष्ट्रों से मैत्री स्थापित करने का उसका एकमात्र मतलब यही नहीं है कि वह स्वतंत्र कहा जावे, और उन लोगों की श्रेणी में बैठे, बल्कि वह यह भी सोचता है कि अगर कहीं भविष्य में १९०७ की अँगरेज़-रूस-संधि (Anglo-Russian Entente) की तरह फिर कोई संधि हो, जिसके द्वारा उसके सर्वनाश की बात सोची जाय, तो उस समय योरप तथा एशिया के मित्रराष्ट्र उसे अवश्य बचावेंगे; और संभवतः यही कारण है कि अभी कुछ दिन पहले अफ़ग़ान-नरेश ने राष्ट्र-संघ की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा था कि इसके द्वारा संसार के राष्ट्रों को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचाया जा सकता है। परंतु ऐसा भी न समझना चाहिए कि अफ़ग़ानिस्थान का बादशाह केवल स्वार्थमय दृष्टि से ही अंतर-राष्ट्र-परिस्थिति में इस प्रकार भाग ले रहा है। नहीं, वह बड़ा उच्च और उदार विचार का व्यक्ति और स्वतंत्रता का महान् उपासक है। वह पच्छिम के साम्राज्यवादियों की चालों को भली भाँति भाँपता है, और यह अच्छी तरह से महसूस करता है कि एशिया के परतंत्र राष्ट्र को स्वाधीन करने में पूरी मदद देना उसका परम कर्त्तव्य है। इसी दृष्टि से १९२१ई० में जब टर्की से उसकी संधि हुई, तो शर्तनामे में यह लिखा गया कि ये दोनों राष्ट्र एशिया के परतंत्र राष्ट्रों को स्वतंत्र कराने में पर्याप्त सहायता पहुँचाएँगे।

* Thus the Amir Amanullah gained, as the reward of defeat, the principal point, the programme with which he had started the war, while the Government of India abandoned as the price of victory the control over the foreign policy of Afganistan, which it had exercised for forty years.

† .....The two governments agreed to respect one another's internal and external independence, to recognize boundaries then existent, near Khyber, to receive legations at London and Kabul and consular officers at Delhi, Calcutta, Bombay, Karachi, Kandhar and Jalalabad respectively. The Afghan Government is allowed to import free of duty such material as is required for strengthening their country. ..... This proviso applies to arms and ammunition also. The export of goods to British territory from Afganistan is permitted, while separate postal and trade conventions are to be concluded in future.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना ही नहीं, बल्कि वह इसके लिये उद्योग-रत भी है। वह अखिल एशिया-संघ की महत्ता और आवश्यकता को भली भाँति महसूस करता है, और एशिया के सभी राष्ट्रों से अपना संबंध घनिष्ठ करता जा रहा है। यह हर्ष की बात है कि इस वर्ष अखिल एशिया-संघ (Asiatic Federation) का अधिवेशन (इस संघ का यह तीसरा अधिवेशन है। पहला टोकियो और दूसरा गत वर्ष शांघाई में हुआ था) क़ाबुल में होनेवाला है, जिससे आशा की जाती है कि इस संघ की जड़ ख़ूब मज़बूत हो जायगी, और उसके द्वारा एशिया के परतंत्र राष्ट्रों को स्वाधीन होने में काफ़ी सहायता मिलेगी।

अफ़ग़ानिस्थान को संसार की अंतर-राष्ट्रीय परिस्थिति में एक बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है, और यह महत्त्व अभी और बढ़ता ही जायगा। इस कारण योरप के फ़्रांस, जर्मनी, इटली आदि राष्ट्रों को—जिनका अफ़ग़ानिस्थान से कोई भौगोलिक संबंध नहीं है—तथा एशिया के जापान, टर्की आदि राष्ट्रों को अफ़ग़ानिस्थान की राजनीति से मजबूरन् गहरा संबंध रखना पड़ेगा। यह निश्चित है कि अफ़ग़ानिस्थान की शक्ति, सबसे अधिक रूस और इँगलैंड के साथ ख़र्च होगी, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके लिये उपर्युक्त अन्य राष्ट्रों की मैत्री समय पर बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। हिंदुस्थान की अपने इस पड़ोसी भाई की उन्नति और अभ्युदय के प्रति हार्दिक सहानुभूति है, और उससे वांछनीय भाईचारे का संबंध रखने में वह अपना गौरव समझता है।

नए सुधार

बादशाह अमानुल्लाख़ाँ ने अपनी योरप-यात्रा के बाद से अफ़ग़ानिस्थान में सर्वतोमुखी क्रांति पैदा कर दी है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक, प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ एक भयंकर हलचल पैदा हो गई है। वह मनस्वी अफ़ग़ानिस्थान की उन्नति और अभ्युदय के लिये पागल हो रहा है, और इसके लिये वह एक क्षण का समय भी बरबाद होने देना नहीं चाहता। अभी गत ७-८ महीनों में ही उसने जो सुधार किए हैं, वह किसी भी राष्ट्र के लिये आदर्श और ईर्ष्या के विषय हैं। इन नए सुधारों में कुछ का ज़िक्र तो ऊपर यथा स्थान किया जा चुका है, पर शेष चंद बातें यहाँ दी जा रही हैं। बादशाह यह समझते हैं कि आजकल योरपीय सभ्यता की संसार में धाक है, साथ ही आधुनिक ज़माना भी बिलकुल उसी का पोषक हो रहा है। उन्होंने यह भी देखा है कि टर्की का शेर—गाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा भी समय की गति को देखकर टर्की को पाश्चात्य-सभ्यता ही के रंग में रँग रहे हैं। इसलिये अपने को भी उन्होंने उनका अनुगामी बना लिया है। परदे का तो आपने योरप जाते समय ही अपनी महारानी द्वारा बहिष्कार करवा दिया था। उस दिन स्वातंत्र्य-दिवस में शामिल होनेवाली सभी महिलाएँ भी परदा-रहित होकर उत्सव में शामिल हुई थीं। एक दिन वहाँ के मुल्ला लोग परदा का पृष्ठपोषण करते हुए बादशाह के पास पहुँचे। पर बादशाह ने उन्हें ऐसा मुँहतोड़ उत्तर दिया कि वे अपना-सा मुँह लिए चले गए।

आचार-व्यवहार में योरपीय करण की एक बड़ी मनोरंजक घटना, अभी कुछ दिन पहले, पाग़मान (वहाँ की ग्रीष्म राजधानी) में घटी। स्वातंत्र्य-दिवस के रोज़ वहाँ की 'लोई जिरग़ा के सदस्य' (जन-सभा-पार्लमेंट) बड़ी-बड़ी दाढ़ी बढ़ाए, लबादा पहने और ढीला-पोला पहाड़ी जूता पैरों में चटकाते हुए, वहाँ पहुँचे। बादशाह ने, जो स्वयं उस समय सेनापति का काम कर रहे थे, मेंबरों को एक बड़े हाल में ले जाकर इन सारी दक़ियानूसी पोशाकों को उतारकर योरपीय फ़ैशन का नया कोट, बूट, पैंट और हैट पहनने की आज्ञा दी। बेचारे मेंबर लोग भला बादशाह-सलामत के हुक्म को कैसे न मानते?—सभी बातें मान लीं। इसके बाद नाई बुलवाए गए, और सदस्यों की ज़ुल्फ़ें और दाढ़ियाँ भी साफ़ करवा दी गईं। इसके बाद बेचारों को 'जिरग़ा' में बेंचों—कुर्सियों पर (अब तक वे मेंबर ज़मीन ही पर बैठते थे) बैठने का आदेश हुआ। मेंबरों को इन काष्ठासनों पर बैठने में तक़लीफ़ तो बड़ी हुई, पर मजबूरी थी, उसकी पाबंदी भी की।

इतने ही से अंत नहीं होता। अभी और सुनिए—बादशाह ने बहु-विवाह भी बंद कर दिया। अब यह क़ानून बन गया है कि कोई भी शख़्स एक से अधिक स्त्री नहीं रख सकता। राज-कर्मचारियों के लिये तो यहाँ तक हुक्म हुआ है कि जो एक से अधिक स्त्री रक्खेंगे, नौकरी से बरख़ास्त कर दिए जायँगे। बादशाह ने एक-पत्नीव्रती होकर, इस संबंध में, स्वयं एक ज्वलंत आदर्श उपस्थित किया है। ढोंगियों तथा मूर्ख मुल्लाओं के अंध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास, धार्मिक ढोंग तथा अन्य कुरीतियों से जनता को बचाने के लिये जिरग़ा ने यह क़ानून भी बना दिया है कि अब वहाँ वे ही मुल्ला धर्म-प्रचार का काम कर सकेंगे, जो सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए रहेंगे। इन ज़बरदस्त क्रांतिकारी सुधारों के विरुद्ध वहाँ के कुछ मुल्ला लोग बिगड़ उठे थे, और विरुद्ध प्रचार करने लगे थे, जिसके फल-स्वरूप लगभग ३० मुल्लाओं को सरकार ने गिरफ़्तार किया है, और उन पर मुक़दमा चल रहा है। पदवियों और तमग़ों का रिवाज भी वहाँ से अब नेस्तनाबूद कर दिया गया। तमग़े कुछ थोड़े-से रक्खे गए हैं, पर केवल वे ही, जो स्वातंत्र्य-संग्राम के वीरों को उस संबंध में मिले थे।

इस प्रकार अफ़ग़ानिस्थान में आए दिन नए-नए सुधार हो रहे हैं, और उसकी इस प्रगति को देखकर अनुमान होता है कि बहुत थोड़े ही दिनों के अंदर वह एक परमोत्कृष्ट राष्ट्र हो जायगा। एक स्वतंत्र राष्ट्र का एक स्वतंत्रता-प्रिय, सदाचारी और मनस्वी शासक अपने राष्ट्र को बहुत अल्प काल में क्या-से-क्या कर सकता है, बादशाह अमानुल्लाख़ाँ इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ग़ुलाम भारतवासी और ख़ास कर यहाँ के देशी नरेश अपने इस उन्नतिशील पड़ोसी राष्ट्र से बहुत कुछ शिक्षा-लाभ कर सकते हैं। पर क्या वे इस ओर माक़ूल ध्यान देने का कष्ट करेंगे? *

देवव्रत शास्त्री

"राख्यो मैं"

कुलटा कहायकै कलंक मढ़ि लीन्हों सिर,
जाहि अभिलाख्यो नित ताहि अभिलाख्यो मैं;
बौरी भई हाय री 'सुमंगल' बियोग-बेग,
कीन्हो कुकरम तौ न नीको फलु चाख्यो मैं।
मोहि न सताओ सती बोलिबो बरजि राख्यो,
सूने में अबेगन सों ताकि कत भाख्यो मैं;
अधिक कहौंगी, अबै परलै मचैगी, अजौं—
नैन-जीह राकिकै, मसोसि मन राख्यो मैं।

सुमंगलप्रकाश गुप्त

* "कई महीने हुए जब यह लेख, अफ़ग़ानिस्थान के संबंध में, लिखा गया था। इस समय परिस्थिति दूसरी है। इस लेख में अफ़ग़ानिस्थान के जिस उज्ज्वल भविष्य का वर्णन है, आज उसकी दशा बिलकुल भिन्न है। इस समय तो भविष्य अंधकारमय है।"—संपादक

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(६)

हेनरिक पांटोपिदन

सन् १९१७ का पुरस्कार दो विद्वानों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया, जो दोनों ही डेन्मार्क के थे। इस वर्ष का पुरस्कार-वितरण बड़े ही आश्चर्य का कारण रहा; क्योंकि पहले तो बहुत कम लोग समझते थे कि इस वर्ष यह डेन्मार्क में जायगा, फिर उस देश के संपादक एवं समालोचक यह स्वप्न में भी नहीं सोचते थे कि पुरस्कार इन दोनों सज्जनों को दिया जायगा। कारण, डेन्मार्क में जॉर्ज ब्रैंडीज़-जैसे धुरंधर विद्वानों के होते हुए दूसरों को मिलना असंभव-सा था। दूसरी बात यह थी कि डेनिश-लेखकों की कृतियों के अनुवाद भी बहुत कम हुए थे, जिससे उनकी ख्याति बहुत ही संकुचित थी।

जो कुछ हो, इन दोनों में से एक तो थे हेनरिक पांटोपिदन (Henrik Pontoppidan)। जिनके एक उपन्यास को वर्ग्स्ट्रॉम ने नाटकीय रूप दिया था। इस ग्रंथ का नाम है Thora Van Deken, जो १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ, और जिसका उल्लेख A Study of the Modern Drama * में विस्तृत रूप से है। इन बूढ़े लेखकों में—उस समय दोनों की अवस्था ६० से ऊपर थी—पांटोपिदन का नाम अधिक था। इनके वंश में विद्वान् भी हुए थे। एंडर्सन ने तो यहाँ तक लिखा था कि "Modern Denmark could be re-constructed entire from his books" पांटोपिदन के पिता-पितामह पादरी थे, और इनका जन्म १८५७ ई० में हुआ था। वह पहले इंजीनियरी पढ़ने के लिये कोपेनहेगेन भेजे गए। वह स्वीज़रलैंड गए, और वहीं प्रेम तथा काव्य, दोनों का ही पाठ पढ़ा। २४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने Clipped Wings (कटे पर)-नामक गल्पों का एक संग्रह प्रकाशित किया। पहली

* By B. H. Clark (New York, 1925).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी के देहांत हो जाने पर दूसरा विवाह करके, तब से यह राजधानी में ही रहते हैं। ब्रैंडीज़ इनके मित्रों में से हैं, और अनेक नौसिखिए नाट्यकार इनकी शिष्यता में हैं। १८९२ से १९१६ ई० तक इन्होंने तीन बड़े-बड़े उपन्यास लिखे हैं, जिनमें से पहला है The Promised Land*, जिसके लिखने में तीन वर्ष लगे थे। इसमें एक आदर्शवादी की उन कठिनाइयों का विवरण है, जो आदर्शानुयायियों को प्रायः संसार में झेलनी पड़ती हैं। दूसरा है Lucky Peter, जिसे लिखने में चार वर्ष लगे, और जिसमें लेखक ने थोड़ा-बहुत अपना ही जीवन चित्रित किया है। इसका नायक भी पादरी का लड़का है, और इंजीनियरी पढ़ता है। इनका तीसरा उपन्यास है The Kingdom of the Dead, जिसमें डेन्मार्क के और विशेषतः कोपेनहेगेन के जीवन का प्रतिबिंब है। एक और मनोरंजक उपन्यास है "पंसारी की लड़की" †, जो इन तीनों के पहले लिखा गया था।

इनके ग्रंथों तथा कहानियों का महत्त्व, जैसा कि पुरस्कार के निर्णायकों ने लिखा था, चरित्र-चित्रण अथवा मानसिक अध्ययन में नहीं, बरन् उनके "Profuse description of Danish life of to-day" में है, और इसके जानने के लिये वहाँ के किसानों की दशा जान लेनी चाहिए। बात यह है कि सन् १८४९ ई० में एक ऐक्ट पास हुआ था, जिसके अनुसार वहाँ के किसानों की अवस्था बहुत उत्तम हो गई। कितनी ही सभा-सोसाइटियाँ बनीं, और पाठशालाएँ आदि स्थापित हुईं। १८६६ ई० में, इस ऐक्ट में, फिर परिवर्तन हुआ, जिससे उन बेचारों की दशा ख़राब हो गई। इस पर इन्होंने दो और ग्रंथ लिखे, एक तो था The Evolution of the Danish Peasant और दूसरा Children of the Soil. ‡

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने कितनी ही छोटी-छोटी गल्पें लिखी हैं, जिनमें इनकी वर्णन-शैली का अधिक घनिष्ठ परिचय मिलता है। "छुई-मुई" तथा "उक़ाब की उड़ान" आदि कहानियाँ इसके उत्तम उदाहरण हैं।

कार्ल जेलेरप

पांटोपिदन के साथी जेलेरप (Gjellerup) भी पादरी-घराने के थे, और उसी वर्ष पैदा हुए थे। दोनों जनों की अवस्था बराबर थी। इनकी प्रारंभिक पढ़ाई, पंडिताई तथा मंत्रित्व के लिये हुई; पर इन्हें इनमें से एक भी पसंद नहीं आया। इन्हें तो डार्विन, स्पेंसर तथा ब्रैंडीज़ के सिद्धांतों से प्रेम था। अतएव ऐसे ही ग्रंथों का अध्ययन यह पहले से ही करने लगे। बहुत दिनों तक यह जर्मनी में रहे, जहाँ इनका बहुत अधिक नाम है।

इनके ग्रंथों में प्राचीन ईसाई-धर्म के प्रतिपादन के साथ-साथ यूनान के सौंदर्य-प्रेम का भी रहस्य मिश्रित है। अँगरेज़ी में इनका अनूदित सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है "यात्री कामानीत", जिसकी कथा भारतीय साहित्य से कुछ संबंध रखती है *। इसका मूल स्थान गंगा-तट पर "पंचपर्वत की नगरी" है, जहाँ बुद्ध भगवान् आकर कामानीत से मिलते हैं। कामानीत अवंती के एक व्यापारी का लड़का है, और सर्वगुण-संपन्न नवयुवक होते हुए भी राजनीतिक दूतत्व के लिये कौशांबी के राजा उदयन के यहाँ भेजा जाता है। वहीं यह कुमारी के प्रेम में फँस जाता है। दूसरा उपन्यास "मिन्ना" नायिका की दुःख-पूर्ण गाथा है †। इसका घटना-स्थल जर्मनी में है, जहाँ स्वयं लेखक बहुत दिनों तक रह चुका है।

जर्मन-समाज तथा साहित्य से जेलेरप को प्रेम भी बहुत था। उन्होंने इस देश के दर्शन तथा जीवन के रहस्यों को अन्य देशी विद्वानों को समझाने की बड़ी कोशिश भी की है। इसी कारण डेन्मार्क में प्रायः लोग उन्हें उच्च कोटि के डेनिश-लेखकों की श्रेणी में नहीं गिनते। ऐसे ही लोगों की सम्मति थी कि नोबेल-

* Translated by Mrs. E. Lucas (London. 1896).

† *The Apothecary's Daughter*, translated by G. Nielsen (London, 1890).

‡ Translated by Mrs. Edgar Lucas, (London, 1896).

* *The Pilgrim Kamanita*, translated by J. E. Logie.

† *Minna*, a novel, translated by C. L. Neilson (London, 1913).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी
11110.26

पुरस्कार इनको नहीं, बल्कि संसार-प्रख्यात आर्ज ब्रैंडेज़ को या नाट्यकार बर्ग्स्टाम अथवा कविवर डैकमैन को मिलना चाहिए था। जो कुछ हो, पर जेलेरप के ग्रंथों में प्रतिभा की झलक और विश्लेषण-शक्ति है, और आशा है कि अनुवाद होने से उनका मान साहित्यिक संसार में और भी बढ़ जायगा। इनका देहांत १३ आक्टोबर, १९१९ ई० को हो गया, और तब से इनके विषय की उतनी चर्चा भी पत्रों में नहीं रहती।

कार्ल स्पिटलर

सन् १९१८ में भी १९१४ की भाँति पुरस्कार नहीं दिया जा सका। कुछ तो महायुद्ध के कारण और बहुत कुछ अन्यान्य कारणों से। अतएव १९१९ में जब पुरस्कार स्वीज़रलैंड के स्पिटलर को मिला, तो लोगों को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ; क्योंकि कार्ल स्पिटलर (Carl Spittler) का नाम फ्रांस तथा जर्मनी के अतिरिक्त और किसी देश में भी प्रसिद्ध नहीं था। समालोचकों ने इन्हें बहुत निराश किया था, और यद्यपि प्रकांड पंडित निट्शे (Nietzsche) ने इनके विषय में ये शब्द लिखे थे—"Perhaps the most subtle aesthetic writer" *, तथापि अंतर-राष्ट्रीय दृष्टि से इन्हें कोई नहीं जानता था। पुरस्कार मिलने के समय इनकी अवस्था लगभग ७५ वर्ष की थी, और जिस पुस्तक के लिये इन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ, उसके लिखने में इन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा था। निर्णायकों ने अपनी सम्मति देते समय इस ग्रंथ का विशेष उल्लेख किया है। वे लिखते हैं—"Having especially in mind his mighty epic *Olympischen Fruhling*." अतएव यह ग्रंथ सर्व-सम्मति से एक शक्तिशाली महाकाव्य माना गया है। और, एक पत्र में तो रावर्ट्सन ने इसे इटली के वाल्मीकि महाकवि दांते के Comedia Divina से तुलना करते हुए लिखा है—"The Divine Comedy of the New Century" †। किसी ने इसकी समता शेली के Prometheus Unbound से और दूसरों ने कीट्स के Endymion से की है।

ग्रंथ के नाम का अर्थ है "आलिंपस में वसंत।" कथा यों है—रावण की भाँति विश्वविजयी अलंके (Alanke) देवताओं को पाताल में बंद कर देता है, और महर्षि वाल्मीकि की तरह उन्हें दूर-दूर देशों में घसीटता है। इसी बीच में उसकी लड़की मोयरा (Moira), संसार को शांति-प्रदान करती है, और चारों ओर वसंत छा जाता है। परंतु थोड़े दिन पश्चात् फिर लड़ाई होती है, और दूसरे भाग में महारानी हीरा (Hira), जो अमेज़नों की रानी है, सबको नाच नचाती है। कथा बड़ी मनोहर तथा प्राचीनता एवं आधुनिकता का मिश्रण है। सारे ग्रंथ में बड़े-बड़े महत्त्व-पूर्ण कई स्थल हैं, जहाँ लेखक की अपूर्व मनोमोहनी प्रतिभा का परिचय मिलता है। कहीं-कहीं मनोविनोद तथा आदर्शवाद के साथ-साथ अर्वाचीन समस्याओं की भी छटा दिखाई गई है, जिससे कथा में केवल पुरानापन ही नहीं रह गया है, बीसवीं शताब्दी की स्पष्ट छाप लग गई है।

स्पिटलर का जन्म सन् १८४५ ई० में हुआ था और इनके पिता बेसल के डाकघर में नौकर थे। वहीं के विश्वविद्यालय में यह पढ़ते रहे, और वहाँ के दो बड़े विद्वानों का उनके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। एक तो जर्मन-भाषातत्त्वज्ञ बैकरनेजल और दूसरे इटालियन ऐतिहासिक बर्कहर्ट थे। यहीं पर इन्हें संगीत से भी प्रेम हो गया, और कला-कौशल से भी रुचि होने लगी। फिर ज़ूरिच एवं हीडलबर्ग-विश्वविद्यालयों में इतिहास तथा धर्मशास्त्र पढ़ने गए। यह सब पढ़ते तो रहे, पर प्रवृत्ति इनकी सदा ही साहित्य तथा काव्य की ओर रही। उसी समय से अपने जीवन का लक्ष्य इन्होंने कवि होना ही बना लिया। कई पुस्तकों का ख़ाका लिखने के लिये तैयार कर लिया; पर, फिर बीच में ही रूस के एक जेनरल के घर अध्यापक होकर चले गए। इस प्रकार रूस में आठ वर्ष रहे, और वहीं एक लंबी कविता धीरे-धीरे लिखते रहे, जिसका मुख्य आधार शेली की प्रसिद्ध कविता Prometheus Unbound रही। इन्होंने इसमें थोड़ा-सा और बढ़ा दिया, और प्रोमीथियस के साथ-साथ उसके भाई एपीमिथियस को भी कथा में रख दिया। अतएव पूरी कविता का नाम पड़ा Prometheus and Epimetheus * जिसमें भाई तो पैंडोरा के प्रलोभनों

* Carl Spittler: monograph compiled by E. D. Verlag (Jena).

† *Contemporary Review*, January, 1920.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आकर आध्यात्मिक अवनति को प्राप्त होता है, पर प्रोमीथियस अपनी आत्मा के लिये सांसारिक सुखों का त्याग करता जाता है, और दुःख भोगता है।

इनका जीवन बहुत अव्यवस्थित रहा। रूस से यह स्वीज़रलैंड गए, और वहाँ भी पढ़ाने का काम करते रहे। तदनंतर बेसल में कुछ संपादन-कार्य करने लगे। सन् १८८३ में विवाह करके साहित्य की ओर विशेष ध्यान देने लग गए। एक अद्भुत ग्रंथ इनका Extramundana नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें सृष्टि के विकास का इतिहास कविता में लिखा गया है। छोटी-छोटी कविताओं का एक संग्रह "तितली" * नाम से प्रकाशित किया, जिसमें प्रेम तथा प्रकृति-संबंधी अधिकांश कविताएँ हैं। विवाह के ७-८ वर्ष बाद इन्हें थोड़ी-सी जायदाद मिल गई, जिसके कारण प्रत्येक चिंताओं से मुक्त हो गए, और अध्यापकी छोड़कर, आनंद से जाकर, लूसर्न में रहने लगे। वहाँ प्राकृतिक सौंदर्य के बीच में रहते हुए उन्हें काव्य करने का उत्तम अवसर भी मिला, और तभी से साहित्य के कई विभिन्न विभागों में लिखने लगे। कुछ निबंध लिखे, जिन्हें Lachende Wahrheiten अर्थात् "हँसती सचाई" के नाम से छपाया। फिर एक गद्य-पद्यमय खंडकाव्य लिखा, और अंत में नवयुवकों के लिये एक विनोद तथा शिक्षा-पूर्ण उपन्यास Madchenfeinde नाम का लिखा, जिसका अँगरेज़ी में Two Little Misogynists † नाम से अनुवाद भी हुआ है। इसमें दो विद्यार्थियों—जेरोल्ड और हैंसली—की आत्मकथा है, जो किसी सैनिक स्कूल में पढ़ते हैं। इस कहानी में कहीं-कहीं रवि बाबू की गल्पों के-से स्थल हैं, जो युवकों को विशेषतः प्रिय लगते हैं।

कविताओं का दूसरा संग्रह Balladen ‡ नाम से, १९०५ ई० में, प्रकाशित हुआ, और फिर यह अपनी पुरानी पुस्तक प्रोमीथियस के ऊपर एक काव्यमयी टिप्पणी-सी लिखने लगे। इसका नाम रक्खा "इमागो" ×, जिसका नायक लेखक की ही भाँति 'विक्टर' नाम का एक कवि है। विक्टर की जीवनी में स्वयं लेखक की ही आत्मकहानी सन्निहित है, और सारी पुस्तक में जर्मनी की सामाजिक दशा तथा योरपीय समस्याओं की कुंजी मिलती है। इस ग्रंथ के बाद दूसरी कोई महत्त्व-पूर्ण पुस्तक स्पिटलर ने नहीं लिखी। १९२५ ई० में उनका देहांत हुआ, और तब से अर्वाचीन साहित्यिक वायुमंडल में इनके प्रभाव का और स्पष्ट प्रमाण मिलता जा रहा है। जीवन के अंत तक यह लूसर्न में ही रहे, और महायुद्ध के दिनों में अपने देशवासियों से युद्ध के झगड़े से पृथक् रहने की ही प्रेरणा करते रहे। इसी कारण बहुत लोग इनसे असंतुष्ट हो गए, और बुढ़ापे में राजनीतिक क्षेत्र में भी इन्हें थोड़ा-सा भाग लेना पड़ा। इसी झंझट में इनका साहित्यिक संदेश भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा। परंतु उस कोलाहल में भी बड़े-बड़े साहित्य-मर्मज्ञों ने इनका वही आदर किया, जिसके यह वास्तव में पात्र थे। रोमें रोलाँ ने तो स्वयं पुरस्कार पाने के पश्चात् अपना खेद प्रकट किया कि स्पिटलर-ऐसे धुरंधर लेखक को यह सम्मान क्यों नहीं दिया गया। उन्होंने इस विषय में यों लिखा था—

"Spittler is to my mind the greatest European poet, the only one to-day who approaches the most famous names of the past. × × × Strange blindness of the world to pass by the living flame of the genius of the most inspired poet × × ×."

इन शब्दों से रोलाँ की गुण-ग्राहकता तो स्पष्ट ही है, स्पिटलर का भी महत्त्व झलकता है। ये पंक्तियाँ सन् १९१७ ई० में लिखी गई थीं, और दो वर्ष पश्चात् ही रोलाँ की अभिलाषा पूरी हो गई।

नट हैम्सन

सन् १९२० के पुरस्कृत लेखक में कई विशेषताएँ रहीं। अभी तक किसी भी विद्वान् को एक ग्रंथ के लिये पुरस्कार नहीं दिया गया था, पर नारवे-निवासी नट हैम्सन Knut Hamsun को प्रतिष्ठा देते समय निर्णायकों ने स्पष्ट लिख दिया है—"For his monumental work, *The Growth of the Soil.*" दूसरी बात यह थी कि जितना अव्यवस्थित इनका जीवन रहा है, उतना और किसी भी विद्वान् का न रहा होगा। इसी कारण जब पुरस्कार की घोषणा हो गई, तो अमेरिका

* *Schmetterlinge.*

† New York (1922).

‡ Zurich (1906).

× Jena (1906, 1919).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समाचारपत्रों ने इसकी सूचना देते हुए लिखा—"The Horse-Car Conductor who wins the Nobl Prize." यह सत्य अवश्य था कि अपने जीवन के किसी भाग में वह शिकागो की सड़कों पर

नट हैम्सन

मोटरों में कंडक्टर का काम करते थे, पर यह बहुत थोड़े दिनों तक। और, फिर ऐसी छोटी बात का ध्यान ही किसको रहता है? परंतु संपादकों को तो भड़कीली ख़बरें छापने से मतलब। अस्तु, हैम्सन के पूर्वज साधारण किसान-घराने के थे, और कई वर्ष तक यह अपने गाँव में ही, मल्लाहों के साथ, जीवन व्यतीत करते रहे। अवस्था अच्छी न होने के कारण शीघ्र ही एक मोची के यहाँ ये काम सीखने लगे। पर तब भी इन्हें लिखने-पढ़ने की रुचि थी। १८७८ ई० में, जब इनकी अवस्था १८ वर्ष की थी, इन्होंने एक गल्प तथा कविता छपाई। मोची के यहाँ स्वभावतः इनका जी नहीं लगा, और थोड़े दिन तक कोयले का, फिर सड़क बनाने का, फिर अध्यापक का और अंत में एक पादरी के यहाँ काम करने लगे। इनकी बड़ी इच्छा अमेरिका जाने की थी। वहाँ जाकर भी वही कठिनाइयाँ इनके सिर पड़ीं। अधिक योग्यता तो थी नहीं, कुछ दिन मोटरों में रहे, फिर मज़दूरी करते रहे, और फिर एक दूकान में क्लर्क हो गए। आए तो थे यहाँ बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधकर; पर दरिद्रता ने पीछा न छोड़ा, और इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे। कुछ दिन तक तार की लाइन पर काम किया, पर अंत में निराश होकर स्वदेश लौट आए, और कुछ संपादन का काम करने लगे।

संपादन-कला में इन्हें पहले से ही बहुत रुचि थी। एक साल बाद फिर अमेरिका लौट गए। वहाँ यह एक नारवेजियन-पत्र के सवाददाता रहे, पर इससे ही जीवन-यात्रा नहीं चल सकती थी। अतएव थोड़े दिन मज़दूरी और फिर एक जहाज़ में काम करते रहे। एक वर्ष तक किसी पादरी के सेक्रेटरी रहे, और २८ वर्ष की अवस्था तक भी खेत में काम करते रहे। साहित्यिक आदर्शों की पूर्ति न होती देख, यह बड़े असंतुष्ट हुए, और नितांत निराश होकर कोपेनहेगेन को लौट आए। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराशा-पूर्ण क्रोध में इन्होंने अमेरिका के ऊपर ही एक पुस्तक * लिख मारी। परंतु इसमें लिखी बहुत-सी बातों से यह स्वयं अब सहमत नहीं हैं। इस समय के और अनेक कटु अनुभव इन्होंने अपनी कहानियों में लिपिबद्ध कर दिए हैं।

स्वदेश लौटने पर इनकी एडवर्ड ब्रैंडीज़ से मैत्री हो गई। ब्रैंडीज़ उन दिनों एक दैनिक पत्र के संपादक थे, और उन्हीं के द्वारा इनका एक ग्रंथ किसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। फिर जब यह पुस्तकाकार छपा, तो इनका कुछ नाम हो चला, क्योंकि पत्रिका में इन्होंने अपना नाम नहीं दिया था। इसके प्रकाशन से जब उत्साह बढ़ा, तो इन्होंने धीरे-धीरे कई उपन्यास तथा नाटक लिखे। "सूर्यास्त" तथा "पैन" और "संपादक लिंज" इनमें से मुख्य हैं †। इन सभी पुस्तकों में प्रायः लेखक ने अपनी ही दुःख-पूर्ण रामकहानी की छाप डाल दी है। "रहस्य" ‡ नामक पुस्तक का नायक नैजेल ठीक हैम्सन की भाँति इधर-उधर ठोकरें खाता है, और अंत में, प्रकृति में ही, सुख प्राप्त करता है। संसार के उपहास का पात्र होकर वह समाज में रोड़ा-सा अटका रहता है, और जीवन से निराश-सा हो जाता है। यही निराशा दूसरे नायक जानेस के भी चरित्र की विशेषता है, पर, इसमें प्राकृतिकता का बड़ा प्राबल्य होने से इसे दुःख नहीं झेलना पड़ता। अपनी ममता धीरे-धीरे इनके और ग्रंथों में कम होती गई है। "विक्टोरिया" × तथा "भूख" + दोनों में ही इसका कम अंश है। पर आदर्शवाद, जो पुरस्कार का मुख्य ध्येय है, इनमें छू तक नहीं गया है। जैसा एक प्रसिद्ध लेखक ने इनके विषय में कहा है—

"The artist and the Vagabond seem equally to have been in the blood of Hamsun from the very start."

अर्थात् घुमक्कड़ और कलाविद्, दोनों की ही प्रतिभा हैम्सन में प्रारंभ से ही वर्तमान थी, और, इन्हीं दोनों में परस्पर संग्राम होता रहा। ज्यों-ज्यों कलात्मक रुचि का प्रभाव बढ़ता गया, त्यों-त्यों आदर्शवाद की ओर इनका झुकाव भी अधिक होता गया।

पर, इस बीच में तीन नाटक इन्होंने ऐसे लिखे, जिनमें संसार की समस्याओं पर स्पष्टवादिता-पूर्वक विचार किया गया है, और यह पता चलता है कि इनकी प्रतिभा प्रौढ़ता की ओर जा रही है। ये तीनों एक ही नायक की जीवनी, भिन्न-भिन्न समय पर, वर्णन करते हैं। जीवन का खेल * इनमें मुख्य है। ऐसे ही नाम का एक दूसरा नाटक In the Grip of Life† है, जिसका अनुवाद थोड़े ही दिन पूर्व प्रकाशित हुआ है। पर इन छोटे-छोटे ग्रंथों का पाठकों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, और किसी को यह ध्यान भी नहीं था कि हैम्सन कोई अपूर्व प्रतिभा के लेखक हैं।

सन् १९०९ में इनका ग्रंथ Children of the Age ‡ प्रकाशित हुआ, और शीघ्र ही इन्होंने दूसरा ग्रंथ Segelfoss Town × लिखा। इन दोनों के पाठकों को यह प्रतीत होने लगा कि इस लेखक में सजीवता है, और तभी से साहित्यिकों में इनका एक विशेष स्थान हो गया। इन दोनों पुस्तकों में एक ही उपन्यास की कथा विस्तार-पूर्वक लिखी गई है। नायक किसी व्यक्ति-विशेष के स्थान पर एक पूरा परिवार ही है, जिसमें सामाजिक समस्याओं की बड़ी अच्छी उलझन-सुलझन है। होमेनग्रा-नामक एक बड़े लखपती की कन्या मैरियन अंत में पिता की विपत्ति के पश्चात् एक छोटे गाँव में विवाह कर लेती है, पर बीच-बीच में फ़ौजी आफ़िसर विलाज़ तथा उनके पुत्र और पत्नी-सदृश बड़े मनोरंजक पात्र भी मिलते हैं। पर इनका सबसे बड़ा ग्रंथ The Growth of the Soil + है, जिसका

* The Spiritual Life of Modern America.

† *Sunset*, *Pan* (translated by W. W. Worster, New York 1921) and *Editor Lynge*.

‡ *Mysteries*.

× *Victoria* translated by A. G. Chater (New York, 1923.)

+ *Hunger* translated by George Egerton (London and New York.)

* *Life's Play*.

† Translated by Rawson (New York, 1924.)

‡ Translated by J. S. Scott (New York,)

× Translated by J. S. Scott. (New York, 1925.)

+ Tranlated by W. W. Worster (New York and London, 1921.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में बहुत नाम है। इसमें चित्रित जीवन मुख्यतः नारवे का जीवन है, पर पात्रों में सार्वभौमिकता तथा नित्यता है। आइज़क स्वयं मानव-स्वभाव की प्रतिमा है, और इंगर के साथ-साथ इसकी—कथा की—तुलना प्रकृति तथा पुरुष के सिद्धांत के साथ की जा सकती है। यद्यपि नायिका अपने बच्चों को मार डालती है, पर उसके लक्ष्य एवं आदर्श की प्रशंसा करते ही बनता है। जैसा प्रोफ़ेसर वीर ने अपने ग्रंथ में लिखा है—हैम्सन नैतिक तथ्यों पर विचार नहीं करता। उसका तो ध्येय है दार्शनिक तत्त्व की प्राप्ति एवं विवेचना। नैतिकता के लिये उन्हें घृणा तो नहीं, पर उपेक्षा अवश्य है। वीर के ही शब्दों में "It is just this absence of the triumph of a moral idea which will stand most in the way of any popularity of Hamsun's works with the great majority of American readers."* पर इस कठिनाई के साथ-ही-साथ उनके विचारों में परिपक्वता तथा निर्भयता है। विशेषतः इनके स्त्री-पात्रों में अधिक पौरुष तथा मानवता प्रकट होती है, जिससे हैम्सन की मौलिकता और भी स्पष्ट हो जाती है।

पर सबसे बड़ी बात यही है कि हैम्सन ने स्वयं व्यक्तिगत उन्नति के बल पर ही इतना नाम कमाया है, जो कुछ उन्होंने किया है, अपनी गाढ़-पसीने की कमाई से, और अपनी आत्म-शिक्षा के कारण। इसीलिये यह अपने देश के किसानों की दशा से परिचित हैं, उनसे प्रेम करते हैं, और उनसे सहानुभूति रखते हैं। आप नारवे के बड़े भक्त हैं, और अपने देश की सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी प्रकार की उन्नति के लिये सदैव कुछ-न-कुछ किया ही करते हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि अभी यह इतनी वृद्धावस्था में भी इतनी साहित्य-सेवा करते रहते हैं। परमेश्वर इन्हें दीर्घायु करे!†

(अपूर्ण)

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

---

* Knut Hamsun: His Personality and His Out Look upon Life by J. Wiche (Northampton, 1922.)

† विशेष अध्ययन के लिये पढ़िए—*Knut Hamsun: A study* by Hanna Astrup Larsen, (New York, 1922.)

जर्जर झोपड़ी

मेरी जर्जर झोपड़ी,
कच्चा घट उसमें धरा,
लगी अचानक ठेस कुछ,
फूट गया हा! वह चला।
दो छिद्रों से टपकता,
जीवन-बिंदु अमूल्य नित,
रोके रुकता अब नहीं,
है अज्ञेय गति तव विभो!
सींच रहा है एक तरु,
जिसकी पत्ती का पवन,
हरियाली सब पी गया!
कली बेकली दे रही,
फूल शूल-सा चुप रहा,
फल खाता है गेह को,
ले-ले तृण उस उटज के,
बना रहा निज घोंसला,
बैठा उस पर एक खग,
जिसको लख शुक उड़ गया,
कभी-कभी कलरव मधुर,
जिसका सुनता था गृही,
आल-बाल में पास ही,
ललित लता जो उग रही,
मुर्झाकर वह गिर पड़ी,
फलने से पहले अहह!
छिन्न-भिन्न यह झोपड़ी,
बही त्रिवेणी बाढ़ में,
सिंधु ओर अब जा रही,

विद्याभूषण 'विभु'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चक्र"

१

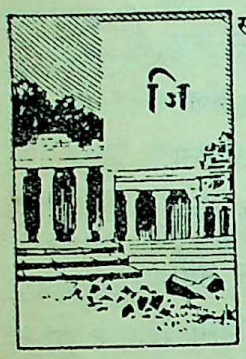

जिस दिन मैंने सुना कि मेरे पिता फिर अपना विवाह करनेवाले हैं, मेरा मन विद्रोही हो उठा। पहले तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ था, परंतु जब मैंने देखा कि सचमुच ही विवाह की सब तैयारियाँ हो रही हैं, तब तो कोई भी संदेह न रहा। और, पिताजी के ऊपर से मेरी सारी श्रद्धा हटने लगी। यद्यपि मेरी उम्र इस समय केवल सोलह वर्ष की थी फिर भी मैं अनेक सांसारिक बातों को समझने लगा था। इस समय मैं फ़र्स्ट इयर में पढ़ रहा था। मेरे पिता सामरिक विभाग के एक बड़े डाक्टर थे, और ६००) मासिक वेतन पाते थे। मैं पिताजी का इकलौता बेटा था, और वे मुझे बहुत ही स्नेह करते थे, फिर भी न-जाने क्यों उनके पुनर्विवाह की बात सुनकर मेरा मन उनकी तरफ़ से बिलकुल फिर गया। हाय, मेरी पुण्यमयी माताजी को परलोक सिधारे अभी केवल ६ मास ही बीते थे, अभी तक उनकी स्मृति घर के प्रति स्थान में सुगंधित वायु की तरह महक रही थी; परंतु मेरे पिता को उसकी कुछ भी परवाह नहीं! और, इन्हीं पिताजी को मैंने सैकड़ों बार अपनी स्वर्गीय माता से यह कहते सुना था कि वे उनको प्राण से भी अधिक प्यारी हैं! मेरे मन में यही विचार उत्पन्न होने लगे कि कहाँ गया आज उनका वह उज्ज्वल प्रेम का हृदय! क्या वे ऐसी मीठी-मीठी बातों से केवल भोली माँ का मन भुलाया करते थे? हाय, क्या मेरे पिता एक धोखेबाज़ के सिवा और कुछ नहीं हैं? या केवल यह धन की महिमा है, जो उनके द्वारा यह कार्य कराने पर उद्यत हुई है? मुझे गत जीवन की सब घटनाएँ याद आने लगीं। एक-एक कर वह घटनाएँ मेरी आँखों के सामने चलचित्र की भाँति घूमने लगीं। एक वह समय था जब मेरे पिता एक साधारण चिकित्सक थे। केवल १००) वेतन पर वे काम करते थे। हाँ, उस समय मेरी उम्र सात वर्ष की होगी। मुझे ख़ूब याद है कि लेफ़्टिनेंट जेनरल मैक हरबर्ट की स्त्री को कोई ऐसी बीमारी हुई थी, जिसे कोई भी डाक्टर अच्छा न कर पाया था, और बड़-बड़ डाक्टर केवल ईश्वर के ऊपर भरोसा करने के सिवा और कोई उपाय न बतला सके थे। मेरे पिताजी यद्यपि उस समय एक साधारण चिकित्सक थे, फिर भी उन्होंने जेनरल हरबर्ट की स्त्री की चिकित्सा का भार अपने हाथ में लिया था, और जिस दिन उनकी चिकित्सा के प्रभाव से मिसेज़ हरबर्ट अच्छी हो गईं, उस दिन जेनरल साहब ने पिताजी से कहा था कि हम आजीवन तुम्हारे ऋणी रहेंगे। उसके बाद से मेरे पिताजी का सितारा चमकने लगा, और वे शीघ्र ही एक बड़े मेडिकल आफ़िसर बना दिए गए। मैं अकसर जेनरल साहब के बँगले पर जाया करता था। उनकी स्त्री मुझे बहुत प्यार किया करती थीं। तीन-चार साल बाद जेनरल साहब की बदली शिमला को हो गई, और जाते समय मेरे माता-पिता को और मुझको वे हज़ारों रुपए की सामग्री उपहार-स्वरूप देते गए। आह! वह सब इस समय मुझे एक स्वप्न-सा मालूम होने लगा।

२

उपर्युक्त घटना के चार-पाँच दिन के भीतर ही मेरे पिता की बरात कानपुर को गई। मुझसे पिताजी ने कुछ भी न कहा था। घर में केवल एक बुढ़िया फूफी थी, जो मुझे बार-बार उपदेश दे रही थी कि मैं अपनी नई-माता का आज्ञाकारी बनकर रहूँ। मैं भीतर-ही-भीतर जी मसोसकर रह जाता था। बचपन से ही मेरी आदत ज़रा कम बोलने की थी, इसलिये मैं कभी किसी से कुछ अधिक कहता-सुनता नहीं था। अस्तु, चार दिन इसी प्रकार कट गए, पाँचवें दिन सबेरे से ही हमारा मकान ख़ूब सजाया जाने लगा। चारों ओर फूलों की क्यारियाँ वग़ैरह लगाई गईं। लखनऊ से मेरे चाचा-चाची और कई रिश्तेदार भी आ पहुँचे। आज ही मेरे पिता भी अपनी नवविवाहिता तरुणी पत्नी के साथ शाम को आनेवाले थे, इसी कारण घर में इतना आनंद मनाया जा रहा था। हमारा मोटर भी फूलों से ख़ूब सजाया गया था। परंतु उत्सव की सामग्रियाँ मेरे किशोर हृदय पर कठोर आघात कर रही थीं—मेरे मन के भीतर मानो चिता की भयंकर शिखा जल रही थी। मैं धीरे-धीरे अपने पिता के, सोने के, कमरे में गया। वह कमरा भी ख़ूब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजा हुआ था। मेज़ के पास ही दीवाल पर मेरी माता का तैल-चित्र लटक रहा था। मैं मेज़ के पास खड़ा होकर उस चित्र को देखने लगा। मालूम हुआ, मानो मेरी माता की एक आँख हँस रही है, और दूसरी रो रही है! आँख भी कभी हँसा करती है—यह मैंने इसी समय अनुभव किया। मैं धरती पर लोट गया, और रोता रहा। कमरे की घड़ी ने टन्-टन् शब्द करके पाँच बजने की सूचना दी। मैं उठ खड़ा हुआ। एकाएक मुझे स्मरण हुआ कि ६ बजे की गाड़ी से मेरे पिता आनेवाले हैं। उनके साथ एक ऐसी स्त्री आ रही है, जो मेरी माता के स्मृति-अंकित स्थानों को अपवित्र करेगी। नहीं, यह विवाह मेरी माता की अपमानता के सिवा और कुछ नहीं है। ऐसी ही चिंताओं ने मुझे पागल बना दिया। मैं सोचने लगा कि जहाँ मेरी माता की स्मृति का ऐसा अपमान हो रहा है, उस स्थान पर मैं कैसे रहूँ? बस, मैं बिना किसी से कुछ कहे-सुने ही घर के बाहर चला आया। सड़क पर खड़ा-खड़ा सोचने लगा कि क्या करूँ? किधर जाऊँ? सोचते-सोचते मैं स्टेशन की ओर चल दिया।

स्टेशन पर आकर देखा कि दिल्ली जानेवाली गाड़ी खड़ी हुई है। मैं बिना कुछ सोचे-विचारे ही एक फ़र्स्ट क्लास कंपार्टमेंट में चढ़ गया, और एक सोफ़ा पर जाकर लेटते ही गंभीर निद्रा में मग्न हो गया। परंतु निद्रा की गोद में भी मुझे पूर्ण विश्राम नहीं मिला। मैंने स्वप्न देखना शुरू किया कि मानो मेरी माता आकर मुझे शांत करने की चेष्टा करने लगी, और मुझे उपदेश देने लगी। मैं ख़ूब रोने लगा। मुझे रोते देखकर मेरी माता ने बड़े स्नेह के साथ मेरा हाथ पकड़ लिया। मेरी आँख खुल गई, सामने देखा—एक पंजाबी टिकट-चेकर दृढ़ मुष्टि से मेरा हाथ पकड़े हुए मुझे जगाने की चेष्टा कर रहा है। मुझे आँख खोलते देखकर उसने पूछा—"तुम्हारा टिकट कहाँ है?"

अब मुझे होश आया कि मेरे पास टिकट नहीं है। टिकट ख़रीदने की बात तो मुझे याद ही नहीं थी। टिकट-चेकर ने फिर पूछा—"तुम्हारा टिकट कहाँ है?" मैं आँखों को रगड़ कर उठ बैठा, और बोला—"मेरे पास टिकट नहीं है।"

टिकट-चेकर ने कहा—"टिकट नहीं है, तो तुमको दाम देना पड़ेगा।"

मैंने जेब में हाथ डाला, परंतु जेब में तो एक पैसा भी नहीं था। अब मैंने अपने पहनाव की ओर देखा, तो स्वयं मुझे ही आश्चर्य होने लगा। मैं केवल एक कमीज़ और पैजामा पहनकर ही घर से निकल आया था। और, पैरों में एक जोड़ा चप्पल! टिकट-चेकर ने कड़क कर कहा—"क्योंजी चार्ज देते हो या नहीं?" मैंने उसकी ओर देखकर कातर-भाव से कहा—"मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं है।"

"पैसा नहीं है, तो गाड़ी में क्यों चढ़े?"

मैंने उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, और चुपचाप अपनी अवस्था पर विचार करने लगा। अभ्यासानुसार फ़र्स्ट क्लास में चढ़ बैठा था, परंतु टिकट का उस समय मुझे कुछ ख़याल तक नहीं आया। हाय, कहाँ है मेरी माता, क्या वे मुझे इस विपदा से उद्धार न करेंगी? अचानक मुझे अपने पिता का ख़याल आते ही मैंने टिकट-चेकर से अँगरेज़ी में कहा—"मेरे पिता का नाम डाक्टर विजयप्रसाद है, वे आगरे के एक विख्यात चिकित्सक हैं। आप उनको..."

मैं अपना वक्तव्य शेष भी न कर पाया था कि अचानक, एक अँगरेज़ ने, जो सामने बैठा हुआ था, मेरे पास आ खड़ा हुआ, और मेरी बात काटकर कह उठा—"What? you are son of Doctor Bijay Prasad? ("क्या तुम डाक्टर विजयप्रसाद के पुत्र हो?")

मैंने अब तक उन्हें अच्छी तरह देखा तक न था। उनकी बात सुनते ही मैंने आँख उठाई, तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने देखा, मेरे सामने लेफ़्टिनेंट जेनरल मैक हरबर्ट खड़े हुए हैं। मैं निर्वाक् होकर उनके मुख की ओर देखने लगा, इतने में मेरे दाहने कंधे को पकड़कर किसी ने रमणी-सुलभ मृदुकंठ से अँगरेज़ी में कहा—"Oh how strange most certainly he is the son of Dr Bijay Prasad." (कितनी आश्चर्य की बात है, यह अवश्य डाक्टर विजयप्रसाद का ही पुत्र है)। मैंने उनकी ओर फिरकर देखा, तो मालूम हुआ वे मिसेज़ हरबर्ट ही थीं। बस, अब क्या था—प्रश्नों की झड़ी बँध गई 'How is that?" "where are you going?" "Why you have not purchased the ticket?" "How is your mother?("क्या बात है? तुम कहाँ जा रहे हो?" "तुमने टिकट क्यों नहीं ख़रीदा?" "तुम्हारी माँ कैसी हैं?")

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिसेज़ हरबर्ट के अंतिम प्रश्न से मैं स्थिर न रह सका, और फूट-फूटकर रोने लगा। मुझे रोते देखकर मिसेज़ हरबर्ट का मातृ-हृदय पिघल गया और मुझे अपनी बग़ल में बिठाकर उन्होंने मेरे दोनों हाथों को पकड़कर बहुत ही करुण-स्वर से पूछा—"What is wrong with you sonny" ("बेटा तुमको क्या कष्ट है?")

इस बार भी उनके प्रश्न का कोई उत्तर न देकर मैंने अपना माथा उनकी गोदी में छिपा लिया। न-जाने मुझे क्यों उस समय ऐसा ज्ञात होने लगा कि मानो मैं अपनी माता की गोदी में ही सिर रक्खे हुए पड़ा हूँ। मैं कब तक उनकी गोदी में सिर रक्खे हुए पड़ा-पड़ा रोता रहा, यह मुझे ठीक नहीं मालूम; परंतु जब मैंने सिर उठाया, तो देखा कि कमरे में टिकट-चेकर नहीं था, और जेनरल हरबर्ट सामने के सोफ़ों पर चुपचाप बैठे हुए हैं; और मिसेज़ हरबर्ट सजल नेत्रों से मेरे मुख की ओर देख रही हैं।

ठीक इसी समय गाड़ी दिल्ली-स्टेशन पर आ खड़ी हुई। मिसेज़ हरबर्ट ने मेरा हाथ पकड़कर बहुत ही करुण-कंठ से कहा—"Let us get down sonny, it is Delhi Station." (चलो बेटा, हम अब उतरें, दिल्ली आ गया।) मैं चुपचाप उनके पीछे-पीछे उतर पड़ा। वे मुझे वेटिंगरूम में ले गए और मुझसे इस गृह-त्याग का कारण पूछने लगे। मैंने धीरे-धीरे अपनी सब राम-कहानी उन्हें सुना दी। जब मेरा वक्तव्य समाप्त हो गया तब जेनरल साहब मुझे बहुत समझाने लगे कि मैं अपने घर लौट जाऊँ, तो अच्छा है। मैंने उनसे साफ़ कह दिया कि उस घर में अब मेरा स्थान नहीं है। मैं अपने पिता की उस नवविवाहिता पत्नी को 'माँ' नहीं कह सकता। मेरा ऐसा कठोर उत्तर सुनकर थोड़ी देर तक वे चुप रहे, फिर कह उठे—"अब तुम क्या करोगे?"

"जो ईश्वर कराएगा।"

मेरे इस उत्तर ने फिर थोड़ी देर तक सबको चुप करा दिया, आख़िर मिसेज़ हरबर्ट ने आकर फिर मेरे दोनों हाथों को पकड़कर पूछा—"क्या तुम मेरी एक बात मानोगे?"

मैंने कहा—"कौन-सी बात?"

"तुम मेरे साथ शिमला चलो।"

"मैं वहाँ आकर क्या करूँगा?"

"मेरे कोई पुत्र नहीं है—तुम मेरे पुत्र बनकर मेरे साथ रहो।"

मैं निरुत्तर हो गया, और मुँह नीचा कर सोचने लगा। मिसेज़ हरबर्ट मेरे और भी पास खिसक आईं, और उत्तर की अपेक्षा करने लगीं। जब मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, तो वे फिर कहने लगीं—"कहो तुम राज़ी हो। मुझे निराश मत करो—कहो बेटा—तुम मुझे ममी (Mummy) कहकर पुकारोगे?"

मैंने धीरे-धीरे सिर उठाया। मेरा कंठ रुँध रहा था, फिर भी अपने-आप मेरे मुँह से निकल गया—"ममी!"

मिसेज़ हरबर्ट ने छाती से लिपटाकर आवेग से मेरा मुँह चूम लिया।

३

शिमला में मेरे लिये सब प्रकार के आराम का बंदोबस्त किया गया। मुझे कोई शारीरिक कष्ट न रहा। सब मेरी ख़ातिर करने लगे। मिसेज़ हरबर्ट और जेनरल हरबर्ट मेरे साथ अत्यधिक प्रेम का व्यवहार करने लगे। सभी सामरिक विभाग के बड़-बड़ आफ़िसर मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। केवल यही नहीं, बल्कि मेरे ही कारण घर में गो-मांस आना तक बंद हो गया। कारण—एक दिन कोठी में गो-मांस पकने के कारण—मैंने भोजन नहीं किया था। सारांश यह कि जिससे मुझे ज़रा भी कष्ट न हो, इस बात पर पूर्ण दृष्टि रक्खी जाती थी। यह सब था, परंतु मेरे हृदय में शांति नहीं थी। मेरी अंतरात्मा मुझे दिन-रात यही कहा करती थी कि जब मैं इन देव-दंपति के इस महान् प्रेमोपहार का कुछ भी प्रतिदान देने-योग्य नहीं हूँ, तो इस ऋण को बढ़ाने का मुझे क्या अधिकार है? जब अपने पिता के गृह में ही मैं अपना स्थान नहीं कर सका, तो यहाँ अपना घर बनाना क्या इनके दया का दुरुपयोग करना नहीं है?

ऐसी ही बातें दिन-रात मेरे सिर में घूमा करती थीं, और समय-समय पर तो मैं बिलकुल बेचैन हो जाया करता था। मिसेज़ हरबर्ट ने मुझसे कहा था कि शीघ्र ही वे मुझे कालेज में भर्ती करा देंगी। मेरे यहाँ रहने का कोई भी संवाद मेरी इच्छानुसार पिताजी को नहीं दिया गया था।

ठीक इसी समय योरप में महायुद्ध की रण-भेरी बज उठी। भारतवर्ष से भी सैनिक की माँग होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेनरल हरबर्ट बहुत व्यस्त हो उठे। उनका काम इतना बढ़ गया कि खाने-नहाने का समय मिलना भी कठिन हो गया। भारतवर्ष से भी सेना भेजे जाने की बातें मैं प्रतिदिन संवादपत्रों में पढ़ने लगा।

एक दिन सबेरे उठकर मैं बरामदे में बैठा हुआ उस दिन का "सिविल ऐंड मिलिटरी गज़ट" पढ़ रहा था। अचानक एक स्थान पर मैंने भारत-सरकार की एक विज्ञप्ति देखी, जिसमें नवयुवकों से युद्ध में योगदान देने की अपील की गई थी। उस विज्ञप्ति को पढ़ते ही मेरा मन भी युद्ध में जाने के लिये नाच उठा। मैंने मन-ही-मन पक्का विचार कर लिया कि किसी भी प्रकार हो, मैं युद्ध को अवश्य जाऊँगा। मैं उपाय-चिंता करने लगा, आख़िर मैंने यही स्थिर किया कि दोपहर को भोजन करते समय मैं जेनरल साहब से अपनी अभिलाषा प्रकट करूँगा। क्या वे अनुमति न देंगे? शायद वे दे भी दें, तो ममी (मिसेज़ हरबर्ट को मैं ममी कहकर पुकारता था) की आज्ञा लेनी आसान नहीं है।

उपर्युक्त बातों पर मैं बहुत देर तक विचार करता रहा, और अंत में यही स्थिर किया कि जिस भाँति हो उनको भी सम्मत कराऊँगा। सोचकर मैं भीतर अपने कमरे में चला गया। कहना भूल गया हूँ कि जेनरल साहब के पास मेरे माता-पिता के चित्रों की एक-एक प्रति रक्खी हुई थी। मैंने उनसे उन चित्रों को माँगकर अपने कमरे की मेज़ पर सजा रक्खा था।

मैं कमरे में आकर मेज़ पर रक्खे हुए अपनी माता के चित्र के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मेरी आँखों में से झर-झर आँसू गिरने लगे। झरते-झरते आँसुओं का टपकना भी बंद हो गया। मैंने आँखें बंद कर लीं, और स्थिर व निश्चल-भाव से बहुत देर तक उस स्थान पर खड़ा रहा। अचानक मोटर के भोंपू के शब्द से मुझे चेतना आई, और माता के चित्र को प्रणामकर मैं धीरे-धीरे बाहर बरामदे पर आया। देखा—जेनरल साहब बैठे हुए एक काग़ज़ों का पुलिंदा उलट रहे हैं।

मिसेज़ हरबर्ट को ममी कहने पर भी जेनरल साहब को मैं अंकिल (चाचा) ही कहा करता था। वे दोनों मुझे Sonny (सनी अर्थात् बेटा) कहकर पुकारते थे। अस्तु, मुझे आते देखकर जेनरल साहब कह उठे—"हलो सनी, देखो—आज सबेरे-ही-सबेरे मैंने ९९ युवकों को युद्ध में जाने के लिये एनरोल (भर्ती) किया है।" "९९ युवकों को?" मैंने आश्चर्य के साथ पूछा—"हाँ, ९९ युवकों को। बस, एक की कमी रह गई। यदि एक युवक और मिल जाता, तो पूरे १०० का रेकार्ड हो जाता।"

मौक़ा देखकर मैंने कहा—"बाक़ी एक युवक का नाम मैं आपको लिखवा दूँगा।"

"क्या सचमुच?" टेबुल पर हाथ को ज़ोर से पटकते हुए जेनरल साहब ने कहा।

"अवश्य" मैंने उत्तर दिया, "लाइए, आपका पुलिंदा देखूँ तो सही।"

"यह लो" कहकर जेनरल साहब ने पुलिंदे को मेरी ओर ढकेल दिया।

मैंने पुलिंदे को खोलकर देखा, उसमें नए भर्ती हुए ९९ युवकों के नाम लिखे हुए थे। मैंने लाल पेंसिल से सब नामों के नीचे लिखा "१०० वाँ ज्योतिप्रसाद वल्द विजयप्रसाद . ..." भौंओं को सिकोड़कर जेनरल साहब बोले—"यह तुम क्या लिख रहे हो?"

पुलिंदे को लौटाते हुए मैंने उत्तर दिया, "सौवें युवक का नाम।"

काग़ज़ पर मेरा नाम देखकर जेनरल साहब चौंक उठे, और विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए कह उठे—"यह क्या—यह तुमने अपना नाम क्यों लिखा है?"

"इसीलिये कि मैं युद्ध को जाऊँगा?"

"युद्ध को जाओगे? क्यों?"

क्योंकि मैं एक लेफ़्टिनेंट जेनरल के कुटुंब का लड़का हूँ, इसीलिये कि एक विख्यात योद्धा मेरे शिक्षक तथा गुरु हैं, और इसीलिये कि महान् वीर की पत्नी को मैं माँ कहकर पुकारता हूँ।" मैंने उत्तेजित होकर कहा।

"परंतु फिर भी.....तुमको सनी मैं पुत्र से भी अधिक स्नेह करता हूँ।"

"यदि आप अपने पुत्र को युद्ध में भेजने से हिचकते हों, तो दूसरों के पुत्र को युद्ध में भेजने का आपको क्या अधिकार है?"

मेरी बात सुनकर जेनरल साहब ने कुछ धीरे से कहा—"माना, परंतु तुम्हारी ममी को कितना कष्ट होगा। यही मैं....."

बात काटकर मैंने भी कुछ स्वर नीचा कर कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं अंकिल? विचारिए तो सही, जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक युद्ध में जा रहे हैं, क्या उनकी माताओं को भी कष्ट नहीं होता ? उनकी माता क्या माता नहीं हैं ? वे भी अपने बच्चों से क्या ठीक इसी भाँति प्रेम नहीं करतीं ? मृत्यु के मुख में अपने प्राणाधिक पुत्रों को भेजने में क्या उनकी छाती फट नहीं जाती ?"

जेनरल साहब ने अपना मुख नीचा कर लिया। उनके मुख से सहसा कोई उत्तर नहीं निकला।

४

ममी ने जब सब प्रकार से मुझे समझाकर देख लिया कि मेरी हार्दिक इच्छा युद्ध में जाने की ही है, तब सजल नयनों से उन्होंने आज्ञा दे दी।

दूसरे ही दिन मुझे जेनरल साहब ने इंफ़ेंट्री ब्रिगेड में भर्ती करा दिया। मैंने पवित्र सैनिक व्रत की दीक्षा ग्रहण की। सुंदर ख़ाकी सामरिक परिच्छद से सज-धजकर जब शाम को मैं कोठी पर लौटा, तो ममी दौड़कर आकर मुझसे लिपट गईं। सत्य ही उनका स्नेह मेरे जीवन की एक सबसे बड़ी पवित्र स्मृति है।

× × ×

मैं प्रतिदिन सुबह-शाम परेड को जाता था। सब बड़े-बड़े सामरिक कर्मचारी मेरे साथ बहुत दया का व्यवहार करते थे। मैं भी यथासाध्य सबको संतुष्ट करने की चेष्टा करता था। अपने काम को मैं बहुत जी लगाकर सीखता था। इसी प्रकार दो महीने बीत गए, और मैं सब कामों में दक्ष हो गया।

एक दिन शाम को जब मैं बारक के भीतर बैठा हुआ अपने साथियों के साथ युद्ध की बातें कर रहा था, सार्जेंट श्यामलाल हाँफते हुए वहाँ पर आए, और कहने लगे—"हम सबको कल ही बंबई रवाना होना पड़ गा। वहाँ से युद्ध के लिये रवाना होने का हुक्म आ गया है।"

इस संवाद ने खासी खलबली मचा दी। मैं भी कुछ कम आनंदित नहीं हुआ। कारण, प्रतिदिन मैं ईश्वर से मनाया करता था कि शीघ्र हमारी रवानगी का हुक्म आ जाए।

बाहर निकलकर देखा कि चारों ओर तैयारी की धूम मच गई है। सब सैनिकों के मुख पर एक वीरोचित हँसी विराज रही है। कई भी इस निश्चित मृत्यु के मुख में जाने की बात सुनकर भयभीत नहीं हुआ है। मैं फिर अपने बारक के भीतर गया, और किट-बैग वग़ैरह को सँभाल-सँभालकर रखने लगा। इतने में हमारे सार्जेंट ने आकर हमसे कहा—"ज्योतिप्रसाद ! तुमको कमांडिंग साहब स्टाफ़ (आफ़िस) में बुला रहे हैं।"

मैं फ़ौरन् कमांडिंग-आफ़िसर कर्नल पावर के सामने जाकर सैल्यूट करके खड़ा हो गया। कर्नल साहब मेरी ओर देखकर हँसते हुए अँगरेज़ी में बोले—"ज्योतिप्रसाद ! तुमको ब्रिगेडियर जेनरल ने "कार्पोरल" का रैंक दिया है।" कहते हुए उन्होंने कार्पोरलीका बिल्ला मेरे कोट की बाँहों पर लगा दिया। मैं सैल्यूट करके वापस लौट आया। मेरे सब सैनिक मित्र मुझे बधाई देने लगे। युद्ध में जाने की इस पहली सीढ़ी पर ही मेरी उन्नति देख सब मेरी प्रशंसा करने लगे। मैं सार्जेंट से दो घंटे की छुट्टी लेकर जेनरल हरबर्ट की कोठी की ओर दौड़ पड़ा।

वहाँ पहुँचकर देखा कि उनको भी सब संवाद मिल चुका है। मैं जाकर ममी की छाती से लिपट गया। उन्होंने भी स्नेह-विह्वल होकर बारंबार मेरा मस्तक चुंबन किया।

मैंने कहा—"ममी, आज मैं कार्पोरल बना दिया गया।"

"परमात्मा करें तुम जेनरल बनो।"

इसके बाद बहुत देर तक वे मुझसे मीठी-मीठी बातें करती रहीं। यदि कभी किसी प्रकार का कष्ट हो, तो फ़ौरन् तार-द्वारा उन्हें सूचित करूँ, इस बात को तो कई बार मुझे जता दिया। जेनरल हरबर्ट ने भी मुझे सामरिक जीवन के उपयोगी अनेक उपदेशादि दिए। थोड़ी देर बाद मैं बिदा लेकर अपने बारक में लौट आया, और अपना सामान ठीक करने लगा।

रात को किसी को भी निद्रा नहीं आई। किसी ने अपने प्रियजनों को पत्र लिखने में ही सारी रात काट दी, किसी ने गीत गाते-गाते ही भोर कर दिया, और किसी ने गप्प लड़ाकर ही समय बिताया। मैं भी अपनी खाट पर लेटा हुआ एक बार गत-जीवन की चिंता करने लगा। मेरा बचपन, माता-पिता का स्नेह, असमय में ही हृद्-रोग से माता की मृत्यु, पिता का पुनर्विवाह, मेरा गृह-त्याग, ममी का एकनिष्ठ वात्सल्य-प्रेम, अंकिल की सहायता सब बातें उस दिन मेरे मानस-पट के सामने एक के बाद एक खुलने लगीं। बारक के भीतर जो गुल-गपाड़ा मच रहा था, उससे भी मेरी चिंता-धारा में तनिक भी बाधा न पहुँची। बीच-बीच में एकाध सहयोगी ने मेरी इस गंभीर मूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखकर कुछ परिहास भी किया, परंतु मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर वे भी चुप होकर चले गए।

ठीक चार बजे बिगुल के शब्द ने हमको प्रातःकाल होने की सूचना दी। मैंने धीरे-धीरे उठकर अपनी थैली में से तसवीरों का अलबम निकाला। उस अलबम में पहला चित्र मेरी माता का ही था। मैंने चित्र को सामने रखकर प्रणाम किया। आज युद्ध-यात्रा के दिन यही मैंने अपना प्रथम कर्तव्य समझा। थोड़ी देर बाद सार्जेंट श्यामलाल ने आकर कहा कि ठीक बारह बजे हम लोगों को रवाना होना पड़ेगा। बाहर ट्रांसपोर्ट की गाड़ियाँ खड़ी थीं। हम लोगों ने उसमें माल लदवाना शुरू किया। इसी प्रकार दस बज गए।

पौने बारह बजे "फ़ौल इन" के बिगुल के साथ ही हम लोग सब चौड़े मैदान पर जमा हो गए। एक हज़ार सैनिक युद्ध-यात्रा के लिये सामरिक साज से सज-धजकर खड़े थे। कप्तान लोग घोड़ों पर बैठकर अपनी-अपनी कंपनियों का निरीक्षण कर रहे थे। जेनरल हरबर्ट भी हम लोगों को बिदाई देने के लिये आए थे। अचानक बिगुल के साथ ही कान में आवाज़ आई "फ़ार्म फ़ोर"। हम सब चार-चार सैनिक क़तार बाँधकर खड़े हो गए। बीच में कलर सार्जेंट युनियन जैक का झंडा लेकर खड़ा हुआ। बैंड बजना शुरू हुआ। "क्वीक मार्च" के आर्डर के साथ ही हमारी युद्ध-यात्रा का आरंभ हुआ। सड़क के दोनों ओर दर्शकों की भरमार थी।

वे हमारे ऊपर फूलों की वर्षा कर रहे थे। स्टेशन भी ख़ूब सजाया गया था। स्पेशल ट्रेन हमको ले जाने के लिये प्लेट-फ़ार्म पर पहले ही खड़ी हुई थी। प्लेट-फ़ार्म पर घुसते ही मैंने देखा ममी सजल नेत्रों से खड़ी हुई हैं। मुझे देखते ही उनकी आँखों से मोतियों की भाँति आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं। मेरे भी नेत्र शुष्क नहीं थे। मैं उनसे लिपट गया। उनकी छाती में अपना सिर छिपाकर रोने में भी मैं एक स्वर्गीय आनंद का अनुभव करता था। मैं स्थान, काल, पात्र सब भूल गया, मेरा मन गद्गद् हो गया। आज सत्य ही ममी को छोड़ जाने का मेरे हृदय में अत्यंत दुःख था। ममी का सिर मेरे सिर पर रक्खा हुआ था। उनके नेत्रों में से आँसू टपक-टपककर मस्तक को स्निग्ध कर रहे थे। मेरे जीवन का यह एक अति ही पवित्र समय था।

कब तक इस प्रकार खड़ा रहा, मुझे नहीं मालूम। जेनरल हरबर्ट की आवाज़ से मैंने सिर उठाकर देखा कि वे रूमाल से अपनी आँखों को पोंछ रहे हैं। मेरे सिर उठाते ही उन्होंने रुद्ध-कंठ से कहा—"Go Child, off to your compartment" (जाओ बच्च, अपनी गाड़ी में जाकर बैठो।) उनको इस प्रकार व्यथित देखकर मुझसे न रहा गया, व्याकुल होकर उनसे चिपटकर मैंने कहा—"अंकिल।"

"सनी!" कहकर उन्होंने बड़े ही प्रेम के साथ मेरा मुख-चुंबन किया।

मैं भाराक्रांत हृदय से जाकर अपने डिब्बे में बैठा। हज़ारों आदमियों की आँखें इस समय हमारी ओर बद्ध थीं। गार्ड की सीटी बजते ही गाड़ी चलने लगी। प्लेट-फ़ार्म से लोग हमारी शुभकामना-पूर्ण ध्वनि कर रहे थे। मैं खिड़की से सिर निकाले हुए जब तक दिखाई दिया, ममी और अंकिल को देखता रहा। वे एकटक से मेरी ही ओर देख रहे थे। परंतु निर्दयी गाड़ी ने पलभर में उनको हमारी दृष्टि से ओट कर दिया।

दूसरे दिन शाम को हम बंबई पहुँच गए। मिलिटरी क्वार्टर्स में हम लोगों ने अपना डेरा डाला। वहाँ भारत के नाना प्रांतों से सेनाएँ आ-आकर इकट्ठी हुई थीं। मालूम होता था कि यह एक सर्वजातीय महासम्मेलन है। जिधर देखो सब ख़ाकी-ही-ख़ाकी नज़र आती थी। प्रायः सब ही प्रसन्न जान पड़ते थे। कैंपों में सैनिकों के रिश्तेदारों का भी आना-जाना जारी था।

तीसरे दिन सबेरे हम ऐपोलो-बंदर की ओर जहाज़ में बैठने के लिये रवाना हुए। बंदरगाह पर आकर जो दृश्य देखा, वह एक अपूर्व चमत्कार-पूर्ण दृश्य था।

बंदरगाह के सामने हम लोगों को ले जाने के लिये बड़ा भारी मैन आफ़ वार (जंगी जहाज़) खड़ा था। प्रायः सब सैनिकों के ही इष्ट-मित्रगण उन्हें बिदाई देने के लिये वहाँ पर आए हुए थे। कोई अपनी स्त्री से गले मिल रहा था, तो कोई अपनी माता से। कोई अपने मित्रों से लिपट रहा था, तो कोई अपने बच्चों से। यह एक महान् दृश्य था। मैं ही केवल वहाँ पर इष्ट-मित्र-विहीन अकेला दूर पर खड़ा हुआ इस अभिनय-दृश्य को देखकर जीवन-धन्य कर रहा था। मेरे हृदय में भी कुछ अजीब व्याकुलता-सी छाई हुई थी। मैं सोचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कि आज मैं जो मृत्यु के मुख में अपने जीवन का विसर्जन करने जा रहा हूँ, इसका यथार्थ कारण क्या है ? क्या सत्य ही यह भारत-सरकार की सहायता की इच्छा से अथवा...अथवा क्या ? हाँ, निश्चय ही अपने पिता के व्यवहार से रूठकर जा रहा हूँ। हाँ, यही सच है। युद्ध तो एक उपलक्षमात्र है। मुझे जीवन की कुछ ममता नहीं है। इसी प्रकार सोचकर मेरा हृदय और भी तिक्त होने लगा। मैंने फ़ौरन् एक तार लिखकर अपने पिता को भेजवा दिया। उसमें मैंने लिखा—"आप अपनी नवपरिणीता के साथ आनंद से रहें। मैं युद्ध में जा रहा हूँ, अपनी माता से मिलने।"

तार भेजकर मैं सोचने लगा—"न-जाने यह काम कहाँ तक अच्छा हुआ ?" अस्तु, जो कुछ भी हो, उस समय और तो कोई उपाय था ही नहीं।"

ढंग-ढंग, ढंग-ढंग करके जहाज़ का घंटा बजने लगा। निष्ठुर सामरिकनियम ने सब सैनिकों को पल-भर में उनके प्रियजनों से अलग कर लिया। सब जहाज़ में जाकर चढ़ने लगे। उस समय भी वे अभागे अपने-अपने आकांक्षित जनों को जहाज़ के रेलिंग पर देखने के लिये खड़े हुए थे। सैनिकगण आ-आकर रेलिंग के पास खड़े हुए। यह एक दूसरा ही दृश्य था। इस समय सैनिकों के मुख पर एक म्लान हँसी विराज रही थी, परंतु उनकी आँखों में ठीक वैसा ही समुद्र उमड़ रहा था, जैसा कि जहाज़ के नीचे भी बह रहा था। परंतु मेरा नेत्र इस समय शुष्क था।

बैंड इस समय ख़ूब ज़ोर से बज रहा था। जहाज़ का चलना भी शुरू हो गया था। आँख फाड़-फाड़कर जहाज़ के आरोही देख रहे थे, सद्यःवियोगित अपने-अपने इष्ट-मित्रों को। कौन जाने यह उनका अंतिम मिलन था या नहीं ?

× × ×

सुविशाल "मैन आफ़ वार" महासमुद्र की नील तरंग-राशियों पर अविश्रांत गति से चलने लगा। चारों ओर केवल अनंत तरंग-राशियों के सिवा और कुछ भी नज़र नहीं आता था। तरंगों के ऊपर ही प्रतिदिन प्रातःकाल में सूर्यदेव नियमित रूप से उदय होते थे, और तरंगों के भीतर ही प्रतिदिन संध्या के समय वे अस्त हो जाते थे। रात को जब चंद्रमा का स्निग्ध किरणों से समुद्र का जल झकमक-झकमक कर आता था, तो ऐसा ज्ञात होता था कि मानो जल-राशि के साथ असंख्य रंग-बिरंगे जवाहिरात उछल रहे हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त देखकर मेरे मन में उस समय यही विचार उत्पन्न होते थे कि हम भी सूर्योदय के साथ पूर्व से उदय होकर पश्चिम की ओर चले जा रहे हैं, अस्त होने के लिये। परंतु साथ ही विशाल महासागर की ओर देखकर उसी समय मन यह भी कह उठता था कि अनंतव्यापी इस सागर की भाँति हमारा पथ भी अनंत है। इस पथ का कहीं शेष नहीं है, इस पथ की कहीं सीमा नहीं है। सीमा-हीन और अशेष-पथ के यात्री हैं हम।

जहाज़ में दिन-रात उत्सव मचा रहता था। सैनिकगण सर्वदा उल्लसित रहा करते थे। गीत-वाद्य, हँसी-खेल का विराम नहीं था। यही सैनिकजीवन का सबसे बड़ा सौंदर्य है। निश्चित मृत्यु के गाल में कूद पड़ने के समय भी इनका मुख ज़रा भी विकृत नहीं होता। इनका उल्लास चिर-अम्लान रहता है। हँसते-हँसते यह तोप और गोलों के सामने जा डटते हैं। मृत्यु इनका एक खेल है। और भी आश्चर्य यह है कि जो कोई भी इनके साथ हो जाता है, उसके मन से भी एक अज्ञात मंत्र के प्रभाव से मृत्यु का भय जाता रहता है। जहाज़ में सैनिकों का उत्सव-मेला देखकर मेरा हृदय भी पुलकित हो उठता था। मैं भी अधिकांश समय संसार की सारी चिंताओं को भूल जाता था। उन्मत्त हो उठता था मैं सैनिकों के सुंदर आनंदोत्सव की क्रीड़ा में। हम सब एक ही महान् पथ के यात्री हैं, यही विचार हमको उन्मादी बना देती थी। यह हमारा मृत्यु-पथ नहीं था, यह था हमारा एक महा-मिलन का पथ। यहाँ जाति-विचार नहीं था, पंक्ति-विचार नहीं था। यहाँ परहेज़ नहीं था—यहाँ कुटिलता नहीं थी। यहाँ थी केवल सरलता, यहाँ था केवल निर्मल प्रेम। यहाँ था पवित्र भ्रातृ-भाव, यहाँ थी एक के प्रति दूसरे को हार्दिक सहानुभूति। एक के नेत्रों में आँसू देखकर सहस्र सैनिकों के दो सहस्र नेत्रों में से आँसू झरते थे। एक का आनंदोज्ज्वल मुख देखकर सहस्र सैनिकों के मुख से आनंद की किरणें झाँकने लगती थीं। इस आदर्श-प्रेम को देखकर मैं सोचा करता था, शायद सैनिक का अर्थ प्रेम ही है, प्रेम का भी अर्थ सैनिक ही है। प्रेम-पथिक के लिये सैनिक बनने की आवश्यकता है, सैनिक बनने के लिये प्रेम-पथ का प्रयोजन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

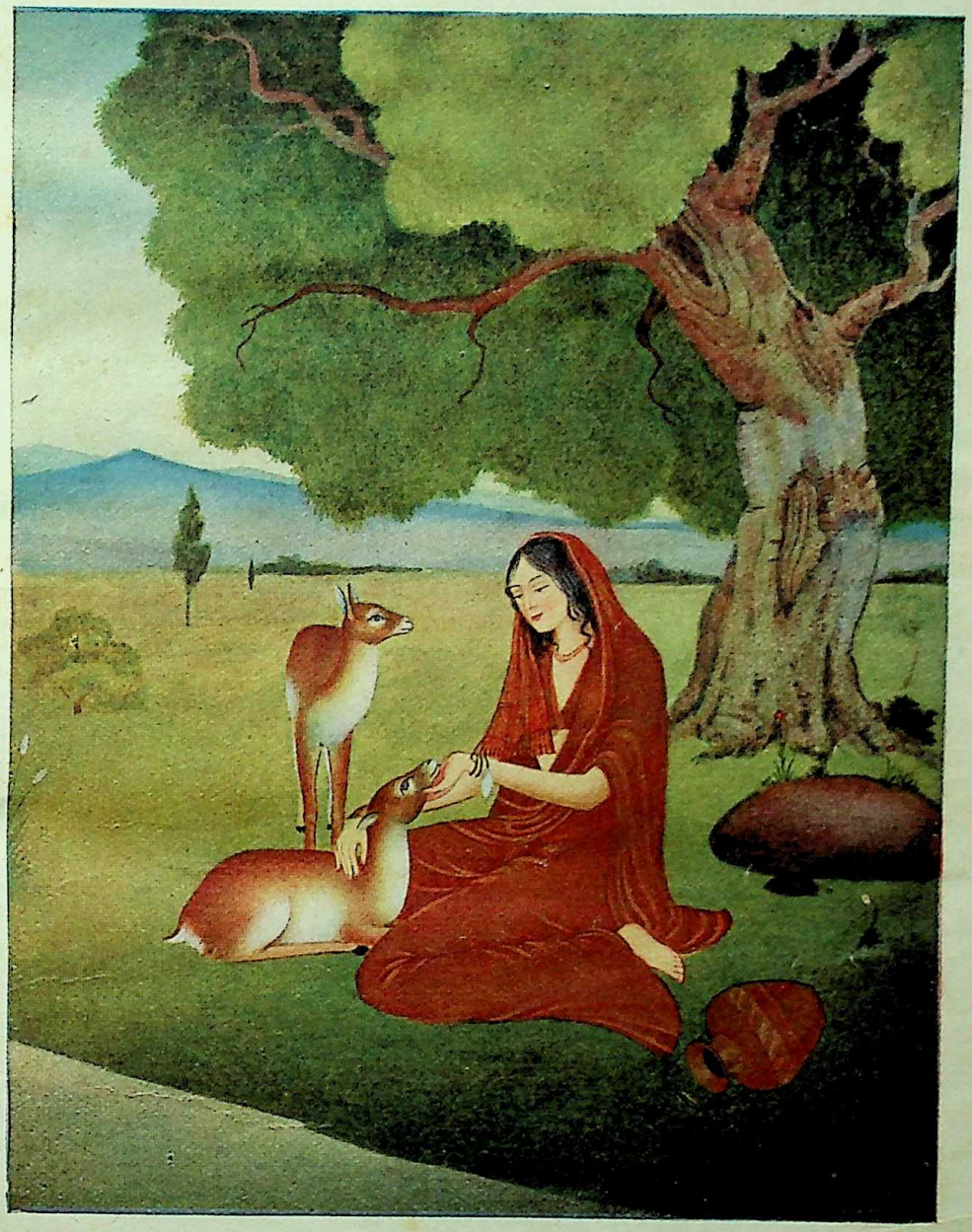

मृग-स्नेह

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

बीसवें दिन हमारा जहाज़ मार्सिलीज़ आ पहुँचा। हम लोग सब जहाज़ में से उतर पड़े। बहुत दिनों बाद धरती पर पैर रखकर हम लोगों ने अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव किया। सुबह हम लोग जहाज़ पर से उतरे थे। शाम को ट्रेन पर पारी (Paris) की ओर रवाना हुए। तीन घंटे के अंदर हम लोग पारी पहुँच गए। हम लोगों की संवर्द्धना करने के लिये पारी के नगरवासियों ने विपुल आयोजन कर रक्खा था।

पारी की सुंदरियों ने हमारे ऊपर पुष्प-वर्षा की। हम मार्च करते हुए "कैंप" में पहुँचे। पारी उस समय केवल सैनिकों का नगर हो रहा था। जिधर देखो उधर केवल सैनिक-ही-सैनिक दिखाई देते थे। विलास की लीलाभूमि पारी इस समय वीर-निकेतन में परिणत हो गई थी। विलास का तो कोई चिह्नमात्र भी वहाँ नहीं था। नाना वर्ण के सैनिक व्रतधारी भिन्न-भिन्न रंग के सामरिक परिच्छदों से विभूषित होकर केवल युद्ध की चर्चा करते दिखाई पड़ते थे। नर-नारियों के मुख पर एक उत्कंठा का भाव साफ़ परिलक्षित होता था।

पाँच दिन पारी में रहने के बाद हम लोगों को "फ्रंट" (युद्ध के सीमा-प्रांत को फ्रंट कहते हैं) में जाने का हुक्म हुआ। शाम के वक़्त हम लोग रवाना हुए। चारों ओर से लोग हमारी शुभकामना करने लगे। दो भारतीय पल्टनें भी जो पहले ही से आई हुई थीं, हमारे ही साथ-साथ चलीं। आस्ट्रेलियन पल्टन भी हमारे आगे-आगे जा रही थी। हम लोग ख़ूब हास्य-परिहास करते हुए चले जा रहे थे। बीच-बीच में एकाध गोले का शब्द हमारी छाती में क्षण-भर के लिये धड़कन तो ज़रूर पैदा कर देता था; परंतु मन का भाव कहीं प्रकाश न हो जाए, इस डर से समान भाव से सबके साथ आमोद-प्रमोद करते जाते थे। कभी-कभी जब बहुत थक जाते थे, तब थोड़ी देर का विश्राम मिल जाता था। इसी प्रकार चलते-चलते दूसरे दिन दो बजे हम लोग आइ-पर्स (Ypres) पहुँचे। उस समय लड़ाई बहुत ज़ोर से जारी थी। तोप की आवाज़ें कान को बहरी कर देती थीं। बंदूक़ें, मशीनगनें समान रूप से गोलियाँ चला रही थीं। बंब गिरने का शब्द भी रह-रह-कर कान में आ रहा था। पल-पल में लाशों का ढेर लग जा रहा था। हवाई जहाज़ भी चील-कौओं की भाँति आकाश-मार्ग पर उड़ रहे थे। ख़ून की भी एक छोटी-मोटी नदी पैरों के नीचे बह रही थी।

हम सबका तो दम ख़ुश्क हो गया। क्या सचमुच लड़ाई ऐसी ही भयंकर होती है? यही चिंता शायद सबके हृदय पर बिजली की भाँति दौड़ गई। युद्ध की बातें सुनते तो बहुत थे, परंतु यथार्थ में युद्ध की इस भयंकरता का अनुभव पहले नहीं किया था। इस समय चेष्टा करने पर भी हँसी मुँह से नहीं निकलती थी। हँसने की कभी चेष्टा की भी, तो सामने ही बंब के फूटने से मुँह की हँसी मुँह में ही रह गई; इस प्रकार की अवस्था हम लोगों की हो रही थी। यद्यपि हम युद्ध करने आए थे, और मृत्यु का भय हम नहीं करते, ऐसी बातें भी हज़ारों बार मुँह से निकाला था, परंतु फिर भी पलक मारते-न-मारते सजीव का निर्जीव में बदल जाने के ऐसे ज्वलंत दृष्टांतों की कल्पना कभी हम लोगों ने नहीं की थी। स्वभावतः ही हृदय में कुछ भय का पैदा होना कोई विशेष असाधारण बात नहीं थी।

आठ दिन तक ख़ूब लड़ाई होती रही। हम लोग भी लड़ते रहे। इस समय हमारे मन में भय का लेशमात्र भी अवशिष्ट नहीं था। लाशों की ढेरियाँ देखते-देखते आँखों को लाशें देखने का भी एक अभ्यास-सा हो गया। जीवन की स्थिरता देखकर अपने जीवन का भी मोह जाता रहा। ख़ून और पानी में भी कुछ विशेष भेद नहीं रहा।

घमासान लड़ाई होती रही, और आख़िर हम लोग हारने लगे, ठीक इसी समय और सेनाओं ने आकर हम-को छुट्टी (Relieve) दे दिया। हम लोग बेस (Base अर्थात् जहाँ लड़ाई होती है, उसके १५-२० मील पीछे की जगह, जहाँ हास्पिटल, रसदख़ाना वग़ैरह रहते हैं, सेना वहीं आकर जमा होती है और आराम करती है) में लौट आए। हम लोगों में से बहुत-से आदमी तो इसी समय के अंदर मर चुके थे।

इसके हफ़्ते-भर बाद हम लोग फिर एक दूसरे फ्रंट पर भेजे गए। वहाँ भी युद्ध का रूप भीषण ही था, किंतु इस समय हम लोग बहुत कुछ अभ्यस्त हो गए थे। हम सबके मुख पर अपनी खोई हुई हँसी फिर लौट आई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। सैनिकगण फिर भुवन-मुग्धकारी मुस्किराहट मुख पर रखकर ही प्राण-विसर्जन कर रहे थे।

ट्रेंच में हम लोगों को पका-पकाया खाना केवल एक वक्त मिलता था, परंतु इसकी कुछ विशेष परवाह न थी। हम लोगों को तो एक साथ रहने में ही आनंद था। मृत्यु और भूक की सामर्थ्य नहीं थी कि हमको भय दिखाए।

प्रतिदिन प्रातःकाल जब अपने को जीवित पाते थे, तब यही आश्चर्य होता था कि "अरे हम अभी तक मरे नहीं?" तात्पर्य यह कि जीना ही हमारे लिये आश्चर्य-जनक हो गया था, मरना नहीं।

एक दिन दोपहर को हमारे सेक्शन (Section १२-१४ आदमियों का एक सेक्शन होता है) के सार्जेंट की मृत्यु गोली लगने से हो गई, और सेक्शन का भार मेरे ऊपर पड़ा, मैंने स्थायी भाव से सार्जेंट का चार्ज ले लिया। उसी दिन शाम को मैं अपने सेक्शन के साथ ट्रेंच के ऊपर से होकर आगे की ओर बढ़ा ही था कि एक गोली मेरे कमर में आकर लगी और मैं अचेत होकर गिर पड़ा।

जब होश आया, तब देखा—मैं हास्पिटल की खाट पर पड़ा हुआ हूँ। मेरे कमर में बैंडेज बँधा हुआ है। इधर-उधर मेरे ही-जैसे कितने ही घायल सैनिक खाटों पर पड़े हुए थे। कोई कराह रहा था, तो कोई पुस्तक पढ़ रहा था, कोई मलहम-पट्टी कर रहा था, तो कोई किसी नर्स से गपशप लड़ा रहा था। हर एक अँगरेज़, फ्रांसीसी, भारतीय, आस्ट्रेलियन सब जाति के ही सैनिक उस अस्पताल में पड़े हुए थे। चिकित्सकगण भी इधर-उधर फिरकर घायलों की अवस्था देख रहे थे। नर्सें भी उनकी यथा-साध्य सेवा कर रही थीं।

मैं यही सब देख रहा था कि मेरे सिरहाने के पास से, अति ही मृदु-कंठ से, किसी ने पूछा—"क्या आप इस समय कुछ स्वस्थ हैं?" मैं चौंक उठा। भारतवर्ष से हज़ारों मील दूरी के इस रणक्षेत्र के अस्पताल में भारतीय नारी का कष्ट-स्वर! मैंने आँख उठाकर देखा। एक अति ही सुंदरी भारतीय तरुणी नर्स के परिच्छद से सज्जित होकर मेरे सिरहाने बैठी हुई है। उसके सौम्य मुख-मंडल और स्निग्ध नयनद्वय की ओर मैं अपलक नेत्रों से देखने लगा। सोचने लगा—"कौन है यह सेवामयी साक्षात् आरोग्य-देवी! मुझे इस प्रकार अपनी ओर ताकते हुए देखकर ज़रा मृदु हँसी हँसकर तरुणी ने कहा—"क्या इस समय आपको कोई कष्ट हो रहा है?"

"नहीं।" कहकर मैंने मुँह नीचा कर लिया।

× × ×

बीस-पच्चीस दिन के बाद मेरा घाव भर आया। एक दिन चिकित्सक ने कहा—मेरे जीने की कुछ भी आशा नहीं थी, केवल सेवामयी उन भारतीय नर्स की आश्चर्य-जनक सुश्रूषा के फल से ही मैंने पुनर्जन्म प्राप्त किया। अपने इस पुनर्जन्म के लिये मुझे उन्हीं का कृतज्ञ होना चाहिए।

चिकित्सक के चले जाने के बाद मैंने अपनी प्राणदात्री को कृतज्ञता-पूर्ण हृदय से कहा—"मैं सत्य ही आपका कृतज्ञ हूँ, नहीं जानता किस प्रकार मैं आपके इस उपकार का प्रतिदान दूँगा।"

ज़रा म्लान हँसी हँसकर उसने कहा—"क्या उपकार आपके कंधे पर एक बोझा-सा हो गया है, जो इस प्रकार उसे उतारने के लिये आप व्याकुल हो रहे हैं?"

मैंने लज्जित होकर कहा—"नहीं, आजीवन इसको अत्यंत हर्ष के साथ मैं कंधों पर ढोऊँगा, परंतु फिर भी किस भाँति आपको धन्यवाद दूँ—यह मैं...।"

बीच में ही बात काटकर तरुणी ने कहा—"उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, यह हमारा कर्तव्य है।"

"कर्तव्य का पालन संसार में कितने आदमी करने में समर्थ हैं।" मैंने उत्तेजित भाव से कहा—"यदि सब मनुष्य संसार में अपने कर्तव्य को पूर्ण रूप से पालन करने लगें, तो संसार नंदन-कानन बन जाए।" कहते-कहते मैं उत्तेजित भाव से बैठ गया।

चट से दाहिना हाथ मेरे सिर पर और बायाँ हाथ मेरी छाती पर रखकर तरुणी ने मुझे फिर से लिटा देते हुए कहा—"उत्तेजित होने से, अभी बैठने से आपको हानि होगी।"

मैं चुप हो गया, और एक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। अचानक बिना कुछ सोचे-समझे हुए ही मैं प्रश्न कर बैठा—"अच्छा मैं आपको क्या कहकर पुकारूँगा? मैं इन अँगरेज़-नर्सों की तरह आपको सिस्टर-सिस्टर कभी नहीं कहूँगा।"

कुछ श्लेष के साथ तीव्र स्वर से मेरी ओर देखकर तरुणी कह उठी—"तो आप क्या कहकर पुकारना चाहते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांत और धीर-भाव से अपने बालों में हाथ फेरते हुए मैंने उत्तर दिया—"कुछ भी कहूँ, मातृभाषा में ही कहूँगा—अच्छा, यदि मैं आपको भारती कहकर पुकारूँ।"

"भारती ?" कुछ आश्चर्य के साथ तरुणी ने कहा—"इस नाम से पुकारने का तात्पर्य क्या ?"

मैंने उत्तर दिया—"कारण—आर्त की पुकार सुनकर जो भारतीय नारी भारतवर्ष के वक्षःस्थल पर से सुंदर फ्रांस के रणक्षेत्र पर उसकी सेवा करने के लिये दौड़ आना अपना कर्तव्य समझती है, वह यथार्थ में ही भारती नाम के योग्य है। मैं आपको भारती ही कहूँगा।"

"अच्छा" कुछ उदास-भाव से तरुणी ने जवाब दिया।

थोड़ी देर तक हम दोनों चुप रहे। एकाएक फिर प्रश्न किया—"अच्छा भारती, आप भारतवर्ष छोड़कर यहाँ क्यों आई हैं ?"

अपनी दृष्टि को सामने की दीवाल पर स्थिर रखकर कुछ हँसते हुए भारती ने उत्तर दिया—"इस प्रश्न का उत्तर तो स्वयं आपने ही अभी-अभी कहा है—आर्त का दुःख मेरे कान में जाकर अचानक करुण-स्वर से गूँज उठा, मैं दौड़कर चली आई, सब विघ्न-बाधाओं को अतिक्रम करके।"

"और आपके आत्मीय स्वजन, क्या उन्होंने आपको आने की आज्ञा दे दी ?" मैंने व्यग्र-स्वर से पूछा।

अपने दोनों शांत नयनों को मेरे मुख पर स्थापित कर भारती ने कुछ आवेग के साथ कहा—"क्यों नहीं आज्ञा देंगे। भारती के आत्मीय स्वजन भी तो भारतीय ही हैं।"

मुझे खूब स्मरण है, जब मैं युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिये व्यग्र हो उठी, तो मुझे किसी ने नहीं रोका, कारण मैंने साफ़-साफ़ कह दिया था—कहकर भारती ने आँखों को नीचा कर लिया और वह चुप हो गई।

मैंने भारती का एक हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"साफ़-साफ़ आपने क्या कह दिया भारती ?"

मुख को धीरे से उठाते हुए भारती ने कहा—"मैंने कह दिया कि मैं अवश्य रण-क्षेत्र में जाऊँगी। मैं उसकी सेवा करूँगी—उसे बतलाऊँगी—"

बात काटकर मैंने पूछा—"वह कौन ?" "आर्त ?" भारती कहने लगी—"मैंने रोते-रोते कहा था—बतलाऊँगी भारतीय नारी का हृदय—उसकी सेवा-परायणता, उसका प्रेम।"

अब की मैं फिर उठ बैठा, और अपने हाथों को फैलाकर कह उठा—"भारती क्या आप देवी हैं ?"

"नहीं, केवल भारती हूँ—देवियों से कभी मेरा परिचय नहीं हुआ—तुमने ·····माफ़ करना, आपने ठीक ही कहा है, मैं भारती हूँ·····अरे यह क्या आप फिर उठ बैठे ?" झट से फिर मुझे लिटाकर भारती ने कहा—"यदि आप बात नहीं मानेंगे, तो मैं यहाँ नहीं बैठूँगी।"

"नहीं-नहीं, बैठिए—मैं अवश्य आपकी बात मानूँगा।" मैंने विनीत-पूर्ण कंठ से कहा—

"अच्छा, मैं यहीं बैठी हूँ।" बालिका के ओठों पर फिर एक सरल मुस्किराहट क्रीड़ा कर गई।

कुछ देर तक फिर निस्तब्धता छाई रही। बाहर घड़ी में टन्-टन् करके शाम के सात बजे। भारती उठ खड़ी हुई। मैंने पूछा—"कहाँ चलीं आप ?"

"आपका दूध ले आऊँ।" भारती ने उत्तर दिया। "अच्छा, ले आइए, परंतु देखिए—अब से आप मुझे तुम कहा करिए। आपके मुख से तुम संबोधन बड़ा ही मीठा लगता है।" मैंने आग्रह के साथ कहा—"आपको जो अच्छा लगता है, वही कहूँगी—अच्छा आपका—"

मैंने कुछ कृत्रिम रोषमिश्रित स्वर से कहा—"देखिए, फिर आप-आप कहकर...."

मृदु हास्य के साथ बात काटकर भारती ने कहा—"क्षमा करो। अब ठीक तुम कहा करूँगी।"

मैंने भी हँसकर कहा—"हाँ, तुम कहा करना।"

भारती चली गई। मैं विचार-तरंग में लीन हो गया। अपूर्व नारी है यह भारती। रहस्यमयी कोमलता की प्रतिमूर्ति है—स्नेह की जीवन-प्रतिमा है। कौन है यह ?

(असमाप्त)

कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोंधा बसंत

बीबी गुलाबी—मैं तो हुज़ूर पर फिदाँ हूँ ।
ख़ुशामदी मुसाहिब—वाक़ई आप बड़े हसीन हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग-विश्वविद्यालय का रसायन-विभाग

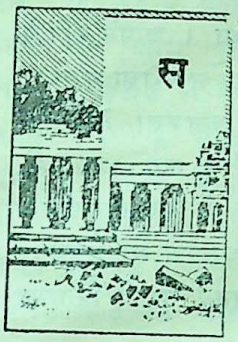

सन् १८८७ ई० में प्रयाग-विश्व-विद्यालय-बिल स्वीकृत किया गया था। उस समय के विद्यालय का महत्त्व परीक्षालय के अतिरिक्त और कुछ न था। परंतु इस समय भी उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक विशाल कालेज प्रयाग में अवश्य विद्यमान था। म्योरसेंट्रल-कालेज का नाम अब भी लोगों को नहीं भूला है। मैंने भी इस कालेज के अंतिम दिवस देखे हैं। सन् १९२१ ई० में, मैट्रिकुलेशन-परीक्षा पास करके, मुझे इस प्रसिद्ध कालेज के इंटरमीडिएट क्लास में प्रविष्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। म्योर-कालेज का यह अंतिम एफ़० ए० क्लास था; मैं 'प्रथम वर्ष' पास कर 'द्वितीय वर्ष' में आया, तो इस कालेज का प्रथम वर्ष क्लास भी सदा के लिये बंद कर दिया गया, द्वितीय वर्ष पास करके बी० एस्-सी० की कक्षाओं में मैंने ज्यों ही प्रवेश किया कि इसके बाद से, धरा से, म्योर-कालेज ही विलीन हो गया। मैंने इस प्रकार इस कालेज की अंतिम श्वासों का अनुभव किया।

कलकत्ता-कमीशन की रिपोर्ट और आयोजना के अनुसार संयुक्तप्रांत की सरकार ने प्रयाग-विश्वविद्यालय का पुराना रूप ही परिवर्तित कर दिया। इस प्रांत में घर-घर विश्वविद्यालय खुल गए, और अब प्रयाग में विश्व-विद्यालय का कार्य अन्य विद्यार्थियों की परीक्षा लेना ही नहीं है, उनको अपनी महत्त्व-पूर्ण आयोजना द्वारा शिक्षा भी देना है। प्रयाग के अन्य कालेज अर्थात् कायस्थ-पाठशाला और क्रिश्चियन-कालेज, म्योर-कालेज में मिला दिए गए, और सबको 'प्रयाग-विश्वविद्यालय'-नामक एक पूज्य और विशाल नाम दे दिया गया। इस वर्ष से 'आगरा-विश्वविद्यालय' भी स्थापित हो गया है, जिसका काम शिक्षा देना न होगा, प्रत्युत यह प्रांत के अन्य कालेजों के परीक्षार्थियों की परीक्षा ही लेगा। आगामि वर्ष से प्रयाग-विश्वविद्यालय प्रयाग का ही विद्यालय रहेगा, अन्य किसी नगर से इसका संबंध न होगा।

उन्नीसवीं शताब्दि के विद्यालय में, कौन कह सकता है, विज्ञान के क्लास किस प्रकार के होंगे। भारतवर्ष में विज्ञान को प्रविष्ट हुए अभी आधी भी शताब्दि नहीं हुई है। विज्ञान एक विस्तृत विषय है। मैं इस लेख में केवल रसायन-विषय में ही सीमित रहूँगा। रसायन के उच्चतम कार्य के लिये भारतवर्ष में चार प्रकार के स्रोत बहे। आचार्य सर प्रफुल्लचंद्र राय यदि एक निर्मल स्रोत के वाहक थे, तो दूसरी ओर डा० एडविन वाटसन अपने अथक परिश्रम से भारतीय विद्यार्थियों को, इस विषय की ओर, प्रोत्साहित कर रहे थे। तीसरा ऐंग्लो इंडियन स्रोत था, जिसमें विलायती प्रवृत्ति के व्यक्ति बैंगलोर-इंस्टीट्यूट से अथवा अन्य कालेज की गद्दियों से थोड़ा-बहुत कार्य करते थे। पर इनका उद्देश्य रसायन-शास्त्र को भारतीय बनाने का कदापि न था। इनके अतिरिक्त धनी-कुशल-विद्यार्थी योरप की भिन्न-भिन्न विद्याक्षेत्रों में भी जाकर रसायन की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करते थे। इस प्रकार भारतवर्ष में, इस समय जितने रसायनज्ञ विद्यमान हैं, उन्होंने किसी-न-किसी रूप में इन चार प्रकार के स्रोतों का ही अमृत-पान किया है।

विज्ञान सार्वभौमिक विषय है, अन्य शास्त्रों की अपेक्षा इसका विकास अधिक नियमित है। परीक्षा और निरीक्षण के साथ-साथ दार्शनिक मस्तिष्क की कलित कल्पनाओं का आश्रय लेकर इसने संसार का रंग ही परिवर्तित कर दिया है। यों तो भारतवर्ष, अरब, यूनान आदि प्रदेशों में रसायन-विद्या का उपयोग अतीत काल से होता आ रहा है, पर वर्तमान विकास का आरंभ लगभग २०० वर्षों से ही समझना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दि में रसायन-शास्त्र को स्थायी रूप मिला। अणु, परमाणु और तत्त्वों के प्रयोगात्मक महत्त्वों को लवाशिए, डाल्टन, बरज़ीलियस आदि वैज्ञानिकों ने जनता के सम्मुख रक्खा। अमूल्य पदार्थों की संश्लेषण-विश्लेषण-विधि ने योरप को मालामाल कर दिया। यहाँ के पारंगत रसायनज्ञों के तपोबल से आज योरप में ऐसी न-जाने कितनी फ़ैक्टरीज़ होंगी, जिनमें से प्रत्येक का विस्तार इस प्रांत के लखनऊ और प्रयाग-ऐसे नगरों से भी कहीं अधिक है। यदि संसार की दृष्टि से देखा जाय, तो लज्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर यह कहना पड़ेगा कि भारतवर्ष ने रसायन के असीम सागर में कुछ बिंदु-जल ही प्रदान किया होगा—अधिक नहीं। पर, इसका कारण यह नहीं है कि यहाँ के व्यक्तियों में विदेशियों के समान अन्वेषक-मस्तिष्क ही नहीं है, यह केवल इस देश की राज्य-उदासीनता और जनता की अवहेलना का ही फल है।

पुराना म्योर-कालेज अध्यापकों और छात्रों की विलासमय क्रीड़ा-भूमि था। अध्यापक आनंद का जीवन व्यतीत करते थे। दिन-भर में एकाध घंटा पढ़ा देना उनके लिये बहुत था। उच्च पदस्थ अध्यापक कदाचित् इतना भी परिश्रम लेना उचित नहीं समझते थे। अस्तु, साधारण पठन-पाठन के अतिरिक्त मौलिक खोजों की ओर विद्यालय की प्रवृत्ति बिलकुल ही न थी, रसायन-विभाग में अन्वेषण करने का मूल श्रेय डा० हिल साहब को मिलना चाहिए। उस समय की रसायन-शाला बहुत साधारण थी, पर इतना होते हुए भी हिल महोदय के सराहनीय परिश्रम से खोज का कार्य आरंभ हो गया। दो-तीन मौलिक लेख जर्नल आफ़ केमिकल सोसायटी, लंदन में प्रकाशित हुए। हम यहाँ डा० ए० पी० सरकार का नाम नहीं भूल सकते हैं। आपने हिल की सहकारिता में एक पौदे के पत्तों के सार-रस का विश्लेषण सफलता-पूर्वक किया था, जिसके उपलक्ष में प्रयाग-विश्वविद्यालय ने आपको डी० एस्-सी० की उपाधि प्रदान की। रसायन-विभाग के इतिहास में आपका नाम चिरस्थायी रहेगा, क्योंकि आप सर्व-प्रथम व्यक्ति थे, जिन्हें इस विश्वविद्यालय से यह उपाधि मिली। हमें शोक से कहना पड़ता है कि तीन वर्ष हुए आपका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया।

हिल साहब के पश्चात् रसायन-विभाग में खोज का काम फिर बंद हो गया। डा० सरकारजी ने भी, जो इस समय कार्बनिक-रसायन के प्रोफ़ेसर थे, खोज का काम छोड़ दिया। ऐसी स्थिति में, जुलाई सन् १९१९ ई० में, आचार्य डा० नीलरत्नधर की नियुक्ति मुख्य रसायनाध्यापक-पद पर हुई। प्रयाग-विश्वविद्यालय का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को मानता है कि डा० धर के अथक परिश्रम, अतल उत्साह और असीम बुद्धि का ही यह परिणाम है कि प्रयाग-विश्वविद्यालय का रसायन-विभाग इस समय भारतवर्ष के समस्त रसायन-विभागों से बढ़ कर हो गया है। इस समय डा० नीलरत्नधर भारतवर्ष के समस्त भौतिक-रसायनज्ञों (Physical Chemists) में शिरोमणि माने जाते हैं।

आचार्य धर का जन्म, जनवरी सन् १८९२ ई० में, बंगाल के जैसोर-नगर में हुआ था। आपने वहीं के स्कूल से, १५ वर्ष की आयु में, एंट्रेंस-परीक्षा सम्मान-पूर्वक पास की। इसके पश्चात् कलकत्ता के रिपन-कालेज में आप प्रविष्ट हुए। यहाँ से, सन् १९११ में, आपने बी० एस्-सी० आनर्स-परीक्षा में सर्वोच्च सफलता प्राप्त की। इस समय आपके अध्यापक सर प्रफुल्लचंद्र राय थे। सर प्रफुल्ल भारत में रसायन-विद्या के पितामह

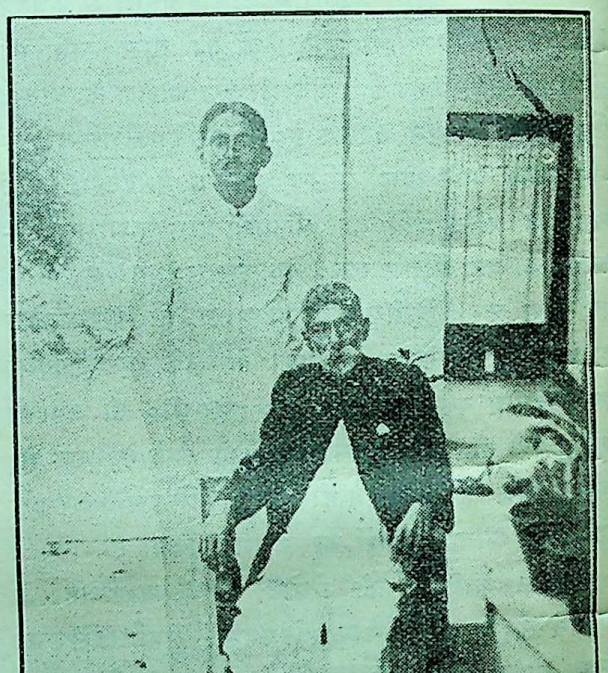

आचार्य सर प्रफुल्लचंद्र राय तथा डा० नीलरत्नधर

कहे जाते हैं। भारतीयों की प्रवृत्ति रसायन-अन्वेषण की ओर जितनी इनके कारण हुई है, उतना किसी अन्य के कारण नहीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सर प्रफुल्ल डा० धर को छात्रावस्था से ही अत्यंत प्रेम की दृष्टि से देखते रहे हैं। उनको इस समय भी इस बात का अवश्य गर्व होगा कि उनके योग्य शिष्य डा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर ने रसायन-विभाग में जो खोजें की हैं, वे उनकी भी खोजों से अधिक मूल्यवान् हैं।

अस्तु, डा० धर ने सर प्रफुल्ल की प्रधानता में, जुलाई सन् १९११ ई० से, अन्वेषण-कार्य प्रारंभ किया। आपका पहला लेख जर्नल आफ़ केमिकल सोसाइटी, लंदन में 'पारद के संकीर्ण नोषितों' (Complex nitrites of mercury) के संबंध में प्रकाशित हुआ। आपने अपनी यह खोज एम्० एस्-सी० उपाधि के लिये प्रस्तुत की। सन् १९१३ ई० में आपको यह उपाधि सम्मान-पूर्वक मिली। इसके पश्चात् अगस्त सन् १९१५ ई० तक आप प्रेसिडेंसी-कालेज कलकत्ता में रिसर्च का कार्य करते रहे। इस समय आपने, 'तत्त्वों के आवर्त संविभाग' विषय पर, एक लेख लिखा था, जिसे एम्स-टरडम की एकेडेमी (Konlnklijke-Akademic-Te-Amsterdam) में प्रोफ़ेसर कोहन ने प्रस्तुत किया। यह लेख विज्ञान-समुदाय में अत्यंत गौरव से पढ़ा गया।

सितंबर सन् १९१५ ई० में आप गवर्नमेंट इंडिया स्कालर बनकर इँगलैंड गए, और लंदन के इंपीरियल-कालेज आफ़ साइंस में प्रविष्ट हुए। यहाँ आपने 'उत्प्रेरण' (Catalysis)-विषयक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण खोजें आरंभ कीं। इनके उपलक्ष में, सन् १९११ ई० में, लंदन-विश्वविद्यालय ने आपको डी० एस्-सी० की उच्चतम उपाधि प्रदान की। इसके बाद आप पेरिस आए। यहाँ आपने रेडियम की खोज करनेवाली जगत्-विख्यात महिला मेडमकुरी की अध्यक्षता में कार्य आरंभ किया। इसके अतिरिक्त अन्य विख्यात रसायनज्ञ-जैसे उरबाँ, पैराँ, लिपमेन आदि की सहकारिता में भी खोजें कीं। फ़रवरी सन् १९१९ ई० में फ्रेंच युनिवर्सिटी ने आपको राजकीय डाक्टर-आफ़-साइंस की उपाधि प्रदान की। यह राजकीय उपाधि विदेशियों को बड़ी कठिनता से दी जाती है। साधारणतः यह केवल फ्रांसवासियों के लिये ही सीमित है। इस उपाधि के लिये परीक्षा भी बड़ी विचित्रता से ली जाती है। विद्यार्थी को फ्रेंच-भाषा में ही अपना खोज-संबंधी ग्रंथ लिखना पड़ता है। इसके पश्चात् एक दिवस नियत किया जाता है, जब परीक्षार्थी को सामान्य जनता के सामने अपने विषय पर फ्रेंच-भाषा में व्याख्यान देना पड़ता है, और इस समय चार-पाँच नियुक्त विद्वान् जिन्हें जूरी कह सकते हैं, निर्णय करने के लिये परीक्षार्थी से वाद-प्रतिवाद करते हैं, जनता में से भी उस विषय के आचार्य प्रश्न करते हैं। इस प्रकार चार-पाँच घंटे परीक्षा ली जाती है। तत्पश्चात् निर्णायकों की सम्मति के अनुसार विद्यार्थी उपाधि के योग्य अथवा अयोग्य समझा जाता है। डा० धर की भी इसी प्रकार परीक्षा ली गई, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

फ्रांस से डा० धर एक बार फिर इँगलैंड आए। बोर्ड आफ़ एजुकेशन के परामर्श के अनुसार आप इंडियन-एजुकेशनल सर्विस (I. E. S.) में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार, जुलाई सन् १९१९ ई० में, आपने विदेश-यात्रा पूर्ण करके प्रयाग के म्योर-कालेज में रसायनाध्यापक के रूप में पदार्पण किया।

आचार्य डा० नीलरत्नधर डी० एस्-सी०, आई० ई० एस्०, एफ्० आई० सी०, एफ्० सी० एस्०, प्रधान रसायनाध्यापक

इसी समय से म्योर-कालेज में डा० धर सर्वप्रिय हो गए। जिन्होंने आचार्य धर के दर्शन किए हैं, वे जानते हैं कि आपका स्वभाव कितना सरल है, अहंमन्यता अथवा अहंकार का आपको स्पर्श भी नहीं हुआ है। आपके जीवन का प्रत्येक समय रसायन-शास्त्र की सेवा में व्यतीत होता है। विश्वविद्यालय के संपूर्ण विद्यार्थी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रेम की दृष्टि से आपको देखते हैं, उतना कदाचित् ही किसी को देखते होंगे। रविवार की छुट्टियों के अतिरिक्त अन्य छुट्टियों में भी दस बजे से पाँच बजे तक बराबर आपको प्रयोगशाला में कार्य करते पाइएगा। अपने छात्रों पर तो आपकी सदा विशेष कृपा बनी रहती है। रिसर्च स्कालरों को आपसे जितनी सहायता मिलती है, उतना अन्य विभागस्थ विद्यार्थियों को अपने अध्यापकों से कदापि भी नहीं मिल सकती है। यदि आपको कुछ असह्य है, तो विद्यार्थियों का आलस्य। जितने भी विद्यार्थी आपकी अध्यक्षता में कार्य करते हैं, वे जानते हैं कि आचार्य धर उनसे कैसे ज़ोरों का काम लेते हैं। आप अभी तक अविवाहित हैं, आपकी कार्य-कुशलता और विषय-संलग्नता का ही यह परिणाम है कि इस समय तक आपके चार शिष्यों को प्रयाग-विश्वविद्यालय से रसायन-शास्त्र में डी० एस्-सी० की उपाधियाँ मिल गई हैं। अब तक यह महत्त्व विश्वविद्यालय में केवल रसायन-विभाग ही को प्राप्त है कि यहाँ के छात्र अपनी छात्रावस्था में ही आचार्य की उपाधि प्राप्त कर सके हैं। डा० धर का यह कार्य अत्यंत सराहनीय दृष्टि से देखा जायगा। अब तक आपने स्वयं और अपने शिष्यों की सहकारिता में १८० के लगभग मौलिक लेख अमेरिका, जर्मनी, फ़्रांस, इँगलैंड आदि विदेशों की सर्वमान्य पत्रिकाओं में प्रकाशित कराए हैं। जर्नल आफ़् फ़िज़िकल केमिस्ट्री अमेरिका, कोलायड ज़ाइट्सक्रिस्ट (Kolloid Zeitschrift) जर्मनी, ज़ाइट अनार्ग केमी जर्मनी (Zeit Anorg Chemie), ज़ाइट एलेक्ट्रो केमी (Zeit Electro Chemie), ट्रांजेक्शंस आफ़् फ़ैरेडे सोसाइटी, इँगलैंड आदि अनेक विख्यात पत्रों में आपके लेख बराबर छपते रहते हैं।

आचार्य धर ने जिन विषयों पर खोज के काम किए हैं, उनको हम निम्न खंडों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) नोषितों के भौतिक गुण (Nitrites)
(२) उत्प्रेरण (Catalysis)
(३) संकीर्ण यौगिक (Complex Compounds)
(४) कलार्द्रों के गुण (Colloidel properties)
(५) प्रकाश-रसायन (Photo chemistry)
(६) जीव-रसायन (Bio-chemistry)

जबसे आचार्य धर प्रयाग में आए हैं, तब से कलार्द्रों के गुणों का विशेष रूप से, यहाँ की प्रयोगशाला में, अध्ययन किया गया है। कलार्द्र रसायन-विभाग में, भारत में, कहीं भी इतना काम नहीं हुआ है। विदेशों में भी बहुत थोड़े ही ऐसे स्थान हैं, जहाँ इस विषय के अध्ययन करने के लिये प्रयाग-प्रयोगशाला से अधिक सुविधाएँ हों। अभी थोड़े ही दिन हुए कि हमारी प्रयोगशाला में अल्ट्रामाइक्रस्कोप (Ultramicroscope)-नामक अत्यंत मूल्यवान् अनुवीक्षण-यंत्र मँगाया गया है। यह यंत्र भारतवर्ष की किसी और प्रयोगशाला में नहीं है। इसकी विशेषताएँ यह हैं कि इसकी सहायता से कलार्द्र घोलों के अणुओं तक को हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इतना ही नहीं, इन अणुओं का आकार आदि भी निकाल सकते हैं। इस यंत्र के पाए जाने के कारण कलार्द्रों के बहुत-से गुणों का हम अब विशेष अध्ययन कर सकते हैं।

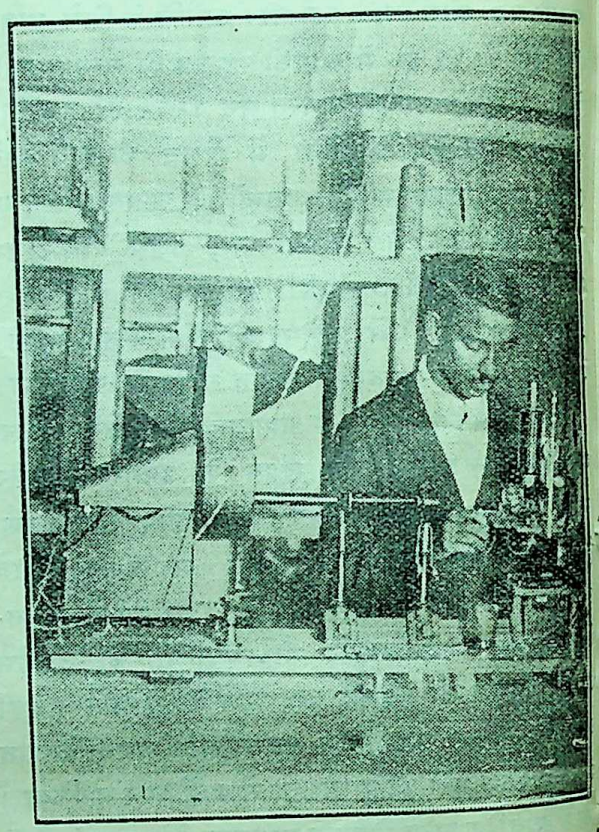

कलार्द्र-कणों का आकार-परिमाण आदि निकालने का बहुमूल्य यंत्र अल्ट्रामाइक्रस्कोप। भारत में यह यंत्र केवल प्रयाग-प्रयोगशाला में ही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश-रसायन में यहाँ बहुत ही कुशलता से काम किया जा रहा है। जगद्विख्यात ज्योतिषी और गणितज्ञ आइंसटीन ने प्रकाश द्वारा होनेवाली रासायनिक प्रक्रियाओं के लिये एक विशेष सूत्र स्थापित किया था। डा० धर ने अपने छात्रों के प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि आइंसटीन का यह नियम सर्वांश में सत्य नहीं है, इसके बहुत-से अपवाद हैं।

के लिये भी आचार्य धर ने रासायनिक कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं। मधुमेह (Diabetes), गठिया, ज्वर आदि रोगों के कारणों पर भी आपने भली भाँति प्रकाश डाला है। आजकल आप भोजन के आवश्यकीय अंग 'विटेमिन' के प्रभाव की भी चूहों, खरगोशों, कबूतरों आदि पर परीक्षा कर रहे हैं। रुधिर के कलार्द्र-गुणों का भी अध्ययन किया जा रहा है। सब जानते हैं, शरीर में

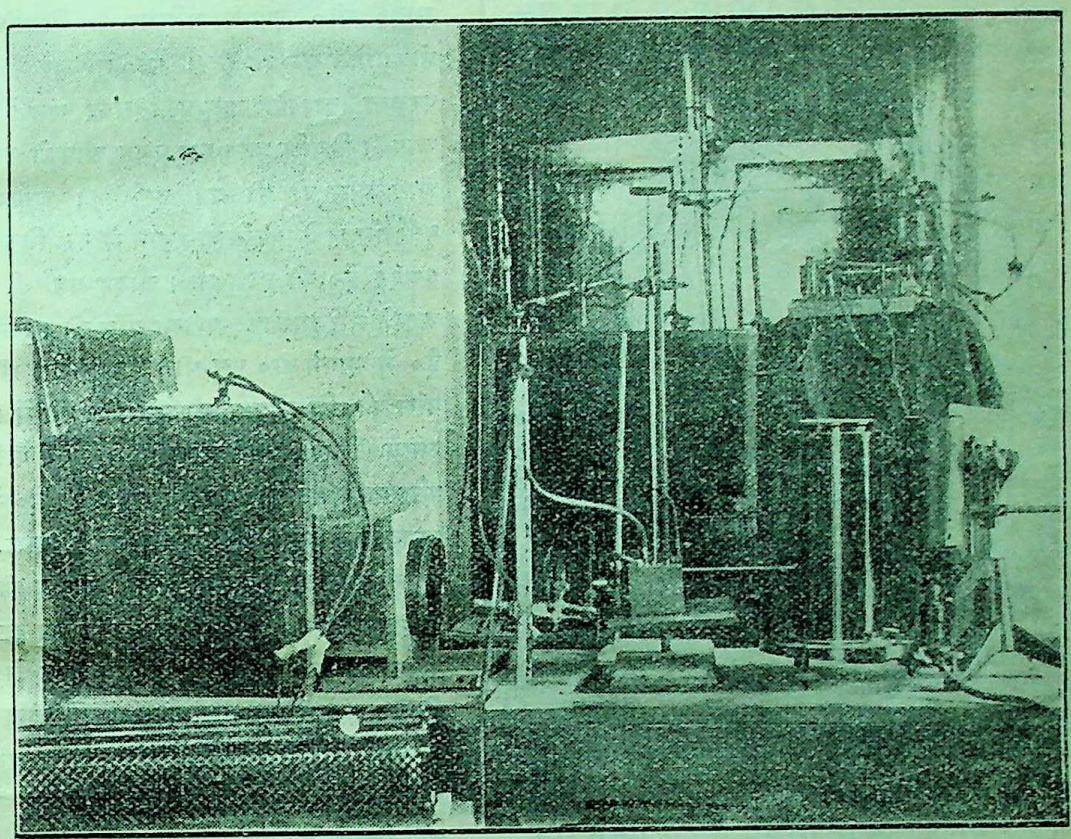

प्रकाश-रसायन-संबंधी अन्वेषण करनेवाली प्रयोगशाला का एक दृश्य

जीव-रसायन में भी आचार्य धर की विशेष रुचि है। साधारण रसायन के नियमों से वह शरीर की प्रक्रियाओं के समाधान करने का यत्न कर रहे हैं। जिस प्रकार सर जगदीशचंद्र वसु ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि वनस्पति-जगत् में शरीर-संचलन के वही नियम हैं, जो अन्य प्राणि-जगत् में मिलते हैं, इसी प्रकार डा० धर ने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखा दिया है कि सामान्य रासायनिक जड़-पदार्थों के उपघोलों या कलार्द्रों (Colloids) में भी उसी प्रकार की तरुणावस्था और जरावस्था होती है। बढ़ापा और मृत्यु

सामान्य तापक्रम पर ही भोज्य-पदार्थ—जैसे शक्कर, घी आदि—ओषदीकृत हो जाते हैं। डा० धर ने अपने प्रयोगों से यह दिखा दिया है कि ऐसा होना कोई विचित्र बात नहीं है। यदि इन पदार्थों के साथ कुछ उत्प्रेरक पदार्थ मिला दिए जायँ, तो रसायनशाला में भी सामान्य तापक्रम ही ओषदीकरण हो सकता है। आचार्य धर के संपूर्ण प्रयोगों और सिद्धांतों का वर्णन यहाँ करना सर्वथा असंभव ही है। पर इतने से ही हम जान सकते हैं कि डा० धर ने अपने प्रकांड पांडित्य से रसायन-शास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों पर इतना प्रकाश डाला है कि वर्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान अवस्था का विचार करते हुए हम इससे अधिक आशा भी नहीं कर सकते हैं। हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि भौतिक-रसायन में प्रयाग-विश्वविद्यालय ने अकेले उतना कार्य करके दिखा दिया है, जितना कदाचित् भारत के अन्य विद्यालयों ने मिलकर किया होगा।

वयोवृद्ध रायसाहब श्रीसतीशचंद्रजी देव एम्० ए०, रीडर, रसायन-विभाग

यह कहा जा चुका है कि डा० धर के चार शिष्यों को प्रयाग-विश्वविद्यालय से डी० एस्-सी० की उपाधियाँ मिल चुकी हैं। डा० नित्यगोपाल चटर्जी और डा० ए० सी० चटर्जी, ये दोनों इस समय लखनऊ में हैं। इस समय के प्रयाग-रसायन-विभाग में रसायन के चार आचार्य—डाक्टर्स—उपस्थित हैं। यह इस बात का सबल प्रमाण है कि प्रयाग-विश्वविद्यालय का मुख्य उल्लेखनीय स्तंभ रसायन-विभाग है। (इतिहास-विभाग भी इसी प्रकार का है) इतना अच्छा अध्यापक-मंडल कलकत्ता-विश्वविद्यालय को छोड़कर अन्य किसी विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग में नहीं है।

जिस प्रकार भौतिक-रसायन में आचार्य नीलरत्न धर अपनी कुशलता से छात्रों को सहायता पहुँचा रहे हैं, उसी प्रकार कार्बनिक-रसायन (Organic Chemistry)-विभाग में आचार्य डा० शिखिभूषण दत्त एम्० ए०, डी० एस्-सी०, पी० आर० एस्०, ए० आई० सी० अपनी प्रतिभा से विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। डा० सरकार की मृत्यु के पश्चात्, इस विद्यालय में, दिसंबर, सन् १९२५ में, आपकी नियुक्ति हुई। इस प्रकार आपको अभी यहाँ आए केवल दो ही वर्ष हुए हैं। आपका जन्म पूर्वी बंगाल के कोमिल्ला-स्थान में २९ दिसंबर, सन् १८९९ ई० को हुआ था। चौदह वर्ष की आयु में आपने मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा पास की। सन् १९१९ ई० में आपने बी० एस्-सी० (आनर्स) की परीक्षा पास की, जिसमें आपको प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम स्थान मिला, और आपको बहुमूल्य पारितोषिक और पदक भेंट किए गए। सन् १९२१ ई० में आपने रसायन में एम्० ए० प्रथम पद में पास किया। अपनी प्रतिभा के कारण आपको सर्वदा ही वृत्तियाँ मिलती रहीं। आपने रसायन-शास्त्र का विशेष अध्ययन, डा० एडविन एम्० वाटसन से, ढाका-विद्यालय में किया था। जिस प्रकार आचार्य प्रफुल्ल के सर्वश्रेष्ठ शिष्य डा० धर हमारे विभाग के शिरोमणि हैं, उसी प्रकार डा० वाटसन के सर्वोपरि शिष्य डा० दत्त अपने अनुभवों से हमें प्रोत्साहित कर रहे हैं।

एम्० ए० पास करके आचार्य दत्त ढाका-युनिवर्सिटी में रिसर्च का काम करने लगे। सन् १९२४ ई० के आरंभ में आपको प्रेमचंद-रायचंद-स्कालरशिप दिया गया। इस छात्रवृत्ति की भारतवर्ष में बड़ी ही ख्याति है। इसमें आपको ४,४००) एक साथ भेंट किए गए थे। आपने सितंबर, सन् १९२३ ई० में डी० एस्-सी० की उपाधि के लिये इँगलैंड को प्रस्थान किया। यहाँ के इंपीरियल कालेज के जगद्विख्यात रसायनज्ञ प्रोफ़ेसर थार्प (Thorpe) की सहकारिता में आपने खोज करनी आरंभ की। हमें यह कहते हुए अत्यंत हर्ष होता है कि डा० दत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

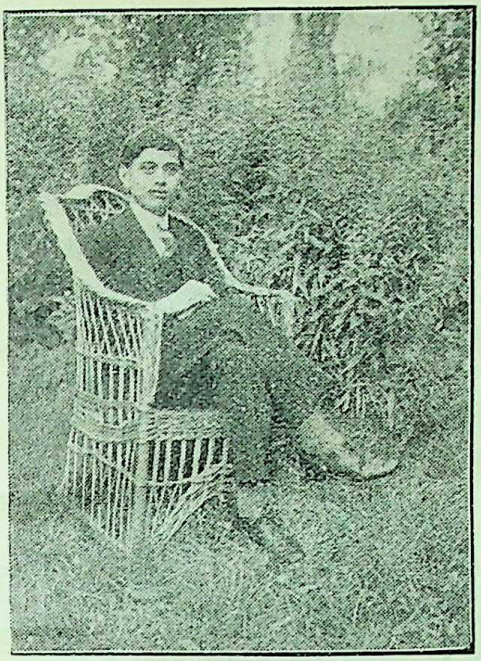

आचार्य डा० शिखिभूषण दत्त एम्० ए०,डी० एस्-सी०, पी० आर० एस्०, ए० आई० सी०, कार्बनिक-रसायनाध्यापक

के समान रंगों के विषय में ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति इस समय भारतवर्ष में दूसरा कोई भी नहीं है। आपने न-जाने कितने प्रकार के नए नए रंगों का अन्वेषण किया होगा! यही नहीं, आपने रंगों के सिद्धांत के विषय में अपनी अमूल्य धारणा प्रस्तुत की है। आपने आणविक खिचाव (Molecular Strain) के आधार पर रंग का सिद्धांत निकाला है। इस सिद्धांत के उपलक्ष्य में ही आपको लंदन-युनिवर्सिटी ने डी० एस्-सी० की उपाधि दी थी। यह हमारा अत्यंत सौभाग्य है कि हमें डा० दत्त-जैसे कार्य-कुशल अध्यापक की मनोहारिणी पाठ्य-प्रणाली से शिक्षित होने का अवसर मिलता है। डा० दत्त की शिक्षण-प्रणाली इतनी मनोहर है कि प्रत्येक विद्यार्थी गहन-से-गहन विषय को साधारण परिश्रम से समझ लेता है। डा० दत्त के आने के पूर्व कार्बनिक-रसायन-विभाग में कुछ भी अन्वेषण-कार्य न होता था; पर जब से आप आए हैं, विद्यार्थियों में कार्बनिक-रसायन के प्रति विशेष स्फूर्ति उत्पन्न हो गई है, और अन्वेषण का कार्य भली भाँति चल रहा है।

डा० धर के विशेष छात्र डा० क्षितीशचंद्र सेन डी० एस्-सी० और डा० सत्येश्वर घोष डी० एस्-सी० इस समय प्रयाग-विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग में कार्य कर रहे हैं। डा० सेन का जन्म ५ सितंबर, सन् १८९९ ई० को बंगाल-प्रांत के 'खुलना' स्थान में हुआ था। जैसोर में आपने मैट्रीक्युलेशन तक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् बंगवासी-कालेज, कलकत्ता से बी० एस्-सी० की उपाधि ली। सन् १९२० में आप प्रयाग आए। यहाँ सन् १९२२ में आपने एम्० एस्-सी० पास किया, और उसके पश्चात् आपको अन्वेषण-कार्य के लिये छात्रवृत्ति मिली। आपने डा० धर की अध्यक्षता में ३ वर्ष तक घोर परिश्रम किया। डी० एस्-सी० की उपाधि के लिये अपना खोज-संबंधी लेख प्रस्तुत किया। इस लेख की परीक्षा के लिये इंपीरियल कालेज, लंदन के जगद्-विख्यात रसायनज्ञ डोनन (Donnon) और रेडियो-एक्टिविटी पर काम करनेवाले सौदी (Soddy) परीक्षक नियुक्त किए गए। ये महानुभाव वैज्ञानिक संसार के नेताओं में समझे जाते हैं, और सभी जगह के छात्रों के आचार्य-उपाधि-संबंधी लेख ऐसे ही धुरंधरों के पास

आचार्य डा० क्षितीशचंद्र सेन डी० एस्-सी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजे जाते हैं। दोनों परीक्षकों ने डा० सेन को आचार्य-पदवी के सर्वथा योग्य ठहराया। सन् १९२५ में श्रीक्षितीश-चंद्र सेन को प्रयाग-विश्वविद्यालय ने इन परीक्षकों के परामर्श से डी० एस्-सी० की उपाधि भेंट की। लीपज़िग-युनिवर्सिटी, जर्मनी के प्रोफ़ेसर तथा 'कोलायड ज़ाइट्स' के संपादक प्रो० डा० वूल्फ़ गैंग ओसवल्ड (Wo. Ostwald) लिखते हैं कि डा० के० सी० सेन ने भौतिक-रसायन में जो काम किया है, वह अत्यंत महत्त्व की दृष्टि से देखा जायगा। इसी प्रकार दूसरे जर्मन-वैज्ञानिक डा० फ्रूंडलिश (Freundlich) की सम्मति है कि डा० सेन का कार्य रसायन-शास्त्र की वृद्धि में बहुत प्रकार से उपयोगी प्रतीत हो रहा है। डौनन आदि अन्य रसायनज्ञों ने भी डा० सेन के कार्य को अत्यंत उपयोगी एव उत्तम बताया है। हमें आशा है, डा० सेन के द्वारा रसायन-शास्त्र को और भी अधिक रत्न प्राप्त होंगे। अब तक देशी-विदेशी पत्रिकाओं में आपके ४० के लग-भग लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से २६ इनके अपने स्वतंत्र लेख हैं, और ७ डा० धर की सहयोगिता में लिखे गए तथा शेष आपके विद्यार्थियों के साथ के हैं।

डा० सत्येश्वर घोष को भी रसायन-विभाग का एक रत्न समझना चाहिए। आपका जन्म धौलपुर में १६ जनवरी, सन् १९०१ई० को हुआ था। सन् १९०८ ई० से आप प्रयाग में ही रहते हैं। प्रयाग के ऐंग्लो-बंगाली स्कूल से आपने, १९१७ ई० में, मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा पास की। इसके पश्चात् एफ़्० ए० म्योर-कालेज से प्रथम श्रेणी में, पास किया और सन् १९२३ ई० में एम्० एस्-सी० भी प्रथम श्रेणी में पास किया। तदुपरांत आपको अन्वेषण के लिये छात्रवृत्ति मिली। नवंबर, सन् १९२६ ई० में आपको प्रयाग-विश्वविद्यालय ने डी० एस्-सी० की उपाधि दी। आपके उपाधि-संबंधी लेख के परीक्षक इंगलैंड के प्रो० डौनन एफ़्० आर० एस्० और सर जेम्स वाकर थे। इन्होंने आपके कार्य को उपाधि के सर्वथा योग्य ठहराया। डा० घोष इस समय भी खोज का कार्य अत्यंत परिश्रम और कुशलता-पूर्वक कर रहे हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक 'वाइज़र' आदि के साथ कलार्द्र-नियमों पर आपका घोर संघर्ष हो रहा है, जिसके कारण रसायन-जगत् में आपको अच्छी ख्याति प्राप्त हुई है।

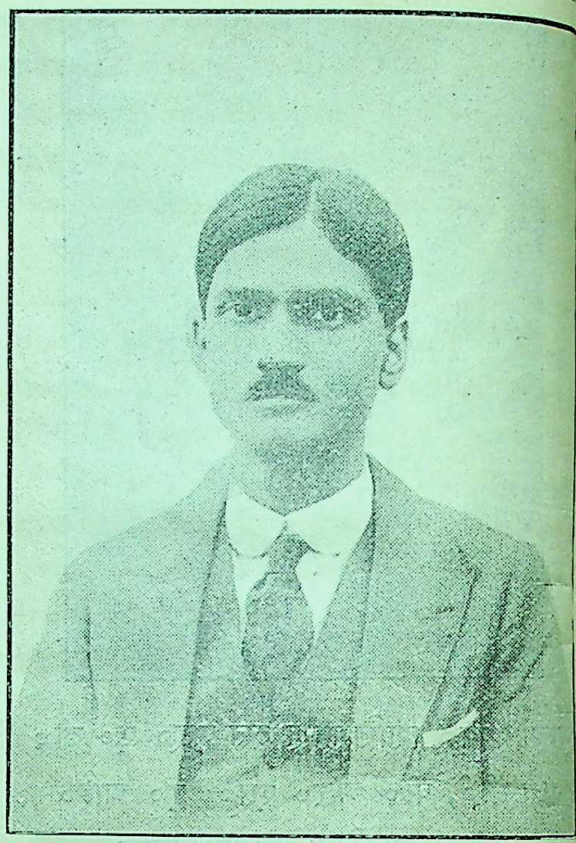

आचार्य डा० सत्येश्वर घोष डी० एस्-सी०

इन चार डाक्टरों के अतिरिक्त विश्व-विद्यालय का शेष अध्यापक-मंडल भी विद्या के आदान-प्रदान में सराहनीय कार्य कर रहा है। श्री० पूज्य वयोवृद्ध सतीशचंद्रदेवजी (जन्म, सन् १८७७ ई०) अपने अनुभवों से विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर कर रहे हैं। हम सब विद्यार्थियों के आप पितामह हैं। स्वर्गवासी डा० सरकार के आप गुरु हैं। आप सन् १८९९ से यहाँ अध्यापक हैं। श्रीक्षत्रपति चटर्जी की मनोहारिणी वक्तृताएँ विद्यार्थियों को विदित ही हैं। आपके समान पढ़ने और पढ़ानेवाला इस विद्यालय में कोई नहीं है। आप भी खोज का काम कर रहे हैं, और हमें आशा है, एकआध वर्ष में ही आपको आचार्य की उपाधि मिल जायगी। हमारे यहाँ के दो अध्यापक—श्रीइक़बालकृष्ण तैमिनी और श्रीमूलराजजी मेहरोत्रा—इस समय लंदन में कार्य कर रहे हैं, और शीघ्र ही आचार्य की उपाधियाँ लेकर वापस आ जायँगे। श्रीविमलकुमार मुकर्जी ने आचार्य-उपाधि के लिये अपना 'थीसिस' प्रस्तुत कर दिया है। आप प्रकाश-रसायन में हमारे यहाँ के प्रथम डाक्टर होंगे। हमें आशा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्बनिक-रसायन-विभाग से, डा० दत्त की अध्यक्षता में, पं० यमुनादत्त तिवारी अवश्य ही शीघ्र आचार्य बन जायँगे। श्रीचंडीचरण पालित भी अपना थीसिस भेजनेवाले ही हैं। इस प्रकार दो-तीन वर्ष के अंदर ही हमारा यह विभाग उन्नति के शिखर पर पहुँच जायगा। किसी को भी यह संदेह करने की आवश्यकता नहीं कि रसायन-शास्त्र में आचार्य की उपाधि प्राप्त करना अत्यंत सरल है। जिन्हें हमारे रसायन-विभाग के विद्यार्थियों के परिश्रम से परिचय है, वे जानते हैं कि डा० धर और डा० दत्त की अध्यक्षता में किस प्रकार विद्यार्थी घोर तपस्या करते हैं। कठिनता से रविवार की एक छुट्टी मिलती है। बहुत-से अध्यापक रविवार को भी आकर कार्य करते हैं। इस प्रकार कहीं दिन-रात एक करके काम करने से कोई बात कठिन न रह जाती है। विदेशों में कालेजों में कोई प्रोफ़ेसर या डिमांस्ट्रेटर ऐसा नहीं है, जो अपने विषय का आचार्य न हो। यह केवल हमारा ही अशिक्षित अभागा देश है, जहाँ के लोगों की रुचि उच्चतम विद्या प्राप्त करने के प्रति बहुत ही कम है। संयुक्तप्रांत के व्यक्तियों में अभी तक यह रोग विशेषता से व्याप्त है। विज्ञान के प्रति इस प्रांत के विद्यार्थी बहुत ही कम आकर्षित होते हैं। यह हमारा अत्यंत सौभाग्य है कि प्रयाग-विश्वविद्यालय में, डा० धर-जैसे निस्पृह व्यक्तियों की अध्यक्षता में, हमें कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। डा० धर किसी एक प्रांत या जातीयता की संपत्ति नहीं हैं। वैज्ञानिकों का जीवन सार्वभौमिक जीवन होता है। क्या हम अपने प्रांत के विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकते हैं कि वे डा० धर, दत्त, सेन और घोष-जैसे रत्नों की सहकारिता और अध्यक्षता में आकर कार्य करें। विश्वविद्यालय एक पवित्र तपोभूमि है, जहाँ गुरु-शिष्य अहंमन्यता, जाति-वर्ण आदि कृत्रिम भेदों को भूलकर एकहृदय और एकस्वर से सरस्वती-देवी की आराधना करते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशाला एक महान् यज्ञस्थली है, जहाँ लौकिक और पारलौकिक यंत्रणाएँ दूर होती हैं। इस यज्ञ के लिये आवश्यक है—निस्पृहता, त्याग, उद्दाम उत्साह और अटल भक्ति!

सत्यप्रकाश

व्रजराज-ऋतुराज

सुंदर सरस अरविंद-से विराजे दृग,
कुंद-कलिका की वर दंत छवि छाए हैं;
जुलफ़-जमात भौंर-माल-सी सुहाई संग,
पीत-पट अंगन पराग परसाए हैं।
अधर 'विसारद' लसत नवपल्लव से,
मृदुल वचन बोल कोयल जताए हैं;
सौरभ भरत प्रति स्वाँस के समीरन तें,
आजु व्रजराज ऋतुराज बनि आए हैं।

बलदेवप्रसाद टंडन

साहित्य-दर्पण की टीका और श्रीकिशोरीदासजी शास्त्री

कुछ दिनों से 'माधुरी' में हमारी लिखी साहित्य-दर्पण की हिंदी-टीका के विरुद्ध एक विशालकाय लेखमाला निकल रही है। इसके लेखक हैं श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री नाम के कोई सज्जन। हम यह नोट उक्त लेखमाला का प्रतिवाद करने की नियत से नहीं, बल्कि उसकी दो-एक अधिक खटकनेवाली बातों पर कुछ प्रकाश डालने के अभिप्राय से लिख रहे हैं।

श्रीयुत वाजपेयीजी महाराज के लेख का उपक्रम हमारी घोर निंदा और 'माधुरी' के मौजूदा संपादक पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी० की भरपेट प्रशंसा से प्रारंभ होता है। यदि यह मान भी लिया जाय कि हमारी लिखी टीका की आलोचना करते समय हमारे ऊपर गालियों की बौछार करना अनिवार्य-रूप से आवश्यक था, तो भी सर्वसाधारण के मन में यह संदेह उठ सकता है कि इस प्रकरण में 'माधुरी' के मिश्रजी की प्रशंसा के पुल यदि न बाँधे जाते, तो क्या हर्ज था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मिश्रजी 'माधुरी' के यशस्वी संपादक" हैं, "हिंदी के सच्चे समालोचक" हैं, मिश्रजी ने आपके (वाजपेयीजी के) "लेख की बड़ी तारीफ़ की", मिश्रजी का उत्तर "अत्यंत शिक्षा-पूर्ण" है, मिश्रजी के "पत्र का मेरे (वाजपेयीजी के) हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा", "मिश्रजी का सिद्धांत हिंदी के इस युग के लिये बहुत ही अच्छा है" इत्यादि वाक्य यदि साहित्य-दर्पण की समालोचना करते समय न भी कहे जाते, तो क्या त्रुटि होती ? "गंगा की गैल में मदार के गीत" यदि न गाए गए होते तो क्या नुक़सान था ? आपके इस ढंग को देखकर यदि किसी को यह संदेह होने लगे कि एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा करना ही आपके लेख का लक्ष्य है, तो आश्चर्य ही क्या ?

वाजपेयीजी महाराज ने हमारी लिखी साहित्य-दर्पण की भूमिका से ही अपना काम आरंभ कर दिया है; परंतु इसमें केवल इधर-उधर की बातें हैं। अपने लक्ष्य के अनुसार निंदा-स्तुति की कर्मनाशा के बीच श्रीमान् ने अपने भावी पुरुषार्थ-प्रदर्शन के बड़-बड़ वादे किए हैं। शास्त्रीय बातों का उल्लेख आपने ग्रंथ के आरंभ से ही किया है। आपके लिखने का ढंग यह है कि जहाँ कहीं हमने तर्कवागीशजी का खंडन करने के लिये चार-छः हेतु दिए हैं, उनमें से किसी एक को, जिसे आप अपनी समझ में सबसे दुर्बल जान सके, पकड़कर कई-कई पृष्ठों तक हमें खरी-खोटी सुनाते गए हैं और बाक़ी सब हेतुओं को पी गए हैं। यह संभव नहीं कि आप अपनी इस कमज़ोरी को समझते न हों। आप ख़ूब समझते हैं कि जिन लोगों ने साहित्य-दर्पण पढ़ा है या जिनको उसके समझने की क्षमता है, वे मूल पुस्तक में हमारी टीका के साथ वाजपेयीजी के इस शाखाचङ्क्रमण को देखकर असलियत समझ जायँगे, और आपके उद्देश्य को भी ताड़ जायँगे, परंतु आपके लिखने का मंशा तो यह मालूम होता है कि जिन लोगों ने न तो साहित्य-दर्पण की टीका देखी है, और न उसे समझने की योग्यता ही रखते हैं—और ऐसों की संख्या भी कम नहीं है, बल्कि समझनेवालों से अधिक है—वे लोग आपकी इस लेखमाला को देखकर हमारे लेखों को नगण्य समझने लगें। ईश्वर करे, आपका मनोरथ सफल हो, और हिंदी-जनता—ख़ासकर 'माधुरी' पढ़नेवाली—उतनी ही मूर्ख निकले, जितना कि आप उसे समझते हैं, एवं आपकी मंशा के मुताबिक़ आप लोगों को हिंदी-जगत् के वर्तमान युग-प्रवर्तक का पद-प्रदान करे।

आपका सबसे पहला और सबसे प्रधान शास्त्रीय बात साहित्य-दर्पण के मंगलाचरण में प्रकट हुई है। साहित्य-दर्पण के रचयिता ने जो मंगलाचरण किया है, उसकी टीका करते हुए उसके प्राचीन टीकाकार श्रीतर्कवागीशजी ने सर्वसम्मत अर्थ करने के बाद एक दूसरा अर्थ भी किया है। हमने इस दूसरे अर्थ का खंडन किया है, और इसके लिये कई हेतु दिए हैं। श्रीवाजपेयीजी महाराज ने और सब हेतुओं को तो छुआ तक नहीं, उधर से एकदम मुँह फेर लिया, परंतु एक (दूरान्वय) को पकड़कर यह प्रतिवाद किया (अथवा प्रतिवाद के बहाने दिल का बुख़ार निकाला) है कि श्लेष जहाँ होता है, वहाँ इस प्रकार के दोष नहीं माने जाते। जिस बात को सबसे नाज़ुक समझकर आपने पकड़ा है, उसे भी दोष मानने से तो आप इनकार नहीं कर सके, लेकिन आपका कहना यही है कि जब यहाँ श्लेष है, तो इस प्रकार के दोष को क्षमा के योग्य समझना चाहिए।

(श्लेष)

'श्लेष'-शब्द 'श्लिष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है चिपकना, चिपटना या मिलना। साहित्य में यह शब्द पारिभाषिक है और जहाँ एक शब्द से दो अथवा उससे अधिक अर्थों की प्रतीति होती है, वहाँ इसका प्रयोग होता है। एक शब्द में चिपके हुए-से अनेक अर्थ जहाँ एक ही शक्ति—अभिधा—के द्वारा बोधित हों, वहाँ श्लेष माना जाता है। दोनों अर्थों का बोध कराने में उस शब्द का सामर्थ्य होना चाहिए, वह शब्द उन अनेक अर्थों का बोधक होना चाहिए, अभिधा शक्ति के द्वारा अनेक अर्थों को उपस्थित कराने का सामर्थ्य उस शब्द में होना चाहिए, तभी श्लेष होता है, अन्यथा नहीं। श्लेष में दो (या अधिक) अर्थ समान रूप से बोधित होते हैं। दोनों में शब्द की एक ही शक्ति (अभिधा) काम करती है। दोनों में से किसी एक अर्थ का दर्जा ऊँचा या नीचा नहीं समझा जाता। दोनों अर्थ एक साथ—समान रूप से—कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़े हुए दिखाई देते हैं। यह नहीं होता कि एक अर्थ तो सामने आकर खड़ा हो हो और दूसरा किसी खिड़की से झाँकता हो या उसकी सिर्फ़ छाया दीखती हो या सिर्फ़ झलक दिखाई दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। जहाँ किसी कारणवश एक ही अर्थ प्रकरण के उपयुक्त सिद्ध हो जाय और दूसरे की सिर्फ़ छाया या झलक दिखाई पड़, अर्थात् एक अर्थ अभिधा-वृत्ति के द्वारा उपस्थित होता हो और दूसरा व्यंजना-वृत्ति के द्वारा, वहाँ शब्द-शक्तिप्रलक ध्वनि मानी जाती है, श्लेष नहीं। श्लेष वहीं होता है, जहाँ दोनों अर्थ साथ पैदा हुए भाइयों की तरह सामने आएँ, बराबर के हिस्सेदारों की तरह उपस्थित हों। श्लेष वहीं होता है, जहाँ कहनेवाले का तात्पर्य दोनों अर्थों को बोधित करने से हो, वक्ता अविकल रूप से दोनों अर्थों को एक ही शब्द से अभिधा-वृत्ति के द्वारा उपस्थित कराना चाहता हो। श्लेष का यही चमत्कार है कि उसमें दोनों अर्थ एक शब्द से इस प्रकार चमकें, जैसे एक गुच्छे में जुड़ दो फल। इस श्लेष के प्रकरण में कहीं तो शब्द एक ही रूप से दोनों अर्थों का ज्ञान कराता है और कहीं उसके किसी अंश को थोड़ा तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है। पहली दशा को अभंग और दूसरी को सभंग कहते हैं। "राजा और सूर्य कर के द्वारा जगत् को जीवन-दान करते हैं" यह श्लिष्ट वाक्य है। इसमें 'कर' और 'जीवन' पदों में श्लेष है। 'कर' का अर्थ है किरण और टैक्स, एवं 'जीवन' शब्द का अर्थ है पानी और प्राण अथवा जीवनोपयोगी सामान। राजा टैक्स के द्वारा जगत् की प्राण-रक्षा करता है, अर्थात् लोगों को जीवन के उपयोगी—विद्या तथा पालन-पोषण आदि के सामान पहुँचाता है, और सूर्य किरणों के द्वारा पृथ्वी के जल को खींचकर फिर उसे बादलों के रूप में पहुँचाता है, एवं उससे भरण-पोषण की सामग्री पैदा करता है। "अच्छा ऋषि और बुरा राजा कुशासन से प्रेम करता है"—यह भी श्लिष्ट वाक्य है। यहाँ 'कुशासन' शब्द में श्लेष है। अच्छा ऋषि कुश के आसन (कुशासन) से प्रेम करता है, और बुरा राजा कुत्सित शासन (कुशासन) से प्रेम करता है। यह सभंग श्लेष कहाता है। इसमें एक जगह 'कुश—आसन' ऐसा पदच्छेद किया गया और दूसरी जगह 'कु—शासन' ऐसा माना गया। इस प्रकार के शब्दों का अर्थ करते समय लोग 'पक्ष' शब्द से काम लेते हैं, जैसे उक्त वाक्य की टीका करते समय कोई लिख सकता है कि राजा के पक्ष में 'कुत्सित शासन' अर्थ है और ऋषि के पक्ष में 'कुश का आसन।' संस्कृत में भी इसी प्रकार टीकाकार लोग लिखते हैं—"राजपक्षे कुत्सितं शासनम्, ऋषिपक्षे कुशस्य आसनम् इति च्छेदः"

इससे स्पष्ट है कि श्लिष्ट पदों का अर्थ करते समय या तो 'और' शब्द से काम लिया जाता है या 'पक्ष' शब्द से। संस्कृत में 'च' और 'पक्षे' का प्रयोग होता है। क्यों? इसलिये कि श्लेष में दो अर्थों का समुच्चय प्रतीत होता है। दोनों अर्थ एक साथ उपस्थित होते हैं। उन दोनों का साहचर्य-बोधन करने के लिये किसी ऐसे शब्द की आवश्यकता होती है, जो समुच्चय का बोधक हो। ऐसे शब्द 'च' 'और' इत्यादिक हैं। 'पक्षे' कहने से भी वही बात सिद्ध होती है।

'सूर्य और सरस्वती जाड्य दूर करते हैं', इस वाक्य में जाड्य का अर्थ है शीत 'और' अज्ञान। इसे यों भी कह सकते हैं कि सूर्य के पक्ष में जाड्य का अर्थ है शीत और सरस्वती के पक्ष में उसका अर्थ है अज्ञान।

"पीपर तर मति जाइए दुहुँकुल आवति लाज", यहाँ 'पीपर' का अर्थ है पीपल का वृक्ष और 'पीपर' पराया प्रिय अर्थात् परपुरुष। कोई स्त्री यदि पीपल के वृक्ष के नीचे चली जाय, तो उसके दोनों कुलों में लाज आने का कोई कारण नहीं; अतः यहाँ संकेत-स्थल का पीपल और परपुरुष, दोनों ही श्लिष्ट हैं। इन दोनों का अभिधा-वृत्ति के द्वारा ही बोध होता है।

जहाँ अभिधा-वृत्ति किसी कारण से एक ही अर्थ में रुक जाय, और उसके रुकने पर भी दूसरा अर्थ झलकता रहे, वहाँ शब्द-शक्ति-मूलक ध्वनि मानी जाता है। अभिधा के रुक जाने पर भी जो दूसरा अर्थ प्रतीत होता है, वह व्यंजना-वृत्ति के द्वारा उपस्थित होता है। इस प्रकार के अर्थ को ध्वनित, व्यंजित, भासमान, प्रतीयमान या झलकता हुआ कहा जाता है। यह मुख्य अर्थ नहीं होता। मुख्य अर्थ वही होता है, जो अभिधा-वृत्ति के द्वारा उपस्थित हो। मुख्योऽर्थोऽभिधया बोध्यः—यह नियम है। मुख्य अर्थ को झलकता हुआ नहीं कहा जाता; क्योंकि वह पूरे रूप से सामने आता है। झलकता हुआ उसी को कहा जाता है, जिसकी ज़रा-सी छाया-मात्र देख पड़। जैसे—

'कवि सुंदर कोप नहीं सपने'

पतिप्राणा नायिका का वर्णन करते हुए उक्त वाक्य कहा है, अतः प्रकरणवश उसका सीधा अर्थ यही है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न में भी क्रोध न होना पतिव्रता का चिह्न है, परंतु यहाँ एक दूसरा अर्थ भी झलकता है। 'कोप' शब्द के पहले अक्षर को पूर्व शब्द के साथ और दूसरे अक्षर को अगले शब्द के साथ मिलाकर पढ़िए, तो एक ऐसा अर्थ प्रतीत होगा, जो कवि को हर्गिज़ अभीष्ट नहीं। जैसे—

'कवि सुंदर को पनहीं सपने'

कवि सुंदर अपने लिये स्वप्न में पनहीं (जूती) पाने का वर्णन करने इस पद्य में बैठे हैं, यह कोई नहीं मान सकता। उनके वर्णन का प्रकरण इस अर्थ को रोक देता है, अतः अभिधा-वृत्ति के द्वारा इस अर्थ की उपस्थिति नहीं हो सकती, व्यंजना के द्वारा होती है। इसी से यहाँ श्लेष भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यहाँ जो दूसरा अर्थ प्रतीत होता है वह वक्ता को अभीष्ट नहीं। श्लेष वहीं होता है, जहाँ वक्ता दोनों अर्थों का समान रूप से—अभिधा-वृत्ति के द्वारा—बोध कराना चाहता हो। जैसे—

"दुःख तम दूरि भए मित्र के उदय तें।"

'मित्र' का अर्थ है सूर्य और सखा। ये दोनों यहाँ वक्ता को अभीष्ट हैं। सूर्य के उदय से दुःखदायी तम (अंधकार) दूर हुआ और सखा के उदय (उत्कर्ष) से दुःखरूप तम दूर हुआ। यह श्लेष है।

"श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधान श्लेष इष्यते।"

अनेकार्थक पदों से जहाँ कई अर्थों का 'अभिधान' अभिधा-वृत्ति के द्वारा (व्यंजना के द्वारा नहीं) बोधन हो, वहाँ श्लेष होता है।

"शब्दैः स्वभावादेकार्थैः श्लेषाऽनेकार्थवाचनम्।"

अनेक अर्थों के वाचन=अभिधान अर्थात् अभिधा-वृत्ति के द्वारा बोधन में श्लेष होता है। ये दोनों लक्षण साहित्य-दर्पण के ही हैं। पहला शब्द-श्लेष का है, दूसरा अर्थ-श्लेष का। दूसरे लक्षण की व्याख्या में मूलग्रंथकार ने लिखा है—"वाचनम् इति ध्वनेः" (व्यवच्छेदः) अर्थात् 'वाचनम्' = अभिधान से ध्वनि का व्यवच्छेद होता है। दोनों अर्थ अभिधा के द्वारा उपस्थित होने चाहिए, तभी श्लेष होता है। यदि दो में से एक ध्वनित हुआ—व्यंजना या ध्वनि के द्वारा उपस्थित हुआ—तो श्लेष नहीं होगा।

इन दोनों श्लेषों के उदाहरणों की टीका करते हुए श्रीतर्कवागीशजी ने सब जगह 'पक्षे' या 'च' शब्द कह-कर व्याख्या की है। संस्कृत-साहित्य को आदि से अंत तक देख जाइए, श्लेष के प्रकरण में समुच्चय के बोधक इन्हीं शब्दों के द्वारा की हुई व्याख्या मिलेगी। समुच्चय ही श्लेष का प्राण है। जहाँ यह न होगा, वहाँ श्लेष भी न होगा। एक ही शब्द से जहाँ दो अर्थ समान रूप से उपस्थित होंगे, वहाँ यह होगा, अन्यथा नहीं।

सिर्फ़ दो अर्थ प्रतीत होने से ही श्लेष नहीं हो जाता। यदि दोनों अभिधा से बोधित नहीं हैं, तो—"कवि सुंदर कोप नहीं सपने" इत्यादि में—श्लेष न होगा। इसी प्रकार दो अर्थ विकल्प और संशय में भी प्रतीत होते हैं; परंतु वहाँ श्लेष नहीं होता। कहीं अँधेरे-उजेले में सामने किसी चीज़ को देखकर आपके मन में संदेह हुआ कि "यह खंभा है या आदमी", तो इसे श्लेष का स्थल नहीं कह सकते। "भागनेवाला या तो देवदत्त है या यज्ञदत्त", "कमरे से घड़ी चुरानेवाला या तो विष्णुमित्र है या शिवदत्त" इत्यादिक वाक्यों में भी दो वस्तुएँ उपस्थित होती हैं; लेकिन इसे श्लेष का स्थल नहीं कह सकते। यहाँ वक्ता का तात्पर्य दोनों वस्तुओं को उपस्थित करने में नहीं है। वह एक ही को बताना चाहता है; लेकिन वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि उसकी अभीष्ट वस्तु इन दो में से कौन-सी है, इसीलिये वह दो वस्तुओं का उल्लेखमात्र करता है। यह संभव नहीं कि जिस वस्तु को आप सामने देखकर खंभा और पुरुष का संदेह कर रहे हैं, वह खंभा भी हो जाय और पुरुष भी हो जाय। है तो वह कोई एक ही। लेकिन आप यह निश्चय नहीं कर पाते कि वह इन दोनों में से क्या है, इसीलिये दो शब्दों का निर्देश करते हैं। यदि आपको यह देख पड़े कि सामने खड़ी हुई उसी चीज़ के ऊपर कौआ आकर बैठ गया, तो आपको निश्चय हो जायगा कि यह पुरुष नहीं, खंभा है। और, यदि वही चीज़ हिलने-डुलने लगे तो आप उसे पुरुष समझ लेंगे। संशय और विकल्प में जो दो वस्तुएँ उपस्थित होती हैं, वे उसी समय तक स्थिर रहती हैं, जब तक किसी के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिले। यदि एक के विरुद्ध कोई प्रमाण मिला, तो दो में से एक ही रह जाती है, दूसरी चल देती है। श्लेष में यह बात नहीं होती। वहाँ वक्ता का तात्पर्य ही दो वस्तुओं से होता है, अतएव आदि से अंत तक दोनों वस्तु स्थिर रहती हैं, कोई हटती नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि किसी ने कहा कि "स्थाणुर्दृष्टः", तो अब आपको संदेह होगा कि यहाँ कहनेवाले का तात्पर्य खंभे से है या शिव से। 'स्थाणु' दोनों को कहते हैं। यदि आपको कोई ऐसा प्रमाण मिल गया, जिससे इन दोनों में से किसी एक का निश्चय हो सके, तब तो आप उसी का नाम लेंगे; परंतु यदि कोई निर्णायक हेतु न मिला, तो आप इसकी व्याख्या करते हुए लिखेंगे, "शिव अथवा स्थाणु।" यदि किसी ने कहा, "सैंधव लाओ", तो अब सुननेवाला देखेगा कि कहनेवाला भोजन कर रहा है, तब तो वह नमक लाएगा और यदि देखेगा कि वक्ता जाने को तैयार है, तो घोड़ा लाएगा।

आपको यदि यह न मालूम हो कि यह वाक्य किस प्रकरण का है, तो आप इसका अर्थ करेंगे—नमक अथवा घोड़ा। मतलब यह कि जहाँ श्लेष होता है, वहाँ समुच्चय होने के कारण व्याख्या में 'च' 'पक्षे' या 'और' शब्द लिखे जाते हैं; परंतु विकल्प तथा संशय के स्थल में 'अथवा' 'यद्वा' 'किंवा' और 'या' आदि शब्दों से काम लिया जाता है।

सारांश यह कि१—श्लेष तब तक नहीं होता, जब तक दोनों अर्थ मुख्य न हों। यदि एक अर्थ गौण और एक मुख्य होगा, तो श्लेष नहीं हो सकता। २—श्लेष की व्याख्या में टीकाकार लोग 'च' 'पक्षे' आदि शब्दों से काम लेते हैं। ३—यदि कहीं 'यद्वा' 'किंवा' 'अथवा' आदि शब्द हों, तो उसे विकल्प या संशय समझना चाहिए। यह श्लेष का स्थल नहीं हो सकता। श्लेष केवल समुच्चय में होता है, विकल्प और संशय में नहीं।

साहित्य-दर्पण में जो मंगलाचरण है, उसका भावार्थ है कि शरद् ऋतु के चंद्रमा के समान सुंदर दीप्तिवाली सरस्वती देवी हमारे अंतःकरण का अंधकार दूर करके प्रकाश करें।

"शरदिन्दुसुन्दररुचिश्चेतसि सा मे गिरां देवी;
अपहृत्य तमः सन्ततमर्थानखिलान्प्रकाशयतु।"

श्रीतर्कवागीशजी ने भी इस पद्य का अर्थ सरस्वती-परक किया है। 'गिरां देवी' का अर्थ है वाणी की देवता, जो केवल सरस्वती का ही बोधक है। यही बात "गिरां देवी इत्यनेन सरस्वत्या उपन्यासः" लिखकर सरस्वती-परक अर्थ को बिलकुल समाप्त कर देने के बाद श्रीतर्कवागीशजी ने लिखा है—"अथवा देवी दुर्गा मम गिरामर्थान् व्युत्पित्सूनां हृदये प्रकाशयतु।" जिसने अलंकार-शास्त्र का ककहरा भी किसी गुरु से पढ़ा है, जो बिना किसी से पढ़, साहित्य-ग्रंथों के पन्ने इधर-उधर से स्वयं उलटकर, 'साहित्य-स्वयंभू' नहीं बन गया है, वह सिर्फ़ 'अथवा' शब्द को देखकर ही समझ लेगा कि यहाँ विकल्प किया जा रहा है। श्रीतर्कवागीशजी दुर्गा-परक अर्थ को विकल्प के रूप में उपस्थित कर रहे हैं, समुच्चय के रूप में नहीं। यदि उन्हें समुच्चय अभीष्ट होता, तो 'च' शब्द का प्रयोग करते और 'सरस्वती दुर्गा च' ऐसा लिखते, अथवा 'सरस्वतीपक्षे' और 'दुर्गापक्षे' कहकर व्याख्या करते। 'अथवा' शब्द कभी न लिखते। आप संपूर्ण संस्कृत-साहित्य को आदि से अंत तक देख जाइए, ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा, जहाँ श्लिष्ट अर्थों में से किसी एक का संपूर्ण वर्णन समाप्त कर देने के बाद 'अथवा' कहकर दूसरे अर्थ की व्याख्या आरंभ की गई हो।

अब श्रीवाजपेयीजी के साहित्यिक ज्ञान की बानगी देखिए। हमने श्रीतर्कवागीशजी के इस दूसरे अर्थ में आठ-सात दोष दिखाए हैं। इस पर बिगड़कर आप हमें शिक्षा देते हुए फ़र्माते हैं—"आपको मालूम होना चाहिए कि श्लेष द्वारा अनेक अर्थ करने में मुख्य अर्थ के अतिरिक्त अर्थ करने में, ये सब दोष प्रायः होते ही हैं" इत्यादि। वाजपेयीजी इस पद्य में, श्लेष समझ रहे हैं। जहाँ 'अथवा' कहकर विकल्प किया गया है, वहाँ आपकी राय में श्लेष है? यदि कोई कहे कि सामने पड़ी वस्तु या तो रस्सी है या साँप है, तो आपकी समझ में यह श्लेष हो सकता है, बशर्ते कि एक ही शब्द से दो अर्थ प्रतीत होते हों। यदि किसी वक्ता के शब्दों में अन्यतर अर्थ का निर्णायक हेतु न मिलने के कारण व्याख्याकार दोनों अर्थों को विकल्प के रूप में रख दे, तो श्रीमानूजी उसे 'श्लेष' समझेंगे!!! यदि किसी ने कहा कि 'सैंधव लाओ' और सुननेवाले ने मन में सोचा कि नमक लाऊँ अथवा घोड़ा लाऊँ, तो श्रीवाजपेयीजी उसे श्लेष समझेंगे। यही आपका साहित्यज्ञान है।

हम बता चुके हैं कि श्लेष में दोनों अर्थ अभिधा-वृत्ति के द्वारा ही उपस्थित होते हैं, अतः दोनों ही मुख्य होते हैं। मुख्य अर्थ उसी को कहते हैं, जो अभिधा-वृत्ति के द्वारा बोधित हो, परंतु वाजपेयीजी ने पूर्वोक्त वाक्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है—"श्लेष द्वारा...मुख्य अर्थ के अतिरिक्त अर्थ करने में" आप समझते हैं कि श्लेष में एक अर्थ मुख्य होता है और दूसरा गौण! आपको अभी तक यह नहीं मालूम कि श्लेष में दोनों अर्थ वाच्य होने के कारण मुख्य होते हैं। आप यह भी नहीं जानते कि यदि एक अर्थ गौण हो गया, तो फिर वहाँ श्लेष का नाम-निशान तक न रहेगा। आपका कहना है कि "तर्कवागीशजी ने दूसरा अर्थ इसलिये किया है कि शरदिन्दुसुन्दररुचिः—इस मुख्य श्लिष्ट पद में यह दूसरा अर्थ झलकता है।" किसी साहित्यज्ञ के मुँह से ऐसी अनर्गल बात कदापि नहीं निकल सकती। इस प्रकार की बातें वे ही लोग किया करते हैं, जो थोड़ा-बहुत व्याकरण पढ़ने के बाद, विना किसी गुरु की सेवा किए, अपने-आप किसी साहित्य-ग्रंथ के पन्ने उलटने लगते हैं और विभक्तियों के सिर पर पैर रख-रखकर, केवल व्याकरण के बल पर, साहित्यसंदर्भों का अर्थ किया करते एवं इतने ही से अपने को साहित्य-स्वयंभू समझने लगते हैं। श्लेष में दूसरा अर्थ 'झलकता' नहीं, बल्कि पहले अर्थ के कंधे-से-कंधा मिलाकर समान रूप से सामने खड़ा होता है। जहाँ 'झलकता है', वहाँ सौ-सौ कोस तक श्लेष का गंध भी नहीं होता और जहाँ श्लेष होता है, वहाँ झलकने की बात कहना भी ग्राम्यता समझा जाता है।

संशय तथा विकल्प के प्रकरण में यदि किसी पक्ष के विरुद्ध प्रमाण मिले, तो वह पक्ष छोड़ दिया जाता है। उस दशा में केवल एक ही पक्ष रह जाता है, परंतु श्लेष में अंत तक दोनों पक्ष क़ायम रहते हैं, वहाँ कोई पक्ष कभी छूटता नहीं, यह बात हम कह चुके हैं। यदि आपको सामने की किसी चीज़ में संदेह हुआ कि यह खंभा है या पुरुष, और उस समय किसी दूसरे ने बताया कि देखिए, उस पर कौआ बैठा है, तो आपको निश्चय हो जायगा कि वह खंभा ही है। उस समय "खंभा है अथवा पुरुष" इस ज्ञान में से पुरुष सदा के लिये हट जायगा, केवल खंभा रह जायगा। श्रीतर्कवागीशजी ने जो दुर्गापरक अर्थ किया है, उसमें हमने कई दोष दिखाकर यह बताया था कि यहाँ इस विकल्प में दूसरा अर्थ अभीष्ट नहीं है। "सैंधव लाओ" इस वाक्य को सुनने पर यदि कोई संदेह करे कि मैं क्या लाऊँ और दूसरा उसे बता दे कि कहनेवाला यात्रा के लिये कपड़े बदल रहा है, तो यहाँ से एक अर्थ (नमक) हट जायगा, सिर्फ़ घोड़ा रह जायगा। लेकिन वाजपेयीजी महाराज की आज्ञा है कि यहाँ श्लेष के द्वारा दोनों अर्थ बोधित किए जा रहे हैं, अतः नमक भी लाना चाहिए। जब आपसे कहा जाता है कि यात्रा के समय नमक लाना आवश्यक नहीं, बल्कि उलटा अमंगल करनेवाला है, तब आप फ़र्माते हैं कि "श्लेष के द्वारा दूसरा अर्थ करने में ये दोष हुआ ही करते हैं।" आपका मतलब है कि यात्रा के कारण घोड़ा मुख्य अर्थ है सही, परंतु श्लेष के कारण सैंधव नमक की एक शिला भी वहाँ अवश्य रख देनी चाहिए। यदि कोई कहे कि नमक तो यहाँ प्रकरण-विरुद्ध है, तो आप कहेंगे—"इन मामूली दोषों की तो बात ही क्या, श्लेष में तो बड़े-बड़े भीषण दोष भी दोष नहीं माने जाते।" यही आपका साहित्य-ज्ञान है।

आप अपने अज्ञान के कारण विकल्प के सिर पर ज़बर्दस्ती श्लेष चढ़ाए देते हैं, और फिर उस पर आनेवाले दोषों से बचने के लिये उसी निर्मूल श्लेष का बेजा सहारा ले रहे हैं। आपकी राय में श्लेष में बड़े-बड़े भीषण दोष भी नगण्य हैं। आप समझते हैं, श्लेष के नाम पर सौ-सौ ख़ून माफ़ हैं। आपका ख़याल है कि श्लेष का नाम लेकर चाहे जो कुछ अनर्गल प्रलाप कर जाय, कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं। अब आपकी बातें आप ही के श्रीमुख से सुनिए—"मुख्य अर्थ के अतिरिक्त अर्थ करने में ये सब (?) दोष प्रायः होते ही हैं, और ऐसी दशा में उन्हें दोष नहीं गिना जाता।.....श्लेष द्वारा दूसरा अर्थ करने में ऐसे कितने ही दोष आ जाते हैं; परंतु वे दोष वहाँ दोष नहीं माने जाते। इन मामूली दोषों की तो बात ही क्या है, श्लेष में तो 'निहतार्थत्व' और 'अप्रयुक्तत्व'-जैसे भीषण दोष भी दोष नहीं माने जाते।" इत्यादि।

जैसे किसी को छाया में भूत का भ्रम हो जाय, और वह उस पर अनाप-शनाप प्रहार करता जाय, लेकिन छाया का कुछ बिगड़ता न देखकर झख मारकर कुछ बड़बड़ाता हुआ बैठ जाय, ठीक वही हाल वाजपेयीजी महाराज का है। आप विकल्प को श्लेष समझकर अपनी कसरत दिखाने लगे हैं, और पूरी मुहरनी का पाठ कर गए हैं। जब थक गए, तो बोले—"देखिए, साहित्य-दर्पण का फ़ैसला लीजिए—स्यातामदोषौ श्लेषादौ निहतार्थाप्रयुक्तते" आपने किसी सद्गुरु से साहित्य-शास्त्र पढ़ने का कष्ट तो शायद उठाया नहीं, फिर आपको यह कौन समझाए कि जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप श्लेष समझ रहे हैं, वहाँ श्लेष का 'छायावाद' तक नहीं है।

यह ठीक है कि साहित्य-शास्त्र में कुछ दोष नित्य माने जाते हैं और कुछ अनित्य। परंतु इन सबकी दूषकता का बीज अलग-अलग होता है और उसी के आधार पर यह निश्चय किया जाता है कि अमुक दोष को नित्य क्यों माना जाता है और दूसरे को अनित्य क्यों बताया जाता है। इसी बीज के आधार पर यह निर्णय होता है कि अमुक दोष को अमुक अवसर पर दोषत्व क्यों नहीं है। श्लेष में 'निहतार्थत्व' और 'अप्रयुक्तत्व' को क्यों छोड़ा जाता है, इसका निर्णय भी उसी बीज के अनुसार होता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि श्लेष में च्युत-संस्कारत्व आदि सभी दोषों की रोक नहीं है। किसी ग्रंथ-कार ने उक्त दोनों दोषों को 'भीषण' भी नहीं बताया है, न यही कहा है कि इनके सिवा और भी सब छोटे-मोटे दोष यहाँ क्षम्य हैं। पूर्वोक्त दूषकता-बीजों के आधार पर ही सब लोग निर्णय करते आए हैं; परंतु इन बीजों का पता उसी को चलता है, जिसने किसी सांप्रदायिक साहित्यज्ञ गुरु की सेवा में रहकर विधिपूर्वक साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया है। 'साहित्यस्वयंभू' महाशयों को इनका पता नहीं लगा करता। इसी से ये लोग इसी तरह भटका करते हैं। वाजपेयीजी महाराज ने 'निहतार्थत्व' और 'अप्रयुक्तत्व' दोषों को 'भीषणता' का स्वयं-प्रसूत सार्टीफ़िकेट देकर श्लेष में अन्य सभी दोषों को क्षंतव्य बताने की विफल चेष्टा की है।

श्रीतर्कवागीशजी ने साहित्य-दर्पण के मंगलाचरण को दुर्गा-परक लगाते हुए 'शरदिन्दुसुन्दररुचिः' इस पद का अर्थ किया था—शिव में अभिलाष रखनेवाली—शरदिंदु से सुंदर अथवा शरदिंदु (शरद् ऋतु के चंद्रमा) के समान सुंदर (शिव) में रुचि (अभिलाष) रखने-वाली। 'शरदिन्दुना सुन्दरे शरदिन्दुवत्सुन्दरे वा रुचिर्यस्याः' इस पर हमने लिखा है कि शिवजी के सिर पर जो चंद्रमा है, वह किसी ऋतु विशेष का नहीं; वह सदा एकरस रहता है। उसे शरद् या वसंत का नहीं कहा जा सकता। यदि मूल ग्रंथकार का शिव से भी तात्पर्य होता, तो वे केवल 'इन्दु सुन्दर' पद लिखते, जिससे सरस्वती (चंद्र के समान सुंदर) और शिव (चंद्र-कला से सुंदर) दोनों अर्थ निर्बाध निकल सकते थे। यहाँ 'शरत्' शब्द का रखना ही सूचित करता है कि ग्रंथकार का यहाँ दुर्गा या शिव से तात्पर्य नहीं है। हमने इस प्रकार के एक-दो नहीं, आधे दर्जन से भी अधिक हेतु देकर यह सिद्ध किया है कि इस मंगलाचरण में दुर्गा-परक अर्थ का जो विकल्प श्रीतर्क-वागीशजी ने किया है, वह ठीक नहीं, परंतु वाजपेयीजी महाराज इस विकल्प को समझे ही नहीं। न आप यही समझे कि विकल्प में यदि एक पक्ष के विरुद्ध प्रमाण मिल जाय, तो वह हट जाता है, सिर्फ़ एक ही पक्ष रह जाता है। आप समझे तो यह समझे कि यहाँ श्लेष है !! और एक ही साँस में श्लेष की पूरी 'बाराखड़ी' सुना गए। आपकी आज्ञा कि "शरदिन्दुसुन्दररुचिः" इस मुख्य श्लिष्ट पद में [illegible] अर्थ (दुर्गा-परक) झलकता है" यह पद श्लिष्ट [illegible] न हो, श्लेष का यहाँ कोई प्रसंग हो या न हो, मुख्य-गौण अर्थों में श्लेष को स्थान मिलता हो या न मिलता हो, किसी दूसरे अर्थ के 'झलकने'-मात्र से साहित्य-शास्त्र में श्लेष का स्थल माना हो या न माना हो, परंतु कम-से-कम 'माधुरी' के आज्ञाकारी भक्तों को वाजपेयीजी की आज्ञा का पालन विना 'ननु-नच' के करना ही पड़ेगा।

हमने जो सब हेतु दूसरे अर्थ के बाधक रूप में दिए थे, उन्हें आपने श्लेष का नाम लेकर एक ही फूँक में उड़ा दिया। उन पर विचार करने से आपको कुछ मतलब नहीं। आपको मतलब है सिर्फ़ हमें कोसने से और इस काम को आपने पूरी तत्परता से अंजाम दिया है।

श्रीवाजपेयीजी महाराज की घोषणा है कि "मैं एक नहीं, सैकड़ों और हज़ारों श्लोक ऐसे उपस्थित कर सकता हूँ, जिनका श्लेष द्वारा दूसरा अर्थ करने में ऐसे कितने ही दोष आ जाते हैं, परंतु वे दोष वहाँ दोष नहीं माने जाते।"

हम माने लेते हैं कि आप 'हज़ारों' नहीं लाखों, करोड़ों, बल्कि अरबों श्लोक ऐसे सुना सकते हैं, जिनमें श्लेष के कारण सब ख़ून माफ़ हों। आप अपने श्रीमुख से श्लेषों का फ़व्वारा छोड़ सकते हैं, शायद श्लेषों की ज्वालामुखी का विस्फोट भी उगल सकें, यह सब कुछ हो सकता है, परंतु श्लेष है किस चिड़िया का नाम, इसका ज्ञान श्रीमान् को अब तक नहीं है। यदि होता, तो आपके इस प्रथम ग्रास में ही यह मक्षिका-पात न हुआ होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि किसी ने 'जल' का अर्थ पानी किया है और हमने भी वैसा ही किया, तो आप बेतहाशा 'चोरी-चोरी' का शोर मचाने लगे हैं। जिस बात को अशुद्ध बताकर हम उसका खंडन कर रहे हैं, उसे भी आप 'चोरी-चोरी' कहकर नग्न-नृत्य दिखाने लगे हैं। हम इस प्रकार की मनोवृत्ति को ला-इलाज समझते हैं। जो वस्तुतः पागल हो, उसका इलाज किया जा सकता है; परंतु जो जान-बूझकर पागल का अभिनय कर रहा हो उसका क्या इलाज ?

साहित्य की ही नहीं, व्याकरण की अशुद्धि दिखाने की भी वाजपेयीजी ने हिम्मत की है। एक जगह हमने केवल इतना ही लिखकर छोड़ दिया था कि यहाँ समास नहीं हो सकता। इस पर आप इतने बिगड़े हैं कि कई पृष्ठों तक बिगड़ते ही चले गए। मगर बात सिर्फ़ इतनी ही कही कि हमने समास न हो सकने का कारण क्यों नहीं बताया ? वाजपेयीजी महाराज का व्याकरण-ज्ञान वैसा ही मालूम होता है, जैसा कि पंजाब के अधिकांश शास्त्रियों का हुआ करता है, जो लघुकौमुदी पढ़ाते समय भी लंबी-लंबी हिचकियाँ लेने लगते हैं। यदि आप व्याकरण का समास-प्रकरण (लघुकौमुदी का नहीं, सिद्धान्तकौमुदी और उसके टीका-ग्रंथों का) किसी गुरु से पढ़ने का कष्ट उठाएँ, तो आपको मालूम हो सकेगा कि हमें समास का ज्ञान है या नहीं। आपने लिखा है कि आप एक बार आदि से अंत तक हमारी लिखी टीका बाँच गए हैं; परंतु यह टीका लिखते समय हमें यह ध्यान नहीं था कि इसे 'एक बार बाँचकर' ही लोग अपने को इसका विशेषज्ञ समझने लगेंगे, और जहाँ नहीं समझेंगे, वहाँ हमारे ऊपर आक्रमण करने का भी दुःसाहस करेंगे।

अनेक लोग ऐसे होते हैं, जो उलटा-सीधा व्याकरण पढ़ने के बाद स्वयं पुस्तकें देखकर साहित्यज्ञ भी बन जाते हैं, और साहित्य की छाती में कीलें ठोंकना शुरू कर देते हैं। बहुत-से ऐसे भी होते हैं, जो थोड़ा-बहुत दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करके उसी के बल से साहित्य की छाती पर भी कोदों दलना शुरू कर देते हैं। ऐसे लोगों की कैसी दुर्गति होती है, पद-पद पर इनके विचार कैसे पथ-भ्रष्ट होते हैं और इनकी बेजा उछल-कूद से साहित्य-सरोवर किस प्रकार गंदा होता है, इत्यादि बातों को जो जानना चाहे, उसे 'माधुरी' की इस लेखमाला में आदि से अंत तक भरपूर मसाला मिल सकता है।

श्रीयुत वाजपेयीजी ने अपनी इस लेखमाला में पद-पद पर हमें ज्ञानोपदेश दिया है, क़दम-क़दम पर झिड़कियाँ सुनाई हैं, स्थान-स्थान पर हमारी खिल्ली उड़ाई है, और ठहर-ठहरकर बड़े गर्जन-तर्जन के साथ हमारी भर्त्सना भी की है। और यह सब किया किसके बल पर? इसी साहित्य-ज्ञान के बल पर, जिसका नमूना आप देख रहे हैं !!!

हमें न तो प्रकृत वाजपेयीजी महाराज से कोई स्पर्द्धा है, न आपके लेख का प्रतिवाद करने की इच्छा है, और न हम आपकी प्रत्येक अनर्गल बात का उल्लेख करके किसी प्रतिष्ठित पत्रिका का कलेवर ही कलुषित करना चाहते हैं। हमने आपकी सबसे प्रथम और सर्व-प्रधान बात की असंगति भी इस नियत से हर्गिज़ नहीं दिखाई है। हमारा मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि अपनी सर्व-शिरोमणि बात की निःसारता देखकर शायद आपकी समझ में यह बात आ सके कि अभी आपको किसी अच्छे साहित्यज्ञ गुरु के पास रहकर साहित्य-शास्त्र का मर्म समझने की बहुत-कुछ आवश्यकता है, और इसके पहले आपका किसी ऐसे ग्रंथ पर अनुचित आक्रमण कर बैठना, जिसका समझना आपकी समझ से बहुत दूर की बात हो, विचारवानों की दृष्टि में धृष्टता-मात्र समझा जायगा।

साहित्य-दर्पण की इस टीका को लिखने के समय हम हरिद्वार के ऋषिकुल में थे, और वहीं हमारे परम मित्र, न्यायाचार्य, व्याकरण-शास्त्री, महामहोपाध्याय श्री पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी भी उन दिनों मौजूद थे। सबसे प्रथम हमने तर्कवागीशजी के खंडन आदि के स्थल उन्हीं को सुनाए। परंतु यह काम ऐसा नहीं था कि मित्र-मंडली के संतोष से ही हम अपने को कृतकृत्य समझ लेते, अतः हमने अपने परम श्रद्धास्पद गुरु, सर्व-तंत्र स्वतंत्र श्री पं० काशीनाथजी शास्त्री के सामने ये अंश पेश किए। आपकी आज्ञा से ही हमने संस्कृत में टीका लिखने का विचार छोड़कर इसे हिंदी में लिखा था। आप प्राचीन आचार्यों के परम पक्षपाती हैं। 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया" के सच्चे समर्थक हैं। आप कहा करते हैं कि आजकल के लोगों की वृत्तियाँ बहिर्मुख रहती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः इनके विचार अस्थिर हुआ करते हैं। प्राचीन आचार्य अंतर्मुख वृत्तिवाले थे, और बहुत सोच-समझकर कुछ कहते थे, अतः उनकी बात पर ख़ूब विचार किए बिना उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहिए। आपकी इसी मनोवृत्ति के कारण एक-एक बात पर आपसे कई-कई दिन विचार चलता रहा। अंत में अत्यंत छान-बीन और गंभीर-से-गंभीर विचार करने के बाद आपने अपनी राय दी कि "तर्कवागीशजी की फक्किकाओं का खंडन युक्ति-युक्त और प्रमाण-संगत हुआ है" इत्यादि। जहाँ कहीं हमें ग्रंथ-ग्रंथियों को सुलझाने में कठिनता पड़ती थी, वहाँ आप ही की कृपा से हम उन्हें समझ पाते थे। आपकी अनुकूल सम्मति पाने के बाद हमें कुछ संतोष हुआ कि हमने तर्कवागीशजी का खंडन ठीक किया है।

इसके बाद छपाने से पहले हम इस टीका को लेकर काशी गए। उन दिनों हमारे साहित्य-गुरु, महामहोपाध्याय, प्रातःस्मरणीय श्री पं० गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई० का स्वर्गवास हो चुका था, अतः हम अपने परमपूज्य गुरु, महामहोपाध्याय, भारत-भास्कर श्री पं० शिवकुमार शास्त्री के पास पहुँचे। विद्यार्थि-दशा में हम आप ही के मकान पर रहा करते थे। आपकी हमारे ऊपर विशेष कृपा थी, अतः हमें आपको टीका सुनाने में विशेष असुविधा नहीं पड़ी। आपने भी बहुत-कुछ विचार करने के बाद तर्कवागीशजी के खंडनों को तो ठीक बताया, परंतु साथ ही यह भी कहा कि इस प्रकार की टीका संस्कृत में ही होनी चाहिए, हिंदी में इसका गौरव नहीं। हमने अपने इन दोनों आराध्यपाद गुरुवरों की सम्मतियाँ साहित्य-दर्पण की पुस्तक में अविकल उद्धृत कर दी हैं।

इतना काम कर चुकने के बाद हमारी धारणा हुई कि अब हमारे लेख पर उँगली उठाना कठिन काम है, अतः पुस्तक छपने को दे दी। छप जाने के बाद फिर हमने एक बार इसकी अग्नि-परीक्षा की। बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान्, साहित्य-शास्त्र के धुरंधर ज्ञाता श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य महाशय के पास इसे समालोचनार्थ भेजा। आप श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की 'विश्वभारती' में संस्कृत-विभाग के प्रधान हैं। उन दिनों भी वहीं थे।

यह बात सभी जानते हैं कि बंगालियों में प्रांतीयता का भाव बहुत अधिक होता है। वे लोग एक बंगाली के आगे किसी दूसरे की प्रतिष्ठा बढ़ते नहीं देख सकते। और फिर यदि किसी भिन्न प्रांतवासी के कारण बंगाल के एक सर्वमान्य विद्वान् की प्रतिष्ठा कम होती हो, तब तो वे लोग प्राण-पण से उसके परिहार की चेष्टा करते हैं। हमारी धारणा थी कि हमारे किए हुए श्रीतर्कवागीशजी के खंडनों में यदि कहीं तिल रखने को भी जगह मिलेगी, तो भट्टाचार्यजी उसका प्रतिवाद करने के लिये अपनी जान लड़ा देंगे।

कई महीने बाद जून, सन् २२ के माडर्न रिव्यू में श्रीभट्टाचार्यजी ने इस टीका की आलोचना करते हुए स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि तर्कवागीशजी का खंडन सफलतापूर्वक हुआ है और जो दोष दिखाए गए हैं वे युक्ति-संगत हैं इत्यादि।

इसके बाद काशी आदि स्थानों में जो स्थान इस टीका ने प्राप्त किया और तीन-चार युनिवर्सिटियों की एम्० ए० (हिंदी की) परीक्षा में यह स्वीकृत हुई, इत्यादि बातों का उल्लेख करना व्यर्थ है।

इस दशा में अब श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी-जैसे जीवों की तो गिनती ही किसमें है, जिन्हें अभी तक 'श्लेष' के समान मोटे-मोटे अलंकारों को भी समझने की योग्यता नहीं। हम तो यह नोट भी न लिखते, यदि हमें आपके लेखों में संघटित कूट-नीति का आभास न दिखाई दिया होता। हमारे कई मित्रों और शिष्यों ने 'माधुरी' में प्रकाशित इस लेखमाला का प्रतिवाद करने की हमसे अनुमति माँगी; परंतु हमने सबको यही कहकर रोक दिया कि—

अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न तु गोमायुरुतानि केसरी।

शालग्राम शास्त्री

रंभा

आदिम वसंत का प्रभात-काल सुंदर था,
आशा की उषा से भूरि भासित गगन था;
दिव्य रमणीयता से भासमान रोदसी में,
स्वच्छ समालोकित दिगंगना-सदन था।
उच्छल तरंगों से तरंगित पयोनिधि था,
सारा व्योम-मंडल समुज्ज्वल अ-घन था;
आई तुम दाहिने अमृत बाएँ कालकूट,
आगे था मदन, पीछे त्रिविध पवन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अपने ही से विकास अपना ही तुम,
आईं जल-अलि से निकल जिस काल में;
पाई प्रभा पंकज-पटल ने पुनीत महा,
आई आभा सारँग के लोचन विशाल में।
हो गई अनूप कमनीय सिंहिनी की कटि,
विकसी बँकाई भी बँगालिनी के बाल में;
महिमा मराल-मंडली में सरसाई ऐसी,
गरिमा समाई गजराजिनी की चाल में।
चाह इंद्र को भी है तुम्हारे रूप-यौवन की,
अमरांगना भी हैं तुम्हारा संग चाहतीं;
देव-कन्यकाएँ पास आतीं शरमाती हुई,
छूना छोटे हाथों से तुम्हारा अंग चाहत।
अपर अनेकों अबलाएँ अमरावती की,
देखा निज नैनों से भ्रुओं का भंग चाहतीं;
तुम तो अदेव-देवतों के मनोमानस में,
खींचना दृगों से चाह ही की चंग चाहतीं।
माना कि तुम्हारा यह यौवन अनंत देवि,
थीं भी कभी कुंद-कलिका-सी भोरी बालिका;
खोजती रहीं क्यों अंधकार में रसातल के,
काम-क्रीडकों के जु-मंदिर की तालिका।
किन मणियों में दीप-रूप भरती थीं तुम,
ए हो चारु चंचल दृगंचल की चालिका;
कौन-से प्रवालों के पलँग पर बैठी हुई,
गूँथती सुरों के सुमनों की रहीं मालिका।
खुल गईं काम-कलियों की आँखें देखकर,
मोहमयी रमणीयता की राशि तन पर;
युग-युग निकल-निकल आभा अंबुधि से,
पाई है विजय सारी संसृति के मन पर।
ऋषि-मुनि अपनी तपस्या का सुभग फल,
बार-बार डालते तुम्हारे ही चरन पर;
जब से लगी है आँख तुमसे सुराधिप की,
दृष्टि पड़ती नहीं कुबेर की भी धन पर।
थाम के कलेजा बैठ जाते हैं युवा भी, जब
तुम चारु चंचल दृगंचल चलाती हो;
सुमन सुरों के हैं महान् मत्त होते जब,
सौरभ दुकूलों की हिलोर से उड़ाती हो।
गाकर सुहाग-राग वासव-सभा में सदा,
सुर-श्रवणों को सुधा-सार-सा पिलाती हो
अंचल हिलाती, छवि छाती मद-माती तुम,
नूपुर बजाती, बल खाती कहाँ जाती हो?
नाचती हैं सुंदर तरंगें क्षीर-सागर की,
जिनकी महान् शोभा आप हरती हो तुम;
हिल उठती हैं चोटियाँ भी वनराजियों की,
आन-बानवाली जब तान भरती हो तुम।
टूट-टूट गिरते सितारे उसके हैं, जो कि
उन्नत उरोजों पर हार धरती हो तुम;
देह पै दुकूलों के हिलोरों को दिखाते हुए,
अमर-सभा में जब नाच करती हो तुम।
दिव्य देव-लोक के अनूप उदयाचल की,
तुम तो शरीरिणी उषा हो गजगामिनी;
विश्व-वासना के कुसुमित काम-कंज पर,
रख पद-पंकज खड़ी हो भोरी भामिनी।
अब तक आप प्रकटी थीं क्यों न सागर से,
खोए कहाँ दिवस, बिताई कहाँ यामिनी?
तुमको कहें क्या, न किसी की तुम कन्यका हो,
माता हो किसी की न किसी की तुम कामिनी।

"अनूप"

मि० हेअर की स्कीम पर कुछ व्यावहारिक आक्षेप

अल्पमत के उचित आनुपातिक प्रतिनिधित्व पर हम अपने पिछले लेख में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। वर्तमान समय के प्रायः सभी उच्च कोटि के राजनीति-शास्त्रज्ञ इस संबंध में मि० हेअर की स्कीम को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। कतिपय राष्ट्र तो इस स्कीम को व्यावहारिक रूप देने का यत्न भी कर रहे हैं, परंतु अभी तक कोई राष्ट्र अपनी मुख्य प्रतिनिधि-सभा के निर्वाचन में इस पद्धति का अनुसरण नहीं कर सका। राजनीति-शास्त्रज्ञों की दृष्टि में इस स्कीम द्वारा संसार में आदर्श प्रतिनिधि-शासन स्थापित हो सकेगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह होते हुए भी इस स्कीम को व्यवहार में नहीं लाया जा सका। आज से लगभग ६६ वर्ष पूर्व आचार्य मिल ने इस स्कीम के पक्ष में अपनी आवाज़ उठाई थी। तब से अब तक, इतना समय बीत जाने पर भी, संसार के किसी उन्नत राष्ट्र में यह आदर्श प्रतिनिधि-तंत्र नहीं स्थापित हो सका। इँगलैंड की बात जाने दीजिए, वहाँ के निवासी सचमुच बहुत अनुदार हैं; परंतु फ्रांस-जैसा राष्ट्र भी—जिसका जातीय गुण नए-नए परीक्षण करना है—राजनीति-शास्त्र का यह नया परीक्षण नहीं कर सका। इस बात के कतिपय समुचित कारण हैं। हमारी सम्मति में मि० हेअर की स्कीम आदर्श सिद्धांत की दृष्टि से चाहे भले ही सराही जा सके, परंतु व्यावहारिक रूप में वह उतनी लाभप्रद नहीं है। यहाँ हम, इसी दृष्टि से, इस स्कीम पर कुछ आक्षेप उपस्थित करेंगे। हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि इन आक्षेपों का निराकरण सर्वथा असंभव है; परंतु हमारा विश्वास है, इन आक्षेपों द्वारा राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थियों को कुछ नई सामग्री अवश्य प्राप्त हो सकेगी।

मि० हेअर की स्कीम के विरुद्ध मुख्यतः इन आठ दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—

१. मि० हेअर की स्कीम के समर्थक लोग स्वयं भी जिस आक्षेप को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेते हैं, वह है उसका गुथीलापन। बहुत-से लोगों का तो यह विश्वास है कि अपने इसी गुथीलेपन के कारण यह स्कीम उचित आदर नहीं प्राप्त कर सकी। अतः इस आक्षेप का विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है।

२. इस स्कीम को व्यवहार में लाने पर दूसरी दिक्कत यह उपस्थित होगी कि प्रतिनिधि-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिये मतों की जो संख्या—कोटा—निश्चित की जायगी, वह निर्वाचन से पूर्व निश्चित न की जा सकेगी; क्योंकि निर्वाचन से पूर्व यह जान सकना असंभव होगा कि इस बार संपूर्ण देश में कुल मिला कर कितने मतदाता अपने मत देने के अधिकार का उपयोग करेंगे। निर्वाचन से पूर्व कोटा निश्चित न होने के कारण प्रत्येक उम्मेदवार के सामने यह समस्या बनी रहेगी कि वह अपनी सफलता के लिये किस सीमा तक आंदोलन करे। वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में यह दोष नहीं है। आजकल यदि किसी उम्मेदवार को यह विश्वास हो जाता है कि उसके निर्वाचन-क्षेत्र में मतदाताओं का बहुमत उसी के पक्ष में है, तो उसे अपनी सफलता के लिये और अधिक यत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती।

३. मि० हेअर की स्कीम के अनुसार संपूर्ण राष्ट्र एक ही निर्वाचन-क्षेत्र मान लिया जाता है। वर्तमान राष्ट्र किसी एक परिमाण के नहीं हैं। किसी की लंबाई लाखों वर्गमील है, तो किसी का क्षेत्रफल सैकड़ों वर्गमीलों तक ही सीमित है। इसी प्रकार किसी राष्ट्र की जन-संख्या ४० करोड़ है, तो किसी की ४० लाख से भी कम। यदि मि० हेअर की स्कीम को व्यावहारिक रूप दे दिया जाय, तो जो राष्ट्र क्षेत्रफल और आबादी में जितना अधिक बड़ा होगा, उसे उतनी ही असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा। इसका दूसरा परिणाम यह होगा कि स्थानीयता या प्रांतीयता के भाव नष्ट हो जायँगे। उम्मेदवार लोग अपने सिद्धांतों और मतों की दुहाई देते हुए संपूर्ण राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक फिरा करेंगे। इस अवस्था में मतदाता लोग किसी उम्मेदवार की वास्तविकता को पूरी तरह न समझ सकेंगे। इस समय तक अधिकांश उम्मेदवार जिस निर्वाचन-क्षेत्र से खड़े होते हैं, उससे उनका कोई विशेष संबंध अवश्य होता है। कम-से-कम उस क्षेत्र के मतदाता—जो उसके पक्ष में मत देते हैं—उसे अच्छी तरह जानते हैं, वह उनका परखा हुआ प्रतिनिधि होता है। परंतु मि० हेअर की स्कीम के अनुसार, निर्वाचन-क्षेत्रों की पृथक्ता नष्ट हो जाने के कारण, यह बात न रहेगी। प्रायः ऐसा होता है कि एक निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता अपने उम्मेदवार के गुण-दोष, दोनों को भली भाँति जानते हैं। परंतु अन्य स्थानों के निवासी उस व्यक्ति के या तो गुण ही जानते हैं, या केवल दोष ही। दूर रहनेवाली जनता प्रायः किसी व्यक्ति की किसी एक विशेषता से, जो उसमें प्रबल होती है, अवगत रहते हैं। उदाहरणार्थ, मदरासी लोग लाला लाजपतराय के संबंध में इतना ही जानते हैं कि वह उत्तरीय भारत के एक सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं; परंतु पंजाबी लोग लालाजी के गुण-दोष, दोनों को भली भाँति समझ सकते हैं।

इँगलैंड की 'कामंस-सभा' के गत निर्वाचन में वहाँ के भूतपूर्व प्रधान मंत्री मि० एस्क्विथ भी अपने निर्वाचन-क्षेत्र से केवल इसी कारण सफलता नहीं प्राप्त कर सके थे कि उनके निर्वाचन-क्षेत्र के अधिकांश मतदाता अब अनुदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों को पसंद करने लगे थे। लोगों का विश्वास है कि मि० एस्क्विथ यदि किसी और निर्वाचन-क्षेत्र से खड़े हुए होते, तो अपनी पुरानी प्रसिद्धि के कारण उन्हें सफलता प्राप्त हो सकती थी। हमारी सम्मति में भी यही बात उचित है। किसी व्यक्ति को जो लोग पूरी तरह समझते हैं, उन्हीं को यह अधिकार होना चाहिए कि वे उसे अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करें, या न करें। इस प्रकरण में एक और उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। पंजाब-व्यवस्थापिका-सभा के गत निर्वाचन में पंजाब-कांग्रेस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री डा० सत्यपाल अमृतसर-नगर की ओर से उम्मेदवार खड़े हुए थे। संपूर्ण देश ने आश्चर्य के साथ सुना कि पंजाब-कांग्रेस का वह नेता, जिसके हाथ में कांग्रेस की बागडोर है, अपनी ज़मानत बचाने-लायक़ वोट भी नहीं प्राप्त कर सका। इसका कारण यही है कि डा० सत्यपाल जो कुछ हैं, उसे बाकी भारतवर्ष की अपेक्षा अमृतसर के निवासी अधिक सुगमता से जान सकते हैं।

यहाँ दो-चार वाक्यों में, प्रतिनिधि-सभा में, स्थानीयता (Localities) की स्थिति के संबंध में भी विचार कर लेना उचित होगा। प्रतिनिधि-शासन में राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार यही सिद्धांत मान-कर दिया जाता है कि शासन में सब नागरिकों का प्रति-निधित्व होना चाहिए। प्रत्येक मतदाता जिस उम्मेदवार को इस योग्य समझता है कि वह उसका ठीक प्रतिनिधित्व कर सकता है, उसे अपना मत देता है। परंतु आव-श्यक बात यह है कि प्रतिनिधि-शासन में प्रत्येक मतदाता नागरिक अपना कुछ निजू तत्त्व भी अनुभव कर सके। नागरिकों का यह निजू भाव उनकी स्थानीयता के आधार पर ही जीवित रह सकता है। प्रतिनिधियों में यह भाव कि 'मैं अमुक निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधि हूँ'—प्रति-निधि-सभा में राष्ट्र के संपूर्ण नागरिकों का निजू तत्त्व प्रकट करने के लिये आवश्यक है। परंतु मि० हेअर की स्कीम द्वारा स्थानीयता के भाव नष्ट हो जाने से यह बात जाती रहती है; क्योंकि तब, आचार्य मिल के कथना-नुसार, मतदाता लोग उम्मेदवारों को केवल योग्यता के आधार पर ही मत दिया करेंगे। हमारी दृष्टि में प्रतिनिधि-शासन के आदर्श की दृष्टि से यह बात अभीष्ट नहीं है।

४. वर्तमान निर्वाचन-पद्धति पर आचार्य मिल ने यह दोषारोपण किया है कि इस पद्धति में अत्यधिक दलबंदी (Party Spirit) होने से राष्ट्र के उच्च कोटि के प्रतिभाशाली व्यक्ति, पार्टी के बंधनों में बँधना अपमान-जनक समझकर, प्रतिनिधि-सभा के लिये उम्मेद-वार ही नहीं खड़े होते। उनका कथन है कि मि० हेअर की स्कीम का अनुसरण करने से यह बात नहीं रहेगी। उस अवस्था में राष्ट्र का नियामक विभाग (Legis-lative Deptt.) आजकल के नियामक विभाग की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली हुआ करेगा। परंतु वास्तव में यह दोष सर्वथा निर्मूल है। जनता इतनी मूर्ख नहीं है कि वह वास्तविक और उपयोगी विद्वानों का सम्मान न करे। आजकल भी असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान्, इच्छा करने पर किसी दल में विना प्रविष्ट हुए भी, अविरोध निर्वाचित हो जाते हैं। स्वयं मिल का उदाहरण ही हमारी इस स्थापना का प्रबल प्रमाण है। आचार्य मिल दलबंदी से घृणा करते थे, अतः वह कभी किसी दल-विशेष की ओर से इँगलैंड की 'कामंस-सभा' के लिये उम्मेदवार नहीं खड़े हुए; परंतु उनके निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता उनका इतना सम्मान करते थे कि वह सदैव ही विना विरोध, सर्वसम्मति से, निर्वाचित होते रहे। हाँ, इतना अवश्य है कि वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में यह हिमायत केवल असाधारण प्रतिभाशाली विद्वानों से ही की जाती है, विद्वान्-मात्र से नहीं। यही बात उचित भी है। राष्ट्र के नियामक विभाग को प्रायः धुरंधर विद्वानों की अपेक्षा सामयिक और अनुभवी राजनीतिज्ञों की अधिक आवश्यकता होती है। भारतीय व्यवस्थापिका सभा के लिये राजनीति और इतिहास के धुरंधर विद्वान् श्रीयुत विनयकुमार सरकार की अपेक्षा प्रतिभाशाली और अनुभवी राजनीतिज्ञ पं० मोतीलाल नेहरू अधिक उपयुक्त हैं। सौभाग्य से प्रायः राजनीतिज्ञ दलबंदी को त्याज्य हौवा नहीं समझा करते; उन्हें दलबंदी में कुछ अधिक मज़ा आता है! फिर अभी तक अमेरिका को छोड़कर और किसी देश में यह शिकायत भी नहीं पैदा हुई कि वहाँ राष्ट्र के नियामक विभाग के लिये प्रतिभा-शाली विद्वान् उम्मेदवार बनने से कतराते हों। अमेरिका में यह शिकायत अवश्य है, परंतु वहाँ भी इसकी तह में वर्तमान निर्वाचन-पद्धति नहीं, अपितु कतिपय अन्य कारण घुसे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. मि० हेअर की स्कीम के समर्थक महानुभाव वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में एक और बड़ा दोष यह देखते हैं कि इसमें सदैव दलबंदी का प्राधान्य रहता है। आजकल प्रत्येक देश में दलबंदी के आधार पर ही चुनाव होता है; निर्वाचन में व्यक्ति की अपेक्षा दल को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक दल व्यवस्थापिका-सभा में बहुमत प्राप्त करने के लिये संपूर्ण उचित और अनुचित उपायों का आश्रय लेता है। झूठी-झूठी बातों द्वारा लोगों को बहकाकर, उकसाकर या भड़काकर वोट प्राप्त करने का यत्न किया जाता है। इस उद्देश्य के लिये लाखों रुपए और बड़े-बड़े दिमाग़ों की संपूर्ण शक्ति व्यय कर दी जाती है। कहीं-कहीं तो भिन्न-भिन्न दलों में मारपीट की नौबत भी आ जाती है। फिर निर्वाचन की अवधि भिन्न-भिन्न देशों में ३ से लेकर ७ वर्ष तक है। निर्वाचन से लगभग २ वर्ष पूर्व ही आंदोलन प्रारंभ कर दिया जाता है, अतः देश के राजनीतिक जीवन का आधा समय तो इन निर्वाचनों की लड़ाई लड़ने में ही बीत जाता है। निर्वाचन के दिनों में बड़े-बड़े आदमी भी एक दूसरे पर कीच उछालने तथा अपनी बड़ाई करने में कोई हानि नहीं समझते। दूसरी ओर दलों के परंपरागत सिद्धांतों और प्रथाओं के पालन पर इतना अधिक बल दिया जाता है कि व्यक्ति की महत्ता शून्य के समान रह जाती है। विचारक लोग दल के भय से अपने क़ीमती दिमाग़ों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते। इँगलैंड में पिछले निर्वाचन पर हज़ारों टन काग़ज़ विज्ञापनबाज़ी में ख़र्च हुआ था, बीसियों जगह मारपीट की नौबत आई थी। परंतु मि० हेअर की स्कीम द्वारा दलबंदी की आवश्यकता ही न रहेगी। उस अवस्था में नेताओं की वह शक्ति, जो आजकल दलबंदी को स्थिर रखने में लगती है, राष्ट्र को लाभ पहुँचाने में लगेगी।

उपर्युक्त स्थापना दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से दोषयुक्त है। पहले तो यही बात विवादास्पद है कि दलबंदी देश के हित की दृष्टि से लाभप्रद होती है, या हानिकारक। हमारी सम्मति में दलबंदी द्वारा देश को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक पहुँचता है। यह एक जुदा प्रश्न है। यहाँ इस प्रश्न पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता। हम अत्यंत संक्षेप में दलबंदी की सार्थकता प्रकट करने का यत्न करेंगे। दलबंदी पर कुछ अंशों तक उपर्युक्त आक्षेप अवश्य किए जा सकते हैं, इस बात को स्वीकार करते हुए भी हम उसे राष्ट्र की उन्नति के लिये आवश्यक समझते हैं। मनुष्य जहाँ सामाजिक प्राणी है, वहाँ वह विचारशील (Rational) भी है। अपनी सामाजिक प्रवृत्ति के कारण ही मनुष्यों ने समाज और राष्ट्र का निर्माण किया है। यह होते हुए भी, हम देखते हैं, संपूर्ण मनुष्य-समाज में कहीं ऐसे दो मनुष्य प्राप्त होना कठिन है, जिनके सब विचार विना किसी अपवाद के एक-से हों। इस दशा में यह आवश्यक होता है कि राष्ट्र या समाज की स्थिति और उन्नति के लिये मनुष्य अपने उन विचारों और इच्छाओं का दमन करे, जो राष्ट्र या समाज की सामूहिक उन्नति के लिये बहुमत की सम्मति में बाधक हैं। इस सिद्धांत का परिणाम यह होना चाहिए कि राष्ट्र-वासियों के विचारों में स्वाभाविक भेद होते हुए भी राष्ट्र का कार्य धारावाहिक रूप से जारी रहे। प्रत्येक सामूहिक बात पर भी समाज में भिन्न-भिन्न मत उठ खड़े होते हैं। इन विभिन्न मतों का श्रेणीकरण (Classification) बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। समाज के भिन्न-भिन्न मतों के इस वर्गीकरण द्वारा ही भिन्न-भिन्न दलों की उत्पत्ति होती है। समाज या राष्ट्र की सामयिक अवस्थाओं के अनुसार लोगों के विचारों में जो परिवर्तन आता रहता है, उसी के आधार पर इन दलों की शक्तियों में भी चढ़ाव-उतार आता है। दलबंदी का यह मनोवैज्ञानिक कारण है। इसके अनुसार दलबंदी का अभाव हो ही नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समाज अधिक उन्नत होती जायगी, त्यों-त्यों ये दल भी बढ़ते चले जायँगे। परंतु उस अवस्था में, दलों की वृद्धि होने पर भी, वे परस्पर पूरक (Complementary) होंगे, एक दूसरे के विनाशक या दुश्मन नहीं। इन दलों के द्वारा राष्ट्र की जनता अधिक शिक्षित होती जायगी, उसे कोई हानि न होगी।

दलबंदी के पक्ष में दूसरी दृष्टि व्यावहारिक है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, एक प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों में मतभेद तो रहता ही है। संपूर्ण प्रतिनिधियों का प्रत्येक बात पर एक मत रहना न तो संभव ही है, और न उचित ही। कहा जा सकता है कि विचारों की भिन्नता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दलबंदी में अंतर है; परंतु हमारी सम्मति में विचारों की भिन्नता का आवश्यक परिणाम ही दलबंदी है। दलबंदी तब तक नष्ट नहीं हो सकती, जब तक विचारों की भिन्नता न नष्ट हो जाय। भिन्न-भिन्न विचार-वाले लोगों के संगठित हो जाने का नाम ही दलबंदी है। परंतु थोड़ी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि दलबंदी नष्ट कर दी गई, और भिन्न-भिन्न विचारोंवाले विद्वान् प्रतिनिधियों का एक मंत्रि-मंडल बना दिया गया, तो इस अवस्था में हम देखेंगे कि वह विद्वानों का मंत्रि-मंडल एक दल के मंत्रि-मंडल की अपेक्षा भी बहुत कमज़ोर और अयोग्य सिद्ध होगा। यदि इँगलैंड की वर्तमान 'कामंस-सभा' में, प्रधान मंत्री मि० बाल्डविन की अध्यक्षता में, मि० लायड जार्ज, मि० साइमन, मि० मैक्-डानल्ड, लार्ड बर्केनहेड, मि० चर्चिल, मि० सकलातवाला, कर्नल वेजवुड तथा इसी प्रकार कुछ अन्य सज्जनों का एक मंत्रि-मंडल बना दिया जाय, तो यह मंत्रि-मंडल एक मास तक भी इँगलैंड का शासन-सूत्र न सँभाल सकेगा। गत महायुद्ध के दिनों में आवश्यकता समझकर एक सम्मिलित मंत्रि-मंडल का निर्माण किया गया था, परंतु युद्ध के समाप्त होते ही उस सम्मिलित मंत्रि-मंडल को क़ायम रखना दूभर हो गया था।

फिर, व्यक्ति की महत्ता पर इतना अधिक बल देने का क्या अभिप्राय है? क्या एक राष्ट्र पर एक व्यक्ति का नेतृत्व होने की अपेक्षा उसका एक दल द्वारा संचालित होना अधिक लाभकर नहीं? व्यक्ति कभी पूर्ण नहीं होता। उसके विचार परिवर्तनशील हैं, और एक दल के विचारों में उतनी अस्थिरता नहीं रहती। व्यक्ति का उद्देश्य स्वार्थमय हो सकता है; दल के ध्येय में बिगाड़ आने की संभावना उसकी अपेक्षा कम है। आजकल दल-बंदी के कारण निर्वाचन-आंदोलनों में जो व्यय होता है, उतना व्यय तो मि० हेअर की स्कीम को व्यवहार में लाने पर निर्वाचन करते हुए ही हो जायगा! आजकल के इस व्यय द्वारा तो मतदाताओं को कुछ लाभ भी पहुँचता है, निर्वाचकों का राजनीतिक अनुभव बढ़ता है, वे स्वयं अपना भला-बुरा सोचने-लायक़ बनते हैं, अपने प्रतिनिधियों के कार्य से अवगत होते हैं—यही बातें एक प्रतिनिधि-शासन में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण हैं। प्रतिनिधि-तंत्र में 'अपने स्वामियों को शिक्षित' करने का (to educate your masters) का प्रश्न अत्यधिक आवश्यक है। निर्वाचन के दिनों में विभिन्न दलों की ओर से किए जानेवाले आंदोलनों द्वारा यह कार्य भी सिद्ध होता है। परंतु तब सरकार का जो निर्वाचन-व्यय हुआ करेगा, उसकी पूर्ति के लिये कर बढ़ाने को छोड़कर अन्य कोई उपाय न रहेगा।

दलबंदी को हानिकर मान लेने पर भी, हमारा विश्वास है कि एक और दृष्टि से मि० हेअर की स्कीम द्वारा यह लाभ सिद्ध न हो सकेगा। यह तथ्य है कि आजकल प्रत्येक राष्ट्र में दलबंदी की जड़ें बहुत गहराई तक पहुँच चुकी हैं। मतदाता लोग दलों की परिभाषा में ही निर्वाचन-संबंधी बातचीत करते हैं। इन वर्तमान दलों का संगठन बहुत दृढ़ और व्यापक है। अतः निर्वाचन का प्रकार बदल देने पर भी, हमारा विश्वास है, दलों को नष्ट न किया जा सकेगा। निर्वाचन का प्रकार बदलते ही प्रत्येक दल मतदाताओं को भी अपने दल में रजिस्टर्ड करने लगेगा। आजकल यह प्रवृत्ति स्वयं ही बढ़ रही है। इस अवस्था में संपूर्ण राष्ट्र ही भिन्न-भिन्न दलों में विभक्त हो जायगा। तब दलबंदी की जड़ें पाताल तक जा पहुँचेंगी, और उस अवस्था में उन्हें काटना असंभव हो जायगा।

६. मि० हेअर की स्कीम पर एक और दोष यह दिया जा सकता है कि उसके द्वारा प्रतिनिधि-सभा में दलों की संख्या बहुत बढ़ जायगी। इसका परिणाम यह हो सकता है कि प्रतिनिधि-सभा में किसी एक दल का पूर्ण बहुमत (absolute majority) न रहे। दलों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती चली जाय, उनकी सदस्य-शक्ति धीरे-धीरे कम होती चली जाय। इसका अवश्यंभावी परिणाम यह होगा कि तब दो या इससे अधिक दलों को, सम्मिलित रूप से, शासन-सूत्र अपने हाथ में लेना होगा। इस अवस्था में मंत्रि-मंडल (Cabinet) बहुत अस्थिर हो जायगा। यदि कभी दो दलों को भी सम्मिलित रूप से शासन की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़े, तो अनुभव से सिद्ध हुआ है, वह मंत्रि-मंडल बहुत देर तक नहीं क़ायम रह सकता। इँगलैंड के भूतपूर्व निर्वाचन में किसी दल का पूर्ण बहुमत नहीं था, अतः वहाँ श्रमी-दल उदार दल के सहयोग से अपना मंत्रि-मंडल क़ायम कर सका था। उसका परिणाम यह हुआ कि वह मंडल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९ मास तक भी कठिनता से टिक सका। यह तो दो दलों के संयुक्त मंत्रि-मंडल का उदाहरण हुआ। जहाँ दो से भी अधिक दलों को मिलकर शासन-सूत्र सँभालना पड़े, वहाँ तो उसकी स्थिरता बहुत ही कठिन हो जाती है। कल्पना कीजिए, ५ दलों के सहयोग से एक राष्ट्र में मंत्रि-मंडल की स्थापना होती है। किसी ज़रा-सी बात पर इन ५ में से सबसे छोटा दल—जो संपूर्ण प्रतिनिधि-सभा में भी सबसे छोटा है—रूठकर अलग हो जाता है। बस, इसी बात पर संपूर्ण मंत्रि-मंडल का संगठन नष्ट हो जायगा। इस उदाहरण में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि यहाँ अल्पमत को अपने आनुपातिक अधिकारों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति प्राप्त है। अतः यह बात न तो व्यावहारिक दृष्टि से और न सिद्धांत की दृष्टि से ही ठीक जँचती है।

जब प्रतिनिधि-सभा में छोटे-छोटे जत्थों (इन्हें दल (party) न कहकर जत्थे (group) कहना चाहिए) की अधिकता हो जायगी, तब उसका एक परिणाम यह भी होगा कि इन जत्थों में सिद्धांतों की अपेक्षा व्यक्ति की महत्ता बढ़ जायगी; क्योंकि व्यक्तियों के आधार पर ही इन जत्थों का निर्माण होगा। वर्तमान दलबंदी में यह बात नहीं होने पाती। इनमें दल की महत्ता व्यक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक समझी जाती है। यह अवस्था भी राष्ट्र के हित की दृष्टि से लाभकर न सिद्ध होगी।

७. अल्पमत का आनुपातिक प्रतिनिधित्व करने के लिये मि० हेअर की स्कीम के पक्ष में जो प्रारंभिक और आधारभूत युक्ति दी जाती है, वह युक्ति भी वास्तव में पूर्णरूप से तथ्य के आधार पर आश्रित नहीं है। अपने पहले लेख के अंत में हमने जो उदाहरण दिया था, वह वर्तमान निर्वाचन-पद्धति के वास्तविक स्वरूप नहीं प्रकट करता। वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में जो भिन्न-भिन्न निर्वाचन-क्षेत्र बनाए जाते हैं, उनमें से एक ही प्रकार के कुछ निर्वाचनों का दल देखकर अन्य संपूर्ण निर्वाचनों के संबंध में कोई एक सिद्धांत क़ायम नहीं किया जा सकता। आजकल निर्वाचन का आधार भिन्न-भिन्न दल या उम्मेदवारों के भिन्न-भिन्न सिद्धांत होते हैं। एक दल के उम्मेदवार यदि कुछ स्थानों पर विजयी होते हैं, तो दूसरे स्थानों पर उस दल के उम्मेदवारों की हार भी होती है। मि० हेअर की स्कीम के समर्थकों की दृष्टि में, यदि एक स्थान पर एक दल का उम्मेदवार अपने प्रतिद्वंद्वी उम्मेदवारों को प्राप्त हुए वोटों के योग के मुक़ाबले में कम वोट प्राप्त करके भी, अनुचित रूप में, विजयी समझा जाता है, तो दूसरे स्थान पर उसी दल के किसी और उम्मेदवार की हार भी हो सकती है, और उन दोनों को प्राप्त हुए कुल वोटों के योग की दृष्टि से उनका अनुपात ठीक पड़ जाता है। अतः इस संबंध में कोई राय क़ायम करते हुए दोनों प्रकार के उदाहरणों को लेना आवश्यक है।

हमारी धारणा यह है कि संपूर्ण राष्ट्र के सब निर्वाचन-क्षेत्रों में प्रत्येक दल को कुल मिलाकर जिस अनुपात में मत प्राप्त होते हैं, लगभग उसी अनुपात में उसके प्रतिनिधि प्रतिनिधि-सभा में पहुँच जाते हैं। यदि इन मतों के अनुपात तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों के अनुपात में कुछ अंतर भी रहता है, तो वह अंतर इतना नहीं होता, जो किसी दल को यों ही बहुमत बना दे। मतदाताओं में जिस दल का बहुमत है, प्रतिनिधि-सभा में भी सदैव उसी दल का बहुमत रहेगा। वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में भी लगभग उचित आनुपातिक प्रतिनिधित्व हो ही जाता है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये एक सच्चा उदाहरण दे देना आवश्यक होगा।

गत निर्वाचन में संयुक्तप्रांत की व्यवस्थापिका-सभा के लिये जो प्रतिनिधि निर्वाचित हुए थे, उनमें से हमने १२ निर्वाचन-क्षेत्रों का परिणाम उदाहरण के लिये ले लिया है। इनमें से ६ निर्वाचन-क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें स्वराज्य-दल के उम्मेदवार विजयी हुए थे, और ६ निर्वाचन-क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें स्वराजी उम्मेदवार परास्त हुए थे। यह उदाहरण हमने छाँटकर नहीं लिया, यों ही कुछ निर्वाचन-क्षेत्र, उनके परिणामों का ध्यान रखकर, ले लिए हैं। हमें देखना यह है कि क्या इन स्वराजी उम्मेदवारों को कोई ऐसा अनुचित लाभ प्राप्त हुआ है, जिसके भय से मि० हेअर की स्कीम के समर्थक वर्तमान निर्वाचन-पद्धति को बदल देना चाहते हैं। यदि वह लाभ हुआ है, तो किस अंश तक? योग की सुगमता के लिये हमने इन संख्याओं को गोल बना दिया है—

स्वराजियों की जीत

पक्ष के मत	प्रतिद्वंद्वियों के मत
(१) ७,८५०	(१) स्वतंत्र कांग्रेस—३,८००
	स्वतंत्र— २००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष के मत		प्रतिद्वंद्वियों के मत
(२) २,७००	(२)	स्वतंत्र—१,१००
(३) ५,४००	(३)	,, —३,४५०
		ज़मींदार—२,७००
(४) ५,८००	(४)	स्वतंत्र— ७००
(५) ११,२००	(५)	,, —२,८००
(६) २,६००	(६)	,, —२,०००
३५,५५०		१६,७५०

स्वराजियों की हार

बहुमत	अन्य मत
(१) नरम—४,०५०	(१) स्वतंत्र—१,८००
	स्वराजी—१,५५०
(२) स्वतंत्र कांग्रेस—५,७५०	(२) ,, —३,२००
(३) राजा—३,९००	(३) स्वतंत्र—२,४००
	स्वराजी—३,०००
(४) ,, —५,२००	(४) ,, —५,०००
(५) स्वतंत्र—७,७००	(५) ,, — ५००
	स्वतंत्र —५,०००
(६) राजा—३,१००	(६) स्वराजी—२,२००
	स्वतंत्र—२,१००
	ज़मींदार— २००
२९,७००	२७,०००

इस उदाहरण में जिन ६ क्षेत्रों में स्वराजी उम्मेदवार विजयी हुए हैं, उनमें कुल मिलाकर उन्हें ३५,५५० मत प्राप्त हुए हैं; जिनमें वे परास्त हुए हैं, उनमें उन्हें प्राप्त हुए मतों का योग १५,४५० है। इस प्रकार इन १२ क्षेत्रों में स्वराजी उम्मेदवारों को ५१,००० वोट प्राप्त हुए। इन १२ क्षेत्रों में कुल मिलाकर १,०८,००० मतदाताओं ने अपने मत देने के अधिकार का उपयोग किया था। अब यदि मि० हेअर की स्कीम, इन बारह निर्वाचन-क्षेत्रों में, व्यवहार में लाई जा रही होती, तो एक कोटा ९,००० वोटोंका निश्चित होता। इस हिसाब से स्वराजी सदस्यों को अपने ६ सदस्य पूरा करने के लिये ५४,००० वोटों की आवश्यकता थी। इस उदाहरण में उन्हें ५१,००० वोट प्राप्त हुए हैं, अतः केवल ३ हज़ार की ही कमी रह गई है। इसका अभिप्राय यही है कि मि० हेअर की स्कीम को व्यवहार में लाए जाने पर भी ६ ही स्वराजी सदस्य इन १२ निर्वाचन-क्षेत्रों में से निर्वाचित हुए होते। हम यह स्वीकार करते हैं कि दोनों स्कीमों के परिणाम में बहुत बार पर्याप्त अंतर भी दिखाया जा सकता है, परंतु प्रायः यह अंतर उतना भयंकर नहीं होता, जितना भयंकर मि० हेअर की स्कीम के पोषक दिखाया करते हैं।

एक महत्त्व-पूर्ण बात और है। मि० हेअर की स्कीम को व्यवहार में लाने पर भी राष्ट्र के बहुमत पर हम वही आक्षेप आरोपित कर सकते हैं, जो उसके पोषक वर्तमान निर्वाचन-पद्धति पर करते हैं। इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना आवश्यक है। कल्पना कीजिए, भारतवर्ष की बड़ी व्यवस्थापिका-सभा के लिये १२० सदस्य चुने जाने का विधान है, और बड़ी व्यवस्थापिका-सभा के कुल मतदाताओं की संख्या ५,००,००० है। निर्वाचन मि० हेअर की स्कीम के अनुसार किया गया। उसमें १२० स्थानों (seats) के लिये ३०० उम्मेदवार खड़े हुए, जैसा प्रायः होते हैं। रजिस्टर्ड ५ लाख मतदाताओं में से २,४०,००० मतदाताओं ने अपने मत देने के अधिकार का उपयोग किया। इस अवस्था में कोटा २,००० वोटों का होना चाहिए। परंतु हमारी यह धारणा है कि ऐसा होना असंभव है। कोटा अवश्य ही इससे कम संख्या का निश्चित करना पड़ेगा। कारण यह है कि मतदाता लोग अपनी पर्चियों पर जितने नाम लिखेंगे, यह आवश्यक नहीं कि उनमें से अवश्य ही कोई-न-कोई नाम ऐसा हो, जो कोटे की संख्या पूरी कर सके। बहुत-से मतदाताओं की पर्चियाँ ऐसी सिद्ध होंगी, जिनमें लिखा हुआ कोई नाम कोटे की संख्या न पूरी कर सकेगा। अतः ये पर्चियाँ व्यर्थ जायँगी। इनका वही हाल होगा, जो आजकल किसी निर्वाचन-क्षेत्र के पराजित उम्मेदवार के मतदाताओं का होता है। दूसरी ओर कई प्रभावशाली व्यक्तियों के नाम ऐसे होंगे, जो कोटे के लिये आवश्यक संख्या से भी बहुत बड़ी संख्या में लिखे गए होंगे। पर्ची में लिखे गए १० या १२ नामों में से यही दो-एक नाम ऐसे होंगे, जो कोटा पूरा कर सकते हों; परंतु इन नामों का कोटा अन्य पर्चियों द्वारा भी पूरा हो जाता होगा। इस कारण इन पर्चियों में से भी बहुतों का वही हाल होगा, जो कोटा पूरा न करनेवाली पर्चियों का हुआ था। (स्मरण रखिए कि इन लाखों पर्चियों का परस्पर मिलान करने में कितनी दिक़्क़त का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार हम कल्पना करते हैं।) इन दोनों कारणों से इन २,४०,००० पर्चियों में से ४८,००० पर्चियाँ व्यर्थ गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अवस्था में शेष १,९२,००० पर्चियों के आधार पर कोटा १,६०० मतों का निश्चित होगा। अब इस प्रकार निर्वाचित हुई भारतीय व्यवस्थापिका-सभा में एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है, जो पक्ष में ६५ तथा विरोध में ५५ सम्मतियाँ आने पर बहुमत से स्वीकार समझा जाता है। परंतु वास्तव में इस प्रस्ताव के पक्ष में ६५×१,६००= १,०४,००० मतदाताओं का प्रतिनिधित्व होगा, और २,४०,०००—१,०४,०००=१,३६,००० मतदाता ऐसे होंगे, जिनका या तो इस प्रस्ताव में प्रतिनिधित्व ही नहीं हुआ, और या वे इस प्रस्ताव के विरोध में थे। तो भी मि० हेअर की स्कीम के समर्थक उसे राष्ट्र का बहुमत कहेंगे।

८. वर्तमान निर्वाचन-पद्धति में बहुमत को यह लाभ—कि उसे अपने अनुपात की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है—यद्यपि बहुत थोड़ा है, तथापि इसकी सत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता। परंतु बहुमत को यह थोड़ा-सा विशेषाधिकार मिल जाना भी राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से हानिकर नहीं है। इसे दो दृष्टियों से पुष्ट किया जा सकता है। एक तो यह कि यह अधिकार प्रत्येक बहुमत को है। जो दल कभी भी बहुमत प्राप्त करेगा, उसे यह विशेषाधिकार प्राप्त रहेगा। यदि दो दलों की शक्ति सदैव एक ही रूप में रहती होती, अर्थात् अल्पमत में सदैव अल्पमत और बहुमत में सदैव बहुमत रहता होता, तब तो यह बात निस्संदेह हानिकर सिद्ध हो सकती थी। परंतु हम देखते हैं, देश के वायु-मंडल के अनुसार प्रत्येक दल की स्थिति में चढ़ाव-उतार आता रहता है। अतः यह विशेषाधिकार हानिकर नहीं बनने पाता। हम यह स्वीकार करते हैं कि जिन देशों में प्रतिनिधित्व का आधार अपरिवर्तनशील हो—यथा भारतवर्ष में हिंदू-मुस्लिम-संप्रदायों के आधार पर प्रतिनिधित्व है—वहाँ बहुमत को कोई विशेषाधिकार देना निस्संदेह आपत्ति-जनक हो सकता है। परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि किसी उन्नत देश में प्रतिनिधित्व का आधार या दलों की रचना इतनी अपरिवर्तनशील नहीं होती।

बहुमत को अनुपात से कुछ अधिक प्रतिनिधित्व मिलने से एक लाभ यह भी होता है कि राष्ट्र का मंत्रि-मंडल स्थिर करने में सहायता मिलती है। इसमें संदेह नहीं कि प्रतिनिधि-तंत्र के आदर्श की दृष्टि से यह बात अनुचित प्रतीत होती है, परंतु आदर्श की दृष्टि से तो स्वयं प्रतिनिधि-तंत्र (Representative Govt.) ही दोषपूर्ण है। वास्तविक आदर्श तो शुद्ध प्रजातंत्र (Direct Democracy) है। अतः शासन की स्थिरता के लिये बहुमत को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हो जाना कुछ अनुचित नहीं कहा जा सकता—ख़ासकर इस अवस्था में, जब इस रियायत पर पक्षपात का दोष भी आरोपित नहीं हो सकता।

इस प्रकार इन आठों दृष्टियों से अल्पमत का आनुपातिक प्रतिनिधित्व करने के लिये मि० हेअर की स्कीम अभिनंदनीय नहीं सिद्ध होती। वास्तविक बात तो यह है कि जब तक जनता को अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें हटा सकने के समुचित अधिकार प्राप्त हैं, तब तक अल्पमतों पर अन्याय होने के भय का कोई विशेष कारण नहीं। यों तो यदि बहुमत, अल्पमत पर अन्याय करने को तुल ही जाय, तो मि० हेअर की स्कीम को व्यवहार में लाने पर भी उसका निराकरण नहीं हो सकता; क्योंकि बहुमत तो उस दशा में भी बहुमत ही रहेगा। लोकमत बड़ी अस्थिर चीज़ है; उसे स्थिर रखने के लिये बड़े यत्न की आवश्यकता है। किसी शिक्षित (trained) राष्ट्र में यदि बहुमत अपनी संख्या-शक्ति के गर्व में कोई अनुचित कार्य कर बैठता है, तो अल्पमतों को एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन खड़ा करने का स्वर्ण अवसर हाथ लग जाता है, और उस अवस्था में बहुमत के लिये क़ायम रहना अत्यंत कठिन हो जाता है।

यदि पूर्ण बहुमत के उच्छृंखल हो जाने का कुछ भी भय हो, तो उसके निवारण का सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि निर्वाचन-काल की अवधि और भी कम कर दी जाय। यदि प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रति ३ वर्ष बाद हुआ करे, तो लोकमत उन पर पूरा निरीक्षण रख सकेगा। इस अवस्था में बहुमत राष्ट्र के वास्तविक बहुमत की उपेक्षा न कर सकेगा। यदि आवश्यकता समझी जाय, तो इस अवधि को और भी कम किया जा सकता है। यह बात निर्वाचित प्रतिनिधियों पर जनता के अंकुश का काम किया करेगी।

अंत में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के यशस्वी राष्ट्रपति स्वर्गीय लिंकन के इन शब्दों के साथ हम इस लेख को समाप्त करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"It is possible to fool some of the people for all of the time. It is possible to fool all of the people for some of the time. But it is impossible to fool all of the people for all of the time."

अर्थात्, यह संभव है कि कुछ लोगों को सदा के लिये बहकाया जा सके, यह भी संभव है कि संपूर्ण जनता को कुछ समय के लिये बहकाया जा सके; परंतु यह असंभव है कि संपूर्ण जनता को कोई सदा के लिये बहका ले।

हम राष्ट्रपति लिंकन के इस सिद्धांत को माननेवाले हैं। अतः हम वर्तमान निर्वाचन-पद्धति के रहते हुए भी इस ख़तरे से भयभीत नहीं कि पूर्ण बहुमत अपनी अस्थिर संख्या-शक्ति के आधार पर कभी राष्ट्र के हितों की, जिन्हें वास्तविक राष्ट्र का बहुमत अपना हित समझता हो, कभी अवहेलना कर सकेगा।

चंद्रगुप्त

अंतर्ध्वनि

(९)

हम तो जलाते रहते हैं ज्योति जीवन की,
स्वागत के हेतु उर-आसन बिछाते हैं;
किंतु जान पाते नहीं आते किस ओर से वे,
यह भी न देखा, चुपचाप कहाँ जाते हैं।
हृदय कठोर कितना है उनका जो हाय,
कुछ भी पसीजता न मानों सुख पाते हैं;
रूठे-से दिखाते, कभी यह भी बताते नहीं,
स्वप्न म जो रूठे उसे क्योंकर मनाते हैं।

(१०)

इतनी प्रतीक्षा पर भी न दया आती उन्हें,
रहते बुलाते तो भी वैसे वे न आते हैं;
किंतु ज्यों ही मूर्छा कभी आती हमें देने शांति,
त्यों ही वे न-जाने किस ओर से आ जाते हैं।
दुःख भूल जाते, हम फूले न समाते, ज्यों ही
अपनी कहानी उठ करके सुनाते हैं;
कह भी न पाते, लोग पागल बनाते, अंत
हमें समझाते, उसे स्वप्न-सा बताते हैं।

(११)

हँस क रुलाना उसे जिसका न और कोई,
यह तो दुखी को और नाहक दुखाना है;
जिसका ठिकाना कोई अपना बिराना नहीं,
उसका मिटाना, मिटते को ही मिटाना है।
अपना निशाना किसी ऐसे को बनाना हाय,
बिंध जो चुका हो, कैसा ज़ुल्म मनमाना है;
अब दिखलाना दया, प्यार का जताना, कभी
आँसू भी बहाना, यह उनका बहाना है।

(१२)

लगती पलक यों ही एक पल को भी नहीं,
लग भी गई तो और दूना कलपाते हैं;
मान से भरा हुआ अनोखा उतना ही प्यार,
वे ही शरमाई आँखें तिरछी दिखाते हैं।
उठते मनाने, उर लाने, तो भी हाथ दोनों
फैले रह जाते, जाने कहाँ छिप जाते हैं;
अब तो दशाएँ दुखदाई हुइ दोनों हाय,
सोए तो सताते और जागे तो रुलाते हैं।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिलाषा

(१)

बाबू मुरलीमनोहर दफ़्तर से आकर अपने कमरे में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे कि सहसा नौकर ने आकर पं० मोहनलालजी के आने की ख़बर दी। बाबू साहब झिझकते हुए बोले—"जाकर कह दो, बाबूजी के सिर में दर्द है, कृपया कल किसी वक़्त मिलने का कष्ट करें।" नौकर "बहुत अच्छा" कहकर बाहर चला गया। नौकर के चले जाने के बाद, बाबू मुरलीमनोहर मन-ही-मन बड़बड़ाने लगे कि क्या करें, ज़माना ही ऐसा है कि बग़ैर झूठ बोले काम ही नहीं चलता। हर समय इसी तरह किसी के पीछे पड़े रहना भी कोई अच्छी बात है! इतने ही में उनकी धर्मपत्नीजी ने कमरे में प्रवेश किया, और चिंतायुक्त स्वर में बोलीं—क्या तबियत कुछ ख़राब है?

मुरली०—नहीं तो। क्यों, आज चा-वा कुछ न बनेगी?

"चा तो बनी रक्खी है। बिंद्रा (नौकर) से मालूम हुआ कि आपकी तबियत ठीक नहीं है। इसी से चली आई हूँ।"

मुरली०—अरे नहीं, वह भी कितना गँवार है, जो इतनी-सी बात तुमसे कहने चला। ऐसा तो मैंने कहीं नहीं कहा कि तबियत ख़राब है। हाँ, यह ज़रूर कहा था कि पं० मोहनलालजी से कह दे, इस वक़्त सिर में कुछ दर्द है, कल मिलें।

"तो क्या, आपने जानकी के विवाह के लिये अभी कहीं निश्चय नहीं किया?"

मुरली०—कह तो रहा हूँ कि मोहनलालजी को कल बुलाया है। उन्हीं के छोटे भाई हैं, पढ़े-लिखे हैं, अच्छा ख़ानदान है, जमींदारी भी अच्छी हा है, अच्छा घर है; किंतु.....।

धर्मपत्नीजी ने बीच ही में बात काटकर पूछा—लड़के की उम्र कितनी है, और किस दर्जे में पढ़ता है?

बाबू मुरलीमनोहर दुःख-भरी आवाज़ से बोले—क्या कहूँ, यही तो एक विकट समस्या बीच में आ पड़ी है कि उनकी उम्र ४० साल से कुछ ऊपर है, दो शादी हो चुकी हैं। पहली शादी से एक लड़का भी है, पर.....।

उनका यह कहना था कि पत्नी को ऐसा मालूम हुआ, मानो बिच्छू ने डंक मारा हो। उन्होंने फिर बात काटते हुए कहा—चूल्हे में जाय ऐसा ख़ानदान और भाड़ में जाय ऐसा घर और वर। ऐसे घर में लड़की देने से तो मैं अपनी प्यारी जानकी को कुँआरी ही रख छोड़ूँगी। अपनी प्राणों से प्यारी, आँखों की पुतली, सर्वगुण-संपन्न लड़की को ऐसे आदमी के हाथ सदा के लिये सौंपना इन आँखों के सामने तो न हो सकेगा। हाँ, मेरे मर जाने के बाद भले ही हो जाय।

स्त्री के मुँह से ये रोष से भरे हुए शब्द सुनकर बाबू मुरलीमनोहरजी का हृदय भर आया। पर करें क्या? कोई और उपाय भी तो नज़र नहीं आता। इतनी बड़ी हैसियत भी तो नहीं कि ४-५ हज़ार रुपए टीके में देकर किसी योग्य वर के साथ लड़की का विवाह करें। दफ़्तर में एक साधारण पद पर ६०) मासिक वेतन पाते हैं। औरत, लड़की, नौकर और आप, चार आदमियों का ख़र्च! उस पर लखनऊ-शहर में रहना। बेचारे किसी तरह गुज़र करते थे। पर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी बड़ी सुशील, सुचतुर, गृह-कार्य में निपुण एवं परम पतिव्रता महिला थीं। उन्हीं की उचित शिक्षा का फल था कि जानकी में भी ये सब गुण पूर्णरूप से विद्यमान थे। वह हिंदी-मिडिल सम्मान के साथ पास कर चुकी थी, और उसकी आंतरिक इच्छा थी कि आगे अँगरेज़ी की शिक्षा प्राप्त करे। किंतु पिताजी के विशेष धन-संपन्न न होने एवं और किसी कारण से उसकी उक्त अभिलाषा पूरी न हुई। इसके अतिरिक्त एक और भी दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात उसकी इस इच्छा-पूर्ति में विशेष रूप से बाधक थी। वह यह कि अब जानकी बाल्यावस्था को पार कर की थी। पिछले महीने से उसने १४ वाँ साल पूरा करके १५ वें साल में पदार्पण किया था। तब यदि यह कहा जाय कि जानकी बाल्यावस्था का पार करती हुई यौवन-रूपी पहली सीढ़ी में पैर रख चुकी थी, तो कोई अत्युक्ति नहीं।

बाबू मुरलीमनोहरजी के पूर्वज बड़े ही कट्टर सनातनधर्मी एवं पुरानी लकीरों को पीटनेवाले लोगों में से थे। उनके ख़ानदान में लड़की को १० साल की अवस्था में अविवाहित रखना घोर पाप समझा जाता था। यद्यपि बाबू मुरलीमनोहर इस बीसवीं सदी के युग में अपने पूर्वजों की इस नीति को पूर्णतः निभाने की चेष्टा नहीं कर पाते थे, तथापि उसके प्रति वह सर्वतोभावेन विमुख भी न थे, बल्कि यथाशक्ति उसे निभा लेने की इच्छा रखते थे। उनकी पत्नी पढ़ी-लिखी थीं। उनकी यह आंतरिक इच्छा थी कि लड़की कम-से-कम हिंदी-मिडिल तक की शिक्षा अवश्य प्राप्त करे। ईश्वर की कृपा से उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई। अब लड़की ब्याहने योग्य हो गई थी। अतएव उन्होंने अब लड़की को स्कूल भेजना उचित न समझ, उसे स्वयं घर पर ही गृह-कार्य की शिक्षा देना ज़्यादा उचित समझा। फलतः माँ की आज्ञानुसार जानकी को भी अपना विचार बदल देना पड़ा। जी-जान से माँ-बाप की सेवा में लगे रहना एवं घर के काम-काज में माँ का पूरा-पूरा हाथ बटाना ही उसने अपना उचित कर्तव्य समझ लिया।

कमलादेवी पति की आमदनी से बड़ी ख़ूबी के साथ गृह-कार्य चलातीं और आय का कुछ-न-कुछ हिस्सा लड़की के विवाह के लिये हर महीने अवश्य ही बचा लेती थीं। उनके और कोई संतान न थी, केवल जानकी ही उनकी एकलौती बेटी थी। मुरलीमनोहर भी लड़की को कुछ कम प्यार न करते थे। अकेली होने के कारण वह माँ-बाप दोनों के आँखों की तारा थी। लड़की के लिये अच्छा-से-अच्छा घर-वर ढूँढ़ने में बाबू मुरलीमनोहर ने कोई भी कोर-कसर नहीं रख छोड़ी थी; पर लक्ष्मी-पात्र न होने के कारण उन्हें इसमें कोई सफलता नहीं मिली। जहाँ देखो, पहले दहेज़ का ही सवाल उठता था। बेचारे बड़े चिंतित थे। समाज में सिर नीचा करना पड़ रहा था। १५ साल की लड़की को अविवाहित रूप में आँखों से देखते हुए उनकी आँखें ज्योतिहीन-सी होती जाती थीं। बंधु-बांधवों की तानेबाज़ी एवं अशिष्ट व्यवहार रह-रहकर उनकी आत्मा को झुलसा देता था। शायद पत्नी के इस हठ से कि लड़की अच्छे घर में किसी पढ़े-लिखे होनहार, योग्य लड़के के साथ में ब्याही जाय, जहाँ वह सुख-पूर्वक रह सके, अभी तक वह उसकी शादी कहीं तय नहीं कर पाए थे।

पत्नी के उपर्युक्त वाक्य सुनकर वह बड़े असमंजस में पड़ गए, और किंकर्तव्य विमूढ़ होकर जी कड़ा करके बोले—"क्या मैं नहीं चाहता कि लड़की योग्य वर के साथ ही ब्याही जाय, और सुख-पूर्वक रहे? मुझे तो पं० मोहनलालजी के भाई मदनलाल के सिवा और कोई नज़र नहीं आता। ४० साल की उम्र कौन बहुत बड़ी उम्र है? हाँ, कुछ अधिक ज़रूर है। पर और कोई उपाय भी तो नहीं। न अधिक सोच-विचार करने का अवसर ही है। लड़की बहुत सयानी हो गई है। समाज में मुँह दिखाते हुए लजाता हूँ। बंधु-बांधवों में ऐसा कोई नहीं, जो समय पर साथ दे। जिसे देखो, वही नीचा दिखाने की कोशिश करता है। यह सब सोचकर ही मैंने पं० मोहनलालजी को कल निश्चय कर लेने के लिये बुलाया है। दफ़्तर भी कल नहीं जाना है। अतएव कल इसे निश्चय कर ही लेना होगा। अब अधिक विलंब सह्य नहीं।"

कमला की आँखें डबडबा आई थीं। उन्होंने दुख-भरे शब्दों में कहा—समाजवालों का हँसी उड़ाने का तो यह मौक़ा ही है। सुनती हूँ, मुहल्ले की औरतें कहा करती हैं—"छिः! इतनी सयानी लड़की भी पिता के घर में बिना ब्याहे कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी

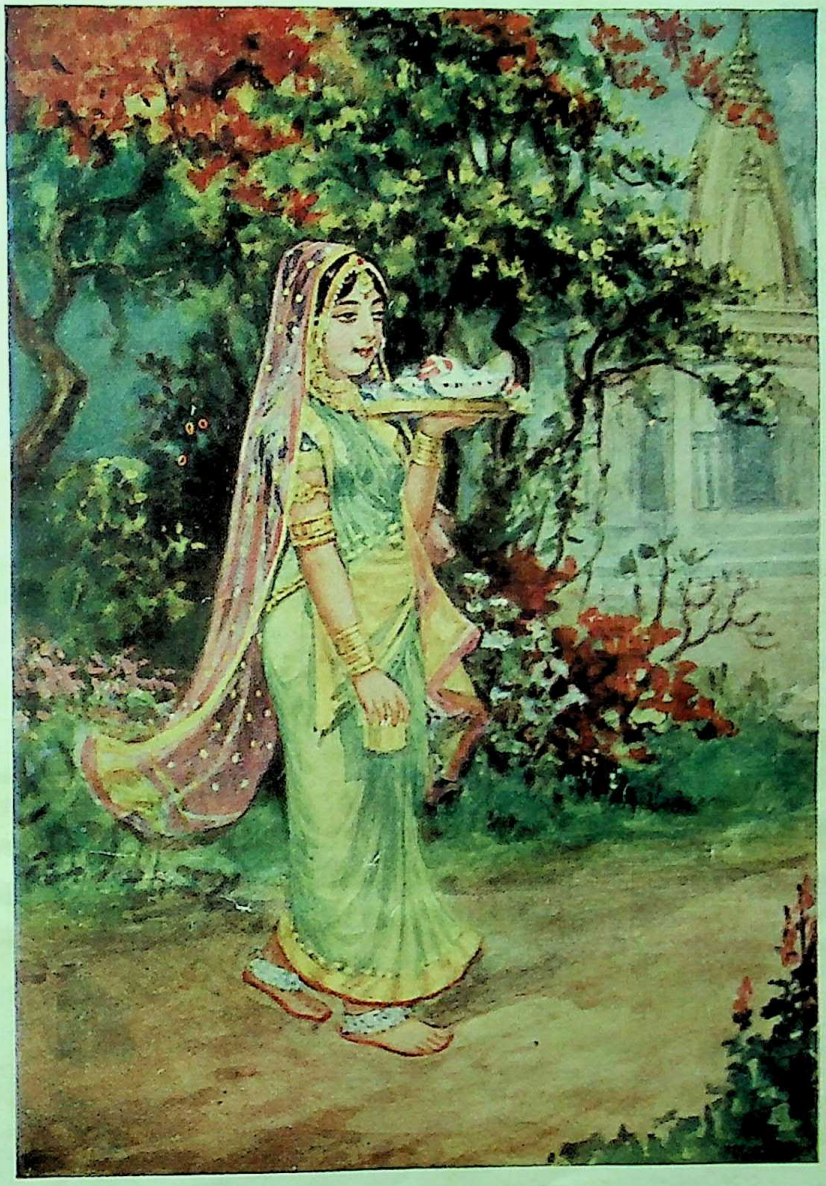

गौरी-पूजन

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुहाती है! माँ और बेटी में ज़रा भी फ़र्क नहीं है।"....क्या करूँ, कुछ नहीं समझ पाती। न-जाने जानकी के भाग्य में क्या बदा है!

इतने ही में जानकी एक तस्तरी में कुछ खाद्य पदार्थ और एक गिलास में चा लेकर कमरे में आई, और उसे पिताजी के सामने रखकर बाहर चली गई। उसे देखकर एक अपूर्व स्नेह के आवेश में मुरलीमनोहरजी की आँखों से प्रेमाश्रु टपक पड़े।

(२)

पत्नी के चले जाने के बाद बाबू मुरलीमनोहर ने खूँटी से कोट उतारा, और पहनकर जी बहलाने के लिये बाहर घूमने निकल गए। टहलते-टहलते बनारसीबाग़ में जा पहुँचे। छः बज रहे थे। आकाश में लालिमा छाई हुई थी। बादलों का लाल, पीला, बैजंती तथा नारंगी-रंग उसकी और भी शोभा बढ़ाए हुए था। बाग़ के विविध रंगों के पुष्पों की अपूर्व शोभा मन को मोहित किए लेती थी। आम, खजूर तथा ताड़ इत्यादि अनेक पेड़ों पर चढ़े हुए विशेषतः अजायबघर के तमाम तरह-तरह के रंग-बिरंगे पक्षियों की सुमधुर चहचहाहट से जो रसीली ध्वनि निकलती थी, वह क्या ही प्यारी मालूम देती थी!

बाबू साहब पक्षियों और पशुओं की बहार देखते हुए एक बेंच पर जा बैठे। उनकी बेंच के पास ही एक दूसरी बेंच पर दो और आदमी बैठे हुए थे। पर बाबू मुरलीमनोहर अपने विचारों में इतने मग्न थे कि उन्होंने उनकी ओर ध्यान तक न दिया।

सहसा उनमें से एक महाशय ने मुरलीमनोहरजी से कहा—"आप ख़ूब मिले!"

मुरलीमनोहर चौंककर बोले—ओहो! आप हैं, बाबू चंदनप्रसाद। क्षमा कीजिए, पीछे की तरफ़ बैठे होने से आपको नहीं देख पाया। कहिए, सब कुशल तो है? आज कई दिनों के बाद दिखलाई पड़े।

चंदन०—सब आपकी कृपा है। इस बीच कुछ काम से बाहर गया हुआ था, कल ही लौटा हूँ।

मुरली०—(दूसरे महाशय की तरफ़ इशारा करते हुए) आपकी तारीफ़?

चंदन०—आप हमारे मित्र हैं, आगरे के एक कालेज में अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर हैं। आपका नाम है पं० रघुनंदनप्रसाद एम्० ए०। इधर थोड़े दिनों से आपकी तबियत कुछ ख़राब थी। आगरे के प्रसिद्ध डाक्टर डी० एन्० पांडे का इलाज कराने आप यहाँ आए थे। आजकल आप छुट्टी पर हैं।

डा० डी० एन् पांडे का नाम सुनते ही बाबू मुरलीमनोहरजी ने आश्चर्य-पूर्वक प्रश्न किया—"वह तो आगरे में हैं, और आप यहाँ.....!"

चंदनप्रसाद बीच ही में बोल उठे—"डाक्टर पांडे आगरे से बदलकर लखनऊ के हेल्थ-आफ़िसर नियुक्त हुए हैं, अतएव उनके यहाँ चले आने से ही आप भी यहाँ तशरीफ़ लाए हुए हैं।

यह ख़ुशख़बरी सुनकर उनका हृदय उछल पड़ा। वह डाक्टर साहब को ख़ूब अच्छी तरह जानते थे, और उनके कुछ दूर के संबंधी भी होते थे। जब वह भी पहले आगरे में नौकर थे, तो अपने परिवार के साथ डाक्टर साहब के ही पड़ोस में रहा करते थे। दोनों कुटुंबों में बड़ा मेल-मेल हो गया था। इन्हीं सब कारणों से डाक्टर साहब भी उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे।

डाक्टर पांडे बड़े ही सज्जन तथा परोपकारी पुरुष थे। वह उन लोगों में से थे, जो अतुल संपत्तिवान् होते हुए भी प्राणि-मात्र को आदर की दृष्टि से देखते तथा निःस्वार्थ-भाव से अपना सब कुछ परोपकारार्थ न्योछावर कर देने में ज़रा भी नहीं हिचकते। यही कारण था कि उनकी शहर में बड़ी इज़्ज़त थी।

मुरलीमनोहर प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद को लक्ष्य करके बोले—"अहोभाग्य, जो आपके दर्शन हुए!"

"शुक्रिया अदा करता हूँ। पर यह कहना तो मुझे ही उचित है, आपको नहीं।"

कुछ देर तक आपस में बातें होती रहीं। उसके बाद बाबू चंदनप्रसाद अपने बाएँ हाथ की कलाई पर बँधी हुई सोने की घड़ी को देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए बोले—"उफ़्फ़ोह ! ९ बजना चाहता है, चलना चाहिए।" यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए। "अच्छी बात है, चलिए" कहकर अन्य दो सज्जन भी उठ पड़े, और चल दिए।

सामने सड़क पर बाबू चंदनप्रसादजी की फ़िटन खड़ी थी; तीनों आदमी उस पर बैठ गए। कोचवान ने पूछा—"बाबूजी, कौन-सी सड़क होकर चलूँ?"

बाबू साहब ने उस रोड होकर चलने का हुक्म दिया, जिस पर क़रीब ही में बाबू मुरलीमनोहर रहते थे। आदेशानुसार फ़िटन उधर चल पड़ी, और थोड़ी ही देर में उनके मकान के पास पहुँच गई। बाबू मुरलीमनोहर उतर पड़े, और बोले—"क्षमा कीजिएगा, मेरी वजह से आप लोगों को कुछ तकलीफ़ हुई।"

"वाह, इसमें तकलीफ़ की कौन-सी बात है" कहकर वह भी आगे चल दिए।

(३)

दूसरे दिन सवेरे नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर एक ताँगा किराया करके, वह डाक्टर साहब के यहाँ चल दिए। उनकी कोठी का पता कल उन्होंने बाबू चंदनप्रसादजी से पूछ ही लिया था। अतएव कुछ ही देर में ताँगा डाक्टर साहब की ड्योढ़ी के पास जा पहुँचा। बाहर फाटक पर एक छोटा सा साइनबोर्ड लगा था, जिस पर अँगरेज़ी में 'डा० डी० एन्० पांडे हेल्थ-आफ़िसर' लिखा हुआ था। किराया देकर उन्होंने ताँगेवाले को बिदा किया, आर डाक्टर साहब के कमरे में दाख़िल हुए। उन्हें देखते ही डाक्टर साहब उठ खड़े हुए, और बड़े ही आदर से उन्हें अपने पास ही एक दूसरी कुर्सी पर बिठाया, नौकर से चिलम भर लाने को कहकर डाक्टर साहब बोले—"कहिए, सब कुशल तो है?"

"जीहाँ, सब आपकी कृपा है, बहुत दिनों के बाद आज दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

"आप दुबले-से नज़र आ रहे हैं। क्या तबियत कुछ ख़राब है?"

डाक्टर साहब के इस प्रश्न को सुनकर बाबू मुरलीमनोहर कुछ सहम-से गए। वह भला इसका क्या उत्तर देते! उनके जी में तो आया कि उत्तर में कारण बतलाते हुए डाक्टर साहब से अपने घर-गृहस्थी की चिंताओं (जिनमें लड़की की शादी के लिये योग्य वर न मिलने की चिंता ही मुख्य थी) का ज़िक्र छेड़ दें। पर न-मालूम क्या सोचकर वह ऐसा न कर सके, और उत्तर में उन्होंने कह दिया—"जी नहीं, ऐसी तो कोई ख़ास शिकायत नहीं है। पर ...।" इतना कहकर वह रुक गए। यथार्थ बात उन्होंने इस ढंग से कही थी कि डाक्टर साहब को उनकी वास्तविक स्थिति का कुछ-न-कुछ आभास मिल जाय। हुआ भी वही। ऐसे योग्य डाक्टर के लिये किसी की हृदय-स्थिति का हाल जान लेना कौन-सी बड़ी बात थी? उनकी मुखाकृति को देखकर ही वह ताड़ गए कि अवश्य ही इनके हृदय में कोई-न-कोई भयंकर शूल वर्तमान है। वह सोचने लगे, पर वह बात है क्या? दो साल पहले, जब यह आगरे में थे, तब तो इन्हें ऐसी कोई भी चिंता न थी, जिससे बग़ैर किसी बीमारी के यह इस प्रकार घुलते हुए दिखलाई पड़ें। सरकारी नौकरी करते हैं, कोई इतना बड़ा परिवार भी नहीं कि उसका ख़र्च भी न चल सके। गिने-गिनाए तीन-चार आदमी हैं ही। तिस पर तनख़्वाह भी अब कुछ बढ़ ही गई होगी। तब क्या कारण है कि यह इस प्रकार चिंतित दिखलाई दें। क्या कहीं नौकरी तो गड़बड़ नहीं हो गई। इसी प्रकार कुछ देर तक डाक्टर साहब अनेक प्रकार की बातें सोचते रहे। आख़िर में उन्होंने हुक्के की नली को बाबू मुरलीमनोहर की तरफ़ बढ़ाते हुए शंका-समाधान करने की ग़रज़ से पूछा—"दफ़्तर तो आज बंद होगा न?"

"जीहाँ।" बाबू मुरलीमनोहर ने तंबाकू पीते हुए कहा।

अब डाक्टर साहब को उनकी वास्तविक चिंता जानने की उत्सुकता हुई। उन्होंने स्नेह-युक्त नेत्रों से बाबू मुरलीमनोहर की तरफ़ देखते हुए कहा—"आप कुछ चिंतित-से जान पड़ते हैं। यदि यह सच है, तो इस विषय में मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य जो कुछ सेवा हो, उसे निस्संकोच-भाव से कहिए। अगर मैं आपकी कुछ सहायता कर सका, तो अपने को धन्य मानूँगा।"

मुरलीमनोहर ने डाक्टर साहब की तरफ़ कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से देखा, और कुछ दबी हुई ज़बान से बोले—"यह सब आपका अनुग्रह है। अवश्य ही इस समय मैं एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी के भार से लदा हुआ होने के कारण कुछ ही नहीं, बल्कि विशेष चिंतित हूँ। और, इस संबंध में आपसे कोई 'सेवा' नहीं, बल्कि उससे भी कहीं अधिक मूल्य की सम्मति की आशा करता हूँ। आशा है, आप उचित परामर्श देकर अनुगृहीत करेंगे।"

डाक्टर साहब बोले—"यद्यपि मैं अपने को इस योग्य ज़रा भी नहीं समझता, तथापि आपकी आज्ञा का उल्लंघन करना भी मेरे लिये उचित न होगा। कहिए, क्या आज्ञा है?"

बाबू मुरलीमनोहर के निराश हृदय में बहुत-कुछ आशा-संचार हो आया। अत्यंत कृतज्ञता-पूर्ण नेत्रों से डाक्टर साहब की तरफ़ देखते हुए उन्होंने लड़की की शादी की बाबत तमाम कठिनाइयाँ, जो कुछ उनके सामने थीं, बयान कीं। सहृदय डाक्टर साहब उनकी दुःख-भरी गाथाओं को एकाग्रचित्त होकर इस प्रकार सुन रहे थे, मानो कोई रोगी अपना हाल बता रहा हो। उनका मोम-सरीखा कोमल हृदय, उनकी बातों को सुनकर पिघल-पिघलकर पानी-पानी होगया। मुरलीमनोहर जब सब कुछ कह चुके, तो डाक्टर साहब ने एक दीर्घ निःश्वास ली, और बोले—आप चिंता को छोड़िए। समय चिंतित होने का नहीं बरन् और भी दृढ़ता से अपनी इच्छानुकूल कार्य करने की प्रतिज्ञा निभाने का है। समाज के भय से अपनी इच्छा के प्रतिकूल ही जल्दी में ऐसा कार्य कर बैठना, जिसका परिणाम अच्छा होने की संभावना न हो, नितांत अनुचित है। मैं कदापि इससे सहमत नहीं। मुझे वास्तविक खेद है कि मैं आप-जैसे मित्र के साथ इस नए संबंध को करके अपने को गौरवान्वित न कर सका। यदि हरीश (डा० साहब का लड़का) की शादी न हो गई होती, तो मैं अवश्य ही सहर्ष आपसे यह संबंध स्वीकार कर अपने को धन्य मानता। फिर भी मैं सच्चे दिल से आपके साथ हूँ। मेरे योग्य जो कुछ कार्य आपको जान पड़े, उसे आप खुले-दिल से कहिए। मैं तो यही कहूँगा कि पं० मोहनलालजी को आप साफ़ जवाब दे दें। यह आप निश्चय समझिए कि जिस कार्य के करने में अपने दिल में ज़रा-भर भी उत्साह न हो, और किसी भय अथवा ज़बर्दस्ती से वह किया जाय, तो उस में सफलता की कोई आशा रखना वैसी ही बेवकूफ़ी है, जैसे जलती हुई आग के अंगारों पर जान-बूझकर हाथ रखकर यह आशा करना कि आँच न लगेगी!

बाबू मुरलीमनोहर डाक्टर साहब की असीम कृपा पर मन-ही-मन बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने उत्साह-भरे शब्दों में कहा—जीहाँ, आपका कहना अक्षरशः सत्य है।

थोड़ी देर बाद वह फिर बोले—आपने मेरा बहुत मान किया—इसके लिये मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ। पर मैं तो किसी हालत में भी……।

डाक्टर साहब बीच ही में बोल उठे—यह आप क्या कह रहे हैं? आप जानते हैं, मैं उन लोगों में नहीं, जो लक्ष्मी-जैसी चलायमान वस्तु के चंगुल में फँसकर आपे से बाहर हो जाते हैं, यहाँ तक कि जाति-पाँति को भी तिलांजलि दे बैठते हैं! धन-वैभव में भले ही आप सर्व-संपन्न न हों, पर इससे क्या? यह तो एक मामूली-सी बात है। हमारे लिये तो सभी दृष्टियों से आप आदर के पात्र हैं और रहेंगे। लड़की जैसे आपकी है, वैसे हमारी भी। अस्तु, चिंता की कोई बात नहीं, ईश्वर ने चाहा, तो सब अच्छा ही होगा। मैं आज ही इस विषय में दो-एक जगह ज़िक्र करूँगा, सफलता ईश्वर के हाथ है।

यह कहते हुए उन्होंने सामने लगी हुई मेज़ की घंटी बजाई। तुरंत नौकर आ उपस्थित हुआ। उससे उन्होंने चा लाने को कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

मुरली बाबू के चले जाने के बाद डाक्टर साहब ने सामने लगी हुई मेज़ की बहुत-सी अँगरेज़ी किताबों में से एक किताब उठाई, और उसे देखने लगे। सहसा बाहर मोटर का हार्न सुनाई दिया, और प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने कमरे में पदार्पण करते हुए उनका यथोचित अभिवादन किया। उनके कुर्सी पर बैठ जाने पर डाक्टर साहब ने मुस्किराते हुए पूछा—"कहिए प्रोफ़ेसर साहब, अब तो तबियत बिलकुल साफ़ है न?"

"जीहाँ।" प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने कुछ गंभीरता से कहा। फिर बोले—"देखिएगा, बुख़ार तो अब नहीं जान पड़ता।" यह कहते हुए उन्होंने अपना दाहना हाथ नब्ज़ दिखलाने की ग़रज़ से डाक्टर साहब की तरफ़ बढ़ाया।

डाक्टर साहब ने नब्ज़ देखकर कहा—तुम्हारा अनुमान ठीक है। पर अभी ५-७ रोज़ और आराम करने के बाद ही कालेज जाना ठीक होगा। छुट्टियाँ तो अभी होंगी ही। अगर ज़रूरत हो, तो कहो, मैं सर्टिफ़िकेट लिख दूँ।

"जी नहीं, छुट्टियाँ अभी ७ रोज़ की बाक़ी हैं। कोई आवश्यकता नहीं। अगर आज्ञा हो, तो आज शाम की गाड़ी से आगरे लौट जाने का विचार है। वहीं चलकर आराम करना ठीक होगा।"

"अच्छी बात है, तुम जा सकते हो। पर याद रहे, स्वास्थ्य की तरफ़ हमेशा ध्यान रखना।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

यह कहते हुए प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने जेब से नोटों का एक बंडल, जिसमें ५००) के नोट थे, निकाला और संकुचित-भाव से उसे डाक्टर साहब को देते हुए बोले—"यह आपकी सेवा में मेरी चिकित्सा के पुरस्कार-स्वरूप भेंट है, स्वीकार कर अनुगृहीत कीजिए।"

डाक्टर साहब ने उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि "तुम्हारे पिताजी से परम घनिष्ठता होने के कारण मैं तुम्हें अपने लड़के के ही समान समझता हूँ। अतएव यह ५००) रुपए, जो तुम मुझे दे रहे हो, अपने पिताजी को मेरी तरफ़ से यह कहकर लौटा देना कि इन्हें वह तुम्हारे विवाह के शुभ अवसर पर अपनी नव पुत्र-वधू के लिये किसी वस्तु के उपहार-स्वरूप ख़र्च कर दें।

प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने सकुचाते हुए कहा—"जब उक्त अवसर आवे ही नहीं, तब?"

डाक्टर साहब आश्चर्य-पूर्वक बोले—तुम्हारे-जैसे अनुभवी पुरुष को ऐसा विचार मन में लाना कदापि शोभा नहीं देता। ईश्वर ने चाहा, तो वह दिन बहुत जल्द आएगा, जब तुम इसी लखनऊ में पुनः शीघ्र ही 'वर' के रूप में पदार्पण करोगे।

प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने कुछ अन्यमनस्क होकर कहा—"मैं कुछ समझा नहीं।"

डाक्टर साहब बोले—तुम्हारी शादी मैंने यहीं लखनऊ में तजवीज़ की है। पं० मुरलीमनोहरजी को तुम आगरे से जानते ही होगे। बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। उन्हीं की लड़की है। लड़की के विषय में ज़्यादा कुछ न कहकर मैं केवल इतना ही कहूँगा कि तुम उसे स्वयं देख लो; क्योंकि मैं इस ख़याल का ज़रा-भर भी हामी नहीं कि विवाह-जैसा ज़िम्मेदारी का कार्य बग़ैर उनकी जानकारी के किया जाय, जिन्हें कि आजन्म निभाना है। मेरा तो ख़याल है कि आगरे में बहुत दिनों तक पड़ोस ही में रहने के कारण तुम एक दूसरे से अवश्य ही परिचित होगे। इसके अतिरिक्त हर बात की ज़िम्मेदारी तुम हम पर रख सकते हो। आशा है, तुम इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करोगे।

प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद और जानकी बचपन में साथ ही के खेले हुए थे। दोनों में अटूट स्नेह था, यहाँ तक कि उनके इस अपूर्व स्नेह को देखकर ही एक दिन बातों-ही-बातों में रघुनंदनप्रसाद की माँ ने जानकी की माँ से कहा था—"भई, मैं अपने रघुनंदन को तो तुम्हारी जानकी से ही ब्याहूँगी, बोलो तुम्हें स्वीकार है?" कमला ने प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा था—"क्यों नहीं, चाहो तो अभी टीका चढ़वा लो। ईश्वर करे, वह दिन बहुत जल्द आवे।" इस पर उन्होंने रघुनंदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूछा था—"क्यों रे, तू जानकी से शादी करेगा?" यद्यपि रघुनंदन उस समय यह नहीं जानते थे कि शादी क्या होती है, फिर भी वह यह सोचकर बहुत ख़ुश हुए थे कि जानकी और मैं अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर दूल्हा-दुलहिन बनेंगे, और ख़ूब खेलेंगे, और उत्तर में उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी अपनी तुतली बोली में कहा था—हाँ, अम्मा, ज़रूर करूँगा।

कई साल तक एक दूसरे के सहयोग में दोनों आगरे में सुख-पूर्वक रहे। इसके बाद रघुनंदन को कालेज की पढ़ाई के लिये आगरा छोड़ इलाहाबाद जाना पड़ा। उसके कुछ ही दिनों बाद मुरलीमनोहरजी की भी बदली लखनऊ को हो गई। वह भी सकुटुंब आगरा छोड़ लखनऊ चले आए थे।

* * *

डाक्टर साहब के उपर्युक्त वाक्य कहने पर उनके हृदय में जानकी की प्रिय स्मृति जागृत हो उठी। उसकी सहनशीलता, कार्यकुशलता एवं बुद्धि की तीव्रता से वह भली भाँति परिचित थे। अतएव उन्हें इसमें कोई आपत्ति न जान पड़ी। हृदय के भावों को छिपाकर उन्होंने संकुचित-भाव से कहा—"आपकी आज्ञा नहीं टाल सकता। किंतु इस विषय में पूज्य पिताजी के रहते हुए आपके प्रस्ताव को स्वीकार करने का मैं अपने को अधिकारी नहीं समझता। क्षमा कीजिएगा।"

"यह तो तुम्हारा कहना ठीक है, और वैसा ही होगा भी, पर इतना तो अवश्य ही मालूम हो जाना चाहिए कि इस संबंध में तुम कहाँ तक सहमत हो? बिना तुम्हारी राय जाने उनसे पूछना व्यर्थ है।"

"मुझे तो कोई आपत्ति न होगी" प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद ने दबी हुई ज़बान से कहा और चल दिए।

(५)

कई दिनों के बाद डाक्टर साहब ने मुरली बाबू को मोटर भेजकर बुलाया, और स्वागत करके बोले—उस दिन आपके जाने के थोड़ी ही देर बाद प्रोफ़ेसर रघुनंदनप्रसाद आए थे। शायद उन्हें आप देख चुके हैं। अवस्था २५ साल की है, बड़े होनहार युवक हैं। मेरे ख़याल से अगर कहीं उनसे जानकी की शादी हो जाय, तो क्या ही अच्छा हो। मेरी दृष्टि में तो इससे अधिक अच्छा घर और वर मिलना यदि असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। उच्चशिक्षा-प्राप्त एवं ख़ूब संपत्तिशाली हैं, तिस पर १५०) मासिक वेतन पर पहले-पहल गवर्नमेंट सर्विस पर नौकर हुए हैं। लड़की सुख-पूर्वक रहेगी, किसी चीज़ की कमी नहीं है। और क्या चाहिए? अगर आप उचित समझें, तो सब ठीक-ठाक कर, इसी महीने में, यह कार्य करा दिया जाय; क्योंकि शुभ कार्य में विलंब करना उचित नहीं। जितनी ही जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा है। हाँ, रघुनंदन कुछ सरकारी कार्य से यहाँ आए हुए हैं, शायद आज शाम को आगरे वापस चले जायँगे। अगर कहिए, तो उन्हें आपसे मिला दें।

डाक्टर साहब की इस परम कृपा के भार से बाबू मुरलीमनोहर दब-से गए। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो वह कोई सुखद स्वप्न देख रहे हों। यों तो जब से उन्होंने डाक्टर साहब के लखनऊ आने की ख़बर सुनी थी, तभी से, विशेषकर उस दिन सुबह की बातचीत से, जिसमें डाक्टर साहब ने अपना अमूल्य समय देकर सच्चे दिल से उनकी पूर्ण सहायता करने का वचन दिया था, वह अपने हृदय में बहुत-कुछ निश्चितता का अनुभव करने लग गए थे; पर इस वक़्त की बातचीत में तो उनसे कुछ कहते न बन पड़ा। बाबू चंदनप्रसाद के साथ प्रोफ़े० रघुनंदनप्रसाद से ही तो उस दिन बनारसीबाग़ में उनका साक्षात्कार हुआ था। अहा! कैसा भोला-भाला, सौम्य, सरल-स्वभाव युवक था! चेहरे पर कैसी सादगी और शांति विराजमान थी। उसके सुकोमल कंठ से कैसी सरस एवं गंभीर ध्वनि निकलती थी। बातचीत करने का ढंग कैसा निराला था, उसकी एक-एक बात से कैसी पूर्ण विद्वत्ता झलकती थी। शरीर से भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसा तेज टपक रहा था, यद्यपि वह शरीर पूर्ण स्वस्थ नहीं, वरन् कुछ अस्वस्थ-सा ही था।

हृदय के भावावेग को बलपूर्वक दबाते हुए उन्होंने कहा—उनके साथ तो कुछ दिन हुए बनारसीबाग़ में भेंट हुई थी, और वहीं बाबू चंदनप्रसादजी से यह भी मालूम हुआ था कि वह यहाँ आपसे अपना इलाज कराने आए थे।

"हाँ, उधर पढ़ने-लिखने में ज़्यादा स्टडी करने से उनकी तबियत कुछ ख़राब-सी हो आई थी। कामताप्रसादजी कमज़ोर दिल के आदमी तो हैं ही, बहुतेरा मना करने पर भी उन्होंने लड़के को जल-वायु-परिवर्तनार्थ मेरे साथ यहाँ भेज ही दिया था। बाबू चंदनप्रसादजी के निकट संबंधी होने के कारण वह उन्हीं के यहाँ ठहरे हुए भी थे। तब तो आपने अपने 'भावी जामाता' के दर्शन स्वयं ही कर लिए हैं। अच्छा, यह तो बताइए कि पूजा कब कीजिएगा?" डाक्टर साहब ने कुछ मुस्किराते हुए पूछा।

मुरलीमनोहर नम्रता-पूर्वक बोले—यह सब आपकी आज्ञा पर निर्भर है। मैं तो अटल भक्ति-पूर्वक तैयार हूँ। किंतु, पं० कामताप्रसादजी इस कार्य में सहमत होंगे—इसमें मुझे संदेह है; क्योंकि मैं किसी बात में भी उनकी बराबरी.....।

"यह सब आपका भ्रम है। पं० कामताप्रसादजी दान-दहेज के भूखे नहीं हैं। लड़की शिक्षित, सच्चरित्र, सुशील एवं उनके योग्य लड़के के अनुरूप ही कुलीन घर की हो, वही उनके लिये अनमोल निधि है। ईश्वर की कृपा से जानकी में यह सभी गुण विद्यमान हैं। जो उनसे भी छिपे नहीं हैं। यह देखिए, उन्होंने इस संबंध को सहर्ष मंज़र कर लिया है।"

यह कहते हुए डाक्टर साहब ने जेब से तार का एक लिफ़ाफ़ा निकालकर बाबू मुरलीमनोहरजी के हाथ में दे दिया।

मुरलीमनोहर उसे देखते ही अवाक् रह गए। मानो लाखों रुपए की लाटरी अपने नाम निकलने का तार पाया हो। कुछ देर तक वह तार का काग़ज़ एकटक देखते रहे। पहले तो आँखों पर विश्वास ही न हुआ; पर जब अपने को सँभालकर ग़ौर से उसे पढ़ा, तो सब समझ में आ गया। हृदय में सुख और संतोष का सागर-सा उमड़ आया। डाक्टर साहब के प्रति उनके हृदय-रूपी सुखसागर में श्रद्धा-प्रेम-रूपी असंख्य लहरें हिलोरें लेने लगीं। जिनके भावावेग में सामने कुर्सी पर बैठे हुए डाक्टर साहब उन्हें ऐसे मालूम हुए, मानो कोई साक्षात् देवता उन्हें इच्छानुकूल वरदान देकर उनके सामने बैठे हों। वह मन-ही-मन उनकी निस्स्वार्थ उदारता का गुणगान कर उन्हें प्रणाम करने लगे, और लगे उनकी इस अपूर्व कृपा को देख अपने भाग्य की सराहना करने।

हृदय के उन उमड़ते हुए भावों को बल-पूर्वक दबाते हुए अत्यंत श्रद्धा एवं विनय के स्वर में वह बोले—"आपकी कृपा का सदैव आभारी रहूँगा। कई महीनों से दिन-रात जी-तोड़ प्रयत्न करने पर भी जिस कार्य को मैं आज तक अपनी इच्छानुकूल कहीं भी निश्चित न कर सका, वही कार्य केवल थोड़े ही दिनों में 'अभिलाषा' से भी कहीं अधिक अच्छे रूप में निश्चित कर, आपने जो परम अनुग्रह किया है, उसे हम कभी नहीं भूल सकते। ईश्वर आपको इसका बदला दे।"

तारादत्त उप्रेती

लेखनी

कारे बिंदुवारे लिखे आखर अथोर अर्थ,
बिधु-तनवारी चटकारी से है दरसै।
फनी के फनन पै धरी है किधौं दिब्य मनि,
कोयला की खान सों कि कोहनूर सरसै।
कोइल के कंठ सों कढ़ी है किधौं मंजु तान,
मीसी मैं बसीसी कै बतीसी-दंत परसै;
कुंजी काव्य-कोस की, बिपंची गान-तंत्र की-सी,
लेखनी की पूजा कौं निखिल जग तरसै।

उदयशंकर भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेत-बाधा का निदान और चिकित्सा *

३. प्रेत-बाधा का उपचार

आत्रेयजी ने उन्माद-प्रकरण में महा-पैशाचिक घृत का सेवन, ग्रह और अपस्मार का नाशक बताया है; परंतु दैवी यत्न के संबंध में, चरक-संहिता में, जो कुछ कहा है, उस अंश का उद्धरण आवश्यक समझता हूँ—

बुद्ध्वा देशं वयःसात्म्यं दोषं कालं बलाबलम् ।
चिकित्सितमिदं कुर्य्यादुन्मादे भूतदोषजे ॥ ९७ ॥
देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तु बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म्म च ॥ ९८ ॥
सर्पिष्पानादि तस्येह मृदुभैषज्यमाचरेत् ।
पूजां बल्युपहारांश्च मन्त्राञ्जनविधींस्तथा ॥ ९९ ॥
शान्तिकर्म्मोष्टिहोमांश्च जप्यस्वस्त्ययनानि च ।
वेदोक्तान्नियमांश्चापि प्रायश्चित्तानि चाचरेत् ॥ १०० ॥
भूतानामधिपं देवमीश्वरं जगतः प्रभुम् ।
पूजयन्प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादजं भयम् ॥ १०१ ॥
रुद्रस्य प्रमथा नाम गणा लोके चरन्ति ये ।
तेषां पूजाञ्च कुर्वाण उन्मादेभ्यो विमुच्यते ॥ १०२ ॥
बलिभिर्मङ्गलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः ।
सत्याचारतपोज्ञानप्रदाननियमव्रतैः ॥ १०३ ॥
देवगुह्यकविप्राणां गुरूणां पूजनेन च ।
आगन्तुः प्रशमं याति सिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ॥ १०४ ॥
निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववान्न स युज्यते ॥ १०५ ॥

प्रेतों या दोषों से उपजे उन्माद में देश, वयस्, सात्म्य, दोष, काल, बलाबल समझकर इलाज करे। देव, ऋषि, पितृ, गंधर्वादि से उपजे पागलपन में बुद्धिमान् वैद्य तीखे अंजन न लगावे, मार-पीट आदि कड़ाई न करे, घृत-पानादि मृदु औषधि दे। पूजा, बलिदान, उपहार (उतारा आदि), मंत्र, अंजन, शांति-कर्म, यज्ञ, होम, जाप, स्वस्त्ययन और वेद-विहित नियम तथा प्रायश्चित्त करावे। समस्त जगत् के स्वामी भगवान् शंकर जो "भूतनाथ" हैं, उनकी जो नित्य यतचित्त हो पूजा करता है, वह पागलपन के भय से छूट जाता है। संसार में विचरनेवाले, शिव के प्रमथ-नामक गणों की जो पूजा करते हैं, वे भी उन्माद से छूट जाते हैं। बलिदान, मंगल-कर्म और होम करने से, औषधि और अगद धारण करने से, सत्य आचरण से, तप से, ज्ञान से, दान से, नियम से, व्रत से, देवता, गुह्यक, विप्र और गुरुजनों की पूजा से, सिद्ध मंत्रों से और औषधियों से भी आगंतु उन्माद शांत होता है। जो सत्त्ववान् मनुष्य मद्य-मांस से निवृत्त है, हित आहार करता है, संयम से रहता और पवित्र है, वह आगंतु उन्माद का शिकार नहीं होता।

ऊपर के अवतरण में एक बात याद रखने की है। तीखे अंजन लगाना, लाल मिरचों की धूनी, अमोनिया आदि अति तीव्र गंधों को सुँघाना, प्रेत-ग्रस्त को मारना-पीटना, जलाना, दागना आदि क्रूर क्रियाएँ अक्सर ओझों के हाथ कराई जाती हैं। जो प्रेत-बाधा नहीं मानते, वे उन्हें बड़ी निर्दयता से पीटते हैं। फल यह होता है कि इन सब क्रूरताओं से डरकर, थोड़ी देर के लिये, प्रेत भाग जाता है, और रोगी होश में आकर अपनी रक्षा के लिये गिड़गिड़ाने लगता है तथा बचने के लिये 'ढोंग' तक क़बूल कर लेता है। अतः क्रूर व्यवहार न करना चाहिए। ढोंग करनेवाले भी होते हैं, परंतु चतुर चिकित्सक नाड़ी आदि भिन्न-भिन्न रीतियों से जाँच करके इसका ठीक निर्णय कर सकते हैं। मार-पीट करना गँवारू ढंग है।

महर्षि आत्रेय ने औषधोपचार के सिवा (१) पूजा, (२) बलिदान, (३) उपहार, (४) मंत्र, (५) अंजन, (६) शांति-कर्म, (७) यज्ञ, (८) होम, (९) जाप, (१०) स्वस्त्ययन, (११) वेद-विहित नियम, और (१२) प्रायश्चित्त, ये बारह उपाय बताए हैं। **प्रेत-बाधा में भी औषधोपचार आवश्यक है।** बहुत-से लोग प्रेत-बाधा के नाम से यही समझते हैं कि औषधोपचार का बायकाट हुआ। औषधोपचार इसलिये आवश्यक है कि मिथ्याहार-विहार-जनित दैहिक ताप का शमन हो। परंतु औषधि की क्रिया में प्रेत बाधा डालता है। अतः इस

* पूर्व संख्या ७१ से संबद्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाधा को भी दूर करना चाहिए। कड़ी दवा देकर कुछ काल के लिये प्रेत को अकर्मण्य कर सकते हैं, परंतु वह भी, क्रूर-कर्म की तरह, स्थायी फल नहीं देती। इसलिये पहली विधि भगवान् शंकर की पूजा है। भगवान् शंकर भूतनाथ हैं; प्रेतों पर, पितरों पर, देवों पर, राक्षसों पर, यक्षों पर, समस्त योनियों के प्राणियों पर उनका शासन है। वर्तमान युग के लिये, महाराजाधिराज हरसूब्रह्म के रूप में, भगवान् शंकर का शासन समस्त प्रेत और पितृ-संसार पर है। उनका स्थान **त्रिताप-नाशन-क्षेत्र** है। बिहार-प्रांत के शाहाबाद-ज़िले के भबुआ सब-डिवीज़न में चैनपुर एक क़सबा है। प्राचीन नाम चंड-पुर है। पाँच सौ वर्ष पहले यह **चयनपुर**-नामक राजधानी थी। यहाँ के ध्वंसावशिष्ट क़िले के भीतर महाराज हरसूब्रह्म का चबूतरा और पिंड है। इसी चबूतरे पर दरबार लगता है। प्रेत-ग्रस्तों की दरख़्वास्तें पेश होती हैं, अपराधी पकड़कर हाज़िर किए जाते हैं, मुक़दमा सुना जाता है, अपराधियों को दंड दिया जाता है। शासन-यंत्र को चलाने के लिये हज़ारों कर्मचारी हैं। प्रेतों, पितरों, राक्षसों, दैत्यों की असंख्य सेनाएँ हैं। क़ैदख़ाने हैं, यंत्रणा-गृह हैं, जलाने के लिये अग्नि-कुंड हैं। यह सब सूक्ष्म तत्त्वों के संसार में हैं, परंतु वहाँ आविष्ट के शरीर पर आकर खेलने-बोलनेवाले प्रेतों के नित्य के अनेक प्रलापों से इन प्रबंधों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। प्रेत-ग्रस्त रोगी को, यदि वह जाने लायक़ हो, इसी **त्रिताप-नाशन-क्षेत्र** में ले जाना चाहिए। यह **श्रीहरसूब्रह्म-धाम** के नाम से मशहूर है। मुग़लसराय-जंकशन से गया की ओर जो ग्रैंडकार्ड-लाइन गई हुई है, उसी पर पाँचवाँ स्टेशन भबुआ-रोड है। यहाँ उतरकर मोटर-लारी या इक्के से या तो सीधे चैनपुर जा सकते हैं, या भबुआ में उतरकर, विश्राम करके, फिर वहाँ इसी तरह की किसी सवारी पर जा सकते हैं। वहाँ पहुँचकर विना विश्राम किए द्वार पर जाकर, दर्शन और दंडवत् करके, फिर कहीं ठहरना चाहिए। वहाँ पंडों के अड़तीस घर हैं। जिस किसी को पंडा नियुक्त करे, उसे दरबार में महाराज के सामने १-) सवाल ख़्वानी का रसूम देकर अपना कष्ट विस्तार से सुना देना चाहिए। अब शेष काम जिस तरह पंडा बतावे, उस तरह करे। पंडा दरबार में बैठावेगा, बैठने की विधि बतावेगा। कई बार इस तरह दरबार में हाज़िरी देने के उपरांत प्रेतों का आवेश होता है, उनसे उनका सारा हाल पूछ लिया जाता है—दोष स्वीकार करा लिया जाता है, फिर उचित दंड मिलता है। किसी-किसी पर उस समय बड़ी देर में आवेश होता है। किसी को महीनों लग जाते हैं। स्वयं मेरे प्रेत, कई बार की यात्रा में, बारंबार बैठते-बैठते कोई दो वर्ष में कंधों तक मेरे शरीर को आविष्ट कर सके। आध्यात्मिक दुर्बलता आवेश में सहायक होती है। अतः रोगी को घबराना नहीं चाहिए। एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक वहाँ ठहरना चाहिए। इतने दिनों में आवेश न भी हो, तो भी प्रेत-बाधा दूर हो जायगी। सतानेवालों को दंड मिल जायगा, और ऐसा मिलेगा कि फिर वे लौटकर सता भी न सकेंगे।

रोगी जब घर आवे, वहाँ की बताई विधि से होम करके, ब्राह्मण के हाथों से यंत्र पहन ले। सोमवार का व्रत किया करे। रोग-निवारण या तो हो चुका होगा, या औषधि के सेवन करते ही लाभ होने लगेगा, और रोग जल्दी छूट जायगा। धाम में रहते हुए भी दोनों जून भगवान् हरसूब्रह्म की और भगवती की पूजा—दर्शन करता रहे। वहाँ रहकर कुल काम भरसक अपने हाथों से करे। चढ़ाने को गंगाजल ले जाय, तो और भी अच्छा। वहाँ होम, जप आदि भी हो सकता है। जब वहाँ से चलने लगेगा, तब पंडा यंत्र देगा। यदि प्रेत क़ैद हुए हैं, तो उनका ख़र्च पंडे को देना होगा। यदि जलाए गए हैं, तो जलवाई प्रेत पीछे ३) तीन रुपए देने होते हैं। इसके सिवा अपनी श्रद्धा और पंडे के परिश्रम के अनुसार उसे यथेष्ट दक्षिणा देनी चाहिए। निर्धन रोगी यदि सच्ची श्रद्धा से वहाँ जाय और निर्धनता के कारण कोई पंडा उसकी बात न पूछे, तो भी वह दरबार में स्वयं महाराज की दोहाई देकर अपना कष्ट सुनावे। दोनों जून जाकर, दरबार में दंडवत् करके, निरंतर एक सप्ताह से दो सप्ताह तक बैठता रहे, तो महाराजाधिराज उसका काम अवश्य कर देंगे। परंतु जहाँ तक मुझे अनुभव है, सब पंडे ऐसे निर्दय नहीं हैं।

भगवान् शंकर का दरबार केवल चयनपुर में ही इस काम के लिये लगता है। उनके स्थान काशी और दिल्ली में भी हैं, परंतु यह काम नहीं होता।

रोगी यदि ऐसी लाचारी की दशा में हो कि न जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता हो, तो महाराज हरसूब्रह्म का नाम लेकर एक पैसा उस रोगी पर सात बार उतारकर, उसकी चारपाई में बाँधकर यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि रोगी के समर्थ हो जाने पर उसे हम ब्रह्मधाम ले जायँगे और पूजा करावेंगे। उसके अच्छा होते ही उक्त प्रतिज्ञा का पालन करे।

वहाँ के दरबार में वंश के लिये, दीर्घायु के लिये, स्वास्थ्य के लिये, धन के लिये भी दरख़्वास्तें पड़ती हैं। सच्चे मुक़दमों की फ़तह, अत्याचारियों से रक्षा, हक़ दिलवाने आदि के लिये भी सवाल दे सकते हैं। कोढ़, मिरगी, उन्माद, क्षय आदि सभी रोग अच्छे होते देखे गए हैं। वहाँ इस समय भी दो कोढ़ी हैं, जो अच्छे हो गए हैं, और जिन्हें दो वर्ष पहले मैंने बड़ी बुरी दशा में देखा था।

मंत्र-जाप, व्रत-होम इत्यादि की भी आवश्यकता होती है, तो अच्छे पंडे बतलाते हैं, और कराने का प्रबंध भी कर देते हैं।

कुछ लोग बलि, पूजा, पाठ, व्रत, होम, जप, तीर्थ और पंडे का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं। वे अवश्य कहेंगे कि आत्रेयजी ने ब्राह्मणों की मुट्ठी गरम करने के लिये यह उपाय बताए हैं। किंतु यह लांछना लगाते हुए वे बिलकुल भूल जाते हैं कि संसार के अन्य सभी पेशों पर यह स्वार्थ-दोष कहीं अधिक न्याय-परता से लगाया जा सकता है। हम दूर न जायँ और प्रकृत विषय को ही लें, तो प्रेत-ग्रस्त को सोचना चाहिए कि डाक्टरी इलाज में या किसी प्रकार के इलाज में कितना ख़र्च लगता है, और अगर मनुष्यों की अदालत में प्रेतों पर नालिश हो सकती, तो कितना अधिक ख़र्च और कितनी भारी परेशानी भी उठानी पड़ती; साथ ही सफलता का भी कोई निश्चय नहीं होता।

विना किसी पूर्व-कर्म के दुर्विपाक के किसी को प्रेत नहीं सताता। इसलिये वहाँ की अदालत से दंड भी लगता है। जो कुछ दंड लगता है, उसे काम हो जाने पर रोगी स्वयं जाकर दे आता है। यदि वह दंड न दे, तो जिस कष्ट से उसका उद्धार हुआ है, संभव है, फिर वैसा ही कष्ट उसे अबेर या सबेर कभी हो।

मनुष्य का शरीर प्रेतों का घर है। यह बहुत संभव है कि शीघ्र ही और प्रेतों का भी उभाड़ हो। उसे धैर्य-पूर्वक सह सके, तो बताई हुई अवधि बीत जाने पर जाय, और अपनी शिकायत पेश करे। फिर से १-) रसूम के नहीं देने होंगे। सह न सके, तो जब चाहे, तब जाय। श्रावण की कृष्ण-प्रतिपदा से आश्विन की अमावस्या तक वहाँ दरबार की छुट्टी रहती है, परंतु संकट पड़ने पर श्रद्धावानों का काम छुट्टी में भी हो जाता है। वहाँ जाने के लिये सर्वोत्तम समय माघ-शुक्ल नवमी है। प्रतिपदा से लेकर नवमी तक महाराज का 'नवरात्र' कहलाता है। पाँच नवमी वहाँ की हाज़िरी देनेवाले के समीप प्रेत आने की हिम्मत नहीं कर सकता। शारद और वासंती नवरात्रों में भी वहाँ जाने से साधारण समयों की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। काम जल्दी होता है।

श्रीहरसूब्रह्मधाम त्रिताप-नाशन-क्षेत्र है। यहाँ दैहिक, दैविक, भौतिक, तीनों तापों से छुटकारा मिल जाता है। परंतु जिन्हें इस पुनीत स्थान तक पहुँचना उसी तरह दुष्कर है, जैसे हमारे लिये रामेश्वरधाम *, उन लोगों को किसी तंत्र-शास्त्री या अथर्ववेदी विद्वान् से उचित प्रकार के उपाय कराने चाहिए। चंडी-पाठ और उसके प्रायोगिक मंत्रों से भी वही काम ले सकते हैं। देवियों की पूजा करके प्रेतों को उनके यहाँ बंदी करा सकते हैं। परंतु इन सब रीतियों में सफलता का होना इन कामों के करानेवाले कर्मनिष्ठ पंडितों की जानकारी और कुशलता पर निर्भर है। मुझे इन रीतियों की जाँच करने का अभी तक पर्याप्त अवसर नहीं मिला है। परंतु भगवान् आत्रेय के वाक्यों से जान पड़ता है कि बलि-पूजा, उपहार, मंत्रादि विधियों से ग्रह-दोष मिटता है।

महाराज हरसूब्रह्म रामनाम के अर्पण से, विष्णु-सहस्रनाम, गीता, रामायण, श्रीमद्भागवतादि पढ़कर सुनाने से या वहाँ पाठ करने से बहुत प्रसन्न होते हैं। इससे रोगी का प्रायश्चित्त भी हो जाता है।

यदि मेरे इस लेख से जीर्ण रोगियों का भला हो जाय, तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

रामदास गौड़

---

* भगवान् हरसूब्रह्म वस्तुतः श्रीरामेश्वरजी के अवतार हैं। जो लोग श्रीरामेश्वरजी की यात्रा करने में असमर्थ हैं, वे उत्तर-रामेश्वर श्रीहरसूब्रह्मधाम की यात्रा कर सकते हैं, और उसी पुण्य के भागी हो सकते हैं।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

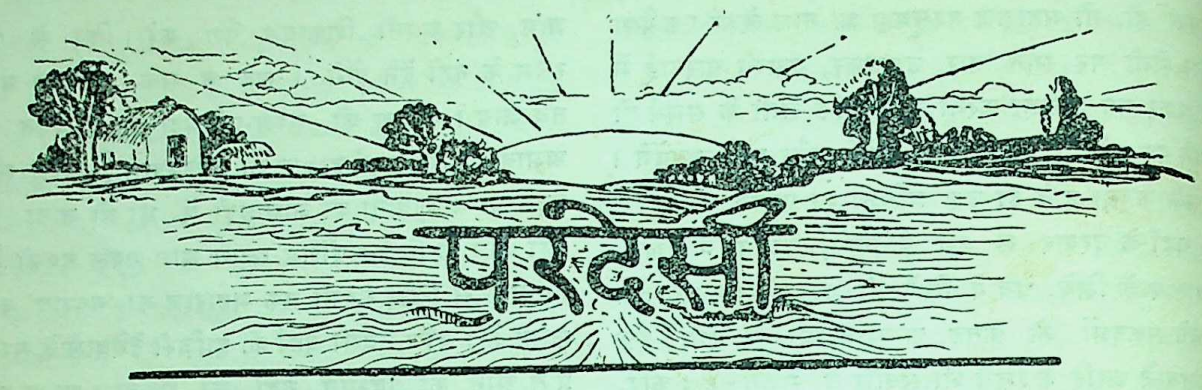

(उपन्यास)

बारहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन जब ललित बिदा होने के समय गौरीप्रसाद से मिलने गया, तो उन्होंने अनुमान किया कि कल उनकी बातों से नाराज़ होकर यह अभिमानी युवक चला जाना चाहता है। आश्चर्यान्वित होकर उन्होंने पूछा—"क्यों ललित, आज अचानक तुम्हें यह क्या सूझी ? कल की बातों से नाराज़ तो नहीं हो ?"

ललित ने लजाते हुए मुस्किराकर कहा—"जी नहीं। नाराज़ी किस बात की ! बल्कि मुझे तो यही ख़याल है कि मैंने ही अपनी उद्धत बातों से आप लोगों का दिल दुखाया है। अपने छोटे मुँह से मैं अक्सर बड़ी बातें कर बैठता हूँ, इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूँ। त्रिपाठीजी से भी मेरी तरफ़ से माफ़ी माँग दीजिएगा।"

गौरीप्रसाद ने कहा—"नहीं, माफ़ी का क्या सवाल है ! तो अचानक तुम्हारे सिर पर आज यह क्या सनक सवार हुई ?"

ललित ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, अम्मा की चिट्ठी आई है।"

"घर में सब कुशल तो है ?"

उदासीनता के साथ ललित ने कहा—"जीहाँ, सब कुशल है। किसी विशेष कार्य के लिये अम्मा ने मुझे बुलाया है।"

वकील साहब के सामने किसी प्रकार भी वह माधवी के विवाह की अप्रिय चर्चा नहीं छेड़ना चाहता था। धन के संबंध में अच्छे-अच्छे, बड़े-बड़े आदमियों का भी मन सिकुड़ जाता है, यह तजुर्बा उसे अच्छी तरह हो चुका था। अर्थ के अभाव के कारण माधवी का विवाह नहीं होने पाता, यह ख़बर पाकर वकील साहब अवश्य दुःखित होते। पर वह जानता था कि इससे भी अधिक दुःख और संकोच उन्हें इस बात पर होगा, जब वह देखेंगे कि सामर्थ्य होने पर भी हम मन की दुर्बलता या सांसारिक बुद्धि की प्रबलता के कारण उसकी इस अत्यंत संकटापन्न स्थिति में भी सहायता नहीं कर सकते। इस कारण, इस बात से, वह उन्हें संकुचित नहीं करना चाहता था।

गौरीप्रसाद ने कहा—"अच्छा, जाते हो, जाओ। यहाँ अपना ही घर समझो। आते-जाते रहना। अपनी अम्मा से हमारा प्रणाम कह देना।"

ललित उन्हें प्रणाम करके बाहर को चला आया। कमला और उर्मिला से वह पहले ही मिल चुका था। पर उसे आश्चर्य हुआ, जब दूसरे दरवाज़े से इशारा करके उर्मिला ने उसे भीतर बुलाया। उसने क्या सोचकर उसे बुलाया है ? इस संबंध में अनेक उद्भट कल्पनाएँ करता हुआ वह उसके कमरे में गया। उर्मिला ने इधर-उधर देखकर, किवाड़ बंद करके, अपने अंचल के भीतर छिपाई हुई एक छोटी-सी पोटली उसके हाथ में दी। आश्चर्य-चकित ललित ने पूछा—"इसमें क्या है ?"

उर्मिला ने काँपती हुई आवाज़ में, अत्यंत अनुनय-विनय के स्वर में, कहा—"इन्हें मेरी तरफ़ से माधवी को पहना देना।"

ललित ने खोलकर देखा, तो उसके भीतर सब सोने के गहने पड़े थे। उर्मिला के पिता ने उसके ब्याह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पर उसके लिये जो गहने बनवाए थे, वे उसके पास सुरक्षित रक्खे थे। वह स्वयं दो-एक साधारण गहनों के अतिरिक्त और कोई भी गहना नहीं पहनती थी। इतने दिनों का सुरक्षित धन लाकर उसने सब-का-सब ललित के हाथ में दे दिया था।

ललित ने स्तंभित होकर कहा—"यह करती क्या हो? क्या बावली हो गई हो? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता!"

अत्यंत कातर कंठ से उर्मिला ने कहा—"तुम्हें मेरे सिर की क़सम, ललित भैया! नाहीं करोगे, तो तुम्हें मेरी हत्या लगेगी।"

ललित से कुछ कहते न बन पड़ा। अस्वीकार करने से इस अपूर्व स्नेहमयी, अज्ञात-प्रकृति रमणी के मर्म में तीव्र वेदना पहुँचेगी, यह बात वह समझ गया। पर स्वीकार करने से उसका आत्माभिमान उसकी पौरुष-हीनता को बार-बार धिक्कारता रहेगा, यह भावना भी उसे कम सशंकित नहीं कर रही थी। उसने ध्यान-पूर्वक एक बार उर्मिला की वेदना-म्लान, करुणा-विह्वल, व्याकुल आँखों की ओर ताका। एक अभूतपूर्व उल्लास पलक-मात्र में बिजली की तरह उसकी समस्त आत्मा में, उसके सर्वांग में, उसकी आँखों में प्रदीप्त हो उठा। अविदित आनंद के इस भाव को वह लाख चेष्टा करने पर भी नहीं छिपा सका। अपने आत्माभिमान को तिलांजलि देकर, पोटली को चुपचाप जेब में रखकर उसने कहा—"अच्छा, अब जाता हूँ।"

उर्मिला ने फिर एक बार उसे प्रणाम किया। चिर-दुःखिता रमणी की करुण-वेदना का माधुर्य अपने साथ लेकर ललित बिदा हुआ।

स्टेशन पहुँचकर जब वह गाड़ी में बैठा, तो बैठा-बैठा केवल उर्मिला की ही बात सोचता रहा। वह अभी तक इस कर्म-निरता, करुणामयी, बुद्धिमती, रसवती, सुकुमारी विधवा की वास्तविक प्रकृति से अपरिचित था। वह सोचती कुछ और है, कहती कुछ और। वह नहीं चाहती कि कोई व्यक्ति यह कहने का दम भरे कि मैं उसे पहचान गया हूँ। कभी वह अत्यंत निष्ठुर, कठोर उपेक्षा दिखलाती है, कभी अमृतमय स्नेह की स्निग्ध धारा बरसाती है; कभी विषाद-म्लान गांभीर्य से स्तब्ध रहती है, कभी सुललित हास्य की चंचल लहरियों में अठखेलियाँ करती है; कभी प्रबल अभिमान से फूली रहती है, कभी वायु-विताड़ित सुकोमल कलिका की तरह असहाय होकर पृथ्वी में गिड़गिड़ा पड़ती है। ललित इस बात पर विशेष ध्यान देता आया था कि माधवी के विवाह की चर्चा छिड़ते ही वह उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करके किसी तरह वहाँ से चले जाने के लिये छटपटाती थी। इसमें संदेह नहीं कि कभी-कभी वह यह चर्चा स्वयं छेड़ बैठती थी, पर वह संभवतः शिष्टाचार की ख़ातिर। कुछ भी हो, यह निश्चय है कि कभी उसने ललित की अर्थ-संबंधी बेबसी पर अपनी सहानुभूति नहीं प्रकट की। पर आज अचानक हठ-पूर्वक वह अपने सभी गहने उसे सौंप गई! कोई उज्र, किसी प्रकार का एतराज़ सुनने के लिये वह राज़ी नहीं थी। ललित भी कम हठी नहीं है, यह बात वह अच्छी तरह से जानती थी। इसलिये उसे बुद्धि-भ्रष्ट करने के लिये इस प्रबल अभिमानिनी रमणी ने अपनी आँखों को वेदना-विह्वल करुणा से भर लिया था। इस मायावती की यह कैसी विचित्र लीला है! वह अपनी दुर्बलता को कोसने लगा। क्षणिक करुणा की माया से क्यों उसने आच्छन्न होकर उसका दान ग्रहण कर लिया!

वह सोचने लगा—अच्छा, क्या उर्मिला मुझे प्यार कर सकती है? मैं क्या उसका प्रेम जागरित करने के योग्य हूँ? मुझ शोक और मोह से पीड़ित दुर्बल व्यक्ति में क्या इतनी शक्ति है? अगर वह प्यार करती भी है, तो उसकी उपयोगिता ही क्या है! वह विधवा है, कुलीन घर में पैदा होकर अपना पवित्र जीवन बिता रही है। उसके संबंध में प्रेम की कल्पना करना भी भयंकर पाप है। मेरे-जैसे नीच, कुटिल एवं घृणित पापी के लिये ही उसके प्रेम की चाह करना संभव हो सकता है। सोच-सोचकर निरतिशय अनुताप से दग्ध होता हुआ वह अत्यंत व्याकुल हो उठा। आज तक वह अपने को बड़ा संयमी समझता था। इस बात का उसे कम घमंड नहीं था। उसके उसी तेजोद्दीप्त, गर्वित संयम का बाँध टूटा एक विधवा के प्रति प्रेम के भाव से! क्या इस नीचता और नपुंसकता की कैफ़ियत अपनी अंतरात्मा को दे सकता है? इस नीति-निंदित, समाज-निषिद्ध, व्यर्थ प्रेम के पाप का भार इतने भारों के होते हुए वह कैसे वहन करेगा? संसार में जब उसे पग-पग पर लांछित,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद-दलित और अपमानित होना पड़ रहा है, तो यह एक नई लांछना अपनी कलंक-कालिमा से क्यों उसके मन को कलुषित कर रही है? उसकी भीतरी आग में क्या इतनी भी शक्ति नहीं कि उसके इस चंचल, उचक्के मन को जलाकर भस्म कर दे? हाय, अनेक अतृप्त वासनाएँ, अनेक अतृप्त कामनाएँ कितने जन्मों से उसके इस अस्थिर मन को जकड़े हुए हैं! उनका निराकरण कैसे होगा! नीति का कोई नियम, ज्ञानियों का कोई उपदेश, उसे इस बंधन के उच्छेद में सहायता नहीं देता।

सोचते-सोचते वह श्रांत हो गया। कुछ देर तक निर्विकार-भाव से बैठा रहा। पर दुश्चिंता उसका साथ किसी तरह नहीं छोड़ना चाहती थी। वह उर्मिला के दिए हुए गहनों के संबंध में सोचने लगा। इनका क्या किया जाय! उसकी अम्मा के गले में जैसा विकट फंदा पड़ा हुआ था, उसे देखकर तो यही अनुमान होता था कि गहने देखकर वह लोभ-संयम नहीं कर सकेंगी, और अपना गला छुड़ाने के लिये अवश्य ही उन्हें बेचने का प्रस्ताव करेंगी। पर वह ऐसा करने के लिये कभी राज़ी नहीं हो सकता। उर्मिला के इस स्नेहोपहार से आर्थिक कष्ट का निवारण करना महापाप है। अगर किसी उपाय से माधवी का विवाह हो गया, तो वे सब उसी को पहनाए जायँगे। पर किस उपाय से विवाह की यह कठिन समस्या हल हो सकती है? इस संबंध में फिर वही अनेक दिनों की भ्रांति उसे जकड़ने लगी।

एक बात कई दिनों से अस्पष्ट रूप से उसके चित्त को आशा के भ्रमात्मक पथ में भ्रमण करा रही थी। कहीं यह सुकुमार आशा-लता भी भाग्य के फेर से छुईमुई की तरह न मुरझा जाय, इस कारण इस पर वह अधिक चिंता नहीं करना चाहता था। जब वह मेरठ में पढ़ता था, तो वहाँ एक युवक के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। युवक का नाम छैलबिहारी था। वह उससे तीन-चार साल बड़े थे। शारीरिक बल, सौंदर्य, बुद्धि, सौजन्य और सुशीलता में वह अपना सानी नहीं रखते थे। जब ललित स्कूल की निम्न कक्षाओं में पढ़ता था, तभी से वह उसके प्रति स्वभाव-गुण या किसी अन्य अवगत प्राकृतिक नियम के बंधन के कारण आकृष्ट हो गए थे। किसी व्यक्ति की प्रकृति में जब किसी विशेष गुण का अभाव रहता है, तब वह किसी दूसरे व्यक्ति में उसका सहज विकास देखकर उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। छैलबिहारी ललित के प्रति शायद इसलिये आकृष्ट हुए थे कि उसकी जंगली प्रकृति में एक प्रकार की स्वास्थ्यकर तीव्रता थी। और, ललित उनके प्रति इसलिये खिंच गया था कि उनका स्वभाव अत्यंत शांत, मधुर और सविनय था, और साथ ही उसमें एक प्रकार की सुदृढ़ स्थिरता वर्तमान थी। उसकी उद्धत और अस्थिर प्रकृति में नम्रता, विनय और धीरता का अभाव था। कुछ भी हो, दोनों की प्रीति दिन-दिन प्रबल रूप से बढ़ती गई। छैलबिहारी को उसके बिना दिन काटना दूभर हो जाता था, और उसे छैलबिहारी के बिना। छैलबिहारी के पिता की मेरठ-ज़िले में अच्छी-ख़ासी ज़मींदारी थी। वह अपने पिता के इकलौते बेटे थे। पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वही अब ज़मींदारी के एकाधिपति बन गए थे। बी० एस्-सी० पास करने के उन्होंने कालेज में पढ़ना छोड़ दिया था। उनसे माधवी के विवाह की कठिन समस्या का ज़िक्र करते ही वे तत्काल आर्थिक सहायता द्वारा उसके उद्धार के लिये तत्पर हो जायँगे, ललित को यह पूरा विश्वास था; फिर भी अपने एक ऐसे मित्र से, जिनके कारण वह बिना किसी कारण के जान देने के लिये हर वक़्त तैयार था, अत्यंत नीच स्वार्थ का प्रस्ताव करने की कल्पना करके, संकोच से वह जर्जरित हो उठता था। साथ ही उनके सिवा वह अपनी कोई गति भी नहीं देखता था; किंतु फिर-फिर इस अस्पष्ट आशामयी कल्पना को दबाया जाता था।

छैलबिहारी के संबंध में आज एक नई मायाविनी आशा उसके हृदय में जागरित होने लगी। अगर वे स्वयं माधवी के साथ अपना विवाह कर लेने का प्रस्ताव कर लेते, तो कैसा अच्छा न होता! पर यह क्या कभी संभव हो सकता है! ऐसा सत्पात्र मिलना क्या उन लोगों के भाग्य में बदा है! हाय रे दुराशा! उसे अच्छी तरह मालूम था कि छैलबिहारी का आदर्श आजीवन ब्रह्मचारी रहने का है। इस संबंध में दोनों मित्रों की घंटों तक आपस में बातें हुआ करती थीं। एक दिन बोर्डिंग हाउस में, छैलबिहारी के कमरे में, दोनों की बातें हुई थीं, वे अभी तक उसे अच्छी तरह याद थीं। ललित ने कहा था—मैं जानता हूँ, तुम अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन से, आंतरिक इच्छा से, ब्रह्मचर्य के कठिन आदर्श का पालन करना चाहते हो। तुम्हारे भीतर इसके लिये पूरी शक्ति भी वर्तमान है। पर, फिर भी, मैं इसे प्रकृति के सहज नियमों के विरुद्ध समझता हूँ। स्त्री और पुरुष की आत्माएँ पारस्परिक मिलन के लिये जो स्वभाव से ही किसी अज्ञात प्रबल शक्ति से प्रेरित होकर लालायित रहती हैं, उनके उस निखिल वेग को नियंत्रित करना मैं किसी तरह न्यायानुमोदित नहीं समझता।

छैलबिहारी ने उत्तर दिया था—"यह तो तुम ठीक कहते हो; पर प्रकृति की प्रत्येक सहज शक्ति के प्रवाह में बह जाना ही परम पुरुषार्थ है, मैं यह बात नहीं मान सकता। मनुष्य प्रकृति की विद्रोही संतान है। अन्य सब जीव विवर्तन के कठिन नियमों का अनुशासन निर्विवाद-रूप से मानते हैं, पर मनुष्य प्रतिकूल पारिपार्श्विक अवस्था में भी अपना अस्तित्व क़ायम रखने में समर्थ हुआ है। मनुष्येतर जीवों में पुरुष नगण्य समझा जाता है—उनमें स्त्रियों का ही सत्तात्मक राज्य रहता है। मनुष्य-समाज में पुरुष ने स्त्री की आत्मा को कुचलकर उसे कायर, दुर्बल और सत्ताहीन बनाकर अपनी मुट्ठी में दबा डाला है। मतलब यह कि प्रकृति की शक्तियों को मानकर चलने में ही बड़प्पन नहीं है। उन्हें अपने वश में करके, योग-द्वारा अपनी आत्मा की शक्ति का विकास करना ही पुरुषार्थ है।"

ललित ने मुस्किराकर परिहास-पूर्वक कहा था—"देखो भैया, स्त्री निखिल ब्रह्म की मूल-शक्ति का अर्द्धांश है। उसके साथ असहयोग करने से योग नहीं, वियोग होता है। योग का अर्थ है सृष्टि के अनंत सामंजस्य से अपनी आत्मा की शक्ति को संयोजित करना। विना सेल्फ़-कल्चर के इस सामंजस्य का स्वरूप नहीं जाना जा सकता। अपने अंतस्तल की प्रत्येक शक्ति को पूर्णतः अभिव्यक्त होने देना ही सेल्फ़-कल्चर है। कालिदास का वह श्लोक तो याद है न?—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

ऐसे जो रघुवंशी थे, उनका आदर्श स्मरण करो। योग अंत को होता है, जब आत्मोत्कर्ष पूरी तरह साधित हो जाता है। तुम तो यह चाहते हो कि सृष्टि का चक्र ही शून्य के तत्त्व में विलीन हो जाय।"

उसकी इस बात पर छैलबिहारी ठठाकर हँस पड़े थे। उन्होंने कहा था—"अरे भाई, सृष्टि की चिंता मत करो। दुनिया इस संबंध में तुमसे भी ज़्यादा चालाक और चैतन्य है। वह कभी मेरा अंध अनुकरण नहीं करेगी।"

कुछ देर चुप रहकर ललित बोला था—"भैया, मुझे यद्यपि संदेह है कि मेरा विवाह कभी होगा या नहीं, तथापि इस कारण मैं अपने ब्रह्मचर्य की डींग कभी नहीं मारूँगा। भगवान् से यही प्रार्थना करूँगा कि नारायण, इस जीवन में किसी स्त्री का प्रेम मुझे नहीं मिल सका, तो अगले जीवन के लिये मुझे स्त्री-जाति के प्रेम के योग्य बनाओ।"

पर छैलबिहारी अपने आदर्श पर अटल थे। फलतः माधवी के साथ उनका विवाह होने की कल्पना भयंकर दुराशा ही है, यह बात वह मन-ही-मन समझा हुआ था।

इसी प्रकार की चिंताओं में उसकी यात्रा का समय बीता।

इलाचंद्र जोशी

कामना

जैसे हमें चाहें तुम्हें वैसे तुम चाहो हमें,
नित-प्रति एक दूसरे को प्रेम-दान करें;
आपको न छोड़ें हम आप भी न छोड़ें हमें,
मिलें अनमिल ऐसे प्रणय-विधान करें।
'कौशलेंद्र' तज दें विवेक असमानता का,
बनें सम, व्यवहार एक ही समान करें;
भास होवैं आपमें हमारे गुण-रूप, सब
हमको विलोक आपका ही अनुमान करें।

कौशलेंद्र राठौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुचड़

(१)

बाबू कुंदनलाल कचहरी से लौटे, तो देखा कि उनकी पत्नीजी एक कुँजड़िन से कुछ शाक-भाजी ले रही हैं। कुँजड़िन पालक टके सेर कहती है, वह डेढ़ पैसे दे रही हैं। इस पर कई मिनट विवाद होता रहा। आख़िर कुँजड़िन डेढ़ ही पैसे पर राज़ी हो गई। अब तराज़ू और बाँट का प्रश्न छिड़ा। दोनों पल्ले बराबर न थे। एक में पसंघा था। बाँट भी पूरे न उतरते थे। पड़ोसिन के घर से सेर आया। साग तुल जाने के बाद अब घाते का प्रश्न उठा। पत्नीजी और माँगती थीं, कुँजड़िन कहती थी, अब क्या सेर-दो-सेर घाते में ही ले लोगी बहूजी। ख़ैर, आध घंटे में यह सौदा पूरा हुआ, और कुँजड़िन, फिर कभी न आने की धमकी देकर, बिदा हुई। कुंदनलाल खड़े-खड़े यह तमाशा देखते रहे। कुँजड़िन के जाने के बाद पत्नीजी लोटे का पानी लाईं, तो आपने कहा—आज तो तुमने ज़रा-सा साग लेने में पूरे आध घंटे लगा दिए। इतनी देर में तो हज़ार-पाँच सौ का सौदा हो जाता। ज़रा-ज़रा-से साग के लिये इतनी ठायँ-ठायँ करते तुम्हारा सिर भी नहीं दुखता?

रामेश्वरी ने कुछ लज्जित होकर कहा—पैसे मुफ़्त में तो नहीं आते!

"यह ठीक है, लेकिन समय का भी तो कुछ मूल्य है। इतनी देर में तुमने बड़ी मुश्किल से एक धेले की बचत की। कुँजड़िन ने भी दिल में कहा होगा, कहाँ की गँवारिन है। अब शायद भूलकर भी इधर न आवे।"

"तो फिर मुझसे तो यह नहीं हो सकता कि पैसे की जगह धेले का सौदा लेकर बैठ जाऊँ।"

"इतनी देर में तो तुमने कम-से-कम २० पन्ने पढ़े होते। कल महरी से घंटों सिर मारा। परसों दूधवाले के साथ घंटों शास्त्रार्थ किया। ज़िंदगी क्या इन्हीं बातों में ख़र्च करने को दी गई है।"

कुंदनलाल प्रायः नित्य ही पत्नी को सदुपदेश देते रहते थे। यह उनका दूसरा विवाह था। रामेश्वरी को आ अभी दो-ही-तीन महीने हुए थे। अब तक तो ननदजी ऊपर के काम किया करती थीं। पर रामेश्व की उनसे न पटी। उसको मालूम होता था, यह तो सर्वस्व ही लुटाए देती हैं। आख़िर वह चली गईं। तब रामेश्वरी ही घर की स्वामिनी है। वह बहुत चाहती है पति को प्रसन्न रक्खे। उनके इशारों पर चलती है। बार जो बात सुन लेती है, गाँठ बाँध लेती है। पर रो ही तो कोई-न-कोई नई बात हो जाती है, और कुंद लाल को उसे उपदेश देने का अवसर मिल जाता है।

(२)

एक दिन बिल्ली दूध पी गई। रामेश्वरी दूध गर्म का लाई, और स्वामी के सिरहाने रखकर पान बना रही। कि बिल्ली ने दूध पर अपना ईश्वरदत्त अधिकार सि कर दिया। रामेश्वरी यह अपहरण स्वीकार न कर सकी रूल लेकर बिल्ली को इतने ज़ोर से मारा कि वह दो-ती लुढ़कियाँ खा गई।

कुंदनलाल लेटे-लेटे अख़बार पढ़ रहे थे। बोले—अ जो मर जाती?

रामेश्वरी ने ढिठाई के साथ कहा—तो मेरा दूध क पी गई?

"उसे मारने से दूध मिल तो नहीं गया?"

"जब कोई नुक़सान कर देता है, तो उस पर क्रो आता ही है।"

"न आना चाहिए। पशु के साथ आदमी भी क्यों पशु जाय? आदमी और पशु में इसके सिवा और क्या अंतर है

कुंदनलाल कई मिनट तक दया, विवेक और शा की शिक्षा देते रहे, यहाँ तक कि बेचारी रामेश्वरी ग्लानि के रो पड़ी।

इसी भाँति एक दिन रामेश्वरी ने एक भिक्षुक दुत्कार दिया, तो बाबू साहब ने फिर उपदेश देना किया। बोले—तुमसे न उठा जाता हो, तो लाओ आऊँ। ग़रीब को यों न दुत्कारना चाहिए।

रामेश्वरी ने त्योरियाँ चढ़ाए हुए कहा—दिन-भर ताँता लगा रहता है। कोई कहाँ तक दौड़े। सारा भिखमंगों ही से भर गया है शायद।

कुंदनलाल ने उपेक्षा के भाव से मुस्किराकर कहा उसी देस में तो तुम भी बसती हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इतने भिखमंगे आ कहाँ से जाते हैं ? ये सब काम क्यों नहीं करते ?"

"कोई आदमी इतना नीच नहीं होता, जो काम मिलने पर भीख माँगे। हाँ, अपंग हो, तो दूसरी बात है। अपंगों का भीख के सिवा और क्या सहारा हो सकता है ?"

"सरकार इनके लिये अनाथालय क्यों नहीं खुलवाती ?"

"जब स्वराज्य हो जायगा, तब शायद खुल जायँ; अभी तो कोई आशा नहीं है। मगर स्वराज्य भी धर्म ही से आएगा।"

"लाखों साधु-संन्यासी, पंडे-पुजारी मुफ़्त का माल मेरी सम[illegible]या इतना धर्म काफ़ी नहीं है ? अगर इस धर्म उससे वसूल [illegible]ता, तो कब का मिल चुका होता।"

आँख की जगह [illegible] प्रसाद है कि हिंदू-जाति अभी तक मसीह-जैसे दया[illegible]व को रसातल पहुँच चुकी होती। रोम, विधान संसार से [illegible]रेया किसी का अब निशान भी नहीं पृथ्वी रक्त से [illegible]ति है, जो अभी तक समय के क्रूर आघातों का गला [illegible] करती चली जाती है।"

क़ायम[illegible]प समझते होंगे, हिंदू-जाति जीवित है। मैं तो उसे उसी दिन से मरा हुआ समझती हूँ, जिस दिन से वह अधीन हो गई। जीवन स्वाधीनता का नाम है, ग़ुलामी तो मौत है।"

कुंदनलाल ने युवती को चकित नेत्रों से देखा, ऐसे विद्रोही विचार उसमें कहाँ से आ गए ? देखने में तो वह बिलकुल भोली थी। समझे, कहीं सुन-सुना लिया होगा। कठोर होकर बोले—क्या व्यर्थ का विवाद करती हो। लजातीं तो नहीं, ऊपर से और बक-बक करती हो।

रामेश्वरी यह फटकार पाकर चुपकी हो गई। एक क्षण वहाँ खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से चली गई।

(३)

एक दिन कुंदनलाल ने कई मित्रों की दावत की। रामेश्वरी सवेरे से रसोई में घुसी, तो शाम तक सिर न उठा सकी। उसे यह बेगार बुरी मालूम हो रही थी। अगर दोस्तों की दावत करनी थी, तो खाना बनवाने का कोई प्रबंध क्यों नहीं किया ? सारा बोझ उसी के सिर क्यों डाल दिया ? उससे एक बार पूछ तो लिया होता कि दावत करूँ या न करूँ। होता तब भी यही, जो अब हो रहा था। वह दावत के प्रस्ताव का बड़ी ख़ुशी से अनुमोदन करती, तब वह समझती, दावत मैं कर रही हूँ। अब वह समझ रही थी, मुझसे बेगार ली जा रही है। ख़ैर, भोजन तैयार हुआ, लोगों ने भोजन किया और चले गए; मगर मुंशीजी मुँह फुलाए बैठे हुए थे। रामेश्वरी ने कहा—तुम क्यों नहीं खा लेते, या अभी सवेरा है ?

बाबू साहब ने आँखें फाड़कर कहा—क्या खा लूँ, यह खाना है, या बैलों की सानी !

रामेश्वरी के सिर से पाँव तक आग लग गई। सारा दिन चूल्हे के सामने जली, उसका यह पुरस्कार ! बोली—मुझसे जैसा हो सका, बनाया। जो बात अपने बस की नहीं है, उसके लिये क्या करती ?

"पूड़ियाँ सब सेवड़ी हैं !"

"होंगी"

"कचौड़ी में इतना नमक था कि किसी ने छुआ तक नहीं।"

"होगा"

"हलुआ अच्छी तरह भुना नहीं—कचाइँध आ रही थी।"

"आती होगी"

"शोर्वा इतना पतला था, जैसे चा।"

"होगा"

"स्त्री का पहला धर्म यह है कि वह रसोई के काम में चतुर हो।"

फिर उपदेशों का तार बँधा, यहाँ तक कि रामेश्वरी ऊबकर चली गई।

(४)

पाँच-छः महीने गुज़र गए। एक दिन कुंदनलाल के एक दूर के संबंधी उनसे मिलने आए। रामेश्वरी को ज्यों ही उनकी ख़बर मिली, जल-पान के लिये मिठाई भेजी, और महरी से कहला भेजा—आज यहीं भोजन कीजिएगा। वह महाशय फूले न समाए। बोरिया-बँधना लेकर पहुँच गए, और डेरा डाल दिया। एक हफ़्ता गुज़र गया, मगर आप टलने का नाम नहीं लेते। आव-भगत में कोई कमी होती, तो शायद उन्हें कुछ चिंता होती; पर रामेश्वरी उनके सेवा-सत्कार में जी-जान से लगी हुई थी। फिर वह भला क्यों हटने लगे।

एक दिन कुंदनलाल ने कहा—तुम ने यह बुरा रोग पाला।

रामेश्वरी ने चौंककर पूछा—कैसा रोग ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्हें टहला क्यों नहीं देतीं ?"

"मेरा क्या बिगाड़ रहे हैं ?"

"कम-से-कम १) की रोज़ चपत दे रहे हैं। और, अगर यही ख़ातिरदारी रही, तो शायद जीते-जी टलेंगे भी नहीं।"

"मुझसे तो यह नहीं हो सकता कि कोई दो-चार दिन के लिये आ जाय, तो उसके सिर हो जाऊँ। जब तक उनकी इच्छा हो, रहें।"

"ऐसे मुफ़्तख़ोरों का सत्कार करना पाप है। अगर तुमने इसे इतना सिर न चढ़ाया होता, तो अब तक लंबा हुआ होता। जब दिन में तीन बार जल-पान, तीन बार भोजन और पचासों बार पान मिलता है, तो उसे कुत्ते ने काटा है, जो अपने घर जाय।"

"रोटी का चोर बनना तो अच्छा नहीं !"

"कुपात्र और सुपात्र का विचार तो कर लेना चाहिए। ऐसे आलसियों को खिलाना-पिलाना वास्तव में उन्हें ज़हर देना है। ज़हर से तो केवल प्राण निकल जाते हैं, यह ख़ातिरदारी तो आत्मा का सर्वनाश कर देती है। अगर यह हज़रत महीने-भर भी यहाँ रह गए, तो फिर ज़िंदगी-भर के लिये बेकार हो जायँगे। फिर इनसे कुछ न होगा, और इसका सारा दोष तुम्हारे सिर होगा।"

तर्क का ताँता बँध गया। प्रमाणों की झड़ी लग गई। रामेश्वरी खिसिया कर चली गई। कुंदनलाल उससे कभी संतुष्ट भी हो सकते हैं, उनके उपदेशों की वर्षा कभी बंद भी हो सकती है, यह प्रश्न उसके मन में बार-बार उठने लगा।

(५)

एक दिन देहात से भैंस का ताज़ा घी आया। इधर महीनों से बाज़ार का घी खाते-खाते नाक में दम हो रहा था। रामेश्वरी ने उसे खौलाया, उसमें लौंग डाली और कड़ाह से निकालकर एक मटकी में रख दिया। उसकी सोंधी-सोंधी सुगंध से सारा घर महक रहा था। महरी चौका-बर्तन करने आई, तो उसने चाहा कि मटकी को चौके से उठाकर छींके या आले पर रख दे। पर संयोग की बात, उसने मटकी उठाई, तो वह उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी। सारा घी बह गया। धमाका सुनकर रामेश्वरी दौड़ी, तो महरी खड़ी रो रही थी, और मटकी चूर-चूर हो गई थी। तड़पकर बोली—मटकी कैसे टूट गई ? मैं तेरी तलब से काट लूँगी। राम-राम ! सारा घी मिट्टी में मिला दिया ! तेरी आँखें फूट गई थीं क्या या हाथों में दम नहीं था ? इतनी दूर से मँगाया, इतनी मिहनत से गर्म किया; मगर एक बूँद भी गले के नीचे न गया। अब खड़ी बिसूर क्या रही है, जा अपना काम कर।

महरी ने आँसू पोंछकर कहा—बहूजी, अब तो चूक हो गई, चाहे तलब काटो, चाहे जान मारो। मैंने तो सोचा—उठाकर आले पर रख दूँ, तो चौका लगाऊँ। क्या जानती थी कि भाग्य में यह लिखा है। न-जाने किस अभागे का मुँह देखकर उठी थी।

रामेश्वरी—मैं कुछ नहीं जानती, सब रुपए गर्म घी से वसूल कर लूँगी। एक रुपया जुरमाना बना रही हूँ। कहना। त अधिकार हि

महरी—मर जाऊँगी सरकार, कहीं एकार न कर सकी नहीं है। मारा कि वह दो-तीन

रामेश्वरी—मर जा या जी जा, मैं कुछ

महरी ने एक मिनट तक कुछ सोचा और बोले—अच्छा काट लीजिएगा सरकार। आपसे सबर नहीं हो मैं सबर कर लूँगी। यही न होगा, भूखों मर जाऊँगी जीकर ही कौन-सा सुख भोग रही हूँ कि मरने को डरूँ समझ लूँगी, एक महीना कोई काम नहीं किया। आदमी से बड़ा-बड़ा नुक़सान हो जाता है, यह तो घी ही था।

रामेश्वरी को एक ही क्षण में महरी पर दया आ गई बोली—तू भूखों मर जायगी, तो मेरा काम कौन करेगा

महरी—काम कराना होगा, खिलाइएगा, न काम कराना होगा, भूखों मारिएगा। आज से आकर आप के द्वार पर सोया करूँगी।

रामेश्वरी—सच कहती हूँ, आज तूने बड़ा नुक़सान कर डाला।

महरी—मैं तो आप ही पछता रही हूँ सरकार।

रामेश्वरी—जा गोबर से चौका लीप दे, मटकी टुकड़े दूर फेंक दे। और बाज़ार से घी लेती आ।

महरी ने ख़ुश होकर चौका गोबर से लीपा, और मटकी के टुकड़े बटोर ही रही थी कि कुंदनलाल आ गए, और हाँडी टूटी देखकर बोले—यह हाँडी कैसे टूट गई ?

रामेश्वरी ने कहा—महरी उठाकर ऊपर रख रही थी, उसके हाथ से छूट पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंदनलाल ने चिल्लाकर कहा—तो सब घी बह गया ?

"और क्या कुछ बच भी रहा।"

"तुमने महरी से कुछ कहा नहीं !"

"क्या कहती। उसने जान-बूझकर तो गिरा नहीं दिया।"

"यह नुक़सान कौन उठाएगा ?"

"हम उठावेंगे, और कौन उठावेगा। अगर मेरे ही हाथ से छूट पड़ती, तो क्या हाथ काट लेती।"

कुंदनलाल ने ओंठ चबाकर कहा—तुम्हारी कोई बात मेरी समझ में नहीं आती। जिसने नुक़सान किया है, उससे वसूल होना चाहिए। यही ईश्वरीय नियम है। आँख की जगह आँख, प्राण के बदले प्राण, यह ईसा-मसीह-जैसे दयालु पुरुष का कथन है। अगर दंड का विधान संसार से उठ जाय, तो यहाँ रहे कौन ? सारी पृथ्वी रक्त से लाल हो जाय, हत्यारे दिन-दहाड़े लोगों का गला काटने लगें। दंड ही से समाज की मर्यादा क़ायम है। जिस दिन दंड न रहेगा, संसार न रहेगा। मनु आदि स्मृतिकार बेवक़ूफ़ नहीं थे कि दंड-न्याय को इतना महत्त्व दे गए। और किसी विचार से नहीं, तो मर्यादा की रक्षा के लिये दंड अवश्य देना चाहिए। ये रुपए महरी को देने पड़ेंगे। उसकी मज़दूरी काटनी पड़ेगी। नहीं, तो आज उसने घी का घड़ा लुढ़का दिया है, कल को कोई और नुक़सान कर देगी।

रामेश्वरी ने डरते-डरते कहा—मैंने तो उसे क्षमा कर दिया है।

कुंदनलाल ने आँखें निकालकर कहा—लेकिन मैं नहीं क्षमा कर सकता।

महरी द्वार पर खड़ी यह विवाद सुन रही थी। जब उसने देखा कि कुंदनलाल का क्रोध बढ़ता ही जाता है, और मेरे कारण रामेश्वरी को घुड़कियाँ सुननी पड़ रही हैं, तो वह सामने जाकर बोली—बाबूजी, अब तो कसूर हो गया। आप सब रुपए मेरी तलब से काट लीजिए। रुपए नहीं हैं, नहीं तो अभी लाकर आपके हाथ पर रख देती।

रामेश्वरी ने उसे घुड़ककर कहा—जा भाग यहाँ से, तू क्या करने आई ? बड़ी रुपएवाली बनी है !

कुंदनलाल ने पत्नी की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—तुम क्यों उसकी वकालत कर रही हो ? यह मोटी-सी बात है, और इसे एक बच्चा भी समझता है कि जो नुक़सान करता है, उसे उसका दंड भोगना पड़ता है। मैं क्यों पाँच रुपए का नुक़सान उठाऊँ ? वजह ? क्यों नहीं इसने मटके को सँभालकर पकड़ा, क्यों इतनी जल्द-बाज़ी की, क्यों तुम्हें बुलाकर मदद नहीं ली। यह साफ़ इसकी लापरवाई है।

यह कहते हुए कुंदनलाल बाहर चले गए।

(६)

रामेश्वरी इस अपमान से आहत हो उठी। डाँटना ही था, तो कमरे में बुलाकर एकांत में डाँटते। महरी के सामने उसे रुई की तरह तूम डाला। उसकी समझ ही में न आता था, यह किस स्वभाव के आदमी हैं। आज एक बात कहते हैं, कल उसी को काटते हैं, जैसे कोई झक्की आदमी हो। कहाँ तो दया और उदारता के अवतार बनते थे, कहाँ आज पाँच रुपए के लिये प्राण देने लगे। बड़ा मज़ा आ जाय, जो कल महरी बैठ रहे। कभी तो इनके मुख से प्रसन्नता का एक शब्द निकला होता ! अब मुझे भी अपना स्वभाव बदलना पड़ेगा। यह सब मेरे सीधे होने का फल है। ज्यों-ज्यों मैं तरह देती हूँ, आप जामे से बाहर होते हैं। इसका इलाज यही है कि एक कहें, तो दो सुनाऊँ। आख़िर कब तक और कहाँ तक सहूँ ! कोई हद भी हो ! जब देखो डाँट रहे हैं। जिसके मिज़ाज का कुछ पता ही न हो, उसे कौन खुश रख सकता है। उस दिन ज़रा-सा बिल्ली को मार दिया, तो आप दया का उपदेश करने लगे। आज वह दया कहाँ गई। इनको ठीक करने का उपाय यही है कि समझ लूँ, कोई कुत्ता भूँक रहा है। नहीं, ऐसा क्यों करूँ। अपने मन से कोई काम ही न करूँ। जो यह कहें, वही करूँ, न जौ-भर कम, न जौ-भर ज़्यादा। जब इन्हें मेरा कोई काम पसंद ही नहीं आता, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो बरबस अपनी टाँग अड़ाऊँ। बस, यही ठीक है।

वह रात-भर इसी उधेड़बुन में पड़ी रही। सवेरे कुंदनलाल नदी स्नान करने गए। लौटे, तो नौ बज गए थे। घर में जाकर देखा, तो चौका-बर्तन न हुआ था। प्राण सूख गए। पूछा—क्या महरी नहीं आई ?

रामे०—नहीं।

कुंदन०—तो फिर ?

रामे०—जो आपकी आज्ञा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंदन०—यह तो बड़ी मुशकिल है।

रामे०—हाँ, है तो।

कुंदन०—पड़ोस की महरी को क्यों न बुला लिया ?

रामे०—किसके हुक्म से बुलाती। अब हुक्म हुआ है, बुलाए लेती हूँ।

कुंदन०—अब बुलाओगी, तो खाना कब बनेगा ! नौ बज गए हैं। इतना तो तुम्हें अपनी अक़्ल से काम लेना चाहिए था कि महरी नहीं आई, तो पड़ोसवाली को बुला लें।

रामे०—अगर उस वक़्त सरकार पूछते, क्यों दूसरी महरी बुलाई, तो क्या जवाब देती ! अपनी अक़्ल से काम लेना छोड़ दिया। अब तुम्हारी अक़्ल ही से काम लूँगी। मैं यह नहीं चाहती कि कोई मुझे आँखें दिखाए।

कुंदन०—अच्छा, तो इस वक़्त क्या होता है ?

रामे०—जो हुज़ूर का हुक्म हो।

कुंदन०—तुम मुझे बनाती हो ?

रामे०—मेरी इतनी मजाल कि आपको बनाऊँ ! मैं तो हुज़ूर की लौंडी हूँ। जो कहिए, वह करूँ।

कुंदन०—मैं तो जाता हूँ, तुम्हारा जो जी चाहे, करो।

रामे०—जाइए, मेरा जी कुछ न चाहेगा, और न कुछ करूँगी।

कुंदन०—आख़िर तुम क्या खाओगी ?

रामे०—जो आप दे देंगे, वह खा लूँगी।

कुंदन०—लाओ, बाज़ार से पूड़ियाँ ला दूँ।

रामेश्वरी रुपया निकाल लाई। कुंदनलाल पूड़ियाँ लाए। इस वक़्त का काम चला। दफ़्तर गए। लौटे, तो देर हो गई थी। आते-ही-आते पूछा—महरी आई ?

रामे०—न।

कुंदन०—मैंने तो कहा था, पड़ोसवाली को बुला लेना।

रामे०—बुलाया था। वह पाँच रुपए माँगती है।

कुंदन०—तो एक ही रुपए का तो फ़र्क़ था, क्यों नहीं रख लिया ?

रामे०—मुझे यह हुक्म न मिला था। मुझसे जवाब तलब होता कि एक रुपया ज्यादा क्यों दे दिया, ख़र्च की किफ़ायत पर उपदेश दिया जाने लगता, तो क्या करती।

कुंदन०—तुम बिलकुल मूर्ख हो।

रामे०—बिलकुल।

कुंदन०—तो इस वक़्त भी भोजन न बनेगा ?

रामे०—मजबूरी है।

कुंदनलाल सिर थामकर चारपाई पर बैठ गए। यह तो नई विपत्ति गले पड़ी। पूड़ियाँ उन्हें रुचती न थीं। जी में बहुत झुँझलाए। रामेश्वरी को दो-चार उल्टी सीधी सुनाईं, लेकिन उसने मानो सुना ही नहीं। कुछ बस न चला, तो महरी की तलाश में निकले। मगर जिसके यहाँ गए, मालूम हुआ, महरी काम करके चली गई। आख़िर एक कहार मिला। उसे बुला लाए। कहार ने दो आने लिए और बर्तन धोकर चलता बना।

रामेश्वरी ने कहा—भोजन क्या बनेगा ?

कुंदन०—रोटी-तरकारी बना लो, या इसमें भी कुछ आपत्ति है।

रामे०—तरकारी घर में नहीं है ?

कुंदन०—दिन-भर बैठी रहीं, तरकारी भी न ले बनी ? अब इतनी रात गए तरकारी कहाँ मिलेगी !

रामे०—मुझे तरकारी ले रखने का हुक्म न मिला था। मैं पैसा-धेला ज़्यादा दे देती तो ?

कुंदनलाल ने विवशता से दाँत पीसकर कहा—आख़िर तुम क्या चाहती हो ?

रामेश्वरी ने शांत-भाव से जवाब दिया—कुछ नहीं, केवल अपमान नहीं चाहती।

कुंदन०—तुम्हारा अपमान कौन करता है ?

रामे०—आप करते हैं।

कुंदन०—तो मैं घर के मामले में कुछ न बोलूँ ?

रामेश्वरी—आप न बोलेंगे, तो कौन बोलेगा। मैं तो केवल हुक्म की ताबेदार हूँ।

रात रोटी-दाल पर कटी। दोनों आदमी लेटे। रामेश्वरी को तो तुरंत नींद आ गई। कुंदनलाल बहुत देर तक करवटें बदलते रहे। अगर रामेश्वरी इस तरह असहयोग करेगी, तो एक दिन भी काम न चलेगा। आज ही बड़ी मुशकिल से भोजन मिला। इसकी समझ ही उलटी है। मैं तो समझाता हूँ, यह समझती है, डाँट रहा हूँ। मुझसे बिना बोले रहा भी तो न जाता। लेकिन अगर बोलने का यह नतीजा है, फिर बोलना फ़िज़ूल है। नुक़सान होगा, बला से, यह तो न होगा कि दफ़्तर से आकर बाज़ार भागूँ। महरी से रुपए वसूल करने की बात इसे बुरी लगी, और थी भी बेजा। रुपए तो न मिले, उलटे महरी ने काम छोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामेश्वरी को जगाकर बोले—कितना सोती हो तुम ?

रामे०—मजूरों को अच्छी नींद आती है।

कुंदन०—चिढ़ाओ मत। महरी से रुपए न वसूल करना।

रामे०—वह तो लिए खड़ी है शायद।

कुंदन०—उसे मालूम हो जायगा, तो काम करने आएगी।

रामे०—अच्छी बात है, कहला भेजूँगी।

कुंदन०—आज से मैं कान पकड़ता हूँ, तुम्हारे बीच में न बोलूँगा।

रामे०—और जो मैं घर लुटा दूँ तो ?

कुंदन०—लुटा दो, चाहे मिटा दो, मगर रूठो मत। अगर तुम किसी बात में मेरी सलाह पूछोगी, तो दे दूँगा, वरना मुँह न खोलूँगा।

रामे०—मैं अपमान नहीं सह सकती।

कुंदन०—इस भूल को क्षमा करो।

रामे०—सच्चे दिल से कहते हो न ?

कुंदन०—सच्चे दिल से।

प्रेमचंद

सुंदर और चमकीले बालों के बिना चेहरा शोभा नहीं देता।

कामिनिया ऑइल

(रजिस्टर्ड)

यही एक तेल है, जिसने अपने अद्वितीय गुणों के कारण काफ़ी नाम पाया है।

यदि आपके बाल चमकीले नहीं हैं, यदि वह निस्तेज और गिरते हुए दिखाई देते हैं, तो आज ही से "कामिनिया ऑइल" लगाना शुरू करिए। यह तैल आपके बालों की वृद्धि में सहायक होकर उनको चमकीले बनावेगा और मस्तिष्क एवं शिर को ठंडक पहुँचावेगा।

क़ीमत १ शीशी १), ३ शीशी २॥=), वी० पी० खर्च अलग।

ओटो दिलबहार

(रजिस्टर्ड)

ताज़े फूलों की क्यारियों की बहार देनेवाला यही एक ख़ालिस इत्र है। इसकी सुगंध मनोहर एवं चिरकाल तक टिकती है।

आध औंस की शीशी २), चौथाई औंस की शीशी १।) हर जगह मिलता है।

सूचना—आजकल बाज़ार में कई बनावटी ओटो बिकते हैं—अतः ख़रीदते समय कामिनिया ऑइल और ओटो दिलबहार का नाम देखकर ही ख़रीदना चाहिए।

सोल एजेंट—ऐंग्लो-इंडियन ड्रग ऐंड केमीकल कंपनी,

२८५, जुम्मा मसजिद मार्केट, बंबई

४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३० की समस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि-चर्चा

गोस्वामी तुलसीदासजी और उनकी जाति

गोस्वामीजी का आविर्भाव भारतीय प्रांगण में एक विचित्र प्रभाव रखता है। मानव-समाज में उनका कितना उच्च स्थान है, यह जन-समाज की उस अभ्यर्थना से भली भाँति विदित हो सकता है, जो तीन शताब्दियाँ व्यतीत होने पर भी, अटल श्रद्धा और भक्ति के साथ, उनके पादपद्मों में अत्यंत विनम्र और गद्गद-हृदय हो, मनसा-वाचा-कर्मणा-भाव से पुष्पांजलि अर्पण करती चली आती है। गोस्वामीजी की रचनाएँ साधारण जन-समाज के लिये अत्यंत सरल होती हुई भी विद्वत्समाज के लिये गूढ़तर भावों के विवेचन की अपेक्षा रखती है।

भारतीय हृदय गोस्वामीजी के भावों से कितना अनुरंजित हो गया है, इसका किंचित् परिचय हमें तभी प्राप्त होता है, जब किसी ग्रामीण कुटीर में कुछ भक्तगण रामायण-पाठ करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वह दृश्य कितना मुग्धकारी और हृदय पर स्थिर रूप से अंकित रहनेवाला है! यही नहीं, अश्रद्धावान् मानव-समाज के मनों पर भी वह अपनी अमिट रेख छोड़ जाता है। रामायण का प्रभाव राजमहलों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं से लेकर दीन-जनों की घास-फूस-निर्मित झोपड़ियों तक में अक्षुण्ण रूप से, एक भाव से, विस्तारित हो रहा है।

इस लेख द्वारा मैं प्रातःस्मरणीय गोस्वामीजी के रचना-सौष्ठव पर विचार करने को अग्रसर नहीं हुआ, और न उनके परिष्कृत भावों पर अपनी लेखनी द्वारा, विवेचनात्मक रीति से ही, दृष्टि डालने का प्रयत्न करूँगा। केवल उनके जीवन-चरित-संबंधी एक भाग पर आलोचनात्मक रीति से अपने भावों को व्यक्त करना चाहता हूँ।

भारतीय प्राचीन कवियों तथा महात्माओं ने अपने जीवन पर अत्यंत न्यून क्या, नाम-मात्र को भी प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया। इतिहास की प्रथा लुप्तप्राय हो जाने तथा निस्पृहता और विरक्ति की मात्रा मर्यादातीत हो जाने के कारण स्वचरित-संबंधी वर्णन स्वयं तथा अन्य जनों द्वारा अंकित करने के भाव ही तिरोभूत हो गए थे। गोस्वामीजी के संबंध में भी वही बात है। अपने जीवन के संबंध में उन्होंने एक शब्द भी निज लेखनी से नहीं लिखा। अतः इधर-उधर से बिखरी हुई सामग्री के साथ आभ्यंतरिक भावों पर अनुमान से कार्य लेते हुए उनकी जीवन-घटनाओं का अन्वेषण करने पर बाध्य होना पड़ता है। इसी मार्ग का अनुसरण करके कुछ महानुभावों ने गोस्वामीजी के जीवन की यत्किंचित् बातें प्रकाशित करने का सफल प्रयत्न किया है। परंतु बहुत-सी बातें अभी तक संदिग्ध दशा में ही पड़ी हैं। गोस्वामीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जाति-संबंधी भाव पर घोर मतभेद है। कुछ महानुभाव उन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण मानते हैं, कुछ कान्यकुब्ज, तथा अन्य कुछ उन्हें सनाढ्य-जाति में सम्मिलित करने की चेष्टा करते हैं। आजकल यही तीन मत इस संबंध में पाए जाते हैं—

प्रथम पक्ष के समर्थक शिवसिंह सेंगर, डा० ग्रियर्सन, पं० रामगुलाम द्विवेदी, महात्मा रघुवरदास और पं० रामचंद्रजी शुक्ल हैं।

द्वितीय पक्ष के समर्थक राजा प्रतापसिंह तथा मिश्रबंधु महोदय हैं।

तृतीय पक्ष के समर्थक माननीय बाबू श्यामसुंदरदास माने जाते हैं।

इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं कि अधिकांश मत गोस्वामीजी के सरयूपारीण माने जाने के पक्ष में ही हैं। यदि बाबा रघुवरदास-कृत तुलसी-चरित की सत्यता सिद्ध हो जाती और उस पर पूर्णतः विश्वास किया जाता, तो गोस्वामीजी का सरयूपारीण ही माना जाना निश्चित था। परंतु कई विशेष कारणों से तुलसी-चरित पर विद्वानों का भली भाँति विश्वास नहीं है। जिस समय 'मर्यादा' में इंद्रनारायण देवसिंहजी का तुलसी-चरित पर लेख प्रकाशित हुआ था, तभी से उस प्राचीन बृहत् ग्रंथ के दर्शन करने को विद्वत्समाज उत्सुक था; परंतु अद्यावधि वह मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। इसी कारण संदेहावृतमंडल वृद्धिगत होता गया। बेनीमाधवदास-कृत गोस्वामीजी का जीवन-चरित किन महानुभाव की आलमारी की शोभा बढ़ा रहा है, नहीं कहा जा सकता। जिसके आश्रय पर सरोज मंडित है। संभवतः पं० रामगुलाम द्विवेदी का आधार तो शिवसिंहसरोज ही है।

इसी प्रकार राजा साहब प्रतापसिंह-कृत 'भक्तकल्पद्रुम' किन आधारों की सृष्टि है, यह भी ज्ञात नहीं। मिश्रबंधु महोदय पहले जितने प्रबल कान्यकुब्ज मानने के पक्ष में थे, इस समय उतने नहीं हैं; बल्कि उनके भावों में कुछ शिथिलता-सी हो रही है।

बाबू श्यामसुंदरदासजी तो केवल भूतों का आश्रय लेकर अपने कथन को मनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। ऐसी दशा में गोस्वामीजी की जाति-संबंधी वार्ता भ्रमावर्त में ही चक्कर खा रही है। यह सत्य है कि जो मनुष्य जिन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत करता है, उन्हीं के अनुरूप स्वयं बन जाता है। माता, पिता, परिवार, पड़ोसी, ग्राम वासी, मित्र तथा परिचित जनों और मिलनेवालों से प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र पर पूरा प्रभाव पड़ता है; उसी अनुसार भाषा-भाव और भेष बन जाता है। गोस्वामीजी भी इस नियम के अपवाद नहीं कहे जा सकते। वह जिस समाज में पैदा हुए, पालन-पोषण पाया और जीवन व्यतीत किया, उसी के अनुसार उनका मानसिक ढाँचा प्रस्तुत हुआ था। जिस प्रकार उनके मानसिक भावों का स्वरूप था, उसी प्रकार का उनकी रचनाओं में प्रतिबिंब प्रदर्शित होता है। इस सिद्धांत के अनुसार गोस्वामीजी के जीवन पर चार भिन्न परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। उनकी आयु का अधिकांश भाग (१) राजापुर, (२) सोरों, (३) अयोध्या और (४) काशी में व्यतीत हुआ था। अतः इन चारों स्थानों का प्रभाव तुलसीदास पर विना पड़े नहीं रह सकता। सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि नं० १, ३ और ४ की जनता में सरयूपारीण ब्राह्मणों का प्राधान्य है। इन स्थानों तथा इनके समीपवर्ती भूमि में सरयूपारी ब्राह्मणों की ही बस्ती दृष्टि-गत होती है। नं० २ में सनाढ्य-ब्राह्मणों की अधिकता है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सरयूपारी ब्राह्मणों की भाषा और भाव का प्रभाव गोस्वामीजी पर विना पड़े नहीं रहा। रामायण आदि ग्रंथों में अवधी भाषा और महावीरों का पूरा प्रभाव प्रदर्शित होता है। संभवतः शूकर-क्षेत्र (सोरों) के भी कुछ भाव किसी-न-किसी रूप में आए हों। रामायण की भाषा ठेठ अवधी न होकर अवध और सोरों के मध्यवर्ती स्थान की ही विदित होती है। यों तो उनकी रचनाओं में संस्कृतगर्भित भाषा, अवधी, बुंदेलखंडी और ब्रजभाषा इन सब प्रकार की भाषाओं का स्पष्ट रूप दिखलाई देता है। सोरों अयोध्या की अपेक्षा मथुरा से अधिक समीप है। अतः उनकी रचना में ब्रजभाषा का यत्किंचित् रूप सोरों से ही प्रस्फुटित हुआ है। यदि इन स्थानों से भिन्न कहीं अन्यत्र का सामाजिक भाव हमें गोस्वामीजी की रचना में मिले, तो मानना पड़ेगा कि वह भी किसी विशेष समाज से गृहीत विकास में आया हुआ परिष्कृत रूप है।

विनयपत्रिका का १०७ वाँ पद निम्न-लिखित है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महराज रामादरयौ धन्य सोई,
गरुअ गुणराशि सर्वज्ञ सुकृती सूर
शीलनिधि साधु तेहि सम न कोई।
उपल केवट कीश भालु निशिचर शवरि
गीध, शम दम दया दान हीने;
नाम लिय, राम किय परमपावन सकल
नर तरत तिनके गुणगान कीने।
व्याध अपराध की साध राखी कौन
पिंगला कौन मति भक्ति भेई;
कौन धौं सोम-याजी अजामिल अधम
कौन गजराज धौं वाजपेयी।
पाण्डुसुत गोपिका विदुर कुबरी सबहिं
शोध किय शुद्धता लेश कैसो;
प्रेम लखि कृष्ण किय आपन तिनहुँ को
अब सुजस संसार हरिहर को जैसो।
कोल खस भिल्ल यवनादि खल राम कहि
नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो;
दीन दुखदमन श्रीरमण करुणाभवन
पतितपावन बिरद वेद गायो।
मंदमति कुटिल खल तिलक तुलसी-सरिस
भो न तिहुँ लोक तिहुँ काल कोऊ;
नाम की कानि पहिचानि जन आपनो
ग्रसति कलिव्याल राख्यो शरण सोऊ।

इस पद में श्रीरामचंद्रजी की महिमा का वर्णन है। उन्होंने जिन-जिन पतितों का उद्धार किया, उनका उल्लेख किया गया है। "अब कौन गजराज धौं वाजपेयी"-चरणांश पर दृष्टि डालिए। गोस्वामीजी कहते हैं—गज, जिसका विष्णु ने ग्राह से उद्धार किया, "कौन वाजपेयी था"? यहाँ वाजपेयी-शब्द उच्च जाति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सरयूपारीण और सनाढ्य-ब्राह्मणों में वाजपेयी नहीं होते। अतः उन लोगों में इस वाजपेयी-शब्द का कोई महत्त्व नहीं है। ऐसी स्थिति में, इस शब्द का प्रयोग उन लोगों द्वारा कदापि नहीं किया जा सकता। और, जब उक्त दोनों जातियों में इसका प्रयोग ही नहीं होता, तो गोस्वामीजी ने यह उन्हीं लोगों से पाया होगा, इसकी संभावना नहीं रहती। अत एव मानना पड़ेगा कि यह शब्द किसी भिन्न मार्ग से गोस्वामीजी के हृदय में आविर्भूत हुआ।

कान्यकुब्जों में 'वाजपेयी' बहुत उच्च माने जाते हैं। उनमें इस शब्द का प्रयोग भी, इसी अर्थ में, अधिकता से होता है, जिसके लिये गोस्वामीजी ने किया है। "तू कहीं का वाजपेयी नहीं है"—यह महाविरा कान्यकुब्ज लोगों में बहुधा प्रयुक्त होते पाया जाता है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने इस महाविरे का प्रयोग कान्यकुब्जों से ही लिया है। भाषा में माता और परिवार का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः अन्य समाज का संसर्ग रहते हुए भी भ्रातृवर्ग से प्राप्त प्रयोग का स्थित रहना स्वाभाविक है। एक बात यह भी विचारणीय है कि कान्यकुब्जेतर ब्राह्मणों में यह प्रयोग कदाचित् ही होता हो; मुझे तो ऐसा एक भी उदाहरण नहीं प्राप्त हुआ। यह सत्य है कि गोस्वामीजी में उपजातियों का भाव न था, परंतु जन्मगत महाविरों का प्रयोग कैसे भुलाया जा सकता है, जो वंश-परंपरा से प्राप्त हुआ हो। यदि कोई यह प्रश्न उपस्थित करे कि किसी कान्यकुब्ज से सुनकर इस प्रयोग को उन्होंने अंगीकार कर लिया होगा, तो इस अपनाने में कृत्रिमता का भाव भाषा में अवश्य दृष्टिगोचर होता। इस पद में यह शब्द उचित रीति से बैठ गया है, और महाविरा बहुत अच्छी तरह पद में आ गया है, जिसमें नाम-मात्र को भी कृत्रिमता अथवा शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती।

कान्यकुब्जों के बीच में निवास न रहने पर भी 'वाजपेयी'-शब्द का इस रूप में प्रयोग होना स्पष्ट रूप से उनकी पैतृक संपत्ति का द्योतक है, जो उनके परिवार तथा माता-पिता से प्राप्त हुई थी। आभ्यंतरिक साक्षी शतशः बाह्य प्रमाणों से अधिक प्रबल और दृढ़ आधार पर स्थित मानी जाती है। आंतरिक अन्वेषण में इस प्रकार के दो-एक प्रमाण मिल जाना ही पर्याप्त मानना पड़ेगा। श्री पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने पं० रामगुलाम द्विवेदी के कथनानुसार गोस्वामीजी को पाराशर-गोत्री दुबे मानकर "तुलसी पारासर गोत दुबे पत्योंजा के"-पद प्रमाणस्वरूप उद्धरण किया है; परंतु यह निश्चित है कि पत्योंजा के दुबे कान्यकुब्जों में होते हैं, सरयूपारीणों में पत्योंजा के दुबे नहीं होते। मेरे विचार से कान्यकुब्ज तथा सरयूपारीण, दोनों में एक स्थानीय उपविभाग 'पत्योंजा के दुबे' का इतना साम्य नहीं हो सकता। अतः उन्हें उसी समाज में उत्पन्न मानने के लिये हमें बाध्य होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है, जिसमें इस प्रकार के महाविरे प्रयुक्त होते हों, और किंवदंतियों का आश्रय भी मिल जाता हो।

अस्तु, कुछ भी हो, इन घटनाओं से मेरा अनुमान है कि गोस्वामीजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। क्या शुक्लजी ने "दुबे पत्योंजा के" वाक्य का पूर्वापर तारतम्य मिलाकर अनुमानों पर फल निर्धारित किया है? मैं इन उपजातियों का पक्षपाती नहीं हूँ। अतः इसके संबंध में किसी प्रकार का विशेष आग्रह नहीं है। केवल इतिहास की शुद्धता के कारण ही यह विवेचना करने का प्रयत्न किया है।

विद्वत्समाज को इन कथनों पर निष्पक्षपात होकर विचार करना चाहिए, ताकि ऐतिहासिक शुद्धता का रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। तदर्थ ही विद्वत्समाज से साग्रह प्रार्थी हूँ।

भगीरथप्रसाद दीक्षित

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

ठि० लारो रोल० जोख्सबर्ग (एम्० ए०)
१३।१२।२८

मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ। बच्चे की तबियत अच्छी है।

नारायणदास रामा—
ठि० मुकुर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर
बंबई—१३।१२।२८

आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ। अब दस मास का हुआ है।

अमृतलाल माषजी—
फ़ैजपुर, (जि० खानदेश) ता० १०।१२।२८

आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ।

केशवजी माणिकचंद—
छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८

आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षधा लगती और खाना भी हज़म होता है। अब पेट, पेडू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो। २२

पता—**गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. ज्योतिष्

सिद्धांतशिरोमणि (गणिताध्याय) प्रभा-भाषा-भाष्य-उपपत्ति-प्रस्तावना-सहित—टीकाकार, ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ४०+५७५; सचित्र और सजिल्द; डिमाई साइज; मूल्य ४॥)

सिद्धांतशिरोमणि गणित-ज्योतिष् का एक प्रामाणिक ग्रंथ है। इसके रचयिता भास्कराचार्यजी गणित और ज्योतिष् के आचार्य थे। इनकी बनाई हुई अंकगणित की पुस्तक 'लीलावती' बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने बीजगणित की भी पुस्तक लिखी है। सिद्धांतशिरोमणि अन्य ज्योतिष्-ग्रंथों से अधिक प्रचलित शायद इसलिये हुआ कि श्लोकों के साथ इसकी वासनाभाष्य-नामक टीका, बहुत ही सरल संस्कृत में स्वयं ग्रंथकार ने ही लिखी थी, जिससे ज्योतिष् का पठन-पाठन बड़ा सुगम हो गया था। कुछ लोग भ्रम से भास्कराचार्य को ही सूर्यसिद्धांत का रचयिता समझते हैं। इनका जन्म शक १०३६ अर्थात् संवत् ११७१ विक्रमीय में हुआ था, जैसा कि उन्होंने स्वयं सिद्धांतशिरोमणि-'गोलाध्याय' के प्रश्नाध्याय के श्लोक ५८ में लिखा है—

रसगुणपूर्णमहीशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ;
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ।

इस सिद्धांतशिरोमणि के दो खंड हैं। एक को गणिताध्याय और दूसरे को गोलाध्याय कहते हैं। ज्योतिष् के विद्यार्थी को दोनों खंडों का पढ़ना आवश्यक है; क्योंकि पहले में ज्योतिष् की गणना करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं, और दूसरे में उनकी उपपत्ति दी गई है।

इसी सिद्धांतशिरोमणि के दोनों खंडों की टीका ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी ने की है। गोलाध्याय की प्रभा-भाषाभाष्य-सहित टीका, १९११ ई० में, प्रकाशित हो गई थी। गणिताध्याय की टीका संवत् १९६९ की माघ-शुक्ल १० को पूर्ण हुई थी (देखो, पृष्ठ ५७५)। परंतु छपने में १२-१३ वर्ष का विलंब हो गया; क्योंकि इसकी प्रस्तावना १९८२ वि० में लिखी गई तथा छपाई १९२६ ई० में पूरी हुई। इस पर भी प्रकाशन दो वर्ष के विलंब के साथ इसी वर्ष हुआ!

पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी प्राचीन ज्योतिष् के आचार्य होने के सिवा आधुनिक ज्योतिष् की भी अच्छी जानकारी रखते हैं। आजकल पंचांग-संशोधन के संबंध में जो वाद-विवाद प्रायः ५० वर्ष से मराठी, बँगला और हिंदी-भाषा-भाषियों में चल रहा है, उसका भी आपने अच्छा अध्ययन किया है। इसलिये आपके हाथों से लिखी हुई टीका के उत्तम होने में कोई संदेह ही नहीं हो सकता। आपने सिद्धांतशिरोमणि के मूल श्लोक और उसके वासना-भाष्य का हिंदी में पूरा अनुवाद ही नहीं किया है, बरन् संस्कृत में 'प्रभा'-नामक टीका भी लिखी है। उपपत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाने के लिये चित्र और उदाहरण भी दिए हैं, जिससे भास्कराचार्यजी का संपादित विषय बहुत स्पष्ट हो जाता है। चित्रों के साथ यदि उनका संक्षेप में वर्णन भी दे दिया जाता, तो और भी अच्छा होता।

प्रायः सवा छः सौ पृष्ठों के बृहत् ग्रंथ में केवल अध्यायों की एक सूची एक पृष्ठ में दी गई है। यह पर्याप्त नहीं। अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका दे देने से पाठकों को पुस्तक से लाभ उठाने में और इष्ट विषय को कम-से-कम समय में खोज लेने में बड़ी सुगमता होती है। यदि यह न हो, तो कम-से-कम विषय-सूची ही विस्तार के साथ देनी चाहिए थी, जैसा १९१५ ई० में कलकत्ते की छपी हुई जीवानंद विद्यासागर के संस्करण में है।

प्रस्तावना में ज्योतिष् का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है, तथा बहुत-सी आवश्यक बातें लिखी गई हैं, जिन पर ज्योतिषियों को ध्यान देना चाहिए।

हिंदी छापनेवाले प्रेस बहुत कम देखने में आए, जिनमें छापे की अशुद्धियाँ न होती हों। जब भाषा की पुस्तकें और स्कूली—बालकों को पढ़ाई जानेवाली—पुस्तकों में छापे की अनगिनित भूलों की भरमार रहती है, तो गणित और विज्ञान की पुस्तकों में छापे की भूलों का रह जाना आश्चर्य नहीं; क्योंकि हिंदी के बहुत कम कंपोज़ीटर और प्रूफ़-संशोधक गणित के संकेतों की जानकारी रखते हैं। इसलिये यह पुस्तक भी इन दोषों से मुक्त नहीं है। ऐसी दशा में शुद्धिपत्र का देना बड़ा ही आवश्यक हो जाता है। कहीं-कहीं प्रूफ़ का संशोधन इतनी बुरी तरह से किया गया है कि विषय को समझने में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। जैसे, पृष्ठ १९७ में आधुनिक रीति से चरासु जानने का जो उदाहरण दिया है, वह ज़रा भी समझ में नहीं आता।

पृष्ठ २०४ में राशियों के पलात्मक उदयमान के जो अंक दिए गए हैं, वे अशुद्ध हैं। यही अशुद्धि गोलाध्याय की टीका, पृष्ठ १८७ में, भी रह गई है। जान पड़ता है, इस पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया गया, और वहाँ से ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया गया है। पृष्ठ २२५ की पाद-टिप्पणी में संक्रांति के पुण्य-काल के संबंध में लिखा गया है—

"प्राचीन आचार्य और सूर्यसिद्धांतादि के आर्षवाक्यों से सिद्ध होता है कि बिंबकेंद्र का ही राश्यंत में संचरण-काल संक्रांति-काल होता है। और, इन मंडलांत अनार्ष-मान में जो कहीं नेमिसंचार माना है, वह महा अशुद्ध एकदेशी मत है।"

यह समझ में नहीं आया; क्योंकि सूर्यसिद्धांत का जो श्लोक उदाहरण में दिया गया है, वह भी इस मत का पोषक नहीं है।

ऐसे दोषों के रहते हुए भी पुस्तक उपादेय है। इसकी छपाई और काग़ज़, दोनों गोलाध्याय की छपाई और काग़ज़ से अच्छे हैं। टीका ऐसी है कि जो लोग केवल हिंदी जानते हैं, वे भी भास्कराचार्य की सिद्धांतशिरोमणि को पढ़ने का पुण्य प्राप्त कर सकते हैं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

२. क़ानून

संग्रह ज़ाब्ता दीवानी—प्रस्तुत पुस्तक पं० चंद्रशेखरजी शुक्ल, कानपुर की लिखी हुई है। पुस्तक हिंदी-भाषा में अपने ढंग की अनोखी है। इसमें ज़ाब्ता दीवानी का संकलन योग्यता के साथ किया गया है। पुस्तक के कुछ प्रसंग बहुत अच्छे लिखे गए हैं, जिनमें से गवाहों के बयान और जिरह एवं बहस के प्रकरण उल्लेखनीय हैं। ज़ाब्ता दीवानी के दफ़ा ग्यारह-सरीखे कुछ क्लिष्ट विषय पुस्तक में छोड़ दिए गए हैं। यह उचित ही हुआ है।

क़ानून की पुस्तकें बहुत जल्द पुरानी हो जाती हैं। नित्य नई नज़ीरें निकला करती हैं, और पुरानी नज़ीरें बहुधा बेकाम हो जाती हैं। स्वयं क़ानून और ज़ाब्ते में नित्य नए संशोधन हुआ करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी आज समालोचना के दिन ठीक वैसी ही जान पड़ती है। नए संशोधन ने, पृष्ठ १६ में, "वकील की नियुक्ति"-नामक नोट को पुराना कर दिया है। प्रिवी कौंसिल ने अभी हाल में तय किया है कि डिगरीदार किसी भी समय—तीन साल के बाद भी—सर्टिफ़िकेट दे सकता है, अतः पृ० १०९ पर दिया हुआ "मियाद" का नोट आज की तारीख़ का वास्तविक क़ानून नहीं है। इसी प्रकार पृष्ठ १६९ पर दी हुई नज़ीरें, जो हुक्म इम्तिनाई में दफ़ा ८० का लागू होना नहीं मानती थीं, हाल में प्रिवी कौंसिल ने रद कर दी हैं। यह नज़ीरें पुस्तक प्रकाशित होने के बाद की हैं, किंतु पृष्ठ १०७ में जो बाम्बे-हाईकोर्ट की नज़ीरें दी हैं, वे पुस्तक प्रकाशित होने के पूर्व ही, सन् १९२५ ई० में, ४९ बाम्बे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ ५४८में, फुल बेंच द्वारा रद कर दी गई थीं; किंतु इस नज़ीर का पुस्तक में वर्णन न होना आश्चर्य की बात है।

पुस्तक की भाषा विषय को देखते हुए अच्छी है; किंतु पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग एवं परिभाषाओं में कहीं-कहीं त्रुटियाँ जान पड़ती हैं। जैसे पृष्ठ ३९ में "विनायमुख़ासमत", cause of action की परिभाषा एवं पृष्ठ १२१ में दफ़ा ५० की रूलिंग में अँगरेज़ी के शब्दों "may apply" और "shall apply" का अनुवाद "दरख़्वास्त दे सकता है" तथा "दरख़्वास्त देगा।" काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का क़ानूनी पारिभाषिक शब्दों का कोष बन जाने पर इन असुविधाओं के दूर हो जाने की बहुत-कुछ संभावना है।

पृष्ठ११४पर नोट के नीचे, अँगरेज़ी में, नज़ीरों के बाद दिया हुआ जो उदाहरण है, उससे लोगों को भ्रम हो सकता है कि डिगरी के तीन साल बाद भी इजरा की दरख़्वास्त दी जा सकती है। इसी प्रकार पृष्ठ ९१ पर, काग़ज़ी शहादत के संबंध में, यह हिदायत कि "वकील को चाहिए कि अपने गवाहों के बयान ख़तम हो जाने के बाद तमाम ऐसे काग़ज़ात पेश कर दें....." भ्रमोत्पादक है। ब्रिटिश-इंडिया के न्यायालय इस प्रथा के घोर विरोधी हैं, और साधारण नियम यह है कि तनक़ीह के दिन तक सब काग़ज़ातों को पेश हो जाना चाहिए।

पृष्ठ ९२ का यह वर्णन कि सबूत और सफ़ाई ख़तम कर चुकने के बाद, आर्डर १८, रूल २ के क्रमानुसार, अदालतों को संबोधन किया जावे, ठीक नहीं है। आर्डर १८ का प्रयोग सबूत के पहले, मुक़दमा खुलने पर, होता है।

पुस्तक में ज़ाब्ता दीवानी के अतिरिक्त इंडियन रजिस्ट्रेशन और लिमिटेशन-ऐक्ट भी व्याख्या-समेत दिए हुए हैं, जिनका समावेश होने से पुस्तक विशेष उपयोगी हो गई है। प्रकाशक ने इंडियन वालंटियर्स-ऐक्ट, न्यूज़-पेपर्स-ऐक्ट और स्टेट आफ़ सेज़-ऐक्ट भी शामिल कर दिए हैं, जो बहुधा फ़ौजदारी की किताबों में पाए जाते हैं।

आशा है कि शुक्लजी ने जिन रिपोर्टों और गवर्नमेंट-रूल्स के संकेताक्षरों का व्यवहार किया है, उनकी एक सूची अगले संस्करण में, पुस्तक के आरंभ में दे देंगे, और पुस्तक में, अवध के चीफ़कोर्ट ने जो क़ायदे बनाए हैं, उनका समावेश कर देंगे।

× × ×

क़ानून सूद-संग्रह—यह पुस्तक भी पं० चंद्रशेखरजी शुक्ल के परिश्रम का फल है। पुस्तक में सूद-संबंधी ऐक्टों का उलथा दफ़ावार, व्याख्या-सहित है। इस ढंग की पुस्तकें प्रायः क़ानून-पेशा लोगों के काम की होती हैं। सर्वसाधारण को ऐसी पुस्तकों से किसी विषय का सम्यक् ज्ञान होना कठिन है। यदि शुक्लजी इस पुस्तक को भी संग्रह ज़ाब्ता-दीवानी की भाँति लेक्चरों के ढंग पर लिखने की कृपा करते, तो दफ़ाओं की शब्द-योजना और नज़ीरों की भाषा में दबे हुए सिद्धांत साधारण जनता के लिये भी सुबोध हो जाते। हर्ष की बात है, शुक्लजी ने इस संग्रह के अंत में पाँच प्रकरण दिए हैं, जिनके पढ़ने से विषय की जटिलता बहुत कम हो जाती है।

इस पुस्तक के आरंभ में शुक्लजी ने संकेताक्षर की एक सूची भी दे रक्खी है। यदि नज़ीरों का हवाला देने के पहले उन्हें असल से मिला लिया जाता, तो बहुत-सी ग़लतियाँ छपने से रह जातीं। हिंदी जाननेवाले वकील और मुख़्तारों के लिये पुस्तक उपादेय है।

गंगाप्रसाद वाजपेयी

× × ×

३. मानव-शास्त्र

जीव-विज्ञान—लेखक और प्रकाशक, पं० बलदेवप्रसाद मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एम्० आर० ए० एस्०; पृष्ठ-संख्या ४२४; छपाई-सफ़ाई उत्तम; आरंभ में श्रीमान् राजा चक्रधरसिंह महोदय का नेत्ररंजक चित्र, और भूमिका के बाद ग्रंथकर्ता का; मूल्य सजिल्द का ३); पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र, जेनरल कंट्रेक्टर, राजनाँदगाँव, सी० पी० से प्राप्त।

यह मानव-शास्त्र का एक उत्तम ग्रंथ है। लेखक ने इसे जिज्ञासा-प्रकरण, परिभाषा-प्रकरण, शरीर-प्रकरण, बुद्धि-प्रकरण, मन-प्रकरण, चित्र-प्रकरण, अहंकार-प्रकरण और उपसंहार-परिशिष्ट आदि ९ भागों में विभाजित कर दिया है। विषय-विभाग सुंदर है। विचार-शृंखला उत्तम और बोधगम्य है। लेखक ने पाश्चात्य और प्राच्य, दोनों शास्त्रों के अध्ययन और साधु-महात्माओं के सत्संग से ग्रंथ की सामग्री इकट्ठा की है। शैली और मीमांसा से भी जान पड़ता है कि लेखक महोदय विषय का मर्म समझते हैं। उनकी निजी अनुभूति के कारण ग्रंथ की महत्ता विशेष बढ़ गई है। ऐसे गहन विषय को बड़ी सरल और सुबोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में समझाया गया है। ग्रंथ अपने ढंग का उत्तम है। छात्रों और मानव-तत्त्व-जिज्ञासुओं के बड़े काम का है।

सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"

× × ×

४. नागरिक शास्त्र

सरल भारतीय शासन—भारतीय ग्रंथ-माला का पाँचवाँ पुष्प; पृष्ठ-संख्या १३२; मूल्य ॥)

नागरिक शिक्षा—भारतीय ग्रंथ-माला का १३ वाँ पुष्प; पृष्ठ-संख्या १२९; मूल्य ॥)

दोनों पुस्तकों के लेखक, श्री० भगवानदास केला; भूमिका-लेखक, पं० दयाशंकर दुबे और प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथ-माला, वृंदावन; शिक्षा-संस्थाओं के लिये नमूने की प्रति का मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तकें लेखक ने मिडिल स्कूलों में पढ़नेवाले, छोटी-छोटी श्रेणी के, विद्यार्थियों के लिये लिखी हैं। कई प्रांतों में शिक्षा-विभाग की ओर से, पाठ्य-क्रम में, 'भारतीय शासन' और 'नागरिक शिक्षा' के विषयों को स्थान मिल गया है। यह बहुत उपयुक्त है। वर्तमान समय में शासन-सुधार की पुकार चारों ओर से हो रही है। प्रचलित शासन-प्रणाली में क्या दोष हैं, और उन्हें दूर कर कौन-कौन-से सुधार करने की आवश्यकता है, यह बात तब तक ठीक तरह से नहीं बताई जा सकती, जब तक बतलानेवालों को वर्तमान शासन-पद्धति का ठीक-ठीक ज्ञान न हो। एक बात और है कि प्रतिनिध्यात्मक शासन तभी सुचारु-रूप से चल सकता है, जब प्रजा के वे लोग, जिन्हें मत देने का अधिकार है, अपने उत्तर-दायित्व को उचित रीति से समझें। इसके लिये उन्हें उनके कर्तव्यों का जितना ज्ञान कराया जाय, उतना अच्छा।

आज जो विद्यार्थी हैं, भविष्य में वही नागरिक होंगे। अतएव विद्यार्थियों को इन विषयों की मोटी-मोटी बातें बतला देना बड़ा लाभकारी है। पर ये विषय विद्यार्थियों को बहुधा रूखे लगते हैं, और इन विषयों की पुस्तकें भी बहुधा ऐसी क्लिष्ट रहती हैं कि उनसे उनका विशेष लाभ नहीं होता। हर्ष का विषय है कि केलाजी की पुस्तकों में यह दोष नहीं है। उन्होंने सरल भाषा में इन विषयों को विद्यार्थियों के हृदय पर अंकित करने का प्रयत्न किया है, और हमारी समझ में उन्हें इसमें बहुत कुछ सफलता मिली है।

विषय का क्रम मिडिल स्कूल की निम्न श्रेणियों के लिये 'नागरिक शिक्षा' में, और मिडिल स्कूल की सर्वोच्च श्रेणी के लिये 'सरल भारतीय शासन' में दिया गया है। 'ग्राम-प्रबंध', 'नगर-प्रबंध', 'पुलीस', 'अदालतें', 'जेलें', 'उद्योग-धंधे', 'व्यापार', 'रुपए-पैसे', 'स्वास्थ्य-रक्षा' आदि पहली पुस्तक के विषय और 'ज़िले का शासन', 'प्रांतीय सरकार', 'भारत-सरकार', 'पार्लियामेंट' और 'भारतीय शासन-सुधार', 'कर' आदि दूसरी पुस्तक के विषय हैं।

'नागरिक शिक्षा' में कुछ चित्र भी दिए गए हैं, जिनसे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

पुस्तकों की छपाई, काग़ज़ आदि साधारण हैं। छपाई पर यदि अधिक ध्यान दिया जाता, तो अच्छा होता।

रामचंद्र संघी

× × ×

५. उपन्यास और कहानी

नवपल्लव—लेखक, विनोदशंकर व्यास; संपादक, रामलोचनशरण बिहारी; हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय से प्राप्त; मूल्य १।)

हमें यह देखकर हर्ष होता है कि इधर के कहानी-लेखकों में व्यासजी अपना ख़ास स्थान बनाते जा रहे हैं। यद्यपि अभी वह 'कहानी' के ही 'स्टेज' पर हैं, और इस स्टेज को नहीं पहुँच पाए हैं, जिसमें रचयिता का नाम ही प्रीतिकर होता है। इस पुस्तक में आप ही की कहानियों का संग्रह है, जिनमें से 'पूर्णिमा' किसी समय माधुरी में भी प्रकाशित हो चुकी है। समालोच्य पुस्तक के अतिरिक्त उनकी अन्य कहानियाँ भी हमारे पढ़ने में आई हैं। व्यासजी में कहानी लिखने का हृदय है, भाषा में भी लोच है, मनोवैज्ञानिक कल्पना एवं योजना भी है; किंतु सहानुभूति तथा अनुभूति होते हुए भी वह कभी-कभी अस्वाभाविक हो जाते हैं। प्रमाण-स्वरूप इसी नवपल्लव में 'सूखा स्नेह' कहानी है। 'प्रत्यावर्तन' तो प्लाट के साथ खींच-तान करती हुई जान पड़ती है। कहानी-लेखक में, हमारी समझ में, भावुकता का होना अच्छा है; किंतु वहीं तक कि वह जीवन का अनिवार्य अंग बना ली जाय, और मनोविज्ञान की धारा को एकदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार करने की चेष्टा न करे। नवपल्लवों में कुछ तो चुर-मुरा जाने की-सी स्थिति पर जा पहुँचे हैं, कुछ कोमल अथच तृप्तिकर भी हैं।

मातादीन शुक्ल

× × ×

कर्मदेवी—लेखक, श्रीप्रवासीलाल वर्मा; प्रकाशक, चौधरी ऐंड संस, नीची बाग़, काशी; मूल्य ।।।) ; पृष्ठ-संख्या १४०

यह एक छोटा-सा मनोरंजक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें सत्य की अपेक्षा कल्पना से अधिक काम लिया गया है। कर्मदेवी जालोर के राजा दुर्जयसिंह की पुत्री थी। मेवाड़ के युवराज मल्लसिंह से उसका प्रेम हो गया था। पर इधर अकबर की निगाह भी कर्मदेवी पर पड़ चुकी थी। उसने छल-कपट, विनय, बलात्कार आदि साधनों से उसे अपने वश में करना चाहा; पर सफल न हुआ। आख़िर उसने ज़हर से मल्लसिंह का काम तमाम किया, और कर्मदेवी उसके साथ सती हुई। अकबर के चरित्र को बड़ी क्रूरता से बिगाड़ा गया है; पर कथा मनोरंजक है, भाषा बहुत सुंदर। संस्कृत-शब्दों का प्रयोग कुछ कम होता, तो पुस्तक अधिक उपयोगी हो जाती।

× × ×

गल्पांजलि—लेखक, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'; प्रकाशक, श्याम बाबू अग्रवाल, शिकोहाबाद; मूल्य ।); पृष्ठ-संख्या ११२

यह उग्रजी की उन कहानियों का संग्रह है, जो पाँच-छः साल पहले आज में निकली थीं।

एक-एक कहानी समाज के एक-एक अंग का चित्र है। अधिकतर कहानियों में हिंदू-समाज की बुराइयों का करुण-विलाप है। 'परीक्षा' हास्य-कथा है, बहुत सुंदर है। भाषा सजीव और भाव मर्म-स्पर्शी हैं।

× × ×

६. शिक्षा-विषयक

जीवित हिंदी (प्रथम भाग)—संग्रहकर्ता, श्रीलक्ष्मीचंद्र खुराना बी० ए० (संस्कृत), एम्० ए०; प्रकाशक, हिंदी-भवन, लाहौर; मूल्य १); सजिल्द का १।।); पृष्ठ-संख्या १६८

इस संग्रह में यह नवीनता है कि केवल समकालीन रचनाओं के ही अंश लिए गए हैं। अक्सर स्कूली संग्रहों में लोग लल्लूलाल और राजा शिवप्रसाद से आरंभ करके बाबू राधाकृष्ण दास तक समाप्त कर देते हैं, समकालीन लेखकों को छूते तक नहीं। ऐसे संग्रह कालेज-क्लासों के लिये उपयुक्त हो सकते हैं; उनका उद्देश्य भाषा का क्रम-विकास दिखाना है। किंतु बालकों को प्रचलित भाषा से अपरिचित रखने का फल यह होता है कि वे कुछ लिखने बैठते हैं, तो व्याकरण और महावरे की ग़लतियाँ करने लगते हैं। इस संग्रह में यह दोष नहीं। यह बालकों के लिये बहुत उपयोगी होगा।

प्रेमचंद

× × ×

प्राइमरी रचना-शिक्षक—संपादक, रामचंद्र संघी एम्० ए०, विशारद, भूतपूर्व हेडमास्टर, हिंदी-भाषी-संघ, नागपुर ; प्रकाशक, नरबदा-बुकडिपो, जबलपुर ; पृष्ठ-संख्या १७२ ; मूल्य ।।≈) ; आकार डबल क्राउन सोलहपेजी ; कागज़-छपाई अच्छी।

प्रकाशक के शब्दों में "यह पुस्तक प्राइमरी स्कूल के छात्रों के लिये, मध्य-प्रदेश के नए शिक्षा-क्रम के अनुसार, लिखी गई है.....पूरी पुस्तक पहली से लेकर चौथी कक्षा तक के लिये, चार भागों में, बाँट दी गई है, और प्रत्येक भाग में उस कक्षा के लिये अलग भूमिका दे दी गई हैं।" हमारी समझ में स्कूलों में—विशेषतः छोटी-छोटी कक्षाओं में—निबंध का विषय सिखाना कठिन कार्य है। ख़ासकर कुत्ते-बिल्ली की कहानियों के रूप में निबंध के साथ-साथ आचार-व्यवहार की शिक्षा भी देते जाना तो और भी कठिन है। और, शिक्षकों के लिये भी विषय-वैषम्य तथा नपी-तुली भाषा के उतार-चढ़ाव का ख़याल रखते हुए पुस्तक द्वारा पथ-निर्देश करना तो ऐसा ही है, जिसमें सफल शिक्षक-लेखक ही कृतकार्य हो सकते हैं। इस पुस्तक में कक्षा-क्रम के अनुसार पाठों के विषय और भाषा में नपा-तुला उतार-चढ़ाव पाया जाता है, यह इसकी विशेषता है। पद्य, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कहानियाँ भी दी गई हैं। आगे चलकर, चौथे भाग में, अवलोकन द्वारा वर्णनात्मक विषयों पर निबंध-रचना करने का संकेत है तथा इसी के साथ पुरानी एवं नई रीति से पत्र-लेखन बताया गया है। प्राइमरी स्कूलों में रचना सिखाने के लिये यह एक अच्छी पुस्तक है। लेखक नए ढंग की पुस्तक लिखने के लिये बधाई के पात्र हैं।

"कोई नहीं"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. अनपढ़ व अधपढ़ स्त्रियों का साहित्य

भैया दौज की कहानियाँ

एक आदमी के एक लड़का, एक लड़की थी। वह लड़की कभी अपने भाई को गाली नहीं देती थी, न उससे लड़ती-झगड़ती थी। एक बार उसका भाई उसकी ससुराल गया, तो बहन उस वक़्त चरखा कात रही थी। तो उसका तार टूट गया। बहुत देर तक तार जोड़ती रही। लेकिन न तार जुड़ा, न भाई से वह मिली। भाई बोला—बहन, मैं कितनी देर से खड़ा हूँ, और तू मुझसे नहीं मिली। बोली—भाई, मैं तेरी ही सुभ कर रही थी। अब तार जुड़ा, तो मैं तेरे पास आई हूँ। फिर वह अपनी पड़ोसनों से बोली—बहना, जो किसी का प्यारा भाई आवे, तो उसकी क्या ख़ातिर करे? उन्होंने जवाब दिया कि तैल से तो चौका लगावे, तब भाई को खवावे। उसने ऐसा ही किया। न तैल का चौका सूखा, न चावल पके, न भाई को खाना मिला। फिर एक बोली—मिट्टी से तो चौका दे, और दूध में चावल बना। जब ऐसा किया, तो भाई को भोजन मिला। भाई बोला—बहन, मैं कल घर जाऊँगा। सो वह उस दिन बड़े सवेरे उठी, और आटा पीसने बैठी। चक्की में एक साँप बैठा था, वह पिस गया। उसे ख़बर न लगी। उसी चून के, घी-बूरा डालकर, लड्डू बनाए। लड्डू लेकर वह घर को चल दिया। उसके जाने के बाद बहन को पता लगा कि मेरी चक्की में साँप पिस गया। उसके जी को इतनी फ़िकर हुई कि जैसा घर उस वक़्त पड़ा था, वैसा ही घर छोड़ा। पालने में लड़का सो रहा था, उसे भी सोता छोड़ा। आप अकेली चल पड़ी। रास्ते में उसे जो कोई आदमी मिलता, उसी से पूछती जाती थी। एक आदमी ने बता दिया कि फ़लाने पेड़ के नीचे सो रहा है, और एक पोटली पेड़ से बँधी है। वह वहीं पहुँची। देखा कि मेरा ही भाई सो रहा है। उसे जगाया, और पूछा कि तुमने ये लड्डू तो नहीं खाए। उसने कहा कि जैसे दिए हैं, वैसे ही मैं ले आया। फिर मुझे नींद लगी, सो पेड़ से बाँधकर सो गया। झट से लड्डू खोल एक तरफ़ फेंक दिए, और आप उसके साथ हो ली। रास्ते में क्या देखा कि पत्थर की सिलाएँ आकाश में उड़ती हुई जा रही हैं। सो उन्हें देखकर एक रस्तेगीर से बोली कि भैया ये कहाँ को जा रही हैं। कि ये जो अपने भैया को कभी न कोसती हो और अपनी मा का इकलौता बेटा हो, जब उसका ब्याह होगा, तो उसकी छाती पर रक्खी जायँगी। आगे-आगे उसे साँप-साँपिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिले। उनसे पूछने पर भी यही उत्तर मिला। उसने पूछा कि इसका कुछ उपाय भी है। कि है। सब काम उसकी बहन उसके बदले में करे, तो उसकी गिरह उतरें, और ख़ूब गालियाँ दे। यह सुनकर जब से ही अपने भाई को गालियाँ देना शुरू कर दिया। कोसती हुई घर आई। मा को बहुत बुरा मालूम हुआ कि यह बेटी किसकी, जो मेरे इकलौते बेटे को गाली दे। उसने ज़रा भी बेटी की ख़ातिर न की। अब उसका ब्याह उठा। सो लगन आई। वह बोली—यह मरा लगन कैसे चढ़वाएगा, पहले मैं चढ़वाऊँगी और फैल-भर गई। आदमियों ने हारकर कहा कि भैया, पहले इसी की लगन चढ़ा दो। फिर घुड़चढ़ी का वक़्त हुआ कि यह मर-जाना कैसे घोड़े पर चढ़ेगा, पहले मैं चढ़ूँगी। कि अच्छा भैया, इसी की, हो जाने दो। जब कि वह घोड़ी पै बैठी, तभी शिलाएँ आईं। उसे वहाँ न देखकर और उसकी जगह औरत को देख उलटी लौट गईं। बरातियों ने कहा कि इसे अपने साथ ज़रूर ले चलो। यह कुछ जादू जाने है। बस, वह बरात में साथ गई। जब फेरों का वक़्त हुआ कि यह मिटा पहले कैसे फेरे लेगा, पहले मैं लूँगी। सो फेरे फिरवा लिए। अब वहाँ से बरात चल दी। और उसने गाली देना शुरू किया। भैया को खाऊँ, भौजाई को राँड करूँ, मा को निपूती करूँ—ऐसा कहती घर आई। दरवाज़ा रुकने के वक़्त बोली—इस मरे का दरवाज़ा कैसे रुकेगा, पहले मैं रुकाऊँगी। रात हुई, सो बोली—इसकी सुहागरात कैसे होगी, पहले मैं करूँगी। बहू को लेकर एक कमरे में जा सोई। आधी रात जब हुई, तो साँप-साँपिन का जोड़ा उसे काटने को आया। वह झटपट दोनों को मारकर और उन्हें अपनी जेब में रखकर सो गई। ऐसी गहरी नींद सोई कि तीन-चार दिन निकल गए। सारे मेहमान बिदा हो गए, तब उसकी मा बोली कि मेरी कुसकटी बेटी कहाँ? उसे भी छींट-वींट देकर बिदा करूँ। फिर वह उठी, और मा से बोली—देख, मैंने इस भाई के पीछे महीनों से मुसीबत उठाई है। देख, यह तो साँप और साँपिन का जोड़ा आया, और शिला आईं। ये सब अपने ऊपर लीं। मैं क्या करूँगी तेरी छींट का, मेरे घर भतेरा है। अपना लड़का भी छोड़ कर आई हूँ, और अब मैं जाऊँ हूँ। अपने बहू-बेटे को अच्छी तरह रखियो। फिर मा ने उसे अच्छी तरह बिदा किया, और ख़ूब ख़ुशी मनाई। अगली आवे, जैसी किसी को मत अइयो; पिछली आवे, सब किसी को अइयो *।

यमराजा की कहानी †

एक बुढ़िया रही। एक उसके बेटी। और कोई ना था। तो ग़रीब बुढ़िया नाज औरों का पीसने को लाया करे ही। तो उसकी बेटी उसमें से चुराकर खा जाती। मा को पता न चलता। जब आटा घटता तो नाजवाली बुढ़िया से कहती, तो वह क़सम खा जाती कि जो मैंने नाज चुराया हो, तो मुझे कीड़ों की गाढ़ हो। फिर बुढ़िया तो मर गई। बेटी यमराजा को ब्याही गई। जब उसे रहते-रहते बहुत दिन हो गए, तो किसी की भेजी हुई दूती उसके पास आई, और कहने लगी कि तेरा पति तुझे प्यार नहीं करता। कि तुमने कैसे जाना? वे बोलीं—वह तेरे साथ छुपाव करता है। देख, तेरे घर में सात कोठरी हैं, उनमें से इसने तुझे एक भी नहीं दिखाई। रानी ने कहा कि आज अन्न-जल जब करूँगी, जब मुझे कोठरी की ताली दे देंगे। यमराजा घर आए, सो रानी रूठ के खाट पै जा सोई। राजा बोले—रानी, क्यों पड़ी हो? कि तुम मुझसे बहुत छुपाव करने लगे हो। आज अन्न-जल जब करूँगी, जब मुझे कोठरी दिखा दोगे। राजा बोले—रानी, तुम्हें बहुत दुःख होगा, ऐसी ज़िद मत करो। कि ना, चाहो कुछ हो, मैं तो देखूँगी। राजा ने ताली का गुच्छा दे दिया। बस, वह कोठरी देखने लगी। किसी में कुछ देखा, किसी में कुछ देखा। एक में क्या देखा कि उसमें एक गड्ढा खुदा हुआ है, और राद-ख़ून और कीड़ों से भरा हुआ है, उसी में उसकी मा ग़ोते खा रही है। यह देख उसे बहुत ही दुःख हुआ, और पहले दिन की तरह फिर रूठ के पड़ रही। यमराजा आए कि रानी अब क्यों पड़ी हो? वह बोली कि राजा दे सका तो तुम इंसाफ़ करो, स्वर्ग दो।

---

* भाई की मंगल-कामना के लिये बहन का ऊपरी पागलपन क्षम्य ही नहीं, किंतु प्रशंसनीय है।—लेखक

† भैया दौज का पौराणिक नाम यमद्वितीया है। अतएव यमराजा की कहानी का उल्लेख अनुचित नहीं प्रतीत होता। पाप का फल न केवल करनेवाले ही को होता है, बरन् उसके इष्ट-मित्रों को भी लगता है। एक पापी के बोझ से नाव के सब आदमी डूब जाते हैं। Vicarious Suffering or gain के तथ्यातथ्य दार्शनिकों के चर्चा के विषय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और, मेरी मा की यह दशा तुमने कर दी है। उन्होंने कहा कि रानी यह तुम्हारा ही परताप है, तुम जो नाज चुरा कर खाती थीं, और यह जो झूँठी क़सम खाया करे ही, उसी का दंड इसे मिला है। कि राजा चाहे कुछ हो, अब तो या तो मेरी मा को अच्छा करो, नहीं मैं भी अपने प्राण दे दूँगी। वे बोले कि अपनी मा से पूछो कि हम सकोरा-भर राई खेत में बखेर दें, तो वह समेट लावेगी। कि मा, यमराजा ऐसा कहते हैं, तू भर लाएगी? कि बेटी, भर लाऊँगी। गई खेत में। कीड़ों के खाए हाथ राई न बिनी। बोली—बेटी, मेरे कीड़ों के खाए हाथ; मुझसे राई न उठे। मेरी कीड़ों की गाढ़ ही भली है। फिर उसी में जा पड़ी। कि राजा मेरी मा से तो राई न भरी जाय। कि अच्छा, उससे पूछो कि वह मेरी धोती धो दिया करेगी। मा, राजा ऐसा कह रहे हैं। बेटी धो दिया करूँगी। आई निकलकर। यमराजा की धोती लाद की लाद उससे न धुली। फिर जा पड़ी। राजा, मेरी मा से तो यह भी न हो। उन्होंने कहा कि हमारे बाल-बच्चों को खिला लिया करेगी। कि बेटी, खिला लिया करूँगी। बच्चों को जो गोद में लिया, तो भला यम की औलाद। कभी उसको नोचें, कभी काटें। बुढ़िया तंग आ गई। वह बोली—भाड़ में जाओ, मुझसे ये ना खिलें। मेरी तो गाढ़ ही भली है। फिर आकर कहने लगी कि राजा, मेरी मा से तो तुम्हारे बच्चे भी न उठें। वे बोले कि अच्छा, गंगा-पार एक धोबन है, वह दिया गौर किया करे है, और वह गर्भवती है, और फ़लाने दिन कसरेगी। तुम उस दिन गूजरी का भेस धर के उसकी बेटी से दिया गौर माँग लाना, उससे तुम्हारी मा अच्छी हो जायगी। उसने ऐसा ही किया। दही लेकर उसके दरवाज़े पर चिल्लाने लगी—दही लो, दही। उसकी बेटी बोली—बहना, यहाँ दही न चाहिए। यहाँ तो ख़ुद ही मुसीबत पड़ रही है। कि क्या बात है? कि चार दिन हो गए, मेरी मा कष्ट पा रही है, बचा ही ना हो। गूजरी बोली कि तेरी मा कुछ पूजा-पाठ भी करा करे है? कि हाँ, दिया गौर का पूजन करे है। कि वह मुझे दे दे, तो अभी तेरे भइया कर दूँ। कि अच्छा। बस, लाकर उसने दे दी। वह तो लेकर चली आई। उसके उसी वक़्त लड़का हुआ। जब दस दिन की धोबन हो गई, बोली—बेटी, मेरी दिया गौर ला, मैं पूजा करूँगी। कि दिया गौर तो मैंने गंगा-पार की गूजरी को दे दी। बेटी, तैंने बुरा किया। मुझे कीड़ों की गाढ़ कर दी। कि मा, मैं ऐसा न करती, तो कहाँ से तो भैया आता, और कहाँ तू बचती। बुढ़िया का शरीर अच्छा हो गया, और धोबन को उसकी गति मिल गई।

रामदत्त भारद्वाज

× × ×

२. हिंदू-स्त्रियाँ और उनके अधिकार

वर्तमान समय में हमारी महिला-समाज स्वाधिकार-चर्चा की ओर ध्यान देने लगी है; पर जिन बातों में हमें अधिक शक्ति लगानी चाहिए, उनकी ओर अभी (मुझे क्षमा करें) उतना नहीं किया जा रहा है। अस्तु, आज मैं इस विषय को अपनी बहनों के सम्मुख रखती हूँ और जानना चाहती हूँ कि वस्तुतः यह प्रश्न आवश्यक है, अथवा नहीं। यदि आवश्यक है, तो इसके लिये कौन-सा नियम रक्खा जाना चाहिए, जो प्रत्येक हिंदू-मात्र को मान्य हो? भारतीय "हिंदू-ला" में और नियमों के साथ-ही-साथ एक नियम यह है—

(१) कोई भी हिंदू-स्त्री अपने पति के जीवित रहते किसी अवस्था में भी, नियम-पूर्वक माता-पिता, बंधुओं आदि की सहायता से पुनर्विवाह नहीं कर सकती। यदि वह करे, तो उसके लिये दंड भी माना गया है। वह दंड है—पिता-सहित सात वर्ष का कठिन कारावास और कुछ धन।

(२) पति अपनी एक विवाहिता पत्नी के होते हुए जितने चाहे—यथाशक्ति, किसी भी आयु में, किसी भी आयु की कन्या से विवाह कर ले। ऐसी अवस्था में यदि अपनी पूर्व-स्त्री को कुछ धन दे, तो वह स्त्री-धन कहलावेगा। स्त्री का उस पर पूरा अधिकार है। और यदि पति अपनी पत्नी को अपने घर में न रखना चाहे, पीहर-नैहर भेज दे अथवा घर से निकाल दे—तो नियमानुसार पत्नी को निर्वाहार्थ धन दे।

पुनश्च—**यदि पत्नी पतिव्रता है**, तो निर्वाहार्थ धन प्राप्त कर ले। (मनु०)

उपर्युक्त नियम के अनुसार यदि किसी स्त्री का पति नपुंसक हो, शराबी अथवा वेश्यागामी, दीर्घरोगी, बालक अथवा वृद्ध हो, ऐसी अवस्था में स्त्री धर्म-पत्नी नियम से माता-पिता की सहायता होने पर भी, विवाह नहीं कर सकती। इसका दुष्परिणाम क्या होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें गुप्त रूप से व्यभिचार करके, अपनी आत्मा को घोर नरक में गिराना पड़ता है। ऐसे अनेकों दृष्टांत आज हम नित्य देखती हैं। हमारी जाति के अनमेल विवाह ने तो जो कमी इसमें थी, उसे भी पूरा कर दिया है। मेरी समझ में पतित होनेवालियों का कुछ भी दोष नहीं। क्यों न ?

"ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता है।" यदि किसी समय में, भारत में, सीता-जैसी देवियाँ ब्रह्मचर्य-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर गईं, तो उस काल में राम-जैसे देवता भी, यज्ञ के समय, पत्नी के अभाव में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा (पुनर्विवाह के स्थान पर) स्थापित करते थे। किंतु आज समय दूसरा है। आज पुरुषों की काम-लिप्सा, साठ-साठ वर्ष की आयु के पश्चात् भी, शांत नहीं होती। गृह में विधवा पुत्री को तपस्या कराते हुए वे स्वयं पत्नी का अभाव नहीं सह सकते, अथवा पत्नी के होते हुए भी वे वेश्याओं के पैरों की जूतियाँ चाटते फिरते हैं। दूसरे, यदि नियम (२) के अनुसार एक पत्नी के रहते हुए भी पुनर्विवाह करे और पहली पत्नी को घर से बाहर कर दे—उससे संबंध न रक्खे—तो उस अवस्था में उस स्त्री के पास केवल दो ही साधन हैं। एक इंद्रिय-दमन, दूसरे व्यभिचार। वही प्रश्न पुनः यहाँ भी लग रहा है। धन उस क्षति की पूर्ति कदापि नहीं कर सकता। जो स्त्रियाँ इंद्रिय-दमन करके जीवन व्यतीत करती हैं, उनके लिये चाहे नियम बने अथवा न बने, एक-सा है; पर सारा संसार एक-सा नहीं। और, यदि नियम बन भी जायँ, तो, इच्छा न होने पर, यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक स्त्री पुनर्विवाह करे। वह अपनी सुविधा के अनुसार जीवन बिता देगी। परंतु जो ऐसा नहीं कर सकतीं, उनके लिये हमारे पास केवल पतन के और क्या उपाय है? यह विचारणीय प्रश्न है। यदि कोई उपाय है, तो वह कौन-सा? किस प्रकार?

मुझे आशा है, इस प्रश्न पर हमारी बहनें अवश्य ध्यान देंगी, और अपने-अपने विचार प्रकाशित करेंगी। तथास्तु।

अंजनादेवी आर्य

दांपत्य-प्रेम की कुंजी ! बीसवीं सदी का आश्चर्य आविष्कार !!

संतान-वृद्धि-निग्रह-रसायन

भारत के प्रमुख नेताओं तथा सुसंचालित पत्रों ने देश की निर्धनता का उपाय अधिक बच्चों की पैदायश का रोकना ही बताया है। अतएव कृत्रिम किंतु अस्वाभाविक यंत्रों का प्रयोग अथवा दुःसाध्य ब्रह्मचर्यपरिपालन ये ही दो उपाय भी बताए हैं। परंतु पहला स्वास्थ्य और दांपत्य-प्रेम का नाशक और दूसरा एकांत दुःसाध्य अतएव असंभव है। इसी दुरूह सिद्धि को आयुर्वेद-पारंगत ने आविष्कार कर असाध्य को साध्य कर दिखाया है। पूर्वोक्त रसायन के प्रयोगसे न तो स्वास्थ्य को ही धक्का लगता है और न सहवास-सुख से ही वंचित होना पड़ता है। प्रत्युत स्त्री-पुरुषोंमें अपूर्व शक्ति का संचार एवं दांपत्य-प्रेम का पारावार उमड़ चलता है। तसदीक़ की कोई आवश्यकता नहीं। जो दंपति अविश्वासवश परीक्षा लेना चाहें, आवें। अन्यत्र मूल्य जमाकर परीक्षा कर सकते हैं। केवल एक दंपति के लिये उपयुक्त १०) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

पीनोन्नतस्तनी सौभाग्य सुभगा

छोटी-छोटी अवस्था में ही शिथिल-यौवनसाम्राज्या युवतियों के लिये उनके पतियों का असमय वैराग्य यमयातना-तुल्य हो जाता है। पूर्वोक्त दोनों औषधें योनि-व्याधि को नष्ट, गुप्तेंद्रिय का नव्य-संकोचन एवं शिथिल स्तनों को कंदुक-कठोर कर युवतियों को फिर से पूर्ण कामिनी और मानिनी बनाती हैं। दोनों का १०) मात्र, अलग ५) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

नोटः—औषध-मूल्य मनोऑर्डर द्वारा पेशगी आने पर पोस्टेज आदि माफ़। कठिन-से-कठिन चिकित्सा एवं बड़ी-से-बड़ी औषधि-प्राप्ति का एक-मात्र पता— ३२

मैनेजर, आयुर्वेदभवन, हुसेनगंज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. वसंत

(१)

ला, वसंत इन आँखों में तू,
मेरी वह हरियाली ला;
ला, फल-फूलोंवाली मेरी,
झुकी हुई तरु-डाली ला।
ला, सरसों की पीली-पीली,
शोभा नई, निराली ला;
ला, पलाश के उन फूलों की,
लाल-भरी वह थाली ला।

(२)

लाना रे! उस कोयल को भी,
"कुह-कुह" कूक सुनावेगी;
भौंर-भीर बाँसुरी बजाकर,
"गुन-गुन" करके गावेगी।
झूम-झूमकर लतिकाओं पर,
चिड़ियाँ आकर डोलेंगी;
चहक-चहककर बड़े चाव से,
मीठी बोली बोलेंगी।

(३)

लाना फिर सुंदर आमों पर,
मेरी वह झालर, लाना;
सरस वायु के झोंके देकर,
मधुर-मधुर मुसका जाना।
डालूँगा डालों-डालों में,
जाकर नए-नए झूले;
गूँथ-गूँथकर फूल-माल में,
पहनूँगा जो हैं फूले।

दाराबख़ाँ "अभिलाषी"

× × ×

२. एक स्वप्न

एक दिन मैं अपने बाग़ में आरामकुरसी प लेटा हुआ एक अख़बार पढ़ रहा था। कुछ दे बाद, अख़बार एक बग़ल में रखकर, भारत क वर्तमान दशा पर विचार करने लगा। उस सम मुझे झपकी लग गई, और मैं तुरंत ख़र्राटे ले लगा। स्वप्न में देखता क्या हूँ कि भारत ए स्वतंत्र देश हो गया है। कुछ ही दिनों बाद व संसार-भर में सबसे सभ्य और धनी दे हो गया, और उसकी सभ्यता आदर्श समझ जाने लगी। परंतु इँगलैंड अभी उसी दशा में है जब भारत इस भूमंडल का मुकुटमणि हो गय तब यहाँ के राजा ने इँगलैंड पर चढ़ाई की औ उसे जीत लिया। उसके बाद इँगलैंड ए हिंदुस्थानी गवर्नर के अधीन रक्खा गया, औ भारत के राजा वहाँ के महाराज अर्थात् एंप कहलाने लगे।

कुछ दिनों बाद मैं स्वतंत्र भारत की ओर इँगलैंड का एक उच्च कर्मचारी बनाकर भेजा गय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ जाकर मैंने देखा, इँगलैंड अब वह इँगलैंड नहीं रहा। वहाँ के लोगों की चालढाल बदल गई है। मैंने देखा, वहाँ स्कूलों और कालेजों की मुख्य भाषा संस्कृत और हिंदी है, तथा सब विषय हिंदी में ही पढ़ाए जाते हैं। अँगरेज़ी तो वहाँ अब नाम-मात्र को रह गई है। लोग हिंदी में बोलना अच्छा समझते हैं। जो हिंदी में वक्तृता देता है, उसका नाम सारे देश में हो रहा है। आक्सफ़ोर्ड के प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी, सभी भारतवासियों के वेश-भूषा तथा भाषा की नक़ल करने में ही अपना गौरव समझते हैं। अब वे लोग कोट-पैंट छोड़कर धोती और रेशम या मलमल का कुरता पहनने लगे हैं। चाहे जाड़ा उन्हें भले ही सताए, पर इसकी उन्हें परवा नहीं। भला फ़ैशन के आगे वे जाड़े की परवा कैसे करें? कुछ दिनों बाद वहाँ के विद्यार्थी ऊँची डिगरियाँ प्राप्त करने के लिये भारत आने लगे। इँगलैंड में इँगलैंड की ही डिगरियों की क़द्र अब नहीं होती। अब अँगरेज़ लोग हमारे वेदों और पुराणों की बातों को प्रामाणिक मानने लगे, तथा अपने धर्मशास्त्रों की बातों को गपोड़ समझने लगे। कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी आदि के अध्ययन में अपना स्वास्थ्य और धन ख़र्च करने में उन्हें ज़रा भी क्षोभ नहीं होता। सिगरेट और सिगार का स्थान हुक़े ने ले लिया है। साबुन के स्थान में लोग तेलों का, तथा लेवेंडर के स्थान में इत्र का व्यवहार करने लगे हैं। स्थान-स्थान पर आयुर्वेद-कालेज और औषधालय खुल गए हैं; मेडिकल-कालेजों और अस्पतालों को कोई पूछता भी नहीं। अब लोग टेबिल पर खाना नहीं खाते, बल्कि जहाँ रसोई बनती है, वहीं चौका आदि लगाकर, बहुत शुद्धता-पूर्वक कपड़े उतारकर, भोजन करते हैं। मैंने देखा, वहाँ हिंदुस्थानियों ने स्थान-स्थान में अपने मंदिर बनवाए हैं, तथा भारतीय राष्ट्र की ओर से बहुत-से धर्म-प्रचारक नियुक्त हो गए हैं। वे वहाँ विश्वधर्म का प्रचार करते और लोगों को ज्ञान-विज्ञान सिखाते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ भी अब परदे में रहने लगी हैं, और साड़ी-लहँगे पहनने में उन्हें गर्व है। कहने का मतलब यह कि भारत की सभ्यता वहाँ जड़ पकड़ती जा रही है। भारत इँगलैंड को भी 'भारत' बना देना चाहता है। एक बार भारत के सम्राट् वहाँ गए, तो वहाँ बड़ी तैयारी की गई। उनके स्वागत में लाखों रुपए पानी की भाँति बहा दिए गए।...

मैं इसी प्रकार नए इँगलैंड का कल्पित दृश्य देख रहा था। तब तक मेरी आँखें खुल गईं, और स्वप्न स्वप्न हो गया।

जगन्नाथप्रसादसिंह

× × ×

३. बहादुर कप्तान

कप्तान विलियम हेल एक अँगरेज़ी-लड़ाके जहाज़ का कप्तान था। क्रीमियाँ की लड़ाई में इसने बहुत बहादुरी के काम किए थे। एक बार जब वह स्थल पर उतरकर अपने मातहतों के साथ वैरियों पर गोले बरसा रहा था, तो एकाएक उन्हें मालूम हुआ कि उसके गोला-बारूद का ख़ज़ाना ख़त्म हो गया है। यह सुनकर उसे बहुत परेशानी हुई। मगर कुछ बहादुर जवान गोला-बारूद लाने के लिये तैयार हो गए। जहाँ से यह सब चीज़ लानी थी, वहाँ पर रूसी गोलों की बौछार हो रही थी, और किसी का बचकर निकल जाना बहुत ही कठिन काम था। अतएव बहुत दौड़-धूप के बाद बहादुर नौजवानों ने गोले और बारूद के पीपे जमा किए। अभी वे बारूद निकालने ही में लगे थे कि रूसियों का गोला ठीक मैगज़ीन पर आकर गिरा। फ़लीता जल रहा था, और एक ही दो पल में सब-के-सब मौत के मुँह में जानेवाले थे। गोला गिरते ही सिपाहियों ने काम करना छोड़ दिया, और टकटकी लगाकर उसी को देखने लगे। लेकिन कप्तान हेल एक बहुत ही बहादुर आदमी था। उसने एक पल भी देर न की। वह दौड़ा—और अपनी जान पर खेलकर दौड़ा, और जाते ही बम को उठाकर सिपाहियों से दूर भागना शुरू किया। अब दूसरे आदमियों को भी होश आया, और वे चिल्लाने लगे—फ़लीता जल रहा है, होश करो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम फट जायगा। लेकिन कप्तान भागता रहा, यहाँ तक कि उनसे बहुत दूर निकल गया, और निकलते ही बम को फेंक दिया, तथा अपनी बारूद, तोपों और अपने आदमियों को बचा लिया। बम उसके हाथ से छूटते ही फट गया। अगर एक मिनट भी गोला उसके हाथ में रहता, तो कप्तान अपने आदमियों को बचाने में ख़ुद भी जान दे देता। इस बहादुरी के काम के बदले उसे एक 'विक्टोरिया क्रास' इनाम में मिला।

गुलाबचंद

× × ×

४. मोटरों की प्रदर्शिनी

चिकागो-लैटिन-स्कूल के लड़कों ने मोटरों की एक प्रदर्शिनी की थी। इसमें खिलौना-मोटर लाई गई थीं, और सभी मोटर बालकों के दिमाग़ की उपज थी। मोटरों में सभी प्रकार की मोटरें—दौड़ में शामिल होनेवाली (रेसिंग) हवाख़ोरी करनेवाली, टैक्सी, लारी आदि—थीं। अनेक मोटर-विक्रेता इस प्रदर्शिनी को देखने गए थे। उन्होंने बालकों की आविष्कारक बुद्धि से प्रसन्न होकर उनकी बड़ी तारीफ़ की। बालकों की उद्भावनी शक्ति को प्रबल बनाने का यह अच्छा तरीक़ा है। क्या यहाँ के बालक भी ऐसी प्रदर्शिनियाँ करेंगे?

× × ×

५. बिजली से जूते पर पालिश

बिजली से आप जो काम लीजिए, वह करने को तैयार है। जूतों को चमकाने के लिये उसे ब्रश से रगड़ना पड़ता है। यह काम अब बिजली ही करती है। एक मोटर द्वारा चालित ब्रश, जो एक मिनट में १,२०० बार घूमता है, पहले जूते से सारी गर्द का झाड़ डालता है। फिर उस पर रोशनाई लगा कर केवल आधे मिनट में ऐसा चमका देता है कि उसमें मुँह देख पड़ने लगता है। एक ही समय में कई जोड़ों पर पालिश किया जा सकता है।

रमेशप्रसाद

× × ×

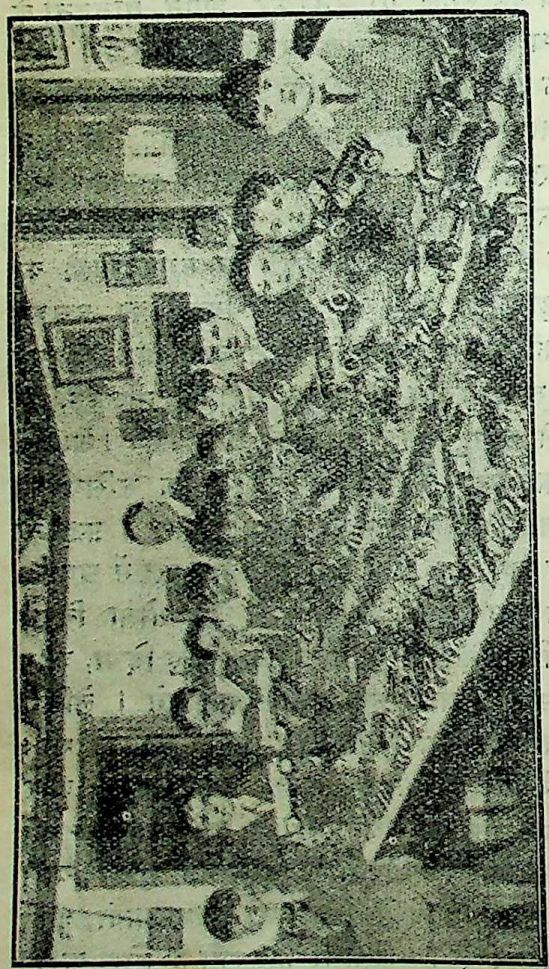

मोटरों की प्रदर्शिनी

बिजली द्वारा जूते पर पालिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. कालर-प्रचार

कमीज़ों में कालर लगाने का प्रचार हुए लगभग सौ वर्ष हो चुके हैं। कालर बनाने का विचार सन् १८२५ ई० में योरप में एक लुहार की धर्मपत्नी के हृदय में उत्पन्न हुआ था। वह अपने पति की कमीज़ धो रही थी। उसके मन में विचार उठा कि यदि कमीज़ में कालर बनाकर लगाया जाय, तो गले का कपड़ा न शीघ्र ही मैला हो, और न शीघ्र ही फटे। अतः उसने अपने पति के लिये कुछ कालर बनाए। पतिदेव उनका उपयोग भी करने लगे। यह नया आविष्कार सहवासियों को बहुत पसंद आया, और वे भी उस स्त्री से कुछ कालर मोल लेकर पहनने लगे। धीरे-धीरे कालर पहनने का शौक़ अन्य लोगों को भी हो गया। ब्राउन-नामक मनुष्य ने जब यह देखा कि लोग कालर बहुत पहन रहे हैं, तो उसने शीघ्र ही कालर-प्रचार के लिये एक दूकान खोल दी, और इस प्रकार समस्त योरप में लोग कालर लगाने लगे। आजकल तो भारतवर्ष में भी कोई विरली ही कमीज़ ऐसी देख पड़ेगी, जिसमें कालर न हो।

एम्० ए० मुनीमख़ाँ "जाहिल"

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

और दाद के अंदर खुरखुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की प्लेट निवत्राली फाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ बी. जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥-) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥।=) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीज़ें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर

"मजलिसे हैरान केश तैल"

३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। ख़ास कर बालों को बढ़ाने और भ्रमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तेल एक ही है। दाम १ शीशी ॥।), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-ख़र्च ॥।=) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख़० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख़० १।) १२ शीशी मँगाने से १ रिस्टवाच मुफ़्त इनाम डा० ख़० २) १०

१५ पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० २८८, कलकत्ता (आफ़ीस नं० ७१ क्लाइव स्ट्रीट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

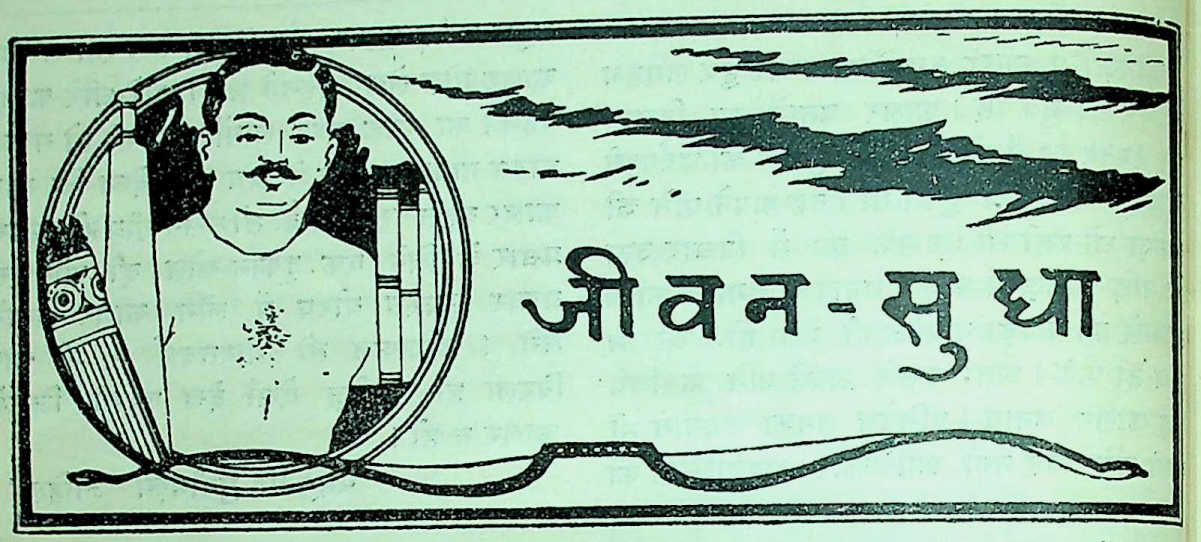

ब्रह्मचर्य जीवन है—प्रमेह या स्वप्न-दोष मौत

जब हम प्राचीन तथा अर्वाचीन मानवीय शरीर-रचना, गठन और बुद्धि, बल आदि पर विचार करते हैं, तो उन्हें प्रबल परिवर्तनमय पाते हैं, और विचार-धारा स्वांत-सागर में उठती है कि परिवर्तन का प्रवर्तक कारण कौन है। प्राचीन काल में किस वस्तु की प्राप्ति संभव थी, और अधुना कहाँ तक उसकी प्राप्ति असंभव है? बहुधा मनुष्यों को यह कहते सुना गया है कि प्राचीन समय की तरह संप्रति पुष्टिकर खाद्य, दुग्ध, घृतादि लब्ध नहीं होते; यदि होते भी हैं, तो अन्यान्य कृत्रिम द्रव्य-मिश्रित। यद्यपि महँगी तथा अन्यान्य कृत्रिम द्रव्य-मिश्रण होने के कारण सर्वसाधारण सुगमता से उनका प्रयोग नहीं कर सकते; परंतु जो सर्व-संपन्न हैं, सुगमता से प्रयोग करते हैं, वही अधिकतर दुर्बल दृष्टिगोचर होते हैं, और स्वरक्षार्थ अपर प्रतीक्षा करते हैं। वस्तुतः इस परिवर्तन का प्रवर्तक कारण दुर्बल वीर्योत्पत्ति है। यह सर्व-सम्मत बात है कि जैसा बीज वपन किया जायगा, तदनुरूप फल होगा। दुर्बल बीज वपन कर सबल फल चाहना मूर्खता का द्योतक है। माना कि आहार-सौकर्य से दुर्बल वीर्योत्पन्न संतान स्वजनक से कुछ बलिष्ठ जँचने लगे; परंतु शुद्ध वीर्योत्पन्न संतान से उसकी समता नहीं हो सकती। बलिष्ठ संतानोत्पत्ति के लिये वीर्य की बलिष्ठता, शुद्धता तथा पुष्टता की अनिवार्य आवश्यकता है। अतः ब्रह्मचर्य ही जीवन है—वीर्य-नाश-हेतु प्रमेह या स्वप्न-दोष मौत है।

स्वप्न-दोष के कारण

यद्यपि इसके कारणों में प्रत्येक उपयोज्य द्रव्यों के गुण-दोषों का, मात्रा-अतिमात्राजन्य हानि-लाभ का, समुचित समावेश है, और उनका वर्णन करना भी कर्तव्य विशेष है; परंतु लेख-विस्तार-भय से वर्णन न कर, अनुभवलब्ध कारण-मात्र प्रकाशित करते हैं। हम इनका चतुर्धा विभजन करते हैं—(१) प्रकृति-विरुद्ध मैथुन (२) बहुमैथुन, (३) कामोत्पादक विहार, (४) विदाहि तथा काबिज़ आहार।

प्रकृति-विरुद्ध मैथुन—यह क्रिया शिक्षित या अशिक्षित समुदाय में समान रूप से फैली हुई है। शिक्षित हस्त-मैथुन, गुदामैथुन तथा अशिक्षित पशुमैथुन द्वारा शरीर को विषमय तथा जीवन को दुःसह बना, सदा के लिये स्वप्न-दोष के रोगी बन जाते हैं।

बहुमैथुन—स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद तथा स्वप्न-दोष का प्रवर्तक जैसे प्रकृति-विरुद्ध मैथुन है, तथैव बहु-मैथुन (ज़्यादा स्त्री-प्रसंग) भी हानि तथा स्वप्न-दोष प्रवर्तक है।

कामोत्पादक विहार—संप्रति सभी साहित्यों के अंदर शृंगार-रस-पूर्ण उपन्यास-नाटक तथा गायन-पुस्तकें अधिकता से प्राप्त होती हैं, जिनके पढ़ने तथा गंदे नाटक सिनेमा आदि देखने से ब्रह्मचारियों का चित्त चंचल हो जाता है। वे रात्रि में शय्या पर पड़े-पड़े नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपान्तरेण देवास्ते विहरन्ति महीतले ;
ये व्याकरणसंस्कारपवित्रितमुखा नराः ।

अर्थात् वे लोग पृथ्वीतल पर देवता हैं, जिनकी वाणी व्याकरण के संस्कार से पवित्र है ।

तथा—

वरं हि जातास्तिमयो गभीरे जलाशये पङ्किनि नित्यमूकाः;
न मानवा व्याकरणप्रयोगप्रबुद्धसंस्काराविहीनवाचः ।

अर्थात् अवैयाकरणों से तो तालाब की हमेशा चुप रहनेवाली मछलियाँ अच्छी हैं । पूर्वपक्ष की युक्तियों का सिंहावलोकन करते हुए भट्टजी अंत में कहते हैं कि यह सब युक्तिजाल स्वमनीषि का कल्पित है, अलीक पांडित्य का प्रदर्शन है * । पुष्पदंत † के साथ भट्टजी का तो यह कहना है कि प्रभो ! मरने के बाद यदि फिर इस मर्त्यलोक में आना पड़े तो—

स्निग्धाभिर्दुग्धधारामलमधुरसुधाबिन्दुनिष्पन्दिनीभिः ;
कामं जायेय वैयाकरणभणितिभिस्तूर्णमापूर्णकर्णः ।

अर्थात् वैयाकरणों के सुधा-बिंदु-सम (?) मधुर वाक्य मेरे कान में पड़ा करें ।

अच्छा ! अब प्रस्तुत विषय पर आइए ।

जयंत भट्टजी पूर्वपक्ष में कहते हैं कि व्याकरण-ज्ञान की वेदार्थ-ज्ञान में कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि व्याकरण-शास्त्र में वेद की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है, जिससे वेदार्थ-ज्ञान हो जाय । उसके लिये सायण-भाष्य पढ़ना चाहिए । वैयाकरण यह नहीं कह सकते हैं कि व्याकरण से साध्वसाधु शब्द का निर्णय होता है; क्योंकि साधु और असाधु आख़िर है क्या ? हमारे लिये तो वाचक-मात्र साधु हैं । जिनसे अर्थ-प्रतीति हो, वे सब साधु हैं । जैसे गौः, वैसे गावी; दोनों शब्द अर्थावगति के लिये समर्थ-साधन है । काकरुत, शृगालघोष आदि (न समझनेवाले मनुष्यों के लिये) असाधु हों तो हों, अर्थ-प्रतीतिकारक वर्णात्मक शब्द कैसे असाधु हो सकते हैं ? वैयाकरणजी ! आप यह भी नहीं कह सकते हैं कि जो शब्द सूत्रसिद्ध हैं, वे साधु हैं; क्योंकि वैसा मानने पर तो 'मनमानी घरजानी' हो जायगी । हम भी अपने यहाँ 'गावी' को 'साधु' बनाने के लिये सूत्र गढ़ लेंगे ।

वैयाकरणजी ! आपके शास्त्र का प्रयोजन हम लौकिक साधारण-बुद्धि मनुष्यों की समझ के बाहर है । देखिए, वैद्यक-शास्त्र सप्रयोजन है; क्योंकि वैद्यक की ओषधियों से आरोग्यलाभ होता है । हरीतकी-सेवन से उदर-विकार दूर होते हैं, आँवले के सेवन से नेत्र-रक्षा होती है । यहाँ प्रत्यक्ष फल दिखाई पड़ता है । अब आप अपने शास्त्र के 'साधु' शब्दों को लीजिए । क्या केवल 'गौः' से गाय का बोध होता है, 'गावी' से नहीं ? अर्थ-बोध कराना ही शब्दों का प्रयोजन है । वह साधु-असाधु दोनों तरह के शब्दों में पाया जाता है । फिर साधु और असाधु के भेद का पचड़ा क्यों ? वैयाकरणजी ! क्षमा कीजिएगा, हमी नहीं, आपके सूत्रकार पाणिनिजी भी जानते थे कि व्याकरणाध्ययन से कोई लाभ नहीं है । चौंकिए नहीं । सच्ची बात है । देखिए, न्याय-शास्त्र का प्रथम सूत्र है—प्रमाणप्रमेयसंशय.....नां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ।' इसमें स्पष्ट कहा गया है कि इस शास्त्र के ज्ञान से 'निःश्रेयसाधिगम' (मोक्ष-लाभ) होता है । आपके पाणिनिजी ने कोई फल-निर्देशक सूत्र नहीं बनाया । बस, वृद्धिरादैच् अदेङ्गुणः से शुरू कर दिया । बनाते भी कैसे ? जब कोई प्रयोजन हो, तब तो ?

वैयाकरणजी ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यही चार पुरुषार्थ फल हो सकते हैं । लेकिन आपके शास्त्र से किसी की प्राप्ति नहीं होती है । यज्ञ-दानादि शुभ कार्यों से और मनु-प्रतिपादित सदाचार से धर्म-प्राप्ति होती है । व्याकरण से और धर्म-प्राप्ति से भला क्या संबंध ? अर्थ-प्राप्ति भी व्यवहार-विद्या और दंडनीति से होती है, व्याकरणाध्ययन से नहीं । यदि व्याकरणाध्ययन से अर्थ-प्राप्ति होती, तो क्यों 'कियन्मानं जलं विप्र' का 'जानुदघ्नं नराधिप' ऐसा व्याकरणानुमोदित शुद्ध उत्तर देनेवाले 'जानुभानुकृशानुभिः' शीतकाल-यापन करते ? काम-प्राप्ति भी वात्स्यायन-प्रणीत कामशास्त्र से होती है, व्याकरणाध्ययन से कदापि नहीं । देखिए न, बेचारा एक रसिक वैयाकरणों पर विश्वास कर कैसा बुरा फँसा था—

"नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः ।
तत्र तत्रैव रमत हताः पाणिनिना वयम् ।"

मोक्ष-प्राप्ति के लिये आत्म-परिज्ञान (self recognition) की आवश्यकता है, षत्व-णत्व-परिज्ञान की नहीं ।

वैयाकरणजी ! आप कहेंगे कि महर्षि पतंजलि ने

* न्यायमंजरी (काशी), पृष्ठ ४२५

† शायद शिवमहिम्न-स्तोत्र के लेखक से यहाँ मतलब है ; क्योंकि पूर्वार्द्ध में 'शिवपुरवसतेः देव्याः' के शाप का जिक्र है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्' कहकर इस शास्त्र की प्रयोजनता दिखाई है। सत्य है, किंतु विचार कर देखने से तो इनमें एक भी प्रयोजन नहीं टिकता। वेदों की शुद्धता की रक्षा अध्येतृपरंपरा से सिद्ध है। जब शिक्षक के अनुकरण से अशुद्धि की संभावना नहीं रह जाती है, तब शिक्षक से व्याकरण पढ़कर फिर व्याकरण के बल पर अशुद्धि-निवारण करने का द्राविड़ प्राणायाम क्यों किया जाय? प्रकरण के अनुसार विभक्ति और वचन में परिवर्तन कर हवनादि कार्यों में मंत्र-पाठ करने की योग्यता को 'ऊह' कहते हैं। इसमें व्याकरण-ज्ञान की आवश्यकता है, लेकिन परंपरा से, यज्ञादि देखने से और अनुभव से भी, वह योग्यता प्राप्त की जा सकती है। यदि संपूर्ण जीवन पर यज्ञादि देखकर मंत्र-पाठ-परिवर्तन संभव नहीं है, तो क्या व्याकरण पढ़कर संभव है? इसमें तो ज़्यादा झंझट है, यह हम आगे दिखाएँगे। आगम कहता है—'एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति' और ब्राह्मणस्य **निष्कारणो** धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।' वैयाकरणजी, इनमें प्रथम वाक्य में तो कोई दलील नहीं है, स्तुतिवाद-मात्र है। दूसरे वाक्य में कुछ तत्त्व है। क्या आपने कभी 'निष्कारणः' पद पर ध्यान दिया है? क्या इसमें यह स्पष्ट नहीं कह दिया गया है कि ब्राह्मणों का यह निष्कारण अर्थात् निष्प्रयोजन धर्म है। नाराज न हों! निष्कारण-पद से प्रयोजन शैथिल्यनिर्देश है, प्रयोजनता नहीं। दूसरी बात यह भी है कि आगम प्रयोजन निर्देश करता है, स्वयं प्रयोजन नहीं है। लाघव का व्याकरण-शास्त्र में नाम न लीजिए। इसके प्रपंच-बाहुल्य पर हम आगे प्रकाश डालेंगे। स्वयं पतंजलि ने स्पष्ट कह दिया है कि बृहस्पतिजी अध्यापक, इंद्र स्वयं अध्येता; देवताओं के हज़ार वर्ष अध्ययन-काल, इतना होने पर भी जब व्याकरण-शास्त्र का अंत न हुआ, तो आजकल अधिक-से-अधिक सौ वर्ष जीनेवाले हमारे लिये कैसे संभव है? उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, इन स्वरों के भेद से अर्थ-भेद का निश्चय करने को असंदेह कहते हैं। उसके लिये मीमांसा-शास्त्र मौजूद है, व्याकरण की कोई आवश्यकता नहीं।

वैयाकरणजी! आप कहेंगे—"व्याकरण के लिये प्रयोजनांतर ढूँढ़ने की क्या ज़रूरत? व्याकरण का शब्द-संस्कार ही प्रयोजन है। व्याकरण-शब्द संस्कारक है।" आपको शब्द-संस्कार से क्या अर्थ अभिप्रेत है? क्या धान्यप्रोक्षण, घृतावेक्षण या अग्न्याधान की तरह कोई शब्दों का भी संस्कार होता है। हम नैयायिकों के मत से तो शब्द अनित्य है; वर्ण एक क्षण में उत्पन्न, दूसरे में स्थित, तीसरे क्षण में नष्ट हो जाते हैं, उनके लिये संस्कार की क्या ज़रूरत? 'तुष्यद्दुर्जनन्यायेन' शब्द-संस्कार-प्रयोजन मान भी लिया जाय, तो क्या वैयाकरण असंस्कृत शब्दों का प्रयोग नहीं करते? देखिए, स्वयं पाणिनिजी ने 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इस सूत्र के 'जनिकर्तुः' पद में षष्ठी समास कर 'तृजकानां कर्तरि' इस सूत्र की उपेक्षा की है? वार्तिककार कात्यायन ने ण्यजन्त 'आन्यभाव्यम्' का प्रयोग कर 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि ण्यञ् च' इस सूत्र की टाँग तोड़ी है। स्वयं भाष्यकार ने 'अविरविकन्याय' का प्रयोग कर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इस सूत्र की हत्या की है। जब व्याकरण-शास्त्र-प्रवर्तक मुनित्रय की यह दशा है, तो औरों का क्या कहना? कहाँ तक गिनाएँ। मनु, आश्वलायन, गृह्यसूत्रकार, वाल्मीकि और द्वैपायन, सभी ने तो शब्द-संस्कार की अवहेलना की है।

वैयाकरणजी! अब आप अपने शास्त्र की अव्यवस्था देखिए। आपके यहाँ धातु से तिङ् और कृत् प्रत्यय होते हैं। भला बतलाइए, 'धातु क्या है?' यदि भ्वादिगण में परिगणित की धातु संज्ञा है, तो 'भू' प्रातिपदिक (पृथ्वी-वाची) से भी तिङ् प्रत्यय क्यों नहीं होता है? यदि क्रियावाची की धातु संज्ञा मानी जाय, तो स्था (ठहरना) धातु की धातु संज्ञा न होगी; क्योंकि स्था (ठहरने) में कोई क्रिया नहीं है, और गम् (चलना) धातु का भ्वादि में परिगणन व्यर्थ है। यदि क्रियावाची और भ्वादि में परिगणित की धातु संज्ञा की जाय, तो 'डुपचष् पाके' में 'पाके' की धातु संज्ञा हो जायगी; क्योंकि यह क्रियावाची है, भ्वादि में परिगणित भी है। कारक-प्रकरण में भी ऐसी ही अव्यवस्था है। देखिए, 'क्रियायोगो हि कारकम्' माना जाता है। अब बतलाइए, वृक्षात् पर्णं पतति (पेड़ से पत्ता गिरता है), इस वाक्य में जो वृक्ष-पद है, उसमें कौन क्रिया है? पतनक्रिया पर्ण में है, फिर 'वृक्षात्' में अपादानकारक का पुछल्ला क्यों? आधार की अधिकरण संज्ञा है। कहिए, किसका आधार? यदि क्रिया का, तो सब कारकों की अधिकरण संज्ञा हो जायगी। यदि क्रिया-विशेष का आधार लिया जाय, तो स्थाल्यां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचति (बटलोही में पकाता है) मे, स्थाल्यां में, सप्तमी न होगी; क्योंकि पाकक्रिया का आधार स्थालीस्थ जल है, स्थाली नहीं। कटे भुङ्क्ते (चटाई पर खाता है), यह वाक्य अशुद्ध हो जायगा; क्योंकि विशेष क्रिया (भोजन-क्रिया) का आधार कट नहीं है। क्रिया के द्वारा कर्ता के ईप्सिततम की कर्म संज्ञा होती है। देखिए, ऐसा मानने पर तण्डुलं पचति प्रयोग न होगा, बल्कि ओदनं पचति प्रयोग होगा; क्योंकि ईप्सिततम ओदन है, तण्डुल नहीं। तद्धित और समास-प्रकरण में भी यही अव्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। एकार्थान्वयित्वरूप में जहाँ सामर्थ्य होता है, वहाँ समास होता है, और समास में एकार्थान्वय होता है, यह अन्योऽन्याश्रय दोष कैसे दूर हो ? वैयाकरणजी ! असामर्थ्य में भी तो समास देखा जाता है—जैसे, अश्राद्धभोजी ब्राह्मणः। यहाँ निषेधवाची नञ् का अन्वय क्रिया से है, श्राद्ध से नहीं है। कहाँ तक लिखें। "सर्वथा दुर्व्यवस्थितं शब्दानुशासनम्।" ऐसी अंधाधुंधी शायद ही कहीं देखी गई हो। पद-पद में सामान्य सूत्र के अपवादभूत विशेष सूत्र मिलते हैं; फिर उसके भी अपवादभूत विशेष नियम मिलते हैं। बुद्धि चकरा जाती है। जहाँ उससे भी न काम चला, वहाँ 'अनयिधानम्' कह दिया, अर्थात् 'ऐसा कहीं नहीं देखा गया है।' बस, झगड़ा ख़त्म। ऐसी नियमोच्छृंखलता भला और कहीं मिलती है ? 'आकृतिगणोऽयम्' के कुंभकर्णोदर से तो परमात्मा ही बचाए। ऐसा कोई शब्द नहीं, जो उसमें न समा सके। कोई नियम तोड़ना हुआ, तो 'निपातनात्साधुः' कह दिया। बस, बात बन गई। बहुल-ग्रहण तो बरसात के केचुए की तरह 'पदे-पदे' मिलते हैं। बहुलग्रहण की शक्ति तो देखिए—

क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ;
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।

अर्थात् कहीं नियम लगते हैं, कहीं नहीं लगते, कहीं विकल्प से लगते हैं, और कहीं कुछ-का-कुछ हो जाता है। यह 'विधि का विधान' बहुल प्रपंच है। इससे हम साधारण बुद्धिवालों का निर्वाह नहीं है। सच है—

दुष्टग्रहगृहीतो वा भीतो वा राजदण्डतः।
पितृभ्यामभिशप्तो वा कुर्याद्व्याकरणे श्रमम् ॥

सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

× × ×

२. बचाओ—शत्रुओं से या मित्रों से ?

हिंद-राष्ट्र और हिंदू-जाति को उन्मूलन करने के लिये आंतर और बाह्य, दोनों प्रकार के, शत्रु सतत सचेष्ट हैं, और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये अविश्रांत उद्योग कर रहे हैं। इन शत्रुओं से बचने के लिये यदि उद्योग न किया गया, तो वह दिन दूर नहीं, जब इस देश की सभ्यता का नाम-शेष हो जाय।

बाह्य शत्रुओं की बात हम यहाँ नहीं चलाते ; हमें आंतर शत्रुओं पर ही कुछ कहना है। ये अंतःशत्रु हैं—१ अछूतों की दुर्दशा, २ विधवाओं की पतित अवस्था, ३ आगम द्वार की बंदिश, ४ अविद्या की प्रबलता, और ५ योरप की, प्रत्येक बात में, अंधाधुंध नक़ल। और भी ऐसे ही बहुत-से अंतःशत्रु हैं, जो भीतर-ही-भीतर हिंदू-जाति को खोखला किए दे रहे हैं। इनसे बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को भरसक उद्योग करना चाहिए, और यों जाति-रक्षा के पुण्य का भागी बनना चाहिए।

माधुरी की आश्विन की संख्या में माननीय, वयोज्ञानवृद्ध श्रीलज्जारामजी मेहता का एक लेख निकला है—"मुझे अपने मित्रों से बचाओ।" इस लेख में आपने हिंदू-जाति के हित के लिये ऊपर के आंतर-शत्रुओं पर कुछ प्रकाश डाला है। हम आपके अधिकांश विचारों से सहमत नहीं हैं। ऐसे क़ानूनों के हम भी पक्षपाती नहीं, पूर्ण विरोधी हैं, जो हिंदू-सभ्यता को भ्रष्ट करनेवाले हों ; परंतु जिनसे समाज की कुछ भलाई होना संभव है, उनका स्वागत क्यों न किया जाय ? और, ऐसे क़ानून हमारे अनुचित विरोध करने पर भी बनने से नहीं रुकेंगे।

आपके लेख में एक बात स्पष्ट जगह-जगह ध्वनित होती है—'स्वराज्य' शब्द से चिढ़ और सरकार के प्रति अनुराग। आप वृद्ध हैं। यद्यपि आपको यह शोभा तो नहीं देता, फिर भी इस विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते ; क्योंकि आप इस समय एक देशी राज्य के शायद कोई अच्छे कर्मचारी हैं। विवशता है ! पराधीनता क्या नहीं करा लेती है। दुर्योधन का अन्न खा-खाकर उन बड़े-बड़े मेधावी महात्माओं की बुद्धि भी तो ऐसी पतित हो गई थी कि वे द्रौपदी का उस प्रकार अपमान होना चुपचाप देखते रहे ! हम यह नहीं कहते कि आप स्वराजी बन जायँ ; कहना सिर्फ़ इतना ही है कि इस प्रकार व्यंग्य-बौछार आप-जैसे वृद्धों को नहीं शोभा देती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की शिक्षा के विषय में आपने एक ऐसा वाक्य, प्रारंभ में ही, लिखा है, जिससे उदासीनता टपकती है। ऐसा लिखना ठीक नहीं। आपने लिखा है—"स्त्रियों का पढ़ना बुरा नहीं!" कितना उत्साह-हीन वाक्य है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि स्त्री-शिक्षा को आप उतना अनिवार्य तो नहीं समझते, परंतु यदि कोई स्त्री पढ़ जाय, तो भी कुछ हानि नहीं। आजकल के युग में ऐसे विचारों की क्या कोई क़द्र करेगा?

हाँ, स्त्री-शिक्षा के विषय में आपके शेष विचार बड़े सुंदर हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए; उच्छृंखलता नहीं। जाति का कौन विचारशील पुरुष मालिनी बाई और मिस गांगूली आदि के मुसलमान जवानों के साथ प्रेम-परिणय का अनुमोदन कर सकता है? अवश्य ही स्त्री-शिक्षा में विशेषतः विनय और सदाचार की विशेषता होनी चाहिए। यही बात पुरुषों की शिक्षा के लिये भी है।

आगे आपने विधवा-विवाह पर लिखा है। आपको यह पसंद नहीं। ठीक ही है। पसंद तो हमें भी नहीं; परंतु समय की गति को क्या किया जाय? अब वैसे पुरुष और वैसी स्त्रियाँ बहुत कम—नहीं के बराबर हैं, जो विधुर या विधवा हो जाने पर पूर्ण ब्रह्मचर्य से अपना जीवन बिता सकें। जो ऐसे हैं, शिरसा वंदनीय हैं; परंतु जो ऐसे नहीं, जिनकी इंद्रियाँ वश में नहीं और मन कलुषित है, उन्हें पुनर्विवाह करने से रोकना, समाज में दुराचार और उच्छृंखलता का बढ़ाना ही है। पुरुष और स्त्री को समान ही अधिकार प्रायः होना चाहिए। विधवा-विवाह होने से सनातनधर्म समूचा डूब नहीं जाता, बना रहता है। जाट आदि जातियों में अनादिकाल से विधवा-विवाह होता आया है, और वे पूर्ण सनातनी हैं। नैपाल-राज्य में सनातन-धर्म का पूर्ण साम्राज्य है, और वहाँ विधवा-विवाह ख़ूब होता है। हाँ, यह ज़रूर होना चाहिए कि हम इसके लिये उत्तेजना न दें, बल्कि पातिव्रत का महत्त्व समझावें और उसका प्रचार करें। फिर भी यदि कोई अपना विवाह करना चाहे, तो कर ले। धर्मशास्त्र विधवा-विवाह मना नहीं करते, सिर्फ़ निम्नकोटि में उसे रखते हैं, जो ठीक ही है।

अछूतों के विषय में जो आपने लिखा है, सो ठीक ही है; पर लिखने का ढंग अच्छा नहीं, उपेक्षापूर्ण है, और व्यंग्यों से भरा है। हम भी नहीं चाहते कि उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार किया जाय; पर उनके साथ हेल-मेल का बर्ताव क्यों न किया जाय? उन्हें पूर्ण सामाजिक अधिकार क्यों न दिए जायँ, जैसे और वर्णों को प्राप्त हैं। केवल देव-दर्शन करा देने से ही काम न चलेगा, उन्हें पूर्ण सामाजिक अधिकार देने होंगे। विवाह-बंधन आदि व्यवहार तो ब्राह्मणों का, क्षत्रियों अथवा वैश्यों के साथ भी नहीं; किंतु इससे उनके सामाजिक अधिकार कुछ कम नहीं। यही बात शूद्रों के लिये भी होनी चाहिए। उन्हें पवित्रता और सफ़ाई भी सिखाई जानी चाहिए। बस, सब झगड़े मिट जायँगे।

अंत में आपने 'शुद्धि' के विषय में भी कुछ लिखा है। आप जन्म के मुसलमान या ईसाई को शुद्ध करके हिंदू बनाने के पक्षपाती नहीं, विरोधी हैं। यह ठीक नहीं। आपका कहना है कि ऐसी शुद्धि शास्त्र-विरुद्ध है। यह कहना ग़लत है। शास्त्रों में ऐसी शुद्धि का पूर्ण समर्थन है, और ऐसी शुद्धि अब से नहीं, हज़ारों और लाखों वर्षों से, किंवा सदा से होती आई है—शुद्ध सनातनियों के द्वारा। ऐसी शुद्धि के आद्य प्रचारक ब्राह्म-समाज या आर्य-समाज नहीं, वैष्णव-धर्म है। वैष्णव-धर्म का ही दूसरा नाम 'भागवत-धर्म' है। इतिहास साक्षी है कि वैष्णवों ने शुद्धि और अछूतोद्धार के विषय में अब से हज़ारों वर्ष पूर्व कैसा काम किया है। क्या आप वैष्णव-धर्म को भी सनातन नहीं कहते? हमें तो ऐसा विश्वास नहीं। यदि वैष्णवों द्वारा की हुई जन्म के मुसलमानों की शुद्धि के विषय में आप जानना चाहें, तो श्रीनिम्बार्क-संप्रदाय के आचार्य श्रीकेशवभट्टाचार्य जगद्विजयी, श्रीमाध्वसंप्रदायाचार्य श्री-श्रीकृष्णचैतन्यदेव और श्रीरामानुजाचार्य तथा श्रीरामानंदजी का जीवनचरित ही पढ़ लीजिए। पता चल जायगा।

हमारी राय में आजकल शुद्धि का विरोध करना उपहासास्पद ही है। इसे कोई मानने का नहीं।

अंत में निवेदन यही है कि पूज्य मेहताजी को चाहिए कि ऐसे विषयों में रोड़े अटकाने की व्यर्थ चेष्टा न किया करें, जो सार्वजनिक हैं—जैसे शुद्धि। यों आपके प्रति हमारी बड़ी श्रद्धा है, और आपके विचार हम बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। आशा है, आप विचार करेंगे।

किशोरीदास वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकार—अज्ञात] [**स्वरकार**—कुमारी गोपालदेवी

राग—भूपाली

ताल—सूलफाखता

साधे सुर साधे। सुध सुरलोक देत।

औडव यही राग। संगीत मत प्रमान।

ध प ग रे सा ध़ प़ ध़ सा रे। ग प ध सां उलट पुलट सुरन को।

धा	धा	दीं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गिन
×		०		२		३		०	
गप	—	प ग	—	ध	प	पग	पर	गर	सर
साऽ	ऽ	धे	ऽ	सु	र	साऽ	ऽऽ	धेऽ	ऽ,ऽ
गप	गपधप	ध	ध सं	सं धप	ध	पग	पर	गर	सर
सुऽ	धऽऽऽ	सु	र	लोऽ	ऽ	कऽ	देऽ	ऽऽ	तऽ

अंतरा

प					सं				
ग	—	प	ध	सं	ध	—	सं	—	सं
औ	ऽ	ड	व	य	ही	ऽ	रा	ऽ	ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध									
सं	ध	सं	रं	गं	रं	सं	ध	प	ग
सं	ऽ	गी	त	म	त	प्र	मा	ऽ	न
ध	प	ग	र	स		प	ध	स	र
ग	प	ध	सं	धसं	रंगं	रंसं	धप	गर	सर
				उल		लट	सुर	०न	कोऽ
र									
प	—	ग	—						
सा	ऽ	धं	ऽ						

राग विवरण—भूपाली-राग पाँच स्वरों का औडव श्रेणी का है। इसमें मध्यम और निषाद वर्ज्य, गंधारवादी और धैवत संवादी होता है।

सांकेतिक चिह्न—सं जिस स्वर के ऊपर बिंदु हो, उसे तार सप्तक का समझो।

ग़ जिस स्वर के नीचे बिंदु हो, उसे मध्य सप्तक का समझो।

इस ‿ चिह्न से आधी मात्रा का अभिप्राय है।

— चिह्न से एक बार और उच्चारण करना है।

० गोल बिंदु से ख़ाली का चिह्न।

× ताली सम।

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-ख़० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

पीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।
इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।
नक़्क़ालों से सावधान रहिए

१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

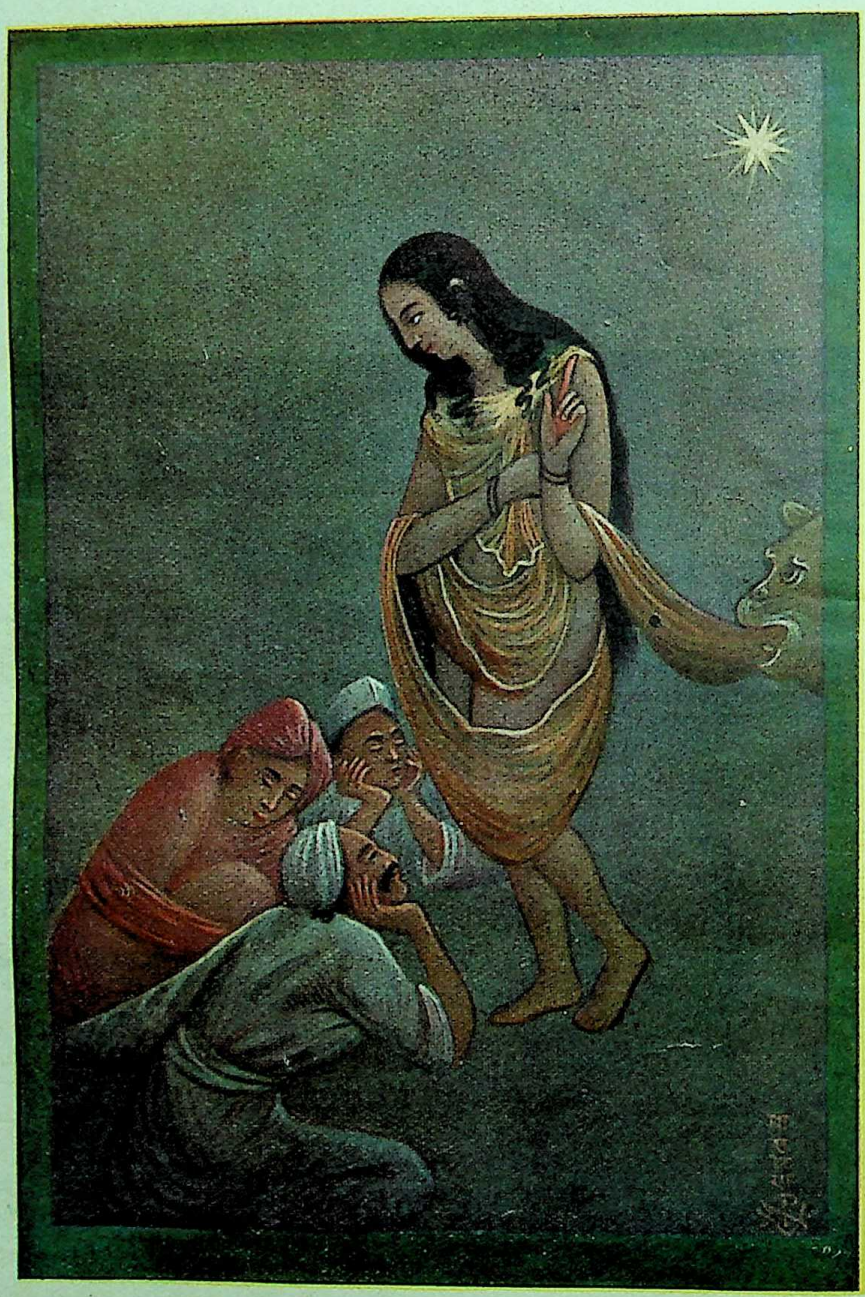

कर्तव्य-विमुखता

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. प्रकाश की विजय

आर्यों का समस्त जीवन प्रकाश की गोद में व्यतीत होता था। सूर्य को वे भगवान् मानकर पूजते थे। प्राचीन ग्रीक तो कहा करते थे कि सूर्य केवल चित्रकार ही नहीं है, बल्कि मूर्तिकार भी। पाश्चात्य जगत् में इस समय प्रकाश के विषय में बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ हो रही हैं। सन् १८९० में डाक्टर टी० ए० पाम ने बतलाया था कि प्रकाश के प्रभाव से बालक रूपवान् और ताक़तवर हो जाते हैं, और उसके अभाव से उनका वक्षःस्थल तथा भिन्न-भिन्न अंग कुरूप हो जाते हैं। इसके बाद, सन् १८९२ में, फ़िनसेन ने एक "कृत्रिम सूर्य-प्रकाश" उत्पन्न करनेवाला यंत्र तैयार किया। फिर सन् १९०३ में प्रोफ़ेसर आगस्ट रोलियर ने प्रकाश के द्वारा रोगों को दूर करने की चिकित्सा-विधि प्रारंभ की। अभी स्वीज़रलैंड में सर्व-राष्ट्रीय प्रकाश की कानफ़रेंस हुई है। उसमें प्रकाश की महत्ता पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। सबका सार यह है कि प्रकाश की अल्ट्रावायलेट किरणें स्वास्थ्य के लिये बड़ी ही लाभदायिनी हैं।

अतएव हमें अपने घर की वायु को प्रकाश-पूरित रहने देना चाहिए। इसीलिये जर्मनी-अमरिका आदि देशों में

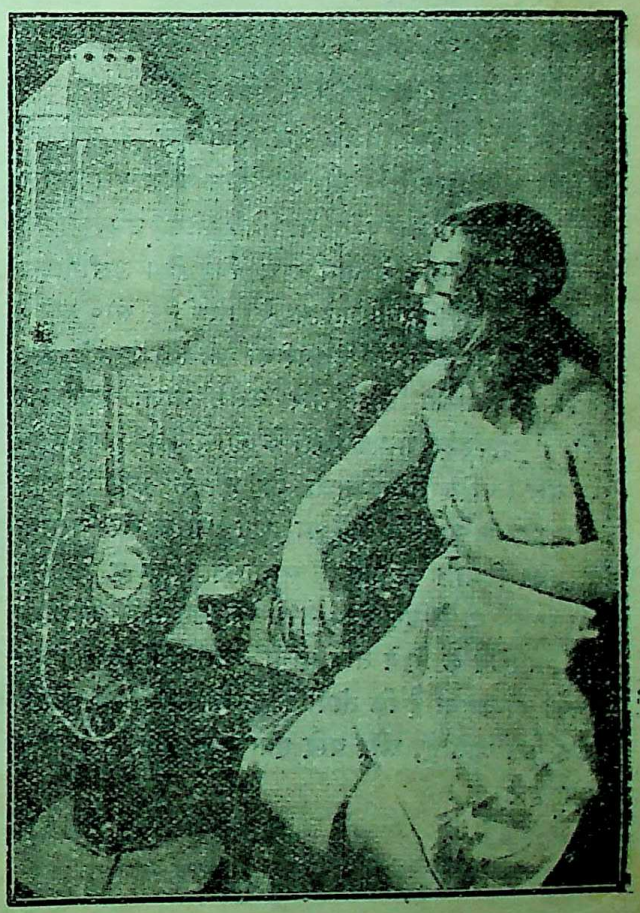

कृत्रिम सूर्य-प्रकाश में स्नान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्त्र-रहित रहकर सूर्य के प्रकाश में प्रतिदिन किलोल करने की प्रथा का जन्म हुआ। हमारे देश में सूर्य का प्रकाश साल में लगभग ८ मास रहता है, ख़ाली वर्षाकाल में लोप हो जाता है। ऐसे मौक़े पर कृत्रिम लैंपों का उपयोग करना चाहिए, जो सूर्य के समान प्रकाश उत्पन्न करने के लिये ही तैयार किए गए हैं। इस तरह के लैंपों द्वारा, घर के अंदर, वस्त्र-रहित बैठे हुए सूर्य की किरणों के अमृतमय भाग—अल्ट्रावायलेट किरणों से लाभ उठाया जा सकता है। बच्चों, गर्भवती माताओं, खदानों में काम करनेवालों और रात्रि को काम करनेवालों को इन लैंपों से लाभ उठाना चाहिए।

समय-समय पर इस प्रकाश को भोजन के पदार्थों पर भी डालना चाहिए। इससे भोजन के उपयोगी तत्त्व—डी विटामिन—की वृद्धि भी हो जाती है। इससे भोजन का मूल्य बढ़ जाता है।

× × ×

२. पानी बरसाने की मददगार धूल

रासायनिक हँसते थे कि भला कहीं धूल भी वर्षा की सहायिका हो सकती है, और हम लोग केवल इसे पागल का प्रलाप कहते थे; परंतु वैज्ञानिक लोग उधेड़बुन में लगे ही रहे। अंत में बात सच निकली। इलीनोइस (Elinois)-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर सी० एफ़० निप ने अभी हाल में एक परीक्षा की है। उन्होंने एक काँच के बर्तन को लिया और उसमें गीली हवा भर दी। थोड़ी देर में एक नली के द्वारा कुछ धुआँ बर्तन में भरा। परिणाम यह हुआ कि धुएँ के कणों को केंद्र बना हवा के पानी ने बूँदों का रूप धारण कर बरसना शुरू कर दिया। यह इतनी साधारण परीक्षा है कि कोई भी सावधानी से इसे स्वयं करके देख सकता है। कई देशों में वर्षा होने के लिये तोपें दागी जाती हैं। अतएव वैज्ञानिकों का कहना है कि तोपों के दागने से हवा में धूल के कण फैल जाते हैं, और यदि हवा गीली हुई, तो अवश्य वर्षा होती है।

× × ×

३. हीलियम गैस (हवा)

धीरे-धीरे हम अनेकों तत्त्वों से परिचित हो गए। सब तत्त्वों के अनुसंधान से अधिक रोचक हीलियम की कहानी है। पीरियाडिकल-चक्र में, (Periodical table दो तत्त्वों के बीच में, एक स्थान के ख़ाली रहने से रास यनिकों को ज्ञात हो जाता है कि अमुक-अमुक गुणोंवाल तत्त्व और मिलना चाहिए। तभी चक्र का ख़ाली स्था भरा जा सकता है। वे नवीन तत्त्व की खोज में रहते हैं एक समय अकस्मात् स्पेकट्रासकोप की सहायता से उ इस तत्त्व का पता सूर्य के धरातल पर लगा।

सन् १८६८ में, सूर्य-ग्रहण के समय, स्पेकट्र सकोप-यंत्र के द्वारा एक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि सूर्य की सतह पर कई प्रकार की गैसें जलती हु अवस्था में हैं। उनमें हाइड्रोजन (Hydrogen प्रधान है। इसके कुछ समय बाद परीक्षा करने प सर नार्मन लाकयर ने, परीक्षा करने पर, एक नवीन गैस को सूर्य की सतह पर अन्य गैसों के साथ जलते हुए पाया यह वायु पृथ्वी पर उस समय नहीं प्राप्त हुई थी। अतए इसका नाम हीलियम (अर्थात् सूर्य पर रहनेवाली रक्खा गया। २६ वर्षों के बाद सर विलियम रेमज़े ने इ रेडियम के पतन से उत्पन्न तत्त्वों में पाया। तब से हीलि यम की बड़ी खोज होने लगी।

हीलियम व्यापारिक दृष्टि से बड़ी ही उपयोगी सि हुई। हाइड्रोजन की अपेक्षा अधिक हलकी और हाइड्रोजन समान तात्कालिक जल उठनेवाली न होने के कारण इसक वायुयानों में बहुतायत से प्रयोग होता है। गहरे समुद्र काम करनेवाले भी हीलियम-मिश्रित ओषजन का प्रयो करते हैं। यह आविष्कार विज्ञान की भविष्यवाणी क सत्यता पर अच्छा प्रकाश डालता है।

नाथूराम शुक्ल

× × ×

४. जुक़ाम दूर करनेवाली और नींद लानेवाली मशीनें

लायंस (फ्रांस)-विश्वविद्यालय के प्रो० बोडियर एक ऐसा विद्युत्-यंत्र बनाया है, जिसे नाक से लगा हैं, और थोड़ी देर तक विद्युत्-धारा प्रवाहित करते हैं, जुक़ाम का रोगी भला-चंगा हो जाता है। कहा जाता है इस प्रक्रिया द्वारा जुक़ाम के सारे कीड़े मर जाते और रोगी बीमारी से छुटकारा पा जाता है।

बर्लिन के डा० हैंस सालोमन ने एक दूसरा यंत्र बना है, जो निद्रा लाता है। चित्र में दो स्त्रियाँ हैं। एक निद्रा के लिये दवाई खाई है, और दूसरे पर डा० साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

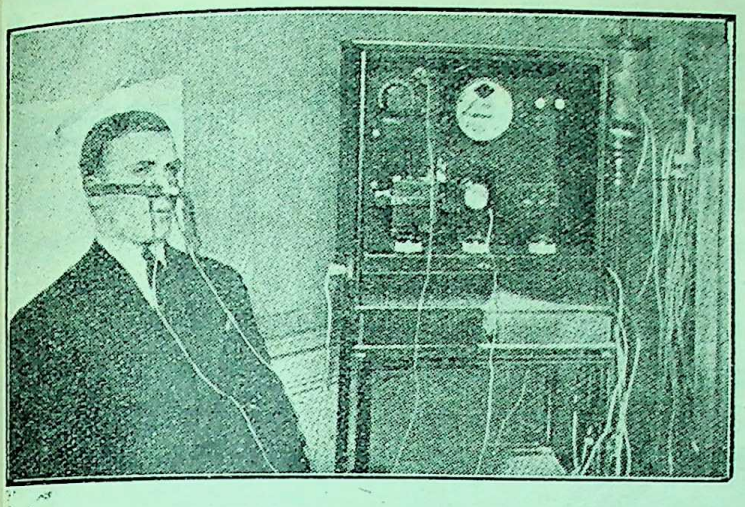

जुक़ाम दूर करनेवाला यंत्र

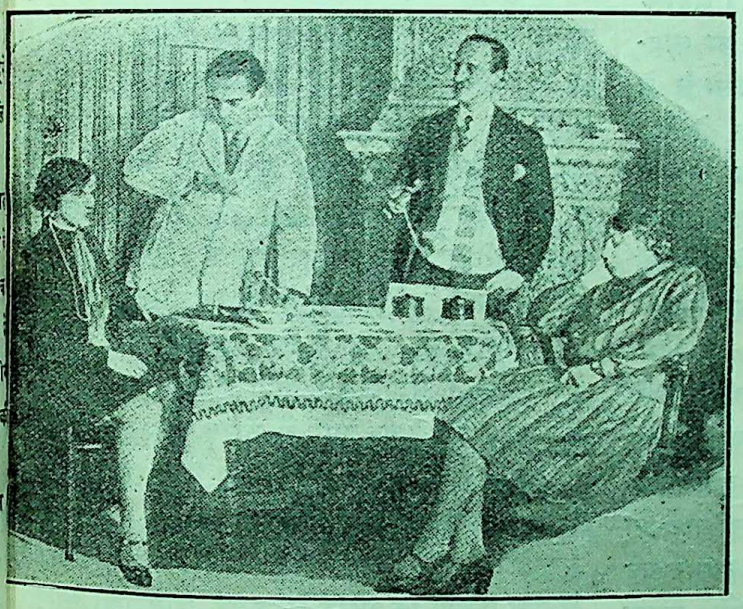

निद्रा बुलानेवाला यंत्र

न अपने यंत्र द्वारा सुलाने की प्रक्रिया कर रहे हैं। रीक्षा समाप्त होने पर पता लगा कि इस यंत्र द्वारा तनी जल्दी निद्रा बुलाई जा सकती है, उतनी जल्दी ौर आसानी से और किसी तरीके से नहीं।

× × ×

५. धन्यवाद देनेवाली मशीन

जर्मनी के बर्लिन-शहर में एक अख़बार-वाले ने एक मशीन बनवाई है, जिसमें पैसा डाल देने पर अख़बार की एक प्रति निकल

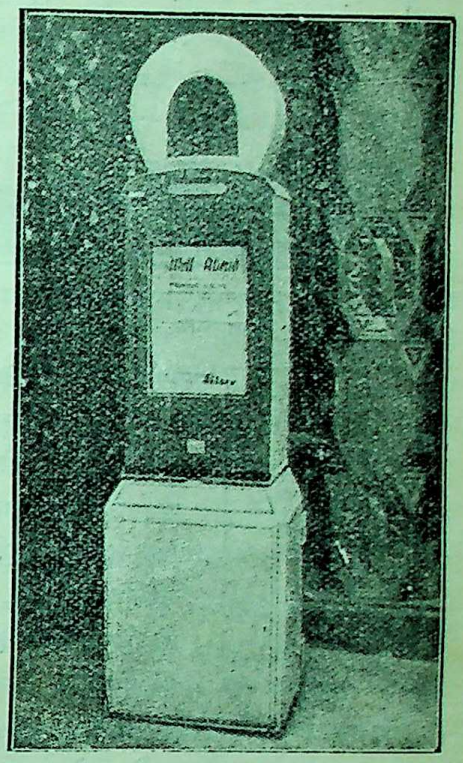

धन्यवाद देनेवाली मशीन

आती है, और मशीन बोल उठती है—'धन्यवाद।' इस प्रकार की मशीन सिगरेट, दियासलाई आदि बेचनेवाले भी लगाने का विचार कर रहे हैं।

श्रीरमेशप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

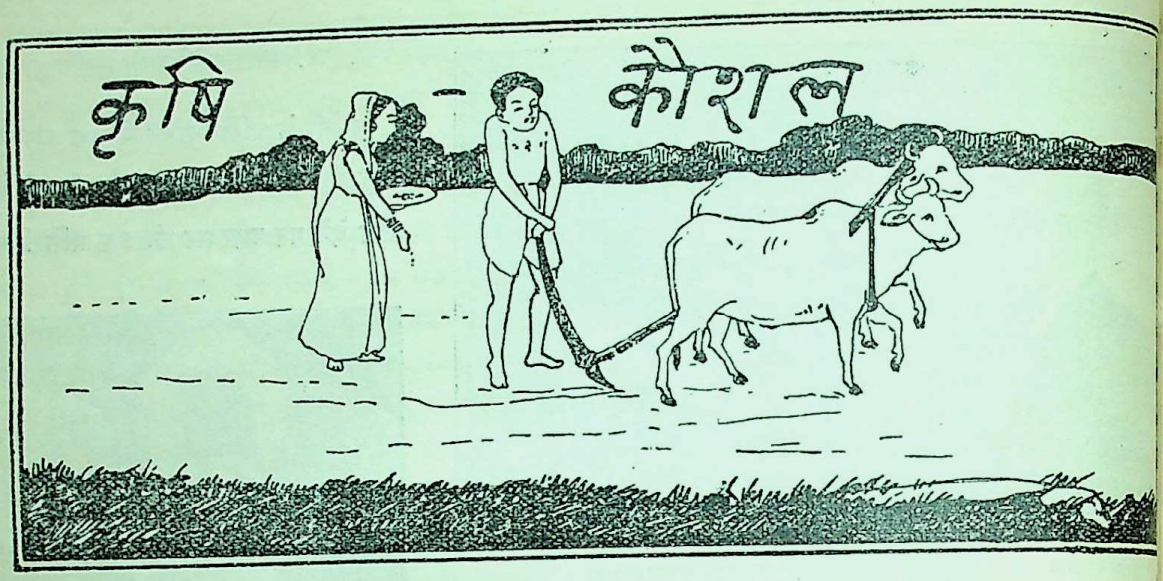

खेती और कला-कौशल

भारतवर्ष किसानों का देश है। यहाँ के ९० प्रतिशत मनुष्यों का व्यवसाय खेती है, और उसी से ये अपना उदर-पोषण करते हैं। किंतु जितनी यहाँ के किसानों की दीन दशा है, उतनी शायद ही किसी अन्य देश के किसानों की होगी। उनकी इस दुर्दशा के अनेक कारण हैं, और इसके निवारणार्थ जो कुछ किया भी गया, वह बहुत कुछ शिक्षा के अभाव और सच्चे कार्यकर्ताओं के निरुत्साह के कारण विफल हुआ। जिस देश के ९० प्रतिशत मनुष्यों की इतनी दीन दशा हो, उस देश का भविष्य क्या होगा—यह स्वयं अनुमान करने की बात है। अस्तु, आज भारतवर्ष के सामने यह बहुत जटिल प्रश्न आता है कि वह खेती को ही अपना मुख्य व्यवसाय क़ायम रक्खे, या कला-कौशल की ओर झुके। किस ओर जाने से भविष्य में कल्याण की आशा की जा सकती है? पाश्चात्य देश के विद्वानों और अर्थ-शास्त्र-मर्मज्ञों का मत है कि भारतवर्ष को, खेती ही को अपना मुख्य व्यवसाय क़ायम रखना चाहिए। भारतवर्ष-सरीखे देश में—जहाँ की धरती इतनी उपजाऊ है, जहाँ पूर्ण प्रकृति का विकास है, जहाँ की जलवायु सब प्रकार से खेती के लिये अनुकूल है—खेती छोड़कर कला-कौशल की ओर जाना तो बड़ी भारी भूल होगी। इसके अतिरिक्त अंतर-राष्ट्रीय व्यापार में भी भारतवर्ष की पैदा[illegible] का अच्छा स्थान है। यहाँ की पैदावार की अन्य देशों [illegible] बहुत माँग है, और उसका बहुत बड़ा बाज़ार है। कला-कौ[illegible] की उन्नति के लिये यह बहुत आवश्यक है कि लोहे [illegible] कोयले का कला-विज्ञान बहुत उच्च शिखर पर प[illegible] चुका हो; क्योंकि लोहे और कोयले के कला-विज्ञान [illegible] ही आधुनिक कला-कौशल की नीव है। भारतवर्ष [illegible] तरफ़ अभी बहुत कम अग्रसर हुआ है। विदेशों से म[illegible] मँगावें, और एक-एक पुर्ज़े के लिये भारतवासी वि[illegible] पर आश्रित रहें, तो वे क्या कला-कौशल की उ[illegible] करेंगे। अस्तु, वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग करके खेती [illegible] ही उन्नति की जाय, इसी में भारत का कल्याण होग[illegible]

कुछ विद्वानों का मत है कि खेती से भारत का उद्धा[illegible] होगा; इसकी दरिद्रता कला-कौशल ही द्वारा दूर [illegible] सकेगी। भारत के अंतर-राष्ट्रीय व्यापार पर दृष्टिपात [illegible] से पता चलेगा कि भारत से बाहर जानेवाली चीज़[illegible] सबसे पहला नंबर रुई का आता है, ठीक उसी [illegible] भारत में आनेवाली चीज़ों में प्रथम नंबर रुई के [illegible] का आता है। यहाँ से अनेक प्रकार के तेलहन भी वि[illegible] को बहुत अधिकता से जाते हैं, और वहाँ से तेल, [illegible] वग़ैरह के रूप में फिर भारतवर्ष को आते हैं। [illegible] वर्ष के ९० प्रतिशत मनुष्य प्रायः निर्धनों की ही [illegible] में आते हैं, और मोटा खाकर तथा मोटा पहनक[illegible] अपना निर्वाह करते हैं। उन्हें मैन्चेस्टर के बने हु[illegible] क़ीमती कपड़ों की स्वप्न में भी आवश्यकता नहीं [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर यही रुई, जो विदेशों को सेरों के हिसाब से जाती और तोलों के हिसाब से वापस आती है, यहाँ देश में काम में आती होती तो यहाँ की जन-संख्या को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचता। एक तो कितने ही देश-भाइयों को, जो दरिद्रता के कारण एक वक्त भी भर-पेट भोजन नहीं पाते, जीविका मिल जाती; दूसरे, जो कुछ व्यवसाय में लाभ होता, वह भारतवर्ष ही में रहता। कला-कौशल की उन्नति होने से जितना धन बेकार पड़ा हुआ है, वह बेकार न रहता। भारतवर्ष में धन गाड़ने की प्रथा अथवा गहनों और ज़ेवरों के रूप में धन को बेकार कर देने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है। आधुनिक अर्थशास्त्र-मर्मज्ञों का हमेशा से यह उद्योग रहा है कि भारतवर्ष में इस प्रकार धन को बेकार करने की प्रथा शीघ्रातिशीघ्र नष्ट हो। फिर जहाँ नई-नई कलाओं की उन्नति होती है, वहाँ उन्हीं से संबंध रखते हुए और अनेक प्रकार के व्यवसाय उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे, जहाँ पर कपड़े बनाने का काम बड़े पैमाने पर चलता है, वहाँ कपड़ा धोने, कपड़ा रँगने इत्यादि के अनेक प्रकार के और छोटे-छोटे व्यवसाय उत्पन्न होकर कितने ही लोगों की जीविका-वृत्ति चलाते हैं। इसके अतिरिक्त कला-कौशल की उन्नति होने से खेती पर निर्भर रहने-वालों की संख्या भी कम हो जायगी। उनकी संख्या कम हो जाने से बचे हुए किसानों को अधिक ज़मीन बोने और जोतने को मिलेगी। खेती का व्यवसाय ऐसा है कि उसमें कुछ काल और कुछ सीमा के बाद लागत के अनुपात में पैदावार नहीं होती। इसको अँगरेज़ी में (Law of diminishing Returns) ला आफ़ डिमिनिशिंग रिटर्न्स कहते हैं। यद्यपि यह नियम कला-कौशल में भी लागू होता है, तथापि यह अवस्था कला-कौशल में खेती की अपेक्षा अधिक देर से आती है। अस्तु, वर्तमान अवस्था में थोड़ी ज़मीन से अगर हम अधिक-अधिक लागत लगाकर, उसी अनुपात में, पैदावार करना चाहें, तो यह उद्योग सफल न होगा। इसके अतिरिक्त एक ही ज़मीन को लगातार बोते रहने से उसकी उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये अन्य देशों में, जहाँ धरती पर इतना अधिक भार नहीं है, और जहाँ पर ज़मीन की इतनी ज़्यादा कमी नहीं है, किसान लोग ज़मीन को दो बराबर-बराबर हिस्सों में विभक्त कर देते हैं। एक को जोतते-बोते हैं, और दूसरी को वैसी ही पड़ी रहने देते हैं, फिर दूसरे साल दूसरी को बोते-जोतते हैं, और पहलेवाली पड़ी रहती है। ऐसा करने से ज़मीन की उर्वरा-शक्ति नहीं नष्ट होती।

अंतर-जातीय, अंतर-प्रांतीय एवं अंतर-राष्ट्रीय समागम ही सभ्यता का उद्गम-स्थान है। देशाटन ही इसका एक-मात्र साधन है। कृषि-प्रधान देश होने के कारण भारतवर्ष का जन-समुदाय छोटे-छोटे गाँवों में ही रहता है। ग्रामीण मनुष्यों की आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी होती हैं, और प्रायः वहीं पूरी हो जाती हैं। एक तो किसानों का व्यवसाय ही इस प्रकार का है कि उन्हें खेतों के पास रहने को बाध्य करता है, और दूसरे, स्वभावतः ही वे इधर-उधर जाने से हिचकते हैं। शिक्षा के अभाव तथा अन्य उन्नत जातियों के साथ समागम न होने के कारण वे कूप-मंडूक बने अपनी दीन-हीन दशा से ही संतुष्ट रहते हैं। वहाँ किसी प्रकार की स्पर्द्धा की उत्तेजना नहीं रहती, जो किसी भी जाति या देश की उन्नति के लिये बड़ी बाधक होती है। कला-कौशल की उन्नति होने से शहरों की वृद्धि होती है; क्योंकि शहर ही कला-कौशल के केंद्र-स्थान हैं। शहर में रहना ही शिक्षाप्रद है, प्रतिदिन कुछ-न-कुछ नई जानकारी प्राप्त होती है। आधुनिक सभ्यता के सभी साधन शहरों में ही मिलते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों के आदमियों से समागम होने के कारण नगरवासियों का ज्ञान बढ़ता है, और उन्हें संसार में अपनी स्थिति का पता लगता है। देशभक्ति, जो किसी भी राष्ट्र की उन्नति का मूल-मंत्र है, नगर में ही रहने से अंकुरित होती है। जो हमेशा गाँवों में रहते हैं, वे राज-नीति आदि से सैकड़ों कोस दूर रहते हैं। इसलिये कला-कौशल की उन्नति से जनता को हर प्रकार की शिक्षा मिलती है। अस्तु, भारतवर्ष में जिन-जिन कलाओं की उन्नति के सरल साधन मौजूद हैं, उनमें धन, श्रम और कार्य-दक्षता का प्रयोग करके, उनको उन्नत करने की बड़ी आवश्यकता है। किसी भी कला-कौशल की उन्नति के कई साधन होते हैं, उनमें से मैं आजकल के समय में दो ही को विशेषता देता हूँ। प्रथम तो कच्चे माल को, और दूसरे, उसकी बिक्री के वास्ते बड़े बाज़ार को। हिंदुस्थान एक बहुत बड़ा देश है, और यहाँ के बाज़ार में कितनी ही विदेशी वस्तुओं की बहुत अधिकता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खपत होती है। इँगलैंड, अमेरिका, जर्मनी और जापान से ही यहाँ का विशेष तिजारती संबंध है। अगर यहाँ की खेती की उपज का प्रयोग यहीं पर हो, तो बाहर से बहुत कुछ माल मँगाने की आवश्यकता न रहे। किंतु यदि यह विचार किया जाय कि भारतवर्ष को जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, वे यहीं बना ली जायँ और अन्य देशों से व्यापारिक संबंध बिलकुल ही तोड़ दिया जाय, तो यह बात निरा असंभव ही नहीं, वरन् भारतवर्ष के लिये बहुत अहितकर होगी। प्रत्येक देश को उन्हीं वस्तुओं को पैदा करना चाहिए, जिन्हें वे अन्य देशों की अपेक्षा कम लागत में सरलता से पैदा कर सकें, और दूसरी वस्तुओं को अन्य देशों से मँगावें, जहाँ वे सुबीते से पैदा की जा सकती हैं। इस सिद्धांत पर विचार करते हुए भारत में जिन-जिन कला-कौशलों की उन्नति हो सकती है, वे कपड़े के काम, तेल के कारख़ाने, काग़ज़ के कारख़ाने, चमड़े के कारख़ाने और लकड़ी के काम वग़ैरह हैं। कपड़े के कारख़ाने खोलने के लिये यहाँ रुई बहुत अधिकता से पैदा होती है। श्रम की भी कमी नहीं है। बाज़ार भी बहुत विस्तृत है। आधुनिक नवीन साधनों के कारण धन की कोई अड़चन नहीं पड़ती। उसी प्रकार तेल के कारख़ाने भी सहूलियत के साथ खोले जा सकते हैं। भारतवर्ष से लगभग २० करोड़ रुपयों का तेलहन प्रतिवर्ष बाहर जाता है। काग़ज़ के कारख़ानों के लिये यहाँ पर बाँस की इतनी अधिक उपज है कि शायद सारे संसार को भारतवर्ष ही अकेला कुछ साल तक काग़ज़ दे सकता है। चमड़ा भारतवर्ष से लगभग १५ करोड़ रुपए का बाहर जाता है। अगर वह कच्ची हालत में बाहर न जाय, तो बहुत कुछ देश का उपकार हो सकता है। कच्ची हालत में इन तमाम चीज़ों को बाहर भेजने से बहुत कम दाम मिलते हैं, और देश को कुछ भी फ़ायदा नहीं होता। किंतु इन विचारों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये सरकार को काफ़ी मदद और हर प्रकार से उत्साह देने की आवश्यकता है। आजकल के कितने ही अर्थशास्त्र-वेत्ता स्वतंत्र व्यापार (Free Trade), के पक्षपाती हैं; किंतु देश की अवस्था पर विचार करके, प्रत्येक राष्ट्र ने अपने कला-कौशलों की रक्षा के लिये नियम बनाए हैं, और उन्हीं पर अमल करते हैं। तो फिर भारतवर्ष ही क्यों स्वतंत्र व्याप और साम्राज्यांतर्गत विशेष रूप के व्यापारिक संबं (Imperial Preference) का पक्षपाती हो साम्राज्यांतर्गत विशेष रूप के व्यापारिक संबंध भारतवर्ष को कुछ विशेष लाभ नहीं होता बल्कि उल हानि ही होती है।

भारतवर्ष में कला-कौशल की उन्नति की जाय—इस मेरा यह आशय नहीं कि खेती, जो भारत का मुख्य व्यवसाय है, छोड़ दी जाय। वस्तुतः दोनों में सामंजस्य होने ही से भारत का कल्याण हो सकेगा। किसी भी कला-कौशल की नीव डालने के पहले कच्चे माल की आवश्यकता होती है। खेती से भारत को कच्चा माल मिलेगा उस कच्चे को विदेशों में भेजने के बजाय यहीं उसका उपयोग किया जाय। इसके साथ-ही-साथ इस बात की भी बहुत आवश्यकता है कि ग्रामीण उद्योग-धंधों का पुनरुद्धार किया जाय। इससे कृषकों का बड़ा भारी उपकार होगा। वे अपने बचे हुए समय को बेकार नष्ट न करेंगे और अपनी आवश्यकता की तमाम वस्तुएँ स्वयं बना लेंगे। उन्हें अपने प्रतिदिन के काम में कुछ नवीनता भी मालूम पड़ेगी, जो स्वास्थ्य के लिये बहुत आवश्यक है।

उपर्युक्त विषय बहुत ही आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण है; किंतु बड़े खेद की बात है कि हिंदी-साहित्य में ऐसी पुस्तकों का बहुत अभाव है, जो ऐसे विषयों पर कुछ प्रकाश डाल सकें। हिंदी-साहित्य में वीर-रस, भक्ति-रस, शृंगार-रस, नायक-नायिका-भेद आदि सभी बातों का यथेष्ट वर्णन हो चुका है। अब बीसवीं शताब्दी में, इस कल-युग (Age of machinery) में, आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे ही विषयों पर विचार-पूर्ण लेख और पुस्तकें आदि लिखी जायँ। पाठकों से मेरा अनुरोध है कि वे इस विषय पर और भी अधिक प्रकाश डालकर हिंदी-साहित्य की सच्ची सेवा करें।

प्रतापनारायण मि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में व्यवसायवाद की आवश्यकता

[शेषांश]

क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि यह आर्थिक स्वतंत्रता हमें केवल खेती करने से प्राप्त हो सकती है ? इसके विपरीत यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें, तो मालूम होगा कि विदेशी लोग इस खेती के फल का लाभ उठाकर, हमारे धन द्वारा, मोटे होते हैं। हम तो कच्चा माल पैदा करते हैं, और विदेशी उसका फैंसी माल बनाकर यहाँ भेजते हैं। हम अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिये भी परदेशियों के मोहताज हैं ! कृषि की उत्पादन-कला में उन्नति करने से, पैदावार वर्तमान श्रम से कम श्रम द्वारा बढ़ सकती है, यह आधुनिक प्रयोगशालाओं ने प्रमाणित कर दिया है। फिर ऐसा करने से हमें और अधिक मनुष्य बेकार मिल सकते हैं, जिन्हें हम अन्य औद्योगिक कार्य में लगाकर देश की आर्थिक दशा का बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। ज़िला आज़मगढ़ में मार्टिन साहब ने आधुनिक रीति से कृषि करते हुए विचित्र उन्नति की है, और मेरे कथन को पुष्ट किया है। फ़ी बीघे जितना अन्न उनके खेत में होता है, तथा गन्ना जितना मोटा वह पैदा कर लेते हैं, उस ज़िले के किसी खेत में नहीं होता। माना कि इस प्रकार की खेती के लिये शिक्षा, श्रम तथा धन की विशेष आवश्यकता है; पर इस समय यहाँ इसकी त्रुटि नहीं है। हमारे बहुत-से बेकार शिक्षित भाइयों में से कुछ लोग अपना ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकते हैं, और यदि हमारे धनवान् ज़मींदार लोग २५ फ़ी-सदी सूद खाने के बजाय इन बेकार शिक्षित लोगों की सहायता द्वारा अपनी ज़मींदारी की उन्नति करें, तो २५ फ़ी-सदी से कहीं अधिक लाभ उठा सकते हैं; किंतु यहाँ तो वह दशा है कि जिसके पास चार पैसे हैं, उसे ये काम 'झंझट' मालूम होते हैं। कुछ भूमिपति तो ऐसे हैं, जिन्हें बड़े साहब से मिलने, ऐश-आराम करने, मित्रों से वार्तालाप करने आदि से ही छुट्टी नहीं मिलती; अपने रियासत की सुध वे क्या लें।

यह तो हुई कृषि-संबंधी सुविधा, अब हमें यह देखना है कि भारत में व्यवसाय की उन्नति के लिये क्या मसाले एकत्रित हैं। प्राचीन भारत अपने राजकोष तथा कारीगरों की दस्तकारी की निपुणता के लिये कितना प्रसिद्ध था, यह छिपा नहीं है। अभी-अभी केवल चंद शताब्दियों की बात है, जब प्रथम बार पश्चिमी व्यापारियों ने भारतवर्ष में पदार्पण किया। यह देश यदि सर्वश्रेष्ठ नहीं, तो औद्योगिक उन्नति में किसी पाश्चात्य देश से कम नहीं था; किंतु ईस्ट-इंडिया-कंपनी के आते ही और भारतीय बाज़ारों का द्वार विदेशी स्पर्द्धा के लिये खुलते ही भारतीय उद्यम का नाश हो गया। केवल उन्हीं चंद दस्तकारियों का जीवन शेष रह गया, जो मशीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा सफ़ाई और सुंदरता के साथ सफलता-पूर्वक नहीं बनाई जा सकती थीं। आज भी यह देश अपनी विशाल भौतिक संपत्ति तथा असाधारण अप्रकट शक्ति के कारण औद्योगिक उन्नति के लिये एक अद्वितीय स्थान है। सन् १९२१-२२ की निर्यात-तालिका के देखने से प्रतीत होगा कि कुल निर्यात का अर्द्ध-भाग कच्चा माल तथा अपूर्ण माल ही होता है। २३,२७६ लाख के निर्यात में १०,९७३ लाख के लगभग कच्चा माल था, और यही माल फिर भारत में बनकर वापस आया। अब यदि इस माल से इसी देश में काम लिया जाय, तो आप समझ सकते हैं कि इस देश को कितने प्रचुर वैभव का लाभ हो सकता है। इससे प्रतीत हुआ कि कच्चे माल की हमें कमी नहीं, कमी केवल उसको उपयोग में लाने की कला की है।

पुनः भारतवर्ष का प्रधान उद्यम सूती माल तथा जूट है, और जूट में भारतवर्ष का एकाधिकार है; पर रुई और सूती माल की अभी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है, यदि मैंचेस्टर और लंकेशायर के व्यापारी-गण स्वार्थ-रत न हों, और हमारी सरकार उनका पक्ष न करे। समाचार-पत्रों के पाठकों से यह छिपा न होगा कि अभी थोड़े ही दिन हुए, सूती माल के आयात पर चुंगी लगाने और उसके द्वारा भारत के सूती माल के व्यापार की रक्षा तथा उन्नति करने के लिये सरकार से कितनी झायँझायँ करनी पड़ी थी, और उस पर भी सरकार ने कैसा हिचकिचाते हुए इस उद्यम की रक्षा करने की नीति का अवलंबन करना स्वीकार किया है। भारत-सरकार का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित होना चाहिए; क्योंकि इस उद्यम द्वारा जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति होती है। रुई भी अभी इस देश में प्रथम श्रेणी की नहीं पैदा होती, जिसके लिये हमें Black-Cotton Soil की उन्नति करने की आवश्यकता है।

कोयला, रेलवे-कारख़ाना, खान का काम और दूसरे साधारण व्यापार हैं। कोयले की खानों की अभी तलाश की जा रही है, और आश्चर्य नहीं, हमारी रत्नगर्भा-भूमि में इसकी बहुत-सी खानें अब भी छिपी हों। आधुनिक व्यापार की रीति के अनुसार कोयला एक अमूल्य पदार्थ है। अब रहा करघा द्वारा बुनाई का काम, जो सन् १९१८-१९ के औद्योगिक कमीशन के अनुसार भारत का दूसरा बड़ा व्यापार है, और जिसमें प्रायः बीस लाख भारत-वासी लगे हुए हैं। विदेशी स्पर्द्धा ने अभी इस पर पूर्ण विजय नहीं प्राप्त की है; क्योंकि या तो वह माल इतनी बारीकी से बनाया जाता है कि मशीन द्वारा वैसा अच्छा नहीं बन सकता, अथवा वह माल इतना मोटे मेल का होता है और उसकी माँग इतनी कम है कि पुतलीघरों में उसका बनाना अधिक लाभदायक न होगा। सन् १९१८-१९ के कमीशन की यह सम्मति है कि इसी व्यवसाय में भारत के लिये एक विचित्र उज्ज्वल भविष्य छिपा है, और अकाल के समय यह डूबते हुए को तिनके का सहारा दे सकता है। महात्मा गांधी के असहयोग-आंदोलन और विदेशी माल के बहिष्कार के बढ़ते हुए ज़माने में काशी, टांडा, मऊ आदि के जुलाहे मालामाल हो गए, और आज भी है, यदि स्वदेशी प्रचार यों ही प्रचलित रहा, तो इस व्यवसाय की उन्नति यथासाध्य ख़ूब होगी।

दूसरी सुविधा इस समय बारबरदारी की उन्नति है। कई प्रांतों में तो इसकी उन्नति असाधारण रूप से हो रही है, और औद्योगिक उन्नति के लिये जितनी सुविधा की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति के लिये रेलवे को पूँजी देने का प्रबंध किया जा रहा है। विद्युत्शक्ति उत्पन्न करने के स्थान भी, ईश्वर की कृपा से, उचित स्थान पर वर्तमान हैं और कोयले का ख़ज़ाना उत्तम श्रेणी का न होते हुए भी काफ़ी तादाद में है, और हाइड्रो-इलेक्ट्रिक स्कीम (Hydro-electric Scheme) की सुविधा भी जिससे बहुत कुछ औद्योगिक उन्नति हो सकती है, भारत में पाई गई है।

अब रही पूँजी की बात। पूँजी भी, जो किसी समय भू-गर्भ में रहती थी, अब शिक्षा-प्रचार के साथ-ही-साथ कुछ बाहर निकल रही है, और बीमा-कंपनियों, बैंकों तथा पुतलीघरों के शेयर ख़रीदने में क्रमशः लगाई जा रही है। इस तरफ़ भारतवासियों की उदासीनता का प्रधान कारण यह है कि लोगों का विश्वास इन कंपनियों पर नहीं जमता; क्योंकि इनमें से अधिकांश दिवालिया होकर सैकड़ों घरों को नाश कर चुकी हैं। इसका मुख्य कारण औद्योगिक शिक्षा की कमी तथा किसी विशेष धंधे की फ़ैक्टरी का, किसी विशेष स्थान में बिना वहाँ की औद्योगिक सुविधा, आर्थिक दशा आदि का विचार किए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोल देना है। फिर भी "सत्तर टाँकी खाकर महादेवजी की मूर्ति बनती है, और फिर लोग उसकी पूजा करते हैं।" अतः हमें असफलता से निराश न होना चाहिए, वस्तुतः उसके कारण ढूँढ़ निकालना चाहिए। सफलता के बीच में हमारे लिये बहुत-से रोड़े पड़े हैं यथा कला-विशेष की शिक्षा की कमी, श्रम की निपुणता में कमी तथा श्रमजीवियों का पुतलीघरों में काम करने से जी चुराना, जो बहुधा निवास-स्थान के कष्ट और वहाँ की अनाकर्षक सामाजिक दशा के कारण होता है, और जिसका इलाज प्रारंभिक शिक्षा द्वारा किया जा सकता है।

कंपनियों के दिवालिया होने के और कारणों के अतिरिक्त दो प्रधान कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो कंपनियों के संचालकों की अधिकतर लालसा यही होती है कि प्रचुर लाभ उठाना चाहिए। पर वास्तव में प्रारंभिक दशा में उद्देश्य यह होना चाहिए कि बिक्री विशेष हो, चाहे उसमें लाभ कम ही क्यों न हो। दूसरा मुख्य कारण हमारी सरकार की, इस देश के व्यापार के प्रति, उदासीनता का होना है। आज पचास वर्षों से हम यही चिल्लाते चले आते हैं कि हमारे व्यापार की रक्षा करने के लिये उन विदेशी मालों पर चुंगी लगाना अत्यंत आवश्यक है, जिनका हमें पूर्ण-रूप से मुक़ाबला करना पड़ता है; किंतु कोई कुछ सुनता ही नहीं। मान्यवर जस्टिस रानाडे ने कहा था—

"If industrialisation is to be advocated and to be successful, there should be a guarantee given by the Government that if it is necessary protection would be given to the people from foreign competetion. The policy of adopting protectionism is necessary if shyness of Capital is to be avoided, for unless people are assured that their money will not be wasted by the failure of the company due to foreign competition they would not invest."

अर्थात् यदि उद्योगवाद का पक्षपात करना है, और उसमें सफलता भी प्राप्त करना है, तो सरकार की तरफ़ से इस बात का विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि यदि आवश्यकता होगी, तो विदेशी स्पर्द्धा से जनता के व्यापार की रक्षा की जायगी। यदि पूँजी के संकोच को दूर करना है, तो रक्षा-नीति का अनुसरण करना अत्यावश्यक है; क्योंकि जब तक जनता को यह विश्वास न हो जायगा कि विदेशी स्पर्द्धा के कारण स्वदेशी कंपनियाँ दिवालिया न हो जायँगी और उनका धन इस प्रकार नष्ट न होगा, वे कदापि हृदय खोलकर व्यापार के लिये पूँजी न निकालेंगे।

सरकार ने कुछ दिनों तक तो इस नीति के अवलंबन करने में टालमटोल की, पर इसके आंदोलन की विशेष वृद्धि होते देखकर एक कमीशन, सन् १९२१ में, नियत किया, और उस कमीशन के सिफ़ारिश करने पर डरते-डरते Discriminating Protection अर्थात् 'विचार-युक्त रक्षा-नीति' का अवलंबन करना स्वीकार किया। यह एक मानी हुई बात है कि कोई भी विद्वान् व्यक्ति किसी नीति पर मनमाने रूप से नहीं चलता, बल्कि प्रत्येक नीति का अवलंबन, विशेषतः जिस पर देश की उन्नति निर्भर है, विवेक के साथ किया जाता है। फिर 'विचार-युक्त' विशेषण पर विशेष ज़ोर देना ही यह प्रमाणित करता है कि सरकार ने कितने असमंजस के साथ इस नीति का अवलंबन करना स्वीकार किया है। बंबई-प्रांत के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लायड तथा लार्ड इरविन ने 'The great opportunity' अर्थात् 'महान् अवसर'-नामक पुस्तक में यह दर्शाया है कि महान् युद्ध ने कम-से-कम समस्त राष्ट्रों की सम्मति इस विषय में एक कर दी है कि देश-रक्षा के लिये जितने उद्योग हैं, उनकी रक्षा सरकार द्वारा की जानी चाहिए। पुनः उसी पुस्तक में लिखा है—यदि हम ध्यानपूर्वक देखें, तो प्रतीत होगा कि इस प्रकार के उद्यमों की संख्या इतनी अधिक है कि रक्षा-नीति का इस प्रकार से अवलंबन करना उन्नीसवीं सदी के निरापद आयात-निर्यात की नीति का लोप हो जाना है। लार्ड इरविन साहब तथा लार्ड लायड साहब की सम्मति में यदि इस समय भी इँगलैंड की औद्योगिक स्वतंत्रता के लिये रक्षा-नीति का अवलंबन करना आवश्यक है, तो फिर भारतवर्ष के लिये, जहाँ उद्योगवाद का अभी प्रारंभ है, इस नीति का अवलंबन करना कितना आवश्यक नहीं है, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं। पर इस दीन भारत के व्यापार की रक्षा के लिये, इस नीति पर सरकार को चलाने के लिये, हमारे नेताओं को कितना प्रयत्न करना पड़ता है, और उस पर भी कितनी न्यून सफलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होती है, यह समाचारपत्रों के पाठकों से छिपा नहीं है इसका परिणाम भी भयानक है। सर इब्राहीम-रहमतुल्ला ने, भारतीय औद्योगिक तथा व्यापारिक कांग्रेस के सभापति की हैसियत से, भाषण देते हुए जापान और भारत की व्यापारिक दशा का अच्छा चित्र खींचा है। सन् १९१५-१६ में, भारतवर्ष में, १५० करोड़ का माल आया, तथा सन् १९२४-२५ में ३५२ करोड़ का; अर्थात् दस वर्षों में, भारत की आयात में; १३३ फ़ी-सदी की वृद्धि हुई। सन् १९१५-१६ में, जापान में ६६ करोड़ का माल आया, तथा सन् १९२५ में ३२१ करोड़ का; अर्थात् १० वर्षों में उस देश के आयात में ३०० फ़ी-सदी की वृद्धि हुई। पुनः सन् १९१५-१६ में भारतवर्ष से १९९ करोड़ का माल बाहर गया, तथा १९२४-२५ में ४०० करोड़ का अर्थात् निर्यात में १०० फ़ी-सदी की वृद्धि हुई। उधर जापान से, सन् १९१५ में, ८८ करोड़ का माल बाहर गया, तथा सन् १९२५ में २८८ करोड़ का; अर्थात् निर्यात में, दस वर्षों में, जापान ने ३०० फ़ी-सदी से कुछ अधिक उन्नति की। जहाँ जापान ने, दस वर्षों में, अपने विदेशी व्यापार की इतनी उन्नति कर ली है, वहाँ भारतवर्ष को केवल नाम-मात्र की उन्नति से ही संतोष करना पड़ा है, हालाँकि भारतवर्ष की जन-संख्या जापान से कहीं अधिक है, और व्यापारिक उन्नति के साधनों की भी यहाँ कमी नहीं है; इसके विपरीत जापान से यहाँ औद्योगिक सामग्री भी अधिक है। यदि भारत-सरकार भी उस नीति का अवलंबन करती, जिसका जापान ने अपने व्यापार की वृद्धि के लिये किया, तो कोई कारण नहीं कि यहाँ भी उतनी ही सफलता न प्राप्त होती।

किसी देश की उन्नति का पूर्ण पता उस देश की राष्ट्रीय आय, कर-भार-वहन की शक्ति तथा जनता के रहन-सहन की श्रेणी से लगता है। इन तीनों की वृद्धि व्यापार के अतिरिक्त होना यदि असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। कृषि-प्रधान देश में इन तीनों की वृद्धि संकीर्ण होती है। व्यापार की उन्नति का अर्थ अधिक मज़दूरी, और अधिक मज़दूरी का अर्थ श्रमजीवियों को अधिक सुख तथा क्रय-शक्ति (Purchasing power) का होना है। यदि कृषि और व्यापार अधम दशा में है, तो देश भी रसातल को जानेवाला है। अब ज़रा यह भी दर्शाना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में प्रति प्राणी आय का क्या औसत पड़ता है, तथा और देशों की इस विषय में क्या दशा है। अमेरिका में प्रति मनुष्य २०००) रु० वार्षिक आय है, ग्रेटब्रिटेन में १०००) रु० के लगभग है, कनाडा व आस्ट्रेलिया में ५५०) रु० प्रति मनुष्य वार्षिक आय का औसत पड़ता है; पर इस दीन भारतवर्ष की आय प्रति व्यक्ति अधिक-से-अधिक ६०) रु० से १००) रु० के मध्य में वार्षिक अनुमान की जाती है। अब यदि इसमें से बड़ी संख्या ही सही मान ली जाय, तो भी १०) रु० वार्षिक टैक्सों के लिये निकाल देने से ९०) रु० वार्षिक आय एक व्यक्ति की रह जाती है। अर्थात् एक भारतवासी को इस समय ७॥) रु० मासिक आय पर जीवन-निर्वाह करना पड़ता है। पर वास्तव में एक भारतवासी की आय ७॥) रु० से न्यून ही होगी; क्योंकि यह संख्या तो अधिक-से-अधिक आय के अनुमान पर निकाली गई है। ऐसी दशा में भला हम राष्ट्रीय आय की वृद्धि—जिस पर देश की उन्नति निर्भर है और जिसकी इस समय नितांत आवश्यकता है—क्या कर सकते हैं? व्यय हम घटा नहीं सकते; क्योंकि सेना-विभाग के लिये हमारी उदार सरकार एक गहरी रक़म पहले से ही अलग कर लेती है। अब रही टैक्स की वृद्धि, जिसको सहन करने की अब हम लोगों में शक्ति ही नहीं रही। किंतु जब हम व्यय में कमी नहीं कर सकते, तो हमें लाचार होकर इसी दूसरे मार्ग का अवलंबन करना होगा, और टैक्स के सहन की शक्ति को बढ़ाना होगा। इस शक्ति की वृद्धि जनता की औसत आय को बढ़ाने से हो सकती है, और यह आय केवल कृषि से नहीं बढ़ सकती। वर्तमान कृषि-कमीशन, जो इस समय अपनी जाँच कर रहा है, और जिसकी रिपोर्ट शीघ्र ही जनता के सामने उपस्थित होगी, भले ही भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति के मार्गों को कुछ समय के उपरांत विस्तीर्ण करे, पर बड़े अनुपात में औद्योगिक उन्नति के द्वारा ही शीघ्र और ईप्सित फल प्राप्त हो सकता है। अब हमें यह देखना है कि इस औद्योगिक उन्नति का रूप क्या होना चाहिए। इस विषय पर फिर कभी लिखा जायगा।

नरोत्तमदास खत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन

(१)

बरसाता है बादल फिर—
अंगारों पर अंगारे।
वक्षःस्थल अपना पृथ्वी—
डाले है चीरे-फारे।

(२)

आहों के आकर्षण से—
आकुल हैं चंद्र-सितारे।
जुल्मों से कण-कण फिरते—
पृथ्वी के मारे-मारे।

(३)

उत्तप्त वायु हलचल-सी—
देता जग बीच पसारे।
किसके प्रकोप का डंका—
बजता है साँझ-सकारे?

(४)

सागर, सरिता, सुंदर सर—
हैं रक्त वर्ण के सारे।
दुनियाँ में आग लगी है,
वैषम्य स्वार्थ के मारे।

(५)

शैतान चाहता है फिर—
ईश्वर का काम बिगारे।
हिल गया प्रकृति का शासन,
क्या करें जीव बेचारे?

(६)

मच गई त्राहि धरणी पर,
स्वामी ने भृकुटी फेरी:
तत्क्षण बज उठी कहीं से—
प्रमुदिता क्रांति की भेरी।

(७)

कस गई कमर वीरों की, जीवन में जोश समाया;
क्षण-भर में इस दुनियाँ के, नक़शे ने पलटा खाया।

रामसेवक त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. द्वीप का अर्थ

अँगरेज़ी-स्कूलों में सीखे हुए लोग बहुधा द्वीप का अर्थ भूमि के उस भाग को समझते हैं, जिसके चारों ओर जल हो; परंतु यह अँगरेज़ी Island की परिभाषा है, जिसका अनुवाद द्वीप कर लिया गया है। पुराणों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में द्वीप का क्या अर्थ होता था, उसका विवरण कलकत्ते की एक ऐतिहासिक त्रैमासिक पत्रिका (Indian Historical quarterly) में बाबू नंदलाल डे एम्० ए०, बी एल्० ने रसातल की स्थिति व्यक्त करते समय कर दिया है। आप लिखते हैं—"In short *dvipa* or its corruption '*dia*' or '*ia*' when applied to a Mahadvipa meant a division, when applied to a *dvipa* in any *Mahadvipa* it meant a *country*."

अर्थात् द्वीप या उसका अपभ्रंश दिया अथवा इया। महाद्वीप के संबध में, 'खंड' का अर्थ प्रकाशित करता है, और जब वह उपद्वीप के संबंध में, काम में, लाया जाता है, तब उस शब्द से 'देश' का अर्थ निकलता है।

आगे चलकर आप बतलाते हैं कि प्राचीन काल में, एशिया के सात विभाग किए गए थे; वे सप्तद्वीप कहलाते थे। जंबूद्वीप भारतवर्ष का नाम था, शाकद्वीप कास्पियन समुद्र से लेकर इक्षु अर्थात् आक्सस-नदी तक फैला हुआ था। प्लक्षद्वीप, जिसको श्वेतद्वीप अथवा गोमेदद्वीप भी कहते थे, भारतवर्ष के उत्तर में एक खंड था। उसके अंतर्गत एक देश था, जो उत्तर-कुरुद्वीप कहलाता था। इसलिये लंकाद्वीप कहने से यह नितांत आवश्यक नहीं कि वह समुद्र के भीतर ही हो। भूमि के भीतर होकर भी किसी देश का नाम लंकाद्वीप होना असंगत नहीं है। बाबू नंदलाल की बतलाई हुई बात कुछ नवीन नहीं समझी जा सकती। बरसें बीत चुकीं, जब संस्कृत-प्राकृत के धुरंधर विद्वान् अध्यापक जैकोबी साहब ने लंकाद्वीप की स्थिति आसाम में होने की संभावना बतलाई थी। यदि वह द्वीप का अर्थ Island की परिभाषा के अनुसार लगाते, तो धरती के भीतर लंकाद्वीप का अनुमान कैसे करते? इसी प्रकार सरदार के.बे सा० उसे मध्य-भारत के भीतर बतलाने का साहस किस प्रकार कर सकते? यह बात 'रावण की लंका'-नामक लेख में बतला दी गई है।

इस नोट के लिखने की आवश्यकता इसलिये हुई कि बहुत-से लोग बार-बार यह आक्षेप किया करते हैं कि भूमि के भीतर द्वीप कैसे आया।

हीरालाल

× × ×

३. वह घड़ी

रह सकी न मैं तब खड़ी;
अचानक ही चल पड़ी।
रहा न सुध-बुध तन का;
थकित दशा थी मन की।
मैं समझी, मैं उड़ी;
मिलन की आई है अब घड़ी।
सहसा शब्द सुने मैंने ये—
"कौन चला जाता है निस्पृह।
"ठहर, ठहर, ओ! जानेवाले!
"मैं भी थकित हुआ हूँ बाले!"
सुना, सुनकर गिर पड़ी;
आह! कैसी थी वह घड़ी!

प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम

× × ×

४. नट की कला

(आलोचना)

झमकि चढ़ति उतरति अटा, नकु न थाकति देह;
भई रहत नट की बटा, अटकी नागरि नेह।
(बिहारी)

दीरघ बंसु लिए कर में, उर में न कहूँ भ्रमै भटकी-सी;
धीर उपायन पाउँ धरै, बरतै न परै लटकै लट की-सी।
साधनि देह सनेह निराट, कहै मनि कोउ कहूँ अटकी-सी;
ऊँचे अकास चढ़ै-उतरै, सु करै दिन-रैन कला नटकी-सी।
(देव)

छिन होत हरी मही को लखै, निरखै घन में छिन ज्योति-छटा;
अवलोकति इंद्रबधू की पत्यारि, बिलोकति है खिन कारि घटा।
लाख डार कदंबनि को तरसै, दरसै उत नाचत मोर अटा;
अध ऊरध आवत जात भयो, चित नागरि को नट कैसो बटा।
(भिखारीदास)

दिसंबर, १९२६ की माधुरी में उपर्युक्त तीनों पद्यों की आलोचना करके यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि भिखारीदास की रचना सर्वश्रेष्ठ है। लेखक महोदय का आशय है कि बिहारी ने उत्कंठिता का चित्र-सा खींच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है, और दोहे का भाव बड़े-बड़े कवियों ने लिया है। देव ने नागरी के कर में "दीरघ बंसु" देकर सचमुच नट की-सी कला करा दी है; परंतु दासजी ने विहारी की उक्ति अपने अनूठे ढंग से अपनाई है। कहना तो यह चाहिए कि उन्होंने विहारी की उक्ति को सूक्ति बना दिया है। लेखक महाशय ने दास के पद्य का अर्थ लिखते हुए उनके वर्णन की भूरि-भूरि प्रशंसा कर, अंत में फ़ैसला किया है—"नागरी के चंचल चित्त की उपमा नट के बटा से देना उचित है, नागरी से नहीं। चतुर नट पल-भर में नीचे-ऊपर जाता-आता है। चंचल चित्त इस कला में नट से भी कहीं अधिक पटु होता है।"

नागरी के चंचल चित्त की उपमा यदि 'नट के बटा' से दी गई, तो उपमा हुई कहाँ? लेखक के कथनानुसार जब चंचल चित्त इस कला में नट से कहीं अधिक पटु है, तो इस उपमा से नागरी के चित्त का अपकर्ष हो गया। जो चित्त निमेष-मात्र में उदधि-पर्वत लाँघकर अपनी जगह पर आ सकता है, उसकी उपमा यदि नट के बटा से दी गई, तो इसमें कुछ भी चमत्कार नहीं। यदि मध्याह्न-सूर्य की उपमा दीपक से दी गई, तो सूर्य का क्या उत्कर्ष हुआ? यह तो उपमा नहीं, निंदा हो गई, और चंचल चित्त के नट का बटा होने में क्या कला है कुछ भी नहीं।

विहारी ने अपने दोहे में यद्यपि "उत्कंठिता का चित्र-सा खींच दिया है", तथापि नट की कला की एक झलक-मात्र दिखाई है, वह है "झमकि चढ़ति" में। नट की कला के लिहाज़ से विहारी की कला अत्यंत साधारण श्रेणी की है। अटा पर चढ़ना-उतरना और देह का बिलकुल न थकना—इतनी ही नट की कला विहारी की नागरी दिखा सकी। इतना ही बहुत है; शोभा के भार से जिस सुकुमारी का पैर सीधा नहीं पड़ता, उसके द्वारा इतनी भी कला कम नहीं। दास की नागरी के चित्त की इस डाली से उस डाली पर फुदककर जाने-वाली कला से विपरीत की कला बहुत श्रेष्ठ है, पर चतुर नट देव की कला के सामने विहारी की भी कोई कला नहीं चलती। देव के पद्य में नट की कला का चरम विकास है। देव ने आते ही अपनी नागरी के कर में 'दीरघ बंसु' देकर मानो अपने कला-ज्ञान की उच्च पताका फहरा दी है।

"झमकि चढ़ति उतरति अटा, नेकु न थाकति देह" में नट की कौन-सी कला है? नट की कला यह है—"धीर उपायनि पाउँ धरै बरतै न परै लटकै लट की-सी।" देव की नागरी के इस एक ही कला के दिखाने में अनेक नामज़द नटों की विद्या का दिवाला निकल जायगा। "दीरघ बंसु" ने ही विहारी के छक्के छुड़ा दिए, और इस पहली ही कला में उनकी हरकत कोसों पीछे रह गई। यदि विहारी की "झमकि चढ़ति उतरति अटा" के मुक़ाबले में "ऊँचे अकाश चढ़ै-उतरै" रख दिया जाय, तो विहारी और देव की कला का अंतर भी अटा और आकाश के समान दिखाई देगा। अस्तु, इस नट की कला में भिखारीदास तो कुछ जानते ही नहीं, विहारी का प्रारंभिक ज्ञान है, और देव कला-प्रवीण हैं।

श्यामाचरणदत्त पंत
(हिमालय से)

× × ×

५. विलायत में शुद्धि

इस लेख द्वारा हमारे उन भाइयों का—विशेषकर चपकन पार्टी और प्रचलित ढोंगी धर्म के ठेकेदारों का—ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाता है, जो अपने अछूत भाइयों को नीच समझते हैं, और उन्हें स्पर्श तक नहीं करते। वही अछूत कहलानेवाला भारत-माता का पुत्र भूख की ज्वाला सहन न होने या अन्य किसी कारण-वश जब ईसाई पादरियों के चंगुल में फँसकर ईसाई हो जाता और साहब कहलाने लगता है, या अँगरेज़ी पोशाक पहन लेता है, तब बड़े-बड़े नामधारी लंबे-लंबे तिलक लगानेवालों के यहाँ उसके जाने पर लोग तुरंत खड़े हो जाते हैं, और बड़े चाव से गद्दी पर बिठाते हैं। वह यदि सर-कारी नौकर या अन्य किसी अच्छे दरजे पर हुआ, तब तो उसकी इष्टदेवता के रूप में पूजा तक की जाने लगती है।

हमारे भारत के कुछ भाई पश्चिम के खान-पान, रिवाज-रस्म और अन्य बुराइयों को अपनाते हैं, पर सद्-गुणों की तरफ़ ध्यान नहीं देते। इसके विपरीत योरप के लोग भारत की सचाई पर दौड़ रहे हैं और पश्चिम के रीति-रिवाज छोड़ रहे हैं। यही कारण है कि पश्चिम में शाकाहारी (फलाहारी) ज़्यादा हो रहे हैं, और पूर्व में भारत के 'बाबू' लोग मांसाहारी बनने की होड़ाहोड़ लगा रहे हैं।

पश्चिम के बंधुओं की इस समझदारी के कारण ही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परब्रह्म परमात्मा की कृपा से विलायत में एफ० मोलन-नामक एक अँगरेज़ ने डंके की चोट हिंदू-धर्म की दीक्षा ली है। यह समाचार भारत के समाचारपत्रों में निकल चुका है, और आगे क्या किया जायगा, यह दर्शाने के लिये हिंदू भाइयों की सेवा में यह लेख लिखा जा रहा है।

भारत में जैसे लोभ देकर या अन्य तरह की प्रतारणा कर ईसाई या अन्य धर्मावलंबी हिंदुओं का धर्म-परिवर्तन कराते हैं, यहाँ वह हालत नहीं है। जिस धर्म में भूखे को लोभ या धोखा देकर लाया गया, वह कितने दिन चिरस्थायी रह सकता है? हिंदू-धर्म वह है, जिसकी सचाई का अंत नहीं, और जब इसकी सचाई की शिक्षा दी जा सकेगी, तो स्वतः सारा संसार हिंदू-धर्म को मान लेगा। आज बाइबिल आदि धर्म-ग्रंथों पर लड़ाई मची हुई है; पर पूज्य श्रीमद्भगवद्गीता में प्रत्येक हिंदू, चाहे वह किसी भी समाज का क्यों न हो, भक्ति रखता है, और श्रीकृष्ण भगवान् के मुख से कहे गए उपदेश को प्रेम और पूज्य दृष्टि से देखता है। मिस्टर मोलन, जिनका नाम अब श्रीयुक्त ब्रह्मानंदजी है, गीता के कारण एवं उसके प्रेम और भक्ति के कारण ही हिंदू-धर्म में दीक्षित हुए हैं। आप क्षुधा-पीड़ित या किसी के धोखे में आनेवालों में से नहीं हैं। आप उनमें हैं, जो 'अहं ब्रह्म' की दृष्टि से सबको देखते हैं। इन्होंने गीता का अध्ययन सिर्फ़ एक वर्ष में, इतना कर लिया है कि हमारे भारत के हज़ारों भाई इनके सामने उत्तर नहीं दे सकते। शुद्धि के दिन 'शांति-निकेतन' में बहुत-से विद्वान् सज्जन उपस्थित थे। उनमें कई सरकारी कर्मचारी भी थे। बी० ए०, एम्० ए० भी थे। लेकिन श्रीमद्भगवद्गीता की बहस जब ब्रह्मानंदजी से करते थे, तो सबको हार माननी पड़ती थी, और उनकी हरएक बात को स्वीकार करना पड़ता था। कलकत्ते के भाई श्रीनारायणदासजी बाजोरिया जब यहाँ आए थे, मुझे अँगरेज़ी-भाषा की गीता दे गए थे। मैंने उसे अंदाजन १५ महीने पहले आपको दी थी, और उस वक़्त से आपसे मेरा परिचय है। इस अरसे में आपने मुझसे कई बार मुलाक़ात की। आपने चेष्टा कर एक वर्ष में ही गीता में ख़ूब योग्यता प्राप्त की, और योग भी साधने लगे हैं। आपने अपना जीवन श्रीमद्भगवद्गीता के प्रचार में लगा देने का संकल्प किया है।

श्री १०८ जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी की तार द्वारा आज्ञा प्राप्त कर ली गई थी, और श्रीयुत विष्णुकरंदीकरजी से शुद्धि-कार्य करवाया गया था। वेद, मंत्र, हवन आदि हुए। शुद्धि के अवसर पर कितने ही भाई एकत्रित हुए (इनमें अगरेज़ भी थे) थे। सभी के आनंद की सीमा न थी। शुद्धि के उपरांत भारतीय मिठाई और चा आगंतुक भाइयों की सेवा में उपस्थित की गई। इस तरह तीन घंटे में सब कार्य समाप्त हुआ। अन्य कई अँगरेज़-पुरुष और स्त्रियाँ हिंदू होने को आकांक्षित हैं, जिन्हें शीघ्र ही हिंदू-धर्म में दीक्षित किया जायगा। भारत से सहानुभूति के बहुत-से तार आए हैं। पेरिस से इंदौर के भूतपूर्व महाराज तुकोजीराव होलकर का भी तार था। वह महारानी श्रीमती शर्मिष्ठादेवी (भूतपूर्व अमेरिकन महिला नेनसी मिलर) की अस्वस्थता के कारण इस अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके।

मैंने हिंदू भाइयों से अपील की थी, जिसे पुनः यहाँ दुहरा देना चाहता हूँ। यहाँ निश्चय किया गया है कि शीघ्र एक शुद्धि-सभा स्थापित की जाय। आशा है, महाराज होलकर उक्त सभा के सभापति होना स्वीकार करेंगे। इसके द्वारा योरप और अमेरिका आदि देशों में सर्वत्र ज़ोरों से प्रचार किया जायगा। प्रचार-कार्य केवल श्रीमद्भगवद्गीता के ज़रिए और उसके आधार पर ही करने का विचार किया गया है। स्थान-स्थान पर सप्ताह में एक दफ़े "गीता" पर भाषण हो, और लाखों की संख्या में अँगरेज़ी-भाषा की गीता की पुस्तकें बाँटी जायँ। शुद्धि-कार्य को चिरस्थायी बनाने के लिये अलग भवन लेने और वहाँ मंदिर बनाने का भी विचार किया जा रहा है। इन कार्यों के करने में बहुत ख़र्च है, विशेषकर इस देश में, जहाँ असल में बात करने के भी पैसे लगते हैं। ऐसी हालत में हिंदू भाइयों का कर्तव्य है कि वे इस कार्य की सफलता के लिये कटिबद्ध हो जायँ। वे लाखों की संख्या में, अँगरेज़ी-भाषा में, श्रीमद्भगवद्गीता भेजें, एवं अन्य कार्य सुचारु रूप से चल सकें, इसके लिये धन से सहायता करें। 'लीड्स' (Leads) में श्रीयुत ब्रह्मानंदजी गीता का भाषण करेंगे, एवं लंदन में भी बहुत-से विद्वान् पंडित हैं, आशा है, वे इस पर भाषण दिया करेंगे। समय-समय पर सभा की बैठक हुआ करेगी, और ज़ोरों से प्रचार-कार्य करने का यत्न किया जायगा। आशा है, हिंदू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासभा भी इस ओर ध्यान देगी। उपर्युक्त दोनों जगह कार्य शुरू करने के लिये प्रारंभ में, कम-से-कम पाँच-पाँच सौ अँगरेज़ी-भाषा में गीता की पुस्तकों की और अन्य साप्ताहिक ख़र्च की आवश्यकता है। समिति बनाने का यत्न किया जा रहा है, जिससे कार्य का विवरण बराबर भारत में प्रकाशित होता रहेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रेमी केवल सुधारक ही नहीं हैं, बल्कि चपकन पार्टी का भी गीता-प्रचार में अधिक प्रेम है। इसलिये उनसे भी अपील की जाती है कि वे बुराई, झगड़े, जी-हुज़ूरी के फेर में पड़ने की अपेक्षा गीता का प्रचार करें। गीता-प्रेमी चाहें, तो एक-एक सज्जन ही एक-एक लाख पुस्तकें दे सकते हैं। अस्तु, गीता-प्रेमियों से अधिक आशा की जाती है।

Rameswar Lal Bazaj
78, Belsize Park Gardens
London (N. W. 3)

सहायताकांक्षी—
रामेश्वरलाल बजाज
नं० ७८, बेलसाइज़-पार्क गार्डंस, लंदन,
तार का पता-'शांति' लंदन

× × ×

६. स्वर्गीय समद्दार

पटना-कालेज के सुयोग्य इतिहासाध्यापक भारत-प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता योगेंद्रनाथ समद्दार अब इस लोक में नहीं हैं। विगत २८ वीं नवंबर को मिर्ज़ापुर-ज़िले के चुनारगढ़ में उनका देहांत हो गया। वह तीन वर्षों से बीमार रहा करते थे। कई स्थानों में जाकर उन्होंने अपना स्वास्थ्य सुधारना चाहा, किंतु उनको स्वस्थता न प्राप्त हुई। बीच-बीच में वह कभी अच्छे हो जाते थे, किंतु सच्ची नीरोगता नहीं मिलती थी। उनका बहुमूत्र-रोग काल-स्वरूप था, इसलिये उसने उनके प्राण लेकर ही संतोष लाभ किया। वह अभी ४५ वर्ष के युवा पुरुष थे, इसलिये किसी को यह आशा न थी कि वह इतने शीघ्र इस संसार से प्रयाण कर जायँगे।

१८७९ ई० में, यशोहर-ज़िले के अंतर्गत कचुवारियाँ-नामक ग्राम में, उनका जन्म हुआ था। प्राथमिक शिक्षा के बाद प्रवेशिका-परीक्षा पास करके, क्रमशः बंगवासी और प्रेसिडेंसी-कालेज में उन्होंने पठन-काल व्यतीत किया। बी० ए० पास करने के बाद मैमनसिंह-ज़िले के डांगायल-नगर में अँगरेज़ी तथा इतिहास के अध्यापक नियुक्त हुए।

उनका इतिहास-ज्ञान जगत्प्रसिद्ध हो चला। बड़े-बड़े इतिहासज्ञ उनका गंभीर ऐतिहासिक अन्वेषण देखकर दाँतों-तले उँगली दबाते थे। अंत में उनके गुणों से आकृष्ट होकर गवर्नमेंट ने उनको बिहार के सर्वप्रधान विद्यालय "पटना-कालेज" में इतिहासाध्यापक नियुक्त किया। १९१२ ई० से लेकर आज तक (१९२८) उन्होंने

स्व० श्री० योगेंद्रनाथ समद्दार

इसी पद पर बहुत योग्यता के साथ कार्य किया। इतिहास के वह एक अभूतपूर्व विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा बड़े-बड़े विद्वानों को चकाचौंध में डाल देती थी। इँगलैंड के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ तथा पार्लियामेंट के सदस्य श्रीयुत ओमन साहब एवं मैन्चेस्टर-विश्वविद्यालय के अध्यापक टौट साहब की कई भूलें दिखलाईं। उन दोनों महाशयों ने प्रोफ़ेसर समद्दार की बड़ी प्रशंसा की। एक अँगरेज़ इतिहासज्ञ के लेख में अशुद्धि दिखला देना समद्दार ही का काम था। बंगाली लोगों में अध्यापक समद्दार ही इँगलैंड की प्रसिद्ध रायल हिस्टारिकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इकानिमिकल सोसाइटी के सर्वप्रथम सदस्य नियुक्त हुए थे।

उन्होंने इतिहास-विषय की अनेक पुस्तकें लिखी हैं। समसामयिक भारत नाम का एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखना प्रारंभ किया था, जो पच्चीस खंडों में समाप्त होनेवाला था। अतिशय खेद का विषय है कि वह ग्रंथ समाप्त न हो सका। नव खंड लिखने के बाद ही उनका देहांत हो गया। बड़े-बड़े पंडितों तथा समाचारपत्रों ने उसकी प्रशंसा की है। "इंगलिश मैन"-नामक अँगरेज़ी-दैनिक ने इस पुस्तक के संबंध में लिखा है—"ऐसा काम किसी ने कभी नहीं किया; अकेले ही क्यों, अनेक मनुष्य मिलकर भी यदि ऐसे काम को करें, तो प्रशंसनीय है। इस ग्रंथ को बंग-साहित्य का एक दूसरा महाभारत कह सकते हैं।" इस पुस्तक को छोड़कर २२ पुस्तकें उन्होंने और लिखी थीं। दो-एक पुस्तकें अर्थशास्त्र के विषय को मिलती हैं। मरने के तीन महीने पूर्व वह बहुत धैर्य और कुशलता के साथ "सर आशुतोष-मेमोरियल"-नामक प्रकांड पुस्तक का संपादन करते थे।

समद्दार महाशय बंगाली होकर भी हिंदी-भाषा के प्रेमी विद्वान् तथा लेखक थे। हिंदी में उन्होंने चतुर्वेद-नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें कथा के बहाने बालकों को उपदेश दिया है। तात्पर्य यह कि वह हिंदी, बँगला, अँगरेज़ी, तीनों भाषाओं के विद्वान् थे। माधुरी आदि कई पत्रिकाओं में उनके लिखे अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। वक्ता भी वह बहुत बड़े थे। पटना-विश्वविद्यालय, कलकत्ता-विश्वविद्यालय, हिंदू-विश्वविद्यालय आदि अनेक विश्वविद्यालयों से वक्तृता के लिये निमंत्रित होकर उन्होंने व्याख्यान दिया था। उनकी वक्तृता सुनने के लिये, पटना-कालेज के एक व्याख्यान में, बिहार के भूतपूर्व गवर्नर श्रीमान् गेट साहब ने पधारने की कृपा की थी, और उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। बिहार-संस्कृत-एसोसिएशन ने उनकी प्रत्नतात्त्विक कार्य की बड़ी प्रशंसा की थी, और उनको "प्रत्नतत्त्ववागीश" की उपाधि दी थी। 'पटना जादूगर' के भी वह थोड़े दिनों तक कार्याध्यक्ष थे। बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी के मेंबर तथा कई वर्षों के लिये आनरेरी ट्रेज़रर थे। हिस्टारिकल रेकर्ड-कमेटी के भी अध्यापक समद्दार मेम्बर थे।

उनका स्वभाव बड़ा मिलनसार था। वह सदा प्रसन्नमुख रहा करते थे। छात्र-मंडली में उनका बड़ा सम्मान था। वह छात्रों के बड़े हितकारी थे। कालेज के सभी अध्यापक उनको अपना परम मित्र समझते थे। उनकी अनुपस्थिति को पटना-कालेज बहुत दिनों तक न भूलेगा। उनके मरण के बाद शोक प्रकाश करने के लिये पटना-कालेज में एक बहुत बड़ी सभा हुई थी, जिसमें सभी अध्यापक तथा छात्र उपस्थित थे। कालेज के प्रिंसिपल होर्न महाशय ने अपनी वक्तृता में समद्दार के लिये बड़ा शोक प्रकाश किया। सचमुच समद्दार एक प्रशंसनीय पुरुष थे।

अक्षयवट मिश्र

---

१००) रुपए का इनाम

बवासीरनाशक तैल

इस तेल को लगाने से पहले ही दिन अजीब फ़ेरफ़ार हो जाता है। चाहे वह बवासीर अंदर की हो या बाहर की, और कितना ही ख़ून गिरता हो, ज़रा भी जलन या हानि नहीं होता। किसी परहेज़ की ज़रूरत नहीं। साथ ही किसी तरह की दवाई खाने की ज़रूरत नहीं। सिर्फ़ इस तेल को चुपड़ने से बवासीर सिकुड़कर सूख जाती है और दर्द दूर होता है।

इस तेल से कोई फ़ायदा नहीं होता, यह साबित करनेवाले को सौ रुपए का इनाम देंगे। तेल का मूल्य पोस्टेज के साथ ५॥)

आशाभाई वाघजीभाई पटेल, भुलाभाई का कंपाउंड, एलिसब्रिज, अहमदाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. बाह्य और आभ्यंतरिक प्रकृति

जिन पदार्थों का निर्माण-कर्ता मनुष्य नहीं है, और जो स्वयं उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं, उन्हें हम प्राकृतिक पदार्थ कहते हैं अर्थात् प्रकृति ने उन्हें बनाया है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रकृति क्या वस्तु है? ईश्वर की सृष्टि को प्रकृति कहते हैं। जैसे सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, नक्षत्र, तारागण, जल, वायु, पर्वत, वृक्ष, पशु, पक्षी इत्यादि। ये ही सब बाह्य प्रकृति के अंतर्गत हैं। मनुष्य के स्वभाव की प्रवृत्ति को आभ्यंतरिक प्रकृति कहते हैं।

ईश्वर ने मनुष्य को अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि प्रदान की है। मनुष्य की नाईं पशु में भी भोजन ढूँढ़ने और अपने बच्चों से प्रेम करने की बुद्धि होती है। परंतु उसमें मनुष्य के समान ज्ञान तथा तर्क-शक्ति नहीं होती। इसी शक्ति की बदौलत मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता चला आया है, किंतु पशु उसी अवस्था में है, जिसमें वह सृष्टि के आदि में था।

मनुष्य को सदा यही चिंता रहती है कि मैं किस प्रकार आनंद-पूर्वक कालक्षेप करूँ। अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये वह प्रकृति का बड़े ध्यान से अध्ययन करके उसके पदार्थों को काम में लाने का उद्योग किया करता है। वह अपनी स्थिति से कभी संतुष्ट नहीं रहता। जो वस्तु आज उसे प्रिय लगती है, कल वह उससे घृणा करने लगता है। और उससे अच्छी वस्तु प्राप्त करने की चेष्टा करता रहता है। यदि ऐसा न होता, तो आज तक जितने आविष्कार हुए हैं, उनमें से एक भी न होता।

प्रकृति ही ने मनुष्य को अग्नि तथा अपनी रक्षा के लिये वस्त्र तथा शस्त्र आदि का बनाना सिखाया है। आज तक जितने आविष्कार हुए हैं, सब प्रकृति ही से निकले हैं। दृष्टांत के लिये भाप की कल को लीजिए। जब पानी आग पर रक्खा जाता है, और कटोरे से ढक दिया जाता है, तब पानी के गर्म होने से भाप निकलने का प्रयत्न करती है, और कटोरा हिलने लगता है। मनुष्य ने इसे बड़े ध्यान से देखा, और विचार किया कि जब भाप के वेग से कटोरा हिलने लगता है, तब इससे गाड़ी वा यंत्र का चक्र भी घूम सकता है। इस सिद्धांत को लेकर उसने भाप की कल का आविष्कार किया। क्रमशः उसी के अनुकरण पर और बहुत-से यंत्र बने, जिनके द्वारा आज-कल प्रायः सब औद्योगिक कार्य किए जाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि बाह्य प्रकृति का मानसिक प्रवृत्ति अर्थात् आभ्यंतरिक प्रकृति से घनिष्ठ संबंध है।

मनुष्य आदि से ही प्रकृति-पूजक रहा। ठीक समय पर गर्मी-सर्दी होने, सूर्य-चंद्रमा के निकलने और वर्षा के होने से आदि में उसे बड़ा आश्चर्य होता था। इन प्राकृतिक पदार्थों की उपयोगिता देखकर वह उनकी पूजा किया करता, और उनकी स्तुति में गीत गाया करता था। आजकल सब मनुष्य इनकी पूजा तो नहीं करते, परंतु वे इन्हें आदर और भय की दृष्टि से तो अवश्य देखते हैं।

बाह्य प्रकृति का अनुभव बालक अच्छी तरह करता है। कभी-कभी चंद्रमा को देखकर वह अपने हाथ उठाता है। पुष्पों, लताओं और वृक्षों से बात-चीत करता है, और उन्हें देखकर हर्षित होता है। विद्वानों का कथन है कि जो बालक प्रकृति से अधिक प्रेम रखता है, और प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ को देखकर मुग्ध होता है, युवा होने पर या तो बड़ा दार्शनिक या वैज्ञानिक होता है।

विख्यात कवि और विद्वान् सदा प्रकृति के उपासक रहे हैं। वे बाल्यावस्था ही में प्रकृति के अनुरागी थे। मिलटन, वर्डस्वर्थ, टेनिसन आदि कवि प्रकृति के बड़े भक्त थे। वर्डस्वर्थ कहता है कि विद्यार्थी को पुस्तक के अध्ययन की अपेक्षा बाह्य प्रकृति के अध्ययन से अधिक लाभ हो सकता है। वह किसी पाठ्य-विषय को उसके प्राकृतिक रूप में देखकर कभी नहीं भूल सकता। यदि वह वर्षों तक पुस्तकों का अध्ययन करे, और प्रकृति न देखे, तो न तो उसके मन में मौलिक विचार अंकुरित हो सकते हैं और न वह किसी विषय में पारंगत हो सकता है। उसका कथन है—

"One impulse from vernal wood,
May teach you more of man,
Of mortal evil and of good.
Than all the sages can."

वह यह भी कहता है कि मनुष्य को दूसरे मनुष्यों के साथ व्यवहार करने के लिये प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिस प्रकार भूमि का पेड़ की जड़ से, जड़ का पींड़ से, पींड़ का शाखाओं से, शाखाओं का पुष्पों और फूलों से संबंध होता है, उसी प्रकार एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का दूसरे मनुष्य से होना चाहिए, अर्थात् उसे मेल-जोल से रहना चाहिए, तब तो उसकी सांसारिक यात्रा सुख-पूर्वक समाप्त हो सकती है, अन्यथा कोई उपाय नहीं। पक्षी बिना किसी प्रतिबंध के मनोहर गीत गाते हैं, और पशु अभय होकर इधर-उधर विचरते हैं, इससे यह प्रकट होता है कि प्रकृति हमें जनाती है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रकृति-सिद्ध स्वत्वों को भोगने का पूर्ण अधिकार है, अतः उनको अपहरण करना नितांत अन्याय है। यदि मनुष्य प्रकृति का दृढ़ भक्त हो जाय, तो वह दूसरे के स्वत्वों को छीनने की चेष्टा कदापि न करेगा।

प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि सभ्यता का श्रीगणेश उष्ण देशों ही में हुआ, क्योंकि वहाँ के निवासियों पर प्रकृति देवी की कृपा रही। लौकिक और पारमार्थिक उन्नति के लिये सब सामग्री उनके समीप वर्तमान थी। उसकी खोज के लिये न तो उन्हें कहीं दूर जाना पड़ता, न परिश्रम करना पड़ता और न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अतः थोड़े ही काल में वे सभ्यता के शिखर पर पहुँच गए। उन्हें जीवन-निर्वाह के लिये प्रत्येक वस्तु सरलता-पूर्वक मिलने के कारण विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था, इसलिये उनकी उन्नति परिमित और स्थायी रही। वे विलासिता में पड़कर और श्रम तथा पराक्रमहीन हो गए, और अपनी स्वतंत्रता से भी हाथ धो बैठे।

यद्यपि इँगलिस्तान-सरीखे शीत-देशों में जहाँ प्रकृति की कृपणता सदा से चली आती है, आदि में सभ्यता का प्रादुर्भाव नहीं हुआ, तथापि वहाँ के निवासियों को सदा से घोर जीवन-संग्राम करना पड़ता है। वे जीविका की खोज में देश-देशांतर जाते हैं, और वहाँ व्यापार करने तथा उपनिवेश स्थापित करते हैं, प्रकृति की अनुदारता के कारण वे अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं; और उसे उच्चतर बनाने के उद्योग में लगे रहते हैं। यदि वे भी भारतीयों की नाईं भाग्याधीन रहकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते तो वे भूखों मर जाते; और न तो इतने बड़े ऐश्वर्यवान् होते; और न भूमंडल-विस्तृत साम्राज्य स्थापित करने के लिये समर्थ होते। आधुनिक युग में तो यह देखने में आता है कि जहाँ प्रकृति की उदारता होती है, वहाँ के निवासी बहुधा आलसी, निर्बल, श्रमहीन और परतंत्र होते हैं; किंतु जिस देश में वह कृपण होती है, वहाँ के निवासी ऐश्वर्यशाली, उन्नतिशील, बलवान्, परिश्रमी और पराक्रमी होते हैं।

मनुष्य जिस देश में उत्पन्न होता है, उस देश की जल-वायु के अनुकूल उसका वर्ण, शारीरिक बनावट और रहन-सहन होता है। योरप में गर्मी की अपेक्षा सर्दी अधिक पड़ती है, इसलिये वहाँ के निवासियों का वर्ण श्वेत होता है; और अपने शरीर को सदा वस्त्रों से ढके रहते हैं। उन्हें गर्म पदार्थों के भोजन करने की आवश्यकता होती है। यदि वे प्रकृति के विरुद्ध रहने लगें, तो उनका जीना असंभव हो जाय। यदि उष्ण-देश के निवासी शीत-देश के निवासियों का अनुकरण करें, तो क्या उनके लिये यह हितकर होगा? कदापि नहीं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के सामाजिक नियमों के अनुसार चलना चाहिए; क्योंकि वे उसी देश की बाह्य प्रकृति के अनुसार होते हैं। उनका उल्लंघन करना सर्वथा निंद्य और अहितकर है।

बाह्य प्रकृति का प्रभाव मनुष्य की भाषा और उच्चारण पर भी पड़ता है। यदि कोई ध्यान से देखे, तो उसे ज्ञात होगा कि बोलते समय योरपियों की अपेक्षा भारतीय अपना मुँह अधिक खोलते हैं, इसलिये दोनों के उच्चारण में बड़ा अंतर होता है। भारतीय लोग बहुत-से अक्षरों का उच्चारण नाक और कंठ से करते हैं; पर योरपीय ऐसा नहीं करते। कदाचित् शीत के कारण वे अपना मुँह अधिक नहीं खोलते, इसलिये कंठ से उच्चारण किए जानेवाले अक्षर उनकी वर्णमाला में नहीं हैं।

जिस प्रकार बाह्य प्रकृति का प्रभाव आभ्यंतरिक प्रकृति पर पड़ता है, उसी प्रकार आभ्यंतरिक प्रकृति का बाह्य पर पड़ता है। यह कहना भ्रमात्मक है कि मनुष्य प्रकृति का खिलौना है। अब तो प्रकृति ही उसका खिलौना बन गई है। मनुष्य अपने सुभीते के लिये पहाड़ काट डालता, दलदल पाट देता और नदियों के बहाव की गति बदल देता है, जिससे बाह्य प्रकृति का रूप कभी-कभी और-का-और ही हो जाता है। पहले समय में समुद्र से प्रतिवर्ष हालैंड की सैकड़ों बीघे धरती कट जाती थी और अनेक ग्राम डूबकर नष्ट हो जाते थे। इन घटनाओं से वहाँ के निवासियों का नाकों दम आ गया था। उन्होंने समुद्र की गति रोकने के लिये बड़ा बंधान तैयार किया, जिससे उनका देश बच गया, अन्यथा आज हालैंड का कहीं नाम भी बाक़ी न रहता। पहले योरपीय यात्रियों और व्यापारियों को एशिया आने के लिये घोर आपत्तियाँ तथा कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती थीं। कभी-कभी तो उन्हें माल तथा जान से भी हाथ धोना पड़ता था। अंत में योरपीय राष्ट्रों ने मिलकर स्वेज़ की नहर बनवाई, जिससे योरप और एशिया के निवासियों के आने-जाने में बड़ी सुगमता हो गई है।

हमें उपर्युक्त बातों से ज्ञात होता है कि बाह्य प्रकृति का आभ्यंतरिक प्रकृति पर और आभ्यंतरिक का बाह्य पर कितना प्रभाव पड़ता है। मनुष्य का रूप-रंग, स्वास्थ्य, रहन-सहन, बोलचाल, सामाजिक जीवन इत्यादि बाह्य प्रकृति ही के अनुसार होता है। अस्तु, दोनों में बड़ा ही घनिष्ट संबंध है। अथवा यह कहना उचित होगा कि दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं।

त्रिलोकीनाथ मेहरोत्रा एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. साधु-संदेश

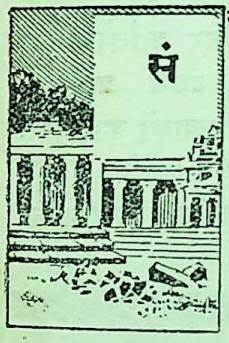

संसार की रचना विचित्र है। एक ओर माया की मनोमोहक मूर्ति है, तो दूसरी ओर वैराग्य का देदीप्यमान दीपक है; कहीं सुख का सच्चा स्वर्ग है, तो अन्यत्र महा दुःखदायी रौरव; यदि कहीं परोपकारी महान् आत्माओं की कुटीरें हैं, तो अन्यत्र दुष्ट-दंभियों के अड्डे। विवेक-शून्य और अनुभवहीन मनुष्य इसी भूल-भुलइयाँ में पड़कर जीवन-लीलाओं को समाप्त कर देते हैं; किंतु अच्छे और बुरे का ज्ञान नहीं हो पाता। हमारे प्राचीन महर्षियों और पूजनीय महापुरुषों ने अपने सतत परिश्रम और सद्बुद्धि द्वारा संचित किया हुआ अमूल्य धन (सदुपदेश), साहित्यिक रूप में, हमारे कल्याणार्थ एकत्रित कर रक्खा है। कुछ चुने हुए सदुपदेश नीचे दिए जाते हैं। कंटकाकीर्ण सांसारिक उपवन से सुगंधित सुमन-संचय करने में ये सदैव सहायक होकर सुखी बनाने में सफल सिद्ध होंगे।

गुलिस्तां जहाँ में फूल भी हैं और काँटे भी;
मगर जो गुल के जोया हैं उन्हें क्या खार का खटका।

१. प्रेम की धार में, सत्य की आँच में और अपवाद के झोंकों में विरले ही ठहरते हैं।

२. किसी को निगल जानेवाला स्वयं भी किसी अन्य का स्वादिष्ट भोजन बन जाता है।

३. महात्मा किसी को भी घृणा की दृष्टि से नहीं देखते।

४. शरीर की जल से, मन की सत्य से, आत्मा की विद्या एवं तप से और बुद्धि की ज्ञान से शुद्धि होती है।

५. क्रोध के कठिन अस्त्र से बचने के लिये विनय की अव्यर्थ ढाल को ग्रहण करना चाहिए।

६. वह धन व्यर्थ है, जिससे दीन-दुखियों का कुछ हित न हो।

७. पुस्तकें तुम्हारे मस्तिष्क को अलंकृत करने के लिये हैं, न कि आलमारियों की शोभा बढ़ाने के लिये।

८. बड़ा बनने के लिये वाणी पर अधिकार होना आवश्यक है।

९. प्रण की रक्षा प्राणों से करनी चाहिए।

१०. संसार की सर्वोपरि शक्ति का नाम संगठन है।

११. किसी बात का जैसा भाव अपनी आत्मा में हो, उसे वाणी द्वारा वैसा ही व्यक्त करना सत्य भाषण है।

१२. आँखों को अछूती मालूम होनेवाली वस्तु को नई कहते हैं।

१३. जिस स्वाभाविक आकर्षण से दो हृदयों का संयोग होता है, वही प्रेम है।

१४. शुद्ध प्रेम स्वर्ग का द्योतक और जीवन का सार है।

१५. धन से मोल लिया हुआ प्रेम—प्रेम नहीं, विलास है।

१६. धर्म की रक्षा करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है; क्योंकि वही सच्चा संगी है।

१७. पापी कभी सुखी नहीं रह सकता—वह सदैव पापाग्नि में जला करता है।

१८. बदला लेने की अपेक्षा क्षमा करने में अधिक आनंद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९. विद्या-प्राप्ति का मुख्य साधन ग्रंथों का स्वाध्याय है।

२०. विद्या के समान नेत्र, सत्य के समान तप, पर-संताप के समान दुःख और त्याग के समान दूसरा सुख नहीं है।

२१. मन का एकाग्र करना योग और भटकाना भोग है।

२२. शुद्धाचरण और विद्या ही सर्वश्रेष्ठ धन हैं।

२३. किसी अनुपस्थित व्यक्ति के विरुद्ध बोलने से पूर्व यह विचार लेना चाहिए कि ये वाक्य उस मनुष्य के कानों तक अवश्य पहुँचेंगे।

२४. कटु वचन का घाव बड़ा गहरा होता है।

२५. वासनाओं के पीछे मत दौड़। ये स्वयं सदा तरुण रहकर तुझे बुड्ढा बना देंगी।

(संकलित)
रामशंकर मिश्र

× × ×

२. मियाँमिट्ठू

अजी ! मैं लिक्खाड़ों का बाप।
लिखूँ साधू को चोर-लबार,
चोर को संन्यासी, सरदार;
जमी है मेरी ऐसी धाक,
प्रकाशक घिसते पैरों नाक;
लगी सच्चे लेखक की छाप। अजी०

कहीं का लेकर रोड़ा-ईंट
बनाता मैं लेखों की भीट
पेज के पेज, शीट के शीट
सभी हो जाते 'फुल कम्प्लीट'
हाथ सब पर करता हूँ साफ़। अजी०

खड़े संपादक जोड़े हाथ
प्रार्थना करते हैं—हे नाथ
लेख लिख दीजै, बस, दो-चार
पत्र का होवे बेड़ा पार
क्योंकि यश रहा आपका व्याप। अजी०

अगर कोई बतलावे भूल
बकूँ मैं उससे ऊलजलूल—
"स्टुपिड, नानसेंस, डैम-फूल"
झोंक दूँ फिर आँखों में धूल
न समझो इसको व्यर्थ प्रलाप—
दैट आई (That I) लिक्खाड़ों का बाप;
मुझे क्या पुण्य और क्या पाप। अजी०

चौधरी गौरीशंकर

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान बिना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू-मैं,-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का मान और निज स्वरूप तथा महिमा की पहिचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते ?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सकें। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ६)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,, ८)
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़ की जिल्द का मूल्य ॥।)

स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं।

पता—श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. महाराव राजा बुधसिंह

राजपूताने में जो बहुत प्रतिष्ठित रजवाड़े हैं, उनमें बूँदी का भी विशेष स्थान है। बूँदी के नरेश शूरवीर, धर्मभीरु और साहित्य-प्रेमी होते आए हैं। माधुरी की इस संख्या में महाराव राजा बुधसिंह का चित्र प्रकाशित किया जाता है। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—बूँदी-राज्य के संस्थापक देवाजी थे। ये चौहान क्षत्रिय थे और हाड़ा-शाखा के अंतर्गत थे। इन्हीं की अठारहवीं पीढ़ी में महाराव राजा बुधसिंहजी हुए। बुधसिंहजी के पूर्वजों में भावसिंह, छत्रसाल, भोज, रतन और सुरजनजी बहुत प्रसिद्ध पुरुष थे। सुरजनजी को दिल्ली के सम्राट् से रावराजा की उपाधि मिली। बुधसिंहजी के पूर्वज अनिरुद्धसिंह तक बूँदी के सभी नरेश 'रावराजा' कहलाते थे। बुधसिंहजी को 'महाराव राजा' की उपाधि मिली। तब से बूँदी-नरेश 'महाराव राजा' कहलाने लगे। संवत् १५४४ के लगभग नारायणदासजी बूँदी नरेश थे। ये उदयपुर के महाराणा के सहायक थे। कहते हैं—एक बार महाराणाजी का मोग़ल-बादशाह बाबर से युद्ध हो रहा था। राणाजी मोग़ल-सेना की अधिकता देखकर पीछे हटने लगे, तब नारायणदासजी ने उनसे कहा कि दीवान-पदवी को लजाकर पीछे न हटिए। राणाजी ने कहा कि दीवान-पदवी आप ही को मुबारिक हो, हम तो इस समय हटना ही मुनासिब समझते हैं। निदान राणाजी तो हट गए, पर नारायणदासजी ने युद्ध करके विजय प्राप्त की। तब से बूँदी के सभी नरेश 'दीवान' कहलाने लगे।

महाराव राजा बुधसिंहजी के पिता का नाम रावराजा अनिरुद्धसिंह था। इनका देहांत संवत् १७५२ में हुआ। बुधसिंहजी की अवस्था उस समय केवल १० वर्ष की थी। पौष-कृष्ण १३, संवत् १७५२ को बुधसिंहजी का राज्याभिषेक हुआ। इनका देहांत संवत् १७३६ में हुआ। राज्याभिषेक के एक साल बाद बादशाह औरंग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ेब ने बुधसिंहजी को अपने बड़े पुत्र के साथ काबुल-विजय के लिये भेजा। यहाँ बुधसिंहजी ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। थोड़े दिनों के बाद औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। इसके बाद आज़म और मुअज़्ज़म में राजसिंहासन के लिये जाजव के मैदान में विकराल युद्ध हुआ। इस युद्ध में रावराजा बुधसिंह मुअज़्ज़म (बहादुरशाह) की ओर से लड़े। बहादुरशाह विजयी हुआ। रावराजा बुधसिंह के पराक्रम से वह बहुत प्रसन्न था। उसने जाजव-युद्ध के विजयोपलक्ष्य में बुधसिंहजी को 'महाराव राजा' की पदवी प्रदान की, और चौवन परगने इनाम में दिए। कविवर दूलह ने इस युद्ध का विशद वर्णन इस प्रकार किया है—

युद्ध माँहि जाजव के बुद्ध ह्वै सक्रुद्ध उद्ध,
आजम के महाबीर काटि डारे ऊजा से;
कहै कबि 'दूलह' समुद्र बढ़े स्रोणित के,
जुग्गिन परेत फिरैं जंबुक अजूजा से।
एक लीन्हें सीस खाय वेष ईस एकन को,
एकन की उपमा निहारी मनु ऊजा से;
अधफटे फैलि-फैलि कर में बिराजैं मानौं,
माथे मुगलन के तरासे तरबूजा से।

कहते हैं, जाजव-युद्ध-विजय का प्रधान श्रेय महाराव राजा बुधसिंहजी को ही है।

बहादुरशाह के दरबार में एक मुसलमान सरदार ने इनके साथ दिल्लगी की थी। इस पर इन्होंने उसे भरे दरबार मार डाला था। बहादुरशाह पर इनके एहसान बहुत-से थे, इस कारण इस अनुचित काम के लिये भी मुअज़्ज़म ने इनसे कुछ न कहा। दो कवियों ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

जारे में से पकरि हजारों मारे हाक धाँक,
देखो जी तमासो बीर बूँदी के दिवान को;
बारहै बरस को बजाय लोह छोह कियो,
हाड़ा चहुआन पृथ्वीराज उनमान को।
कहत सहाय रूप 'आलम' सलाम करै,
देखत तमासो रथ रुकि गयो भान को;
याही विधि अनर अमानो राव बुधसिंह,
खंजर सों फारि डारो पंजर पठान को।
हूलि उठीं हरमैं हिए मैं यह बात सुनि,
त्रास पर्यो सारी बादशाही के अवास मैं;
खान सुलतान सब दाँतन तिनूका दाबैं,
आँतन बिखेरी मीर मार्यो एक साँस मैं।
भोज रतनेस ते सवाई कीन्हीं राजाराव,
बुद्ध बलवंत बीरताई के बिलास मैं;
अप्सरा अकास मैं तमासे आईं ता समै,
निकारी हाड़ा जा समै कटारी आमखास मैं।

बुधसिंहजी का कौटुंबिक जीवन कई कारणों से सुखमय न था। उन्होंने वाममार्गी धर्म अंगीकृत किया था। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद दिल्ली में फ़र्रुख़सियर का बोलबाला हुआ। लोगों के बहकाने में आकर वह बुधसिंहजी के विरुद्ध हो गया। यहाँ तक कि उसने बूँदी का राज्य कोटेवालों को दिला दिया; पर बाद को वह बुधसिंह पर फिर प्रसन्न हुआ, और उन्हें फिर बूँदी वापस दिला दी। सैयद-भ्राताओं ने फ़र्रुख़सियर को सिंहासन-च्युत करने के लिये जो षड्यंत्र रचा था, उसमें बुधसिंहजी ने फ़र्रुख़सियर के लिये युद्ध किया था। अंत में फ़र्रुख़सियर मार डाला गया। इसके बाद अराजकता का साम्राज्य छा गया। बुधसिंहजी का कोटा और जयपुरवालों से विरोध था। इस कारण उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। फ़र्रुख़सियर की मृत्यु के बाद वे शांति के साथ शासन-कार्य न कर सके। कई बार उन्हें बूँदी छोड़नी पड़ी। संवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७८७ में तो उनके हाथ से बूँदी ऐसी निकली कि मृत्यु-पर्यंत न मिली। संवत् १७९६ में जब उनका स्वर्गवास हुआ, तो वे बूँदी के शासक न थे। महाराव राजा बुधसिंह साहित्य-प्रेमी और कवियों के आश्रयदाता तो थे ही, साथ ही वे स्वयं भी कवि थे। जिस समय सैयदों के विरुद्ध और फ़र्रुख़सियर की ओर से उन्होंने तलवार उठाई थी, उस समय उन्होंने निम्न-लिखित छंद बनाया था—

ऐसी ना करी है काहू आजु लौं अनैसी जैसी,
सैयद करी है ये कलंक काहि चढ़ैंगे;
दूजे को नगारो बाजे दिली मैं दिलीस आगे,
हम सुनि भागैं तौ कबिंद कहा पढ़ैंगे।
कहै 'रावबुद्ध' हमैं करने हैं युद्ध स्वामि धर्म,
मैं प्रसिद्ध जे जहान जस मढ़ैंगे;
हाड़ा कहवाय कहा हारि करि कढ़ैं ताते,
झारि समसेर आजु रारि करि कढ़ैंगे।

बुधसिंहजी की शृंगार-रस की कविता भी बड़ी सुंदर होती थी। देखिए—

कीनो तुम मान, मैं कियो है कब मान,
अब कीजै सनमान अपमान कियो कब मैं;
प्यारी हँसि बोलु और बोलैं कैसे बुद्धराज,
हँसि-हँसि बोलु हँसि बोलिहौं जु अब मैं।
दृग करि सोहैं कोटि सोहैं करि जानत है,
अब करि सोहैं अनसोहैं कीनें कब मैं;
लीजै भरि अंक जाहि आए भरि अंक हौं न,
काहु भरि अंक उर अंक देखे अब मैं।

महाकवि भूषणजी महाराव राजा बुधसिंह के दरबार में गए थे। इनकी प्रशंसा में उन्होंने जो छंद बनाया है, वह इस प्रकार है—

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जु नाँगी डर काहू के डरै नहीं;
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
सोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं।
उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै रावबुद्ध कर बिमुख परै नहीं;
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौं लौं गजराजन की गजक करै नहीं।

बुधसिंहजी के यहाँ लोकनाथ चौबे नाम के भी एक कवि थे। इनकी स्त्री भी कविता करती थीं। लोकनाथ के पूर्वज भी बूँदी दरबार के आश्रित कवि थे। संवत् १७५३ में जब रावराजा बुधसिंहजी काबुल जा रहे थे, तो कवि लोकनाथ भी उनके साथ थे। उस समय अटक-नदी के उस पार जाना हिंदू-धर्म-विरुद्ध समझा जाता था, इसलिये लोकनाथजी की स्त्री ने एक छंद बनाकर अपने पति की सेवा में भेजा। उक्त छंद की अंतिम पंक्ति में इस बात का कथन है कि यदि आप अटक-पार चले जायँगे, तो मैं भविष्य में आपको 'मीर' और 'मिरजा' कैसे लिखूँगी, अर्थात् आपको मुसलमान कहते मुझे संकोच होगा।

इस छंद से यह बात प्रकट है कि लोकनाथजी का संवत् १७५३ के पूर्व विवाह हो चुका था। उनकी स्त्री भी उस समय कविता करती थीं। संभवतः लोकनाथजी की अवस्था उस समय ३३ वर्ष से कम न होगी, सो उनका जन्म-काल लगभग १७२० के मानना पड़ता है। 'कविरत्न-माला' में मुंशी देवीप्रसादजी ने लिखा है कि लोकनाथजी की मृत्यु बुधसिंहजी के पहले हुई तथा जब बुधसिंहजी से बूँदी छूटी, तो उनके बाल-बच्चे बूँदी से अन्यत्र चले गए। महाराव बुधसिंह से पहलेपहल बूँदी संवत् १७७२ के लगभग छूटी, और अंतिम बार संवत् १७८७ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो हमारा अनुमान है कि संवत् १७८० के लगभग लोकनाथजी का देहांत हुआ होगा। काबुल-यात्रा के समय, लोकनाथजी के पास, उनकी स्त्री ने जो छंद लिख भेजा था, वह इस प्रकार है—

मैं तो यह जानी ही कि लोकनाथ पाय पति,
संग ही रहौंगी अरधंग जैसे गिरिजा;
एतें पै बिलच्छन ह्वै उत्तर गमन कीन्हों,
कैसे कै मिटत जो बियोग बिधि सिरजा।
अब तौ जरूर तुम्हैं अरज किए ही बनै,
बेऊ दुज जानि फरमाइ हैं कि फिरिजा;
जो पै तुम स्वामी आजु अंटक उलंघि जैहो,
पाती माँहि कैसे लिखौं मिश्र मीर मिरजा।

बुधसिंहजी ने जब यह छंद पढ़ा, तो उन्होंने लोकनाथजी को लौटा दिया। अपने साथ न ले गए। लोकनाथजी ने 'रस-तरंग' और 'हरिवंश चौरासी का भाष्य'-नामक दो ग्रंथ बनाए। बूँदी-नरेश ने इनको इकलौरा और धौलपुर-नामक गाँव इनाम में दिए थे।

लोकनाथजी का छंद इस प्रकार है—

भूषण निवाज्यो जैसे सिवा महराजजू नें,
बारन दै बावन धरा पै जस छाव है;
दिल्लीसाह दिलिप भए हैं खानखाना जिन,
गंग से गुनी को लाखे मौज मनभाव है।
अब कबिराजन पै सकल समस्या हेत,
हाथी घोड़ा तोड़ा दै बढ़ायो बहु नाव है;
बुद्धजू दिवान लोकनाथ कविराज कहै,
दियो इकलौरा पुनि धौलपुर गाँव है।

लोकनाथजी का यह छंद मुंशी देवीप्रसादजी-संग्रहीत 'कविरत्नमाला' में है। लोकनाथजी महाकवि भूषण के बहुत समय तक समसामयिक तो थे ही, साथ ही जब भूषणजी बूँदी-दरबार में आए होंगे, तो इन दोनों कवियों का साक्षात्कार भी हुआ होगा। ऐसी दशा में लोकनाथजी का यह कथन बड़े ऐतिहासिक मूल्य का है कि 'भूषण निवाज्यो जैसे सिवा महराजजू ने।' जो लोग भूषणजी को शिवाजी का दरबारी कवि ही नहीं मानते हैं, उन्हें लोकनाथजी के उपर्युक्त कथन का सप्रमाण खंडन करना चाहिए। हम तो लोकनाथजी के इस कथन को बिलकुल ठीक मानते हैं।

सारांश, महाराव राजा बुधसिंह बड़े ही वीर और साहित्य-प्रेमी नृपति थे। हिंदी की कवित्व उनके ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकती है। इन्हीं नृपति महोदय का चित्र इस संख्या में प्रकाशित है। जयपुर-राज्य के प्रसिद्ध अमात्य स्वर्गीय पं० शिवदीनजी मिश्र के दौहित्र पं० राजेश्वरनाथजी मिश्र द्वारा हमें यह चित्र प्राप्त हुआ है। एतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।

× × ×

२. मतिराम

साहित्य-समालोचक में 'फूलमंजरी'-ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक का अंतिम दोहा इस प्रकार है—

हुकुम पाय जहँगीर को नगर आगरे धाम;
फूलन की माला करी मति सों बरनि मतिराम।

इस दोहे से प्रकट है कि 'फूलमंजरी' की रचना आगरे में जहाँगीर की आज्ञा से हुई। जहाँगीर का देहांत संवत् १७८४ में हुआ। यदि 'फूलमंजरी' उनकी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व बनी हो और उस समय मतिराम की अवस्था २२ वर्ष की हो, तो उनका जन्म संवत् १७६० ठहरता है।

सुप्रसिद्ध सरदार कवि का 'शृंगार-संग्रह'-ग्रंथ बनारस आनंदबन छापेख़ाने में संवत् १९२१ में छपा। इस संग्रह के २५७ पृष्ठ पर निम्न-लिखित छंद दिया है—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत बीर,
दक्खिन की फौज लैके सिंहल दबाइहौं;
जड़ाती जमेसन की जेर कै सुमेर हू लौं,
संपति कुबेर के खजाने ते कढ़ाइहौं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहै 'मतिराम' लंकापति हू के धाम जार,
जंग जुरै जम हूँ को लोह सो बनायहौं;
आगि में गिरैंगे कूदि कूप में परैंगे,
एक भूप भगवंत के मुहेम पै न जायहौं।

इस छंद से प्रकट है कि मतिराम कवि ने इसे भगवंतराय खीची की प्रशंसा में बनाया है। भगवंतराय का समय कुछ लोग १७८० से १७९७ तक मानते हैं। संभव है, यह कवित्त संवत् १७८५ के लगभग बना हो। हाँ, संवत् १७८० के पहले का बना यह नहीं हो सकता।

यदि उपर्युक्त छंद के रचयिता मतिराम और फूलमंजरी के रचयिता मतिराम एक ही व्यक्ति हों, तो मतिराम की अवस्था १२० वर्ष के ऊपर माननी पड़ती है। भूषण की १०० वर्ष से अधिक अवस्था देखकर जो लोग चौंकते हैं, वे मतिराम की १२० वर्ष की अवस्था क्यों मानने लगे? तो फिर क्या मतिराम नाम के दो कवि थे? यही अधिक संभव जान पड़ता है। 'वृत्तकौमुदी' पुस्तक संवत् १७५८ में बनी बतलाई जाती है। फूलमंजरी के रचयिता ने यदि इसे बनाया हो, तो उस समय उसकी अवस्था ९८ वर्ष की होगी। भक्ति और वैराग्य को छोड़कर शुष्क पिंगल और यौवनोचित वीररस की कविता करने का क्या यही उपयुक्त समय है? हाँ, भूप भगवंत की प्रशंसा करनेवाले मतिराम का यौवन-काल संवत् १७६० के लगभग हो सकता है। अधिक संभव यही है कि इन्हीं मतिराम ने 'वृत्तकौमुदी' बनाई हो।

मतिराम नाम के दो कवि थे, इस धारणा की पुष्टि एक बात से और भी होती है। कहते हैं, 'वृत्तकौमुदी' पुस्तक के रचयिता मतिराम वत्सगोत्री ब्राह्मण थे, और बनपुर में रहते थे। उधर दूसरे मतिराम के वंशज तिकवाँपुर तथा और कई गाँवों में मौजूद हैं। वे अपने को कश्यप-गोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण बतलाते हैं। तिकवाँपुर गाँव में जो लोग अपने को मतिराम के वंशज बतलाते हैं, उनके एक पूर्वज का नाम बिहारीलाल था। इन्होंने बुंदेलखंड के एक नृपति की बनाई विक्रम-सतसई पर टीका लिखी है। इस टीका में उन्होंने अपने को मतिराम कवि का पंती बतलाया है। उन्होंने साफ़-साफ़ लिखा है कि मैं कश्यप-गोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। इस टीका की रचना संवत् १८७२ में हुई है। यदि बिहारीलाल की मृत्यु संवत् १८७५ में, ८५ वर्ष की अवस्था में हुई हो, तो उनका जन्म-काल संवत् १७९० में पड़ता है। यदि इनके जन्म के समय इनके पिता जगन्नाथजी की अवस्था ४० वर्ष की हो तो उनका जन्मकाल संवत् १७५० मानना पड़ता है। जिस समय जगन्नाथजी का जन्म हुआ हो, उस समय यदि उनके पिता सीतलजी की अवस्था भी ४० ही वर्ष की रही हो, तो सीतल का जन्म-काल १७१० के लगभग पड़ता है। परंतु यह सब बातें केवल अनुमान पर अवलंबित हैं। कोई बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती है। हमारा ख़याल है कि मतिराम नाम के दो कवि हुए हैं।

× × ×

३. अभ्युदय और भारत

प्रयाग से इस समय हिंदी के दो प्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। एक का नाम है 'अभ्युदय' और दूसरे का 'भारत'। 'अभ्युदय' बहुत समय से हिंदी की सेवा कर रहा है, 'भारत' का प्रकाशन अभी हाल ही में प्रारंभ हुआ है। 'अभ्युदय' के संपादक हिंदी के यशस्वी लेखक पं० कृष्णकांतजी मालवीय हैं, और 'भारत' के पं० वेंकटेशनारायणजी तिवारी। दोनों ही सज्जन स्वदेश के राष्ट्रीय जीवन में प्रमुख भाग लेते हैं। 'भारत' के संचालन में उन लोगों का हाथ है, जो अँगरेज़ी के विख्यात दैनिक 'लीडर' के सूत्रधार हैं। 'लीडर' और 'भारत' एक प्रकार से एक दूसरे के प्रति पूरक हैं। 'लीडर' के समान 'भारत' भी लिबरल-दल की नीति का समर्थक है। 'अभ्युदय' देश-पूज्य महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी का आश्रित और कृपाभाजन है। वह हिंदू-संस्कृति और राष्ट्रीयता का कट्टर समर्थक है। 'अभ्युदय' कांग्रेस का समालोचक होते हुए भी उसका समर्थक है। 'भारत' में प्रत्येक रुचि के पाठकों के मनन करने और पढ़ने योग्य सामग्री प्रचुर परिमाण में रहती है। प्रत्येक अंक में चित्र भी यथेष्ट संख्या में रहते हैं। कौंसिलों के अधिवेशनों का विवरण 'भारत' में विस्तार के साथ प्रकाशित होता है। 'अभ्युदय' के संपादकीय अग्रलेख गंभीर और मौलिक होते हैं। इस पत्र में समाज-सुधार के प्रश्नों पर, सावधानी के साथ, व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाता है। 'अभ्युदय' शुद्धि और संगठन का समर्थक है तथा असहयोग और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविनय अवज्ञा को हौआ नहीं समझता है। 'अभ्युदय' के संपादक महोदय ने समय-समय पर अपने विचारों के लिये कष्ट भी झेले हैं। 'भारत' में साहित्य-चर्चा और विनोद को भी स्थान मिलता है। हिंदी में अभी सच्चे विनोदी लेखकों का अभाव है। 'भारत' में प्रकाशित विनोदात्मक नोटों में प्रायः व्यक्तिगत आक्षेपों की उच्छृंखलता दिखलाई पड़ती है। स्वाभाविक विनोद के स्थान में श्रमपूर्वक लिखा हुआ विनोदाभास 'भारत' में प्रायः पढ़ने को मिलता है। 'अभ्युदय' में सीधी, टेढ़ी, खरी और मज़ेदार बातों में विनोद और विनोदाभास दोनों पढ़ने को मिलते हैं। 'अभ्युदय' के विनोद में ओज अधिक है, और सुकुमारता कम। 'भारत' के विनोदाभास में 'मुछमुंडा' ओज अधिक है, और कर्कशता सुकुमारता को प्रायः दबा देती है।

'अभ्युदय' में प्रकाशित कविताएँ प्रायः अच्छी होती हैं। इस पत्र में साहित्य-चर्चा अधिक नहीं रहती है; पर जो कुछ होती है, वह संयत भाषा में, गंभीरता के साथ, प्रकट की जाती है। 'भारत' में प्रकाशित कविताओं का स्टैंडर्ड ऊँचा नहीं है। इस पत्र में व्यक्ति-विशेष की परवा न करके निर्भीकता के साथ और कभी-कभी कटुता-समन्वित आलोचनाएँ प्रकाशित होती हैं। 'अभ्युदय' प्रतिष्ठित लेखकों की कल्पित अथवा सच्ची भूलों की चाहे उपेक्षा कर जाय, उन पर दृष्टिपात न करे अथवा वैसे लेखकों को चाहे दो-चार बार क्षमा कर दे, पर 'भारत' ऐसा अवसर मिलने पर अवश्य चोट करता है, और कभी-कभी बड़ी निर्दयता और कटुता के साथ। हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि के लिये हम 'अभ्युदय' और 'भारत' दोनों का आदर करते हैं, और चाहते हैं कि हिंदी के वसंतोद्यान में इन दोनों पत्रों के विकसित सुमन-सौरभ से साहित्य-प्रेमियों के मस्तिष्क आनंद प्राप्त करें। प्रौढ़ 'अभ्युदय' हमारे जीवन के अभ्युदय को सुदृढ़ करे, और अभिनव 'भारत' हमारे नूतन भारत में सुश्रृंखला का निर्माण करे, यही हमारी जगदीश्वर से प्रार्थना है।

× × ×

४. इंटरनेशनल एजुकेशन ब्यूरो (इंडिया)

भारत से जो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिये अन्य देशों को जाते हैं, उनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पहले से यथार्थ व्यय और पाठ्यक्रम का ज्ञान न रहने से विदेश में जाकर भारतीय विद्यार्थी प्रायः असमंजस में पड़ जाते हैं और कभी-कभी तो वहाँ उनकी स्थिति बड़ी भयंकर हो जाती है। यद्यपि भारत-सरकार की ओर से विदेश जानेवाले विद्यार्थियों को बहुत-सी बातें बतलाने की व्यवस्था है, परंतु उससे तादृश लाभ नहीं है। हर्ष की बात है कि स्थानीय श्रीयुत हीरालालजी भार्गव ने 'इंटरनेशनल एजुकेशन ब्यूरो नाम की एक संस्था खोली है। भार्गवजी इस संस्था के सेक्रेटरी हैं। यह ग़ैर-सरकारी संस्था है। इस संस्था से डाक्टर ज़ियाउद्दीन तथा जस्टिस पं० गोकर्णनाथ मिश्र का भी संबंध है। विदेश जानेवाले विद्यार्थी इस संस्था द्वारा उचित फ़ीस देकर अपने मतलब की बातें जान सकते हैं। हम इस संस्था का स्वागत करते हैं। जिन लोगों को विशेष हाल जानना हो, वे श्रीयुत हीरालालजी भार्गव, नवलकिशोर रेसीडेंस, हज़रतगंज, लखनऊ के पते से पत्र-व्यवहार करें।

× × ×

५. अशांत संसार

दक्षिण-अमेरिका में युद्ध के बादल उमड़ रहे हैं। वहाँ की कई रियासतों में परस्पर संघर्ष हो रहा है। यूनाइटेड स्टेट्स में शांति की मौखिक पुकार है; पर युद्ध की सामग्री का संग्रह ज़ोरों के साथ हो रहा है। अमेरिका में इँगलैंड के प्रति महायुद्ध के समय जो सौहार्द के भाव थे, वे विलुप्त-प्राय हो गए, और अब तो संहार चाहनेवाली प्रतिद्वंद्विता की काली घटाएँ विद्रोह-पवन का सहारा पाते ही बरसने का रंग-ढंग दिखला रही हैं।

योरप असाधारण शीत से ठिठुर गया है; परंतु परस्पर वैमनस्य की सूचना देनेवाली गुप्त संधियों के भंडाफोड़ से अपना युद्धाकांक्षी भयंकर और वीभत्स नग्न रूप दिखला रहा है। बालकन-रियासतों में दृढ़ता-पूर्वक स्थापित कलह-केंद्र ज्यों-का-त्यों मौजूद है और ज्वालामुखी के समान किसी भी समय विद्रोह-दावानल वमन करने के लिये प्रस्तुत है। राजनीति और धर्म का संघर्ष भी मिटा नहीं है। गुप्त संधियों के कारण आपस की कटुता और वैमनस्य द्रुतगति से विकसित हो रहे हैं। योरप के सभी देश, विशेष करके रूस युद्ध की सामग्री प्रचुर परिमाण में जुटा रहे हैं। फ़्रांस और इँगलैंड का सौहार्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब बहुत-कुछ ऊपरी रह गया है। इँगलैंड में निर्वाचन-युद्ध की तैयारी ज़ोरों से हो रही है, और मई का महीना उक्त देश के इतिहास में संभवतः एक नवीन अध्याय की सृष्टि करेगा।

एशिया में चीन का गृह-कलह फिर पनपने के लक्षण दिखला रहा है। नहीं जानते, उस देश के भाग्य में क्या लिखा है। अफ़ग़ानिस्थान में राजसिंहासन हथियाने के लिये इतने लोग लालायित हैं कि भविष्य में क्या होगा, इसकी कल्पना करना कठिन प्रतीत होता है। शाह अमानुल्ला, बच्चए सका और नादिरख़ाँ के व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावशाली हैं। इधर दो-तीन महीनों में वहाँ भयंकर मारकाट की संभावना है। प्रजातंत्र की पुकार मचाकर नादिरख़ाँ ने उस दुखी देश की उलझी हुई समस्या को और भी जटिल बना दिया है। भारत में हिंदू-मुसलिम-समस्या दासता की शृंखला को टूटने देना नहीं चाहती है। बंबई का दंगा ऐसा विकराल हुआ है कि एक स्वतंत्र जाँच कमेटी द्वारा उसके कारणों और परिणाम पर विचार होने जा रहा है। सरकार और प्रजा के बीच का असंतोष ज्यों-का-त्यों बना है। महात्मा गांधीजी बहिष्कार-आंदोलन का संचालन कर रहे हैं, और उनकी हाल की गिरफ़्तारी ने आग में घी की आहुति का-सा काम किया है। पबलिक सेफ़्टीबिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स-बिल की तुलना लोग रौलटबिल से कर रहे हैं। अकाल और बेकारी स्थिति को और भी चिंताजनक बना रही है। निदान चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय, इस समय संसार भयंकररूप से संक्षुब्ध और अशांत है।

× × ×

६. हिंदी के कुछ नवीन पत्र

हाल में हिंदी-संसार को 'भारतेंदु', 'युवक', 'स्वतंत्र-भारत' और 'श्रीकृष्ण'-नामक पत्रों के दर्शन हुए हैं। 'भारतेंदु' पत्र प्रयाग से 'मनोरमा' पत्रिका के भूतपूर्व संपादक पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल के संपादकत्व में निकला है। इसकी अब तक की निकली जो संख्याएँ हमारे देखने में आई हैं, उनसे पत्र होनहार मालूम होता है। इसमें हिंदी के प्रतिष्ठित विद्वानों की रचनाएँ स्थान पाती हैं। इसका प्रधान उद्देश्य हिंदी-संसार को शिक्षा-संबंधी साहित्य भेंट करना है। यह उद्देश्य सर्वथा स्तुत्य है। हम पत्र की सफलता के अभिलाषी हैं। 'युवक' पत्र पं० रामवृक्षजी शर्मा के संपादकत्व में निकला है। यह भी बड़ा ही होनहार जान पड़ता है। इसमें ओजस्वी साहित्य का अच्छा समावेश है। आशा है, 'बालक' के समान यह पत्र भी पं० रामवृक्षजी के संपादकत्व में उन्नति करेगा। ईश्वर करे, पत्र अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे। 'स्वतंत्र-भारत' स्वतंत्रता का उपासक है। यह नूतन समाचार-पत्र कलकत्ते से निकला है। पत्र अच्छा है, और हमारा विश्वास है कि भारतीय राजनीति की जटिलताओं को सुलझाने में इससे बड़ी सहायता मिलेगी। हम इस पत्र की उन्नति चाहते हैं, और इसका हृदय से स्वागत करते हैं। 'श्रीकृष्ण' मासिक पत्र है। इसके संपादक पं० रूपनारायणजी पांडेय हैं। अब तक हमारे देखने में इसकी एक ही संख्या आई है। पत्र साधारण रूप से अच्छा है; परंतु इसमें जो लेख और कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, उनका चुनाव करने में शायद इसके यशस्वी संपादक ने काफ़ी दिलचस्पी नहीं ली है। चित्र तो नितांत साधारण कोटि के हैं। पं० रूपनारायणजी पांडेय के संपादकत्व में निकलनेवाले पत्र को हम विशेष उन्नत देखना चाहते हैं। यह पत्र तदनुरूप नहीं है। आशा है, इसकी अगली संख्याएँ विशेष समृद्ध पाठ्य-सामग्री से समन्वित होंगी। हम 'श्रीकृष्ण' का स्वागत करते हैं, और उसकी उन्नति चाहते हैं।

'भारतेंदु' पत्र के संपादक से हमारा निवेदन है कि पत्र के विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिये साहित्यिक रचनाओं की अपेक्षा वे शिक्षा-संबंधी लेखों के प्रकाशन का विशेष आयोजन करें। शिशु-शिक्षा, बाल-शिक्षा, युवक-शिक्षा एवं स्त्री-शिक्षा पर तो प्रकाश डाला ही जाय, साथ ही धर्म, विज्ञान, राजनीति एवं अर्थ-शास्त्र का शिक्षा से क्या संबंध है, इस पर भी लेख प्रकाशित किए जायँ। पत्र का उद्देश्य पवित्र और उपयोगी है। ईश्वर करे पत्र अपने लक्ष्य के अनुकूल चले।

× × ×

७. माधुरी का विशेषांक

'माधुरी' का विशेषांक प्रकाशित हुए छः महीने हो गए। विशेषांक पर हमारे पास इतनी अधिक सम्मतियाँ आई हैं कि उन सबके प्रकाशन में हम असमर्थ हैं। हिंदी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी माधुरी के विशेषांक पर सम्मतियाँ प्रकाशित हुई हैं। अधिकांश विद्वानों ने विशेषांक को पसंद किया है, और अनुकूल सम्मतियाँ भेजी हैं। इन सबके हम हृदय से कृतज्ञ हैं, और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य में भी हम उनको संतुष्ट रखने का प्रयत्न करेंगे। कुछ सज्जनों ने विशेषांक के प्रतिकूल भी अपने भाव प्रकट किए हैं। ऐसी सम्मतियों पर हम अधिक सावधानी से विचार करेंगे, और यदि अपने सिद्धांतों की अवहेलना किए बिना हम उन प्रतिकूल मतों के अनुसार काम करने में समर्थ होंगे, तो उनसे अवश्य लाभ उठावेंगे, अन्यथा हम मजबूर हैं। कुछ भी हो, हम प्रतिकूल सम्मति देनेवालों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। एक बात निश्चित है, और वह यह है कि अपने प्रेमी पाठकों में विशेषांक बहुत लोकप्रिय हुआ, और माधुरी के हितचिंतकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इधर विशेषांक के प्रकाशन के बाद से माधुरी की ग्राहक-संख्या में ख़ासी वृद्धि हुई है। इतना ही नहीं, गुजरात के एक कर्मठ प्रकाशक और साहित्य-सेवी गुजराती-भाषा में 'माधुरी' निकालने जा रहे हैं। 'गुजराती माधुरी' साधारण परिवर्तनों के साथ हिंदी माधुरी का भाषांतर-मात्र होगी। 'गुजराती माधुरी' के संपादक आदि वही होंगे, जो हिंदी माधुरी के हैं। सब लिखा-पढ़ी हो गई है। संपूर्ण विवरण आगामी संख्या में प्रकाशित किया जायगा। विशेषांक की सफलता और लोकप्रियता का यह भी एक प्रमाण है।

माधुरी के भविष्य विशेषांक के लिये हम अभी से तैयारी कर रहे हैं। हिंदी के लेखकों (विशेष रूप से प्रवासी लेखकों), कवियों एवं चित्रकारों से हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे कृपा करके विशेषांक के लिये अपनी रचनाएँ अभी से भिजवाने का प्रयत्न करें। शीघ्रता में रचयिताओं को भी कष्ट होता है, और हमें भी रचनाओं के यथास्थान रखने में असुविधा होती है। आशा है, हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया जायगा। जो सज्जन 'विशेषांक' के लिये अपनी रचनाएँ भेजें, वे उन पर स्पष्ट शब्दों में लिख दें कि 'विशेषांक के लिये'। यदि हमें उचित सहयोग मिला, और जगदीश्वर की कृपा रही, तो हम माधुरी का भविष्य विशेषांक पिछले विशेषांक से भी अच्छा निकालने का उद्योग करेंगे।

८. सरस्वती के नवीन वर्ष की प्रथम संख्या

सरस्वती के नवीन वर्ष की प्रथम संख्या (जनवरी सन् १९२९ का अंक) हमारे पास समालोचनार्थ आई है। 'सरस्वती' ने अब तक हिंदी-साहित्य की जो सेवा की है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। नवीन वर्ष की यह नई संख्या रूप-रंग और रचनाओं के चुनाव आदि सभी दृष्टियों से बढ़िया है। आवरण-पृष्ठ बड़ा मनोहर है। पाठ्य सामग्री अच्छे काग़ज़ पर कई रंग की रोशनाई में छापी गई है। इस संख्या का प्रत्येक पृष्ठ हरे रंग के बार्डर से सुशोभित है। लेखों के प्रारंभ में (कहीं-कहीं बीच में बाक्स के अंदर) उनका परिचय भिन्न टाइप में दिया गया है। तिरंगे चित्र कई हैं, और सभी अच्छे हैं। प्रारंभ में पं० मोतीलालजी नेहरू का चित्र बड़ा ही भव्य है। लेख प्रायः सचित्र हैं, और पाठकों का मनोरंजन करने में समर्थ हैं। कविताओं की भरमार नहीं है, परंतु जो कविताएँ दी गई हैं, वे अच्छी हैं। गंभीर और जटिलता-पूर्ण एवं विवादास्पद लेखों का संकलन शायद जान-बूझकर नहीं किया गया है। हाँ, पाठकों के मनोरंजन की तृप्ति का सफल प्रयत्न इस संख्या में है। ऐसी सुंदर संख्या निकालने के उपलक्ष्य में हम पत्रिका के संचालकों और विशेषकर सहृदय मित्रवर पं० देवीदत्तजी शुक्ल संपादकजी को हृदय से बधाई देते हैं, और विश्वास करते हैं कि उनके संपादकत्व में, पत्रिका भविष्य में और भी अधिक उन्नति करेगी। हम सरस्वती की समृद्धि के इच्छुक हैं।

कोरी प्रशंसा से कहीं 'सरस्वती' को नज़र न लग जाय, इस विचार से हम उसके सुयोग्य संपादक का ध्यान प्रारंभ में प्रकाशित 'नववर्ष' कविता की ओर आकर्षित करते हैं। यह रचना घनाक्षरी छंद में है, जो पिंगल के अनुसार वर्णवृत्त के अंतर्गत है। इसमें वर्णों की संख्या गिनी जाती है, मात्राओं की नहीं। 'नववर्ष' रचना में जो दो छंद दिए गए हैं, उनमें प्रत्येक के प्रति पद में ३१ वर्ण होने चाहिए। परंतु प्रथम छंद के अंतिम पद में केवल ३० वर्ण हैं। यदि 'विस्तारूँ' शब्द 'विसतारूँ' रूप में लिखा जाता, तो यह त्रुटि सहज में दूर हो जाती। दूसरे छंद के तीसरे पद में भी यही त्रुटि है। इसमें भी एक वर्ण कम है। प्रारंभ की कविता में पिंगल-संबंधी यह त्रुटियाँ खटकती हैं।

× × × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. हिंदी-शब्द-सागर

बड़े हर्ष की बात है कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा जिस 'हिंदी-शब्द-सागर'-नामक कोश का प्रकाशन आज २० वर्ष से कर रही थी, वह पूरा हो गया। कोश-समाप्ति के उपलक्ष्य में, हाल में, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से एक उत्सव मनाया गया था। इसमें बहुत-से साहित्य-सेवी एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर विद्वानों के भाषण हुए, निबंध पढ़े गए और कवियों ने अपनी कविताएँ सुनाईं। इस प्रकार इस उत्सव में साहित्य-चर्चा की ख़ासी चहल-पहल रही। जो लोग इस उत्सव में सम्मिलित हुए, उन्हें न केवल साहित्य का आनंद मिला, बरन् उन्होंने कोश-निर्माण-संबंधी संगठन, संपादन-व्यवस्था तथा इस कार्य में जो प्रचुर धन व्यय हुआ, उसका सब हाल विस्तार के साथ जाना। इस अवसर पर

To

THE EDITOR,

"THE MADHURI,"

LUCKNOW.

Berlin, 11th February 1929.

प्रियवर,

माधुरी का विशेषांक मिला। धन्यवाद। मुझे आपने आश्चर्य में डाल दिया! ऐसा सुसंपादित विशेषांक मेरे देखने में अब तक नहीं आया था। मैं इसे पाकर बड़ा ही संतुष्ट हुआ। सभी प्रकार के विद्वानों के लेखों से यह सुशोभित है। लेखों की तरतीब वैज्ञानिक है और छपाई चित्ताकर्षक है। आप तो लेखकों को पुरस्कार देते हैं, पर लेखकों को भी कभी-कभी संपादकों के परिश्रम का आदर करना चाहिए। यदि आपने फिर कभी विशेषांक निकाला और मुझे दो महीने पहले से आपकी इच्छा का पता लगा तो मैं आपके पाठकों को "जैनेवा, रोम या कुस्तुनतुनियाँ" की सैर कराऊँगा।

मेरी माधुरी मेरे नए पते पर भेजा करें और यह मेरा पता अपनी पत्रिका में छाप दें ताकि मेरे प्रेमी भटकें नहीं।

आपका मंगलाभिलाषी—

SWAMI SATYA DEVA,
c/o MR. R. SIMONDS
LUBECKER STRASSE 15,
Cologne,
Germany.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक निबंध-संग्रह भी प्रकाशित किया गया है। इसमें साहित्य-संबंधी लेखों के अलावा कोश-संबंधी लेख भी हैं। 'हिंदी-शब्द-सागर' की एक बड़ी प्रस्तावना पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने लिखी है। यह भी प्रकाशित हो गई है। हिंदी-शब्द-सागर तथा उसकी प्रस्तावना पर 'माधुरी' में एक लंबी लेखमाला प्रकाशित होने जा रही है, इसलिये यहाँ पर हम कुछ अधिक लिखना उचित नहीं समझते हैं, परंतु उसकी निर्विघ्न समाप्ति के उपलक्ष्य में हम काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा तथा 'हिंदी-शब्द-सागर' के संपादकों को हृदय से बधाई देते हैं। रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी बी०ए० का हिंदी-संसार सदा ऋणी रहेगा, क्योंकि उनके सतत प्रयत्न और अथक अध्यवसाय के बिना हमारा ख़याल है कि कोश का काम शायद ही पूरा पड़ता। अंत में हम अत्यंत नम्रतापूर्वक बाबू श्यामसुंदरदासजी को कोश-निर्माण के उपलक्ष्य में पुनः हृदय से बधाई देते हैं।

× × ×

१०. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ

प्रयाग का हिंदी-साहित्य-सम्मेलन हिंदी-प्रचार के लिये और जो-जो काम कर रहा है, वह तो स्तुत्य है ही; परंतु उसने सम्मेलन की ओर से जिन परीक्षाओं की व्यवस्था की है, उनसे हिंदी-साहित्य का बहुत बड़ा उपकार हुआ है। हिंदी-साहित्य की ओर नवयुवकों का ध्यान इन परीक्षाओं के कारण विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। लोगों में हिंदी की पुरानी कविता की ओर से जो उदासीनता बढ़ रही थी, उसमें बहुत-कुछ कमी हुई है। परीक्षार्थी अब पुराने काव्य को चाव से पढ़ते हैं। ये सब शुभ लक्षण हैं। इन्हीं परीक्षाओं के कारण पुराने काव्य-ग्रंथों के सटीक संस्करण भी निकलने लगे हैं। आजकल पं० दयाशंकरजी दुबे सम्मेलन के परीक्षा-मंत्री हैं। आप बड़े ही निष्कपट और अध्यवसायी विद्वान् हैं। हिंदी-साहित्य पर आपका प्रगाढ़ प्रेम है। आप अपनी धुन के पक्के हैं। आपमें आडंबर नहीं है। आप जिस काम में लगते हैं, उसे पूरा करके छोड़ते हैं। सम्मेलन ने आपको परीक्षा-मंत्री चुनकर बड़ी बुद्धिमानी का काम किया है। हमारा विश्वास है कि आपकी देखरेख में सम्मेलन की परीक्षाएँ और भी उपयोगिनी और लोकप्रिय सिद्ध होंगी।

सम्मेलन की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं में हिंदी के अनेक पुराने काव्य-ग्रंथ स्वीकृत हैं। यदि सम्मेलन ऐसा आयोजन करे कि प्रतिवर्ष कुछ विद्वानों द्वारा उपर्युक्त काव्य-ग्रंथों पर भाषण हो जाया करें, तो इससे परीक्षाओं का गौरव भी बढ़ सकता है, और वे अधिक लोकप्रिय भी बनाई जा सकती हैं। इन भाषणों का प्रबंध परीक्षा के प्रधान-प्रधान केंद्रों पर होना चाहिए। बाद को यदि ऐसे भाषण पुस्तकाकार प्रकाशित किए जायँ, तो और भी अच्छा हो। काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी यदि ऐसे ही भाषणों का प्रबंध किया जाय, तो बड़ा लाभ हो सकता है। हम तो इस काम को विद्यापीठ के काम से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण समझते हैं। भाषणों के प्रबंध में व्यय अवश्य होगा, पर इसके द्वारा लाभ की भी अधिक संभावना है। परीक्षा के लिये जो पुस्तकें स्वीकृत की जायँ, उनका निर्वाचन बड़ी सावधानी से होना चाहिए। सरकार की टेक्स्ट बुक-कमेटी में आजकल जो धाँधली मची है, उसकी छाया सम्मेलन की परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम निश्चित करने में न पड़नी चाहिए। आशा है, सम्मेलन के अधिकारीगण हमारे इस प्रस्ताव पर उचित ध्यान देंगे।

× × ×

११. ग्रेट ब्रिटेन का अद्वितीय अभ्युदय

'लिटरैरी डाइजेस्ट' में 'फाइनेन्शल पोस्ट'-नामक पत्र से एक लेख उद्धृत है। इस लेख के लेखक मिस्टर हर्बर्ट एन० कैसन हैं। आपने अपने इस लेख में यह प्रतिपादित किया है कि जिन बातों से ठोस अभ्युदय का निर्माण होता है, उनमें ग्रेट ब्रिटेन अभी संसार के सभी देशों से बहुत आगे है। कहना नहीं होगा कि उपर्युक्त अभ्युदय से कैसन महोदय का अभिप्राय व्यापारिक अभ्युत्थान है। आपने अपने लेख में ब्रिटेन के नौ अनुपम व्यापारिक चमत्कारों का उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) मिडिलैंड बैंक, (२) लंदन स्टाक एक्सचेंज, (३) लाएड्स मैरीटाइम एक्सचेंज, (४) डेलीमेल, (५) मिडलैंड रेल-रोड का डिसपैचिंग-भवन (६) शिपयार्ड (जहाज़ी अड्डे), (७) कटेरास-फ़ैक्टरी, (८) कैडबरी-फ़ैक्टरी और (९) पिकैडिली का भूगर्भस्थ स्टेशन। इन सबका कुछ विस्तृत विवरण सुनिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) मिडलैंड बैंक

यह संसार का सबसे बड़ा बैंक है। इसमें दो अरब पौंड धन जमा है। इसकी मालियत दो अरब बीस करोड़ पौंड की है। ग्रेट ब्रिटेन में चार और भी इसी के समकक्ष बैंक हैं। इन सबकी सम्मिलित पूँजी ९ अरब के लगभग है। ब्रिटिश-जनता को इन बैंकों से नित्य नई सुविधाएँ सुलभ हैं।

(२) लंदन स्टाक एक्सचेंज

लंदन का यह व्यापार-बाज़ार अनुपम है। इसका प्रभाव अंतर-राष्ट्रीय है। इसकी साख संसार-व्यापी है। इससे बैंकों को ज़रा भी हानि नहीं पहुँचती है। इसके सदस्यों की संख्या बहुत अधिक है।

(३) लाएड्स मेरी टाइम एक्सचेंज

इसे समुद्री व्यापार-बाज़ार कह सकते हैं। ऐसा बाज़ार संसार में और कहीं है ही नहीं। दलालों के एक दल ने इसका प्रारंभ सन् १६८९ में किया था। सन् १७७१ से यह एक संस्था के रूप में चल रहा है। इस संस्था में १२०० व्यक्ति सम्मिलित हैं। इसके पास ३० करोड़ पौंड संरक्षित धन है। इसी की बदौलत समुद्र पर ब्रिटेन का बोलबाला है।

(४) डेली मेल

इस दैनिक समाचारपत्र की ग्राहक-संख्या २० लाख है। संसार के किसी भी पत्र की इतनी ग्राहक-संख्या नहीं है। डेली मेल पत्र का भवन संसार की एक दर्शनीय इमारत है। इसके प्रथम पृष्ठ पर विज्ञापन छपाने में ७००० ख़र्च करना पड़ते हैं, और छे महीने पहले से उक्त स्थान संरक्षित करा लेना पड़ता है।

(५) मिडलैंड रेल-रोड का डिसपैचिंग-भवन

यह भवन बड़ा विशाल और भव्य है। ब्रिटेन की रेल-व्यवस्था बहुत परिपक्व है। डिसपैचिंग-भवन से आज्ञा पाए विना एक भी ट्रेन नहीं चल सकती है। ब्रिटेन में विना रुके तीन-तीन सौ मील तक ट्रेनें दौड़ती हैं, फिर भी दुर्घटनाएँ बहुत कम होती हैं।

(६) शिपयार्ड

ग्लासगो, न्यू कैसिल और बेलफ़ास्ट में जैसे जहाज़ी अड्डे हैं, वैसे संसार में अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं। ये तीनों ही स्थान ग्रेट ब्रिटेन में हैं। जर्मनी का जहाज़ी अड्डा अच्छा है, पर अन्य देशों के अड्डे तो इन अड्डों के सामने लड़कों के खिलौनों के समान हैं।

(७) करेरास-फ़ैक्टरी

यह कारख़ाना संसार में अद्वितीय है। इसका भवन मिसर-देश के एक देव-भवन के तुल्य बना है। इसमें मज़दूरों की सुविधा का प्रत्येक दृष्टि से प्रबंध है। साल में प्रति कार्यकर्ता को दो हज़ार का लाभ होता है।

(८) कैडबरी-फ़ैक्टरी

इस कारख़ाने के कर्मचारियों में बड़ा सद्भाव है। सारा काम सहृदयता और बुद्धि के बल पर होता है। कारख़ाना २० वर्ष से चल रहा है, व्यापारवाद का विकसित रूप यहीं देखने को मिलता है। इसी कारख़ाने को यह सौभाग्य प्राप्त है कि इसने अपने कर्मचारियों से उन्नति के लिये ३५,००० परामर्श प्राप्त किए हैं।

(९) पिकैडिली का भूगर्भस्थ-स्टेशन

ऐसी चीज़ संसार में और कहीं भी नहीं है। इस स्टेशन का उद्घाटन १० दिसंबर, सन् १९२८ को हुआ है। इसमें भूगर्भस्थ दो मार्ग हैं। जो अधिक गहरा है, वह पृथ्वी के समतल से १४० फ़ीट नीचे है। इसमें ग्रेट ब्रिटेन का ऊँचे से ऊँचा स्तूप समा सकता है। इन भू-गर्भस्थ मार्गों से १५०० ट्रेनें नित्य दौड़ती हैं। इस स्टेशन से प्रतिवर्ष पाँच करोड़ यात्री यात्रा करते हैं।

इन्हीं नौ महाअद्भुत ठोस अभ्युदय निर्माणकारी चमत्कारों का उल्लेख करके कैसन साहब कहते हैं कि अपनी-अपनी दृष्टि से ये नवो कार्य उस हद तक पहुँच गए हैं, जहाँ तक मनुष्य की शक्ति है। आपका कहना है कि ऐसे अद्भुत कार्यों के करनेवाले ग्रेट ब्रिटेन का व्यापार में कोई सामना नहीं कर सकता है। हाँ, ग्रेट ब्रिटेन में आत्मविज्ञापन की कमी आप स्वीकार करते हैं। हम भारतवासी तो इन बातों को पढ़कर केवल आश्चर्य में पड़ जाना जानते हैं। करना-धरना तो कुछ आता-जाता नहीं।

× × ×

१२. महाकवि भूषण का समय

असोथर के भगवंतराय का स्वर्गवास संवत् १७९७ में हुआ। उस अवसर पर बहुत-से कवियों ने शोक-सूचक छंदों की रचना की। एक महाशय को एक स्थान पर ऐसा ही शोक-सूचक एक छंद मिला, जिसमें 'भूषण' कवि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम आया है। अन्य कई सज्जनों को यह छंद जिस रूप में मिला है, उसमें 'भूषण' के स्थान पर अन्य कवि का नाम है। ऐसी दशा में इस छंद का पाठ विवाद-ग्रस्त है। पर थोड़ी देर के लिये, बहस के ख़याल से, यदि यह मान लिया जाय कि उपर्युक्त छंद महाकवि भूषण का ही बनाया है, तो इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि संवत् १७६७ में भूषणजी जीवित थे। यदि इस छंद की रचना के दो-तीन बरस बाद भूषणजी का स्वर्गवास हुआ हो, तो उनका मृत्युकाल संवत् १८०० के लगभग मानना पड़ेगा।

वसंतराय सुरकी ने तरौहाँ-दुर्ग का निर्माण संवत् १६८२ में किया। यदि उस समय उनकी अवस्था केवल २५ वर्ष की हो, तो उनका जन्म संवत् १६५७ में हुआ होगा। वसंतराय के चचा हृदयराम यदि अवस्था में उनसे केवल १० वर्ष बड़े रहे हों, तो उनका जन्म संवत् १६४७ में हुआ होगा। यह नहीं मालूम है कि हृदयरामजी अधिक अवस्था तक जिए अथवा कम अवस्था में ही मर गए, सो उनकी अवस्था ७५ वर्ष की मानने में आपत्ति न होनी चाहिए। इस प्रकार हृदयरामजी की मृत्यु संवत् १७२२ के लगभग हुई होगी। कहते हैं, भूषणजी को कवि की पदवी हृदयरामजी ने ही दी थी। भूषणजी का एक छंद दाराशाह की प्रशंसा में है। इससे हमारा अनुमान है कि हृदयरामजी के यहाँ से उक्त कवि को कवि भूषण की पदवी संवत् १७१० के लगभग मिली होगी। यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि राजदरबारों में जाने के लिये जिस समय भूषणजी ने अपना घर छोड़ा, उस समय उनकी अवस्था अधिक थी। यदि कवि-पदवी प्राप्त करने के समय उनकी अवस्था ३५ वर्ष की रही हो, तो उनका जन्मकाल संवत् १६७५ के आसपास पड़ता है। हमने ऊपर जो संवत् दिए हैं, उनमें तरौहाँ-दुर्ग-निर्माण का सवत् छोड़कर और सब अनुमान के आधार पर दिए गए हैं। इनमें १०-५ वर्ष का अंतर भी पड़ सकता है। पर अधिक फ़र्क़ की गुंजाइश नहीं जान पड़ती है। संभवतः भूषणजी का जन्म संवत् १६७५ में हुआ होगा।

अच्छा, तो यदि भगवंतराय खीची की मृत्यु पर शोक-कविता कर चुकने के बाद संवत् १८०० में भूषणजी की मृत्यु हुई हो, तो ऊपर दिए जन्म-संवत् के अनुसार उनकी अवस्था (१६७५—१८००) १२५ वर्ष की पड़ती है। कुछ लोग भूषणजी की इतनी लंबी आयु मानने को तैयार नहीं हैं। ऐसी दशा में इस समस्या को सुलझाने के लिये दूसरे प्रकार के अनुमान भी किए जा सकते हैं, जैसे—

(१) भूषण नाम का एक ही कवि न था, कई थे।

(२) भूषण के आश्रयदाता हृदयराम सुरकी न थे, अन्य कोई राजा था; जिसका ठीक पता अब तक नहीं लगा है।

(३) भगवंतराय खीची के मृत्यु-संबंध में जो छंद उपलब्ध है, वह भूषण का बनाया नहीं है, वरन् अन्य कवि की रचना है।

(४) अन्य कोई ऐसा अज्ञात कारण है, जिससे समय-समन्वय नहीं हो पाता है।

इन अनुमानों के विरुद्ध अथवा पक्ष में यदि कोई सज्जन अपने विचार प्रकट करेंगे, तो हम उन पर भली भाँति ध्यान देंगे। यहाँ पर तो हमने अन्य संभव अनुमानों का उल्लेख-मात्र किया है।

इस समय हमारे सामने जो तथ्य उपस्थित हैं, उनके ऊपर ध्यान देने से हमारी यही धारणा दृढ़ होती है कि भूषणजी संवत् १७८० के लगभग स्वर्गवासी हुए होंगे, और उनकी आयु लगभग ९५ वर्ष की रही होगी। भगवंतराय खीची के स्वर्गवास से संबंध रखनेवाला छंद हमारी राय में अन्य किसी कवि की रचना है। उस छंद का शब्द-संगठन और वाक्य-सौष्ठव भूषण की अन्य रचनाओं से मेल नहीं खाता है। भूषणजी का मृत्यु-संवत् जितना ही आगे ढकेला जायगा, उतना ही हृदयराम और भूषण का आश्रयदाता और आश्रित का संबंध कमज़ोर पड़ जायगा। कुछ भी हो, संवत् १७२० और १७३० के बीच में भूषणजी को कवि-पदवी नहीं मिली थी, और भूषण नाम से वे कविता नहीं करते थे, इसका कोई प्रमाण हमारे सामने नहीं है। इसके विपरीत 'शिवराज-भूषण'-ग्रंथ में प्राप्त संवत् तथा अन्य कई छंद इस बात के साक्षी हैं कि उस समय भूषणजी के ओजस्वी छंद उत्तरीय और दक्षिण भारत में भली भाँति प्रतिध्वनित थे। हमें इस बात में कुछ भी संदेह नहीं है कि भूषणजी महाराज शिवाजी के आश्रित कवि थे, और उनके दरबार के गौरव थे।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३. सम्राट् का स्वास्थ्य

बड़े हर्ष की बात है कि भारत के सम्राट् पंचम जार्ज का स्वास्थ्य अब बहुत-कुछ सुधर गया है। उनका बल बढ़ गया है, और वज़न में भी काफ़ी वृद्धि हुई है। भोजन में रुचि बढ़ी है, और परिमाण में भी वे अधिक खाते हैं तथा खाना हज़म भी हो जाता है। सम्राट् अब सिगरेट भी पीने लगे हैं। कुछ देर तक अब वे टहल भी लेते हैं। डाक्टरों का ख़याल है कि अब वे बहुत जल्द बिलकुल चंगे हो जायँगे। यह बड़ा ही शुभ संवाद है।

क्या ही अच्छा हो कि पूर्ण स्वस्थ हो जाने के बाद सम्राट् भारत में पदार्पण करें, और इस अभागे देश को औपनिवेशिक स्वराज्य देकर राजनीतिक वातावरण में फैली हुई कटुता को सदा के लिये दूर कर दें, एवं संतुष्ट भारत को ब्रिटिश-साम्राज्य का स्थायी अंग बना लें। सम्राट् का भारत-प्रेम प्रसिद्ध है, इसलिये उनसे ऐसी आशा करना अनुचित नहीं जान पड़ता है। ईश्वर भारत-वासियों की इस सदभिलाषा को पूर्ण करे। तथास्तु।

फ़ोटू पैलेस के आर्टिस्ट्स

फ़ोटू की तसवीरों पर रंग करना। ब्रोमाइड इनलार्जमेंट, सादा अथवा रंगीन। केनवास व आईवेरी पेन्टिंग। ज़ेवरों के लिये तसवीरें, बटन, ब्लाकेट, पिन, ब्रुच, सरपेन्च, हार, काँठले, अँगूठी वग़ैरह।

संगमरमर व पीतल की मूर्तिएँ। मारबल व संगमरमर के स्टेचू।

हाथी-दाँत, आबनूस, चंदन और पीतल के खिलौने, पीतल के बेल-बूटेदार चाँदी सोने के गीलटदार चौखटे, जयपुर की रँगाई के ज़नाने-मरदाने लहरिए साफ़े, चुनरी पेचे पगड़ी वग़ैरह।

रंगरेजी (छपाई) के ज़नाने-मरदाने चादर, धोती, डुपट्टे, साफ़े, रूमाल, छींटें वग़ैरह।

उपरोक्त सभी काम ख़ास हमारी देख-रेख में निहायत सुंदरता से और किफ़ायती दामों में होता है। अस्तु, आपसे आग्रह है कि हमारे कार्य की आप भी एक बार परीक्षा कर।

पता—**गोविंदराम ऐंड संस, फ़ोटू पैलेस,**

जयपुर, (राजपूताना)

जादूगरों का बाबा

इस सुंदर और सचित्र पुस्तक की गुप्त विधियां को सीखकर जो चाहेंगे हो जायेगा। दुर्भाग्य और शत्रु का नाश होगा, मुक़द्दमा में जीत, संतान रोज़गार और धन की प्राप्ति होगी, अर्थात् जिसके साथ प्रेम है वह व्याकुल होकर स्वयं तुम्हारे पास चला आवेगा। कोई सिद्धि, कोई जप, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। केवल -) का टिकट भेजकर पुस्तक मुफ़्त मँगवाओ। अपना पता साफ़ लिखो।

मिलने का पता—**गुप्त विद्याप्रचारक आश्रम,**

२६ **P. B. 150 लाहौर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बूँदी-नरेश

इनका विस्तृत विवरण संपादकीय नोट नं० १ में दिया है, पाठकगण उसे वहाँ पढ़ लें। जयपुर की चित्र-कला का यह चित्र अच्छा नमूना है।

२. मृग-स्नेह

शकुंतला ऋषि के आश्रम में मृग को कैसे आनंद के साथ दुलरा रही है, यही भाव इस चित्र में दर्शित किया गया है। लखनऊ के होनहार नवयुवक चित्रकार भटनागर ने बड़े कौशल से इसे बनाया है।

३. गौरी-पूजन

पूजा की सामग्री दोनों हाथों में लिए सुंदरी गौरी-पूजन के लिये मंदिर की ओर जा रही है। उसके सुंदर मुख-मंडल पर श्रद्धा और भक्ति का भाव अच्छे ढंग से अंकित हुआ है।

४. कर्तव्य-विमुखता

विदेशी-सिंह भारत-माता का वस्त्र खींच रहा है, लाज बचती नहीं दिखलाई पड़ती है। भारत-माता के पुत्र आलस्य में पड़े ऊँघ रहे हैं। उन्हें अपनी माता की करुण-दशा का ज्ञान ही नहीं। भारत-माता की आँखों से बेबसी बरस रही है। कैसा हृदयद्रावी दृश्य है! माधुरी के यशस्वी और चतुर चित्रकार श्रीयुत नारायण प्रसादजी ने इस चित्र के चित्रण में अपनी कला-चातुरी का अच्छा परिचय दिया है। विदेशी वस्त्र-व्यवसाय, भारत की विवशता एवं भारत-संतान का घोर आलस्य ये सभी बातें इस चित्र को देखने के बाद आँखों के सामने नाचने लगती हैं।

फिर न कहना, हमें ख़बर न हुई !

कल्पलता—पुरुष को चाहे जैसा प्रमेह (वीर्य विकार) हो, स्त्री को चाहे जैसा प्रदर हो, एक हफ़्ते में जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। नई ज़िंदगी और नया जोश रग-रग में पैदा कर देती है। हज़ारों स्त्री-पुरुष चंगे होकर ज़िंदगी का मज़ा लूट रहे हैं। हमारा विश्वास और दावा है कि कल्पलता आपके हरएक मर्ज़ पर जादू का-सा असर करेगी। हज़ारों बीमारियों की एक दवा का मूल्य न्योछावर-मात्र ३) शीशी। डाकख़र्च अलग।

संजीवनसुधा—इसे घरेलू डाक्टर ही समझिए। हर गृहस्थ को एक शीशी मँगाकर रख लेना चाहिए। बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष हरएक को हर मर्ज़ में एक-सी लाभदायक है। प्लेग, हैज़ा और पेट के हरएक रोग की तो यह एक अजीब अक्सीर दवा है। इसकी बूँदें रामबाण का-सा काम करती हैं। बिना ज़रूरत भी एक शीशी मँगाकर रख लीजिए। मूल्य छोटी शीशी ॥।) बड़ी शीशी १।) डाकख़र्च अलग।

नोट—हमारे यहाँ असाध्य रोगों का इलाज ठेके पर भी किया जाता है। मिलिए व पत्र-व्यवहार कीजिए।

आयुर्वेदविज्ञानाचार्य राजवैद्य पं० गयाप्रसाद शास्त्री
साहित्याचार्य, आयुर्वेद वाचस्पति
अध्यक्ष, श्रीअवध-आयुर्वेदिक फार्मेसी
गनेशगंज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक

पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूँदी-नरेश

राव-राजा उम्मेदसिंह

(१७८६–१८६०)

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्थान के लिये महाभाष्यप्रोक्त "काकलि"-शब्द का प्रयोग उपयुक्त हो सकता है। यहाँ यह बताना भी अनावश्यक न होगा कि जितना अंतर क तथा च के स्थानों में अथवा च और ट के स्थानों में है, प्रायः उतना ही अंतर क़ तथा क के स्थानों में है। इसलिये हम कोई कारण नहीं समझते कि क़ और क को अभिन्न वर्ण माना जाय।

लिपिसादृश्य से भ्रम हो सकता है कि क़, क तथा ख और ग के समान ख़ और ग़ भी स्पर्श वर्ण हैं। परंतु ऐसा नहीं। ख़ और ग़ क़वर्गीय नहीं, किंतु ऊष्म वर्ण होने श, ष, स के साथी हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा स्थान को र्श नहीं करती, अतः प्राणवायु विना सर्वथा रुके हुए ल-मात्र जिह्वा तथा स्थान से घर्षण करता हुआ र्ष्मोत्पादन करता है।

और फ़ भी पूर्ववत् ऊष्म वर्ण हैं। अतः किसी र से स्पर्श वर्ण ज तथा फ में इनका समावेश नहीं जा सकता।

वाभाविकतया प्रश्न होता है कि इन नए वर्णों को नहीं। सर्वप्रथम तो "एक ध्वनि के लिये एक ही वर्ण तथा एक वर्ण की एक ही ध्वनि" यह नियम ब्राह्मी के सिवा किसी लिपि ने नहीं निभाया। एतदतिरिक्त वर्णों का क्रम सर्वथा बुद्धि-रहित है। परंतु ब्राह्मी में वर्ण-विन्यास-क्रम अपने वैज्ञानिक स्वरूप, माधुर्य तथा सरलता में अद्वितीय तथा दोष-रहित है। ग्रीक *, हीब्रू, अरबी आदि लिपियाँ, जिनमें स्वर तथा व्यंजन तक के पृथक् वर्ग नहीं बनाए गए, ब्राह्मी के सम्मुख तुच्छ हैं। ब्राह्मी ने स्वरों तथा व्यंजनों में भी एक-एक वर्ण का स्थान, करण और प्रयत्न के अनुसार बुद्धिपूर्वक प्रतिष्ठान किया है। फिर इस वैज्ञानिक क्षेत्र में, यदि हमारे संपादक महोदयों ने अज्ञान से क्यारियों को पद-दलित किया है, तो हम उनको भविष्य के लिये सचेत करना चाहते हैं। जिस शिक्षाशास्त्र (Phonetics) के अपूर्व विज्ञान को हमारे ऋषियों ने अत्यंत परिश्रम से उपार्जित करके हमको दायभाग में दिया है, उसकी हम इतनी अवहेलना करें। अन्य जातिएँ अपनी वर्णमालाओं को अभी सुधारने का शुभ विचार कर रही हैं, और हम अपनी सुधरी वर्ण-माला को ही दूषित करना आरंभ करें, यह असह्य है।

वर्ष ७ खंड २ | फाल्गुन, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८५ वि०) | संख्या २ पूर्ण संख्या ८०

जन-नायक

(१)

सागर-सा गंभीर हृदय हो,
गिरि-सा ऊँचा हो जिसका मन;
ध्रुव-सा जिसका लक्ष्य अटल हो,
दिनकर-सा हो नियमित जीवन।
सदा लोक-संग्रह में जिसकी,
हो प्रवृत्ति, हो वृत्ति अचंचल;
सदा ध्येय के सम्मुख जिसका,
प्रगतिशील हो एक-एक पल।

(२)

जिसकी आँखों में स्वदेश का,
अति उज्ज्वल भविष्य हो चित्रित;
इच्छा में कल्याण बसा हो,
चिंता में गौरव हो रक्षित।
वह समाज, वह देश, राष्ट्र वह,
जिसका हो ऐसा जन-नायक;
होगा क्यों न सकल सुख-संकुल,
विश्व-वंद्य आनंद-विधायक। *

रामनरेश त्रिपाठी

* अमक शित 'स्वप्न' से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

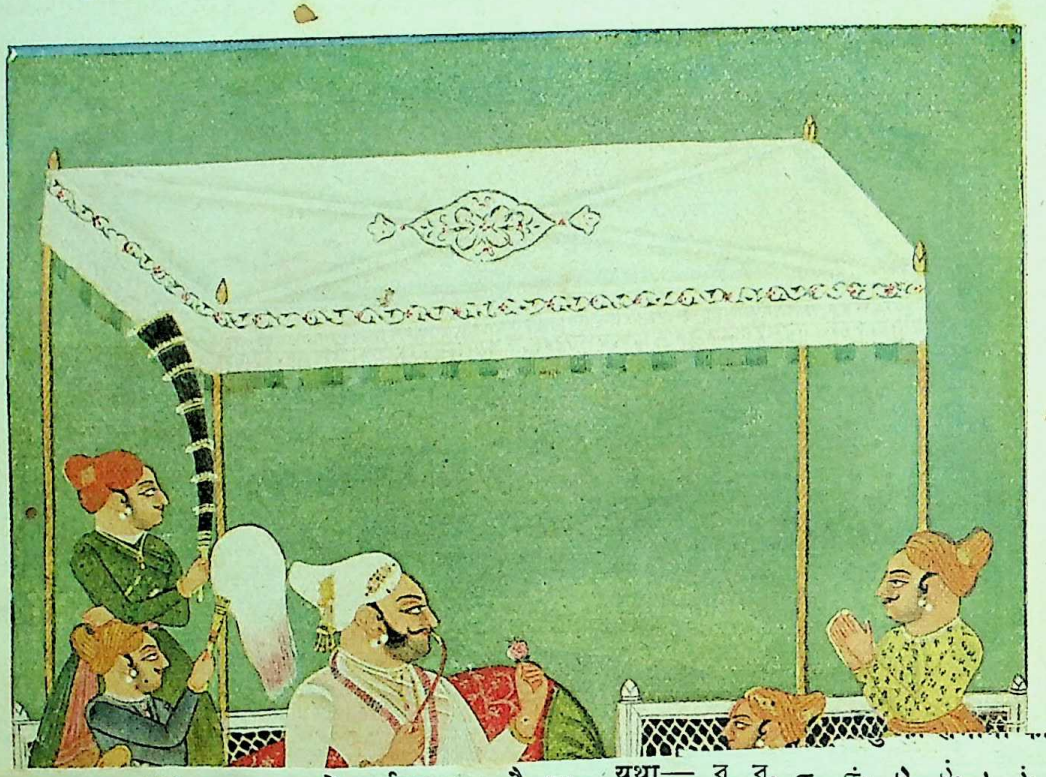

तथा साधारण हिंदी-जनता या तो सर्वथा शून्य है, या सर्वथा भ्रम में है।

अपनी सज्जनता का विश्वास दिलाने के लिये प्रायः समालोचक महाशय ग्रंथकार की प्रशंसा से समालोचना आरंभ करते हैं। हम भी इस प्रथा को निभाने के लिये यह कहे विना नहीं रह सकते कि हिंदी-पाठकों का कर्तव्य है कि इस कोष को हाथोंहाथ ख़रीद लेवें। यही एक प्रमाण होगा कि जनता ने संपादकों का कितना सम्मान किया है। तथा समालोचक भी अपनी कामनाओं को शीघ्र ही पूरा होते देखने की आशा कर सकेंगे।

अथ प्रस्तुतम्—कोष-संपादन करनेवाले व्यक्तियों का प्रथम कर्तव्य है कि वर्णमालांतर्गत वर्णों के क्रम का निश्चय करके तदनुसार शब्दों के पूर्वापर का विन्यास करें। अन्य भारतीय भाषाओं के समान हिंदी-भाषा ने भी संस्कृत (देवनागरी)-वर्णमाला को अपनाया है। इसीलिये यह स्वाभाविक है कि वर्णों का क्रम भी संस्कृत के अनुसार हो। किंतु संस्कृत-वर्णमाला को अपनाने से हिंदी की समस्त ध्वनियों का, काम न चलते देखकर, कुछ संस्कृत-

यथा— ب ر, ح خ, د ذ, ر ز, ص ض,

क़ और क भिन्न वर्ण हैं, इस बात को उर्दू, फ़ा आदि भाषाओं से अपरिचित तथा शिक्षाशास्त्र के से भी अनभिज्ञ पुरुष स्वीकार करेंगे। इन दोनों वर्ण उत्पत्ति-स्थान भिन्न-भिन्न हैं। यदि क के स्थान "कंठाग्र" † कहा जाय, तो क़ के स्थान को "कंठमू कहना अनुचित न होगा। अथवा यदि प्राचीन शिक्षा का अनुकरण करके क के स्थान को "कंठ" कहा जाय,

---

* यहाँ हमने चंद्रार्ध-सहित बिंदु उच्चारण स्पष्टता के लिखा है। साधारणतया पुस्तकों तथा पत्रों में केवल बि लिखा जाता है। उदाहरण—

मैं हूं। चिड़ियां खेतों में दाने चुग रही थीं।

† संस्कृत-शिक्षा-ग्रंथों में "कंठाग्र"-शब्द का प्रयोग कहीं नहीं देखा। तथा "कंठमूल"-शब्द का प्रयोग भी अर्थों में कहीं नहीं। वास्तव में "कंठ"-शब्द बहुत अर्थ में लिया गया है। यहाँ तक कि ऋग्वेदप्रातिशाख्य से करके पाणिनीय शिक्षा तक में नादतंतुओं के मध्यवर्ती का नाम सर्वत्र "कंठ" है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ के स्थान के लिये महाभाष्यप्रोक्त "काकलि"-शब्द का प्रयोग उपयुक्त हो सकता है। यहाँ यह बताना भी अनावश्यक न होगा कि जितना अंतर क तथा च के स्थानों में अथवा च और ट के स्थानों में है, प्रायः उतना ही अंतर क़ तथा क के स्थानों में है। इसलिये हम कोई कारण नहीं समझते कि क़ और क को अभिन्न वर्ण माना जाय।

लिपिसादृश्य से भ्रम हो सकता है कि क़, क तथा ख और ग के समान ख़ और ग़ भी स्पर्श वर्ण हैं। परंतु ऐसा नहीं। ख़ और ग़ क़वर्गीय नहीं, किंतु ऊष्म वर्ण होने से श, ष, स के साथी हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा स्थान को स्पर्श नहीं करती, अतः प्राणवायु विना सर्वथा रुके हुए केवल-मात्र जिह्वा तथा स्थान से घर्षण करता हुआ वर्णोत्पादन करता है।

ज़ और फ़ भी पूर्ववत् ऊष्म वर्ण हैं। अतः किसी प्रकार से स्पर्श वर्ण ज तथा फ में इनका समावेश नहीं किया जा सकता।

स्वाभाविकतया प्रश्न होता है कि इन नए वर्णों को देवनागरी-वर्णमाला में कौन-सा स्थान दिया जाय। इसका निश्चय करने से पूर्व पाठकों का ध्यान हम देवनागरी-वर्णमाला के वैज्ञानिक स्वरूप की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। प्रथम तो संसार में ऐसी जातियाँ ही बहुत कम हैं कि जिन्होंने अपनी भाषा-ध्वनियोंका विश्लेषण इतना पूर्णतया किया हो कि वे वाक्यों को शब्दों में, शब्दों को अक्षरों में, तथा अक्षरों को स्वरों तथा व्यंजनों में विभाजित कर सकें। मिसर, चीन, अमेरिका आदि की भाव और चित्र-लिपियों का नामोल्लेख हमारे कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त होगा। आधुनिक योरप की सभ्य जातियों में से किसी भी जाति ने स्वयं अपनी वर्णमालाओं का आविष्कार नहीं किया। सबने उधार ले-लेकर अपनी पूँजी बनाई है। संक्षेपार्थ यह है कि स्थूल दृष्टिपात करने पर भी अधिक-से-अधिक चार जातियाँ हैं, जिन्होंने स्वयं वर्णमालाएँ बनाईं। इन वर्णमालाओं में से ब्राह्मी * को छोड़कर कोई वर्णमाला, किसी भी अंश में, वैज्ञानिक नहीं। सर्वप्रथम तो "एक ध्वनि के लिये एक ही वर्ण तथा एक वर्ण की एक ही ध्वनि" यह नियम ब्राह्मी के सिवा किसी लिपि ने नहीं निभाया। एतदतिरिक्त वर्णों का क्रम सर्वथा बुद्धि-रहित है। परंतु ब्राह्मी में वर्ण-विन्यास-क्रम अपने वैज्ञानिक स्वरूप, माधुर्य तथा सरलता में अद्वितीय तथा दोष-रहित है। ग्रीक *, हीब्रू, अरबी आदि लिपियाँ, जिनमें स्वर तथा व्यंजन तक के पृथक् वर्ग नहीं बनाए गए, ब्राह्मी के सम्मुख तुच्छ हैं। ब्राह्मी ने स्वरों तथा व्यंजनों में भी एक-एक वर्ण का स्थान, करण और प्रयत्न के अनुसार बुद्धिपूर्वक प्रतिष्ठान किया है। फिर इस वैज्ञानिक क्षेत्र में, यदि हमारे संपादक महोदयों ने अज्ञान से क्यारियों को पद-दलित किया है, तो हम उनको भविष्य के लिये सचेत करना चाहते हैं। जिस शिक्षाशास्त्र (Phonetics) के अपूर्व विज्ञान को हमारे ऋषियों ने अत्यंत परिश्रम से उपार्जित करके हमको दायभाग में दिया है, उसकी हम इतनी अवहेलना करें। अन्य जातिएँ अपनी वर्णमालाओं को अभी सुधारने का शुभ विचार कर रही हैं, और हम अपनी सुधरी वर्णमाला को ही दूषित करना आरंभ करें, यह असह्य है।

ब्राह्मी-लिपि में पहले स्पृष्ट, फिर ईषत्स्पृष्ट और अंत में विवृत-व्यंजनों को रखा है। स्पृष्ट वर्ण वे हैं, जिनके उच्चारण में जिह्वा विशिष्ट स्थान को स्पर्श करती है, अतएव प्राणवायु के मार्ग को एक बार बिलकुल रोककर तदनंतर मार्ग सर्वथा खुला छोड़ देती है। केवल पवर्ग में जिह्वा का प्रयोग नहीं होता। दोनों ओष्ठ ही वायु-मार्ग को बंद करते तथा खुला छोड़ते हैं। ईषत्स्पृष्ट में वायु-मार्ग सम्यक् प्रकार से बंद नहीं होता। और विवृत में तो स्वरों के समान वायु-मार्ग बिलकुल खुला रहता है। स्वरों की अपेक्षा विशेषता यह है कि वायु-स्थान तथा करण के साथ बलपूर्वक घर्षण करता हुआ बाहर निकलता है।

स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट और विवृत में भी स्थान की पूर्वता से वर्णों की पूर्वता का निश्चय किया गया है। यथा पवर्ग से पूर्व तवर्ग, तवर्ग से पूर्व टवर्ग, टवर्ग से पूर्व चवर्ग, चवर्ग से पूर्व कवर्ग। अतः सिद्ध हुआ कि क़ कवर्ग से (अर्थात् क से) पूर्व रखा जाना चाहिए।

विवृत-व्यंजनों में प्रथम अघोष (अर्थात् जिनके उच्चा-

* आधुनिक भारतीय लिपियाँ देवनागरी, तिब्बती, बँगला, उड़िया, तामिल, तेलगू, कनाड़ी, गुजराती, गुरुमुखी इत्यादि ब्राह्मी की ही रूपांतर हैं।

* योरपीय समस्त लिपियाँ ग्रीक के आधार पर बनी हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण में वायु गले के नादतंतुओं—vocal chords—से घर्षण नहीं करता) वर्णों को स्थान दिया गया है—तालव्य श, मूर्धन्य ष, दन्त्य स। संस्कृत-भाषा में ये तीन ही अघोष ऊष्म हैं। स्थानानुक्रम से काकलि स्थानोद्भूत ख़ तालव्य श से पूर्व, तथा दन्त्योष्ठ्य फ़ दन्त्य स के पश्चात्* रखा जाना चाहिए। अघोषों के पश्चात् पूर्व क्रम से सघोष वर्ण आएँगे—काकलिस्थानीय ग़, दन्त्य † ज़। यदि ख़ और स के समान श, ष और फ़ के भी सघोष वर्ण हिंदी में प्रयुक्त होते, तो स्पृष्ट वर्गोंवाला क्रम अधिक युक्तियुक्त होता। अर्थात् जैसे पहले समस्त कण्ठ्य (अघोष, तदनंतर सघोष—क ख, ग घ ङ), फिर समस्त तालव्य (अघोष, तदनंतर सघोष—च छ, ज झ ञ), फिर समस्त मूर्धन्य (अघोष, तदनंतर सघोष—ट ठ, ड ढ ण), फिर समस्त दन्त्य (अघोष, तदनंतर सघोष—त थ, द ध न), फिर समस्त ओष्ठ्य (अघोष, तदनंतर सघोष—प फ, ब भ म), इसी प्रकार—

ख़ ग़, श श ‡, ष ष ×, स ज़, फ़ फ़ +।

इस विषय का अधिक विस्तार करना हम आवश्यक नहीं समझते, और इसलिये एक बार कुछ और उदाहरण दे देते हैं, ताकि पाठकों को निश्चय हो जाय कि हमारे पूज्य संपादकों ने शिक्षाशास्त्र में हाथ डालने की अनधिकार चेष्टा की है—

"ऊ—इस वर्ण के उच्चारण में जीभ की नोक नहीं लगती।"

हमें आश्चर्य है कि इस वाक्य के लिखने का यहाँ क्या प्रयोजन है, क्योंकि किसी भी स्वर में जीभ की नोक अथवा कोई और भाग किसी स्थान का स्पर्श नहीं करता। ऊ के ओष्ठ्य होने से संभवतः संपादकों को पवर्ग का ध्यान आ गया होगा, जिसके उच्चारण में, उनके विचार से, जीभ की नोक ओष्ठों से स्पर्श करती है।

"च—इसके उच्चारण में श्वास, विवार, घोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं।"

जिस वर्ण में श्वास प्रकृति हो, तथा नादतंतुओं में विवार हो, उस वर्ण में **घोष** प्रयत्न लिखना सर्वथा अनभिज्ञता है। नाद तथा संवार के संयोग से ही किसी वर्ण का (बाह्य-) प्रयत्न घोष कहा जा सकता है।

"त—इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है।"

पूर्ववत् यह वर्णन इस स्थान पर अनावश्यक ही नहीं, किंतु भ्रमोत्पादक है। क्या इसका भावार्थ यह नहीं है कि जिन वर्णों के विषय में यह सूचना नहीं दी गई, वे वर्ण आधी मात्रा से कम अथवा अधिक समय लेते हैं। अब पाठक सारे कोष को देख जावें, कितने वर्णों के विषय में यह अथवा एतदनुसार कम अथवा अधिक समय लगने की घोषणा करनेवाली पंक्तियाँ लिखी गई हैं। वास्तव में इस पंक्ति की आवश्यकता "व्यंजन" शब्द में थी, "त" में नहीं।

"ध—इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है।"

यह असंबद्ध प्रलाप तथा शब्दों के साथ बाल-क्रीड़ा है।

"फ—इसके उच्चारण करने में जीभ का अगला भाग होठों से लगता है। इसलिये इसे स्पर्श वर्ण कहते हैं।"

"म—जिह्वा के अगले भाग का दोनों होठों से स्पर्श होने पर इसका उच्चारण होता है।"

"स्पर्श"-शब्द के समझने में कितना भ्रम है। केवल फ और म को ही नहीं, किंतु प, ब, भ को भी प्राचीन शिक्षाकारों ने स्पर्श वर्ण कहा है, इसलिये संपादकों की सम्मति में, इनके उच्चारण करने में भी जीभ का अगला भाग होठों से लगता है; क्योंकि यदि ऐसा न हो, तो स्पर्श वर्ण न कहला सकेंगे, किंतु विवृत (?) कहलाएँगे। यदि धृष्टता न समझें, तो हम संपादकों (अथवा संपादक

---

* जैसे दन्त्योष्ठ्य व दन्त्य ल के पश्चात्।

† बहुत संभव है कि संपादक महोदय ज़ को भ्रम से ज के समान तालव्य समझते हों।

‡ यह ध्वनि पाठकों को अँगरेज़ी Pleasure, फ़्रेंच Je, फ़ारसी ژ में मिलेगी। फ़्रेंच में तो J वर्ण का उच्चारण सर्वत्र ही फ़ारसी ژ वर्ण के समान होता है।

× जहाँ तक हमने अनुसंधान किया है, किसी भी सभ्य भाषा में ष विद्यमान नहीं है।

+ यह ध्वनि डच-भाषा में बहुत अधिक प्रयुक्त होती है। अँगरेज़ी Very शब्द में v का उच्चारण हिंदी के अल्पप्राण व के समान नहीं। किंतु महाप्राण व के समान है। इस व-संबंध को प्रकट करने के लिये फ़ के स्थान में व चिह्न भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस किसी एक या दो की यह पंक्तियाँ हों) से प्रार्थना करते हैं कि अपनी पंक्तियों को कार्यरूप में तो जाकर देखें। यह तो संभव था कि दक्षिणी अमेरिका के दक्षिण-तम द्वीपों के जंगली मनुष्य, जिनके अधरोष्ठ एक-एक फ़ुट तक लंबे होते हैं, और इसलिये जो दोनों ओठों को मिलाकर उत्पन्न होनेवाले पवर्ग को नहीं बोल सकते, वे अधरोष्ठ का कार्य जिह्वा से लेते, और पवर्ग बोलने का अभ्यास करते। इनके अतिरिक्त यद्यपि संसार की सभी जातियाँ असभ्य अथवा सभ्य, पवर्ग के दो या तीन अक्षरों का प्रयोग करती हैं, तथापि किसी ने भी अद्यावधि जिह्वा की नोक का प्रयोग किया हो, सो अनुसंधान करना शेष है। ऐसी जाति का पता लगाना, शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में, बड़ा भारी आविष्कार होगा।

कहाँ तक गिनाएँ, जितनी अशुद्धियाँ करना संभव था और जितनी प्रकार की अशुद्धियाँ की जा सकती थीं, उतनी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। कई स्थानों पर तो प्रतीत होता है कि बचपन में लघुकौमुदी रटी होगी, उसके जो संस्कार अब तक शेष रहे, उनको कोष में भरने का यत्न किया है। इसका उज्ज्वल उदाहरण ऋ का वर्णन है। संस्कृत-व्याकरणोक्त पूरे १८ भेद इस कोष में गिनाए गए हैं। यह न सोचा कि हिंदी-भाषा में तो १८ में से एक भी भेद का उच्चारण नहीं होता। साहित्य में भी केवल संस्कृत तत्सम-शब्दों में अननुनासिक ह्रस्व ऋ का प्रयोग होता है।

अब एक और अपूर्व विशेषता देखिए। कोष का आरंभ **अ** अक्षर से करके तत्पश्चात् अंक, अंकक, अंककार, अंकगणित, अँकटा...अंगीकृति, अँगीठा...अँहुड़ी, **अ**। इसी प्रकार प्रथम **आ** अक्षर तत्पश्चात् आँ शब्द, तत्पश्चात् आँ और आं से आरंभ होनेवाले समस्त शब्द, तदनंतर पुनरीय **आ**। अंतिम **अ आ** तथा प्रथम **अ, आ** में भेद यह रखा गया है कि पहले आनेवाला अक्षर-मात्र है, किंतु दूसरा भाषा में प्रयुक्त शब्द है। इसी प्रकार **ई, क** प्रभृति अक्षरों और शब्दों को एक दूसरे से दूर-दूर फेंका गया है। यह नितांत नई विधि है, जो हमारे संपादकों ने आरंभ की है। कितनी अद्भुत तथा स्वच्छंद शैली है कि फँसना, फँसिहारा शब्दों के पश्चात् फ शब्द दिया जाय। इस शैली का हम घोर प्रतिरोध करते हैं। एक और यह सर्वसम्मत कोष-निर्माण शास्त्र के भाषा-विज्ञान-मूलक नियमों के नितांत प्रतिकूल है। दूसरे, इसका प्रयोजन कोई नहीं। भाषा-विज्ञान के अनुसार हम यह समझ सकते हैं कि भिन्न प्रकृति होने से किसी भी समानरूपान्वित शब्द को दो भिन्न शब्द माना जाय; और इसलिये दोनों को नई पंक्ति से आरंभ किया जाय; परंतु इन दोनों के मध्य में अन्य शब्दों को आने का क्या अधिकार। हम इसको त्रुटि न कहेंगे; किंतु बुद्धि-भ्रम कहेंगे। इसके अतिरिक्त सानुनासिक स्वरों को अनुनासिक व्यंजन पर स्वरों के समान समझना बड़ी भारी भूल है। हमारे आशय का स्पष्टीकरण पीछे उदाहृत शब्द सम्यक् प्रकार से करते हैं। अर्थात् "**अंगीकृति**" और "**अँगीठा**" में अं और अँ को एक ही अक्षर मानकर दोनों शब्दों को साथ-साथ रखा गया है। वास्तव में देखा जाय, तो अँ केवल एक वर्ण है, किंतु अं दो वर्ण हैं। यही नहीं कि द्विवर्णयुक्त अं को एकवर्णयुक्त अँ अक्षर के समान माना गया, किंतु अ से पूर्व इसको कोष में स्थान दिया गया है। विज्ञ पाठक अं का अर्थ अच्छी प्रकार समझते होंगे—अं=अं, अङ्, अञ् अण्, अन्, अम् (जैसे—अंश, अंग, अंचल, अंडा, अंत, अंबालिका=अंश, अङ्ग, अञ्चल, अण्डा, अन्त, अम्बालिका)। वैज्ञानिक रीति से अँ से आरंभ होनेवाले शब्द अकारादि शब्दों की समाप्ति पर आरंभ होंगे *। ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् के स्थान में संस्कृत कोषकार भी अनुस्वार का प्रयोग करते हैं; किंतु इस अनुस्वार को यथास्थान ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् मानकर ही शब्दों का पूर्वापर विन्यास करते हैं। अनुस्वार केवल मुद्रण-सौकर्य तथा विशेष शब्दों के लिये देते हैं। "हिंदी-शब्दसागर"-जैसे उच्च कोटि के बृहत्कोष में भी इसी शैली का, अधिक विशेषताओं तथा सुधार के साथ, प्रयोग होना अनिवार्य था।

वर्ण-क्रम के विषय में जो कुछ हमने लिखा है, उसके विरुद्ध संभवतः कोई यह कहे कि संपादकों ने, जनता के सौकर्य के लिये, वैज्ञानिक क्रम का उल्लंघन किया है; क्योंकि कोष में शब्द खोजने से पूर्व कोई शिक्षाशास्त्र को पढ़ने नहीं बैठता। इसके प्रति हमारा एक-मात्र उत्तर है कि संपादकों ने, जो कुछ किया है, वह अधिकांश में निश्चय-

* जो कुछ अँ तथा अं के विषय में ऊपर लिखा है, वह सब स्वरों के संबंध में समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक श्रम से किया है। तथा कोष का मुख्य प्रयोजन पाठकों का सौकर्य ही नहीं, किंतु पाठकों को उचित पद्धति सिखाना भी है। और, यही यत्न हमारे संपादकों ने किया है कि सौकर्य का ध्यान न करके अँ तथा अं को पृथक्-पृथक् दूर फेंका है।

अब सामान्यतया कोष की ओर दृष्टि डालते हैं। "हिंदी-शब्दसागर" का कार्य साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का समूह तथा उनका अर्थ देना है। इसमें संदेह नहीं कि जितने शब्दों का संग्रह प्रस्तुत कोष में किया गया है, उतना संग्रह आज तक किसी ने नहीं किया। इसके लिये हिंदी-जगत् संपादकों के परिश्रम का वर्षों तक आभारी रहेगा। फिर भी बहुत-से आवश्यक शब्द छूट गए हैं। इसको संपादकगण अच्छी प्रकार से जानते हैं, और इसी-लिये उन्होंने प्रार्थना की है कि जिन सज्जनों को नए शब्द मिलें, वे हमारे पास भेज देवें, ताकि परिशिष्ट-रूप में उनको छाप दिया जाय। उनकी प्रार्थना के अनुसार हम भी अपना कर्तव्य समझते हैं कि कुछ आवश्यक ग्रंथों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करें। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आँख अपने-आपको नहीं देखती। इसी प्रकार नागरी-प्रचारिणी सभा, जिसने सैकड़ों ग्रंथों से शब्द-संग्रह किया, अपनी पुस्तकों को सर्वथा भुला बैठी है। श्रीयुत श्यामसुंदरदासजी, जो सभा तथा कोष के मुख्य संचा-लकों में से समझे जाने चाहिए, वे अपने ही संपादकत्व में कोष से वर्षों पूर्व प्रकाशित पुस्तक "The Hindi Scientific Glossary" को बिलकुल छोड़ गए हैं। उदाहरणार्थ—

Anticyclone प्रतिचक्रवात (पृ० १)
Antipode कुदलांतर (पृ० १)
Antipodes कुदलांतरवासी (पृ० १)
Aurora Australis कुमेरु-ज्योति (पृ० २)
Cotidal lines समवैलिक रेखा (पृ० ४)

हमारा अनुमान है कि केवल यह एक पुस्तक न्यूनातिन्यून ५०० नए शब्दों की कोष में वृद्धि करेगी। इसके अति-रिक्त वैज्ञानिक विषयों पर जितनी भी पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं, उनमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का समावेश प्रायः इस कोष में नहीं किया गया। अधिक प्रसिद्ध पुस्तकों में से श्रीयुत त्रिलोकीनाथजी की "हमारे शरीर की रचना—२ भाग" तथा मासिक पत्र "विज्ञान", कम प्रसिद्ध में से श्री० न० म० आगटे का "ज्ञान-सागर" का निर्देश-मात्र करना पर्याप्त है। इस प्रकार के ग्रंथों में से चार सहस्र के लगभग हिंदी के शब्द मिलेंगे। यदि इन शब्दों को कोष में सम्मिलित न किया गया, तो कोष में भारी अपूर्णता रह जायगी। शब्द-समूह जाति की सभ्यता का द्योतक है। आधुनिक विद्वानों के लिये तो एक कोष ही काफ़ी साक्षी है, जिस पर दृष्टि डालते ही वे कह सकते हैं कि अमुक भाषा का प्रयोग करनेवाली जाति कितनी और किस अंश में सभ्य है।

प्राचीन पुस्तकों में से यद्यपि अधिकांश शब्द ले लिए गए हैं, परंतु कुछ छूट भी अवश्य गए हैं। उदाहरण के लिये लालचंद्रिका से एक शब्द देते हैं—

"आंगन अथयौ भान"

(ग्रियर्सन द्वारा संपादित १८९६, पद्य १३६)

प्रतीत होता है कि गुरुग्रंथ की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि गुरुग्रंथ पंजाबी-भाषा की पुस्तक समझी जाती है, किंतु इसके बहुत-से भाग पुराने हिंदी में लिखे हुए हैं। यही कारण है कि सिख "ग्रंथी" सज्जन प्रत्येक पद्य का अर्थ नहीं समझते। ट्रम्प महोदय ने भी इसीलिये अपने अँगरेज़ी-अनुवाद में शतशः अशुद्धियाँ की हैं। गुरुग्रंथ के समझने के लिये प्रस्तुत कोष के संपादकों से अधिक सुसन्नद्ध तथा योग्य व्यक्ति मिलना कठिन हैं। हम चाहते हैं कि वे इस कार्य को अपने कंधों पर लेवें, और परिशिष्ट में, सब छूटे शब्दों का, सोदाहरण स्पष्टीकरण करें। इसी प्रकार योरपीय विद्वानों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का सम्यक् प्रकारेण निरीक्षण करना चाहिए। केवल हमारे यहाँ नाम गिनाने से लाभ न होगा।

अंत में शब्द-व्युत्पत्ति पर एक-दो पंक्ति लिखकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं। यदि जनता तथा संपादकों ने हमारी समालोचना से लाभ उठाने की प्रवृत्ति प्रकट की, तो कोष के एक-एक अंग को लेकर विस्तृत समालोचना की जाएगी।

वास्तव में शब्द-व्युत्पत्ति दिखलाना कोषकारों का मुख्य कार्य न था, इसीलिये उन्होंने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। एतदतिरिक्त हमें यह कहने में भी किंचिन्मात्र संकोच नहीं कि हमारे संपादकों ने इस विद्या में कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की। अतएव शिक्षाशास्त्र के समान शब्द-व्युत्पत्ति के मौलिक नियमों से अनभिज्ञतासूचक शतशः स्थल कोष में हैं। उदाहरणार्थ—को शब्द के दो अर्थ हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए हैं (१) कौन, (२) कर्म तथा संप्रदानकारक का चिह्न । किंतु व्युत्पत्ति केवल एक ही दी है, अर्थात् संस्कृत "कः" जिसका अर्थ कौन है । कौन-अर्थसूचक को तथा कारक-चिह्न को भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति के दो शब्द हैं ।

फ़ारसी तथा अरबी के शब्दों के लिये व्युत्पत्ति कोष्ठ में फा० तथा अ० निर्देश काफ़ी नहीं था, किंतु संस्कृत-शब्दों के समान आवश्यकतानुसार * उनका वास्तविक स्वरूप देना आवश्यक था । देवनागरी-लिपि में से (ث), स्वाद (ص), और सीन (س), ज़ाल (ذ), ज़ (ز), ज़ोए (ظ), और ज़्वाद (ض), छोटी और बड़ी हे (ه , ح) तथा अलिफ़ (ا), हमज़ा (ء) और ऐन (ع) में, कोई भेद नहीं किया जाता । इसकी दो विधियाँ थीं—(१) देवनागरी में बिंदी, कौमा और रेखा देकर प्रत्येक फ़ारसी तथा अरबी-वर्ण के लिये पृथक् पृथक् वर्ण बनाए जाते, (२) अरबी के वर्णों का प्रयोग करते । इनमें से प्रथम विधि श्रेष्ठ होती ।

अन्य अँगरेज़ी आदि विदेशी भाषाओं के लिये भी या तो उनका शुद्ध उच्चारण पूर्वोक्त प्रकार से नए देवनागरी-वर्ण बनाकर, दिया जाना चाहिए था, या तद्भाषा-विशिष्ट लिपि का प्रयोग किया जाता । और, यह कुछ कठिन न था । रूसी तथा ग्रीक-भाषा को छोड़कर समस्त योरपीय भाषाओं के लिये रोमन टाइप प्रयुक्त होता है । रूसी-भाषा के तो शब्द ही हिंदी में बहुत कम हैं । तथापि एक-एक फाउंट ग्रीक तथा रूसी-वर्णमाला का मँगाया जा सकता था । तुरकी के लिये अरबी का टाइप काफ़ी था ।

(असमाप्त)

लंदन
१० फ़रवरी, १९२९ } रघुवीर

---

* अर्थात् जब देवनागरी-लिपि से शुद्धरूप निश्चित नहीं हो सकता ।

मरणोन्मुखी

पति से

(१)

जा रही हूँ, अब तो विलंब हो रहा है नाथ,
बोलते नहीं क्यों ? पड़े कौन कठिनाई में ;
नतमुख बैठे कब से हो, किंवा रूठ गए,
फल क्या मिलेगा तुम्हें ऐसी निठुराई में ।
'कौशलेंद्र' शेष न है कोई अभिलाषा मेरी,
पा चुकी हूँ क्या न मैं तुम्हारी सेवकाई में ;
प्राणधन ! माँगती विदा हूँ, किंतु दे रहे क्यों—
हाय अश्रु-मोती तुम हमको विदाई में ?

(२)

गृहिणी पतिव्रता तुम्हारी कहलाती थी मैं,
किंतु आज दूसरे के हाथ हरी जाती हूँ ;
तुमने न छोड़ा, पर हाय तुम्हें छोड़ चली,
दैव मैं कलंक-वेदना में भरी जाती हूँ ।
'कौशलेंद्र' कौन थी मैं, और क्या हुई हूँ अब,
क्या करूँ विवश हूँ, हया में गरी जाती हूँ ;
प्राणनाथ ! तुम पर मरती सदा थी, किंतु
अब मौत पर, मैं अभागी मरी जाती हूँ ।

(३)

जीती कुछ और देख लेती सुख आपका तो,
खलती न आज कठिनाई मर जाने की ;
क्या मिले थे आप इस भाँति छुटने के लिये,
रह गई मन में है बात पछताने की ।
ठहर सकूँगी क्या मैं स्वर्ग में भी तुम बिन,
क्या मिटेगी मरकर चाह, तुम्हें पाने की ;
नाथ ! गहो हाथ, हाय व्याधि लगती है हमें,
बार-बार जाने और बार-बार आने की ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

रहना समोद, सहना न मन-ताप, तथा—
प्रेम-रत्न है, इसे न भूल के भी खोना तुम ;
टूटने न देना निज-मानस-मुकुर मंजु,
विरह-दशा में सदा साहस सँजोना तुम।
'कौशलेंद्र' सुख से मैं मरती हूँ प्रेमधन !
मेरी याद करके कभी न खिन्न होना तुम ;
लीजिए प्रणाम, गुरुजन सामने हैं, हाय—
लाज धुल जाएगी, न मेरे लिये रोना तुम।

कौशलेंद्र राठौर

पहली एप्रिल

(१)

रामचरन इलाहाबाद के क्रिश्चियन-कालेज में एफ़० ए० में पढ़ता है। उसका विवाह इसी साल, फाल्गुन के महीने में हुआ है। वह कालेज से पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर आया था। पाँच दिन तो विवाह ही में लग गए। नवविवाहिता पत्नी के साथ छुट्टी के शेष दस दिन किस प्रकार व्यतीत हो गए, उसे इसका पता तक न चला। अपने जाने के दिन उसने अपनी पत्नी के कमरे में पहुँचकर कहा—"मुन्नी, (रामचरन अपनी पत्नी को मुन्नी कहता था, उसका असली नाम श्यामा था) आज रात की गाड़ी से मैं चला जाऊँगा। मेरे सब कपड़े इसी कमरे में इकट्ठा करके रख देना।"

श्यामा ने लज्जा-कुंठित स्वर में कहा—"अभी मत जाइए। मेरे चले जाने के बाद जाइएगा।"

रामचरन ने अपने हाथ से श्यामा की ठुड्डी ऊपर उठाकर कहा—"तुम हो बड़ी होशियार, स्वयं तो मुझे छोड़कर चली जाओगी, किंतु मुझसे ठहर जाने के लिये कहती हो। यदि तुम भइया के आने पर उनके साथ मायके न जाने का वादा करो, तो मैं ठहर जाने के लिये तैयार हूँ।"

श्यामा ने स्मित हास्य-पूर्वक कहा—"वाह, यह कैसे हो सकता है। वह तो मुझे जाना ही पड़ेगा।"

रामचरन ने मुसकिराकर कहा—"तो मुझी को रोकने को थीं !"

श्यामा चुप रह गई।

रामचरन ने फिर कहा—"अच्छा मुन्नी, मेरे चले जाने पर तुम मुझे चिट्ठी लिखा करोगी ?"

श्यामा के अधरों पर हास्य की एक लज्जा-मिश्रित आभा खेल गई। वह बोली—"किस तरह लिखूँगी, मैं जानती तो हूँ ही नहीं।"

रामचरन ने कहा—"तुम इतनी पढ़ी-लिखी होकर भी चिट्ठी लिखना नहीं जानतीं ! चिट्ठी लिखना कौन मुश्किल है। ऊपर स्थान का नाम लिख दिया, नीचे तारीख़ लिख दी। उसके बाद तीसरी लाइन में—" रामचरन के मन में आया कि कह दें कि उसके बाद तीसरी लाइन में प्रियतम या प्राणेश लिख दिया। किंतु न-जाने क्यों ये शब्द उसके मुँह से नहीं निकले। उसने कुछ ठहरकर कहा—"उसके बाद चिट्ठी में जो कुछ लिखना हुआ, सो लिख दिया।"

श्यामा ने कहा—"मुझे भइया को एक चिट्ठी लिखनी थी। आप उस पर पता लिख दीजिएगा, मुझे पता लिखना नहीं आता।"

रामचरन बोला—"बस, यही बात थी ! पता मैं लिख दूँगा। मैं तुम्हारे लिये एक दर्जन लिफ़ाफ़े ख़रीद लाया हूँ। उनमें से आठ-दस पर मैं अपना पता लिख दूँगा। शेष पर तुम्हारे भाई का पता। फिर तो चिट्ठी डालने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी ?"

श्यामा ने समझ लिया कि अब चिट्ठी डालने में कोई कठिनाई नहीं पड़ सकती। उसने संक्षेप में कह दिया 'न'।

रामचरन ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"तो अब भूलना नहीं। मैं जाते ही तुम्हें चिट्ठी डालूँगा। तुम उसका जवाब देना। समझीं। उसके बाद मायके पहुँचकर भी मुझे चिट्ठी लिखा करना।"

श्यामा निरुत्तर रही। इतने में बाहर से किसी ने पुकारा—"लल्लू, तुम्हें आज नहाना नहीं। देखो, कितनी देर हो गई है।"

"माँ बुला रही हैं" कहकर रामचरन जल्दी से बाहर चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

उसी दिन रात की पैसेंजर से रामचरन इलाहाबाद चला गया। वह चलते-चलते श्यामा से हर सातवें दिन एक चिट्ठी डालने के लिये कह गया। किंतु श्यामा ने न तो अपने पति को चिट्ठी लिखी, और न अपने भाई को। उसकी समझ में न आया कि वह चिट्ठी कब लिखे, कैसे लिखे, और उसे लिखकर किस प्रकार डाकख़ाने में भिजवावे। इसी प्रकार पाँच-छः दिन व्यतीत हो गए। सहसा उसने एक दिन अपने बड़े भाई को अपने सामने देखा। वह उसे ले जाने को आया था। भाई के आने की ख़ुशी में वह सब कुछ भूल गई। उसका भाई दो दिन उसकी ससुराल में रहकर उसे लेकर चला आया। श्यामा अपने मायके पहुँची। माँ से मिली। सखी-सहेलियों से भेंटी। पाँच-छः दिन तक उसे ऐसा प्रतीत होता रहा, मानो वह किसी नई दुनिया में रहकर आ रही है। उसके बाद वह पुनः पूर्ववत् संसार में रहने लगी। किंतु अपने पति को चिट्ठी वह यहाँ आकर भी न लिख सकी। दिन में वह अपनी सखियों से घिरी रहती थी। उनके मारे उसे दम मारने की फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। कोई उससे उसकी ससुराल का हाल पूछती, कोई उसके पति का। उन सबके प्रश्नों का संतोष-जनक उत्तर देते-देते उसकी नाक में दम हो जाती थी। रात में यद्यपि उसकी सखियाँ नहीं रहती थीं, किंतु उसका छोटा भाई रामू रहता था। शाम हुई नहीं, और वह उसका हाथ पकड़कर आँगन में जा बैठता।

"जीजी, तुम ससुराल में किस तरह रहीं। जीजी, तुम मेरे लिये ससुराल से कुछ नहीं लाईं। अच्छा जीजी, अगर भइया तुम्हें लुवाने न जाते, तो क्या तुम ससुराल से न आतीं? अच्छा जीजी, अम्माँ कहती थीं कि तुझे कानी सास मिलेगी, तेरी सास कानी तो नहीं थी। अच्छा जीजी, जीजा कभी तुझे मारते तो नहीं थे?" उसके इन प्रश्नों के मारे श्यामा कभी-कभी रो देती थी।

वह कहती—"देखो अम्माँ, यह रामू नहीं मानता। मैं इसे एकाध थप्पड़ मार दूँगी।" इस पर रामू कहता—"अच्छा, समझ गया, तुम्हारी सास ज़रूर कानी है।"

रामू की इन बातों को सुनकर माँ मन-ही-मन हँसती, और घर का काम-धंधा कर चुकने के बाद दोनों को अपने पास लिटाकर सो जातीं। रामू भी सो जाता। किंतु श्यामा को नींद नहीं आती। वह न-जाने कितनी रात तक कितनी बातें सोचती रहती। धीरे-धीरे वह भी अपने सुखद कल्पना-जाल से बाहर निकलकर निद्रा की गोद में जा सोती।

इसी प्रकार दिन-पर-दिन व्यतीत होने लगे। किंतु वह अपने पति को चिट्ठी फिर भी न लिख सकी। इस बीच में सहसा एक दिन उसे अपने पति का पत्र मिला। रामचरन ने लिखा था कि उसकी परीक्षा २८ मार्च तक समाप्त हो जाएगी। उसके बाद यदि हो सका, तो वह एकाध दिन के लिये अपनी ससुराल होता जायगा। किंतु आ सकेगा या नहीं, ठीक नहीं। पत्र पढ़कर श्यामा को बड़ी ख़ुशी हुई। उसने अपने पति के इस पत्र का उत्तर देना चाहा। उस समय वह घर में अकेली थी। रामू स्कूल गया था, और माँ नीचे आँगन में काम कर रही थीं। वह दावात, क़लम और काग़ज़ लेकर बैठ गई। किंतु पत्र कहाँ से और कैसे आरंभ किया जाय, यह उसकी समझ में नहीं आया। पति को वह प्रियतम लिखे या प्राणेश; प्राणाधार लिखे या प्राणप्रिय, या सिर्फ़ पतिदेवता लिखकर रह जाय। लगभग पंद्रह मिनट तक वह इसी सोच-विचार में पड़ी रही। अंत में जैसे-तैसे उसने दो लकीरें लिखीं। तीसरी उसने शुरू ही की थी कि सहसा किसी ने नीचे से पुकारा—"श्यामा, अरी ओ श्यामा!"

श्यामा ने क़लम फेंककर खीझकर कहा—"कलमुँही, जब देखो तब श्यामा, श्यामा को क्या खाएगी।" और, फिर उसने क़लम उठाकर जल्दी से चिट्ठी के नीचे अपना नाम लिखा, और उसे दरी के नीचे छिपा दिया।"

तब तक उसकी सखी ललिता नीचे उसकी प्रतीक्षा में खड़ी न रहकर स्वयं ही ऊपर चली आई। श्यामा दावात-क़लम एक ओर खिसकाकर बोली—"चलो, मैं आती तो थी।"

ललिता ने कहा—"सो तो मैं जानती हूँ।" फिर वह दावात-क़लम की ओर एक भेद-भरी दृष्टि डालकर कहती गई—"किंतु यह तो बताओ, दावात-क़लम की सहायता से लिफ़ाफ़े की कमान पर आज किसके 'कुसुमादपि' कोमल हृदय पर 'वज्रादपि' कठोर पंचशर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़े जाने का उपक्रम हो रहा था ?" श्यामा ने ललिता को धकियाकर कहा—"उठ ! तेरी ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।"

ललिता बोली—"हाँ, अब काहे को समझ में आवेंगी। जानती हो, कालेज में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को पत्र लिखना, उन पर पंचशर छोड़े जाने के बराबर ही है। मैं भी तो अभी यही करके आ रही हूँ।"

ललिता वास्तव में अपने पति को चिट्ठी लिखकर चली आ रही थी। उसका पति भी रामचरन के साथ इलाहाबाद के क्रिश्चियन-कालेज में पढ़ता है।

श्यामा ने कहा—"अच्छा, अच्छा, समझ गई। तू बड़ा राज्य जीतकर चली आ रही है। चल, नीचे चलें।"

दोनों सखियाँ नीचे चली गईं, और बैठकर गपशप करने लगीं।

(३)

श्यामा का भाई रामदास कपड़े की दूकान किए है। एक दिन उसे अपनी दूकान की अन्य चिट्ठियों के साथ एक लिफ़ाफ़ा मिला। उसने लिफ़ाफ़ा खोलकर चिट्ठी बाहर निकाली। उसमें लिखा था—

"स्वामी को चरन छूना पहुँचे। आपकी चिट्ठी मिली। आप एक दिन के लिये यहाँ अवश्य आइए।" इसके बाद 'मैं' लिखकर काट दिया गया था। नीचे लिखा था—

आपकी दासी—

मुन्नी

मुन्नी रामदास की पत्नी का नाम था। यद्यपि मुन्नी के मायकेवालों को और स्वयं मुन्नी को यह नाम पसंद नहीं था। किंतु रामदास के लिये इस नाम में जो सादगी थी, वह सरला, विमला या कमला के नाम में नहीं थी। इसलिये उसने अपनी पत्नी के जन्मनाम मुन्नी को बदलने की चेष्टा नहीं की। वह मुन्नी को बहुत प्यार करता था, शायद इसलिये कि वह उसके दूसरे विवाह की पत्नी थीं। उसका विवाह हुए अभी आठ ही दस महीने हुए थे। पहली बार ससुराल आकर मुन्नी जब से मायके गई, तब से उसने रामदास को कोई पत्र नहीं लिखा था, यद्यपि रामदास उसे दो-तीन पत्र लिख चुका था। आज मुन्नी का यह तार की भाषा में लिखा हुआ पत्र पाकर वह बड़ी चिंता में पड़ गया। "जान पड़ता है, वह बीमार है। तभी उसने मेरे दो-तीन पत्रों का उत्तर नहीं दिया। अभी आठ-दस दिन हुए, तब मैंने उसे एक पत्र लिखा था। यह शायद उसी का उत्तर है।" रामदास इस प्रकार की बातें सोचता हुआ घर आया, और अपनी माँ से बोला—"माँ, आज मैं आगरा जा रहा हूँ।"

माँ ने पूछा—"क्यों, क्या बात है बेटा ?"

रामदास ने कहा—"कुछ नहीं, बुलाया है।"

रामदास ने और कुछ नहीं कहा। वह उसी दिन एक छोटे-से हैंडबेग में अपने कपड़े-लत्ते रखकर आगरा चला गया।

(४)

दोपहर के समय रामदास आगरा पहुँचा। ट्रेन से उतरकर एक किराए के ताँगे पर वह ससुराल की तरफ़ चल दिया। रास्ते में वह सोचने लगा—"मेरी ससुराल-वाले भी कैसे बेवक़ूफ़ हैं। वह इतने दिनों से बीमार है, किंतु मुझे इसकी ख़बर तक न दी। न-जाने कमबख़्तों ने उसके इलाज का भी कोई प्रबंध किया है, या नहीं। यदि तबियत अच्छी होगी, तो मैं उसे अपने साथ लेता आऊँगा……।"

इतने में ताँगेवाले ने कहा—"लीजिए बाबूजी, किनारी बाज़ार आ गया।" रामदास कुछ चौंक-सा गया। उसने ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को किराया दिया, और एक गली पार करके अपनी ससुराल के सामने पहुँचा। उस समय उसका भतीजा मुहल्ले के दो-तीन लड़कों के साथ बाहर खेल रहा था। उसने रामदास को देखते ही खेलना बंद कर दिया, और चिल्लाना शुरू किया—"फूफा आ गए, फूफा आ गए।" रामदास ने उसे गोद में उठाकर कहा—"क्यों, सब लोग अच्छी तरह हैं ?"

"हाँ"

"बुआ ?"

"वे भी अच्छी तरह हैं।"

उत्तर सुनकर रामदास को कुछ आश्वासन मिला, किंतु दुश्चिंता तब भी दूर नहीं हुई।

इतने में उसने अपने बड़े साले श्यामविहारी को घर से बाहर निकलते देखा। वह बाज़ार जाने के लिये बाहर निकला था। सामने रामदास को खड़ा देखकर वहीं ठहरकर बोला—"अख़हा ! कहिए क्या अभी आना हुआ है।" और उसने आगे बढ़कर रामदास के पैर छुए।

रामदास ने कहा—"हाँ, कहिए कुशल से तो हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपकी दया से सब कुशल है। चलिए, भीतर चलें।"

रामदास झुँझला उठा। वह बड़बड़ाया "जब सब कुशल है, तब मुझको इस प्रकार का पत्र क्यों लिखा गया।" फिर उसने सोचा—"संभव है, कोई और बात हो। किंतु यह तो मुन्नी से पूछने पर जान पड़ेगा।" उसने भीतर जाकर कपड़े उतारे। फिर नहा-धोकर भोजन किया।

संध्या के समय अचानक उसकी मुन्नी से भेंट हो गई। उसने उसकी शकल देखते ही कहा—"क्यों, क्या बात थी? मुझे ऐसी चिट्ठी क्यों लिखी थी? मैं तो समझा था कि तुम बीमार हो।"

मुन्नी ने कहा—"कहाँ, कौन-सी चिट्ठी? आपने भाँग तो नहीं खाई है? मैं अभी चार महीने से यहाँ रही भी हूँ, या आपको चिट्ठी ही लिखूँगी। मेरे मामा के यहाँ विवाह था, मैं वहीं गई थी। अभी परसों ही तो वहाँ से आई हूँ।"

रामदास सिर खुजलाने लगा—"फिर यह चिट्ठी किसने लिखी?" कहकर उसने अपनी जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर मुन्नी के सामने फेंक दिया।

इतने में मुन्नी ने बाहर अपने भाई के खाँसने की आवाज़ सुनी। वह चिट्ठी को वहीं पड़ी छोड़ जल्दी से भीतर चली गई। रामदास उसे उठाकर बाहर आया। श्यामविहारी उसे बीच ही में मिल गया। उसे देखकर बोला—"क्षमा कीजिए, एक ज़रूरी काम से बाहर चला गया था, इसलिये आपसे बात ही न कर पाई। कहिए, यहाँ आप आए कैसे थे? क्या कुछ कपड़ा ख़रीदना था?"

रामदास ने झल्लाकर कहा—"जीहाँ, कपड़ा ख़रीदना था। इस तरह का मज़ाक़ मुझे अच्छा नहीं लगता। बतलाइए, इससे क्या नतीजा निकला। फ़िज़ूल में पंद्रह-बीस रुपए का ख़ून हो गया।"

श्यामविहारी ने उसकी बात को समझ न पाकर कहा—"क्यों, क्या हुआ? आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। आप कौन-से मज़ाक़ का ज़िक्र कर रहे हैं?"

"कुछ नहीं, यह देखिए, आप लोगों में से किसी ने कैसा मज़ाक़ किया है। आप न होंगे, तो आपके छोटे भाई साहब होंगे। और तो किसी से मेरा ऐसा मज़ाक़ का खाता है नहीं। कहकर रामदास ने हाथ का लिफ़ाफ़ा श्यामविहारी के सामने फेंक दिया।"

श्यामविहारी ने चिट्ठी पढ़कर लिफ़ाफ़े को उलटा-पुलटा। वह ठहाका मारकर हँस दिया। "अजी हज़रत, यह आपके किसी कनपुरिया दोस्त की शरारत है। उसने आपको ख़ासा उल्लू बनाया है। आपको मालूम नहीं कल 'एप्रिल फूल' है।"

रामदास लिफ़ाफ़ा देखकर भौंचक-सा रह गया। उस पर सिर्फ़ कानपुर की मुहर थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोला—"ख़ूब रहे! क्या एप्रिल फूल की तिथि भी हिंदू-त्योहारों की तरह दो दिन बीच में खा गई?"

श्यामविहारी ने हँसकर कहा—"जनाब, चिट्ठी लिखनेवाले ने भूल नहीं की। उसने सोचा होगा कि पहली एप्रिल को आप अपनी ससुराल पहुँचेंगे, और वहाँ अपनी बेवक़ूफ़ी के लिये ख़ूब बनाए जायँगे।"

रामदास ने कहा—"माफ़ कीजिए, अगर बेवक़ूफ़ ही बनना है, तो अपने घर जाकर बनूँगा। मैं इसी गाड़ी से कानपुर चला जाऊँगा।"

श्यामविहारी ने कहा—"आपकी इच्छा। किंतु बेवक़ूफ़ी का सेहरा तो आप यहीं से लेकर जायँगे।"

रामदास ने इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा। वह बाहर घूमने चला गया। फिर घूमकर वापस आने के बाद उसने स्टेशन जाने की तैयारी कर दी।

(५)

दूसरे दिन दस बजे जब रामदास ताँगे से उतरकर अपने घर पहुँचा, तब उसकी माँ ने उसे देखते ही कहा—"क्यों बेटा, वहाँ सब लोग अच्छी तरह तो थे?"

"हाँ"

"वहाँ क्या काम था?"

"कुछ नहीं, उन लोगों ने एक मिल से कुछ कपड़ा ख़रीदा था, उसी के संबंध में कुछ बातचीत थी।"

माँ ने कहा—"आज सबेरे रामू के जीजा भी तो आए हैं। साथ में राममनोहर भी है।"

"कौन राममनोहर?"

"अरे, वही जिसे अपनी यह ललिता विवाही—"

"अच्छा, समझ गया। राममनोहर बाबू भी आए हैं? दोनों कहाँ चले गए हैं?"

"क्या जाने, आते ही धोती बग़ल में दबाकर बाहर चले गए। गंगा-स्नान को गए होंगे।"

इतने में बाहर किसी के जूतों की खटपट सुनाई पड़ी। रामदास ने पीछे घूमकर देखा, राममनोहर और रामचरन गीली धोतियाँ बग़ल में दाबे गंगा-स्नान करके चले आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। उसने देखते ही कहा—"जय रामजी की रामचरन बाबू, और आपको भी राममनोहर बाबू। कहिए कब आना हुआ, कुशल तो है? चलिए ऊपर चलें।"

राममनोहर ने सीढ़ियाँ तै करते हुए कहा—"जीहाँ, आपकी दया से मैं तो कुशल से हूँ। रामचरन बाबू की, ये स्वयं जानें। इलाहाबाद में इनके जैसे लक्षण थे, उससे तो मुझे इनकी कुशल नहीं जान पड़ती।"

रामदास ने उद्विग्न होकर कहा—"क्यों क्या बात है, ख़ैरियत तो है! पर्चे कैसे किए?"

रामचरन ने रामदास को तीक्ष्ण-दृष्टि से देखते हुए कहा—"बनिए नहीं। मैं सब समझ गया हूँ। किंतु इस तरह की हँसी अच्छी नहीं होती। कल रात में मुझे एक-एक पल मुशकिल दिखलाई पड़ रहा था। कानपुर जिस तरह पहुँचा हूँ, मैं ही जानता हूँ।"

रामदास ने विमूढ़ होकर कहा—"आप कह क्या रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा?"

रामचरन ने कहा—"फिर वही बात। कहीं इस तरह की चिट्ठी भी लिखवाई जाती है! अब मैं ज़रा उनकी शकल और देखना चाहता हूँ, जिन्होंने यह चिट्ठी लिखी है। रामदास का आश्चर्य उच्च अट्टहास में बदल गया। बोला—"अख़हा! आइए, आइए! समझ गया कि आप भी ससुराल से बेवक़ूफ़ी का सार्टीफ़िकेट लेने आए हैं। किंतु आप शकल किसकी देखना चाहते हैं?"

"उन्हीं की।"

"किनकी?"

"जिन्होंने यह पत्र लिखा है।"

"किसने?"

"आपकी पत्नी ने।"

"ख़ूब! मेरी पत्नी यहाँ हैं भी, या आपको पत्र हो लिखेंगी।" रामचरन चुप हो गया। उसने जिज्ञासु-दृष्टि से राममनोहर की ओर देखा।

राममनोहर बोला—"तो मुझे क्या मालूम, मैंने तो अनुमान से कहा था कि लिफ़ाफ़े पर जब कानपुर की मुहर है, तब इसके सिवा कि यह रामदास की शरारत हो, और उन्होंने यह चिट्ठी अपनी पत्नी से लिखवाई हो; और हो ही क्या सकता है। किंतु जब इनकी पत्नी घर पर नहीं हैं, तब इन्होंने किसी और से चिट्ठी लिखवाई होगी। कुछ भी हो, किंतु यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस षड्यंत्र में इनका हाथ अवश्य है।" फिर वह सहसा रामदास के प्रति बोला—"हाँ, अभी आप क्या कह रहे थे, 'ससुराल में एक मैं ही नहीं, सभी बेवकूफ़ बनते हैं' कहिए आप पर भी क्या कुछ बीती है। आप भी तो शायद आज ससुराल से तशरीफ़ ला रहे हैं।"

रामदास ने कहा—"कुछ पूछो मत। रामचरन बाबू मुझे अपराधी क़रार दे रहे हैं, किंतु मैं किसका नाम ले दूँ। किसी ने मेरी पत्नी की तरफ़ से मुझे भी एक चिट्ठी लिख मारी। उसमें मुझे शीघ्र आने के लिये कहा गया था। मैं तो समझा कि कुछ मामला गड़बड़ है। किंतु वहाँ जाकर ख़ासा बेवक़ूफ़ बनना पड़ा।"

भीतर श्यामा अपने कमरे में बैठी हुई ललिता से बात कर रही थी। भाई की बात सुनकर वह चुप होकर बैठ गई, और बाहर टकटकी लगाकर उन तीनों की बात-चीत सुनने लगी।

राममनोहर ने कहा—"अख़हा, यह कहिए। यानी आप भी ससुराल से बेवक़ूफ़ी का सार्टीफ़िकेट प्राप्त कर आ रहे हैं। ज़रा देखूँ तो, उस चिट्ठी में लिखा क्या है।"

रामदास ने कहा—"पहले मैं उस चिट्ठी को देखना चाहता हूँ, जिसे रामचरन बाबू मेरी पत्नी की लिखी हुई समझ रहे हैं।"

राममनोहर ने कहा—"उसे बाद में देख लीजिएगा। पहले आप अपनी सनद बताइए।"

"उसमें कोई विशेष बात नहीं है। देखिए यह है।" कहकर उसने जेब का लिफ़ाफ़ा राममनोहर के हाथ में दे दिया। लिफ़ाफ़े को देखते ही उसने कहा—"पता तो रामचरन के हाथ का लिखा जान पड़ता है।"

भीतर बैठी हुई श्यामा ने अपने कानों को और भी सजग कर लिया।

रामदास ने कहा—"सचमुच! मैंने तो अब तक इनके अँगरेज़ी के अक्षर देखे नहीं! क्यों जनाब, यहाँ तो आप ही उल्टे फँसे।"

रामचरन भौंचक-सा रह गया। सहसा उसने कहा—"चिट्ठी देखूँ।"

राममनोहर ने कहा—"रहने दीजिए, मैं पढ़कर सुना देता हूँ।"

रामचरन ने बिगड़कर कहा—"नहीं जी, मुझे दो।"

राममनोहर ने रामचरन के बिगड़ने की परवा न कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र पढ़ना आरंभ किया—"स्वामी को चरन छूना पहुँचे ...।"

श्यामा का हृदय धक्क से हो गया। उसने लज्जा और ग्लानि के आवेग में रामा को धकियाकर कहा—"हाय! या कलमुँही! तेरी ही वजह से यह सब हुआ। न तू उस दिन बीच में इस तरह आती, और न मैं चिट्ठी को अधूरा लिखा हुआ छोड़ती। और, मेरी अक़्ल तो देखो। चिट्ठी को उस लिफ़ाफ़े में बंद कर दिया, जिस पर भइया का पता लिखा था। मैंने कहा भी था कि पता अँगरेज़ी में मत लिखो।"

ललिता हँसकर बोली—"चलो, कोई हर्ज नहीं। आज पहली एप्रिल जो है।"

श्यामा ने खिसियाकर कहा—"भाड़ में गई तू और तेरी पहली एप्रिल! यदि कहीं भइया को ज्ञात हो गया, तो मुझे मुँह दिखाते नहीं बनेगा।"

इधर बाहर राममनोहर एक ही साँस में रामचरन को वह चिट्ठी सुना गया। रामचरन सुनकर पल-भर में सारा रहस्य समझ गया। वह चुप रहा।

रामदास कुछ सोचता हुआ बोला—"किंतु लिफ़ाफ़े पर मुहर तो सिर्फ़ कानपुर की है।"

राममनोहर बोला—"यह तो कोई बात नहीं। इलाहाबाद की मुहर लगने से रह गई होगी।"

"तो आपकी समझ में यह चिट्ठी रामचरन बाबू की लिखी है? लेकिन अक्षर ख़ूब बनाए हैं।"

राममनोहर बोला—"इसकी तो मैं भी तारीफ़ करूँगा।"

भीतर श्यामा का हृदय धड़कने लगा। उसे पसीना छूट रहा था।

रामचरन चुप रहा, उसने केवल मुसकिरा दिया। उसने पूछा—"और मेरी चिट्ठी?"

"देखूँ?"

रामचरन ने चिट्ठी निकालकर दिखलाई। रामदास ने देखते ही कहा—"समझ गया, यह चिट्ठी किसकी लिखी है, इसे राममनोहर बतला सकते हैं।"

"मुझे क्या कोई ज्योतिषी समझ रखा है।"

"रहने दीजिए, समझ गया, इस षड्यंत्र में आपका ही हाथ है।"

"नहीं, नहीं, मैं क्या जानूँ?"

"तो आप इन अक्षरों को नहीं पहचानते?"

"मैं क्या कोई Handwriting expert हूँ।"

"तो मैं बतला दूँ? मेरी छत पर ही गीतों की वह कापी पड़ी है। उस कापी के और इस चिट्ठी के अक्षर बिलकुल एक-से हैं।"

"होंगे।"

"तो ललिता को बुला न लूँ?"

रामचरन ने आश्चर्य में आकर कहा—"ललिता!"

"हाँ"

राममनोहर नीचे का ओंठ दाबकर हँसने लगा।

भीतर श्यामा ने ललिता को ज़ोर से धक्का देकर कहा—"क्यों री कलमुँही, तू ग़ैर-मर्दों को चिट्ठी कब से लिखने लगी?"

ललिता ने रुआसी होकर कहा—"सच कहती हूँ बहन, मुझसे शपथ ले लो, जो उसमें मेरा तनिक भी अपराध हो। उन्होंने (उसके पति राममनोहर ने) इलाहाबाद से मुझे एक चिट्ठी लिखी थी। इसमें लिखा था कि मैं रामचरन बाबू के पास तुम्हारी भावज के नाम इस प्रकार का एक पत्र लिख दूँ कि तुम यहाँ बहुत बीमार हो। अब तुम्हीं बताओ, मैं उनकी आज्ञा का पालन करती या नहीं?"

श्यामा बोली—"हाँ, हाँ, बड़ी आज्ञा-पालन करनेवाली बन गईं। देखूँगी अब कभी।"

बाहर रामदास कह रहा था—"और भाई रामचरन, तुम भी बड़े बेवक़ूफ़ हो। चिट्ठी पढ़ते ही ऐसे बौखला गए कि तुमने यह भी न देखा कि उसके पीछे पेनसिल से मोटे अक्षरों में

'एप्रिल फूल'

लिखा हुआ है।"

रामचरन के मन में आया कि कह दें, "और आप किससे कहते हैं, जो बिना बनाए ही एप्रिल फूल बन गए। बहन के अक्षर तक नहीं पहचानते।" किंतु वह चुप रहा।

भीतर ललिता हँस रही थी, और श्यामा के नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू छलछला रहे थे।

कृष्णानंद गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय-स्मृति

(१)

उसका कर मेरे कर में था,
आरंजित था सांध्य गगन;
छन-छन अरुण प्रभा पड़ती थी,
चित्र-विचित्रित था उपवन।

(२)

मलयानिल झलता था उसके,
सुरभित अंचल-पट का छोर;
श्री-विहीन कुसुमायुध अपना,
तोड़ रहा था धनुष मरोर।

(३)

शिखी विसुध, उद्भ्रांत, मुग्ध-मन,
अलुलित लोचन अपने-आप;
विस्मृत - मंत्र, मुग्ध - माया - सी,
बिकी जा रही थी चुपचाप।

(४)

कल-कंठी सारिका छिपी थी,
अस्फुट-बयन, संकुचित मन;
निस्पंदित लहरी-सी उसकी,
स्वर-वीणा थी विकृत-विमन।

(५)

पिकी कलित काकली भूलकर,
थी अव्यक्त तान-सी शांत;
फिरती थी मधुकरी भ्रमी-सी,
व्याकुल, विक्षिप्त, विभ्रांत।

(६)

तरलायित उस रूप-माधुरी—
में तिरता था पार्श्व-प्रदेश;
जाग्रत है सुवर्ण-छाया-सी,
सुषमा - रंजित - स्मृति अवशेष।

(७)

पावन-पुलिन-प्रांत सरिता का,
हुआ सुशोभित कितनी बार;
बाँटा गया जहाँ चरणों की,
पूजा का मंजुल उपहार।

(८)

कितनी बार सिवारों ने—
देखी थी, वह कौतुक-क्रीड़ा;
कितनी बार कुमुद-कलियों ने,
सीखी थी उससे व्रीड़ा।

(९)

कितनी बार उषा ने लेकर,
उसके अधरों की लाली;
मृदु-मुसकान, रम्य-लीला-मिस,
क्षितिज छोर पर थी डाली।

(१०)

लहरों में लहरा था उसका,
स्नेह-सिक्त जो नयनांचल;
वह सुदूर सीमांत देश में,
बना हुआ है अभी अचल।

(११)

उन करील के कुंजों में,
उन शाल-वृक्ष की डारों में
वही प्रणय-संवाद ग्रथित उन
सिरस-कुसुम के हारों में

(१२)

अंकित हुआ कभी जो उसकी
विस्मृत चितवनि का मृदु हास
सजा हुआ है आज उषा के
रंजित अधरों-सा उच्छ्वास

(१३)

हरसिंगार के तले धरा
वैसी ही कुसुमाकीर्ण बन
वैसी ही माधवी लता की
बंदनवार सुशीर्ण तन

(१४)

अश्रु-अर्घ्य से सजल आंस-कण
मोती की लड़ियाँ झर
बिखरी हुई रम्य गत-स्मृति को
अब भी मूर्तिमान कर

(१५)

किंतु गईं वे सुखमय घड़ियाँ
उस यौवन के साथ क
लौटाई जा सकती हैं क्य
इस जीवन में कभी क

शंभूदयाल सक्से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रिया के पर्वतों में—

[हिम-गह्वर आइस-रीज़न-वेल्ट]

(१)

योरप में स्विट्ज़रलैंड सुंदरतम देश है। प्राकृतिक सौंदर्य इस छोटे भूमिभाग में घनीभूत हो गया है। कोई अंश यहाँ का ऐसा नहीं है, जो किसी-न-किसी दृष्टि से रमणीय एवं मनोहर न हो। बासल की तरह के मैदानी नगर भी, राइन-नदी के कारण या विश्वविद्यालय, कला-भवन आदि की वजह, आकर्षक हो गए हैं। किंतु स्विट्ज़रलैंड में सर्वदेशीय यात्रियों की इतनी अधिकता है कि धन के अत्याचार से पीड़ित और मदमत्त धनियों का सहवास न सह सकने वाले मुझ-जैसे व्यक्ति के लिये वहाँ की नैसर्गिक छटा इन सैलानियों के कारण शांतिप्रद नहीं रहती। साथ ही प्रकृति का आनंद तब मिलता है, जब उसके साथ एकांत में दूबदू आलाप हो, जब परस्पर आत्मिक भावों का विनिमय हो; और जब अनिर्वचनीय, प्रगाढ़ शांति में 'स्व'-निमग्न आत्मा, आनंद-विषादमय मर्मस्पर्शी ब्रह्म-रस में, गोते खाती हो—मूल-प्रकृति अर्थात् गिरि, गह्वर, नद-नदी आदि में इसी रस का अक्षय भांडार देख और उससे अपनी झोली भर अमरता की ओर अग्रसर होती हो। अस्तु, ऐसे अवसर स्विट्ज़रलैंड में मुझे कम मिले। इसकी खोज में—योरप और एशिया की संस्कृतियों से उकताकर—मैं आस्ट्रिया के पर्वतों की शरण में आया। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा अपना सानी नहीं रखती। आर्लबर्ग, फ़ोरआर्लबर्ग, टिरोल, साल्त्सकामरगुट, स्टायरमार्क आदि बेजोड़ हैं। मैं प्रायः पैदल चक्कर लगाता था। इन पर्वतों, पार्वत्य प्रदेशों और 'हिमालयों का' दर्शन एवं परिचय प्राप्त कर मैं त्सिल-आम-ज़े पहुँचा। किंतु यहाँ पता लगा कि यहाँ से अनतिदूर आइस-रीज़न-वेल्ट अर्थात् हिममय-विराट्-जगत्-नामक हिम-गह्वर है। यह संसार में सबसे बड़ा है। बस, मैंने वहाँ जाने की ठानी, और एक रोज़ प्रातःकाल वेर्फ़न (Werfen)-नामक ग्राम को चल पड़ा। यहाँ से इस हिम-गह्वर को जाने का रास्ता है। पहले दिन थका-माँदा था। पहाड़ पर चढ़ने की हिम्मत न पड़ी। सो ब्लयून-बाखटाल-नामक घाटी

वेर्फ़न के पुराने दुर्ग का दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सैर की। ब्ल्यून-नामक नाला ऊपर कहीं पहाड़ों से आता है, और इस भीषण और मनोरम घाटी में उछलता-कूदता, थिरकता-नाचता, जो कुछ उसके संसर्ग में आ जाय, उसी को अपने आनंद-प्रवाह में बहा ले जाने की चेष्टा करता हुआ, घोर निनादमय गीत गाता हुआ, इस कोने में इतना शोर मचाता है कि मानो पतित प्राणियों की आवाज़ें न सुनने के लिये अपने गर्जन से उन्हें डुबाए देता है। दोनों ओर सघन वन इसकी भयंकरता को और भी बढ़ा देता है। इस वनस्थली की मनुष्य के प्रति घृणा तो देखिए, परम स्वार्थी मनुष्य ने इसका अंग काट अपने आराम के लिये जो पथ बनाया है, वह इसे असह्य है, और इसलिये यह घाटी, ये पर्वत इसका बदला लेने के लिये ऊपर से पत्थर बरसाते हैं कि पापी मनुष्य इसके उदर-गह्वर में समा जाय। मैं हिम्मत करके इस पथ पर बहुत दूर तक आगे बढ़ा। पथरीला रास्ता। कहीं-कहीं चट्टान छेदकर लंबे टनल बनाए गए हैं। यह मार्ग इतना एकांत था कि दो मील तक मुझे मनुष्य का नाम नहीं दिखाई दिया, हालाँकि टेनेक (Tenneck)-नामक ग्राम मय कारख़ानों के इसके पास है। विना बात के कौन जान को संकट में डालेगा? दो मील चलने के बाद मुझमें भी दम न रहा। अँधेरा होने लगा। सूर्य छिप गया था। भला एक पत्थर इन धोखेबाज़ चट्टानों से मेरे ऊपर आ जाय, तो?—मैं मर जाऊँगा। उस समय तो ऐसा मालूम पड़ने लगा, गोया मेरे विना संसार सूना हो जायगा। मुझे अपनी दुर्बलता, आत्मिक पतन और स्वार्थ-पूर्ण क्षुद्र हृदय का इस क्षण पता चला। मरणं प्रकृतिश्शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः—कुछ दिन तक मेरा सिद्धांत रहा था; लेकिन इन बुधों का मत मुझे कुछ दिन बाद असंगत प्रतीत हुआ। मरना तो स्वाभाविक है, और जीना अस्वाभाविक, याने एक तरह का विरोध। सो क्यों? स्वाभाविक तो जीवन होना चाहिए। किंतु मैं इस निचोड़ पर पहुँचा कि विश्व में विश्वात्मा की एक ही लीला सर्वत्र क्रीड़ा कर रही है, याने जीवन और मरण के बीच में निरंतर युद्ध, जीवन-संग्राम (?) चल रहा है। इस मल्लयुद्ध में एक स्थान पर जीवन मृत्यु को पराजित करता है, तो दूसरे अखाड़े में जीवन मौत द्वारा चित किया जाता है। अस्तु, कौन सत्य है, कौन असत्य? कौन प्रकृत है, और कौन विकृत? नहीं, दोनों में कोई भेद नहीं है; दोनों ही सत्य हैं। जीवन की उत्पत्ति मरण से है, और मृत्यु की जीवन से। दोनों ब्रह्म को—विश्वात्मा की—एक लीला के रूप हैं। मरता वही है, जो इनमें भेद देखता है। सो मैं इन दोनों को समान दृष्टि से देखने लगा था। किंतु इन ख़ौफ़नाक चट्टानों ने मेरी फिलासफ़ी भुला दी। मुझे अपने ऊपर घृणा हुई। और आगे बढ़ा। अँधेरा बढ़ने लगा था, इसलिये निश्चय किया कि लौटना चाहिए। अस्तु, धीमी चाल से ऐसा ही किया। यह एकांत, यह नीरवता और साथ ही ब्ल्यून (Blühn)-नाले का भीषण गर्जन, महान् चीड़ के पेड़ों से सुशोभित और अपनी उच्चता तथा तपोप्रियता के कारण मनुष्यों के हृदयों में भय का संचार करनेवाले पर्वत मुझे आनंद-करुणमय उग्र विस्मय रस में लीन कर रहे थे। जब टेनेक-गाँव के निकट पहुँचा, तो देखता क्या हूँ कि प्रायः दो सौ गज़ की उँचाई से एक कृत्रिम जलप्रपात इस ज़बर्दस्त तेज़ी से नीचे को लपक रहा है, मानो पृथ्वी-तल को छेदकर उसके अंतरतम प्रदेश में धँसना चाहता है। किस सीध से अपने लक्ष्य-स्थल की ओर धावित हो रहा है! यह प्रपात बिजली पैदा करने के लिये बनाया गया था। जल का उपयोग योरप-भर में बिजली पैदा करने के लिये किया जा रहा है। स्विट्ज़रलैंड में रेल इसी भाँति उद्भूत विद्युत् के प्रभाव से चलती है। आस्ट्रिया में भी रेलें बहुधा विद्युत् शक्ति द्वारा परिचालित होती हैं। योरप में कौन देश है, जो इस सफ़ेद कोयले का उपयोग न करता हो? मैं कुछ काल तक मंत्र-मुग्धवत् इसे एकटक निहारता रहा। मुझे अपने पहाड़ों की याद आई। नैनीताल, मसूरी आदि में, अँगरेज़ों की आमदरफ़्त होने के कारण बिजली आ गई है; किंतु भानुताप के आविष्कारक स्व० पं० श्रीकृष्ण जोशीजी इसी उद्योग में मर गए कि अल्मोड़े में जल का वैद्युतिक उपयोग किया जाय। नगर-निवासी उनके विचारों पर हँसते रहे, और किरोसिन तेल अल्मोड़े को रोशन करने में विदेशियों की जेब भर रहा है। अल्मोड़े की आबादी साढ़ सात हज़ार है। वहाँ के निवासी सुशिक्षित हैं; किंतु इतना दम नहीं कि सफ़ेद कोयले का उपयोग करके नगर को व देश को समृद्ध करें। टेनेक की जन-संख्या डेढ़ हज़ार भी नहीं और देखिए, यहाँ के झोपड़ों में बिजली दासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम कर रही है। जो हो, नीचे यंत्रागार में उतरा। वहाँ केवल एक मजूर सब काम चला रहा था। उससे बातचीत की। प्रेमी सज्जन था। उसने यहाँ की दशा समझाई। यद्यपि आस्ट्रिया, युद्ध के बाद, एक छोटा प्रदेश रह गया है, और इसके उद्योग-धंधों को बड़ा धक्का पहुँचा है, तथापि देहात में लोग भूखों नहीं मरते। उनके पास भूमि है, गाएँ हैं, और वे खेती-बारी करते हैं। बड़ी अच्छी तरह उनकी गुज़र होती है। इसीलिये तो सर्वत्र इनके गुलाबी चेहरे तमतमाते हैं। रोग और अस्वस्थता इन देशों में अपने अभाव से हम लोगों को आश्चर्य में डालती है। इन लोगों का खाना-पीना, रहन-सहन इन्हें सदा हृष्ट-पुष्ट रखते हैं। इसमें संदेह नहीं कि यहाँ के किसान—विशेषतः टिरोल के—बहुत शराब पीते हैं; किंतु सदा स्वस्थ भी रहते हैं। मुझे इन किसानों से मिलने-जुलने और उनके साथ खाने-पीने तथा रहने का बहुत अवसर मिला है। सरल-स्वभाव, परिश्रमी और सदानंदी इन देहातियों का चरित्र और तेजस्विता-पूर्ण आत्मसम्मान का भाव पूजनीय है। सबसे भाई-बहनों की भाँति मिलते हैं, और योरप की संस्कृति तथा नीति के नियमों के अनुसार हरएक की आवभगत करते हैं। किंतु चाहे कितना ही बड़ा पदाधिकारी या धनाढ्य क्यों न हो, यदि वह इनके 'स्वप्रतिष्ठा के' भाव को ठेस पहुँचाएगा, तो उग्ररूप धारण कर लेंगे। यह मजूर भाई प्रायः घंटे-भर तक अपने विशुद्ध विचारों से मुझे अचरज में डाले रहा। मैंने इसे हार्दिक धन्यवाद दिया, और अपने होटल की राह ली। पथ में भारत का मिलान योरप से कर रहा था, और मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि जो भूमि त्याग और संन्यास का आदर्श अज्ञ और कर्मसंगी किसानों तथा मज़दूरों के सामने भी रखना चाहती है, वह विना रसातल तक पहुँचे चैन न लेगी। यदि जनता अच्छा खाना, अच्छा पहनना नहीं चाहती, तो वह किसके लिये उद्योग करेगी? जिन्हें सत्तू फाँकने से पूर्ण संतोष प्राप्त हो जाता है, वे क्यों अपने शरीर को क्लेश देंगे कि अधिक कमावें? एक समय था, जब भारत में कुछ विद्वानों, चिंतावीरों और दार्शनिकों तक ही यह सादा जीवन परिमित था, और जनता अर्थशास्त्र के अध्ययन और उपयोग में निरत रहती थी। वैदिक काल में ऋषि उषा की प्रशंसा में गाता है—तू हमारी मनोकामना को कार्य-रूप में परिणत करने का हमें प्रोत्साहन देती है, और संसार की प्रगति के लिये अर्थ—धन-धान्य आदि—की भाँति है। आदि। इसीलिये जड़वादी ऋषि सप्तगु बृहस्पति धन को सर्वोपरि समझता है * और स्पष्टवक्ता 'कारु' गाता है।

जरतीभिरोषधीभिः पर्णैभिः शकुनानां
कामारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवंतमिच्छति
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना
नानाधियो वसूलवोऽनु गा इव तस्मिथ

धन के पीछे सब पागल हैं। इसीलिये तो वैदिक-कालीन आस्तिक भी अर्थ की, 'विश्वपोष रवि' 'विश्व को पुष्ट करनेवाले धन की, सदा कामना करते थे †। यह परंपरा अर्थशास्त्रकारों ने सदा क़ायम रक्खी, और भारत फला-फूला। इसके बाद वेदों का अर्थ लुप्त हो गया। उपनिषद्-काल में कुछ दार्शनिक कहने लगे—'वित्तमोहेन मूढाः', और सांसारिक उन्नति के उपाय 'अविद्या' नाम से पुकारे जाने लगे। श्रेय और प्रेय—परलोकवाद तथा इहलोकवाद—में लोकयात्राशास्त्र को नीचा स्थान मिलने लगा। फल यह हुआ कि भारत में, त्याग के अवतार बुद्ध, भारतीय जनता को त्याग का पाठ पढ़ा सके, और भारत लौकिक पतन के पथ पर भयंकर तेज़ी से बढ़ने लगा, तथा आज सारी जाति जड़ बन गई है, और हमारे 'विद्वान्' जो पग-पग पर लौकिक शास्त्र के सिद्धांतों का परिचय देते हैं—वेद, गीता, महाभारत आदि ग्रंथों का—आध्यात्मिक अनुवाद, भाष्य, टीका और अर्थ करने में अपनी सारी बुद्धि ख़र्च कर रहे हैं ‡। नतीजा वही हो रहा है, जो होना

* स्वायुधं स्वनाकं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणां
च कृत्यं शस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः आदि

† क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वामर्थे

‡ पाठक पंडित सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा लिखे गए तथा माधुरी में प्रकाशित भारत में निरीश्वरवाद-नामक मेरे लेख का खंडन पढ़ें। इस 'उत्तर' की तर्क-प्रणाली देखकर, जिसमें आर्यसमाजी विद्वानों के एकदेशी और एकांगीन दृष्टिकोण का ज्वलंत उदाहरण मिलता है, मैंने इसका उत्तर देना उचित नहीं समझा। इसके अतिरिक्त विद्वान् लेखक के मेरे विरुद्ध दिए गए [illegible] विचारशील निष्पक्ष पाठकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। हमारे चारों ओर छोटे-मोटे सब राष्ट्र प्रगति की ओर दौड़ रहे हैं, और हमें टस-से-मस होने में युगों की आवश्यकता पड़ रही है।

इन विचारों के महासागर में डूबता-उतराता हुआ मैं होटल पहुँचा। बाहर बरामदे में लोग खाना खा रहे थे। उन्हें देख भूख ने मुझे भी सताना आरंभ किया। एक मेज़ पर बैठ गया। इसमें एक युगल दंपति भी भोजन कर रहे हैं। किस आनंद से ये इस समय अपनी क्षुधा की तृप्ति कर रहे हैं! साथ ही मदिरा-पान कर रहे हैं! ऐसा मालूम पड़ता है, मानो इन्हें कोई दूसरा काम है ही नहीं। किंतु इनसे बात करने पर मालूम हुआ कि पति जर्मनी के प्रसिद्ध बिजली के कारख़ाने सीमेंस और शुकर्ट में डाइरेक्टर हैं, और उसने कई नए आविष्कार किए हैं। ये दोनों बर्लिन से आए थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैंने बर्लिन में अध्ययन किया है, और मैं उक्त नगर से पूर्णतः परिचित हूँ, तो वे मित्र बन गए, और बेतकल्लुफ़ी से वार्तालाप होने लगा। आज-कल छुट्टियों में ये अपनी मोटर में भ्रमण कर रहे हैं। पत्नी विदुषी हैं, और स्वयं भी एक मोज़ों के फ़र्म में डिरेक्ट्रेस हैं। किंतु भ्रमण में दोनों सब कुछ भूल गए हैं। इन्हें इस समय एक ही धुन है—स्वास्थ्य सुधारने और आहार-विहार में निमग्न रहने की। यह है वह जाति, जो म्लेच्छ होने पर भी ऋषियों के समान पूजनीय है। योरप में भारत के विषय में जानने का सबको शौक़ है। और, हमारे दुर्भाग्य से सर्वत्र यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्यों तुम लोग ग़ुलामी का जुआ अपने कंधों से नहीं उतार फेकते? मैं इस सवाल का उत्तर देते-देते थक गया हूँ, और मेरी महान् लज्जा हर बार मुझे अधिकाधिक सिर नीचा करने को बाध्य करती है। मैं अँगरेज़ों को गाली दे अपनी शर्म छिपा सकता था; किंतु क्या इससे मेरी जाति में जो कमज़ोरियाँ हैं, वे कम हो जातीं? जो हो, मैंने उत्तर दिया, और भोजन समाप्त कर ऊपर अपने कमरे में चला गया। दूसरे रोज़ मुझे आइस-रीज़न-वेल्ट (Eisriesen-welt) के दर्शन करने थे।

प्रातःकाल उठा। लाठी और छाता साथ ले हिम-गह्वर की ओर प्रस्थान किया। होटल के दरबान ने मुझे एक ऊँचे पर्वत-शिखर पर एक नुक़ता दिखाया और कहा—वहाँ हिम-गह्वर का प्रवेश-द्वार है। प्रायः चार मील की भयंकर उँचाई तय करनी थी। मैं चल दिया। आधा मील मैदान था, जो सहज में पार हो गया। अब उँचाई पर चढ़ने लगा। एक तख़्ते पर लिखा था—'आयगन क्लाम

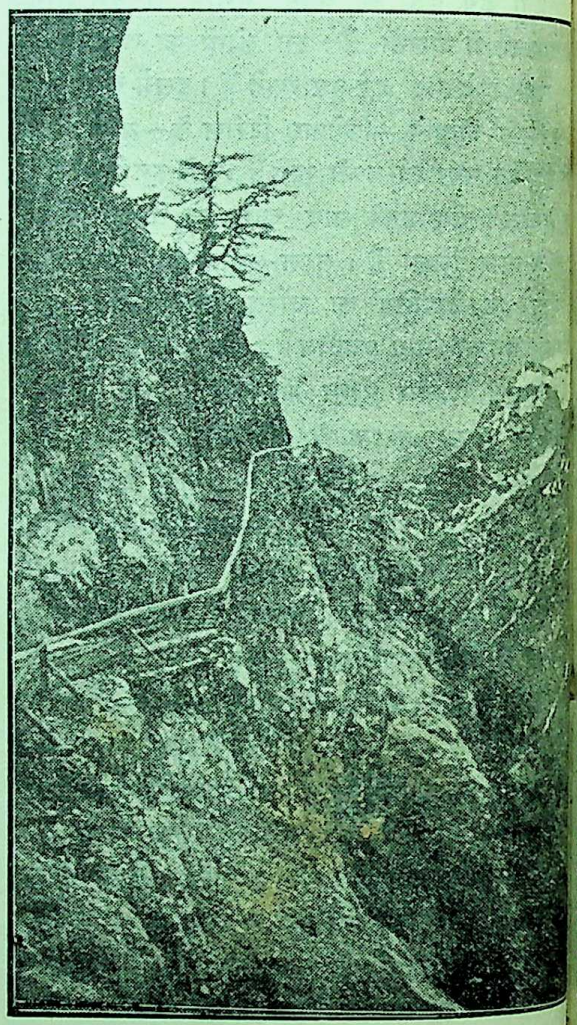

हिम-गह्वर के पथ में—
(बदरीनाथ के रास्ते में झूले की तरह यह लकड़ी का बना रास्ता पड़ता है। चट्टान काटकर यह बनाया गया है।)

लिये, मेरे मत का समर्थन करते हैं। किंतु इससे पता लगता है कि किस प्रकार हम लोग अपनी आध्यात्मिक धुन में हठधर्म को अपनी लाठी बना लेते हैं, जिसके ज़ोर से सत्य की निष्पक्ष खोज या ज्ञान के निष्काम सेवारूपी बैल को हाँकने का हास्यप्रद प्रयत्न करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रास्ते आइस-रीज़न-वेल्ट गुफा को "(nach Eisriesenwelt über Eugen Klamm)" यह आयगन क्लाम जलप्रपात है। मैंने यही रास्ता पकड़ा। रास्ता क्या है, तंग पगडंडी है, और उस पर चट्टान काट-काटकर सीढ़ियाँ बना दी गई हैं। इन पर चढ़ा, और थोड़ी ही दूर पर जलप्रपात के दर्शन हुए। प्रायः पाँच गज़ की उँचाई से तीन गज़ की चौड़ाई का जल गिर रहा था। कुछ भी नहीं, सो मुँह धोकर ही पुण्य लूटा। कितना स्वच्छ और शुद्ध जल है! कुछ समय तक सबसे ऊपर के शिखर से इन सीढ़ीदार जलप्रपातों का निरीक्षण करता रहा। इस एकांत में प्रकृति का राग-रंग, जल का उल्लासमय नृत्य, तथा पक्षियों का प्रफुल्ल संगीत मन और आत्मा को आनंद से भर रहे थे। एक-एक क्षण में वर्षों की थकान मिट रही थी। प्रकृति के साथ साक्षात् परिचय होने के कारण

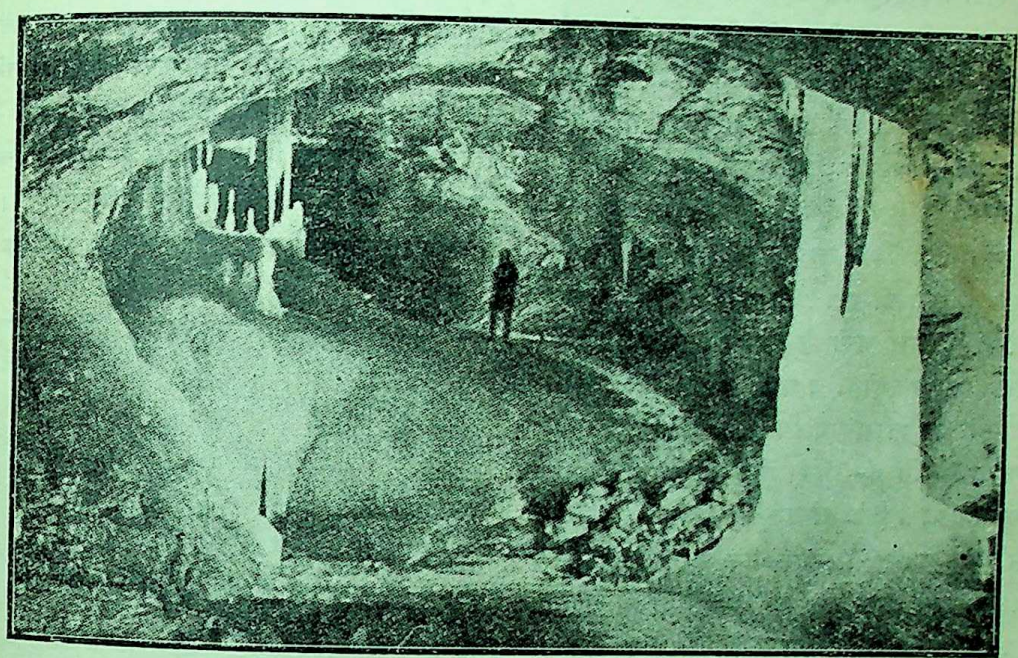

हिमगह्वर का दोनार-मंडप

(इसके खंभे और सतह सब बने हुए हैं)

वह घाटी इतनी तंग थी कि जल के कण मेरा चुंबन करने आ रहे थे। यह दृश्य तथा प्रकृति का वह स्वागत देख अत्यंत आनंद प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा। यहाँ लकड़ी की सीढ़ियाँ बना दी गई हैं, और इन पर चढ़कर आगे बढ़ना पड़ता है। एक चोटी से दूसरी चोटी आती है, और दूसरी से तीसरी। इस भाँति मैं पाँच चोटियाँ चढ़ा, और जलप्रपात का सिलसिला जारी रहा। प्रत्येक चोटी से पानी गिरता है, और नीचे एक कुंड बन जाता है। वहाँ से फिर पानी झरता है, और दूसरा कुंड बनता है। इसीलिये इस जलप्रपात-श्रेणी को 'क्लाम' याने सीढ़ीदार जलप्रपात कहते हैं। इस स्वच्छ जल में स्नान करने की प्रबल इच्छा हुई। किंतु पास में धोती-लुटिया आत्मा अपने को भरी-पुरी पा रही थी, मानो कुछ ही समय पहले उसमें कुछ स्थान रिक्त था—ख़ाली था; यहाँ प्रकृति ने अपनी प्ररणा से उसे भर दिया है। न-मालूम कितनी देर आत्मविस्मृत वहाँ खड़ा रहा। जब चेतन हुआ, तो आगे बढ़ने लगा। वन के बीच पहाड़ी रास्ता चला जाता है, और लोहे की नोकदार पहाड़ी लाठी इस कँकरीले, फिसलनदार मार्ग में बड़ी सहायक होती है। ढाई मील तक सुगम रास्ता है। आदमी किसी विशेष असुविधा या कष्ट के वहाँ तक जा सकता है। इस आधे रास्ते पर एक रेस्टोराँ है। इसका नाम है आइस-रीज़न-वेल्ट रास्ट ह्यूट्टे, अर्थात् हिम-गह्वर-विश्राम-स्थान। यहाँ तक चढ़ते-चढ़ते यात्री को भूख-प्यास सताने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगती है। मैं भी तृषित था, कुछ विश्राम करने के लिये वहाँ बैठ गया। वह एकतल्ला छोटा झोपड़ा लकड़ी का बना हुआ है। एकदम देहाती। बिना रोग़न किया हुआ सामान इसमें रक्खा गया है। पास से ही पेड़ काट सब सामान बना लिया गया है। बाहर आँगन में इसी भाँति दो बेंचें और उनके सामने लंबी मेज़ें जमा दी गई हैं। मैं धूप में बाहर ही बैठा। यहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि रोटी-मक्खन मिल सकता है। मैंने उसी का आर्डर दिया। सौभाग्य से दही भी था, सो आनंद से भूख-प्यास बुझाई, और विश्राम किया। यहाँ कई युवक-युवतियाँ आराम कर रहे थे। उनसे वार्तालाप हुआ। यहाँ से सामने के पर्वतों का दृश्य भव्य है। हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणी सूर्य की किरणों से चाँदी की भाँति तप रही थी। हिमरेखा के नीचे सघन हरा वन अपनी मस्ती में मत्त हो रहा था। नीचे घाटी में एक नदी बह रही है, और नदी के किनारे रेल की लाइन साँप की भाँति रेंग रही है। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की पूर्णता में यह लौहयान बाधा डाल रहा था। इस शांत निस्तब्ध प्रकृति की गोद में आनंद मानो हवा की भाँति बह रहा था। क्षुब्ध संसार से विरक्त, थके-हारे हम लोग उसे अपने श्वास के साथ पान कर रहे थे, और अपने चारों तरफ़ इस निर्मल रमणीयता में उसका विशुद्ध स्वरूप देख रहे थे। किंतु समय-समय पर रेल की भक्-भक्, इंजिन का धुआँ और लाइन की खड़खड़ाहट कुछ समय के लिये इस स्वर्गीय शांति में इस प्रकार उथल-पथल मचा दे रहे थे, मानो शांत, तरंगहीन सागर में एकाएक न-मालूम कैसे ज़ोर का तूफ़ान आ गया हो। प्रायः पौन घंटे आराम कर हम सब साथ आगे बढ़े। यहाँ से विकट चढ़ाई आरंभ होती है। आगे मिट्टी नहीं है, चट्टान-ही-चट्टान पर चढ़ना होता है। इस पथ के लिये साधारण जूते काम नहीं देते। मज़बूत बूट ही यहाँ चल सकते हैं। और, यदि उनके तल्ले में परेखें व कीलें न हों, तो पग-पग पर रपटना पड़े। इस पर पहाड़ी लाठी सहारा देती है। हम लोग धीरे-धीरे आगे बढ़े। युवतियाँ बड़ी हिम्मती हैं, लेकिन उनसे मर्दों की भाँति चढ़ा नहीं जाता। कई जगह उनके कारण बैठना पड़ा। चढ़ाई वास्तव में कठिन है। इन चट्टानों और पत्थरों पर आगे बढ़ना आसान नहीं है। ये लोहे की नाल तथा कील व परेखदार जूते भी फिसलते हैं, और उस पर रास्ता तंग और ख़तरनाक! यदि कोई नीचे को फिसले, तो कई स्थानों में तो नदी के जल में ही जाकर ग़ोते लेगा। उनकी हज़ार-हज़ार बलिहारी है जिन्होंने यह पथ ढूँढ़ निकाला और ऐसे चिह्न रास्ते-भर कर दिए हैं कि लड़के-लड़कियाँ भी हिम-गह्वर तक पहुँच जाती हैं। विकट चट्टानी और बर्फ़ानी पहाड़ों के शिखरों पर चढ़ना योरप में एक शास्त्र बन गया है। आस्ट्रिया, जर्मनी तथा स्विट्ज़रलैंड के विश्वविद्यालयों में, यहाँ के पर्वतों की बनावट, उनका भू-वर्णन, उन पर चढ़ने के ढंग आदि विषय विचक्षण अध्यापक पढ़ाते हैं। कितने वीर हर साल पहाड़ों पर चढ़ने की कोशिश में जान देते हैं। इसका पता आस्ट्रिया और स्विट्ज़रलैंड के पत्रों से चलता है। आए दिन ऐसी दुर्घटनाएँ पढ़ने को मिलती हैं। वह दृश्य मुझे नहीं भूलता, जब एक दिन दोपहर को एक बवेरियन

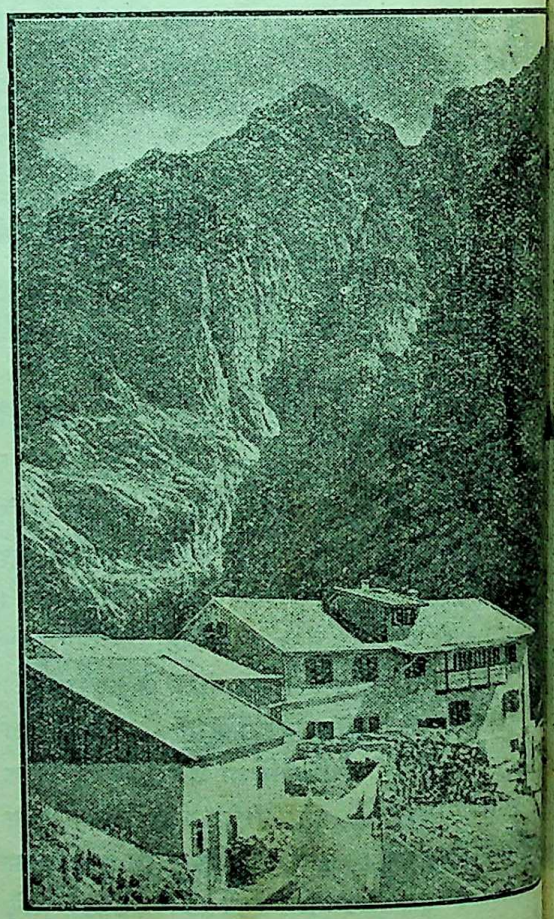

मिट्टी-सीमेंट से पोटन-किर्शल-नामक गिरि-शृंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार के साथ मैं स्ट्रिपसजयोख़-नामक गिरि-शिखर पर गया था। उसके सामने फ़्लाइशबांक (Flcisshbank) और टोटन-किर्शल (Totan kirschl)-नामक चट्टानी पहाड़ हैं। पर्वत क्या है, सीधे चट्टान खड़े हो गए हैं। वीर-स्वभाव नर-नारी इन पर रस्से, परेख तथा उपयुक्त औज़ारों से संयुक्त लाठी आदि की सहायता से चढ़ते हैं। उस रोज़ आकाश स्वच्छ था, समय सुहावना था, और रविवार था। दूर-दूर से ये खिलाड़ी इस स्पोर्ट में भाग लेने के लिये आए थे। जहाँ तक हम चढ़े थे, वहाँ तक किसी-न-किसी तरह का पथ था। लेकिन इन चट्टानों में तो पथ ढूँढ़ना पड़ता है, या नया मार्ग निकालना होता है। कई यात्री ऊपर चढ़ रहे थे। हम लोग दूरबीन की सहायता से, मृत्यु के साथ क्रीड़ा करनेवाले इन तेजस्वी वीरों का 'स्वर्गारोहण' कांड देख रहे थे। कई तो सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गए थे, और उन मनस्वी, कार्यार्थी खिलाड़ियों को अपनी किलकारियों से उत्साहित कर रहे थे, जो अभी तक ऊपर न चढ़ पाए थे। इतने में एक ज़ोर की चीख़ सुनाई दी, और एक यात्री न-मालूम कहाँ विलीन हो गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। हम सब दर्शकों के हृदय में जिस भीतिमय वीर-करुणरस का उद्रेक हुआ, वह हमीं जानते हैं। जान-बूझकर ये लोग अपनी जान ख़तरे में डालते हैं, और इनमें से अधिकांश कभी-न-कभी इस खेल के अर्पण हो जाते हैं। ऐसी पगली धुन किस काम की? इस पर्वतारोहण से क्या लाभ होता है?—आदि प्रश्न हम लोग आपस में पूछने लगे। एक पेशेदार चढ़ाका वहाँ था, उससे ये प्रश्न न सहे गए। उसने कहा—आप लोग नाम को भी इस खेल का आनंद नहीं ले सकते। क्यों अनधिकार चर्चा कर हम लोगों को जलाते हैं? हृदय की विचित्र विकलता ने मेरी अजीब दशा कर दी। इसमें संदेह ही क्या कि हम-जैसे गीदड़-स्वभाव, दुर्बल, तेजहीन मनुष्य इन शूर-प्रकृति खिलाड़ियों की आत्मा में प्रवेश कर सकें। इतने में कुछ लोग लाश की खोज में गए, और प्रायः ढाई घंटे बाद हमें ख़बर मिली कि वह चढ़ाका ७० गज़ की उँचाई से गिरा है, किंतु चोट सांघातिक नहीं है। आशा है, वह भला-चंगा हो जायगा। हम सबको इस सुसमाचार ने उतना ही आश्चर्यान्वित किया, जितना हर्षित। जीवन की क्षणिकता, दैवाधीनता आदि पर विचार कर हम लोग कभी न सुलझ सकनेवाली जन्म-मरण की पहेली पर माथापच्ची करने लगे—"किमाश्चर्यमतः परम्।" अस्तु।

इस मार्ग में हमें ऐसे पुल मिले कि नीचे को देखते ही सिर चक्कर खाने लगता है। वेर्फ़न-पुल का (Werfenbruecke) दृश्य देखिए। कई यात्री इसके ऊपर से नीचे को नहीं देख सकते। बाइसत्सांगनस्टाइग (Beiozargensteig)-नामक रास्ता भी ख़तरनाक है। यदि काठ का रेलिंग न हो, तो इस पर गुज़रना कठिन हो जाय। किंतु कई अंश इतने तंग हैं कि बड़ी ही सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। हम लोग ज्यों-त्यों आगे बढ़ रहे हैं; किंतु अब धूप तेज़ हो गई थी। इसलिये सब

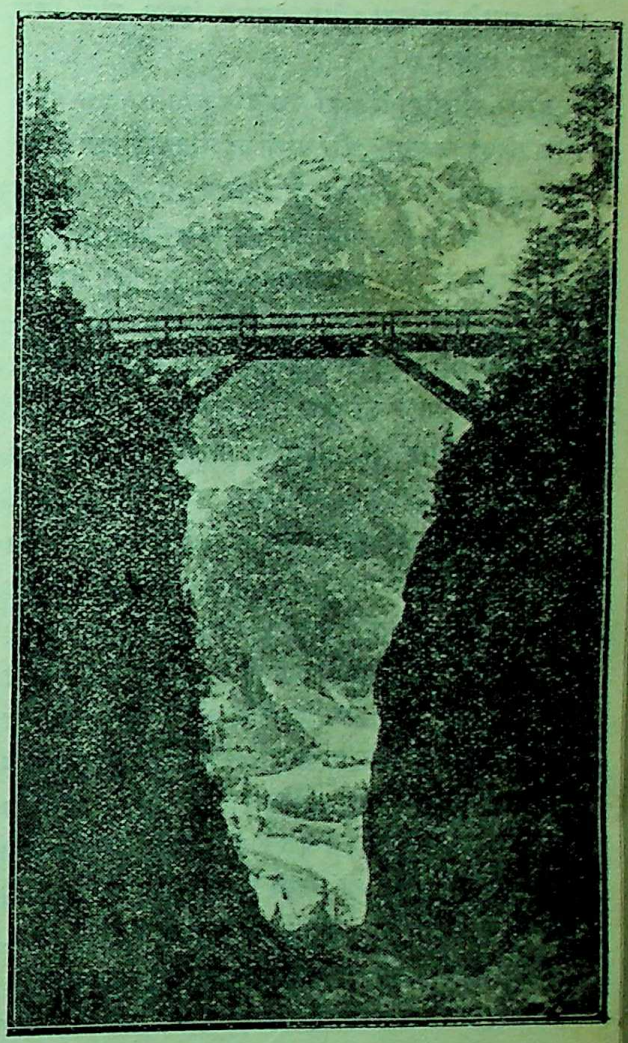

रास्ते में एक भ्रमोत्पादक पुल

(इससे नीचे देखने में सिर चक्कर खाने लगता है, किंतु सामने का दृश्य नैसर्गिक है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसीने से लथपथ हो रहे हैं। प्यास सताने लगी है, किंतु इस चट्टान में पानी कहाँ। मुझे तो राजपुर से 'झड़ि-पाणि' (मसूरी) तक का दृश्य याद आया। वहाँ उस चढ़ाई में जल नहीं मिलता। और, यदि मसूरी-स्थित नेपाल के राजघराने के निर्वासित राजकुमार 'झड़िपाणि' पर पानी का नल न लगवा देते, तो यात्री अधमरा होकर मसूरी पहुँचता। मेरा मतलब निर्धन और पैदल यात्रियों से है।

हमारे सौभाग्य से यहाँ एक अध्यवसायी युवती ने एक छोटा झोपड़ा बनाया है, और उसमें वह नींबू का शरबत बेचती है। कुछ दूर से यह काठ की छोटी-सी कोठरी चुंगी-तहसील मालूम पड़ती है, और कई यात्री झल्लाना शुरू करते हैं कि 'लो क़दम-क़दम पर पैसा ख़र्च करना पड़ता है'; किंतु नज़दीक पहुँचने पर सब लोग इस उपकारिणी महिला को आशी-र्वाद ही देते हैं। कुछ देर हम यहाँ बैठे। सामने बर्फ़ानी पर्वतों की माला हमारे और भी नज़दीक मालूम देती थी। साथ ही हमारे दृष्टिगोचर परिधि विस्तृततर हो रही थी। इस चट्टान के नीचे और सामने, परली पार, हरित सघन वन में, एक प्रकार के देवदारु के पेड़ इस शांति से क़तार बाँधे खड़े थे, मानो प्रकृति के मर्म का जीवों को परिचय करा रहे हों। नीचे ग्राम (वेर्फ़न और टेनेक) इस सौंदर्य को प्रणाम कर रहे थे। कुछ समय यहाँ से यह स्वर्गीय दृश्य देखते रहे। रेल की लाइन क्या सुंदर बन गई है। रेलगाड़ी चल रही है, किंतु यहाँ तक आवाज़ नहीं पहुँचती। इससे पता चलता है कि हम लोग कितने ऊपर आ गए हैं। एक टीले पर पुराना क़िला है। उसकी शोभा देखते ही बनती है। हरित वृक्षों के बीच में वह क़िला अपने लाल और हरे रंग से रँगी हुई छत, खिड़की आदि तथा गुंबदों से, जो चार सौ साल पुराने हैं, हर तरह प्रयत्न कर रहा है कि इस सुघड़ प्रकृति के साथ सामंजस्य रक्खे। नीचे नदी इस नज़्ज़ारे को सरस कर रही है। और, सब मिलकर इस निसर्ग ने वह मंगलमय रूप धारण कर रक्खा है, जिसे कालिदास ने 'देवतात्मा' नाम दिया है, और जिसका रूप-संचयन कर भारतीय कलाकारों और प्रकृति के परम उपासक मुनियों और दार्शनिकों ने 'गिरितनया पार्वती' की मूर्ति रची है। अनंत काल में, असंख्य आत्माओं ने जड़-जगत् का यह आध्यात्मिक रूप ही खोजा है कि उन्हें उस सुंदरता के दर्शन हों, जिसमें स्वभावतः शिव और सत्य बसते हैं। धन्य है वह क्षण, जब विश्वविमोहिनी छवि अपना परदा छिन्न कर हमारे सामने उघरती है। इस एक पल को यदि मनुष्य पकड़ सके— अपने हाथ में कर सके—तो क्या वह अमर न हो जाय ? इस कुटिया के सामने चट्टान पर लेटे हुए हम सब ऐसे ही आनंद की अनुभूति में निमग्न थे। समय की गति रुक-सी गई थी। किंतु कुछ साथियों को चलने की सुध आई, और अपने राम भी साथ हो लिए।

विदा } हेमचंद्र जोशी

चुंबन *

(१)

प्रथम प्रेम का ललित शब्द कहती गिरा ;
तब कृतज्ञता-ज्ञापन-हित सद्भाव से,
झुककर करते उसके अधर-कपाट पर,
चुंबन-रूप प्रणाम लोग क्या चाव से!

(२)

मृदुल अधर प्याली में सुधा-समुद्र है,
देख पूर्ण चंद्रानन उमड़ पड़े कहीं—
चुंबन का दृढ़ बाँध बाँधकर रोकते,
सचमुच क्या हैं रसिक इसी से तो नहीं!

(३)

अगणित उड़गण एक चंद्र के साथ हैं,
फिर जब चुंबन समय कलाधर दो मिले
तब क्या है आश्चर्य हृदय के गगन में,
अमित हर्ष के जो असंख्य उड़गण खिलें

(४)

चुंबन का पीयूष भुलाकर भ्रांत जो,
सुधा बताते हैं शशि में—पाताल में
वे निश्चय मतिहीन नहीं यह जानते,
उसका मिलना कठिन हमें त्रयकाल में

(५)

प्रेमी जब प्रेमी का कर ले चूमता,
तब होती अघटित घटना यह ज्ञात है

---

* 'नैवेद्य'-नामक पुस्तक से।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमल चंद्र का प्रेम कहाँ कैसे हुआ ?
सचमुच यह तो बड़ी विलक्षण बात है।

(६)

चुंबन के कुछ वर्ण आ गए, इसलिये
चुंबक में आकर्षण इतना भर गया ;
मधुर अधर हो गए इसी से क्या कहा ,
चुंबन का माधुर्य बिखर उन पर गया ?

(७)

चुंबन को मादक मदिरा कैसे कहें ;
कारण, मदिरा शब्द अयश का धाम है।
और सुधा कहकर करना भ्रम-वृद्धि है ;
क्योंकि सुधा, कलई का भी तो नाम है ?

(८)

तब क्या जो अनुराग सिंधु उर में भरा ,
छलक उठा, यह उसका ही मृदु रव कहें ;
या मिलनातुर उभय मुखों की गूढ़तम ,
आपस की ही बात बताकर चुप रहें ?

(९)

या प्रिय-प्रेम वसंत प्राप्त कर हृत्कली ,
चिटख़ पड़ी यह हुई उसी की ध्वनि अहा ;
उसका 'चुंबन' नाम किसी ने रख दिया ,
चुंबन-प्रेमी कहें मृषा हो यदि कहा ?

(१०)

वामन के अवतार-गृहण से प्रथम ही ,
हुई रमापति को भी होगी यह व्यथा ;
चुंबन में लघुता न कहीं बाधक बनें ;
तब मनुजों की बात व्यर्थ है सर्वथा ?

(११)

जाने क्यों दो-एक चुंबनों में सजनि ,
खो जाता चैतन्य न रहता ध्यान है ;
फीका होते देख, मुक्ति का मोद क्या ,
विधि ने ही, यह निष्ठुर रचा विधान है ?

(१२)

चुंबन का माधुर्य, मधुर कलरव तथा
चुंबन का नव नृत्य सभी कुछ धन्य है ;
मानो इसके निखिल गुणों पर मुग्ध हो ,
किया विश्वपति ने ही इसे अनन्य है ?

हरिश्चंद्रदेव वर्मा 'चातक'

रंगभूमि और वैनिटी फ़ेयर

अब से बहुत दिनों पहले सरस्वती में श्रीअवध उपाध्याय की रंगभूमि और वैनिटी फ़ेयर की परस्पर संबंध-विषयक लेख-माला कई मास तक निकलती रही थी। उसमें उन्होंने गणित के समीकरणों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि वस्तुतः रंगभूमि की निजी महत्ता कुछ भी नहीं है—यदि है भी, तो उसमें लेखक के चित्रण-नैपुण्य के स्थान पर उसकी तद्विषयक अनभिज्ञता ही प्रकट होती है। वैनिटी फ़ेयर में एक से अधिक नायक हैं, और रंगभूमि में भी एक से अधिक नायक हैं; नायिकाओं के विषय में भी यही बात है। रंगभूमि में प्रेमचंदजी ने राजनीति का पुट देकर भूल की है, वैनिटी फ़ेयर में समाज-चित्रण किया गया है, और वह ठीक है। इसके बाद आपने वैनिटी फ़ेयर की अमेलिया का रंगभूमि की सोफ़िया के साथ (जिसमें कुछ भाग रेबेका का भी रहता है); जार्ज आसबर्न का विनय के साथ (जिसमें थोड़ा-बहुत डाबिन भी मिला रहता है); रेबेका का इंदु के साथ (शायद सोफ़िया के चरित्र-निरूपण से शेष बचा अंश !) और यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार वैनिटी फ़ेयर के अन्य एक या एक से अधिक पात्रों का रंगभूमि के पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। अपनी लेखमाला में उन्हें अनेक स्थानों पर अपने ही कथन को आगे चलकर खंडित करने की भी आवश्यकता पड़ी, और ऐसे अवसरों का भी पाठकों को यथा-स्थान दिग्दर्शन कराया जायगा। मतलब यह है कि लेखमाला-भर में वस्तु-स्थिति की अपेक्षा गणित के समीकरणों, परस्पर विरुद्ध बातों और भ्रामक सादृश्यों का आधिक्य है। इस माला की दो क़िस्तें छपने के बाद प्रेमचंदजी का 'अपनी सफ़ाई में' एक संक्षिप्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने अपने ऊपर उस समय तक लगाए गए आरोपों का निरसन कर दिया। पर लेख-माला बराबर प्रकाशित होती रही।

ऐसी आलोचनाएँ बहुधा अनभिज्ञ पाठकों को भ्रांत कर देती हैं, और वे किसी अच्छी या बुरी पुस्तक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक महत्ता के विषय में अपना निजी निर्णय करने के साधनों से वंचित हो जाते हैं। बहुत-से सज्जन तो ऐसी पुस्तकों को पढ़े बिना ही उनके विषय में कोई भ्रम-पूर्ण धारणा कर बैठते हैं। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार विवेचना के वास्तविक उद्देश की हत्या कर दी जाती है, और वह साहित्य के दूषित अंग के परिष्कार के स्थान पर उसके उपयोगी अंगों पर कुठाराघात करने का काम देती है। हमें इस लेखमाला का अब दो वर्ष बाद कोई उत्तर देने की विशेष आवश्यकता न थी, यदि हम उससे रंगभूमि के भावी पाठकों को भ्रम में पड़ते हुए न देखते। हमने अपने कई मित्रों से रंगभूमि पढ़ने का अनुरोध किया (और—ऐसा हम सदैव करते रहते हैं), तो उन्होंने उत्तर दिया "उसके पढ़ने की क्या आवश्यकता है ?—वैनिटी फ़ेयर तो पढ़ा ही है, रंगभूमि उसका अनुवाद है !" हमारे आग्रह से हमारे कई मित्रों ने रंगभूमि पढ़ी, और वैनिटी फ़ेयर की एक बार फिर आवृति की, और तब उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"कल्पना-शक्ति पर भरसक ज़ोर डालने पर भी वैनिटी फ़ेयर और रंगभूमि का कोई सादृश्य स्थापित नहीं किया जा सकता।" हमारी भी यही धारणा थी, और है। पर हम चुपचाप देख रहे थे कि इसका उत्तर भी प्रकाशित होता है या नहीं। अभी तक कोई उत्तर नहीं निकला है; और हमारा ख़याल है कि रंगभूमि की वास्तविक महत्ता की स्थापना के लिये किसी-न-किसी उत्तर की नितांत आवश्यकता है।

महाकवि वर्ड्सवर्थ ने एक बार अपने आलोचकों से दुःखी होकर लिखा था—

"The writers in these publications (Reviews) while then prosecute thur in glorious employment, cannot be supposed to be in a state of mind very favourable for being affected by the finer influences of a thing so pure as poetry."

अर्थात् "आलोचना-संबंधी पत्र-पत्रिकाओं के लेखक, जो अपने विवेचना-विषयक गर्हित कार्य में संलग्न रहते हैं, संभवतः काव्य-जैसी पवित्र कला के उत्कृष्ट प्रभाव की अनुभूति करने में असमर्थ रहते हैं।" उपन्यास-रचना भी गद्य-काव्य में ही सम्मिलित है।

पर हम उक्त कवि-सम्राट् के 'गर्हित'-शब्द से सहमत नहीं हो सकते। समालोचना की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी किसी उत्कृष्ट नवीन रचना की। वर्ड्सवर्थ विश्लेषणात्मिका शक्ति को सृजनात्मिका शक्ति से अतीव, नितांत निकृष्ट स्थान देता था। उसकी सम्मति में दूसरों की रचनाओं पर आलोचनात्मक निबंध लिखने के स्थान पर मौलिक रचनाएँ करना अधिक उपयोगी था, जिससे आए दिन होनेवाले 'उत्पात' में बहुत-कुछ कमी होने की संभावना थी; और ऐसे लेखकों को अपनी रचनात्मिका शक्ति का भी ज्ञान हो जाता। पर हम विवेचना को इतना निम्न-स्थान देने को प्रस्तुत नहीं हैं। यदि आलोचनाएँ निष्पक्ष और सत्यता-पूर्ण हों—उनमें वस्तु-स्थिति की जान-बूझकर हत्या न की गई हो—तो वे अवश्य अपना अभीष्ट सिद्ध करेंगी, और उनका अभीष्ट साहित्य-परिष्कार है, उसका विश्लेषण है, और भ्रांत और दूषित रचनाएँ करनेवाले लेखकों का मार्ग प्रदर्शन करना है।

अब हमें यह देखना है कि वैनिटी फ़ेयर और रंगभूमि की परस्पर तुलना करनेवाले महोदय ने निष्पक्षता और सत्यता से कितना काम लिया है। हम यह नहीं कहना चाहते कि अवधजी ने जान-बूझकर पक्षपात और अनौचित्य से काम लिया है। वह हमारे मित्र हैं, और उनसे हम ऐसी आशा नहीं करते। पर लेखमाला सामने मौजूद है और वैनिटी फ़ेयर के साथ स्थापित किए गए रंगभूमि के संबंध का विश्लेषण करने के लिये कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है।

अब हम अपने विषय पर आते हैं। अवधजी के आरोपों का क्रमबद्ध उत्तर देने में लेख के अनावश्यक विस्तार की आशंका है; अनेक स्थानों पर उन्होंने एक ही बात बार-बार कही है, और बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनमें से एक या एक से अधिक का उत्तर देने के बाद शेष का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। हम दोनों पुस्तकों के संबद्ध पात्रों का, संक्षेप में, एक-एक करके चरित्र-चित्रण करते जायँगे, और फिर उसकी सहायता से आरोपों का निराकरण करने की चेष्टा करेंगे। हमारी समझ में यह रीति सरल और सहज रहेगी।

वैनिटी फ़ेयर (इंपीरियल एडीशन) की अमेलिया एक भोली-सी बालिका थी, जो न केवल कोयल की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूक ही सकती थी.....और जो न केवल स्वयं भाषा-कोष की तरह शब्दों का उच्चारण ही कर सकती थी, वरंच हृदय की भी बड़ी कोमल और उदार थी (पृष्ठ ५)। वह बौरंगी किसी मरे हुए पक्षी, या बिल्ली के झपट्टे में पड़े हुए चूहे को देखकर, या किसी दो कौड़ी काम के उपन्यास के अंत पर भेंकड़ा पूरने लगती थी। यदि कोई उसे आधी बात कह देता, तो स्वयं उसे ही बाद को पश्चात्ताप भोगना पड़ता (६)। उसकी भावी ननदें आश्चर्य करती थीं कि उसमें ऐसी कौन-सी अजूबा बात है, जिसकी ओर उनका भाई इतना आकृष्ट हो गया है। वे उस पर अपनी इतनी दया प्रदर्शित करतीं, और इतनी असह्य सहृदयता दिखातीं कि नन्हीं-सी बालिका उनके सामने अल्हड़ बावली-सी बैठी रहती; जिससे उनकी धारणा और भी पुष्ट होती (१४७-१४८)। वह नायिका होने योग्य नहीं थी, क्योंकि अपने भावी पति को वह अशुद्धियों और पुनरुक्तियों से भरे खर्रे-के-खर्रे लिख भेजती, जिनसे वह आनंद के साथ अपना सिगार सुलगाता (१५७—१७२)। अब अपने पिता की दुरवस्था के कारण उसका अपने भावी संपन्न पति के साथ संबंधविच्छेद हो गया और वर-कन्या के पिताओं में पारस्परिक वैमनस्य के कारण कन्या के पिता ने उसे उसके भावी पति के प्रेम-पत्र वापस देने की आज्ञा दी—जो अत्यंत संक्षिप्त और शुष्क होते थे—तो वह अपने प्रणय के उस मूर्तिमान शव पर वज्राहता की नाईं बैठी रही, उसे पत्र वापस करने का साहस न हो सका; और वह उत्कंठा के साथ मृत्यु की बाट जोहने लगी (२४४-२४५)। वह अपने प्रेमी को संसार में सबसे अधिक उदार, महान् और आत्म-त्याग करनेवाला समझती थी; क्योंकि उसने उस-जैसी बेशऊर लड़की के साथ प्रेम करने की महती उदारता दिखाई थी (२७०-२७१)। जब उसके प्रेमी के मित्र डाबिन के प्रयत्न से दोनों में विवाह हो गया, और वर-वधू प्रणय-पक्ष (हनीमून) मनाने चले गए, और वहाँ उसकी सखी रेबेका ने उसके पति जार्ज पर अपना फंदा डाल दिया, तो उसने अपने पति को दोषी नहीं ठहराया। उसने मन-ही-मन निश्चित किया कि वह उसके योग्य ही नहीं थी। उसे उसके साथ विवाह ही नहीं करना चाहिए था; पर क्या करती, उसके हृदय में इतनी सहन-शक्ति नहीं थी। वह ऐसे महान् व्यक्ति को अपना लेने में अपने को स्वार्थ की दोषी ठहराती (३४३)। वह एकांत में जाकर अपने स्वभाव-सिद्ध बेहूदे ढंग से रोती-चिल्लाती (३४५)। जब जार्ज वाटरलू युद्ध में मारा गया, तो वह किस प्रकार हतबुद्धि हो गई थी—किस प्रकार वह अपने शर्मीले प्रेमी डाबिन की सुश्रूषा और सहृदयता और अपने श्वसुर की निष्ठुरता और उपेक्षा की ओर से उदासीन हो गई थी (दूसरा भाग १२६);—किस प्रकार पुत्रोत्पत्ति से उसके शरीर में एक नवीन शक्ति और सजीवता उत्पन्न हो गई थी (१२६)—किस प्रकार इसने अपने जीवन की सारी आशाएँ इसी अचेतन मांस-पिंड में केंद्रीभूत कर दी थीं—किस प्रकार वह उसे किसी को हाथ तक न लगाने देती, और डाबिन को उसे यदाकदा खिलाने की अनुभूति देने में अपनी असीम कृपा समझती—किस प्रकार डाबिन की भारत-यात्रा के अवसर पर भी उसने उसके लज्जाशील प्रेम और उदारता के प्रति कोई कृतज्ञता प्रकट नहीं की थी—किस प्रकार उसने उसे हँसते-हँसते कृत्रिम सहृदयता के साथ बिदा कर दिया था, और उसके बाद किस प्रकार वह पुनः सुपुष्ट बच्चे का मुख-मंडल देखने में तल्लीन हो गई थी (१२७—१२९)—किस प्रकार अनेकानेक दारिद्र्यदुःख सहते हुए भी उसने अपने क्रुद्ध धनी श्वसुर को अपना पुत्र देना स्वीकार नहीं किया था (२८७)—और किस प्रकार वह पुनर्विवाह के विचार-मात्र से उत्तेजित और उद्विग्न हो जाती थी (३३४—३३५)—किस प्रकार वह मृत पति के मित्र को देखकर माता के क्रूर व्यवहार को चुपचाप सहन कर लेती थी (२९१)—और अंत में किस प्रकार इसने अपने स्वार्थ पर बच्चे के सुख को बलिदान होते देख उसे श्वसुर को दे दिया था, और इस आघात से वह मुमूर्षु-सी हो गई थी (३४०—३४४)। जब डाबिन भारत से लौटा, और अपने प्रयत्न से श्वसुर-पुत्रवधू में सौहार्द-भाव स्थापित कराने में सफल हुआ, और उसके सुख के दिन वापस आए, तो उसने उसके एवज़ में डाबिन को हार्दिक कृतज्ञता प्रदान की। पर किसी दूसरे आदान का विचार करते ही उसके सामने मृत पति की छायामूर्ति आ जाती, और कहती—"तू मेरी है, और हमेशा मेरी ही रहेगी" (तीसरा भाग १०६)। इसके बाद दोनों में स्थायी विग्रह होकर बाद को मेल हो जाता है, और फिर अपने मृत पति के दुर्व्यवहार का प्रमाण—एक पत्र—देख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उसकी मोह-निद्रा टूटती है, और अंत में वह डाबिन से विवाह कर लेती है।

यह संक्षेप में अमेलिया का चरित्र है। हमने इसे तनिक विशद रूप इसलिये दिया है कि मूल पुस्तक अँगरेज़ी में है, और आगे चलकर इससे बड़ी सहायता भी मिलेगी। रहा सोफ़िया का चरित्र, सो उसके चरित्र का इतना सविस्तार वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि रंगभूमि प्रायः सब पाठकों ने पढ़ी होगी। इंदु के विषय में भी यही बात है। इसकी तुलना अवधजी ने रेबेका से की है, जो स्वयं उनकी सम्मति में भी अत्यंत मायाविनी है (उपाध्याय-जी ने इस शब्द पर ज़ोर देने के लिये उसे दो बार प्रयुक्त किया है)। इसलिये हमें यथासंभव संक्षेप में रेबेका का भी चरित्र दे देना उपयुक्त जँचता है।

बैकी या रेबेका शार्प एक साधारण-से चित्रकार और नर्तकी की लड़की है (१३०—१३१); दुबली-पतली, चंचल, भूरे बाल और हरित-वर्ण नेत्र, जो हरदम पृथ्वी पर गड़े रहते हैं, या ईश्वर की प्रार्थना में एकदम आकाश की ओर उठ जाते हैं; वह चंचल स्वभाव की है, स्कूल के युवक पादरी से गुप्त संबंध स्थापित करती है, और जब दोनों के प्रेमपत्र पकड़े जाते हैं, तो साफ़ मुकर जाती है (१५); उसे शिकायत है कि स्कूल की बालिकाएँ उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करतीं, पर ग्रंथकार की सम्मति में संसार दर्पण है, जैसी आकृति बनाकर कोई देखेगा, वैसी ही प्रतिच्छाया उसमें भी अंकित हो जायगी (१३); उसके पास मातृ-हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं है, और जब वह स्कूल से बिदा होती है, तो उसकी नन्हीं शिष्याएँ तनिक भी दुःखित नहीं होतीं (१७); इसके बाद वह अमेलिया के छोटे भाई को अपने जाल में फाँसना चाहती है, और बहुत-कुछ प्रयत्न करने के बाद अंत में अमेलिया के भावी पति जार्ज और उसके बाल सखा डाबिन के कारण असफल होकर काली-भवन की अध्यापिका होकर चली जाती है (२२—८४); वहाँ जाकर वह सरपिट-काली के कान में मोहिनी मंत्र फूँकती है, और वह भी उसकी ओर बुरी तरह आकृष्ट हो जाते हैं। पर संतोष इस बात का है कि अभी उनकी पहली पत्नी जीवित है (११७—१२१); अब उसका स्वभाव बदल गया है; यह सबसे मेल करने का प्रयत्न करती है, और देखने से ज्ञात होता है कि वह वस्तुतः आत्मशुद्धि करने को तत्पर दिखाई देती है—पर यह भावना आंतरिक है अथवा कृत्रिम, इसमें संदेह है (१२२)। इसके बाद वह सरपिट के छैल-छबीले लड़के राडन के साथ गुप्त रूप से संबंध बढ़ाती है, और राडन इस डर से कि कहीं स्वयं सरपिट उस पर अधिकार न कर बैठे (क्योंकि उनकी पत्नी मरणा-सन्न पड़ी हुई है), उससे चुपचाप विवाह कर लेता है, और इस प्रकार अपनी बुआ की बड़ी संपत्ति से च्युत कर दिया जाता है (१४२—१४३, १७५—२००)। फिर उसका पति कैप्टेन राडन वाटरलू युद्ध में सम्मिलित होता है, और वह ब्रूसेल्स में रह जाती है (जहाँ उसने युद्ध से पहले अनेक युवकों को अपने रूप-लावण्य की ओर खींच-कर अपने पति की सहायता से जुए में उनकी जेबें ख़ाली करा चुकी है—जार्ज भी उन्हीं में सम्मिलित है) (दूसरा भाग, पहला परिच्छेद); अपने पति-वियोग में अमेलिया की भाँति रोने-धोने को अनावश्यक समझती है, और पूर्ण संयम-शांति के साथ उसके घोड़े मोटे जोज़ेफ़ (अमेलिया के भाई) के हाथ बेच डालती है, और विधवा होने की दशा में अपने निर्वाह योग्य धन की जोड़-बाक़ी निकालती है। यहाँ वह जोज़ेफ़ को अपनी लच्छेदार बातों में एक बार फिर फँसा लेती है, और उसे पूर्ण विश्वास दिला देती है कि वह उस पर बुरी तरह आसक्त है) (२२, ४१—४४, ६१-६२); वह जार्ज के प्रेमपत्र को, जो उसने उसे युद्ध-यात्रा की रात्रि को दिया था, देख-कर सोचती है कि एक इस तुच्छ पुर्ज़े से वह अमेलिया को पहले से भी अधिक शोक-संतप्त कर सकती है, (क्योंकि दोनों में इसी विषय पर कुछ वाद-विवाद हो चुका होता है), पर वह रह जाती है (६९)। इसके बाद वह अपने पति के साथ पेरिस चली जाती है, और 'विना आजीविका का जीवन-यापन' करती है; वहाँ वह बड़ी शान के साथ रहती है, बड़ी-बड़ी महिलाओं से भेंट करती है, और उसका पति कामुक फ़ौजी अफ़सरों और सीधे-सादे शहरी युवकों को जुए में ख़ूब ख़ाली करता है (१३०—१३६); पर बैकी इस जीवन से उकता जाती है, और किसी ठोस लाभ की आकांक्षा में, क़र्ज़ का रुपया चुकाए विना वहाँ से भागकर इँगलैंड आ पहुँचती है; साथ में उसका पुत्र भी रहता है, जिसकी वह तनिक भी चिंता नहीं करती (१३७—१४१)। लंडन में आकर वह अपने पति की बुआ के भूतपूर्व खानसामा का मकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराए पर ले लेती है, और उसी के धन पर शान के साथ रहती है (१४२—१४७); उसकी चंचलता और तड़क-भड़क देखकर शहर के बहुत सभ्य छैले उसके पीछे लग जाते हैं (और उनमें लार्ड स्टेइन और युवक लार्ड साउथडाउन भी रहते हैं) (१४७—१६१); लार्ड स्टेइन उसके परम उपासक बन जाते हैं (२०५); इतने ही में उसके कामी श्वसुर की मृत्यु हो जाती है, और वह अपने पति के साथ क्रालीभवन में जाती है, और अपने जेठ को लार्ड स्टेइन की सहायता से लार्ड की उपाधि दिलाने का प्रलोभन देकर अपनी मुट्ठी में कर लेती है (२१०—२२६, २६९—२७०); पर उसकी भोली-भाली जेठानी लेडी जेन प्रारंभिक स्नेह का उद्रेक शांत होने के बाद उसकी वास्तविक प्रकृति से अभिज्ञ हो जाती है, और उससे घृणा करने लगती है (२७७—२७९); इसके बाद शनैः-शनैः वह नगर के सभ्य समाज में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लेती है, और लार्ड स्टेइन की सहायता से ड्यूकों और राजकुमारों से परिचित हो जाती है (३११—३३१); लार्ड स्टेइन उसे हीरे-जवाहिरात से ढक देते हैं, जिन्हें वह अपने पति से छिपाकर रखती है (३१९-३२०); इसके बाद लार्ड स्टेइन अपने प्रासाद में एक अभिनय कराते हैं, जिसमें बैकी भी पात्री बनती है, और उसी रात को गुप्त अभिमंत्रणा से उसके पति को क़ैद करा दिया जाता है, जिससे लार्ड स्टेइन और बैकी का एकांत मिलन हो सके (३४५—३७०); इस अवसर की खोज में लार्ड स्टेइन बहुत दिनों से थे, और किसी-न-किसी बहाने से उन्होंने उसके लड़के को स्कूल में दाख़िल करा दिया था, और उसकी बुड्ढी सहेली मिसब्रिग्ज़ को अपनी रियासत में भिजवा दिया था; पर राडन सतर्क हो गया था, और उसे अकेली कहीं न जाने देता था (३७१—३८५); अब क़ैद में पड़ा हुआ वह बैकी से थोड़े-से रुपयों की सहायता माँगता है, पर वह दूसरे दिन का बहाना कर देती है, और उसका वास्तविक उद्देश लार्ड स्टेइन की अभिलाषा-पूर्ति रहता है; राडन इस बात को ताड़ जाता है, और अपनी भावज लेडी जेन की सहायता से छुटकारा पाकर घर जाता है, और दोनों को प्रेमालाप में तल्लीन देखता है; यहाँ वह उसके छिपे हुए रुपए खोज निकालता है, और बैकी को सदैव के लिये त्याग देता है (३८६—३९८); इसके बाद बैकी निराश्रय होकर इधर-उधर मारी फिरती है, और भ्रष्ट जीवन व्यतीत करती है (तीसरा भाग, १४६—१६७); अंत में उसकी भेंट अमेलिया और उसके कामुक भाई से हो जाती है, जिसके कारण अमेलिया और डाविन का स्थायी वैमनस्य हो जाता है, और फिर स्वयं बैकी ही जार्ज के वाटरलू की रात्रिवाले प्रेम-पत्र की सहायता से अमेलिया की मोह-निद्रा दूर करती है, और फिर वह जोज़ेफ़ सैडली के साथ योरप के विभिन्न नगरों में घूमती-फिरती है, और जोज़ेफ़ का प्राणांत होने के बाद धार्मिक जीवन बिताना आरंभ करती है, पर उसका पुत्र उससे किसी प्रकार का संपर्क रखना अस्वीकार कर देता है (१४२—१४४, १६९—२०१—२१७, २२२—२२५)।

अब हम सोफ़िया और अमेलिया को उठाते हैं, और यह देखते हैं कि दोनों में क्या अंतर था, दोनों ने विनय और जार्ज से किन-किन विभिन्न परिस्थितियों में पड़कर प्रेम किया, और दोनों प्रेमियों के चरित्रों में कितना बड़ा अंतर था।

रंगभूमि की सोफ़िया 'बड़ी-बड़ी रसीली आँखोंवाली लज्जाशीला युवती है। देह अति कोमल.....रूप अति सौम्य.....सिर से पाँव तक चेतना-ही-चेतना' है। उदार विचारों की, जिसे बायबिल के 'उत्पत्ति'-प्रकरण के 'एक-एक शब्द पर शंका होती है।' पर उसे डर है कि कहीं कुछ बोली तो घरवाले बिगड़ जायँगे। इस प्रकार उसे कथा क्या सुनानी पड़ती है, 'बेगार करनी पड़ती है।' वह अपने उदार विचारों के प्रवाह में माता तक से झड़प ले लेती है, और निश्चय करती है कि 'मैं इन्हें दिखा दूँगी कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ।' उसकी सम्मति में 'अब इस घर में रहना नरकवास के समान है।' उसकी समझ में तो 'इस बेहयाई की रोटियों से भूखों मर जाना अच्छा है।' 'बला से, लोग हँसेंगे, आज़ाद तो हो जाऊँगी; किसी के ताने-मेहने तो न सुनने पड़ेंगे।' वह निश्चय करके उठती है, और मन में कोई स्थान निश्चित किए बिना ही एक ओर को चल पड़ती है, और शहर के शोहदों की कुवासनामयी दृष्टियों का जवाब घृणायुक्त नेत्रों से देती हुई आगे बढ़ती है। वह कुँवर भरतसिंह के महल के सामने जाकर खड़ी हो जाती है, और अनेक नवयुवकों के सम्मिलित गान को ध्यान से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनने लगती है। गाना सुनकर 'उसके मन में एक तरंग उठती है कि मैं भी गानेवालों के साथ गाने लगती' और कहती कि 'मैं अपने को भारत-सेवा के लिये समर्पित करती हूँ।' इसके बाद आग लगती है, और वह विनय की रक्षा में आप जलकर बेहोश हो जाती है। इसके बाद उसका विनय के साथ प्रेम हो जाता है, पर वह अपने उच्च आदर्श से एक क्षण के लिये भी पतित नहीं होती। वह क्लार्क को अपनी मुट्ठी में करके विनय को रियासत की क़ैद से छुड़ाने की चेष्टा करती है, पर वैनिटी फ़ेयर की रेबेका की तरह लार्ड स्टेइन को आत्मसमर्पण नहीं करती। वह अपने प्रेमी का, जिसे वह देशभक्ति के रंग में रँगा हुआ देखना चाहती है, और जिसे उसने अपनी उसी उच्च भावना की तुष्टि के लिये उपन्यास के अंत में अपना बलिदान करने को बाध्य कर दिया था, अपने उच्च आदर्श से—चाहे वह स्वयं उसी के कारण हो—पतित होते देखकर, असह्य अपमान करती है, और बाद को उदयपुर के भीलों के गाँव में एक वर्ष तक साथ रहने पर भी अपने नैतिक बंधन को शिथिल करने को तत्पर नहीं होती। मतलब यह है कि उसने वासना को अपने हृदय में कभी बलवती नहीं होने दिया, उसका एक आदर्श था—त्याग, और उसने विनय में उसकी प्रचुर मात्रा देखी, तो उसने ऐसे साधु प्रकृति, ऐसे त्यागमूर्ति, ऐसे सदुत्साही पुरुष की प्रेमपात्री बनने में कोई लज्जा की बात नहीं देखी। वह इसी वरदान के लिये तप कर रही थी। वह विनय को अपने नैतिक आदर्श से एक बार च्युत होते देखती है, और उसके हृदय में उसकी कर्तव्यपरायणता, सेवाभाव और त्याग-वृत्ति के विषय में सदैव के लिये संशय उत्पन्न हो जाता है। (यह बात पांडेपुर की आत्महत्यावाली दुर्घटना से पहले के कुछ परिच्छेद पढ़ने से सुस्पष्ट हो जाती है।)

अब अमेलिया और सोफ़िया के चरित्र-चित्रण को देखने से तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

१. सोफ़िया और विनय का प्रेम एक विशेष घटना-क्रम का फल था, जिससे उनके माता-पिता घोर विरुद्ध थे। वैनिटी फ़ेयर के अमेलिया और जार्ज का प्रेम-संबंध उनके बाल्यकाल से ही उनके माता-पिताओं द्वारा, आगे चलकर दांपत्य के सुदृढ़तर प्रम के रूप में परिवर्द्धित करने के उद्देश से, कराया गया था। अतः सिद्ध है कि जार्ज अमेलिया के घर सोफ़िया की तरह (लिंगभेद होते हुए भी दोनों में किसी प्रकार का सादृश्य स्थापित किया जा सकता है, यह बात भी विचारणीय है), किसी आकस्मिक घटना से प्रेरित होकर वहीं जा पहुँचा था, वरन् उसका वहाँ जाना दैनिक कार्य-क्रम में सम्मिलित था।

२. सोफ़िया ने अमेलिया की नाईं अपने हृदय को वासनाओं की भेंट नहीं चढ़ा दिया था। रंगभूमि पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वह आदि से अंत तक प्रेम के प्रबल प्रवाह में अपना अस्तित्व खोने के लिये कभी उत्कंठित नहीं थी; वरंच वह जान-बूझकर विनय से खिंची रहती थी।

३. अमेलिया ने जार्ज को रेबेका से प्रेमालाप करते देखकर भी उस पर अविश्वास नहीं किया। मतलब यह है कि उसने उसे पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया था। थैकरे के शब्दों में, प्रणय-व्यापार में दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष प्रेम करता है और दूसरा अपने से प्रेम किए जाने की उदारता दिखाता है। कभी पहले पक्ष में स्त्री होती है, कभी पुरुष। (१६४)। सोफ़िया का प्रेम अमेलिया के प्रेम की भाँति पहले पक्षवालों-जैसा न था। हाँ, विनय के विषय में यह बात कही जा सकती है।

अब एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है। अवधजी लिखते हैं—"जार्ज आसबर्न भी अमेलिया के गान पर मोहित हुआ था, और सोफ़िया भी गाने की ओर आकृष्ट हो गई थी।" (यहाँ पर लिंगभेद की समस्या फिर उठ खड़ी होती है) पर अवधजी यह तो अवश्य स्वीकार करेंगे कि अमेलिया ने जार्ज को रिझाने के लिये प्रेमोद्दीपक गाना गाया, और कुँवर भरतसिंह के सेवक-मंडल ने—सोफ़िया को रिझाने के लिये नहीं—उन्हें तो उसके अस्तित्व तक का आभास न था—प्रेमोद्दीपक गाना नहीं—वे सब युवक इस रोग से मुक्त थे—जातीय गान गाया, और उसमें उद्दीप्त होकर सोफ़िया के हृदय में जार्ज आसबर्न की नाईं (फिर वही लिंगभेदवाली समस्या !) उन 'कई आदमियों को अमेलिया की तरह 'गोद में उठाकर चूम लेने' की उत्कट इच्छा उत्पन्न नहीं हुई; और उस गान में 'न लालित्य था, न माधुरी,...पर वह शक्ति वह जागृति भरी हुई थी, जो सामूहिक संगीत का गुण है।' सोफ़िया को 'राष्ट्रीय संदेश सुनने का अवसर कभी न मिला था। उसके रोम-रोम से वही ध्वनि, दीप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ज्योति के समान निकलने लगी। 'मातृभूमि के लिये भारत में जीना और मरना होगा।' अर्थात् सोफ़िया के हृदय में वासनामय प्रेम की उत्पत्ति नहीं हुई, 'भाँति-भाँति के उद्गार उठने लगे।'

रही कविता के निर्णय की बात, सो प्रभुसेवक रेबेका नहीं था, और उसकी कविता की प्रतिद्वंद्विता के लिये विनय ने अपनी निजी कोई रचना नहीं की थी। उसकी सम्मति में ऐसी कल्पना और भाव-प्रधान कविताओं के लिये वह समय उपयुक्त न था। उसकी सम्मति में 'हमारे कविजनों को' परमार्थ-सेवा और 'त्याग के भावों को उत्तेजित करना चाहिए' था। उसके विचार से 'किसी उच्च कोटि के कवि के लिये दांपत्य-जीवन की सराहना करना—उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधना—शोभा नहीं देता' था। रेबेका ने भी उद्दीपक गाना गाया, और अमेलिया ने भी। रेबेका के गाने का प्रभाव जोज़ेफ़ सेडली पर पड़ा, और अमेलिया का गाना उसके प्रेमी की सम्मति में—चाहे वह ठीक हो या ग़लत—संसार की सर्वश्रेष्ठ गायिका का गाना था। थे दोनों 'प्रेम-भावनाओं को उत्तेजित करनेवाले' इधर सोफ़िया के उद्दीप्त होने की चर्चा तक नहीं है; वह दोनों पक्षों का वक्तव्य सुनती है, और निर्णय करती है कि 'अवनति की दशा में शृंगार और प्रेम का राग अलापने की ज़रूरत नहीं होती।'

और, एक आश्चर्य की बात यह है कि उपाध्यायजी ने सरस्वती का एक पृष्ठ समाप्त होते-न-होते अपनी उपर्युक्त सम्मति बदल दी। यहाँ विनय की विराग-पूर्ण बातें सुनकर सोफ़िया के रहस्य-पूर्ण हृदय के—उस हृदय के, जिसकी मौग्ध्य प्रकृति से प्रेरित होकर, अब से थोड़ी देर पहले उसने विनय का पक्ष समर्थन किया था—कोने बिचौले से हताश और दुःख का भयंकर उद्रेक हो उठता है, और वह विनय की उपराम वृत्ति-पूर्ण बातें सुनकर क्षुब्ध हो जाती है (और तमाशा यह है कि उसने निर्णय फिर भी विनय ही के पक्ष में दिया!); क्योंकि वैनिटी फ़ेयर की अमेलिया भी तो जार्ज आसबर्न के निर्णय से दुःखी हो गई थी! (हालाँकि हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि वैनिटी फ़ेयर में इस अपूर्व घटना का ज़िक्र तक नहीं है, और जार्ज आसबर्न ने विवाह के विषय में कभी अनुकूल वा प्रतिकूल निर्णय नहीं किया, और वह दंभी और निरंकुश प्रकृति का मनुष्य था, और उसने अपने पिता के, विवाह-विषयक, प्रतिकूल निर्णय के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया था)।

अवधजी ने लिखा है—"आसबर्न का पिता एक बहुत ही धनवान् पुरुष था। अमेलिया (अमेलिया नहीं;—इस बात से पाठक निश्चिंत रहें) अब आसबर्न को प्यार करने लग गई।.....अमेलिया की दृष्टि में आसबर्न से सुंदर तथा बुद्धिमान् पुरुष संसार में दूसरा नहीं था। थैकरे लिखता है—"अमेलिया की दृष्टि में आसबर्न राजकुमार होने के योग्य था।" इसके आगे आप लिखते हैं—

"इसी प्रकार यदि वैनिटी फ़ेयर की ठीक-ठीक नक़ल की जाय, तो विनय के पिता को भी एक धनवान् पुरुष होना चाहिए, और वास्तव में विनय के पिता धनवान् पुरुष थे भी। वैनिटी फ़ेयर का आसबर्न वास्तव में राजकुमार नहीं था, केवल अमेलिया की दृष्टि में ही वह राजकुमार होने के योग्य था। पर रंगभूमि में वह वास्तव में राजकुमार है। इसलिये यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि विनय के राजकुमार बनने का मसाला भी वैनिटी फ़ेयर में मौजूद है।"

रुद्रनारायण अग्रवाल

असमर्थता

प्रणय स्मृति की छाप लगाने,
जब समीप मैं आया;
आता हूँ कह चले गए तब,
यों मुझको भरमाया।
कितनी रात्रि बिता दीं मैंने,
गिनकर केवल तारे।
एक बात ही थी जिह्वा पर,
आ जा, हृदय-दुलारे।
बीत गए इतने दिन अब तक,
किंतु नहीं तुम आए?
प्रेमी को देते धोखा तुम,
रंच न कभी लजाए।
स्मृति के इस सुंदर मंदिर में,
पर जब तुमको पाया;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहु-पाश में लेकर तुमको,
चुंबन से नहलाया।
वहाँ न बच पाए तुम,
जगती भी चुपचाप खड़ी थी;
आकर तुझे छुड़ा दे मुझसे,
किसकी शक्ति पड़ी थी।

पद्मकांत,

कलिंग, त्रिकलिंग और महेंद्रगिरि

कलिंग-देश का विस्तार कितना था, और समय-समय पर उसकी राजधानी कहाँ-कहाँ थी, यह बड़ा जटिल प्रश्न है। समुद्रगुप्त के, प्रयाग के क़िले की, लाटवाली प्रशस्ति में कलिंग-देश या उसके राजा का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है, यह भी विचारणीय है। इधर चोड़गंग तथा चेदि के कई राजे और विनीतपुर तथा ययाति-नगर के ययाति तथा जनमेजय आदि राजा लोग 'त्रिकलिंगाधिपति' की उपाधि धारण करते पाए जाते हैं। यह 'त्रिकलिंग' कलिंगांतर्गत है या अन्य भूखंड है? इस विषय में भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। यद्यपि तेलंगा-देश या तिलंगाना को अनेक विद्वान् "त्रिकलिंग" मानते हैं; पर उसके विस्तार तथा उसकी राजधानियों के विषय में अभी तक हम लोग अंधकार में ही हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि "कलिंग-राज्य" या "कलिंग-भूखंड" अत्यंत विस्तृत रहा है। और उसके अंतर्गत न केवल 'त्रिकलिंग', किंतु अनेक सामंत-राज्य रहे होंगे।

समुद्रगुप्त के, प्रयाग की लाटवाले, शिलालेख में दक्षिण-पथ के देशों में कलिंग का नाम नहीं दिए जाने का कारण यह बोध होता है कि उस समय "कलिंग-राज्य" किसी प्रबल शासक के शासन से निकलकर छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था *। यही कारण ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न राज्यों के नाम दिए गए हैं, पर समग्र प्रांत का नामोल्लेख नहीं किया गया है। मान लो कि लेखक मध्यप्रदेश के देशी राज्य-समूह में भ्रमण करता हुआ उन-उन राज्यों के नाम ही लिखे और उस राज्य-समूह के प्राचीन नामों का उल्लेख करना अनावश्यक समझे। यथा राज्यगढ़, सारंगगढ़, बस्तर, कँवरदा आदि। ये सबके-सब राज्य "छत्तीसगढ़" के अंतर्गत हैं, पर उनमें से प्रत्येक अब एक स्वतंत्र या अलग राज्य है। उस प्रकार "कलिंग-देश" अत्यंत विस्तृत भूभाग था और उसमें जो सैकड़ों भिन्न-भिन्न राज्य थे, उन

---

* प्रसिद्ध विद्वान् और पुरातत्त्वज्ञाता श्रीयुत डाकर एल० डी० बारनेट (ब्रिटिश-म्युज़ियम-लंदन) से मैंने इस विषय में जिज्ञासा ली थी। आपने कृपा कर अपने ता० ३-[illegible] के पत्र में लिखा था—

The Allahabad inscription mentions only parts of Kalinga. You have doubtless read Dubrevil's book on Southern History regarding Samudragupta; and I have tried to shew that Kaurâla is the same as Modern Korâda, unquestionably the name Kalinga was used before and after Samudragupta but in his day it was a divided realm, split up into small states. ।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत-विहार

[चित्रकार—श्रीनारायणप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग-अलग नाम लिखे जाने पर 'कलिंग-देश' लिखने की ज़रूरत नहीं रह जाती थी। भेद सिर्फ़ इतना है, यहाँ "छत्तीसगढ़"-नामक कोई स्वतंत्र राज्य नहीं है। पर अशोक के समय से लेकर १२ वीं सदी तक 'कलिंग'-नामक एक राज्य समुद्र-तट पर रहा है। किसी-किसी विद्वान् का कथन है कि "पिष्ठपुर" और "कलिंग", दोनों राज्य एक ही राजा के आधिपत्य में रहने के कारण समुद्रगुप्त के प्रयागवाले लेख में "कलिंग"-राज्य का नाम नहीं दिया गया है।

The fact that पिष्ठपुर and कलिंग were both under one King at the time of the invasion of Smundragupta. That King was स्वामिदत्त। पर हमारी राय में यह ठीक नहीं जँचता। वे लोग स्वामिदत्त के राज्य का विस्तार गोदावरी से महेंद्रगिरि तक मानते हैं।

The dominions of Swamidatta extended along the east coast from the Godawari in the south to Mahendra hill in the north.

महेंद्रगिरि और कलिंग-देश का अभिन्न संबंध है। महाभारत में वर्णित है कि युधिष्ठिर महेंद्रगिरि पर पहुँचे। अर्थात् वे कलिंग-देश में जा विराजे।

कृत्वा स तत्शासनमस्य सर्वं
महेंद्रमासाद्य निशामुवास।

कालिदास अपने 'रघुवंश' के चौथे सर्ग में लिखते हैं—

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्वद्धद्विरदसेतुभिः;
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ।
स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्;
अङ्कुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः।

'इंदुमती' के स्वयंवर के समय 'कलिंग'-नरेश थे 'हेमांगद।' यथा—

अथाङ्गदाश्लिष्ट भुजं भुजिष्या
हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम्;
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं
बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे ५३।
असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः
पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च;
यस्य त्वरत्सैन्यगजच्छलेन
यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः। ५४।

यह तो निर्विवाद है कि कलिंग-देश समुद्र का तटवर्ती था, और उस राज्य में 'महेंद्र'- गिरि एक सुप्रसिद्ध स्थान था। 'महेंद्र' की महत्ता उसके "सप्त पर्वतों" में स्थान लाभ से भी है। यथा

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षवानपि;
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।

१. महेंद्र—यह कलिंग-देश में था, जो पूर्व दिशा में समुद्र-तट पर अवस्थित था। इस पर्वत पर परशुरामजी ने तपस्या की थी।

२. मलय—पूर्व-घाट और पश्चिम-घाट को जोड़ता है। नीलगिरि इसका सबसे बड़ा शिखर है।

३. सह्य—अर्थात् सह्याद्रि। यह महाराष्ट्र में है। इसकी श्रेणी पश्चिम-समुद्र के तट पर मलावार तक जाती है।

४. शुक्तिमान्—यह कौन पहाड़ है, ठीक-ठीक नहीं जाना जाता। कदाचित् काठियावाड़ की 'गिरिनार'वाली श्रेणी हो।

५. ऋक्षवान्—इसे बहुत लोग अर्बुद का प्राचीन नाम बतलाते हैं। पर निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

६. विंध्य—यह प्रसिद्ध पर्वत-श्रेणी है, जो उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत को दो भागों में बाँटती है।

७. पारियात्र—यह सिंधु-नदी के आगे का पर्वत होगा, जिसे अब सुलेमान-पर्वत कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व-दिशा के तीर्थों में पांडवों को महेंद्र-पर्वत पर गमन करना पड़ा था, वहाँ परशुराम का निवास-स्थान था, और वहीं वैतरणी-नदी तथा भूमि की वेदी थी।

"पांडव गंगामुख पर स्नान करके समुद्र-तीर से कलिंग-देश को गए। वहाँ उन्हें वैतरणी-नदी मिली। इस नदी में स्नान करके वे पवित्र हुए। इस नदी में स्नान करने से उनको मालूम हुआ कि महातपोबल के योग से, मृत्युलोक से, बहुत दूर चले गए। यहाँ से पास ही महेंद्र-पर्वत है। उस पर्वत पर परशुराम रहे हैं। पृथ्वी जब कश्यप को दान दी गई, तब वह समुद्र में डूबने लगी। उस समय कश्यप के तप-प्रभाव से वह सागर से बाहर वेदी के रूप में यहाँ रह गई है। यह वेदी समुद्र में एक छोटा-सा टापू है। पांडवों ने समुद्र में स्नान करके उस वेदी पर आरोहण किया और इसके बाद महेंद्र-पर्वत पर ठहर गए। प्रत्येक चतुर्दशी को वहाँ परशुराम का दर्शन होता है। तदनुसार उस दिन दर्शन करके पांडव समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण-दिशा की ओर चले।"

'कलिंग' वर्तमान गंजाम-प्रांत के आसपास के भूखंड का नाम था। इस अंचल में जो दानपत्र मिले हैं, उनकी लिपि "कलिंग-लिपि" कहलाती है। इस लिपि का परिचय प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ राय-बहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा कृत "प्राचीन लिपिमाला"-नामक ग्रंथ-रत्न से प्राप्त हो सकता है। इस लिपि में जो सबसे प्राचीन दान-पत्र मिला है, वह सन् ई० की सातवीं सदी का है। पूर्वी गंगवंशी राजा इंद्रवर्मन् के "अच्युतपुरम्" में प्राप्त दानपत्र या ताम्र-शासन का आरंभ यों किया गया है—

ॐ स्वस्ति सर्व्वतुरणीयाद्विजयकलिंगनगरा
त्सकलभुवननिर्म्माणैकसूत्रधारस्य भगवतो
गोकर्णस्वामिनश्चरणकमलयुगलप्रणामादपग
तकलिकलंको विनयनयसम्पदामाधार
स्वासिधारापरिस्पन्दाधिगतसकलकलिङ्गाधि
राज्यश्चतुरुदधितरंगमेखलावनितलप्रवित-
तामलयशाः। इत्यादि।

यहाँ महेंद्रगिरि के 'गोकर्णस्वामी' और 'सकल कलिंग' शब्द आए हैं। यह सातवीं सदी का है।

शक संवत् १००३ (सन् ई० १०८१) के श्रीअनंत वर्मा चोड़गंग के ताम्रलेख में × × महामहेंद्राचल शिखरप्रतिष्ठितस्य सचराचरगुरोः × × गोकर्णस्वामिनः प्रसादात् ×× त्रिकलिंग-महीभुजाम् गङ्गानाम् अन्वयम् × गुणमहार्णव महाराजस्य पुत्रः श्रीवज्रहस्तदेवः ×× इत्यादि।

पुनश्च—परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज त्रिकलिङ्गाधिपति श्रीमदनन्तवर्मा चोड़गंग कुशली।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस ग्यारहवीं सदी के लेख में भी "महेंद्राचल, गोकर्णस्वामी और त्रिकलिंग"-शब्द आए हैं।

त्रिपुरी के कलचुरी राजा यशःकर्णदेव के एक दानपत्र में भी 'त्रिकलिंग'-शब्द मिलता है। यथा—

सच परमभट्टारक ×××× परममाहेश्वर त्रिकलिंगाधिपति ××× श्रीमद्यशःकर्णदेवः॥

सन् ई० की ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में उड़ीसा और चेदि (जबलपुर या त्रिपुरी) के राजाओं के दानपत्रों में 'त्रिकलिंग'-शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

क्या इस विषय की ओर किसी पुरातत्त्व विशारद का ध्यान आकर्षित होगा?

लोचनप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्ध्वनि

(१३)

पलक लगी ही थी कि आए शरमाते आज,
भूल गए राह, किसी और के सदन की ;
मैंने भी सराहा निज भाग्य, दूर दुःख हुआ,
पीर भी घटी जो बढ़ी हुई थी लगन की।
अपनी सुनाएँगे कहानी उन्हें इसीलिये,
जोहते थे बाट हम, मधुर मिलन की ;
कह भी न पाए आह ! खुल गई आँख मेरी,
रह गईं बातें सभी, मन में ही मन की।

(१४)

जिनके स्वभाव, शील, सरल सनेह में थे,
भूले हुए सुध-बुध, थे भी वे हमारे जो ;
पाकर दरश दूर होते थे अनेकों दुःख,
जाते थे हमारे ताप-अनुताप सारे खो।
वे ही जब इतने कठोर निरमोही बने,
मेरे लिये आह ! रहे बीज विषवारे बो ;
तो फिर बताओ, यदि जग की यही है रीति,
बिगड़ी हमारी आज ऐसे में सुधारे को ?

(१५)

लूटी उस छवि ने हमारी सुख नींद, चैन,
ऐसे में कि जब उर-सदन सिधारे थे ;
फूटीं ये उतावली सुशीलवाली आँखें क्यों न,
दोनों ही कपाट खूब खुले क्यों हमारे थे।
टूटी क्यों न आस, गए तोड़ जब प्रेम-पाश,
सत्य. "हम वारे नेह वे तो नहीं वारे थे" ;
छूट क्यों हमारे गए, पापी यह प्राण नहीं,
मुझको विहाय हाय, जब वे सिधारे थे।

(१६)

होते दुःखदायी नहीं विष से बुझे हुए भी,
काम वे तमाम क्षण में ही कर जाते हैं ;
उनके तो ऐसे थे अमोघ मीठी धार बोल,
पल में जिलाते, पल में ही कलपाते हैं।
हूक उठती है कभी लूक लग जाता आह !
रक्त-बिंदु जल-जल, प्राणों को बचाते हैं ;
खोज करते हैं सभी वधिक. परंतु वे तो
अपने शिकार को भी खोजने न आते हैं।

रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मिनिस्ट्री की थैली'

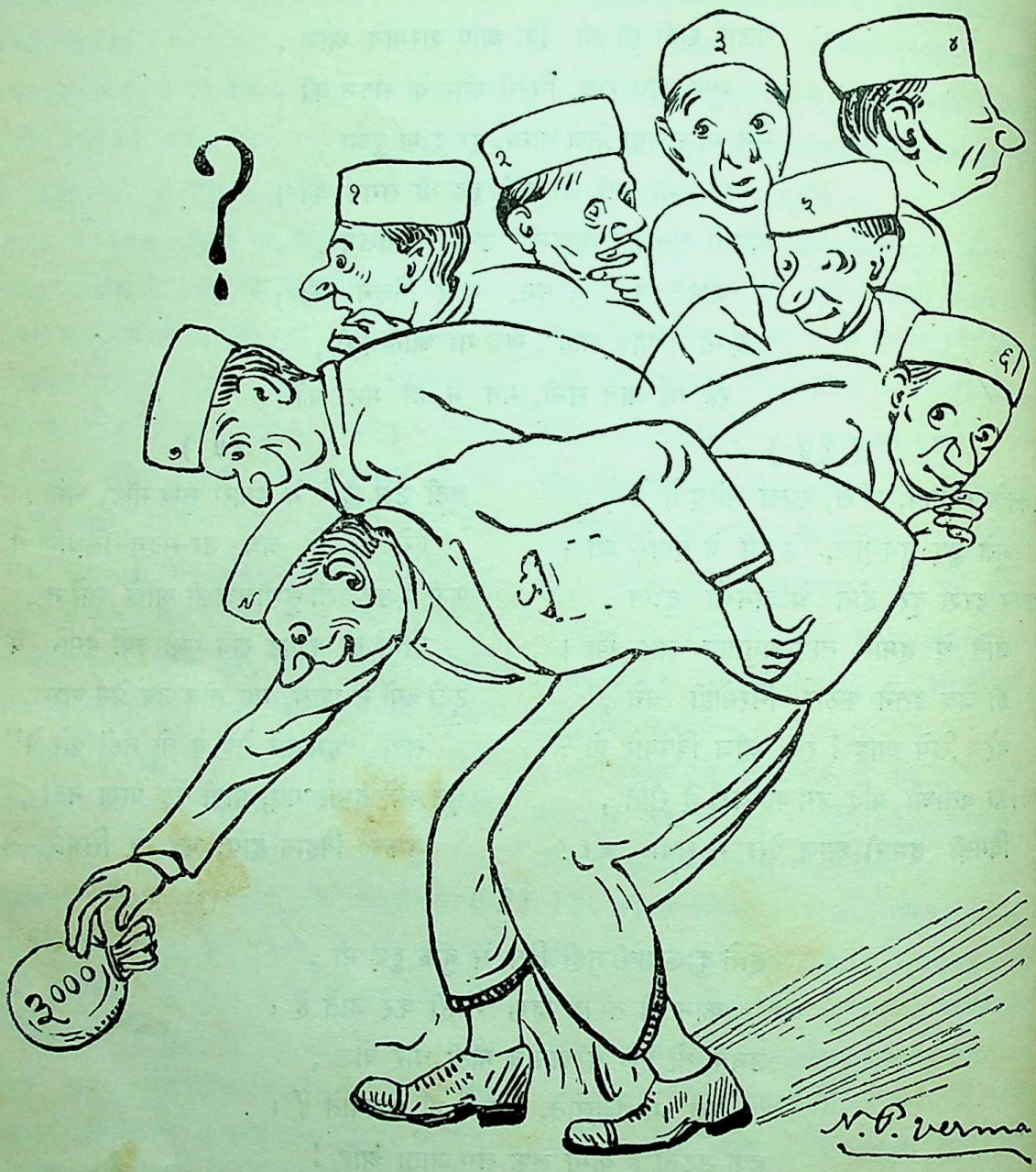

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आल्ह-खंड की वर्णन-शैली

बड़े ही हर्ष की बात है कि आजकल हिंदी में प्रायः सभी विषयों पर प्रकाश डालने की कोशिश की जा रही है। आल्ह-खंड बहुत दिनों से उपेक्षामयी विस्मृति के अंधकार में पड़ा था। सौभाग्य से इसके दिन भी फिरे। साक्षर जनता की प्रवृत्ति ने करवट बदली, और नित्य नए-नए ढंग से हिंदी-साहित्य का रिक्त भांडार भरा जाने लगा। अब हिंदी की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में आल्ह-खंड की चर्चा पढ़ने को मिल जाती है। पद्यात्मक ग्रंथ होने के कारण इसमें अलंकारों का बाहुल्य है। काव्य-ग्रंथ से ऐतिहासिक विद्वान् बहुत भय खाते हैं, और लाचारी से उसकी बातों पर संदिग्ध विश्वास करते हैं। ख़ैर, यह तो रही इतिहास की बात; परंतु साहित्य में इसकी उपेक्षा क्यों की गई ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर से अब अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता। काम करना ही अच्छा है। आल्ह-खंड की वर्णन-शैली हिंदी-साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। भाषा सदा भाव की अनुगामिनी रही है। इससे काव्य का सौंदर्य विशेष प्रकाशमान् हो गया है। इसकी भाषा प्रधानतः बुँदेलखंडीय (महोबा की) तथा पूर्वीय अवधी है; लेकिन अल्हैतों की कृपा से इसमें बहुत-सी बोलियों के चालू शब्द भी व्यवहृत हुए हैं। आल्ह-खंड के कई संस्करण हैं। मुद्रण-स्थान की विभिन्नता के कारण भाषा में भी प्रांतीयता की काफ़ी झलक है। यह कहना शायद अत्युक्ति-पूर्ण नहीं कि समस्त आल्ह-खंड ओज-गुण का निवास-स्थान है। आदि से अंत तक वीरों की भुजाएँ फड़कती रहीं, और आँखों से विपक्षियों को भस्मीभूत कर देनेवाली आग की चिनगारियाँ निकलती रही हैं। आल्ह-छंद में उग्र वीरता का बड़ा ही सुंदर उद्रेक हुआ है। यही कारण है कि अब इस छंद में रामायणादि भी छपे मिलते हैं। इसकी सर्व-प्रियता के संबंध में इससे अच्छा और कौन-सा उदाहरण बतलाया जा सकता है! विशिष्ट गुण वही है, जो दूसरे के अनुकरण का विषय बने। आल्ह-खंड इस गुण का अधिकारी है।

आल्ह-खंड यों तो भिन्न-तुकांत कहा जा सकता है, परंतु कहीं-कहीं ख़ूब ही तुक मिले हैं। इसकी अद्भुत सरसता पर हम इतने लट्टू हो जाते हैं कि तुकांत-हीनता कभी नहीं खटकती। प्रसंगानुकूल आल्ह-खंड में प्रायः सभी रसों की पंक्तियाँ हैं, लेकिन वीर, रौद्र और भयानक के अधिक प्रसंग आए हैं। आल्ह-खंड के शृंगार-रस की मित्रता वीर-रस के साथ अच्छी निभी है। मज़ा यह कि वीर-रस भी अकेला नहीं, अपने सहचर-रसों के साथ!

अब आल्ह-खंड की वर्णन-शैली की मज़ेदार चाशनी चखिए। महाराज जयचंद का विशाल दरबार लगा हुआ है, और मस्ताने सैनिक नशे में झूम रहे हैं। संगीत की माधुरी नशे में जान डाले देती है। नपी-तुली पंक्तियों में सुनिए—

भँगड़ी बैठे हैं भँग पी-पी, औ चरसी दम चरस लगाय।
खाय अफीम अफीमी बैठे, नैनन रही लालरी छाय॥
बारह जोड़ी पातुर नाचैं, झाँझन झनन-झनन झनाय।
धाकिट-किटधा तबला बाजै, ढोलक गुमकि-गुमकि रहि जाय॥
सनन-सनन सारंगी गूँजै, सोलह जोड़ मँजीरन क्यार।
सोरठ ठुमरी अरु तिल्लाना, पातुर गावैं सबहिं रिझाय॥

कितना सुंदर वर्णन है! संगीत की ध्वनि से उपर्युक्त पंक्तियाँ कितनी श्रुति-मधुर हो गई हैं! मालूम होता है, आँखों की ओट में संगीत हो रहा है। पंक्तियों के शब्द कितने ध्वनि-व्यंजक हैं! इसे पढ़-पढ़कर ग्रामोफ़ोन का आनंद लूटिए।

दरबार से बाहर निकलकर अब रण-भूमि का रोमांचकारी दृश्य देखकर अज्ञात कवि की प्रशंसा कीजिए। प्रलयंकर दृश्य के मध्य में भी कवि अपने मधुर स्वभाव के अनुसार सौंदर्य का ही दर्शन करता है। सुनिए नहीं, आँखें खोलकर रण-लीला देखिए—

बहुतक रुंड लड़ैं खेतन में, बहुतक राम-राम चिल्लायँ।
डारे घैहा हैं लोहुन में, रुअ बहि चली रक्त की धार॥
रंग-बिरंगे छत्री ह्वै रहे, मानो खेल रहे हैं फाग।
दोनों दल के छत्री जम रहे, कोऊ पैर हटैया नाँय॥

तीसरी पंक्ति ने कवि की सफलता को बहुत ऊँचा कर दिया है। कैसा सजीव दृश्य मालूम होता है! आँखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामनें लड़ाई हो रही है। कवि की सौंदर्य-दर्शिनी लेखनी चूम लेनें लायक़ है। गोस्वामी तुलसीदासजी के युद्ध-वर्णन से इसकी तुलना कीजिए। अंतिम पंक्ति में युद्ध की तुल्यबलता का कैसा अच्छा वर्णन है!

नैनागढ़ की लड़ाई के पहले घोड़ों के वर्ण-भेद सुनिए। क्या ग़ज़ब के घोड़े थे!

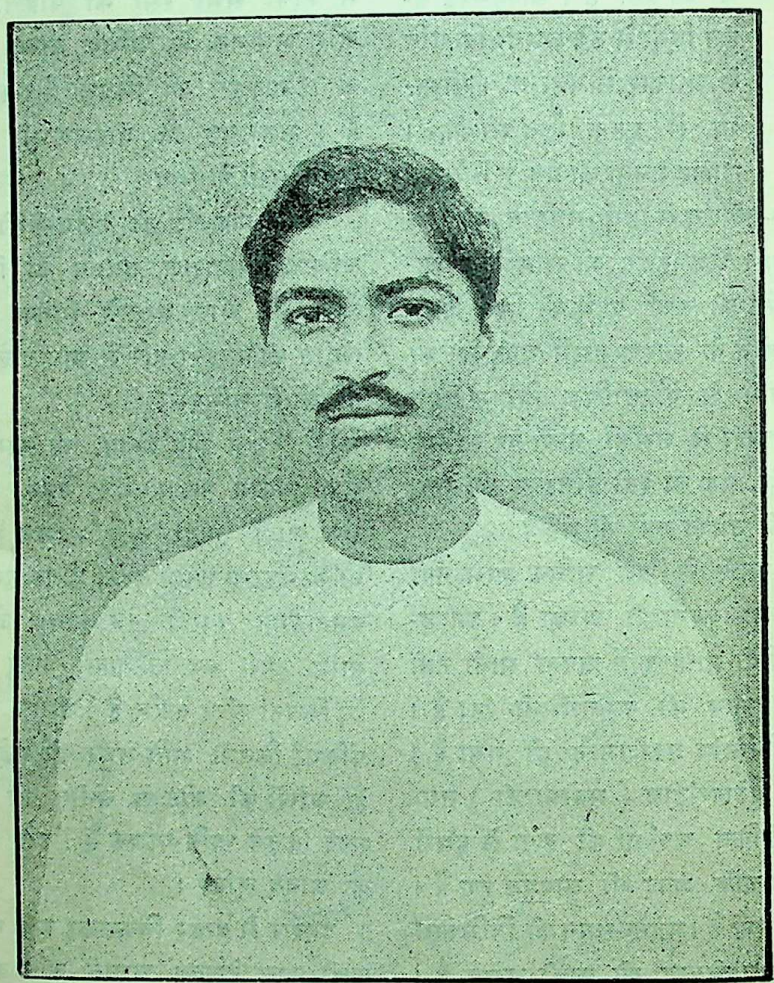

ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'

बड़ी राशि के जितने घोड़े, सो सब साजि भए तैयार।
लक्खा गर्रा घोड़े साजे, औ, कुम्मैत भए तैयार॥
हरियल मुश्की घोड़े सजिगे, पचकल्यानी भए तैयार।
अर्बी तुर्की औ तातारी, सब्जा सुर्खा भए तैयार॥
स्याह स्वेत नुकरण औ तेलिया, जो रण हिनहिनाय हर बार।

रण-भूमि में अब लगातार गोला-बारूद छूटने लगे। समस्त आकाश-मंडल अंधकारमय हो गया। अस्त्रों की मार से दोनों दलों में एक भीषण स्थिति उत्पन्न हो गई। सुनिए—

तोपैं छूटीं दोनों दल में, गोला चलन लाग तत्काल।
अररर-अररर गोला छूटैं, कड़-कड़ करैं अगनिया बान।
सननन-सननन गोला छूटैं, सर-सर परी तीर की मार।
दोनों फौजन की अंतर मा, अंधाधुंध तोप की मार।

कितने भीषण भयंकर शब्द हैं! कवि की लेखनी ज़बरदस्त है! 'कड़-कड़ करैं अगनिया बान' पढ़कर यही मालूम होता है कि सामने बिजली चमकी, कानों में बाण लगा—दर्द होने लगा।

युद्ध के प्रलयंकर दृश्य में कवि को अनोखी सूझ पड़ी है। समझ में नहीं आता कि वह लड़ाई अथवा प्रलय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोला चलि रहे दोऊ ओर ते, यारो सुनियो कान लगाय।
शेषनाग की फनी लचक गई, धरती डोल-डोल रहि जाय॥
राजा वासिक मन में डर गए, औ, दिगपाल गए दहलाय।
गर्भ गिर गए हैं तिरियन के, पर्वत धसकि गए पाताल॥

अत्युक्ति-अलंकार का कितना सुंदर निर्वाह हुआ है। राजा वासिक और दिग्पाल को महाभारत के युद्ध में भी इतना डर नहीं लगा होगा! शेषनाग भी रण-संघर्ष के दुर्वह भार का सहन न कर सके। भूमि-प्रकंपन से पर्वत नीचे धसकर पाताल चले गए। आश्चर्य!

पुनः कवि के सौंदर्य-दर्शन का आनंद लूटिए। रण-भूमि में रक्त की नदियाँ बह रही हैं, और कवि प्रत्येक वस्तु से सौंदर्य की उत्प्रेक्षा करता है।

पगिया डारी जो लोहू में, मानो ताल फूल उतराय।
परे दुशाला जो लोहू में, जनु नदी में परी सेवार॥
ढालैं डारी हैं लोहू में, मानो कछुआ-सी उतराय।
परी बँदूकैं हैं लोहू में, मानो नाग रहे मन्नाय॥

उत्प्रेक्षा-अलंकार की कैसी अनोखी छटा है। इस वर्णन के पढ़ने से यह सहज में ही पता चल जाता है कि कवि बड़ा सहृदय है। उसकी सौंदर्योपासना बे-जोड़ है! वीभत्स तथा भयानक दृश्य में भी उसे सौंदर्य-ही-सौंदर्य झलक रहा है। वह कवि नहीं, परमेश्वर है।

करिया कुँवर अपनी मस्तानी चाल से मेला में घोड़े पर चढ़कर घूम रहा है। उसका बाँकपन तो देखिए—

करिया कुमर उमर के वारे, ज्वानी उठी भरेरा खाय।
बस्तर पहिने रजपूती के, पगिया सीस रही लहराय॥
बैठ बछेरा पर अलबेला, मेला सैर करन को जाय।
जौन तरफ हुइ करिया निकरै, तिरिया छबि लखि के रहि जाय॥

इसका आलम तो सबसे निराला है! कैसी मस्त तबियत है! अल्हड़पन भी इसी को कहते हैं। यौवन का रंग कितना चोखा—जिसने देखा, उसी के मुँह से निकला—वाह! वाह!!

वीरवर ऊदल प्यास से व्याकुल होकर पनघट पर पहुँचते हैं, परंतु यहाँ आकर उनकी अवस्था ही बिलकुल बदल जाती है। पानी पीना भूलकर उनकी आँखें पनिहारिनियों की सौंदर्य-सुधा का पान करने लगती हैं—

गोरी कारी गुदकरी कोऊ, कोऊ श्याम बरन सुकुमार।
बढ़ती ज्वानी नई उमरिया, रूपवती गुन शोभा नार॥
कहूँ कहाँ लों उनकी उपमा, मेरे बूते की है नाँय।
रूप देखके पनिहारिन का, रति जावे मन में शरमाय॥
चंद्र-वदन-सम वदन चमके, अँखियाँ देख हिरन शरमाय।
दोनों भौंहें धनुषइंद्र की, गुल गुलाब से गाल दिखाय॥
दंत-पंक्ति की चमक देखके, दामिन दमके नहिं नभ माँय।
पान की लाली देत बहाली, दोनों ओंठ रहे ललआय॥
मीना गला सुराही गरदन, सीना आईना उनहार।
चोली बूटेदार अनोखी, छतियाँ मानो पके अनार॥
दोनों हाथन मेंहदी रच रही, ताकी शोभा कही ना जाय।
केला-खंभ जंघ दोउ सोहैं, पिंडरी गोरे रंग सुढार॥
मुंगफली-सी उँगली सोहैं, पाँय पदम दम-दम दमकाय।
नख से शिख लों जेवर पहने, कामिनि हूर परी दरसाय॥
चोटी लंबी डरी पीठ पर, मानो नागिन रही लहराय।
चाल चलें अलबेली आला, जिनकी कमर तीन बलखाय॥

कैसा सुंदर सांगोपांग वर्णन है! यहाँ शृंगार का पूर्ण साम्राज्य है। सौंदर्य ही कविता की स्वर्ण-भूमि है, और ललना-लावण्य का विश्लेषण ही उसका मान-दंड है। एँड़ी से चोटी तक, सुंदर-ही-सुंदर नायिकाओं को देखकर रसिक पाठक सौजान से उन पर फ़िदा हो जायँगे! 'बढ़ती ज्वानी नई उमरिया', 'गुल गुलाब-से गाल दिखाय', 'पान को लाली देत बहाली' देखकर—सुनकर नहीं—अवश्य ही हमारे सहृदय पाठक न्योछावर हो जायँगे! 'अलबेली आला' की मदमाती चाल देखकर कलेजे पर साँप लोट जायगा! नज़ाकत भी ग़ज़ब की; लंक की लचक एक नहीं, तीन-तीन!

ऐसी साकार सुंदरता को देखकर रणबौरा ऊदल रूप-बौरा हो गए थे। परस्पर वे सब बातचीत कर रही थीं—

नरपति राजा की बेटी है, फुलवा रूप चंद्र उजियार।
परी छरी है मनो किन्नरी, जाको लखि के रति शरमाय॥
गोरी भोरी उमर की थोरी, अपने हाथ रची करतार।

ऊदल के हृदय की सच्ची भूख यही थी। फुलवती की सुंदरता अनुपम थी। 'भोरी'-शब्द से अज्ञात-यौवन का भोलापन टपक रहा है, और 'उमर की थोरी' तो उसके वयमान् सौंदर्य की सिफ़ारिश है। यह शब्द बड़ा अभिप्राय-गर्भित है।

रणारंभ के पहले बीरवर ताहर अपने सैनिकों से कह रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण पियारो जो काहू को, यारो तलब लेउ घर जाउ।
जिनके गौने हालहि आए, सो घर जाउ धरो हथियार॥
जिन्हें पियारी लगे लड़ाई, सो सँग चलो बाँध तलवार।

दूसरी पंक्ति में कैसी अलक्ष्य संक्रम व्यंग्य-ध्वनि है। नई दुलहिनवाले घर की राह लें। व्यंग्य की सुंदर मार है। चोट नहीं, पर तिलमिलाते सभी!

आल्हा-निकासी का वर्णन कहीं-कहीं बड़ा करुणा-जनक है। एक युद्ध में वीरवर ऊदल पकड़े गए हैं। उनके वियोग में कातर होकर शूर-शिरोमणि आल्हा अपनी वीर-हृदया माता देवल देवी से कह रहे हैं—

एक बिना ऊदल भैया के, मेरी टूट गईं दोउ बाँह।
राज-पाट धन-धाम खजाना, हाट-हवेली महल-मकान॥
बाग-बगीचा सिपह-सवारी, पैदा होंगे सब सामान।
लेकिन एक बिछुरे ना मिलिहैं, जननी एक सहोदर भाय॥

यह व्यथित हृदय का शब्दमय उच्छ्वास है। तुल्य-योगिता-अलंकार का सुंदर निर्वाह हुआ है। अंतिम पंक्ति की शाश्वतवाणी में करुणा की धारा बह रही है। लक्ष्मण-वियोग पर रामचंद्रजी के विलाप की तुलना इससे कीजिए।

एक बार फिर लड़ाई के मैदान में चलकर घोड़े की अनोखी करामातें देखिए। दाँतों-तले उँगली दबा लीजिएगा। परमाल-तनय ब्रह्मानंद चौहान वीर पृथ्वीराज से युद्ध कर रहे हैं—

जैसे लड़का गवड़ी खेलै, तैसे ब्रह्मा रहे खिलाय।
चार टाप से घोड़ा मारै, कोउ को मुख से जाय चबाय॥
आसपास के ब्रह्मा मारै, दोउ कर तेगा रहे घुमाय।
याको मारे वाको मारे, तीसरे जाय देय ललकार॥
चौथा भाग जाय आगे से, पँचवाँ खौफ खाय मर जाय।
ये गति कर दी है ब्रह्मा ने, नदिया बही रक्त की धार॥

वीरों के लिये लड़ाई भी बच्चों का खेल है। जिस ओर बहादुर घोड़े की बागडोर ढीली पड़ गई, उस ओर की लाइन-क्लियर! झुंड-के-झुंड मुंड कद्दू की तरह कतरे गए! घोड़ा भी अजीब लासानी! लताड़ों की मार से शत्रुओं के दाँत तोड़ दे, और मुँह में खोप-ड़ियाँ चबा डाले। वाह!

लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'

चक्र

६

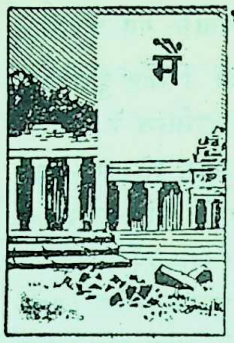

धीरे-धीरे बिलकुल अच्छा होकर हास्पिटल से निकल आया, और फिर अपना चार्ज ले लिया। परंतु इस बार हमको बहुत कम फ्रंट में भेजा जाता था। अधिकतर गार्ड ड्यूटी पर मुझे लगाया जाता था। समय मिलते ही मैं प्रायः ही हास्पिटल में आकर भारती से बातें किया करता था। भारती के साथ मेरी घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

एक दिन एक पुल पर निगरानी रखने के लिये मुझे रात की गार्ड-ड्यूटी पड़ी। आफ़िसरों को अंदेशा था कि दुश्मन पुल पर से होकर इस पार न चले आवें या पुल तोड़ दें जिससे हम उस पार न जा सकें। रात को नौ बजे रवाना हुआ, और ठीक साढ़े दस बजे अपने चार साथियों को लेकर मैं पुल पर पहुँच गया। पुल बहुत चौड़ा था और लोहे की रेलिंगें भी लगी हुई थीं। पुल पर एक कोने में मेरा स्थान निर्दिष्ट हुआ। पुल के उस पार हमने दो सैनिकों को भेज दिया। वे उधर पहरा देने लगे। इस तरफ़ मैं आनंद से अपने दो साथियों के साथ इधर उधर की बातें करने लगा। रात खूब अँधेरी थी। दोनों ओर घना जंगल था। हम लोग बैठे-बैठे भारतवर्ष की बातें कर रहे थे। समय का किसी को कुछ ख़याल ही न था। पुल से कोई एक फर्लांग पीछे हमारी पल्टन का एक प्लाटून डेरा डाले हुए पड़ा था—वहाँ भी इस समय निस्तब्धता छा रही थी। पुल के ऊपर भी सन्नाटा था। पुल भी बहुत छोटा नहीं था।

कोई बारह बजे होंगे कि एक सैनिक मेरी ओर दौड़ता हुआ आया, और मुझसे कहने लगा—"कार्पोरेल देखिए अभी इस पुल पर से होकर कोई आदमी गया है।"

मैंने चट खड़े होकर पूछा—"किधर से गया?"

"इसी तरफ़ से गया है। वह सिर से पैर तक सफ़ेद चादर ओढ़े हुए था।" सैनिक ने कहा।

मैंने फ़ौरन् चार सिपाहियों को उस ओर दौड़ाया कि वे फ़ौरन उसे पकड़ लाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पाँच मिनट के अंदर ही मेरे भेजे हुए सैनिक एक शख़्स को पकड़ लाए। वह सिर से पैर तक एक चादर से ढका हुआ था। मैं समझ गया, यह अवश्य कोई शत्रु का चर होगा। क्रोध के साथ मैंने हुक्म दिया, इसकी चादर हटा लो। यह कहकर हम पुल के नीचे, जहाँ एक बत्ती जल रही थी, उतर आए। वहाँ आते ही एक सैनिक ने उसके बदन के ऊपर से चादर हटा ली। साथ ही मैंने जो दृश्य देखा, उससे मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा और अपने-आप मुँह से निकल गया—"यह क्या भारती तुम!"

सचमुच वह भारती ही थी। उसने ज़रा हँसकर धीरे से कहा—"हाँ, मैं ही हूँ।"

मैं कुछ कहने ही वाला था कि बड़े ज़ोर से धड़ाके की आवाज़ हुई। हम सब चौंक पड़े, और सामने देखा कि जिस पुल पर थोड़ी ही देर पहले हम बैठे हुए थे, वह टूटकर पानी में गिर रहा है। एक जगह आग भी लगी हुई है। आवाज़ के साथ ही पास के पड़े हुए प्लांटूनों से सब आदमी दौड़ आए। लेफ़्टिनेंट साहब भी आए थे। भारती को मेरे पास खड़ी देखकर वह मुझसे मामला पूछने लगे। मैं बड़े पशोपेश में पड़ गया। क्या कहूँ—क्या न कहूँ!

भारती मेरे मन का भाव समझ गई। कुछ मुस्किराकर उसने मुझसे कहा—"आप अपना कर्तव्य-पालन कीजिए। हिचकने की क्या आवश्यकता है।"

विवश होकर सामरिक नियम के अनुसार मुझे भारती को पकड़ने का समाचार कहना ही पड़ा। सुनकर उन्होंने भारती से कहा—"अवश्य तुम्हारे जाने के बाद ही यह पुल टूटा है।"

"हाँ, यह तो मैंने भी देखा है!" भारती ने कहा।

"क्या तुम्हें मालूम है कि तुम लोगों को रात को निकलने का हुक्म नहीं है?" कड़ककर लेफ़्टिनेंट ने कहा।

धीमे स्वर से भारती ने उत्तर दिया—"हाँ, मालूम है।"

लेफ़्टिनेंट साहब ने पूछा—"फिर तुम किस लिये अकेली पुल के ऊपर गई थीं?"

उसी प्रकार धीरता और नम्रता के साथ भारती ने कहा—"यदि मैं इसका उत्तर न दूँ...?"

अपनी बाईं हथेली पर दाहने हाथ का घूँसा मारते हुए लेफ़्टिनेंट ने रोष के साथ कहा—"तो मैं यही समझूँगा कि तुम जर्मनी की स्पाई (गुप्तचर) हो, और इस पुल को तुम्हीं ने तोड़ा है।"

लापरवाही के साथ भारती ने भौंहें चढ़ाकर उत्तर दिया—"जैसा आप चाहें, समझ सकते हैं—मैं उत्तर नहीं दूँगी।"

"कार्पोरल!" मेरी ओर देखकर लेफ़्टिनेंट ने कहा—"तुम इस नर्स को क़ैद रक्खो। कल मैं इसे कोर्ट-मार्शल में भेजूँगा।" यह कहकर लेफ़्टिनेंट साहब ने मुझको कैंप में लौट जाने का हुक्म दिया।

भारती को साथ लेकर मैं कैंप में लौट आया। एक छोटे-से टेंट (तंबू) में भारती का प्रवेश कराकर मैं दरवाज़े के पास बैठ गया। अब तक मैंने उसके साथ एक भी बात न की थी। मुझे चुप देखकर भारती ने पूछा—"चुप क्यों हो—क्या सोच रहे हो?"

सिर उठाकर मैंने कहा—'सोच रहा हूँ, तुम इतनी नीच कैसे हो गई भारती? तुमने यह कार्य क्यों किया?"

भारती ने कहा—"बस, यही सोच रहे हो?"

"हाँ, कुछ और भी सोच रहा हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

उत्सुक होकर भारती ने कहा—"वह क्या?"

मैंने कहा—"और, सोच रहा हूँ कि शायद मेरा मर जाना ही अच्छा था।"

"क्यों?"

"क्योंकि मुझे घृणा हो रही है कि जिस प्राण को संसार के सामने लेकर मैं अब भी खड़ा हूँ, उस प्राण की रक्षा इसी नीच (?) स्त्री की सेवा से हुई है।"

भारती ने उत्तर नहीं दिया, और नीचा मुख करके बैठ गई।

× × ×

यथासमय भारती का विचार प्रारंभ हुआ। कोर्ट-मार्शल में पाँच आफ़िसर उसका विचार करने के लिये नियुक्त हुए। भारती के विरुद्ध प्रधान गवाह मैं बनाया गया। यद्यपि मन इस कार्य के विरुद्ध एक विद्रोह की घोषणा कर रहा था, फिर भी मैं निरुपाय था। सामरिक नियम मेरे हाथ-पाँव को ही नहीं, बल्कि मेरे मन को भी जकड़ रहा था। मेरी अवस्था इस समय कैसी हो रही थी, इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है।... ..विचार का विवरण पढ़ा गया। मेरी गवाही हुई। भारती शांत तथा सौम्य भाव से खड़ी थी। सामने टेबिल के चारों ओर विचारकगण बैठे हुए थे। एक तरफ़ मैं खड़ा था। शायद मेरे हाथ-पाँव कुछ काँप रहे थे।

धीरे-धीरे प्रधान विचारक उठे। गंभीर कंठ से उन्होंने भारती को संबोधन कर कहा—"नर्स नंबर ४४४, तुम्हारे ऊपर कोर्ट-मार्शल दो अपराधों का अभियोग लगाता है। तुम ईश्वर और सम्राट् के नाम से सच-सच उत्तर दो कि तुम सत्य ही अपराधिनी हो, या नहीं ? प्रथम अभियोग यह है कि तुम सामरिक नियम के विरुद्ध...तारीख़ को रात दस बजे के बाद अपने कैंप की सीमा के बाहर...पुल पर गई थीं। दूसरा अभियोग यह कि वह पुल तुम्हारे जाने के कुछ ही मिनटों के बाद जल गया। तुमने किसी षड्यंत्र में सम्मिलित होकर उस पुल को तोड़ा है। कहो, तुम्हारे पास इसका क्या उत्तर है ?"

शांत और सुमिष्ट स्वर से भारती ने उत्तर दिया—"प्रथम अभियोग को मैं स्वीकार करती हूँ। मेरे ऊपर लगाया हुआ दूसरा अभियोग बिलकुल झूठ है।"

विचारक ने प्रश्न किया—"मैं जानना चाहता हूँ कि उस रात तुम्हारे बाहर जाने का कारण क्या था ?"

स्थिर कंठ से भारती ने कहा—"कारण मैं नहीं बताना चाहती।"

विचारक ने कहा—"परंतु क्या तुम जानती हो कि इससे तुम्हारे अपराध का मूल्य बढ़ जाता है, जिसके परिणाम-स्वरूप तुम्हें बहुत कठोर दंड दिए जाने की संभावना है ?"

"हाँ, मैं जानती हूँ; परंतु फिर भी मैं वह कारण नहीं बताऊँगी।" भारती ने सिर उठा कर कुछ उच्च स्वर में कहा।

इसके बाद और भी कई प्रश्न किए गए। फिर भारती की सर्विस-बुक कोर्ट-मार्शल में पेश की गई। विचारकगण आपस में धीरे-धीरे तर्क-वितर्क करने लगे।

थोड़ी देर बाद प्रधान विचारक फिर खड़े हुए। उनका निर्णय सुनने के लिये मेरे कान खड़े हो गए। हृदय धड़कने लगा—शरीर रोमांचित हो उठा।—परंतु भारती ? वह उसी प्रकार शांत, धीर, स्थिर और सौम्य थी। उसके मुख के भाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। क्षण-भर के लिये मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या भारती मानवी है, अथवा दानवी—या देवी.....

प्रधान विचारक ने अपना वक्तव्य आरंभ किया—"नर्स नं० ४४४, दूसरे अभियोग का कोई प्रमाण कोर्ट-मार्शल के पास नहीं है, इस कारण वह अभियोग तुम्हारे ऊपर से हटा लिया जाता है। पहले अभियोग को तुम स्वयं स्वीकार करती हो, अतएव तुम अपराधिनी हो। सामरिक नियम के विरुद्ध रात को कैम्प छोड़कर बाहर जाना एक अत्यंत गर्हित अपराध है। परंतु तुम्हारी सरविस का पहला रेकर्ड बहुत अच्छा है, तुम्हारी अवस्था तरुण है और मुख्यतः तुम स्त्री हो, इस कारण कोर्ट-मार्शल तुम पर दया प्रदर्शन कर, केवल तुमको कार्यच्युत करता है। शीघ्र ही तुम्हारे भारत जाने का प्रबंध कर दिया जायगा, और तुम्हें कोई सामरिक सम्मान नहीं प्रदान किया जायगा।"

म्लान हँसी हँसकर भारती ने उत्तर दिया—"धन्यवाद।" और मैं—? अवाक् होकर भारती के मुख की ओर देखता रहा—आश्चर्य-जनक मानवी है, यह भारती !

७

मैं बैठा हुआ सोच रहा था भाग्यचक्र की अद्भुत परिचालना की बात को। मुझे आज सवेरे सरकार की ओर से सार्जंटी का बिल्ला मिला था। मैं इस समय एक सम्मानजनक पद पर पहुँच गया था। और, मेरी जीवनदात्री भारती ? उसे सरकार ने कार्यच्युत कर दिया। किसी प्रकार का सामरिक सम्मान का पथ उसके लिये बंद हो गया। क्या यह भाग्यचक्र की बात नहीं !—भारती उस रात को क्यों बाहर गई थी, इस प्रश्न का उत्तर उसने मुझे भी नहीं दिया। इसका कारण क्या है ? क्या इसमें भी कुछ रहस्य निहित है ?...अवश्य ही वह अपने किसी प्रिय...छिः ! मैं यह क्या सोच रहा हूँ ? क्या मैं भारती से घृणा करूँ या...। ऐसी ही असंगत चिंताओं से मैं घिरा हुआ था। मुझे अपने पद-गौरव का उस समय कोई भी आनंद नहीं था—नहीं था। कारण, मैं इतना कृतघ्न कैसे हो सकता था।

अर्दली सार्जंट ने आकर कहा—कमांडिंग साहब बुला रहे हैं।

मैं जाकर उनके सामने सैल्यूट करके खड़ा हुआ।

कमांडिंग साहब ने मेरी ओर देखकर कहा—"सार्जंट, ब्रिग्रेड से हुक्म आया है कि एक सार्जंट और दो प्राइवेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर नर्स नं० ४४४ को, मार्सलिज़ के बंदर पर, लायल्टी-जहाज़ तक, जो भारत जा रहा है, पहुँचा आवे। मैं तुमको हुक्म देता हूँ कि अपने दो सिपाहियों के साथ हास्पिटल-कैंप में जाओ वहाँ से नर्स नं० ४४४ को साथ लेकर मार्सलीज़ रवाना हो जाओ। लायल्टी-जहाज़ के कैप्टेन के नाम काग़ज़ात ऐडजुटेंट के पास से लेते आना। कैप्टेन की सुपुर्दगी में भारती को देकर तुम वापस आकर मुझसे रिपोर्ट देना। समझे ?"

"जीहाँ।" मैंने उत्तर दिया। छोटा-सा उत्तर 'जीहाँ। परंतु इस दो अक्षर के उत्तर ने मेरे प्राण को मानो विदीर्ण कर दिया। अदृष्ट का निष्ठुर चक्र ! यह मेरे साथ तेरा कैसा भयंकर खेल है ! मुझसे कृतघ्नता का यह नाटक तू क्यों खिलाना चाहता है ? जिसकी पवित्र सेवा का स्वाद मैं आजन्म नहीं भूल सकता, उसी के निर्भय दंड का परिणाम मेरे ही हाथों से बार-बार तू क्यों अभिनय कराता है ? आज मुझे दुर्मुख का अभिनय करना पड़ेगा—दुर्मुख की अवस्था भी शायद मुझसे अच्छी थी। कारण, वह तो ऐसे ही कार्य के लिये नियुक्त किया गया था, परंतु मैं..... ? यह सचमुच ही एक कठिन परीक्षा है।

सोचते-सोचते मैं ऐडजुटेंट के पास गया। उनसे ज़रूरी काग़ज़ात लेकर अपने कैंप में आया। दो सिपाहियों को अपने साथ लेकर मैं उसी समय हास्पिटल-कैंप की ओर रवाना हो गया।

हास्पिटल-कैंप में पहुँचकर मैं वहाँ के प्रधान कार्यकर्ता से मिला, और उनके नाम का लिखा हुआ आज्ञापत्र निकालकर उनके हाथ में दे दिया। उसे पढ़कर उनका चेहरा कुछ उदास-सा हो गया। वे अर्द्ध-स्वगत स्वर से बोल उठे—"यह भारतीय रमणी केवल एक रहस्यमयी प्रहेलिका के समान है। ऐसा उदार, ऐसी सेवामयी। परंतु...।" एक स्टेथिसकोप को हाथ पर नचाते हुए वह अन्यमनस्क-से हो गए। शायद अज्ञात में ही उनके हृदय ने एक ठंढी साँस भी भर ली थी।

मैंने घड़ी में देखा, विशेष विलंब करने का समय नहीं है। अतः मैंने कुछ नरमी के साथ कहा—"महाशय, समय अधिक नहीं है।"

धीरे-धीरे मेरी ओर देखकर वह कुछ रूखे स्वर से बोल उठे—"सचमुच तुम लोगों में प्राण-वस्तु का बिलकुल अभाव है।" यह कहकर वह भीतर चले गए। मैं सोचने लगा—क्या सचमुच ही हम लोगों में प्राण का ऐसा अभाव विद्यमान है—कैसे कहूँ। आज इस कठोर आज्ञा का पालन करने के लिये कितने बड़े प्राण की आवश्यकता हुई है, उसे यह मूर्ख अफ़सर क्या जानेगा, उसके लिये प्राण के आवेग को प्रकाश करने का द्वार खुला हुआ है—कृतज्ञता को प्रकट करने की हृदय की खिड़कियाँ उन्मुक्त हैं, और मेरे लिये उस आवेग का द्वार बंद है—उस कृतज्ञता को प्रकट करने की खिड़की बंद है। एक कठोर कर्तव्य का बंधन उस लौकिक कर्तव्य की साँकल पर लगा हुआ है। प्राण एक बँधे हुए अनिवार्य कर्तव्य के कमरे में बंद होकर भीतर-ही-भीतर सिसक रहा है..... . ...।

मेरी चिंता-धारा में बाधा प्रदान करते हुए अकस्मात भारती ने हँसकर कहा—"आज सवेरे तुम्हारी पदोन्नति का संवाद सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हुई हूँ। सार्जेंट ! मैं हृदय से तुम्हें बधाई देती हूँ।"

भारती किस समय कमरे में आई थी, यह मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं अपनी चिंता-धारा में ही लीन था। भारती की दी हुई बधाई ने मुझे सचेत किया। मैंने उसकी ओर देखा। वही चिरहास्यमना मुखमंडल—नयनों में वही पवित्र ज्योति।

मैंने धीरे-धीरे कहा—"इस बधाई के लिये धन्यवाद ! परंतु भारती, आज मैं तुम्हारे पास एक मित्र की तरह मिलने नहीं आया हूँ। कोर्ट-मार्शल द्वारा दिए हुए हुक्म का प्रतिपालन ही मेरे आगमन का हेतु है। मुझे आज्ञा है कि....."

बीच ही में बात काटकर भारती बोल उठी—"हाँ, वह मैं सुन चुकी हूँ।"

"तो अब समय अधिक नहीं है।" मैंने यथासंभव गंभीर होकर कहा।

"मैं प्रस्तुत हूँ सार्जेंट।" कहकर भारती भीतर चली गई।

आज भारती के मुख से सार्जेंट शब्द का संबोधन मेरे लिये मानो एक कठोर विद्रुम था। वह शब्द मानो तीक्ष्ण छुरी की भाँति मेरे हृदय पर आघात कर रहा था। क्यों भारती मुझसे नाराज़ नहीं हो गई ? क्यों अब भी इस सरलता-पूर्ण व्यवहार से मेरे हृदय को वह और भी व्याकुल कर रही है ? इससे तो शायद उसका क्रोध ही अच्छा था !

"चलिए, मैं प्रस्तुत हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौंककर देखा, हाथ में एक सूटकेस लिए भारती खड़ी है—वही स्निग्ध दृष्टि, वही पवित्र दीप्ति, होठों के कोनों पर वही सुमधुर मुस्कान की क्रीड़ा। भारती के पीछे नर्सों की एक छोटी-सी भीड़ लगी हुई थी। कई डाक्टर भी वहाँ आ खड़े हुए थे। भारती के प्रस्थान का संवाद मानो बिजली की भाँति तेज़ी से चारों ओर पहुँच चुका था। कई उपकृत सामरिक कर्मचारी भी वहाँ उपस्थित थे। नर्सों की आँखों से पानी झर रहा था। कई तो सिसक-सिसककर रो रही थीं। डाक्टरों की आँखें भी कुछ डबडबाई हुई मालूम होती थीं, और कई कर्मचारियों की आँखें भी रूमाल द्वारा पोंछी जा रही थीं। बहाना था कि आँख में कुछ गिर पड़ा है। भारती की आँखें भी शुष्क नहीं थीं, परंतु मुस्किराहट का राज्य फिर भी होठों ने अधिकृत कर ही रक्खा था। और मेरी आँखें? वे आँसुओं के विरुद्ध एक युद्ध की घोषणा कर रही थीं। दुश्मन आँसू पूर्ण आवेग के साथ आँखों के कोनों पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा कर रहे थे। आँखें झपक-झपककर उनके आक्रमण को निष्फल करने की चेष्टा कर रही थीं, परंतु एक बूँद न-जाने किस प्रकार.....। ख़ैर, कोई हानि नहीं। कारण, देखते-न-देखते अज्ञात में ही मैंने रूमाल से उसकी स्मृति तक को मिटा डाला।

बिदाई का वह अभिनय एक स्वर्गीय दृश्य.....नहीं, नहीं.....स्वर्ग में ऐसा दृश्य कहाँ से हो सकता है—यह दृश्य तो अनुपमेय था।

× × ×

मोटर में भारती को लेकर मैं अपने दोनों और साथियों के साथ स्टेशन की ओर रवाना हुआ।

मोटर में कोई बातचीत नहीं हुई। थोड़ी ही देर में हम स्टेशन पर आ पहुँचे। मार्सलीज़ जानेवाली गाड़ी प्लैटफ़ार्म पर खड़ी हुई थी। हम चारों जाकर एक कमरे में बैठ गए, और साथ ही गाड़ी प्लैटफ़ार्म छोड़कर द्रुतगति से चल दी।

कमरा केवल सैनिक व्रतावलंबियों से भरा हुआ था। उनके साथ कितनी ही महिलाएँ भी थीं। उनकी हँसी और सुंदर चंचलता के भीतर से उनके जीवन की तरंग मानो उछली पड़ती थी। एक युवती की गोद में एक छोटा-सा बच्चा था। वह उस बच्चे के साथ किसी अज्ञात भाषा में कुछ बातचीत कर रही थी। बच्चा शायद उसकी भाषा को समझ रहा था। कारण, उसकी बातों से बच्चे के मुख पर एक मधुर हास्य की रेखा खिंच रही थी। भारती उसको एकाग्र दृष्टि से देख रही थी।

मैं उस समय भी निस्तब्ध बैठा था। मेरे दोनों साथी एक फ़्रांसीसी युवती के पास जाकर बैठ गए थे, और उसे हिंदुस्थान की आश्चर्य-जनक वस्तुओं का एक वर्णन दे रहे थे। गाड़ी खूब तेज़ी के साथ चल रही थी।

मैं अपनी निस्तब्धता से कुछ ऊब-सा गया और यह निश्चय कर लिया कि भारती से कुछ वार्तालाप करूँ। परंतु कैसे आरंभ करूँ?...फिर आधा घंटा बीत गया। उस 'कैसे' का उत्तर मुझे बहुत ढूँढ़कर भी नहीं मिला। शायद भारती को एक आध कंबल की आवश्यकता हो? पूछूँ क्या?..."भारती...यह क्या?"...दममम्.....

जब चेतना आई, तो देखा, सामने विराट् ट्रेन टूटी पड़ी है—कई जगह दग्ध चिह्न भी देख पड़े। आहतों का चीत्कार भी सुनाई दे रहा था। कई तो उस समय भी ट्रेन के भीतर पड़े हुए चिल्ला रहे थे—मैदान के चारों ओर लोगों की भीड़-सी लगी हुई थी। मृतकों का ढेर लगा हुआ था। कई सैनिकगण आहतों की सुश्रूषा में लगे हुए थे। दौड़-धूप मच रही थी। कुछ क्षण तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया कि बात क्या है, क्या यह आइयर्न्स की लड़ाई का मैदान है अथवा...नहीं-नहीं...। ठीक याद आ गया। अवश्य यह ट्रेन-दुर्घटना है—परंतु भारती कहाँ गई? क्या वह उन आहतों में पड़ी हुई कराह रही है, या अभी तक ट्रेन के कमरे में बंद है, या कहीं उस मृतक-ढेरी में.....

कल्पना के साथ ही मैं उठने की चेष्टा..

"अभी मत उठो।"

यह क्या? फिर वही कंठस्वर, वही देव-भाषा—वाणी-देवी के मुख से निकले हुए सुमिष्ट रागिनी की तरह। मुख को ऊँचा करने के साथ ही उन दो सौम्य नेत्रों पर दृष्टि पड़ी, जो मंत्रशक्ति की तरह देह को अवश कर देते थे। हाँ, उसी की गोद में सिर रखकर मैं पड़ा हुआ था। उठ बैठने की इच्छा हुई; परंतु भारती की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करूँ, वह क्षमता उस समय न-जाने मुझमें क्यों नहीं थी। आँखों को आहतों की ओर निबद्ध कर मैं उनकी अवस्था का अवलोकन कर रहा था कि इतने में मेरे साथ का एक सैनिक हीरासिंह वहाँ आ पहुँचा। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होश में देखकर वह कह उठा—"आप अभी कुछ स्वस्थ हैं न ? चलो, ईश्वर को धन्यवाद है।" साथ ही ट्रेन की ओर उँगली का इशारा करते हुए वह कह उठा—"देखा न आपने, इन जर्मनों की नालायकी को ? ट्रेन पर ही बम फेंक दिया—अगर कहीं मैं एक बार उनके नगर में पहुँच जाऊँ, तो सारी रेलवे ही ध्वंस कर दूँगा।"

मुझे इस दुःख में भी उसकी इस निरर्थक वीरोचित उक्ति को सुनकर हँसी आ गई; परंतु साथ ही अपने दूसरे साथी मदनसिंह का स्मरण आते ही मैंने पूछा—"मदन कहाँ है ?"

"अच्छा, यह आपको मालूम नहीं" ! बड़े ताज्जुब के साथ उपयुक्त वाक्य कहते हुए हीरासिंह बोला—"वह भी इस ट्रेन-यज्ञ में अपने बाएँ हाथ के अँगूठे की आहुति दे चुका है। परंतु मरहम-पट्टी करके वह इस समय मज़े में आहतों की सेवा कर रहा है। आपको भी यहीं प्राण छोड़ जाना पड़ता, परंतु यह देवजी.....।"

तीव्र स्वर से अकस्मात् उसकी बात को काटते हुए भारती बोल उठीं—"क्योंजी, मैंने आपसे पानी लाने के लिये कहा था, और आप बिलकुल भूल गए ?"

विस्फारित नेत्रों से भारती की ओर देखकर हीरासिंह ने कहा—"पानी ?—कब कहा था ? देखिए, यह आप व्यर्थ ही मेरे ऊपर दोषारोप करती हैं, मुझे आपने कभी पानी लाने के लिये नहीं कहा। मेरी ऐसी आदत नहीं है कि मैं चट से किसी बात को भूल जाऊँ। हाँ, गोपाल में यह बात ज़रूर है—कार्पोरेल तो वह अवश्य बन गया है, पर उसकी स्मरण-शक्ति बिलकुल ख़राब है। अभी उस दिन मेजर साहब ने उससे...।"

भारती फिर बीच में ही बोल उठी—"ख़ैर, गोपाल की बात पीछे सुनूँगी—अभी आप पानी ले आइए।"

तत्परता दिखाते हुए हीरासिंह चट से कह उठा—"अभी ला देता हूँ; परंतु आप स्वीकार कीजिए कि मुझे पहले ऐसी आज्ञा नहीं दी थी।"

कुछ हँसकर भारती ने कहा—"हाँ, तो शायद मैंने किसी और से कहा होगा।"

"ज़रा वह दिख जाय, तो मुझे बता तो दीजिएगा—एक बार उसको इस हुक्म-अदूली का मज़ा चखा दूँगा।" बक-बक करता हुआ हीरासिंह एक ओर पानी की तलाश में चल दिया। परंतु मैंने समझ लिया कि पानी की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं थी, यह केवल एक बहाना था। हीरासिंह मुझे भारती के उपकार की बात कहना चाहता था; किंतु भारती ने उसे टाल दिया। तो क्या इस बार भी मैंने भारती के अनुग्रह से जीवन-लाभ किया है ? ऐसा ही ज्ञात होता है। हाय भगवन् ! यह तुम्हारी कैसी अद्भुत क्रीड़ा है। इसका परिणाम क्या है ? भाग्यचक्र से जिसका मैं केवल अनुपकार करता जा रहा हूँ—वही मेरा महान् उपकार करती जा रही है। इस कृतघ्नता का उत्तर तुझे तो शायद दे दूँ; परंतु लोक-समाज में क्या दूँगा ?

चिंताओं से मैं फिर अवसन्न हो गया। थोड़ी देर बाद रिलीव-ट्रेन आ पहुँची। भारती और हीरासिंह की मदद से मैं उठ खड़ा हुआ। चोट कुछ अधिक नहीं आई थी। अचानक कमर के बल गिर पड़ने के कारण ही मूर्छित हो गया था। कारण, कमर में लगा हुआ पहले का घाव अभी पूरी तरह से सूखा नहीं था। अस्तु, हम चारों फिर एक कंपार्टमेंट में जाकर बैठ गए।

गाड़ी चलने लगी, फिर वही निस्तब्धता। इस बार भी हमारे साथी कुछ दूर पर, बेंच पर, बैठे हुए सिगरेट पी रहे थे।

भारती चुप बैठी थी। इस बार मुझसे न रहा गया। मैंने भारती का हाथ पकड़कर कहा—"भारती !" स्थिर कंठ से उत्तर मिला—"क्या ?"

"कहो, तुम उस रात को कहाँ गई थी ?" मैंने उत्सुक होकर पूछा।

उसी प्रकार शांत स्वर से उसने उत्तर दिया—"यह मैं नहीं कहूँगी।"

मैंने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"नहीं, तुम्हें कहना ही पड़ेगा भारती।"

आँखों को मेरी ओर निबद्ध कर भारती ने कहा—"क्यों ?"

"क्योंकि न कहने से तुम्हारे ऊपर भारी कलंक लगता है—" भारती चुप रही। मैंने कहा—"भारती, अच्छा तुम केवल इतना कह दो कि तुम कलंकिनी नहीं हो। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं उसी पर विश्वास कर लूँगा।"

कुछ निर्विकार-स्वर से भारती ने पूछा—"मेरे कलंक-कलंक से तुम्हारा क्या आता-जाता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगवान् को धन्यवाद दूँगा कि भारती कलंकिनी नहीं हो सकती। मृत्यु-जननी! इस रणभूमि पर यदि मैं मरने लगूँ, तो उस समय मेरी एक आँख के सामने मेरी पुण्यमयी माता का चित्र हो, और दूसरी के सामने मेरी पुनर्जन्मदात्री...।"

मेरी बात समाप्त होने के पहले ही गाड़ी मार्सलोज़-स्टेशन पर आ लगी। भारती ने उठकर कहा—"चलिए, स्टेशन आ गया।"

जहाज़ के कप्तान ने भारती का चार्ज ले लिया। जहाज़ उसी दिन रात को वापस होनेवाला था। केबिन में जाकर भारती के दोनों हाथ मैंने पकड़ लिए और कहा—"तुम जब मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहती, तो मैं अब प्रश्न नहीं करूँगा। अच्छा, तो मुझे अब आज्ञा दो; मैं फिर जाकर रणभूमि की छाती पर कूद पड़ूँ।"

भारती के नेत्र इस समय सजल हो रहे थे। उसने रुद्ध-कंठ से कहा—"परमात्मा तुम्हारा मंगल करे।" कहकर उसने मुँह फेर लिया। मैं धीरे-धीरे जहाज़ से नीचे उतर आया।

८

कुछ दिन बाद मैं फिर फ्रंट में भेजा गया। कोई एक महीने बाद जिस दिन मैं फ्रंट से अपनी इनफ़ेंट्री के साथ लौटा, उसी दिन शाम को हमारे ब्रिग्रेड के एक सिपाही बिशनप्रसाद ने (जो क़रीब डेढ़ महीने से हास्पिटल में पड़ा हुआ था) मेरे पास एक चिट्ठी भेजा। उसमें उसने मुझे फ़ौरन् मिलने के लिये बुलाया था। चिट्ठी पाते ही मैं उसके पास गया। वह अस्पताल में पड़ा हुआ था। उसकी अवस्था बड़ी ख़राब थी। उसका बायाँ पैर पूरा काट डाला गया था।

उसने मुझे अपने पास बैठने के लिये कहा। पास के रक्खे हुए स्टूल पर बैठ गया। मेरे बैठते ही उसने कहा—"सुनता हूँ, श्रीमती कमला को कोर्ट-मार्शल ने काम से अलग कर दिया है।"

"हाँ"

उसने पूछा—"क्या आपको कारण मालूम है?"

मैंने उत्तर दिया—"हाँ, उसने सामरिक नियम का उल्लंघन किया था, वह रात को बारह बजे कैंप के बाहर एक पुल पर गई थी। उसी रात को वह पुल भी टूट गया।"

"वह बाहर क्यों गई थी, यह आपको मालूम है?" मेरी ओर देखकर उसने पूछा। मैंने उत्तर दिया—"नहीं।"

सिर हिलाकर उसने कहा—"परंतु मुझे मालूम है।"

"क्या आप उसके नाम पर कलंक लगाना चाहते हैं?" मैंने कुछ क्रोध के साथ कहा।

श्लेष की हँसी हँसते हुए बिशनप्रसादने कहा—"नहीं, कलंक आप लोगों ने ही लगाया है, मैं उनके नाम के साथ एक महत्त्व की बात ही जोड़ना चाहता हूँ।"

उत्कंठित होकर मैंने कहा—"कहिए, आप क्या जानते हैं?"

बिशनप्रसाद कहने लगा—"सुनिए, जिस दिन की वह घटना है, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। कारण उस दिन की स्मृति में मैंने अपना एक पैर उपहार में दे दिया है। हाँ, उस रात को ग्यारह बजे हास्पिटल से कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे खड़ा हुआ था।

अचानक मेरे कान में दो आदमियों के बातचीत करने की आवाज़ आई। मैं जिस पेड़ के नीचे खड़ा हुआ पहरेदारी कर रहा था, ठीक उसी पेड़ के नीचे वे खड़े बातचीत कर रहे थे। बातों से मालूम हुआ कि वे जर्मनों के स्पाई हैं, और उन्होंने पुल पर एक डिनेमाइट छिपा रखा है, जो ठीक सवा बारह बजे फूटेगा। उनकी बातें सुनकर मैं कैंप की ओर संवाद देने दौड़ा; परंतु उन्होंने मुझे देख लिया और फ़ायर किया, एक गोली आकर मेरी जाँघ में घुस गई, फिर भी मैं दौड़ा। हास्पिटल के पास आकर फिर मुझे न चला गया, और मैं गिर पड़ा। संयोगवश मेरे से श्रीमती कमला मेरे कराहने के शब्द सुन निकल मेरे पास दौड़ आईं। मैंने उनसे सब हाल कह दिया। उन्होंने मुझसे पूछा कि पुल पर किसकी ड्यूटी है? मुझे आपका नाम मालूम था, सो मैंने उनसे कह दिया। सुनते ही उन्होंने कहा, मैं स्वयं जाकर डिनेमाइट हटाए देती हूँ—ज्योतिप्रसाद की रक्षा स्वयं करूँगी। यह कहकर उन्होंने मेरे घाव की ओर एक बार देखा। मैंने उनसे कहा, आप दौड़ जाइए। समय नहीं है। बारह बजने को ८-१० मिनट की देरी होगी। मेरी बात सुनते ही एक सफ़ेद चादर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे वह ओढ़ हुई थी, अपने बदन को ढाँककर दौड़ पड़ीं। मैं बड़ी कठिनाई से उठकर लँगड़ाता हुआ अस्पताल के बरामदे में आते ही बेहोश हो गया। तब से पैर में ज़हर फैल जाने के कारण चेतना-हीन होकर ही पड़ा रहता था, इसलिये उस बात का कुछ ख़याल ही न रहा। कल मैंने सुना कि वह काम से अलग कर दी गईं।"

यह कहकर बिशनप्रसाद चुप हो गए। और मैं? मेरा हृदय फिर आंदोलित हो उठा। जिसने मेरे लिये इतना त्याग किया, वह मेरी कौन है? मैंने उसके महान् उपकार का क्या प्रतिदान दिया? मुझे ही बचाने के लिये वह गई, और मैंने ही पकड़कर उसे कोर्टमार्शल में बदनाम किया। उस दिन मुझे अपने कृतघ्न हृदय का प्रथम परिचय मिला। मैं सोचने लगा—"भारती एक पहेली है!"

९

युद्ध समाप्त हो गया। हम लोगों को भारतवर्ष लौट जाने का हुक्म हुआ। इस समय मैं सूबेदार-मेजर था। सरकार ने पाँच वर्ष के अंदर-ही-अंदर मुझे मामूली सिपाही से इतने बड़े ओहदे पर चढ़ा दिया। न-जाने इसके भीतर किसका हाथ था। जो कुछ हो, हम लोग फिर भारतवर्ष की ओर रवाना हुए। परंतु मेरा हृदय इस समय बहुत व्यथित रहा करता था। दिन-रात एक दावाग्नि हृदय में जला करती थी। आते समय जो उत्साह लेकर मैं आया था, जाते समय वह उत्साह मेरे हृदय में नहीं था।

जहाज़ जब बंबई-बंदरगाह पर पहुँचा, उस समय सब सैनिकों के अंतःकरण में जो आनंद की रश्मि क्रीड़ा कर रही थी, वह मुझे स्पर्श नहीं कर रही थी। मैं कई बातें सोच रहा था। कभी सोचता था कि जिन हज़ार सैनिकों के साथ मैं युद्ध में गया था, उनमें अधिकांश तो किसी सुदूर रणस्थल पर समाधि ले चुके हैं। उन बिछड़े हुए सहयोगियों की याद उस दिन मुझे पागल बना रही थी। कभी सोचता था पिता की बात, कभी भारती की बात। सब चिंता एक वेदना की डोर में गुँथी हुई थी। आनंद केवल एक बात का था, वह था ममी के स्नेहमयी गोद का। बहुत दिनों बाद फिर उनकी गोद में सिर रखकर रोऊँगा। अपने व्यथित हृदय का अर्घ्य उनकी छाती में भर दूँगा।

जहाज़ से सब धीरे-धीरे कतार बाँधकर उतरने लगे। मैं भी उतरा। सामने ही देखा, जनरल हाबर्ट खड़े हैं। मुझे देखते ही वह मुझसे लिपट गए। मैंने व्यग्र होकर पूछा—"अंकिल, ममी कहाँ हैं?"

"अश्रु-पूर्ण नेत्रों से जनरल साहब ने कहा—"मंगलमय के शांतिनिकेतन में वह चली गई हैं सनी। मुझे छोड़कर—तुम्हें छोड़कर। आज एक वर्ष हो गए।"

सुनते ही मेरी रही-सही आशा जाती रही। मेरे शून्य हृदय को किंचिन्मात्र भी शांति देने के लिये कोई न रहा, सोचते-सोचते मैं बच्चे की भाँति फूट-फूटकर रोने लगा। जनरल भी मेरे साथ-साथ रोते रहे।

बहुत देर तक अश्रुराशि से ममी का श्रद्धा-तर्पण कर हम किंचित् शांत हुए। जनरल साहब ने कहा, मैं इसी हफ़्ते के जहाज़ से इँगलैंड लौटा जा रहा हूँ। मैंने कार्य से इस्तीफ़ा दे दिया है। मैंने पूछा—"क्या मृत्यु के समय ममी ने मेरे प्रति कोई आदेश नहीं दिया था?"

जनरल ने कुछ गंभीर होकर कहा—"हाँ, दिया था, परंतु क्या तुम उस आदेश का पालन करोगे?"

दृढ़कंठ से मैंने उत्तर दिया—"जब तक रक्त का एक बिंदु भी मेरे शरीर में रहेगा, मैं उनकी आज्ञा का अपमान नहीं कर सकता अंकिल।"

आनंदित होकर जनरल साहब ने कहा—"तुम्हारी ममी का अंतिम अनुरोध तुम्हारे प्रति यही है कि तुम अपने पिता के पास लौट जाओ। पितृ-हृदय को दुःखित न करो।"

मैंने शांत होकर कहा—"मैं इस आदेश का पालन करूँगा। कारण, यह मेरी माता की आज्ञा है।"

१०

आगरा-स्टेशन पर उतरकर मैं एक ताँगे में बैठकर सीधा घर आया। वहाँ देखा, सैकड़ों आदमी मेरे घर के सामने म्लान मुख किए हुए खड़े हैं। मेरे उतरते ही दो-चार आदमी, जो मुझे पहचानते थे, मेरे पास दौड़ आए। मैंने उत्कंठित होकर कंपित स्वर से पूछा—"मेरे पिता कहाँ हैं?"

"चलो, भीतर चलो" कहकर वे मुझे भीतर ले गए। भीतर जाकर जो दृश्य देखा, उस पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। मेरे पिता पलंग पर पड़े हुए हैं। शरीर बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीर्ण हो गया है। किसी के मुख में एक शब्द भी नहीं था। मैं उन्मादी की भाँति पिता की छाती पर लेट गया; परंतु देह ठंडी हो गई थी, शरीर में प्राण नहीं थे। मैं चिल्ला उठा—"पिता-पिता।" कोई उत्तर नहीं मिला। केवल कमरे से मेरे ही शब्द की प्रतिध्वनि हुई—"पिता-पिता।"

मैं फिर पिता की छाती से लिपट गया। लिपटते ही मुझे मालूम हुआ, एक और सिर उनकी छाती पर रक्खा हुआ है। मैंने मुँह उठाकर देखा, वह सिर था कमला-स्वरूपिणी करुणामयी मेरी माता भारती का।

धम्म से मैं चरणों पर गिर पड़ा और चिल्ला उठा—"मा! मा!"

"बेटा!" कहकर उन्होंने उठा कर मुझे छाती से लगा लिया।

कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

विध्वंस होगा?

पुराणों का कथन है कि एक युग के बाद दूसरा युग आता है। संसार में प्रलय होता है। बड़ी विकराल आँधियाँ आती हैं, बादलों के समूह-के-समूह आकाश में घुमड़ने लगते हैं, हृदय धड़का देनेवाली गर्जना और मूसलाधार वर्षा होती है तथा सब पृथिवी जलमयी होकर जीवन-शून्य हो जाती है। फिर नई सृष्टि का निर्माण होता है। यह कथन कहाँ तक सत्य है, कहा नहीं जा सकता।

परंतु कुछ वैज्ञानिकों की दृष्टि में प्रलय अवश्य होगा! इस प्रलय का विधाता पानी न होगा, और न कोई भयंकर भूकंप ही उसे जन्म देगा। केवल अग्नि की कमी ही उसका निमंत्रण करेगी। दूर से तो यह बात बड़ी आश्चर्यमय दीखती है, परंतु वास्तव में जिस तरह अग्नि की भयंकरता प्राणी-मात्र को भूँज डालती है, उसी तरह उसकी कमी भी थोड़े समय में उसे ठंढा करने में नहीं चूकती।

विचारपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि संसार के समस्त कार्य-संचालन करने के लिये अग्नि की आवश्यकता पड़ती है, और उसका सबसे महान् केंद्र सूर्य है। बिना सूर्य की गर्मी के संसार मरु-भूमि हो जायगा, प्राणी जीव-हीन हो जावेंगे; वृक्ष तथा पौधे भी अपनी हरियाली का लहराता हुआ अंबर खो बैठेंगे, ऋतुओं की कलाओं का चमत्कार जाता रहेगा; वह वसंत, बहार और पानी की झमाझम वर्षा न रहेगी, हरे फूले हुए बादल आशा को आच्छादित न करेंगे, न फिर कभी चाँदी की चमकती हुई चादरें नीलाकाश के विरुद्ध नाचेंगी, मंद-मंद वायु के झोंके और प्रचंड आँधियाँ भी हमसे अंतिम विदा ले लेंगी। जहाँ देखो, वहाँ शांति का साम्राज्य होगा। भयंकर निस्तब्धता का विस्तार होगा, जिसे देखकर देवता भी एक बार डर जायँगे।

कहिए, सूर्य की कितनी महत्ता है। इसीलिये हमारे पूर्वज—आर्यगण—यदि सूर्य को देवता समझकर प्रातःकाल ही प्रणाम करते थे, तो वे क्या बुरा करते थे? जीवन और मरण के विधाता का सम्मान करना क्या जंगलीपन का चिह्न है, तो उपकार-कर्ता की उपेक्षा करना भी कहाँ की सभ्यता है?

वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि कुछ वर्षों बाद—घबड़ाइए नहीं, ये वर्ष ब्रह्मा के वर्ष हैं—सूर्य का ताप ठंढा हो जावेगा, और फिर संसार की काया पलटने में देर नहीं लगेगी। यद्यपि अभी तक कई वैज्ञानिक इस बात से सहमत नहीं हैं, और ऐसे विषय में मतभेद होना एक स्वाभाविक बात भी है। दूर क्यों जाइए, संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर आलीवर लाज ही लिखते हैं कि यह ग्रह अब भी लाखों वर्षों तक निवास योग्य रहने की आशा कर सकता है।.....कौन जाने उस समय तक.....क्या न कर डालेंगे?

हम आलीवर महाशय से पूर्ण सहमत हैं, पर दूसरे पक्ष की बात पर भी विचार किए बिना नहीं रह सकते। क्या विधाता ने २,००,००,००,००० वर्ष पूर्व पृथिवी को ध्वंस करने के लिये ही बनाया है? धीरे-धीरे विकाश और परिवर्तन नाश के उद्देश्य से हो रहे हैं? क्या अगणित स्वार्थ-त्यागी वीरों के उन्नत करने के साधन मिट्टी में मिल जावेंगे? इस पर हृदय विश्वास नहीं करने देता, वह एक वैज्ञानिक के शब्दों में कह उठता है—मानव-जाति रंगभूमि की स्थिति को, युगों की तैयारी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देखकर, उसके निम्न उद्भव और विशाल अनंत भविष्य पर विचार कर, हमें अंत में बाध्य होकर विश्वास करना पड़ता है कि मनुष्य का अंतिम भविष्य—सारे मनुष्य-मात्र का—बहुत ही ऐश्वर्यशाली होगा। वह (मनुष्य) प्रलय के अंचल में विलीन नहीं हो सकता।

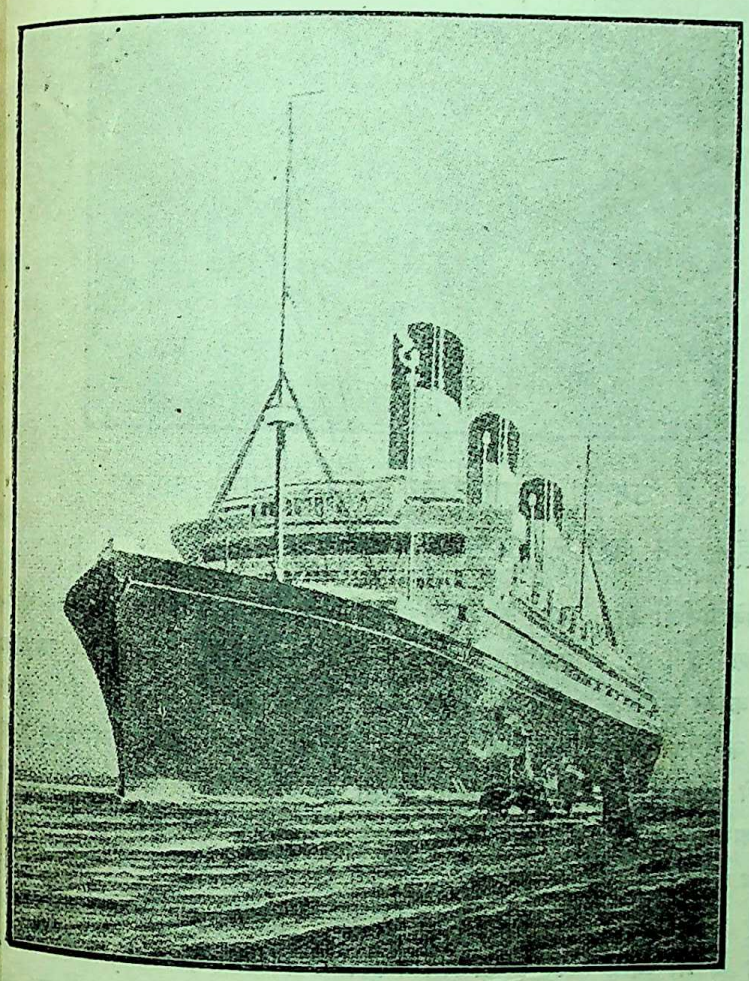

मनुष्य—क्या ब्रह्मा ही जल पर पृथ्वी बनाना जानता है ?
विकराल लहरों पर तैरता हुआ नगर मैंने तैयार किया है।

सच है ऐसा ही होगा। मनुष्य कोई खिलौना नहीं है कि प्रकृति के ज़रा-से परिवर्तन में अपना अस्तित्व खो बैठेगा। ईश्वर ने उसे निर्जीव और जीवित विश्व का शासनकर्ता बनाया है। उसे दिमाग़ दिया है, बुद्धि दी है और विवेक-शक्ति दी है। वह भूत के आधार पर वर्तमान में भविष्य के लिये इमारत खड़ी कर सकता है।

क्या-क्या विपत्तियाँ उसने झेलीं ? उसने आबहवा-संबंधी उलट-फेरों का सामना किया, यहाँ तक कि चार्ल्स डारविन के विकाश सिद्धांत (Evolution theory) के अनुसार अपने शरीर के रूप को भी परिवर्तित कर लिया; परंतु इस घर (पृथ्वी) को नहीं छोड़ा। कैसी भयंकर परिस्थिति थी ? मनुष्य को दो-दो सौ फ़ुट लंबे विकराल पशुओं के बीच रहना पड़ता था, उसका जीवन हमेशा दुविधा के समुद्र में गोते लगाया करता था। वे भयावने पशु पृथ्वी-तल से मिट गए। परंतु मनुष्य आज भी विजयी की तरह खड़ा हुआ है।

प्रकृति-माता ने उस पर कौन-सी दया की ? अपने सब बच्चों को उसने गरम-गरम ऊनी ओढ़ने दिए, परंतु मनुष्य को स्वयं अपने शरीर ढाँकने के लिये कपड़े तैयार करना पड़े। झाड़ों पर जानवरों की तरह निवास करनेवाले प्राणी ने, स्वास्थ्य और सुख की नींव पर बड़े-बड़े भवन और गगन-चुंबी मीनारें खड़ी कीं। ज़रा-सी भूल हो जाने पर उसे नाश करने के लिये उसके चारों ओर प्रकृति ने सुंदर-सुंदर कुंजों में विषैले पौधे लगा रखे थे, मनोहर फलों के अंदर विष का प्याला भर दिया था; परंतु फिर भी मनुष्य ने ठोकर खाकर, अपने कुछ साथियों को, प्रकृति-देवी की निष्ठुर बलि-वेदी पर चढ़ाकर इस माया-जाल के भेदों को समझा। कहाँ तक लिखें, जहाँ देखो, तहाँ उसे काट खाने को प्रकृति के लाड़ले दौड़ते थे—वन में सिंह, चीते आदि ; वायु में मधुमक्खी, बर्रें आदि; घास में साँप, गिरगिटान आदि और जल में मगर, मच्छ आदि—। पर वह रंगभूमि का मँजा खिलाड़ी ही निकला, उसने सबको ख़ूब छकाया और आख़िर में देखो, अब अनंत की ओर बढ़ रहा है।

मनुष्य अपने विचार दूसरों को कैसी आसानी से बतला सकता है। भाषण दे सकता है। गायन के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

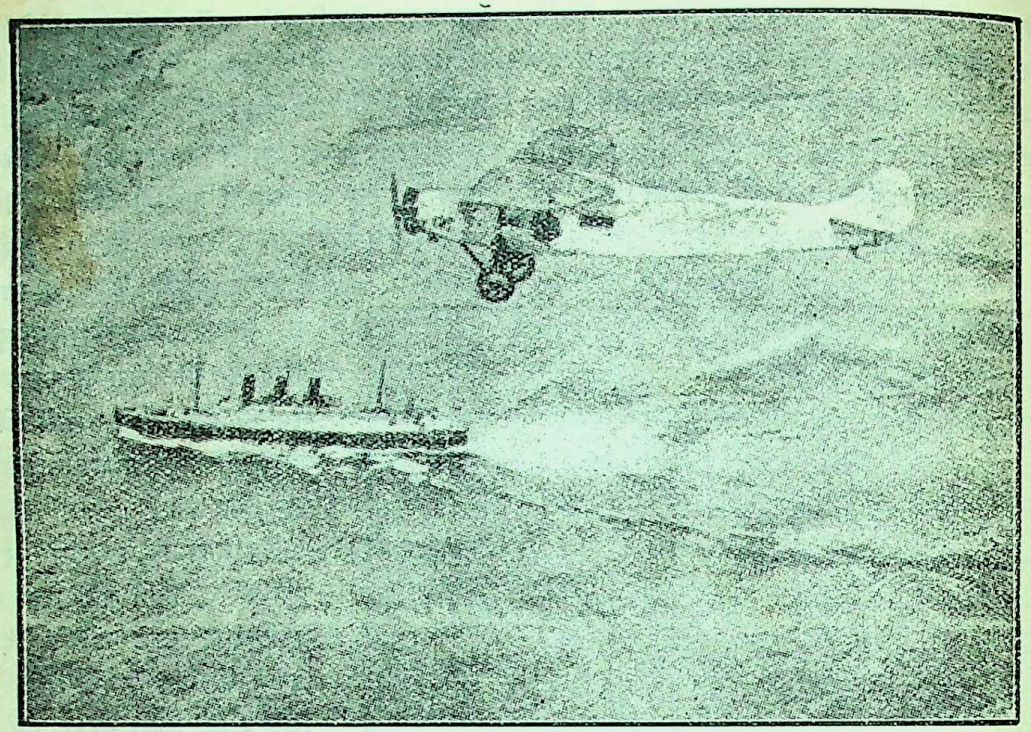

वायु-नौका—"बड़ी बहन, लो, मैं 'उनको' संसार-उद्यान की सैर अभी कराकर लाती हूँ। तुम यहीं फटफटाया करो।"

श्रोताओं को मुग्ध कर सकता है; परंतु उसके पूर्वजों की कोई भाषा नहीं थी। वे जानवरों के सदृश 'छूँ', छाँ, आदि करते थे। धीरे-धीरे इशारों से बात करना सीखा, फिर हज़ारों वर्षों के परिश्रम के बाद कहीं दो-चार उपयोगी चीज़ों के नाम तैयार किए। इसी तरह लाखों वर्षों में भाषाओं को तैयार कर सके। अब वह अपने बच्चों को तीन-चार साल में मातृभाषा का ज्ञान दे देता है! बच्चा बोलने लगता है, पढ़ने लगता है और लिखने लगता है। क्या मनुष्य अब कभी स्वप्न में भी ध्यान करता है कि भाषा के उत्पन्न करने में उसके पूर्वजों के जीवन के बाद जीवन नष्ट हो गए थे? उसका दिमाग़ आज उन्नत अवस्था में है, इससे वह अब भले ही मनचाही चीज़ अल्पकाल में बना ले।

मनुष्य कंद-मूल-फल खाकर जीवन बिताता था; कभी बकरियों की तरह पत्तियाँ चबा जाता था, और कभी सिंह आदि को मांसाहार करते देखकर खुद भी पत्थरों से जानवरों का शिकार कर, उन्हें कच्चा ही खा जाता था। उसने धीरे-धीरे मांस पकाना सीखा। खेती करने की विधि ढूँढ़ निकाली, और अब तो हरे-भरे लहलहाते हुए धान, गेहूँ आदि के खेतों को देखकर एक पौधे को चूमने की इच्छा करता है। प्यारे पौधे, तुम नहीं जानते कि उसने अपने रक्त से सींचकर लाखों वर्षों के प्रयत्नों से प्राप्त किया है। यह सब ही लंबी और रुचिकर कहानी है। पाठकों को फिर सुनाऊँगा।

"विपत्ति ने उसका नाश नहीं किया। कला ज्ञान की माता इजिप्ट ने भी हमारे समान ही युग देखा है। ट्राय (Troy) ने अमर-कविता महान् सफलता से प्रतिष्ठित होकर एक सभ्यता के दूसरी सभ्यता तैयार की है। विचित्र बालक ग्रीस जननी क्रेट (Crete) के अनुपम कला-कौशल स्वप्न से परे ज्ञान को, खोदकर निकाले हुए बतलाते हैं।—'नलंदा और तक्षशिला के प्राचीन अजंटा की गुफा की चित्रकला, अशोक के स्तंभ और प्राचीन आर्यों का महान् साहित्य चोट भारत के लिये संसार के अजायबघर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

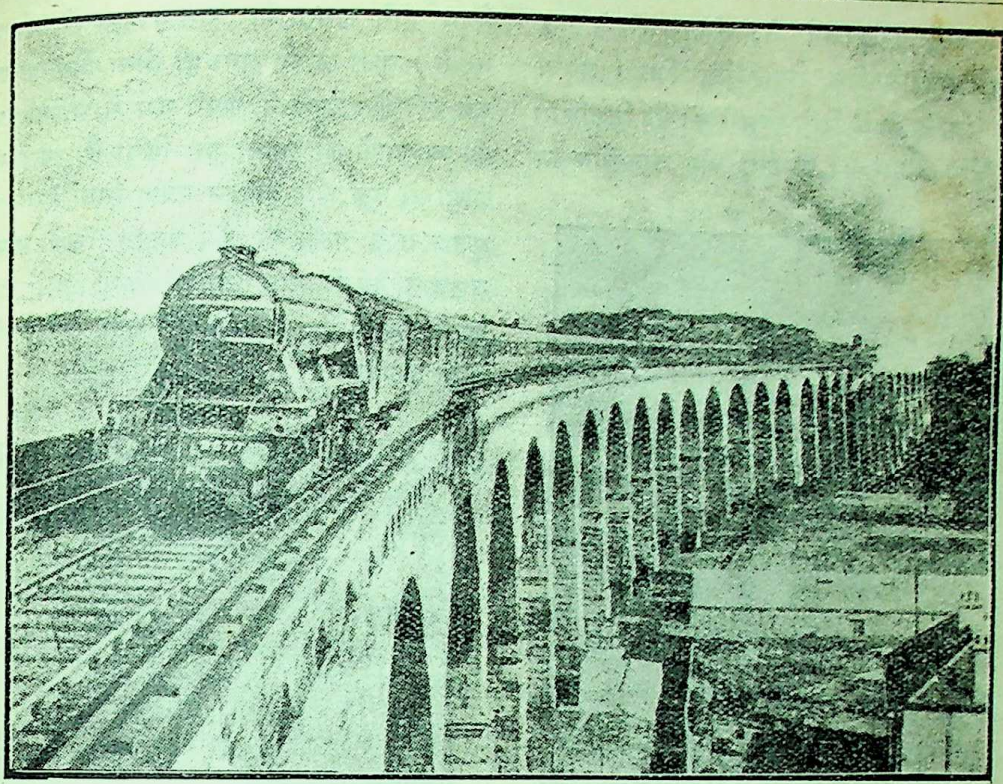

मनुष्य—"तूफ़ानो ! उठो; जलदेव ! वर्षा करो। देखूँ, तुम मुझे यात्रा करने से कैसे रोक सकते हो ?"

स्थान सुरक्षित रखता है।'—* रोम की भग्न चीज़ें फिर भी दुनिया को सीज़र के राजप्रासादों का दर्शन कराती हैं। मनुष्य मर गया होता, परंतु वह नहीं मरा। दबाव और जीवन-युद्ध उसे अधिक शाही, अगणित, शक्तिवान् और विस्तारवान् बनाते रहे।"

कहिए, अब भी क्या आप समझते हैं कि मनुष्य प्रकृति की क्रूरता द्वारा—सूर्य के ठंढे हो जाने पर, संसार के सब जंगलों और कोयलों की खानियों के खाली हो जाने पर—हाथ-पर-हाथ धरे आकाश की ओर मुख कर अपना प्राण त्याग देगा ? आप कह सकते हैं, उसकी काव्य-क्षेत्र की स्वर्गीय उड़ानें, उसके वेदांत के गूढ़ तत्व, उसके वेदों के रसीले मंत्र और कला-कौशल की कौतूहलवर्धक तथा प्रशंसा योग्य वस्तुएँ उसे आबहवा के उस परिवर्तन से नहीं बचा सकतीं। परंतु आप भूल जाते हैं कि वर्तमान पीढ़ी केवल दिमाग़ के इन तूफानों का क्रीड़ा-क्षेत्र ही नहीं है। अब मशीनरी का युग है। उपयुक्त समय पर वोल्टा ने विद्युत् को ढूँढ़कर निकाला, फ्रेंकलिन ने भी ज़ोर मारा, और आज विद्युत्-संसार को चेलेंज देती है कि यह प्रकृति की महान्-से-महान् शक्ति के मुक़ाबले खड़ी होने का दम रखती है। टेलीग्राफ, टेलीफोन और सबसे अद्भुत बेतार-का-तार है। यह मनुष्य के दिमाग़ की ही ताक़त थी, जिसने बेतार के द्वारा अपने संदेश को पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने में भेजना शुरू किया है। प्रकृति की बड़ी-बड़ी ठोस पत्थर की दीवालें, विपरीत वायु के तूफान और पानी से लदे हुए बादल, छोटे-से मनुष्य के द्वारा अन्य भाई के पास भेजे गए संदेश को रोक नहीं सकते।

इस तीन दिन के बच्चे मनुष्य ने प्रकृति से नाकों चने चबवा लिए। यात्रा करने के लिये हवाई जहाज़, वाष्प-नौका, रेल, जहाज़ और वायुयान तैयार कर

* यह वाक्य मेरा है। शेष पैरा एक पश्चिमी विद्वान् की लेखनी से निकला है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए। नन्हें-नन्हें परंतु बड़े तेज़ कीटाणुओं से युद्ध करने के लिये एनटीसेपटिक तैयार कर लिए। मनुष्य के शरीर के अंदर देखने के लिये एक्स-रे को ढूँढ़ निकाला। विचित्र दूरबीन तैयार कर आकाश की छान-बीन कर

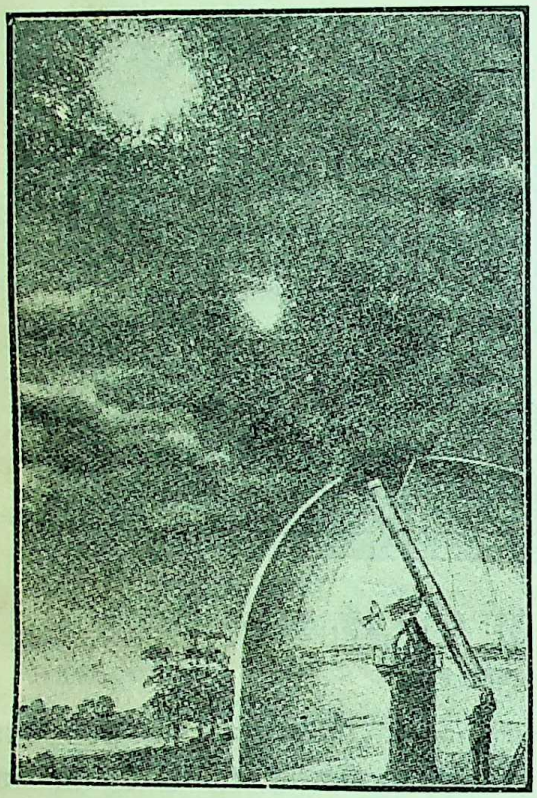

मनुष्य—नक्षत्रो और तारो ! एक दिन तुम्हें अपने खिलौने बनाऊँगा।

डाली। फिर ७० हज़ार वर्ष में तो वह न-मालूम क्या-क्या कर डालेगा ?

प्रकृति में परिवर्तन होंगे, और अवश्य होंगे। परंतु अचानक नहीं होंगे। मनुष्य की तीक्ष्ण दृष्टि उनको जान लेगी, और अपने ज्ञान से लाभ उठाए बिना न रहेगी, उसकी सहचरी विज्ञान-देवी उससे विमुख न होगी।

सुना जाता है कि ध्रुवों की ओर अब बर्फ़-वर्षा कम हो चली है। मनुष्य आगे बढ़ने लगा। बर्फ़ीले स्थानों को वह हरे-भरे खेतों में परिवर्तित करेगा। यदि कहीं तूफ़ान और बर्फ़ के पिघलने से पृथ्वी का टुकड़ा डूब जाता है तो पानी के तल में एक नवीन पृथ्वी का टुकड़ा तैयार होने लगता है, जिस पर हमारे वंशज किलोलें करेंगे। अभी आपने सुना ही होगा कि एक ज्वालामुखी फूट पड़ी है। पृथ्वी ने अपने गर्भ से अग्नि, और लावा की ज्वालाओं को फेंकना शुरू किया है, कई नगरों और ग्रामों को धूल और धुएँ का प्रवाह मिटा देगा; परंतु यही धूल हवा के पानी की केंद्र बनकर किसी तप्त भूमि को जलदान करेगी और गंधक-सरीखी चीज़ें अंगूरों तथा अन्य फल-फूलों को संजीवनी बूटी बनकर विकास का वैभव लुटावेंगी।

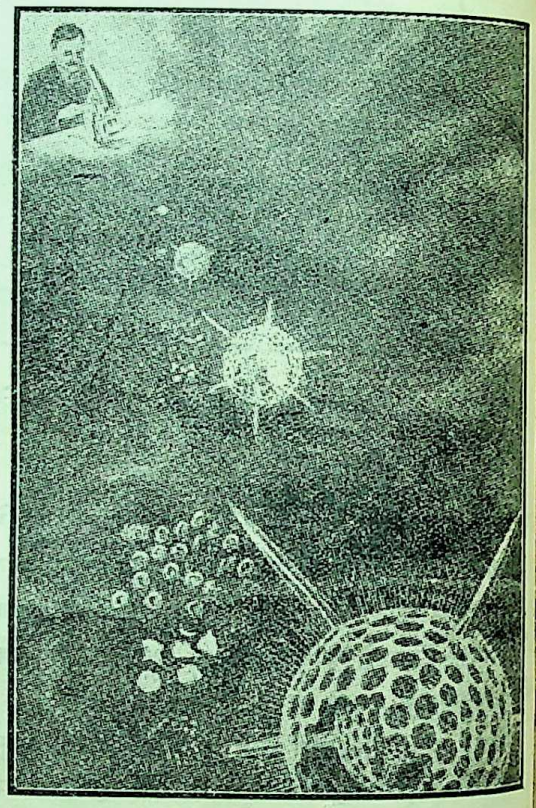

मनुष्य—खूब ! कारीगर ! कण में भी विश्व रच रक्खा है।

हम विश्वास नहीं कर सकते कि मनुष्य हारकर अपना अस्तित्व खो बैठेगा। वह मरुभूमि में विस्तृत उद्यान तैयार कर देगा, रेत के ढेर पर गुलाब और चमेली के मुस्किराते हुए पुष्पों को देखकर प्रसन्न होगा; सूर्य के तेज और तूफ़ान के झोंकों को बाँध लेगा; अपनी इच्छा के द्वारा बादलों को तैयार करेगा और आवश्यकता होने पर उन्हें खेतों पर वर्षा लिया करेगा। अपने भोजन को सूर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गर्मी और पानी के न होने पर भी तैयार कर लिया करेगा। शरीर से घबड़ा उठने पर सूक्ष्म शरीर धारण कर विश्व-भर में विचरण करेगा। उसकी संतान माता के गर्भ में कष्ट न पाकर विज्ञानशाला में निर्जीव पदार्थों की सहायता से तैयार होगी। कहो, कैसा आनंद आवेगा। यह स्वप्न नहीं है। इसके चित्र दृष्टिगोचर हो चले। चिनगारियाँ चमकने लगीं, न-मालूम कब भभक उठें। बुड्ढे जवान होने लगे और कुछ वर्षों में जवान अमर होने लगेंगे।

पाठको, डरने का कोई कारण नहीं है। प्रतिद्वंद्विता में मनुष्य के दिमाग़ की सोती हुई शक्तियाँ जाग पड़ेंगी। यदि कोई राष्ट्र या क़ौम नष्ट होगी, तो समझ लो कि उसके लालों ने अपने जीवन-मद में विज्ञान की अमर बूटी का प्याला नहीं पिया था।

नाथूराम शुक्ल

अद्भुत फल

तन की मलिनताई तन तैं दुराई भूरि,
मन के कुटिल भाव दूरि अवहेले जो;
काम कोह मोह ये पुरातन के मीत मेरे,
इन्हैं मातु गंग मझधार में ढकेले जो।
माया को मलीन तन छादन रह्यो है एक,
ताहू को न जानैं कहाँ न्हात मैं सकेले जो;
"द्विजश्याम" कौन गुन गैहैं घर जाय तेरे,
नाँगो करि लूटि मोहिं भेजति अकेले जो।

"द्विज श्याम"

साहित्य-दर्पण की 'विमला'-टीका

(६)

सिर-घूमना !

तैं तीस संचारी भावों में एक 'उग्रता' भी है। इसका लक्षण दर्पणकार ने यह किया है—

शौर्य्यापराधादिभवं भवेदुग्रत्वमुग्रता।
तत्र स्वेदाशरःकम्पतर्जनाताडनादयः।

इसका अर्थ करते समय साहित्याचार्यजी ने 'शिरःकंप' का अर्थ 'सिर का घूमना' भी किया है, जो बिलकुल ग़लत है। न तो 'कंप' का अर्थ 'घूमना' होता ही है और न यहाँ 'उग्रता' के लक्षण में 'तर्जना' के साथ वह संगत ही है। अतएव 'शिरःकंप' का अर्थ यहाँ 'सिर का हिलना' ही है, जो कि उग्रता में पर-ताड़न आदि के अवसर पर होता है।

'विस्मय' की एक बात

"विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु :
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।"

इसका अर्थ यह है—लोक-सीमा को उल्लंघन करने-वाले विविध पदार्थों के देखने आदि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को विस्मय कहते हैं।

साहित्याचार्यजी ने इसका अर्थ यों किया है—"लोक की सीमा से 'अतिक्रांत अलौकिक सामर्थ्य से युक्त किसी वस्तु के दर्शन आदि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को 'विस्मय' कहते हैं।" यहाँ आप 'अलौकिक सामर्थ्य से युक्त' यह न-जाने कहाँ से उठा लाए हैं? मूल-कारिका में तो कहीं इसके आधार का पता है नहीं। यदि साहित्याचार्यजी के अनुसार कविराज विश्वनाथजी भी 'अलौकिक सामर्थ्य से युक्त' यह पदार्थ का विशेषण, लक्षणकारिका में, रख देते, तो फिर बिलकुल अशुद्ध हो जाता—विस्मय का शुद्ध लक्षण ही न बनता। कारण, ऐसी दशा में यह 'अव्याप्ति' दोष से दूषित हो जाता। किसी अलौकिक वस्तु को देखने से ही अचरज होता है, उस वस्तु में चाहे कुछ सामर्थ्य हो, न हो; वह वस्तु जड़ हो, या चेतन; इससे कुछ प्रयोजन नहीं।

उद्दीपन-विज्ञान

"चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।"

अर्थात् चंद्र, चंदन और भौंरों की गुंजार आदि श्रृंगार के उद्दीपन विभाव हैं। इसका अर्थ साहित्या-चार्यजी ने किया है—"चंद्रमा, चंदन, भ्रमर आदि इसके 'उद्दीपन' विभाव होते हैं।"

आज तक यह सुना था कि चंद्र आदि का स्वरूप और भ्रमर-कोकिल आदिकों का शब्द श्रृंगार का उद्दीपन है; परंतु आज मालूम हुआ कि 'भ्रमर' आदि का शब्द नहीं 'भ्रमर' आदि स्वयं ही श्रृंगार के उद्दीपन विभाव हैं! ऐसी दशा में 'रुत' का क्या अर्थ किया जाय?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस-भेद

हास्य-रस के छह भेद हैं—

"ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च !
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः ।"

इसका अर्थ कर चुकने पर साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीशजी को याद किया है—"तर्कवागीशजी ने लिखा है—हास्यरसस्थायिभावस्य हासस्य भेदानाह—ज्येष्ठानामिति ।" आपने 'स्मित' आदि को स्थायी भाव 'हास' का भेद माना है। यह असंगत है; क्योंकि सभी स्थायी भाव वासनारूप होने के कारण अंतःकरण या आत्मा में रहते हैं, शरीर में नहीं, और 'स्मित' आदि के इन लक्षणों से ही स्पष्ट है कि वे शरीर में रहते हैं। अतः ये हसनक्रिया के ही भेद हैं। हास (स्थायी भाव के) नहीं।

'स्मित' आदि 'हास' स्थायी भाव के ही भेद हैं। अगर इन्हें स्थायी भाव का भेद न माना जाय, तो फिर 'हास्य' रस के भेद ये छह हो भी नहीं सकते। कारण यह है कि स्थायी में भेद होने से ही रस में भेद होता है। स्थायी भाव रस का मुख्य उपादान है। शृंगार के भी दो भेद रति के ही दो भेद होने के कारण हुए हैं। युक्तिसंगत भी यही है। स्थायी में भेद हुए विना कभी भी, किसी क्रिया आदि के भेद से, रस के भेद नहीं हो सकते। क्रिया-भेद के कारण रस में भेद कल्पित करना साहित्य-शास्त्र के विरुद्ध है और तर्कसंगत भी नहीं।

आप कहते हैं, स्थायी भाव अंतःकरण या आत्मा के धर्म हैं और ये 'स्मित' आदि शरीर में रहते हैं ! निवेदन यह है कि 'स्मित' आदि शरीर में रहते नहीं, शरीर के विशेष अंगों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। यही बात और-और स्थायी भावों के विषय में है।

सो, स्थायी भाव रसों के उपादान हैं ; अतएव उनमें भेद हुए विना रसों में भेद हो ही नहीं सकता। अतएव तर्कवागीशजी का लिखना बहुत ठीक है कि—'स्थायिभावस्य हासस्य भेदानाह ।' उपादान पर ही तो सब दारमदार है। मालूम नहीं, क्रिया-भेद से रस में क्योंकर भेद साहित्याचार्यजी ने कल्पित कर लिया !

क्या व्यंग्य किसी का भी उपस्कारक नहीं होता ?

"व्यङ्ग्यस्याऽलंकार्यत्वेऽपि [illegible] रत्वमुपचर्यते ।" दर्पण की इस पंक्ति का अर्थ करते हुए साहित्याचार्यजी ने लिखा है—"यद्यपि अलंकार वह होता है, जो किसी को भूषित करे। उपमा आदि रस को भूषित करते हैं। परंतु, व्यंग्य अलंकार स्वयं भूषित होते हैं। किसी अन्य को भूषित नहीं करते। क्योंकि व्यंग्य अर्थ सबसे प्रधान माना जाता है।"

साहित्याचार्यजी के इस कथन का स्पष्ट तात्पर्य यही है कि व्यंग्य किसी भी दशा में, किसी दूसरे का उपस्कारक नहीं होता। वह स्वयं उपस्कार्य होता है। आपका यह उद्गार बिलकुल अशुद्ध है। साहित्य-शास्त्र के जाननेवाले इस बात को जानते हैं कि व्यंग्य उपस्कार्य (अलंकार) भी होता है और उपस्कारक (अलंकार) भी। प्रधान व्यंग्य उपस्कार्य और अप्रधान उपस्कारक होता है। अतएव सामान्यतः यह कह देना कि व्यंग्य किसी को भी भूषित नहीं करता, ठीक नहीं है। कहना यह चाहिए कि प्रधान व्यंग्य किसी दूसरे को भूषित नहीं करता, वह स्वयं सबसे भूषित होता है। देखिए—

जिस पद्य पर साहित्याचार्यजी ने ये भाव प्रकट किये हैं, स्वयं उसी में 'विरोधाभास' अलंकार व्यंग्य होकर भी, राज-विषयक कविगत रति को भूषित करता है—

"अमितः समितः प्राप्तैरुत्कर्षैर्हर्षद प्रभो ।
अहितः सहितः साधुयशोभिरसतामपि ।"

इसमें विरोधाभास अलंकार व्यंग्य है ; क्योंकि उसमें वाचक 'अपि' आदि शब्द विद्यमान नहीं हैं। इस प्रकार व्यंग्य होकर भी यह कविगत राज-विषयक रति का उपस्कारक है।

रस, रसाभास, भाव और भावाभास की ध्वनि में कभी अलंकार्य और कभी अलंकार होती है—जब प्रधान होती है, तब अलंकार्य और अप्रधान अलंकार होती है। साहित्य-दर्पण में ही, दसवें परिच्छेद में, लिखा है—

"रसभावतदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा ;
गुणीभूतत्वमायान्ति यदालङ्कृतयस्तदा ।
रसवत्प्रेय ऊर्जस्विसमाहितमिति क्रमात् ।"

इसका अर्थ, साहित्याचार्यजी का ही किया हुआ देखिए—"रस और भाव, रसाभास और भावाभास एवं भाव का प्रशम ये जब किसी के अंग हो जाते हैं तो क्रम से रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि और समाहित अलंकार होते हैं।

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पंक्तियों से साहित्याचार्यजी की वे पंक्तियाँ मिलाकर पढ़िए। क्या किसी को भूषित किए विना भी कोई किसी का भूषण (अलंकार) हो सकता है ? यदि नहीं, तो फिर कैसे लिखा गया कि व्यंग्य किसी को भी भूषित नहीं करते ? क्या रस और भाव आदि अव्यंग्य भी होते हैं ? उनको, अप्रधान दशा में, यहाँ उपस्कारक कहा गया है, अलंकार कहा गया है और उनके नाम भी 'रसवत्' और 'ऊर्जस्वि' रख दिए गए हैं। यह सब क्या है ?

हेतु और हेतुमान्

"निष्पत्त्या चर्वणस्याऽस्या निष्पत्तिरुपचारतः।"

इस मूल-कारिका की वृत्ति यह है—"यद्यपि रसाभिन्नतया चर्वणस्याऽपि न कार्य्यत्वं, तथापि तस्य कादाचित्कतया उपचरितेन कार्य्यत्वेन कार्य्यत्वमुपचर्य्यते।"

इस पंक्ति का अर्थ करके साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीशजी के अर्थ की समालोचना की है—"श्रीतर्कवागीशजी ने लिखा है कि "कार्य्यत्वेन कार्य्यसादृश्येन हेतुना कार्य्यत्वं कार्य्यसादृश्यमुपचर्य्यते।" यह असंगत है; क्योंकि इस अर्थ में हेतु और हेतुमान् में कुछ भेद नहीं रहा और शब्दार्थ की पुनरुक्ति हो गई। जिस कार्य-सादृश्य को उपचार का हेतु बताते हैं, उसी का उपचार भी मानते हैं !! इसके अतिरिक्त "कार्य्यत्वेन" 'कार्य्यत्वमुपचर्यते' इस "कार्य्यत्व" में शब्द और अर्थ दोनों पुनरुक्त हो गए। **अतः यह अर्थ प्रमत्तप्रलापमात्र है।**"

पर दर्पणकार ने भी तो यही शब्दार्थ की पुनरुक्ति की है—"उपचरितेन कार्य्यत्वेन कार्य्यत्वमुपचर्य्यते।" आपने यहाँ विश्वनाथ को क्यों छोड़ दिया ? यह अन्याय है कि मूल दोषी को छोड़कर और पर बिगड़ा जाय ! पर बात कुछ और ही है। तर्कवागीशजी के अर्थ में 'कार्य्यसादृश्यमुपचर्य्यते' यहाँ 'कार्य्यसादृश्यम्' प्रक्षिप्त है। ठीक पाठ यह है—"कार्य्यत्वेन कार्य्यसादृश्येन हेतुना कार्य्यत्वमुपचर्य्यते।" साहित्याचार्यजी लिखते हैं कि यह अर्थ इसलिये असंगत है कि इसमें हेतु और हेतुमान् में कुछ भी भेद नहीं रहा और शब्दार्थ की पुनरुक्ति हो गई। साहित्य के विद्वान् बतलावें कि यहाँ हेतु और हेतुमान् में भेद है या नहीं ? शब्दार्थ के किस अंश में कैसे पुनरुक्ति है ? कादाचित्क रूप 'कार्यसादृश्य' हेतु है और 'कार्यत्व' का 'उपचार' हेतुमान् है।

'रशना' और 'रसना'

"अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः।"

महाभारत के स्त्री-पर्व का यह पद्य है। अपने मृत पति के हाथ को देखकर भूरिश्रवा की शोकातुर पत्नी की करुणा-भरी उक्ति है। करुणा-रस व्यंग्य और प्रधान है। स्मर्यमाण शृंगार उसका पोषक है। दर्पण में 'गुणीभूत व्यंग्य' के भेद 'इतरांग' के उदाहरण में यह दिया गया है।

इस पद्य का अर्थ करने के अनंतर, साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीश की 'विवृति' की समालोचना की है—"श्रीतर्कवागीशजी ने यहाँ 'रसनोत्कर्षी' पाठ मानकर उसका एक अर्थ यह किया है कि 'धो-माँजकर या झाड़-पोछकर मेरी छोटी घंटिका को साफ़ करनेवाला—'रसनां मम क्षुद्रघण्टिकामुत्कर्षयितुं मार्जादिना उत्कृष्टीकर्तुम्।" यह ठीक नहीं है। पहले तो 'रसना' पाठ ठीक नहीं; क्योंकि इसका अर्थ जिह्वा या रसनेंद्रिय होता है। दूसरे, 'आभूषणों को धोनेवाला' कहने से कहारपना प्रतीत होता है या शृंगार-रस अभिव्यक्त होता है, इसे सहृदय लोग स्वयं विचार लें। इसके अतिरिक्त कामशास्त्र के उक्त क्रम में यह अर्थ विघातक होगा। इस पद्य के अन्य पदों पर ध्यान देने से उक्त अर्थ की अप्रासंगिकता स्पष्ट है।"

यह ठीक है कि यहाँ 'रसना' नहीं 'रशना' ही पाठ होना चाहिए। साहित्य-दर्पण की अधिकांश पुस्तकों में, और 'काव्यप्रकाश' आदि में भी, 'रशनोत्कर्षी' ही पाठ अंगीकृत हुआ है। अतएव पाठ-भेद के विषय में हम साहित्याचार्यजी से सहमत हैं; परंतु आपके अन्य विचारों से हम सहमत नहीं हैं।

आपकी पहली दलील यह है कि 'रसना' पाठ ठीक नहीं; क्योंकि 'रसना' का अर्थ जिह्वा या रसनेंद्रिय होता है। रसना-शब्द का केवल जिह्वा या रसनेंद्रिय ही अर्थ नहीं होता, 'कांची' भी होता है। संस्कृत के बृहत् कोष 'शब्दकल्पद्रुम' में 'कांची' के पर्याय-रूप से 'रसना' लिखा है। अभिधानचिंतामणि, (हैमकोष) में भी 'कांची' के पर्यायों में 'रसना' आया है—

"कलापो **रसना** सारसनं काञ्ची च सप्तकी।"

दूसरी दलील यह है कि 'आभूषणों का धोनेवाला'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने से कहारपना प्रतीत होता है। शृंगार नहीं। अतएव तर्कवागीशजी का अर्थ ग़लत है। अपनी प्रिया की अनुवृत्ति में 'कहारपना' की कल्पना करके साहित्याचार्यजी ने एक नई बात पैदा कर दी है, तब तो—

"स्वामिन् भंगुरयालकं सतिलकं भालं बिलासिन् कुरु,
प्राणेश, त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय।
इत्युक्त्वा सुरतावसानसमये सम्पूर्णचन्द्रानना,
स्पृष्टा तेन तथैव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम्।"

इत्यादि पद्यों में शृंगार-रस का कहीं पता-ठिकाना भी न रहेगा। साहित्य-दर्पण में भी यह और इस-जैसे अन्य सैकड़ों पद्य आए हैं। शोक है कि साहित्याचार्यजी उनकी चुपचाप टीका कर गए। ज़रा भी कहीं नहीं लिख दिया कि 'भंगुरयालकम्' इत्यादि से ग़ुलामपन प्रतीत होता है, शृंगार नहीं।

आपकी तीसरी दलील यह है कि "कामशास्त्र के उक्त क्रम में यह अर्थ विघातक होगा।" यह क्रम है—रसनोत्कर्षण, पीनस्तन-विमर्दन, नाभि, ऊरु और जघनों का स्पर्श तथा नीवी-बंधन का खोलना। साहित्याचार्यजी कहते हैं कि यह काम शास्त्रोक्त क्रम है, जो 'रसनोत्कर्षी' का अर्थ तर्कवागीशजी के अनुसार करने से बिगड़ जाता है।

हम पूछते हैं कि आपने यह क्रम किस कामशास्त्र में पाया? आप वस्तुतः कामशास्त्र से उलटे जा रहे हैं। पहले, जाते ही, कामिनी की कांची को ढीला करने लगना ही कामशास्त्र की स्थिति नहीं है, वह तो, अगर हो, तो बाद में ही नंबर पाती है। सबसे पहले पीनस्तन-विमर्दन। फिर धीरे-धीरे नीचे की ओर क्रमशः बढ़िए, नाभि, ऊरु, और जघनों का स्पर्श, और तब, सबके अंत में नीवी को ढीला करने का समय आता है। इस विषय में अधिक लिखना सहृदय-समाज को अभीष्ट नहीं, अतएव इतना ही काफ़ी है।

सारांश यह कि साहित्याचार्यजी की तीनों बातें अप्रामाणिक हैं। दर्पण के पहले छह परिच्छेदों को पूर्वार्द्ध में और सातवें से दसवें तक को उत्तरार्द्ध में, साहित्याचार्यजी ने रखा है। हम पाँच परिच्छेदों की 'विमला' पर अपने विचार प्रकट कर चुके। रहा छठा परिच्छेद; सो, उस पर साहित्याचार्यजी ने अपने 'गंभीर' विचार नहीं प्रकट किए हैं—जल्दी में दौड़-सी लगा गए हैं; अतएव उस पर क्या विचार लिखा जाय। आपने भूमिका में लिख भी दिया है—"षष्ठ परिच्छेद सबसे अन्त में और सबसे अधिक शीघ्रता में लिखा गया है। इस कारण उस पर विशेष विचार प्रकट करने का बहुत कम अवसर मिला है। मैं चाहता था कि दृश्य काव्य (नाटकादि) के विषय को भी सुचारु रूप से पाठकों के सामने रखूँ, परंतु इस समय तक ऐसा न हो सका। संभव है, अगले संस्करण में.....इसके कई अंश.....पूर्ण हो जायँ।"

हमारी भगवान् से प्रार्थना है कि वह दिन शीघ्र आवे, जब आपके विचार इस षष्ठ परिच्छेद पर भी प्रकट हों।

सो, यद्यपि छठे परिच्छेद में कोई विशेष सामग्री नहीं है, जिस पर कुछ लिखने की ज़रूरत हो; तो भी साहित्याचार्यजी की दृश्य-काव्य-विषयक प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिये दो-चार शब्द लिख देना ही उचित होगा।

यह छठा परिच्छेद का व्याख्यान जो इतनी जल्दी में लिखा गया है, इसे तर्कवागीशजी का भाग्य ही समझिए—आप इस परिच्छेद में बाल-बाल बच गए हैं!

इस परिच्छेद के प्रारंभ ही से हम दो-चार बातें पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं, जिनसे साहित्याचार्यजी के एतद्विषयक गंभीर पांडित्य का पता चल जायगा। सबसे पहले नाटक का लक्षण ही लीजिए—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्;
विलासर्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।" इत्यादि।

इसका अर्थ हमारे साहित्याचार्यजी ने किया है—"नाटक में विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए।"

कोई भी पूछ सकता है कि 'समृद्धि' और 'ऐश्वर्य' में क्या सूक्ष्म भेद समझकर साहित्याचार्यजी ने इन दोनों को अलग रखा है। क्या यह अर्थ-पुनरुक्ति नहीं है? पाठक यह न समझें कि यह भूल साहित्यदर्पणकार की ही है, तो साहित्याचार्यजी बेचारे क्या करें? वे तो सिर्फ़ व्याख्या-भर करेंगे; फिर, वह उलटी-सीधी कैसी भी हो। साहित्यदर्पणकार कविराज श्रीविश्वनाथ की यह ग़लती नहीं, हमारे साहित्याचार्यजी की ही है। दर्पणकार ने तो साफ़ इसकी वृत्ति में लिख दिया है:—"नानाविभूतिभिर्युक्तमिति महासहायम्।" इस वृत्ति का साहित्याचार्यजी ने अर्थ भी किया है:—"नानाविभूतियुक्त अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े-बड़े सहायकों से युक्त।" बड़े आश्चर्य की बात है कि इस वृत्ति का यह अर्थ करके भी आप मूल कारिका के व्याख्यान में 'विभूति' का अर्थ 'ऐश्वर्य' करते हैं! यहाँ 'विभूति' का अर्थ 'ऐश्वर्य' नहीं, 'सहायता करनेवाले' हैं।

इसी नाटक के लक्षण में आगे लिखा है—

"एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा ;
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्य्यो निर्वहणेऽद्भुतः।"

इस पर साहित्याचार्यजी की व्याख्या इस प्रकार है—

"शृंगार या वीर, इनमें से कोई (!) एक रस यहाँ प्रधान होता है— अन्य सब रस अंगभूत रहते हैं। इसे 'निर्वहण' संधि में अत्यंत अद्भुत बनाना चाहिए।"

इसे किसे? नाटक को? यह बात आप कहाँ से लाए? और, यों फिर 'कार्य्यो' न होकर 'कार्य्यम्' होना चाहिए था। पुँल्लिंग 'कार्य्यः' कैसे?

वस्तुतः साहित्याचार्यजी यहाँ कुछ-का-कुछ समझ गए हैं! 'अद्भुतः', 'रसः' का विशेषण है, अतएव पुँल्लिंग है और उसकी क्रिया 'कार्य्यः' भी पुँल्लिंग है। यदि 'कार्य्यं निर्वहणेऽद्भुतम्' ऐसा पाठ होता, तो साहित्याचार्यजी का अर्थ व्याकरण आदि से ठीक भी हो जाता। परंतु यहाँ तो रस की बातें हो रही हैं।

ठीक अर्थ इस कारिका का यह है कि नाटक में शृंगार या वीर प्रधान रस होता है, और दूसरे रस अंग होते हैं। नाटक की 'निर्वहण' संधि में अद्भुत-रस ज़रूर निबद्ध करना चाहिए, चाहे वीर-रस-प्रधान नाटक हो, चाहे शृंगार-रस-प्रधान। 'निर्वहण' में 'अद्भुत' रस की अनिवार्य आवश्यकता है।

यह बात कि "इसे निर्वहण-संधि में अत्यंत अद्भुत बनाना चाहिए"—इस वाक्य से कभी नहीं मिल सकती। शृंगार का भी अद्भुत (अनोखा—अनूठा) वर्णन करके उसे अद्भुत बनाया जा सकता है, और वीर का आश्रय लेकर भी। तब फिर यह इतना व्यर्थ का शब्दजाल ही क्यों? और, 'निर्वहण'-संधि में ही क्यों, संपूर्ण नाटक ही अद्भुत बनाया जाता है। ऐसी दशा में, साहित्याचार्यजी के अर्थ के अनुसार, 'कार्य्यो निर्वहणेऽद्भुतः' का बड़ा फजीहत है। साहित्याचार्यजी के अर्थ के अनुसार 'अद्भुत' और उसकी क्रिया 'कार्य' को पुँल्लिंग न होना चाहिए। हमारे अर्थ की पुष्टि नाट्य-शास्त्र का यह वाक्य भी करता है—

"सर्वेषां काव्यानां नानारसभावयुक्तियुक्तानाम् ;
निर्वहणे कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः।"

नाटक में सबसे पहले, निर्विघ्न पूरा होने के लिये, नट लोग 'नांदी'-पाठ करते हैं—मंगलाचरण करते हैं। इस 'नांदी' का लक्षण है—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ;
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।
मङ्गल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ;
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥"

साहित्याचार्यजी ने इसकी व्याख्या भी मज़ेदार की की है—"देवता, ब्राह्मण तथा राजादिकों की आशीर्वाद-युक्त स्तुति इससे की जाती है; अतः इसे 'नांदी' कहते हैं। इसमें मंगल्य वस्तु शंख, चंद्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए, एवं इसमें बारह या आठ पद होने चाहिए।"

आपका यह अर्थ बिलकुल असंगत है। "यस्मात् स्तुतिः प्रयुज्यते, तस्मात् नान्दीति संज्ञिता"—यहाँ 'यस्मात्' और 'तस्मात्', ये दोनों पद हेतुवाचक हैं—क्योंकि स्तुति की जाती है, अतएव 'नांदी' कहते हैं। साहित्याचार्यजी ने अर्थ किया है—"इससे स्तुति की जाती है; अतः इसे नांदी कहते हैं।" किससे?—नांदी से? तो फिर कृपा कर यह तो बतलाइए कि आपकी समझ में 'नांदी' पुँल्लिंग है, या नपुंसकलिंग? स्त्रीलिंग 'नांदी' का परामर्श तो 'यस्मात्' से हो ही न सकेगा; क्योंकि इसे पुँल्लिंग या नपुंसकलिंग ही कहना पड़ेगा। मज़े की बात तो यह है कि 'यस्मात्' का यह अर्थ करके भी 'तस्मात्' को आपने हेतुवाचक ही माना है! यहाँ 'यत्' और 'तत्', दोनों सापेक्ष हैं और हेतुवाचक हैं; क्योंकि स्तुति की जाती है। अतएव 'नांदी' संज्ञा है।

साहित्याचार्यजी के अर्थ में आगे 'सा' भी आना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे चलिए। 'मंगल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी' का अर्थ आपने किया है—इसमें मंगल्य वस्तु "शंख, चंद्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए।" कैसा सुंदर अर्थ है ! नांदी में चंद्र, शंख, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए ! पाठकों ने कहीं ऐसी भी नांदी देखी है ? स्तुति तो की जाय देव, द्विज और नृपादिकों की, तथा वर्णन हो चंद्रादिकों का !

यह अर्थ बिलकुल भ्रष्ट है। ठीक अर्थ यों है—मांगलिक शंख, चंद्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का नाम किसी-न-किसी प्रकार नांदी में आ जाना चाहिए। नांदी का जो उदाहरण दर्पण में दिया गया है, उससे भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है। देखिए—

निष्प्रत्यूहमुपास्महे भगवतः कौमोदकीलक्ष्मणः,
कोकप्रीतिचकोरपारणपटुज्योतिष्मती लोचने।
याभ्यामर्धविबोधमुग्धमधुरश्रीरर्धनिद्रायितो,
नाभीपल्वलपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सपत्नीकृतः।

इसमें 'कोक', 'चकोर' और 'शंख' (कंबु) के नाम तो आ गए हैं, पर उनका वर्णन नहीं है। वर्णन तो भगवान् के नेत्रों का है। इसी प्रकार—

शिरसि धृतसुरापगे स्मरारा-
वरुणेन्दुरुचिर्गिरीन्द्रपुत्री।
अथ चरणयुगानते स्वकान्ते,
स्मितसरसा भवतोऽस्तु भूतिहेतुः।

दर्पण के इस दूसरे नांदी-उदाहरण में भी 'इंदु' शब्द आया है, पर उसका वर्णन नहीं है। वह तो केवल 'गिरींद्र-पुत्री' के मुख की उपमा देने के लिये गृहीत हुआ है।

यदि साहित्याचार्यजी का ही अर्थ माना जाय, तो फिर किसी भी नाटक में आपको नांदी के दर्शन न होंगे; क्योंकि कहीं भी इन मांगलिक वस्तुओं का वर्णन नहीं हुआ है—केवल नाममात्र गृहीत हुआ है, अर्थात् नांदी में इनका नाम गौण (उपसर्जनीभूत) रहता है। वर्णन तो देव, द्विज तथा नृपादिकों का ही होता है, और आशीर्वचन गर्भित रहता है।

इस प्रकार साहित्य-दर्पण का यह छठा परिच्छेद समाप्त हुआ। 'विमला-टीका' के पूर्वार्द्ध की आलोचना से संबंध रखनेवाला यह हमारा अंतिम लेख है। आगे के लेखों में उत्तरार्द्ध की आलोचना होगी *।

किशोरीदास वाजपेयी

स्वागत-गीत

(बरवै)

आयहु आजु सदनवा, सुजन सुजान;
विधु-मद-कदन बदनवा, मदन समान।
शुचि सुंदर दरशनवा, दुरलभ दीन्ह;
धनि-धनि मन-अरमनवा, पूरन कीन्ह।
टप-टप टपकत पनियाँ, नयननि कोर;
धोइहों रुचिर चरनियाँ, तेहिं ते तोर।
सुमन-सनेह सुमनवा, थार सजाय;
पूजा करहुँ सजनवा, पुलकित काय।

शिवकुमार केडिया

---

* इस लेखमाला का यह छठा लेख है। ७ वें में पं० किशोरीदासजी ने लेखमाला को समाप्त किया है। इधर इस लेखमाला के कुछ अंशों के प्रतिवाद में विगत की 'माधुरी' में पं० शालग्रामजी शास्त्री का एक लेख प्रकाशित किया जा चुका है। उक्त लेख से प्रकट है कि पं० शालग्राम शास्त्री इस संबंध में और कुछ लिखना नहीं चाहते। तथैव उन्होंने अपने शिष्यों तथा मित्रों को भी मना कर दिया है कि वे कुछ न लिखें। ऐसी दशा में हम पं० किशोरीदासजी वाजपेयी से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने अंतिम लेख में (७ वें लेख में) यदि उन्हें उचित जान पड़े, तो शालग्रामजी के 'माधुरी' में प्रकाशित लेख के प्रतिवाद में कुछ लिखना हो वह भी समाविष्ट कर दें। जिसमें इस विवाद का अंत कर दिया जाय।

संपादक—'माधुरी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

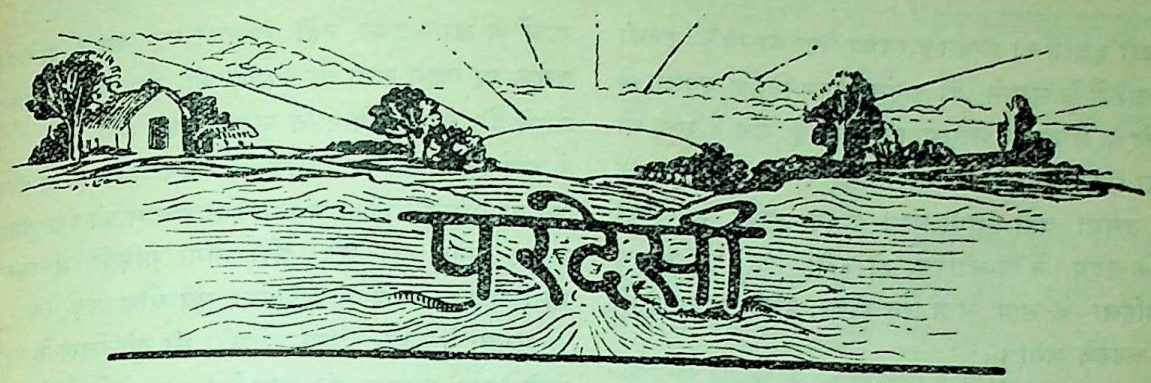

(उपन्यास)

तेरहवाँ परिच्छेद

गाड़ी से उतरकर, एक कुली करके, वह पैदल स्टेशन की ओर चला। सर्वत्र सरसों फूली हुई थी। रास्ते-भर वह नवागत वसंत के अपरिस्फुट यौवन की यह बहार देखता चला आया था; पर देख-देखकर आँखें तृप्त नहीं होती थीं। प्रकृति का कैसा सुंदर, शांत, संयत विलास था! विना किसी आडंबर के, अपनी सरल आभा से, वह स्वयं प्रभासित हो रही थी, और मंद-मंद मुस्किरा रही थी। यह अनिर्वचनीय, स्निग्ध शांति लखनऊ-शहर के समस्त व्यर्थ कोलाहल को तुच्छ करके व्यंग्य के साथ उसका परिहास कर रही थी। वह मानो कह रही थी—"देखो, मनुष्य कितना मूर्ख है! समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ, संपूर्ण प्राकृतिक चक्र का अधिपति होने पर भी अपने ही हाथों से रचे हुए सामाजिक और राजनीतिक बंधनों से स्वयं जकड़ा जाकर, नीचतम जीव की तरह, कीचड़ में लोट-पोट होकर सुख प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है! अनंत रहस्यमय प्राकृतिक लीला को वह तुच्छ और महत्त्व-हीन समझता है; अनंत आकाश के विपुल जगत् को वह व्यर्थ और उपयोगिता-हीन बतलाता है। पर समाचार-पत्रों का क्षणिक चक्रमय जगत् उसके लिये चरम सत्य है! क्षणिक जीवन का तुच्छ सामाजिक शिष्टाचार उसके लिये भगवान् के रचे हुए स्वाभाविक नियमों से भी अधिक सत्ता-पूर्ण है! संसार के दो दिन का लेन-देन उसके लिये जीवन-मृत्यु से भी अधिक विचारणीय है! उससे हज़ार गुना नगण्य जीव नैसर्गिक नियमों के साथ एक रूप होकर मुक्त—आनंदमय जीवन बिता रहे हैं; पर वह अन्न, जन, धन, प्रतिष्ठा, मान और यश के लोभ में फँसकर, धूल बटोरकर, धूसरित हो रहा है, और संसार के उस पार संध्याकाश की जो स्वर्णिम-रेणु अपनी झिलमिली झलक आँखों में झलका जा रही है, और भूले-भटके पथिकों का आह्वान कर रही है, उसकी ओर वह दृष्टि ही नहीं डालना चाहता!"

ललित सोचने लगा, मनुष्य इतना हेकड़ जीव है कि इन बातों की ओर इंगित करने से वह अपना अपमान समझता है। वह कहता है कि हज़ारों वर्षों से जब मानव-जाति सांसारिक, सामाजिक और राजनीतिक चक्रों में जीवन व्यतीत करती आई है—एक आध नहीं, करोड़ों बुद्धिमान् मनुष्य नित्यप्रति इन फंदों में पड़कर, काम करके अपना, जाति का और राष्ट्र का उद्धार करने में लगे हैं, तब तुम इतने बड़े बुद्धिशाली कहाँ से आए, जो इस रात-दिन की दुनिया से परे नज़र दौड़ाने का उपदेश दे रहे हो! तुम-जैसे कितने ही Idle Idealist लोग बराबर ऐसा ज्ञान सुनाते आए हैं; पर उनकी बातों पर प्रत्यक्षदर्शी Practical आदमियों ने कभी ध्यान नहीं दिया। सोच-सोचकर ललित को हँसी आने लगी। वह मन-ही-मन कहने लगा—धन्य है इन लोगों की 'प्रत्यक्षदर्शिता', अपने कानों से ये लोग प्रतिदिन निस्सहाय जीव-जगत् का करुण-क्रंदन सुन रहे हैं; पर उसके कारण हार्दिक अनुभूति द्वारा करुणा से द्रवीभूत न होकर मौखिक विवादों और राजनीतिक लेखों द्वारा उसके निराकरण की चेष्टा कर रहे हैं। प्रतिदिन अपनी आँखों से महामृत्यु का भीषण प्रकोप देख रहे हैं, और उसके निवारण के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टरी इलाज की अत्यंत हास्यकर चेष्टा कर रहे हैं। उनकी इन आँखों के सामने ही अनंत जीवन निर्मुक्त अवस्था में आनंद के सागर में भासमान हो रहा है; उसे वे मृत्यु की छाया समझ रहे हैं! कैसा भयंकर पाखंड है! फिर एक बार उसकी वही पुरानी घृणा अपना उत्कट रूप लेकर उसके हृदय में आलोड़ित हो उठी; फिर वह उन्मत्त प्रतिहिंसा के भाव से प्रेरित होकर, दाँत पीसकर हाथों को झटकने लगा।

कुछ कृषक-रमणियाँ काम से थककर, एक जगह बैठ कर 'कोरस' में गीत गा रही थीं। एक अपूर्व पुलक के उच्छ्वास से उसका हृदय भर आया। उसके हृदय के एक कोने से उत्थित जो तूफ़ान उसकी शांति को भंग करने की तैयारी कर रहा था, वह जिस तरह उठा था, उसी तरह विलीन हो गया। सरल, वास्तविक जीवन का जो आनंद इस सम्मिलित संगीत से निनादित हो रहा था, वह अवर्णनीय था। भूत-भविष्य की सभी चिंताओं को तिलांजलि देकर वह वर्तमान के इस निष्कलुष आनंद का रस-पान करने की चेष्टा करने लगा। बहुत देर तक वह इसी ध्यान में मस्त रहा। पर फिर उसका ख़ून उबल पड़ा। वह सोचने लगा—जो लोग सभा-समितियों में किसानों के नेता अथवा प्रतिनिधि बनकर जाते हैं, वे क्या उनके आभ्यंतरिक जीवन के सुख-दुःख से परिचित हैं, उनके हृदय के राग-रंग, स्नेह-प्रेम और पाप-पुण्य के भावों से अभिज्ञ हैं, उन्होंने क्या कभी उनके सरल स्निग्ध पारिवारिक-जीवन के रस का स्वाद चक्खा है? अथवा वे उन्हें एक बृहत् राजनीतिक संख्या की इकाई-मात्र समझते हैं? यदि ऐसा है, तो क्यों वे लोग अपने को उनके प्रेमी और प्रतिनिधि बतलाते हैं? मनुष्यों के भीतर से मनुष्यत्व का रस निकालकर उन्हें भेड़ों की तरह राजनीति के गह्वर में ढकेलना ही इस युग के 'महा-जनों' का बतलाया हुआ मुक्ति-पथ है।

धीरे-धीरे वह अपने घर के पास पहुँचा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि घर की चिंता इस समय तक कैसे उसके हृदय से विलुप्त हो गई! न-जाने कहाँ की अना-वश्यक चिंताओं से उसका मस्तिष्क गर्म हो उठा! व्यर्थ—सब व्यर्थ है! वह अपने को धिक्कारने लगा कि क्यों वह बार-बार जगत् के कर्णधारों के प्रति आक्रोश प्रकट करता है? क्यों केवल अपने ही जीवन के सुख-दुःखों की कल्प-नाओं में लगा हुआ नहीं रहता? वह अपने मन को समझाकर कहने लगा कि संसार को तुम उसके रास्ते चलने दो, तुम अपने रास्ते अलग चलो।

सूर्य छिपने को था। गाँव में सर्वत्र शांति व्याप्त थी। जब वह भीतर पहुँचा, तब माधवी सुभद्रा को एक पुस्तक पढ़कर सुना रही थी, और गंगा गुड़ियों में व्यस्त थी। अचानक उसे आते देखकर सब चौंक पड़े।

सुभद्रा ने कहा—"एक चिट्ठी भी तूने लिख के नहीं भेजी! बड़े अचरज की बात है! हम दोनों फ़िक्र से घुली जाती थीं। अपने आने की ख़बर तो भेज दी होती।"

ललित मुस्किराकर बोला—"अम्मा, इसे अँगरेज़ी में Surprise visit कहते हैं। अगर मैं विलायत में पैदा हुआ होता, तो वहाँ की अम्मा मुझे, मेरी चालाकी देखकर, ख़ुशी में कुछ इनाम दे बैठतीं। तुम इसकी क़दर क्या जानो।"

सुभद्रा ने स्वल्प क्रोध प्रकट करके कहा—"चुप रह, म्लेच्छ लोगों की बात मुँह से मत निकाल! बड़ा विलायत में पैदा होनेवाला आया है! ऐसी बातों के सुनने से पाप होता है।"

ललित ठठाकर हँस पड़ा।

माधवी ने कहा—"भैया, कुली खड़ा है, उसे मज़दूरी दे दो।"

असबाब नीचे रखवाकर, कुली को बिदा करके ललित चारपाई पर लेट गया।

सुभद्रा ने पूछा—"इतने दिनों तक लखनऊ में क्या किया?"

ललित बोला—"बैठे-बैठे झख मारा किया।"

सुभद्रा ने पूछा—"कहीं कोई नौकरी नहीं मिली?"

वह बोला—"मिलती कैसे! तुमने बहुत लाड़ से चिंता दिखला-दिखलाकर मुझे निकम्मा और घर-घुस्सू बना डाला है!"

सुभद्रा ने सस्नेह मुस्किराकर कहा—"इतने लोग देस-परदेस में नौकर हैं, वे सब क्या निर्मोही हैं?"

ललित बोला—"निर्मोही नहीं, तो क्या हैं! एक तो लखनऊ के दफ़्तरों, दूकानों और फ़र्मों में काम करनेवाले बाबू लोगों को देखतीं, तो मालूम होता कि वे कैसे हैं। उनका 'मोह' जो कुछ है, वह केवल अपनी-अपनी जान को लेकर। घर के दूसरे लोगों के संबंध में उन्हें बेहद उदासीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभद्रा और माधवी खिलखिलाकर हँसने लगीं। ललित को ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसका छोटा कुटुंब किसी भी चिंता के भार से दबा हुआ नहीं है, और अनंत काल तक केवल इसी तरह अकारण हँस-हँसाकर अपना जीवन बिताने की आशा रखता है। वह सोचने लगा—क्या इस हँसी में वास्तविकता है? तब क्यों दोनों अपने-आपको ठग रही हैं?

हाय! उसे यह नहीं मालूम हुआ कि सांसारिक चिंता से क्षण-भर को मुक्त होने के लिये, इस तरह अपने को ठगने में ही वास्तविक सत्य वर्तमान है, और रात-दिन की हाय-हाय, चरम सत्य के रूप में प्रकट होने पर भी, मरीचिका की तरह मिथ्या है।

सुभद्रा का मन आज वास्तव में प्रसन्न और बहुत कुछ हलका हो गया था। इतने दिनों तक अपनी दुर्भावनाओं का भार उन्हें अकेले ढोना पड़ रहा था। मा-बेटी कभी एक दूसरे से अपने दिल की बात खोलकर न कहती थीं; अपनी बात को छिपाकर, किसी अन्य अनावश्यक विषय की चर्चा छेड़कर अपना समय बिताती थीं। आज ललित के आने पर सुभद्रा बहुत कुछ निश्चिंत हो गईं। उन्हें पूरा भरोसा था कि ललित बेटा ऐसा-वैसा नहीं है। वह जीता रहे, कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेगा।

गाड़ी के धुएँ से ललित को चक्कर आ रहा था, और उसका जी मचल रहा था।

माधवी ने पूछा—"नींबू ले आऊँ भैया?"

ललित ने कहा—"अच्छी बात है। हो, तो एक ले आओ।"

माधवी भीतर से एक तश्तरी में नींबू के चीरे हुए टुकड़े और कुछ मसालेदार नमक ले आई। ललित चूस-चूसकर खाने लगा। थोड़ी देर बाद माधवी बाहर खेत से साग-भाजी तोड़कर लाई, और बैठकर काटने लगी। सुभद्रा भीतर चूल्हा जलाने चली गईं। गंगा ललित की चारपाई में बैठकर उसे अपनी गुड़ियाँ दिखाने लगी। गार्हस्थ्य-से सरल जीवन की स्निग्ध छवि ललित की आँखों में झलकने लगी। पर हाय, इस जीवन में आनंद के अकारण हास्य का अभाव था!

इलाचंद्र जोशी

रायबहादुर गौरीशंकरजी ओझा के आक्षेपों का उत्तर

[शेषांश]

"फिर चाचा व मेरा के पक्षकार राजपूतों की लड़कियों को रणमल देलवाड़े में ले आया, और उनको राठौरों के घर में डालने की आज्ञा दी।.....उन लड़कियों को राठौरों के घर में डालने का विचार ज्ञात होने पर वह (राघवदेव) बड़ा क्रुद्ध हुआ, और उनको रणमल के डेरे से अपने डेरे में ले आया।"

(वीरविनोद और राजपूताने के इतिहास के इन वाक्यों को मिलाकर देखने से, इन दोनों का संबंध और अपने उपास्यदेव के विरुद्ध जानेवाली बातों के इच्छानुसार रद्दोबदल का तरीक़ा भी बहुत-कुछ प्रकट हो जायगा।) पूज्य ओझाजी ने जिनको शत्रुपक्ष की कन्याएँ बताया है, वे वास्तव में शत्रु को पकड़ी हुई मेवाड़ की लड़कियाँ अर्थात् चाचा और मेरा की रखेल स्त्रियाँ ही थीं; क्योंकि स्वयं ओझाजी ने भी उन्हें घर में डालने का वर्णन किया है। परंतु यदि वे श्रीमान् के कथनानुसार पँवार-कन्याएँ ही होतीं, तो राठौर उनके साथ निस्संकोच विवाह ही कर सकते थे।

हमारा प्रश्न—जब चाचा का पुत्र राका और महपा पँवार भागकर मांडू के सुलतान के पास जा रहे, तब मोकल के भ्राता चूँडा ने, जो सुलतान का कृपापात्र होकर उसके पास ही रहता था, उनसे या सुलतान से कुछ भी न कहा! उसका धर्म तो यह था कि वह स्वयं उनसे भ्रातृ-हत्या का बदला लेता, और यदि यह उसको सामर्थ्य से बाहर था, तो कम-से-कम सुलतान को इतना तो कहता कि यदि आप इनको अपने पास रक्खेंगे, तो संसार में मेरी अपकीर्ति होगी।

ओझाजी का उत्तर—जब स्वयं महाराणा ही सुलतान से लड़ने को उद्यत हो गए, तो चूँडा-जैसे सुलतान के सरदार को उसके राजकीय कार्य में हस्तक्षेप करना उचित ही न था।

हमारा प्रत्युत्तर—इस उत्तर में पहली बात अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महपा आदि से भ्रातृहत्या का बदला लेने के प्रश्न का तो कुछ उत्तर ही नहीं है। परंतु साथ ही दूसरी बात का उत्तर भी बिलकुल कमज़ोर है; क्योंकि आप स्वयं अपने इतिहास में लिखते हैं कि रणमलजी की सलाह से महाराणा ने सुलतान को पत्र लिखकर अपने अपराधी महपा और एका को भेज देने की प्रार्थना की थी। परंतु जब उसने उनको भेजने से इनकार कर दिया, तो उस पर चढ़ाई की गई। वह भी कब? मोकलजी के मारे जाने के क़रीब ४ वर्ष बाद। अब सोचिए, श्रीमान् का उत्तर कहाँ तक संतोषजनक हो सकता है। क्या ४ वर्ष तक भी चूँडा को सुलतान से कहने-सुनने का मौक़ा नहीं मिला?

आगे माधुरी के पृष्ठ २७९ के द्वितीय कालम में ओझाजी लिखते हैं कि "इसके बाद जो कुछ लिखा है, वह केवल रणमल का वास्तव से अधिक महत्त्व बतलाने की इच्छा से ही लिखा है।"

इसके उत्तर में, रणमलजी की स्थिति के बारे में, राजपूताने के पवित्र इतिहास से ही कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं—

"चूँडा के चले जाने पर रणमल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया, और सैनिक विभाग में राठौरों को उच्च पद पर नियत करता रहा, तथा उनको अच्छी-अच्छी जागीरें देने लगा *।" (पृ० ५८४)

"महाराणा के दरबार में रणमल का प्रभाव दिन-दिन बढ़ता गया, और वह अपने पक्ष के राठौरों को अच्छे-अच्छे पदों पर नियुक्त करने लगा।" (पृ० ५९४)

क्या इन अवतरणों से रणमलजी का मेवाड़ का कर्ता-धर्ता होना नहीं प्रकट होता?

इसी प्रकार वीरविनोद से भी इस बात की पुष्टि होती है। उसमें लिखा है—

"(मांडू के) बादशाह ने क़िले से निकल महाराणा की फ़ौज पर हमला किया। लेकिन रणमल के हाथ गिरफ़्तार हुआ।.....चाचा व मेरा को मारने के महमूद को क़ैद करने से रणमल का इख़्तियार बढ़ गया।"

ओझाजी ने आगे चलकर फिर हमारे एक प्रश्न का उत्तर दिया है—

हमारा प्रश्न—रणमल ने सरोपाव के बहाने राघवदेव को राणा कुंभा के सामने बुलाकर मरवा डाला; परंतु महाराणा ने कुछ भी न कहा। इससे हमारे अनुमान की पुष्टि होती है।

ओझाजी का उत्तर—अपनी महत्ता के कारण महाराणा ने उस समय तो कुछ न कहा, परंतु इस घटना से उनके चित्त में रणमल के प्रति संदेह का अंकुर अवश्य उत्पन्न हो गया। रणमल के मारे जाने के कारणों में एक कारण यह भी था।

हमारा प्रत्युत्तर—राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ५९९ में लिखा है—"महाराणा की कृपा से राव रणमल का अधिकार बढ़ता ही गया। राघवदेव को मरवाने के बाद, रणमल के विषय में लोगों का संदेह दिन-दिन बढ़ने लगा, तो भी उनके पिता का मामा होने के कारण प्रकट में महाराणा उन पर पूर्ववत् ही कृपा दिखलाते रहे। उच्च पदों पर राठौरों को नियत करने से लोग उसके विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे।"

पहले तो यह महत्ता ही समझ में नहीं आती कि अपने सामने अपने चाचा को मारनेवाले को कुछ न कहा जाय। कहें, तो इसे भय कह सकते हैं। दूसरे, महाराणा के चित्त में संदेह होना भी नहीं पाया जाता, क्योंकि उसके दो-ढाई वर्ष बाद तक रणमलजी ही मेवाड़ के प्रबंधकर्ता बने रहे थे, और मांडू आदि की विजय भी उन्हीं की वीरता से प्राप्त हुई थी। यह ऊपर दिए 'वीर-विनोद' के अवतरण से स्पष्ट हो जाता है।

ऐसी हालत में हमने यदि यह अनुमान किया कि महाराणा और राघवदेव के बीच मनोमालिन्य था, तो क्या अनर्थ किया?

कर्नल टाड ने भी तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है—"मोकल के उत्तराधिकारी बालक कुंभा के किए हुए से इस घटना में सुदूरव्यापी षड्यंत्र के ख़याल का यथेष्ट कारण प्रतीत होता है। स्वामिद्रोही लोग

* वीर-विनोद में भी यही बात लिखी है—"चूँडा के चले जाने बाद कुल काम रणमल के सिपुर्द हुआ। उसने कुल फ़ौज का अधिकारी राठौरों को बनाया, और मेवाड़ के कुछ परगने भी राठौरों को दिए।.....महाराणा ने जवान होने पर भी उसको विश्वासपात्र जान मुसाहिब बना रक्खा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नज़दीक के सुरक्षित स्थान में जा बैठे, और कुंभा ने इस विपत्ति के समय मारवाड़-नरेश की मित्रता और सदाशयता पर विश्वास किया। उसका फल भी उसको उचित रूप से मिला।.....मेवाड़ के कवि लोग, ऐसे समय कुंभा के पिता का बदला लेने में उक्त सहायता के कारण, मारवाड़-नरेश का ही आभार मानकर उनका गुण-गान करते हैं।''

परंतु यदि कोई दुराग्रह और स्वार्थवश राठौरों की इस कीर्ति को सहन न कर सके, तो वह कहाँ तक क्षमा के योग्य है, इसका निर्णय पाठकों पर ही छोड़ा जाता है।

आगे आपने रणमल की मृत्यु के समय महाराणा कुंभा की अवस्था १०-११ वर्ष की न मानकर १८ वर्ष की मानी है। इस पर हम इस लेख के प्रारंभ में ही पूरे तौर से विचार कर चुके हैं। यदि उस समय कुंभा की अवस्था १८ वर्ष की मानी जाकर उसमें काफ़ी समझ का आना मान लिया जायगा, तो मोकल की गद्दीनशीनी के समय उसकी भी ऐसी ही हालत माननी होगी। फिर मोकल को कम उम्र बताकर राजमाता को सती होने से रोकना, वर्षों तक चूँडा और रणमल का क्रमशः मेवाड़ का प्रबंध करना और राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ५८३ के फ़ुटनोट (१) में राज्याभिषेक के समय मोकल की अवस्था १२ वर्ष की लिखना 'वदतो व्याघात' ही समझा जायगा।

आगे पृष्ठ २८० में और २८१ के पहले कालम में वि०सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख का समर्थन किया गया है, और साथ ही राणा कुंभाजी की प्रशंसा करने के बाद लिखा गया है कि "उक्त प्रशस्ति में लिखी हुई बातों के लिये निस्संदेह राणा कुंभा की अवस्था कम-से-कम १८ वर्ष की या इससे अधिक होनी चाहिए।"

नहीं कह सकते, रणमलजी के मरने के समय (वि० सं० १४९५) और राणपुर के लेख के लिखे जाने के समय (वि० सं० १४९६) में जो महाराणा कुंभा १८ वर्ष के थे, वही कीर्ति-स्तंभ के प्रारंभ के समय, वि० सं० १४९७ में, एक दम २० वर्ष के कैसे हो गए। मालूम होता है, अभी तक कोई किश्त न लग सकने के कारण ही, शतरंज के बादशाह की तरह, महाराणा कुंभा की अवस्था भी एकदम दो (ढाई) वर्ष खिसक गई है। ख़ैर, यह तो विनोद की बात है। परंतु यदि अधिक न मानकर कुंभाजी की अवस्था उस समय १८ वर्ष की ही मान ली जाय, तो भी तो कुंभाजी का जन्म वि० सं० १४७७ में मानना पड़ेगा; और यदि कुंभाजी के जन्म-समय उनके पिता मोकलजी की अवस्था १७ वर्ष की भी मानें, तो राज्य-प्राप्ति के समय मोकलजी को बालक समझ राजमाता का सती होने से रोका जाना आदि वही पूर्वोल्लिखित 'वदतोव्याघात' आ खड़ा होगा। फिर यदि कुंभाजी की अवस्था इससे भी अधिक मानी जायगी—जैसा कि श्रीमान् अपने लेख में बार-बार लिख चुके हैं—तो शायद आपके इस पवित्र इतिहास की यह पवित्रता और भी बढ़ जायगी।

पहले बतलाया जा चुका है कि श्रीमान् ने अपने इतिहास के पृ० ५८३ के प्रथम टिप्पण में राज्य-प्राप्ति के समय मोकल की अवस्था १२ वर्ष की मानी है। अतः यदि १७ वर्ष की अवस्था में मोकल के पुत्र हुआ हो, तो वि० सं० १५९६ में, आपके मत से भी, कुंभाजी की अवस्था १४ वर्ष से किसी भी हालत में अधिक न होगी। फिर आप ही के लिखे अनुसार इस लेख में कुंभाजी के पहले सात वर्षों (अर्थात् ७ वर्ष की अवस्था से लेकर १४ वर्ष की अवस्था तक) का हाल है। इसी से हमने अपने लेख के अंत में लिखा था कि या तो यह कवि की कृपा है, या प्रकारांतर से उस समय के मेवाड़ के प्रबंधक रणमलजी के प्रबंध की ही प्रशंसा है (हम उस शिलालेख को झूठा नहीं मानते। हमारा तो केवल यही कहना है कि शिलालेखों के लेखक भी बहुधा नरेशों की उचित से अधिक प्रशंसा लिख दिया करते हैं। इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध ही हैं)। रही पत्रप्रभाकर के उदाहरण की बात, सो वह तो केवल यह दिखलाने के लिये दिया गया था कि उदयपुर के कवि लोग अब तक भी रणमलजी के एहसान को मानते चले आते हैं। खेद है, कारण-विशेष से श्रीमान्-जैसे सत्यशोधकों को यह अप्रिय सत्य असह्य हो रहा है। हम भी इसे श्रीमान् के शब्दों में 'प्राचीन शोध का अहोभाग्य' ही कहेंगे।

आगे पृ० २८१ के पहले कालम के अंतिम भाग से पृ० २८२ के प्रथम कालम की समाप्ति तक मेवाड़ की उन ख्यातों से, जिन्हें आप स्वयं स्थान-स्थान पर झूठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतला चुके हैं, कुछ अंश उद्धृत किया है। परंतु आपके पवित्र इतिहास से ही प्रकट होता है कि महाराणा मोकल और कुंभा, दोनों की बाल्यावस्था में रणमल मेवाड़-राज्य का प्रबंधक रहा था, तथा एका और महपा ने स्वार्थी सीसोदियों से, जिनका दबदबा ढीला पड़ गया था, मिलकर बालक महाराणा को (जिसकी अवस्था आपके इतिहास के पृ० ५८३ के फ़ुटनोट के लेखानुसार भी १३ वर्ष से अधिक नहीं थी) धोखा दिया, और रणमल को मरवाया। यदि वास्तव में रणमल की नियत ख़राब होती, तो मोकल के बाल्यकाल में अथवा विशेषतः उस समय, जब मोकल के मरने पर मेवाड़ में अराजकता का राज्य था, वह कुछ गड़बड़ करता। इसके अलावा यदि आपके लिखे अनुसार वीर रणमल को महाराणा की इस कृतघ्नता का पता ही चल गया होता, तो उसे इस प्रकार आसानी से मार लेना भी कभी संभव न होता। ख़ैर, यदि थोड़ी देर के लिये हम आपके ही कथन को सच मान लें, तो फिर राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ६०३ में लिखी गई इन पंक्तियों की क्या दशा होगी—

"जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसाबाई ने कुंभा को अपने पास बुलाकर कहा कि मेरे चित्तौड़ ब्याहे जाने में राठौरों का सब प्रकार से नुक़सान हुआ है। रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया, और मेवाड़ का नाम ऊँचा किया; परंतु अंत में वह भी मारा गया।"

यही बात वीर-विनोद में भी लिखी है। पाठक स्वयं सोचें कि इससे राव रणमल की नेकनीयती सिद्ध होती है, या नहीं। अतः जो लोग हमारे लेख तथा उसके उत्तर और प्रत्युत्तर में लिखे गए लेखों को ध्यान-पूर्वक पढ़ने का कष्ट करेंगे, उन्हें स्पष्ट प्रकट हो जायगा कि मेवाड़वालों ने बालक महाराणा को भय दिखलाकर धोखा दिया, और रणमल के साथ कृतघ्नता-पूर्वक विश्वासघात किया। ऐसी हालत में राव रणमल के मेवाड़ पर किए हुए उपकारों को इस प्रकार के मौखिक तर्क से छिपाना असंभव ही है।

आगे अपने इतिहास में आपने जोधाजी की गद्दी-नशीनी का हाल मारवाड़ की ख्यात से लेना लिखा है। न-मालूम आपके पास कौन-सी मारवाड़ की ख्यात है, जिसमें न तो कान्हा के जन्म का समय है, न जोधाजी के मंडौर लेने का हाल ही। खेद है, इसी ख्यात के आधार पर श्रीमान् ओझाजी अपने पवित्र इतिहास की चौथी जिल्द में मारवाड़ का इतिहास लिखने का विचार प्रकट करते हैं। आगे हम मारवाड़ की ख्यात से जोधाजी के सहायकों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं—

जोधाजी के बंधु मल्लानी के अनेक राठौर सरदार, सिवाने के जैतमालोत, पोहकरण के पोहकरणा राठौर, सेतरावा के देवराजोत और संबंधी, हडभू तथा रूण के साँखले, ईंदावाटी के ईंदा, सेखाला के गोगादे चौहान, गागरून के खींची, बीकपुर और पूँगल के भाटी, भाटी शत्रुसाल का पुत्र अर्जुन, जैसलमेर रावल का पौत्र भाटी जैसा आदि। इसके अलावा इतिहास से यह भी प्रकट होता है कि जोधाजी ने मंडौर का राज्य मेवाड़वालों से दान में नहीं लिया था। उस पर अधिकार करने में उन्हें, अनेक स्थानों पर अपने विजित प्रदेश के बदले अपने प्राण छोड़ने को उद्यत एवं शत्रु के मार से घबराकर भी मचल-मचलकर हटती हुई मेवाड़ की सेना का जी तोड़कर सामना करना पड़ा था। इन युद्धों में मेवाड़ के अनेक सरदारों के साथ ही स्वयं राणा चूँडा के ३ पुत्र भी मारे गए थे। एक सरदार आहाड़ हिंगोला की छतरी अब तक बालसमंद-तालाब पर विद्यमान है। वीर-विनोद आदि में भी इन बातों का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है। परंतु श्रीमान् के पवित्र इतिहास की पवित्रता में यह सब लोप हो गया। आपने राणाजी की तरफ़ की दूसरी चढ़ाई को भी छिपाकर मारवाड़ की ख्यातों के उल्लेख को झूठा ठहरा दिया! पर यदि मारवाड़ की ख्यातें झूठी हैं, तो मेवाड़ की ख्यातें कैसे सच्ची मानी जा सकती हैं, खेद है, ओझाजी दूसरे के उद्धृत लेख को तो ख्यातों का बताकर झूठा कर देते हैं, परंतु स्वयं भी तो उन्हीं ख्यातों से सहायता लेते हैं। जोधाजी का समकालीन रामचंद्र, अपनी 'निसाणी' में महाराणा का दुबारा चढ़ाई करना, इसके उपरांत जोधाजी का मेवाड़ में उपद्रव मचाना, पद्मचंद सेठ को वहाँ पकड़कर लाना और उस सेठ का अपने नाम पर पद्मसर*

* श्रीमान् ने सिरोही के इतिहास में इस तालाब का नाम 'पद्मलसर' लिखकर इसका सिरोही के महाराव जगमाल की रानी पद्मावती (गांगाजी की रानी) द्वारा बनवाया जाना लिखा है। बाबावाक्यं प्रमाणम्!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालाब बनवाना लिखता है ; परंतु श्रीमान् इसको कब मानने लगे ! आप तो शिलालेख के सिवा किसी को प्रमाण ही नहीं मानते। क्या हम पूछ सकते हैं कि आपने अपने इतिहास में जो कुछ लिखा है, वह सब शिलालेखों के आधार पर ही लिखा है ? किंतु केवल शिलालेखों के आधार पर कोई सिलसिलेवार विशद इतिहास तैयार करना कठिन ही नहीं, असंभवप्राय भी है। पाठक देखें, माधुरी के लेख में ही श्रद्धेय ओझाजी ने कितने शिलालेखों के प्रमाण उद्धृत किए हैं । ख़ैर, इन विषयों पर हम १९८३ के वैशाख की माधुरी में अच्छी तरह से विचार कर चुके हैं।

एक मज़े की बात और भी है। जहाँ श्रीमान् चाहते हैं, वहाँ विना किसी प्रमाण के ही शिलालेख में भी भ्रम बता देते हैं। उदाहरणार्थ, श्रद्धय ओझाजी राजपूताने के इतिहास के पृ० ५८६ के दूसरे और चौथे फ़ुटनोट में क्रमशः १५१७ की और १४८५ की प्रशस्तियों के श्लोक

"पीरोजं समहम्मदं शरशतैरापात्य...। २२१

यस्याग्रे समभूत्पलायनपरः पीरोजखानः स्वयं

पातसाहाह्मददुस्सहोपि समरे संत्यज्य...१४"

उद्धृत कर उसी पृष्ठ में लिखते हैं—"यह प्रशस्ति (वि०सं०१४८५की) स्वयं महाराणा मोकल के समय की है। अतएव संभव है, महाराणा गुजरात के सुलतान अहमदशाह (प्रथम) से भी, जो उसका समकालीन था, लड़ा हो। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति तैयार करनेवाले पंडित ने भ्रम से अहमद को महम्मद लिख दिया हो।" पहले तो इन पंक्तियों से प्रकट होता है कि श्रीमान् को वि० सं० १४८५ की शृंगोऋषि की प्रशस्ति में लिखी महाराणा की अहमद के साथ की लड़ाई में हो संदेह हुआ है, और आगे तो आपने कुंभलगढ़ की प्रशस्ति के भ्रांत होने का फ़तवा ही दे दिया है। परंतु क्या यह संभव नहीं कि उसी गुजरात के सुलतान अहमद ने, जिसका जन्म वि० सं० १४४८ में हुआ था, अपने पुत्र मुहम्मद को सेनापति बनाकर महाराणा से लड़ने भेजा हो, और प्रशस्ति-लेखक ने उसी का नाम देकर वास्तविक बात का उल्लेख किया हो ? किंतु श्रीमान् को इतना विचार करने की आवश्यकता ही क्या थी। आपने तो कलम हाथ में लेते ही उक्त प्रशस्ति के लेखक की पोल ही खोल दी !

रही बैलगाड़ियों में बैठकर राठौरों के लड़ने जाने की बात, सो इससे तो राठौरों का दृढ़ निश्चय और वीरता ही प्रकट होती है।

इसके आगे पृ० २८३ के दूसरे कालम में जोधाजी को उदयसिंह द्वारा अजमेर और साँभर के दिए जाने के विषय में आप लिखते हैं—"हमें किसी विश्वस्त ऐतिहासिक ग्रंथ में यह बात लिखी हुई नहीं मिली, जिससे हमने इतना ही लिखा है कि.....तब उसने अपने पड़ोसियों को सहायक बनाने का उद्योग किया...और अपने राज्य के कई परगने भी आसपास के राजाओं को दिए। बाबू रामनारायणजी ने भी, जिनका प्रमाण रेउजी ने दिया है, अजमेर का परगना दिए जाने का कहीं उल्लेख नहीं किया है, और साँभर देने के विषय में एक भी प्रमाण नहीं दिया।"

हम श्रीमान् से पूछते हैं कि आप विश्वस्त ऐतिहासिक ग्रंथ कहते किसे हैं ? जिसमें मेवाड़वालों की प्रशंसा और मारवाड़वालों की निंदा हो, क्या वही विश्वस्त ऐतिहासिक ग्रंथ है ? वयोवृद्ध दूधड़जी पर यह आक्षेप करते हुए कि "उन्होंने साँभर देने के विषय में एक भी प्रमाण नहीं दिया है", आपको कुछ भी विचार नहीं आया ? यदि कोई श्रीमान् से ही धृष्टता कर पूछे कि आपने जितनी बातें राजपूताने के इतिहास में लिखी हैं, क्या उनके प्रमाण दिए हैं ? यदि नहीं, तो फिर आपके उस इतिहास की कैसी दुर्दशा होगी।

आगे इसी पृष्ठ से इस लेख के अंत तक गुजरात के सुलतान के विरुद्ध रायमल को ईडर की गद्दी दिलवाने में राव गाँगाजी द्वारा की गई महाराणा साँगा की सहायता पर विचार किया गया है। हमें वास्तव में खेद है कि हमारे इतिहास में उदयसिंह के स्थान पर डूँगरसिंह छप गया है। वीर-विनोद और श्रीयुत हरविलास शारदा के लिखे राणा साँगा के जीवन-चरित में उदयसिंह का नाम साफ़ दिया हुआ है। परंतु आपने जो रायमल को गद्दी दिलाने में राव गाँगाजी का साँगाजी की सहायता करना सर्वथा मिथ्या माना है, उसका आपके पास क्या प्रमाण है ? आप किस ग्रंथ को प्रामाणिक मानते हैं, अब तक हमारी समझ में यही नहीं आया। अस्तु, यहाँ पर हम आपके मित्र माननीय हरबिलासशारदा के लिखे साँगाजी के जीवन-चरित से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं। आशा है, इनसे आपका समाधान हो जायगा ; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप भी अपने इतिहास में उनके ग्रंथों से प्रमाण उद्धृत कर चुके हैं। वह लिखते हैं—

"Maharana.....decided to invade Gujrat and punish.....the Governor of Idar. The Maharana started with 40,000 horse and infantry. Rao Ganga of Jodhpur with 7,000 men, also joined the Maharana here."

(Maharana Sanga, p. 79.)

इसी प्रकार पंडित रामकर्णजी ने भी यही बात अपने इतिहास में लिखी है। आशा है, आप इनके विरुद्ध कोई प्रमाण उद्धृत करने की कृपा करेंगे, और साथ ही यह भी आशा की जाती है कि श्रीमान् उन ग्रंथों का उल्लेख करने में भी पीछे न हटेंगे, जिनको आप प्रामाणिक मानने को तैयार हैं; क्योंकि उन ग्रंथों का पता लग जाने पर ही वाद-विवाद में आनंद आ सकता है। वरना 'हम नहीं मानते' या 'किसी प्रामाणिक ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है' आदि कह देने-मात्र से, संभव है, श्रीमान् के महत्त्व को कुछ ठेस पहुँच जाय, और लोग इस पवित्र इतिहास को भाटों की ख्यात के बजाय ओझाजी की ख्यात मान बैठें।

हम समझते हैं, इन्हीं उपर्युक्त पृष्ठों में श्रीमान् ने बाबर के साथ की राणा साँगा की लड़ाई में जो राव गाँगा की सहायता मिलने का उल्लेख किया है, वह शायद वीर-विनोद के आधार पर ही लिखा होगा, क्योंकि उसमें इसका उल्लेख है।

अस्तु, भाद्रपद के लेख के इस उत्तर को समाप्त करते हुए यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना भी अनुचित न होगा कि हमारे लेख में प्रेस के भूतों की कृपा से एका के स्थान में राका या १५२५ के स्थान में १५२[illegible] और हमारे इतिहास में दृष्टिदोष से उदयसिंह के स्थान में डूँगरसिंह छप जाने से तो आप आकाश-पाताल एक करने को उद्यत हो जाते हैं, लेकिन स्वयं आपके पवित्र इतिहास के पृष्ठ ६०७ में उन्तीस के स्थान में उन्नीस, पृष्ठ ५७८ में १७५५ के स्थान में १७४५ और पृष्ठ ६[illegible] में रणमल के बदले चूँडा छपा मौजूद है। क्या हम भी यथास्थान वही आक्षेप श्रीमान् पर नहीं कर सकते?

विश्वेश्वरनाथ रे[illegible]

सूचना—वैशाख-मास की माधुरी के लेख में एक स्थान पर हमने वि० सं० १४६५ में कान्हाजी को राज्याधिकार मिलना लिखा है। उसका तात्पर्य उनका उत्तराधिकारी मान लिया जाना ही है।—लेखक

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान बिना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू मैं,-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का मान और निज स्वरूप तथा महिमा की पहिचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते ?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सकें। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ६)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,, ८)
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़े की जिल्द का मूल्य ॥।)

स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं।

पता—श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय

(१)

हज़रत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे। दस-पाँच पड़ोसियों तथा निकट संबंधियों के सिवा और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था, यहाँ तक कि उनकी लड़की ज़ैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम से पहले ही हो चुका था, अभी तक दीक्षित न हुए थे। ज़ैनब कई बार अपने मैके गई थी और अपने पूज्य पिता की ज्ञानमय वाणी सुन चुकी थी। वह दिल से इस्लाम पर ईमान ला चुकी थी, लेकिन अबुलआस धार्मिक मनोवृत्ति का आदमी न था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के से खजूर, मेवे आदि जिंसें लेकर बंदरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, मिहनती आदमी था, जिसे इहलोक से इतनी फ़ुरसत न थी कि परलोक की फ़िक्र करे।

ज़ैनब के सामने कठिन समस्या थी। आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर। न धर्म को छोड़ सकती थी, न पति को। उसके घर के सभी आदमी मूर्तिपूजक थे। इस नए संप्रदाय से सारे नगर में हलचल मची हुई थी। ज़ैनब सबसे अपनी लगन को छुपाती, यहाँ तक कि पति से भी न कह सकती। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे; बात-बात पर ख़ून की नदी बह जाती थी, ख़ानदान के-ख़ानदान मिट जाते थे। उन दिनों अरब की वीरता पारस्परिक कलहों में प्रकट होती थी। राजनीतिक संगठन का ज़माना न था। ख़ून का बदला ख़ून, धन-हानि का बदला ख़ून, अपमान का बदला ख़ून—मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार और मुहम्मद और उनके इने-गिने अनुयायियों में देवासुर-संग्राम छेड़ना था। उधर प्रेम का बंधन पैरों को जकड़े हुए था। नए धर्म में दीक्षित होना अपने प्राणप्रिय पति से सदा के लिये बिछुड़ जाना था। कुरैश-जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिये कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई ज़ैनब कुढ़ती रहती थी।

(२)

धर्म का अनुराग एक दुर्लभ वस्तु है; किंतु जब उसका वेग होता है, तो हृदय के रोके नहीं रुकता। दोपहर का समय था, धूप इतनी तेज़ थी कि उसकी ओर ताकते आँखों से चिनगारियाँ निकलती थीं। हज़रत मुहम्मद चिंता में डूबे हुए बैठे थे। निराशा चारों ओर अंधकार के रूप में दिखाई देती थी। ख़ुदैजा भी सिर झुकाए पास ही बैठी हुई एक फटा कुरता सी रही थीं। धन-संपत्ति सब कुछ इस लगन की भेंट हो चुकी थी। शत्रुओं का दुराग्रह दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उनके मतानुयायियों को भाँति-भाँति की यंत्रणाएँ दी जा रही थीं। स्वयं हज़रत को घर से निकलना मुशकिल था। यह ख़ौफ़ होता था कि कहीं लोग उन पर ईंट-पत्थर न फेंकने लगें। ख़बर आती थी, आज फ़लाँ 'मुसलिम' का घर लुट गया, आज फ़लाँ को लोगों ने आहत किया। हज़रत ये ख़बरें सुन-सुनकर विकल हो जाते थे, और बार-बार ख़ुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हज़रत ने फ़रमाया—मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं ख़ुद सब कुछ झेल सकता हूँ, लेकिन अपने दोस्तों की तकलीफ़ें नहीं देखी जातीं।

ख़ुदैजा—हमारे चले जाने से इन बेचारों को और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम-से-कम तुम्हारे पास आकर रो तो लेते हैं। मुसीबत में रोने का सहारा ही बहुत होता है।

हज़रत—तो मैं अकेले थोड़ा ही जाना चाहता हूँ। मैं सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए हैं, कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुंब की तरह रहेंगे, तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने का साहस न होगा। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते हैं, जिस पर चढ़ने की किसी को हिम्मत न होगी।

सहसा ज़ैनब घर में दाख़िल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था, न आदमज़ाद। मालूम होता था, कहीं से भागी चली आ रही है। ख़ुदैजा ने उसे गले लगाकर पूछा—क्या हुआ ज़ैनब, ख़ैरियत तो है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ैनब ने अपने अंतर-संग्राम की कथा कह सुनाई, और पिता से दीक्षा की याचना की।

हज़रत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले—बेटी, मेरे लिये इससे ज़्यादा ख़ुशी की और कोई बात नहीं हो सकती; लेकिन जानता हूँ, तुम्हारा क्या हाल होगा।

ज़ैनब—या हज़रत! मैंने ख़ुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया है। दुनिया के लिये अपनी नजात को नहीं खोना चाहती।

हज़रत—ज़ैनब, ख़ुदा की राह में काँटे हैं।

ज़ैनब—अब्बाजान, लगन को काँटों की परवा नहीं होती।

हज़रत—ससुराल से नाता टूट जायगा।

ज़ैनब—ख़ुदा से तो नाता जुड़ जायगा।

हज़रत—और अबुलआस?

ज़ैनब की आँखों में आँसू डबडबा आए। क्षीण स्वर में बोली—अब्बाजान, उन्हीं ने इतने दिनों मुझे बाँध रक्खा था, नहीं तो मैं कब की आपकी शरण आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर मैं ज़िंदा न रहूँगी, और शायद उनसे भी मेरा वियोग न सहा जाय; पर मुझे विश्वास है कि वह किसी-न-किसी दिन ज़रूर ख़ुदा पर ईमान लाएँगे, और फिर मुझे उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हज़रत—बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सद्वक्ता है; किंतु उसका अहंकार शायद अंत तक उसे ईश्वर से विमुख रक्खे। वह तक़दीर को नहीं मानता, रूह को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है, ख़ुदा की ज़रूरत ही क्या है, हम उससे क्यों डरें, विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिये काफ़ी है। ऐसा आदमी ख़ुदा पर ईमान नहीं ला सकता। कुफ़्र को तोड़ना आसान है, लेकिन वह जब दर्शन की सूरत पकड़ लेता है, तो उस पर किसी का ज़ोर नहीं चलता।

ज़ैनब ने दृढ़ होकर कहा—या हज़रत, आत्मा का उपकार जिसमें हो, मुझे वही चाहिए। मैं किसी इंसान को अपने और ख़ुदा के बीच में न आने दूँगी।

हज़रत ने कहा—ख़ुदा तुझ पर दया करे बेटी, तेरी बातों ने दिल ख़ुश कर दिया।

यह कहकर उन्होंने ज़ैनब को गले लगा लिया।

(३)

दूसरे दिन ज़ैनब को यथाविधि आम मस्जिद में कलमा पढ़ाया गया।

कुरैशियों ने जब यह ख़बर पाई, तो जल उठे। ग़ज़ब ख़ुदा का! इस्लाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर भी हाथ साफ़ करना शुरू किया! अगर यही हाल रहा, तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि हमारे लिये उसका सामना करना कठिन हो जायगा। अबुलआस के घर पर एक बड़ी मजलिस हुई।

अबूसिफ़ियान ने, जो इस्लाम के दुश्मनों में सबसे प्रतिष्ठित मनुष्य था, अबुलआस से कहा—तुम्हें अपनी बीबी को तलाक़ देना पड़ेगा।

अबुलआस ने कहा—हरगिज़ नहीं।

अबूसिफ़ियान—तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे?

अबुलआस—हरगिज़ नहीं।

अबूसि०—तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अ०आस—हरगिज़ नहीं। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अबूसि०—हरगिज़ नहीं।

अ०आस—क्या यह नहीं हो सकता कि वह मेरे घर में रहकर अपनी इच्छानुसार ख़ुदा की बंदगी करे?

अ० सि०—हरगिज़ नहीं।

अ० आस—मेरी क़ौम मेरे साथ इतनी सहानुभूति भी न करेगी?

अ० सि०—हरगिज़ नहीं।

अ० आस—तो फिर आप लोग मुझे समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंज़ूर है। आप लोग और जो सज़ा चाहें दें, वह सब मंज़ूर है; मगर मैं अपनी बीबी को नहीं छोड़ सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, और वह भी अपनी बीबी की।

अ० सि०—क़ुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं हैं?

अ० आस—ज़ैनब की-सी कोई नहीं।

अ० सि०—हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं, जो चाँद को लज्जित कर दें।

अ० आस—मैं सौंदर्य का उपासक नहीं।

अ० सि०—ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ, जो गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबंध में निपुण हों, बातें ऐसी करें कि ह से फूल झड़ें, खाना ऐसा पकाएँ कि बीमार को भी रुचि हो, सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दें।

अ०आस—मैं इन गुणों में से किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम—और केवल प्रेम—का उपासक हूँ। और, मुझे विश्वास है कि ज़ैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में कहीं नहीं मिल सकता।

अ० सि०—प्रेम होता, तो तुम्हें छोड़कर यह बेवफ़ाई करती!

अ० आस—मैं नहीं चाहता कि मेरे प्रेम के लिये वह अपने आत्म-स्वातंत्र्य का त्याग करे।

अ० सि०—इसका आशय यह कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। आँखों की क़सम! समाज तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करने देगी। मैं कहे देता हूँ, इसके लिये तुम रोओगे।

(४)

अबूसिफ़ियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गए, इधर अबुलआस ने लकड़ी सँभाली और हज़रत मुहम्मद के घर जा पहुँचे। शाम हो गई थी। हज़रत दरवाज़े पर अपने मुरीदों के साथ मग़रिब की निमाज़ पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया, और जब तक निमाज़ होती रही, ग़ौर से देखते रहे। जमाअत का एक साथ उठना, बैठना और झुकना देखकर उनके मन में श्रद्धा की तरंगें उठने लगीं। उन्हें मालूम न होता था कि मैं क्या कर रहा हूँ; पर अज्ञात भाव से वह जमाअत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ का एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिये अबुलआस भी उसी अंतर-प्रवाह में बह गए।

जब निमाज़ ख़त्म हुई और लोग सिधारे, तो अबुलआस ने हज़रत के पास जाकर सलाम किया, और कहा—मैं ज़ैनब को बिदा कराने आया हूँ।

हज़रत ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हें मालूम नहीं कि वह ख़ुदा और उसके रसूल पर ईमान ला चुकी है?

आस—जीहाँ, मालूम है।

हज़रत—इस्लाम ऐसे संबंधों का निषेध करता है, यह भी तुम्हें मालूम है?

आस—क्या इसका मतलब यह है कि ज़ैनब ने मुझे तलाक़ दे दिया?

हज़रत—अगर यही मतलब हो, तो।

आस—तो कुछ नहीं। ज़ैनब को अपने ख़ुदा और रसूल की बंदगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिल कर घर चला जाऊँगा, और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा; लेकिन उस दशा में अगर कुरैश-जाति आपसे लड़ने को तैयार हो जाय, तो उसका इलज़ाम मुझ पर न होगा।

हज़रत—मैं कुरैश से इस वक़्त नहीं लड़ना चाहता।

आस—तो ज़ैनब को मेरे साथ जाने दीजिए। उस हालत में कुरैश के क्रोध का भाजन मैं होऊँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफ़त न होगी।

हज़रत—तुम दबाव में आकर ज़ैनब को ख़ुदा की तरफ़ से फेरने का यत्न तो न करोगे?

आस—मैं किसी के धर्म में बाधा डालना सर्वथा अमानुषीय समझता हूँ।

हज़रत—तुम्हें लोग ज़ैनब को तलाक़ देने पर तो मजबूर न करेंगे?

आस—मैं ज़ैनब को तलाक़ देने के पहले ज़िंदगी को तलाक़ दे दूँगा।

हज़रत को आस की बातों से इतमीनान हो गया। वह आस की इज़्ज़त करते थे। आस को हरम में ज़ैनब से मिलने का मौक़ा दिया।

आस ने पूछा—ज़ैनब, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने आया हूँ; धर्म के बदलने से कहीं मन तो नहीं बदल गया?

ज़ैनब रोती हुई उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—या मेरे आक़ा! धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ, चाहे यहाँ रहूँ, चाहे वहाँ रहूँ। लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा?

आस—यदि समाज न रहने देगा, तो मैं समाज ही से निकल जाऊँगा। दुनिया में आराम से जीवन व्यतीत करने के लिये बहुत-से स्थान हैं। रहा मैं, तुम जानती हो मैं धार्मिक स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ, मैं तुम्हारे धार्मिक विषयों में कभी हस्तक्षेप न करूँगा।

ज़ैनब चली, तो ख़ुदैजा ने रोते हुए उसे यमन के लालों का एक बहुमूल्य हार बिदाई में दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

इस्लाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिनोंदिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करनी शुरू की। दूर-दूर के क़बीलों से मदद माँगी जाने लगी। इस्लाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्र-बल से विरोधियों को दबा सके। हज़रत मुहम्मद ने मक्का छोड़कर कहीं और चले जाने का निश्चय किया। मक्के में मुस्लिमों के घर सारे शहर में बिखरे हुए थे। एक की मदद को दूसरे मुसलमान न पहुँच सकते थे। हज़रत मुहम्मद किसी ऐसी जगह आबाद होना चाहते थे, जहाँ सब लोग मिले हुए रहें, और शत्रुओं की संघटित शक्ति का प्रतिकार कर सकें। अंत में उन्होंने मदीने को पसंद किया, और अपने समस्त अनुयायियों को सूचना दे दी। भक्तजन उनके साथ हुए और एक दिन मुस्लिमों ने मक्के से मदीने को प्रस्थान कर दिया। यही हिजरत थी।

मदीने में पहुँचकर मुसलमानों में एक नई शक्ति, नई स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निश्शंक होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की ज़रूरत न थी।

आत्मविश्वास बढ़ा। इधर भी विधर्मियों का स्वागत करने की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्ष सेना इकट्ठी करने लगे। विधर्मियों ने संकल्प किया कि संसार से इस्लाम का नाम ही मिटा देंगे। इस्लाम ने भी उनके दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

एक दिन अबुलआस ने आकर पत्नी से कहा—ज़ैनब, हमारे नेताओं ने इस्लाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी है।

ज़ैनब ने घबड़ाकर कहा—अब तो वे लोग यहाँ से चले गए। फिर इस जिहाद की क्या ज़रूरत ?

अबुलआस—मक्के से चले गए, अरब से तो नहीं चले गए। उन लोगों की ज़्यादतियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं है। जिहाद में मेरा शरीक होना ज़रूरी है।

ज़ैनब—अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर करता है, तो शौक़ से जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

आस—मेरे साथ !

ज़ैनब—हाँ, वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-सुश्रूषा करूँगी।

आस—शौक़ से चलो।

(६)

घोर संग्राम हुआ। दोनों दलवालों ने ख़ूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया, मज़हब का बंधन रक्त और वीर्य के बंधन से सुदृढ़ है।

दोनों दलवाले वीर थे। अंतर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी। दिलों में वह अटल विश्वास था, जो नवजात संप्रदायों का लक्षण है। विधर्मियों में 'बलिदान' का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लड़ाई होती रही। मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी, पर अंत में उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों में कितने ही मारे गए, कितने ही घायल हुए, और कितने ही क़ैद कर लिए गए। अबुलआस भी इन्हीं क़ैदियों में थे।

ज़ैनब ने ज्यों ही सुना कि अबुलआस पकड़ लिए गए, उसने तुरंत हज़रत मोहम्मद की सेवा में मुक्ति-धन भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो ख़ुदैजा ने उसे दिया था। ज़ैनब अपने पूज्य पिता को उस धर्मसंकट में एक क्षण के लिये भी न डालना चाहती थी, जो मुक्ति-धन के अभाव की दशा में उन पर पड़ता। किंतु अबुलआस को इच्छा होते हुए भी पक्षपात-भय से न छोड़ सके।

सब क़ैदी हज़रत के सामने पेश किए गए। कितने ही तो ईमान लाए, कितनों के घरों से मुक्ति-धन आ चुका था, वे मुक्त कर दिए गए। हज़रत ने अबुलआस को देखा, सबसे अलग सिर झुकाए खड़े हैं। मुख पर लज्जा का भाव झलक रहा है।

हज़रत ने कहा—अबुलआस, ख़ुदा ने इस्लाम की हिमायत की, वरना उसे यह विजय न प्राप्त होती।

अबुलआस—अगर आपके कथनानुसार संसार में एक ख़ुदा है, तो वह अपने एक बंदे को दूसरे का गला काटने में मदद नहीं दे सकता। मुसलमानों की विजय उनके रणोत्साह से हुई।

एक सहाबी ने पूछा—तुम्हारा फ़िदिया (मुक्ति-धन) कहाँ है ? हज़रत ने फ़रमाया—अबुलआस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निहायत बेशक़ीमत है। इनके बारे में आप क्या फ़ैसला करते हैं? आपको मालूम है, यह मेरे दामाद हैं।

अबूबकर—आस, तुम्हारे घर में ज़ैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ों हार क़ुर्बां किए जा सकते हैं।

अबुलआस—तो आपका मतलब क्या यह है कि ज़ैनब मेरा फ़िदिया हो?

ज़ैद—बेशक हमारा यही मतलब है।

अबुलआस—उससे तो कहीं बेहतर था कि आप मुझे क़त्ल कर देते।

अबूबकर—हम रसूल के दामाद को क़त्ल नहीं करेंगे, चाहे वह विधर्मी ही क्यों न हो। तुम्हारी यहाँ उतनी ख़ातिर होगी, जितनी हम कर सकते हैं।

अबुलआस के सामने विषम समस्या थी। इधर यहाँ की मेहमानी में अपमान था, उधर ज़ैनब के वियोग की दारुण वेदना थी। उन्होंने निश्चय किया, यह वेदना सहूँगा, अपमान न सहूँगा, प्रेम को आत्मा के गौरव पर बलिदान कर दूँगा। बोले—मुझे आपका फ़ैसला मंज़ूर है। ज़ैनब मेरा फ़िदिया होगी।

(७)

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज़्ज़त होनी चाहिए, उतनी होती थी। सुख था, ऐश्वर्य था, धर्म था; पर प्रेम न था। अबुलआस के वियोग में रोया करती।

तीन वर्ष तीन युगों की भाँति बीते। अबुलआस के दर्शन न हुए।

उधर अबुलआस पर उसकी बिरादरी का दबाव पड़ रहा था कि विवाह कर लो; पर ज़ैनब की मधुर स्मृतियाँ ही उसके प्रणय-वंचित हृदय को तसकीन देने को काफ़ी था। वह उत्तरोत्तर उत्साह के साथ अपने व्यवसाय में तल्लीन हो गया। महीनों घर न आता। धनोपार्जन ही अब उसके जीवन का मुख्य आधार था। लोगों को आश्चर्य होता था कि अब यह धन के पीछे क्यों प्राण दे रहा है। निराश और चिंता बहुधा शराब के नशे से शांत होती है; प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया था। धन के आवरण में ढका हुआ यह प्रेम-नैराश्य था। माया के परदे में छुपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

एक बार वह मक्के से माल लादकर इराक़ की तरफ़ चला। क़ाफ़िले में और भी कितने ही सौदागर थे। रक्षकों का एक दल भी साथ था। मुसलमानों के कई क़ाफ़िले विधर्मियों के हाथों लुट चुके थे। उन्हें ज्यों ही इस क़ाफ़िले की ख़बर मिली, ज़ैद ने कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उन पर धावा कर दिया। क़ाफ़िले के रक्षक लड़े, और मारे गए। क़ाफ़िलेवाले भाग निकले। अतुल धन मुसलमानों के हाथ लगा। अबुलआस फिर क़ैद हो गए।

दूसरे दिन हज़रत मुहम्मद के सामने अबुलआस की पेशी हुई। हज़रत ने एक बार उसकी तरफ़ करुण-दृष्टि डाली, और सिर झुका लिया। सहाबियों ने कहा—या हज़रत, अबुलआस के बारे में आप क्या फ़ैसला करते हैं?

मुहम्मद—इसके बारे में फ़ैसला करना तुम्हारा काम है। यह मेरा दामाद है, संभव है, मैं पक्षपात का दोषी हो जाऊँ।

यह कहकर वह मकान में चले गए। ज़ैनब रोकर पैरों पर गिर पड़ी, और बोली—अब्बाजान, आपने औरों को तो आज़ाद कर दिया। अबुलआस क्या उन सबसे गया बीता है?

हज़रत—नहीं ज़ैनब। न्याय के पद पर बैठनेवाले आदमी को पक्षपात और द्वेष से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि यह नीति मैंने ही बनाई है, तो भी अब उसका स्वामी नहीं, दास हूँ। मुझे अबुलआस से प्रेम है। मैं न्याय को प्रेम-कलंकित नहीं कर सकता।

सहाबी हज़रत की इस नीति-भक्ति पर मुग्ध हो गए। अबुलआस को सब माल-असबाब के साथ मुक्त कर दिया।

अबुलआस पर हज़रत की न्याय-परायणता का गहरा असर पड़ा। मक्के आकर उन्होंने अपना हिसाब-किताब साफ़ किया, लोगों का माल लौटाया, क़र्ज़ अदा किया और घर-बार त्याग कर हज़रत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गए। ज़ैनब की मुराद पूरी हुई।

प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोविंददास-पदावली

५

नंद-नंदन-संग-सोहत नवल गोकुल-कामिनी ;
तपन-तनया-तीर भलि बनि भुवन-मोहनि लावनी ।
ततत-थैया बाज मिरदँग मुखर कंकन-किंकिनी ;
हरि-बिलास-बिभास आनँद संग नव-नव रंगिनी ।
चारु चित्रित द्वउन अंबर पवन-अंचल-डोलनी ;
द्वउन तन पुनि झरत स्रमजल हेम-हिय-मरकत मनी ।
उर-बिलोलहिं बाज किंकिनि, नूपुरन धुनि संग ;
ग्रीव-डोलनि नयन-लोलनि संग रसवति-रंग ।
स्याम-राधा विबिध बिलसहिं रंगिनिन-सहबास ;
नील दरपन स्याम-मूरति लखत गोविँददास ।

६

मुदिर मरकत मधुर मूरति मुगुध मोहन छंद ;
मल्लि-मालति-माल-मधुकर-मत्त मनमथ-फंद ।
यामसुंदर सुघर सेखर सरद ससधर हास ;
संग सबन सबेस समवय सतत सुखमय भाप ।
रुचिर चिक्कन चिकुर चुंबित चारु चंद्रक पाँति ;
चपल चमकित चकित चितवन चित्त-चोरक भाति ।
गिरिक-गैरिक-गोरज-रोचन गंध-गरबित बास ;
गोप-गोपन गरित गुन-गन गाव गोविँददास ।

७

तरु-तरु नव किसलय, बन लाग ;
कुसुम-भार-नत उपवन, बाग ।
तहँ सुक सारी कोकिल बोल ;
कुंज-निकुंज भँवर करु रोल ।
अनुपम श्रीवृंदावन-माँझ ;
षड्-ऋतु-संग वसंत बिराज ।
बिकसित कुवलय कमल-कदंब ;
माधवि मालति मिलि तरु लंब ।
कहुँ-कहुँ सारस हंस निसान ;
कहुँ दादुर-ध्वनि कहुँ कल गान ।
कहुँ-कहुँ चातक पिउ-पिउ फूर ;
कहुँ-कहुँ उनमत नाच मयूर ।
कह गोविँद सब अनुपम भाति ;
चहुँ दिसि धेर्यो कुसुमन-पाँति ।

८

रैनि उजागरि नागर नागरि
नींद न खोलइ नैन ;
अतिसय रस भरि स्याम-अंक पर
हिलि बैठी गत-बैन ।
लखु सखि अनुपम छंद ।
स्याम-अंक पर सोइ रही धनि
कान्ह लखइ मुखचंद ।
कुंचित कुंडल डोलत लखु भल
सिंदुर-काजर बहि-बहि ;
स्रमजल सों, कवरी खुलि आधी
वाम भाग पर परि रहि ।
भीगो नील बसन सटि लागो ,
देखत अंग उदास ;
चंदहिं ग्रस्यो मेघ जनु, तैसइ
निरखइ गोविँददास ।

९

हिमकर मलिन, हँसत नलिनीगन
असन किरन लखि थोर ;
कोकिल रवहिं भ्रमरकुल आकुल
तेजत कुमुदिनि कोर ।
कस सखि सोवत जुगुलकिसोर ?
चौंकि कहइ सुक-सारिक जोर ।
किसलय सयन, अचल साँवर तन
मरकत कंचन गोरी ;
तन सन भो कुसुम-विसिख की
रँगि रति-रस धनि भोरी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखिन छोड़ि मंदिर जनु जातीं
जागहु सुंदरि राधा ;
गोविँददास सुनत प्रभु कातर
रसहिं दयो किहि बाधा ।

१०

सो मुखचंद न नयनन हेर्‍यों
नयन दहन भो चंद ;
सो मधुबोल न स्रवन सुन्यो सखि,
मधुकर धुनि भो द्वंद ।
काहे बढ़ाए मान ।
प्रेम-भंग-भय अब जिय कातर
तू परबोधहि कान्ह ।
सो कर-किसलय-परस उपेख्यों
अब किसलय तन भोर ;
नव नवनेह सुधारस निरमल,
गरल भरो तन मोर ।
तिहिं कर-विरचित हार उपेख्यों
हार भुजंगम भेल ;
गोविँददास कहै सो दुरजन
जो ऐसो मति देल ।

११

जामिनि जागि अलस दृग कमलनि
कामिनि अधरन राग ;
बाँधलि अरुन कपोलनि काजर,
भालहिं अलकत दाग ।
माधव दूरहिं कपट सनेह ।
हाथक कंकन किय दरपन, हरि
चल तू ताकर गेह ।
सो स्मर-समरहिं धीर कलावति
रति-रन-विमुख न भेल ;
नखर-कृपानहिं हनि उर-अंतर
प्रेम-रतन हरि मेल ।
प्रेम-विहीन पुरुष कों को धरि
जानि करै विसवास ;
गुन बिन हाट, हिया तुअ साखी
दूसर गोविँददास ।

१२

डगमग अरुन उजागर लोचन
उर पर नखगन-रेखा ;
रतिरन जूझि पराजय मानो
नारि दयो जय-लेखा ।
माधव, का कहिए तुअ आगे ।
जान न रतिरस, वह सुख-संपद,
का फल तुहिं अनुरागे ।
रति-रस-अलस अबस दृग मंथर
निरवधि नींद कि सेवा ;
कोउ कलावति करि बहु आरति
पूज मनोरथ-देवा ।
वचन-रचन करि का परबोधहु
निरवधि अंतर सोई ;
गोविँददास न परस-जोग तुम
परसि न रस कछु होई ।

१३

हिमऋतु जामिनि, जमुना तीर ;
तरल लताकुल, कुंज कुटीर ,
थिर न रहै तन, तुहिन समीर ;
इहि छिन बंचहिं श्याम शरीर ,
धनि तुहिं माधव, धनि तुअ नेह ;
धनि सो धनि जो परिहर गेह ,
कुल-गौरव तिहि कठिन कपाट ;
गुरुजन-गथन सकंटक बाट ,
जो धनि एह, बिघन अवगाह ;
सो मेरे तुहिं, धनि सो चाह ॥

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(७)

अनातोले फ्रांस भी उन विद्वानों में थे, जिन्हें पुरस्कार वृद्धावस्था में मिला। पुरस्कार पाने के समय इनकी अवस्था ७७वर्ष की थी, और तीन ही वर्ष पश्चात्, १९२४ ई० में, इनका देहांत हो गया। इनका पूरा नाम जैके अनातोले तिबाल (Jacques Anatole Thibault) फ्रांस था, सन् १८४४ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता फ्रैंकोनोयल तिबाल पेरिस के एक प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता थे। इनके पितामह मोची का काम करते थे, और इन्होंने अपने पुत्र को कुछ शिक्षा देकर फ़ौज में भरती करा दिया था। फ़ौज में रहकर यह बहुत कुछ पढ़ते रहे, और फिर लौटकर इनको पढ़ने का इतना शौक़ हो गया कि पुस्तकों की एक दूकान ही खोल दी। पुस्तकों को बेचने की अपेक्षा यह पढ़ना ही अधिक पसंद करते थे। अनातोले ने अपनी एक पुस्तक में * अपने पिता के इस स्वभाव का उल्लेख भी किया है। इस दूकान पर देश के बड़े-बड़े विद्वान् एवं राजनीतिज्ञ एकत्र होते थे, जिनका अनातोले पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बाल्यकाल की ये स्मृतियाँ इनके हृदय पर पक्की छाप डाल चुकी थीं, और लेखक की प्रतिभा के विकास में इनका बहुत भाग भी रहा है। अपने एक उपन्यास † के नायक के विषय में अनातोले ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसके चित्रण में पुस्तकों की दूकान को छोड़कर और सभी कुछ मेरे पिताजी का ही वर्णन है। इसी प्रकार माता का भी इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पिता तो अपने अध्ययन में व्यस्त रहते थे, माता इनको कहानियाँ सुनाया करती थीं, और यह समझती थीं कि लड़का होनहार है। बाल्यकाल के इस सुखमय-जीवन की झलक इनकी "सिलवेस्त्र" * नामक कहानी में पाई जाती है। रवि बाबू की भाँति इन्हें भी पाठशाला की कक्षाएँ बड़ी भयानक जान पड़ती थीं। यह कहा करते थे—"Ah, home is a famous school." प्रायः दुपहरी में सीन-नदी के किनारे एकांत में जा बैठते और वहाँ से लौटकर आना भी भूल जाते थे। इस अवस्था के मनोरंजक विवरण इनकी पुस्तक On Life and Letters † में मिलते हैं। स्कूल के शिक्षकों का यह कहना था कि यह लड़का कुछ नहीं कर सकेगा; पर इनकी माता को न-जाने क्यों विश्वास-सा था कि लड़के में प्रतिभा अधिक है। और उसी समय इन्होंने अनातोले से कहा था—

"Be a writer, my son you have brains and you will make the envious hold their tongues."

माता की यह दूरदर्शिता ठीक उतरी, और शीघ्र ही यह लिखने का अभ्यास करने लगे। २४ वर्ष की अवस्था में इनका पहला लेख प्रकाशित हुआ, फिर यह प्रेस में काम करने लगे। परंतु वहाँ भी मनोविनोद के लिए पुस्तकें पढ़ते और बाँसुरी बजाते रहे। ‡

एकआध वर्ष तक इधर-उधर का संपादकीय काम करते रहे, और कुछ लिखते रहे। फ्रांस और प्रशिया में जो युद्ध छिड़ा था, उसके समाप्त होते ही इन्होंने छोटी-छोटी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। पर इसका कुछ आदर न हुआ। तीन वर्ष पश्चात् इनका The Bride of Corinth-नामक उपन्यास निकला, जिससे लेखक की शक्तियों का परिचय मिलने लगा। थोड़े दिनों तक सिनेट-पुस्तकालय में काम करते रहे, और पेरिस के साहित्यिकों के प्रेम-पात्र होने लगे। इनकी पहली प्रसिद्ध पुस्तक "सिलवेस्त्र", १८८१ ई० में, प्रकाशित हुई, जिसके कारण इनका बहुत नाम हो गया। यह कथा बहुत सरल, पर हृदयग्राही है, और इसकी समालोचना के समय सभी विद्वानों ने लेखक के उज्ज्वल भविष्य

* The Bloom of Life.

† Pierre Noziere.

* The Crime of Sylvestre Bonnard.

† Translated by A. W. Evans, (London & New York, 1923-25).

‡ *Anatole France: the Man & His Work*, by J. L. May (New York), page 72.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

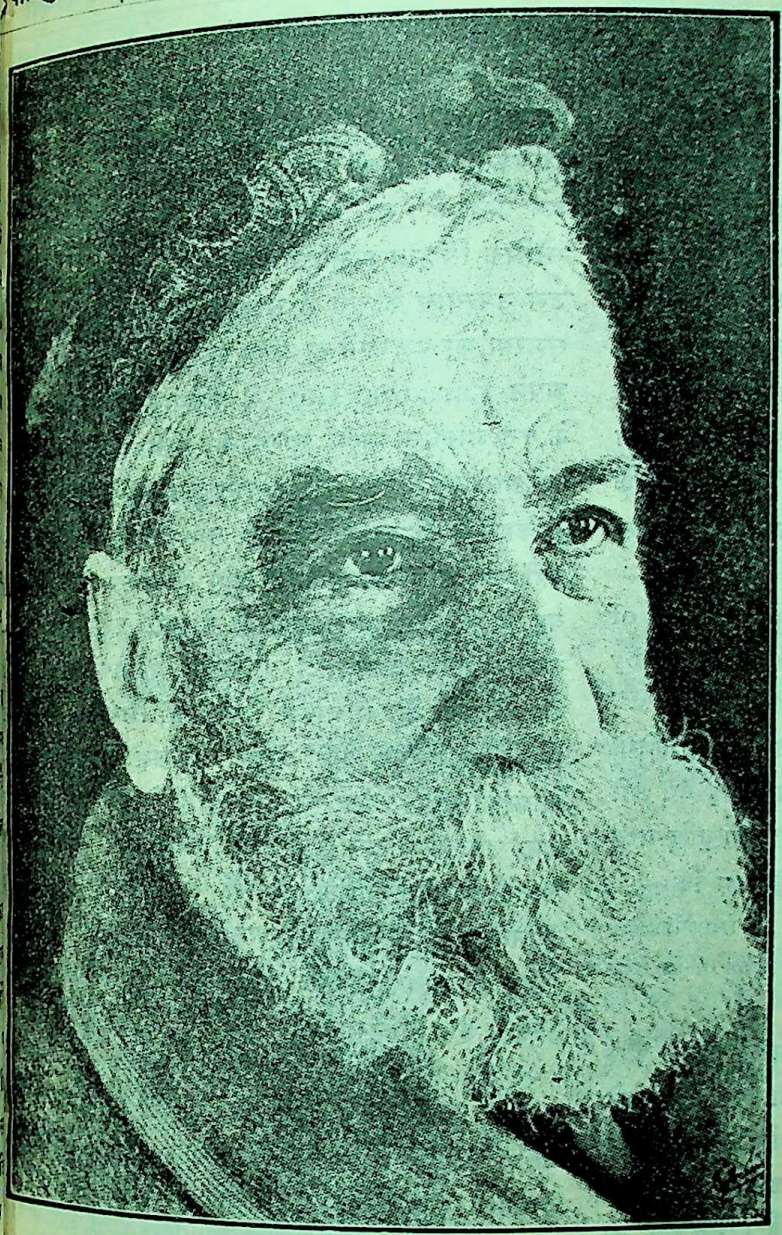

अनातोले फ्रांस

विषय में आशाएँ प्रकट की थीं । पर कुछ दिन पश्चात् लेखक स्वयं ही इस पर हँसता और कहता कि लोग न-जाने क्यों इस पुस्तक की प्रशंसा करते हैं, इसे तो मैंने बाएँ हाथ का खेल समझकर एक छोटे-से पारितोषिक के लिये लिखा था *। चार वर्ष बाद युवावस्था की स्मृतियों का संग्रह My Friend's Book के नाम से प्रकाशित किया, जो पहले उपन्यास से अधिक सजीव है । बूढ़ सिलवेस्त्र से सहानुभूति का उद्रेक अवश्य होता है, पर उसमें नैराश्य तथा बुढ़ापे का प्राबल्य है । हाँ, बुढ़ापे की सनक में नायक कभी-कभी बचपन के खिलवाड़ों की याद अलबत्ता करता है । इस ग्रंथ के कई वर्ष पश्चात् इनका दूसरा महत्त्व-पूर्ण उपन्यास निकला, जिसे कुछ लोग सर्वश्रेष्ठ कहते हैं । इसका नाम था Thais, अनातोले स्वयं भी कहते थे कि मैंने अब तक जनता के आनंद के लिये पुस्तकें लिखी थीं, पर यह ग्रंथ "स्वान्तः-सुखाय" लिखा है । इस बीच में एक-आध पत्रों में आलोचनात्मक लेख लिखने के अतिरिक्त इन्होंने और कुछ किया भी नहीं, और अधिकतर दक्षिण के देशों में भ्रमण करते रहे । पत्नी से कुछ अनबन भी हो चली थी, और भिन्न-भिन्न देशों में प्राकृतिक सौंदर्य-निरीक्षण से इनके हृदय में काव्य तथा वास्तविकता का एक अद्भुत सम्मिश्रण उठ खड़ा हुआ था । इस उपन्यास के नायक को ही लेखक ने अपने आंतरिक भावों का प्रकाशक बनाया है, यद्यपि बाद की एक-दो और पुस्तकों में भी ऐसे ही भाव हैं । The Revolt of the Angels तथा The Gods are Athirst में ऐतिहासिक भीषणता के साथ-साथ माननीय सहानुभूति का भी बहुत अंश है । फ़रिश्ते जब पेरिस-नगर का पतन-पूर्ण दृश्य देखते और परमात्मा के विरुद्ध आंदोलन करते हैं, तो साथ-ही-साथ प्रेमियों के भी बड़े कुत्सित चित्रण मिलते हैं । दूसरी ओर बूढ़े पुस्तकाध्यक्ष का विद्या-व्यसन भी अद्भुत है, और पुस्तकालय में से जब बड़े-बड़े पोथे उड़-उड़कर भागने लगते हैं, तो दृश्य अत्यंत स्वर्गीय एवं अभूतपूर्व हो जाता है । यदि इस कथा में पार्थिव तथा दैवी का सम्मिलन है, तो दूसरी में फ्रांस के इतिहास के उस समय का चित्र है, जब

* *Anatole France Himself* by Broussean (Philadelphia), 1925.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति-लोलुपता मानव-रक्त की प्यासी थी, और देश में हाहाकार मचा हुआ था। दयनीय स्थलों की बात और ही है; पर एकआध स्थान पर तो ऐसे वर्णन हैं, जो सभ्य रुचि के सर्वथा प्रतिकूल प्रतीत होंगे। शायद इन्हीं कारणों से अनातोले की बहुत-सी पुस्तकें पुस्तकालयों में नहीं आने पाती थीं। पुरस्कार मिलने के पश्चात् जाकर कहीं यह विरोध कम हुआ। यों भी फ्रांस के लोग इनसे बहुत घबराते थे, और फ्रेंच-पत्रों में इनके प्रतिकूल प्रायः लेख निकला करते थे। कहते हैं, जब यह पुरस्कार लेने स्टॉकहाम गए, तो स्वीडिश एकेडमी की बड़ी प्रशंसा करने लगे, और इस बात पर बड़े प्रसन्न हुए कि महायुद्ध के बाद उनके लिये पुरस्कार का निर्णय इस बात का द्योतक है कि—

"What is for me the principal lesson of the war, the beneficent influence exerted by intellectual intercourse with other countries."

उन्हीं दिनों वरसाई की संधि हुई थी। जब लोगों ने पूछा कि योरप पर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा, तो आपने कहा—यह संधि नहीं, किंतु लड़ाई की वृद्धि-मात्र है। साथ ही रवि बाबू की भाँति यह भी कहा कि—

"The downfall of Europe is inevitable unless at long last the spirit of reason is imported into its councils." *

इन शब्दों से विरोध की आग और भड़क उठी, और अनेक नवयुवक इनके नेतृत्व को संशय की दृष्टि से देखने लगे। पर यह तो अपनी एक पुस्तक में चित्रित ब्रोटो की ही भाँति थे, जो राजनीतिज्ञों के प्रति अपनी अश्रद्धा के कारण ही फाँसी पर लटका दिया जाता है। किंतु इन्हें तो अपने सिद्धांतों में विश्वास था, यह बराबर अपनी धुन के ग्रंथ लिखते रहे। और भी विकट ग्रंथ हैं—The Red Lily. At the sign of the Reine Pedauque. The White Stone तथा The Amethyst Ring. मनोरंजक पुस्तकों में से The Wicker-work woman, the Seven Wives of Bluebeard और Tales from a mother of Pearl Casket हैं। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक रहस्य-पूर्ण पुस्तकों में से Life of Jeanned' Arc है, जिसका विषय वही है, जो बर्नर्ड शॉ के Joan of Arc का है। Penguin Island हास्य-रस भी है। परंतु इनकी उत्तमोत्तम पुस्तकों में हासिकता की इतनी गहरी छाप है कि कभी-कभी ऊब जाता है। हाँ, बीच-बीच में बड़े महत्त्व-पूर्ण भौमिक सिद्धांत अलबत्ता मिलते हैं। एक ऐसा ही उस उपन्यास के अंत में आता है, जिसमें लेखक ने समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है, जिसका मिल्टन अपने Paradise Lost में प्रतिपादन किया है। के दूत मानवीय शरीर धारण कर परमात्मा पर का आरोपण करके, उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ते हैं, और में कहते हैं कि वास्तविक सत्य तथा विश्राम युद्ध नहीं, आत्मान्वेषण द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यह है कि इनकी सभी पुस्तकों में इसी प्रकार का न-कोई तथ्य अवश्य है। उनकी प्रेममयी कथा भी प्रेमियों के साधारण दृश्य नहीं मिलते। स्वयं कहा है कि मेरे जीवन में कभी उत्कट प्रे आकांक्षा नहीं उत्पन्न हुई। इस दृष्टि से तो इनके कम उपन्यास ऐसे हैं, जिन्हें साधारण औपन्य आदर्श के अनुकूल हम कथानक कह सकते हैं। पर के साहित्यिक इतिहास में अनातोले का नाम एक स्थान का पात्र है, जैसा कि प्रसिद्ध समालोचक केडियो हार्न ने लिखा है—

"If by Realism we mean truth, alone gives value to any study of h nature, we have in ANATOLE FRANCE dainty realist; if by Romanticism we u stand that unconscious tendency of the to elevate truth itself beyond the ran the familiar and into the emotional re aspiration, then ANATOLE FRANCE is a a romantic****. It is because of h rarer power to deal with what is older any art, and withal what is more you incomparably more precious: the bea what is beautiful in human emotion**

* Anatole France: the man and his work (London), page 108.

* Introduction to Sylvestre Bo (1924).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनातोले के विचारों तथा जीवनी के ऊपर अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। Studies in Ten Literatures.[1] Those Europeans[2] तथा French Novelists of To-day[3], इन तीनों पुस्तकों में इनके ऊपर भिन्न-भिन्न लेख हैं, इनके अतिरिक्त The Opinions of ANATOLE FRANCE[4]-नामक एक अलग ग्रंथ है। इसमें डाक्टर जॉन्सन की भाँति इनके अनेक विषयों पर मतों का संग्रह है। न्यूयार्क से इनकी पुस्तकों का संग्रह भी ३१ पोथियों में एकत्र छपा है[5]। यों तो इनके जीवन-भर अमेरिका आदि देशों में इनके ग्रंथों पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए गए थे, पर देहांत होने पर संसार का कोई भी साहित्यिक पत्र ऐसा नहीं था, जिसमें इनके विषय में महत्त्व-पूर्ण लेख न प्रकाशित हुए हों। अनातोले फ्रांस सर्वथा इस प्रतिष्ठा के पात्र भी थे।

(अपूर्ण)
श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

---

१ By Ernest Boyd, (New York, 1925).
२ By Sisley Huddlestone, (London & New York, 1924).
३ By W. Stephens, (London & New York 1908).
४ By Paul Gsell, (1924).
५ Dodd Mead &Co., (NewYork)—Library Edition and Tours Edition.

सुंदर और चमकीले बालों के बिना चेहरा शोभा नहीं देता।

कामिनिया ऑइल

(रजिस्टर्ड)

यही एक तेल है, जिसने अपने अद्वितीय गुणों के कारण काफ़ी नाम पाया है।

यदि आपके बाल चमकीले नहीं हैं, यदि वह निस्तेज और गिरते हुए दिखाई देते हैं, तो आज ही से "कामिनिया ऑइल" लगाना शुरू करिए। यह तैल आपके बालों की वृद्धि में सहायक होकर उनको चमकीले बनावेगा और मस्तिष्क एवं शिर को ठंडक पहुँचावेगा।

क़ीमत १ शीशी १), ३ शीशी २॥=), वी० पी० खर्च अलग।

ओटो दिलबहार

(रजिस्टर्ड)

ताज़े फूलों की क्यारियों की बहार देनेवाला यही एक ख़ालिस इत्र है। इसकी सुगंध मनोहर एवं चिरकाल तक टिकती है।

आध औंस की शीशी २), चौथाई औंस की शीशी १।) हर जगह मिलता है।

सूचना—आजकल बाज़ार में कई बनावटी ओटो बिकते हैं—अतः ख़रीदते समय कामिनिया ऑइल और ओटो दिलबहार का नाम देखकर ही ख़रीदना चाहिए।

४१ सोल एजेंट—ऐंग्लो-इंडियन ड्रग ऐंड केमीकल कंपनी,
२८५, जुम्मा मसजिद मार्केट, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधकार और प्रकाश का संघर्ष

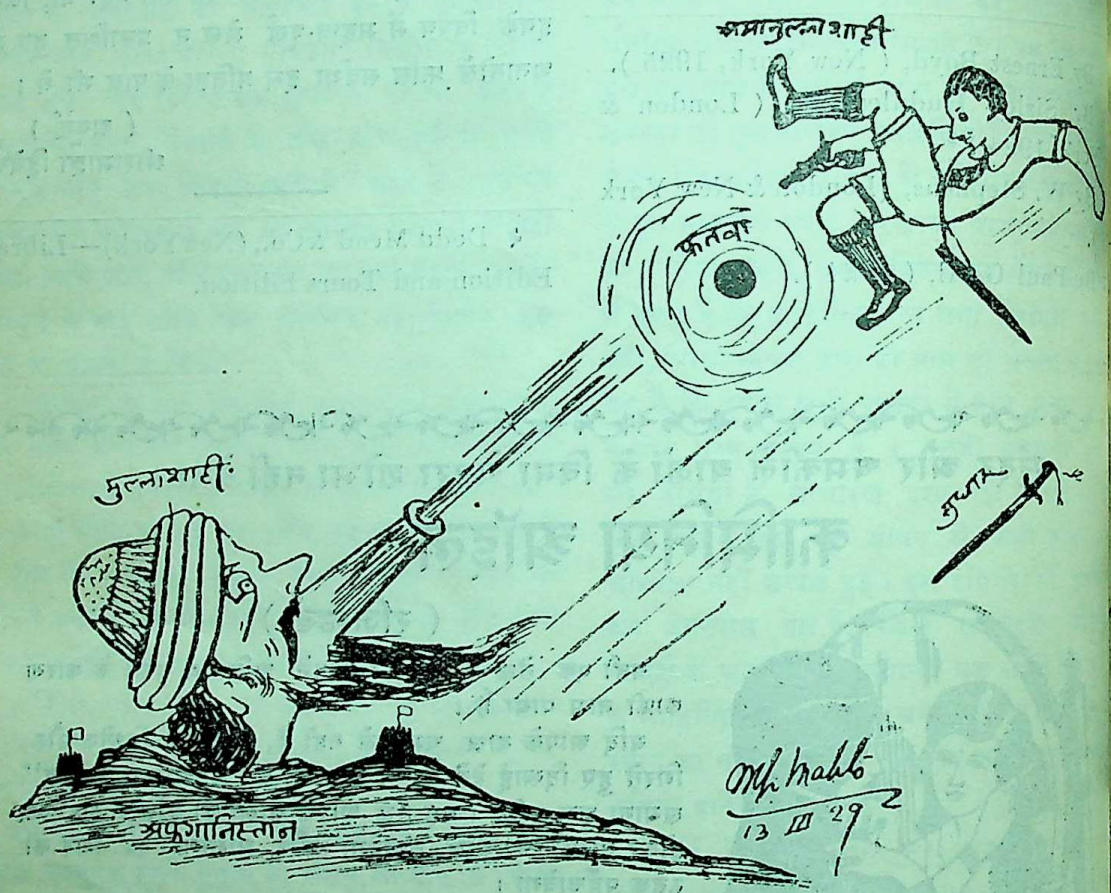

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि - चर्चा

"हरिचरित्र-चंद्रिका"

मध्य-भारतस्थ रीवा-राज्य का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। यहाँ बाघेल-क्षत्रियों के प्राचीन राजवंश का राज्य है। यहाँ के महाराजे सदैव से संस्कृत तथा हिंदी-भाषा के विद्वान् एवं कवि होते आए हैं। महाराज वीरभद्र-देव (सोलहवीं शताब्दी) का, संस्कृत-भाषा का, बृहद् ग्रंथ 'कंदर्पचूड़ामणि' उनके प्रकांड पांडित्य का प्रबल प्रमाण है। इसी प्रकार महाराज जयसिंहदेवजी, म० विश्वनाथसिंहजी और म० रघुराजसिंहजी हिंदी-भाषा के लब्धकीर्त कवि हो गए हैं। महाराज जयसिंहदेवजी तो महाकवि थे *। आपका काव्य-काल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी था। आपके परिचय के लिये पद्माकर का यह पद्य पर्याप्त होगा—

बकस त्रितुंड दए झुंडन के झुंड-रिपु,
मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को;
कहै पदमाकर करोरिन को कोष दए,
षोडशहू दीन्हें महादान अधिकारी को।
ग्राम दए, धाम दए, अमित अराम दए,
अन्न-जल दए जगती के अधिकारी को;
दाता जयसिंह दोय बातैं तो न दीनी कहूँ,
बैरिन को पीठ अरु दीठ पर-नारी को।

आपने कई मौलिक बृहद् ग्रंथों की रचना की है। उनमें 'हरिचरितामृत'-नामक ग्रंथ तो बहुत ही बड़ा है। उसमें विष्णु के चौबीसों अवतारों की कथा, काव्य-रीति से, वर्णित है। 'हरिचरित्र-चंद्रिका' इसी का एक भाग है। इसमें कृष्णावतार होने के कारण आदि सहित, कृष्ण-चरित्र के पूर्वार्द्ध का सविस्तर वर्णन है। ग्रंथ बड़ा है। छप्पय, दोहा, चौपाई, सोरठा, गीतिका, त्रिभंगी, तोटक, मालिनी और सवैया-छंदों में इसकी रचना हुई है। वर्णन-शैली विशद होने पर भी अत्यंत रुचिकर है, जो कवि की प्रखर प्रतिभा का परिचायक है। भाषा इसकी इतनी ललित और मधुर है कि ग्रंथ-भर में कदाचित् ही कहीं परुष वाक्य का प्रयोग हुआ हो। शब्दालंकारों के सुंदर समूहों के साथ ही अर्थालंकारों का भी उत्तम उपयोग हुआ है। भक्ति और शृंगार-रस का भी अच्छा परिपाक हुआ है। सारांश, प्राचीन हिंदी-कवियों के काव्यों से यह काव्य न्यून नहीं, समकक्ष अवश्य हो सकता

* माननीय मिश्र-बंधुओं ने आपको तोष की श्रेणी में रखा है; किंतु उदाहरण कुछ नहीं दिए। इससे ज्ञात होता है कि आपके काव्यों के अध्ययन का अवसर आप लोगों को नहीं मिला।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है[1]। अल्प लभ्य होने के कारण अभी तक इसका प्रचार कम है[2]।

अस्तु, विशेष-विशेष स्थल तो इसके इतने मनोहर हैं कि हम उनके उद्धरण देने का लोभ नहीं संवरण कर सकते।

पहले विशद वंदना का हो एक पद्य पढ़िए—

जा मधु को अज आदि अलि, नित ही रहत ललात ;
ताप-हरण ता पुरुष के, बंदौं पद-जलजात।

कैसी सुंदर उक्ति है।

ग्रंथ-प्रणयन के विषय में भी ग्रंथ-कर्ता की उक्ति देखने योग्य है—

बिनवति भाषौं भाषा हरि-जस; ज्यों बिनु रद सिसु-हास हीनरस।
समुझि सूर-तुलसी कबिताई; भाष हु बरनत मति सकुचाई।
पै सुंदर कबिता गुन-पानी; हरि-गुन रहित नसत सुखदानी।
कबिता गुननरहित रस फीकी; हरि-जस-कलित लगत अति नीकी।
अस हिय गुनि मैं हरि-जस कहऊँ; गुन प्रभाव प्रभु रति-मति लहऊँ।

गोलोक-वर्णन का एक पद्य लीजिए—

फूलनि कुंज निकुंज जहँ; गुंजि रहे अलि-पुंज ;
शब्द-ब्रह्म-सुख सुनि भए, देवन के मन लुंज।

शिशु श्रीकृष्ण पलना पर पड़े हुए अपने पैर का अँगूठा चूस रहे हैं, जैसे शिशुगण चूसा करते हैं। इस पर कवि की उत्प्रेक्षा देखने योग्य है—

पग अँगुष्ठ गहि करनि हरि, पिवत मनहुँ अनुमानि ;
कौन स्वाद पद लहि रमत, जन-मन तजि निज बानि।

स्वभाव-वर्णन भी आपका देखने योग्य है। शिशु कृष्ण पलने पर पड़े हुए हैं—

पलना परे कबहुँ पद झटकत; बारहिं बार कबहुँ पद पटकत।
कबहुँक बिहँसत कबहुँक रोवत ; अधखुल नैन उताने सोवत।
गूँ करि गाँ करि मा-मुख ताकत ; मुख-छवि ताकि मातु मुख ताकत।

शिशु-स्वभाव का कैसा सुंदर चित्र है।

बालक कृष्ण ने अपनी चंचलता से व्रज में उ[illegible] मचा दिया। किसी भी यत्न से रक्खा हुआ, किसी घर का, दूध-दही-माखन बचने नहीं पाता। लड़के लुटाते हैं, बंदरों को खिलाते हैं, और बर्तन फो[illegible] पृथ्वी में ढरका देते हैं। यही नहीं, सोते हुए बालकों जगा देते हैं, बछड़े छोड़कर पिला देते हैं। इत्यादि इस पर सब गोपियाँ माता यशोदा के पास उला[illegible] लेकर आती हैं, और यशोदा खीझकर कहती हैं—

आवत गृह सरोष सिख दैहौं ;
जाते पुनि न ओरहनो पैहौं।

किंतु जब बालक कृष्ण खेलकर दौड़े हुए आ[illegible] माता से लिपट जाते हैं, तब माता को गोपियों का [illegible] उलाहना भूल जाता है—

खेलि गयो गृह रज भरे, लगे मातु उर-आइ।
श्रम-जल-जुत मृदु मुख लखत, ओरहन गयो भुलाइ।

माता के हृदय का कितना सच्चा चित्र है!

इसी प्रकार कालिंदी-कूल में सब बालक बछड़े [illegible] हुए खेल रहे हैं। कोई भौंरों की नाईं गूँजता है, [illegible] कोकिल की नाईं कूजता है, कोई हंस की चाल [illegible] है, कोई बगले की भाँति स्थिर हो बैठता है, और [illegible] मोर के समान नाचता है। कभी सब-के-सब बंदर [illegible] चाल चलकर पेड़ों पर चढ़ जाते हैं, और कभी [illegible] यमुना-जल में अपना-अपना प्रतिबिंब देखकर [illegible] प्रकार की मुखाकृति बनाते हैं—

निज तन छाँह जोहि जल पावैं ;
मुख-विकार बहु बिधि दरसावैं।

कैसा बढ़िया बाल-स्वभाव-वर्णन है।

कुछ उपमाओं का उत्कर्ष भी देखिए—

अँग-अँग रूप अनूप में, झलकति जोबन जोति।
डाँक[1] दए जिमि नगन मैं, चटक चौगुनी होति।

जसुमति जु सुख लहति सुत प्यावत ;
मो बचननि कछु कहि नहिं आवत।
सो कहि सकहि न कबिजन कैसे ;
विषयी जीव ब्रह्मसुख जैसे।

---

१. चौपाई-छंद तो तुलसीदासजी के बाद इसी ग्रंथ के हमने इतने सुंदर देखे। इसका एक कारण कदाचित् यह भी हो कि अवधी और बघेलखंडी भाषा का बहुत ही साम्य है, और रामचरितमानस अवधी भाषा में है, तथा यह ग्रंथ बघेलखंडी हिंदी में।—लेखक

२. स्वर्गीय श्रीमान् महाराज वेंकटरमणसिंहजू देव ने, सं० १९६० वि० में, इसे प्रकाशित कराया है।—लेखक

१. सोने में नग (चमकीला पत्थर) जड़ते समय, [illegible] चमक तेज करने के लिये, नगों के नीचे जो मसाला [illegible] जाता है, उसे 'डाँक' कहते हैं।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक कृष्ण सफ़ेद चादर ओढ़े सो रहे हैं; किंतु कभी-कभी मुख पर से चादर हट जाता है। इस पर कवि का उपमान देखिए—

सोवत सित पट खुलत कहुँ, यों मुख सुखद लखाय ;
मनु पयोधि ते विधु कढ़त, फटत फेन दरसाय।

रास के समय गोपियों की शोभा-वर्णन में—

कच कुटिल बिथुरे बदन सुथरे माँग मोती यों लसे ;
मानहु विधुंतुद सुधाकर को ग्रसे तकि तारे फँसे।

ऋतु-वर्णन में रामचरितमानस का अनुकरण किया गया है अवश्य ; किंतु छाया-मात्र का (जैसा कि संस्कृत-ग्रंथों का रामचरित में भी किया गया है), न कि अर्थ और पदों का। यथा—

आई वर्षा-ऋतु सुखद, जग-जन जीवन हेत ;
नभ-मंडल मंडित किए, घन-घमंड छबि देत।
गरजि-गरजि घन नभ धुनि धारहिं ;
जनु दाता याचकनि पुकारहिं।
फूटि-फूटि घन फिरि जुरि जाहीं ;
जिमि धन जुरै दानि घर माहीं।
* * *
बरसि-बरसि वारिद महि तोषहिं ;
भूप उदार प्रजा जिमि तोषहिं।
× × ×
नचहिं मोर घन ओर निहारी ;
जिमि दाता लखि छुधित भिखारी।
× × ×
उमड़ि नदी-नद तट तरु नासत ;
खल भूपति जिमि सुजन निकासत।
× × ×
सुर-धनु गहि जिहि तड़ित करि, सलिल धार सर पैन ;
मारत विरही चतुर मृग, मेह अहेरी ऐन।

शरद्

ककुभ कुटज आदिक बिना, विकसे कुसुम-निकाय ;
जिमि खल-मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय।
जल बिन जलद सेत छबि छाजत ;
सब धन दे दाता जिमि राजत।
× × ×
लसत इंदु उडगन मिलि ऐसो ;
नृप नय निपुन प्रजायुत जैसो।
× × ×
पूरन अन्न-सहित छिति छाजै ;
जिमि धनमुत दाता-मति राजै।

उपर्युक्त पद्यों से पद्माकर के पद्योक्त म० जयसिंहदेव के दातृत्व-गुण का परिचय मिलता है, और आपकी उदार राजनीति का भी बोध होता है।

कुसुमित कानन परम सुहावन; मुनि-मन मनसिज लगो लजावन।
लहलह लता तरुन लपटीं लचि; मंद पवन परसत उठतीं नचि।
तरु मकरंद बिंदु मृदु सरसत ; परसत बेलि सेद मनु सरसत।
विकसत कुसुम गुंजि अलि डोलत ; मानहुँ तरुगन बिहँसत बोलत।
× × ×
ता छन उदित भयो राका-ससि ; प्राची कुंकुम दिए मनो घसि।
* * *
नभ चढ़ि भयो पीत पट छावत;निसि मुख लखि मनु बिवरन भावत।
पुनि कछु चढ़ि सित भयो बिराजत ; मदन महीप छत्र जनु छाजत।
लसत कौमुदी काँस-कुसुम पर ; मनु महताब प्रकास फटिकधर।
जपा मालती बेला-पुंजनि ; गहगह फूले लखियत कुंजनि।
ससिकर परसि चमक इमि साजहिं;चुनि-चुनि कनि मनु डाँक बिराजहिं।
× × ×
इमि चंद-चाँदनि परसि जमुना-पुलिन-रज जगमग भई ;
महताब उजियारी परे मनु कनिन-चूरन छबि छई।
यों परसि ससि-कर जल-तरंगनि चमचमाहट ह्वै रही ;
मनु नीलमनि की रासि पर परकास दिनकर छै रही।

सुधा-समान होते हुए भी रास-रस का एक बिंदु-मात्र ही देकर संतोष करना पड़ता है; क्योंकि अब पत्रिका में स्थान का और पाठकों को समय का भी अभाव होगा।

पद-गति-विधि चंचल कहूँ अचंचल फहरत अंचल लंक लचैं ;
कल झुमकनि डोलनि गोल कपोलनि कुंतल लोलनि रंग रचैं।
स्रम-जल-कनि छावनि मुख छबि भावनि करनि चलावनि मोद सँचैं ;
कछु शिथिलित कबरी गुंजै भमरी दै-दै भँवरी बाल नचैं।

अंत में उत्कृष्ट ज्ञानी उद्धव के ज्ञानोपदेश के उत्तर में भोलीभाली गोपकुमारियों की उक्ति भी सुन लीजिए—

सरसीरुह सों सरसी अँखियाँ पखियाँ सिर मोरन की पहरैं ;
खुर-रेनु भरी अलकैं झलकैं छबि कुंडल गोल कपोल भरैं।
हँसि हेरनि बाँसुरी टेरनि त्यों सरसे सुर-तानिनि सों निकरैं;
बन ते ब्रज आवत यों नँद-नंदन ऊधो बिसारे नहीं बिसरैं।
× × × × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेठ-दिवाकर सों भो सुधाकर भौन भयानक खाइ सो धावै ;
ब्याल उसास समीर भयो बन-फूल बिलोकत सूल सो जावै।
चालु भई ब्रज की उलटी सहि जैहै न कोमल स्याम सुभावै ;
ऊधो इतो हठिकै करियो ब्रज को नँदलाल न आवनो पावै।

× × ×

ऊधा इन अँखियानि सों, तुम निरखहु नँदलाल ;
बहुरि ज्ञान-पथ मन रहै, तौ उपदेसहु बाल।

आशा है, इन उद्धरणों से पाठकों को महाराज जयसिंहदेव की प्रखर प्रतिभा एवं उनके कोमल-कान्त काव्य का यत्किंचित् परिचय अवश्य मिलेगा।

भानुसिंह वाघेला

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों का ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियां

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

ठि० लारो रोल० जोख्सबर्ग (एम्० ए०)
१३।१२।२८

मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ। बच्चे की तबियत अच्छी है।

नारायणदास रामा—
ठि० मुकुर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर
बंबई—१३।१२।२८

आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ। अब दस मास का हुआ है।

अमृतलाल माषजी—
फैजपुर, (जि० खानदेश) ता० १०।१२।२८

आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ।

केशवजी माणिकचंद—
छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८

आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षुधा लगती और खाना भी हज़म होता है। अब पेट, पेडू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो। २२

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. साहित्य

संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ—अर्थात् 'संस्कृतशब्दों का हिंदी-भाषा में अर्थ बतलानेवाला एक बड़ा कोष'—संग्रहकर्ता, पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी, एम्० आर० ए०-एस्०; प्रकाशक, लाला रामनारायणलाल, पब्लिशर और बुकसेलर, कटरा, इलाहाबाद; मूल्य ६)

चतुर्वेदीजी की सरस्वती-सेवा से तो आबालवृद्ध सभी लोग परिचित हैं, तथापि आपने हिंदी-सेवा के अतिरिक्त संस्कृत-सेवा, धर्म-सेवा और तद्द्वारा यथार्थ देश-सेवा भी पर्याप्त की है, तथा इस ढलती हुई अवस्था में भी अनवरत परिश्रम से करते जा रहे हैं। आपके संचित किंवा संगृहीत 'रत्न-त्रय' वर्तमान 'अंधेर-राज्य' में विशेष प्रकाश करनेवाले हैं, और हिंदू-संस्कृति के आगामी अनुयायियों के लिये तो वे प्रकाश-स्तंभ का कार्य देने में पर्याप्त होंगे—ऐसी हमारी दृढ़ धारणा है। इनमें प्रथम रत्न 'श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' की भाषा-टीका है, जिसके विषय में कुछ लिखने का आज अवसर नहीं है। द्वितीय 'संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ'-कोष है, जो प्रस्तुत समालोचना का विषय है। तृतीय रामायण के ही ढंग पर प्रारंभ की हुई 'महाभारत' की भाषा-टीका है, जिसमें श्रीचतुर्वेदीजी महाराज इन दिनों लगे हुए हैं।

पं० श० कौस्तुभ में चिकने काग़ज़ के बड़े आकार के ९८४+१३० पृष्ठ हैं। छपाई अत्यंत स्पष्ट और सुंदर है। जिल्द भी सुदृढ़ है। इतने पर भी इतना सस्ता ग्रंथ प्रकाशित करना लाला रामनारायणलाल का ही काम है।

यद्यपि चतुर्वेदीजी ने भूमिका में यह स्वीकार किया है कि इस कोष के प्रणयन में आपने अन्य कोषों की अपेक्षा प्रिंसिपल वामन-शिवराम आपटे की 'संस्कृत-इँगलिश-डिक्शनरी' से विशेष सहायता ली है, तथापि पुस्तक के भीतर दृष्टि डालने से पता चलता है कि आपने इसमें मौलिक कार्य भी बहुत कुछ किया है। इसके प्रमाण में मुख्य कोष के भीतर की छोटी-मोटी अनेक बातों को न लिखकर हम यहाँ परिशिष्टों का संक्षेप में विचार करना उचित समझते हैं।

धातुओं का समावेश यथास्थान कोष के भीतर भी किया गया है, तथापि परिशिष्ट २ (पृ० १२-६७) में अकारादि क्रम से संपूर्ण धातुओं का कोष गण-पद-अर्थ-प्रयोगादि-सहित पृथक् भी दिया गया है। परिशिष्ट ४ (पृ० ७८-१३०) में संस्कृत के प्राचीन विद्वानों और ग्रंथकारों का समय-निरूपणादि विवरण भी अत्यंत विशद रूप से लिखा गया है, जब कि इस विषय पर आपटे ने केवल एक पन्ना लिखकर ही संतोष किया है। आपटे ने 'न्याय'-शब्द की व्याख्या में कुल ३० न्यायों (कहावतों) का संग्रह किया था, परंतु चतुर्वेदीजी ने परिशिष्ट १ (पृ० १-१०) में १११ न्यायों का विवरण दिया है। प्राचीन भूगोल पर आपटे ने कुल डेढ़ पन्ने लिखा है, परंतु इस 'कौस्तुभ' के परिशिष्ट ३ में १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ (६८-७७) इस विषय के हैं, जिनमें आपटे से कई गुना नाम और उनके विवरण आ गए हैं। इन महत्त्व-पूर्ण परिशिष्टों से चतुर्वेदीजी के कोष की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

कोष के भीतर प्रत्येक संज्ञा-शब्द का लिंग अथवा, यदि वह विशेष्यनिघ्न है तो, 'वि०', तदनंतर अंक डालकर उसके भिन्न-भिन्न अर्थ, फिर उसमें अन्य शब्दों के जुड़ने से संयुक्त शब्दों के लिंगादि विवरण-सहित अर्थ दिए हैं। पुं०-शब्दों के स्त्रीप्रत्ययांत रूप भी अनेक स्थानों में दिए गए हैं। कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न ग्रंथों से श्लोक भी उद्धृत कर दिए हैं। प्रायः यही शैली आपटे की भी है, जिसमें बहुत-से शब्दों की साधनिका और उनके भिन्न-भिन्न अर्थों के साथ उन ग्रंथों के पते भी दिए हैं, जिनमें वे तत्तद्रूप में प्रयुक्त हुए हैं। चतुर्वेदीजी ने कदाचित् ग्रंथ-विस्तार-भय से ही इन दोनों उपयोगी बातों को छोड़ना ठीक समझा है। आपने धातु-शब्दों के संबंध में 'धा०' संकेत, तदनंतर धातु का 'पद', पदानुसार 'वर्तमान काल' का एक रूप और दूसरा 'क्त-प्रत्ययांत' रूप लिखकर फिर अर्थ लिखे हैं। अव्ययों के नीचे संकेतपूर्वक अर्थ दिए हैं। एतदतिरिक्त बहुत-सी अन्य उपयोगी बातें हैं, जिनको यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

समालोचक का काम यथार्थ बात कहने का है, इसलिये "न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" की नीति का पालन उसके लिये नितांत असंभव है। अतएव हमें त्रुटियों के संबंध में भी अवश्य कुछ कहना ही होगा। प्रथमतः उद्धरणों के नीचे यथाशक्य पूरे पते देने चाहिए थे। उनके साथ केवल ग्रंथ-नाम देना पर्याप्त नहीं होता है। यह न्यूनता कोष के तो अनेक स्थलों में रह ही गई है, परंतु विशेषतः परिशिष्ट ४ में देखी जाती है, जहाँ पूरा पता देना अन्वेषण के संबंध में अत्यंत आवश्यक हो जाता है। एतदतिरिक्त निम्न-लिखित प्रकार की बातें भी विचारणीय हैं—

(१) पृ० २११ पर 'करण' (पुं०) और उसके अर्थ छूट गए हैं।

(२) पृ० २२५ पर 'काय-स्थः' का अर्थ 'परमात्मा' और 'जीव' भी लिखना चाहिए था; किंतु "'मुंशी' जाति (?) जिसकी उत्पत्ति 'क्षत्रिय' पिता और 'शूद्रा' स्त्री से हुई हो" ऐसा अर्थ तो सर्वथा ही प्रमाण-विरुद्ध है। स्मृति, पुराण, इतिहास आदि किसी भी प्रमाण से ऐसा नहीं सिद्ध होता। ऐसा निराधार और प्रमाण-शून्य लेख, 'विवादास्पद' विषय को सुलझाने के बदले और भी जटिल बना देता है। आज से ४० वर्ष पूर्व आपटे ने ऐसा भ्रांत लेख किसी भी कारण से लिखा हो; परंतु जब हस्तलिखित पुस्तकों की सूचियाँ, शिलालेख, ताम्रशासन तथा विविध विषयों की पुस्तकें इत्यादि पुष्कल ऐतिहासिक सामग्री पूर्वापेक्षा अत्यंत विशाल परिमाण में प्रकाशित हो चुकी है, जिससे 'ब्राह्मण-कायस्थों', 'क्षत्रिय-कायस्थों', 'वैश्य-कायस्थों' और 'संकर-कायस्थों' की * पृथक्-पृथक्

* सर्वोच्च श्रीचित्रगुप्तवंशीआदि (ब्रह्म-कायस्थों) के पांडेय, मिश्र, तिवारी, दुबे, दीक्षित, देशपांडे इत्यादि आस्पदों—गुजराती ब्राह्मणों से अभिन्न शर्मणों या उपनामों के सद्भाव—ब्राह्मण-गौड़, कायस्थ-ब्राह्मण, कास्थ-ब्राह्मण, कायतिया-ब्राह्मण इत्यादि शाखाओं—ठक्कुर, महाठक्कुर, ध्रुव, पंचोली इत्यादि तथा पंडित, पंडिताधीश्वर, गुरु, धर्माचार्य, तथा महामहोपाध्याय तक की उपाधियों के विद्यमानता—वेदादि सभी शास्त्रों के अध्ययन—अनेक विषयों के संस्कृत-ग्रंथों के प्रणयन—तथा कहीं-कहीं अध्यापन, पौरोहित्य (या पुजारी होने) और दानग्रहण तक की वृत्तियों के अवलंबन—एवं ब्राह्म-विवाह, आशौचादि में ब्राह्मणोचित अवधि का परिपालन—"ब्रह्म-कायस्थ" नाम की सत्ता, विद्या-बुद्धि की विलक्षणता, राजमंत्रित्वादि तथा विद्या-संबंधी ब्राह्मणोचित व्यवसाय—'उपब्राह्मणों' में गिने जानेवाले 'कायस्थादि' भेद—राजतरंगिणी में 'शिवरथ'-नामक कायस्थ के "द्विज" (अर्थात्) ब्राह्मण-कायस्थ, और 'सहेल'-नामक कायस्थ के 'पार्षद' (अर्थात् ब्राह्मणसभासद्), तथा गौरक (सदाचार मंत्री), इत्यादि कायस्थों के ब्राह्मणों से जाति-संबंध होने—याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा-टीका में दिए हुए 'कायस्थ' पर्याय 'गणक' और 'लेखक' के वीरमित्रोदय में 'द्विजाति' माने जाने—इंडियन ऐंटीक्वेरी १८७३ (पृ० ९९) तथा शेरिंग की पुस्तक में मूल पुरुष—चित्रगुप्त देव के 'ब्राह्मण' माने जाने—आर्कियालाजीकल सर्वे १८९७ भाग १६ के शब्दों में 'कायस्थ' एक उपजाति 'ब्राह्मणों' की ही मानी जाने—और स्टाइन साहब-जैसे ऐतिहासिकों (राजतरं० भूमिका पृ० १९) तथा महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर-हीराचंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता सिद्ध होती है, तब अत्यंत विभिन्न प्रकारों की सभी कायस्थ-जातियों को एक ही लाठी से हाँकनेवाले ऐसे संकुचित तथा असंगत लेखों का मूल्य अपने ही गौरव को घटाने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

(३) पृ० २२५-२२६,३१७ आदि पर 'कायस्थ' के लिये 'कायथ' ऐसा अपशब्द प्रयुक्त हुआ है, जो केवल आइने-अकबरी आदि फ़ारसी-पुस्तकों में भले ही यावनी-भाषा के अनुकूल पड़ता हो, परंतु शुद्ध हिंदी में तो अत्यंत अप्रचलित होने के कारण अवश्य खटकता है, अर्थात् ग्राम्य (Slong) होने से दूषित है।

(४) पृ० २९६ पर 'गोंडः'-शब्द के नीचे 'नर्मदा' के लिये 'नर्वदा'-ऐसा अशुद्ध प्रयोग किया गया है।

(५) पृ० ३१७ पर 'चित्र—गुप्तः'-शब्द के अर्थ में 'पेशकार' लिखना अप्रामाणिक है। उसके स्थान में सर्व-पुराणादि ग्रंथ-सम्मत 'मंत्री' शब्द होना चाहिए। अनेक पुराणों में तो ये देव स्पष्ट हो 'धर्मराज' से अभिन्न भी माने गए हैं। तब उनको 'पेशकार' बतलाना सनातनधर्म का ही उपहास करना है।

(६) पृ० ३३८ पर 'जीवतं' (न०) का शुद्ध रूप 'जीवितं' (न०) होना चाहिए।

(७) पृ० ३८४ पर 'दुस्-कृति' के अर्थ में 'असद्-कर्म' की संधि अशुद्ध है। 'असत्कर्म' होना चाहिए।

(८) पृ० ७४५ पर 'वशः' (चकलाख़ाना)-शब्द का साधुत्व संदिग्ध है, और इसका आधार कदाचित् 'वेशः' ही है, जो मात्रा उड़ जाने से ऐसा हो गया है। यह शब्द यदि किसी प्रामाणिक आधार पर अवलंबित नहीं है, तो इसे कोष से उड़ा ही देना चाहिए।

(९) पृ० ८११ पर 'वौद्ध' कोई वकारादि शब्द न होना चाहिए। अशुद्ध शब्दों को 'संस्कृत' मानना अनुचित है।

(१०) परिशिष्ट २, पृ० ३२ पर 'तत्रि' के नीचे 'कुटुंब' असंगत है; 'तंत्र' होना चाहिए।

(११) परिशिष्ट ४, पृ० ८८ पर 'गौडपादाचार्य' आदि-शंकराचार्य के 'गुरु' नहीं, किंतु 'परमगुरु' (दादागुरु) होने चाहिए। इनको कारिका 'आर्य-वृत्तों' (?) (आर्याजाति) में नहीं, किंतु 'अनुष्टुब्-वृत्तों' में है।

(१२) परि० ४, पृ० १२७ पर शंकरस्वामी को, जो वास्तव में वर्तमान दंडी स्वामियों और दशनामी संन्यासियों के परम स्वामी और जगद्-गुरु थे, और जिनको आज समस्त संसार 'अद्वैत' वेदांत का एकमात्र 'आचार्य' और सर्वस्व तथा जगत् का या कम-से-कम भारतवर्ष का सबसे बड़ा दार्शनिक मान चुका है, 'आचार्य' तक न लिखकर केवल "एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी 'पंडित'" कहना सत्य का ख़ून और भारतीय गौरव का अपमान करना है। इनके रचित ग्रंथों में से केवल 'सूत्रभाष्य' और 'गीताभाष्य' का ही स्पष्ट उल्लेख करके और प्रस्थानत्रय के सर्वप्रधान अंग 'उपनिषदों' के भाष्यों का स्पष्ट (पृथक्) नाम ग्रहण न करके 'आदि' शब्द से सूचित उसी कोटि में डालना, जिसमें उनके 'उपदेश-साहस्री' आदिक प्रकरण ग्रंथ तथा स्तोत्रादि गिने जाते हैं, कदाचित् इसीलिये 'नीति-संगत' समझा गया हो कि श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के संबंध में 'उपनिषद्-भाष्यों' पर प्रायः मौन ही अवलंबन करना पड़ता है—विशेषतः जब भगवद्रामानुज के साथ उनके मुख्य ग्रंथ गिनाए हैं,

---

श्रीभा-नेमे विद्वानों की सम्मति से सिद्ध है कि बहुत-से कायस्थ शुद्ध 'ब्राह्मण-वर्ण' से विनिर्गत होकर अब तक स्थित हैं।

स्कंदपुराण के रेणुकामाहात्म्य के नाम से प्रसिद्ध 'परशुराम-चंद्रसेन'-आख्यान—सह्याद्रिखंड अ० २७, २८, ३८ में सूर्य-वंशी राजा अश्वपति की संतति में पाठारीय प्रभुओं (कायस्थों) की उत्पत्ति—बड़ौदा से प्रकाशित "उदयसुंदरी-कथा" में वलभी के क्षत्रिय राजा शीलादित्य के भ्राता कला-दित्य से 'वालभ' कायस्थों की उत्पत्ति—प्राचीन इतिहास में कुछ कायस्थ-राजाओं के होने—इत्यादि प्रमाणों से कुछ शुद्ध क्षत्रिय-वर्ण के कायस्थों की पृथक् सत्ता सिद्ध होती है।

पूना-गज़ेटियर के अनुसार 'मुदलियार' और 'पिल्ले' कायस्थ वैश्य-वर्ण हैं, जो अन्य कायस्थों से पृथक् हैं।

अनेक पुस्तकों में संकर-कायस्थों का भी वर्णन है, जिनसे ऊपरवाले शुद्ध 'द्विज' कायस्थों का कोई मेल नहीं है।

भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व अ०२३, श्लो० ९९ (छापा बंबई) में, किसी काल में, कायस्थों के अंतर्गत चारों वर्णों का स्पष्ट वर्णन है।

माधुरी की किसी आगामी संख्या में एतद्विषयक सप्रमाण और सोपपत्तिक विशद लेख भी पाठकों की भेंट किया जायगा।— समालोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब शंकर भगवान् के सब मुख्य ग्रंथों तक के नाम न देना सर्वथा अन्याय है। फिर क्या श्रीमदाचार्यचरणों के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री का ऐसा टोटा पड़ गया था, जिसके कारण सूर्य-सदृश श्रीशंकर या श्रीरामानुज से कई गुना लेख दीप-समान 'वेदांत-देशिक' की प्रशंसा में लिखा गया? पुनः सर्वतंत्र-स्वतंत्र आचार्य श्रीवाचस्पति मिश्र-जैसे महाविद्वान् का कुछ भी वर्णन, इस परिशिष्ट या कोष में, न मिलना एक बड़ा शोचनीय अभाव है।

अस्तु। फिर भी ये त्रुटियाँ ऐसी नहीं हैं, जो इस कोष की साधारण उपयोगिता में विशेष बाधक हों। फलतः यह सस्ता कोष न केवल महार्घ पुस्तकों के समान पुस्तकालयों की ही शोभा को बढ़ावेगा; अपितु संस्कृत या हिंदी के प्रेमियों, जिज्ञासुओं, साहित्य-सेवियों तथा विद्यार्थियों के विशेष काम का होने से आपटे से कहीं अधिक उनके वैयक्तिक व्यवहार में आवेगा, और श्रीचतुर्वेदीजी सहस्रों पुरुषों के धन्यवाद के पात्र होंगे—यह हमारा विश्वास है।

श्रीरघुवर-मिट्ठूलाल शास्त्री

× × ×

भावना—लेखक, श्री० आनंदभिक्षु सरस्वती; प्रकाशक, भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन; मूल्य ॥।=); पृष्ठ-संख्या २२४।

यह छोटे-छोटे निबंधों की पुस्तक है। कुल ४० विषय हैं—जैसे गर्व, ज्ञान, वैराग्य, अविद्या, साधना, जीवन, बलिदान, अनुभव, सेवा, श्रद्धा आदि। पर इन्हें केवल निबंध समझना भूल होगी। ये एक विद्वान्, अनुभवी, विचारशील संन्यासी के मनोद्गार हैं—रत्न के समान जगमगाते हुए और स्फटिक के समान उज्ज्वल। शैली इतनी मनोहर, और आकर्षक है कि 'निषेध'-जैसा शुष्क और पथरीला मैदान हरा-भरा, गुलज़ार बन गया है, मानो लेखक की आनंदमयी आत्मा एक-एक पंक्ति में प्रतिबिंबित हो रही हो। भाषा इतनी सरल और लोचदार है—विषय-प्रवेश का ढंग इतना अनोखा, इतना सजीव कि एक के बाद एक निबंध पढ़ते जाइए, तृप्ति नहीं होती। हिंदी में ऐसे निबंध शायद बहुत कम लिखे गए हों, जिनमें विषय और विचार की गंभीरता के साथ इतना प्रसाद, इतना विनोद, इतनी सरसता भर दी गई हो।

प्रेमचंद

× × ×

२. इतिहास और पुरातत्व

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रा० बहादुर, महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा; प्रकाशक, हिंदुस्थानी एकेडेमी, संयुक्तप्रदेश, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २१३; मूल्य नहीं लिखा।

हिंदुस्थानी एकेडेमी ने प्रतिवर्ष विद्वानों से महत्त्व-पूर्ण विषयों पर व्याख्यान दिलाने का निश्चय किया है। गत वर्ष माननीय पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ने ऊपर लिखे हुए विषय पर तीन व्याख्यान दिए थे। यह उन्हीं व्याख्यानों का पुस्तक-रूप में संग्रह है। पं० ओझा अपने विषय के कितने बड़े विद्वान् हैं, यह कहने की ज़रूरत नहीं। आपने राजपूत-जाति के विषय में जितनी खोज की है, कदाचित् और किसी देशी या विदेशी विद्वान् ने नहीं की। इस ग्रंथ में लेखक ने विषय को तीन भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में बौद्ध, जैन, हिंदू-संप्रदायों के धार्मिक विकास और ह्रास तथा सहन, रीति-रिवाज आदि का वर्णन है। दूसरे भाग में साहित्य, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिल्प, संगीत, चित्रकला आदि की तत्कालीन स्थिति पर विचार किया गया है। तीसरे भाग में उस समय की शासन-पद्धति, पंचायत, सैनिक व्यवस्था आदि पर प्रकाश डाला गया है। ओझाजी ने विषय का गंभीर अध्ययन किया है, और जितनी सामग्री इस वक्त तक मिल सकी है, उसका उपयोग किया है। शिला-लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और मुद्राओं से भी काफ़ी सहायता ली गई है। इतने महत्त्व-पूर्ण विषय पर २०० पृष्ठों की पुस्तक में बहुत ही संक्षिप्त रूप से विवेचना की जा सकती है, पर लेखक ने कोई ज्ञातव्य बात छोड़ी नहीं। जो लोग थोड़े समय में मध्यकालीन भारत से परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये इससे उत्तम पुस्तक शायद ही मिले; क्योंकि अब तक जितनी खोज हो सकी है, वह प्रायः सब व्याख्यानों में समाविष्ट हो गई है। पुस्तक बहुत मोटे काग़ज़ पर छपी है; छपाई अत्यंत सुंदर और जिल्द मज़बूत है। आकार रायल। कई हाफ़टोन चित्र भी हैं।

एकेडेमी ने विद्वानों को इस भाँति सम्मानित और पुरस्कृत करके प्रांत की दोनों भाषाओं के साथ बड़ा उपकार किया है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. नाटक

अर्जुनपुत्र—प्रणेता, पं० कृष्णकुमार मुखोपाध्याय; प्रकाशक, पं० श्रीलाल उपाध्याय; मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या ८६

इस नाटक का कथानक महाभारत से लिया गया है। कथा अत्यंत रोचक और हृदयस्पर्शी है। हमारे विचार से यदि इसकी भाषा सरल और मुहावरेदार हो जाय, तो यह सफलता से खेला जा सकता है। चरित्रों के चित्रण में ज़रा और रंग होना चाहिए था। अभी तो वे छायाचित्र-से लगते हैं, आँखों के सामने खड़े नहीं होते। लेखक ने भावों का संघर्ष ख़ूब दिखाया है।

प्रेमचंद

× × ×

सुदर्शन नाटक—लेखक और प्रकाशक, पं० मूलचंद जैन 'वत्सल', संचालक, साहित्य-रत्नालय, बिजनौर; पृष्ठ-संख्या ११२; मूल्य ॥।)

नाटक का उद्देश्य अच्छा है। भाषा कुछ कठिन है। स्त्री-पात्रों की संख्या अधिक है। कुछ कम होती तो खेलने वालों की कठिनाई कम हो जाती। तुकबंद गद्य की बहुलता है। अंक ९ हैं, जब कि आजकल ३ रक्खे जाते हैं। बाज़े-बाज़े दृश्य बहुत ही छोटे हैं। लेखक को चाहिए कि इसका अभिनय करावें, जिससे उन्हें इसकी त्रुटियाँ ज्ञात हो जायँ, और आगे नाटक लिखने में मदद मिले।

× × ×

स्वराज्य—प्रकाशक, ब्रजवासीलाल बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट हाईकोर्ट, दयालबाग़, आगरा; पृष्ठ-संख्या ११४; मूल्य ॥।)

यह सचित्र नाटक है। इसमें भारतवर्ष की वर्तमान दशा, स्वराज्य व स्वतंत्रता का वास्तविक स्वरूप और उनकी प्राप्ति के लिये सुगम उपाय, अत्यंत प्रभावशाली रूप में, उपस्थित किए गए हैं, ऐसा लेखक का कथन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नाटक का उद्देश्य अच्छा है, परंतु हमारी राय है कि रंगमंच पर खेलने में कठिनाई पड़ेगी।

× × ×

वासना-वैभव—लेखक, साहित्य-विशारद पं० बलदेव-प्रसाद मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, इत्यादि; प्रकाशक, पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र जनरल कंट्रेक्टर, राजनादगांव, सी० पी०; पृष्ठ-संख्या ६५; मूल्य ॥)

नाटक साधारणतः अच्छा है। छोटा है। दृश्य कुछ और बड़े हो सकते थे, जिससे सुंदरता और बढ़ सकती थी। विषय पौराणिक है—ययातिवाला-पर सामयिकता का भी समावेश किया गया है।

'न०'

× × ×

४. शिक्षा-विषयक

नवीन राज्य-शासन—लेखक, रामचंद्र संघी एम्० ए०, विशारद, भूतपूर्व हेडमास्टर, हिंदी-भाषा-संघ-स्कूल, नागपुर; प्रकाशक, नरबदा-बुकडिपो, जबलपुर; मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या १२८

अन्य प्रांतीय शिक्षाविभागों की तरह मध्यप्रांत में भी, इधर कुछ दिनों से, स्कूलों में राज्य-शासन की शिक्षा दी जाने लगी है। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये, यह पुस्तक आठवीं कक्षा के छात्रों के लिये, लिखी गई है। शिक्षा-विभाग की इतिहास-समिति ने जो नवीन-से-नवीन शिक्षा-क्रम, इस दिशा में, स्थिर किया है, उसी के अनुसार लेखक ने इसे लिखा है। लेखक बहुत समय तक हाईस्कूल में इतिहास के शिक्षक रहे हैं। इतिहास और राज्य-शासन का घनिष्ठ संबंध है। अतएव यह आशा करना कि पुस्तक विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त है, कदाचित् अनुचित न हो। इसके 'विषय-प्रवेश' अध्याय में शासन-व्यवस्थाओं की सूक्ष्म चर्चा करने के बाद ब्रिटिश-राज्य और भारत का संबंध बतलाकर फिर वर्तमान शासन-प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है। मूल भाग में स्थानीय, ज़िले की, प्रांतीय एवं देशी शासन-व्यवस्था का, अच्छे ढंग से, वर्णन किया गया है। परिशिष्ट में महारानी विक्टोरिया की घोषणा, १९१७ की भारत-मंत्री की घोषणा तथा १९१९ के सुधार-ऐक्ट का उद्देश्य बतलाकर उस उत्तरदायी शासन-विधान की ओर संकेत है, जिसकी ओर साम्राज्य-सरकार इस देश को ले जाना चाहती है। इस प्रकार उत्तरदायी शासन का एक क्रमबद्ध अप-टु-डेट इतिहास इसमें मिलता है। ऐसी अच्छी पुस्तक को भला कौन स्कूलों में न पढ़ना चाहेगा—ख़ासकर जब वह शिक्षा-विभाग की ही निर्द्धारित योजना के अनुसार लिखी गई है।

"कोई नहीं"

× × ×

५. ज्योतिष

ज्योतिश्चंद्रार्कः (पूर्व खंड)—रचयिता, पं० रुद्रदेव शर्मा, पं० गोपालदत्त ज्योतिर्विद्‌जी से प्राप्त; पं० खूबचंद शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा संशोधित; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ; जिल्द साधारण; आकार-प्रकार, छपाई, कागज अच्छा; मूल्य ३)

यह ग्रंथ अपूर्व है। आज तक ऐसा ग्रंथ नहीं प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ मुहूर्त-चिंतामणि से भी मिलता है। इस खंड में क़रीब दो सौ विषय ऐसे दिए हैं, जो हर समय के काम के हैं। कम पढ़ा भी उनसे काम ले सकता है। जैसे—संवत्सर-संज्ञा, बारह युग, उनके स्वामी, वर्षेश, मंत्री, मेघेशादि संवत् में कौन होगा, इत्यादि; नाक्षत्र-मास-लक्षण, दार्शमास-लक्षण, मास-भेद उसमें क्या होना चाहिए, अधिमास, क्षयमास-लक्षण, ब्रह्मादि के दिनों का मान इत्यादि; तिथि का ज्ञान तथा संज्ञा, तिथि-स्वामी, तिथियों की विशेष संज्ञा, नंदादि तिथियों में विशेष कार्य, हर तिथि में हर वस्तु का निषेध-ज्ञान, शुभ कर्म, निषिद्ध तिथि। ग्रहों के मित्र, सम, शत्रु का ज्ञान, ग्रहों के वर्ण, विद्यारंभ, क्षौर-कर्म में वारों का फल। वारप्रवृत्ति, कालहोरा, वारवेला, नक्षत्रस्वामी, ऊर्ध्व, पाताल, तिर्यक् मुख, नक्षत्र-ज्ञान, अमृतसिद्धियोग, करण और स्वामि, कर्तव्य कार्य, किस करण में क्या होना चाहिए। आदि

लग्न बनाने की विधि, शूल-दोष, कर्तरी-दोष, गंडांत-दोष, भद्रा-विचार इत्यादि स्पष्ट दिया है। विद्यारंभ-मुहूर्त, वस्त्राभूषणादि धारण-मुहूर्त, विपणि, हलप्रवहण, हल-चक्र, बीज बोने का मुहूर्त, मूलों में पैदा होनेवाले बच्चे का विचार भी दिया है। व्रतबंध विवाहादि का विचार, वर और कन्या के लक्षण, उसका परिहार स्पष्ट रूप से दिया गया है। इस प्रकार ऊपर लिखे हुए दो सौ विषय इसमें मौजूद हैं। इस पूर्व-खंड में पाँच अध्याय हैं। ग्रंथ संस्कृत-टीका में है, सरल है। जो महानुभाव ज्योतिष् में कुछ भी दावा रखते हों, वे अवश्य इसका अवलोकन करें।

ज्योतिषाचार्य लक्ष्मीकांत कन्याल

× × ×

६. विज्ञान

सूर्य-रश्मि-चिकित्सा—लेखक, वैद्य बाँकेलालजी गुप्त संपादक, धन्वंतरि; प्रकाशक, धन्वंतरि-कार्यालय, विजय-गढ़ अलीगढ़; मूल्य ।।।); सर्वाधिकार सुरक्षित।

प्रस्तुत पुस्तक के-लेखक वैद्य बाँकेलालजी गुप्त सुप्रसिद्ध आयुर्वेद-सेवी हैं। पुस्तक अच्छी है, उपयोगी है; पर अत्यंत संक्षिप्त है। यह द्वितीय संस्करण है, जिससे विदित है कि जनता की दृष्टि में भी यह आदरणीय हुई है। तृतीय संस्करण में निम्न-लिखित विषयों का विशेष स्पष्टीकरण तथा परिवर्तन कर दिया जाय—

१. वेदोक्त रश्मि-चिकित्सा का सप्रमाण अवतरण-क्रम

२. धूप में जंतु-नाशक शक्ति के स्थान में दोषाणु-नाशक होता, तो अच्छा होता। इसी प्रकार पृष्ठ १७ पर तुलसी में जीवाणु-नाशक शक्ति मानी जाती है, इस स्थान पर 'दोषाणु'-नाशक शक्ति कर दिया जाय। ऐसे ही और भी दो-चार बातें दी जा सकती हैं। हमारे मत से विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। एक साधारण मनुष्य कुछ रंगों की न्यूनता के लक्षणों को देखकर अन्य रंगों की न्यूनता से होनेवाले विकारों को नहीं समझ सकता।

चिदानंद

× × ×

७. जीवन-चरित्र

महाराणा प्रतापसिंह—लेखक, महामहोपाध्याय, राय बहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा, सुपरिंटेंडेंट, राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर; पृष्ठ-संख्या ५३; मूल्य ॥-)

लेखक की भूमिका से ज्ञात होता है कि उक्त पुस्तक राजपूताने के इतिहास के तृतीय भाग में प्रकाशित होने वाले इतिहास की ही कापी है; परंतु कुछ मित्रों के आग्रह से इसकी एक हज़ार प्रति अधिक छपवाकर साधारण के लिये महाराणा प्रताप का यह चरित्र सुलभ कर दिया गया है।

पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की है। राजा श्यामलदानजी के लिखे उदयपुर के बृहद् इतिहास वीर-विनोद और रामनारायणजी दूधड़ के लिखे रत्नाकर के बाद जितनी इस विषय की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्व की नहीं कही जा सकतीं। परंतु यह पुस्तक पूज्यपाद ओझाजी की लेखनी से लिखी होने के कारण वास्तव में बड़े महत्त्व की है, और इसकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। आशा है, हिंदी-संसार में इसका समुचित आदर होगा।

आगे उक्त इतिहास की इधर-उधर की कुछ बातों पर विचार करते हैं—

उक्त इतिहास के पृ० ३ में लिखा है—

इधर सुरताण ने यह देखकर कि बीजा जगमाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग हो गया है, देवड़ा समरा को दताणी गाँव में जाकर जगमाल और रायसिंह पर हमला करने की सलाह दी। सुरताण ने, वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ को, जगमाल पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में जगमाल, राठोड़ रायसिंह तथा कोलीसिंह, तीनों मारे गए और सुरताण की विजय हुई।"

यहाँ पर पहले वाक्य में सुरताण का समरा को आक्रमण करने की सलाह देना और दूसरे वाक्य में सुरताण का स्वयं आक्रमण करना लिखा होने से पहला वाक्य निरर्थक-सा हो जाता है। हाँ, यदि इस वाक्य में सुरताण के स्थान में समरा और समरा के स्थान में सुरताण रख दिया जाय, तो उक्त वाक्य विशेष सार्थक हो जायगा। अर्थात् समरा ने सुरताण को आक्रमण की सलाह दी, और उसी के अनुसार उसने आक्रमण कर दिया।

अबुलफ़ज़ल ने अपने अकबरनामे में यह कथा इस प्रकार लिखी[1] है—

ऐतमादख़ाँ रायसिंह, बीजा देवड़ा और जालोरवालों को जगमाल की मदद पर छोड़ गया था। उसके जाने के पीछे देवड़ा राव वापस आया। बीजा देवड़ा और जालोरवाले उससे लड़ने को गए। पर सुरतान दूसरे रास्ते से जगमाल पर गया। जगमाल और रायसिंह सोते हुए से जगकर २८४ आदमियों के साथ लड़कर अपनी बहादुरी और जवाँमर्दी दिखा गए।

मारवाड़ के इतिहास में भी रायसिंह का नैश आक्रमण में ही मारा जाना लिखा है।

परंतु श्रद्धेय ओझाजी ने तो उक्त इतिहास के पृष्ठ ५ पर सारे ही फ़ारसी इतिहास-लेखकों को—और ख़ासकर अबुलफ़ज़ल को—खुशामदी क़रार दे दिया है। आपने लिखा है—

"परंतु अबुलफ़ज़ल ने, जो मुसलमान-इतिहास-लेखकों में सबसे बढ़कर खुशामदी था।....."

इसी प्रकार पृ० ४१ पर भी उसके लिये इस उपाधि की पुनरावृत्ति की गई है।

हमारी सम्मति में वयोवृद्ध विद्वानों की लेखनी से नाहक़ ही दूसरों के लिये ऐसे शब्दों का लिखा जाना शोभा नहीं देता।

उक्त इतिहास के पृ० ७ में, इकबालनामे जहाँगीरी का अवतरण देकर, आपने लिखा है—"उपर्युक्त कथन ठीक है; क्योंकि आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था, पृथ्वीराज राणा साँगा के सैन्य में था, और भारमल का पुत्र भगवानदास भी पहले महाराणा उदयसिंह की सेवा में रहा था। जब से भारमल ने अकबर की सेवा स्वीकार की, तब से आंबेरवालों ने मेवाड़ की अधीनता छोड़ दी।"

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में लिखा है—

आम्रदाद्रदनेन दारुणः।

अर्थात्—आंबेर को नष्ट करने से भयंकर।

इसी के आधार पर महाराणा कुंभा का आंबेर-राज्य को अपने अधीन करना लिखा गया है। परंतु केवल इसी के आधार पर, इस बात पर विश्वास करने को जी हिचकता है; क्योंकि अक्सर प्रशस्ति-लेखकों का अपने राजा की प्रशंसा में अतिशयोक्ति कर गुज़रना अपराध नहीं गिना जाता, जैसा कि राणपुर के लेख में इसी महाराणा कुंभकर्ण का दिल्ली-मंडल पर आक्रमण कर, वहाँ के बादशाह से छत्र भेंट लेने का उल्लेख होने से सिद्ध होता है। रही राणा साँगा की सेना में पृथ्वीराज के होने की बात, सो बाबर के साथ के युद्ध में तो मारवाड़-नरेश गाँगा ने भी साँगा को सहायता दी थी। अतः इससे इन नरेशों का मेवाड़ के अधीन होना नहीं सिद्ध होता।

इसी प्रकार भारमल का अपने पुत्र भगवानदास को महाराणा उदयसिंह की सेवा में भेजना भी महाराणा अमरसिंह के समय के बने अमरकाव्य की प्रति से ही लिया गया है फिर भी इतना संभव हो सकता है कि जिस समय आसकरनजी मुसलमानों की सहायता से आंबेर-राज्य पर अधिकार करने की चेष्टा में थे, उस समय भारमलजी ने आक्रांत होने के भय से अपने पुत्र को आंबेर से दूर रखने के इरादे से ही मेवाड़ भेज दिया हो। यदि वास्तव में आंबेरवाले मेवाड़वालों के अधीन होते, तो आसकरन और भारमल के मामले में महाराणा के हस्तक्षेप करने का उल्लेख अवश्य मिलता। परंतु इस विषय को हम जयपुर-राज्य के ऐतिहासिकों के लिये ही छोड़ देते हैं।

पृ० १८ पर के फ़ुटनोट में राजप्रशस्ति-महाकाव्य के आधार पर मानसिंह की आज्ञा से शक्तिसिंह का महाराणा प्रताप के पीछे जाने का उल्लेख कर लिखा है कि फ़ारसी-तवारीख़ों में इसका ज़िक्र नहीं है। अतः हम १०० वर्ष

१. अकबरनामा दफ़्तर ३, पृ० ४१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद बने इस काव्य को प्रमाण नहीं मानते। परंतु पृ० ५ पर फ़ारसी-तवारीख़ों के विरुद्ध भी इसको प्रमाण-रूप से उद्धृत कर अबुलफ़ज़ल को सबसे बढ़कर ख़ुशामदी होने की उपाधि दी गई है।

पृ० २१ में हल्दीघाटी के युद्ध के नतीजे पर सम्मति देते हुए लिखा है--

"इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि इस युद्ध में प्रतापसिंह की ही प्रबलता रही थी।"

हमारी तुच्छ सम्मति में यह कुछ अतिशयोक्ति समझी जा सकती है। वास्तव में महाराणा की वीरता के साथ-ही-साथ अज्ञात पहाड़ी स्थान के कारण ही मुग़ल पूर्ण सफल न हो सके थे।

यही बात आपने भी पृ० २१ के फ़ुटनोट में, जो पृ० २२ पर समाप्त हुआ है, स्वीकार की है।

पृ० २४ में राजप्रशस्ति के आधार पर शाही सेनापति मिर्ज़ाख़ाँ की स्त्रियों के साथ किए गए महाराणा के जिस बर्ताव का उल्लेख किया गया है, उससे भारतीय मुसलमानों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

पृ० २६ पर महाराणा प्रताप और बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के छोटे भाई पृथ्वीराज के बीच के पत्र-व्यवहार पर विचार किया गया है। परंतु इसी प्रकार ख़ानख़ाना और महाराणा प्रताप का पत्र-व्यवहार भी प्रसिद्ध है। जनश्रुति है कि बादशाही सेना से लौटकर एक बार महाराणा ने ख़ानख़ाना को लिखा था—

तुँवरां सूं दिल्ली गई राठोडां कनवज्ज ;
राण पर्यंपे खानने वो दिन मोमे अज्ज।

इस पर उसने उत्तर लिख भेजा—

धर रहसा रहसी धरा खिस जासी खुरसाण ;
अमर विश्वंभर ऊपरे रक्खे नहचो राण।

पृ० ४१ से ४३ तक भामाशाह के क़िस्से पर विचार किया गया है। परंतु उक्त इतिहास के पृ० २७ पर भामाशाह द्वारा मालवा लूटकर २५ लाख रुपए और २०,००० अशर्फ़ियों का महाराणा की भेंट करना लिखा है। संभव है यही वह घटना हो, जिससे महाराणा प्रताप को धन और उसके मंत्री भामाशाह को कीर्ति मिली थी।

पुस्तक में एक रंगीन और तीन सादे चित्र भी दिए गए हैं।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

पीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।
इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।
नक़लों से सावधान रहिए

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-ख़० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बालकों की विचार-शक्ति का विकास करना

शिक्षा का वास्तविक अभिप्राय क्या है ? क्या केवल पुस्तकें पढ़ लेना ही शिक्षा कहला सकती है ? नहीं, कदापि नहीं ! शिक्षा का अर्थ है मनुष्य में विद्यमान प्रत्येक शक्ति का विकास करके उसको अधिक बुद्धिमान् तथा योग्य बनाना; क्योंकि बुद्धिमत्ता मनुष्य का भूषण है। संसार की प्रत्येक वस्तु इसके द्वारा सुलभ है। संपत्ति तो इसकी सहचरी है। ईश्वर ने प्रायः प्रत्येक मनुष्य को पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ दी हैं। फिर भी हम देखते हैं कि कुछ मनुष्य किसी विशेष विषय में बहुत चतुर होते हैं, और कुछ उसी विषय में निपट अजान। यदि किसी की अवलोकन-शक्ति बहुत तीव्र होती है, तो किसी की बहुत कम। कुछ हस्त-कलाओं और चित्रकारी में निपुण होते हैं, और कुछ एक सीधी रेखा भी नहीं खींच सकते। इसका यही कारण है कि यद्यपि बालक में जन्म के समय सब शक्तियों के अंकुर होते हैं, तथापि जिनका उपयोग नहीं किया जाता, उनका नाश हो जाता है, और जिनका उपयोग किया जाता है, उनका विकास होता है। इसलिये प्रत्येक माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वह बालक की प्रत्येक शक्ति का विकास करने में सहायक हों; क्योंकि इसी समय उसकी ग्रहण-शक्ति बहुत तीव्र होती है, और ज़रा-सा सहारा पाते ही उसका विकास भली भाँति हो सकता है। अतः हमें अपने बच्चों को प्राकृतिक ज्ञान की तथा अन्य प्रकार की शिक्षा आरंभ से ही उनकी उम्र तथा योग्यता के अनुसार देनी चाहिए।

आरंभ में बालक को केवल सोने, दूध पीने आदि का ही ज्ञान होता है; फिर धीरे-धीरे दूसरे-तीसरे वर्ष की उम्र तक नित्य की व्यावहारिक वस्तुओं का ज्ञान होता जाता है। चौथे और पाँचवें वर्ष में बालक का ज्ञान अधिक विस्तृत हो जाता है। इस समय वह वस्तुओं के संबंध में अधिक जानकारी पैदा करता है, और प्रत्येक वस्तु के नाम तथा उसके उपयोग आदि के संबंध में प्रश्न करता है। इस समय बच्चे की ज्ञान-पिपासा को अधिक उत्साहित करना चाहिए; उसे प्रत्येक वस्तु दिखानी और उसका नाम तथा उपयोग सरल रीति से बताना चाहिए।

बच्चों को तीसरे-चौथे वर्ष से आकाश में सूर्य, चंद्रमा, तारे आदि को पहचानना सिखाना चाहिए। चौथे-पाँचवें वर्ष में उन्हें दिखाना चाहिए कि किस प्रकार चंद्रमा कभी पूरा, कभी आधा और फिर कभी बिलकुल नहीं दिखलाई देता, तथा सूर्य कब निकलता और कब छिप जाता है। छठे वर्ष में बालक को, सर्दी के दिनों में दिन छोटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं और रातें बड़ी तथा गर्मी में दिन बड़े तथा रातें छोटी होती हैं, इत्यादि बातों का ज्ञान कराना चाहिए।

बच्चों को समय का भी ज्ञान कराना चाहिए, जैसे दिन-रात तथा प्रातःकाल किस समय को कहते हैं। रात्रि कब होती है और मध्याह्न कब होता है, रात्रि के पश्चात् क्या होता है और प्रातःकाल के पश्चात् क्या समय होता है, दिन में उन्हें कितने बार और किस-किस समय भोजन करना, सोना और खेलना चाहिए, सप्ताह में कितने दिन होते हैं, और उन दिनों के क्रमशः क्या नाम हैं, महीनों के नाम तथा किन महीनों में कौन-सा ऋतु होती है, और किस ऋतु में क्या-क्या चीज़ें तथा त्योहार होते हैं, इत्यादि बातें बच्चों को बातचीत करते समय सहज ही बतलाई जा सकती हैं। बहुत-से लोग कहेंगे कि ये बातें बड़े होकर बच्चे स्वयं ही सीख लेंगे, इसमें हम क्यों सिर खपावें; परंतु इससे दो लाभ हैं, पहला तो यह कि बच्चे की स्मरण-शक्ति बढ़ती है। हमने प्रायः देखा है कि बहुत-से बड़े लोगों को भी यह ख़याल नहीं रहता कि अमुक त्योहार किस महीने में होता है। दूसरे, उन्हें इससे बड़ी प्रसन्नता होगी कि वे भी बड़ों की भाँति ये सब बातें जानते हैं।

बच्चों की स्मरण-शक्ति को भी उत्साहित करना चाहिए। आरंभ में जब बच्चा भली भाँति बोलने लगे, तो उससे ऐसे प्रश्न करे—जैसे कल काहे की दाल बनी थी? अमुक वस्तु तुम्हें किसने दी थी? इस फल का नाम क्या है? एतवार कब होगा? इत्यादि। बच्चोंको उनकी वय के अनुसार कुछ दोहे-श्लोक आदि भी कंठस्थ कराने चाहिए।

बालकों में संगीत और कविता के प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। उनको अच्छे-अच्छे आसान भजन, गीत और कविता सुनाओ। जिस लय से तुम गाओगे, उसी से बच्चा भी गाना सीखेगा। धीरे-धीरे उसे स्वयं भी गाना सिखाओ। इससे उसे लय-स्वर आदि का भी ज्ञान हो जायगा।

हाथ का काम अर्थात् चित्रकारी, रँगसाज़ी, मिट्टी और काग़ज़ के खिलौने तथा अन्य वस्तुएँ बनाना भी सिखाना चाहिए। मानस-शास्त्र-वेत्ताओं का विचार है कि किसी वस्तु को देखे विना उसका ज्ञान नहीं होता। इसी कारण बालकों से हाथ का काम लेने की प्रथा इतनी लोकप्रिय होती जा रही है। इस प्रकार के कार्य कराने से केवल कला की ही शिक्षा नहीं मिलती है, बल्कि यह तो बालक में ठीक प्रकार से कार्य करने, धैर्य, उद्योग-प्रियता तथा कुशलता सिखाने का सबसे बड़ा क्षेत्र है। इससे हाथ तथा नेत्र, दोनों को बड़ी अच्छी शिक्षा मिलती है, और सुंदरता को पहचानने का ज्ञान बढ़ता है। चित्रकला के ज्ञान और काग़ज़ पर भिन्न-भिन्न वस्तुओं की तस्वीर खींचने से हममें वस्तुओं के देखने, पहचानने और उनकी ठीक-ठीक शकल उतारने की शक्ति बढ़ती है।

बच्चों को स्वयं अपने हाथ से कार्य करने के लिए उत्तेजित करना चाहिए। अवस्था के अनुसार जो कार्य वे स्वयं कर सकें, उसे उन्हीं से कराना चाहिए, जैसे बहुत बालक बहुत बड़े हो जाने पर भी स्वयं कपड़े पहनना, बटन बंद करना, जूता पहनना आदि कार्य नहीं कर सकते, और इसके लिये दूसरे का आश्रय तका करते हैं। इसका कारण यही है कि हम उनको स्वयं कार्य करना नहीं सिखाते। बच्चों को आरंभ हो से यह सिखाना चाहिए कि नौकर-चाकर शान के लिये नहीं, बल्कि ज़रूरत अथवा समय बचाकर दूसरे कार्यों में लगाने के लिये हैं, और हाथ से कार्य करना कोई बुरी बात नहीं है। शायद इसीलिये बहुत पूर्वकाल में हमारे यहाँ यह प्रथा थी कि बहुत बड़े-बड़े लोग, यहाँ तक कि राजा महाराजे भी, अपने लड़कों को गुरु के यहाँ भेज देते थे, जहाँ वह पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त गुरु का प्रत्येक कार्य, ऊँच तथा नीच का विचार किए विना, करते थे। अमेरिका तथा इँगलैंड आदि उन्नतिशील देशों में भी बच्चों को प्रत्येक कार्य स्वयं करने की शिक्षा दी जाती है। पर आजकल की हमारी शिक्षा और सभ्यता का भारी दोष यह है कि हमें हाथ से कार्य करना नहीं सिखाया जाता, और बहुधा ऐसा कार्य नीच श्रेणी के लोगों के करने योग्य समझा जाता है। यदि किसी दिन नौकर न आवे, तो हमें भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बाबू बेचारे इसी सोच में पड़ जाते हैं कि बाज़ार से तरकारी लाते समय यदि किसी ने देख लिया, तो बड़े शर्म की बात होगी। बालकों को घर का प्रत्येक कार्य—जैसे कमरे, किताबें, अलमारी आदि को झाड़-पोछकर साफ़ रखना, प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखना, आवश्यक होने पर कपड़ों को धो लेना, जूता साफ़ करना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़ा सीना आदि—सिखाना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर भी स्वयं कार्य न करके दूसरों की इंतज़ार में बैठे रहना बहुत ही निंदनीय है। तीसरे-चौथे वर्ष से बालक को मितव्ययिता तथा वस्तुओं को होशियारी से काम में लाना सिखाना चाहिए—जैसे अपने बाज़ार जाने और घर में पहनने के वस्त्रों को अलग रखना, वस्त्रों को होशियारी से पहनना। ऐसा न हो कि वस्त्रों में कहीं धब्बे लग जायँ, अथवा बालक ज़मीन में लटकाकर उन्हें ख़राब कर दें—फाड़ दें। घर की अन्य वस्तुओं तथा अपने खिलौनों आदि को भी सावधानी से व्यवहार में लावें, और किसी वस्तु को ख़राब न करें।

बालकों को धीरे-धीरे यह भी सिखाना चाहिए कि उन्हें किस-किस की आज्ञा का पालन करना, किसका आदर करना और किस पर प्रेम करना चाहिए। उन्हें हँसी में अथवा गंभीरता-पूर्वक कही गई बात में भी अंतर कर सकने का ज्ञान तथा उसी प्रकार का उत्तर दे सकना सिखाना चाहिए; और जब कोई कुछ प्रश्न करे, तो उसका चुपचाप सभ्यता-पूर्वक उत्तर दे, और दूसरे की बातों को सुनें। उनसे हर समय मज़ाक़ में अथवा गंभीरता-पूर्वक ही नहीं बोलना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से बालक गड़बड़ा जाता है, और फिर वह मज़ाक़ का अंतर नहीं समझ पाता। मैंने कितने ही बार देखा है कि जब हम बालक से ज़ोर से बोलते या उसे डाँटते हैं, तो वह पहले हमारे मुँह की ओर देखता है, और यह समझना चाहता है कि हम वास्तव में उसे डाँट रहे हैं या ऐसे ही हँस रहे हैं। यदि वह हमारे मुँह पर क्रोध का भाव देखता है, तो रोता है; नहीं तो चुप हो जाता है, या स्वयं भी हँस देता है। इस प्रकार यद्यपि बालक में हँसी और क्रोध को पहचानने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, तथापि हम लोग उसको असमय डाँटकर अथवा मज़ाक़ करके इस शक्ति का नाश कर देते हैं, और इसीलिये बहुत-से बड़े लोगों में भी इस प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव देखा गया है। वे हँसी में कही गई बात का भी बहुत जल्दी बुरा मान जाते हैं, और हँसी का जवाब हँसी में ही नहीं दे पाते। अतः बालक की इस शक्ति का विकास करना चाहिए। संक्षेप में माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे बालक के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास में सहायक हों। बालक को प्रत्येक बात में पूर्ण बनाने की ज़िम्मेदारी माता-पिता पर ही है। बहुत-से बालक बड़े अच्छे खिलाड़ी होते हैं; पर लिखने-पढ़ने में चौपट। और, यदि पढ़ने-लिखने में चतुर हुए, तो उन्हें बातचीत करने की तमीज़ ही नहीं। बालकों को ऐसा बनाना चाहिए कि वे नित्य की हर बात में चतुर हों, और उन्हें एक ही बात की लगन न हो।

अंत में हम एक और बात लिखकर इस लेख को समाप्त करती हैं, वह यह है कि यद्यपि माता-पिता का बालक की शिक्षा में विशेष प्रभाव होता है, तथापि समवयस्क बालक एक दूसरे को अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं। जब समवयस्क और प्रायः एक-सी शिक्षा, ख़ानदान तथा आदतों के बालक साथ खेलते हैं, तो इससे वे अधिक होशियार होते हैं; क्योंकि बड़ों के सामने तो वे इतनी स्वतंत्रता का अनुभव नहीं करते, परंतु आपस में वे सबको बराबर समझते हैं। इसलिये प्रत्येक वस्तु के विषय में, आपस में। प्रश्नोत्तर करते और ज्ञानोपार्जन करने की चेष्टा करते हैं।

इस प्रकार इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता कि बालक एक दूसरे को अधिक चतुर बना सकते हैं। अतः उन्हें नित्य एक दूसरे से मिलने-जुलने तथा खेलने देना चाहिए। परंतु इस बात का ध्यान रहे कि दुष्ट तथा बुरे बालकों के साथ बच्चे न खेलें; क्योंकि इससे लाभ के स्थान में हानि होने की ही अधिक संभावना है।

दुर्गादेवी

× × ×

२. अपनी सीख

(१)

एक आम्र-कानन के तरु की थी मैं हरियाली—डाली,
नव-पल्लव आभूषण पहने थी अनुपम शोभाशाली;
मंद पवन के झोंकों से नित झूम-झूम इठलाती थी,
झुला-झुलाकर खग-वृंदों को मैं पुलकित हो जाती थी।

(२)

नव-वसंत में आम्र-मंजरी से होता मेरा शृंगार,
मत्त मधुप आ-आकर मुझ पर करते प्रेम-भरी गुंजार;
कोकिल अति मृदु-स्वर से गाकर निज संदेश सुनाती थी,
वह मोहक संगीत श्रवण कर मैं बेसुध हो जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

मैं अपने अनुपम वैभव को देख, रहा करती थी मग्न,
था विधान कुछ और भाग्य का भंग हो गया वह सुख-स्वप्न;
अहह अचानक एक दिवस था कठिन कुठाराघात हुआ,
विलग हुई चिर परिचित तरु से छिन्न-भिन्न सब गात हुआ।

(४)

रवि-किरणों के तीव्र ताप ने मुझको हाय सुखा डाला!
इतने पर भी प्रभु ने मुझको कठिन परीक्षा में डाला;
किंतु सूखकर सीख चुकी थी मैं अपना कर्त्तव्य महान,
बिना किए मुख म्लान कर दिया, अपने पर उसको बलिदान।

(५)

शुष्क कलेवर घोर अग्नि में मेरा जलता जाता था,
किंतु दीर्घ निःश्वास हृदय से कभी निकल ही आता था;
पर अब सब निःशेष हो गया, रह न गया है कुछ भी क्लेश,
स्वयं अग्नि में परिणत होकर बदल गया है मेरा वेष।

(६)

है अब मुख से नहीं निकलती हाहाकारों की ज्वाला,
उष्ण उसासों का अब उससे उठता नहीं धुआँ काला;
मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े बनकर अंगारों के रूप,
अहा एक में अनेकत्व का दिखा रहे हैं सत्य-स्वरूप।

(७)

दहक रहा है हृदय, किंतु है उसमें परम शांति का बास,
पर-हित-व्रत-रत इस जीवन का पूर्ण हो चुका सभी प्रयास;
आते हैं जो मुझे डिगाने, वे मुझमें मिल जाते हैं,
यहाँ प्रलोभन-जल के छींटे आते ही जल जाते हैं।

(८)

नहीं कामना रही और कुछ, किंतु याचना है मेरी,
बिना जले ही बुझ न जाय यह, हो न जाय काली ढेरी;
अगणित होकर उड़ें भस्म-कण करें जगत में यही प्रचार—
बिना जले पर-हित-पावक में मिलता नहीं मुक्ति का द्वार।

कुमारी राजकुमारी श्रीवास्तव

× × ×

३. अनपढ़ व अधपढ़ स्त्रियों का साहित्य

सूरजनारायण की कहानी

सूरजनारायन हे। सो उनके घर में बड़ी गरीबी थी। उनकी बहू अपनी सास से बोली कि सास तुम अपने बेटे से कहो कि दुनिया को तो वे ऐसा सुखी रक्खें, और हमें भर-पेट रोटी भी ना [illegible] बुढ़िया ने आकर ऐसे ही बेटे से कही, तो वे बोले कि मा, तुम्हारे घर में [illegible] कहाँ से हो, तुम्हारे लच्छन ख़राब हैं, सास से चुरा[illegible] बहू खा जाय, और बहू से चुराकर सास खा जाय, इ[illegible] से तुम्हें दुख मिल रहा है। सास चीज़ लाए, सो [illegible] को खवावे, और बहू करे सो सास को खवावे, अच्छी त[illegible] घर में सफ़ाई करो, जब तुम्हारे घर में रौनक हागी। यह सुन बुढ़िया घर को चली। बहू ने उसके आने [illegible] पहले ही घर को ख़ूब झाड़ा, लीपा-पोता और रोटी [illegible] रक्खी। आते ही बुढ़िया से बोली कि आओ सास, भो[illegible] करो। खिला-पिला के बोली—सास क्या कहा तु[illegible] बेटा ने? कि बहू जो कहा, सो तुमने कर रक्खा। [illegible] ही नित काम करने लगी। अब उनके घर में इतना [illegible] हुआ कि उनसे सँभाला भी न जाय। फिर बहू बोली- सास, अपने बेटे से यों कहो कि कहाँ तो हमारे घ[illegible] इतनी ग़रीबी कि रोटी-कपड़ा भी न मिलता था; [illegible] अब दिया, तो इतना दिया कि हमसे सँभाला भी न जाता। बुढ़िया ने ऐसा ही कहा। सूरजनारायन बोले [illegible] काँरियों के तो ब्याह करो, और ब्याहियों के गौने क[illegible] यज्ञ करो, ब्रह्मभोज करो, ऐसा करने से तुम्हारा धन [illegible] लग जायगा। बुढ़िया वहाँ से चल दी। बहू ने [illegible] नौत रक्खे, और यज्ञ रचा रक्खा। इतने में बुढ़िया [illegible] कि सास क्या कहा। कि जो कहा, सो तुमने कर रक्[illegible] रात हुई, सो कोढ़ी का रूप धर सूरजनारायन [illegible] राद-ख़ून से लथपथ और फटे कपड़े पहने दरवाज़े [illegible] जा खड़े। सास बोली—आओ तुम्हें न्हिला दूँ। [illegible] बोला—मैं सूरज देवता को चंदन-चौकी पर न्हाऊँ [illegible] बुढ़िया चिल्लाई, ले बेटा की चंदन चौकी तोकूँ? बहू बोली [illegible] सास धो दूँगी, पोंछ दूँगी, क्या बिगड़ जायगा, बूढ़ा [illegible] है, उसका भी मन रह जाने दो। जब न्हा लिया, [illegible] बोला—मैं तो सूरजनारायन के चाँदी के थाल और सो[illegible] झारी में भोजन करूँगा। ले बेटा के थाल और [illegible] तोकूँ? बहू बोली—सास, माँज दूँगी, धो दूँगी, [illegible] बिगड़ जायगा, खा लेने दो। खा-पीके बुड्ढा बोला— तो नींद लगी है। बुढ़िया बोली कि वह टूटी खाट प[illegible] सो जा। बोला—मैं तो सूरजनारायन की अटारी में [illegible] के पलँग पर सोऊँगा। बुढ़िया बोली—चल मिटे [illegible] नारायन का पलँग तोकूँ? बहू बोली—जाने दो, सो [illegible] दो, क्यों इसका जी दुखाया। सो जाकर सो [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी रात हुई, अब वह चिल्लाया कि मरा रे चला रे। बोले—क्या बात है? कि मेरे पेट में दर्द उठा है। कि कैसे अच्छा हो। बोला—सूरज देवता की बहू मेरा पेट सेके, तो मैं अच्छा होऊँ। बुढ़िया बहुत ग़ुस्सा हुई, लो सुनो इसकी बात। बहू बोली—सास बुड्ढा आदमी है, क्या हरज है, सेक आऊँगी। वह जो वहाँ गई, तो छः महीने की रात हो गई। चिड़िया चैंगला सम्हाले ना, त्रिया चीर सम्हाले ना। सबेरे सूरजनारायन प्रकट हुए। मा बोली—बेटा, तुम्हें कौन-सी चोरी थी, जो ऐसे आए। वे बोले—मा, बहू को गर्भ है, इसे निकालना मत और चले गए। जब बहू को छः-सात महीना हुए, तो सास बोली—मेरी सुसरी जानें कौन का पेट ले आई है, और घर से निकाल दिया। वह एक कुम्हार के यहाँ जाकर रहने लगी। उसकी स्त्री भी पेट से थी, दोनों के एक साथ एक-सी शकल के लड़के हुए। सूरज देवता का लड़का जो था, वह तो सोना हगै करे था, और दूसरा पाखाना। जब कुछ दिन बीत गए, तो सूरज देवता घर आए, और बोले—मा, बहू कहाँ है? कि बेटा जाने सुसरी कौन का पेट ले आई, मैंने तो निकाल दी, और वह कुम्हार के यहाँ जा रही। उन्होंने बहू बुलाई। कुम्हारी ने अपना बेटा तो दे दिया, और लोभ से उसका रख लिया। सूरज देवता ने उसे करुए की ऐंटना में निकाला, उससे न निकला गया। फिर बदलकर मँगाया तो दूसरा छः दफ़े तो निकल गया, सातवीं बार ग़लती से एक आँख फूट गई। इसलिये उसका नाम शुक्र देवता रक्खा, और वरदान दिया कि जब तुम डूबोगे (अस्त होगे), तब काँरियों के न तो ब्याह होंगे, न ब्याहियों के गौने, न और कोई शुभ काम होगा। *

रामदत्त भारद्वाज

---

* शिक्षा—जहाँ सुमति तहँ संपति नाना;
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।

इस कहानी में आतिथ्य पर अच्छा प्रकाश डाला है। सतीत्व लांछन से नहीं दब सकता। साँच को आँच कहाँ?—लेखक

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

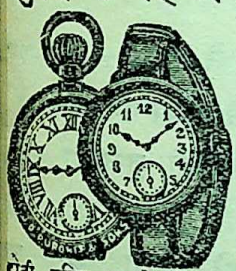

और दाद के अंदर चुरचुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की प्लेट निबवाली फाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ बी जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥=) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥।=) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीज़ें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर

"मजलिसे हैरान केश तैल"

३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। ख़ास कर बालों को बढ़ाने और भ्रमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तैल एक ही है। दाम १ शीशी ॥।), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-ख़र्च ॥।=) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख़० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख़० १॥।) १२ शीशी मँगाने से १ रिस्टवाच मुफ़्त इनाम डा० ख़० २) रु०

पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० २८८, कलकत्ता (आफ़ीस नं० ७१ क्लाइव स्ट्रीट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विनोद

१. उषःकाल

लाल लाल यह क्या छाया है ;
क्या छूलज ने मुँह बाया है ?
अम्मा ! अपना लाल दुछाला ;
चुला ले गया है हत्याला ।
ओल, दूल वह है जा बैथा ;
दिके छान-छोकत में ऐंथा ।
बुला छिपाही, छुला दुछाला ;
तब ही मानेगा हत्याला ।
अले ! अले ! नभ में थी होली ;
बगल गई थी लँग की झोली ।
इछीलिये यह लाल-लाल है ;
बिखली छब में वह गुलाल है ।
अथवा हुई ललाई भाली ;
उछछे वही कून की बयाली ।
या ये मेले लाल गाल हैं ;
मेला लोली लगा भाल है ।

* * *

अम्मा ! ऐसी बातें सुनकर,
बोली मन-ही-मन में हँसकर ।
सूरज की लाली छाई है ;
क्या तेरे मन को भाई है ?

चौधरी गौरीशंकर

२. इंद्र-धनुष्

एक समय सूर्य और वर्षा में झगड़ा हुआ झगड़े का कारण यह था कि वर्षा को बरसने की इच्छा थी, और सूर्य को पृथ्वी पर प्रकृति की सुंदरता देखने की ।

पहले वर्षा ने ही सूर्य से कहा—"तुम इस समय छिप जाओ । देखो, मैं पृथ्वी पर जाती हूँ तुम्हें मालूम ही है कि मेरे सामने तुम्हारा राज नहीं हो सकता ।"

सूर्य—"नहीं, यह नहीं हो सकता । आज का दिन बहुत सुंदर है । पृथ्वी इस समय इतनी सुंदर लगती है कि उसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती ।"

वर्षा—"मैं देर तक नहीं ठहरूँगी । मैं केवल पाँच या दस मिनट तक रहूँगी । तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं थोड़ा-सा बरस कर चली जाऊँगी ।"

सूर्य—"परंतु मैं पाँच मिनट के लिये भी नहीं जाना चाहता । इस समय बहुत-सी नई कलियाँ और फूल निकले हुए हैं, मैं उन्हें देखते रहना चाहता हूँ । इसके अतिरिक्त कितनी ही चिड़ियाँ इस समय चहचहा रही हैं, मैं उन्हें छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना चाहता। क्या तुम उन्हें कुछ देर के लिये नहीं छोड़ सकती हो? वे दिन में तुम्हारा स्वागत करने को तैयार नहीं हैं। इस समय उन्हें हमारी आवश्यकता है। उन्हें गरमी चाहिए। तुम संध्या तक ठहर जाओ। जब मैं स्वयं छिप जाऊँगा, तब तुम बरसती रहना। उस समय मैं दूसरे देश में चला जाऊँगा, और यहाँ मेरे स्थान पर चंद्रमा और तारे रहेंगे। उन्हें तुम्हारे मेघ में, एक या दो घंटे तक भी, मुँह छिपाने में कोई आपत्ति न होगी।"

वर्षा—"यह ठीक है कि तुम सबको गरमी पहुँचाते हो; पर कभी-कभी उन्हें बहुत गर्म बना देते हो। इधर हम लोग बातचीत कर रहे हैं, और उधर पृथ्वी तपती जाती है। यदि यही दशा रही, तो वे फूल, जिन्हें तुम इतना चाहते हो, मुरझाकर गिर पड़ेंगे। देखो, अब तुम एक मेघ के पीछे कुछ देर के लिये छिप जाओ। जब तुम फिर बाहर आओ, तब देखना कि पृथ्वी कितनी सुंदर है। सभी धुल जायँगे, घास लहलहाने लगेगी, फूल और अधिक चमकने लगेंगे। मेरा कहना मान जाओ।"

परंतु सूर्य ज़िद पकड़े हुए थे। वह भला मेघ के पीछे क्यों छिपने लगे। उधर वर्षा बरसने लगी; इधर सूर्य चमक रहे थे।

सूर्य पृथ्वी का दृश्य देख रहे थे। बूँदें चमकती हुई पृथ्वी पर गिरती थीं। सुंदर-सुंदर कलियाँ खिल रही थीं। गरमी के मारे मुरझाई हुई घास तनकर खड़ी हो रही थी। चिड़ियाँ ख़ुशी से वृक्षों पर चहचहा रही थीं।

यह सब देखकर सूर्य से न रहा गया। उन्होंने वर्षा से मुस्किराते हुए कहा—"तुम ठीक बात कहती थीं। मैंने भूल की।" यह कहने के साथ ही सूर्य जो मुस्किराए, तो आकाश में एक धनुष उग आया। वह धनुष सात रंगों में चमक रहा था, और वर्षा के समाप्त होने पर भी चमकता रहा।

इसी समय लड़के पाठशाला से घर आ रहे थे। वे उस धनुष को देखकर चिल्लाने लगे—देखो, इंद्र महाराज ने धनुष चढ़ाया है। अहा! कैसा अच्छा लगता है। आओ, हम लोग इंद्र-धनुष तक दौड़ जायँ।

श्रीबन्धनप्रसादसिंह

× × ×

३. बालक-खंजन-संवाद

बालक - आओ खंजन, आओ खंजन,
तुम्हें देख होता मन-रंजन;
कैसा सुंदर रूप तुम्हारा!
आँखों को लगता है प्यारा।

खंजन—धन्यवाद तुमको है भाई,
बड़ी कृपा तुमने दिखलाई;
ख़ूब देख लो मुझको प्यारे,
मगर रहो मुझसे तुम न्यारे।

बालक—खंजन, डर की बात नहीं है,
किसी तरह का घात नहीं है;
तब तुम क्यों मुझसे डरते हो?
कहना भला न क्यों करते हो?

खंजन—कैसे डर की बात नहीं है?
कैसे कोई घात नहीं है?
तुम बालक हो, दुख ही दोगे;
कब तुम मेरा भला करोगे?

बालक—आओ, खंजन, दुःख न दूँगा,
सुंदर पिंजड़े में रक्खूँगा;
सुख से उसमें सदा रहोगे,
अच्छा भोजन नित पाओगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंजन—नहीं चाहता अच्छा खाना,
पराधीन होकर सुख पाना;
जो दुख हो, मैं सभी सहूँगा,
पर 'राघव' स्वाधीन रहूँगा।

श्रीराघवप्रसादसिंह

× × ×

४. बैल और घोड़ा

एक दिन किसी अमीर के अस्तबल का घोड़ा खुल गया, और पास ही किसी किसान की गोशाला में जाकर एक बैल से बातें बघारने लगा। बोला—प्यारे पड़ोसी, बहुत दिनों से तुमसे मिलने की लालसा थी, सो आज पूरी हुई।

बैल—भाईजी! कहो तो, कैसे आए? क्या तुम्हारे साईस ने नहीं देखा?

घोड़ा—वह मुझे लंबी रस्सी में चरने के लिये बाँधकर भोजन करने चला गया। मैं मौक़ा पा गर्दवानी से सिर निकाल तुम्हारे पास दौड़ा आया हूँ।

बैल—बड़ी कृपा की। आइए, बैठिए, समाचार कहिए।

घोड़ा—मुझे बैठने की अपेक्षा खड़े रहने ही में आराम है। क्या कहूँ, उस दिन तुम्हारी दुर्दशा देखकर बड़ी दया आई।

बैल—सो क्या?

घोड़ा—तुम नाँद में आधा खाना भी न खा पाए थे कि उस किसान का निठुर बेटा तुम्हें अधपेट ही हल में जोतने के लिये ले चला। सो भी पैने से पीटता हुआ!

बैल—आपकी सहानुभूति के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूँ। किंतु वह दिन क्या आप इतनी जल्दी भूल गए, जिस दिन घुड़सवार आपको कोड़े से पीटता-पीटता बेदम कर रहा था, और आपके मुँह से फेन निकल पड़ता था?

घोड़ा—भूलूँगा क्यों? पर वह तो शिक्षा की बात थी। शिक्षा-कार्य में तो मनुष्य के बच्चे तक पीटे जाते हैं, फिर मैं तो घोड़े का बच्चा हूँ। आप देखते नहीं, जब से मेरी शिक्षा समाप्त हो गई है, मेरा मालिक मुझे कितना मानता है। उसने दाना भी काफ़ी परिमाण में बढ़ा दिया है, तथा एक साईस मेरी सेवा के लिये और रख लिया है। तुम्हें तो कभी शिक्षा मिली ही नहीं। मेरी बराबरी तुम क्या ख़ाक करोगे?

बैल—उस शिक्षा को दूर ही से नमस्कार, जिसके पाने पर इतना घमंड हो जाय। शिक्षा में पिटने की बात तुमने एक ही कही। जिस शिक्षा में मनुष्य के बच्चे पीटे जाते हैं, उसे शिक्षाविद् अच्छी शिक्षा-प्रणाली नहीं कहते। एक समय आनेवाला है, जब पशुओं के भी पीटने की मनाही रहेगी। अब रही बराबरी की बात, सो तुम्हारी बराबरी मैंने कब की है? मसल मशहूर है—"लड़ै मुए बैलवा बाँधे खायँ तुरंग।" तुम्हारे अनेक चाकर हैं, और मैं स्वयं चाकर हूँ। तुम अमीर हो, सुशिक्षित हो; मैं ग़रीब हूँ, अशिक्षित। उसी भाँति तुम्हारे स्वामी और मेरे स्वामी में भी वैसा ही अंतर है। पर याद रक्खो, मेरे-सरीखे पशु और मेरे स्वामी-सरीखे किसान कड़ी मिहनत करके अन्न न उपजावें, तो देश के लोग—विशेषकर तुम्हारे सरीखे अमीर पशु और तुम्हारे स्वामी-सरीखे अमीर मनुष्य—बिना भूखे ही मर जायँ।

घोड़ा इतना सुनकर कुछ झेंप-सा गया। बोलना ही चाहता था कि उसके साईस ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे पकड़ लिया, और दो कोड़े उसकी पीठ पर जमाकर बकता-झकता हुआ चलता बना।

दामोदरसहायसिंह

× × ×

५. युवक की रण-यात्रा

(१)

कहाँ जाते हो युवक कुमार,
बाँध तरकस, सुदीर्घ धनु तान?
शीश पर शोभित है क्यों आज,
भुवन-मोहक शुभ स्वर्ण-किरीट?
ढाल की देख तुम्हारी शान,
इंद्र भी चकित हो रहे आज;
चराचर अति विस्मित हैं हुए,
श्रवण कर तव कृपाण-झंकार।

(२)

तजे क्यों जाते हो रणधीर!
पहन लो दृढ़ सुवर्ण का वर्म!
शीघ्र-गति हेमध्वज रथ दीर्घ,
पड़ा शस्त्र-गृह में है व्यर्थ।
अरिंदम! सैनिक-गण भी साथ,
नहीं हैं—क्यों हो इतना व्यग्र?
गर्जते गज हैं, हो रण-मत्त,
हिनहिनाते शाला में अश्व।

(३)

अहा! विजये! तुम आई प्रथम,
मुझे करने प्रदान बल-वीर्य;
तुम्हारे नेत्रताप से तप्त,
करूँगा अरिमंडल को भस्म।
नहीं है सैन्यादिक का काम,
प्रिये! दो निज पदाब्ज-रज शीघ्र;
गुँजा दूँगा रण में जय-घोष,
हटेगा हार मान अरवृंद।

(४)

अहा! तव चूड़ामणि की ललित
प्रभा से पूर्ण तीक्ष्ण यह खड्ग;
नाचकर शकट-चक्र-सा शीघ्र,
उड़ा देगा नभ में खल-शीश।
शत्रु-शोणित में करके स्नान,
तथा ले दिव्य विजय का केतु;
रक्त-रंजित हो, सुंदरि, फिरूँ,
तभी मिलना मुझसे कर प्रेम!

शिवकुमारसिंह "नरेंद्र"

× × ×

६. विज्ञापन का नया तरीक़ा

जर्मनी के एक अत्तार ने अपना माल बेचने के लिये अपनी दूकान के सामने एक फुहेरा लगा रक्खा है, जो उधर से जानेवाले व्यक्तियों पर सुगं-

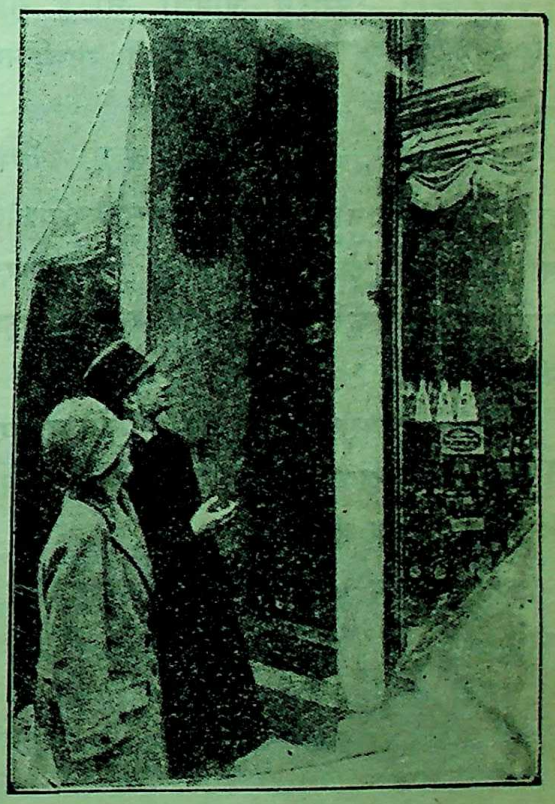

विज्ञापन का नया तरीक़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धित द्रव्य छिड़का करता है। इस प्रकार अपने माल को वह दूकानदार खूब बेच रहा है।

रमेशप्रसाद

× × ×

७. मनोविनोद

किसी कुम्हार का गधा दैवयोग से एक जाट के छकड़े के नीचे दबकर मर गया। कुम्हार ने जाट पर नालिश कर दी। जाट पर हत्या का अभियोग चलाया गया। जज साहब ने पूछताछ करने के पश्चात् अभियुक्त को सफ़ाई के गवाह पेश करने की आज्ञा दी। अभियुक्त ने एक उचक्के को धन का लोभ दे, समझा-बुझाकर सफ़ाई की गवाही के लिये खड़ा किया। जज साहब ने उस व्यक्ति से पूछा—"बेल, तुम गधे की मृत्यु के विषय में क्या जानता है?" गवाह ने उन्मत्त भाव से उत्तर दिया—"साहब, जानता...तो हूँ, गधे की मौत छकड़े से हुई। इसमें गाड़ीवान् का क्या...।"

जज (बात काटकर)—"नहीं, नहीं, ऐसा उलट-पुलट बात नहीं माँगता।" इस पर वकील साहब ने नम्रता से कहा—"भाई, अच्छी तरह समझाकर बात करो। साहब की समझ में कुछ भी नहीं आया।

गवाह—अच्छा तो साहब, ध्यान-पूर्वक सुनिए। मैं सब बात खोलकर समझाता हूँ। यों समझिए कि आप तो हुए छकड़े वाले।

वकील साहब—अच्छा, मैं हुआ छकड़ेवाला। आगे—

गवाह—और मैं हुआ छकड़ा। मैं गड़गड़ाता चला आ रहा हूँ। और (जज साहब की ओर इशारा करके) यह हुए गधे। अब यदि यह मेरे नीचे आकर मर जायँ—क्योंकि निकलने का कोई रास्ता नहीं है—तो इसमें आपका अर्थात् छकड़े वाले का क्या दोष?

यह सुनकर वकील साहब तो हँस पड़े, परंतु जज साहब का मुँह क्रोध से तमतमा उठा। उन्होंने कुछ सोचकर जाट से कहा—"अच्छा, तुम बरी किया गया; परंतु ध्यान रहे, ऐसी घटना भविष्य में फिर होने से तुम्हें सख़्त सज़ा दी जायगी।"

× × ×

एक व्यक्ति बहुत भूखा था। नगर में घूमते-घूमते अचानक वह किसी मंदिर में पहुँचा, तो देखता क्या है कि पुजारी महाराज सामने मिठाइयों के दो थाल रक्खे पेट-पूजा कर रहे हैं। वह व्यक्ति बिना किसी रोक-टोक के उनके सम्मुख जा बैठा, और एक थाल अपने आगे खींच स्वयं भोजन करने लगा।

पुजारी महाराज ने क्रोध से पूछा—अरे तुम यह क्या कर रहा है?

उस व्यक्ति ने हँसते हुए कहा—कुछ नहीं महाराज। प्रतिदिन 'ठाकुरजी' से रोटी मिल जाया करती थी; परंतु आज न मिली तो उनके धाम पर ही आ गया और खा रहा हूँ।

एम्० ए० मुनीमखाँ "जाहिल"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

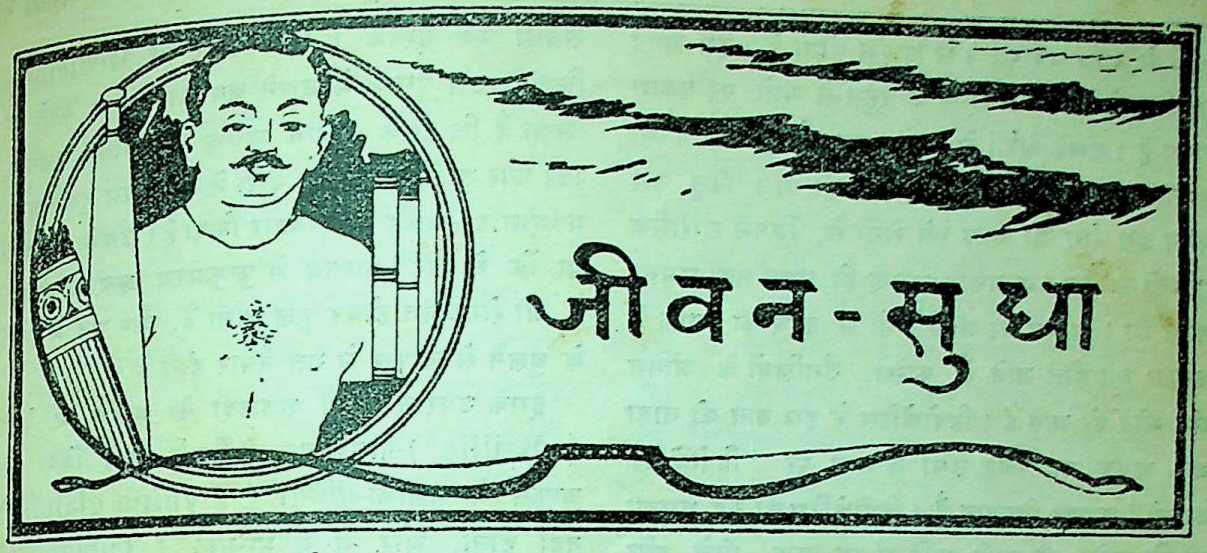

१. यक्ष्मा का इतिहास

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार इस रोग के सर्व-प्रथम जाननेवाले ग्रीस-देशी चिकित्सा-शास्त्र के आदि-धन्वंतरि हिपोक्रेटिस और गेलेन (Hippocrates and Galen) थे; किंतु भारतीयों को यह विषय किस अनादि काल से ज्ञात था—केवल इतना ही नहीं, इसके संबंध की प्रायः सभी बातें तो मालूम थी ही, अथच इसकी चिकित्सा-संबंधी अनुभूत औषधियाँ भी प्राप्त थीं—इसका अनुमान करना कठिन है। जब हम निश्चित रूप से यह भी नहीं बता सकते कि ईसा के कितने वर्ष पूर्व महाभारत का काल है, तो उसमें आए हुए व्यक्तियों और विषयों का या उससे भी बहुत पहले की बातों का काल निर्द्धारित करना संभव नहीं है। यक्ष्मा या राजयक्ष्मा का नाम महाभारत में भी आया है, और उसमें आए हुए एक प्रधान व्यक्ति की मृत्यु इसी रोग से बतलाई गई है। जब किसी वस्तु की दूरी हमसे इतनी अधिक हो जाती है कि वह हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा किसी प्रकार दृष्टि-गोचर या अनुभूत नहीं हो सकती, तो उस दूरी को हम अनंत कहते हैं। अतएव समय की इस दूरी को अनंत-काल कहने में कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती। अस्तु, राम-कृष्ण और पांडव-कौरवों की इस भूमि के निवासी इस रोग को अनंत-काल से जानते थे, इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं होगी।

रही आधुनिक विद्वानों की बात। ये पाश्चात्य पंडित इस पद-दलित देश की महत्ता को जानतेहुए भी बहुत-सी बातों में अनजान बनने की चेष्टा करते हैं। तब यदि भारतीय धन्वंतरि की जगह इन्होंने ग्रीस-वासी हिपोक्रेटिस और गेलेन के नाम बताए, तो आश्चर्य ही क्या है।

इधर कुछ दिनों से मिसर के शवस्थानों (Pyramids) के संबंध की बहुत-सी बातों की खोज हो रही है। कितने शव भी निकाल बाहर किए गए हैं। ये मृत शरीर संभवतः ईसा के २,००० या ३,००० वर्ष पूर्व के सुरक्षित हैं। इनमें कितने मृत शरीर ऐसे भी पाए गए हैं, जिनमें यक्ष्मा की छाप लगी हुई है, अर्थात् उनकी अस्थियों एवं अन्य अंगों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि जीवित अवस्था में ये शरीर अवश्य ही यक्ष्मा द्वारा सताए गए होंगे, अथच इनकी मृत्यु भी संभवतः इसी रोग से हुई होगी। किसी समय मिसर की सभ्यता भी चरम सीमा तक पहुँची हुई थी। सहस्रों वर्षों के सुरक्षित शव उनके कला-ज्ञान के परिचायक हैं। संभव नहीं कि उस जाति ने उस समय तक यक्ष्मा के संबंध में जानकारी न प्राप्त की हो।

भारतीय इतिहास के बहुत-से पृष्ठ धार्मिक अत्याचारों के इतिहास से रँगे हुए हैं। आर्यों के बड़े-बड़ पुस्तकागार एवं असंख्य पुस्तकें कितनी ही बार भस्मसात् कर दी गई हैं। मिसर के इतिहास की भी यही अवस्था है। अतएव हमारे ज्ञान एवं बड़प्पन के अधिकांश प्रमाण अग्निदेव के उदरस्थ हैं। किंतु ये व्यर्थ के झगड़े हैं। हाँ, यक्ष्मा का वर्तमान इतिहास हिपोक्रेटिस (ईसा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४६० से ३७७ वर्ष पूर्व) से आरंभ होता है। इस आदि वैज्ञानिक ने चिकित्सा-शास्त्र के बहुत-से अंगों पर प्रकाश डाला है। उसके लेखों से पता लगता है कि उसे यक्ष्मा के प्रायः सभी लक्षणों की जानकारी थी। किंतु उस समय इस रोग को अन्य ऐसे रोगों से, जिनमें शारीरिक शक्तियों का क्षय एक प्रधान लक्षण हो, पृथक् नहीं समझा जाता था। यक्ष्मा या जीर्ण रोगों में हृदय की शक्ति के क्रमशः नष्ट होते जाने के कारण, उँगलियों के अंतिम अंश मोटे हो जाते हैं। हिपोक्रेटिस ने इस बात को ताड़ा था, अथच यह चिह्न उसी के नाम पर "हिपोक्रेटिक उँगली" कहकर विख्यात है। हिपोक्रेटिस की यह धारणा थी कि शरीर की सारी शक्तियाँ रक्त, कफ, पीले और काले पित्त (Blood, Phlegm, Yellow and black Bile) पर निर्भर हैं, और इनकी पारस्परिक मात्राओं में किसी प्रकार का न्यूनाधिक्य होने से ही रोग की उत्पत्ति होती है *। यह धारणा विश्वास के रूप में परिणत होकर चिकित्सा-शास्त्रज्ञों के मस्तिष्क को बहुत काल तक प्रभावान्वित करती रही।

हिपोक्रेटिस के बाद दूसरे पंडित गेलेन (सन् १३० से २०० तक) के लेखों का पता चलता है। गेलेन ने सर्व-प्रथम क्षय को छूतवाला रोग समझा था, और इस रोग द्वारा प्रादुर्भूत अंग-विकृति के संबंध में उसने समझा था कि यह फुप्फुस में व्रण (ulcer) उत्पन्न होने से होता है।

गेलेन के उपरांत १७ वीं शताब्दी के आरंभ तक योरप का वैज्ञानिक आकाश (कम-से-कम चिकित्सा-शास्त्र की ऐसी अवस्था थी) तमसाच्छन्न दिखाई पड़ता है। पुरानी रूढ़ियाँ वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों को आगे नहीं बढ़ने देती थीं। साथ-ही-साथ सत्य बहुधा धार्मिक आडंबरों में लुप्त हो जाता था। किंतु धीरे-धीरे आसमान साफ़ होने लगा। रह-रहकर एकआध सितारे चमकते हुए नज़र आने लगे। उस शताब्दी में सिल्विअस (Sylvius, १६१४ से १६७२ तक) ने चिकित्सा-शास्त्र-संबंधी एक पुस्तक (Practice of Medicine) लिखी। उस पुस्तक में उसने क्षय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इसके प्रधान लक्षण हैं—खाँसी, बलक्षय, ज्वर और शारीरिक ह्रास। उसी ने सर्व-प्रथम टुबर्किल्—यक्ष्मागाँठ—शब्द का व्यवहार किया है। उसका विश्वास था कि ये गाँठें वास्तव में फुप्फुसस्थ लसीका-ग्रंथियाँ हैं, जो रोगाक्रांत होकर फूल जाती हैं, और अंत में इन्हीं के घुलने से फुप्फुस में गर्त तैयार होते हैं।

इसके उपरांत १८वीं शताब्दी के आरंभ में बेली (Baillie)-नामक एक व्यक्ति ने सिद्ध किया कि फुप्फुस में लसीका-ग्रंथियाँ (Lymph glands) नहीं होतीं, और ये यक्ष्मा-गाँठें (Tubercles) वास्तविक फुप्फुस-तंतु (Lung tissue) में ही उत्पन्न होती हैं। पुनः सन् १८१० में बेली-नामक (Bayle) एक दूसरे व्यक्ति ने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उसने शरीर के भिन्न-भिन्न तंतुओं में यक्ष्मा द्वारा की गई विकृतियों के संबंध में बहुत-सी बातें लिखीं। उसने सर्व-प्रथम "Miliary" (बहुसंख्यक—यक्ष्मा)-शब्द का प्रयोग किया, जो आज तक प्रचलित है।

इसी समय (१७८१ से १८२६) के लगभग आधुनिक भैषज्य-विज्ञान के जन्मदाता लेनेक (Laennec) ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। इस महापुरुष ने यक्ष्मा-संबंधी अन्वेषणों की नींव डाली, एवं सर्व-प्रथम यक्ष्मा के भिन्न-भिन्न रूपों—बहुसंख्यक दानें, यक्ष्मा-जनित स्राव (Tuberculous infiltration) एवं छनाकरण क्रियाओं (Caseation Processes) इत्यादि—की एकता प्रमाणित की। उसने बहुत ज़ोर के साथ बताया कि फुप्फुस में अथवा लसीका-ग्रंथि में पहले यक्ष्मा के दानें निकल आते हैं, तदुपरांत इन दानों में छनाकरण क्रिया होने लगती है, जिससे ये मुलायम हो जाते हैं, और पीले रंग के देख पड़ते हैं, अथच यक्ष्मा-गाँठों की इन दो अवस्थाओं में, आपस में, उतना ही अंतर है, जितना एक फल की अपक्व एवं पक्व अवस्था में। इस पिछली अवस्था का अतिक्रम करने पर—गाँठ के पूर्णतः घुल जाने पर—क्षत अवयवों में गर्त (Cavity) उपस्थित होते हैं। यक्ष्मा में रक्त-स्राव इन्हीं क्रियाओं के फल-स्वरूप होता है, न कि रक्त-स्राव ही यक्ष्मा का कारण है।

इस अमर व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् ही एक सर्व

* आयुर्वेद के कफ, पित्त और वायु से तुलना कीजिए।
—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक (अंगविकृति-तत्त्ववेत्ता—Pathologist) वर्चो (Virchow) ने अपनी कुछ ऊटपटाँग धारणाओं द्वारा लेनेक की कृतियों पर कुछ काल के लिये पानी फेर दिया। वर्चो अपने समय का एक विश्व-विख्यात व्यक्ति था, और उस समय की अवस्था ऐसी हो रही थी कि यदि किसी व्यक्ति ने यथेष्ट ख्याति लाभ कर ली, तो सारा वैज्ञानिक संसार उसकी धारणाओं के सत्यासत्य की विवेचना न कर उन्हीं का अनुगामी हो जाता था। इस व्यक्ति ने यह मंतव्य प्रकट किया कि यक्ष्मा की गाँठें विशेषकर यक्ष्मा द्वारा ही प्रादुर्भूत नहीं होतीं, बल्कि अन्य रोगों में भी पाई जा सकती हैं। इसी अमूलक धारणा के अंध-विश्वासी एक दूसरे वैज्ञानिक निमेयर (Niemeyer) ने (१८६६) यहाँ तक कह डाला कि "किसी क्षय-रोगी को सबसे बड़ा भय यह है कि वह यक्ष्माक्रांत हो जा सकता है!"

किंतु इसी समय (१८६८) वर्चो के मत का खंडन करनेवाला एक दूसरा व्यक्ति भी प्रादुर्भूत हुआ। यह था विलेमिन (Villemin)। इसने यक्ष्मा-गाँठों को लेकर क्षुद्र पशुओं में आरोपित (inoculate) किया, अथच उनमें यक्ष्मा-जनित सभी अंगविकृतियों को उत्पन्न कर यह सिद्ध कर दिया कि यक्ष्मा वास्तव में एक ही रोग है, किंतु अवस्था और अवयव के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है।

इस समय तक किसी को यक्ष्मा के कीटाणु का पता नहीं लगा था। इसका श्रेय कौक (Koch) को है, जिसने सन् १८८२ में इसके कीटाणु का पता लगाकर कार्य (रोग) और उसके कारण का संबंध स्थापित कर दिया, एवं बहुत-से निर्मूल झगड़ों को मिटा दिया। कौक ने यक्ष्मा-गाँठों में इन कीटाणुओं को पाया, गाँठों से निकालकर उन्हें कृत्रिम खाद्य (Medium) द्वारा बढ़ाया, और पुनरुत्पन्न कीटाणुओं को पशुओं में आरोपित कर उनमें यक्ष्मा के सभी लक्षण एवं अंगविकृतियाँ उपस्थित कर दिखाईं।

इस अन्वेषण के कुछ ही दिन बाद अर्लिक (Ehrlich)-नामक वैज्ञानिक ने इसके रँगने की रीति का पता लगाया, और यह सिद्ध किया कि यक्ष्मा-कीटाणु अम्लग्राही है।

राबर्ट कौक * केवल यक्ष्मा-कीटाणु का पता लगाकर ही निश्चित नहीं हो गए। इन्होंने, १८८९ में, टुबर्कुलिन (Tuberculin—यक्ष्मा-कीटाणु-विष) का आविष्कार किया। १९०१ में इन्होंने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि यक्ष्मा-कीटाणु दो प्रकार के होते हैं—मानुषिक और पाशविक, जो एक दूसरे से एकदम स्वतंत्र होते हैं। आप तो यहाँ तक कह बैठे कि मनुष्य पाशविक यक्ष्मा-कीटाणु द्वारा आक्रांत नहीं होते। किंतु आपका यह कथन कुछ दिनों के बाद एवं बहुत झगड़े के उपरांत असत्य सिद्ध हुआ।

यह तो हुआ यक्ष्मा एवं उसके कारण का इतिहास। उसकी चिकित्सा का इतिहास भी कम कौतूहल-प्रद नहीं है। प्रत्येक मध्यकालीन योरपीय चिकित्सक अपनी-अपनी विचित्र रीतियों से चिकित्सा करते थे, यहाँ तक कि १७ वीं शताब्दी तक के प्राप्त दवाओं के नुसख़े समय-समय पर दिल बहलाने की यथेष्ट सामग्रियाँ हैं। एक नुसख़े की नक़ल यह है—*

केचुएँ और घोंघे का (प्रत्येक का) जल—१½ औंस
टार्टारिकाम्लयुक्त अफ़ीम का तरल सार—२ ड्राम
वायलेट का शर्बत.....१ औंस

इन सभी को मिला दो, और प्रत्येक रात को सोने के समय एक चम्मच पी लिया करो।

किसी नुसख़े में सुअर की जूँ कुचलने का आदेश रहता था, किसी में हड्डों एवं अन्य कीट-पतंगों की टाँगें मिलाई जाती थीं। कभी ऐसे भी नुसख़े रहते थे—जैसे बेंग (मेढक) का भेजा, भेड़िए के बाएँ पैर की हड्डी का रस, कबूतर का यकृत इत्यादि—जिनके आदेशानुसार ओषधियाँ सेवन करने से रोगी रोगमुक्त तो नहीं हो सकता, किंतु वमन अवश्य करता था। इन नुसख़ों में कभी-कभी तेज़ विष मिला देने का भी आदेश रहता था, जिसके फल-स्वरूप रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाया करती थी। ऐसे नुसख़े केवल चिकित्सा के ख़याल से ही नहीं लिखे जाते थे, बरन् कभी-कभी प्रेमिक-प्रेमिकाओं को अपनी-अपनी आकांक्षाएँ पूरी कराने के ख़याल से भी लिखे जाते थे।

किंतु इस अंधाधुंध का परिणाम वही हुआ, जो होना चाहिए था, अर्थात् बहुत लोगों को चिकित्सा-शास्त्रज्ञों

* कौक न केवल यक्ष्मा-कीटाणु को ही नहीं ढूँढ़ निकाला, बल्कि इन्होंने अन्य कई कीटाणुओं का भी पता लगाया, एवं रोगोत्पन्नकारी कीटाणुओं के संबंध में कई सिद्धांत भी निर्द्धारित किए।—लेखक

* Seveuteenth Century Pharmocopia of Willis quoted by John Guy, M. D,, F. R. C. P. etc. in his "Pulmonay Tuberculosis: Its Diognosis and Treatment."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से घृणा हो गई, और उनका मज़ाक़ तो चारों ओर उड़ाया जाने लगा। रंगमंचों पर भी इनकी हँसी उड़ाई जाती थी। उदाहरणार्थ, बिमौंट और फ़्लेचर (Beaumont and Fletcher)-नामक नाटक-लेखकों ने अपने एक प्रहसन (The Knight of the Burning Pestle) में एक लड़के के विषय में लिखा है, जिसके पाँवों में अधिक चलने के कारण छाले पड़ गए थे। उसकी माता को इस प्रकार उपदेश दिया जाता है—

"श्रीमती मेरी थौट (Merrythought), जब आपका युवक घर आवे, तो उसे अपने पैरों के तलवे और एड़ी तथा टख़नों (Ankles) को एक चूहे के चमड़े से रगड़ने दीजिए। यदि आपमें से कोई चूहा न पकड़ सकें, तो जब वह सोने जाय, उस समय उसे अपने पैरों को गर्म अंगारों पर लुढ़काने दीजिए। तब, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, वह चंगा हो जायगा।"*

केवल इतना ही नहीं, ये चिकित्सक और भी उपद्रव मचाते थे। जुलाब देना या कुछ रक्त निकलवा देना आदि तो इनका साधारण काम था। पर इनका समय बीता। धीरे-धीरे इनकी आँखें खुलने लगीं, और चिकित्सा-प्रणाली प्रायः एकदम बदल गई। यक्ष्मा की चिकित्सा की भी यही दशा हुई है। एक-एक करके अनेकों औषधियों का प्रयोग हुआ। बहुत-सी निरर्थक जानकर छोड़ दी गईं। कुछ से प्रत्यक्ष हानि भी देखी गई। धीरे-धीरे विशेष रीतियों का प्रादुर्भाव हुआ। उदाहरणार्थ, फुप्फुसावरण-गर्त में वायु-प्रवेश कराकर एवं इस प्रकार रोग-क्षत फुप्फुस को निश्चेष्ट कर रोगी को रोग-मुक्त करने की एकदम हाल की रीति है। यद्यपि लिवरपुल के एक चिकित्सक † ने एक बार, सन् १८२१ में भी, इस रीति का अवलंबन किया था, तथापि उस समय उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई थी।

कौक ने जिस समय टुबर्कुलिन का आविष्कार किया, सारे संसार को आशा हो गई थी कि यक्ष्मा की चिकित्सा करतल-गत हो गई। किंतु वह आशा विलीन हुई। यद्यपि रह-रहकर टुबर्कुलिन द्वारा चिकित्सा के पक्षपाती निकल आते हैं, तथापि आधुनिक चिकित्सक इस प्रकार की चिकित्सा से सहमत नहीं होते, और फुप्फुस-यक्ष्मा में इसका व्यवहार नहीं होता।

बहुत हाल की बात है। प्रोफ़ेसर मौलगार्ड (Prof. Molgaard) ने स्वर्ण से सैनोक्राइसिन (Sanocrysin) नामक एक वस्तु प्रस्तुत की। एक बार पुनः वैज्ञानिक संसार में हलचल मची। किंतु इससे भी यक्ष्मा को परास्त करने की चेष्टा असफल हुई। यद्यपि आजकल यक्ष्मा की चिकित्सा में इसका बहुधा व्यवहार किया जाता है, तथापि यथेष्ट लाभ नहीं होता।

वास्तव में सारे संसार की दृष्टि यक्ष्मा-चिकित्सा की ओर लगी हुई है। अनेकों वैज्ञानिक इसके लिये किसी विशेष औषधि के अनुसंधान में व्यस्त हैं। देखें, यह शुभ कार्य कब संपन्न होता है।*

(डाक्टर) कमलाप्रसाद

× × ×

२ प्राचीन आर्यों का सौर-विज्ञान

ब्राह्मणकालीन आर्यों का सूर्य के संबंध में क्या ज्ञान था, इसी विषय पर, इस लेख में, कुछ विचार करेंगे।

ब्राह्मण-ग्रंथों का निर्माण-काल तो बताना कठिन है, पर हाँ, इसका संकलन-काल महाभारत का काल था, यह निश्चत है।

ब्राह्मण-ग्रंथ कोई ज्योतिष के ग्रंथ तो नहीं, पर उनमें यज्ञों का वर्णन होने से नक्षत्रों, ग्रहों तथा उपग्रहों का वर्णन, यज्ञ-संबंध में, बहुत आता है। इस लेख में केवल सूर्य-संबंधी विचार दिए जाते हैं। खोज के प्रेमी विद्वान इस लेख से विशेष लाभ उठा सकेंगे।

सूर्य लोकों का धारण करनेवाला है

पृथ्वी आदि अनेक लोक सूर्य के आश्रित हैं। उसी आकर्षण से ये लोक स्थित हैं। शतपथ ब्राह्मण ४। ६। ७। २१ में लिखा है—"सहैष (सूर्यः) भर्ता। यह जो सूर्य है, वह भर्ता है। 'भृ' धातु के दो अर्थ हैं—धारण करना और पोषण करना। सूर्य दोनों कार्य ठीक रूप से कर रहा है। यह लोकों में पुष्टि पहुँचा रहा है, और अपनी आकर्षण-शक्ति से उन्हें धारण भी कर रहा है।

* Quoted by Dr. Guy.

† कार्सन (Carson)

* इस लेख के सिलसिले में 'यक्ष्मा' के संबंध में एक लेख-माला भी, माधुरी के पाठकों के लाभार्थ, प्रकाशित की जाएगी। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि में जो अग्नि है, अंतरिक्ष में जो बिजली और द्यौलोक का जो सूर्य है, सब एक ही हैं। शतपथ ६।४।२।२५ में लिखा है कि सूर्यादि सब अग्नि के ही नाम हैं—"अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।६।२१।२, ३ में 'सूर्योऽग्नेर्योनिः'—सूर्य अग्नि का घर है—लिखा है।

सूर्य अग्नि का पुंज है

सूर्य स्वयं गर्म है, और सारे लोकों को गरमी पहुँचाता है—"उष्णमेव सविता"—गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध १।३३। "एष वै सविता य एष तपति"—श० ब्रा० ३।२।३।१८। यह सूर्य ही है, जो तपाता है।

रात के समय सूर्यास्त देखकर कई अज्ञान के कारण कह देते हैं कि रात को सूर्य कहीं चला जाता है, और दिन को फिर आ जाता है। ब्राह्मण-ग्रंथों में लिखा है कि सूर्य सदा अपने स्थान पर ही रहता है।

सूर्यास्त नहीं होता

"असौ वाव (सूर्यः) मर्चयतीव"—ऐतरेय ब्राह्मण ४।१०। यह सूर्य चलता-सा है। इस पाठ में **मर्चयतीव** पद ने साफ़ कर दिया कि सूर्य चलता तो नहीं, परंतु चलता-सा प्रतीत होता है। इसी ऐतरेय ब्राह्मण के ३।४४ के पाठ में और भी स्पष्ट कर दिया है—"स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति"—यह सूर्य न कभी अस्त होता है, और न उदय होता है।

हम एक सूर्य को देखकर अनुमान लगाते हैं कि सूर्य एक ही होगा। हमारा यह अनुमान ठीक नहीं। एक-एक सूर्य के साथ कई-कई तारागण, ग्रह तथा उपग्रह संबद्ध हैं। जिस प्रकार हमारा सौर जगत् पृथक् है, इसी प्रकार और भी अनेक सूर्य हैं, और उनके साथ अनेक लोक संबद्ध हैं। "भूमो वा एष देवानां यदादित्याः।" श० ब्रा० ६।६।१।८—देव (चमकनेवाले) पदार्थों में आदित्य (सूर्य) सबसे श्रेष्ठ हैं। यहाँ पर **आदित्याः** पद बहुवचनांत होने से अनेक सूर्यों की स्थिति बताता है।

सूर्य अनेक हैं

सूर्य के चित्रों में एक रथ बनाया गया है, और उसके घोड़े के सात मुख हैं। वास्तव में उस सूर्य की परिधि एक रथ है, और सात प्रकार के उसके रंग हैं, जो उसके घोड़े हैं। तिकोने बिल्लौर को सूर्य-किरण में रखने से सातों रंग दिखाई देते हैं।

सप्त रश्मि

सूर्य की अनेकों किरणों में ये सात रंग विभक्त हैं। सप्त रश्मि से यह तात्पर्य नहीं कि सूर्य की किरणें सात ही हैं। "सहस्रं हेत आदित्यस्य रश्मयः" जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण १।४४।५। "स एष (आदित्यः) सप्त रश्मिः वृषभः।" जै० उ० ब्रा० १।२८।२। पहले वाक्य में सूर्य की हज़ारों और दूसरे में सात रश्मियाँ लिखी हैं। इनका भाव ऊपर लिख दिया है।

अभी ऊपर सूर्य में सात रंग लिखे हैं, पर सूर्य की धूप सफ़ेद है। श० प० ब्रा० ५।३।१।७ में लिखा है—"श्वेत इव ह्येष (सूर्यः) यन् भवति", इसमें स्पष्ट रूप से लिखा है कि सूर्य की धूप वास्तव में सफ़ेद नहीं, प्रत्युत "श्वेत इव" सफ़ेद-सी दिखाई देती है। इससे सूर्य का अपनी परिधि में घूमना सिद्ध है; क्योंकि सात रंगों को यदि हम एक चक्र पर लगाकर ज़ोर से घुमावें, तो सफ़ेद रंग ही देख पड़ेगा। इसी प्रकार सूर्य की धूप का भी सफ़ेद होना सिद्ध है।

धूप सफ़ेद क्यों है?

अनेक ग्रह सूर्य के आधार से इसके चारों ओर घूमते हैं, परंतु सूर्य अपनी परिधि में अकेला ही घूमता है। "असौ वा आदित्य एकाकी चरति"—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।६।५।४—यह सूर्य अकेला ही घूमता है।

सूर्य अकेला घूमता है

सूर्य का निवास द्यौः में है। द्यौः का दूसरा नाम ब्राह्मण-ग्रंथों में **आपः** है। "यदापोऽसौ (द्यौः) तत्।" श० ब्रा० १४।१।२।६—ये जो आप हैं, यह द्यौः है। इसी कारण सूर्य को 'अब्ज' भी कहते हैं। अब्ज का अर्थ है—जो **आप** से उत्पन्न हो—"एष (आदित्यः) वा अब्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेति अपः सायं प्रविशति" ऐतरेय ब्राह्मण ४।२०। यह सूर्य अब्ज है; क्योंकि आपों से ही यह प्रातः उदय होता है, और आपों में ही सायंकाल अस्त होता है। आपः शब्द का संस्कृत में 'जल' अर्थ भी है, इसी से ग़लती हो जाने का भय है। प्रतीत होता है कि कभी अरब-देश में भी यही ग़लत ख़याल गया होगा। क़ुरान में हज़रत मुहम्मद साहब ने लिखा है कि सूर्य रात को एक कीचड़ के कुंड में चला जाता और प्रातः वहाँ से निकल आता है। मालूम होता है, उनके पास 'अब्ज' यह पद पहुँचा है। अब्ज का अर्थ जहाँ द्यौः

सूर्य का निवास कहाँ है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्पन्न होनेवाला है, वहाँ पानी से उत्पन्न होनेवाला अर्थ भी है। अरबवालों ने ठीक अर्थ नहीं समझा। इसी से ग़लती हुई। द्यु-स्थित सूर्य के लिये तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।११।१।११ में दिवि स्थितः पद आता है।

सूर्य का काम

सूर्य से ही वृष्टि होती है

जहाँ गरमी पहुँचाना, पोषण तथा लोकों का धारण करना है, वहाँ भाप बनाकर जल बरसाना भी है। "सविता रश्मिभिः वर्षं समदधात्"—गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध १।३६—सूर्य रश्मियों के द्वारा वृष्टि को धारण करता है। "घृत भाजना ह्यादित्याः"—श० ब्रा० ६।६।१।११—सूर्य जलों का स्थान है।

'सूर्यो हि...रक्षसामपहन्ता'—श० १।३।४।८।

सूर्य अनेक रोगों का नाशक है

सूर्य राक्षसों का नाशक है। ये राक्षस रोगोत्पादक कीड़े हैं, इसका विस्तार मेरी बनाई संस्कार-विधि-मंडन पुस्तक में किया गया है।

सूर्य ही दिन, ऋतु और वर्ष के माप का बनानेवाला है। "एष (आदित्यः) ह वा अह्ना विचेतयिता"—ऐतरेय ब्रा० ६।३५—सूर्य दिनों का बतानेवाला है। "आदित्यस्त्वेव सर्वऋतवः"—श० ब्रा० २।२।३।६। सूर्य ही सब ऋतु है। "षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यस्य रश्मयः"—श० ब्रा० १०।५।४।४—तीन सौ साठ रश्मियाँ आदित्य की हैं। यहाँ रश्मि से तात्पर्य दिन का है।

सूर्य की दूरी

कौषीतक ब्राह्मण ८।३ में लिखा है—"शत योजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति"—यहाँ से शत योजन पर सूर्य तपता है। चार कोसों का एक योजन होता है। साधारण रूप से यह प्रतीत होता है कि सूर्य यहाँ से चार सौ कोस है। वास्तव में यहाँ शत से तात्पर्य 'अनेक' है; क्योंकि संस्कृत साहित्य में शत और सहस्र-पद अनेकार्थवाचक हैं। इससे सिद्ध है कि सूर्य भूमि से अनेक योजन दूर है।

यही अत्यंत संक्षेप में ब्राह्मणकालीन आर्यों का सौर विज्ञान है। इस लेख से पता लगता है कि जब सारा संसार अज्ञान में पड़ा हुआ था, भारतीय आर्य उस समय भी अपनी विद्याओं में पूरे उन्नत थे। इस बात की पुष्टि के लिये यह लेख पूरी तरह से दिग्दर्शन करा सकता है।

रामगोपाल शा

यदि आप सफ़र करते समय

"माधुरी"

पढ़ना चाहते हैं तो

हीलर के बुक-स्टाल पर ख़रीदिए।

मूल्य प्रति संख्या ॥=)

प्रायः सभी बड़े-बड़े रेलवे स्टेशनों पर

माधुरी मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

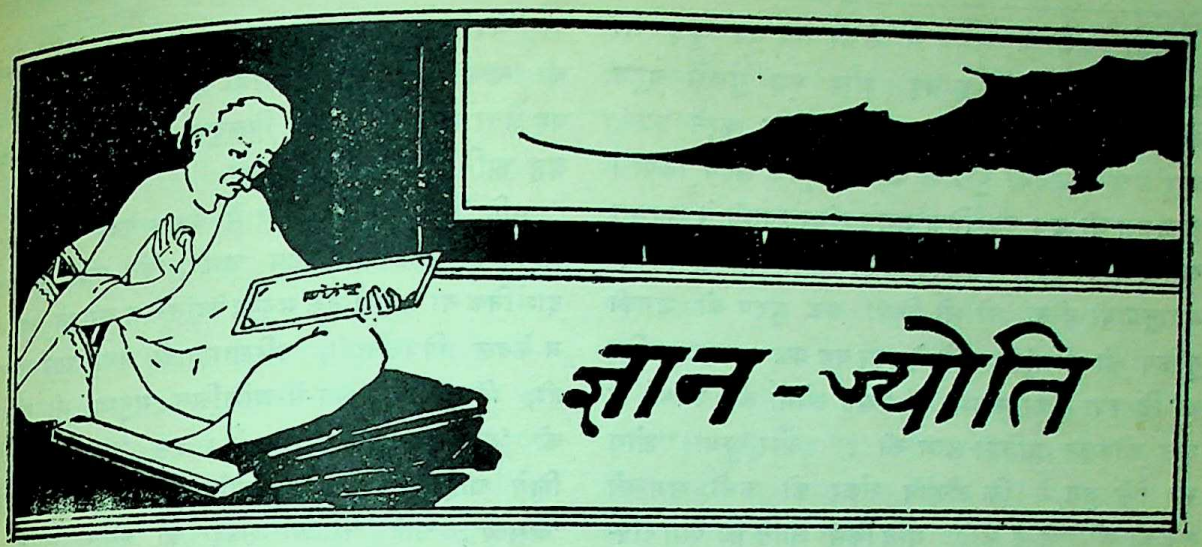

अद्वैतवाद' की आलोचना पर मेरा कहना

(१)

मेरी बे-छपी पुस्तक 'अद्वैतवाद' के कुछ प्रारंभिक अध्याय माधुरी में छपे थे, फिर न-जानें क्यों, बीच में उनका छपना बंद हो गया। उनमें श्रीशंकराचार्य के सिद्धांत तथा युक्तियों की आलोचना भी कहीं-कहीं की गई थी। उस पर श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल ने, माधुरी के वैशाख-अंक में, ३६ कालम की एक विस्तृत आलोचना की है। हमारी शंकर-मत-संबंधी आलोचना से अग्रवालजी इतने अप्रसन्न हैं कि उनको "अत्यंत शिष्ट भाषा" (पृ० ४७८, पं० २५) और "भरपूर संयत भाषा" (पृ० ४९६, पं० ३) लिखने के लिये विशेष 'चेष्टा' करनी पड़ी।

श्रीअग्रवालजी के हमारे ऊपर यह आक्षेप हैं—(१) "शंकर स्वामी पर धूल फेंकने की चेष्टा की है" (पृ० ४७८, पं० १९); (२) "विवेक, दृश्यमान, अविद्या, मिथ्या आदि वेदांत के पारिभाषिक शब्दों के अर्थ या तो ज्ञात नहीं हैं, या.....जान-बूझकर अनर्थ किया है। इन शब्दों के न समझने के कारण उन्होंने (मैंने) शंकर के साथ बड़ा अन्याय किया है।" (पृ० ४७९, पं० ३३)। यदि दूसरा आक्षेप ठीक है, तो पहले में कोई संदेह नहीं रहता। अतः मैं दूसरे के ही विषय में कुछ कहूँगा। परंतु इससे पूर्व एक बात और आवश्यक है। अग्रवालजी का समस्त लेख एक शिकायत से भरा पड़ा है। वह यह कि मैंने शंकराचार्यजी के प्रति शिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया। वह "यह भी दिखा देना चाहते हैं कि उपाध्यायजी ने शंकर स्वामी के प्रति कैसी भाषा का प्रयोग किया है।"

शायद इसी के पुरस्कार-रूप में अग्रवालजी की 'संयत भाषा' में नीचे लिखे शब्दों का प्रयोग करना पड़ा—

हठवादिता (पृ० ४८८, का० १, ५०२५); अद्भुत आडंबर (पृ० ४८७, का० १, पं० ३०); विडंबना (पृ०४७९, का० १, पं० २१); 'मुखमस्तीति वक्तव्यम्' (पृ० ४९५, का० २, पं० २५) इत्यादि।

इस संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि मैं शंकर स्वामी को उच्चतम और पूज्यतम कोटि के विद्वानों में मानता हूँ। हाँ, उनका सिद्धांत स्वीकार करने के लिये उद्यत नहीं। यदि मैंने 'हेत्वाभास', 'वाक्छल' आदि शब्दों का प्रयोग किया, तो उनसे दार्शनिक अर्थ ही अभीष्ट थे, न कि "बाज़ारू।" जहाँ मुझको 'विरोध' मालूम हुआ, वहाँ 'विरोध' लिख दिया। यदि "दार्शनिकों के इस देश में विना मीमांसा किए शंकराचार्य क्या ब्रह्मा के सामने भी कभी मस्तक नहीं झुकाया?" (पृ०४७९), तो उस देश के एक तुच्छ निवासी को बीसवीं शताब्दी में अपने विचार प्रकट करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। केवल इसलिये शंकर-युक्तियों की मीमांसा न करना कि लोग "एक सहस्र वर्षों से शंकर के सामने मस्तक झुकाते आए हैं", इस देश की प्रणाली के सर्वथा विरुद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर स्वामी के समय से लेकर अब तक कुछ मेरे समान, कुछ मुझसे कुछ बड़े और कुछ मुझसे बहुत बड़े लोग शंकर स्वामी से मतभेद प्रकट करते आए, और उन्होंने उनकी युक्तियों का बल-पूर्वक खंडन किया। आजकल भी सब दार्शनिक जगत् शंकर स्वामी से सहमत नहीं है। परंतु यदि समस्त जगत् सहस्रों वर्षों से शांकर-मतानुयायी होता, तो भी किसी एक पुरुष को उनकी युक्तियों की मीमांसा करते देखकर यह प्रश्न न करना चाहिए था कि क्या शंकर स्वामी ने "सब लोगों की आँखों में धूल झोंककर प्रतिष्ठा-लाभ की ?" और, क्या "लोग भी ऐसे बुद्धू थे कि उन्होंने शंकर को कभी समझने तक की कोशिश न की ?" यदि किसी जाति का ऐसा दृष्टि-कोण हो जाय, तो सभी विचार-परंपरा नष्ट हो जाय।

अब मैं मूल-आक्षेपों को लेता हूँ। पहले 'मिथ्या'-शब्द को लीजिए। मैंने क्या भूल की, इसको दर्शाने के लिये लोकमान्य तिलक के, गीतारहस्य का एक लंबा अवतरण दिया है। मैंने इसी अवतरण की, अपनी पुस्तक में, एक स्थल पर, आगे चलकर मीमांसा की थी। लोकमान्यजी लिखते हैं—

"दृश्य जगत् मिथ्या है"—इसका अर्थ यह नहीं कि वह आँखों से देख ही नहीं पड़ता; किंतु इसका ठीक-ठीक अर्थ यही है कि वह आँखों से तो देख पड़ता है, पर एक ही द्रव्य के नाम-रूप-भेद के कारण जगत् के जो बहुतेरे स्थल-कृत अथवा काल-कृत दृश्य हैं, वे नाशवान् हैं और इसी से मिथ्या हैं।" "परंतु जो नासमझ विदेशी और कुछ स्वदेशी पंडितमन्य भी सत्य और मिथ्या-शब्दों के वेदांत शास्त्रवाले पारिभाषिक अर्थ को न तो सोचते-समझते हैं, और न यह देखने का ही कष्ट उठाते हैं कि सत्य-शब्द का जो अर्थ हमें सूझता है, उसकी अपेक्षा इसका कुछ और भी अर्थ हो सकेगा या नहीं, वे यह कह कर अद्वैत-वेदांत का उपहास किया करते हैं कि हमें जो जगत् आँखों से प्रत्यक्ष देख पड़ता है, इसे भी वेदांती लोग मिथ्या कहते हैं, भला यह कोई बात है।"

इसका सारांश यह है कि वेदांत जगत् को मिथ्या तो कहता है, परंतु 'मिथ्या'-शब्द का वही अर्थ नहीं लेता, जो सर्वसाधारण लेते हैं। वह 'नाशवान्' या "हर घड़ी में बदलनेवाले" को मिथ्या कहता है। लोकमान्यजी इसको और स्पष्ट करते हैं—

"वेदांत में जब आभूषण को 'मिथ्या' और सुवर्ण को 'सत्य' कहते हैं, तब उसका यह मतलब नहीं है कि वह ज़ेवर निरुपयोगी या बिलकुल खोटा है.....अर्थात् वह अस्तित्व में है ही नहीं।"

यदि 'मिथ्या' का वेदांत में केवल यही अर्थ लिया जाता, तो न केवल सांख्य आदि, किंतु संसार के सभी दार्शनिक या अदार्शनिक मनुष्य वेदांत से न झगड़ते; क्योंकि न केवल विवर्त्तवादी, परिणामवादी तथा आरंभवादी ही, किंतु अशिक्षित-से-अशिक्षित मनुष्य भी संसार को 'बदलनेवाला' मानता है। इस 'बदलनेवाले' के लिये चाहे 'परिणामी', चाहे 'परिवर्तनशील', चाहे 'असत्य', चाहे 'मिथ्या'-शब्दों का प्रयोग कीजिए, आपकी ख़ुशी। इसमें किसी का क्या बिगड़ता है? परंतु यदि 'बदलनेवाले' शब्द के अर्थ की ओर मीमांसा की जाय, तो पता चलता है कि महात्मा तिलक या अन्य वेदांतियों ने केवल पर्यायत्व समझाकर सुगमता से अपना पीछा छुड़ाया है। अपने विरोधियों को 'पोथन्मन्य' आदि सस्ती उपाधियाँ प्रदान कर देना आसान है, परंतु थोड़ा-सा विचार कीजिए कि शांकर-मत में 'बदलनेवाले' का अर्थ क्या है? क्या वही अर्थ है, जो सर्वसाधारण लेते हैं? या अन्य कोई? शायद अग्रवालजी को लगें कि तुमने 'बदलनेवाले' का बाज़ारू अर्थ क्यों लिया, दार्शनिक अर्थ क्यों न लिया? यह तो अच्छी तरह है। कहीं इसका अंत भी होगा कि नहीं? पारिभाषिक शब्दों का अर्थ समझाने के लिये कहीं तो 'बाज़ारू' शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ेगा।

हम साधारण बुद्धि के मनुष्य 'बदलनेवाले' शब्द का प्रयोग द्रष्टा की अपेक्षा से नहीं, किंतु दृश्य की अपेक्षा से करते हैं। यही इसका 'बाज़ारू' अर्थ है। मेरे सामने मेज़ है। यह चौकी है। इसकी सतह हिलती है। मैं अपनी आँख को कुछ-कुछ मिचमिचाता हूँ, तो मेज़ बदली हुई मालूम होती है। परंतु मैं यह नहीं कहता कि मेज़ बदल गई; क्योंकि तबदीली मुझमें हुई है, मेज़ में नहीं। परंतु यदि मैं बैठा रहूँ, और बढ़ई आकर उसको चीड़-फाड़ डाले, तो मैं कहूँगा कि मेज़ बदल गई। क्या शांकर-मत में भी बदलने का यही अर्थ है? यदि यही अर्थ होता, तो 'विवर्त्त' की सिद्धि कैसे होती? वस्तुतः विवर्त्त का अर्थ ही यह है कि वस्तु हो न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख पड़े। रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी, मृगतृष्णिका में जल तथा स्वप्न आदि के दृष्टांत, जिनको अग्रवालजी ने विस्तारपूर्वक समझाने की कोशिश की है, प्रकट करते हैं कि वेदांत 'मिथ्या'-शब्द से वही नहीं समझता, जिसका उल्लेख लोकमान्यजी ने किया है; किंतु 'मिथ्या' से उनका भी वही 'बाज़ारू' तात्पर्य है कि वस्तु का अस्तित्व न हो, परंतु देख पड़े।

अतात्त्विको अन्यथा भावः विवर्त्त इति उदीरितः—इस उक्ति को महात्मा तिलक ने भी दिया है। अब मेरा नम्र प्रश्न यह है कि आप एक ही प्रसंग में मिथ्या के दो अर्थ कैसे ले सकते हैं? ऐसा करना 'पहेली को सुलझाना तो नहीं, और जटिल करना है।' अग्रवालजी लिखते हैं—

"वेदांत के अनुसार जगत् का कारण ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह सृष्टि उसी अविनाशी की लीला है। उसी के विवर्त्त से इस नामरूपात्मक जगत् का व्यवहार हो रहा है, अन्यथा यह सब मिथ्या अथवा अस्तित्व-विहीन है।"

मैंने अपने लेखों में 'मिथ्या'-शब्द का यही अर्थ लिया है, जो श्रीअग्रवालजी लेते हैं, और इसी अर्थ की मीमांसा की है। परंतु अग्रवालजी मेरे अर्थ को 'बाज़ारू' और अपने को 'पारिभाषिक' या 'दार्शनिक' कहते हैं। ज़रा इसकी लोकमान्य के शब्दों से तो तुलना कीजिए। लोकमान्यजी कहते हैं कि 'मिथ्या' उसको नहीं कहते, जो "अस्तित्व में है ही नहीं।" हमारे समालोचक महोदय कहते हैं कि मिथ्या वह है, जो "अस्तित्व-विहीन है।" हम इसको परस्पर-विरोध न कहेंगे; क्योंकि हम अग्रवालजी को अप्रसन्न नहीं करना चाहते। परंतु इसको क्या कहें, यह समझ में नहीं आता। गीतारहस्य थोड़ा-बहुत हमने भी पढ़ा है, और उन स्थलों पर भी विचार करने की कोशिश की है, जहाँ 'सत्', 'असत्', 'मिथ्या', 'सत्य', 'विवर्त्त', आदि पर प्रकाश डाला गया है। चाहे कोई इसको 'हठवादिता' ही कहे, किंतु हम कोशिश करने पर भी तिलक महोदय से सहमत नहीं हो सके। आप चाहें, तो इसको हमारा दुर्भाग्य कह सकते हैं। हमारा कहना है कि यदि आप जगत् को 'अस्तित्वयुक्त', परंतु 'नाशवान्' मानते हैं, तो आप रज्जु में सर्प, और सीप में चाँदी आदि का दृष्टांत न दीजिए। और, यदि सृष्टि को 'अस्तित्व-विहीन' मानते हैं, तो लोगों पर यह आक्षेप न कीजिए कि उन्होंने 'मिथ्या'-शब्द के 'बाज़ारू' अर्थ लेकर आपके साथ अन्याय किया। लोकमान्यजी ने भी 'बाज़ारू' अर्थ को दार्शनिक अर्थ से मिलाने का यत्न किया है। वह कहते हैं—"अभी कुछ और थोड़ी देर में कुछ कहने वाले मनुष्य को झूठा कहने का कारण यही है कि वह अपनी बात पर स्थिर नहीं रहता—इधर-उधर डगमगाता रहता है।" यह 'बाज़ारू' अर्थ है। परंतु बाज़ारवालों के भावों की मीमांसा की जाय, तो इससे भी कुछ और ही नतीजा निकलता है। वस्तुतः किसी मनुष्य को झूठा इसलिये नहीं कहते कि वह कभी कुछ कहता है, और कभी कुछ। उसको झूठा इस लिये कहते हैं, वह घटना के विरुद्ध बोलता है। कल्पना कीजिए, एक हाथी आता है। वह बैठता है। फिर उठता है, फिर चला जाता है। 'आना', 'बैठना' 'उठना' और 'चला जाना' चार भिन्न-भिन्न व्यापार हैं। यदि मैं कभी कहता हूँ कि 'हाथी आया' और कभी कहता हूँ कि 'हाथी चला गया', तो कौन बाज़ारू आदमी मुझे झूठा कहेगा? हाँ, यदि 'हाथी आवे' और 'चला जाय', परंतु मैं यही कहता रहूँ कि 'हाथी मौजूद है', तो अपनी बात पर स्थिर रहता हुआ भी मैं या तो झूठा कहलाऊँगा, या पागल। लोग कहेंगे, इतनी घटनाएँ हो गईं, और यह अभी अपनी ही बात पर डटा है। यदि मैं, श्रीअग्रवालजी या अन्य कोई पुरुष दिन-भर एक ही बात कहा करे, और 'कभी कुछ और कभी कुछ' न कहे, तो लोग क्या कहेंगे? इस लिये मुझे लोकमान्यजी की बात नहीं जँचती। यदि लोकमान्यजी या अग्रवालजी यह विचार करते कि घटना से विरुद्ध कहनेवाले को झूठा कहते हैं, चाहे वह भिन्न हो चाहे अभिन्न, तो वह आगे चलकर वह नतीजा न निकालते, जो उन्होंने निकाला है।

'मिथ्या' के साथ ही 'दृश्यमान'-शब्द को लीजिए। अग्रवालजी लिखते हैं—

"उपाध्यायजी खंडन तो अद्वैत का करना चाहते हैं, पर 'दृश्यमान'-शब्द का चलता 'बाज़ारू' अर्थ ले लेते हैं—दिखाई पड़नेवाला। वेदांत में दृश्यमान का अर्थ है नामरूपात्मक। क्या उपाध्यायजी नामरूपात्मक एक भी वस्तु ऐसी बता सकते हैं, जो अविनाशी हो? फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर ने इस जगत् को दृश्यमान होने के कारण मिथ्या कहा, तो क्या अनर्थ कर दिया ?"

यह ख़ूब रही ! हाथी नहीं, गज है। हम जो 'दिखाई पड़नेवाला' अर्थ करें, तो 'बाज़ारू' और आप 'नाम-रूपात्मक' अर्थ करें, तो 'बाज़ारू' नहीं। क्यों ? 'नाम रूपात्मक' का क्या अर्थ है ? जो दिखाई पड़ता है, वही तो रूपात्मक है। इसमें आपने पर्याय रख दिया, और हम पर लांछन जड़ दिया। हम कब कहते हैं कि दृश्यमान जगत् अविनाशी है ? हमारा तो केवल इतना कहना है कि रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी या मृग-तृष्णिका में जल के समान अध्यास या विवर्त्त नहीं; और चूँकि शंकराचार्यजी जगत् को विवर्त्त या अध्यास के अर्थ में 'मिथ्या' कहते हैं, अतः हमारा उनसे मत-भेद है। आप कहते हैं—

"मिथ्यात्व के लिये दृश्यमानत्व हेतु पर्याप्त है, बशर्ते कि मिथ्यात्व और दृश्यमानत्व के वे बच्चोंवाले अर्थ न लिए जायँ, जो आप लेते हैं।" हम विनय-पूर्वक पूछते हैं—कौन-से बच्चोंवाले अर्थ ? हमको अपना अर्थ लेने का क्या अधिकार ! आप ही बता दीजिए कि यह बच्चोंवाले अर्थ हैं, और यह बूढ़ोंवाले। हमको तो वेदांत की प्रचलित पुस्तकों में दोनों अर्थ मिलते हैं, न केवल वह, जिनका श्रीलोकमान्यजी ने उल्लेख किया है। हम तो इनमें से किसी को भी बच्चोंवाला नहीं कहना चाहते। परंतु हमारा खंडन करने के लिये आप अपने ही एक अर्थ को बच्चोंवाला कहें, इसमें हमारा क्या दोष ? आप लिखते हैं —"शंकर के दृश्यमान और मिथ्या अर्थों से वैज्ञानिकों (सायंसज्ञों) का भी विरोध नहीं पड़ता।" परंतु क्या वैज्ञानिक लोग इस जगत् को या जगत् की वस्तुओं को विवर्त्त मानते हैं ? यदि विवर्त्त मानते, तो उन नियमों की खोज में न लगते, जिनसे सृष्टि में परिवर्तन हुआ करता है। रस्सी का साँप दिखाई देने के लिये द्रष्टा का भ्रम पर्याप्त है। यदि यही भ्रम भिन्न-भिन्न वस्तुओं अथवा घटनाओं के भिन्नत्व का कारण होता, तो ईजादों के लिये सायंस का कभी प्रयोग न हो सकता, और समस्त प्रयोगशालाएँ व्यर्थ जातीं। आपके मतानुसार "जगत् का कारण ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" प्रथम तो आप यह बतलाइए कि 'कारण' से आप क्या अर्थ लेते हैं ? रस्सी के [illegible] देख पड़ने का कारण देखनेवाले का भ्रम है। [illegible] समस्त जगत् रस्सी में साँप की भाँति विवर्त्त है, तो [illegible] जगत् का कारण ब्रह्म का भ्रम होगा। और, ऐसा [illegible] से प्याज़ के छिलकों के समान आक्षेपों का पुलिंदा [illegible] पड़ेगा, जिनका अद्वैतवादियों की पुस्तकों में [illegible] शांतिदायक उत्तर नहीं।

आक्षेपों को दुहरा देना, उनका विस्तार से [illegible] कर देना या उनके लिये पर्याय रख देना उनकी [illegible] नहीं कहलाता। आपने अपनी आलोचना में [illegible] ऐसी ही सफ़ाई दी है, और कहीं-कहीं शब्दों की [illegible] भुलैयाँ उत्पन्न कर दी हैं। देखिए—

"शंकर दैनिक स्वप्न-व्यवहार को उसी तरह [illegible] नहीं मानते, जिस तरह जगत् को। इसी बात से [illegible] प्रकट होना चाहिए था कि संसार को स्वप्नवत् [illegible] शंकर का अभीष्ट दृष्टांत इतना ही था कि जिस प्रकार [illegible] जाग्रत् दशा में नहीं रहते, उसी तरह ज्ञानी को नाम-[illegible] त्मक दृश्य भाव भी विनाशशील प्रतीत होते [illegible] शंकर को कितना दृष्टांत अभीष्ट था, यह तो उनके [illegible] तथा ग्रंथों से स्पष्ट ही है। शंकर ने स्वप्न का दृष्टांत [illegible] शीलता के लिये नहीं, "विवर्त्त" के लिये दि[illegible] जगत् की विनाशशीलता से तो सांख्य, वैशेषिक [illegible] किसी को इनकार नहीं। परमाणुवादी भी कहते [illegible] जगत् के कार्य-रूप पदार्थ अविनाशी नहीं हैं; [illegible] इनको आपकी भाँति "अस्तित्व-विहीन" या [illegible] नहीं मानते। आप मिथ्या-शब्द का अर्थ [illegible] विनाशशील लेते हैं, और कहीं 'विवर्त्त'। यही [illegible] धींगाधींगी है।

हमारा आक्षेप था कि 'दृश्यमानत्व' को "[illegible] अर्थात् विवर्त्त का हेतु कहना साध्य समहेत्वा[illegible] आप इसको "दार्शनिकों का अपमान" कहते हैं [illegible] कैसे, यह आप भी नहीं बताते। हमारा प्रश्न तो [illegible] कि जो चीज़ दिखाई पड़े अर्थात् जो नामरूपात्म[illegible] उसको हम विवर्त्त कैसे कह दें ? हमको कभी रस्सी [illegible] देख पड़ती है, और कभी रस्सी साँप मालूम होती है। [illegible] ९९ फ़ी-सदी को रस्सी रस्सी ही दिखाई देती है। [illegible] सदी को साँप भी प्रतीत होती है। रस्सी भी [illegible] त्मक या दृश्यमान है, और साँप भी। फिर ९९ [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़कर एक फ़ी-सदी की ओर जाना कहाँ तक ठीक है? हम प्रायः देखते हैं कि मनुष्य के दो आँखें होती हैं। कभी-कभी एक आँख के मनुष्य भी दिखाई देते हैं। इस दृश्यमानत्व से हम क्या नतीजा निकालेंगे? यही न कि मनुष्य के दो आँखें होती हैं? इसी प्रकार यदि हमको ९९ फ़ी-सदी रस्सी में साँप ही दिखाई पड़ता, तो शायद हम दृश्यमानत्व को विवर्त्त का हेतु मान लेते। परंतु ९९ फ़ी-सदी अनुभव को छोड़कर एक फ़ी-सदी को अपना नियम बनाना कौन-सा न्याय है? हम फिर कहते हैं कि विनाशशीलता और बात है, और विवर्त्त या अध्यास और बात। समस्त कार्य विनाशशील होते हैं; क्योंकि उनका आदि और अंत होता है। जगत् विनाशशील है; क्योंकि इसका आदि और अंत है। परंतु विवर्त्त वह है, जिसका न आदि हो, न अंत। उसका अस्तित्व ही न हो, केवल द्रष्टा के भ्रम के कारण उसकी प्रतीति होती हो। हम अग्रवालजी से पुनर्विचार के लिये नम्र अनुरोध करते हैं।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का कर्त्तव्य

कम-से-कम माधुरी का एक ग्राहक

अवश्य बनाकर भेजे

इसलिये कि मातृभाषा के प्रति कुछ आपका भी तो कर्त्तव्य है।

क्योंकि--

भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित विद्वानों का कहना है—

माधुरी

सर्वश्रेष्ठ उपयोगी पत्रिका है

वार्षिक मूल्य केवल ६॥) रु०--छः मास का ३॥)

निवेदक--मैनेजर 'माधुरी', लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकार—अज्ञात] [**स्वरकार**—श्री० राजाराम भार्गव

राग—बंगाल

बिलावल ठाट का औडव संपूर्ण राग है। आरोही में धैवत व निषाद वर्जित है, अवरोही संपूर्ण है, मध्यमव च षड्ज संवादी है। इस ठाट में सिवा बंगाल के कोई दूसरा राग ऐसा नहीं, जिसके आरोही में धैवत व नि के स्वर वर्जित हों। इसलिये इसकी सूरत में कभी फ़र्क़ नहीं हो सकता।

आरोही—स र ग म प सं अवरोही—सं न ध प म ग र

गीत—होली

स्थाई

रूप जोबन गुन खेलत होरी,
नयो जोबन को उभार।

अंतरा

अंग भभूत नयना मद ते भरे
अठलावत बन-बन आवत नार।

ताल—झपताल

स्थाई

धिन	नक	धिन	धिन	नक	तिन	नक	तिन	तिन	नक
×		२			०		३		
	स		र						स
स	म	म	गम	म	ग	र	ग	र	न
रू	ऽ	प	ऽऽ	जो	ब	न	गु	ऽ	स
स	र		म	प	म	ग	र	—	ग
खे	ऽ	ल	ऽ	त	हो	ऽ	ऽ	ऽ	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	—	प	र	र	ग	र	स	र	स
मु	ऽ	यो	ऽ	जो	ब	न	को	ऽ	उ
न	ग	—	ग	म	ग	र	स	र	स
स	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
भा					अंतरा				
					प	—	सं	—	सं
					अं	ऽ	ग	ऽ	भ
	—	—	सं	—	सं	रं	गं	—	—
सं	ऽ	ऽ	त	ऽ	नै	ऽ	ना	ऽ	ऽ
भू									
		रं							
सं	रं	गं	—	मं	गं	रं	सं	नध	प
म	द	तें	ऽ	भ	रे	ऽ	अ	ऽऽ	ठ
संप	म	प	—	प	म	ग	र	—	स
लाऽ	ऽ	व	ऽ	त	ब	न	ब	ऽ	न
म	—	म	—	प	म	ग	र	—	स
आ	—	व	ऽ	त	ना	ऽ	ऽ	ऽ	र

जादूगरों का बाबा

इस सुंदर और सचित्र पुस्तक की गुप्त विधियों को सीखकर जो चाहेंगे हो जायेगा। दुर्भाग्य और शत्रु का नाश होगा, मुकद्दमा में जीत, संतान, रोजगार और धन की प्राप्ति होगी, अर्थात् जिसके साथ प्रेम है वह व्याकुल होकर स्वयं तुम्हारे पास चला आवेगा। कोई सिद्धि, कोई जप, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। केवल -) का टिकट भेजकर पुस्तक मुफ्त मँगवाओ। अपना पता साफ़ लिखो। मिलने का पता—गुप्त विद्याप्रचारक आश्रम,

२६ P. B. 150 लाहौर

जर्मन प्रोफ़ेसर का नया आविष्कार

सिर्फ़ बाह ही वायोकेमिक दवाइयों से सब रोग आराम हो रहा है। वायोकेमिक होम्योपैथिक के अंतर्गत है। पुरानी होम्योपैथिक का पूरा ज्ञान लाभ करना कठिन है। पर वायोकेमिक बहुत ही सुगम है, प्रसिद्ध होम्योपैथ एम्० आर० बनर्जी, एम्० ए०, हेड मास्टर रेलवे हाई स्कूल मोकामाघाट की बनाई हुई, वृहत् वायोकेमिक विधान (२॥।=)) अवश्य पढ़िए, और बहुत आसानी से एक प्रवीण डाक्टर बनिए नहीं तो मूल्य वापस। भाषा, छपाई बहुत ही सरल, सुगम और अच्छी है। पुस्तकसजिल्द, पेज क़रीब ४०० के हैं।

शांति औषधालय, मोकामाघाट, E. I. Ry.

याद रखिए दौलतमंद पुरुष धनी नहीं, हुनरमंद पुरुष धनी है।

इंडियन

टैलरिंग-कॉलेज (रजि०)

में शीघ्र प्रविष्ट हो जायँ। ११० लिबास साइंटीफ़िक शुद्ध रीति द्वारा सिखलाकर सनद दी जाती है। फ़ीस ६०), समय दो मास से तीन मास।

हर लिबास की कटाई विद्या पर अद्वितीय पुस्तकें

सब परिवार, पाठशालाओं और दर्जी पेशा के लिये अद्वितीय कोट; १७२ प्रश्न कपड़ा लगाने के विषय में, ४८ चित्र आर्ट पेपर पर मू० १) अ० क़मीज १५८ प्रश्न कपड़ा लगाने के विषय में, ५६ चित्र आर्ट पेपर पर मू० ॥।) अ० पाजामा ॥) अ०, फ़ाकविनी कोट ॥) अ०, दौलत-दर्जियाँ ५)। नियम मुफ़्त।

इंडियन टैलरिंग-कालेज, होशियारपुर (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. प्राचीन भारत में विज्ञान *

विच्छेदमयी रेखागणित

विच्छेदमयी रेखागणित (Analytical Geometry) में भी हिंदुओं के भाव पूर्णतः स्पष्ट थे । वाचस्पति को तीन विस्तारों का ज्ञान था, और उसकी तीनों अक्षरेखाएँ (Axes) वही थीं, जो आधुनिक समय में हैं । उसने किसी एक बिंदु के स्थान निर्द्धारित करने के नियम भी बताए हैं । इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हिंदुओं को इस शास्त्र के मूल का संदेह-रहित ज्ञान था ।

सूक्ष्म-गणित

Infentesimal Calculus को सब कोई सर आइज़िक न्यूटन द्वारा आविष्कृत कहते हैं; परंतु "जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ" वाली कहावत के अनुसार गवेषणा करने पर यह ज्ञात होगा कि जनश्रुति सदैव ही ठीक तथा सत्य नहीं होती । समस्त संसार चाहे चिल्लाया करे कि न्यूटन ने इस शास्त्र का आविष्कार किया; परंतु हिंदू-ग्रंथ धीरे से कान में यही कहते हैं कि हिंदू लोग योरप से कई शताब्दी पूर्व ही इसके ज्ञाता थे । यथार्थ में भास्कराचार्य ने गणित की इस शाखा का आविष्कार किया है । भास्कर के एक वाक्य से यह बात संपूर्णतः सिद्ध की जा सकती है ।

इयं किल स्थूला गतिः अथ सूक्ष्मा तात्कालिकी कथ्यते·····यदा आसन्नस्तिथ्यन्तस्तदा तात्कालिकी गत्या तिथिसाधनं कर्त्तुं युज्यते । तथा समीपचालनम् यदा तु दूरतरस्तिथ्यन्तः दूरचालनं वा चन्द्रस्य तदा अद्यया स्थूलया कर्त्तुं युज्यते स्थूलकालत्वात् । यतश्चन्द्रस्य गतिः महत्त्वात् प्रतिक्षणं समाना भवति अतस्तदर्थं विशेषोऽभिहितः—भास्करसिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय—गतिस्फूर्ति-प्रकरण ।

भास्कर ने ग्रहों की तात्कालिकी गति (Instantaneous Motion) की गणना करते समय उसके बद्ध स्थानों का मिलान किया है, और उसकी गति वह उस समय के लिये निरंतर मानता है । वह सत्य अति सूक्ष्म होगा; परंतु एक त्रुटि से किसी भी दशा अधिक नहीं हो सकता । 'त्रुटि' की परिभाषा श्रीयुत सर ब्रजेंद्रनाथ सील लिखते हैं—"ज्योतिषांक समय की एक त्रुटि का परिमाण एक सेकंड के चौंतीस सहस्रवें भाग के बराबर होता है । भास्कर का न्यूटन पूर्व ही गणित की इस शाखा के आविष्कार करने जो श्रेय है, उसका निर्णय करने में इसका मूल्य अति है । भास्कर ने इसका केवल सार ही नहीं निकाला किंतु इसका ज्योतिष के प्रश्नों तथा उनकी गणना यथेष्ट प्रयोग भी किया था ।" उसने एक ज्यासारिणी बनाई है, जिसमें गणित की इस शाखा का

* परिशिष्टांक से संबद्ध ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य है। स्पाटिस उड ने कहा है कि योरप के गणितज्ञ, भारत में ऐसी रीतियों का प्रचलित होना सुनकर बड़े आश्चर्य में होंगे।

इसके उपरांत गतिशास्त्र (Kinitics) की बारी आती है। "प्राचीन हिंदुओं को मध्याकर्षण (Gravity), गति तथा शक्य-शक्ति (Kinitic and potential energy) का ज्ञान था, और वे उनको उसी भाव से मानते थे, जैसे न्यूटन। कणाद का कथन है कि किसी वस्तु के गिरने या उतरने का मुख्य कारण मध्याकर्षण ही है। उदयन आचार्य का मत है कि मध्याकर्षण अव्यक्त है; परंतु इसका अनुभव केवल किसी वस्तु के गिरने से ही होता है। वल्लभ का मत है कि यह शक्ति तभी व्यक्त होती है, जब एक वस्तु ऊपर से नीचे को गिरती है।" सील कहते हैं— "हिंदुओं को गति तथा उसके तत्त्व का पूर्ण ज्ञान था।" पुनः वही कहते हैं कि हिंदुओं को भिन्न-भिन्न भाँति की गतियों तथा निवेशित शक्तियों (impressed forces) का पूर्ण ज्ञान था। वैशेषिक के मतानुसार "वेग अथवा किसी एक वस्तु की एक शुद्ध रेखा में चलने की इच्छा का प्रतियोग करने के लिये स्पर्शनीय द्रव्यों का संयोग ही प्रस्तुत रहता है—जैसे संघट्ट (impact) अथवा संघर्ष (Friction) जिसमें स्थिर वायु का भी संघर्ष सम्मिलित है, जैसे एक बाण का फेंका जाना"। गति-शास्त्र (Dynamics) में न्यूटन ने जो तीन नियम बताए हैं, वे हिंदुओं के ही गति-शास्त्र के प्रतिबिंब हैं। पुनः सील कहते हैं— "वेग द्वारा कर्म जनित होगा, परंतु वह कर्म निवेशित शक्ति के प्रतिकूल ही होता है, और पुनः शक्तिहीन होकर अंत में विलीन हो जाता है।" उद्योतकर का मत है, और श्रीधर उसका समर्थन करते हैं कि किसी एक पदार्थ जो कणों द्वारा सृजित है, मध्याकर्षण का प्रभाव वही नहीं होता, जो प्रत्येक कण के पृथक्-पृथक् प्रभाव के योग के समान होता है। उसमें इतना कम अंतर होता है कि वह अव्यक्त ही होता है। लोरेंज के नवीन गति-शास्त्र के अनुसार गुरुता का जो तात्पर्य (Cancept of Mass) है, वह इस विचित्र आध्यात्मिक परिकल्पना से बहुत मिलता है। यह बड़े मार्के की बात है। जिस भाव को सील विचित्र आध्यात्मिक परिकल्पना

गति-शास्त्र

कहने में नहीं चूकते, वही आधुनिक समय के एक अग्रगण्य तथा विचारवान् गणितज्ञ का विचार है। एक बात इससे और जानी जाती है कि जो बातें हिंदुओं की पहले निरर्थक प्रलाप कही जाती थीं, वही अब विज्ञान के विकास में अतिशय स्पष्ट तथा सत्य मानी जाती हैं। पुनः हिंदुओं ने गति को दिशा-बद्ध माना था, फिर उसकी गति-कला की गणना की थी (Component of the Velocity)। इन सब बातों के अवलोकन से यह बात तनिक भी संदेहात्मक न रहेगी कि हिंदुओं का गति-शास्त्र आजकल के गति-शास्त्र से कहीं अधिक अवस्था में परिवर्द्धित था, तथा उनका इस शास्त्र में बहुत ऊँचा स्थान था।

इस शास्त्र के अंतर्गत हिंदुओं का ऊँचा स्थान सिद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाना ही है। उस समय हिंदुओं का इस शास्त्र में जो स्थान था, वही अब तक चला आता है। केवल उसी शास्त्र का अधिक भाग अज्ञानता तथा अकर्मण्यता द्वारा आवृत हो गया है। आजकल के पंडित, सहर्ष सदैव निर्धन रहना श्रेय न समझकर ब्राह्मणत्व को तिलांजलि दे, वैश्यत्व तथा उसके सहयोगी धनोपार्जन में लिप्त रहकर, इस शास्त्र का अध्ययन केवल एक डिप्लोमा के वास्ते करते हैं। अनुसंधान (Research) का कोई भी भाव उनमें नह है।

ज्योतिष

परंतु हमारे कुछ भलेमानस भाई प्राचीन विद्या पर पानी फेरना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हिंदुओं को इस शास्त्र का ज्ञान जैसा था, वैसा तो था ही; परंतु उन्हें इस बात तक का पता नहीं था कि सूर्य स्थिर है, अथवा पृथ्वी। आजकल के वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी घूमा करती है, तथा सूर्य स्थिर है, और यह आविष्कार हिंदू लोग मानने को तनिक भी प्रस्तुत नहीं हैं। पर देखिए, सील क्या कहते हैं—"लल्ल तथा आर्यभट्ट-ऐसे ज्योतिषज्ञों ने, जिनको पृथ्वी के पूर्व से पश्चिम-ओर के दैनिक घूमने पर विश्वास था, यह व्यक्त किया है कि तारकमय आकाश का प्रत्यक्ष चक्कर, जो प्रतिकूल दिशा में होता है, आपेक्षिक गति (Relative motion) द्वारा होता है।" पुनः नक्षत्र-कल्प में लिखा है—

कपित्थफलवद्विश्वं दक्षिणोत्तरयोः समम्।

अर्थात् कपित्थ-फल की तरह पृथ्वी गोलाकार है, परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल उत्तर और दक्षिण में कुछ समान अर्थात् दबी हुई है। जब पश्चिमी विद्वान् पृथ्वी को नारंगी की उपमा देते हैं, तब आर्यगण को कदंब और कपित्थ के साथ उपमा देते देख क्या विद्वान्गण नहीं समझ सकेंगे कि प्राचीन आर्य पृथ्वी के स्वरूप को पश्चिमी वैज्ञानिक गण से पूर्व ही भलीभाँति जानते थे। फिर भास्कराचार्य का कथन है—

नान्याधार स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे ;
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ।

अर्थात् पृथ्वी विना आधार के ही अपनी शक्ति द्वारा आकाश-मंडल में स्थित है, और उसके पृष्ठ पर चारों ओर देव, दानव, मानव आदि निवास कर रहे हैं। तब कैसे विश्वास न करें कि आर्यगण पृथ्वी की स्थिति को भली भाँति जानते थे। फिर हम ब्रह्मपुराण में देखते हैं—

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यसि ;
भूमिच्छायागतश्चन्द्र चन्द्रगोऽर्क कदाचन ।

अर्थात् पूर्णिमा आदि पर्व-दिनों में तुम चंद्र-सूर्य को आच्छादित करोगे, कभी पृथ्वी के छाया-रूप से चंद्र को और कभी चंद्र के छाया-रूप से सूर्य को आच्छादित करोगे। फिर एक स्थान पर ऐसा कथन आता है—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ;
भूच्छायां प्रमुखश्चन्द्रो विशत्यर्थो भवेदसौ ।

अर्थात् मेघ के समान चंद्र, सूर्य के अधःस्थ होकर, सूर्य को आच्छादित करता है, और चंद्र भूच्छाया में प्रवेश करता है। तब कौन बुद्धिमान् नहीं जान सकते हैं कि प्राचीन भारतवासी ग्रहण-विज्ञान को भलीभाँति जानते थे।

फिर सील का कथन है—"ज्योतिष के अंतर्गत हिंदुओं की निरीक्षण-शैली बहुधा अतिशय अशुद्ध है, जैसे सूर्य तथा तारकों का निरीक्षण। और, कदाचित् इसका कारण यह था कि हिंदुओं को इसमें व्यवहार-अनुराग (Practical interest) नहीं था, परंतु चंद्र के बारे की सनातन वार्त्ता (Constants),—जिसका चंद्र के ग्रहण तथा कला-दशा की गणना करने में प्रयोग किया जाता है, जिनके लिये हिंदुओं को अतिशय अनुराग था—उत्तमता तथा शुद्धता की परा काष्ठा तक पहुँच चुकी थी। वे ग्रीस या अरब की गणनाओं से कहीं बढ़कर हैं। और शुद्धता में वे लाप्लास की सारिणी के लगभग पहुँच चुके थे। इसका स्पष्टीकरण केवल इसी से हो सकता है कि इन सनातन विषयों के संबंध में हिंदुओं ने सहस्रों वर्षों तक गणना करके, उसका अपने व्यावहारिक ज्ञान से मिलान किया है, और यही रीति 'दृग्गणित' कही जाती थी।" अभी थोड़े दिन हुए, योरपवालों ने नाना यंत्रों की सहायता से सूर्य-कलंक का (Sun spots) अनुमान किया है, और कहते हैं कि यह हमारा नूतन आविष्कार है; परंतु आर्यशास्त्रों को देखने से अति सुगमता से यह भ्रम दूर हो सकता है। विष्णु और मार्कंडेय आदि पुराणों और वराहमिहिर आदि की ज्योतिष-संहिताओं में इसका विशेष विवरण पाया जाता है। पुराणों में उल्लेख है कि विश्वकर्मा ने जब भ्रमी-नामक यंत्र का सूर्य-मंडल पर प्रयोग किया, तब उस अस्त्र का सूर्य-मंडल के जिस अंश में स्पर्श हुआ वही अंश श्यामिका को प्राप्त हो गया, और उसी को सूर्य-कलंक कहते हैं।

विष्णुपुराण में लिखा है—

स्थाली स्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ;
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः ।
न न्यूना नातिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ;
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि वै ;
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ।

ज्वार-भाटा से यथार्थ में समुद्र का जल ह्रास वृद्धि को प्राप्त नहीं होता किंतु थाली में जल रख उसे अग्नि पर चढ़ाने से जैसे अग्नि-उत्ताप द्वारा उ आकर वह वृद्धि को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही शुक्ल कृष्ण-पक्ष की चंद्र-कला द्वारा आकृष्ट होकर समुद्र ह्रास एवं वृद्धि को प्राप्त हुआ करता है। आर्य-ग्रंथों के प्रमाण देखने से किसको विश्वास न होगा कि आर्य को ग्रह-आकर्षण-शक्ति और ज्वारभाटे का कारण था। वार और तिथि आदि का आर्य महर्षियों ने प्रथम आविष्कार करके, समय की शृंखला की थी। वर्ष भर में जिस दिन दिन-रात्रि समान होते हैं, वह योरपीय पंडित टोलेमी—जिसे योरपियन जाति नियम का आविष्कर्ता मानती है—के जन्म लेने से काल पूर्व ही प्राचीन आर्य-आचार्यगण द्वारा लिखा हो चुका था।

परंतु विना गणित-ज्योतिष के फलित ज्योतिष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी नहीं होता, इस कारण भारत का फलित-शास्त्र ही गणित-शास्त्र की उन्नति का प्रमाण है। आजकल के योरपीय संवादों का पाठ करने से बुद्धिमान्-मात्र ही जान सकेंगे कि आए दिन योरपवासी किस प्रकार से मिटीरोलॉजी (Meteorology)-विद्या से अपनी दृष्टि हटाकर फलित-ज्योतिष की सत्यता की ओर झुकते जाते हैं। आए दिन योरप का यह फलित-ज्योतिष का पक्षपात ही हमारे इस गणित एवं फलित-ज्योतिष-विषयक सिद्धांत को पूर्ण रूप से दृढ़ कर रहा है। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हिंदू लोग इस अंतरिक्ष-विद्या (Meteorology) से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। उनका तो इस विद्या में इतना अधिक ज्ञान था कि आधुनिक वैज्ञानिक भी इतनी मिहनत के उपरांत उनके बराबर नहीं पहुँच पाए हैं। छः ऋतुएँ, सूर्य का दक्षिणायन-उत्तरायण होना उसका देश-दशा पर प्रभाव, जल-वृष्टि के लक्षण तथा वर्षा का पूर्वाभास, अवृष्टि का पूर्व-ज्ञान—यह सब बातें उनके इस विद्या की अभिज्ञता रखनेकी परिचायक हैं। श्रीयुत सील कहते हैं—"अपनी अंतरीक्ष-विद्या में हिंदुओं ने वर्ष की ऋतुओं का पूर्व-ज्ञान प्राप्त करने के लिये वृष्टिमापक यंत्र का आविष्कार किया, तथा उसका प्रयोग भी किया। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के बादलों का निरीक्षण किया, तथा वायु-संबंधी समस्त गोचर-वस्तुओं (Phenomena) का भी निरीक्षण किया। (जैसे वे बादलों की उँचाई का निरूपण करते हैं—उस दूरी का निरूपण करते हैं, जितनी दूर से विद्युत् का प्रकाश देख पड़ता है, तथा घन का शब्द कर्ण-गोचर होता है, सब प्रकार के भूकंपों का प्रभाव जितनी दूर होता है, तथा पृथिवी की वायु जितने ऊपर तक मिलती है, इन सबका निर्णय वे लोग करते थे)। इन सब निरीक्षणों का केवल एक उत्तर है कि हिंदुओं का जो इस शास्त्र में स्थान था, उसे कोई अब तक नहीं पा सका है।

वस्तु-तत्त्व

अच्छा, तो गणितांतर्गत समस्त शास्त्रों का भली भाँति निरूपण हो चुका, और हिंदुओं की उस विषय में विद्वत्ता गवेषणा की कसौटी में कसी जा चुकी, और वह खरी उतरी भी। अब उसी पर अवलंबित वस्तु-तत्त्व की बारी आती है। उसमें भी उस समय हिंदुओं का स्थान अकेला ही था। यद्यपि वे इस शास्त्र में पंडित थे, तथापि इतनी अधिक अभिज्ञता प्राप्त किए हुए थे कि उनके कोई भी उस समय के सिद्धांत आज तक मिथ्या नहीं हुए हैं, और उनके बहुत-से सिद्धांत आजकल के सबसे नूतन सिद्धांतों से टक्कर लेते हैं। श्रीयुत सरकार लिखते हैं—"हिंदू वस्तु-तत्त्व-विद्वान् लोगों के यत्न कदाचित् ग्रीसवालों से अधिक पूर्ण तथा अन्य शास्त्रों की गवेषणा में अधिक संपर्क रखनेवाले हैं।" उनका अणुवाद अत्यंत पूर्ण तथा शुद्ध था। फ़्लीमिंग का वाक्य है—"अणुवाद का जन्म ग्रीस में नहीं हुआ, परंतु पूर्व दिशा ही इसकी जन्म-दिशा है। भारतवर्ष के दर्शन-शास्त्रों में इसका आभास पाया जाता है।" इसी शास्त्र के भीतर पदार्थविद्या है। उसमें इनका यथेष्ट ज्ञान था। उनके विचार से यह जगत् तीन तत्त्वों द्वारा सृजा गया है—प्रथम सतोगुण, द्वितीय रजोगुण अर्थात् शक्ति तथा तमोगुण अर्थात् पदार्थ, जिसके चिह्न-स्वरूप गुरुता तथा निश्चलता हैं। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने इससे बढ़कर काम किया। उन्हें रंगों का मूल तत्त्व ज्ञात था। उनका यह कथन कदापि नहीं था कि एक वस्तु में स्वभावतः एक ही रंग होता है, और उस रंग का होना उसी वस्तु पर निर्भर है। सील लिखते हैं—"पुनः रंग-चैतन्यता एक तीसरी श्रेणी की तन्मात्रा द्वारा होती है। यह ऐसे कण हैं, जो सुप्रभ उत्ताप तथा ज्योति की शक्ति द्वारा परिवेष्टित हैं। साथ-ही-साथ उनमें कंपन तथा संघर्षण की शक्ति वर्तमान रहती है, और वे उत्ताप तथा ज्योति-कण के मूल-स्वरूप ही हैं।" इस मत का मूल्य अत्यधिक है। अभी कल तक इस सिद्धांत का एक भाग, पाश्चात्य देशों में, न्यूटन के नाम से प्रचलित था। परंतु जैसा न्यूटन का सिद्धांत संकीर्ण था, वैसा यह नहीं है। न्यूटन तथा उनके पक्षवाले, सभी यह मानते थे कि उत्ताप तथा प्रकाश की यात्रा कणों द्वारा होती है, परंतु वे कण किसी और पदार्थ के नहीं होते थे, केवल उत्ताप तथा प्रकाश के ही होते हैं। हिंदुओं का भी मत इसी तरफ़ झुकता है, परंतु वे इसी पर तुले नहीं बैठे हैं। वे एक तीसरी तन्मात्रा को चलाते हैं, और उन्हें उत्ताप तथा प्रकाश के कणों का मूल तत्त्व मानते हैं। इसलिये भारतवर्ष की श्रेष्ठता और सब देशों के ऊपर किसी अंश में अवश्य सिद्ध हो जाती है। फिर सरकार महाशय का मत है कि हिंदुओं को स्थिति-स्थापकता (Elasti-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

city), संलग्नता (Cohesiveness), अभेदनत्व (Impenetrability), स्निग्धता (Viscosity), द्रवता (Fluidity), रंध्र-विशिष्टता (Porosity) इत्यादि का ज्ञान था। फिर सील कहते हैं—"केशोपम गति का उन्हें ज्ञान था। उन्होंने वृक्षों का मूलों द्वारा जल खींचना इसी का परिचायक बताया।" रंध्र-विशिष्ट पात्रों में जल की भेदन-गति का दर्शन कराया गया था, और नलियों में पानी का ऊपर जाना वायु का प्रभाव बतलाया गया था। इससे यह ज्ञात होता है कि उन्हें वायु के दबाव-मापक-यंत्र (Barometer) का भी यथेष्ट ज्ञान था। इसलिये हिंदुओं की पदार्थ-विद्या बड़ी ही उन्नतावस्था में थी।

शक्ति

वस्तु-तत्त्व का एक मुख्य अंश शक्ति ही है—इसे आर्यगण जानते थे, और इसका मूल्य ख़ूब जान-बूझकर ही इसकी पूजा-प्रतिष्ठा करते थे। इसके वैज्ञानिक मूल्य से भी वह अनभिज्ञ नहीं थे। उनको यह भली भाँति ज्ञात था कि समस्त जगत् छोटे-छोटे कणों द्वारा सृजा है, वे कण एक क्षण भी स्थिर नहीं रहते हैं, और उछलते-कूदते रहते हैं। प्रोफ़ेसर मैकडानेल अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास में कहते हैं—"एम्पीडाकल्स का मत है कि उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, जो पहले से ही वर्तमान नहीं था, और जो पहले वर्तमान था, वह विलीन भी नहीं हो सकता। भारतवर्ष भी एक समानता रखता है, और वह पदार्थों के अनादित्व तथा अंत के रूप में, सांख्य-मत में भी, वर्तमान है। ग्रीस की जन-श्रुति के अनुसार, दर्शनाध्ययन के हेतु थेल्स, एम्पीडाकल्स, एनासीगोरस, डेमाक्राइटस और बहुतेरे मनुष्यों ने पूर्वी देशों की यात्रा की थी। तदनुसार कम-से-कम इसकी ऐतिहासिक संभवता तो है ही कि ग्रीस के ऊपर फ़ारस द्वारा भारतीय विचारों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा होगा।" परंतु "इस भाव से शक्ति भी पदार्थों ही के समान है। शक्ति का अति सूक्ष्म-भाग गुरुत्व तथा निश्चलता-विहीन होता है, इसलिये यथार्थ में वे जड़-श्रेणी में नहीं गिने जा सकते हैं; परंतु उनमें परिमाण तथा परिच्छिन्नत्व, दोनों ही वर्तमान हैं।" ये सिद्धांत हमारे बड़े काम के हैं। आजकल भी, जब कि विज्ञान की उन्नति इतनी हो गई है, कोई भी इसको अशुद्ध नहीं सिद्ध कर सका है, प्रत्युत ऊपर से बहुत शीघ्र प्रतिपादित परिमाणुवाद (Quantum theory) ने इसपीठ ठोंकी है। पुनः "शक्ति की प्रकृति ही कार्य करप्रत्याघात के रोकने तथा गति के आविर्भाव करनेहै। अंततः सब शक्ति चंचल ही है, यहाँ तक कि अनुवृत्ति-शक्ति भी अदृश्य रूप में चंचल ही होती है।" मत भी भारतवासियों के पदार्थों के चंचलवाद के ज्ञान(Kinetic theory of matter), जिसे लोग क्रांतिकी संतान बताते हैं, पुष्ट करता है। पुनः शक्ति को यता का इन्हें पूर्ण ज्ञान था। गुरुता का योग तथा का भी योग सनातन रहता है, चाहे वह व्यक्त अथवा अव्यक्त, वास्तविक अथवा अनुभूत वृत्ति। में शक्ति-संबंधी सबसे आवश्यक बात आती है। वह कि अग्नि तथा प्रकाश शक्ति के ही दो भिन्न-भिन्न हैं। भारतीय वैज्ञानिक इस बात से अनभिज्ञ न कणाद—वैशेषिक मत के पिता ने इस अद्भुत मतप्रतिपादन किया है कि प्रकाश तथा उत्ताप एक ही के दो भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं।

उत्ताप तथा प्रकाश

इन दो विषयों में भी आर्यगणों का हस्तकम न था। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट ही है कि कणाद को उसंबंधी यथेष्ट ज्ञान था। उदयन का कथन है कि उत्ताप सब उत्तापों का आगार है। उत्सेचन (Ebullition) का ठीक-ठीक अर्थ शंकर मिश्र ने बताया है। प्रमें प्रतिबिंब, कालुष्य तथा निष्कालुष्य, इन सबका वैनिक तत्त्व उद्योतकर को ज्ञात था। उसे यह मालूम था प्रासंगिक कोण (Angle of incidence), प्रतिबिंकोण (Angle of reflection) के समान होता प्रकाश के वक्रीगुण (Refraction) का भी उसे था। प्रकाश-रश्मि के रासायनिक प्रभाव का ज्ञान को था। उस समय में अर्थात् दर्शन-काल में ही, परिवर्तन काँच (Lens) तथा दर्पण, गोल अथवा कार, सभी निर्मित होते थे, और दिखाए भी जाते प्रकाश की रश्मियाँ काँचों द्वारा किसी जलनेवाली वस्तुएकत्रित की जाती थीं, और उनसे वह वस्तु जलाई जाती थी।

(क्रमशः)

हृषिकेश त्रिवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरकारी की खेती *

यह सबको विदित है कि मनुष्य को पोषण के लिये अन्न की आवश्यकता है। उसी प्रकार एक-न-एक तरकारी, किसी भी रूप में, निश्चित समय में खाना भी आवश्यक है। यही कारण है कि समस्त भूमंडल पर सभ्य या असभ्य जातियाँ, अनंत काल से, इसका उपयोग करती आई हैं। तरकारियों में पोषक पदार्थ अधिकता से है। इसीलिये हमारे यहाँ के बहुत-से ऋषिगण वनस्पति पर ही निर्भर रहते थे। भारतवर्ष में इसकी खेती भी पहले अधिकता से की जाती थी। यह विज्ञान बहुत ऊँचे शिखर पर पहुँच गया था। परंतु समय ने जिस प्रकार भारत के अन्य विज्ञान लुप्त कर दिए, उसी प्रकार यह भी अवनत दशा पर पहुँच गया है। वर्तमान समय में, भारत में, तरकारी की खेती अधिकता से की तो जाती है, किंतु प्रायः तरकारियाँ महँगी होती जाती हैं। इसके अनेक कारण हैं। बहुत-से विद्वानों का यह मत है कि भारत में तरकारी अधिकता से उत्पन्न की जाती है, इसलिये इसमें कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है। परंतु यह विचार ठीक नहीं। मान लीजिए, यहाँ पर तरकारी अधिकता से होती है; परंतु तरकारी उत्पन्न करनेवालों की आर्थिक दशा देखी जाय, तो वे दरिद्रता में फँसे हुए मिलेंगे। ये जितना ख़र्च करते हैं, उतना लाभ नहीं उठा पाते। यदि आधुनिक सुधारों की ओर ध्यान दिया जाय, तो इनको अधिक लाभ हो सकता है। तरकारी की खेती से जितना लाभ होता है, उतना लाभ अन्न की खेती से नहीं। कारण, अन्न की खेती में प्रायः ईश्वरीय कृपा पर अधिक अवलंबित रहना पड़ता है। समयोचित अच्छी वर्षा में अच्छी फ़सल होती है, परंतु उसी के अभाव में दुष्काल गर्जन करने लगता है। तरकारी की खेती करनेवालों को खेती आरंभ करने के पहले ही जल, भूमि और खाद का प्रबंध कर लेना पड़ता है, जिससे फ़सल ख़राब होने की कम संभावना रहती है। इसकी खेती थोड़ी पूँजी से आरंभ की जा सकती है, और दो या अधिक-से-अधिक चार महीने के अंदर आमदनी होती रहती है, जिससे क़र्ज़ के लिये साहूकारों की शरण भी नहीं लेनी पड़ती है। अब मैं आपके सम्मुख, व्यापारिक रीति से, तरकारी की खेती के विज्ञान को उपस्थित करता हूँ।

तरकारी के बग़ीचे के लिये स्थान का चुनाव

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हम जो तरकारी की खेती करना चाहते हैं, वह व्यापार के लिये है। घरेलू तरकारी के लिये प्रायः ख़र्च की ओर ध्यान नहीं दिया जाता; परंतु व्यापारिक दृष्टि से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तरकारी कम समय, कम ख़र्च

* सर्वाधिकार सुरक्षित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम मिहनत से उत्पन्न की जाय, जिससे लाभ अधिक हो। इसलिये इसकी खेती आरंभ करते समय सोच-विचार कर कार्य करना चाहिए। आरंभ में बग़ीचे के लिये ठीक-ठीक स्थान चुनना आवश्यक है। पर प्रायः देखा गया है कि अधिक ख़र्च और परिश्रम करने पर भी यथेष्ट लाभ नहीं होता। इसका कारण ठीक स्थान का न चुनना ही है। स्थान चुनते समय निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) स्थान ऐसा हो, जहाँ से तरकारी बिक्री के स्थान पर शीघ्रता, सरलता एवं कम ख़र्च में पहुँच सके।

(२) उस स्थान में सिंचाई का पूरा प्रबंध हो।

(३) मज़दूर बहुत मिल सकें, और मज़दूरी की दर सस्ती हो।

(४) खाद यथेष्ट परिमाण में मिल सके।

(५) जो तरकारियाँ महँगी बिकती हैं, उनकी बिक्री जहाँ तक हो, उस स्थान में या आसपास में हो सके।

(६) जल-वायु अनुकूल हो।

(७) ज़मीन ऐसी हो कि कम ख़र्च में खेती के लायक़ बनाई जा सके।

अब इन्हें क्रमशः इस प्रकार समझिए—

(१) मान लीजिए, तरकारी का बग़ीचा ऐसे स्थान में लगाया गया कि जहाँ से कोई निकासी का रास्ता नहीं है, तो ऐसी दशा में उसे बाहर ले जाना कठिन हो जायगा। अतएव बहुत-सी तरकारी, सड़ने के कारण, विवश होकर सस्ते भाव पर बेच देनी होगी। इसलिये बग़ीचे के पास रेल की सड़क, मोटर-सड़क या बैलगाड़ी आदि का रास्ता होना आवश्यक है। यह स्थान बिक्री के स्थान के निकट होना चाहिए, जिससे उसे शीघ्रता, सरलता अथवा कम ख़र्च में भेज सकें।

(२) नियम १ के अनुसार ज़मीन तो चुन ली गई, परंतु आबपाशी पर ध्यान नहीं दिया, तो हमेशा नुक़सान उठावेंगे। बग़ीचे की खेती बारहों महीने होती है, और फ़सलों को हर समय पानी चाहिए। वर्षा केवल चार महीने होती है, शेष आठ महीने आपको आबपाशी पर अवलंबित रहना पड़ेगा। इसलिये सिंचाई का प्रबंध होना आवश्यक है।

(३) बग़ीचे की खेती में खाद एक मुख्य पदार्थ है। आपको उसी ज़मीन पर बारहों महीने लगातार कई फ़सलें उत्पन्न करनी होंगी; और यदि खाद न [illegible] जायगी, तो ज़मीन की उत्पादक शक्ति कम होने [illegible] उपज कम होगी। चूँकि बाहर से खाद मँगाने में [illegible] अधिक है, इसलिये खाद उसी स्थान में या उसके आस[illegible] पास, यथेष्ट परिमाण में, ठीक समय पर और कम [illegible] में मिलनी चाहिए।

(४) पाँचवें नियम पर भी ध्यान देना आवश्यक है। यदि आपने बग़ीचा ऐसे स्थान में लगाया है, जहाँ [illegible] या उसके आसपास तरकारी की बिक्री यथेष्ट नहीं [illegible] सकती है, तो हर समय हानि होगी। तरकारी सस्ते भाव पर ही बेचनी होगी। यदि अधिक लाभदायक तरकारियों—जैसे गोभी, आलू इत्यादि—की माँग आसपास में नहीं है, तो कम लाभवाली तरकारियाँ लगाने से उचित लाभ नहीं होता है। यदि गोभी इत्यादि खेड़ों में शहर से बहुत दूरी पर लगाई जायँ, तो लाभ कम होता है।

(५) तरकारी की खेती में जल-वायु पर विचार करना मुख्य बात है। बहुधा लोग इसका विचार [illegible] करते हैं। अधिकता सबकी हानिकारक है। गरमी, सर्दी, बरसात यदि किसी स्थान में अधिकता से होती है, तो कई तरकारियाँ ऐसी दशा में, उस स्थान में, नहीं उत्पन्न होंगी। जैसे अधिक गर्म स्थान में गोभी व आलू की फ़सल अच्छी नहीं होती है, इसी प्रकार अधिक सर्दी भी कई तरकारियों को हानि पहुँचती है। ऐसे स्थानों में इन तरकारियों को उत्पन्न करने के लिये कृत्रिम उपाय किए जाते हैं। इन क्रियाओं में ख़र्च अधिक होता है। अधिक वर्षा कई तरकारियों की बाढ़ को रोकती है, जिसको 'निचरा' द्वारा ठीक करते हैं। यह विषय आगे बतलाया जायगा।

(६) ज़मीन का चुनाव मुख्य है। प्रायः यह पाया गया है कि हलकी ज़मीन यदि यथेष्ट खाद और आबपाशी पा सकती है, तो वह भारी ज़मीन की अपेक्षा बग़ीचे के लिये अच्छी है। ज़मीन ऐसी हो, जिसमें निचरा स्वाभाविक रीति से ठीक-ठीक हो, और जहाँ तक हो कम खाद देनी पड़े। ज़मीन का चुनना तरकारी की जाति और जलवायु पर भी अवलंबित है। स्थान चुनने के पश्चात् प्रत्येक तरकारी के लिये बग़ीचे में ठीक ज़मीन चुनना और उसमें जो-जो कमी हो, उसको पूरा करना आवश्यक है। इसके पहले पाठकों को यह जान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है कि ज़मीन और पौदों में क्या संबंध रहता है। ज़मीन से पौदे किस प्रकार से कौन-कौन पदार्थ, और किस परिमाण में, अपने जीवन के लिये लेते हैं, यह समझ जाने से हम यह जान सकते हैं कि किस प्रकार की ज़मीन ठीक है, या किस ज़मीन में किस खाद्य-पदार्थ की कमी है, जो पूरी की जा सकती है। पहले हम इस बात की खोज करें कि पौदा किस प्रकार उत्पन्न होता है। इसके लिये वनस्पति-शास्त्र का थोड़ा अध्ययन आवश्यक है। इस विषय के कई विद्वानों ने और मि० ए० डो० हाल साहब ने अपनी पुस्तक 'सॉइल्स' में ऐसा बतलाया है—

यह मालूम करना आवश्यक है कि पौदे किन पदार्थों से बने हैं। इसके लिये आप नीचे की परीक्षा कीजिए—कुछ हरे पत्ते लो, आलू लो, जो जड़ की फ़सलों का काम दे, और कुछ गेहूँ और मका के दाने लो। प्रत्येक को पोर्सलेन, मिट्टी, निकल या प्लेटिनम के बर्तन में तौलो। फिर इनको अलग-अलग धीमी आँच पर रक्खो, और ऊपर से काँच के टुकड़ों से ढाँक दो। थोड़े समय के पश्चात् आँच लगने पर ऊपर का काँच धुँधला हो जायगा, और पानी की बूँदें जम जायँगी। उष्णता मिलने के कारण पौदों से जल निकलेगा। जब यह विश्वास हो जाय कि जल निकलने लगा, तब काँच के टुकड़े अलग कर लो, और बर्तनों को चूल्हे पर रख दो। एक या दो दिन में सब जल निकल जायगा, और पौदे सूख जायँगे। पश्चात् इनके तौलने पर वज़न कम मिलेगा, अर्थात् पत्तों के असली वज़न से ८० या ९० प्रति-सैकड़ा वज़न जल के निकल जाने से घट जायगा। जड़वाली फ़सलों के बीज भी इतना ही जल निकालते हैं, परंतु गेहूँ आदि बीजों से दस से पंद्रह प्रतिशत निकलता है। इससे सिद्ध होता है कि जल पौदे का मुख्य खाद्य है। अब सूखे पौदे को बनसनलैंप की कड़ी आँच में गर्म करो, और बर्तन को किसी धातु से ढक दो। गर्म होने पर गाढ़ी और चिरपिरी गंध निकलेगी। यदि बर्तन अधिक तपाया जाय, तो पौदे जलने लगेंगे। अब लैंप बुझा दो, और बर्तन ठंढा होने पर अंदर देखो। अंदर बर्तन में काला पदार्थ छपा हुआ मिलेगा। यह कारबन (कोयला) है। यह पौदों से पृथक् हो गया है। बर्तन को फिर लैंप पर रख कर अच्छी तरह गर्म करो, जिससे बर्तन का पदार्थ जलने लगे। जलने के पश्चात् कुछ भूरी या सफ़ेद राख रह जायगी। यह राख तौलने पर पानी निकालने के पश्चात् के पदार्थ के वज़न का दो से पाँच प्रति सैकड़ा वज़न में होगी। इस पौदे की राख में कुछ तत्त्व मिलेंगे, जो पौदों के लिये आवश्यक हैं। इस राख में पृथक्-करण द्वारा ढूँढ़ने पर निम्न-लिखित पदार्थ मिलेंगे—

(१) फासफ़ोरस
(२) गंधक
(३) क्लोरिन
(४) पोटास
(५) सोडा
(६) चूना (आक्साइड आफ़ कैल्शियम)
(७) मैंग्नीशिया
(८) थोड़ा लोहा
(९) यदि घास है, तो सिलीका (रेत) मिलेगा, जो बहुत-से पौदों में नहीं मिलता।

(१०) अब एक पदार्थ और रह गया, जो उड़नेवाले पदार्थों के साथ उड़ गया है। यह अमोनिया है। इसके देखने के लिये सूखे पौदों के साथ एक काँच की नली में थोड़ा लाइम-मिश्रण मिलाओ और गर्म करो। इस समय कई गैसें निकलेंगी। अमोनिया भी निकलेगी, जो गंध देगी। यह अमोनिया नाइट्रोजन-मिश्रण का भाग है। यह सिद्ध बात है कि जब कोई भी नाइट्रोजन-मिश्रण गर्म किया जाता है, तो अमोनिया-कारबन के साथ जिसके साथ में हाइड्रोजन और ऑक्सिजन भी निकलता है। सूखे पौदों के वज़न में एक से दो प्रति सैकड़ा नाइट्रोजन रहता है, जो आवश्यक है।

ऊपर कहे हुए पदार्थ पौदे में पाए जाते हैं, परंतु यह अपने असली रूप में अलग-अलग नहीं रहते, दो या कई मिलकर बहुत-से मिश्रण के रूप में रहते हैं। जैसे—

(१) चर्बी—यह साधारणतः बीज में पाई जाती है। यह कोयला, हाइड्रोजन और आक्सिजन मिलकर बनती है।

(२) शुगर (शक्कर)—यह भी चर्बी के समान बनती है। अंतर केवल इतना है कि यह जिन पदार्थों से बनती है, वे भिन्न भागों में मिले रहते हैं, और बीज या पौदों के भिन्न भिन्न भाग बनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) अन्य आवश्यक कारबोहाइड्रेटस है, जो कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन से मिलकर बनते हैं। इसमें शुगर भी मिश्रित रहती है।

(४) स्टार्च – यह आलू इत्यादि में पाया जाता है।

(५) सैलीलयूज़।

(६) फाइबर (तंतु)—यह सन, जूट, राई इत्यादि में पाया जाता

(७) बीजों में तेल, गोंद और ज़हर इत्यादि मिलते हैं।

(८) दूसरे मुख्य मिश्रण पोटीन प्रोटीड या ऐलब्यूम-नाइडहै।

इस प्रकार ये सब पदार्थ पौदों में पाए जाते हैं, अर्थात् विना इनके पौदे जी नहीं सकते, अथवा उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। अब यह देखना है कि पौदे इन पदार्थों को किस प्रकार और कहाँ से कितना और कब पाते हैं। पौदे इन खाद्य-पदार्थों को कई रीतियों से और कई स्थानों से लेते हैं। जैसे—पत्तों से कारबन। इसके लिये नीचे की परीक्षा करनी चाहिए। एक राई का दाना लो, और उसको सुखाकर तोल लो। फिर इसको रेत में या स्याही-सोख पर बो दो। रेत पर जब वह उग जाय, तब थोड़ा सोडियम-नाइट्रेट दो। जब पौदा पूरा बढ़ जाय, तब तोलो। यह असलो बीज से कई गुना भारी होगा। यह पौदा कई पदार्थ लेकर, इतना बढ़कर भारी हुआ है; परंतु इसमें कारबन लगभग आधा भाग है, जिसको पहले बतलाए अनुसार मालूम कर सकते हैं। परंतु यह कारबन कहाँ से आया? न तो यह रेत में था, न नाइट्रेट आफ़ सोडा में, और न जल में। इसके लिये केवल एक ही स्थान है। वह पौदे के आसपास का वायु-मंडल है, और इसी से पौदे ने कारबन खींचा है। यह बात नीचे की परीक्षा से सिद्ध हो जायगी। पौदों में यह शक्ति है कि वे वायु-मंडल कारबन-डी-ऑक्साइड को विभाजित करके कारबन हैं। एक काँच के बर्तन में जल भरो, और उसमें जल में उत्पन्न होनेवाला केसर-पौदा डालो। उस एक चोंगी, जैसी तेल भरने की रहती है, औंधी ऐसे बर्तन को ढाँक दो, जिसका संबंध एक काँच नली से रहे, जिसमें जल भरा रहता है। इ सूर्य के प्रकाश में रख दो। कुछ समय में पत्तों के बुलबुलों द्वारा गैस आने लगेगी। थोड़े समय फूटकर काँच की नली में चढ़ने लगेंगे, और कुछ में काँच की नली इनसे भर जायगी। होशि से उसको निकालो, और उलटा करके उसके मुँ पास जलती लकड़ी लाओ। लकड़ी अधिक प्रका जलने लगेगी। इससे सिद्ध होता है कि यह ऑक्सिजन है। परंतु ऑक्सिजन कारबन-डी-आक्स का एक भाग है, जिसे पौदे ने विभाजित करके लि दिया है, और कारबन अपने लिये रख छोड़ा इस प्रकार पौदे वायु-मंडल से कारबन लेते रहते वायु को शुद्ध करते रहते हैं। वायु में कारबन-डी-ऑ साइड प्रति १०,००० वाल्यूम में, तीन से सात वाल्यूम के हिसाब से, व्याप्त है। पौदे के हरे भाग केवल कारबन ले सकते और कारबन-डी-ऑक्स को विभाजित कर सकते हैं डाक्टर ब्राउन ने सिद्ध है कि जीवित हरे पत्ते का प्रति चार घन इंच सा दिन के प्रकाश में प्रति घंटा .००८ ग्राम कारबन ऑक्साइड विभाजित करता है, इसलिये सब प्र के लिये प्रकाश अत्यंत आवश्यक है।

(क्रमशः)

उमाशंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

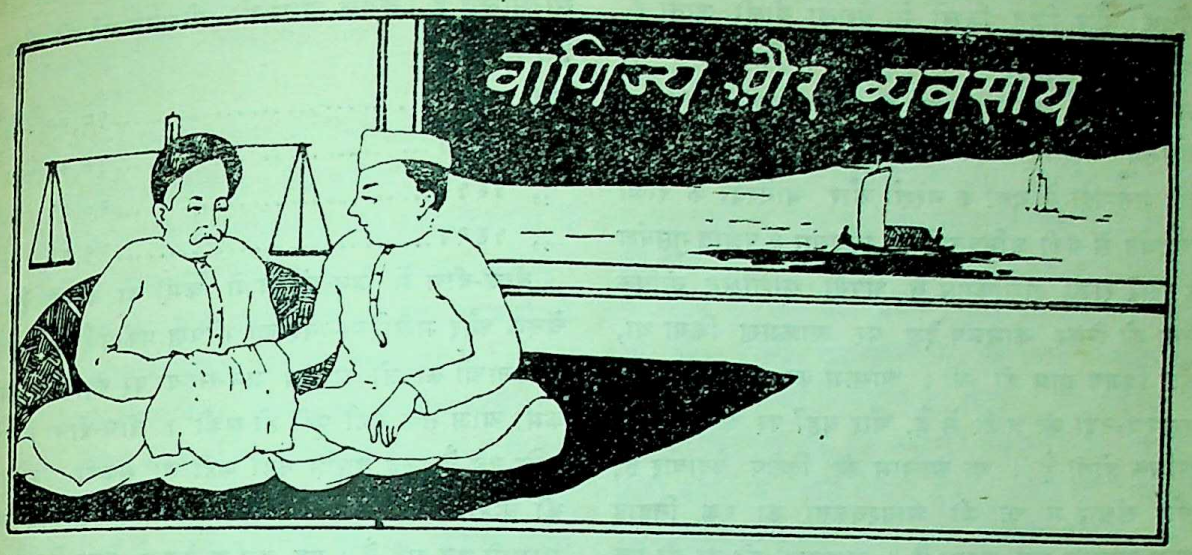

आसाम में अफ़ीम का प्रचार

यह भलीभाँति सिद्ध हो चुका है कि समस्त मादक द्रव्य मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। इन विषैली वस्तुओं के सेवन से मनुष्य का नैतिक पतन भी होता है। उसकी समस्त उत्साहवर्द्धक कार्य-परायण इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, और वह धीरे-धीरे आनंद-अनुभव करने लगता है। इस नवीन सभ्यता के युग में, जब कर्तव्य की होड़ लगी हुई है, इन द्रव्यों का पूर्णतः बहिष्कार न हो सका, यह बड़े आश्चर्य की बात है। जिनीवा-ओपियम कानफ्रेंस में एक अमेरिकन प्रतिनिधि ने यह चाहा था कि संसार में मादक पदार्थों की उतनी ही उपज हो, जितनी औषधियों के लिये आवश्यक समझी जाय; परंतु अँगरेज़-प्रतिनिधि मि० कैंपबेल ने इसका विरोध किया था! आर्थिक लाभ के कारण नैतिक बातों की ओर ध्यान न देना भी आधुनिक राष्ट्रों का मुख्य सिद्धांत है। चीन-जैसे प्रतिभाशाली राष्ट्र ने, चालीस करोड़ जन-संख्या होने पर भी, इस दुर्व्यसन के फेर में पड़कर अपना भविष्य नष्ट कर दिया—अपने राष्ट्र को, अमूल्य सभ्यता को तथा पूर्वजों की संचित कीर्ति को मादकता की बलि-वेदी पर बलिदान कर दिया! भारतवर्ष के आसाम-प्रांत में अफ़ीम के प्रचार ने जो दुःखद समस्या उपस्थित की है, वह तो अत्यंत विचारणीय है।

अफ़ीम को संस्कृत में अहिफेन कहते हैं। वास्तव में यह वस्तु सर्प के समान ही भयानक है। अफ़ीम का प्रयोग खाने और पीने के लिये होता है। इसका स्वाद इतना कड़वा होता है कि खाने और पीने के साथ-साथ मिठाई का सेवन करना पड़ता है। जिन लोगों का स्वभाव पड़ जाता है, वे इसके दास हो जाते हैं। तब वे इसका नित्य सेवन करने लगते हैं, और उन्हें कटुता का भी अनुभव नहीं होता। पीने में यह भी तमाखू की नाईं हुक्का और चिलम से पी जाती है। पीते समय प्रत्येक घूँट के साथ केला, चा और शक्कर खा लेना अधिक प्रचलित है। जो लोग अफ़ीम पीते हैं, उनका कथन है कि वे इसका प्रयोग धुएँ को पेट में संचित रखने के लिये करते हैं। इसका प्रचार इतना बढ़ रहा है कि आठ-आठ, नौ-नौ वर्ष के लड़के भी बड़े चाव से पीते हैं। वे बाल्यकाल से ही उसके बंधन में बँध, तरुणाई के उत्साह और उमंगों का हनन कर डालते हैं।

आसाम भारतवर्ष का पूर्वी सीमा-प्रांत कहा जा सकता है। यहाँ दो प्रकार की भाषा बोली जाती है—बंगाली और आसामी। अधिकांश ज़िलों की भाषा आसामी ही है। लखीमपुर, शिवसागर, डारंग, नौगांग, कामरूप और ग्वालपारा के निवासी आसामी तथा कंधार और सिलहट के लोग बँगला बोलते हैं। जिन ज़िलों की भाषा आसामी है, वहाँ अफ़ीम का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक और जिन ज़िलों में बँगला बोली जाती है, वहाँ उसका प्रयोग कम होता है। सिलहट में तो भारतवर्ष के समस्त नगरों से कम बिक्री होती है। कामरूप भारतवर्ष का प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। छठी शताब्दी में यहाँ के नरेशों और थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन से बड़ी घनिष्ठता थी। स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्तवंश के दूसरे राजा शशांकगुप्त ने अपनी सुशिक्षित नाविक सेना को लेकर कामरूप-देश पर आक्रमण किया था, और विजय प्राप्त की थी। आसाम का उत्तरीय भाग ब्रह्मपुत्र-नदी की घाटी में है, और यहाँ पर चा की खेती अधिक होती है। चा आसाम की विशेष पैदावार है, और संसार में चा की आवश्यकता का एक तिहाई भाग आसाम पूरा करता है। भारतवर्ष को चा की एक बड़ी भारी आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती है। सन् १९२४ में भारतवर्ष से ३३,३१,२५,०००) की चा बाहर भेजी गई थी। यह कहना अनुचित न होगा कि उसका मुख्य साधन ब्रह्मपुत्र की घाटियों की उपजाऊ भूमि है। इस खंड में रहनेवाले श्रमजीवी तथा अन्य लोग भी अफ़ीम का सेवन अधिक करते हैं। कछार, सिलहट और बंगाल के निवासी भी, नौकरी के सहारे यहाँ आकर, उस पैशाचिक प्रकृति के पुजारी बन जाते हैं। पहाड़ी स्थान और प्रचुर वर्षा होने के कारण यहाँ ३,५५,००० एकड़ भूमि चा की उपज के काम आती है, और अन्य प्रांत के रहनेवालों को भी कोई-न-कोई कार्य मिल ही जाता है। मनीपुर-स्टेट को मिलाकर आसाम का क्षेत्रफल ६१,६०० वर्गमील है। मनीपुर समुद्र की सतह से २,५०० फ़ीट ऊँचा है। इसके उत्तर में नागा और दक्षिण में लसी-पहाड़ी है। वेगवती ब्रह्मपुत्र अपने स्वच्छ सलिल से आसाम-प्रांत में विभिन्न प्रकार के फल और अनाज पैदा करती है। यदि यहाँ के लोगों में अफ़ीम का व्यवहार प्रचलित न होता, तो आसाम उन्नति-पथ पर अग्रसर होकर अन्य प्रांतों को मार्ग बताता। मनिकपुर को छोड़कर आसाम की जन-संख्या इस प्रकार रही है—

सन् १८९१ ..... २५,३३,४९५.
,, १९०१ ..... २७,४२,१६२.
,, १९११ ..... ३२,४८,३१९.
,, १९२१ ..... ३९,९१,६८२.

इसमें बँगला और आसामी बोलनेवाले, दोनों सम्मिलित हैं। केवल आसामी बोलनेवालों की संख्या इस प्रकार है—

सन् १८९१ ..... १८,२६,१[illegible]
,, १९०१ ..... १७,७३,[illegible]
,, १९११ ..... २०,२३,[illegible]
,, १९२१ ..... २१,१३,[illegible]

बीच-बीच में जन-संख्या में कमी का कारण है चेचक और मलेरिया-ज्वर का भीषण प्रकोप है। इन दुर्घटनाओं का जो प्रभाव जन-संख्या पर पड़ा है, उसकी कमी आज तक नहीं पूरी हो सकी। बीच-बीच में वृद्धि हुई है, वह पर्याप्त नहीं कही जा सकती। ब्रह्म की घाटी में रहनेवालों के लिये अफ़ीम दैनिक भोजन सामग्री बन गई है। यह दुर्गुण केवल नगर-निवासियों में ही नहीं, वरन् दूर-दूर पर बसे हुए ग्रामों में भी सफलता प्राप्त कर चुका है। मुझे एक आसाम-निवासी सज्जन से पता लगा है कि इसका आदर शिक्षित समाज में भी अच्छा है, और वे सरलता के साथ व्यसन से हटते हुए नहीं दिखाई देते। अन्य नगरों से प्रांतों से जो लोग आते हैं, वे पहले तो बड़े [illegible] होते हैं; परंतु यहाँ पहुँचकर वे किसी प्रकार [illegible] लालसा को संवरण नहीं कर पाते, और अंत में [illegible] वालों की नाईं दुर्बल और अकर्मण्य बन जाते हैं।

अफ़ीम का आविष्कार ईसा की प्रथम शताब्दी सबसे पहले यूनानी लोगों ने किया था। इसके [illegible] धीरे-धीरे इसका प्रचार अरब और फारस के लोगों हुआ। भारतवर्ष में यह सबसे प्रथम मुग़ल-सम्राटों द्वारा लाई गई थी। बादशाह जहाँगीर को उससे प्रेम था, और उसी के राज्य-काल में इसका विस्तार [illegible] होना भी बहुत कुछ संभव है। १७ वीं शताब्दी दिल्ली के मुग़ल-सम्राट् का आसाम के नरेशों से [illegible] हुआ। कहा जाता है, मुग़ल-सम्राट् आसाम-नरेश पास भेंट के रूप में अफ़ीम भेजा करते थे। पहले राज घराने में इसका प्रादुर्भाव हुआ, और फिर प्रजा भी [illegible] उपयोग करने लगी। सन् १७९२ ई० में कैप्टन [illegible] लार्ड कार्नवालिस के समक्ष एक रिपोर्ट भेजी थी, [illegible] आसाम-नरेश गोरीनाथसिंह का वर्णन करते हुए [illegible] महोदय ने लिखा था—

A poor debilated man, incapab[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

transacting business, always either washing or praying and, whenever seen, intoxicated with Opium."

इससे विदित है कि राजा गोरीनाथसिंह अफ़ीम का सेवन बहुत अधिक करते थे। वह बुद्धिहीन और व्यापार के अयोग्य थे। हर समय सफ़ाई या ईश्वरोपासना में लीन रहते थे, और सदा अफ़ीम के मद में चूर रहते थे। गोरीनाथसिंह की असावधानी के कारण आसाम की मोरन और मोमारी-नामक धार्मिक जातियों ने राज्य के विरुद्ध उपद्रव खड़ा किया, और उनके सरदार स्वयं राजा बनने का उद्योग करने लगे। दारंग के मृत नरेश के पुत्र कृष्णनारायण ने पश्चिमी प्रांतों से कुछ किराए के सैनिक लाकर कामरूप में राज्य स्थापित किया। उचित प्रबंध न होने और अज्ञानता का बाहुल्य होने के कारण आसाम में बहुत दिनों तक अशांति का साम्राज्य रहा। इन आगंतुक सैनिकों ने गोहाटी के निकट अफ़ीम की खेती आरंभ की। उस समय लक्ष्मीसिंह राज्य करता था। अतएव सन् १७९५ ई० से अफ़ीम की खेती का इतिहास आरंभ होता है। इस समय अफ़ीम का प्रचार केवल धनिकों और उच्च पदाधिकारियों के यहाँ था। सर्वसाधारण इससे वंचित रहते थे। कैप्टेन बटलर ने भी अपनी पुस्तक "Travels and Adventures in Assam" में लिखा है—"Opium, it is said, was first introduced into Assam, in 1794, when our troops assisted the Rajah against Muttoch." आपने भी अफ़ीम की खेती का आरंभ सन् १७९४ ई०ही माना है।

१९ वीं शताब्दी में अफ़ीम की खेती पर १२) रु० प्रति पूरा (३ एकड़) 'कर' लगता था। धीरे-धीरे 'कर' बढ़ता गया, और लोगों को असहनीय हो गया। 'कर' न दे सकने के कारण अफ़ीम की खेती भी बंद हो गई। यानदाबू की संधि के उपरांत, सन् १८२६ ई० में, यह सूबा अँगरेज़ी-राज्य का एक भाग हो गया। अँगरेज़-सरकार ने उस खेती को समूल नष्ट करने में ही अपना लाभ सोचा, और सन् १८२६ से १८६० ई० तक वह इसमें पूर्णतः सफल हुए। इस रीति से सरकार का मुख्य उद्देश्य अपनी ओर से अफ़ीम बेचना और शाही ख़ज़ाने की आय बढ़ाना था। सन् १८३५ ई० में सरकारी अफ़ीम ५), सेर बिकी थी। इस नए प्रबंध ने अफ़ीम के व्यवसाय को कठिन अवश्य बना दिया, परंतु जनता में इसका प्रचार रोकने का कोई उद्योग नहीं किया गया। सन् १८५३ ई० में, मि० मोफ़ात मिल्स की रिपोर्ट में, पहलेपहल इसकी घोर निंदा की गई, और सर्वसाधारण में इसके दोष प्रकट करने का साहस किया गया। कुछ दिनों तक प्रचार करने के लिये यह मुख्य-मुख्य सरदारों के यहाँ भेज दी जाती थी, और वे उसे सबको बाँट देते थे। मज़दूरों को वेतन के स्थान पर रुपए न देकर अफ़ीम दी जाती थी, और इससे उन लोगों ने धीरे-धीरे उसका सब प्रकार सम्मान करना आरंभ कर दिया। जब मिल्स की रिपोर्ट प्रकाशित हुई, तो उस पर सरकारी और ग़ैर-सरकारी लोगों में अच्छा विवाद हुआ। लोगों की इच्छा थी कि सरकार कोई ऐसा उपाय करे, जिससे उसका प्रचार ही बंद हो जाय। सरकार ने, सन् १८६० ई० में, अफ़ीम का सर्वाधिकार (Monopoly) ले लिया। पूर्व प्रयास की नाईं यह प्रथा भी केवल सरकारी आय के लिये ही उपयोगी हुई। इसके अनुसार अफ़ीम की निजी खेती या बिक्री दंडनीय ठहराई गई। परंतु प्रत्येक भले मनुष्य को बिना किसी प्रकार की लागत के ठेका मिल सकता था। इससे ठेकों की बड़ी वृद्धि हुई। प्रत्येक ग्राम में ठेके हो गए। ठेके के स्थानों पर अफ़ीम का यह नृत्य होने लगा। लोग दूकान पर इकट्ठा होकर अफ़ीम पीते और गप्पें लड़ाया करते थे।

सन् १८७४ ई० में ठेके की फ़ीस नियत की गई। फ़ीस दे देने के बाद विक्रेता अपनी इच्छानुसार दूकानें खोल सकता था। सन् १८७७ ई० में महाल 'सिस्टम' आरंभ हुआ, और इसके अनुसार ठेके का स्थान भी नियत होने लगा। सन् १८८४ ई० में ठेकों का नीलाम सर्वसाधारण की उपस्थिति में होने लगा, और अधिक बोली बोलनेवाले को ही ठेके मिलने लगे। उस नियम के अनुसार सरकार की आमदनी के दो द्वार खुल गए, और इस समय तो अफ़ीम आमदनी का सुंदर मार्ग है। सन् ई० १९२४ से १९२५ तक विभिन्न करों से आय इस प्रकार थी—

चुंगी	४५,७५,३१,५१६ रु०
इनकम टैक्स	१६,०१,४६,२५३ ,,
नमक	७,३९,०४,८६० ,,
अफ़ीम	३,७९,७६,१७७ ,,
भूमि-कर	३७,८०,७४८ ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टांप	२७,८९,६८० रु०
जंगल	१६,१४,६९८ ,,
देशी राज्य	८२,४४,३८४ ,,

नए नियमों के लागू होने से अफ़ीम की दूकानें कम तो अवश्य हो गईं, परंतु बिक्री दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। मूल्य में वृद्धि होने के कारण सरकारी आय में भी उन्नति हुई। दूकानों की संख्या सन् १८७३-७४ ई० में ५,१३१ थी, परंतु सन् १९१९-२० ई० में यह संख्या ३०६ रह गई। बिक्री का हाल यह रहा—

सन् १८७५-७६	...	...	१,८७४ मन
,, १८८५-८६	...	...	१,४४६ ,,
,, १८९५-९६	...	...	१,३७७ ,,
,, १९०५-०६	...	...	१,४१५ ,,
,, १९१५-१६	...	...	१,५६० ,,
,, १९१९-२०	...	...	१,७४८ ,,

अफ़ीम का भाव

सन् १८३५	...	...	५) प्रति सेर
,, १८६०	...	...	१४) ,, ,,
,, १८७४	...	...	२२) ,, ,,
,, १८८४	...	...	३२) ,, ,,
,, १८९४	...	...	३७) ,, ,,
,, १९०४	...	...	३७) ,, ,,
,, १९१४	...	...	४५) ,, ,,
,, १९२४	...	...	६५) ,, ,,

यही दशा समस्त भारतवर्ष की रही। सरकारी आय में बहुत कुछ वृद्धि हुई। केवल अफ़ीम से, सन् १९२१-२२ में, ३,०७,२४,७९८), सन् १९२२-२३ ई० में ३,७८,९२,०६८) और सन् १९२३-२४ ई० में ४,७९,७६,१७६) की वार्षिक आमदनी हुई!

उपर्युक्त तालिका में, सन् १८८१ और १९०१ के बीच में, आसाम में जो अफ़ीम से आय कम हुई, उसका कारण आसाम में भीषण बीमारियों का प्रकोप तथा भूचाल है। दैवी व्याधियों के फेर में पड़कर आसाम को अपरिमित हानि उठानी पड़ी। सैकड़ों गाँव निर्जन और उजाड़ हो गए। आसाम की जन-संख्या भी न्यून हो गई। इस दुःखद समय में भी अफ़ीम का भाव नहीं घटा; वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय से सरकार का उद्देश्य अधिक धन प्राप्त करना और थोड़ा माल भेजना हो गया; क्योंकि जो लोग उस विदेशी वस्तु के सेवन बिना चैन नहीं पाते, वे दामों की चिंता नहीं करते। नशे की चीज़ें चाहे कितने अधिक मूल्य में बिकें, उनके व्यवहार में कमी नहीं हो सकती। इस बात को ध्यान में रखते हुए सन् १८५३ ई० में, आनंदराम फूकन महोदय ने अपनी रिपोर्ट में कहा था—

"The people will never shrink from the use of the drug so long as they continue to obtain supplies of it, and they would seldom consider themselves too poor to purchase it."

अर्थात् लोगों को नशे की चीज़ें जब तक मिलती रहेंगी, तब तक वे उनको नहीं त्याग सकते, और वे उनके मोल लेने के लिये अपनी ग़रीबी का अनुभव कभी न करेंगे। सचमुच जब तक उन चीज़ों की बिक्री का पूर्णतः निषेध नहीं होता, और सरकार अपनी आय के लोभ को संवरण नहीं करती, तब तक उनका प्रचार कदापि नहीं बंद हो सकता। लीग आफ़ नेशन्स ने ओषधियों की आवश्यकतानुसार अफ़ीम का व्यय एक सेर प्रति १०,००० मनुष्य बताया था। उसी विचार से यदि समस्त मादक वस्तुओं का दुरुपयोग रोका जाय, तो जगत् का बहुत हित हो सकता है। १४ मई, सन् १९२५ ई० को कौंसिल आफ़ स्टेट में सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी ने इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए जिनेवा परिषद् में भारतवर्ष के प्रतिनिधि मि० कैंपबेल की बातों का खंडन किया था। सरकार की ओर से प्रतिवाद भी हुआ, और खेद है कि यह सर्वाधिकारी प्रस्ताव गिर गया। अभी हाल में मदरास-सरकार ने २० वर्ष में उसका प्रचार घटाने का वचन दिया है। अन्य राज्य तो उसके अवगुणों को भली भाँति समझ ही लिया और हेगा कान्फ़्रेंस के अनुसार भारतवर्ष की सरकार बिना लाइसेंस के विदेशों में अफ़ीम नहीं भेज सकती।

आसाम में अफ़ीम सेवन करनेवाले, चा के बग़ीचों में काम करनेवाले मनुष्यों की दशा भी अत्यंत शोचनीय है। दुर्व्यसन के फेर में पड़कर स्वास्थ्य से तो वे हाथ धो बैठते हैं। उनका अपमान भी अँगरेज़ मालिकों से खूब होता है। वहाँ पर कोई भी भारतीय उन गोरे प्रभुओं के सामने घोड़े या साइकिल पर चढ़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल सकता। वह किसी खेत में विना आज्ञा नहीं जा सकता। और, उसे सब प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। कुली-ऐक्ट की १३वीं धारा के अनुसार यद्यपि उन लोगों की कुछ संतोषजनक अवस्था हो गई है, तो भी उसमें सुधार की भारी आवश्यकता है। जब तक आसाम-निवासी और समस्त भारतीय नर-नारी इस दूषित रुचि के हटाने का शीघ्र उद्योग नहीं करते, तब तक दीन मज़दूरों की दशा सुधरना असंभव है। भारतीय मज़दूरों की आय का अधिकांश भाग इन्हीं दूषित वस्तुओं के क्रय में व्यय होता है। जब तक वे उनसे घृणा नहीं करते, इनका प्रचार रोकने के लिये प्रबल चेष्टा नहीं करते, तब तक उनकी आर्थिक दशा आशा-पूर्ण नहीं हो सकती, और उनका सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन भी सुखद नहीं हो सकता। देश की सामाजिक संस्थाओं और नेताओं का ध्यान इस ओर शीघ्र अग्रसर होना चाहिए; नहीं तो भविष्य में इसका भय इतना विकराल होने की संभावना है कि फिर इसके सुधार का कोई उपचार न दिखाई देगा। सरकार को भी चाहिए कि दूसरे का घर जलने पर तापने की रीति त्याग दे। उसे औषधि के रूप में मादक द्रव्यों की बिक्री से उचित आय हो सकती है। सन् १९२४ और २५ ई० में सिर्फ़ औषधियों के लिये १४,९९,९१७) की अफ़ीम बिकी थी। सर्वसाधारण से उसका प्रयोग हटाने पर, यदि सरकार चाहे, तो वह इसका मूल्य भी बढ़ा सकती है, और तब आमदनी भी बहुत-कुछ बढ़ सकती है। आसाम भारतवर्ष का पूर्वी सीमा-प्रांत है। चीन के निकट होने के कारण सरकार सशंक रहती है, परंतु इस प्रकार वहाँ के निवासियों के शक्तिहीन रहने पर सरकार का कोई भी हित नहीं हो सकता। यदि वह अपना हित समझती है, तो उसका भारी भ्रम है, और दूरदर्शिता के परे है।

के० पी० दीक्षित "कुसुमाकर"

फिर न कहना, हमें ख़बर न हुई !

कल्पलता—पुरुष को चाहे जैसा प्रमेह (वीर्य विकार) हो, स्त्री को चाहे जैसा प्रदर हो, एक हफ़्ते में जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। नई ज़िंदगी और नया जोश रग-रग में पैदा कर देती है। हज़ारों स्त्री-पुरुष चंगे होकर ज़िंदगी का मज़ा लूट रहे हैं। हमारा विश्वास और दावा है कि कल्पलता आपके हरएक मर्ज़ पर जादू का-सा असर करेगी। हज़ारों बीमारियों की एक दवा का मूल्य न्यौछावर-मात्र ३) शीशी। डाकख़र्च अलग।

संजीवनसुधा—इसे घरेलू डाक्टर ही समझिए। हर गृहस्थ को एक शीशी मँगाकर रख लेना चाहिए। बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष हर एक को हर मर्ज़ में एक-सी लाभदायक है। प्लेग, हैज़ा और पेट के हर-एक रोग की तो यह एक अजीब अक्सीर दवा है। इसकी बूँदें रामबाण का-सा काम करती हैं। बिला ज़रूरत भी एक शीशी मँगाकर रख लीजिए। मूल्य छोटी शीशी ॥।) बड़ी शीशी १।) डाकख़र्च अलग।

नोट—हमारे यहाँ असाध्य रोगों का इलाज ठेके पर भी किया जाता है। मिलिए व पत्र व्यवहार कीजिए।

आयुर्वेदविज्ञानाचार्य राजवैद्य पं० गयाप्रसाद शास्त्री
साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति
अध्यक्ष, श्रीअवध-आयुर्वेदिक फार्मेसी
गनेशगंज, लखनऊ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

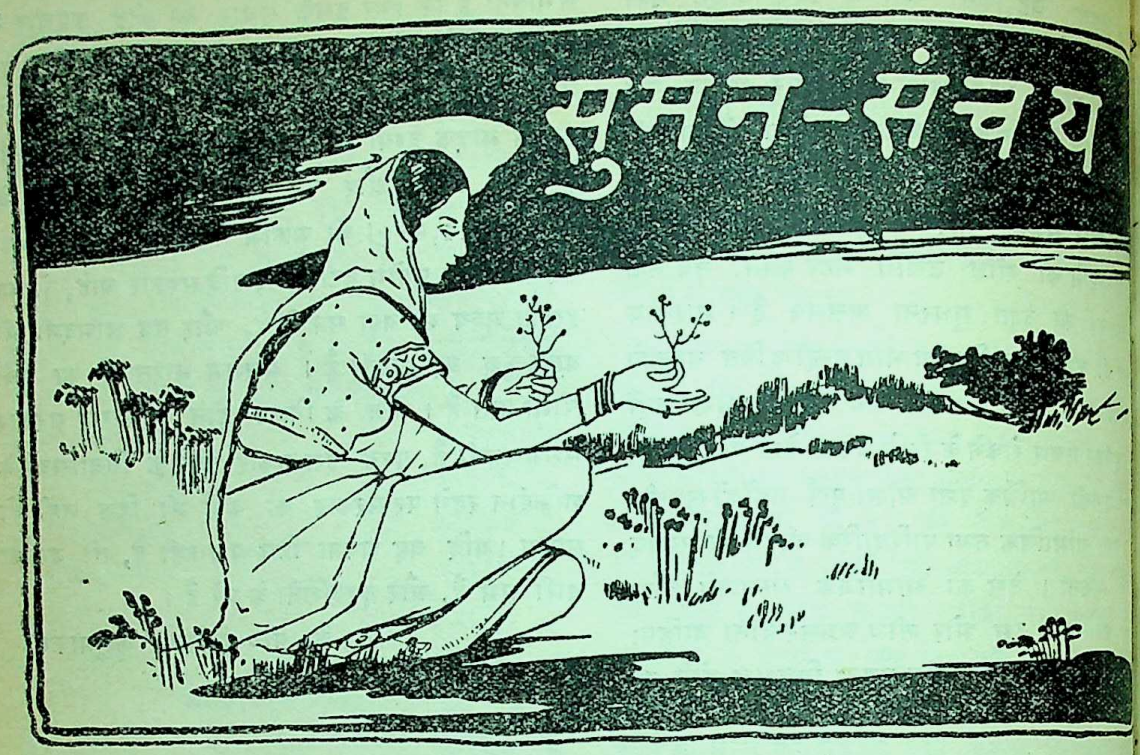

१. काशी में कनवेंशन

थियासाफ़िकल सोसायटी काशी में कोई अपरिचित संस्था नहीं है। यहाँ पर हर दूसरे वर्ष, एक सप्ताह तक, थियासाफ़िकल कनवेंशन होता है। इस बार भी नियम के अनुसार हुआ था। अब की बार न तो श्रीमती एनी बेसेंट ही आ सकीं, और न मि० जिनराजदास ही आए थे। प्रसिद्ध नेताओं में केवल मि० अरंडेल ही आ सके थे, और उन्हीं का एक सुंदर भाषण भी हुआ था। श्रीयुत जे० कृष्णमूर्ति के भी दो भाषणों की घोषणा की गई थी, किंतु एक भी नहीं हुआ। ता० २८ को लोग प्रश्नोत्तर के लिये निमंत्रित किए गए थे। मैंने भी पाँच प्रश्न छपवाकर बँटवा दिए थे, और मि० कृष्णमूर्ति के पास भी भिजवा दिए थे। प्रश्न और उनके उत्तर मैं यहाँ पाठकों के लाभार्थ लिखे देता हूँ।

प्रश्न—महाशय, कृपा कर एक बार सदैव के लिये अपनी स्थिति संदेहहीन कर दीजिए। आप जगद्गुरु हैं, या जगद्गुरु के वाहन ?

उत्तर—तुमको सत्य से मतलब है, सत्य के वाले से कोई प्रयोजन नहीं। पुरुष को जल से मतलब रहता है, न कि पात्र से। (एक मित्र ने प्रश्न किया—पात्र गंदा हो। उ०—पानी चखकर देखो। फिर आवश्यकता यदि वह हानिकर सिद्ध हो। उ०—साफ़ कर लो।)

प्रश्न—महाशय, विश्व के मानसिक, आध्यात्मिक राजनीतिक क्षेत्र में आपका क्या कार्य होगा, उसकी सीमा क्या होगी ?

उत्तर—मैं कार्य करने नहीं आया, कार्य करने आया हूँ।

प्रश्न—महाशय, आप दरिद्र, रोगी, निराश, दुखी का—जो संघर्ष, अत्याचार, वेदना से पिस रहे हैं—क्यों नहीं बटाते, जैसा सभी युग में, सभी देश में महात्मा बुद्ध या ईसा-सरीखे महाप्राण करते रहे हैं।

उत्तर—तुम कैसे जानते हो कि मैं नहीं करता। संसार में सुखी ही कौन हैं !

प्रश्न—महाशय, क्या आप महात्मा कोतूहमी, मैत्रेय आदि महापुरुषों से बातचीत करते हैं ?

उत्तर—मानव-जीवन ही एक विचारणीय वस्तु है। जिस क्षण हम इसे प्यार करने लगते हैं, उसी क्षण हमारी विश्वव्यापी अनुभूति हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—महाशय, आपके भिन्न-भिन्न पूर्वजन्मों का जो विवरण, डा० बेसेंट या कर्नल आल्कट के संबंध में, दिया जाता है, क्या उन पर आप विश्वास करते हैं ?

उत्तर—मैं केवल भविष्य की बात करना चाहता हूँ, भूतकाल की नहीं।

(बहुत संभव है, श्री०कृष्णमूर्ति के लंबे उत्तरों के सार में दो-एक शब्द छूट गए हों; किंतु महत्त्व की कोई बात नहीं छूटने पाई है।)

देखा आपने कैसे उत्तर हैं ? 'पूछी जो ज़मीं की, तो कही आस्मान की।' सभी प्रश्नों के गोल उत्तर पाकर मुझे तो क्या, किसी को संतोष नहीं हुआ। अस्तु। मैंने एक पत्र श्री०कृष्णमूर्तिजी को भेजा, जिसका संक्षिप्त अनुवाद यहाँ पर देता हूँ—

"प्रिय महाशय, मैं आपको, आज सबेरे अपने प्रश्नों का उत्तर देने के लिये, हृदय से धन्यवाद देता हूँ। ×××। संभव है, आपके कुछ भक्त आपके उन उत्तरों से संतुष्ट हो गए हों; परंतु कम-से-कम भीड़ का बहुत बड़ा भाग संतुष्ट नहीं हुआ। मैं आपकी जगद्गुरु-संबंधी स्थिति पर विशेष रूप से ज़ोर डालना चाहता था। मैं नहीं जानता, आपकी 'जगद्गुरु' की परिभाषा क्या है ? किंतु आपके मित्र, आपके सामने और पीठ-पीछे भी, जिस शान-शौक़त और आडंबर से आपका सत्कार करते हैं, उसे देखकर तो बुद्धि में यह आता है कि महंत का पद और जगद्गुरु का पद अभिन्न-से हैं। वैष्णव-संप्रदाय एवं कबीरपंथी भी अपने गुरुओं को ईश्वर का विशेष प्रतिनिधि मानते हैं। और, ये दोनों संप्रदाय आज मानसिक एवं नैतिक दृष्टि से हीन दशा में हैं। आप अपने मत की रक्षा के लिये क्या कर रहे हैं ? मैं आपसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने उत्तरों की एक अधिकारयुक्त कापी मेरे पास भेज दें, और आज्ञा दें कि मैं अपने प्रश्न और आपके उत्तर, पर्चा नं० १ के नाम से, छपवा दूँ। फिर मैं जो आपके प्रश्नों का उत्तर दूँ, और आप जो उनका उत्तर दें, उन्हें मैं पर्चा नं० २ के नाम से छपवा दूँगा। इसी तरह, संभव है, यह दो-तीन मास तक चले, और फिर एक नियत तिथि को अपने-आप यह विवाद बंद हो जाय। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको मेरी ओर श्रद्धा-भाव की कमी न मिलेगी। मैं

मि० अरंडेल

यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने एक शब्द भी अपने प्रश्नों में ऐसा नहीं रक्खा था, जो 'ब्रह्मवादी साहित्य' के आधार पर न रहा हो। आगे भी मैं पत्र-व्यवहार में ऐसी कोई बात न लिखूँगा, जो श्रीमती बेसेंट या मि० लीडबीटर द्वारा समर्पित न होगी। मैं जानता हूँ, आप इस प्रकार के गुरुओं पर विश्वास नहीं करते, और इसलिये मेरी आप पर श्रद्धा भी है। किंतु आपने थियासॉफ़िस्ट नेताओं द्वारा प्रतिपादित अपने भिन्न-भिन्न जन्मों के विवरणों का खुली समाज में खंडन भी नहीं किया। दो वर्ष हुए, डा० बेसेंट ने बनारस-थियासॉफ़िकल सोसाइटी में कहा था कि उन्हें लार्ड मैत्रेय से आपके बारे में संदेश मिला है। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के संदेशों ने आपको उस परिस्थिति पर पहुँचा दिया, जिस पर आप हैं, और इन संदेशों के बिना आपको कोई भी नहीं जानता। आप पद्धति-निर्माण का विरोध करते हैं, विवेकहीन रिवाजों के विरोधी हैं। किंतु आपके अनुयायी आपको उन्हीं रिवाजों का केंद्र बनाए हुए हैं, और आपको वही दिखाऊ सम्मान मिलता है, जो किसी समय भारत के और अन्य देशों के महंतों को मिलता था। आप स्पष्ट रूप से, ज़ोर के साथ और यदि आवश्यकता हो, तो प्रचंड रूप से इनका अवरोध करें।

क्या मैं पत्रोत्तर पाने की आशा करूँ ?

अति श्रद्धा के साथ आपका शुभचिंतक,

सूर्यनाथ तकरू"

किंतु पत्रोत्तर अभी तक नहीं मिला।

जनता के सम्मुख मैं थियासॉफ़िस्ट नेताओं से कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। श्री० कृष्णमूर्ति को हम जगद्गुरु क्यों मानें ? उनमें कौन-सी विशेषता है ? इस मरदुम-परस्ती (मनुष्य-पूजा) का क्या अर्थ ? ईश्वर और अवतारों का यह उपहास क्यों ? 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' की दुहाई क्यों दी जाती है ? क्यों नहीं 'मसीहा' की विशेषता स्पष्ट कर दी जाती है ? वह पर्दा-नशीन क्यों हैं ? कभी श्रीमान् डाक्टर ज्ञानेंद्रनाथजी चक्रवर्ती को विशेष विभूतिवान् एवं कभी उनकी कन्या को मैडम ब्लैवस्टकी का अवतार क्यों कहा जाता है ? एक महिला-विशेष 'जगज्जननी' क्यों घोषित की जाती है ? जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य, श्रीवल्लभाचार्य के प्रतिनिधि, श्री० मुहम्मदयहिया या श्री० कृष्णमूर्ति—किसके सिर पर जगद्गुरुत्व का सेहरा भोली जनता बाँधे ? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर केवल यह नहीं है कि अमुक ने कह दिया और हमने मान लिया। 'कौआ कान ले गया', और हम कान को तो टटोलें नहीं, कौए के पीछे दौड़ें। मुझे आशा है—आशा ही नहीं, विश्वास है—कि ब्रह्मवादी नेता इन प्रश्नों पर विचार करेंगे, और सप्रमाण, सकारण और उचित दलीलें जनता के सामने पेश करेंगे; उनके विषय में जो भिन्न-भिन्न प्रकार की जनश्रुतियाँ

मि० जे० कृष्णमूर्ति

अज्ञान के कारण फैल रही हैं, उन्हें वे विच्छिन्न करने की चेष्टा करेंगे।

सूर्यनाथ तकरू

× × ×

२. पूजा

आह ! लुटा डाला सब कुछ मैंने जग में दानी बनकर
रक्खा कुछ भी नहीं तुझे देने को मेरे चिर-सुंदर
बूँद-बूँद कर रिक्त हुआ यह रस का छोटा-सा प्याला
तो भी गई न मादकता, मन बना हुआ है मतवाला
क्या दूँगा—जब तू आवेगा तोड़ वज्र-कर से यह द्वार
वीणा के सूने तारों से कौन निकालूँगा झंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब न रहा मेरा वसंत—जीवन-वन उजड़ गया है आह !
आज दृगों में छिप बैठा है आकर करुणा-सिंधु अथाह ।

* * *

जब आओगे, रिक्त करों से प्रिय ! पूजूँगा—गाऊँगा ;
पतझड़ के अंतिम प्रसून-सा चरणों पर गिर जाऊँगा ।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

× × ×

३. ग्राम्य-साहित्य

(क)

हर्ष का विषय है, कि इस समय कतिपय साहित्य-प्रेमी जनों का ध्यान ग्राम्य-साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ है। कविवर श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी ने ग्राम्य-गीतों के संग्रह के लिये बड़ा प्रयत्न किया है। आपने बहुत-से गीत संग्रह भी कर लिए हैं। किंतु इन गीतों के अतिरिक्त दूसरे प्रकार का भी साहित्य है, जो गद्यात्मक है। ग्राम्य-साहित्य में स्त्रियोपयोगी और बालकोपयोगी साहित्य का भी काफ़ी मात्रा है। छोटी-छोटी कहानियों में ऐसे मार्मिक उपदेश भरे हैं, जो तत्कालीन ग्राम्य-समाज के आदर्शों का परिचय कराते हैं। इन कहानियों से मनोरंजन के साथ-साथ भारी शिक्षा भी मिलती है।

मुखाग्र-गणित अथवा मेंटल अरिथमेटिक मनुष्य की विचार-शक्ति और स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिये बहुत उपयोगी है। विचार तथा स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के लिये बालक-बालिकाओं को इसका अभ्यास कराया जाता है। किंतु यह एक रूखा विषय है, और इसके लिये गणित सीखने की भी आवश्यकता है। ग्रामीण जनों ने इसके स्थान पर पहेलियों की रचना की है, जिन्हें ग्रामीण भाषा में 'बुझनी कथा' कहा जाता है। इनसे बौद्धिक विकास और विचार-शक्ति की वृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन भी काफ़ी होता है। बालक इन्हें बड़े चाव से सुनते और याद करते हैं। ग्राम्य-जनों की साहित्यिक रचना का आधार प्रायः वही वस्तुएँ रही हैं, जो उनके रोज़ाना काम की हैं, अथवा जिन्हें वे नित्य-प्रति देखते रहते हैं। ये पहेलियाँ भी उन्हीं व्यवहार की चीज़ों के संबंध में बनाई गई हैं। आज हम कुछ ग्राम्य-पहेलियाँ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

मूली प्रायः सब लोग खाते हैं। सभी छोटे-बड़े उससे परिचित हैं। इसी के संबंध में कुछ पहेलियाँ हैं, जो बड़ी होशियारी से बनाई गई हैं। उनके ऊपर सब ओर से विचार करने पर, सिवा मूली के और किसी चीज़ का बोध नहीं होता। पहेली की पहेली है, और साथ ही मनोरंजन भी। अब देखिए—

१—एक फल ऐसा पैदा हुआ, आधा बगुला आधा सुआ।
२—उजलि बिलैया भवुची पूँछ, बूझु बूझु नाहिं नानी ते पूछ।
३—नदी किनारे घन बबुरी, भीतर मदार साहि तर कुकुरी।

इन तीनों पहेलियों का अर्थ 'मूली' है।

और दूसरी पहेलियाँ भी देखिए—

१—इटकहा खेत चिटकहा बिया, जामत है पर अंकुर नहीं।
२—ऐंचौ डोरि नदी घहराइ, कमल के फूल उपर उतराइ।

इन दोनों पहेलियों का अर्थ 'दही' है। दही जमता तो है, लेकिन उसमें अंकुर नहीं निकलता। बीज आदि के जमने से उसमें अंकुर अवश्य निकलेगा। जमने का अर्थ ग्रामीण-भाषा में 'जम जाना' और 'उगना', दोनों होते हैं।

और लीजिए—

अगिनि कोट का घर बनवाया, जल में किया निकास ;
धीरे-धीरे गई पिया के पास ।१॥
तर लोटा उपर सोंटा, तर धमकै उपर चमकै ।२॥
एक गाँव में आग लगी, एक गाँव में धुआँ ;
बीच में एक लकड़ पड़ा, गोहारि करै कुआँ ।३॥
चढ़ि चौकी एक बैठी रानी, सिर पर आग बदन पर पानी ;
बार-बार सिर काटै उसका, कोई भेद न पावै उसका ।४॥

इन चारों पहेलियों का एक ही अर्थ है, और वह है 'हुक्का', जो आम तौर पर देहात में अब्राह्मणों और इतर लोगों में ख़ूब पिया जाता है। अर्थ लगाना बहुत सरल है ; पर इसका अर्थ सोचने के लिये स्मरण-शक्ति और विचार को कितना ज़ोर देना पड़ता है।

और सुनिए—

करिया भैंसा टीक टिकहरा, बिन मारे उहु रोवै ;
वहि की मा का सात तिलाकै, बिन बूझे जो सोवै।

इस पहेली का अर्थ है 'भ्रमर'। काला रंग होने से भैंसा कहा गया। उसकी गर्दन के ऊपर की सफ़ेदी टीका अर्थात् सफ़ेद दाग़ बताया गया है। भौंरा हर समय भनभनाया करता है। इसे पहेलीकार ने रोना बतलाया है। पहेलियों में प्रायः मिलते-जुलते व्यंग्य-शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है, जिसमें उनका अर्थ ढूँढ़ निकालने के लिये मस्तिष्क को बहुत थोड़ा परिश्रम करना पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान पड़ता है, पहेली बूझने और कहनेवाले में होड़ लग गई थी, इसीलिये उसने इतनी बड़ी शपथ दिला दी। नीचे लिखी पहेलियों का भी यही अर्थ है।

श्याम बरण पीतांबर काँधे, मुरलीधर नहिं होय ;
बिन मुरली वह शब्द करत है, बिरला बूझे कोय। १ ॥
भकुना भैंसा कपटे कान; उहु लागै परगने के थान। २ ॥

माधवप्रसाद मिश्र

× × ×

४. उपालंभ

हौं तो सुधाकर क्यों बरसावत ,
मो बिरहीनि पै आगि-सी छानिकै ;
कारो हियो, तेहि ते कलपावत ,
हौं तो लखौं तुहि मीत ? सों मानिकै।
चाव-भरे दृग सों अनिमेष वे ,
बीती बिसूरि हमैं उर आनिकै ;
जोवत ह्वै हैं कतौं मम प्रीतम ,
तो तन मो अनुहारि-सी जानिकै।

"श्रीपति"

× × ×

५. वासंती

(१)

सदल सह कलिका सहित प्रसून ,
प्रकृति कर रही मूक-आह्वान ;
मंद-गति विश्व-चक्षु-पथ पर—
मंत्र-मुग्धे ! आओ ! आओ !

(२)

फेंक दो चिर-संचित शृंगार ,
भार होगा असह्य सुकुमारि !
हृदय-रंगस्थल की अयि नटी !
श्रांत-चरणे ! आओ ! आओ !

(३)

मलय-मिश्रित मारुत-लहरें ,
किरण-कर की कोमल किरणें ;
न सह सकनेवाली सरले !
नम्र नयने ! आओ ! आओ !

(४)

मुक्त-कुंतलिके ! चलांचले !
चराचर दिग्दिगंत तक का ;
प्रतिक्षित तव अनंत सौंदर्य ,
स्वर्ण-वसने ! मृदुले ! आओ !

रामनारायण शर्मा

× × ×

६. वसंत-स्वागत

कोमल कुसुमों में मुसुकाता छिपकर आनेवाला कौन
बिछी हुई पलकों के पथ पर, छवि दिखलानेवाला कौन
महँक रहा है मलयानिल क्यों, होती है क्यों ऐसी कू
बौरे-बौरे आमों का यह भाव और भाषा क्यों मृ
भले फबीले खिले फूल का, क्यों अलि बनता है मेहमान
बरसा रहा सुधा वसुधा पर, किस माधव का मधुमय गान
बिना बनाए बन जाते वन, उन्हें बनानेवाला कौन
कीचक के छिद्रों में बसकर, बीन बजानेवाला कौन
बना रहा है मत्त पिलाकर मंजुल मधु का प्याला कौन
फैल रही जिसकी महिमा है, है वह महिमावाला कौन
मेरे बहु विकसित उपवन का, विभव बढ़ानेवाला कौन
विटप-निचय के पूत पदों पर, पुष्प चढ़ानेवाला कौन
फैलाकर माया मानस को मुग्ध बनानेवाला कौन
छिपे-छिपे मेरे आँगन में, हँसता आनेवाला कौन
अरे कौन यह है इठलाता—क्या हो गया शिशिर का
करने लगा राज क्या आकर विश्व-विनोदन विदित क

श्यामनारायण पां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. विदेशी पूतना

(१)

गोरे-गोरे गाल में है पौडर लगाती सदा,
पोमेड लगाके कच, चले इतराती है;
ऐनक लगावे नैन फ़ैशन बनावे नित्य,
नाना विधि क्रीम मल रूप दरशाती है।
गाउन सुधारे अंग हैट ले सजाए सिर,
छाती खोल-खोल करे बात सतराती है;
मोहती सभी के चित्त माया-जाल डाल बाल,
मारने के हेतु मंत्र 'मारण' जगाती है।

(२)

लाखों हाव-भाव कर मन को चुराती चले,
नेत्र सी दिखाती सैन यहाँ वह आती है;
हंस-सी गमनि मंद गज को लजाए देत,
उपमा न सूझ पड़े सभी पार जाती है।
भारत में आई अब चलने को चाल निज,
मोहनी सुरम्य परी काम-मदमाती है;
सात सिंधु पार देश छोड़कर आई यहाँ,
फाँसने को जन सभी आज 'मिस' छाती है।

(३)

है यह विदेशी नहीं पूतना बनी है सखि,
सिंधु-पार से न आके मथुरा से आती है;
आंग्ल ने पठाई नहीं, कंस की पठाई सही,
माया बन आई व्रज-मंडल अराती है।
सावधान होओ यह बात न बिसारो कभी,
भूल जो ज़रा-सी हुई आपद बुलाती है;
भारत का प्रेम-कान्ह लेकर लुकाओ गोद,
पूतना निगोड़ी यह आती मुख बाती है।

"बाण"

× × ×

२. उपलंभ

(क) न्यायाधीश

गोकि कुछ न्यायाधीश शुद्ध बुद्धि धारकर,
निज करतव्य-वश न्याय खरा छानते;
रू-रियायतों को ठुकराते दृढ़ता के साथ,
लोभ-मोह का न हैं महत्त्व लेश मानते।
राजहंस-भाँति नीर-क्षीर को विभिन्न कर,
धनी, दीन, बली, दुरबल सम जानते;
ऐसे न्यायमूर्ति किंतु अल्प ही दिखाई देते,
बहुतेरे न्याय-गला घोंट हठ ठानते।
कलुषित कर रहे शुभ्र न्याय-आसन को,
नज़र-नियाज़ भेंट डाली जमा जाते हैं;
दावतें उड़ाते शरमाते हैं ज़रा भी नहीं,
चुपचाप थैलियाँ डकार सदा जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुले इजलास में भी दरशाते पक्षपात,
मित्र वक़लाओं के मुक़दमे जिताते हैं;
नज़र बचाते नाथ! आप भी कुकर्मियों से,
ऐसे आततायियों को दंड न दिलाते हैं।
पुत्र भ्रात मित्र हो वकील सजातीय जब,
कोर्ट * शक्ति उसकी सहायता को आती है;
न्याय† नीतिशुद्ध बुद्धि दया आदि की प्रवृत्ति,
उसके भले के लिये सभी जग जाती है।
उस ओर के गवाह मातबर दृष्टि आते,
लचर दलील तत्त्व-पूर्ण दरशाती है;
गला घोटते हैं न्याय सत्य का सदैव नाथ,
क्रोध-ज्वाल आपकी न उनको जलाती है!
देहरी न चूमें जो वकील नित आके घर,
बात-बात में "हुज़ूर" "माई लार्ड" बोलें जो न;
झुककें सलाम करें दाँत काढ़ "हें-हें" करें,
करके खुशामद हृदय को टटोलें जो न।
स्वाभिमान, सत्य-भाव दबा के पतित बनें,
हाँ में हाँ मिलाके मृदु शब्द-सुधा घोलें जो न;
न्यायाधीश शक्ति सारी उसके विरुद्ध चले,
न्याय आश कर वृथा डावाँडोल डोलें सो न।
आप ही बताइए, दिखाइए विशुद्ध मार्ग,
नाथ ही का हाथ गह धर्म या निभाऊँ मैं;
दें न जो सहारा तो क्या पूजा-पाठ-भक्ति त्याग,
बनकर नासतिक प्रभु को लजाऊँ मैं।
तीन लोक-पति-द्वार से भी हो निराश हाय,
क्षुद्र न्यायाधीश सो हीं भरम गँवाऊँ मैं;
उससे भी उत्तर में पाऊँ ठोकरें कदापि,
कितना पतित बनूँ, और कहाँ जाऊँ मैं।

(ख) दलाल

हो रही ज़लालत ये नाम की वकालत है,
गौरव गुमान बड़ा बेहद दलालों का;
समझ रहे हैं अन्नदाता अपने को ही वे,
गर्व बड़ा चढ़ा उन्हें अपने कमालों का;
झूठे क्रूर कपटी खुशामदी चरित्र-हीन,
कोर्ट चहुँ ओर ताने दाम शब्द-जालों का;
आप भी न करते निराकरण पापियों का,
अंत कैसे होगा नाथ! कठिन कसालों का;
उनके करों की कठपुतली वकील बने,
आय-भाग स्वेच्छा से ही उन्हें बाँट देते हैं;
रुपए में चार-पाँच सात-आठ आने तक,
क्या करें बिचारे झखमार काट देते हैं;
अपने परिश्रम का फल खोते इस भाँति,
दुखित न होते साँस तक भी न लेते हैं;
तुमसे उपेक्षित निरादृत निराश होके,
जीवन घृणित 'वज्र' नाथ हम खेते हैं;
अड्डे नहीं केवल शहर ही दलालों के हैं,
ग्राम-ग्राम में भी तो अनेक दुष्ट छाए हैं;
मुखत्यार पटवारी ज़िमींदार अनुभवी,
बिरले ही इस लोभ से तो बच पाए हैं;
बन बिसवासपात्र सीधे ग्रामवासियों के,
घात कर जाते, नहीं तनिक लजाए हैं;
भगवान! 'वज्र' तुम इन पै गिराते नहीं,
नाथ, न्याय-भाव कहाँ घूमने सिधाए हैं;

केशवराम गुप्त "वज्र"

* Inherent powers of the court
†Jurtice, equety and good conscicnee.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. देश की दशा

राष्ट्रीय आंदोलन की जागृति, दमन और असंतोष, संक्षेप में यही तीन बातें इस समय भारत के कोने-कोने में प्रतिध्वनित हो रही हैं। महात्मा गांधी कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो गए हैं। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आंदोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। कहते हैं, इँगलड से भारत में जितने परिमाण में वस्त्र आते हैं, उनके आँकड़ों को जाँचने से भी बहिष्कार-आंदोलन की सफलता का परिचय मिलता है। कलकत्ते के प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट ने पार्क में विदेशी वस्त्र जलाने का अपराध करने के कारण महात्मा गांधी पर एक रुपया जुर्माना किया है। इस दंड में हमें न्याय के उच्च आदर्श की गंभीरता नहीं दिखलाई पड़ती है। महात्मा गांधी पर मुक़द्दमा चलाया गया। उनके निवास-स्थान पर जाकर उनसे मुचलका लिया गया। वे नियत तिथि पर कचहरी पधारें। उनसे कहा गया फ़ैसला कल सुनाया जायगा। आप जहाँ चाहें जा सकते हैं। महात्माजी दिल्ली चले गए। उनकी अनुपस्थिति में उन पर एक रुपया जुर्माना किया गया, और एक वकील साहब ने उसे जमा कर दिया। यह सब क्या है? इससे तो कहीं अच्छा यह होता कि मुक़द्दमा वापस ले लिया जाता। ओ हो, इससे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रोत्साहन मिला है। सूरत में माडर्न रिविउ के संपादक विश्वविख्यात श्रीयुत रामानंदजी चटर्जी के सभापतित्व में हिंदू-महासभा का अधिवेशन हो गया। महासभा ने इस बार नेहरू-योजना को अस्वीकृत कर दिया, और इस कारण से कि कुछ अदूरदर्शी मुसलमान उसको नहीं मानते हैं। सहयोगी 'लीडर' की राय है कि महासभा का यह काम अच्छा नहीं हुआ। एक वस्तु का पहले अंगीकार करके फिर कुछ लोगों के विरोध के कारण उसको अस्वीकृत करना न तो व्यावहारिक राजनीति है, न न्यायानुकूल ही। हिंदू-संस्कृति के तो यह सर्वथा प्रतिकूल है, क्योंकि 'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति'। हम भी सहयोगी 'लीडर' की राय का समर्थन करते हैं। 'लीडर' के इस कथन से भी हम सहमत हैं कि महासभा के इस निश्चय से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गई कि नेहरू-योजना में महासभावालों का हाथ न था। मुसलिम-लीग का अधिवेशन दिल्ली में था। इसकी बड़ी छीछालेदर हुई। शफ़ी-लीग और जिन्ना-लीग में मेल-मिलाप तो हुआ नहीं, उल्टे जिन्ना-लीग की एकता नष्ट हो गई। इस समय जिन्ना-लीग में दो दल हैं, एक नेहरू-योजना स्वीकार करने के पक्ष में है तथा दूसरा उसका विरोधी। योजना-समर्थक दल प्रबल है, तभी तो विषय-निर्धारिणी-समिति में योजना स्वीकृति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया। खुले अधिवेशन में बड़ी गड़बड़ी रही। ख़ूब हो-हल्ला मचा, और अधिवेशन अनिश्चित समय के लिये स्थगित कर दिया गया। जो हो, इन सब बातों से इतना स्पष्ट है कि मुसलमानों का एक बड़ा दल नेहरू-योजना का समर्थक है। लिबरल फेडरेशन और युक्तप्रांतीय राजनैतिक कानफ़रेंस में भी ख़ूब चहल-पहल रही। पहले में तर्क-पूर्ण और गंभीर भाषणों का बाहुल्य था, और दूसरे में उत्साह और स्वदेश-सेवा के लिये भारी त्याग करने के भावों का प्रदर्शन था। भारत-सरकार की मंज़ूरी से भारत एवं विदेशों के ३१ कम्यूनिस्टों पर यह अभियोग लगाया गया है कि वे लोग षड्यंत्र द्वारा सम्राट् का शासन उलट देना चाहते थे। इस मुक़द्दमे का विचार मेरठ में होगा। इससे देश में बड़ी सनसनी फैली है। बड़ी व्यवस्थापिका सभा में पबलिक सेफ़्टी बिल को लेकर सरकार और प्रजापक्ष में ख़ूब दाँव-पेंच चल रहे हैं। सभा के अध्यक्ष श्रीपटेलजी का कहना है कि सरकार या तो मेरठ में होनेवाले षड्यंत्र के मुक़द्दमे को वापस ले ले, नहीं तो पबलिक सेफ़्टी बिल पर बहस मुलतवी रखे; क्योंकि उस प्रकार की बहस से मेरठवाले मुक़द्दमे के अनुकूल अथवा प्रतिकूल वातावरण तैयार हो जायगा। अध्यक्ष के इस तेजस्विता-पूर्ण निर्णय से सरकार किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई है। पटेलजी के इस काम से राष्ट्रीय दल परम प्रसन्न है। इस बीच में राजद्रोह के अभियोग में कई सज्जनों को सज़ा मिली है। चाँद-कार्यालय से प्रकाशित और श्रीसुंदरलाल-लिखित २१०० पृष्ठों के बृहत् ग्रंथ को सरकार ने प्रकाशन के ठीक चार या पाँच दिन के भीतर ज़ब्त किया है। राष्ट्रीय दल के नेता आगामि निर्वाचन के लिये अभी से तैयारी कर रहे हैं। प्रजापक्ष आंदोलनास्त्र द्वारा और सरकार दमन चक्र द्वारा संघर्ष के लिये तुली है। भारत की राजनीति का इस समय यही रूप है।

× × ×

२. प्रतिष्ठित भारत का ओज

माघ की माधुरी में 'भारत' पत्र में निकलनेवाले विनोदाभासों के संबंध में कुछ विचार प्रकट किए गए थे। माधुरी के नोट में एक बात की कमी थी। उसमें विनोदाभास का कोई उदाहरण नहीं उद्धृत किया गया था। हर्ष की बात है कि सहयोगी 'भारत' ने यह कमी स्वयं पूरी कर दी है। ३१ मार्च, सन् १९२९ ई० के 'भारत' में 'मिस्टर की डायरी और शायरी' स्तंभ के अंतर्गत माधुरी-माधुर्य-मंडन नोट में उस प्रकार का उदाहरणेंदु षोडश कला से देदीप्यमान है। उसकी सुरुचि-ज्योत्स्ना के शुभ्र और शीतल आलोक से सहृदयों के हृदयाकाश में जिस आनंद का आविर्भाव होता है, वह अनिर्वचनीय है। एतदर्थ हम 'भारत' के कृतज्ञ हैं। 'भारत' को अपने मुकुट के ओज का गर्व है। बधाई है। इस संबंध में और कुछ न लिखकर हम अपने पाठकों के सम्मुख केशव सुकवि दास का निम्न-लिखित छंद उपस्थित करते हैं—

आक औ कनकपात तुम जो चबात हौ तौ,
पटरस ब्यंजन न केहूँ भाँति लटिगो।
भूखन बसन कीन्हें ब्याल गज खाल के तौ,
सुबरन साल को न पैन्हिबो पलटिगो।
दास के दयाल हौ सुरीति ही उचित तुम्हैं,
लीन्हीं जो कुरीति तो तिहारो ठाठ ठटिगो।
ह्वै कै जगदीस कीन्हों बाहन बृषभ को तौ,
कहा शिव साहेब गयंदन को घटिगो।

× × ×

३. संशोधन

विगत मास की माधुरी में 'मतिराम'-शीर्षक संपादकीय नोट नं० २ में जहाँगीर का देहांत संवत् १७८४ में छपा है। यह ठीक नहीं है। १७८४ के स्थान पर १६८४ होना चाहिए। इसी प्रकार मतिराम का जन्म संवत् १७६० न होकर संवत् १६६० होना चाहिए। संपादकीय नोट नंबर १२ में भूषण का स्वर्गवास संवत् १७८० में माना गया है, पर होना चाहिए संवत् १७७० में। पाठकगण कृपया इन संशोधनों को नोट कर लें।

× × ×

४. एक आवश्यक निवेदन

घासलेट और चाकलेट साहित्य को लेकर आजकल हिंदी-साहित्य-संसार में एक विचित्र आंदोलन छिड़ा हुआ है। वैसे साहित्य के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ भी न लिखते हुए आंदोलनकारी सज्जनों से हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नम्र निवेदन है कि कृपा करके इस आंदोलन को व्यक्तिगत आक्षेपों एवं कटुता-पूर्ण लेखों से मुक्त रक्खें। केवल नवयुवक होने के कारण किसी साहित्य-सेवी को 'छोकरा' कहना अनुचित है, और उसी प्रकार किसी प्रतिष्ठित और उत्तरदायी संपादक का 'म्याऊँमुख' नाम से संबोधित किया जाना हमें पसंद नहीं है। आंदोलनकारियों की ओर से पक्ष अथवा विपक्ष में जो कार्टून निकलते हैं, उनमें भी व्यक्ति-विशेष की भावभंगी का चित्रण ही अधिक दिखलाई पड़ता है। ऐसे प्रदर्शनों से कटुता, कलह और वैमनस्य का सृजन धड़ल्ले से हो रहा है, जो हिंदी-साहित्य के लिये न केवल अहितकर है, वरन् लज्जा-जनक भी। घासलेट और चाकलेट-साहित्य के समर्थक और विरोधी, दोनों ही पक्ष, अपने मत की पुष्टि में, समाज-हित और कला की दुहाई देते हैं। जब दोनों पक्ष कम-से-कम इतनी बात में एकमत हैं, तब विवाद भी इन्हीं दो केंद्रों की परिधि के बाहर क्यों जाने दिया जाय? अमुक पुस्तक कला की दृष्टि से प्रशंसनीय है अथवा निंद्य, इस पर शांति-पूर्वक विचार होना चाहिए। पर उस पुस्तक पर विचार करते समय उसके लेखक अथवा समालोचक का व्यक्तिगत जीवन व्यर्थ में जनता के सामने क्यों लाया जाता है? पुस्तक-विशेष से समाज का हित हुआ अथवा अहित, इस पर निस्संकोच और निर्भयता के साथ विचार किया जाय। पर यह काम उक्त पुस्तक के लेखक अथवा समालोचक के प्राइवेट जीवन के उदाहरण देकर अरोचक और कलह-पूर्ण क्यों बनाया जाय? क्या आंदोलनकारी सज्जन हमारे इस नम्र निवेदन पर ध्यान देने की उदारता दिखलावेंगे?

× × ×

५. महाकवि भूषण और चिमनाजी

स्वर्गवासी गोविंद-गिल्ला भाई द्वारा संपादित 'शिवराज-शतक' में निम्न-लिखित छंद है। इसमें 'चिंतामणि' का उल्लेख है। इस नोट में इसी छंद पर विचार किया जाता है। पूज्यपाद मिश्रबंधुओं ने इसका पाठ दूसरे प्रकार से रक्खा है। उसमें 'चिंतामणि' नहीं है।

शक्र जिमि शैल पर अर्क तम फैल पर,
विघन के रैल पर लंबोदर लेखिए;
राम दशकंध पर भीम जरासंध पर,
'भूषण' ज्यों सिंधु पर कुंभज विसेखिए।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के वंश पर पारथ ज्यों पेखिए;
बाज ज्यों विहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
तैसे चतुरंग पर 'चिंतामणि' देखिए।

उपर्युक्त छंद महाकवि भूषण का बनाया है, इसमें दो मत नहीं हैं। विचारणीय विषय यह है कि जिन 'चिंतामणि' की इस छंद में प्रशंसा है, वह कौन थे? एक लेखक का कथन है—'चिमनाजी' नाम 'चिंतामणि' का विकृत अथवा मराठी-स्वरूप है। जब तक 'चिंतामणि' नाम के किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष का पता हमें नहीं मिलता है, तब तक हम भी उक्त लेखक के इस कथन को मान लेते हैं। अच्छा, यदि 'चिमनाजी' ही 'चिंतामणि' हैं, तो हमें यह देखना है कि इतिहास में हमें उनका कुछ पता मिलता है, या नहीं। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक यदुनाथ सरकार ने अपने 'शिवाजी'-नामक ग्रंथ में 'चिमनाजी-बापूजी' का स्पष्ट उल्लेख किया है। 'चिमनाजी' शिवाजी के विश्वासपात्र सैनिक थे। शाइस्ताख़ाँ पर पूने में रात्रि के समय शिवाजी ने जो आक्रमण किया था, उसमें 'चिमनाजी' उनके प्रधान सहायक थे। शाइस्ताख़ाँ के अंतःपुर में जब शिवाजी घुसे थे, तब 'चिमनाजी' उनके साथ थे। 'शिवाजी'-पुस्तक के द्वितीय संस्करण में, पृष्ठ ९४ पर, सरकार महोदय लिखते हैं—

"Shivaji, with his trusty lieutenant, *Chimnaji Bapuji*, was the first to enter the harem, and was followed by 200 of his men."

श्री० कृष्णजी अनंत सभासद ने भी अपने बखर में 'चिमनाजी' का उल्लेख किया है। कलकत्ता-युनिवर्सिटी की ओर से प्रकाशित और श्रीसुरेंद्रनाथ एम्० ए० द्वारा संपादित 'शिवाछत्रपति'-नामक जो पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसमें सभासद-बखर का अँगरेज़ी-अनुवाद दिया हुआ है। उक्त अनुवाद में 'चिमनाजी' का उल्लेख है। आवश्यक अवतरण नीचे दिए जाते हैं। प्रसंग शाइस्ताख़ाँ के विरुद्ध चढ़ाई करने का है (देखिए, पृष्ठ ४२-४३ शिवाछत्रपति)—

"Babaji Bapuji and *Chimnaji Bapuji*, Desh Kulkarnis of Tarf Khed, both very

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

intelligent and brave, were favourites of the Raje. These two brothers were taken in his company."

"Babaji Bapuj iand *Chimnaji Bapuji* Khedkar marched in front (of the column). Behind them went all the men and the Raje."

"Babaji Bapuji and *Chimnaji Bapuji* replied as they went on,—"we belong to the army and had gone on sentry duty." Soon after it was midnight.

"Selecting two hundred men out of them, the Raje himself cut the screen with a dagger, and entered in, bidding *Chimnaji Bapuji* to accompany him,"

उपर्युक्त अवतरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चिमनाजी एक विश्वासपात्र, बुद्धिमान् और वीर सैनिक थे। शिवाजी महाराज ने जिस सेना के साथ शाइस्ताख़ाँ के ऊपर रात्रि में आक्रमण करने का आयोजन किया था, उसके अग्रणी होने का सौभाग्य 'चिमनाजी' को ही प्राप्त था। अत्यंत जोखिम के स्थान पर शाइस्ताख़ाँ के शिविरों में शिवाजी के साथ वही गए थे। महाराज के वह पूर्ण कृपाभाजन थे, तथैव तर्फ़ खेद के देशकुलकर्णी भी थे। ऐसी दशा में यदि 'चिमनाजी' और 'चिंतामणि' एक ही व्यक्ति हों, तो 'भूषणजी' ने उपर्युक्त छंद में इन्हीं के यश का गान किया है। शाइस्ताख़ाँ पर नैश आक्रमण संवत् १७२० में हुआ था। महाकवि भूषण उस समय मौजूद थे, और अपनी राष्ट्रीय कविता से हिंदू-जाति में नवीन जीवन का संचार कर रहे थे।

× × ×

६. महामहोपाध्याय, साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा एम्० ए० का स्वर्गवास

महामहोपाध्याय पांडेय रामावतार शर्मा एम्० ए०, साहित्याचार्य का विगत ३ एप्रिल को, ५२ वर्ष की अवस्था में, छपरे में, देहांत हो गया। देहांत के महीने-डेढ़ महीने पूर्व आपने सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। हाल ही में सरकार ने आपको महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया था। शर्माजी के स्वर्गवास से भारतीय विद्वत्समाज की जो हानि हुई है, निकट भविष्य में उसकी पूर्ति होना कठिन है। आपके देहावसान से हिंदी साहित्य की जो हानि हुई है, उसका तो वर्णन करना कठिन है। इस समय स्वदेश में आपके समान संस्कृत बहुत ही कम विद्वान् हैं। इस महाविपत्ति में शर्माजी के दुःखित कुटुंब के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

म० म० पांडेय रामावतार शर्मा

पांडेयजी का जन्म संवत् १९३४ में हुआ था। पिता का नाम पंडित देवनारायण शर्मा था। सरयूपारीण ब्राह्मण थे, और बिहार-प्रांत के छपरा में रहते थे। संवत् १९५४ में पांडेयजी ने काशी की साहित्याचार्य-परीक्षा पास की। इसमें आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, तथा समस्त उत्तीर्ण छात्रों में आपने सर्वप्रथम रहा। संवत् १९५८ में आपने काशी विश्वविद्यालय की एम्० ए०-परीक्षा पास की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप सर्वप्रथम रहे। इसके बाद आप काशी-हिंदू-कालेज में प्रोफ़ेसर हो गए। तदुपरांत आपको पटने के सरकारी-कालेज में प्रोफ़ेसरी का पद प्राप्त हुआ। फिर दो वर्ष तक आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय में बसु-मल्लिक-व्याख्याता-पद पर भी रहे। हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी में भी कुछ समय तक आपने प्रोफ़ेसरी का काम किया। मृत्यु के तीन-चार मास पूर्व तक आप पटना-कालेज में प्रोफ़ेसर थे। स्वाध्याय का आपको बहुत बड़ा शौक़ था। दिन-रात के २४ घंटों में आपके १८ घंटे स्वाध्याय में व्यतीत होते थे। इसी कारण इतनी कम अवस्था में आपका शरीर जराजीर्ण हो गया था, और नेत्रों की ज्योति क्षीण पड़ गई थी। पांडेयजी को हिंदी-साहित्य से भी बड़ा प्रेम था। हिंदी में आपने कई सुंदर ग्रंथ लिखे हैं। माधुरी में प्रकाशित 'भगवद्गीता की आलोचना'-शीर्षक आपका लेख शायद हिंदी में आपकी अंतिम आलोचना है। जबलपुरीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद को भी आपने विभूषित किया था। संस्कृत-साहित्य के उद्धारकों में आपका स्थान बहुत ऊँचा था। आपको यह बात बहुत कष्टकर प्रतीत होती थी कि भारत के लोग संस्कृत-साहित्य के अभ्यास के लिये विदेश को जायँ। संस्कृत में भी आपने कई उत्कृष्ट ग्रंथ लिखे हैं। इस समय आप शब्दकल्पद्रु-नामक एक विशाल संस्कृत-कोश का संपादन कर रहे थे। इसका एक भाग हाल ही में बरौदा-ओरिएंटल लाइब्रेरी-सीरीज़ में प्रकाशित हुआ है। अपने ढंग का यह कोश अद्वितीय है। खेद है, शर्माजी संपूर्ण कोश का संपादन करने के पहले ही इस लोक से चल बसे। महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई० के आप परम कृपाभाजन शिष्य थे। महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री से भी आपने कई ग्रंथ पढ़े थे।

पांडेय रामावतारजी का ईश्वर में विश्वास नहीं था। पितात्मवाद के वह घोर विरोधी थे। उनके सामाजिक विचार बहुत उदार थे। वह कट्टर समाज-सुधारक थे, और इस मामले में पुराने ढंग के पंडितों से उनका घोर मत-भेद रहता था। वह स्पष्ट शब्दों में मांस-भक्षण का समर्थन करते थे। आपकी प्रकृति बड़ी सरस थी, और आडंबर से आप कोसों दूर भागते थे। आपसे मिलने और बातचीत करने में बड़ा आनंद आता था। शर्माजी के कई पुत्र हैं। सभी सुयोग्य हैं, और अच्छे पदों पर हैं। यद्यपि आपको अर्थकष्ट न था, फिर भी आर्थिक समृद्धि का सौभाग्य आपको प्राप्त न था।

कोई दो मास बीते, जब आप जल-वायु-परिवर्तन के लिये हरद्वार जा रहे थे, काशी में असबाब-समेत आपका नौकर स्टेशन पर ही छूट गया था। इसलिये आप लखनऊ में मुंशी विष्णुनारायणजी के मकान पर, रात-भर के लिये, ठहर गए थे। उस समय आपने इस नोट के लेखक को याद किया था। शर्माजी के साथ लेखक का यही, प्रथम और अंतिम साक्षात्कार था। बड़े प्रेम से मिले। तीन घंटे तक साहित्य-संबंधी भिन्न-भिन्न विषयों पर बातचीत होती रही। स्वर्गीय दुःखभंजनजी के एक श्लोक को पढ़कर आपने बतलाया कि इधर १,५०० वर्ष से ऐसा सुंदर श्लोक नहीं बना है। अपने स्वाध्याय की चर्चा करते हुए आपने बतलाया कि मैंने चैंबर्स-डिक्शनरी का अथ से लेकर इति तक गंभीर अध्ययन किया है। एम्० ए० की परीक्षा में एक प्रश्न ऐसा आया था, जिसमें परीक्षक ने विद्यार्थियों से ऋग्वेद के कुछ उद्धरण टीका-टिप्पणी के साथ देने को कहा था। शर्माजी का कथन था कि मैंने उक्त प्रश्न के उत्तर में ऋग्वेद के २०० उद्धरण दिए थे। स्वामी दयानंदजी के ऋग्वेदज्ञान को आप ठीक नहीं बतलाते थे। श्रीरामचरण तर्कवागीश-कृत साहित्य-दर्पण की टीका की आप बड़ी प्रशंसा करते थे, और उसी को 'दर्पण' की सर्वोत्कृष्ट टीका बतलाते थे। अन्य टीकाओं पर आपने विशेष श्रद्धा नहीं प्रदर्शित की। एक-आध टीका को तो आपने नितांत भ्रामक बतलाया। 'दर्पण' पर एक अच्छी टीका लिखने का आपका भी विचार था। बिदा होते समय जब इस नोट के लेखक ने पांडेयजी का चरण-स्पर्श किया, तो आप गद्गद हो गए। आशीर्वाद देते हुए आपने कहा—"भाई, तुम और हम तो एक ही हैं। कान्यकुब्ज और सरयूपारीणों में कोई भेद नहीं है, वे निश्चय ही एक हैं।" शर्माजी के उपर्युक्त वाक्य इस नोट के लेखक के कानों में अब भी ज्यों-के-त्यों प्रतिध्वनित हो रहे हैं। निश्चय ही लेखक का यह परम सौभाग्य था, जो ऐसे अद्वितीय विद्वान् से इस प्रकार अनायास कई घंटों तक बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। संस्कृत और हिंदी-साहित्य का यह घोर दुर्भाग्य है, जो ऐसा धुरंधर विद्वान् और विकट परिश्रमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सेवी केवल ५२ वर्ष की अवस्था में पंचत्व को प्राप्त हो गया।

× × ×

७. महाराज भरतपुर का स्वर्गवास

बड़े ही दुःख की बात है कि महाराज भरतपुर का केवल २९ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। इधर रियासत पर अधिक ऋण हो जाने तथा अन्य कई कारणों से महाराज रियासत के प्रबंध से अलग हो गए थे, और दिल्ली में रहते थे। महाराज भरतपुर बड़े ही तेजस्वी और उदार विचारों के नरेश थे। हिंदू-धर्म पर उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी, और हिंदी-

स्वर्गवासी भरतपुर-नरेश

साहित्य से उनका प्रेम था। उनकी पृष्ठपोषकता भरतपुर से 'भारतवीर'-नामक एक समाचारपत्र निकलता था। उन्हीं की प्रेरणा से भरतपुर में १७ वाँ हिंदी साहित्य-सम्मेलन हुआ था। 'सूरसागर' का एक संस्करण निकालने के लिये उन्होंने यथेष्ट धन का वादा किया था। यदि वह जीवित रहते, तो उनके द्वारा हिंदी-साहित्य का बहुत-कुछ अभ्युदय होता। राज्य-प्रबंध से अलग होने के बाद सरकार से उनकी लिखा-पढ़ी हुई थी, उसका हाल समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुका है। महाराज ने उस अवसर सरकार को जो पत्र लिखा था, वह बड़ा ही तेजस्विता और निर्भीकता से ओत-प्रोत था। यह और भी गौरव की बात है कि पुत्र-शोक का महान् कष्ट अनुभव करने के लिये अभी महाराज के पिता जीवित हैं।

महाराज भरतपुर समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने अपने राज्य में विधवा-विवाह को क़ानूनन् जायज़ कर दिया था। उनके राज्य में बाल-विवाह का निषेध सन् १९२६ में, भरतपुर-राज्य में, शिशु-सप्ताह धूमधाम के साथ मनाया गया था। उस अवसर महाराज ने जो भाषण दिया था, वह बड़ा ही और विद्वत्ता-पूर्ण था। सन् १९२६ में सरकार ने महाराज को के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया था। भरतपुर-नरेश स्वदेश-भक्त भी थे। मसजिद के मामले को लेकर कुछ मुसलमान उनसे रुष्ट थे, पर उन्होंने तो इस मामले में भी न्याय ही किया था। महाराज के पुत्र, जो अब वर्तमान भरतपुर-नरेश हैं, नाबालिग़ हैं। इस विपत्ति के अवसर पर राज्य से हमारी पूर्ण सहानुभूति है, और स्वर्गीय आत्मा की सद्गति के लिये हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

× × ×

८. अशिष्ट और उद्दंड समालोचना

कुछ लोगों का मत है कि समालोचना में व्यंग्य, आक्षेप, कर्कश कटाक्ष एवं अशिष्ट तथा फूहड़ भाषा की बौछार न रहनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में अधिकांश इसी शैली की समालोचनाओं का आदर है। किसी उक्त देशों में भी पहले समालोचनाओं में उद्दंडता और कर्कशता पाई जाती थी। बड़े उत्पात के बाद अब कहीं समालोचनाओं में शिष्टता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रादुर्भाव हुआ है। जिन लेखकों के सतत प्रयत्न से अब यह अवसर उपस्थित हुआ है, उनको समय-समय पर अपने इस पवित्र प्रयत्न के लिये भी ख़ूब गालियाँ सुननी पड़ी हैं; पर इन गालियों से वे लोग ज़रा भी नहीं विचलित हुए। उन्होंने गालियों का उत्तर गालियों द्वारा नहीं दिया, बरन् शांतिपूर्वक शिष्ट भाषा में अपने विषय का प्रतिपादन किया। समालोचना में शिष्टता और भद्रता के समर्थक लेखकों की निकनीयती पर भी आक्षेप किए गए। कहा गया कि वे डरपोक हैं, एवं दूसरों के द्वारा अपनी प्रशंसा चाहते हैं, इसीलिये बगुलाभगत बनते हैं, और मृदुता तथा शिष्टता की दुहाई देते हैं। शिष्टता के प्रेमी समालोचकों ने इस प्रहार को भी शांति के साथ सहा। स्मरण रहे, ऐसे प्रहार ऐरे-ग़ैरे लेखकों ने नहीं किए, बरन् ऐसे प्रसिद्ध समालोचकों ने, जिनके साहित्यिक उत्तरदायित्व की धाक है। देखिए, जानसन साहब बलर में क्या कहते हैं—

I am not of opinion that these professed enemies of arrogance and severity have much more benevolence or modesty than the rest of mankind; or that they feel in their own hearts, any other intention than to distinguish themselves by their softness and delicacy. Some are modest because they are amorous, and some are lavish of praise because they hope to be repaid.

हिंदी में अभी अशिष्ट समालोचनाओं की कमी नहीं है, पर हर्ष की बात है कि अँगरेज़ी-शिक्षा से लाभान्वित हमारे नवीन समालोचक शिष्टता का आदर कर रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

× × ×

९. "भारत में अँगरेज़ी-राज्य"

प्रयाग के चाँद-कार्यालय से "भारत में अँगरेज़ी-राज्य" नाम की एक ऐतिहासिक पुस्तक विगत १८ मार्च को प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का मूल्य १६) है, तथा इसके लेखक थे श्रीयुत सुंदरलालजी। इसकी छपी-संख्या २,१०० थी। इस पुस्तक का विज्ञापन छः महीने पूर्व से निकल रहा था। प्रकाशक का कहना है कि इस पुस्तक के प्रकाशन में उन्हें २५,०००) रुपए व्यय करने पड़े। भारत के बड़े-बड़े शिक्षा-विशारदों की सहायता से यह पुस्तक लिखी गई, फिर भी इसका मूल आधार भारत ही में प्रकाशित Rise of Christian power in India-नामक एक अँगरेज़ी-पुस्तक है। यह पुस्तक प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम्० ए०-परीक्षा में पाठ्य-ग्रंथ है। सरकार ने इसे ज़ब्त नहीं किया है। "भारत में अँगरेज़ी राज्य"-पुस्तक जिस दिन प्रकाशित हुई, उसके तीसरे या चौथे दिन उसे संयुक्त-प्रदेश की सरकार ने राज-विद्रोहात्मक कहकर ज़ब्त कर लिया। डाकख़ाने में इस पुस्तक के जो वी० पी० डिलिवर होने से रुके थे, वे भी रोक लिए गए। जिन-जिन लोगों के पास पुस्तक पहुँच चुकी थी, उनसे पुलीस ने पुस्तक छीन ली। इस प्रकार पुस्तक का प्रचार सर्वथा रोक दिया गया। प्रकाशक महोदय इस मामले को हाईकोर्ट ले जानेवाले हैं।

"भारत में अँगरेज़ी राज्य"-पुस्तक हमने नहीं पढ़ी है, इसलिये यह कहने में हम सर्वथा असमर्थ हैं कि पुस्तक राज-विद्रोहात्मक है, या नहीं; परंतु यदि प्रकाशक के कथनानुसार वह Rise of Christian power in India के आधार पर ही लिखी गई है, तो उस दशा में यह आवश्यक नहीं जान पड़ता कि वह निश्चयपूर्वक ही राज-विद्रोहात्मक होगी। ख़ैर, इसका निर्णय तो हाईकोर्ट से होगा कि पुस्तक राज-विद्रोहात्मक है, अथवा नहीं; परंतु इस संबंध में दो-एक बातें बड़ी विचित्र हैं। आश्चर्य इस बात का है कि दो-तीन दिन के भीतर २,१०० पृष्ठ का विशाल ग्रंथ कैसे पढ़ डाला गया, और राज-विद्रोहात्मक समझ लिया गया! इस मामले की तह में कोई गूढ़ रहस्य अवश्य है। अगर यह कहा जाय कि पुस्तक के विज्ञापन को देखकर ही सरकार ने पहले से ही पुस्तक को आपत्ति-जनक मान लिया था, तो फिर विज्ञापन ही तीन-चार मास पहले से क्यों नहीं ज़ब्त कर लिया गया? पुस्तक छपने क्यों दी गई? राज-विद्रोहात्मक साहित्य छपने से भी तो रोका जा सकता था। हमारा ख़याल है, अगर सरकार चाहती और प्रकाशक से कहती, तो वह पुस्तक की हस्त-लिपि सरकार को देखने के लिये दे देते। उस दशा में पहले से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार का निर्णय जान चुकने के बाद शायद ही प्रकाशक महोदय अपना रुपया इस प्रकार बरबाद करते। जो हो। इस मामले में सरकारी हस्तक्षेप के कारण प्रकाशक महोदय को जो भारी हानि हुई, उसके लिये हमें खेद है, और प्रकाशक महोदय से हमारी सहानुभूति है। हिंदी में ऐतिहासिक ग्रंथों की यों ही कमी है, फिर जब भारतीय प्रकाशक मेहनत से बहुव्यय करके उनका प्रकाशन कराते हैं, तब उनकी यह दशा होती है। ऐसी अवस्था में हिंदी के इतिहास-साहित्य का भगवान् ही रक्षक है। सुनते हैं, ब्रिटिश-पार्लामेंट में कर्नल वेजउड इस पुस्तक के संबंध में पूछताछ करेंगे। हाईकोर्ट इस संबंध में क्या निर्णय करता है, यह जानने को हम उत्सुक हैं।

× × ×

१०. कट्टर हिंदुओं के लिये विदेश-यात्रा का सुयोग

कुछ कट्टर सनातनी हिंदुओं का ख़याल है कि विदेश-यात्रा धर्म-विरुद्ध है। यह विषय विवादास्पद है, और इस पर अनुकूल एवं प्रतिकूल कितने ही लेखकों तथा धर्मध्वजों के विचार सामने आ चुके हैं। अतएव इस विषय पर हम कुछ न कहकर केवल इस बात की सूचना हर्षपूर्वक देना चाहते हैं कि जो हिंदू आचार-भ्रष्ट होने के ख़याल से अब तक विदेश-यात्रा का आनंद एवं अनुभव प्राप्त करने से वंचित रह जाते थे, उनके लिये भी आयोजन हो गया है। कलकत्ते में एक 'हिंदू-एक्सप्रेस-कंपनी' नाम की संस्था है, उसी की ओर से यह आयोजन किया गया है। कंपनी की ओर से पहला जहाज़, बंबई से, आगामी ३ जून, सन् १९२९ को या उसी के लगभग (यदि यात्रियों की काफ़ी संख्या १५ एप्रिल तक टिकट ख़रीद चुकी तो) रवाना होगा। यात्रा योरप की होगी, और लगभग साढ़े ३ महीने में जहाज़ वापस आ जायगा। इस यात्रा में शाकाहारी हिंदुओं के लिये ही आयोजन किया गया है। कंपनी ने उच्च जाति के ब्राह्मणों द्वारा भोजन का प्रबंध किया है। कंपनी इस बात का विश्वास दिलाती है कि जहाज़ पर और विदेशी भूमि पर 'कट्टरता' की रक्षा की जायगी, अर्थात् कट्टर-से-कट्टर सनातनी हिंदू भी इस जहाज़ द्वारा यात्रा करके धर्म-च्युत एवं आचार-भ्रष्ट न हो सकेंगे। यात्रियों को इँगलैंड, फ़्रांस, आस्ट्रिया, स्विट्ज़रलैंड और आदि देश देखने का मौक़ा मिलेगा।

सफ़र ख़र्च और भोजन-व्यय इस प्रकार पड़ेगा:

दरजा—स्पेशल सैलून-डे-ल्यूक्स	(अ)	३,[illegible]
केबिन-क्लास	(ब)	३,[illegible]
,,	(स)	३,[illegible]
,,	(द)	३,[illegible]
नौकरों के लिये		१,[illegible]

अर्थात् जहाज़ में उपर्युक्त क्रम से स्थान नि[illegible] किया गया है, और उसके अनुसार किराया देने [illegible] सुरक्षित किया जा सकेगा। जैसे-जैसे लोग [illegible] स्थान सुरक्षित कराने के लिये अर्ज़ी देंगे, उसी [illegible] 'कैबिन' सुरक्षित कर लिए जायँगे। जहाज़ रवाना [illegible] के ३० दिन पहले तक जिसका पूरा किराया [illegible] हो जायगा, उसके लिये अर्ज़ी मंज़ूर होने पर भी [illegible] अस्वीकृत किया जा सकेगा। स्थान सुरक्षित [illegible] और रुपया अदा कर देने के बाद भी, जो महाशय [illegible] न कर सकेंगे, उनकी रक़म में से २,०००) [illegible] लिए जायँगे। इस संबंध में पूरी बातें तथा [illegible] नियम जानने के लिये यात्रा-प्रेमियों को सीधे [illegible] पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

यहाँ हम इतना और बतला देना चाहते हैं कि [illegible] को १६ दिन ग्रेट ब्रिटेन में, १० दिन फ़्रांस में, [illegible] जर्मनी में, ५ दिन आस्ट्रिया में, ८ दिन स्विट्ज़[illegible] और ६ दिन इटली में विश्राम करने, घूमने एवं [illegible] प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। भोजन ४ बार [illegible] करेगा, जिसमें चा, मीठा, नमकीन, चावल, [illegible] दाल-रोटी, तरकारी, कढ़ी, अचार, पापड़, फल [illegible] मिलेंगे। गऊ के घी के लिये जहाज़ पर स्थान [illegible] रहेगा। फिर भी कोई यात्री और किसी विशेष [illegible] का भोजन पाना चाहे, तो उसके लिये भी, [illegible] मूल्य पर, व्यवस्था हो जायगी। जहाज़ों पर [illegible] तरह का प्रबंध रहा करता है, वह सब रहेगा। [illegible] 'कट्टरता' की दृष्टि से भोजन-पानी का प्रबंध [illegible] किया गया है। स्त्रियों के लिये भी स्थान [illegible] रहेगा, और उनकी सुविधानुसार उन्हें भोजन [illegible] भी प्राप्त होगा। बच्चों के लिये किराए में कंपनी [illegible] नियम कर रक्खी है। ३ वर्ष से कम उमर [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को किराया नहीं लगेगा। औरों के लिये कंपनी के नियमानुसार किराया देना पड़ेगा।

इस प्रकार कंपनी की ओर से हमें जो सूचना प्राप्त हुई है, उससे जान पड़ता है कि शाकाहारी, सनातनी, कट्टर हिंदुओं के लिये इस जहाज़ द्वारा यात्रा करने का, कट्टर हिंदू-दृष्टि से ही, आयोजन किया गया है। आशा है, यात्रा-प्रेमी सज्जन इस सुअवसर से अवश्य लाभ उठावेंगे। यात्रा-संबंधी पूरी बातें स्थानाभाव से यहाँ नहीं दी जा सकतीं। जो सज्जन इस संबंध में अधिक जानना चाहें, उन्हें नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिए—

दि हिंदू-एक्सप्रेस-कंपनी,
पोस्ट-बाक्स ६,७३१,
कलकत्ता

कंपनी का यह आयोजन देखकर हर्ष इस बात का होता है कि हम भारतीयों में भी कुछ साहसिक कार्य करने की हिम्मत आती जा रही है, और यदि लोक-प्रवृत्ति का यह क्रम स्थायी रहा, और ऐसी कंपनियों को प्रोत्साहन मिलता रहा तो निकट भविष्य में भारतीय जहाज़ चतुर्दिक् अटलांटिक एवं प्रशांत महासागर की छाती पर सैर करते हुए नज़र आवेंगे। कंपनी का आयोजन प्रशंसनीय है। आशा है, भारतीय यात्री इस योग से लाभ उठावेंगे।

× × ×

११. बड़ा व्यवस्थापिका सभा में बम-विस्फोट

विगत ८ एप्रिल को बड़ी व्यवस्थापिका सभा में एक ही खेद-पूर्ण, लज्जा-जनक और नितांत जघन्य घटना गई। बटुकेश्वरदत्त और भगतसिंह-नामक दो विकृत-स्तिष्क और कापुरुष नवयुवकों ने गैलरी से सभा में बंब गिराए। पहला बंब श्रीस्कूस्टर के निकट गिरा। क्षत-विक्षत हो गया, तथा तीन बेंचें टुकड़े-टुकड़े गईं। साथ ही सर वामनजी दलाल, श्रीराघवेंद्र और श्रीशंकरराव के चोट लगी। सर वामनजी का गहरा है, और उनकी दशा शोचनीय है। दूसरा समय गिरा, जब लोग व्यवस्थापिका सभा के से बाहर निकल रहे थे। बंबों के अतिरिक्त एक पैंफलेट भी गिराया गया। इसका शीर्षक है हिंदुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी नोटिस'। इस पर आनरेरी चीफ़ बलराज के हस्ताक्षर हैं। बंबों के फटने से सभा-भवन धुएँ से भर गया था। नवयुवकों के पास पिस्तौल और रिवाल्वर भी थे। एक नवयुवक ने पिस्तौल के ख़ाली फ़ैर भी किए, फिर पिस्तौल फेंक दिया, और कहा कि यह काम मैंने किया है। जिस समय ये लोग गिरफ़्तार किए जा रहे थे, इन्होंने गिरफ़्तारी में किसी प्रकार का उज्र नहीं किया, तथा पुलीस के सामने अपना अपराध भी स्वीकार कर लिया। व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन तीन-चार दिन के लिये स्थगित कर दिया गया है। जिस समय यह दुर्घटना हुई, उस समय सर जान साइमन भी मौजूद थे। श्रीमालवीयजी, दीवान चमनलाल एवं सर डार्सी लिंडसे ने इस बंबबाज़ी की घोर निंदा की है। लाल पैंफलेट में लिखा था कि भारतीय पार्लामेंट कहलानेवाली यह सभा राष्ट्र का अपमान कर रही है। एक ओर लोग साइमन साहब की जाँच से कुछ टुकड़े पाने की आशा में बैठे हैं, तथा दूसरी ओर पब्लिक-सेफ़टी बिल तथा ट्रेड-डिस्प्यूट्स बिल पास किए जा रहे हैं, एवं दूसरे अधिवेशन में प्रेस-सेडिशन-बिल पास कराने का आयोजन हो रहा है। इनके अतिरिक्त लाला लाजपतराय की हत्या की जा चुकी है, और मज़दूर-दल के नेताओं की अंधाधुंध गिरफ़्तारियाँ हुई हैं। ऐसी दशा में लाल सेना ने निश्चय किया है कि कुछ मनुष्यों का बलिदान किया जाय, जिसमें यह ढोंग रुके, और नौकरशाही जनता के समक्ष अपने नग्न रूप में आ जाय। अभियुक्तों ने यह भी कहा है कि हम लोग व्यवस्थापिका सभा में बिना टिकट के गए थे। जिस समय हम लोग भीतर गए, उस समय तक फाटक पर प्रवेश की जाँच करने के लिये पुलीस नहीं तैनात हुई थी। व्यवस्थापिका सभा के भीतर बंब फेंकने की यह दुर्घटना भारत के इतिहास में बिलकुल नवीन है। हिंसा के उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के हम घोर विरोधी हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऐसे कामों से स्वराज्य-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होने के स्थान में कंटकाकीर्ण होता है। इस बमबाज़ी से भारत का हित कुछ भी नहीं हुआ है, और अहित अत्यधिक। हम ऐसे प्रदर्शनों को नितांत कुत्सित, जघन्य और कायरता-पूर्ण भी मानते हैं। बटुकेश्वरदत्त और भगतसिंह ने बंब फेंककर भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम कलंकित किया है। उनके साथ हमारी ज़रा भी सहानुभूति नहीं है, और हम चाहते हैं कि इस अक्षम्य अपराध के लिये उनको समुचित दंड मिले। बिना किसी प्रकार के संकोच के हम इन दोनों विकृत-मस्तिष्क नवयुवकों के काम की घोर निंदा करते हैं, और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह भारत को ऐसे कापुरुषों से रक्षा करे। तथास्तु।

× × ×

१२. फाल्गुन-मास की माधुरी

माधुरी का यह फाल्गुन का अंक कुछ देरी से निकल रहा है। चैत्र का अंक छप रहा है, और हम उद्योग कर रहे हैं कि बहुत शीघ्र माधुरी ठीक समय पर निकल जाया करे। फाल्गुन के इस अंक में कई संपादकीय नोटों में चैत्र-मास की घटनाओं का उल्लेख है। इन घटनाओं पर तुरंत प्रकाश डालना हमें आवश्यक प्रतीत हुआ, इसीलिये उनको चैत्र की संख्या के लिये हमने नहीं रोका है। पाठक-गण कृपया इस बात को नोट कर लें।

× × ×

१३. महाशय राजपाल का वध

बड़े ही शोक की बात है कि 'रँगीला रसूल'-नामक पुस्तक के रचयिता महाशय राजपाल का उस दिन एक मुसलमान ने ख़ून कर डाला। धार्मिक असहिष्णुता एवं विकृत कट्टरपन का यह एक घृणित और कुत्सित उदाहरण है। हमारे ख़याल से हत्या करके कोई अपने धर्म का हित नहीं कर सकता। प्रत्येक धर्म का मूलाधार अहिंसा और दया है। महाशय राजपाल की हत्या से इस्लाम की क्या भलाई होगी, यह बात हमारी समझ में नहीं आती है। हाँ, इतना हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्रत्येक समझदार आदमी ऐसे कामों की निंदा करेगा। हमारा दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक समझदार और निष्पक्ष पुरुष ऐसे निंद्य और कायरता-पूर्ण आक्र घृणा की दृष्टि से देखेगा। धार्मिक उन्माद का बड़ा ही भयंकर है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक दायी मुसलमान-नेता बिना किसी प्रकार के संकोच शीघ्रातिशीघ्र राजपालजी के हत्यारे के काम को और कुत्सित घोषित करेगा, तथा यह भी स्पष्ट कर कि यह काम इस्लाम-धर्म को कलंकित करनेवाला यदि नेता लोग ऐसी कोई घोषणा नहीं करेंगे, तो परिणाम अच्छा न होगा। लोग समझेंगे कि नेता भी ऐसे कायरता-पूर्ण कार्य के समर्थक हैं धारणा का आविर्भाव राष्ट्रीय भारत के लिये परम वह होगा। मुसलिम-नेताओं की दूरदर्शिता और प्रियता से हम सर्वथा निराश नहीं हुए हैं, और ख़याल है कि परिस्थिति के अनुकूल उचित घोषणा वे मनुष्यता, धर्म एवं राष्ट्रीयता की रक्षा करेंगे। राजपालजी के कुटुंब के साथ इस विपत्ति में सहानुभूति है।

× × ×

१४. वीरवर खड्गबहादुर की रिहाई

नराधम हीरालाल का वध करनेवाले वीरवर बहादुर को सरकार ने दो वर्ष जेल में रखकर, में, छोड़ दिया है। सरकार को इस कार्य के लि हृदय से बधाई देते हैं। हमारी राय में तो इस तीय वीर को सज़ा ही न मिलनी चाहिए थी, शूरता के लिये पुरस्कृत करना चाहिए था। हुआ सो हुआ। आज हम वीरवर खड्गबहा अपने बीच में हृदय से स्वागत करते हैं करते हैं कि इस सच्चे सूरमा के द्वारा भारत मुख उज्ज्वल होगा। वीरवर खड्गबहादुर तुम ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करे। एक बार हृदय के से हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणा संग्रामसिंह

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७
खंड २

चैत्र, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)

संख्या ३
पूर्ण संख्या ८१

स्वर-भंग

हरे राम ! क्या कहूँ, अवश यह अंग हुआ ;
टेरूँ क्योंकर तुझे ? मुझे स्वर-भंग हुआ ।
गूँगे की गों-गों गुंजार,
कौन सुनेगा धीरज धार ?
किंतु वही उसका ओंकार,
उड़े व्योम में तुझे पुकार,—विहंग हुआ ;
टेरूँ क्योंकर तुझे ? मुझे स्वर-भंग हुआ ।
मैंने एक व्यथा व्याली
पाली, इस घट में डाली,
काली की मणि उजियाली
ले जा—कैसे कहूँ, कठोर प्रसंग हुआ ;
टेरूँ क्योंकर तुझे ? मुझे स्वर-भंग हुआ ।
एक पुकार, एक चीत्कार,
मुझे चाहिए आज उदार ;
गूँज उठे तेरा आगार,
खीझ उठे तू, रीझ कहूँ मैं—"रंग हुआ !"
टेरूँ क्योंकर तुझे ? मुझे स्वर-भंग हुआ ।
मेरा कंठ-पाश छूटे,
तेरा सन्नाटा टूटे ;
स्वयं मुक्ति जन-सुख लूटे ;
निरख-निरख तू कहे—"नया यह ढंग हुआ !"
टेरूँ क्योंकर तुझे ? मुझे स्वर-भंग हुआ ।

मैथिलीशरण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रकूट और गाहरवाल

राष्ट्रकूटों और गाहरवालों के एक होने के विषय में, ऐतिहासिकों में, बड़ा मतभेद है। राष्ट्रकूटों के पिछले कुछ लेखों में उनके रट्टवंशी होने का उल्लेख मिलने से डाक्टर बर्नले उन्हें रेड्डी-जाति का अनुमान करते हैं। उनका यह भी अनुमान है कि तेलुगु-भाषा के रेड्डी-शब्द का ही, जो उक्त प्रांत के आदि निवासी कृषकों का बोधक है, रूपांतर रट्ट हो गया है।

मि० विंसेंट स्मिथ उत्तर के राष्ट्रकूटों और गाहरवालों को तो एक मानते[1] हैं, परंतु दक्षिण के राष्ट्रकूटों को इनसे भिन्न। यदि वास्तव में देखा जाय, तो राष्ट्रकूट उत्तर से ही दक्षिण में गए थे; क्योंकि बौधायन-धर्म-सूत्र में इनके निवास-स्थान (आरट्ट-देश) के विषय में लिखा है—

आरट्टान्, कारस्करान्, पुण्ड्रान्, सौवीरान्, वङ्गान्, कलिङ्गान्, प्रसूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वं पृष्ठ्या वा ॥ ३० ॥

(प्रथम प्रश्न, प्रथम अध्याय)

इसी प्रकार बौधायन-श्रौत-सूत्र में भी लिखा है—

य आरट्टान्वा, गान्धारान्वा, सौवीरान्वा, कलिङ्गान्वा गच्छति स यदि सर्वश एव पापकृन्मन्येत चतुष्टोमेनाग्निष्टोमेन यजेत।

(१८-१२-१३)

इनसे प्रकट होता है कि यह देश उत्तर में ही था।

महाभारत के लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है—

पञ्चनद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत। ३१।
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः। ३२।
आरट्टा नाम ते देशा.....

(महाभारत, कर्ण-पर्व, अध्याय ४३)

इसके बाद की मानसेरा (पश्चिमोत्तर-सीमाप्रदेश) शाहबाज़गढ़ी (पेशावर के पास), जूनागढ़ (सौराष्ट्र) और धवली (उड़ीसा) में खुदी अशोक की पाँचवीं धर्माज्ञा में रिस्टिक आदि नामों से कांबोज और गांधार वालों के साथ ही राष्ट्रकूटों का भी उल्लेख किया गया है। इससे भी यही ज्ञात होता है कि उस समय ये लोग अधिकतर पंजाब की तरफ़ ही रहते थे, और इनमें से कुछ लोग उड़ीसा और सौराष्ट्र में भी आ बसे थे। इसके बाद कुछ समय के लिये इनका राज्य कन्नौज में भी रहा था, यह बात लाट-देश के सोलंकी राजा त्रिलोचनपाल के श० सं० ९७२ (वि० सं० ११०७=ई० स० १०५१) के ताम्रपत्र से प्रकट होती है। उसमें लिखा है—

कान्यकुब्जे महाराज ! राष्ट्रकूटस्य कन्यकाम्;
लब्ध्वा सुखाय तस्यां त्वं चौलुक्यप्सुहि सन्ततिम्।

(इंडियन ऐंटिक्वेरी, भा० १२, पृ० २०१)

अर्थात्—हे चौलुक्य ! तू कन्नौज में महाराज राष्ट्रकूट की कन्या से विवाह करके संतति पैदा कर।

इससे अनुमान होता है कि गुप्तों का अधिकार होने के पूर्व किसी समय वहाँ पर राष्ट्रकूटों का राज्य भी रह चुका था।

मिस्टर जे० डब्ल्यू वाट्सन (पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट पालनपुर) ने इंडियन ऐंटक्वेरी के भा० ३, पृ० में लिखा है कि वि० सं० ९३६ की मंगसिर-सुदि ५ बृहस्पतिवार[1] को अपने राज-तिलक के समय कन्नौजपति राठौर श्रीपत ने चिबदिया-ब्राह्मणों को उत्तरीय गुजरात के १६ गाँव दान दिए थे। इनमें से एटा-नामक गाँव अभी तक उनके वंशजों के अधिकार में है। वह यह भी लिखते हैं कि गुजरात के इतिहास-लेखक मुसलमानों ने कन्नौज-नरेश को ही गुजरात का अधिपति माना है।

संभवतः यह श्रीपत, कन्नौज के राष्ट्रकूट-राजवंश का होने के कारण ही, कन्नौजेश्वर कहलाता होगा। यह भी संभव है कि जिस समय लाट के राष्ट्रकूट-राजा ध्रुवराज (द्वितीय) ने कन्नौज के राजा पडिहार भोज को हराया था, उस समय उसने इस (श्रीपत) के पिता को वहाँ का कुछ प्रदेश दिया हो, और अपने पिता के मरने पर, अपने राज-तिलकोत्सव के समय

१. The Northern Rathors are offshoots of the Gaharwars
(Early History of India, IV Edition), P. 429.

१. वास्तव में उस दिन रविवार आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपत ने उपर्युक्त एटा आदि गाँव ब्राह्मणों को दान में दिए हों।

बंबई-गज़ेटियर[1] में भी एटा-गाँव का कन्नौज के राष्ट्रकूटों द्वारा दिया जाना लिखा है।

इन सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि संभवतः उस समय तक भी राष्ट्रकूटों का अधिकार कन्नौज के आसपास था, और ये वास्तव में उत्तर के ही निवासी थे, तथा इन्होंने इधर से ही दक्षिण में पहुँच सोलंकियों के राज्य पर अधिकार कर लिया था।

ऐसी हालत में इनको रेड्डी-जाति में मिलाना या मि० वी० ए० स्मिथ के मतानुसार अनार्य समझना उचित नहीं प्रतीत होता।

दक्षिण के राष्ट्रकूटों की उपाधि लतलूराधीश्वर थी। इस लतलूर को विद्वान् लोग बिलासपुर-ज़िले का रतनपुर अनुमान करते हैं।

डाक्टर फ़्लीट भी इनका उत्तर से ही दक्षिण में जाना अनुमान करते हैं।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तर-कांड से ज्ञात होता है कि श्रीरामचंद्र के भाई भरत ने गंधर्वों (गांधारवालों) को जीता था, और उसके पुत्रों में से तक्ष ने तो वहीं पर, अपने नाम पर, तक्षशिला और पुष्कल ने आधुनिक (चारसादा के निकट) पुष्कलावत-नामक नगर बसाया था। इसी प्रकार श्रीरामचंद्र के पुत्र कुश ने आधुनिक मिरज़ापुर के पास (गंगा के किनारे) कुशावती-नगरी बसाई थी। अतः या तो कुश की संतान किसी समय भरत के पुत्रों के पास चली गई हो, और वहीं से आरट्ट या राष्ट्रिक के नाम से प्रसिद्ध होकर फिर लौटी हो, जैसा कि राष्ट्रकूट मानते हैं; या ये भरत की ही संतान हों।

परंतु इस विषय में यह शंका हो सकती है कि जब दक्षिण के राष्ट्रकूटों के लेखों में उन्हें चंद्रवंशी लिखा है, तो वे सूर्यवंशी कुश की संतान कैसे माने जा सकते हैं। आगे इसी पर विचार किया जाता है।

एक तो यह सूर्य, चंद्र और अग्निवंश का झगड़ा पौराणिक कल्पना-मात्र ही है, ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता; क्योंकि एक ही वंश को कहीं पर सूर्य से उत्पन्न और कहीं पर चंद्र से उत्पन्न लिखा मिलता[1] है।

दूसरे, ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि वास्तव में श० सं० ७८२ के पूर्व राष्ट्रकूटों के चंद्रवंशी होने का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। उलटे धमोरी (अमरावती) से जो राष्ट्रकूट कृष्णराज (प्रथम) के क़रीब १८०० चाँदी के सिक्के मिले हैं, उन पर लिखा है—

'परममाहेश्वरमहादित्यपादानुध्यातश्रीकृष्णराजः'

इस लेख में महादित्य से सूर्य का ही तात्पर्य लेना होगा; क्योंकि न तो कृष्णराज के पिता का नाम ही महादित्य था, न उसकी उपाधि ही। ऐसी हालत में इस पद से इस वंश के मूल पुरुष (सूर्य) का ही तात्पर्य प्रकट होता है।

तीसरे, श० सं० ७३० (वि०सं० ८६५=ई० स० ८०८) के राष्ट्रकूट गोविंदराज के दानपत्र में लिखा है—

यस्मिन् सर्वगुणाश्रये क्षितिपतौ श्रीराष्ट्रकूटान्वयो
जाते यादववंशवन्मधुरिपावासादिलंघ्यः परैः।

अर्थात्, जिस गुणी राजा के उत्पन्न होने पर राष्ट्रकूटों का वंश, श्रीकृष्ण के उत्पन्न होने पर यादव-वंश की तरह, शत्रुओं से अजेय हो गया था।

इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक भी संभवतः राष्ट्रकूट-वंश यादव-वंश से जुदा ही समझा जाता था[2];

---

१ Bombay Gazetteer, Vol. V. P. 329.

१. सोलंकियों (चालुक्यों) के कुछ लेखों, हेमचंद्र-रचित द्व्याश्रय काव्य और जिनहर्षगणि-रचित वस्तुपाल-चरित में चालुक्य-वंश को चंद्र से उत्पन्न लिखा है, परंतु बिल्हण-रचित विक्रमांकदेव-चरित में उसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है। इसका समर्थन सोलंकी कुमारपाल का वि० सं० १२०८ का लेख भी करता है।

आबू के वि० सं० १३७७ के चौहान लुंभा के लेख में चौहान-वंश को चंद्रवंशी, बीसलदेव (चतुर्थ) के समय के लेख, हम्मीर-महाकाव्य और पृथ्वीराज-विजय में सूर्यवंशी तथा पृथ्वीराज-रासो में अग्निवंशी लिखा है। यही हाल अन्य वंशों का भी है।

२. वि० सं० १४४२ के प्रभास-पाटन से मिले यादव राजा भीम के लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है—

वंशो (शौ) प्रसिद्धो (द्धौ) हि यथा रवीन्दौ (न्द्रौ):
राष्टेऽवंशस्तु तथा तृतीयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु पीछे से अमोघवर्ष (प्रथम) के श० सं० ७८२ (वि० सं० ९१७=ई० स० ८६०) के दानपत्र के लेखक ने यादव-वंश के उपमान और राष्ट्रकूट-वंश के उपमेय भाव को ठीक तौर से न समझ इस वंश को यादववंशी ही मान लिया, और पिछली ७ प्रशस्तियों के लेखकों ने और हलायुध ने भी उसी का अनुकरण कर डाला।

श० सं० १५१८ (वि० सं० १६५३=ई० स० १५९६) में बने राष्ट्रौढवंश-महाकाव्य में भी चंद्रवंशी कुमार सूराष्ट्रौढ का सूर्यवंशी कन्नौज-नरेश के गोद जाना लिखा[1] है।

इनके अलावा यह भी संभव है कि कालांतर में इन पर वैष्णव-मत का प्रभाव पड़ने से ही ये यादववंशी समझ लिए गए हों। इसके उदाहरण में भावनगर का गोहिल-वंश उपस्थित किया जा सकता है। विक्रम की १३ वीं शताब्दी में जिस समय इनका राज्य मारवाड़ में था, ये सूर्यवंशी ही समझे जाते थे। परंतु द्वारका के निकट बसने के कारण इस समय ये अपने को चंद्रवंशी मानते हैं, जैसा इस छप्पय से प्रकट होता है—

चन्द्रवंशि सरदार गोत्र गौतम वक्खाणूँ
शाखा माधविसार झके प्रवरत्रण जाणूँ
अग्निदेव उद्धारदेव चामुण्डा देवी।
पाण्डवकुल परमाण आद्य गोहिल चल एवी
विक्रम बध करनार नृप शालिवाहन चक्रवैथयो
ते पछी तेज ओलादनो सोरठमां सेजक भयो।

वैष्णव-मत के प्रभाव की पुष्टि में एक प्रमाण और भी मिलता है। छठी शताब्दी के क़रीब के राष्ट्रकूट अविधेय मन्यु के ताम्रपत्र की मुहर में तो सिंहवाहिनी अंबिका की मूर्ति बनी है; परंतु राष्ट्रकूटों के पिछले दानपत्रों में सिंह का स्थान गरुड़ ने ले लिया है।

इस विषय में एक शंका और रह जाती है। वह यह कि संभवतः दानपत्रों के लेखकों ने तो गलती से राष्ट्रकूटों को चंद्रवंशी लिख दिया; परंतु राष्ट्रकूट-नरेशों ने इस बात को कैसे अंगीकार कर लिया?

इसके निवारणार्थ, संक्षेप में, मेवाड़ के राज-वंश का उदाहरण दिया जा सकता है। उदयपुर का राज-वंश सूर्यवंशी क्षत्रिय माना जाता है; परंतु पंडितों के लेख का अनुकरण कर महाराणा कुंभा-जैसे विद्वान् राजा तक ने स्वयं अपनी बनाई गीतगोविंद की रसिकप्रिया-नामक टीका में अपने मूल पुरुष को ब्राह्मण लिख दिया है। यथा—
"श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्यः श्रीबप्पनामा द्विजपुङ्गवोऽभूत्।"

अस्तु। आगे गाहरवालों और राष्ट्रकूटों की एकता पर विचार किया जाता है।

ऊपर लिखी पंक्तियों के पढ़ने से यह तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट उत्तर के ही निवासी थे, और इनका राज्य कन्नौज में भी रह चुका था।

बदायूँ से राष्ट्रकूट राजा लखनपाल[1] का एक लेख मिला है। वह वि० सं० १२८० के क़रीब का है। उसमें लिखा है—

प्रख्याताखिलराष्ट्रकूटकुलजक्ष्मापालदोः पालिता
पाञ्चालाभिधदेशभूषणकरी बोदामयूता पुरी
.....
तत्रादितोभवदनन्तगुणो नरेन्द्रः

१. पुराकदाचिन्नतये समेतान्देवाननुज्ञाप्य गृहाय सद्यः।
कात्यायनीमर्द्धमृगाङ्कमौलिः कैलासशैले रमयाम्बभूव ॥ १२ ॥
....
अन्योन्यभूषापणबन्धरम्यं तत्रान्तरे द्यूतमदीव्यतां तौ ॥ १४ ॥
.....
कात्यायनीपाणिसरोजकोशविलोलितात्तत्तपिता तथेन्दोः।
गर्भान्वितैकादशवार्षिकोऽभूदभूतपूर्वः प्रतिमः कुमारः ॥ २० ॥
.....
तस्मै वरं साम्बशिवो दयालुः श्रीकान्यकुब्जेश्वरतामरासीत्॥२३॥
अत्रान्तरे काचनलातनाख्या समेत्य देवीं गिरिजाहराभ्याम्।
विलीनभूमिपतिकान्यकुब्जराज्याधिपत्याय शिशुं ययाचे ॥ २४ ॥
.....
नारायणो नाम नृपः सुतार्थी यत्रेश्वरं ध्यायति सूर्यवंश्यः।
सा रुद्रदत्तेन सहामुनास्मिन्नवातरत्काञ्चनमेखलेन ॥ २८ ॥
अलक्ष्य देहा तमवोचदेषा राजन्नसावस्तु तवैकसूनुः।
अनेन राज्यं च कुलं तवोढं राष्ट्रौ (ष्ठौ) ढनामा तदिह प्रतीतः॥२९॥
(सर्ग प्रथम)

१. यह लखनपाल चंद्र की सातवीं पीढ़ी में था। प्रति पीढ़ी का समय २० वर्ष मान लेने से उक्त चंद्र का समय वि० सं० ११४० के निकट आता है।

यू० पी० की तरफ़ के लोग इस लखन को जयचंद का भतीजा मानते हैं। हमारे ख़याल में रासोकार ने भी शायद कहीं ऐसा ही उल्लेख किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रः स्वखड्गभयभीषितवैरिवृन्दः ।

अर्थात्, प्रसिद्ध राष्ट्रकूटवंशी राजाओं से रक्षित कन्नौज की अलंकाररूप बदायूँ-नगरी है। वहाँ पर पहले-पहल अपने ही बल से शत्रुओं को दबाकर चंद्र ने राज्य-स्थापन किया।

इसी प्रकार वि० सं० ११४८ का गाहरवाल चंद्रदेव का एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें लिखा है—

विध्वस्तोद्धृतधीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः
येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवम् ।
श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥

अर्थात्, यशोविग्रह का पुत्र चंद्रदेव बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने बाहु-बल से शत्रुओं को मारकर कन्नौज का राज्य ले लिया।

इस ताम्रपत्र में चंद्रदेव के वंश का उल्लेख तो नहीं है, परंतु इसके वंशज बाद में गाहरवाल के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

उपर्युक्त दोनों प्रशस्तियों को देखने और चंद्रदेव के समय पर विचार करने से अनुमान होता है कि ये दोनों चंद्र एक ही थे। उक्त चंद्र ने पहले-पहल बदायूँ पर अधिकार कर शीघ्र ही कन्नौज भी जीत लिया था। इसके बाद इसका बड़ा पुत्र मदनपाल तो कन्नौज का राजा हुआ, और छोटे पुत्र विग्रहपाल को बदायूँ की जागीर मिली। अतः बदायूँवाले तो अपने को राष्ट्रकूट ही मानते रहे; परंतु गाधिपुर (कन्नौज) के स्वामी होने के कारण मदनपाल के वंशज गाहरवाल के नाम से प्रसिद्ध हो गए। गाधिपुर-शब्द का प्राकृत में बिगड़कर गाहर या गाहड़ हो जाना कुछ असंभव नहीं है। अतः जिस प्रकार संयुक्त-प्रांत के रैंका-नामक ग्राम में रहने के कारण कुछ राठौरों का रैंकवाल के नाम से प्रसिद्ध होना प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार कुछ राठौरों का गाधिपुर में रहने के कारण गाहरवाल के नाम से विख्यात हो जाना आश्चर्य-जनक नहीं हो सकता।

साथ ही यह भी प्रत्यक्ष ही है कि जयचंद्र की मृत्यु के बाद जब उसका पौत्र राव सीहा कन्नौज से अपना संबंध त्याग कर मारवाड़ की तरफ़ चला गया, तो उसने अपने तईं गाहरवाल कहना भी छोड़ दिया था।

इन बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण के राष्ट्रकूट-नरेश इंद्रराज तृतीय के कन्नौज पर किए गए हमले के कारण वहाँ के पड़िहारों का राज्य शिथिल पड़ गया था, और उनके सामंत लोग स्वतंत्र होने लग गए थे। अतः वि० सं० ११३७ के क़रीब, कन्नौजवाले राष्ट्रकूटों के किसी पुराने घराने ने या दक्षिणी राष्ट्रकूटों के किसी वंशज ने बदायूँ में अपना स्वतंत्र अधिकार कर शीघ्र ही कन्नौज को भी दबा लिया हो ग। इसके बाद जब जयचंद्र मारा गया, और उसके कुछ काल बाद शम्शुद्दीन ने खोर आदि प्रदेशों से भी राष्ट्रकूटों को खदेड़ना प्रारंभ कर दिया, तो जयचंद्र का पौत्र सीहा, वि० सं० १२६८ के लगभग, महुई की तरफ़ से मारवाड़ की तरफ़ चला गया। महुई (फ़र्रुख़ाबाद-ज़िला) के एक खँडहर को लोग अभी तक 'सीहाराव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं।

राव सीहा के पौत्र धूहड़ के ताम्रपत्र की नक़ल से पता चलता है कि उसके समय में एक ब्राह्मण कन्नौज से उसकी कुलदेवी की मूर्ति लेकर मारवाड़ में पहुँचा था। इसी प्रकार वि० सं० १६८६ के महारावल जगमाल के लेख में भी उसके पूर्वज धूहड़ को सूर्यवंशी कनौजिया राठौर लिखा है।

इन सब बातों पर विचार करने से यही अनुमान होता है कि वास्तव में राष्ट्रकूट और गाहरवाल एक ही वंश के थे।

इनके अलावा बारहवीं शताब्दी में बनी राजतरंगिणी में क्षत्रियों के ३६ वंशों का उल्लेख आया है, और वि० सं० १४२२ के बने कुमारपाल-चरित में (जहाँ ३६ वंशों के नाम हैं, वहाँ) 'राट्' शब्द से राष्ट्रकूट-वंश का ही उल्लेख किया है। गाहरवाल-वंश का नाम अलग नहीं दिया है।

डाक्टर होर्नले ने यशोविग्रह और महोचंद्र के नामों के साथ विग्रहपाल और महीपाल के नामों का एक-देशी सादृश्य देखकर ही गाहरवालों को पालवंशी अनुमान कर लिया है। किंतु यह ठीक नहीं प्रतीत होता; क्योंकि—

(१) पाल-राजाओं के प्रत्येक नाम के अंत में पाल-

१. अब हमारा अनुमान है कि वि० सं० ११३५ के क़रीब या इससे भी पूर्व चंद्र ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया होगा।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द लगा रहता था, परंतु गाहरवालों के यहाँ यह नियम नहीं था।

(२) पालवंशी महीपाल बड़ा प्रतापी था, परंतु गाहरवाल महीचंद्र स्वतंत्र शासक तक न था।

(३) महीपाल के एक लेख को छोड़कर पाल-वंशियों के सभी लेखों में उनके राज्य-वर्ष ही दिए हुए हैं, परंतु गाहरवालों के लेखों में विक्रम-संवत् का प्रयोग मिलता है।

(४) पालवंशी धर्मपाल का विवाह राष्ट्रकूट-राजा परबल की पुत्री से और राज्यपाल का राष्ट्रकूट तुंग की कन्या से हुआ था। (राठौरों और गाहरवालों का एक होना ऊपर सिद्ध किया जा चुका है।)

कुछ लोग राष्ट्रकूटों और गाहरवालों के भिन्न-भिन्न गोत्रों के आधार पर इन्हें भिन्न वंशी सिद्ध करना चाहते हैं। परंतु विज्ञानेश्वर ने स्पष्ट ही लिखा है—

"राजन्यविशां...पुरोहितगोत्र प्रवरौ वेदितव्यौ"

अर्थात्, राजाओं के गोत्र और प्रवर पुरोहित के गोत्र और प्रवर के अनुसार ही जानने चाहिए।

ऐसी हालत में भिन्न-भिन्न स्थानों पर घूमने के कारण, संभव है, इनको अपने पुरोहित बदलने पड़े हों, और इसी से इनके गोत्र भी बदलते रहे हों। अतः यह शंका कुछ विशेष महत्त्व की नहीं। इसकी पुष्टि में अश्वघोष-रचित सौंदरानंद-महाकाव्य से एक उदाहरण उद्धृत किया जाता है—

"गुरोर्गोत्रादृतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥ २२ ॥"

(सर्ग १)

अर्थात्, गुरु के गोत्र के कारण ही उन कौत्स-गोत्र-वालों ने अपने को गौतम-गोत्रवाला बना लिया।

इस प्रकार राष्ट्रकूटों और गाहरवालों की एकता के विषय में उपस्थित की हुई शंकाओं पर विचार करने से उनकी निस्सारता स्पष्ट ही प्रकट हो जाती है।

यहाँ पर माधुरी के पाठकों से विदा लेने के पूर्व एक मनोरंजक घटना का उल्लेख कर देना भी परम आवश्यक प्रतीत होता है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

गत सितंबर में हमें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्मारक-संग्रह-उपसमिति के संयोजक श्रीयुत रामचंद्र वर्मा का एक पत्र मिला। उसमें उक्त स्मारक-संग्रह के लिये हमसे लेख भेजने की प्रार्थना की गई थी। उसी के अनुसार १२ सितंबर को हमने उ[illegible] लेख संयोजकजी की सेवा में भेज दिया, और यह [illegible] लिख दिया—"कारण-विशेष से यदि यह पसंद न [illegible] तो शीघ्र ही रजिस्ट्री से लौटा देने का अनुग्रह करें।"

इसके उत्तर में वर्माजी ने अपने नं० [illegible] १७-९-२९ के पोस्टकार्ड में हमें लिखा—"यह [illegible] स्मारक-संग्रह में छाप दिया जायगा।" इसके [illegible] स्मारक-संग्रह के प्रकाशित होने की पहली अवधि स[illegible] हो जाने पर गत ३ दिसंबर को हमने वर्माजी को [illegible] पत्र फिर लिखा कि यदि उक्त संग्रह प्रकाशित हो [illegible] हो, तो वी० पी० से भिजवा दें; और यदि न हुआ हो, [illegible] हमारे लेख के विषय में क्या विचार किया गया है, [illegible] लिखें। उत्तर में आपने अपने पोस्टकार्ड नं० १३६५१३[illegible] ता० २६, मार्गशीर्ष, १९८५ में लिखा—"स्मार[illegible] संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ। आशा है, वह [illegible] पंचमी तक प्रकाशित हो जायगा। आपका लेख उ[illegible] अवश्य छापा जायगा।"

परंतु जब 'कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह' उक्त तिथि [illegible] प्रकाशित हुआ, तब अपना लेख हमें उसमें ढूँढ़ने पर [illegible] न मिला। अतः उक्त लेख यहाँ पर अपनी असली हा[illegible] में प्रकाशित करवाया गया है। इसके गुण-दोषों [illegible] पाठक स्वतंत्रता-पूर्वक विचार कर सकते हैं, और साथ [illegible] इच्छा हो, तो कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह के लेखों से इस[illegible] तुलना भी कर सकते हैं।

हमें स्मारक-संग्रह के संपादक महामहोपाध्याय, रा[illegible] बहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा से इस विषय में कि[illegible] प्रकार की भी शिकायत नहीं है; क्योंकि हमारे विषय [illegible] आपके जो भाव हैं, वे पाठकों से छिपे नहीं हैं। संभव[illegible] इस लेख से अपने मत का खंडन होता देखकर ही आ[illegible] चुपचाप इसे रद्दी की टोकरी के हवाले करने की सहृद[illegible] दिखाई है। हम आपकी इस सदाशयता, विकि[illegible] मानसिकता और उच्चाभिलाषिता के क़ायल और आभा[illegible] हैं। हमें खेद तो इस बात का है कि काशी की वह प्रख्य[illegible] नागरी-प्रचारिणी सभा-जैसी सार्वजनिक संस्था [illegible] उसके योग्य पदाधिकारी अपने सार्वजनिक उत्तरदा[illegible] को तिलांजलि देकर बाबाजी के कमंडल में समा[illegible] साहस करने में तनिक भी संकुचित न हुए।

विश्वेश्वरनाथ [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रांति

(१)

मंजु युग मीन क्या महीप मीन-केतन के,
रम्य रूप-सर में समाए अभिराम हैं;
यौवन के कानन में किंवा दो चपल चारु,
खेल रहे खंजन खिलाड़ी छवि-धाम हैं।
अथवा खिले हैं दो सरोज सुधा-सागर में,
किंवा प्रेम-रस-पूर्ण प्याले युग श्याम हैं;
या हैं दो मनोज्ञ मृग-शावक सुधाकर में,
किंवा लोचनाभिराम लोचन ललाम हैं।

(२)

एक लघु लहर ललाम सुधा सागर की,
क्या वही मुकुर पर आज आसमान से;
किंवा चंद्रमा में चारु चंचला समा है रही,
ऊबकर भारी वारिधर के वितान से।
किंवा खिले सुंदर सरोज में है खेल रही,
आकर अनूप अंशुमाला अंशुमान से;
अथवा अमंद सुखकंद मुख-चंद तेरा,
मंडित है मंजु मंद-मंद मुसकान से।

गोपालशरणसिंह

लक्ष्यवेध

(१)

विगत ऑक्टोबर-महीने (सन् १९२८) की माधुरी में हमारा "शिकार का खेल"-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हो चुका है। उस लेख में हमने शस्त्राभ्यास के मूल मंत्र का निराकरण करते हुए वादा किया है कि किस प्रकार के या कौन-से अस्त्र-शस्त्र से, किस रीति से, लक्ष्य साधने का अभ्यास करना चाहिए, और किस दाँव-घात से कब, किस हथियार का, प्रयोग उचित है, ये सब बातें लक्ष्यवेध के पाठ में बताई जायँगी। अस्तु, अब हम उसी वादे को पूरा करने की इच्छा से क़लम उठाते हैं।

सर्व-प्रथम पाठकों को यह जान लेना परमावश्यक है कि अस्त्र-शस्त्र दो भिन्न शब्द हैं। जैसे उनके अर्थ एक दूसरे से भिन्न हैं, वैसे ही उनके प्रयोग, साधना और अभ्यास में आकाश-पाताल का अंतर है। फिर भी युद्धविद्या-संबंधी संपूर्ण साधनों का मूल मंत्र वही है, जो उपर्युक्त लेख में बतलाया जा चुका है।

"सुरत जुरत तुरत फुरत"

ध्यान रहे, अस्त्र उस घातक यंत्र को कहते हैं, जो शारीरिक बल-सहित या शारीरिक बल-रहित परोक्ष विधि से युक्तिपूर्वक चलाया जा सके, अपि च थोड़े ही श्रम से अधिक फल दे। इस प्रकार के घातक-यंत्र यानें हथियार ये हैं—तोप, बंदूक़, कुहकवान (अग्निबाण) धनुष, भिंदपाल (गुथना या गुंफन) और चक्र। इसके विपरीत जो हथियार शत्रु या शिकार के सम्मुख होकर, केवल शारीरिक बल के द्वारा, प्रयोग में लाए जाते हैं, उनको शस्त्र कहते हैं—जैसे तलवार, संगीन, कटार, फरसा, कुल्हाड़ी, दाँव, गदा, गुर्ज, छुरी, छुरा, लाठी इत्यादि। अस्त्र और शस्त्र, इन दोनों की व्युत्पत्ति और अर्थ, व्याकरण और कोष के प्रमाण से, चाहे कुछ भी हो; परंतु हमारे वीर-दर्शन-शास्त्र के अनुसार तो यही अर्थ सिद्ध होता है कि (साहसेन येन त्राणं न भवति स अस्त्रः) साहस करके भी जिससे बचाव नहीं हो सकता, वह तो अस्त्र है, और (साहसेन येन त्राणं भवति स शस्त्रः) साहस के द्वारा जिससे बचाव हो सकता है, वह शस्त्र है। प्रमाण के लिये, प्रत्यक्षं किं प्रमाणम् के अनुसार, आप स्वयं देख सकते हैं कि अस्त्र कहलानेवाले हथियारों का वार जहाँ हो चुका, फिर लक्ष्य पर लगे विना वह रोका नहीं जा सकता, जैसा किसी कवि ने कहा है—

हस्ती-दंत कमान-सर समरथ बचन प्रवीन;
जुग चाहे पलटत रहै, ये न पलटें तीन।

जो सिफ़त कमान से छूटे हुए तीर में है, वही बंदूक़ से निकली हुई गोली में है; परंतु इसके विपरीत शस्त्र कहलानेवाले हथियार साहस द्वारा हीन-बल या निष्प्रयोजन किए जा सकते हैं। इसके प्रमाण में हम एक छोटी-सी गल्प लिखते हैं—

किसी बादशाह के पास एक बहुत ही अच्छी तलवार थी। बादशाह स्वयं ताक़तवर और तलवार चलाने में हस्त-कुशल था। उसने सर्वत्र यह हुक्म जारी कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जो कोई ऐसा जिरह-बख़्तर मेरे सामने लावे कि मेरे हाथ घालने पर वह न कटे, उसे मैं अपनी लड़की ब्याह दूँगा।

यह समाचार पाकर दूर-दूर के कारीगर बड़े ही कड़े लोहे के उत्तमोत्तम बख़्तर बना-बनाकर लाए। परीक्षा के समय बादशाह बख़्तर को एक शीशम के लकड़ पर रखकर ज्यों ही हाथ मारता, त्यों ही बख़्तर टूक-टूक हो जाता। बस, कारीगर जेल में सड़ने के लिये भेज दिया जाता था। इसी तरह होते-होते कुछ दिनों बाद एक सिपाही एक पुराना-सा बख़्तर लिए हुए बादशाह के दरबार में पहुँचा। बख़्तर को देखते ही बादशाह ने कहा—"यह तो बहुत ही रद्दी और पुरानी चीज़ है। मेरी नज़र में ही परीक्षा के योग्य नहीं मालूम होती।" इस पर सिपाही ने जवाब दिया—"जहाँपनाह, यह बहुत ही मज़बूत लुकमान हकीम का बनाया हुआ है। इस पर आपकी तलवार की धार मुड़ जायगी।" यह सुनकर बादशाह ने उस बख़्तर को लकड़ पर रक्खे जाने का हुक्म दिया। सिपाही ने बख़्तर को यथाविधि यथास्थान रख दिया। बादशाह ने ज्यों ही भरज़ोर तलवार का वार करना चाहा, त्यों ही सिपाही ने दपटकर ललकारा—"ख़बरदार! सँभलकर हाथ डालना।"

सिपाही की दपट से बादशाह का हाथ ढीला पड़ गया। बख़्तर की एक कड़ी भी न कटी। इस पर बादशाह ने नाराज़ होकर कहा—"यह क्या शरारत है?" सिपाही ने जवाब दिया—"हुज़ूर, यह शरारत नहीं, यही इंसाफ़ है। आप ख़ुद ख़याल फ़रमाइए, जिरह-बख़्तर लकड़ी की पुतली के पहनने की चीज़ नहीं है। एक माई का लाल बहादुर सिपाही उसे पहनता है, और दूसरा माई का लाल उस पर वार करता है। अगर किसी बख़्तरिए जवान पर आप वार करेंगे, तो क्या वह इस लकड़ की तरह ख़ामोश रहेगा?"

बादशाह उसका उचित उत्तर सुनकर चुप रह गया, और उसी क्षण उसने अपनी बेटी का विवाह सिपाही के साथ कर दिया।

ग़रज़ यह कि शस्त्र कहलानेवाले सब हथियार चलाने वाले की तरफ़ से चल चुकने पर भी साहसी प्रतिद्वंद्वी द्वारा बीच में रोके या कमज़ोर किए जा सकते हैं; परंतु अस्त्र के संबंध में यह बात सर्वथा असंभव है। यावत् अस्त्रों में आजकल बंदूक़ सर्व-शिरोमणि है। यह पिछली ईजाद है, परंतु सबसे अधिक प्रयोजनीय मार्के की चीज़ है। इसलिये हम सर्व-प्रथम बंदूक़ का बयान आरंभ करते हैं।

बंदूक़ के उत्पत्ति-काल से लेकर उसके अब तक विस्तार और भेदाभेदों का इतिहास मनोरंजक होते भी, इस प्रकरण में प्रयोजनीय न होने के कारण, उसे अछूता ही छोड़ देते। किंतु यहाँ जानने योग्य बात यह है कि आरंभ से लेकर अब तक जितने प्रकार की बंदूक़ें देखने में आती हैं, वे सब चार श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। यथा—

(१) तोड़ेदार (Match Lock)—उस बंदूक़ को कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अग्नि के बोंड़े या कली से दागी जाती है। बंदूक़ का यह सर्व-प्रथम रूप है। अब इसका रिवाज बहुत ही कम हो गया है, और प्रतिदिन कम होने की संभावना है।

(२) पथरीदार (पथरकला—Flint Lock)—उस बंदूक़ को कहते हैं, जिसमें तोड़े याने अग्निकण उत्पन्न करनेवाले फाँकदार यंत्र के स्थान में चकमक-पथरी लगी होती है। वर्तमान समय में इसका प्रचार सूख रहा है।

(३) घोड़ेदार या टोपीदार—उस बंदूक़ को कहते हैं, जिसमें तोड़े के स्थान पर घोड़ा (Hammer) लगा होता है, और यह निपिल पर रक्खी हुई टोपी या टोंटे को तोड़कर उसकी आग से बंदूक़ चलाता है।

(४) ब्रीच-लोडिंग या टोंटेदार—उस बंदूक़ को कहते हैं, जिसको बीच से तोड़कर कारतूस या टोंटे देते हैं; फिर पूर्ववत् बंद करके चलाते हैं। इसमें भी दो भेदाभेद हैं—विना घोड़े की (Hammerless) और घोड़ेदार। आजकल इसी बंदूक़ का प्रचार हो रहा है।

ऊपर कहे हुए भेदाभेदों के अनुसार बंदूक़ों की बनावट, उनके शब्द-घोष, संचालन-शक्ति और वेग-बल आरंभ से लेकर अब तक आकाश-पाताल का अंतर हो गया है; परंतु उनकी संचालन-क्रिया, लक्ष्यवेध, शिस्त लेने के साधन, अभ्यास और नियमों में अब कोई भेद नहीं है।

किसी भी प्रकार की बंदूक़ तीन भागों में विभक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानी जाती है—(१) वह हिस्सा, जिसको चलानेवाला सीने से लगाकर दाहने हाथ से पकड़ता है, कुंदा याने Butt कहलाता है। यह लकड़ी का बना होता है, और आग बरसानेवाली लोहे की नली से जुड़ा होता है। (२) जहाँ कुंदा और नली आपस में जुड़ते हैं, वहाँ नली कुछ मोटी और ढालू होती है। जोड़ से लेकर आठ अंगुल तक के हिस्से को कोट कहते हैं। बंदूक़ को दागने वाले यंत्र प्रायः इसी स्थान से संबंध रखते हैं। (३) इसके अलावा शेष लोहे की नली को नली या Barrel कहते हैं। यह बैरल-नली कोट से लेकर मुहाले याने मुख तक क्रमशः ढालू और दल में कम-बेश होती है। इसके अग्रभाग पर जो एक छोटा-सा लोह-कण रक्खा होता है, उसे मछिया (मक्खी) या fore sight कहते हैं। बंदूक़ के लक्ष्यवेध की सारी करामात इसी मछिया में होती है, जैसा मुसलमानी द्वालीनामा के अंतिम चरण में बतलाया गया है—

नजर निसान जोत बंद
"मक्खी सुध रक्खी
करके सम्हार जायगी रक्खी
मारा मूजी किया जेर
ले चले लुकमान हकीम"

इस छोटे-से अमित्राक्षर-छंद में बंदूक़ चलाने से संबंध रखनेवाली सारी बातें भरी हुई हैं। इसे यदि बंदूक़-विद्या का बीज-मंत्र कहा जाय, तो भी अनुचित नहीं। परंतु केवल यह बीज-मंत्र उन्हीं के लिये सार्थक है, जो बंदूक़ चलाना कुछ तो भी जानते हों। जो लोग बंदूक़ से कुछ भी संबंध नहीं रखते, उनके लिये तो यह केवल ज्ञान-बुझौवल की पहेली है। अस्तु, हम यहाँ कुछ ऐसी बातें लिख देना आवश्यक समझते हैं, जिनको जान लेने से एक नौसिखिया छात्र भी उपर्युक्त बीज-मंत्र के अर्थ से अपेक्षित लाभ उठा सकें।

बंदूक़ की नली के अग्रभाग पर जो मछिया, मक्खी या फ़ोर-साइट होती है, ठीक उसी की सीध में कोट पर भी एक शिगाफ़दार लोहे का टुकड़ा जड़ा हुआ होता है। इसको दीदवान (वीदवान) याने back sight कहते हैं। दीदवान के बीचोंबीच जो गहरी लकीर होती है, ठीक उसी की सीध में मक्खी का सिरा होता है। बंदूक़ चलानेवाले का बायाँ हाथ दीदवान से आगे बहुत अंतर पर नहीं रहना चाहिए। बंदूक़ को बाएँ हाथ से पकड़ते समय इस बात का ध्यान रहना ज़रूरी है कि हाथ की उँगलियाँ नली पर न चढ़ने पावें। कारण, इस दशा में बैक-साइट और फ़ोर-साइट की सही शिस्त मिलना असंभव है। दाहने हाथ से बंदूक़ को पकड़े हुए, उसी हाथ की एक उँगली से जिस कल को दबाने से बंदूक़ दगती है, उसे हिंदी में लबलबी और अँगरेज़ी में Tigger कहते हैं। इसके अलावा बंदूक़ के जो अन्यान्य अवयव हैं, उनसे हमारा कोई संबंध नहीं है। जिसके पास जो बंदूक़ उपस्थित होगी, उसके कल-पुरज़ों की जानकारी वह आप ही प्राप्त करेगा, या कर सकता है। लक्ष्यवेध के संबंध में जो अंग प्रयोजनीय हैं, वे सब प्रायः अँगरेज़ी और हिंदी (हमारे देश बुँदेलखंड की भाषा) में नामोल्लेख-समेत बताए जा चुके हैं। परंतु इतने से ही किसी साधक का काम नहीं चल सकता ; क्योंकि बंदूक़ तो लक्ष्यवेध का आधार या साधन-मात्र है। यहाँ प्रधान वस्तु तो लक्ष्य है। इसके विषय में जब तक पूरा-पूरा ज्ञान न हो, कोई भी लक्ष्यवेध-विद्या में निपुणता नहीं प्राप्त कर सकता।

अपने देश की विधि के अनुसार, नवीन साधक की शिक्षा के लिये, केवल वट-वृक्ष का सुविस्तीर्ण पत्र काफ़ी समझा जाता था। वट-पत्र के बीचोंबीच, बंदूक़ की गोली के बराबर, रुई का फाहा सींक से लगाकर उसी पर गोली चलाने का अभ्यास किया जाता था। इस लक्ष्य के पाँच अंग माने जाते हैं—नीचा, सिर, दाहना, बायाँ और मध्य। ज्यों ही कोई साधक पत्ते के बीच की सींक पर फाहे में गोली लगाने लगता, त्यों ही वह आगे की हस्तलाघवता के लिये, जंगली जानवरों का शिकार करने के लिये, छोड़ दिया जाता था, जैसा हम पहले लेख में लिख चुके हैं। परंतु आजकल सरकारी पलटनों में बड़े भारी चाँद पर शिक्षा आरंभ होती है। चाँद को अँगरेज़ी में टारजेट (Target) कहते हैं। इसके बीच में जो एक फ़ुट के विस्तार से गोलाकार स्याह बिंदु होता है, उसे गुलजरी कहते हैं। असल में इसको वेधना ही लक्ष्यवेध की पूर्ण सफलता है। गुलजरी के इर्द-गिर्द, चार इंच के अंतर से, जो एक नीली लकीर होती है, उसके भीतर गोली लगाने से दूसरे दरजे की सफलता मानी जाती है। इस लकीर के बाहर चाँद में किसी जगह गोली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाने से तीसरा दरजा क़ायम होता है। परंतु संपूर्ण चाँद में गोली न लगने से साधक सर्वथा अयोग्य याने फ़ेल समझा जाता है। ध्यान रहे, चाँद का छोटा-बड़ा होना साधक और लक्ष्य के परस्पर अंतर पर निर्भर है। बंदूक़ के लक्ष्य-साधन का अभ्यास कम-से-कम २५ क़दम के फ़ासले से आरंभ करके तीन सौ क़दम की दूरी तक बढ़ाना चाहिए। लक्ष्य-साधन के संबंध में तीन सौ क़दम या गज़ की दूरी एक ऐसा फ़ासला है कि इससे अधिक होने पर सही शिस्त बँधना और सही निशाने पर निश्चय ही गोली लगना असंभव-सी बात है। तीन सौ क़दम की चाँदमारी के लिये प्रायः उतना ही बड़ा चाँद होना चाहिए, जितना सरकारी फ़ौज में प्रयोग में लाया जाता है।

जो कोई साधक लक्ष्य-साधन का श्रीगणेश करें, उनको पचीस क़दम के लिये, एक फ़ीट चतुष्कोण चाँद और उसके मध्य में तीन इंच की गोल गुलजरी काफ़ी है[1]। इस चाँद की ईजाद में एक बात की ख़ास ज़रूरत है। वह यह कि गुलजरी को काटती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक जानेवाली याने ठीक गुलजरी को चार समकोणों में बतलानेवाली ऊपर से नीचे और दाहने से बाएँ दो लकीरें और भी होनी चाहिए। कारण, बंदूक़ या बाण का लक्ष्य हमेशा नीचे से ऊपर को ही लिया जाता है। अस्तु, नीचे से ऊपर को जानेवाली रेखा का सबसे निचला भाग मक्खी में बिंधा लेने पर शिस्त को ठिकाने तक पहुँचाने में पूरी मदद मिलती है, याने जो मतलब वट-पत्र से होता है, वही कृत्रिम चाँद से भी हो सकता है।

ऊपर जो पचीस क़दम के फ़ासले से अभ्यास शुरू करने की बात बताई गई है, वह मुँह से भरनेवाली बंदूक़ के लिये है; क्योंकि इसकी गोली को फेंकनेवाली बारूद की मात्रा को तो हम कम-बढ़ कर सकते हैं। परंतु कारतूसवाली बंदूक़, जो एक ही मात्रा की बारूद खाती है, बढ़ या मुलायम नहीं की जा सकती। इस कारण कारतूसवाली ब्रीच लोडिंग राइफल से अभ्यास करनेवाले को कम-से-कम ५० क़दम पर लक्ष्य आरोपित करना चाहिए। लक्ष्य की दूरी के संबंध में बंदूक़ की ताक़त का ज्ञान होना उतना ही ज़रूरी है, जितना उसके संबंध में अपनी पाचन-शक्ति का समझना। यह समझ किसी बाल-अभ्यासी साधक को हो सकती है। अतः अब हम लक्ष्यवेध के संबंध में वे बातें लिखते हैं, जो ऐसे पुरुषों के लिये प्रयोजनीय हैं, जिनका वर्तमान समय में बंदूक़-तलवार से संबंध तो नहीं है, किंतु वे अपनी संतान को सरकार का शुभचिंतक, देश का रक्षक, समाज में श्रेष्ठ और कर्म में पुरुष कहलाने योग्य नागरिक बनाना चाहते हैं। ज्यों ही बालक आठ-दस वर्ष का हो, उसे लक्ष्यवेध के प्रारंभिक नियमों का नीचे लिखे अनुसार अभ्यास कराना चाहिए।

बंदूक़ की नली के बनाव की उतार-चढ़ावट का सीधी लकड़ी लड़के के हाथ में देकर उसको समझाना कि वह उस लकड़ी के मोटे हिस्से को दाहने कंधे और छाती के जोड़ पर हँसली याने कंठमाल के सिरे के नीचे वक्षः-चिह्न के ऊपर, जहाँ किंचित् गड्ढा होता है, टेक कर लगावे। पुनः सीने को स्पर्श करनेवाले सिरे (स्वयं साधक के) एक बालिश्त के अंतर पर बाएँ हाथ से इस ढंग से कुंदे को पकड़े कि अँगूठा सीधा और अँगूठे की जोड़वाली हड्डी पर इस ढंग से चेहरे को रक्खे कि आँख के नीचे की उभरी हुई उस पर आश्रय पावे। अगर दाहनी तरफ़ के बाद बंदूक़ का कुंदा याने लकड़ी का सिरा छतियाया है, तो बाईं आँख को बंद करके दाहनी आँख से, यदि बाएँ बाज़ू पर कुंदा आश्रय पा रहा है तो दाहनी आँख बंद करके बाईं आँख से लकड़ी के दूसरे सिरे नितांत अग्रभाग को देखे, तथा इस अवस्था में दीवार पर टँगी हुई या आँगन में रक्खी हुई भिन्न वस्तुओं की ओर करके उसकी सीध से अपेक्षित को देखे। यहाँ यह ध्यान रहे कि जिस वस्तु को मान करके लकड़ी उसकी तरफ़ सीधी की जा रही उसके नीचे से ऊपर को शिस्त लेनी चाहिए। अथवा, पदार्थ के जिस मर्म-स्थान को लक्ष्यबिंदु माना है वह शिस्त लेते समय ऐसा मालूम हो, मानों उसके अग्रभाग पर ही रक्खा है। तब समझो कि शिस्त ठीक है।

इस प्रकार का अभ्यास होने के बाद छात्र को

१. साधारण नियम यह है कि जितना बड़ा चाँद हो, उसकी चौथाई गुलजरी होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण ऐअर हवाई बंदूक़ पतले काग़ज़ के दो चाँदों में गोली चलाने की आज्ञा देनी चाहिए। लड़कों की चाँदमारी का चाँद लक्ष्यवेध करनेवाले से बीस-पचीस क़दम से अधिक दूरी पर न हो। इसकी गुलजरी कुछ बड़ी हो। शेष चाँद की बनावट ठीक वैसे ही हो, जैसी दो लकीरों के क्रास-मार्क-समेत पहले बताई जा चुकी है। ज्यों-ज्यों छात्र की गोली ठीक गुलजरी के बीच में लगने लगे, त्यों-त्यों उसके फ़ासले को बढ़ाता जाय, और जब वह ५० क़दम के फ़ासले से गुलजरी को वेधने लगे, तब गोली-बारूदवाली बंदूक़, जो छात्र के क़द के अनुसार उचित हो, दे दी जाय। संभव है, बंदूक़ के ठक्के के कारण छात्र पहले-पहल कुछ झिझके; परंतु दो-चार फ़ैर चला लेने से कान पक्के हो जाने पर वह साल-भर के सीखे हुए पलटनिए सिपाही के बराबर चाँदमारी कर सकेगा। यदि सौभाग्य से उसे पलटन में नौकरी करने का मौक़ा मिला, तो निस्संदेह वह अव्वल दरजे का स्नेपर (चुनिंदा गोली चलानेवाला) माना जायगा, और मौक़े पर अच्छा नाम पाएगा।

चाँद को लक्ष्य करने की साधारण रीति यह है कि नीचे से ऊपर को जानेवाली लकीर के सबसे निचले भाग को मक्खी के सिरे में पोह लेना चाहिए। फिर क्रम-क्रम से उसी लकीर के मार्ग पर चलते हुए अपेक्षित लक्ष्य याने गुलजरी के निचले किनारे पर पहुँचकर, उसी जगह थमकर और साँस को रोककर, फ़ौरन् लबलबी दबा देनी चाहिए। गोली ठीक गुलजरी के बीच में लगेगी। यदि साँस के रोकने में भूल की जायगी, तो गोली निशाने पर कभी नहीं लग सकती। लक्ष्य-वेध के संबंध में साँस का रोकना उतना ही ज़रूरी है, जितना जीवन के लिये उसका चलना। साँस के चलने से जहाँ बंदूक़ की मक्खी और लक्ष्य की एकता में बाल-बराबर अंतर पड़ा, तहाँ गोली से और लक्ष्य से गज़ों का अंतर पड़ जाता है।

फ़ैर करते समय जिस प्रकार साँस का रोकना ज़रूरी है, उसी प्रकार लक्ष्य लेते समय लक्ष्य के और अपने बीच का अंतर निश्चय करना भी ज़रूरी है। जैसे ज़रूरत से ज़्यादा अंतर होने के कारण गोली कमज़ोर होकर नीची हो सकती है, वैसे ही कम अंतर होने के कारण गोली ऊँची भी चढ़ सकती है। इस दशा में यह पता नहीं लग सकता कि निशाना ठीक न लगने में दोष किसका है—वेधक की शिस्त का, साँस का अथवा अंतर की जाँच का। यह निश्चय करने के लिये साधक को चाहिए कि लक्ष्य को सीधा सही रीति से आरोपित करके, उसकी सीध में, जहाँ से गोली चलाना है, बैठे हुए अपने सीने के बराबर की ऊँचाई की कोई वस्तु रखकर, उस पर बंदूक़ की नली के मध्य-भाग को आश्रय देकर शिस्त मिलावे। इस प्रकार कई फ़ैर लगातार चलाने से बंदूक़ के लगने की सही लाग का निश्चय पता लग जायगा। इस काम के लिये सबसे अच्छी और सरल युक्ति यह है कि मूँज या सुतली की बुनी हुई चारपाई को आड़ा रखकर उसकी अदवान (पैताने के तरफ़ की तनाव की रस्सी) पर बंदूक़ की नली का धन्ना बनावे। उसे ऊँचा-नीचा करने की दिक़्क़त नहीं पेश आती। जिस किसी छिद्र से शिस्त के लेने में सुबीता पड़े, उसी को सही स्थान मान सकते हैं। इस प्रकार धन्ने पर से सही लाग लगाई हुई बंदूक़—ख़ासकर जब उसकी ख़ूराक की एक ही सही नाप-तौल है—की ताक़त का अंदाज़ रहने पर, साथ ही उसके लक्ष्य की दूरी का ठीक अनुमान कर लेने पर, निशाना कभी ख़ाली नहीं जा सकता। जब ऐन मौक़े पर साँस को रोककर लबलबी दबा दी जायगी, फ़ौरन् उसी जगह गोली लगेगी, जहाँ शिस्त ली गई है।

साँस अगर कोई लक्ष्य पदार्थ सामने से अपनी तरफ़ को दौड़ा आ रहा है, तो उसके पैरों पर निशाना साधने से उसके सीने में गोली लगेगी। यदि इसके विरुद्ध कोई अपनी तरफ़ से आगे को भागा जा रहा है, तो उसके सिर को लक्ष्य करने से कमर में गोली लगना संभव है।

यहाँ तक स्थिर लक्ष्य के वेध की युक्ति संक्षेप में दर्शाई गई है। इसका अच्छा याने पूर्ण अभ्यास हो जाने के बाद साधक को चल-लक्ष्यवेध का अभ्यास आरंभ करना चाहिए। जिन लोगों के अभ्यास के लिये शिकार के खेल का अखाड़ा खुला हुआ है, उनके लिये तो अचल-वेध, चल-वेध, शब्दवेध, मत्स्यवेध आदि सब प्रकार के लक्ष्यवेध का अभ्यास आसान है। शिकार के खेलों के भिन्न-भिन्न भेद भिन्न-भिन्न अभ्यास के लिये ही कल्पित किए गए हैं, जैसा शिकार के भेदाभेदों के पाठ में बताया जायगा; परंतु जिनके लिये शिकार का खेल एक दुष्प्राप्य सामग्री है, जो बेचारे शहरों के रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले हैं, परंतु फिर भी सिपाहगिरी का शौक़ रखते हैं, जो स्वदेश-रक्षा की वांछा से देश के उत्तम वालंटियर या सरकारी सेना के सिपाही एवं अफ़सर बनकर उत्तम श्रेणी के अधिकार लाभ करना चाहते हैं, उनके लिये भिन्न-भिन्न लक्ष्यवेध की सरल युक्तियाँ नीचे लिखी जाती हैं—

अचल-लक्ष्यवेधका पूर्ण अभ्यास हो जाने के बाद एक फ़ुट के चतुष्कोण चाँद की बाँस की कमटी या लचीली लकड़ी के एक सिरे में लगाकर लकड़ी के दूसरे सिरे को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए। फिर कोई अन्य व्यक्ति उसमें रस्सी लगाकर, बहुत दूर बैठकर, दाहने-बाएँ हिलावे। उसी दशा में साधक गोली चलावे। ऐसे निशाने पर गोली चलाते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चलती हुई वस्तु कभी सही-सही शिस्त में नहीं आ सकती। इसलिये उन स्थानों को ठीक तौर से नज़र में रक्खे, जहाँ चाँद किंचित् ठहरता है। ऐसे स्थान दो सकते हैं। पहले-पहल जिस ओर को झोंके खाकर जब चाँद दूसरे रुख़ को झुकने लगेगा, पहला तो वह स्थान है, और दूसरा उसके बाद का अंतिम स्थान, जहाँ से वह फिरकर दूसरे रुख़ को झुकेगा। इनमें दाहने-बाएँ दोनों स्थान अनिश्चित होने के कारण शिस्त के योग्य नहीं हो सकते। अतः मध्यवर्ती बिंदु को ध्यान में रखकर साधक को ऐसे वक़्त पर फ़ैर करना चाहिए, जब चाँद इधर की या उधर की झोंक से अपने सही स्थान पर आने ही वाला हो। परंतु इसमें भी लक्ष्य के वेग को लक्ष्य में रखना परमावश्यक है। इसके बाद किसी ढालू जगह से लुढ़कती हुई वस्तु पर फ़ैर करने का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास में चल-पदार्थ की गति पर ध्यान रखना चाहिए, और उसके वेग के अनुसार मूठ (याने वह मुट्ठी, जिससे बंदूक़ का अगला हिस्सा पकड़े हुए हो) को इस ढंग से चलावे कि चल-पदार्थ शिस्त से अलग न होने पावे। जब कुछ दिनों में लक्ष्य के साथ-साथ मूठ चलाने का पूरा अभ्यास हो जाय, तब गोली चलाना आरंभ करे। परंतु गोली चलाते समय लक्ष्य-पदार्थ से आगे एक अलग ही लक्ष्य-बिंदु मानकर उसके अनुसार मूठ चलानी चाहिए, और बहुत ही सावधानी से इस अंदाज़ से फ़ैर करना चाहिए कि अनुमान किए हुए लक्ष्य-बिंदु तक प्रत्यक्ष लक्ष्य के पहुँचते-पहुँचते गोली भी वहाँ जा पहुँचे। यहाँ यह ध्यान रहे कि बंदूक़ का शब्द के पूर्व ही गोली अपेक्षित स्थल पर जा पहुँचे जैसा किसी कवि ने कहा है—

मंत्र प्रगट नहिं कीजिए जब लौं सरै न काज।
ज्यों गोली पहले लगे पीछे होत अवाज।

इसके अतिरिक्त चल-लक्ष्य के वेधने की एक यह भी है कि कई मिट्टी के पुरवे भिन्न-भिन्न रंग रँगकर रस्सी के सहारे एक लंबी लकड़ी में क्रमशः लटका दिए जायँ, और वह लकड़ी किसी वृक्ष की से या किसी अन्य ऊँची जगह पर लटका दी जाय। लकड़ी को धक्का देकर हिला दिया जाय, और फिर एक पुरवे को लक्ष्य करके गोली चलाई जाय। इस तरह लक्ष्यवेध में भी, स्थान-विशेष पर शिस्त को क़ायम कर ध्यान रखना चाहिए कि ज्यों ही लक्ष्य किया पदार्थ शिस्त में आने को हो, फ़ौरन् फ़ैर कर दिया जाय।

कन्हैया

दमयंती और हंस

१

सुयश कहानी नृप नल की सप्रेम सुनी,
दहकाई प्रेमानल जी में बड़े सुख
नयन, श्रवण, मन एक रँग रँगे ऐसे,
देख पड़े भूपति खड़े हैं सनमुख
दासी हो चुकी हूँ, दे चुकी हूँ आप ही को मन,
देकर सँदेसा य बिदा दी बड़े दुख
होश दमयंती के उड़े हैं, हंस उड़ते ही,
लाली अधरों से, त्यों बहाली उड़ी मुख

२

प्यासे इन लोचनों की प्यास बुझ जाती कहीं,
आते मुसकाते रस-सरिता बहाते
ताप में तपाते न हृदय को बियोग—ताप,
शीतल हृदय होता हृदय लगाते
मारते कुसुम-सर से न यों कुसुम सर,
नीच यह अपनी न नीचता दिखाते
पाते प्राणनाथ को सनाथ आज होते "श्याम",
हंस ही के संग-संग प्राण उड़ जाते

कन्हैयालाल निगम "श्याम"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान*

मिशा को भी ज़िद थी कि मैं किसी से न बोलूँगा। वह किसी से बात नहीं करना चाहता था। खाना खाने के लिये बुलाए जाने पर उसने साफ़ कह दिया—मैं नहीं खाऊँगा।

जब चा पीने के समय बुलौवा आया, तब भी बड़ी गंभीरता से, बड़ी दृढ़ता से, उसने कहा—"पिओ अपनी चा, या क़हवा, या जो कुछ हो। मुझे न तंग करो। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

मिशा की बड़ी बहन यह सुनकर बड़ी ज़ोर से खिल-खिला पड़ी। उसकी हँसी अस्वाभाविक थी। बोली—"तुम्हारी परवा कौन करता है? खाओ-पिओ, चाहे न खाओ-पिओ; हमें कौन फ़िक्र पड़ी है।"

यह कहकर इतराती हुई वह दरवाज़े से बाहर निकल गई। परंतु मिशा को अपनी बहन की इस उदासीनता में तथा इतराने में एक सहानुभूति की रेखा जान पड़ी। सोचा—कैसी बनावटी बात कर रही है! दिखाना चाहती है कि पिता और अम्मा को मेरे खाने-पीने की कुछ परवा नहीं है।.....परवा क्यों नहीं है? यही न समझ पाते होंगे कि इसे खाना खिलावें, तो कैसे.....होने दो तंग.....उन्हीं का तो क़सूर था। आख़िर.....मैंने क्या किया था। अगर इम्तिहान में मैंने एक ही नंबर पाया, तो यह कौन ऐसा बड़ा अपराध था कि मेरी सबके सामने इज़्ज़त ली जाय? कह दिया कि चमार है.....हाँ, हूँ मैं चमार। मैं ज़रा भी परवा नहीं करता.....लेकिन अब मैं खाना न खाऊँगा।

मिशा गोल कमरे में बैठा हुआ एक पत्रिका पढ़ रहा था, और चुपके-चुपके सुन रहा था कि बग़ल के कमरे में क्या बातें हो रही हैं। बातें उसी की हो रही थीं। यही चर्चा थी कि उसने कुछ खाया-पिया नहीं; उसे ज़रा-सी बात कैसी बुरी लगी।

मिशा को अपनी मा की बोली सुनाई दी—"कहाँ गया माइकेल?.....अभी तक गाल फूले हैं?" माइकेल मिशा का घर पर पुकारने का नाम था।

मिशा की बहन निना बोली—बहुत चिढ़ा हुआ है।

इसके बाद उसके पिता की गंभीर आवाज़ सुनाई पड़ी—उसके लिये खाने को कुछ रख छोड़ना।

मिशा मन में बड़बड़ाने लगा—मेरे लिये कुछ रख छोड़ना! हुँ!.....जैसे मैं खा ही तो लूँगा! क्यों, चमार के लिये कुछ रख छोड़ने की क्या ज़रूरत है?

इतनेमें उसके पिताका बोल सुनाई पड़ा—"माइकेल!"

मिशा चुप रहा। उसके पिता ने फिर पुकारा—"चलो, इधर आओ। बहुत मुँह फुला चुके।"

"मैं मुँह नहीं फुलाता; पढ़ रहा हूँ। चमार बराबर बैठकर नहीं खाया करता....."

पिता ने कुछ नरम पड़कर कहा—"अरे गधे, चल."

मिशा चीख़कर बोला—"अच्छा, मैं गधा ही सही। क्या करूँ?....."

निना बोली—"बहुत चिढ़ा हुआ है।"

मिशा अपने ग़ुस्से का घूँट पीकर मन-ही-मन बड़-बड़ाने लगा—चुप रह, पाजी कहीं की! उसके मन में बदला लेने की तीव्र इच्छा हुई। लेकिन वहाँ पर उसका पिता उपस्थित था। वह चिढ़ रहा था कि इसको बीच में बोलने की क्या ज़रूरत थी? कौन इसकी राय ले रहा था? ग़ुस्से में खाँसता हुआ मिशा उठ खड़ा हुआ। पत्रिका उसने मेज़ पर पटक दी। फिर जेब में हाथ डालकर एक पेंसिल निकाली। पत्रिका के एक पृष्ठ पर एक युवक और उसकी प्रेमिका के चित्र बने हुए थे। मिशा ने इस पृष्ठ के नीचे लिखा—"निना और पेटुस्को—दो महामूर्ख।" पेटुस्को निना के प्रेमी का नाम था। यह लिखकर, उसी मेज़ पर वही पृष्ठ खुला छोड़कर, जिससे सभी की दृष्टि उस पर पड़े, मिशा अपने कमरे में चला गया। वहाँ उसने अपनी मेज़ पर निना की टोपी रक्खी देखी। बस क्या था, उठाकर उसे कमरे के बाहर फेंक दिया, और चिल्ला उठा—हटाओ मेरी मेज़ पर से यह कूड़ा। लेकिन वहाँ सुननेवाला तो कोई था नहीं।

मिशा इस समय सभी घरवालों को वैरी की भाँति देख रहा था। उसे जान पड़ता था कि घर में दो परस्पर-विरोधी दल हो गए हैं। एक दल में तो वह अकेला

* प्रसिद्ध रूसी लेखक चिरिकॉव की एक कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप है, और दूसरे दल में घर के और सब लोग। इसलिये जिस समय घर की टहलुई उसके पास आकर उससे बहुत धीरे से बोली, तो मिशा उसी को डाँट पड़ा।

"माइकेल पैवलिच !"

"चलो यहाँ से !"

"देखो, तुमको कोई बुलाने आया है।"

"मैं कहता हूँ, दूर हो !"

"पेट ख़ाली है, इसी से इतने ग़ुस्से में आ रहे हो !"

मिशा खूब जानता था कि टहलुई उसे मनाने के लिये भेजी गई है। वह अपने रूखेपन पर कुछ लज्जित भी हो रहा था। फिर सोचा, मैं ज़रा-सा बच्चा नहीं हूँ.....खूब तंग हो लेने दो। लेकिन सच बात यह थी कि मारे भूख के उसकी आँतें कुलकुला रही थीं। मन में आया कि चौके में जाकर खा आवें। लेकिन उसने सोचा, इससे काम न चलेगा। रसोइयाँ यह बात टहलुई से अवश्य कह देगा, और वह घर में औरों से जता देगी। फिर सब ठंढे पड़ जायँगे। चाहे भूखा ही रह जाना पड़े, लेकिन ऐसा न करूँगा.....पिता या अम्मा, कोई आते और कहते—मिशा, अब ग़ुस्सा छोड़ो.....खाओ-पीओगे, तो बीमार पड़ जाओगे; बड़ी मुसीबत होगी..... जो बात हो गई, जाने दो; फिर ऐसा न कहेंगे—तो और बात थी। मैं फ़ौरन् जाकर खा आता। आज चुक़ंदर का शोरवा भी बना है।

मिशा के मुँह में पानी भर आया। उसे निगलकर वह चुपके-से दरवाज़े में कान लगाकर खड़ा हो गया, और मा के पैरों की आहट की प्रतीक्षा करने लगा। सोचा, पिता तो आवेंगे ही नहीं, अम्मा ही चाहे भले चली आवें।

परंतु उसकी मा भी नहीं आई। उसे बड़ी भूख लग रही थी। आया कौन ? बेचारा आफ़त का मारा घर का पालतू कुत्ता। कुत्ते का नाम था फ़ाल्स्टाफ़। फ़ाल्स्टाफ़ मिशा के पिता से बहुत हिला हुआ था। उन्हीं की लिखनेवाली मेज़ के नीचे उसके बैठने का स्थान था। अपने पिता के कुत्ते को अपने कमरे में दुम हिलाते देखकर मिशा को बहुत ग़ुस्सा आया। "जिसका कुत्ता, उसी के पास जाय। मेरे यहाँ इसका क्या काम ?" यह सोचते हुए उसने कुत्ते को एक ठोकर मारकर भगा दिया। बेचारा कुत्ता दाँत दिखाकर दुम हिलाता हुआ चला गया। परंतु कुत्ते पर क्रोध उतार लेने के बाद उसकी क्षुधा शांत न हो सकी।

थोड़ी देर तक खड़ा-खड़ा वह अपने बाएँ हाथ की उँगलियों को चूसता हुआ अपनी स्थिति पर विचार करता रहा। एकाएक उसे एक अच्छा ख़याल आया जिसने उसके मन से विरोधियों से सुलह कर लेने के विचार को भगा दिया। उसके दरजे के एक लड़के ने एक बार अपनी बीजगणित की एक पुस्तक बेचकर चाक़ू ख़रीदा था।

मिशा के मन में विचार आया कि पिछले साल कुछ किताबें बेचकर मिठाईवाले के यहाँ से ख़रीदूँगा, और दूधवाले के यहाँ से थोड़ा-सा दूध पी लूँगा.....यहाँ यह लोग फ़िक्र किया करें.....क्या किया, दोष उन्हीं का है.....फिर आगे के तो चेत जायँगे। अपनी किताबों की आलमारी से एक पतली-सी किताब ढूँढ़ निकाली। तनिक देर सोचा अगर मुझे इसकी फिर ज़रूरत पड़ी, तो ? लेकिन नहीं पड़ेगी। और, जब पड़ेगी, तब तक भूल भी होंगे कि इसे ख़रीद चुके हैं, और नई किताब जायगी। मिशा ने किताब बेचना निश्चय कर लिया।

वह खाने के कमरे से होकर बाहर नहीं जाना था, वहाँ घर के सभी लोग बैठे थे। कहा—ऐसा न कि ख़ुशामद करवाने के लिये इधर से निकला है.. मैं—मैं ऐसा नहीं कर सकता.. ...उस तरफ़ से जा ही नहीं।

अपने कोट के भीतर पुस्तक छिपाकर मिशा की राह से बाहर निकल गया। संध्या हो रही थी, देर में दूकानें बंद हो जायँगी, इसलिये जल्दी आवश्यक था। मिशा हवा के घोड़े पर सवार था। एक नज़दीक के रास्ते से लपका। बीच में कोई बन रही थी। किसी लकड़ी से लगकर उसका फट गया। जूते उसके नए थे। जिस समय उसने यह ख़रीदे गए थे, उसके पिता ने खूब समझा कि इसे फाड़ोगे, तो नंगे पैरों घूमना पड़ेगा। लेकिन जानता था कि यह सब धमकियाँ हैं। सरकारी बेटे नंगे पैर नहीं घूमा करते हैं, दूसरे जूते मिल ही इसकी चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं। अंत में बाज़ार में आ पहुँचा। बड़ी चहल-पहल थी।...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकानदार लोग अपनी-अपनी चीज़ों का नाम ले-लेकर चीख़ रहे थे; ख़रीदार मोल-तोल में लगे हुए थे ..... बड़ी चिल्लाहट !.....कहीं हाथापाई की नौबत भी पहुँच गई थी।.....पूरा एक दृश्य था।

चौड़ा मुँह और फूली नाकवाले एक गँवार ख़ोमचेवाले ने नाक से ऊँचे स्वर से कहा—"गर-रँम कब-बाँब"

उसने मिशा की ओर मुँह उठाकर पूछा—"कब-बाँब चाहिए ?"

मिशा ने पूछा—"किस चीज़ के बने हैं ?"

इतने में एक देहाती ख़ोमचेवाली ने मिशा का कोट अपने मैले हाथों से खींच लिया। बोली—"बेटा, इधर आओ। मेरे कबाब ख़ूब गर्म हैं। उसके तो ठंडे हो गए हैं।"

यह कहकर वह अपने मिट्टी के बरतनों में सजाया हुआ ख़ोमचा मिशा को दिखाने लगी।

दूकानदारों में तकरार होने ही वाली थी कि मिशा ने कहा—"मैं अभी आकर ख़रीदता हूँ, एक ज़रूरत से जा रहा हूँ।"

यह कहकर मिशा मैले-कुचैले आदमियों की भीड़ के बीच से, अपनी कुहनियों के बल से, राह करता हुआ उस ओर को चला, जिधर पुरानी पुस्तकों की दूकानें थीं। बड़े संकोच के साथ वह एक दूकान पर पहुँचा। दूकानदार मानो उसका इंतिज़ार ही कर रहा था। वह एक वृद्ध और गंभीर आदमी था। जान पड़ता था, कोई पुराना मुदर्रिस है। मिशा को देखकर वह सचेत हुआ, और अपने सामने एक पुस्तक खोलकर पढ़ने लगा।

मिशा ने आगे बढ़कर पूछा—"यहाँ किताबें ख़रीदी जाती हैं ?"

"कौन किताब है ?"

"एशिया, आफ़्रिका, अमेरिका — बिलकुल नई पुस्तक है।"

मिशा अपनी भूगोल की एक पुस्तक ले गया था। दूकानदार ने फिर पूछा—"स्मिरनोवाली है ?"

"हाँ"

"अगर 'योरप' वाली पुस्तक होती, तो मैं ले लेता। ये पुस्तकें तो मेरे यहाँ बहुत पड़ी हुई हैं।"

यह कहकर किताबवाले ने धीरे से अपना हाथ बढ़ा कर मिशा से पुस्तक ले ली। किताब के कुछ पन्ने उलट-पलटकर बोला—"यह तो पुराना संस्करण है। मैं इसके लिये दस कोपेक * दे सकता हूँ।"

मिशा ने अनिश्चित स्वर में कहा—"मुझे तो बताया है कि बीस से कम में न बेचना।"

दूकानदार ने जम्हाँई लेते हुए किताब मिशा को लौटा दी।

"अच्छा, तो पंद्रह ही दे दो.....बिलकुल नई किताब तो है।"

दूकानदार चुप रहा।

"लाओ, दस कोपेक ही सही।"

"बड़े अच्छे दाम दे रहा हूँ।"

दूकानदार ने मिशा से किताब लेकर आलमारी पर फेंक दी, और उसके सामने दस कोपेक गिन दिए। वह अपनी पुस्तक फिर पढ़ने लगा।

मिशा ने दाम जेब में रखते हुए कहा—"मैं शायद 'योरप' भी ले आऊँ।"

दूकानदार बोला—"ज़रूर.....लेकिन इसी क़िस्म की हो, नहीं तो दस कोपेक न मिलेंगे। अपने दोस्तों से भी कह देना। मुझसे अच्छे दाम कोई न देगा।"

"हाँ, कह दूँगा।"

दूकान से निकलकर मिशा मिठाईवालों की ओर चला। एक जगह से उसने तीन कोपेक देकर थोड़ा-सा हलवा और रामदाने की मिठाई ख़रीदी, और आगे बढ़ा।

"किस-किस चीज़ का कबाब है ?"

कबाबवाली ने तीन क़िस्म के कबाब बताए।

"किस भाव दिया है ?"

"पाँच कोपेक में दो"

मिशा ने दो क़िस्म के एक-एक कबाब लेकर अपनी भूख मिटाई। अब उसे प्यास लगी। दो कोपेक उसके पास बच रहे थे। इनसे उसने दो चुक्कड़ घटिया मेल की क्वास—रूसी शराब—भी ख़रीदी। दूसरा चुक्कड़ वह बड़ी कठिनाई से पी सका। ऐसी बुरी शराब थी ! लेकिन वह उसे छोड़ न सका। पी चुकने पर उसके मुँह से "उफ़" शब्द निकल पड़ा।

शराब बेचनेवाले ने उसकी तरफ़ मुँह बनाकर देखा। पूछा—"क्या हुआ ? कहीं सिर में तो नहीं चढ़ गई ?"

---

* एक रूसी सिक्का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद फिर वह अपनी हाँक देने लगा—"मीठी, बहारदार क्वास !"

घर आने पर मिशा ने देखा, उसकी मेज़ पर एक तश्तरी में बासी गोश्त, रोटी का एक टुकड़ा, एक ग्लास दूध और तीन पट्टियाँ रक्खी हुई हैं। इनमें पट्टी ही एक ऐसी चीज़ थी, जिसके लिये उसका मन ललचाया। पट्टियाँ उसे बहुत पसंद थीं, लेकिन वह अपना मान नहीं छोड़ना चाहता था। उसने सोचा, इनमें से एक खा लें, तो क्या हर्ज है ? क्या गिनी हुई हैं ? यदि उसे निश्चय होता कि ये गिनी हुई नहीं हैं, तो वह उनमें से एक अवश्य खा लेता। लेकिन फिर उसे ख़याल आया कि ये गिनी हुई निकलीं, तो भेद खुल जायगा। मिशा ने तीनों में से एक-एक पतला टुकड़ा चाकू से काटकर खा लिया। दूध भी एक-दो चम्मच पी लिया..... कैसा अच्छा दूध था ! ...लेकिन बस, इससे अधिक खाना उसने उचित न समझा।

क्वास सचमुच उसके सिर में चढ़ रही थी, और हलवा और रामदाने ने, ख़राब गोश्त के बने कबाब ने, भी अपना असर दिखाया। मिशा के पेट में बड़ा दर्द होने लगा। उसका जी मचलाने लगा। रह-रहकर वह थूकने लगा, और लगा "फुह ! अरे !" कहकर गुस्से में न-जाने क्या-क्या बकने।

निना उधर से निकली। पूछा—"कहाँ गए थे ?"

"तुमसे मतलब ! मैं तो तुमसे नहीं पूछने जाता कि तुम कहाँ फिरा करती हो।"

निना ने देखा, मिशा की मेज़ पर भोजन जैसा-का-तैसा रक्खा हुआ है। बोली—"अम्मा ने कहा है, यह खा लो।"

"मैं नहीं खाता, मैं तो गधा हूँ, चमार हूँ...बड़े आदमी तो तुम सब हो...गधे ने खाया, जैसे न खाया।"

"फिर जैसी तुम्हारी तबियत हो, वैसा करो।"

"हाँ, करूँगा। तुम जाओ, अपने पेटुष्को के साथ ज़रा सैर कर आओ—मुझे पड़ा रहने दो। मुझसे मत बोलो।"

अपने प्रेमी का नाम सुनकर 'हिस्ट' करती हुई निना वहाँ से हट गई।

मिशा ने समझा था, भोजन का परित्याग करके मैं अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करूँगा ; लेकिन चोरी से खाया हुआ कुपथ्य भोजन उसका वैरी सिद्ध हुआ।

मिशा के पेट का दर्द बढ़ता गया। उसने पहले तो अपनी पीड़ा छिपानी चाही। पलँग पर मुँह के बल गया, और धीमे-धीमे कराहता रहा। लेकिन थोड़ी बाद पीड़ा असह्य हो गई। तब वह ज़ोर-ज़ोर से लगा। अपनी तकिया उठाकर फेंकने लगा।

उसकी आवाज़ सुनकर उसके सब विरोधी—लोग—दौड़ पड़े। केवल उसका पिता, घर पर अनुपस्थित होने के कारण, वहाँ नहीं था। उसकी मा ने थर्मामीटर लगाकर ज्वर देखा। उसकी बहन निना दौड़कर मलहम ले आई। टहलुई डाक्टर बुलाने के लिये गई। बेचारा कुत्ता फ़ालस्टाफ़ भी रोगी के साथ सहानुभूति दिखाने के लिये आ पहुँचा, और अपनी बड़ी-बड़ी मिशा की ओर गड़ाकर करुणा के भाव से देखने लगा।

मा ने बहुत उत्तेजित होकर पूछा—"तुमने क्या लिया ?" उसके मन में यह आशंका थी कि कहीं ज़हर तो नहीं खा लिया है। इससे पूर्व कभी-कभी नाराज़ होने पर ज़हर खा लेने की भी धमकी दे चुका।

"तुमने कुछ खा लिया है मिशा। बोलो ! जल्दी बता दो !"

"अम्मा ! अरे-रे-रे ! अम्मा ! मैंने एशिया, अमेरिका बेचकर.....उफ़ !... कबाब खा लिया है।"

इस बेतुकी बात को न समझकर उसकी मा बहुत राई, समझी, बक-झक रहा है—सन्निपात के लक्षण

"क्या है बेटा मिशा ! क्या बकते हो ? किसे भेजो, इसके पिता को क्लब-घर से बुला लावे। हे ईश्वर

मिशा की ओर झुककर उसकी मा ने उसके माथे हाथ रक्खा। फिर उसके गालों को चूमा। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए कमरे में इधर-उधर बेचैन रही, और खिड़की से रह-रहकर झाँककर देखती रही डाक्टर आया कि नहीं। अत में डाक्टर भी आ पहुँचा।

"कहो, बच्चा कहाँ दर्द है ? ज़रा घूम जाओ !"

मिशा आज्ञाकारी बालक की भाँति घूम गया। ने उसकी पीड़ा की जाँच की।

"आज तुमने खाया क्या है ?"

मिशा की मा बोल उठी—"डाक्टर, आज इसने भी नहीं खाया है। जब से स्कूल से लौटा है, एक भी तो पेट में नहीं पहुँचा है।"

"यह तो ठीक नहीं.....हाँ बच्चा, बताओ, कुछ तो खाया ही है। हमको बता दो चुपके-से।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, कबाब खाया है.....एशिया, आफ्रिका.....
बेच दिया।'

"आख़िर बात क्या है?" यह कहता हुआ उसका पिता भी आ पहुँचा। क्लब में ताश की बाज़ी अधूरी छोड़कर वह गाड़ी पर भागा हुआ चला आया था।

एक घंटे के बाद घर में शांति थी। मिशा अपने पेट पर पुल्टिस की एक पट्टी बाँधे हुए चारपाई पर चुपचाप पड़ा था। पास में उसकी मा और बहन बैठी थीं, उसकी छोटी-से-छोटी इच्छा की पूर्ति करने के लिये उस समय तत्पर थीं।

दर्द बंद हो गया, और मिशा पूर्णतः संतुष्ट था।

रामचंद्र टंडन

सूक्ति-सुधा-बिंदु

१

मंजुल मुकुर में समाइ मुख छवि, जैसे
फूल में सुगंध, घन-मंडल में पानी है;
शांति में क्षमा है मनमानी ज्यों कुशासन में,
कल्पना में सुख बात मौन में छिपान
'कौशलेंद्र मनसिज मन में छिपा है जैसे,
चंद्रिका धवल चंद्रमा से लिपटानी है;
तैसे यह जग है तुम्हारी माया नाथ! तुम
माया में समाने, माया तुममें समानी है।

२

हौं तो अनजान प्रेम रीति कछु जानौं नाहिं,
बस करि लीन्हों तुम्हें सौतिनि सयानी है;
वारौं तन मन प्रान तुम पै सदा ही तऊ,
ऐसे निरमोही मोरी सुधि हू न आनी है।
'कौशलेंद्र' आए हौ सनेह सरसाइबे कौं,
अब लौं तौ खूब करि लीन्ही मनमानी है;
लावो न हमें उर, तुम्हारे ह समैहैं हाय,
मेरे उर में वियोग-वेदना समानी है।

कौशलेंद्र राठौर

भारतीय श्रम-समस्या

(१)

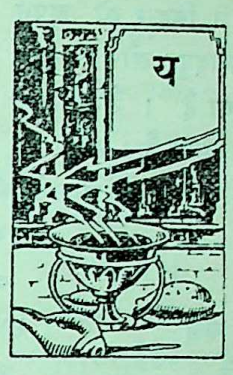

यह व्यवसायवाद का युग है। जिस देश ने इसका खुले-हाथों स्वागत किया, वह समृद्ध, श्रीसंपन्न और सभ्यता का केंद्र बन गया। भारत में अँगरेज़ों के साथ-साथ व्यवसायवाद ने पदार्पण किया; पर बंग-भंग के विराट् आंदोलन से पूर्व वह बीज-रूप ही था। बंग-भंग के विराट् आंदोलन ने इसके बढ़ने के लिये वातावरण तैयार किया। इससे पहले भारतीय पूँजी व्यवसायों में नाम-मात्र की थी। भारतीय पूँजी अभी तक लजीली थी, उसका साहस आगे बढ़ने को न होता था; पर स्वदेशी के आंदोलन से इसको उत्तेजना मिली। देश के व्यवसायों को उन्नत करने के लिये आवश्यक है कि श्रम और पूँजी में अधिकतम सहयोग हो। दोनों में अधिकतम सहयोग के लिये आवश्यक है कि दोनों एक दूसरे की आवश्यकता को समझें, और परस्पर आदान-प्रदान और सहयोगी के नाते काम करें। व्यावसायिक केंद्रों की हड़तालें और वस्त्र और लोहा-व्यवसाय का प्रतियोगिता में न टिकना दोनों पक्षों की आँख खोलने के लिये काफ़ी है। व्यवसायियों को समझ लेना चाहिए कि 'श्रमी' दुनिया में एक महती शक्ति है, इस युग की इस शक्ति का मुक़ाबिला पूँजीवाद नहीं कर सकता। इसी प्रकार श्रमियों को सोच लेना चाहिए कि देश के व्यवसाय जितने उन्नत होंगे, उतनी ही हमारी अवस्था उन्नत होगी। और, राष्ट्र के लाभ के लिये दोनों के मिलकर काम करने से ही संसार के राष्ट्रों में हम अपना स्थान प्राप्त कर सकेंगे। बड़ी शीघ्रता से हमारा देश व्यावसायिक देश के रूप में परिणत हो रहा है। मशीनरी के युग ने भारत के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर दी है। सामाजिक, राजनीतिक जगत् की उथल-पुथल ने भी व्यावसायिक क्रांति को सहायता दी है। किंतु व्यावसायिक जगत् में हमारा स्थान पहला तो नहीं है, पर बहुत पीछे भी नहीं है। संसार के व्यावसायिक देशों में आठवाँ स्थान भारत का है।

व्यवसाय में भारत के मानचित्र को एक बिलकुल नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप दे दिया है—सर्वथा एक नए ढाँचे में ढाल दिया है। वस्त्र-व्यवसाय ने अपने खीमे बंबई-प्रांत में गाड़े हैं, ऊन ने संयुक्तप्रांत को अपनाया है, जूट के व्यवसाय का बंगाल पर प्रभुत्व है। लोहा और इस्पात ने बिहार को अपने फूलने-फलने के लिये चुना है। जमशेदपुर और आसन्-सोल को इसने अपना घर बनाया है। मैगनीज ने मध्यप्रदेश में अपना राज्य क़ायम किया है। खाँड़ का व्यवसाय संयुक्तप्रांत, बिहार, पंजाब, मदरास और कोलकाता (कलकत्ता) में चमक रहा है। ३१ मिलें खाँड़ की समय चल रही हैं। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में सन् १९१९ में, कुल ५,९५२ कारख़ाने चल रहे थे, जिनसे प्रत्येक व्यवसाय के कितने कारख़ाने थे और उनमें कितने श्रमी काम कर रहे थे, यह निम्न तालिका से ज्ञात होगा—

नाम व्यवसाय	कारख़ानों की संख्या	काम करनेवाले श्रमियों की संख्या
वस्त्र-व्यवसाय	२८५	३,०७,३४८
जूट	७६	२,७६,०७९
रुई ओटने और दबाने की कलें	१,९४०	१,४०,७८६
रेलवे और ट्रांबे के कारख़ाने	९८	१,२९,५४३
इंजीनियरिंग के कारख़ाने	२१९	५७,२३९
चावल की मिलें	६०९	४८,५६३
जूट-प्रेस	२११	३३,३१६
प्रिंटिंग-प्रेस	१५८	३२,५८५
खपरैल और ईंट के कारख़ाने	२५६	२८,२२९
शस्त्र और युद्ध-सामग्री तैयार करने के कारख़ाने	१६	२६,९५७
डाकयार्ड और पोर्ट-ट्रस्ट के कारख़ाने	१६	२६,४८२
लोहा और इस्पात ,,	१	२०,८०६
चमड़े के ,,	१०७	१७,१७८
लकड़ी चीरने के ,,	१४४	१४,५५५
पत्थर के काम के ,,	६२	१३,८०९
पेट्रोलियम शुद्ध करने के ,,	८	१३,६०८
ऊन की मिलें	३९	११,८८४
खाँड़ के कारख़ाने	५५	११,५९०
तेल की मिलें	१७२	९,५५२
अबरक	२०	८,७०५
रेशम के कारख़ाने	६९	७,९८८
किरोसिन तेल के कारख़ाने	२२	७,०१५
तंबाकू के कारख़ाने	१९	६,८१८
लाख ,,	८५	६,७१८
पेपर-मिल	९	६,१८१
रस्से के ,,	३२	६,०८५
आटे की मिल	५५	५,६०१
रबड़ के कारख़ाने	१३	५,४४२
मिट्टी के बर्तन ,,	१२	५,११२
अन्य व्यवसाय	५१३	८१,३६७
	५,९५२	१३,६७,१३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तालिका को पढ़ते हुए ध्यान रखना चाहिए कि १९११ के कारख़ाने के विधान के अनुसार कारख़ाने की परिभाषा बहुत संकुचित थी । इन ५,३२१ कारख़ानों में १३,६७,१३६ श्रमी काम कर रहे थे।

इन मिलों की प्रगति कितनी तेज़ है, यह कपड़े के मिलों की निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा—

वर्ष	मिल	पूँजी	श्रमी	लूम	स्पिंडल
१९१४-१५	२५५	२१,४२,९७,२३४	२,६०,४४०	१,०३,३११	६५,९८,१०८
१९१५-१६	२६७	२१,९८,७९,३९०	२,७५,८७१	१,०८,४१७	६६,७५,६८८
१९१६-१७	२६७	२२,२८,०५,०५८	२,७७,३७०	१,१०,८१२	६६,७०,१६२
१९१७-१८	२६९	२३,८८,५५,९६६	२,८४,०५४	१,१४,८०५	६६,१४,२६९
१९१८-१९	२६४	२७,६९,८२,२१७	२,९०,२२५	१,१६,०९४	६५,९०,९१८
१९१९-२०	२६३	३८,३५,७९,०४२	३,०५,५११	१,१७,५५८	६७,१४,२६५
१९२०-२१	२८०	५५,९३,६२,२५५	३,२२,९७५	१,१७,९५३	६६,५२,४७४

ऊपर की तालिका बता रही है कि किस प्रकार निरंतर कपड़े की मिलें प्रतिवर्ष बढ़ रही हैं ; उसके साथ उसमें लगी पूँजी की मात्रा, उसमें काम करनेवाले श्रमी भी निरंतर बढ़ते जा रहे हैं ।

देश का धन व्यवसायों की तरफ़ किस तेज़ी से आ रहा है, यह कंपनियों के विकास को दिखानेवाली निम्न तालिका सूचित कर रही है—

	रजिस्टर्ड कंपनियों की संख्या	इंडेक्स नंबर	स्वीकृत पूँजी	इंडेक्स नंबर	प्रति कंपनी रुपया
१९१३-१४	३५६	१००	६६,९१,५३,०००	१००	१८,७९,०००
१९१८-१९	२९०	८१	२१,२७,५५,०००	३२	७,३४,०००
१९१९-२०		२६६	२८,१६,१२,०००	४२१	२९,७२,०००
१९२०-२१	१,०३९	२९२	१,४८,०३,७०,०००	२२१	१४,२५,०००
१९२१-२२	७१७	२०१	८०,८३,७५,०००	१२१	११,२७,०००

यह गणना अपना क़िस्सा आप सुना रही है। किस तेज़ी से कंपनियों की संख्या बढ़ रही है, लोग कितनी दिलचस्पी से अपना रुपया लगाते हैं। इन व्यवसायों के चलाने के लिये, इनका पोषण करने के लिये, बैंक भी धड़ल्ले के साथ खुल रहे हैं। १५ विनिमय बैंक और २५ ज्वाइंट स्टाक-बैंक सफलता के साथ चल रहे हैं। इंपीरियल-बैंक की देश के भिन्न-भिन्न भागों में १५० शाखाएँ खुली हुई हैं। इसके अलावा ज्वाइंट स्टाक-कंपनियों का विकास बड़ी तेज़ी से हो रहा है। इसकी गति कितनी तेज़ है, यह निम्न तालिका से ज्ञात होगा—

वर्ष	कार्य कर रही कंपनियाँ	स्वीकृत पूँजी	दत्त पूँजी	दत्त पूँजी में घटती या बढ़ती प्रतिशत
१८९५-९६	१,३०९	४१,६१,८९,११४	२९,११,४७,४३४	६·७
१८९६-९७	१,५९६	४८,९९,२४,६३४	३०,५८,६७,३६४	५·१
१८९७-९८	१,५७२	४९,३३,७६,३९१	३२,३२,१३,२४१	५·७
१८९८-९९	१,४१७	५०,५३,१०,४३८	३४,८२,०२,३७८	७·५
१८९९-१९००	१,३४०	४९,३८,६१,५८८	३४,६५,८९,९७१	०·७
१९००-०१	१,३६६	५०,९५,४५,२९५	३६,२७,५६,६३०	४·१
१९०१-०२	१,४०५	[illegible]	[illegible]	३·८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष	कार्य कर रही कंपनियाँ	स्वीकृत पूँजी	दत्त पूँजी	दत्त पूँजी में घटती या बढ़ती प्रतिशत
१९०२-०३	१,४४०	५२,५०,३२,५७१	३८,०७,७६,७००	१·७
१९०३-०४	१,४८८	५४,४०,३८,४९०	३८,७३,६६,७१३	१·७
१९०४-०५	१,५५०	५६,८८,२४,४४६	४०,३२,२५,६७८	४·०
१९०५-०६	१,७२८	६३,७२,८०,६०६	४१,८३,५२,३२९	३·८
१९०६-०७	१,९२२	७४,८३,३९,६३९	४२,२६,८८,७३९	५·८
१९०७-०८	२,०६१	८८,४५,३३,७८९	५०,८१,३८,९३८	१४·८
१९०८-०९	२,१५६	१,०९,०२,९०,१९२	५७,०३,१९,२२२	१२·२
१९०९-१०	२,२१६	१,१७,९९,८५,५१२	६१,४४,३१,६६१	७·८
१९१०-११	२,३०४	१,५७,९०,९४,९७७	६४,०४,९६,८२६	४·२
१९११-१२	२,४६५	१,६२,७४,८८,६४९	६९,३७,७८,५९५	८·३
१९१२-१३	२,५५२	१,७३,८७,५९,१५५	७२,१०,१३,८५५	४·०
१९१३-१४	२,७४४	२,३३,३३,६१,३९८	७६,५६,१८,२७४	६·०
१९१४-१५	२,५४५	२,३०,०४,२१,८४९	८०,७८,८१,४७२	५·२
१९१५-१६	२,४७६	१,८४,२०,९०,३३७	८५,०२,४३,५२८	५·२
१९१६-१७	२,५१३	२,००,०४,२१,८४९	९०,८९,५६,२१८	६·९
१९१७-१८	२,६६८	२,३४,१८,८४,६३२	९९,११,२०,८१६	९·०
१९१८-१९	२,७८९	२,५५,०९,४९,६७२	१,०६,६१,४५,४६५	७·६
१९१९-२०	३,६६८	५,४८,२२,५९,७७६	१,२३,२१,३५,७९३	१५·६
१९२०-२१	४,७०८	६,९७,८५,७३,५५०	१,६४,४६,२५,३९२	३३·५
१९२१-२२	५,१८९	७,५४,५४,८१,५७३	२,३०,५४,८८,५९२	४०·२

इस तालिका द्वारा कही जानेवाली मनोरंजक कहानी को सुनाकर पाठकों के धैर्य की हम परीक्षा नहीं करना चाहते। पर इतना इनसे स्पष्ट है कि कंपनियों की संख्या और उनकी पूँजी निरंतर बढ़ रही है। १९२०में भारत ने ८,६९,११,००० पौं० मूल्य का माल तैयार किया, और विदेशी व्यापार में १,३०,००,००० टन के जहाज़ भारत के बंदरों में आए और गए। जूट-व्यवसाय का संसार में कोई भी हमारा मुक़ाबला करनेवाला नहीं! इस व्यवसाय में सर्वथा हमारा एकाधिकार है। ताता के कारख़ाने के लोहे की संसार में माँग है, और इज़्ज़त है। वस्त्र-व्यवसाय मज़बूत पाँवों पर खड़ा है। अस्तु, व्यावसायिक प्रगति कितनी शीघ्रता से हो रही है, इसका सहज में ही अनुमान कर सकते हैं। देश अब कृषि-प्रधान नहीं रहा है। भारत लकड़हारा और पानी भरनेवाला न रह कर व्यावसायिक देश हो गया है।

इस संपूर्ण व्यवसाय की उत्पति, रक्षा तथा के लिये चतुर श्रमियों की एक बड़ी भारी सेना आवश्यकता है। भारत के श्रमियों की संख्या सारे की संपूर्ण आबादी से ज़्यादा है। ३ करोड़ १९ ल ज़्यादा श्रमी इस समय काम कर रहे हैं। कच्चे माल उत्पत्ति में १० करोड़ ६० लाख ३५ हज़ार ७२२ लगे हुए हैं, जिनमें ७,२३,३४,६१० पुरुष हैं। इसी चरी और खेती में १०,४९,४३,७१२ श्रमी काम कर हैं। खेत में मज़दूरी करनेवाले कुली, चा, काफ़ी, और रबर के काम करनेवाले २,३१,२५,६२९ श्र स्टॉक-ब्रीडिंग अथवा पशु-पालन और जंगल में करनेवाले १,२५,८९,८१७ पुरुष हैं। शुद्ध खेत पालन और जंगल के श्रमियों की संख्या ३,६२,७ है, जिनमें १,५१,१६,१०० पुरुष हैं। अन्य तुलना कीजिए, जो इन्हीं पेशों में लगे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश	साल	पुरुषों की संख्या
अमेरिका	१९१०	१,०७,८३,९०३
योरपीय रूस	१८९७	१,१५,५४,२८७
जापान	१९०८	५४,०८,३६३
फ्रांस	१९११	५२,७९,४७५
जर्मनी	१९०७	५०,७६,८६२
ग्रेट-ब्रिटेन	१९११	२१,४२,६३५

अन्य व्यवसायों में लगे हुए श्रमियों की संख्या कम आश्चर्य-जनक नहीं है। खदानों में २,६५,२७२ श्रमी काम कर रहे हैं, व्यवसायों में १,५७,२५,३७३ और ट्रांस-पोर्टेशन में १९,७०,४०० श्रमी लगे हुए हैं। इन सब व्यवसायों में काम करनेवाले श्रमियों की संख्या लगभग १ करोड़ ८० लाख है, जो संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका और फ्रांस के सम्मिलित श्रमियों की संख्या से ज़्यादा है। जहाज़ पर काम करनेवालों की संख्या ग्रेट-ब्रिटेन को छोड़कर संसार में सबसे ज़्यादा है। जिस देश में एक करोड़ श्रमी पुरुष व्यवसाय और उद्योग-धंधों में लगे हुए हों, उस देश के सौभाग्य पर सब देश ईर्षा कर सकते हैं। पर जिस रफ़्तार से व्यवसायों की उन्नति हुई है, उसी चाल से श्रमियों की उन्नति नहीं हुई है। श्रमियों की अवस्था तो वैसे ही शोचनीय है। उनका स्वास्थ्य, उनकी शारीरिक अवस्था बिलकुल ख़राब है। पौन शताब्दी गुज़र गई, पर कोई भी व्यावसायिक जगत् में प्रतिभावान् आदमी नहीं पैदा हुआ, जिसने अपनी प्रतिभा से इस मशीनरी के युग के वैभव को बढ़ाया हो। किसी भी श्रमी की प्रतिभा का फल आविष्कारों के रूप में नहीं प्रकट हुआ। यह अकारण ही नहीं है। जिस अनुपात में व्यवसायों की वृद्धि हुई है, उसी अनुपात में श्रमियों की कार्यक्षमता, कुशलता और चतुरता की वृद्धि नहीं हुई है। व्यवसायपतियों और पूँजीपतियों की शिकायत है कि भारतीय श्रमी निरंतर एक कार्य को देर तक नहीं कर सकता। वह साल में बहुत दिन काम से ग़ैरहाज़िर रहता है। पर इस शिकायत की जाँच करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भारतीय श्रमी रहता किन अवस्थाओं में है। भारतीय श्रमी गाँवों से आते हैं। ये मध्य-युग से चले आए व्यवसायियों और शिल्पियों की संतान न होने पर नीच श्रेणी से आते हैं। इनकी सामाजिक स्थिति बहुत ही नीचे दरजे की होती है। ये लोग गाँव की खुली हवा को छोड़ कर कारख़ानों में काम करते हैं। इनके रहने के लिये जो मकान बनाए जाते हैं, उनका परिचय ज़रा हृदय पर हाथ रखकर सुनिए—

इँगलैंड की पार्लियामेंट के मेंबर श्रीटामस जांस्टन ने और श्रीसिम ने Exploition in India लिखते हुए लिखा है—

"जूट के व्यवसाय में लगे हुए श्रमियों में से ९० प्रतिशत ऐसे घरों में रहते हैं, जो गंदगी के घर हैं, और रोगों से आक्रांत हैं। इनको यहाँ बस्ती कहा जाता है। ये बस्तियाँ एकमंज़िली हैं। चटाई, गारा के मेल से यह मकान बनाए गए हैं। इनकी छत फूस की है। धुआँ निकलने के लिये कोई खिड़की नहीं, न कोई चिमनी है। यदि धुआँ दरवाज़े से बाहर नहीं जा सकता है, तो सारा घर इससे भर जाता है! यह इतनी नीची हैं कि इनके अंदर घुसने के लिये आदमी को घुटने के बल चलना पड़ता है। इनमें न जल का प्रबंध है, न रोशनी का इंतज़ाम। फ़र्श मिट्टी का है। सफ़ाई और सुव्यवस्था का प्रबंध क़तई नहीं है। ये बहुत ज़्यादा घनी हैं। मैले की टनल पर असंख्य मच्छड़ और मक्खियाँ पलती हैं। दुर्गंध इतनी तेज़ है कि सदा भय बना रहता है कि दियासलाई जली नहीं कि आग लगी। एक बस्ती में तीन-चार आदमियों के रहने की जगह है—यह उस अवस्था में, जब वह हुक्का बस्ती से बाहर पिए; परंतु हमें विश्वास दिलाया गया है कि प्रायः दो परिवार इनमें रहते हैं। ये किस प्रकार रहते हैं, इनमें किस प्रकार रहना संभव है, यह जानना हमारी बुद्धि से परे की बात है। एक वृद्ध ने बताया कि इन बस्तियों में उत्पन्न बच्चों में आधे मर जाते हैं, शेष का जीना ही सचमुच आश्चर्य की बात है। बंगाल के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर अपनी १९२३ की रिपोर्ट में कहते हैं कि आधे बच्चे १० साल की उमर तक पहुँचने से पहले ही मर जाते हैं। पर ठीक संख्या नहीं बताई जा सकती; क्योंकि बहुत-सी स्त्रियाँ प्रसव-काल के समय गाँव चली जाती हैं। जो बस्तियों से ज़्यादा उन्नत हैं, उनको भी घर नहीं कहा जा सकता। यह उन्नत कमरे प्रायः १० फ़ीट लंबे, ८ फ़ीट चौड़े और ९ फ़ीट ऊँचे होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें एक खिड़की होती है। इन मकानों की पंक्तियाँ इतनी समीप होती हैं कि इनमें एकांतता और लज्जा छिपाने को भी अवकाश नहीं होता। इस कारण बहुत-से मनुष्य अपने परिवारों को लाना पसंद नहीं करते।"

इसका समर्थन Indian Industrial Commission की रिपोर्ट भी कर रही है। कमीशन के मेंबर लिखते हैं—"बस्ती—चाडल—का सबसे ख़राब टाइप दुहरा-तिहरा या चौमंज़िला मकान है। ये एक के पीछे-पीछे या अलग होते हैं। बीच में दो या तीन फ़ीट चौड़ी संकीर्ण गली होती है। कमरे—विशेषतः जो भूमि-सतह पर हैं—अंधकार से पूर्ण रहते हैं। खिड़की के लिये बहुत छोटा-सा छेद होता है, और ये प्रायः बंद कर दी जाती है; क्योंकि लाज-रक्षा और एकांत की आवश्यकता के लिये लोग ऐसा करना आवश्यक समझते हैं। गंदगी के कारण फ़र्श में सीड़ रहती है। आँगन बहुत ही संकीर्ण है, जहाँ वायु और सूर्य का आवागमन पर्याप्त रूप से नहीं होता है। ये बहुत मैले हैं। पानी का प्रबंध अपर्याप्त है। शौचालय की व्यवस्था ख़राब है। अस्वास्थ्यकर गंध से कमरे चारों ओर से भरे रहते हैं। पाँच से लेकर तीस रुपए तक इनका किराया लिया जाता है। कमरे १०-२० फ़ीट हैं।" आगे लिखते हैं—"ये लोग दिन-भर बाहर रहते हैं। दिन के कार्य के घंटों में बहुत समय तक श्रमी लोग इस कारण अनुपस्थित रहते हैं, और उन गृहों के निव[illegible] का बहुत बड़ा भाग रात में वर्षा-ऋतु के सिवा[illegible] सोता है। वस्तुतः कमरों को अपनी रसोई [illegible] और रोटी खाने के काम में ही लाते हैं। इससे [illegible] कितनी घनी हैं, इसकी आसानी से कल्पना की [illegible] सकती है। यह एक कल्पना ही नहीं, पर निस्संदे[illegible] सचाई है। हमने कुछ ऐसे केस देखे हैं कि तीन प[illegible] को एक कोठरी मिली है, और ऐसे अनगिनित उ[illegible] मिले हैं कि एक नौजवान के रहने के योग्य कमरे में [illegible] या दो परिवार रह रहे हैं।" इसका समर्थन Git B[illegible] Pari, Papers, 19 9, and, 61, P. 13[illegible] भी होता है। उनका कहना है कि सौभाग्य से इन [illegible] सियों में से बहुत-से लोग बाहर बरामदे में सो[illegible] और कमरे केवल रसोई बनाने और भोजन करने के [illegible] में आते हैं। इस प्रकार के 'चाडल' १०% से ज़्यादा [illegible] हैं, यद्यपि शेष में से बहुत-से स्पष्टतः अस्वास्थ्यकर [illegible]

इस क़दर अस्वास्थ्यकर और रोगों को पाल[illegible] घरों में रहनेवाले भारतीय श्रमियों का स्वास्थ्य [illegible] तरह बन सकता है, उनकी कार्यक्षमता, और प्र[illegible] किस प्रकार विकसित हो सकती है? जिस भोज[illegible] वे निर्वाह करते हैं, वह भी उनके शरीर को बनाने [illegible] पुष्टि देनेवाला नहीं होता। भारतीय श्रमी का [illegible] किस तरह का और कितनी मात्रा में होता है, [illegible] अंदाज़ा निम्न तालिका से लगाया जा सकता है—

एक साल का, एक व्यक्ति का, उपयुक्त भोजन (मात्रा पौंड में)

भोज्य-वस्तु	संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका	जापान	भारत
मांस	१४०	२१·५	०
मछली	२१	५०·५	०
अंडे	३०	२·१	०
फली या छींमी	२८	३५·४	११४
रोटी	३४०	३०९·४	४५६·४
शाक	४२०	४५९·४	१४८·२
खाँड़	६३	१४·१	०
फल	२००	२९·७	०
अन्य भोजन	३३	०	२२८
योग	१२,७५	९०२·८	७४१·४
दूध	५००	९·२	०
कुल योग	१७७५	९१५	७४१·४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तालिका से, भिन्न-भिन्न देशों में भोज्य-वस्तुओं की भिन्नता से यह नहीं जाना जा सकता कि तुलनात्मक दृष्टि से पुष्टिकारक भोजन में कितना अंतर है। संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका के प्रत्येक व्यक्ति का, एक साल का, भोजन २,६६४ पौंड है, जिसमें से १,९०४ पौंड ठोस वस्तुएँ हैं, और ७६० पौंड द्रव या दूध । यह आम बात यहाँ मशहूर है कि भारतीय श्रमी में भोजन की मात्रा एक भारतीय क़ैदी के भोजन की मात्रा से कम है। परंतु क़ैदी का भोजन साधारण होते हुए भी शरीर और मन के लिये पर्याप्त पुष्टिकारक होता है । साधारणतः भारतीय श्रमी अपने शरीर को क़ायम रखने लायक़ भी भोजन नहीं पाता । भारतीय श्रमी का भोजन भारतीय क़ैदी के भोजन से अच्छा भी नहीं होता, और मात्रा में भी कम होता है। सारांश यह कि श्रीरजनीकान्तदास के मत से भारतीय श्रमी संसार में सबसे ज़्यादा ग़रीब हैं।

जीवन के आदर्शों के तुच्छ होने से विशेषतः अपर्याप्त भोजन और अस्वास्थ्यकर घरों का प्रत्यक्ष प्रभाव स्वास्थ्य के विनाश में पड़ता है। अपर्याप्त भोजन और अस्वास्थ्यकर घर जीवनी-शक्ति को प्रतिदिन कम कर रहे हैं, राष्ट्र की जीवनी-शक्ति को चूस रहे हैं। विना क्षमता और शक्ति के आबादी धीरे-धीरे अपने आदर्शों और उच्च आकांक्षाओं को भूल जाती है, और संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति में अंततोगत्वा बाधक होती है। इसके कारण छुआछूत की बीमारी भी ख़ूब बढ़ती है। संतोषजनक घर की सुविधा न होने के कारण श्रमी लोग अपने परिवारों को गाँवों में छोड़ आते हैं। स्त्री और बच्चों के अभाव में श्रमी अपने चरित्र पर होनेवाले उन उत्तमोत्तम प्रभावों से वंचित रह जाता है, जो जीवन के आनंद के स्रोत हैं। इस शोचनीय अवस्था में रहने से उसका नैतिक पतन भी शीघ्रता से होता है। कठिन और चिरकालिक श्रम के पश्चात् वह ऐसा घर चाहता है, जहाँ भोजन और आराम ही न मिले, प्रत्युत मनोरंजन का साधन भी प्राप्त हो। भारतीय श्रमी इस प्रकार के वातावरण में रहता हुआ राष्ट्रीय व्यवसायों की उन्नति और वृद्धि में कहाँ तक सहायक हो सकेगा, यही सोचने की बात है?

उत्पत्ति की वृद्धि और उत्तमता जहाँ व्यावसायिक संगठन, व्यावसायिक प्रबंध, काम करने के योग्य अनुकूल अवस्था तथा पर्याप्त वेतन पर निर्भर है, वहीं इनके साथ-साथ श्रमियों की रुचि, इच्छा और योग्यता पर भी निर्भर है। कारख़ाने में काम करने की योग्यता, शक्ति और ताक़त दो बातों पर निर्भर है—उचित पालन और रोगों से मुक्ति। दुर्भाग्य से भारतीय श्रमी इन दोनों दृष्टियों से घाटे में हैं।

अधिकांश भारतीयों का भोजन अपर्याप्त होता है। यद्यपि उसी व्यवसाय में लगे हुए मनुष्यों की अपेक्षा कारख़ाने में काम करनेवाले कुछ अच्छा भोजन पाते हैं, तो भी संसार के सब श्रमियों की अपेक्षा भारतीय श्रमियों का भोजन तुच्छ होता है। मलेरिया, ज्वर, प्लेग, डिसेंट्री तो भारतीयों के सहयोगी हैं, भला श्रमी कैसे बरी हो सकते हैं। भारतीय श्रमी के पास इतने साधन ही नहीं कि वह अपनी चिकित्सा करा सके।

व्यावसायिक कार्यक्षमता के लिये शक्ति और क्षमता के साथ-साथ उस काम के प्रति, जिसको श्रमी कर रहा हो, प्रवृत्ति और रुचि भी होनी चाहिए, और यह ताक़त होनी चाहिए कि अपने-आपको नवीन व्यावसायिक अवस्थाओं के अनुकूल बना ले। किंतु शारिरिक और सामाजिक अवस्थाएँ भारतीय श्रमियों को व्यावसायिक जीवन व्यतीत करने में ज़रा भी उत्तेजना नहीं देतीं।

व्यावसायिक शक्ति, व्यावसायिक प्रवृत्ति और निश्चय के साथ-साथ निरंतर धैर्य के साथ परिश्रम करने की भी क्षमता होनी चाहिए। व्यावसायिक कार्यक्षमता के लिये परिश्रम और धैर्य दोनों ज़रूरी हैं, और इन दोनों बातों में भारतीय श्रमी निर्बल हैं—पीछे हैं। फ़ैक्टरी-लेबर-कमीशन, १९०७ की रिपोर्ट में लिखा है—"साधारणतः कारख़ानों के भारतीय श्रमी चिरकाल तक और कठोर परिश्रम करने के अयोग्य हैं। वह आपेक्षिक तौर पर थोड़ी देर के लिये कठोर श्रम कर सकता है; पर इस अवस्था में भी जो परिमाण प्राप्त होता है, वह एक-सी अवस्थाओं में योरपियन देशों की तुलना में बहुत कम है। उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि काम को अधिक समय में फैला दे, आराम करते हुए सारे समय काम करता रहे। बीच-बीच में आराम लेता है, जब वह और अधिक काम करना पसंद नहीं करता।" बंबई-मिल के व्यवस्थापक की राय है कि कोई श्रमी दो घंटे से ज़्यादा काम लगातार नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता। बंबई के श्रीरामजी का कहना है कि श्रमियों की चतुरता तो बढ़ी है, पर परिश्रम की क्षमता नहीं बढ़ी। भारतीय श्रमी व्यावसायिक क्षमता, व्यावसायिक चतुरता, तथा व्यावसायिक कुशलता में कम हैं। इसके साथ-साथ उसमें खरापन और शुद्धता भी नहीं, जो एक काम के लिये आवश्यक है। जो पहले शाल, हाथीदाँत के काम, जवाहरात और ढाके की मलमल तैयार करता था, वही आज व्यावसायिक सूक्ष्म कामों की योग्यता में शून्य है! काम करने की रफ़्तार भी धीमी है। काम करने की रफ़्तार की तेज़ी और कुशलता स्वभाव पर निर्भर है। व्यावसायिक प्रतिभा और चतुरता तथा क्षमता के लिये शिक्षा आवश्यक है। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि भारतीय श्रमी जिन स्थानों से आते हैं, और जिस परिस्थिति में पलते और पैदा होते हैं, वहाँ की सामाजिक और शारिरिक अवस्था किसी क़दर भी कारख़ाने में काम करने के लिये नहीं प्रेरित करती। फिर इसके अलावा भारतीय श्रमी परंपरा से काम नहीं कर रहे हैं। मध्ययुग में जिस प्रकार शिल्प की कुशलता, परंपरा और उत्तराधिकार से चली आती थी, वह अब नहीं है, न मध्ययुग के क्रमागत शिल्पी अभी इन कारख़ानों की ओर झुके हैं। प्रतिभा उत्पन्न नहीं की जाती है। मौलिकता और प्रतिभा शिक्षा से नहीं प्राप्त होतीं; फिर भी इनके विकास के लिये शिक्षा नितांत आवश्यक है। पर भारतीय श्रमी को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती। इस अवस्था में वह संसार के मुक़ाबले में खड़ा किया जाता है! यह सोचने की बात है कि वह तुलना में वहाँ पर जाकर टिक सकेगा?

कठोर नियंत्रण से घबड़ानेवाले तथा बड़बड़ाते हुए और अनिच्छा से काम करनेवाले भारतीय श्रमी का संसार के श्रमियों में कौन-सा स्थान है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

बंबई-फ़ैक्टरी-रिपोर्ट, १८८९, में कमिश्नर लिखते हैं—"एक ऐसी मिल में, जहाँ तकुओं की संख्या समान है, उसके लिये बंबई में इँगलैंड की अपेक्षा दुगने श्रमी चाहिए।" अहमदाबाद-फ़ैक्टरी-रिपोर्ट, १८८८, में कमिश्नर लिखते हैं—"एक अँगरेज़ का काम करने के लिये दो देशी आदमियों की ज़रूरत है—कई मिल-प्रबंधकर्ताओं की सम्मति में तो तीन की ज़रूरत है।" आगे चलकर लिखते हैं कि उसी परिमाण उत्पत्ति के लिये भारतीय श्रमी को ७२ घंटे लग पड़ते हैं, जहाँ अँगरेज़ श्रमी को ६० घंटे चाहिए। साल बाद बंगाल के कारख़ानों के निरीक्षक ने लिखा "डंडी में उसी आकार और परिमाण की मिल के लिये जितने आदमी काम करते हैं, उससे बंगाल की उसी आकार और परिमाण की प्रत्येक मिल में १०० प्रतिशत आदमी ज़्यादा काम कर रहे हैं। श्रीलेस्ली का कहना है कि "कम-से-कम कातने के विषय में कहा जा सकता है कि जितना काम एक अँगरेज़ करता है, उतना काम दो भारतीय कर सकते हैं।" बंबई के प्रसिद्ध व्यवसायपति श्री सी० एन् वाडिया का कहना है कि उसी योग्यता और परिमाण की मिल के लिये इँगलैंड के कारख़ाने की अपेक्षा तिगुने आदमी चाहिए, फिर भी वह योग्यता और सामर्थ्य तथा क्षमता प्राप्त नहीं होती, जितनी आशा करने का वह अधिकारी है। इँगलिश लूम या करघे से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हमको ६०% प्रतिशतक व्यावसायिक क्षमता प्राप्त होती है।

तुलना के लिये निम्न तालिका अधिक सहायक होगी—

	मदरास	लंकाशायर
१ इंजीनियरिंग विभाग	६४	[illegible]
२ कारडिंग ,,	४१९	[illegible]
३ कातना ,,	६४४	[illegible]
४ डबलिंग	३०	[illegible]
५ विन्डिंग ,,	८६	[illegible]
६ कलर-विन्डिंग ,,	२१९	[illegible]
७ कलर-ह्विरनिंग	१६०	[illegible]
८ वारपिंग ,,	१९	[illegible]
९ साइजिंग ,,	३८	[illegible]
१० रीलिंग ,,	१३७	[illegible]
११ ट्विस्टिंग आदि,,	३५	[illegible]
१२ बुनने के विभाग	९७१	[illegible]
अनुपात २·८ : : १	२,६२२	[illegible]

The cotten trade in England and on the contirent के लेखक डाक्टर जी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लुट्स मैनरनिट्श ने सब देशों के कार्यों की क्षमता कितनी है, इसके लिये एक तालिका दी है—

प्रति हज़ार तकुओं पर श्रमियों की संख्या

देश	श्रमी
बंबई	२५
इटली	१३
आलसेस	९½
पुलहाउस	७½
जर्मनी (१८६१)	२०
,, (१८६२)	८ से ९
इँगलैंड (१८३७)	७
,, (१८८७)	३
स्विट्ज़रलैंड	६·२
वेडन और विरटमबर्ग	६·२
बवेरिया	६·८
सैक्सनी	७·२
वोसजेस (फ्रांस)	८·९
रूस	१६·६

यह तालिका संसार के श्रमियों की कार्यक्षमता पर पर्याप्त प्रकाश डाल रही है । इसके कारण उत्पत्ति में कितना घाटा होता है, इसकी जाँच श्री राटक्लिफ़ ने की है। उनके कथनानुसार २६% प्रतिशतक कम उत्पत्ति होती है । यह करघे पर काम करनेवाले एक श्रमी से जाना गया है ।

अवनींद्रकुमार

अनोखे नैन

चोखे सोखे लेत हिय, कछु हू कहत बनै न ;
धोखे हू लखि मन फँसै अबल अनोखे नैन ।

प्रेमनारायण त्रिपाठी

लौंगी

पहला दृश्य

स्थान—वन-खंड

समय—दोपहर

(राजकुमार अकेला)

राज०—मृग के पीछे प्रबल वेग से मैं यहाँ
दौड़ा-दौड़ा आ पहुँचा हूँ, किंतु वह
मुझको देकर धोखा वन में उड़ गया;
उसका पाना किंचित् संभव अब नहीं ।
मैं आया था छलने मृग के प्राण को,
किंतु प्राण ही आख़िर मेरे छल गए ।
कहाँ पड़े हैं पीछे साथी, भृत्यगण,
नहीं कल्पना होती उनकी रंच भी !
बड़ी दूर वे मुझसे पीछे रह गए
होता है अनुमान यही—अभिमान से
बियाबान यह जंगल सम्मुख है खड़ा
रोक रहा है पगडंडी की राह भी ।
सूख रहा है कंठ प्यास से इस घड़ी ;
मिल जाता यदि थोड़ा पानी भी मुझे
तो होता वह अमृत के, बस, तुल्य ही ।
पानी मुझको प्यास बुझाने के लिये
यहाँ मिलेगा कहाँ विकट वन-खंड में ?
प्यास-प्यास की रटन लगाए अंत में
छूटेंगे ये प्राण यही अब दिख रहा ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—वन-प्रांत

समय - दोपहर

(लौंगी और राजकुमार)

लौंगी—घिरा हुआ है जंगल चहुँ दिशि में घना
और हवा के विकट झकोरे चल रहे ।
लू की लपटें उठतीं बारंबार हैं
धरती तपती अंगारों की ही तरह ।
हो करके निष्प्राण दुपहरिया में यहाँ
वन के प्राणी अंतिम साँसें ले रहे ।
घूम रहे हैं आप अकेले क्यों यहाँ
या पड़ती है राह दिखाई भी नहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज०—पीछे इसका उत्तर दूँगा, बालिके !
एक काम है, प्यासा हूँ मैं बहुत ही ।
मुझे पिलाओ थोड़ा पानी तुम अभी
फिर तुमको मैं बात सुनाऊँ धैर्य से ।

लौंगी—यहाँ बैठिए, वट की शीतल छाँह में
मैं झरने से ठंढे पानी का घड़ा
ले आती हूँ भर करके पल-मात्र में ।

(प्रस्थान)

राज०—नहीं जानता था वन के इस नीड़ में
छिपी मिलेगी यह विहंगिनी भी मुझे
यह लाएगी रखकर अपने कंठ में
सुधा-बिंदु को; तनिक ज्ञात भी था नहीं
रक्षा होगी अनायास ही इस तरह ।
मेरा है सौभाग्य—

(लौंगी का प्रवेश)

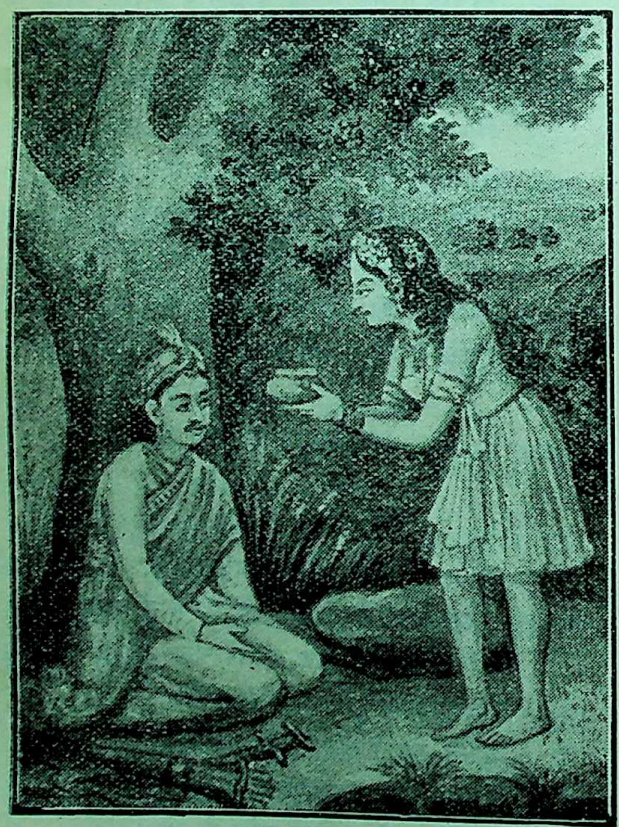

लौंगी— लीजिए, आ गई ।
यह पानी का पात्र आपके पास है
निज इच्छा से चाहे जितना जल पिएँ ।

राज०—मैं कृतज्ञ हूँ कितना !

लौंगी— रहने दीजिए;
चलिए-चलिए, यहाँ न रुकिए क्षणिक भी
झुलस रहा है सारा मुखड़ा धूप से
विकट शुष्कता अधर-पल्लवों पर बसी,
अलकावलियाँ अस्त-व्यस्त हैं हो रही।
देख रही हूँ, चलते-चलते श्रांति से
पैर न रुकते एक घड़ी के भी लिये।
दूर यहाँ से नहीं, झोपड़ी पास है,
कर उसमें विश्राम, कीजिए दूर सब
अपने सारे प्राप्त हुए शैथिल्य को।
बैठ आपके पास, वहीं पद-प्रांत में
विजन डुलाकर, मर्म-कष्ट को अल्प भी
दूर कर सकी, तो अपने को धन्य मैं
समझ सकूँगी ।—या इच्छा हो आपकी
तो चलिए, बस,वहाँ जहाँ है दीखता
लतिकाओं से छाया-मंडप मौन है।
प्राप्त हो सके जो कुछ भोजन, पाइए
मुझ दरिद्र के यहाँ न कुछ भी और है।

राज०—चलता हूँ, पर मुझे बताओ बालिके,
कहो कौन हो ? वन-कन्या-सी तुम यहाँ
प्राप्त हुई हो मुझे दैव के योग से।

लौंगी—वन-कन्या हूँ नहीं, दैव का योग भी
इसमें मुझको, दिखता कुछ भी है नहीं।
मैं गरीबिनी भील-बालिका, जन्म से
वंचित हूँ, हा, दुर्लभ जननी-प्रेम से।
रोकर मुझसे पिता सुनाते हैं कथा,
जब-जब होता विह्वल उनका चित्त है—
जन्म लिया जब मैंने मा के पेट से
तब भादों की वह अँधियारी रात थी !
हाथ हाथ को नहीं सूझता था कहीं,
हहर-हहर कर पानी मूसलधार में
बरस रहा था, और चमकती बीच में
चकाचौंध कर बिजली चारों ओर ही।
उसी भयानक कुंझटिका की रात में
मुझे पिता की पुण्य गोद में छोड़कर
चली गई मा जगदीश्वर के पास थी।
मेरा पालन किया पिता ने धैर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उन्हीं के आश्रय में हूँ पल रही ।
आज सबेरे पहर गए हैं नगर में
करने को बाज़ार पिताजी ।—वे अभी
आते होंगे, या आवेंगे शाम को
झुली पड़, यदि होगा कोई काम तो ।
सौंप गए हैं एक काम, बस, वे मु
बैठे-बैठे वही कर रही थी यहाँ ।
यह जुआर की फसल खड़ी है खेत में
मैं मचान के ऊपर हो करके खड़ी
उड़ा रही थी चिड़ियाँ गुफने को लिए ।
उसी समय था मैंने देखा आपको
मैंने सोचा, कौन बटोही श्रांत हो
ढूँढ़ रहा है राह यहाँ वन-प्रांत में !
आप अतिथि हो आए मेरे द्वार हैं
मैं कृतार्थ भी हो जाऊँगी, यदि कहीं
आप मुझे दें अपना परिचय अल्प भी ।

राज०—मेरा परिचय !—परिचय में है तत्त्व क्या ?
राजपुत्र हूँ; राजा के सब भृत्यगण
मुझे क़ैद कर रखते बंदी-सा सदा ।
मेरा है यह राज्य, जहाँ तक दीखता
इन आँखों से तुमको अपनी दृष्टि में ।
अपने इस अज्ञेय राज्य में, मैं यहाँ
कौतूहल की क्रीड़ा में ही व्यस्त हूँ ।
तिनका-सा हो, इस विराट् कल्लोल में
बहा जा रहा नित्य न-जाने मैं कहाँ ?

लौंगी—राजपुत्र हैं आप ?—विपुल साम्राज्य का
सारा वैभव लुंठित होकर आपके
पद-पद्मों में पड़ा हुआ है, और मैं
हो करके संलग्न उसी को कीट-सी
स्पर्श-दोष से दूषित करती हूँ वृथा ।

राज०—नहीं-नहीं, यह संभव बिलकुल है नहीं
क्षुद्र भाव है; यह जो तुम हो सोचती ;
उसे छोड़ दो !

लौंगी— क्या होगा यदि छोड़ दूँ ?
कंपित होता हृदय वेग से, और यह
लज्जा होकर ढीठ सामने है खड़ी ।
राजद्वार पर स्वागत करने आपका
बिछती होंगी कितनी आँखें नम्र हो ;
उठता होगा मुखरित करके दिग्विदिक्
स्वागत-गायन चारणगण के कंठ से ।
आते होंगे कितने ही श्रद्धालुगण
अर्घ्य चढ़ाने श्रीचरणों में आपके
और कहूँ क्या ? हाय, खड़ी हूँ मैं यहाँ
लज्जा-कंपित भीरु-भाव ले हृदय में ।
आज अकारण कृपा-दृष्टि की आपने
इस अनाथिनी की कुटिया के द्वार पर ;
किंतु यहाँ पर मूर्तिमान दारिद्र्य ही
हाथ जोड़कर खड़ा हुआ है मौन हो ।
हाय, विकलता देख यहाँ पल-मात्र में
लौट न जावें कहीं आप, यह दुःख है ।
आते होंगे पिता, ठहरिए साँझ तक
उनसे मिलकर आप जाइए, फिर न मैं
रोक रखूँगी आग्रह करके आपको ।

राज०—आज तुम्हारे क्षणिक मिलन से बालिके,
अंतस्तल में उमड़ रहा आवेग से,
देख रही हो, यह समुद्र आनंद का ।

लौंगी—चलिए-चलिए, अधिक न लज्जित कीजिए ।

राज०—चलो, कहाँ को चलना होगा, ले चलो
मुझ-जैसे प्रेमांध पथिक के मार्ग को
दीपित करके अपने प्रेमालोक से ।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—लौंगी की झोपड़ी

समय—सूर्यास्त

(लौंगी, उसका पिता शंकर और राजकुमार)

शंकर—कितने दिन से एक व्यथा ही चित्त में
उठकर मुझको व्याकुल करती थी सतत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ देखतीं, केवल आँखें देखतीं
वही स्वप्न जो मन में उठता नित्य था।
कभी सोचता मैं होकर गंभीर-सा
क्या होगा यह स्वप्न सफल भी एक दिन ?
वांछा होगी मन की पूरी भी कभी,
कभी मिटेगी मेरे मन की भी व्यथा ?
प्रिय कुमारजी, आज तुम्हें ही देखकर
मेरी सारी व्यथा, चिंतना, क्लेश भी
देख रहा हूँ, नष्ट हुआ तत्काल ही।
सुखद स्वप्न भी देख रहा था जो सतत
वह भी होगा पूर्ण, दीखता है यही।

राज०—मैं प्रस्तुत हूँ, आज्ञा मुझसे कीजिए
जो कुछ मुझसे संभव होगा वह सभी
करने को तैयार खड़ा, निश्चिंत हो।

शंकर—मेरे मन में उमड़ रहा है हर्ष जो
कौन कहेगा, उसके पारावार को ?
लौंगी—बेटी, तेरे इस सौभाग्य को
भेजेंगे भगवान, द्वार पर इस तरह
मुझको ऐसी नहीं हुई थी कल्पना।
वृद्ध काल में जीर्ण जर्जरित देह को
आश्रय होगा प्राप्त विना आयास के !
सोच रहा था, दिखता आँखों में नहीं,
अंधा होऊँ हाय, दैव की मार से
तो मेरी यह प्यारी बेटी प्रेम की
मारी-मारी कहाँ फिरेगी ? दुःख से,
चोटें खाकर, कलपेगी दुर्भाग्य से !
इसी चिंतना के संतत आघात से
दृष्टिहीन मैं होता जाता नित्य था,
इसी वेदना के प्रचंड आघात से
अंग भंग भी होते जाते थे सदा।
पर, कुमारजी, आज तुम्हारा सम्मिलन
विधि का, मेरे मलिन भाल का अंक था
जिसके भीतर छिपी हुई आलोक की
एक रश्मि थी, चमक रही जो तेज-सी,
दिव्य प्रभा-सी, आज दृष्टि के सामने।
वरण कीजिए, प्रिय कुमारजी, कर कृपा,
इस अनाथिनी जननी-सुख से वंचिता
हा, लौंगी को—भिक्षुक के-से दान को,
ग्रहण कीजिए—

राज०— अश्रु रोकिए ये सभी
उमड़ रहे हैं जो अविरल जल-धार-से।
लौंगी, पोंछो तुम भी अपने अश्रु-दल
लज्जा-अवनत मुख-मंडल से मूक हो
बूँद-बूँद कर टपक रहे हैं जो वृथा।

लौंगी—हाय, रोककर रख सकती ? पर क्या कहूँ
उमड़-उमड़ कर बह पड़ते हैं आप ही।

शंकर—मेरी लौंगी, प्रिय कुमारजी, जन्म से
बनी हुई है छुईमुई-सी। जब कभी
उसके मन पर थोड़ा-सा आघात भी
हो जाता है, तब आँखों के मार्ग से
उसकी सारी व्यथा फूटकर आप ही
बह पड़ती है। कमल-कुसुम-सी कांति भी
पड़ जाती है पीली। उसकी भावना
निर्झरिणी की तरह रुदन कर, अंत में
ग्रीष्म-काल-सी, ज्वाला के ही गर्भ में
हा-हा करके जल जाती है कष्ट से।
उसे मिला है नहीं दिवस-भर के लिये
माता का वात्सल्य-भाव, मृदु गोद भी।
नहीं जानती जननी का क्या प्रेम है,
वह पगली-सी अपनी संतति पर सदा
कैसा करती स्नेह, न उसको ज्ञात है।
उसे ज्ञात है नहीं, स्नेह किस भाँति से
उद्गत होता मातृ-हृदय में स्रोत-सा।
कौन पूर्णता माता केवल चाहती,
कौन साध ही जन्म-जन्म-सी मुक्त हो
उसके उर में सफल स्वप्न-सी खेलती।
नहीं जानती, पुत्र देखने के लिये
मा की आँखें हरिणी की-सी डोलतीं।
जब ईश्वर के परम अनुग्रह से कभी
लौंगी होगी पुत्रवती, तब स्वतः ही
उसको होगा ज्ञान पुत्र क्या वस्तु है
और प्राप्त कर जिसको मा पल-मात्र में
बन जाती है प्रतिमा जीवित प्रेम की।
इसी तरह से पाकर अपने पुत्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे कुमारजी, लौंगी जननी-प्रेम का
पा जाएगी थोड़ा-सा आभास भी।

(लौंगी से—)

लौंगी बेटी, सौंप रहा हूँ मैं तुम्हें
राजपुत्र के कोमल कर में आज से
होकर उनके चरणों की अनुगामिनी
तुम जानोगी अपने सुख-सौभाग्य को।

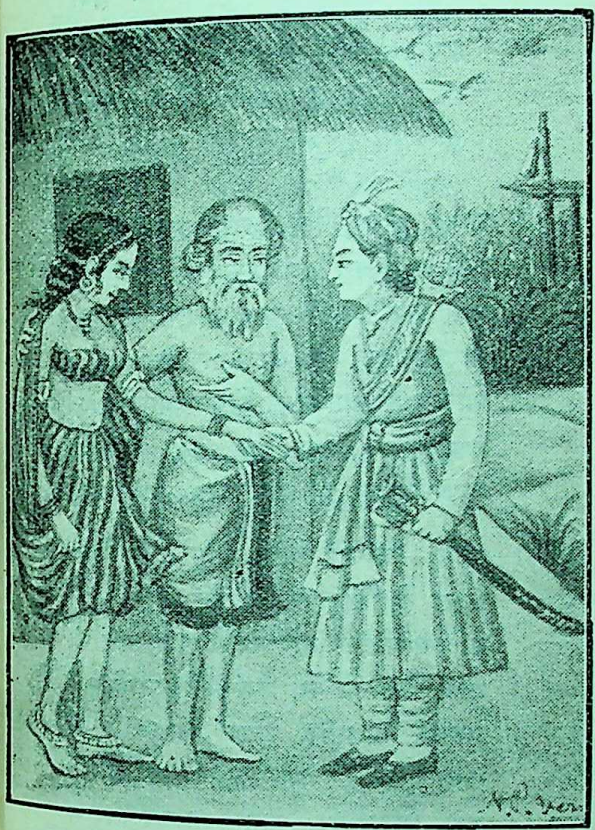

(शंकर राजकुमार के हाथ में लौंगी का हाथ रख देता है)

राज०—धन्य भाग है, मैं कृतज्ञता-पाश में
इस मुहूर्त से बद्ध हुआ चिरकाल को।
और कहूँ क्या, मुझसे प्रेमावेग से
कुछ भी कहते बन पड़ता है अब नहीं।

चौथा दृश्य

स्थान—गृह-प्रांगण

समय—आसन्न संध्या

(लौंगी और राजकुमार)

लौंगी—बीत गए दो मास स्वर्ग-सुख-शांति से
नहीं ज्ञान हो सका अचानक किस तरह
नव प्रभात, मध्याह्न, सांध्य-सहगामिनी
मौन यामिनी भी लेकर आनंद से
अपनी विमल विभा के सुंदर रूप को
काल-स्रोत में अवगाहन कर, धन्य हो,
हुई प्रस्फुटित। उसी तरह से सहचरी
जल-तरंग की तरह, खड़ी तट-प्रांत में,
प्रियतम, धोकर श्रीचरणों को आपके
धन्य हुई है।—अब तक उसका कार्य था
करना घर का काम लगाकर ध्यान को।
और न चिंता उसको इससे थी बड़ी।
आज भूलकर सारे घर के काज को
श्रीचरणों की सेवा, केवल कार्य ही
उसे दीखता है महान कर्तव्य-सा।
बाह्य जगत का उच्छ्वासित कल्लोल भी
बँधा हुआ है, गुरु सीमा के पाश में—
आज प्रकट हो गया। नाथ, प्रत्यक्ष-सा
देख रही हूँ, अंतर्तम के जगत का
वह विराट् विस्तार अकल्पित। ज्ञान भी
जिसका मुझको कभी हुआ था कुछ नहीं।
मैंने जाना अल्पावधि में, आप ही
मेरे हैं आराध्यदेव।

राज०— हे प्रियतमे,
नहीं देव हूँ, जिसकी तुम आराधना
यों करने को प्रस्तुत होतीं व्यर्थ ही।
मैं तो केवल आज देखता हूँ यही
यह अपूर्ण था हृदय, आज वह पूर्ण हो
शेष सिद्धि के वांछित फल को प्राप्त है।
व्यग्र रहा वह संसृति के बहु कार्य में,
किंतु नहीं था ज्ञान उसे, वह कौन-सी
मधुर वेदना, किस अभाव की, प्रतिदिवस
जाग्रत करती उस अश्रुत संगीत को,
करुण-स्वरों में जो मानव-संसार को
कर देता है विह्वल-सा आनंद में।
वही वेदना आज मिलन-संगीत की
मुक्त रूप से नव परिणति में व्याप्त है।
आज देखता, इस समग्र संसार के
अंतस्तल में फूट पड़ा सौंदर्य है।
उसकी निर्मल छटा आज अपरूप-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्भासित है कण-कण में सर्वत्र ही।
आज खड़े दो प्रेमी यों उद्भ्रांत-से
उसी रूप की सुधा मुग्ध हो पी रहे।

किंतु—

लौंगी— किंतु क्या ?

राज०— हाय प्रियतमे !

लौंगी— प्राणधन !
कहिए-कहिए, कहते क्या हैं ? इस तरह
क्यों निराश-से दिख पड़ते हैं ?

राज०— प्रियतमे,
आज न-जाने क्यों चिंता नैराश्य की
होकर उद्गत, अंतस्तल में वेग से
करती है आघात। यही है दीखता
कोई बाधा आकर सहसा प्रेम के
इस बंधन को यदि कर डाले छिन्न, तो
क्या होगा प्रियतमे !

लौंगी— हाय, क्षण-मात्र में
हो जाएँगे दो प्राणी निष्प्राण-से।
किंतु नाथ, यह चिंता सारी व्यर्थ है
वृथा न प्यारे यों अपने को कष्ट दो।
है पवित्र यह प्रेम अबाधित स्रोत-सा
नित्य बहेगा। उसको बाधा अल्प भी
रोक न सकती कभी—

राज०— सत्य यह बात है।
तो भी—तो भी हृदय किसी नैराश्य का
प्राणवल्लभे, क्यों करता संकेत है ?

(मंत्री और नौकरों का प्रवेश)

प्रिय मंत्रीजी, कहिए-कहिए, कौन-सा
आज सँदेसा लेकर आए राज्य से ?

मंत्री—हुए बहुत दिन, आप न लौटे तो सभी
चिंतित होकर यही सोचने लग गए,
भटक गए हैं राजपुत्र, तो अब उन्हें
लाना होगा ढूँढ़, विकट वन-प्रांत से।
हम सब आए लेने केवल आपको
चलिए-चलिए अब विलंब मत कीजिए।

राज०—इतनी जल्दी क्यों करते हैं मंत्रिवर ?
मेरे बिना तुम्हारे इस साम्राज्य का
कार्य न चलता एक घड़ी के भी लिये ?
आप जाइए, मैं आऊँगा शीघ्र ही
हृदय-राज्य की रानी लेकर, फिर उसे
विमल प्रणय की अंजलि देकर, राज्य के
अंतःपुर में बंद करूँगा, और फिर
चक्र चलावें आप राज्य का तो सदा
मैं पिसने को खड़ा रहूँगा धैर्य से।

(मंत्री और नौकरों का प्रस्थान

(लौंगी से—)

जाना होगा प्रिये, राज्य-अनुरोध को
टाल न सकता कभी एक क्षण के लिये।
जब पाऊँगा अवसर अपने काज से,
तो आऊँगा, ले जाऊँगा फिर तुम्हें।
आज उपस्थित यहाँ विकट व्याघात है।
रुद्ध रहेगा, देख रहा, कुछ काल को
पुण्य-मिलन का यह पवित्र संगीत भी।

लौंगी—हाय, जाएँगे आप बना उन्मादिनी
सरल बालिका को अपने सौंदर्य की।
यदि ऐसा था तो प्यारे पल-मात्र को
मुग्ध किया था क्यों उसको इस भाँति से?
सुनकर प्रियतम, आज प्रेम-संगीत को
खड़ी हुई है मुग्ध मृगी यह सामने
उसे गिरा दो, बाण मारकर ज़ोर से
खाल खींचकर, ले जाओ तुम प्राण को
रखकर अपने कोमल कर में, राज्य को।
और दिखाना, वन में मृगया में मुझे
प्राण मिले हैं एक मृगी के अंत में।
हाय, निठुर क्यों होता इतना पुरुष है
सरल बालिका क्या समझे इस मर्म को?
पल में होता सरल, वज्र तत्काल ही
हो जाना, यह मायावी का खेल है।
छद्म-वेश धर राजपुत्र का तुम यहाँ
छलने आए मुझे, हाय, क्या सत्य है?
मुझे बताओ—मुझे बताओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियतमे,

राज०—
क्यों होती हो इतनी आकुल दुःख से ?
रोको प्यारी यह सारी उत्तेजना
मुझे दुःख भी होता इससे है बड़ा।

लौंगी—यदि होता कुछ दुःख, नाथ, तो व्यर्थ ही
छोड़ न जाने का करते अनुरोध यह
होता मुझ पर यदि थोड़ा-सा स्नेह तो
मुझे छोड़कर जाना संभव था नहीं।
आज देखिए यह वसंत-श्री चतुर्दिक
विपिन-प्रांत में, अपने नव संभार को
लेकर प्रस्फुट हुई। देखिए, वृक्ष-दल
नव पलाश के शाल प्रसूनों से खिले,
नव वसंत के श्रीचरणों में दे रहे
अर्घ्य भक्ति का। मलय-वायु स्वच्छंद हो
किस उमंग को लिए आज वन-प्रांत में
डोल रहा है। कूक रही है कोकिला
किस आशा को लेकर अपने हृदय में।
किस अभाव को पूरा करने यह जगत्
आकुल होकर व्यस्त हुआ है इस तरह ?
हाय, अजाने इस सारे वन-खंड में
मैं ही केवल पड़ी रहूँगी तुच्छ हो !
नहीं, नहीं प्रिय, हो सकता है यह नहीं
रुकिए, रुकिए, यहाँ अल्प ही काल को।
कल होली है, कल तक रुकिए, मानिए
मेरा कहना, मैं खेलूँगी आपसे
होली, प्यारे मैं मानूँगी कुछ नहीं।
रंग डालकर, कर दूँगी मैं आपको
शराबोर, बस, एक रंग में। कुछ नहीं
सुनना चाहूँ विनय-प्रार्थना आपकी।
अगर दिया है अपना अवसर प्रेम का
तो अवसर भी यह थोड़ा-सा दीजिए।

राज०—दे सकता हूँ कहो प्रियतमे, मैं तुम्हें
जो कुछ देना संभव था, वह दे चुका।
देखूँगा, अब दे सकता हूँ क्या तुम्हें
मेरे उर में कौन वस्तु अवशेष है।
अभी चलो, यह देखो संध्या आ रही
अंधकार के निविड़ रूप को ले यहाँ।

(दोनों का प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—गृह-द्वार

समय—चाँदनी रात

(लौंगी अकेली खड़ी है)

लौंगी—मैं बैठी हूँ रंग घोलकर प्रात से
किंतु पता है उनका अब तक कुछ नहीं।
कहाँ सबेरा, कहाँ दोपहर, साँझ भी
बीत गई !—यदि आहट उनकी भी मुझे
मिल जाती, तो यही सोचती आ गए
मुझको करने सार्थक, सार्थक प्रेम को
करने आए। किंतु, हाय वे क्यों नहीं
कहकर आए—कौन कहे इस बात को।
रंग घुला है पड़ा, आज इस रंग से
मैं खेलूँ हा, होली किसके साथ में !

(मूर्छित होकर गिर पड़ती है)

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल्शेविज़्म का हौआ

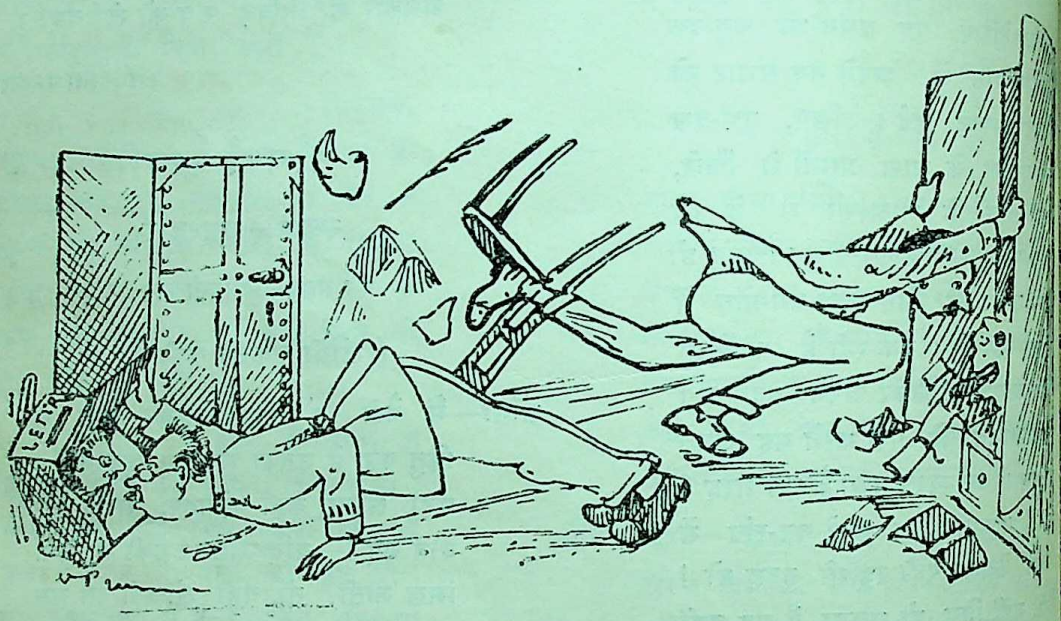

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटने की ओरियंटल लाइब्रेरी

पटने की ओरियंटल लाइब्रेरी सचमुच एक गौरव की चीज़ है। यद्यपि वह मुस्लिम-साहित्य का भांडार है और विशेषतः मुस्लिम-ऐश्वर्य के चित्रों का ही चित्राधार है, फिर भी वह सारे संसार के साहित्य-प्रेमियों के लिये आदरणीय लाइब्रेरी है। विद्या का वह विमल स्रोत और ज्ञान का वह शांतिदायी विश्रामागार सचमुच दो-दो डुबकियाँ लगाने और एक घड़ी ठहरकर जीवन को सफल कर लेने ही लायक़ है।

किंतु साधन के रहते हुए भी, हम साधारण प्राणियों के लिये, उनका यथोचित उपयोग करना कठिन है। यहाँ न तो अरबी और फ़ारसी की योग्यता है, न उनसे काम, और न उन्हें अपनाने की उत्कंठा ही! मगर, फिर भी, यह कौन कह सकता है कि अरबी-फ़ारसी का यह सर्वांग-सुंदर संग्रहालय ही उपेक्षणीय है। यही क्यों, उन साहित्यों पर श्रद्धा-भक्ति न रखते हुए भी मैं इस संग्रहालय का क़ायल हूँ। इसकी सहज सुंदर सजावट, बहुमूल्य पुस्तकें और नयनाभिराम चित्रों ने मुझे सैकड़ों बार अपनी ओर आकर्षित किया है।

उपर्युक्त पुस्तकालय जिस महापुरुष की अमर कीर्ति है, उनका नाम है ख़ुदाबख़्शख़ाँ। आपका जन्म एक बड़े ही कुलीन और कृतविद्य कुल में, बिहार-प्रदेश के छपरा-नामक नगर में, सन् १८४२ ई० की दूसरी अगस्त को हुआ था। आपके पितामह मरते समय ३०० प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकें छोड़ गए थे। आपके पूज्य पिता ने उन में १,२०० और जोड़कर हस्त-लिपियों की कुल संख्या १,५०० कर दी। इतना ही नहीं, आपमें जातीयता और साहित्य-प्रेम कूट-कूटकर भरा था। चारों ओर अँगरेज़ी आग लगी देखकर आपका हृदय क्षुब्ध हो रहा था। आपको भय हो रहा था, शायद यह अँगरेज़ी की आग पूर्वी साहित्यों को भस्मसात् कर डाले! अतएव आप इस आक्रमण के अवरोध की तैयारी में थे। किंतु काल को कुछ और ही सूझा। आप मरणासन्न हो गए। समय निकट देखकर आपने अपने पुत्र ख़ुदाबख़्श को बुला भेजा। पुत्र के आने पर आपने उन्हें अपनी संगृहीत हस्त-लिखित पुस्तकों में और जोड़-बटोरकर सबको एक पुस्तकालय का रूप देने की आज्ञा—अंतिम आज्ञा—दी। समझिए तो, ओरियंटल लाइब्रेरी का उसी दिन शिलान्यास हुआ।

ख़ुदाबख़्श का पठन-पाठन कलकत्ते में हो रहा था। किंतु पिता की अस्वस्थ्य के कारण आप कलकत्ते से बुला लिए गए। इसके बाद ही आपके पूज्य पिता स्वर्गवासी हो गए। बस, पिता की मृत्यु क्या हुई, आप पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। पढ़ना-लिखना छूट गया। अब पेट की सूझी। अतएव आपने पटने की मुंसिफ़ी में नायब-पद के लिये आवेदन-पत्र दिया। किंतु आपको निराश होना पड़ा। इसके कुछ दिन बाद आपको किसी-न-किसी तरह, पटने में डिस्ट्रिक्ट, जज के दफ़्तर में, पेशकार का पद मिल गया। किंतु यहाँ आपसे न पटी। आपने त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद आप पंद्रह महीने के लिये डिप्टी आफ़ स्कूल्स नियुक्त हुए। किंतु यहाँ भी आप न रहे। अब आपको वकालत की सूझी। सन् १८६८ ई० में आपने, पटने में, वकालत शुरू कर दी। वकालत ख़ूब चल निकली। बस, आपके उपयोगी जीवन का दुःखद प्रसंग यहीं समाप्त होता है, और सुखद तथा सारयुक्त जीवन का प्रारंभ। आप ख़ूब कमाने और हस्त-लिखित पुस्तकों तथा चित्रों के संग्रह में संलग्न हुए।

सन् १८७७ ई० के दिल्ली-दरबार में आपको 'सर्टीफ़िकेट ऑफ़ ऑनर' मिला। सन् १८८३ ई० में आप 'ख़ानबहादुर' बने। फिर सन् १८९४ में निज़ाम-हैदराबाद के यहाँ हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस का पद सुशोभित किया। सन् १८९८ ई० में आप हैदराबाद से लौट आए, और पटने में फिर वकालत शुरू कर दी। सन् १९०३ ई० में आप सी० आई० ई० हुए। आप कलकत्ता-युनिवर्सिटी के फ़ेलो भी थे। डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियों का जन्म होने पर पटने के पहले वाइस-चेयरमैन आप ही हुए थे। कहने का तात्पर्य यह कि आपका जीवन 'सफल' था। दरिद्रता और अविद्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गोद से निकलकर आप अपने-आप सम्मान, ऐश्वर्य और कीर्ति तथा विद्या के सुंदर सिंहासन पर विराजमान हुए। किंतु मृत्यु ने इन बातों का कब ख़याल किया है? तीसरी अगस्त, सन् १९०८ ई० के दिन, ६६ वर्ष की अवस्था में, ख़ानबहादुर ख़ुदाबख़्श सी० आई० ई० संस्थापक, पटना-ओरियंटल लाइब्रेरी, इस संसार में अपनी धवल कीर्ति छोड़कर स्वर्गवासी हो गए।

ख़ुदाबख़्शख़ाँ अब इस संसार में नहीं रहे, किंतु उनकी कीर्ति अमिट है। वह कभी मिटनेवाली नहीं। आपको वकालत से और फिर जजी से काफ़ी रुपए मिले। उत्साह उमड़ा ही पड़ता था। पिता की प्रतिज्ञा भूली ही न थी। फलतः देखते-देखते आपका उद्योग सफल हुआ, और आज उसका मीठा फल तैयार है।

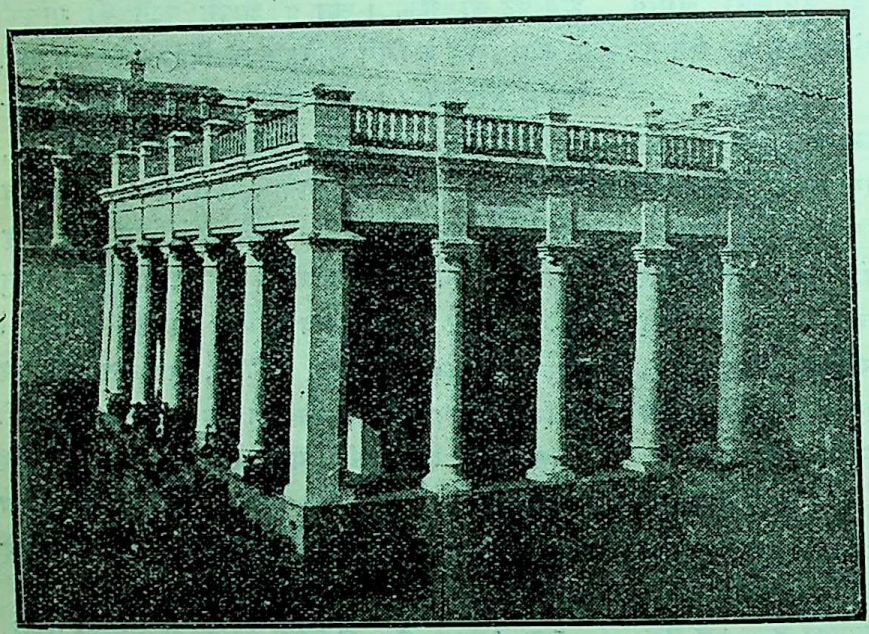

ओरियंटल लाइब्रेरी का भवन

ओरियंटल लाइब्रेरी की पूर्वी ढंग पर बनी हुई इमारत, आज पटने में मेडिकल कालेज-हास्पिटल के सन्निकट ही साभिमान खड़ी है। इस भवन के प्रायः तीन भाग ख़ुदाबख़्शख़ाँ ने निज के व्यय से बनवाए थे। इसके बाद सरकार ने उसमें एक वाचनालय बनवाकर उसे 'पूर्ण' कर दिया। भवन बनने में प्रायः एक लाख रुपए व्यय हुए हैं। फ़र्श संगमरमर का बना हुआ है, और दीवालें ख़ूबसूरती से रँगी गई हैं। किंतु नहीं—मैं भूलता हूँ। उन बहिरंग सजावटों से कई हजार गुना अधिक मूल्यवान्, सुंदर और सजीली, उन [illegible] आलमारियों में सजाकर रक्खी हुई चुपचाप पड़ी [illegible] और दीवालों पर टँगे—अब हँसे, तब हँसे—जैसे [illegible]

ख़ुदाबख़्शख़ाँ को पैतृक संपत्ति-स्वरूप जो लिपियाँ मिलीं, उनमें उन्होंने प्रायः ३,५०० [illegible] जोड़कर हस्त-लिपियों की संख्या कुल मिलाकर ५,००० कर दी। इन्हें प्राप्त करने के लिये भगीरथ [illegible] किए गए, और मानों कारूँ का ही ख़ज़ाना लुटाया [illegible] आपने मुहम्मद म.क़ी-नामक एक 'पुस्तकों के लि[illegible] को प्रायः १८ वर्षों तक ५०) वेतन तथा [illegible] पुरस्कार और राहख़र्च देकर रक्खा था। उसने [illegible] अरब, मिसर, फ़ारस तथा अन्यान्य देशों में घूम[illegible] पुस्तकें इकट्ठी कर दीं। इसके अतिरिक्त ख़ानबह[illegible] उस समय यह विज्ञापन [illegible] था कि जिसके पास [illegible] हस्त-लिखित पुस्तक हो, [illegible] उसे पुस्तक के उचित [illegible] साथ ही राहख़र्च भी [illegible] जायगा। इस तरह आ[illegible] पुस्तकों की वर्षा-सी हो[illegible] कुछ उदार सज्जनों ने पु[illegible] भी कीं। इसके अतिरि[illegible] इँगलैंड में एक पूरे पु[illegible] को नीलाम में ६०,००[illegible] ख़रीद लिया था। कु[illegible] लिपियाँ उन्हें हैदराबाद [illegible] आप जज होकर गए थे, [illegible] थीं। इनके अलावा आ[illegible] उन प्राचीन पुस्तकों की [illegible] किसी तरह प्राप्त हो गईं, जो स्पेन के [illegible] (Cordova)-विश्वविद्यालय में सुरक्षित [illegible] मूर-जाति के स्पेन से निकाल बाहर किए जाने [illegible] नष्ट होने से बच गई थीं। मोटे तौर पर [illegible] लाइब्रेरी की पुस्तकों के प्राप्त होने का यही इति[illegible]

आज इस पुस्तकालय में ५,००० हस्त-लि[illegible] छोड़कर प्रायः ४,००० अरबी और फ़ारसी की [illegible] पुस्तकें मौजूद हैं। इन पुस्तकों में योरप, [illegible] भारतवर्ष की छपी हुई पुस्तकें ही विशेषकर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भी प्रायः एक लाख रुपए लागत की २,५०० पुस्तकें मौजूद हैं। अँगरेज़ी-पुस्तकों में अधिकतर ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा पुरातत्त्व-प्रधान पुस्तकें ही हैं। इन पुस्तकों में भी खोज का काम करनेवालों को ही अधिक पुस्तकें मिलेंगी, और विशेषतः उन्हीं के लिये वे संगृहीत भी की गई हैं। इन ग्रंथों में ग्रिफ़िथ का 'अजंटा-केव' (Ajanta Cave), मेसी का 'साँची' (Maisy's Sanchi), कनिंघम का 'भरहूत' (Bharhut), फ़र्गुसन का 'धारवार' (Dharwar) और टायलर का 'मैसूर' (Mysore) प्रभृति विशेष उल्लेखनीय हैं। अरबी-फ़ारसी की हस्त-लिपियों में तो एक-से-एक बढ़कर पुस्तकें हैं। यदि उनकी सूची ही दी जाय, तो एक पूरी पुस्तक तैयार हो जाय। अस्तु, उनमें कुछ के नाम नीचे दिए जाते हैं—'यूसुफ़ व ज़ुलेखा', 'सफ़ीनत-उल-औलिया', अमीर ख़ुसरू का 'मसनवी', जहांगीर बादशाह का आत्मचरित (इसे जहाँगीर ने स्वयं लिखकर गोलकुंडा के बादशाह को भेंट किया था), हाफ़िज़ का 'दीवान', गुलबदन बेगम के संस्मरण, हिंदुस्थान का इतिहास (यह महाराज रणजीतसिंह के लिये लिखा गया था), मुल्ला ज़मो का आत्मचरित (लेखक के अपने हाथ की लिपिबद्ध की हुई इस पुस्तक के केवल दो भाग हैं। एक लेनिनग्रेड के राजकीय पुस्तकालय में और दूसरा यहाँ), 'दबिस्तान-ए-मसीह' (यह पुस्तक विलक्षण धर्मसहिष्णु बादशाह अकबर की आज्ञा से Jeronino Xavier-नामक पोर्चगीज़ द्वारा बाइबिल से अनुवाद की गई थी), अलबेरी की चीर-फाड़-विषयक हकीमी पुस्तक इत्यादि। इनके अतिरिक्त पद्य में भी एक-से-एक रत्न भरे हैं। इनकी संख्या प्रायः ५०० है। इनमें बहुत-सी पुस्तकें सचित्र तथा स्वर्णांकित हैं। स्वर्णांकित तथा सचित्र पुस्तकों में 'तवारीख़-ए-ख़ानदान-ए-तीमूर' (इसमें ३३ स्वर्णांकित पृष्ठ हैं)। 'पादशाहनामा' (यह शाहजहाँ के राजत्व-काल का इतिहास है। इसका अंतिम चित्र 'शाहजहाँ की परलोक-यात्रा'-शीर्षक है *), फ़ैज़ी का 'शाहंशाहनामा' (यह पुस्तक सोलहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, क़ुस्तुनतुनियाँ में, लिखी गई थी, और वहीं के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित थी; किंतु किसी भाँति शाहजहाँ के राजत्व-काल में यह भारतवर्ष पहुँची। इस पुस्तक में और-और लोगों के साथ राजकुमारी जहाँनारा की भी एक मुहर लगी है। समस्त संसार में इस पुस्तक की यही एक प्रति है। अतएव पुस्तकालय की यह एक बेजोड़ निधि है। इसके चित्र भी न तो भारतीय और न फ़ारसी ही शैली पर बने हैं) और फ़िरदौसी का 'शाहनामा' (इसकी दो स्वर्णांकित प्रतियाँ यहाँ मौजूद हैं) आदि हैं। इनके अलावा इस पुस्तकालय में विष्णुपुराण तथा रामायण की अनुवादित प्रतियाँ भी सुरक्षित हैं।

पटना-ओरियंटल लाइब्रेरी में हस्त-लिखित चारु चित्रों का भी बड़ा ही सुंदर संग्रह है। यहाँ भारत, चीन, फ़ारस, मध्य-एशिया, मिसर, टर्की (योरप), स्पेन आदि के कुशल कारीगरों के कमनीय चित्रों के क़ाबिले-दीद नमूने मौजूद हैं। चित्र एक-से-एक बढ़कर हैं—देखने ही लायक़ हैं। इनमें रणजीतसिंह के संग्रह के चित्र, मुग़ल-राजकीय चित्रशालाओं के चित्र तथा लखनऊ, दिल्ली, आगरा एवं हैदराबाद प्रभृति स्थानों के नवाबों और रईसों से प्राप्त अथवा क्रीत चित्र भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त कुछ चित्र अँगरेज़ कर्मचारियों द्वारा भेंट-स्वरूप दिए हुए हैं। इन चित्रों को देखकर देखनेवाले दंग रह जाते हैं। प्रसिद्ध ललित-कला-विशारद मि० हैवेल (Havel) तक ने इनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। और अधिक क्या, जितने देशों और समय-समय के चित्रों का यहाँ संग्रह है, उनके विभिन्न प्रकार के काग़ज़ों पर ही एक अच्छी-सी मोटी-ताज़ी पुस्तक, उनके विवरण तथा विवेचना पर, लिखी जा सकती है। अस्तु। इन चित्रों में मुझे तो बाबू कुँअरसिंह का शिकारी चित्र, आरा-हाउस का चित्र तथा मुग़ल-साम्राज्ञियों के ही चित्र न-जाने क्यों बहुत पसंद आए। बाबू कुँअरसिंह का शिकारी चित्र प्राचीन होने पर भी बहुत सुंदर, मनोमोहक तथा ऐतिहासिक होने के कारण अपना एक निराला ही स्थान

* माधुरी का गत पूर्ण मरुगा २६ में यह चित्र प्रकाशित हो चुका है; मगर वह है पटने के मि० पा० मी० मानुक के चित्र-संग्रह से प्राप्त। किंतु जो चित्र माधुरी में छपा था, और जिसकी मूल प्रति मानुक साहब के पास है, वह स्वयं ओरियंटल लाइब्रेरी की मूल प्रति की प्रतिलिपि मालूम पड़ती है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखता है। आरा-हाउस का चित्र, हताहतों से भरे मैदान एवं चील-कौओं के शव-केलि का अच्छा दिग्दर्शन कराता है। मुग़ल-साम्राज्ञियों के चित्र तो बरबस ही हृदय को हरे लेते हैं। साम्राज्ञियों की स्वर्गीय रूप-छवि, नयनाभिराम वेश-भूषा, और सर्वांगीण रूप-सौष्ठव, देखने, सराहने और 'वाह-वाह' करने लायक़ हैं। सचमुच इन चित्रों को देखते ही उन सुंदरियों के सौंदर्य पर 'बेशक' और चतुर चितेरे के सफल प्रयत्न पर 'वाह!' ये शब्द

कुँअरसिंह का प्रसिद्ध शिकारी चित्र

आप-ही-आप मुँह से निकल पड़ते हैं। इन चित्रों के अलावा दूसरे-दूसरे चित्र भी बहुत ही सुंदर हैं। किंतु यदि उन सबका वर्णन किया जाय, तो एक पुस्तक ही तैयार हो जाय। अतएव इस छोटे-से 'परिचय' में उनके लिये स्थान नहीं *।

ख़ुदाबख़्शख़ाँ ने उपर्युक्त पुस्तकालय को भवन और बाग़ के साथ ही, सन् १८९१ ई० में, एक ट्रस्टडीड करके ट्रस्टियों के सिपुर्द कर दिया। उस डीड की एक शर्त यह है कि कुछ ख़ास कारणों को छोड़कर पुस्तकालय की कोई भी पुस्तक कहीं बाहर नहीं ले जाई जायगी। एक बार ब्रिटिश-म्युज़ियम के अधिकारियों ने समस्त ओरियंटल [illegible] को ख़रीद लेने के अभिप्राय से एक बड़ी [illegible] प्रलोभन दिखाया; किंतु ख़ुदाबख़्शख़ाँ ने साफ़ [illegible] कर दी। इसी तरह इस पुस्तकालय के साथ [illegible] नाम जुड़वाने की भी लोगों ने बड़ी कोशिशें कीं; [illegible] आपने अस्वीकार कर दिया। आपके निःस्वार्थ-[illegible] यह दूसरा प्रमाण है। किंतु इससे क्या? आपकी [illegible] कभी कवलित होनेवाली नहीं। आज इस [illegible] पुस्तकालय के बग़ल में ही [illegible] क़ब्र—अत्यंत सीधी-सादी [illegible] की बनी क़ब्र—पुस्तकाल[illegible] प्रत्येक दर्शक के हृदय में [illegible] प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न [illegible] है। आज संसार के बड़-बड़े [illegible] और विद्वन्मंडलियों में आपक[illegible] श्रद्धा और भक्ति के साथ [illegible] है, और इस पुस्तकालय [illegible] इसका नाम ओरियंटल [illegible] होने पर भी—शायद श्र[illegible] के कारण ही उत्साहित [illegible] लोग ख़ुदाबख़्शख़ाँ-लाइ[illegible] देते हैं। यह है आपकी [illegible] और लोक-सेवा का पुरस्कार।

यह पुस्तकालय जितना ही प्रसिद्ध, सुंदर और [illegible] है, उतना ही मूल्यवान् भी है। आज इसकी सं[illegible] मिलाकर प्रायः ९ लाख रुपए की है। इस पुस्त[illegible] पर संसार के बड़-बड़े विद्वान् मुग्ध हैं। सम्राट् [illegible] जार्ज, वर्तमान प्रिंस आफ़ वेल्स तथा लार्ड [illegible] इसके दर्शन करना अपना कर्तव्य समझा था।

किंतु हमें तो इस पराई वस्तु पर श्रद्धा [illegible] भी, उस पर गौरव करते हुए भी, उससे न-[illegible] ईर्षा होती है। साथ ही अपनी दुरवस्था पर [illegible] आता है। हमारे यहाँ लाखों लखपती हैं, हज़ा[illegible] के हिमायती हैं, और सैकड़ों संग्रह तथा सा[illegible] में संलग्न हैं। किंतु क्या हमें भी कुछ वैसी ही [illegible] को चकित करनेवाली, दर्शकों पर जादू डालनेवा[illegible] विद्वानों के लिये आदर और श्रद्धा की चीज़ [illegible]

श्रीगिरींद्रनारा[illegible]

* माधुरी का गत पूर्ण संख्या २४ में प्रकाशित कबीरदास के रंगीन चित्र से प्रायः बिलकुल ही मिलता-जुलता हुआ कबीरदासजी का एक चित्र यहाँ भी संगृहीत है। तो क्या वह चित्र इसकी प्रतिलिपि था? यदि हाँ, तो विज्ञ चित्रकार का इसका उल्लेख न करना विचारणीय बात है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्ध्वनि

(१७)

यह तो उन्हीं के बस की है एक छोटी बात,
तो फिर किसी का भला क्यों मैं उपकार लूँ;
सदन हमारे वे पधारें, अपना ही जान,
मैं भी दृग-अंचल से चरण पखार लूँ।
बोई बेलि प्रेम की उन्होंने, उनकी ही माल,
क्यों न तब कंठ इसे, उनके ही डार लूँ;
प्यार से निहारें वे हमारी ओर एक बार,
मैं भी उन्हें 'प्राणनाथ' कहके पुकार लूँ।

(१८)

थोड़ी देर और वे न आवें अभी, संभव है,
देखूँ तो, ज़रा मैं निज सुकृत सिंहार लूँ;
दुखने लगी हैं, दुखियारी, दुःख-दाव-भरी
इनको उघार भला कुछ तो सँभार लूँ।
थकन मिटाने को, न क्यों मैं उर-आसन पै,
भावना की मंजु कंज-कलियाँ सँवार लूँ;
विरह-उसास-भरी उष्ण है कुटीर मेरी,
शीतल करूँगा इसे, चंदन उतार लूँ।

(१९)

मोह न मुझे है, मुक्ति-भुक्ति की भी चाह नहीं,
कामना नहीं है ऋद्धि-सिद्धि ही अपार लूँ;
मोह नहीं बजती रहे सदा ही जय भेरी,
जीतूँ सुरराज, इंद्र-पद का ही भार लूँ।
मोह अपनों का न तो दूसरों का ध्यान रहा,
इच्छा भी न अपनी ही बिगड़ी सुधार लूँ;
मोह इतना ही मुझे, लगी हुई यही आस,
एक बार नैन-भर, उनको निहार लूँ।

(२०)

कुछ भी न सार, यहाँ झूठे व्यवहार सभी,
तो भी मैं असार इसे क्योंकर विचार लूँ;
हैं यदि निठुर तो भी पाया मैंने जन्मसार,
वह निठुराई ही न क्यों मैं उर धार लूँ।
रूठे मुझसे हैं वे, न रूठ गए भाग्य मेरे,
तब क्यों न आग और जी-भर उभार लूँ;
है यदि लगाई, तो चले गए क्यों, देख जायँ,
जलते हैं प्राण, आवें, आरती उतार लूँ।

रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-तीर्थ-स्थानों पर एक ऐतिहासिक दृष्टि

२. राजगृह

राजगृह भारतवर्ष के प्राचीनतम नगरों में से है। इसका इतिहास बहुत ही प्राचीन है, और वह दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) पूर्व-ऐतिहासिक काल, और (२) ऐतिहासिक काल। पूर्व-ऐतिहासिक काल में इसका नाम गिरिव्रज था। इसका दूसरा नाम राजगृह बौद्ध-समय में प्रख्यात हुआ। रामायण में ये दोनों नाम मिलते हैं, किंतु यह स्पष्ट नहीं होता कि यह मगध की राजधानी थी। रामायण का गिरिव्रज भरत के नाना अश्वपति की राजधानी थी। ये दोनों नाम एक ही स्थान के सूचनार्थ प्रयोग किए गए हैं, किंतु यह स्पष्ट है कि रामायण का गिरिव्रज मगध के गिरिव्रज से भिन्न था; क्योंकि रामायण का गिरिव्रज विपासा-नदी-पार पंजाब में था। राजगृह कैकय-देश की राजधानी थी, यह निम्न-लिखित श्लोक से विदित है—

उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परन्तपौ ;
पुरे **राजगृहे** रम्ये मातामहनिवेशने ।
(रामा० २, ६७, ७)

चूँकि केकय-राज्य पंजाब में विपासा-नदी-पार स्थित था, इस कारण यह दूसरा ही राजगृह है।

महाभारत में गिरिव्रज का नाम बहुधा आता है। उस समय यह नगरी मगधदेश की राजधानी थी। यहाँ का राजा जरासंध बड़ा ही समृद्धशाली हुआ। उसने बहुत-से राजाओं को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अपनी शक्ति के ही अभिमान से उसने युधिष्ठिर के यज्ञ में श्रीकृष्ण को सर्व-प्रथम अर्घ्य दिए जाने में आपत्ति की थी, और अपने को ही सर्वोत्तम समझा था। महाभारत में जरासंध भी लड़ा था। जरासंध और भीम का द्वंद्व-युद्ध तो बहुत प्रसिद्ध घटना है।

महाभारत में जरासंध की राजधानी का वर्णन इस प्रकार है—"मगध-नरेश का नगर धन-धान्य से संपन्न है। सुंदर वृक्ष चारों ओर से नगर की शोभा बढ़ाते हैं। जल और पशु भी पर्याप्त हैं। बहुत से प्रासाद हैं। नगर हर प्रकार से सुरक्षित है। पाँच पहाड़ियाँ—वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक—इस नगर की रक्षा करती हैं। नगर चारों आश्रमों के पुरुषों से है..... ।" जरासंध का नाम अब तक इस स्थ जनश्रुति में विद्यमान है, और उसके गढ़ के शेष अब भी सन्निकट की पहाड़ियों में स्पष्ट हैं।

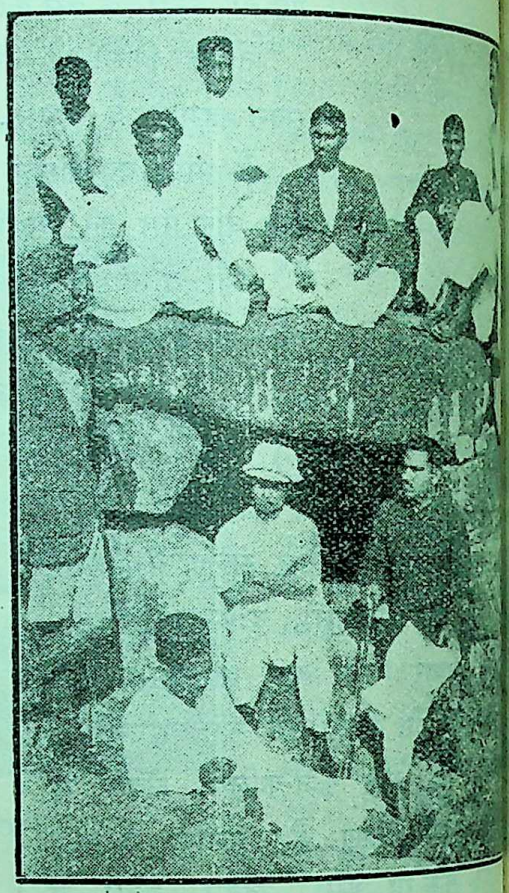

जरासंध की बैठक

राजगृह के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ राजा सार के राज्य-काल (लगभग ५८२ ई० पूर्व से ई० पूर्व तक) से होता है। राजा बिंबसार ने राजगृह, प्राचीन गढ़ के समीप ही, पहाड़ियों के बसाया। फाहियान के वर्णनानुसार इस नगर को राजा अजातशत्रु ने बनवाया था; किंतु हुए ने इसके निर्माण के विषय में एक कथा लि जिससे सिद्ध होता है कि यह नगर राजा बिंबसार बनवाया था। कथा इस प्रकार है—"राजा की राजधानी कुशाग्रपुर में बहुधा आग लगा करती अग्नि के प्रकोप से बचने के लिये राजा ने यह नियम कि जिसके घर से आग लगेगी, वह नगर से निर्वासित दिया जायगा। संयोग से स्वयं राजा के ही घर में आग लगी। अस्तु, राज्य-भार अपने लड़के को सौंपकर, वह नगर छोड़कर, बाहर रहने लगे। सब जानकर वैशाली-देश के राजा ने इस नगर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। नगरवासियों को जब अपनी रक्षा का कोई उपाय सुगम न जान पड़ा, तो कुशाग्रपुर को छोड़कर, जहाँ राजा बिंबसार वास करते थे, वहाँ आ बसे; क्योंकि इस स्थान में राजा पहले से ही निवास करते थे। इस कारण इस स्थान का नाम 'राजगृह' रक्खा गया।" दोनों चीनी यात्रियों के वर्णनों में मतभेद है। बौद्ध-धर्म-संबंधी ग्रंथों से जो कुछ पता चलता है, उससे स्पष्ट है कि यह नगर बहुत ही प्राचीन है। अजातशत्रु ने केवल इसे सुदृढ़ किया, और नगर बुद्ध-भगवान् के बहुत पहले से था।

जैन तथा बौद्ध-धर्म के युग में इस स्थान ने बहुत ही उन्नति की, और ख्याति प्राप्त की। महावीरजी ने अपना बहुत-सा समय इसी स्थान के समीप व्यतीत किया। कहा जाता है कि यहीं पर उन्होंने बिंबसार को जैन-धर्म की दीक्षा दी थी। महावीरजी के एकादश गणधरों ने यहीं पर शरीर-त्याग किया था। इसी कारण यह जैनियों का तीर्थ-स्थान है।

भगवान् बुद्ध राजा बिंबसार और अजातशत्रु के समकालीन थे। बुद्ध ने राजगृह में बहुत दिनों तक निवास किया, और लोगों को उपदेश किया। इसी स्थान पर उन्होंने राज्य-सुख छोड़कर प्रथम बार भिक्षा-याचना की थी। नगरवासियों ने गौतम की अवस्था और रूप पर मुग्ध होकर उनकी चर्चा राजा बिंबसार से की। उन्होंने गौतम को भिक्षा के लिये अपने महल में बुलाया। उनका रूप और अवस्था देखकर महाराज बिंबसार को दया आई। वह रात के समय गौतम के स्थान पर गए, और प्रार्थना की कि आप इस अल्पावस्था में संन्यास ग्रहण करने और कष्ट उठाने के अयोग्य हैं, कृपया आप मेरे इस राज्य का भोग कीजिए। गौतम अपने निश्चय से कब हटनेवाले थे। उन्होंने राजा को इस उदारता के लिये धन्यवाद दिया, और उत्तर दिया—"महाराज, मुझे ऐश्वर्य-भोग की आवश्यकता नहीं। यह कामना विष-तुल्य है। इससे कभी तृप्ति नहीं हो सकती—

अहमपि विपुलान् विजह्यकामान्
तथापि च स्त्रिमहसान्दशनीयान्;
अनभिरतुभवेषु निर्गतोहं
परमाशवां वरबोधिप्राप्तुकामः।

अर्थात् मैं स्वयं विपुल ऐश्वर्य, रूपवती, दर्शनीय स्त्रियों और अन्यान्य आमोद-प्रमोद की सामग्रियों का स्वामी था; किंतु मैं सबको त्याग परम मंगलमय निर्वाणपद प्राप्ति के लिये निकला हूँ।" गौतम के इतने उच्च विचार सुनकर राजा लज्जित हो गए। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह महाराज शुद्धोदन के पुत्र हैं, तो उनसे क्षमा-प्रार्थना की, और अनुरोध किया कि "बुद्धत्व प्राप्त हो जाने पर अवश्य मेरे नगर में पधारिएगा, और मुझे उपदेश दे कृतार्थ कीजिएगा।" ऐसा कह, गौतम की वंदना कर बिंबसार अपने महल को लौट गए। गौतम भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये गया की ओर चले गए। कठिन तपस्या के पश्चात् गौतम को गयाजी में बोधत्व-पद प्राप्त हुआ। तभी से इन्होंने उपदेश देना प्रारंभ किया। सर्व-प्रथम उपदेश सारनाथ में दिया। उपदेश देते हुए यह फिर राजगृह पहुँचे, और वहाँ बहुत दिनों तक वास किया, तथा लोगों को उपदेश दिया। यहीं पर बुद्धजी ने **पब्बजासुत्र** के उपदेश दिए। जब गृद्धकूट-पर्वत पर वास करते थे, तो उन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए माघ के **माघसुत्त** के उपदेश दिए। वेणुवन में निवास करते हुए परिव्राजक सभिय को **सभियसुत्त** के उपदेश दिए। **महापरिनिब्बानसुत्त** का भी उपदेश यहीं की गृद्धकूट पहाड़ी पर हुआ था। बुद्ध ने स्वयं अपने प्रिय अनुयायी आनंद से कहा था—".....एकं इदाहं आनन्द-समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते। तत्रापि खो ताहं आनन्द आमन्तेसिं, रमणीयं आनन्दराजगहं, रमणीयं गिज्झकूटो पब्बतो.....।" अर्थात् "हे आनंद,-एक समय मैं राजगृह में गृद्धकूट-पर्वत पर विहार करता था। मैंने वहाँ तुमसे कहा था—हे आनंद, राजगृह कितना रमणीय है, और कितना रमणीय गृद्धकूट-पर्वत है.....।" इसी प्रकार उन्होंने अनेकों बार राजगृह की प्रशंसा अपने शिष्य आनंद से की थी। राजगृह का प्रत्येक स्थान स्वयं भगवान् बुद्धजी के चरणों से पवित्र किया गया है। यहाँ पर उनके उपदेश का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, और अनेक पुरुषों ने संन्यास ग्रहण किया। इस कारण स्त्रियाँ बड़ी भयभीत हुईं। जब बुद्ध ग्राम में भिक्षा के लिये जाते, तो स्त्रियाँ डर कर आपस में कहती थीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अगतो खो महामयणो मगधानं गिरिब्बजं ;
लब्बे संचये नंत्वा न कंसुदानिं नयिस्ति ।

अर्थात् "मागधों के गिरिव्रज में महाश्रमण आए हैं। सब लोगों को धीरे-धीरे उन्होंने संन्यास दिया, और अपने साथ ले गए। आज वह पुनः आए हैं। देखें, अब किसे लिए जाते हैं।"

बुद्ध भगवान् के निर्वाण (५४४ या ५४३ ईस्वी-पूर्व) के पश्चात्, राजा अजातशत्रु के समय में, बौद्ध-संप्रदाय की पहली सभा बुद्धजी के सिद्धांतों को एकत्र करने के लिये राजगृह में सप्तपर्णी (सत्तपन्नी)-गुहा में, महा-

सप्तपर्णी-गुहा
(प्रथम महासंगति का स्थान)

श्रमण कस्सप (कश्यप) के सभापतित्व में, हुई थी। कुछ समय पहले सप्तपर्णी-गुहा के विषय में बड़ा वादा-विवाद हो रहा था, और निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता था कि सप्तपर्णी-गुहा कौन-सी है। जनरल कनिंघम स्वर्णभांडार-गुहा को ही सप्तपर्णी-गुहा समझते थे। सर आरल स्टीन (Sir Aurel Stein) ने, १८९९ में, इसीके पास वैभार-गिरि पर जैनमंदिर आदि

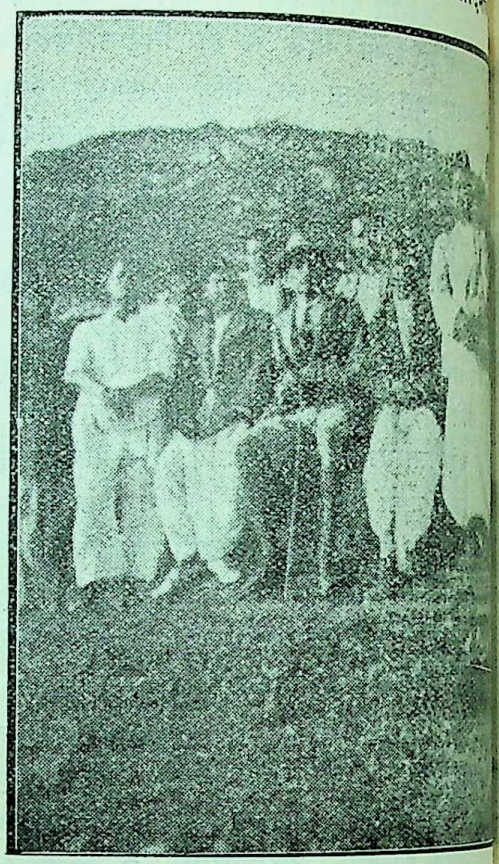

वैभार-गिरि का दृश्य

से लगभग १०० फ़ीट नीचे एक दूसरी गुहा को सप्तपर्णी बतलाया। स्टीन साहब ने जो प्रमाण सप्तपर्णी के सिद्ध करने के लिये दिए हैं, वे अकाट्य हैं और अब निश्चयपूर्वक यही कहा जा सकता है कि इन्हीं की बतलाई हुई गुहा सप्तपर्णी-गुहा है। इस भेद का और सप्तपर्णी-गुहा का ठीक-ठीक पता न लगने का कारण यह था कि यहाँ पर अनेकों गुफाएँ हैं, अब सिंह-व्याघ्र के रहने के स्थान हैं। एक गुफा में हम लोग घुसे, तो भीतर सिंह के गर्जन का शब्द सुनाई दिया। हम लोग डरकर बाहर भाग निकले क्योंकि साथ में कोई शस्त्र नहीं था। गुफाओं के आकार भाँति अवलोकन से विदित होता है कि अवश्य किसी समय इनमें तपस्या के लिये मनुष्य रहा करते थे।

अजातशत्रु के पौत्र तथा राजा दर्शक के पुत्र उदयन ने राजगृह छोड़कर पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाई। तभी से राजगृह की अवनति तथा पाटलिपुत्र की उन्नति दिनोंदिन होती गई। तो भी तीर्थ-स्थान हो जाने के कारण राजगृह का माहात्म्य ज्यों-का-त्यों बना रहा। सम्राट् अशोक के पुत्र महेंद्र ने राजगृह में गृद्धकूट-पर्वत पर ही तपश्चर्या की। ऐसा अनुमान है कि अशोक की मृत्यु भी (२३७ या २३६ ईस्वी-पूर्व) यहीं की किसी पहाड़ी पर हुई थी। खारवेल (लगभग १७१ वर्ष ईस्वी-पूर्व) के हथिगुंफा शिला-लेख में एक 'राजगहनप' (राजगृह-नृप) का प्रसंग आया है। परंतु इसका ठीक-ठीक पता लगाना कि यह राजगृह-नृप कौन हैं, बहुत कठिन है। हाँ, यह निश्चय है कि इस राजा की राजधानी राजगृह में थी, और वह खारवेल के समकालीन थे (Jurnal of the Bihar and Orissa Research Society —Vol. III, Part IV, p. 456)। पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान ने इस स्थान की यात्रा की थी। उसके वर्णनानुसार उस समय पुराना राजगृह जन-शून्य था, किंतु नए राजगृह में कई एक विहार थे, और अजातशत्रु का बनवाया हुआ स्तूप तब तक वर्तमान था। सन् ६३७ ईस्वी में युवनच्वांग ने इस स्थान की यात्रा की, तो उस समय नगर की बाहरी दीवालें तो नष्ट हो गई थीं, किंतु भीतरी शेष थीं। नगर के सब निवासी ब्राह्मण थे। बौद्ध लोगों का यह तीर्थ-स्थान था। उस समय राजगृह की ख्याति भारत के बाहर भी थी; क्योंकि बलख़ (Fo-ho)-देश में एक नगर 'छोटा राजगृह' के नाम से था, जहाँ पर लगभग १०० विहार और ३,००० हीनयान-सिद्धांत के अनुयायी बौद्ध थे।

आजकल राजगृह में तीर्थ-यात्री प्रचुर संख्या में आते हैं, जिनमें अधिकतर जैनी हैं; क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है, महावीरजी ने भी अपना बहुत-सा समय राजगृह के आसपास ही व्यतीत किया था। जैनियों के मंदिर भी पाँचों पहाड़ियों पर बने हुए हैं। केवल वैभार-गिरि पर पाँच जैन-मंदिर हैं। हिंदुओं का भी यह तीर्थ-स्थान है; क्योंकि यहाँ पर कई एक गरम पानी के कुंड हैं, जिनको हिंदू लोग ईश्वर के विभव का प्रकाशक समझ कर पूजते हैं। यह गरम जल के कुंड सरस्वती-नदी के दोनों तटों पर स्थित हैं, जिनमें से सात वैभार-गिरि के किनारे और छः विपुल-गिरि के किनारे पर हैं। वैभार-गिरि वाले कुंडों के नाम हैं—गंगाकुंड, यमुनाकुंड, अनंत ऋषिकुंड, सप्तर्षिकुंड, व्यासकुंड, मार्कंडेयकुंड और ब्रह्माकुंड। इन कुंडों के चारों ओर हिंदुओं के मंदिर बने हुए हैं। विपुल-गिरि के कुंडों के नाम हैं—सीता-कुंड, सूर्यकुंड, गणेशकुंड, चंद्रमाकुंड, रामकुंड और शृंगीऋषिकुंड। शृंगीऋषिकुंड पर मुसलमानों ने अपना अधिकार जमा लिया है, जिसको वे अब मख़दूमकुंड कहते हैं। इन कुंडों पर हर तीसरे साल मेला लगता है, जिसमें सहस्रों की संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। इन कुंडों का जल पीना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत लाभदायक है। कुंडों में स्नान करने से भी बहुत-से रोग नष्ट होते हैं। बहुधा लोग जल-वायु परिवर्तन के लिये इस स्थान में आया करते हैं। यदि इस स्थान में एक अच्छा सैनी-टोरियम (Sanitorium) बनाया जाय, तो जनता का बहुत उपकार हो सकता है। यात्रियों के ठहरने के लिये यहाँ

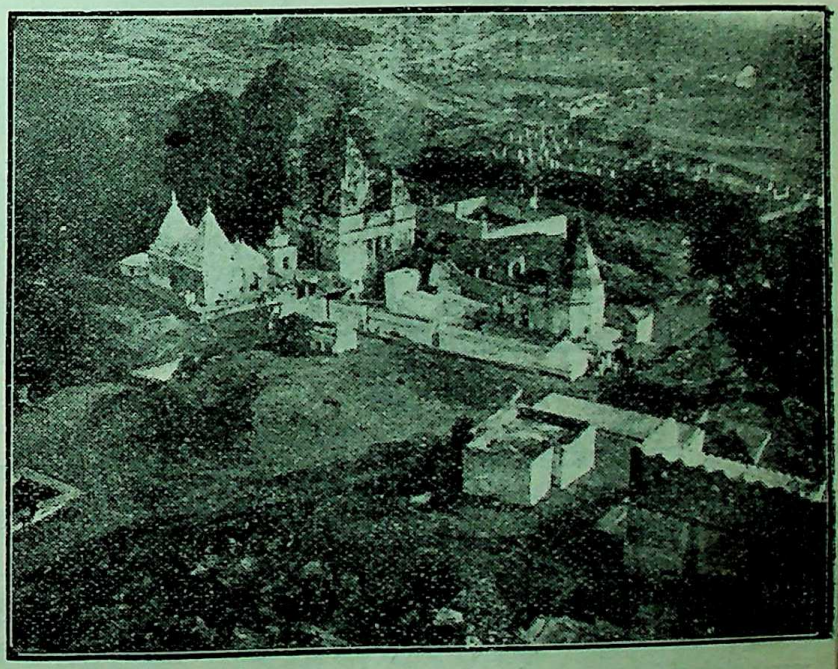

वैभार-गिरि से राजगृह के कुंडों का दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

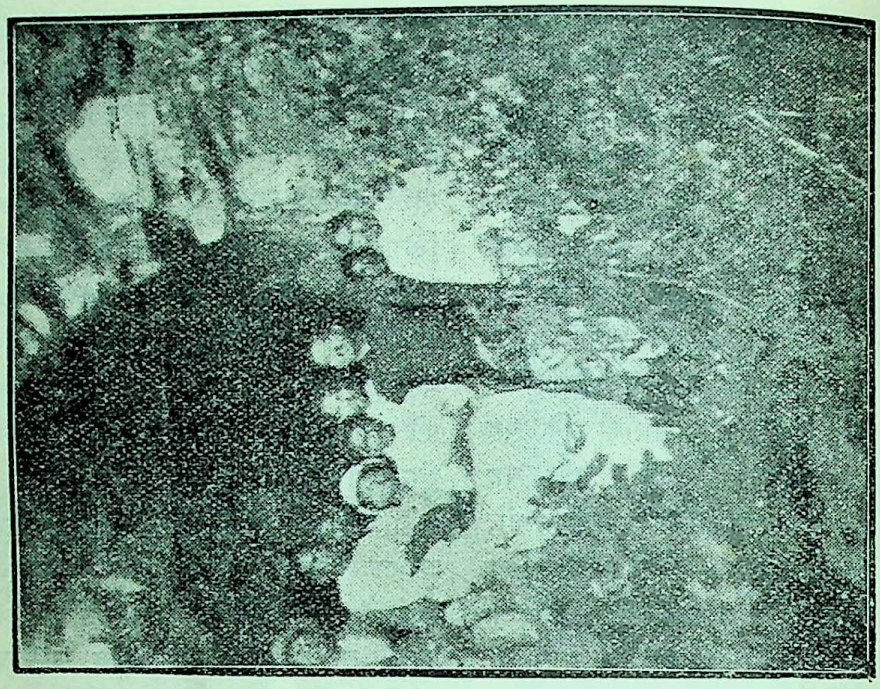

वैभार-गिरि पर एक गुहा

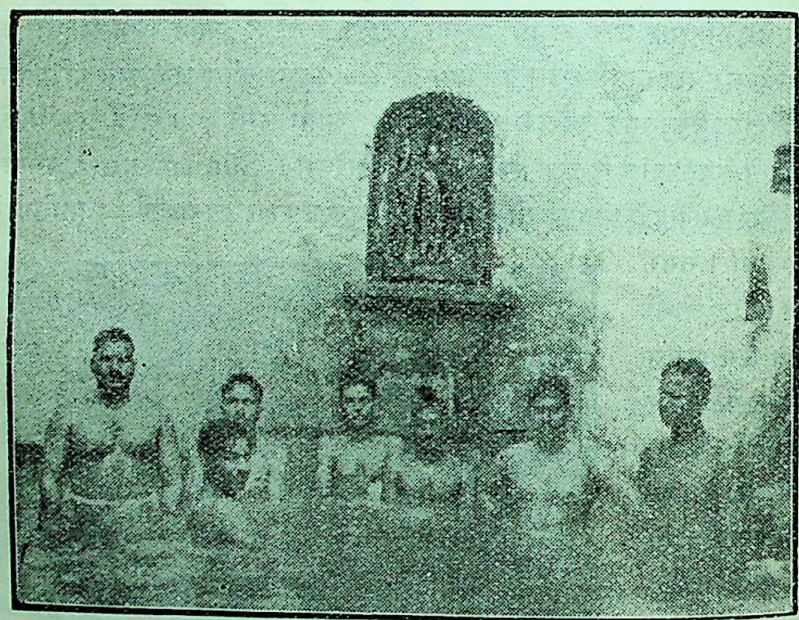

कुंड में स्नान

जैनियों को कई धर्मशालाएँ भी हैं। बौद्धों का भी एक छोटा-सा विहार है, और एक डाकबँगला भी बना हुआ है।

राजगृह में खुदाई (Excavations) पूर्णरूप से नहीं हुई। सन् १९०६ से १९०९ तक जो खुदाई हुई, उसमे कोई संतोषजनक अन्वेषण का कार्य नहीं हुआ; केवल सूक्ष्मरूप से परीक्षा हुई। भारतवर्ष के प्राचीनतम स्थल के रहस्य अब भी गुप्त पड़े हैं। इस कारण स्थान की गवेषणा-पूर्ण खुदाई की आवश्यकता है। तत्त्व-वेत्ताओं का ध्यान इस ओर अवश्य आकृष्ट हुआ परंतु धनाभाव के कारण वे भी कुछ नहीं कर रहे आशा है, सरकार का खोज-विभाग फिर से इस की खुदाई कराने का प्रबंध करेगा।

लक्ष्मीनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अछत्र अभिषेक

१

प्रकृति वितान तानै सुकृति विधान ठानै,
वरुन-सुरेस अर्घ्य दैन उपराजैं री;
रिद्धि-सिद्धि चौंर ढारैं नौरस कलस धारैं,
सुजस-पताका लैकै गनपति भाजैं री।
'सुकवि नरेश' कौ अछत्र अभिषेक आज,
सौरभ समोय वायु विदिसान माँजैं री;
वीणापाणि रोचना लगावति विहँसि भाल,
कमला निछावरि ह्वै वसुधा नेवाजैं री।

२

नियति निहारै यति प्रगति सँवारै गति,
आखर अमोघ दौरि छिति-छोर छाजैं री;
भावना ललामैं धन्य मानिकै सलामैं करैं,
देवन की अंगना सुमांगलीक साज री।
कुमति कगार काटि धँसति धरा मैं धाय,
'सुकवि नरेश' के निसान जब बाजैं री;
मूकौ दै अवाजैं दिगदंतिन गराज लाजैं,
ज्वाला-जय-घोष लूमि लेखनी बिराजैं री।

मातादीन शुक्ल

देवीदास

(१)

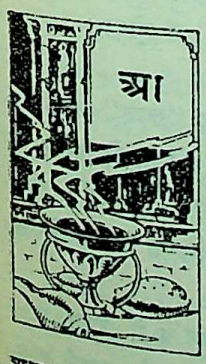

आज, जब वह मर गया है, उसकी कथा हृदय को कचोट रही है। किंतु जब वह जीवित था, मैं उसे कितना चिढ़ाता, तंग करता और मज़ा लूटता था। वह, मेरे शब्दों में, पेटू था। कोई भी अच्छी-सी खाने की वस्तु दिखा कर मैं उसे घंटों परेशान करता। आदत पड़ जाने के कारण उसे भी इसमें मज़ा मिलता। मैं जब-जब उसे दिक़ करता, पहले तो वह हँसता, फिर मिन्नतें करता, फिर एक लंबी साँस लेकर अपने पूर्व-जीवन का स्मरण करता और अंत में गालियाँ बकने लगता। मैं उसके हँसने पर गंभीरता प्रदर्शित करता, मिन्नतें करने पर हँस-हँसकर तंग करता, पूर्व-स्मृति पर चिढ़ाता और गालियाँ बकने पर ठठाकर हँसते हुए वह वस्तु, जिसके लिये यह सब होता, प्रदान कर देता। उसके जीवन-काल में उसके मधु-ऋतु के स्वर्णयुग की स्मृति मेरे मनोविनोद की सामग्री थी। उससे कुछ क्षणों के लिये मुझे ठठाकर हँसने का अवसर मिलता था। उस समय उस स्मृति के पट में छिपी करुणा की क्षीणतर छाया भी मुझे दृष्टिगोचर न होती। अपने निर्दय मनोविनोद के सम्मुख मैं एक ऐसे हृदय का हाहाकार, जो जीवन के समस्त सुख लूटकर भी आज टुकड़े-टुकड़े को तरसता हो, न सुन पाता। परंतु आज, जब वह नहीं है, उसकी उसी पूर्व-स्मृति से करुणा की अबाध निर्झरिणी प्रवाहित हो रही है। उसमें पड़कर मेरा मनोविनोद न-मालूम किधर बह गया है। मुझे अपने क्रूर हास्य पर पछतावा हो रहा है—ग्लानि हो रही है, और उस निर्झरिणी की एक-एक तरंग—एक-एक भँवर—मेरे हृदय को करोच देती है।

(२)

वह पागल था—हाँ, लोग उसे पागल ही कहते थे। मेरी ज़ात का होने से वह प्रतिदिन मेरे यहाँ आता था। मेरे ही यहाँ क्यों, वह ज़ात के कई अच्छे-अच्छे घरों में जाता था। अपने जीवन में, अच्छे दिनों में, वह खाने-पीने का बड़ा शौक़ीन था। वह शौक़ीनी, वह अपना सर्वस्व स्वाहा हो जाने पर भी नहीं छोड़ सका। पागल हो जाने पर भी उसे खाने-पीने का बड़ा ही चाव था। प्रतिदिन प्रातः भोजन के समय वह आता, और उस दिन जो वस्तु सबसे बढ़िया बनी होती, वही खाने को माँगता। मा पहले तो उसे दुरदुरातीं, झिड़कतीं और दो-चार खरी-खोटी सुनातीं; पर जब वह मिन्नतें करने लगता, तो वह बड़ी ही दयालु दृष्टि से देखती हुई, उसे जो कुछ भी और जितना भी वह माँगता, दे देतीं। वह उसकी पूर्व-दशा से भली भाँति अवगत थीं। उन्होंने उसे उस अवस्था में देखा था। अब उसे इस अवस्था में देख वह बहुत दुखी थीं, और बहुधा जब मैं अपने क्रूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविनोद में लीन होता, तो वह आकर मुझसे कहतीं—"इसे न तंग कर। यह जो माँगता है, दे दे। तू क्यों इसे तंग करता है? आज यह ऐसा है, तो क्या हुआ। इसके भी ऐसे दिन थे, जब हमारी ही तरह यह भी ख़ुशहाल था। दे दे—दे दे। और अधिक न सता।"

इस पर वह ठठाकर हँस पड़ता—आख़िर था तो पागल ही न। बड़ी ऊँचे बोल में कहता—"अरे जाओ मार्जा, तुम अपना काम-काज देखो। मैं इससे निपट लूँगा। लड़का ही तो है। यह मुझे तंग करे, मैं इसे—।" फिर बड़ी ज़ोर से हँस पड़ता। उसकी हँसी बैठक-भर में गूँज जाती। उसी हँसी के बीच वह कहता—"भैया, तुम बड़ी हँसी करते हो। मुझे ललचाते हो, पर देते नहीं। जाओ, आज तुमसे नहीं माँगूँगा। पर आज तो तुम हँसी करते नहीं देख पड़ते। तो दे दो। क्यों तंग करते हो? जल्दी दे दो। भगवान् तुम्हारा भला करे। उसे खाकर मैं तुम्हें भरपेट असीस दूँगा। दे दो—दे दो। लाओ, देते क्यों नहीं? मुझे तंग क्यों करते हो? बड़े वैसे हो! तुम तो जानते हो कि मैं भी तुम-सरीखा धनवान् रह चुका हूँ। किसी समय मेरा भी सोने का संसार था। मैं उसमें मस्त था। मुझे कुछ भी चिंता न थी। उस समय तो जो चाहता था, पा जाता था। और, तू तो मुझे चिढ़ाता है। गधा, पाजी, सुअर! अपने बड़ों से गुस्ताख़ी। नालायक़ कहीं का। ला, देता है, या नहीं।"

(३)

साल-भर से उसका स्वास्थ्य निरंतर गिरता गया। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। उसके शरीर में हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ दिखाई देने लगीं। उसकी खाल लटक गई थी। वह सुदामा का सफल प्रतिद्वंद्वी बन गया। फिर भी एक बात आश्चर्य की थी। इस अवस्था में भी उसका पेटूपन न गया। किसी अच्छी वस्तु को देखते ही वह पूर्ववत् मिन्नतें करने लगता, और उसे लेकर ही हटता। कहना तो यह चाहिए कि उसका पेटूपन पहले से भी अधिक हो गया। पहले तो वह सबसे अच्छी वस्तु ही पर नज़र गड़ाता था, पर अब तो जो भी अच्छी चीज़ उसके सामने आ जाती, उसे ही उदरस्थ करने का भाव दिखाता। जीवन के अंतिम दिनों में तो उसका पेटूपन संसार की समस्त खाद्य-वस्तुओं को गर्भसात् करने का प्रयत्न करने लगा।

यह सब देख एक दिन मैंने उससे कहा—"अरे दास, तुम तो दिन-दिन दुबले होते जा रहे हो। तुम्हारी दशा दिन-दिन ख़राब होती जा रही है। फिर भी अपने खाने-पीने में परहेज़ नहीं करते। परहेज़ करना दूर, तुम तो और अधिक पेटू हो गए हो। यदि यही हाल रहा, तो कैसे बच पाओगे? तुम अपना खाना-पीना कम कर दो। ये कहीं चले नहीं जायँगे। ठीक हो जाने पर फिर खाने-पीने लगना।"

इस पर वह आह-आह करता हुआ ठठाकर हँस पड़ा। दुर्बलता के कारण उसको साँस चलने लगी थी। उसने कहा—"भैया, तुम तो सब जानकर भी अनजान बने हो। मैं खाना कम कर दूँ! अरे मैं खाना कम कर दूँ! कैसी बात करते हो! मैं मरते-मरते मर जाऊँगा, पर खाना कम न करूँगा। यही खाना मेरी मा और स्त्री को खाकर मैं इस खाने को "खाना" कैसे छोड़ दूँ। मरते-मरते भी इसे "खाना" न छोड़ूँगा—न छोड़ूँगा—न छोड़ूँगा।"

और, उसने अपनी यह प्रतिज्ञा अक्षरशः पूरी की। मरने के एक घंटे पहले तक—जब तक उसकी जिह्वा और हाथ काम करते रहे—उसने खाना न छोड़ा। अंतिम बार खाना खाते-खाते उसकी जीभ ऐंठ गई, पेट फूल गया और हाथों ने जवाब दे दिया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। मृत्यु के कुछ क्षण पहले उसे सुध हुई। उसकी आँखें थाली की ओर गईं, और बड़ी भयानक हो उठीं। संभवतः यह विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था कि खाना उसके सामने है, पर वह "खा" नहीं सकता। हम लोग थाली हटा ही रहे थे कि उसके नेत्रों की भयंकरता चरम सीमा पर पहुँच गई और थाली हटते-न-हटते उसने एक हिचकी लेकर दम तोड़ दिया।

अंतिम क्षण तक उसने "खाना" न छोड़ा।

(४)

उसका यह पेटूपन—उसका यह "खाने" का भाव उसके जीवन की समस्त करुण-कथा को अपने अंतर के गूढ़तम अंधकारमय प्रदेश में छिपाए हुए था। अतः उसके मर जाने पर वह कथा तमोराशि के बीच से निकल प्रकाश-जगत् में आ गई।

उसका जन्म एक समृद्धिशाली कुटुंब में हुआ था। नगर में उसके पिता की कई दूकानें थीं, और उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गृहस्थी का कार्य बड़े सुख से चलता था। पिता का एक-मात्र पुत्र होने से वह स्वच्छंद हो गया। पिता ने भी इस स्वच्छंदता से उसमें कोई दुर्गुण न आते देख, उससे कुछ न कहा। हाँ, उसे एक व्यसन अवश्य पड़ गया था, परंतु उसके पिता उसमें कोई बुराई न पाते थे। वह व्यसन था—उसका व्यंजन-प्रेम। वह भाँति-भाँति की मिठाइयाँ, मेवे, फलादि खाता, बहुमूल्य ठंडाइयाँ छानता और मस्त पड़ा-पड़ा अपने जीवन के दिन बिताता।

अकस्मात् उसके पिता की मृत्यु हो गई। गृहस्थी का भार उस पर आ पड़ा। व्यापार के छल-छंदों से अनभिज्ञ वह क्या जानता कि दुनिया कैसी है? वह अपनी निर्दोष क्रीड़ा में मस्त रहा। धीरे-धीरे व्यापार चौपट हुआ, मकान रेहन रक्खा गया, और एक दिन उसे अपना पैतृक गृह छोड़कर किराएदार बनना पड़ा। उस समय उसके साथ रह गईं केवल उसकी माता और उसकी पत्नी।

इस दशा में भी उसका व्यंजन-प्रेम कम न हुआ। वह पूर्ववत् रहने का प्रयत्न करने लगा। परंतु यह होना कैसे संभव था? व्यंजन-प्रेम के लिये चाहिए धन, और उसका सब धन स्वाहा हो चुका था। फिर भी उसके व्यसन की पूर्ति तो होनी ही चाहिए। आभूषण अभी तक बचे हुए थे। अब वे भी रेहन रक्खे जाने लगे। परंतु ऐसे भी कब तक काम चलता? धीरे-धीरे वे भी निपट चले। तब वह धन की खोज में चला। उस समय उसके पास थे केवल बीस रुपए, और उसके घर में थी केवल महीने-भर के लिये खाद्य-सामग्री, तथा उसकी पत्नी के सौभाग्य-सूचक आभूषण।

उसने सुन रक्खा था कि साधु-संत की सेवा करने से मनोवांछित फल मिलता है। अतएव घर से निकलकर वह सीधा एक साधू के यहाँ गया। यह महात्मा उसके नगर से दूर-स्थित एक दूसरे नगर के पास के वन में रहते थे। उसके अच्छे दिनों में वह कई बार अपनी संगत के साथ उसके यहाँ जा चुके थे, और उसके व्यंजन-प्रेम को उभाड़ने में सहायक हो चुके थे। इस विपत्ति में उसे इन्हीं का स्मरण आया, और इस विश्वास के साथ कि इनके साथ रह, इनकी सेवा करने से मनोवांछा अवश्य ही पूरी होगी। वह तन-मन से इनकी सेवा में लग गया। महात्माजी ने भी विश्वास दिलाया कि कालांतर में उसकी अभिलाषा-पूर्ति अवश्य होगी।

समय बीत गया। एक महीना जाते देर न लगी। इधर घर में खाद्य-सामग्री चुक गई। उसके पास पहले तो चिट्ठी और फिर तार आया कि उसकी पत्नी के सौभाग्य-सूचक आभूषण बेचकर घर का काम-काज चलाया जा रहा है। संबंधी कुछ भी सहायता नहीं करते। मा और पत्नी ने मेहनत कर कमाने का प्रयत्न किया, पर उसमें कुंबी रोड़े अटकाते हैं। वह पत्र देखते ही चला आवे।

उसने पत्र और तार पर तनिक भी ध्यान न दिया। उसे विश्वास हो गया था कि दो-चार दिन में ही उसकी सेवा सफल होने को है। वह पहले से भी अधिक दत्तचित्त होकर साधुजी की सेवा करने लगा। साधुजी भी ऐसा सेवक पा बड़े प्रसन्न हुए। पर उसकी नित्यप्रति की धन-संबंधी प्रार्थना से कभी-कभी उनकी भृकुटी चढ़ जाती। वह झुँझला पड़ते।

इसी प्रकार एक महीना और बीत गया। उसकी आशा-पूर्ति न हुई। वह थोड़ा-थोड़ा चिंतित होने लगा। फिर भी उसने सेवा न छोड़ी। धीरे-धीरे दूसरा महीना भी बीत चला। दूसरा महीना बीतते-न-बीतते उसके पास तार आया कि मा सख़्त बीमार हैं; मुँह देखना हो, तो चले आओ। वह तार लेकर महात्मा के पास गया। बड़े ही करुण-शब्दों में उसने अपनी धन-संबंधी प्रार्थना दुहराई। उसे आशा थी कि उसकी दयनीय दशा पर महात्माजी पिघल पड़ेंगे। पर इसके विपरीत वह झुँझला पड़े। कहने लगे—"बच्चा, तेरे भाग्य में धन नहीं; अभिलाषा-पूर्ति निष्काम सेवा से होती है। तू तो दिन-रात धन की पुकार से कान फाड़े डालता है। यदि तू निष्काम सेवा न कर सके, तो चला जा।"

कदाचित् एक साथ सहस्रों वज्रपात से भी वह इतना न चौंकता, जितना साधू के इन शब्दों पर वह चौंक पड़ा। उसके हृदय में साधुजी के प्रति घृणा भर गई। वह वहाँ से चल पड़ा। इतनी अच्छी सेवा के पुरस्कार में उसे घोर निराशा मिली।

अत्यंत निराश हृदय के साथ वह घर पहुँचा, और बड़े ही उद्वेग के साथ उसने पुकारा—"मा! मा!" उत्तर में उसे मा की वात्सल्य-प्रेम-पूर्ति बोली न सुनाई देकर एक गगनभेदी रोदन सुनाई दिया। वह धड़कते हृदय के साथ भीतर गया। वहाँ मा का कहीं पता न था, केवल पत्नी बैठी हुई रो रही थी। उसे सब समझते देर न लगी। वह भी बड़े ज़ोर से रो पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु यहीं उसकी विपत्ति का अंत न था। शोक का प्रथम उद्वेग कम होने पर उसने मा की मृत्यु का हाल पूछा। उत्तर में उसने जो कुछ सुना, वह करुणा की अंतिम सीमा थी। हाय! उसकी मा भूखों मर गई! संबंधियों ने सहायता तक न की! उसकी पत्नी को भिखारिन की तरह थोड़ी-बहुत खाद्य-सामग्री दे दुरदुरा दिया। मा का स्वाभिमान इसे न सह सका। फिर उसने अपनी बहू को कहीं न जाने दिया। वह भूख की ज्वाला से जलती थी, पर उफ़ तक न करती थी। पर कहाँ तक? आख़िर थी तो रक्त-मांस ही की बनी। निर्बलता और भूख के असह्य होने पर उसने खाट की शरण ली। बहू ने एक बार फिर कुटुंबियों के पास जाने का उपक्रम किया; पर जा न पाई। उसे स्वाभिमानिनी मा ने न जाने दिया। जब खाने ही को न हो, तो दवा-दारू का प्रबंध कहाँ से हो? जिस मा के स्वाभिमान ने बहू को कुटुंबियों के पास न जाने दिया, उसी ने पड़ोसियों के पास जाने से भी रोका। पर बीमारी का समाचार छिपा न रहा। सुनकर बहुतों ने मुँह फेर लिया। दो-चार सदय पड़ोसी आए भी, उन्होंने भरसक सहायता भी की; पर देर बहुत हो चुकी थी। मा बच न सकी। वह अपने लड़के के आने के दो दिन पहले ही चल बसी। बहू ज़ोर से चिल्ला पड़ी। उसके चिल्लाने से वही दो-चार दयालु पड़ोसी दौड़ आए। बेचारों ने अनाथ बहू को सांत्वना दी, और उन्हीं में से एक ने उसके संबंधियों से भी जाकर सब हाल कह सुनाया। सुनकर सबने मुँह बना दिया, पर उनमें से स्वयं कोई न गया। किसी ने अपने मुनीम को भेज दिया, तो किसी ने किसी अन्य नौकर को। पड़ोसियों की सहायता से मा का क्रिया-कर्म किया गया।

यह सब सुनकर वह ग़ुस्से से पागल हो उठा। उन क्रूर नर-पिशाच संबंधियों पर उसे इतना क्रोध आया कि वह लाठी उठाकर घर से बाहर जाने को दौड़ पड़ा। उसकी पत्नी दौड़कर उससे लिपट गई। पर हाय! यह क्या? पत्नी का शरीर अंगारे की तरह जल रहा था। काँपती हुई पत्नी के हाथों को अपने हाथ में लेकर उसने कहा—"तुम्हारा शरीर तो आग हो रहा है! तुमने अभी तक मुझसे क्यों नहीं कहा?"

पत्नी रोने लगी। अभी तक सास के दुःख में उसका ध्यान अपने शरीर की ओर न गया था। इसी से अपनी दयनीय दशा का अनुभव न कर सकी थी। पति के आ जाने पर उसका वह दुःख का उच्छ्वास शब्दों का रूप पाकर, निकल गया। पति के शब्द उसके मस्तिष्क में उसकी दुर्बलता का ध्यान भर दिए। वह काँपती हुई ज़मीन पर गिर पड़ी।

इसके बाद की कहानी तो और भी करुण है। उसकी परिचर्या में उसने कोई कसर न रख छोड़ी। इसके लिये उसने कुटुंबियों के ताने सहे, पर गिड़गिड़ाकर एक, दो-दो रुपया ले ही लिया। उन रुपयों से उसने सिविल-सर्जन को बुलाया। पर वह भी कुछ न कर सका, और एक संध्या को उसकी पत्नी ने उसकी गोद में सिर रक्खे हुए प्राण त्याग दिए।

सारी रात पत्नी के मृत शरीर के पास वह अकेला पड़ा रहा। कभी ज़मीन पर लोटता, कभी सिर धुनता और कभी रोने लगता। सबेरा होने तक उसका ज्ञान लोप हो चुका था। पड़ोसियों ने आकर देखा, तो वह कह रहा था—"खाना-खाना! अरे, खाना लाओ। मैं भूखों मर रहा हूँ। तुम लोग मुँह क्या ताकते हो? जाओ-जाओ। खाना लाओ।"

बड़ी ही कठिनता से, बीच-बीच में अनेकों बार बहकते हुए उसने पत्नी की अंत्येष्टि की। उसके बाद उसने घर छोड़ दिया। कुछ दिन गंगा-किनारे रोता चिल्लाता पड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे शोक का प्रथम वेग कम हुआ। अब वह खाने के लिये आने लगा। पर अपने संबंधियों के पास भूलकर भी न गया। उनका ज़िक्र आने पर वह ग़ुस्से में भर जाता, और गालियाँ बकने लगता। इसी प्रकार कहीं भी किसी साधु को देखता, तो गालियाँ बकने लगता। एक और अवसर पर वह गालियाँ बकता था, और वह था माँगने पर भी कोई खाने की वस्तु न मिलने पर। इन तीन अवसरों को छोड़ वह सदैव शांत रहता, और तब कोई भी उसे पागल न कह सकता। *

बालकृष्ण बलदुवा

---

* सत्य घटना के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसंत-राग

[चित्रकार—प्रोफ़ेसर ईश्वरीप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरुक्षेत्र

(महाकाव्य)

द्यूत

(१)

संसार विकट बंधन है,
क्रंदन ध्वनि, अभिनंदन है,
क्या स्नेह शांति सुख भय है ?
जीवन में किसकी जय है ?
आनंद ज्योति है आशा ;
दुनिया है एक तमाशा !

(२)

क्या जरा और क्या यौवन ?
शत नागपाश में जीवन—
झंझट से खूब कसा है,
मद लोभ विचित्र नशा है,
है मौत मुक्ति की माता,
कोई न सुखी दिखलाता।

(३)

चिंता शरीर को खाती,
ईर्ष्या से फटती छाती,
मैं बादशाह बन जाऊँ,
त्रिभुवन में धाक जमाऊँ।
सोचता यही दुर्जन है,
मरता कराह सज्जन है !

(४)

मुख से प्रसून झरते हैं,
मन-ही-मन शर चलते हैं !
संताप लालसा दूनी,
मित्र ही मित्र का खूनी,
जो एक अकड़ चलते हैं,
दूसरे देख जलते हैं !

(५)

क्या है कर्तव्य हमारा ?
नश्वर शरीर की धारा—
किस ओर बही जाती है ?
क्या गाती, सिखलाती है ?
सोचने को न है बेला,
संसार विचित्र झमेला।

(६)

रज-कण जीवन की क्षमता,
गिरता फल है जो फलता,
सूखती सुगंधित क्यारी,
बनता है भूप भिखारी,
संसार हलाहल तर है,
सुख से दुख की टक्कर है !

(७)

सुखमय सौंदर्य-सदन में,
भर कुटिल भावना मन में,
लख दृश्य मनोरंजन के,
सब साथी दुर्योधन के,
शकुनी के आश्वासन पर,
आ बैठे निज आसन पर।

(८)

पांडव थे जहाँ अचल-से,
थे गए बुलाए छल से,
जिनकी मुसकान मनोहर,
सब देख रहे थे जी-भर,
है गया शत्रु-दल फाँसा,
फिर लगा पलटने पाँसा।

(९)

बातें थीं बड़ी रसीली,
चालें थीं खूब चुटीली,
जिनमें थे मग्न युधिष्ठिर,
शकुनी था हँसता फिर-फिर,
गुरु द्रोण भीष्म हँसते थे,
दृग से बातें करते थे।

(१०)

पढ़ सका कौन कर-लेखा ?
किसने अदृष्ट की रेखा—
मेटी सहस्र बल से है ?
उद्धार कहाँ छल से है ?
जब साथी बना कुटिल खल,
फैला हर ओर हलाहल।

(११)

हारते गए पांडवगण,
तब कहा कर्ण ने यह प्रण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जो हार जाय इस फन में,
द्वादश वत्सर कानन में,
कर दे व्यतीत भिक्षुक-सा,
तोड़े न शर्त वह सहसा।

(१२)

"साथ ही बात यह भी है,
अज्ञातवास सुख भी है।
बस, एक वर्ष तक भाई!
वह बना रहें सौदाई,
खोले न भेद निज किंचित,
क्यों, होगा दुखी पराजित।

(१३)

"कारण, वनवास भयंकर,
अज्ञातवास भी दुखकर,
फिर-फिर होगा यह जानो,
दिल्लगी इसे मत मानो,
परवाह किसे? आ जाओ,
निज चमत्कार दिखलाओ।"

(१४)

यह सुना गर्व से सबने,
फिर पाँसा लगा पलटने,
जिसमें जंजाल भरा था,
छल-कुंज कुमार हरा था,
था शकुनि जहाँ का माली,
थी जिसकी मति मतवाली।

(१५)

फिर-फिर ज्यों पलटा पाँसा,
पांडव-दल की शुभ आशा,
मर गई डूब दुख-नद में,
बिछ गई आग पग-पग में,
हारे सर्वस्व युधिष्ठिर,
हा! गईं आपदाएँ घिर।

(१६)

जिनका करते हो दर्शन,
खिलखिला उठा दुर्योधन,
औ' उछल पड़े संतापी,
शकुनी-समान खल पापी—
कर व्यंग्य सुखी थे होते,
पर पांडवगण थे रोते।

(१७)

क्या कालचक्र है भीषण!
सर्वस्व हरण का यह रण,
था देख रहा दुख से भव,
मिल रहा धूलि में गौरव।
संतोष किसी को कब है?
संसार-चक्र बेढब है!

(१८)

करुणा, बीभत्स, भयानक,
शृंगार, हास्य का नाटक,
खेलता चक्र था नट-सा,
पंकिल-सा, घबराहट-सा,
ग़म के आँसू झरते थे,
सज्जन रो-रो मरते थे।

(१९)

उत्थान, पतन, पतझड़ है,
मीठी चुटकी, थप्पड़ है,
मरुभूमि, कलित-कानन है,
निर्मल जल, जीव जलन है!
तुम धन्य! सदैव समय हो,
त्रैलोक्य-जयी, निर्भय हो!

(२०)

कुछ कह न सका दुर्योधन,
बोला द्रोही दुःशासन—
"हे धर्मराज, दुख छोड़ो,
झटपट उदास मुख मोड़ो,
बीहड़ वन जो कि बड़ा है,
स्वागत के हेतु खड़ा है।

(२१)

"सहदेव! नारकी अर्जुन!
ओ नकुल नराधम दुर्जन!
खटको न शूल-से दृग में,
बस, हटो बढ़ो वन-मग में,
मैं नहीं देख सकता हूँ,
ललकार भीम! कहता हूँ।

(२२)

"है तेरा भाग्य भयंकर,
जा-जा विपत्तियों को वर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरण स्वप्न बंधन में,
तू खूब तड़प तन-मन में।
तेरी विपत्ति पर मेरी,
मुसकान करेगी फेरी।

(२३)

"रे कायर पूत ! अभागी,
बनकर दरिद्र वैरागी,
जीवन की गीता गाकर,
फिर धूल छान तू दर-दर,
जा, पाप-पेट भर पापी !
शठ नीच दुष्ट संतापी !"

(२४)

यह विष-सी बातें सुनकर,
रह गए नकुल सिर धुनकर,
सहदेव लगे पछताने,
लोचन से अश्रु बहाने,
कुल काल-चक्र महिमा है,
अंधी-सी सब दुनिया है।

(२५)

द्रौपदी तो न कुछ बोली,
लग गई उसे विष-गोली,
वह ज्वालामुखी बनी थी,
पगली-सी खड़ी तनी थी,
जग गई आपदा मन की,
कल्पना उठी कानन की !

(२६)

अर्जुन की मर्म-कहानी,
क्या भूल किसी ने जानी !
मन-ही-मन रक्त-जगत में,
थे विचर रहे क़िस्मत में।
शिव सत्य धर्म के भूखे,
थे धर्मराज तो सूखे।

(२७)

पर भीम विलोचन फेरे,
अंगार - समान तरेरे,
जिनकी प्रचंड चिनगारी,
थी फूँक रही फुलवारी।
जो इन्हें अभी छलते थे,
वे लपटों में जलते थे।

(२८)

केहरी - समान गरज कर,
बोले बलवान वृकोदर—
"तेरे सन्मुख ओ ख्याली !
नाचती मृत्यु है काली,
कैसा विचित्र संघर्षण,
छल-खेल, युद्ध-आमंत्रण।

(२९)

"प्रतिशोध - प्रतिज्ञा मेरी,
है बजा रही रण-भेरी,
जिसकी प्रचंड ध्वनि सुनकर,
हो रहा वधिर जग सुंदर,
दृग मूँद भागता जाता,
मेरे भय से भय-त्राता।

(३०)

"रग-रग है सत्यानाशी,
जिह्वा शोणित की प्यासी,
नरमुंडों से यह वसुधा,
पाटूँगा, यदि मैं योधा,
मुझसे सब शत्रु डरेंगे,
कुत्तों की मौत मरेंगे।

(३१)

"है यह न दर्प का ख़ाका,
कुचली—रौंदी आत्मा का,
विद्रोह भयानक है यह,
चुपचाप पड़ा मृत-सा रह,
जब तेरा मुख देखूँगा,
मैं नोच नखों से लूँगा।

(३२)

"है क़सम कृष्ण की मुझको,
मारूँगा सबको, तुझको,
सब छोड़ लाज औ' शंका,
पीटूँगा रण का डंका,
क्या कोई रोक सकेगा ?
भीषण बलिदान चढ़ेगा।

(३३)

"नभ खंड-खंड-सा होकर,
बरसेगा वसुंधरा पर,
उड़ता होगा लत्ता-सा,
संसार शुष्क पत्ता-सा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर तूफ़ान गँड़ासा,
खेलेगा हृदय तमाशा।

(३४)

"अतिशय विचित्र जीवन में,
तन में, मन में, यौवन में,
अवलोक क्षुधा निज सूखी,
जो शक्ति घूमती भूखी,
कैसे सुख से सोवेगी?
आलस्य - बीज बोवेगी?

(३५)

"स्खलन, पतन, परिवर्तन—
के अब तुम कर लो दर्शन,
क्यों? यही मधुर बेला है,
फिर झंझट, रण-खेला है,
सब सावधान तुम रहना,
मानना हमारा कहना।"

(३६)

जल उठे क्रोध से अर्जुन,
बोले अधीर—"दुर्योधन!—
गूँजेगा जग जय-जय से,
आकाश फटेगा भय से,
जब तेज तीर छोड़ूँगा,
अरि-गर्व-दुर्ग तोड़ूँगा।"

(३७)

चुप-से रह गए युधिष्ठिर,
कर रोष भीम बोले फिर—
"रग-रग में रण का आरा,
चलता है आह, करारा।
मैं प्रलय-गदा तानूँगा,
मैं किसी की न मानूँगा।"

(३८)

तब कहा कर्ण ने हँसकर—
"कुछ और बको न वृकोदर!
हैं व्यर्थ तुम्हारी घातें,
रो-रोकर काटो रातें,
चिंता से शीघ्र मरो तुम,
भिक्षा से पेट भरो तुम।

(३९)

"अब क्रीतदास कहलाओ,
भय से, विपत्ति बन जाओ—
निज कुल के ही हे कायर!
देता हूँ तुम्हें यही वर।
मैं वज्र, भयंकर बादल।
क्या देखोगे मेरा बल?"

(४०)

यह था न रात्रि का सपना,
उपहास देख यह अपना,
विद्रोही भीम निडर-से,
फुफकार उठे अजगर-से,
"मैं पीस तुझे डालूँगा—
रज-कण-सा, प्रण पालूँगा।"

(४१)

अहि ने मानो था काटा,
छाया ऐसा सन्नाटा,
गर्जन - तर्जन प्रलयंकर,
सब काँप उठे थर-थर-थर,
निज-निज प्रण पूर्ण सुनाकर,
हो गए पांडु-सुत बाहर।

(४२)

जिनकी वनवास मूर्ति पर,
झरते थे आँसू झर-झर,
क्रंदन कल्लोल विकट था,
रण का नक्षत्र निकट था,
धृतराष्ट्र जिसे सुन-सुनकर,
पछताते थे सिर धुनकर।

(४३)

सर्वस्व हार यौवन में,
हा! चले युधिष्ठिर वन में,
किस भाँति पड़ेगी हा! कल!
है गर्म आँसुओं का जल।
क्या करूँ, बड़ी लाचारी,
होगा अनर्थ अब भारी।

(४४)

हो भस्म अशांति-चिता में,
नृप डूब सोच-सरिता में,
छिपते, फिर उतराते थे,
चुप रहते, उकताते थे,
गांधारी समझाती थी,
फटती सुहाग छाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(८)

जैसिंतो बेनावंत

सन् १९०४ ई० में स्पेन के नाट्यकार एकीगेरी को पुरस्कार मिल चुका था, और तब से लोग स्पेन के नाटकीय साहित्य के पठन-पाठन में दत्तचित्त हो गए थे। ऐतिहासिक दृष्टि से स्पेन के साहित्य के दो स्पष्ट विभाग हो सकते हैं। एक तो वह भाग, जो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के पूर्व ही लिखा जा चुका था, और जिसके वायु-मंडल में एकीगेरी का जीवन बीता था। परंतु स्पेन और अमेरिका के युद्ध के पश्चात् नवयुवकों का एक ऐसा संगठन बन गया था, जिसकी प्रबल इच्छा थी कि प्राचीन परंपरा एवं आदर्श अनावश्यक होने के कारण त्याज्य हो जाना चाहिए। इस नवीन दल का विशेष विवरण "A Study of the modern Drama"*-नामक ग्रंथ में विशद रूप से मिलता है। बेनावंत इसी दल के मुखिया थे। इनका पूरा नाम जैसिंतो बेनावंत (Jacinto Benavente) था। इनका जन्म १८६६ ई० में स्पेन की राजधानी मैड्रिड-नगर में, हुआ था। इनके पिता वहाँ के बड़े अच्छे वैद्यों में से थे, और चाहते थे कि लड़का वकालत करे। थोड़े दिनों यह क़ानून पढ़ते भी थे, पर इनका चित्त लगता था नाटकों के लिखने और अभिनय करने में। कुछ दिन तक नाटक-मंडलियों के साथ घूम-फिरकर अनुभव भी प्राप्त करते रहे, जिससे रंगमंच की कठिनाइयों का इन्हें भली भाँति ज्ञान हो गया। कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित करके, १८९३ ई० में, एक नाटक लिखा, और फिर तीन वर्ष बाद दूसरा। इन दोनों पुस्तकों में कुछ महत्त्व न था। सन् १८९८ में The Banquet of wild Beasts-नामक एक फड़कता हुआ नाटक लिखा, जिससे इनका नाम हो गया, और तभी से स्पेनिश नाट्य-साहित्य का नवीन युग (१८९८ ई० से) प्रारंभ हुआ, जिसे "The generation of 1898" कहते हैं।

परंतु इस दल के नेता होते हुए भी बेनावंत ने अपनी वैयक्तिक सम्मतियों को दलवालों के हाथ नहीं बेचा, वरन् उन्हें और परिमार्जित कर लिया। वह प्राचीन परंपरा के नितांत विरोधी नहीं थे, पर पुराने धनिकों पर आक्षेप तथा आधुनिक किसानों के दयनीय जीवन के सहानुभूति-पूर्ण समर्थक अवश्य थे। इस प्रकार के इनके कई नाटक हैं—The Truth, Field of Ermine, Autumnal Roses तथा Magic of an Hour—जिनके पढ़ने से पाठकों में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव होता है, और अंतवाले में तो कहीं-कहीं उपनिषदों की-सी छटा देख पड़ती है। इस नाटक का नाम Magic of an Hour इसलिये रक्खा गया है कि इतना क्षणिक प्रभाव और किसी का नहीं, केवल प्रेम का ही होता है, जिसके कारण पशु एवं व्यभिचारी लोग भी तनिक देर में बन जाते हैं—"Spirits of light, luminous with a divine wisdom through all instincts of the beast." *। इससे भी आकर्षक नाम है The Necklace of Stars, जिसमें कल्पना की पराकाष्ठा हो गई है। इस प्रकार के इनके नाटकों की संख्या १४४ के लगभग पहुँच जाती है, जिनमें से कई तो फ़िल्म द्वारा अमेरिका में बहुत ही लोकप्रिय हो गए हैं। एक का नाम है La Malquerida †, जिसमें किसानों के जीवन की दुःख-पूर्ण कथा है, और जिसकी प्रसिद्धि अमेरिका-भर में प्रख्यात अभिनेत्री नैंसी ओनील द्वारा हुई है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कंपनियों ने The Bonds of Interest-नामक नाटक का भी अध्ययन-पूर्वक अभिनय किया है। बेनावंत ने स्वयं इँगलैंड, रूस तथा अमेरिका जाकर अपने नाटकों का रंगमंच पर अभिनय होते देखा है। उनका कहना है कि नाटकों का वास्तविक रहस्य दर्शकों अथवा पाठकों की मानसिक

* By Barret H. Clark (New York), 1923.

* *Magic of an Hour* (Charles Scribner's Sons), page 125.

† *The Passion flower*-नाम से इसका अँगरेज़ी-अनुवाद हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

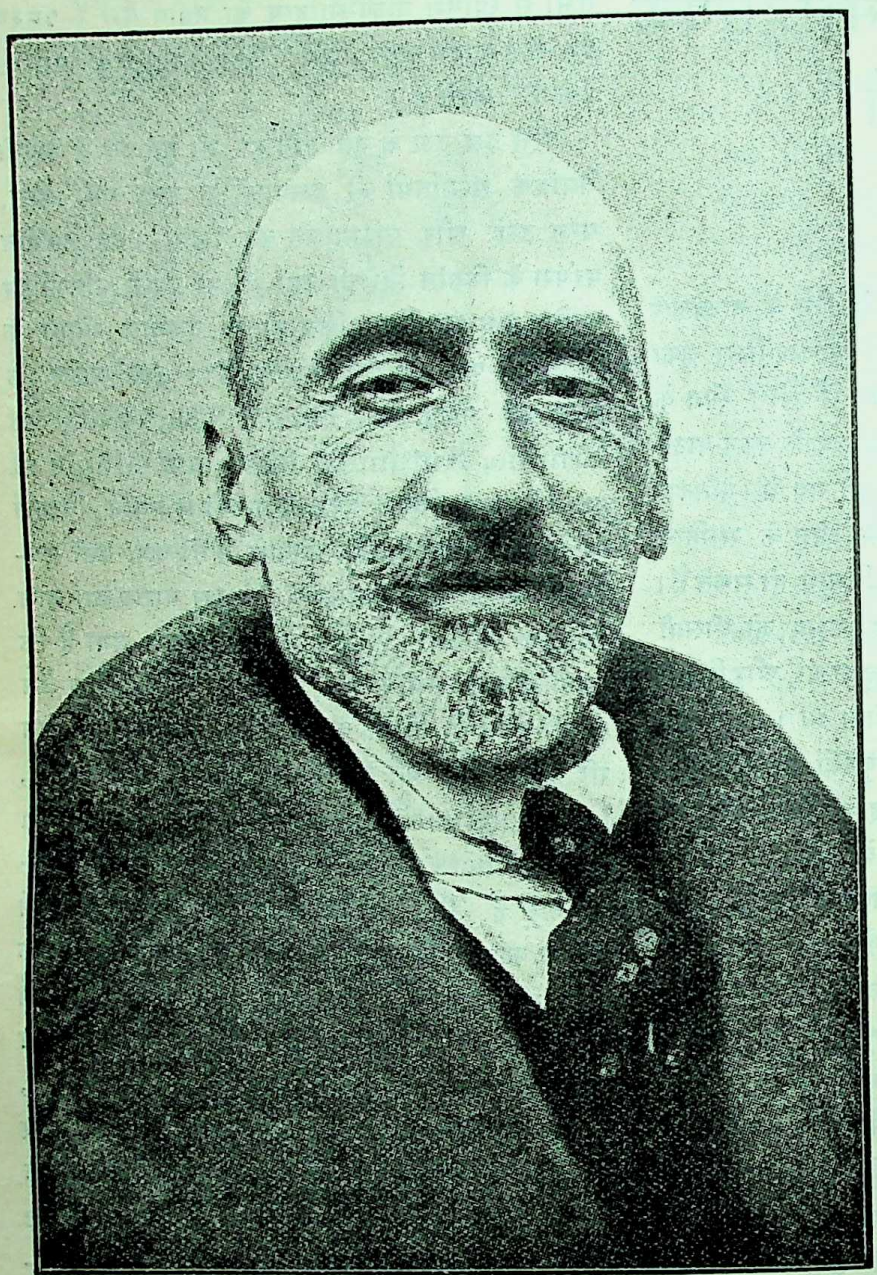

जैसिंतो बेनावंत

धारणा द्वारा ही प्रकट हो सकता है। अभिनय में उनका बहुत विश्वास भी नहीं है, और उन्होंने लिखा है—

"I have written more than a thousand parts, yet of that number I can recall perhaps five which I have recognised as being truly the character I had conceived, when they stepped upon stage, I have not even some of my plays."

इसीलिये कभी-कभी यह नाटकों में मनुष्य-पात्रों के में केवल गुड़ियों का ही करते हैं। इसके प्रतिकूल नाटकों के नाम भी साधारण विचित्र रक्खे हैं—जैसे A P Shoes, जिसका दूसरा Doubtful Virtue. ग्रंथों में उनकी कला वर्तमान और एक समालोचक ने तो है कि इनमें स्वर्गीय बुद्धि (Divine sanity) मिल

१९१३ ई० में यह स्पेनिश डेमी के सदस्य निर्वाचित और तभी से शिक्षा, साहित्य राजनीति-संबंधी सभी विषयों इनके विचारों का आदर लगा। इनके नाटकों में अधिक दार्शनिक The S of Princesses है, आदर्श त्याग तथा सेवा है में इनके सभी ग्रंथों में आदर्श प्रचुरता से मिलता है, स्कार का सर्व-प्रथम ध्येय प्रोत्साहन प्रदान करना है

विलियम ब्रटलर यीट

जिस प्रकार अमेरिका साहित्य पृथक् है, वैसे ही लैंड का भी अपना एक भिन्न साहित्य है नीति में ही नहीं, कविता के भी क्षेत्र में वहां

* *Plays*: fourth series, edited by Garret Underhill (Charles Scribner's New York, 1917-25.

† विशेष अध्ययन के लिये देखिए Benavente Starkie (Oxford University Press

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विचित्र उत्साह रहा है। जिस प्रकार भारतवर्ष में एक नवीन जागृति * उत्पन्न हो गई है, वैसे ही आयर्लैंड में भी इस समय नए-नए आदर्श प्रतिपादित हो रहे हैं। कई वर्ष हुए, लेडी ग्रिगारी ने "आयर्लैंड के आदर्श"-नामक एक आलोचनात्मक ग्रंथ † लिखा था, जिसमें उस देश के जार्ज मूर तथा यीट्स आदि कवियों की कृतियों पर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है। इस ग्रंथ के प्रकाशन के कई वर्ष पश्चात्, १९२३ ई० में, यीट्स को नोबेल-पुरस्कार मिला; पर इसके बहुत पहले ही यह आयर्लैंडके प्रमुखकवि तथा नेता स्वीकृत हो चुके थे। इनका कार्य विशेषकर ग्राम्य-जीवन तथा काव्य की उन्नति करने में रहा है। यह रवि बाबू के पुराने मित्रों में से हैं, और पहले-पहल इन्हीं ने ही उनकी गीतांजलि के सौंदर्य का अनुभव किया था, तथा उसे पाश्चात्य संसार के सम्मुख प्रकट किया था।

विलियम बटलर यीट्स का जन्म डब्लिन में १५ जून, १८६५ ई० को हुआ था। इनके पिता जान बटलर यीट्स प्रसिद्ध चित्रकार थे। उनकी इच्छा थी कि विलियम भी चित्रकला के ही उपासक हों। बाल्य-काल में यह अपने दादा और नाना के साथ बहुधा रहे; फिर लंदन में पढ़ते रहे। इनके नाना स्लीगो में जहाज़ों का काम करते थे; वहीं रहकर इन्हें समुद्र की प्राकृतिक शोभा निरीक्षण करने को मिली। तब से लंदन और डब्लिन में इनका चित्त नहीं लगता था, और जैसा इन्होंने अपने एक उपन्यास * में लिखा है, इनको इच्छा उन्हीं पुराने मकानों के पास बैठे-बैठे समुद्र की लहरों के खिलवाड़ देखने की बराबर बनी ही रहती थी। कुछ दिनों तक पिता की आज्ञानुसार यह चित्रकारी का अध्ययन करते रहे; पर फिर देखा कि पुस्तकालयों में बैठकर पढ़ते रहना अथवा किसानों के देहाती गीत सुनना इससे भी अधिक अच्छा है। जीवन-भर ग्राम्य-साहित्य तथा सभ्यता की स्मृतियों की छाप इनके हृदय पर लगी रही,

विलियम बटलर यीट्स

* देखिए, Dr J.H. Cousins कृत *Indian Renaissance* (Ganesh & Co., Madras)

† *Ideals in Ireland* (London, 1901.)

* *John Sherman* तथा *Dhoya* (New York), 1891

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ तक कि १९०६ ई० के संग्रह में इस विषय पर इनकी एक लंबी कविता भी है, जिसमें दंतकथांतर्गत उन काले-काले मनुष्यों का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

" The dark folk who lived in souls
Of passionate men, like bats in the dead trees "

जब यह डब्लिन-विश्वविद्यालय में पढ़ते थे, तभी इनकी कविताएँ युनिवर्सिटी-रिव्यू में प्रकाशित होती थीं। वहीं एक बार एक ब्राह्मण से इनकी मुलाक़ात हो गई, जिससे भारतवर्ष की बहुत-सी दार्शनिक कथाएँ सुनते रहे। तभी से इनके भीतर पूर्वी जीवन तथा रहस्याच्छादित सभ्यता के प्रति श्रद्धा हो चली। अज्ञात-नामक उपन्यास प्रकाशित कराने के पश्चात्, १८८९ ई० में, The Wanderings of Oison-नामक एक दूसरा उपन्यास लिखा, जिसके कारण इनका बहुत नाम हुआ। इसी बीच में लेडी ग्रिगारी आदि मित्रों की सहायता से एबे थिएटर नामक नाट्यशाला बन गई थी। इसके कार्यकर्ताओं ने नवयुवक यीट्स को बड़ा प्रोत्साहन दिया, और तभी से यह नाटक भी लिखने लगे। रवि बाबू के King of the Dark Chamber-नाटक की श्रेणी का एक नाटक The King's Threshold और दूसरा The Land of Heart's Desire लिखा, इसका अभिनेताओं ने बड़ा आदर किया। रंगमंच पर इसे बहुत सफलता भी प्राप्त हुई। एक समालोचक ने तो इसे "The most beautiful thing that has been done in our time" ऐसा कहा है। इस नाटक में बड़ी माधुर्य-पूर्ण एवं धारावाहिक शैली के अतिरिक्त देहात के जीवन की अच्छी छटा दिखाई गई है। इन्होंने छायावाद की बहुत-सी कविताएँ तो अब तक प्रकाशित की थीं, पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। The Hour-Glass-नामक एक महत्त्व-पूर्ण नाटक लिखा, जिसमें समस्या तो धार्मिक है, पर रूप में कुछ छायावाद की झलक है। यह पहले-पहल गद्य में लिखा गया था, फिर पद्य भी सन्निहित कर दिया गया। इसका नायक Wise Man मृत्यु के निकट होने पर स्वर्ग जाने के लिये किसी सहायक की खोज में इधर-उधर फिरता है। जंगल में एक मूर्ख से उसे बहुत सहायता मिलती है, और अंत में तथ्य निकलता है—

"सबतें भले हैं मूढ़ जिनहि न व्यापी जगत-गति"

पूर्णतः छायावादी ग्रंथ इनका वह नाटक है, जि[illegible] नाम भी कुछ रहस्यात्मक है। वह है Shad[illegible] Waters, जिसका अर्थ है "छायामय पानी"। [illegible] यीट्स ने बहुत पहले प्रारंभ किया था; फिर [illegible] धीरे इसमें बहुत परिवर्तन कर दिया। इसके पा[illegible] बड़ा रुचि-वैचित्र्य है। एकआध स्थलों पर तो ज[illegible] साम्राज्य-सा जान पड़ता है। इसी ग्रंथ में लेखक की [illegible] स्वप्नमयी प्रतिभा का परिचय मिलता है। क्योंकि इ[illegible] मौलिकता का मूल्य इनके भाव-पूर्ण स्वप्नों में ही [illegible] इसी नाटक के नायक राजा फ़ोर्जल के शब्दों में—

"All would be well
Could we but give us wholly to the dre[illegible]
And get into their world that to the s[illegible]
Is shadow × × × × ×
× × × for it is dreams
That lift us to the flowing, changing [illegible]
That the heart longs for. *

इसी प्रकार के स्वप्नमय संसार में रहना ही सबे[illegible] की आत्मा है। स्वप्नों की प्रचुरता इनकी कहा[illegible] भी पाई जाती है, जिनका एक अद्भुत संग्रह The [illegible]ret Rose-नाम से अलग छपा है, और जिनमें B[illegible]ing of the Hair सबसे उत्तम है। इनकी [illegible] कविताओं में भी यही गुण है, और इनके पढ़ने से [illegible] प्रतीत होता है, जैसा किसी बड़े कवि ने कहा है—

"We are music makers and the dre[illegible]
of our dreams."

इस दृष्टि से यीट्स, शेली तथा कीट्स की कोटि[illegible] हैं। शेली के ऊपर तो इन्होंने एक बहुत ही विवे[illegible] लेख अपने ग्रंथ Ideas of Good and E[illegible] लिखा है। साहित्यिक क्षेत्र में इनसे और बर्ना[illegible] बड़ा विरोध रहता है, और आजकल यह शिक्षा [illegible] नीति, दोनों में बड़ा उत्साह-पूर्ण भाग लेते हैं। [illegible] आयर्लैंड की स्वाधीनता का प्रश्न छिड़ा है, तभी [illegible] देश के भविष्य-चिंतन में आप संलग्न रहते [illegible] आयरिश फ्री स्टेट के सिनेट के सदस्य भी निर्वाचि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यों तो राजनीतिक दृष्टि से बर्नर्ड शॉ के कई नाटक बड़े कड़े समझे जाते हैं, और अँगरेज़ लोग उनसे बहुत घबड़ाते रहते हैं; पर यीट्स से उनका मतभेद कविता के संबंध में है। शॉ और उनके अनुयायियों का, मैथ्यू आरनॉल्ड के अनुसार, कहना है कि कविता जीवन की आलोचना है (Poetry is the criticism of Life), पर यीट्स कहते हैं कि काव्य का अंतिम ध्येय जीवन का स्पष्टीकरण एवं प्रस्फुटन है। दूसरी बात यह है कि शॉ के ग्रंथों में देहात के जीवन तथा विचार के प्रति वह सहानुभूति और प्रेम नहीं मिलता, जो यीट्स की साहित्यिक सेवा का प्रधान लक्ष्य रहा है। ग्राम्य-साहित्य की इस सेवा के लिये विशेषतः और सभी ग्रंथों के लिये साधारणतः इन्होंने सर्वत्र लेडी ग्रिगारी की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। इनका कहना है कि आयर्लैंड में इस महिला की कहानियों का आर्थर की कथाओं से कुछ कम आदर नहीं है। इन दोनों साहित्यिकों ने साथ-साथ कार्य करके अपने देश का बहुत बड़ा उपकार किया है, और श्रीमती ग्रिगारी तो प्रारंभ में यीट्स की पंक्तियों का संशोधन करके गुरु का भी काम करती थीं।

अभी यीट्स को पुरस्कार मिले केवल ५ वर्ष हुए हैं, पर इन पर कई अच्छे ग्रंथ पहले से ही लिखे जा चुके हैं। आयरिश थिएटर के लिये लिखित तथा इनके अन्य ग्रंथ एवं संग्रह मैकमिलन-कंपनी ने तो प्रकाशित ही किए हैं, इनकी जीवनी तथा काव्य-कला पर भी कई पुस्तकों में प्रकाश डाला गया है।* अभी यीट्स की अवस्था ६३ वर्ष है। आशा है, यह अभी और बहुत अधिक स्वदेश तथा साहित्य की सेवा कर सकेंगे। अपने देश के ग्रामीण जीवन एवं काव्य के संबंध में इनका कार्य हम भारतीयों के लिये विशेष अनुकरणीय है।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

---

* इस संबंध में तीन ग्रंथ विशेष अध्ययन के योग्य हैं—१—*W. B. Yeats: a critical study* by Forrest Reid (New York, 1915). २—*W. B. Yeats and the Irish* Literary Revival, by H. S. Krans (London, 1905). ३—W. B. Yeats: a Literary study, by C. Wrenn (London, 1920)

वाणी भवानी

१

तजि सुर-धामै कवि-रसना अरामै करैं,
पूजैं मन कामै जन सब सुखदानी के
रचना विरंचि की विदोखैं रचि नवरस,
सोखैं अनरस भरैं छार मुख मानी के।
"द्विज मान" निधि के परिधि विधि सिधि के त्यों,
उदधि अगाध गुन मौतिक महानी के;
हारैं दुख द्वंदै गारैं विघन निमुंदै, ऐसे
वंदैं पद-कंज मंजु भारती भवानी के।

२

बानी वरदानी बर देहि जन जानी,
करै विघन विलूलै छरै मूलै अनरस की;
"द्विज मान" प्रवल अपार एकता की धार,
धावहि धरा मैं दहै ताप अपजस की।
जाय बहि मानस कौ मैल परसत जाहि,
पान तैं पराहि विथा सारी परबस की;
देस-प्रेम-भावन की तरल तरंगैं उठैं,
लहरि तरंगिनी उमंगै नवरस की।

नागेश्वरदत्त पांडेय "द्विज मान"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वेद या क्रोध

संस्कृत-साहित्य-ग्रंथों में अनेक जगह एक पद्य आया है, जिसके व्यंग्य अर्थके संबंध में बहुत-से आचार्यों का मतभेद है। कोई उसका व्यंग्य निर्वेद बताता है, और कोई उसमें से क्रोध का व्यक्त होना मानता है। आज इसी के संबंध में हमें पाठकों से दो-दो बातें करनी हैं।

यह पद्य साहित्यदर्पण में भी आया है, और इसके प्राचीन तथा सुप्रतिष्ठित संस्कृत-टीकाकार श्रीरामचरण-तर्कवागीशजी ने इससे 'निर्वेद' का अभिव्यक्त होना स्वीकार किया है। केवल इन्हीं ने नहीं, काव्यप्रकाश के अनेक टीकाकारों ने भी इसमें निर्वेद को ही व्यंग्य माना है। बहुमत इसी पक्ष में है। क्रोध की व्यंजना माननेवालों की संख्या तो शायद एक-दो से आगे न बढ़ सकेगी। इस दशा में, आजकल के 'वोटयुग' में, अंतिम पक्ष का दुर्बल समझा जाना स्वभावसिद्ध है। हमने अपनी टीका में अल्प मत का पक्ष लिया है, और साथ ही इस पद्य में अनेक प्राचीन आचार्यों द्वारा माने गए 'विधेयाविमर्श'-नामक दोष को भी अस्वीकार किया है। क्रोध की व्यंजनीयता के संबंध में तो कुछ उपपत्ति भी दिखाई है, परंतु इस दोष को अस्वीकार करते हुए कोई कारण नहीं बताया। विद्यार्थियों को पढ़ाते समय तो उसका उपपादन किया, परंतु टीका में किसी युक्ति या तर्क का उल्लेख नहीं किया।

आजकल 'माधुरी' के द्वारा हमारी टीका की चर्चा बहुत दिनों से चल रही है, अतः कई सज्जनों ने इसके संबंध में हमसे पत्र द्वारा प्रश्न किए हैं। ये प्रश्न किसी दुर्भाव से प्रेरित होकर, उद्दंडतापूर्वक नहीं किए गए हैं, बल्कि बड़ी नम्रता के साथ केवल जिज्ञासु-भाव से शिष्टतापूर्वक किए गए हैं। सर्वसाधारण की सुगमता के लिये हम उनका उत्तर 'माधुरी' ही द्वारा प्रकाशित करना उचित समझते हैं। विचारणीय पद्य इस प्रकार है—

"न्यक्कारोऽयमेव मे यदरयस्तत्राऽप्यसौ तापसः
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः।
धिग्धिक् राक्षसजीवितं प्रबोधितवतः किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामटिका विलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः॥"

राम-रावण-युद्ध के समय मेघनाद और कुंभकर्ण के मारे जाने के बाद जब प्रधान पुरुषों में रावण ही अकेला रह गया था, उस समय उसने यह पद्य कहा था। इसका सीधा-सीधा अक्षरार्थ इस प्रकार है—

"सबसे पहले तो मेरा यही तिरस्कार है कि मेरे शत्रु हैं। मेरे शत्रु हों और फिर वे जीवित रहें, सबसे प्रथम तो मेरे लिये यही तिरस्कार की बात है। फिर शत्रु भी कौन? यह 'तापस' (भिखमंगा) राम। फिर वह भी कहीं दूर नहीं, यहीं सिर पर (लंका में) मौजूद!! न केवल मौजूद है, बल्कि राक्षसों का बीज नाश कर रहा है। और रावण के जीते-जी यह सब हो रहा है!!! इंद्रजित् (मेघनाद) को धिक्कार है। सोते से जगाए हुए कुंभकर्ण से भी कुछ न बना, और स्वर्गरूपी क्षुद्र ग्राम के लूट लेने-मात्र से व्यर्थ फूली हुई ये मेरी भुजाएँ भी व्यर्थ हैं।

यह तो हुआ इस पद्य का अक्षरार्थ। अब सोचना यह है कि रावण के इस प्रकृत कथन से उसके हृदय का क्रोध प्रकट होता है या निर्वेद?

साहित्य और सब शास्त्रों से कठिन है। अन्य शास्त्रों में तो शब्द और उसके वाच्य-अर्थ से काम चल जाता है। यदि आपको किसी पंक्ति का वाच्यार्थ आ गया, तो आप उसके ज्ञाता हो गए। अन्यत्र अभिधावृत्ति का सबसे अधिक आदर है। जो बात स्पष्ट शब्दों में साफ़-साफ़ कह दी है, वह सबसे पुष्ट और सर्वाधिक प्रामाणिक समझी जाती है, परंतु साहित्य में यह बात नहीं। यहाँ अभिधा की कोई क़द्र नहीं। वह ग्राम्य-वृत्ति कहाती है। "देवदत्त के हृदय में इंदिरा को देखकर अनुराग उत्पन्न हुआ और इंदिरा देवदत्त को प्रेम-पूर्ण दृष्टि देखकर लज्जित हो गई" यह इतनी-सी बात यदि इसी तरह कह दी जाय, तो साहित्य-शास्त्र में इसका कहनेवाला गँवार समझा जायगा। यह इतिहास में लिखा जाय, तो ठीक हो सकता है; परंतु काव्य में इसका आदर नहीं हो सकता। 'अनुराग' और 'लज्जा' यदि काव्यों में कोई दिखाना चाहे, तो उसे इनका नाम हर्गिज़ न लेना चाहिए, बल्कि इन दोनों की कारण-सामग्री की ओर इशारा करके उसके कार्यों का वर्णन करना चाहिए, जिससे व्यंजनावृत्ति के द्वारा लज्जा और अनुराग का भाव श्रोता के हृदय में भासित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय ! जिस तरह सभ्य-समाज में नंगा शरीर दिखाना अभद्रता समझा जाता है, उसी प्रकार काव्य में वर्णनीय भाव को लक्षणावृत्ति—अभिधा—के द्वारा बोधित करना अनुचित समझा जाता है। झीने पट की ओट से छन-छनकर झलकनेवाली कमनीय-काय कांति के समान व्यंजना के द्वारा चमकनेवाले भावों का ही यहाँ समादर है। दूसरे शास्त्रों में शब्द और उनका अर्थ पढ़ा जाता है, परंतु साहित्य में उस पर कोई आस्था नहीं, यहाँ तो वक्ता का हृदय पढ़ा जाता है। उलटे शब्दों से सीधा और सीधे शब्दों से उलटा मतलब निकाला जाता है। 'अहह नहि नहि' इत्यादिक से स्वीकारोक्ति समझी जाती है, और 'उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते' से बोद्धव्य का घोर अपकारी तथा अत्यंत नीच होना समझा जाता है। फिर यह नियम नहीं कि हर जगह ऐसा ही हो। बिलकुल भोलेपन की सीधी-सच्ची, सरल और स्वाभाविक बात भी कहीं-कहीं अद्भुत चमत्कार दिखाती है। इसी से तो कहते हैं कि साहित्य अन्य सब शास्त्रों से कठिन है। यहाँ न सीधा लिया जाय, न उलटा। शब्द की नहीं, बल्कि उसके कहनेवाले के हृदय की जाँच करनी पड़ती है। वक्ता के मन के अंतस्तल में घुसकर यह देखना पड़ता है कि जो कुछ यह कह रहा है, वह इसके मनोगत कौन-से भाव का कार्य हो सकता है। उसका कार्य-कारण भाव किस प्रकार सुसंगत हो सकता है। इस प्रकरण में, इस दशा में, ऐसी अवस्था के वक्ता के मुख से, इस प्रकार, इस रूप में निकली वचनावली उसके कौन-से मनोभाव की द्योतक है, इस बात की पूरी परख कर सकनेवाली अप्रतिहत प्रतिभा जिसे प्राप्त नहीं, वह साहित्य-शास्त्र का अधिकारी नहीं हो सकता।

एक बच्चा आपके सामने घबराया हुआ आता है। अब आपको यह जानना है कि इसकी घबराहट किस कारण से उत्पन्न हुई है। धुएँ के पास बैठे रहने से भी उसकी सूरत पर घबराहट के चिह्न दिखाई दे सकते हैं। भूख, प्यास के कारण भी ऐसा हो सकता है, कुत्ता पीछे दौड़ा हो या किसी आदमी ने ही उसे डरा दिया हो, तब भी घबराहट पैदा हो सकती है। उसका भाई किसी मेले-तमाशे में चला गया और इसे नहीं ले गया, यह उसके पीछे दौड़ा, परंतु उसे पा न सका, इससे भी घबराहट हो सकती है, और भी अनेक कारणों से बालक घबरा सकता है। यदि ईश्वर ने आपको प्रतिभा दी है, तो उस बालक की दशा देखकर और कुछ आगे-पीछे की बातों का अनुमान करके, बिना किसी से पूछे ही आप समझ सकेंगे कि बच्चे की घबराहट का कारण क्या है। अब इसी घटना को प्रकृति-परिशीलन में निष्णात कोई कवि यदि शब्दमय चित्र का रूप दे दे, तो आपको उसके वर्णन को ध्यानपूर्वक देखने से यह मालूम हो जायगा कि बच्चे की घबराहट का कारण क्या है। प्रकृति की परख में प्रवीण सच्चा कवि इस घबराहट का वर्णन करते हुए उन विशेषताओं का स्पष्ट उल्लेख करेगा, जिनसे उस घबराहट के कारण का—बच्चे के उस मनोभाव का, जिसने उसे विचलित किया है—साफ़-साफ़ अभिव्यंजन हो सके। जिसे इतनी नज़र नहीं, वह कवि कहाने योग्य ही नहीं।

आपने किसी को मुस्किराते देखा। अब आपको यह जानना है कि इस मुस्किराहट का कारण क्या है? अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में भी मुस्किराहट होती है। बच्चा खिलौना देखकर मुस्किराता है, और प्रोषितपतिका नायिका प्रिया-गमन की बात सुनकर मुस्किराती है। अन्यत्र भी मुस्किराहट होती है। वीर पुरुष रणभूमि में अपने विरोधी की अकड़ देखकर मुस्किराता है और वेश्या अपने संपन्न प्रेमी की ओर देखकर मुस्किराती है। मनस्वी पुरुष अपने ऊपर विपत्ति-पर-विपत्ति पड़ती देखकर अपने प्रारब्ध पर भी मुस्किराता है, परंतु इन सब अवस्थाओं की मुस्किराहट एक-सी नहीं होती। जिन्हें ईश्वर ने प्रतिभा और प्रज्ञा का प्रकाश दिया है, वे ही परख सकते हैं कि कौन-सी मुस्किराहट किस मनोभाव से उत्पन्न हुई है। यदि किसी सच्चे कवि ने कोई ऐसा ही चित्र खींचा, तो वहाँ इसका विचार करना होता है कि उस पात्र के हृदय के कौन-से भाव को व्यंजित कराने के लिये कवि ने वह प्रयत्न किया है। इसका ठीक-ठीक समझ लेना साधारण काम नहीं। यह ऐसा विकट विषय है कि बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानों की प्रौढ़ा बुद्धि भी इसमें पड़कर चक्कर खाने लगती है। बेचारी किशोरी और बाला की तो बिसात ही क्या, जो इसके सामने टिक सके। 'किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः' यह ऐसा विषय नहीं, जिस पर हर कोई 'ऐरा-ग़ैरा पचकल्यानी' उठकर तीरंदाज़ी के हाथ दिखाने लगे।

प्रस्तुत पद्य को ही देखिए। किसी की राय में इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वेद, ग्लानि, दैन्य और अनौजस्य व्यंजित होता है, और किसी की राय में यहाँ गर्व, अमर्ष और क्रोध की ध्वनि निकलती है। आज आपको इसी बात पर विचार करना है।

सबसे पहले आप यह समझ लीजिए कि 'दैन्य', 'ग्लानि' और 'निर्वेद' कहते किसे हैं।

'दुःखदारिद्र्याऽपराधादिजनितः स्वाऽपकर्षभाषणादिहेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो दैन्यम्'

'दैन्य'--मन की उस दशा का नाम है, जो दुःख, दरिद्रता या किसी भारी अपराध करने के कारण उत्पन्न होती है, और जिसके उत्पन्न होने पर मनुष्य अपनी हीनता, निकृष्टता या अकिंचित्करता का कथन करने लगता है।

'दौर्गत्यादेरनौजस्यं दैन्यं मलिनतादिकृत्' अपनी दुर्गति आदि के कारण जो ओजो हीनता (अनौजस्य) है, उसे 'दैन्य' कहते हैं। इसके कारण मनुष्य में मलिनता आदि उत्पन्न होती है।

'चिन्तौत्सुक्यमनस्तापाद्दौर्गत्याच्च विभावतः।
अनुभावात्तु शिरसोप्यावृत्तेर्गात्रगौरवात्
देहोपस्करणत्यागात् 'दैन्यं' भावं विभावयेत्।'

'दैन्य' भाव को प्रकाशित करने के लिये उसके कारण-रूप से चिंता, उत्कंठा, मानसिक ताप और दुर्गति आदि का वर्णन करना चाहिए, और उसके कार्यस्वरूप में शरीर के उपस्करण (वेष, भूषा, स्नान, भोजन आदि) का त्याग दिखाना चाहिए। जिस मनुष्य का दैन्य दिखाना हो, उसके वर्णन में पहले पूर्वोक्त कारणों में से एक या अनेक का वर्णन इस प्रकार करना चाहिए, जिससे उस (दैन्य) की स्वाभाविकता श्रोता को हृदयंगम हो जाय। सुननेवाला उस दैन्य को बनावटी न समझे, वह यह समझे कि 'दैन्य' उत्पन्न होने के पुष्कल कारण मौजूद हैं। इसके बाद उस दीनता के कार्यों का वर्णन होना चाहिए।

उदाहरण—

'हतकेन मया वनान्तरे वनजाक्षी सहसा विवासिता
अधुना मम कुत्र सा सती पतितस्येव परा सरस्वती।'

सीता का परित्याग करने के बाद दुःखित-हृदय राम के यह दैन्य-पूर्ण उद्गार हैं। वह कहते हैं कि मेरे जैसे 'हतक'=क्षुद्र-पातकी ने उस कमलनयनी को 'सहसा' (बिना विचारे ही) वनवास दे दिया। अब वह सती मुझे कहाँ मिल सकती है? मुझसे वह उसी प्रकार दूर हो गई, जैसे पतित पुरुष से वेदविद्या दूर हो जाती है। 'सहसा' कहने से मालूम होता है कि राम इस समय सीता को निर्दोष समझ रहे हैं, और उस निरपराधिनी को बिना विचारे घोरतम दंड दे डालने के कारण अपने को अपराधी और पातकी समझ रहे हैं। कमलनयनी कहने से सीता की सुकुमारता, भोलापन और सौंदर्यातिशय प्रतीत होता है। उसके ये गुण इस समय राम के हृदय में रह-रहकर शल्य की तरह मर्मांतिक वेदना पैदा कर रहे हैं। ऐसी भोली, सुंदर सुकुमारी को बिना किसी अपराध के 'वनांतर' घोर निर्जन वन में छोड़ देना कितना कठोर दंड है? और वह भी उसी के प्राणाधार के द्वारा, जिनके लिये उसने कैसी-कैसी घोर यातनाएँ सहीं...!!! इस पद्य के तीसरे चरण (अब वह सती मुझे कहाँ मिल सकती है) से राम के हृदय की उत्कंठा और साथ ही निराशा प्रतीत होती है। ये सब राम की दीनता के कारण हैं, और अपने को पतित की उपमा देना एवं क्षुद्र पातकी बताना उस दैन्य के कार्य हैं। मन में दैन्य उत्पन्न होने पर मनुष्य अपने को दीन, हीन, नीच, पतित समझने लगता है।

'रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादिसम्भवा।
ग्लानिर्निष्प्राणता कम्पकार्यानुत्साहतादिकृत्।'

परिश्रम, दुःख, भूख, प्यास आदि के कारण उत्पन्न हुई विशेष निर्बलता का नाम ग्लानि है। इससे देह का काँपना किसी काम में उत्साह न होना आदि होते हैं।

निर्वेद—

'तत्त्वज्ञानाऽऽपदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्।
दैन्यचिन्ताश्रु निःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासितादिकृत्'

तत्त्वज्ञान (आत्मज्ञान अथवा विषयों की नश्वरता के ज्ञान) के कारण, अथवा आपत्ति और ईर्ष्या आदि के कारण उत्पन्न हुई उस चित्तवृत्ति को 'निर्वेद' कहते हैं, जिसमें मनुष्य स्वयं = अपने-आप अपना अपमान करने लगता है। इस निर्वेद के कारण - दैन्य, चिंता, आँसू बहाना, दीर्घ निश्वास और विवर्णता (चेहरे का रंग उतर जाना) आदि कार्य उत्पन्न होते हैं।

जैसे—

'मृत्कुम्भबालुकान्ध्रपिधानरचनार्थिना।
दक्षिणावर्तशङ्खोऽयं हन्त चूर्णीकृतो मया'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पूर्व-जीवन को विषय-सुखों की साधना में नष्ट हुआ देखकर किसी निर्विण्ण पुरुष की यह उक्ति है। मिट्टी के घड़े के छेद को बंद करने के लिये मैंने अपना दक्षिणावर्त शंख चूर्ण कर डाला, यह कितने दुःख की बात है। यहाँ शरीर या वैषयिक सुख को मिट्टी का घड़ा कहा गया है, और जीवन को अमूल्य दक्षिणावर्त शंख बताया गया है। विषय-सुख के लिये जीवन नष्ट करना वैसा ही है, जैसा पुराने फूटे घड़े का छेद बंद करने के लिये अमूल्य गजमुक्ताओं को पीस डालना।

अच्छा, अब मतलब की बात पर ध्यान दीजिए। पूर्वोक्त पद्य ('न्यक्कारोह्ययमेव') की व्याख्या करते हुए श्रीरामचरणतर्कवागीशजी ने लिखा है—'जीवत्यहो रावणः' इत्यादिना व्यज्यमानेन स्वानौजस्य रूपदैन्येनानुभावेन संवलितं स्वावमाननं निर्वेदाख्यभावरूपोऽसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो ध्वनिः' इसका तात्पर्य यह है कि इस पद्य में रावण के हृदय का 'निर्वेद'-नामक भाव ध्वनित होता है। 'निर्वेद' का अर्थ है 'स्वाऽवमानन'=अपने-आप अपना तिरस्कार करना। तत्त्वज्ञान, आपत्ति और ईर्ष्या आदि के कारण यह भाव उत्पन्न होता है। यहाँ रावण के ऊपर आपत्ति पड़ी है। उसका पुत्र (इंद्रजित्) और भाई (कुंभकर्ण) मारे गए हैं। इसी विपत्ति के कारण उसे निर्वेद हुआ है। निर्वेद होने पर दैन्य, चिंता, अश्रुनिपात आदि होते हैं, सो प्रकृत पद्य में रावण ने अपना अनौजस्य हीनता, दीनता आदि कहकर अपना अपमान स्वयं प्रकट किया है, अतः यह दैन्य उसी निर्वेद का अनुभाव है। इस प्रकार विपत्ति निर्वेद का कारण है, और दैन्य उसका कार्य है। साहित्य में जिस भाव का वर्णन करना अभीष्ट होता है—उसका साक्षात् नाम नहीं लिया जाता; बल्कि उसके कारणों और कार्यों का वर्णन करके उसे व्यंजित करना पड़ता है। प्रकृत पद्य में भी निर्वेद का नाम नहीं है, वह ध्वनित होता है, और उसके कारण (विपत्ति) और उसके कार्य (दैन्य) का वर्णन स्पष्टरूप से किया गया है। इस पद्य में 'निर्वेद' माननेवाले लोगों का तर्क, दलील और उपपादन, जो कुछ है, बस यही है। इसी पर आज हमें विचार करना है।

'जीवत्यहो रावणः' इसी वाक्य से तर्कवागीशजी 'दैन्य' संवलित 'निर्वेद' का ध्वनित होना बताते हैं। यही इनका सबसे प्रधान सहारा है, परंतु देखना यह है कि इससे दैन्य या निर्वेद क्योंकर व्यंजित होता है। इसका अक्षरार्थ है कि 'आश्चर्य है कि रावण जी रहा है', अर्थात् रावण के जीते-जी एक तापस राक्षस-कुल का संहार कर रहा है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। अब सोचना यह है कि इस वाक्य से दीनता या दुःख किधर से प्रकट हुआ? किसी बड़े प्रसिद्ध योद्धा के घर में चोर घुसें, और माल लेकर चलने लगें, उस समय वह डपटकर कहे कि 'अरे मेरे जीते-जी ये क्षुद्र जीव मेरा माल लिए जा रहे हैं, ज़रा लाना तो मेरी तलवार!' तब बताइए कि आप क्या समझेंगे? आप इससे यह ध्वनि निकालेंगे कि वह योद्धा विपत्ति के कारण दीन होकर निर्वेद के आँसू बहा रहा है, या यह समझेंगे कि चोरों को अति तुच्छ समझकर उनके इस दुःसाहस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्हें अच्छी तरह दंड देने की तैयारी कर रहा है? रावण ने 'तापस' ('तपस्वी' नहीं) कहकर राम को अत्यंत क्षुद्रकाय (कष्ट-सहन करनेवाला) भिक्षुक बताया है, और एक ऐसे पुरुष के लंका में घुसकर (रावण के जीते-जी) राक्षस-वध करने पर आश्चर्य प्रकट किया है। इससे उसके हृदय की दीनता क्योंकर व्यंजित हुई?

जिस प्रकार मुस्किराहट और घबराहट अनेक कारणों से हो सकती है, न हर किसी मुस्किराहट से प्रसन्नता व्यंजित होती है, न हरएक घबराहट से कुत्ते का पीछे दौड़ना ही प्रतीत होता है। कहने को घबराहट और मुस्किराहट एक ही है, परंतु अवस्था-भेद से, देश, काल, आदि की परिस्थिति के अनुसार हरएक मुस्किराहट और घबराहट का व्यंग्य भिन्न-भिन्न होता है, इसी प्रकार एक ही शब्द वक्ता और बोद्धव्य की अवस्था के भेद से अनेक मानसिक भावों का व्यंजक होता है। एक ही शब्द से काम, क्रोध, वत्सलता, आतुरता, भक्ति और आत्म-समर्पण आदि अनेक भाव व्यक्त होते हैं। रास-क्रीड़ा के समय जब गोपियों ने 'कृष्ण' कहकर पुकारा था, तब इस शब्द से अनुराग प्रकट हुआ था; परंतु कृष्ण के जंगल में अंतर्धान हो जाने पर जब उन्होंने घबराई हुई अवस्था में 'कृष्ण' कहा था, तब इससे आर्ति व्यंजित हुई थी। मथुरा में अखाड़े के भीतर खड़े चाणूर ने जब यही शब्द कहा था, तो उससे अनादर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त हुआ था, और वहीं कंस ने ललकारते हुए जब इसी शब्द का उच्चारण किया था, तो इससे क्रोध प्रकट हुआ था। द्रौपदी ने भरी सभा में अपनी लाज जाते समय जब यही शब्द कहा था, तो इससे आतुरता ध्वनित हुई थी, और ग्राह के फंदे में फँसे गजराज ने जब यह कहा था, तो इससे भय और उद्वेग भी प्रकट हुए थे। यशोदा ने जब यही कहा था, तो वत्सलता व्यंजित हुई थी, और नारद ने जब इसका उच्चारण किया था, तब इसी से परम भक्ति और आत्म-समर्पण की ध्वनि निकली थी। शब्द एक ही था, परंतु कहनेवाले के ढंग से और उसके गले की काकु (टोन Tone) की भिन्नता के कारण सुननेवालों ने फ़ौरन् समझ लिया था कि 'कृष्ण' कहनेवाले के मन में कौन-सा भाव उदय हो रहा है। परंतु यह वहीं संभव है—जहाँ असली कहनेवाला सामने हो। काग़ज़ पर लिखे केवल 'कृष्ण' शब्द को देखकर यह कहना संभव नहीं कि इसके वक्ता के हृदय में कौन-से भाव का आविर्भाव हुआ है—उसके लिये कुछ और परिस्थिति के जानने की भी आवश्यकता होगी। असली वक्ता को देखकर जो बहुत-सी बातें प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञात हो सकती हैं, उन्हें यहाँ किसी शब्द के द्वारा जान लेने पर ही आप असली भाव समझ सकेंगे। जब तक आपको यह नहीं मालूम हो कि गोपियों ने रास-क्रीड़ा के समय यह शब्द ('कृष्ण') कहा है, या जंगल में कृष्ण के अंतर्धान होने पर, तब तक आप इसके उस असली व्यंग्य का पता न पा सकेंगे।

अब 'जीवत्यहो रावणः' को देखिए। यह वाक्य दैन्य की दशा में भी बोला जा सकता है, और क्रोध की दशा में भी कहा जा सकता है। और भी अनेक अवस्थाओं में कहा जा सकता है, अतः केवल इतने ही वाक्य को लिखा देखकर किसी व्यंग्य का फ़ैसला नहीं किया जा सकता। इसके लिये कुछ और परिस्थिति पर भी ध्यान देना होगा। हाँ, यदि ख़ास रावण के ही मुँह से इसके सुनने का मौक़ा मिलता, तो अलबत्ता बिना किसी दूसरी सहायता के व्यंग्यार्थ का बोध हो सकता था। परंतु यहाँ तो केवल कवि की प्रतिभा से उत्थापित वाक्य काग़ज़ पर लिखा रक्खा है, अतः इधर-उधर दृष्टि दौड़ाना आवश्यक है।

यह एक साधारण नियम है कि विपत्ति के समय मनुष्य में (बल्कि प्राणि-मात्र में) दीनता का संचार होने लगता है, परंतु इस नियम का अपवाद भी है। ऐसे लोग भी हैं (यद्यपि कम हैं), जो बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी नहीं घबराते। अभी कल की बात है, जब सिक्खों के किशोर बालक दीवाल में चुन दिए जाने पर भी अपनी आन से नहीं डिगे। अब हमें यह देखना है कि कवि ने प्रकृत पद्य में रावण को किस रूप में चित्रित किया है, उसे विपत्ति पड़ने पर 'दैन्य' में निमग्न हो जानेवाले साधारण प्राणियों के समान अंकित किया है, या बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों की आँधी और घोर-से-घोर शत्रुओं के घन-गर्जन में पर्वत की तरह अटल रहनेवाले विकट वीर के रूप में चित्रित किया है। वाल्मीकीय रामायण में जो रावण का चित्र खींचा है, वह तो असाधारण वीर का ही है। जब रावण से सीता के लौटा देने और राम से संधि कर लेने की बात कही गई, तो उसने जवाब दिया—

'अपि द्विधा विभज्येय न नमेयं तु कस्यचित्'

उसने अपनी तुलना फ़ौलाद से की, और कहा कि बीच से दो टूक भले ही हो जाऊँ, परंतु किसी के सामने झुक नहीं सकता। प्रकृत पद्य में कैसा भाव है, यह भली प्रकट होगा।

अब इसी के साथ ज़रा 'दैन्य' की दशा को भी याद कर लीजिए। हम 'दैन्य' का लक्षण और उदाहरण दे चुके हैं। दैन्य 'निर्वेद' का अनुभाव है, और 'निर्वेद' का अर्थ है 'स्वाऽवमानन' अर्थात् स्वयं अपना अनादर करना। इस दशा में मनुष्य अपने दोषों को देखने लगता है, और अपने दोषों के कारण जिस-जिसको कष्ट भोगना पड़ा, उसके ऊपर दया या पश्चात्ताप करके दुःखी होने लगता है। राम ने जब सीता को बिना विचारे वनवास दिया, तो उन्हें निर्वेद हुआ; और उसमें उन्होंने अपने को पतित तथा पतित कहा, एवं सीता की सरलता, निरपराधता आदि का ध्यान करके उनका दुःख असीम हो गया। आप समझते हैं कि मेघनाद और कुंभकर्ण के मरने पर यदि रावण को निर्वेद हुआ होता, तो वह क्या कहता? वह कहता—'मैं अत्यंत नीच और क्षुद्र हूँ। मैंने काम के वश में पड़कर पराई स्त्री चुराई, और इस नीचता के विचार से अपने इंद्रविजयी मेघनाद-जैसे पुत्र और त्रैलोक्य-विजयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंभकर्ण-जैसे भाई से हाथ धोया। इन बेचारों को मैंने बेक़सूर कटवा दिया। इस सब अनर्थ का मूल मैं ही हूँ। मैंने बुढ़ापे में कामाविष्ट होकर अपना वंश नष्ट कराया, और अपने माथे पर अमिट कलंक का टीका लगवाया' इत्यादि। यदि रावण ने ऐसा कहा होता, तो निश्चय ही उसका 'दैन्य' प्रकट होता। यह भी प्रकट होता कि उसके हृदय पर आपत्ति का प्रभाव पड़ा है, और यह भी मालूम होता कि उसे वास्तविक 'तत्त्व का ज्ञान' हो गया है। उस दशा में इसे 'निर्वेद' मानने में किसी को इनकार नहीं हो सकता था। परंतु प्रकृत पद्य की परिस्थिति तो एकदम भिन्न है। आप इसे आदि से अंत तक एक-एक अक्षर करके बड़े ध्यान से पढ़ जाइए। आपको एक भी अक्षर (पद की तो बात ही क्या) ऐसा नहीं मिलेगा, जिससे यह सिद्ध हो कि रावण अपने को दीन, हीन, या नीच बता रहा है। कहीं भी आपको यह प्रतीत नहीं होगा कि वह अपना अनादर कर रहा है 'स्वावमानन' का यहाँ कहीं नाम-निशान तक नहीं है। फिर यह 'निर्वेद' कैसा? फिर जिन्होंने इसी के लिये अपने प्राण गँवाए हैं, जो इसके औरसपुत्र और सहोदर भाई थे, उनके प्रति सहानुभूति का एक शब्द भी यह नहीं कह रहा है? उनके लिये रोना और दुःखी होना तो दूर रहा, यह तो उन्हें कठोरतम शब्दों में साफ़-साफ़ 'धिक्कार' रहा है!! 'धिग्-धिक् शक्रजितं' कहनेवाले के हृदय में आप 'निर्वेद' की तलाश करने चले हैं? कुंभकर्ण तक को निकम्मा और बेकार कहनेवाले के मन में आप 'दीनता' टटोलने चले हैं? जो स्वर्ग को क्षुद्र ग्राम से अधिक नहीं समझता, और उसकी स्वच्छंद लूट को भी कोई महत्त्व नहीं देता, जो परशुराम और बालि-जैसे महावीरों को निग्रह करनेवाले दिव्याऽस्त्रसंपन्न राम-जैसे अतुलबलशाली शत्रु को भी 'क्षुद्र तापस' समझ रहा है, क्या आप उसके हृदय में 'दीनता' का पता पाने की आशा करते हैं? जो शत्रुओं की सत्ता को भी अपना तिरस्कार समझता है, उसके हृदय में दीनता है या गर्व? जो 'मैं' कहकर अपने सब प्राचीन चरित्रों और सकल दिक्पाल-विजयों की याद दिला रहा है, उसका हृदय अभिमान से पूर्ण कहा जा सकता है, या दीनता से अभिभूत? जिसका आत्मोत्कर्ष यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा है कि भाई और पुत्र के साथ अपने शरीर के अंगभूत 'भुजों' को भी पृथक् पुरुष की तरह फटकार रहा है, क्या वह दीन है? यह संभव है कि रावण के वंश-नाश की भावना करके साहित्यदर्पण के टीकाकार श्रीरामचरणतर्कवागीशजी के मन में 'दैन्य' और 'निर्वेद' का दौरा हो गया हो, परंतु हमें यहाँ उनके हृदय की धड़कन की परीक्षा नहीं करनी है। हमें तो राक्षसराज रावण के मनस्वी मानस की तह का पता लगाना है, और यह देखना है कि कवि ने उसे यहाँ किस रूप में अंकित किया है।

दैन्य का उदाहरण, जो अभी हम दे चुके हैं, आपको याद होगा। यदि राम सीता-परित्याग पर खेद और दुःख प्रकाशित करने के बजाय यह कहते कि 'धिक्कार है उस मूर्ख सीता को, जो मुझे छोड़कर चलती बनी, और लानत है नालायक़ लक्ष्मण को, तथा सौ-सौ बार धिक्कार है मेरी इन व्यर्थ भुजाओं को, जो ज़रा-सी उस लंका नाम की तुच्छ ग्रामटिका के (जिसमें रावण, कुंभकर्ण आदि थोड़े-से कीड़े-मकोड़े और कुछ चरकटे रहते थे) विजय पर मोटर के टायर की तरह फूलकर कुप्पा हो रही हैं' इत्यादि तो आप क्या समझते? अपने हृदय पर हाथ रखकर—'ख़ुदा को हाज़िर-नाज़िर जानकर'—सच-सच बताइए कि क्या आप उस दशा में इस वर्णन से 'दैन्य' और 'निर्वेद' का गंध भी पा सकते थे? अब हम तर्कवागीशजी को क्या कहें, और उनका नाम लेकर अक़्ल के पीछे लट्ठ लेकर दौड़नेवालों को क्या समझाएँ? यदि रावण के हृदय में निर्वेद का उदय हुआ होता, तो वह युद्ध करके मरता, या सब कुछ छोड़-छाड़ के लँगोटा लगाकर जंगल में तपस्या करता?

अच्छा, अब लगे हाथों ज़रा 'गर्व', 'अमर्ष', 'क्रोध' और 'असूया' को भी समझते चलिए।

"रूपधनावद्यादिप्रयुक्तात्मोत्कर्षज्ञानाधीनपराऽवहेलनं गर्वः।"

अपने रूप, विद्या, ऐश्वर्य, बल, बुद्धि आदि के उत्कर्ष का अति महत्त्व मानकर दूसरे को तुच्छ समझना 'गर्व' कहाता है। अब आप पूर्वोक्त पद्य को फिर ध्यानपूर्वक पढ़िए, और देखिए कि पहले ही वाक्य से—जिसमें रावण ने शत्रु-सत्ता को ही अपना तिरस्कार बताया है—कितना गर्व टपकता है। उसे अपने बल, पौरुष, ऐश्वर्य आदि का इतना गर्व है कि उसे देखते हुए वह अपने शत्रुओं का नाम सुनना भी अपने लिये अपमान-जनक समझता है। उसका कोई शत्रु हो, और फिर वह जीता रहे, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे बर्दाश्त नहीं। अब आप ही निर्णय करें कि इससे रावण का गर्व व्यंजित होता है, या उसकी दीनता द्योतित होती है। राम को तुच्छ समझना, स्वर्ग की लूट को क्षुद्र समझना, मेघनाद और कुंभकर्ण की वीरता को भी नगण्य समझना गर्व के सूचक हैं, या दीनता के ?

'परकृताऽवज्ञादिनानापराधजन्यो मौनवाक्यारुष्यादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽमर्षः'

दूसरे के द्वारा किए गए अपमान या अपराध के कारण उत्पन्न हुई मन की उस उग्रवृत्ति को 'अमर्ष' कहते हैं, जिसमें मनुष्य या तो एकदम चुप हो जाता है, अथवा कठोर शब्द कहने लगता है। आप इस लक्षण को पूर्वोक्त पद्य से ज़रा मिलाकर देखिए तो सही।

'परोत्कर्षदर्शनादिजन्यः परनिन्दादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽसूया।'

दूसरे का उत्कर्ष देखकर, उसे न सह सकने के कारण, उत्पन्न हुई उस चित्तवृत्ति का नाम 'असूया' है, जिसके कारण मनुष्य दूसरे की निंदा आदि करने लगता है। यह संभव नहीं कि रावण ने राम के किये बालि-वध, परशुराम का निग्रह तथा समुद्र में सेतु-बंधन आदि की बात सुनी ही न हो। और-तो-और मेघनाद और कुंभकर्ण के वध की बात वह कैसे भुला सकता था ? परंतु 'असूया' के कारण वह राम का उत्कर्ष सहन न कर सका, और 'क्षुद्र तापस' कहकर उनका अनादर करने लगा। 'तत्राप्यसौ तापसः' इस वाक्य से उसकी 'असूया' प्रकट होती है।

क्रोध रौद्र-रस का स्थायिभाव है। शत्रु उसका आलंबन है, और शत्रु की चेष्टा से वह उद्दीप्त होता है। राम रावण के शत्रु हैं, और उनकी चेष्टा—कुंभकर्ण-वध, मेघनाद-वध और राक्षस-कुल-संहार, जिनका मुख्यतया वर्णन इस पद्य में है—रावण के क्रोध को प्रज्वलित करनेवाली प्रचुर सामग्री यहाँ मौजूद है। उग्रता, अमर्ष, असूया आदि क्रोध के अनुभाव हैं। क्रोध आने पर मनुष्य अपने उत्कर्ष का कथन तथा शत्रु का निरादर आदि करने लगता है। यह सब कुछ क्रोध की सामग्री प्रस्तुत होने के कारण प्रकृत पद्य से रावण का क्रोध ही प्रधानतया ध्वनित होता है, परंतु वह इतना परिपुष्ट नहीं हो पाता कि उसे रौद्र-रस की संज्ञा दी जा सके। यदि राम सामने होते, युद्ध-स्थल में यह घटना घटती, राम-रावण का संग्राम हो रहा होता, और रावण के भ्रूभंग, ओष्ठ-दंशन, बाहुस्फोटन, आवेग, रोमांच और गर्जन-तर्जन का इस पद्य में वर्णित होते, तब इससे रौद्र-रस की अभिव्यक्ति हो सकती थी, परंतु यह सब साधन न होने के कारण केवल क्रोध इसका व्यंग्य है, रौद्र-रस नहीं।

साहित्य के एक अतिप्राचीन आचार्य जिन्हें काव्य-प्रकाशकार-जैसे सरस्वती के अवतार अपने पूज्य गुरु के सदृश समझते हैं, और आज तक के सभी अलंकार-शास्त्र के आचार्य, जिनका चरण-चुंबन करते आए हैं, उन श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्य ने भी इस पद्य में क्रोध की ही ध्वनि मानी है, परंतु हमारा यह मतलब हर्गिज़ नहीं है कि एक प्राचीन आचार्य के अनुकूल होने के कारण आप हमारी बात मान लीजिए। साहित्य-शास्त्र व्याकरण और वेद की तरह परतंत्र नहीं है। न तो यहाँ पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि की तरह पद-पद पर किसी के नाम की दुहाई दी जाती है, और न वेद की तरह किसी मात्रा, बिंदु, विसर्ग का परिवर्तन अनर्थ ही पाप समझा जाता है। यह तो एक प्रकार का तर्क है। यहाँ युक्ति, तर्क, कल्पना और प्रकृति-परिशीलन के आधार पर दिए गए प्रमाणों का प्राबल्य है। काम-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र और शब्द-शास्त्र सभी से यहाँ काम पड़ता है, परंतु प्रकृति के विरुद्ध किसी की बात न सुनी जाती। हम अपने मत को किसी आचार्य की दुहाई देकर स्वीकार कराना कदापि नहीं चाहते। यदि आपको ईश्वर ने प्रतिभा और विवेक के नेत्र दिए हैं, तो हमारी दी हुई युक्तियों और उपपत्तियों पर विचार कीजिए। यदि हमारी बात समझ में आए, तो मानिए, न आए तो मानिए। 'ध्वन्यालोक' के रचयिता श्रीआनंदवर्धनाचार्य ने भी इस पद्य में क्रोध ही व्यंग्य माना है। उसी की टीका में अभिनवगुप्तपादाचार्य ने उसे स्पष्ट किया है। हम तो इस पद्य के संबंध में यहाँ तक कहा है कि यदि इसके तिल-तिल भर टुकड़े करके देखा जाय, तो भी इसमें उत्तरोत्तर व्यंजना का चमत्कार बढ़ता ही जाय। परंतु यहाँ उन सब बातों का छेड़ना शक्य नहीं। इसके लिये संस्कृत बिना पढ़े काम नहीं चल सकता। यहाँ तो हमें इस संपूर्ण पद्य के व्यंग्य 'निर्वेद' और 'क्रोध' के ऊपर दो-चार बातें कहनी थीं, सो कह चुके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि लेख कुछ लंबा हो गया है, परंतु 'विधेयाविमर्श' के विषय में भी यहीं कुछ कह देना आवश्यक है। यदि आलस्य-वश हमने इसे यों ही छोड़ दिया, तो फिर कौन इस पर लिखेगा, और कौन पढ़ेगा। यह ऐसा विषय है कि आज तक के उपलब्ध किसी भी साहित्य-ग्रंथ में इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है। अच्छा, सुनिए। 'विधेयाऽविमर्श' शब्द 'विधेय' और 'अविमर्श' इन दो शब्दों के समास से बना है। 'विमर्श' का अर्थ है विचार या परामर्श। विधेय का जहाँ प्रधानरूप से परामर्श न किया जाय, वहाँ यह दोष होता है। वाक्य में दो अंश होते हैं। एक उद्देश्य और दूसरा विधेय। विधेय इनमें प्रधान होता है। वाक्य के द्वारा जो अपूर्व बोध्य होता है, उसका निर्देश इसी (विधेय) से होता है। यदि इसको अपने स्थान से हटाकर उद्देश्य के स्थान पर बिठा दिया जाय, तो इसका प्राधान्य छिप जाता है, या नष्ट हो जाता है। उस दशा में 'विधेयाविमर्श' दोष होता है। राजा की शोभा सिंहासन पर बैठने में ही है। यदि उसे वहाँ से हटाके चोबदार की जगह खड़ाकर दिया जाय, तो अवश्य खटकेगा। इसीलिये यह कहा है—'अनुवाद्यमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत्। नह्यलब्धास्पदं किञ्चित्कुत्रचित्प्रतितिष्ठति'। 'अनुवाद्य' अर्थात् उद्देश्य का निर्देश बिना किए विधेय नहीं बोलना चाहिए, यही इस पद्य का भावार्थ है। पहले उद्देश्य कहना चाहिए, उसके बाद विधेय। उद्देश्य से पहले विधेय नहीं बोलना चाहिए। 'देवदत्त जाता है' इस वाक्य में 'देवदत्त' उद्देश्य है, और जाना विधेय है, अतः 'जाता है' इसके पूर्व 'देवदत्त' का बोलना आवश्यक है। यदि इसे उलटकर 'जाता है देवदत्त' इस प्रकार कर दिया जाय, तो 'विधेयाविमर्श' दोष होगा। प्रकृत पद्य में 'अयमेवन यक्कारः' इस प्रकार कहना उचित है। 'अय मेव' से वर्तमान दशा का अस्तित्व सूचित करके उसमें न्यक्कारत्व का आरोप किया गया है, और वही यहाँ विधेय है, अतः इस विधेय 'न्यक्कारः' के पूर्व 'अयमेव' इस उद्देश्य को अवश्य आ जाना चाहिए। लेकिन उक्त पद्य में यह क्रम उलट गया। 'न्यक्कारः अयमेव' इसमें विधेय का निर्देश पहले हुआ, और उद्देश्य पीछे पड़ गया, अतः यहाँ 'विधेयाविमर्श' दोष हुआ।

यह ठीक है कि उद्देश्य को विधेय से पूर्व आना चाहिए, परंतु यह साधारण नियम है, और जिस प्रकार अन्य समस्त नियमों के अपवाद हुआ करते हैं, उसी तरह यह भी अपवाद से ख़ाली नहीं। राजा घर के भीतर जिस नियम से बैठा करता है, शिकार या रण-स्थल में उसका उस तरह बैठा रहना संभव नहीं। वह अपवाद का स्थल है, साधारण नियम का नहीं। राजा जब अपने मन्त्री आदि के विवाह में सम्मिलित होता है, तब उसे भी वर के पीछे चलना पड़ता है। वहाँ उसका साधारण नियम नहीं चलता। उद्देश्य विधेय की स्थापना के संबंध में भी यही बात है। अनेक ऐसे स्थल होते हैं, जहाँ विधेय का उद्देश्य के पूर्व रखना अनिवार्यरूप से आवश्यक होता है। यदि वैसा न किया जाय, तो वाक्य का तात्पर्य ही भ्रष्ट हो जाय। जो कुछ भाव अभिव्यक्त करना है, वह हो ही न सके। विधेय का प्राधान्य उसके उद्देश्यानंतर निर्देश में ही नहीं है, बल्कि समुचित स्थान पर उसका निर्देश करने में है। जहाँ विधेय के रखने से अभीष्ट भाव अभिव्यक्त हो सकता है, वहाँ से उसके हटाने में 'विधेयाविमर्श' होता है, केवल आगे-पीछेमात्र से नहीं। आगे-पीछे की बात एक साधारण नियम है, परंतु विशेष स्थलों में इसका परिवर्तन अनिवार्य होता है।

उदाहरण—

'देवदत्तो गच्छति' (देवदत्त जाता है) इस वाक्य में उद्देश्य विधेय के साधारण नियम की बात हम कह चुके हैं। अब विशेष स्थल पर ध्यान दीजिए। आपने देवदत्त को कहीं भेजा, परंतु आपको संदेह बना रहा कि यह शायद जाए या न जाए। उस दशा में कोई आदमी आपका संदेह दूर करने के लिये 'गच्छति देवदत्तः' इस प्रकार बोलेगा। यहाँ 'गच्छति'—जो विधेय है—उसके पूर्व निर्देश से उसमें निश्चितता सूचित होती है, और 'गच्छत्येव देवदत्तः' ऐसा तात्पर्य निकलता है, और 'मास्म सन्देहं कार्षीः' यह इसका व्यंग्य है, जो कि काकु-विशेष से परिस्फुट होता है। यदि आपको संदेह होने लगे कि देवदत्त मुझसे लिया हुआ ऋण चुकाएगा या नहीं, तब समाधान करनेवाला यही कहेगा कि 'दास्यत्यसौ'। इन वाक्यों में 'दास्यति' और 'गच्छति' को यदि कर्तृपद के बाद रक्खा जाय, तो तात्पर्य ही भ्रष्ट हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा। यहाँ विधेय का पूर्व निर्देश करने में ही उसका प्राधान्य है। वहीं रहकर वह अपने व्यंजनीय अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं।

कहीं-कहीं विधेय की अविलंब कार्यता सूचित करने के लिये और उद्देश्य में उसकी हेतुता का प्रतिपादन करने के लिये विधेय का उद्देश्य से पूर्व में रखना आवश्यक होता है। जैसे—

'गृह्यतां गृह्यतांपापो बध्यतां बध्यतां शठः।
याज्ञसेनी हरः क्षुद्रो न्यक्कारो नोऽस्य जीवनम्।'

पांडवों की अनुपस्थिति में वन में से द्रौपदी को पकड़कर जब जयद्रथ भागा था, तब उसका पता पाकर पांडवों ने उक्त वाक्य कहे थे। यहाँ 'गृह्यतां' विधेय है, परंतु ग्रहण क्रिया की अति शीघ्र आवश्यकता सूचित करने के लिये उसे उद्देश्य से पूर्व रक्खा गया है। 'पापः' से हेतुता भी सूचित होती है। 'पापत्वात् अयं त्वरिततरं गृह्यताम्' (यह जयद्रथ पापी है, अतः इसे अति शीघ्र पकड़ो) यह वक्ता का तात्पर्य है। यदि इस वाक्य को बदल दिया जाय और उद्देश्य को विधेय से पूर्व रख दिया जाय, तो असली तात्पर्य ही नष्ट हो जाय। उससे यह व्यंग्य अर्थ निकल ही न सके। उत्तर वाक्य में भी शठत्व में वध और बंधन का हेतुत्व और वध-बंधन का अतिशीघ्रसंपाद्यत्व छिपा है। वह तभी प्रकट हो सकता है, जब विधेय को उद्देश्य से पूर्व में निर्दिष्ट किया जाय।

कहीं-कहीं विधेयगत वैशिष्ट्य और अतिशय का सूचन करने के लिये भी उसका पूर्व निर्देश किया जाता है। जैसे इसी पद्य के चतुर्थ चरण में किया गया है। 'नः' के बहुवचन से अपनी कुलीनता, शक्तिमत्ता, तेजस्विता देवांशता आदि के द्वारा अपना महत्त्व सूचित किया है। और 'अस्य' के एकवचन से जयद्रथ की क्षुद्रता तथा नीचता व्यंग्य है, और 'याज्ञसेनी' शब्द से द्रौपदी की पवित्रता व्यंग्य है, एवं इसी कारण—एक अति क्षुद्र नीच के द्वारा अपने-जैसे महामहिमाशाली की यज्ञोद्भूत पत्नी के हरण का अति अनौचित्य होने के कारण—उसका जीता रहना भी पांडवों का तिरस्कार है। उसे अवश्य मारना ही चाहिए, यह व्यंग्य है। यदि यहाँ 'अस्य जीवनं नो न्यक्कारः' कहा जाता, तो 'जीवन' में न्यक्कारत्व का आरोप प्रतीत होता, जो कि रूपक अलंकार का बीज है। परंतु 'न्यक्कारः' का पूर्व निर्देश करने से आरोप के बजाय अध्यवसान की प्रतीति होने लगती है। उद्देश्य का पूर्व निर्देश होने से उसका पूर्ण स्वरूप सामने आ जाने के कारण विषय (उपमेय) निगीर्ण नहीं हो पाता, और अनिगीर्ण विषय में 'जीवन' और 'न्यक्कार' का अभेद प्रतीत होने से आरोप होता है, परंतु 'न्यक्कारः' के पूर्व निर्देश से विषयी की पूर्ण प्रतीति और विषय का निगरण हो जाता है, अतः आरोप के बजाय यहाँ अध्यवसान प्रतीत होता है, जो कि अतिशयोक्ति अलंकार का बीज है। इस प्रकार का अतिशय जहाँ बोधित करना अभीष्ट होता है, वहाँ विधेय को उद्देश्य से पूर्व रखना आवश्यक होता है। यदि आप किसी स्त्री के शील, सौंदर्य आदि का वर्णन करें, तो 'इयं गेहे लक्ष्मीः' कहकर काम चला सकते हैं। इससे उस स्त्री में लक्ष्मीत्व का आरोप सिद्ध होता है, परंतु यदि किसी ने उसी स्त्री को कुरूपा बताया, और अमंगलकारिणी कहा, तो आपका काम केवल इस लक्ष्मीत्व के आरोप से न चल सकेगा। वहाँ आपको कहना होगा 'लक्ष्मीःखल्वियं गेहे'। यहाँ 'लक्ष्मी' के पूर्व निर्देश से लक्ष्मीत्व आरोपित नहीं बल्कि अध्यवसित होता है, और इससे निंदा करनेवाले का झूठा होना, उस पर फटकार, और आपकी तबियत का जोश भी ध्वनित होने लगता है। यह बात पहले वाक्य से व्यक्त नहीं होती। इस प्रकार के और भी अनेक स्थल होते हैं, जहाँ विशेष कारण-वश विधेय का पूर्व निर्देश आवश्यक होता है, और यदि वैसा न किया जाय, तो उसका प्राधान्य नष्ट होता है। जिन लोगों ने 'न्यक्कारोह्ययमेव' इस पद्य में विधेयाविमर्श दोष बताया है, उन्होंने साधारण नियम और सामान्य दशा को ही ध्यान में रक्खा है। उस दशा में वह दोष माना ही पड़ेगा, परंतु यदि पूर्वोक्त विशेषताओं पर ध्यान दिया जाय, जो कि इस अत्युत्कृष्ट व्यंग्य प्रधान पद्य का प्राण हैं, तो फिर यह दोष यहाँ नहीं रहता, और 'न्यक्कारोह्ययमेव' में अतिशयोक्ति के द्वारा न्यक्कार का अभेद प्रतीत होता है, जिसकी पुष्टि 'मे', 'अस्यः', 'तस्य' आदि अनेक पद करते हैं, जिनके व्यंग्य का वर्णन साहित्यदर्पण आदि अनेक ग्रंथों में मौजूद है।

'वृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः' इस अंश में भी साहित्य अनेक ग्रंथकारों ने 'विधेयाविमर्श' माना है। 'किमेभि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे वृथात्व ही विधेय है, फिर उसको समास के भीतर 'वृथोच्छूनैः' इसमें) डालकर उपसर्जन क्यों किया ? यह न केवल पुनरुक्ति हुई, बल्कि 'विधेयाविमर्श' भी हो गया। हम इस मत से सहमत नहीं। 'वृथोच्छूनैः' के 'वृथा' शब्द ने 'उच्छूनत्व' का वृथात्व बताया है, और 'किमेभिर्भुजैः' ने भुजों का वृथात्व बताया है, अतः यहाँ कोई दोष नहीं। अन्य के वृथात्व से किसी अन्य का वृथात्व कैसे पुनरुक्त हो जायगा ? 'किमेभिः' से भुजों का वृथात्व विधेय है, उच्छूनत्व का नहीं। 'वृथोच्छूनैः' में जो वृथात्व है, उससे भुजों से कोई संबंध ही नहीं। उसका संबंध है उच्छूनत्व के वृथात्व से, फिर यहाँ 'विधेयाविमर्श' का क्या ज़िक्र ?

'न्यक्कारो ह्ययमेव' इत्यादिक पद्य अति प्राचीन है। यह किस ग्रंथ का है, इसका कुछ पता नहीं चलता। हाँ, हनुमन्नाटक में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है, परंतु 'हनुमन्नाटक' में तो 'भानमती का कुनबा' है। तमाम इधर-उधर के पद्य इस काँजीहौस में बंद हैं। इस पद्य का भी यही हाल है। जैसे काँजीहौस में पड़े पशु की दुर्गति होती है, वैसे ही वहाँ इसकी भी हुई है। सबसे पहली बात तो यह कि वहाँ इस पद्य के सिर की जगह पैर और पैरों की जगह सिर जोड़ दिया गया है। पूर्वार्ध के स्थान में उत्तरार्ध और उत्तरार्ध के स्थान में पूर्वार्ध रख दिया गया है। फिर 'स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः।' इसकी जगह 'स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्भुजैः' यह पाठ कर दिया गया है। जिस 'वृथोच्छूनैः' के ऊपर तमाम साहित्य-ग्रंथ लड़-झगड़ रहे हैं, वहाँ उसका पता ही नहीं। इसी से हमारा ख़याल है कि यह पद्य हनुमन्नाटक का नहीं। ११-१२ सौ वर्ष पुरानी पुस्तकों तक में इसका उल्लेख पाया जाता है। जिस कवि ने यह बनाया है, उसका निर्मित ग्रंथ निःसंदेह अद्भुत रहा होगा *।

शालग्राम शास्त्री

---

* महेंद्रगढ़ (पटियाला-राज्य) लाला राधाकृष्ण-संस्कृत-नागरी-विद्यालय से पं० रामनारायण शास्त्री ने एक लेख भेजा है। उसका सारांश यहाँ पर दिया जाता है। पूरा लेख छापने में हम असमर्थ हैं। पं० शालग्रामजी तथा पं० किशोरीदासजी, पटियाला के शास्त्रीजी की बातों पर भी विचार कर लें! 'न्यक्कारो ह्ययमेव मे' इत्यादि श्लोक हनुमन्नाटक से लिया गया है। प्रकरण इस प्रकार है—

रावणः सत्वरं मन्दोदरीमन्दिरं प्रविश्य, अयि मन्दोदरि !

'रामाय प्रतिपक्षवृक्षशिखिने दास्यामि वा मैथिली' इत्यादि

मन्दोदरी विहस्य अयि प्राणनाथ ! लङ्केश्वर !

'दृष्ट्वा दैन्यं भगिन्या श्रुतखरनिधनं मातुलस्यापि नाशं' इत्यादि

रावणः (सापत्रपं—साभ्यसूयम्)

"धिक् धिक् शक्रजितमित्यादि"

मन्दोदरी सकरुणम्—

'शोकं लङ्केश ! मा गाः' इत्यादि

उक्त नाटक के इस प्रकरण को देखने से निर्वेद की ध्वनि ही प्रधान जान पड़ती है। साहित्य-शास्त्र में प्रकरण देखकर ही अर्थ करना उचित है। तर्कवागीशजी का ही अर्थ प्रकरण से ठीक बैठता है। दशरूपक ९वीं कारिका चतुर्थ प्रकाश में ईर्ष्यया यथा—न्यक्कारो ह्ययमेव इत्यादि जो लेख है, वह भी इसी अर्थ का समर्थक है।—सं० मा०

नूतन संसार

(१)

दग्ध-हृदयों की दहकी-आग,
भग्न-आशाओं का परिताप,
नग्न-अत्याचारों की आह,
प्रलय का दे देंगी अभिशाप।
कुपित रण-चंडी की हुंकार,
बना देगी नूतन संसार।

(२)

न्याय का होगा जग में राज्य,
क्रांति फिर बन जाएगी शांति।
प्रेम का प्यारा पुण्य प्रदीप—
करेगा आलोकित पथ-भ्रांति।
विषमता का होगा संहार,
फलेगा—फूलेगा संसार।

रामसेवक त्रिपाठी

पर्वत-यात्रा

(१)

तःकाल मुं० गुलबाज़ख़ाँ ने नमाज़ पढ़ी, कपड़े पहने और महरी से किराए की गाड़ी लाने को कहा। शीरीं बेगम ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे कहाँ जाने का इरादा है ?

गुल—ज़रा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीरीं—तो पैदल क्यों नहीं चले जाते ? कौन बड़ी दूर है ।

गुल—जो बात तुम्हारी समझ में न आवे, उसमें ज़बान न खोला करो ।

शीरीं—पूछती तो हूँ पैदल चले जाने में क्या हरज है ? गाड़ीवाला एक रुपए से कम न लेगा !

गुल—(हँसकर) हुक्काम किराया नहीं देते । उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया माँगे ! चालान करवा दूँ ।

शीरीं—तुम तो हाकिम भी नहीं हो, तुम्हें वह क्यों ले जाने लगा !

गुल—हाकिम कैसे नहीं हूँ ? हाकिम के क्या सींग-पूँछ होती है, जो मेरे नहीं है ? हाकिम का दोस्त हाकिम से कम रोब नहीं रखता । अहमक नहीं हूँ कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करता हूँ । यह इसी की बरकत है कि पुलीस, माल, दीवानी के अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते हैं । थानेदार ने कल जो सौग़ात भेजी थी, वह किसलिये ? मैं उनका दामाद तो नहीं हूँ । सब मुझसे डरते हैं ।

इतने में महरी एक ताँगा लाई । ख़ाँ साहब ने फ़ौरन् साफ़ा बाँधा और चले ।

शीरीं ने कहा—अरे तो, पान तो खाते जाओ !

गुल—हाँ, लाओ हाथ में मेंहदी भी लगा दो । अरी नेक बख़्त हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बे-अदबी है ।

शीरीं—आओगे कब तक ? खाना तो यहीं खाओगे !

गुल—तुम मेरे खाने की फ़िक्र न करना, शायद कुँअर साहब के यहाँ चला जाऊँ । कोई मुझे पूछे, तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गए हैं ।

ख़ाँ साहब आकर ताँगे पर बैठे । ताँगेवाले ने पूछा—हुज़ूर, कहाँ चलूँ ?

गुल—छोटे साहब के बँगले पर । सरकारी काम से जाना है ।

ताँगे०—हुज़ूर को वहाँ कितनी देर लगेगी ?

गुल—यह मैं कैसे बता दूँ; यह तो हो नहीं सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहें, और मैं उठकर चला आऊँ । सरकारी काम है, न-जाने कितनी देर लगे । बड़े अच्छे आदमी हैं बेचारे । मजाल नहीं कि जो बात कह दूँ, उससे इनकार कर दें । आदमी को ग़रूर न करना चाहिए । ग़रूर करना शैतान का काम है । मगर कई थानेदारों से जवाब तलब करा चुका हूँ । जिसको देखा कि रियाया को ईज़ा पहुँचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूँ ।

ताँगे०—हुज़ूर, पुलीस बड़ा अंधेर करती है । जब देखो बेगार, कभी आधी रात को बुला भेजा, कभी फजिर को । मरे जाते हैं हुज़ूर । उस पर, हर मोड़ पर, सिपाहियों को पैसे चाहिए । न दें, तो झूठा चालानकर दें ।

गुल—सब जानता हूँ जी, अपनी झोपड़ी में बैठा सारी दुनिया की सैर किया करता हूँ । वहीं बैठे-बैठे बदमाशों की ख़बर लिया करता हूँ । देखो, ताँगे को बँगले के भीतर न ले जाना, बाहर फाटक पर रोक लेना ।

ताँगे०—अच्छा हुज़ूर । अच्छा, अब देखिए वह सिपाही मोड़ पर खड़ा है । पैसे के लिये हाथ फैलाएगा । न दूँ तो ललकारेगा । मगर आज क़सम क़ुरान की, टका-सा जवाब दे दूँगा । हुज़ूर बैठे हैं, तो क्या करसकता है ।

गुल—नहीं-नहीं, ज़रा-ज़रा-सी बात पर मैं इन छोटे आदमियों से नहीं लड़ता । पैसे दे देना । मैं तो पीछे से बच की ख़बर लूँगा । मुअत्तल न करा दूँ तो सही । बुरा गाली-गलौज करना, इन छोटे आदमियों के मुँह लगना मेरी आदत नहीं ।

ताँगेवाले को भी यह बात पसंद आई । मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिए । ताँगा साहब के बँगले पर पहुँचा । ख़ाँ साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर, चौकन्नी आँखों से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बँगले के बरामदे में जाकर खड़े हो गए । बैरा बरामदे में बैठा था । आपको उसे देखते ही सलाम किया ।

बैरा—हुज़ूर तो अंधेर करते हैं । सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते हैं ।

गुल—अजी इन बातों में क्या रखा है । ख़ुदा की निगाह में सब इनसान बराबर हैं ।

बैरा—हुज़ूर को अल्लाह सलामत रखे, क्या बात कही है । हक़ तो यही है, पर आदमी अपने को कितना भूल जाता है ! यहाँ तो छोटे-छोटे अमले भी इंतज़ार करते रहते हैं कि यह हाथ उठावें । साहब को इत्तला कर दूँ ?

गुल—आराम में हों तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नहीं ।

बैरा—जी नहीं हुज़ूर, हाज़िरी पर से तो कभी उठ चुके, काग़ज़-वाक़ज़ पढ़ते होंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुल—अब इसका तुम्हें अख़्तियार है, जैसा मौक़ा हो वैसा करो। मौक़ा-महल पहचानना तुम्हीं लोगों का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लड़की तो ख़ैरियत से है न?

बैरा—हाँ हुज़ूर, अब बहुत मज़े में है। जब से हुज़ूर ने उसके घरवालों को बुलाकर डाँट दिया, तब से किसी ने चूँ भी नहीं किया। लड़की हुज़ूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब को ख़ाँ साहब की इत्तला की, और एक क्षण में ख़ाँ साहब जूते उतारकर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फ़र्श पर बैठ गए। साहब का नाम काटन था।

काटन—ओ! ओ! यह आप क्या करता है, कुरसी पर बैठिए, कुरसी पर बैठिए।

ख़ाँ—बहुत मज़े में बैठा हूँ हुज़ूर। आपके बराबर भला बैठ सकता हूँ! आप बादशाह, मैं रैयत।

काटन—नहीं, नहीं, आप हमारा दोस्त है।

ख़ाँ—हुज़ूर चाहें मेरे को आफ़ताब बना दें, पर मैं तो अपनी हक़ीक़त समझता हूँ। बंदा उन लोगों में नहीं है, जो हुज़ूर के करम से चार हरफ़ पढ़कर ज़मीन पर पाँव नहीं रखते, और हुज़ूर लोगों की बराबरी करने लगते हैं।

काटन—ख़ाँ साहब, आप बहुत अच्छा आदमी है। हम आज के पाँचवें दिन नैनीताल जा रहा है। वहाँ से लौटकर आपसे मुलाक़ात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहाँ जाता है।

ख़ाँ साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गए थे; पर इस समय कैसे कह देते कि मैं वहाँ कभी नहीं गया। साहब की नज़रों से गिर न जाते। साहब समझते कि यह रईस नहीं, कोई चरकटा है। बोले—हाँ हुज़ूर, कई बार हो आया हूँ।

काटन—आप कई बार हो आया है? हम तो पहली दफ़ा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है?

ख़ाँ—बहुत बड़ा शहर है हुज़ूर, मगर कुछ ऐसा बड़ा भी नहीं है।

काटन—आप कहाँ ठहरता है। वहाँ होटलों में तो बहुत पैसा लगता है।

ख़ाँ—मेरी हुज़ूर न पूछें, कभी कहीं ठहर गया, कभी कहीं ठहर गया। हुज़ूर के अक़बाल से सभी जगह दोस्त हैं।

काटन—आप वहाँ किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मेरे ठहरने का बंदोबस्त कर दे। हम किफ़ायत से काम करना चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नहीं चलता।

ख़ाँ साहब बड़ी मुशकिल में फँसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पड़ा—जैसा हुज़ूर का हुक्म, हुज़ूर के साथ ही चला चलूँगा। मगर मुझे अभी ज़रा देर है हुज़ूर।

काटन—ओ कुछ परवाह नहीं, हम आपके लिये एक हफ़्ता ठहर सकता है। अच्छा सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इंतज़ाम करने को लिखा दें। आज के सातवें दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे-स्टेशन पर मिलेगा।

ख़ाँ साहब ने सलाम किया, और बाहर निकले। ताँगेवाले से कहा—कुँअर शमशेरसिंह की कोठी पर चलो।

(२)

कुँअर शमशेरसिंह ख़ानदानी रईस थे। उन्हें अभी तक अँगरेज़ी रहन-सहन की हवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-एक बजे रात तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें कुछ ख़बर न होती थी, या हुई भी तो सुनी-सुनाई। ख़ाँ साहब उनके दोस्तों में थे।

जिस वक़्त ख़ाँ साहब कोठी में पहुँचे १० बज गए थे, कुँअर साहब बाहर निकल आए थे, मित्रगण जमा थे। ख़ाँ साहब को देखते ही कुँअर साहब ने पूछा—कहिए ख़ाँ साहब किधर से?

ख़ाँ साहब—ज़रा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा, मगर फ़ुरसत ही न मिलती थी। आज उनका आदमी ज़बरदस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहाँ तक बेरुख़ी करूँ।

कुँअर—यार तुम न-जाने अफ़सरों पर क्या जादू कर देते हो कि जो आता है, तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मंत्र क्यों नहीं सिखा देते।

ख़ाँ—मुझे ख़ुद ही नहीं मालूम कि क्यों हुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते हैं। आपको यक़ीन न आवेगा, मेरी आवाज़ सुनते ही कमरे के दरवाज़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आकर खड़े हो गए, और ले जाकर अपनी ख़ास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुँअर—अपनी ख़ास कुर्सी पर ?

ख़ाँ—हाँ साहब, हैरत में आ गया, मगर बैठना ही पड़ा। फिर सिगार मँगवाया। इलायची, मेवे, चाय, सभी कुछ आ गए। यों कहिए कि ख़ासी दावत हो गई। यह मेहमानदारी देखकर मैं तो दंग रह गया।

कुँअर—तो वह सब दोस्ती भी करना जानते हैं ?

ख़ाँ—अजी दूसरा क्या खाके दोस्ती करेगा। अब हद हो गई कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुँअर— सच !

ख़ाँ—क़सम क़ुरान की। हैरान था कि क्या जवाब दूँ। मगर जब देखा कि किसी तरह नहीं मानते, तो वादा ही करना पड़ा। आज ही के दिन कूच है।

कुँअर—क्यों यार मैं भी चला चलूँ, तो क्या हरज है ?

ख़ाँ—सुभानल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुँअर—भई, लोग तरह-तरह की बातें करते हैं, इससे जाते डर लगता है। आप तो हो आए होंगे ?

ख़ाँ—कई बार हो आया हूँ। हाँ, इधर कई साल से नहीं गया।

कुँअर—क्यों साहब, पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा ?

राधाकांत व्यास बोले—धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ़ भी जाइए, पर पहाड़ों का पानी ऐसा ख़राब होता है कि एक बार लग गया, तो प्राण ही लेकर छोड़ता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते हैं, उनमें बहुत कम जीते लौटते हैं, और संग्रहणी तो प्रायः सभी को हो जाती है।

कुँअर—हाँ, सुना तो हमने भी है कि पहाड़ों का पानी बहुत लगता है। लाला सुखदयाल ने हामी भरी—गोसाईंजी ने भी तो पहाड़ के पानी की निंदा की है—

लागत अति पहाड़ कर पानी।
बड़ दुख होत न जाइ बखानी॥

ख़ाँ—तो यह इतने अँगरेज़ वहाँ क्यों जाते साहब ? ये लोग अपने वक़्त के लुक़मान हैं। इनका कोई काम मसलहत से ख़ाली नहीं होता। पहाड़ों की सैर से कोई फ़ायदा न होता तो क्यों जाते, ज़रा यह तो सोचिए।

व्यास—यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे हैं। उनकी देखादेखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं।

लाला—मेरे पिताजी एक बार किसी अँगरेज़ के साथ पहाड़ पर गए थे। वहाँ से लौटे, तो मुझे वसीयत की कि ख़बरदार कभी पहाड़ पर न जाना। आख़िर कोई बात देखी होगी, जभी तो यह वसीयत की।

वाजिद—हुज़ूर, ख़ाँ साहब जाते हैं जाने दीजिए, आपको मैं जाने की सलाह न दूँगा। ज़रा सोचिए, कोसों की चढ़ाई, फिर रास्ता इतना ख़तरनाक कि ख़ुदा की पनाह ! ज़रा-सी पगडंडी और दोनों तरफ़ कोसों का खड़। नीचे देखा और थरथरा के आदमी गिर पड़ा। और जो कहीं पत्थरों में आग लग गई, तो चलिए बारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गए।

ख़ाँ—और जो लाखों आदमी पहाड़ों पर रहते हैं ?

वाजिद—उनकी और बात है भाई साहब।

ख़ाँ—और बात कैसी ? क्या वे आदमी नहीं हैं ?

वाजिद—लाखों आदमी दिन-भर हल जोतते हैं, फावड़े चलाते हैं, लकड़ी फाड़ते हैं, आप करेंगे ? है आपमें इतना दम ? हुज़ूर उस चढ़ाई पर चढ़ सकते हैं ?

ख़ाँ—क्यों नहीं, टट्टुओं पर जायँगे।

वाजिद—टट्टुओं पर ६ कोस की चढ़ाई ! होश की दवा कीजिए।

कुँअर—टट्टू पर ! भई हमसे न जाया जायगा। कहीं टट्टू भड़के तो कहीं के न रहे।

लाला—गिरे तो हड्डियाँ तक न मिलें !

व्यास—प्राण तक चूर-चूर हो जाय।

वाजिद—ख़ुदावंद एक ज़रा-सी उँचाई पर से आदमी देखता है, तो काँपने लगता है, न कि पहाड़ की चढ़ाई।

कुँअर—वहाँ सड़कों पर इधर-उधर ईंट या पत्थर की मुँडेर नहीं बनी हुई है ?

वाजिद—ख़ुदावंद, मंज़िलों के रास्ते में मुँडेर कैसी ?

कुँअर—आदमी का काम तो नहीं है।

लाला—सुना वहाँ घेंघा निकल आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुँअर—अरे भई, यह बुरा रोग है। तब मैं वहाँ जाने का नाम भी न लूँगा।

ख़ाँ—आप लाला साहब से पूछें कि साहब लोग जो वहाँ रहते हैं, उनको घेंघा क्यों नहीं हो जाता।

लाला—वह लोग ब्रांडी पीते हैं। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते हैं भला। फिर उनका अक़बाल!

वाजिद—मुझे तो यक़ीन नहीं आता कि ख़ाँ साहब कभी नैनीताल गए हों। इस वक़्त डींग मार रहे हैं। क्यों साहब, आप कितने दिन वहाँ रहे!

ख़ाँ—कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद—आप वहाँ किस मुहल्ले में रहते थे?

ख़ाँ—(गड़बड़ाकर) जी—मैं।

वाजिद—आख़िर आप चार बरस कहाँ रहे?

ख़ाँ—देखिए, याद आ जाय तो कहूँ।

वाजिद—आइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हाँक दी कि वहाँ चार बरस तक रहे।

ख़ाँ—अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मैं कभी नैनीताल नहीं गया। बस, अब तो ख़ुश हुए।

कुँअर—आख़िर, आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहाँ ठहरे थे।

वाजिद—कभी गए हों, तब न बताएँ।

ख़ाँ—कह तो दिया कि मैं नहीं गया, चलिए छुट्टी हुई। अब आप फ़रमाइए कुँअर साहब, आपको चलना है या नहीं? ये लोग जो कहते हैं, वह सब ठीक। वहाँ घेंघा निकल आता है, वहाँ का पानी इतना ख़राब कि खाना बिलकुल नहीं हज़म होता, वहाँ हर रोज़ दस-पाँच आदमी खड़ में गिरा करते हैं। अब आप क्या फ़ैसला करते हैं? वहाँ जो मज़े हैं, वह यहाँ ख़्वाब में भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाज़े पर घंटों खड़े रहने पर भी मुलाक़ात नहीं होती, उनसे वहाँ चौबीसों घंटों का साथ रहेगा। मिसों के साथ झील में सैर करने का मज़ा अगर मिल सकता है, तो वहीं। अजी सैकड़ों अँगरेज़ों से दोस्ती हो जायगी। तीन महीने वहाँ रहकर आप इतना नाम हासिल कर सकते हैं, जितना यहाँ ज़िंदगी-भर भी न होगा। बस, और क्या कहूँ।

कुँअर—वहाँ बड़े-बड़े अँगरेज़ों से मुलाक़ात हो जायगी?

ख़ाँ—जनाब, दावतों के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुँअर—जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आएँ।

ख़ाँ—तो बस, तैयारी कीजिए।

सभाजन ने जब देखा कि कुँअर साहब नैनीताल जाने के लिये तैयार हो गए, तो सब-के-सब हाँ-में-हाँ मिलाने लगे।

व्यास—पर्वत-कंदराओं में कभी-कभी योगियों के दर्शन हो जाते हैं।

लाला—हाँ साहब, सुना है—दो-दो सौ साल के योगी वहाँ मिलते हैं। जिसकी ओर एक बार आँख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गए।

वाजिद—मगर हुज़ूर चलें, तो इस ठाठ से चलें कि वहाँ के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आए हैं।

लाला—लक्ष्मी हथिनी को ज़रूर ले चलिए। वहाँ कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे, और गंगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दंग हो जायँगे।

व्यास—एक डंका भी हो, तो क्या पूछना।

कुँअर—नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेस बनाना चाहिए।

लाला—हाँ, डंके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घंटा ज़रूर हो।

ख़ाँ—जब तक वहाँ किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बँगला ठीक कर रक्खे। छोटे साहब को भी उसी में ठहरा लेंगे।

कुँअर—वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफ़सर हैं।

ख़ाँ—उनको लाने का ज़िम्मा हमारा। खींच-खाँच-कर किसी-न-किसी तरह ले ही आऊँगा।

कुँअर—अगर उनके साथ ठहरने का मौक़ा मिले, तब तो मैं समझूँ नैनीताल का जाना पारस हो गया।

(३)

एक हफ़्ता गुज़र गया। सफ़र की तैयारियाँ हो गईं। प्रातःकाल काटन साहब का ख़त आया कि आप हमारे यहाँ आएँगे या मुझसे स्टेशन पर मिलेंगे। कुँअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रास्ता इसी तरफ़ से है। मैं तैयार रहूँगा। यह ख़त लिखवाकर कुँअर साहब अंदर गए, तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरी देवी बैठी हुई हैं। उन्हें देखकर बोलीं—क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे हैं?

कुँअर—जीहाँ, आज रात को तैयारी है।

रामेश्वरी—अरे! आज ही रात को! यह नहीं हो सकता। कल बच्चा का मुंडन है। मैं एक न मानूँगी। आप ही न होंगे, तो और लोग आकर क्या करेंगे।

कुँअर—तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया। पहले से मालूम हो जाता, तो मैं कल जाने का इरादा ही क्यों करता।

रामेश्वरी—तो इसमें लाचारी की कौन-सी बात है। कल न सही, दो-चार दिन बाद सही।

कुँअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोलीं—हाँ, और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना। क्या सायत टली जाती है।

कुँअर—वाह! छोटे साहब से वादा कर चुका हूँ, वह रात ही को मुझे लेने आएँगे। आख़िर वह अपने दिल में क्या कहेंगे?

रामेश्वरी—ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते हैं। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गए नहीं हो।

कुँअर—मैं क्या कहूँ कि कितना मजबूर हूँ! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी—तो गोया जो कुछ हैं, वह छोटे साहब ही हैं, मैं कुछ भी नहीं।

कुँअर—आख़िर, साहब से क्या कहूँ, कौन बहाना करूँ?

रामेश्वरी—कह दो कि हमारे भतीजे का मुंडन है; हम एक सप्ताह तक नहीं चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुँअर—(हँसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या को। ऐसा हो सकता है कहीं। कहीं मुँह दिखाने लायक़ न रहूँगा।

सुशीला—क्यों, हो सकने को क्या हुआ? तुम उसके ग़ुलाम तो नहीं हो।

कुँअर—तुम लोग बाहर तो निकलती-पैठती नहीं हो, तुम्हें क्या मालूम कि अँगरेज़ों के विचार कैसे होते हैं।

रामेश्वरी—अरे भगवान्! आख़िर उसके कोई लड़का-बाला है, या निगोड़ा नाटा है? त्योहार और व्यवहार हिंदू-मुसलमान सबके यहाँ होते हैं।

कुँअर—भई, हमसे तो कुछ करते-धरते नहीं बनता।

रामेश्वरी—हमने कह दिया, हम जाने न देंगे। अगर तुम चले गए, तो मुझे बड़ा रंज होगा। तुम्हीं लोगों से तो महफ़िल की शोभा होगी। और अपना कौन बैठा हुआ है।

कुँअर—अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौक़ा नहीं है। वह दफ़्तर चले गए होंगे। मेरा सब असबाब बँध चुका। नौकरों को पेशगी रुपया दे चुका कि चलने की तैयारी करें। अब कैसे रुक सकता हूँ।

रामेश्वरी—कुछ भी हो, जाने न पाओगे।

सुशीला—दो-चार दिन बाद जाने में ऐसी कौन-सी बड़ी हानि हुई जाती है? वहाँ कौन लड्डू धरे हुए हैं।

कुँअर साहब बड़े धर्म-संकट में पड़े। अगर रुक जाते, तो छोटे साहब से झूठे पड़ते हैं। वह अपने दिल में कहेंगे कि अच्छे बेहूदे आदमी से पाला पड़ा। अगर जाते हैं, तो स्त्री से बिगाड़ होता है, साली मुँह फुलाती है। इसी चक्कर में पड़े हुए बाहर आए, तो मियाँ वाजिद बोले—हुज़ूर इस वक़्त कुछ उदास मालूम होते हैं।

व्यास—मुद्रा तेज-हीन हो गई है।

कुँअर—भई कुछ न पूछो, बड़े संकट में हूँ।

वाजिद—क्या हुआ हुज़ूर, कुछ फ़रमाइए तो?

कुँअर—यह भी एक विचित्र ही देश है।

व्यास—धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है।

लाला—क्या कहना है। संसार में ऐसा देश दूसरा नहीं।

कुँअर—जीहाँ, आप-जैसे गौखे और किस देश में होंगे। बुद्धि तो हम लोगों को छू भी नहीं गई।

वाजिद—हुज़ूर, अक़्ल के पीछे तो हम लोग लठ लिए फिरते हैं?

व्यास—धर्मावतार, कुछ कहते नहीं बनता। बड़ी हीन दशा है।

कुँअर—नैनीताल जाने को तैयार था। अब बड़ी साली कहती हैं मेरे बच्चे का मुंडन है, मैं न जाने दूँगी। चले जाओगे, तो मुझे रंज होगा। बतलाइए अब क्या करूँ। ऐसी मूर्खता और कहाँ देखने में आएगी। पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखनेवालों की शहर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमी नहीं, एक मैं न हूँगा न सही ; मगर उनको कौन समझावे।

व्यास—दीनबंधु, नारि-हठ तो लोक-प्रसिद्ध ही है।

कुँअर—अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जायगा।

वाजिद—बड़ा नाज़ुक मुआमला आ पड़ा हुज़ूर।

लाला—हाकिम का नाराज़ हो जाना बुरा है।

वाजिद—हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।

कुँअर—मैं तो बड़ी मुसीबत में फँस गया।

लाला—हुज़ूर अब बाहर न बैठें। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेंगे।

वाजिद—अजी पसीने की जगह खून गिरा दें। नमक खाया है कि दिल्लगी है।

कुँअर—हाँ, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिएगा, बीमार हो गए हैं।

अभी यही बातें हो रही थीं कि ख़िदमतगार ने आकर हाँफते हुए कहा—सरकार, कोऊ आवा है तौन सरकार का बलावत है।

कुँअर—कौन है, पूछा नहीं ?

ख़िदमत०—कोऊ रंगरेज है सरकार, लाल-लाल मुँह है, घोड़ा पर सवार है।

कुँअर—कहीं छोटे साहब तो नहीं हैं। भई, मैं तो भीतर जाता हूँ। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुँअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाज़ा बंद कर लिया। वाजिदअली ने खिड़की से झाँककर देखा, तो छोटे साहब खड़े थे। हाथ-पाँव फूल गए। अब साहब के सामने कौन जाय ? किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। एक दूसरे को ठेल रहा है।

लाला—बढ़ जाओ वाजिदअली। देखो क्या कहते हैं ?

वाजिद—आप ही क्यों नहीं चले जाते ?

लाला—आदमी ही तो वह भी है, कुछ खा तो न जायगा।

वाजिद—तो चले क्यों नहीं जाते।

काटन साहब दो-तीन मिनिट खड़े रहे। जब यहाँ से कोई न निकला, तो बिगड़कर बोले—यहाँ कौन आदमी है ? कुँअर साहब से बोलो काटन साहब खड़ा है।

मियाँ वाजिद बौखलाए हुए आगे बढ़े, और हाथ बाँधकर बोले—खुदावंद, कुँअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गई। इस वक़्त आराम में हैं, बाहर नहीं आ सकते।

काटन—ओह ! तुम यह क्या बोलता है। वह तो हमारे साथ नैनीताल जानेवाला था। उसने हमको ख़त लिखा था।

वाजिद—हाँ हुज़ूर, जानेवाले तो थे; पर बीमार हो गए।

काटन—बहुत रंज हुआ।

वाजिद—हुज़ूर इत्तफ़ाक़ है।

काटन—हमको बहुत अफ़सोस है। कुँअर साहब से जाकर बोलो, हम उसको देखना माँगता है।

वाजिद—हुज़ूर, बाहर नहीं आ सकते।

काटन—कुछ परवा नहीं, हम अंदर जाकर देखेगा।

कुँअर साहब दरवाज़े से चिमटे हुए काटन साहब की बातें सुन रहे थे। नीचे की साँस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब को घोड़े से उतरकर दरवाज़े की तरफ़ आते देखा, तो गिरते-पड़ते दौड़े, और सुशीला से बोले—दुष्ट, मुझे देखने घर में आ रहा है। मैं चारपाई पर लेटा जाता हूँ, चट पट लिहाफ़ निकलवाओ और मुझे ओढ़ा दो। दस-पाँच शीशियाँ लाकर इस गोल मेज़ पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा—महरी, ज़रा दरवाज़ा खोल दो, साहब बहादुर कुँअर साहब को देखना चाहते हैं। सुशीला ने लिहाफ़ माँगा, पर गरमी के दिन थे, जाड़े के कपड़े संदूकों में बंद पड़े थे। चटपट संदूक खोलकर दो-तीन मोटे-मोटे लिहाफ़ लाकर कुँअर साहब को ओढ़ा दिए। फिर अलमारी से कई शीशियाँ और कई बोतल निकालकर मेज़ पर चुन दिए, और महरी से कहा—जाकर किवाड़ खोल दे, मैं ऊपर चली जाती हूँ।

काटन साहब ज्यों ही कमरे में पहुँचे, कुँवर साहब ने लिहाफ़ से मुँह निकाल लिया और कराहते हुए बोले—बड़ा कष्ट है हुज़ूर। सारा शरीर फुँका जाता है।

काटन—आप दोपहर तक तो अच्छा था। ख़ाँ साहब हमसे कहता था कि आप तैयार है, कहाँ दरद है ?

कुँअर—हुज़ूर, पेट में बहुत दर्द है। बस, यही मालूम होता है कि दम निकल जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटन—हम जाके सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबराएँ नहीं। सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया, तो कुँअर साहब फिर बाहर आ बैठे। रोज़ा बख़्शाने गए थे, नमाज़ गले पड़ी। अब यह फ़िक्र पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुँअर—भई, यह तो नई बला गले पड़ी।

वाजिद—हुज़ूर, यहाँ तो हमारी अक़्ल भी काम नहीं करती।

कुँअर—कोई जाकर ख़ाँ साहब को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए। ऐसा न हो कि वह देर करें, और सिविल सर्जन यहाँ सिर पर सवार हो जाय।

लाला—सिविल सर्जन की फ़ीस भी बहुत होगी ?

कुँअर—अजी तुम्हें फ़ीस की पड़ी है, यहाँ जान आफ़त में है। अगर सौ-दो सौ देकर गला छूट जाय, तो अपने को भाग्यवान् समझूँ।

वाजिदअली नेफ़िटन तैयार कराई, और ख़ाँ साहब के घर पहुँचे। देखा, तो वह असबाब बँधवा रहे हैं। उनसे सारा क़िस्सा बयान किया, और कहा—अभी चलिए। आपको बुलाया है।

ख़ाँ—मामला बहुत टेढ़ा है। बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी। क़सम ख़ुदा की, तुम सब-के-सब गर्दन मार देने के लायक़ हो। ज़रा देर के लिये मैं टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड़ दिया।

वाजिद—ख़ाँ साहब, हमसे तो उड़िए नहीं। कुँअर साहब बौखलाए हुए हैं। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

ख़ाँ—चलो, शायद कोई तदबीर सूझ जाय।

दोनों आदमी सिविल सर्जन के बँगले की तरफ़ चले। वहाँ मालूम हुआ कि साहब कुँअर साहब के मकान पर गए हैं। फ़ौरन् फ़िटन घुमा दी, और कुँअर साहब की कोठी पर पहुँचे। देखा, तो सर्जन साहब एनेमा लिए हुए कुँअर साहब की चारपाई के सामने बैठे हुए हैं।

ख़ाँ—मैं तो हुज़ूर के बँगले से चला आ रहा हूँ। कुँअर साहब का क्या हाल है ?

डाक्टर—पेट में दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायगा।

कुँअर—हुज़ूर, अब दर्द बिलकुल नहीं है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज़ हो जाता है, और आप-ही-आप अच्छा हो जाता है।

डाक्टर—ओ, आप डरता है। डरने का कोई बात नहीं है। आप एक मिनट में अच्छा हो जायगा।

कुँअर—हुज़ूर, मैं बिलकुल अच्छा हूँ। अब कोई शिकायत नहीं है।

डाक्टर—डरने का कोई बात नहीं। यह सब आदमी यहाँ से हट जाय, हम एक मिनट में अच्छा कर देगा।

ख़ाँ साहब ने डाक्टर के कान में कहा—हुज़ूर, अपनी रात की डबल फ़ीस और गाड़ी का किराया लेकर चले जायँ, इन रईसों के फेर में न पड़ें, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते हैं। एक हफ़्ते तक आकर एक बार देख लिया कीजिए।

डाक्टर साहब की समझ में यह बात आ गई। कल फिर आने का वादा करके चले गए। लोगों के सिर से बला टली। ख़ाँ साहब की कारगुज़ारी की तारीफ़ें होने लगीं।

कुँअर—ख़ाँ साहब, आप बड़े वक़्त पर काम आए। ज़िंदगी-भर आपका एहसान मानूँगा।

ख़ाँ—जनाब, दो सौ चटाने पड़े। कहता था, छोटे साहब का हुक्म है। मैं बिला पिचकारी लगाए न जाऊँगा। अँगरेज़ों का हाल तो आप जानते हैं। बात के पक्के होते हैं।

कुँअर—यह भी कह दिया न कि छोटे साहब से मेरी बीमारी की इत्तला कर दें, और कह दें, वह सफ़र करने लायक़ नहीं हैं।

ख़ाँ—हाँ साहब, और रुपए दिए किसलिये, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था। मगर छोटे साहब को होगी बड़ी तकलीफ़। बेचारे ने आपके बँगले के आगे पर होटल का इंतज़ाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुँअर—तो भई मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

ख़ाँ—यह चाल उल्टी पड़ी। जिस वक़्त काटन साहब यहाँ आए थे, आपको उनसे मिलना चाहिए था। साफ़ कह देते, आज एक सख़्त ज़रूरत से रुकना पड़ा। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ैर मैं साहब के साथ रहूँगा, कोई-न-कोई इंतज़ाम हो ही जायगा।

कुँअर—क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे हैं। हलफ़ से कहता हूँ, मैं आपको न-जाने दूँगा। वहाँ न-जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। मियाँ वाजिद, देखो आप के घर कहला दो, बाहर न जायँगे।

ख़ाँ—आप अपने साथ मुझे भी डुबाना चाहते हैं। छोटे साहब आपसे नाराज़ भी हो जायँ, तो क्या कर लेंगे, लेकिन मुझसे नाराज़ हो गए, तो ख़राब ही कर डालेंगे।

कुँअर—जब तक हम ज़िंदा हैं भाई साहब, आपको कोई तिरछी नज़र से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुँअर साहब की हालत अच्छी नहीं, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ़ से भी उसका दिल साफ़ हो जायगा, और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और भी इज़्ज़त करने लगेगा।

ख़ाँ—अब वह इज़्ज़त करे या न करे, जब आप इतना इसरार कर रहे हैं, तो मैं भी इतना बे-मुरौअत नहीं हूँ कि आपको छोड़कर चला जाऊँ। यह तो हो ही नहीं सकता। ज़रा देर के लिये घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा,। नैनीताल चला जाऊँ, तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुँअर—मज़े से दो-चार दिन जलसे देखेंगे, नैनीताल में यह मज़े कहाँ मिलते। व्यासजी, अब तो यों नहीं बैठा जाता। देखिए, आपके भंडार में कुछ है, दो-चार बोतलें निकालिए, कुछ रंग जमे*।

प्रेमचंद

* पं० रतननाथ-कृत 'सैर कुहसार' के आधार पर

प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का कर्त्तव्य

कम-से-कम माधुरी का एक ग्राहक

अवश्य बनाकर भेजे

इसलिये कि मातृभाषा के प्रति कुछ आपका भी तो कर्त्तव्य है।

क्योंकि—

भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित विद्वानों का कहना है—

माधुरी

सर्वश्रेष्ठ उपयोगी पत्रिका है

वार्षिक मूल्य केवल ६॥) रु०—छः मास का ३॥)

निवेदक—मैनेजर 'माधुरी', लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति-पथ

स्थायी

तृप्त नयन पूर्ण प्राण, मुक्त करो स्वर्ग-द्वार ;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार ;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

१. जल

सिंधु से उठता है संदेश—
"खोल दो अपने भी जलयान ;
देखकर दिशा, दिशा के देश,
बढ़ाओ निज वैभव, यश, मान।
कठिन कर लो साहस-पतवार,
लगाओ अपना बेड़ा पार ;
देख उर-उर उत्साह उफान,
कभी क्या टिक सकता तूफ़ान ?
निकल पड़ो कूप-बद्ध ! तोड़ सकल कुसंस्कार ;
मुक्त चलो जलधि-पार, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

तृप्त नयन पूर्ण प्राण ! मुक्त करो स्वर्ग-द्वार ;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार ;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध द्वार।"

२. वायु

गगन में गूँज रहा है शंख—
"नीड़ तज खग ! फैलाओ पंख ;
पूर्व में पावन प्रात-प्रकाश,
गंधमय अंतरिक्ष, वातास।
दूसरे या कुबेर-भंडार,
इंद्र का ग्रहण करें सत्कार।
तुम्हारा उड़ता नहीं विमान,
यत्न द्रुत करो वीर गतिवान् !
मुक्त करो पवन-पंथ, दूर करो अंधकार
मुक्त करो नभ-विहार, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

तृप्त नयन पूर्ण प्राण ! मुक्त करो स्वर्ग-द्वार ;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार ;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. पृथ्वी

नारियों के घूँघट का चीर,
बढ़ा है कृष्णा का पट चीर।
पुरानी होकर क्षुद्र लकीर,
बन गई है विशाल प्राचीर!
चीन की-सी ऊँची दीवार,
खड़ी है यह दुर्लंघ्य अपार।
देख लो, नारी-नर के बीच,
देख लो, घर-बाहर के बीच।

४. तेज

भाल में श्रम, श्रम-कण में तेज,
दीप्त मुख, भृकुटि, नयन में तेज।
वक्ष के प्रतिस्पंदन में तेज,
तुम्हारे तन में, मन में तेज।
तुम्हारे रोम-रोम में तेज,
तुम्हारे भुवन-व्योम में तेज।
तुम्हारे पाँच प्राण पंचाग्नि,
तुम्हारी शय्या सुखद चिताग्नि।

मुक्त करो ज्योति-मार्ग, चूर करो यह दिवार;
मुक्त मिलो बंधु चार, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

वायु बनो अनल-अश्व, फाँद पड़ो वन-पहाड़;
मोह-रास तोड़-ताड़, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

तृप्त नयन पूर्ण प्राण! मुक्त करो स्वर्ग-द्वार;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध-द्वार।

तृप्त नयन पूर्ण प्राण! मुक्त करो स्वर्ग-द्वार;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

५. आकाश

लिया है तृष्णामय संसार,
शेष के माथे का-सा भार।
हुआ चौथेपन में आसीन,
मृत्यु-भय से क्यों कातर दीन?
चीथड़ा जीर्ण, पड़े शत छिद्र,
कृपण तज दे यह तुच्छ दरिद्र।
देह क्या वस्तु?—मुक्ति के अर्थ,
प्राण भी क्षुद्र, स्वर्ग भी व्यर्थ।

निकल पड़ो रूप-बद्ध! भवधि-मध्य तजो भार;
क्षिप्र चलो उसी पार, मुक्त करो बंद द्वार।

तृप्त नयन पूर्ण प्राण! मुक्त करो स्वर्ग-द्वार;
मुक्त करो अनल-शिखा, मुक्त करो सलिल-धार।
पवन-शक्ति मुक्त करो, मुक्त करो धरा-भार;
गगन-ज्ञान मुक्त करो, मुक्त करो रुद्ध द्वार।

श्यामाचरणदत्त पंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

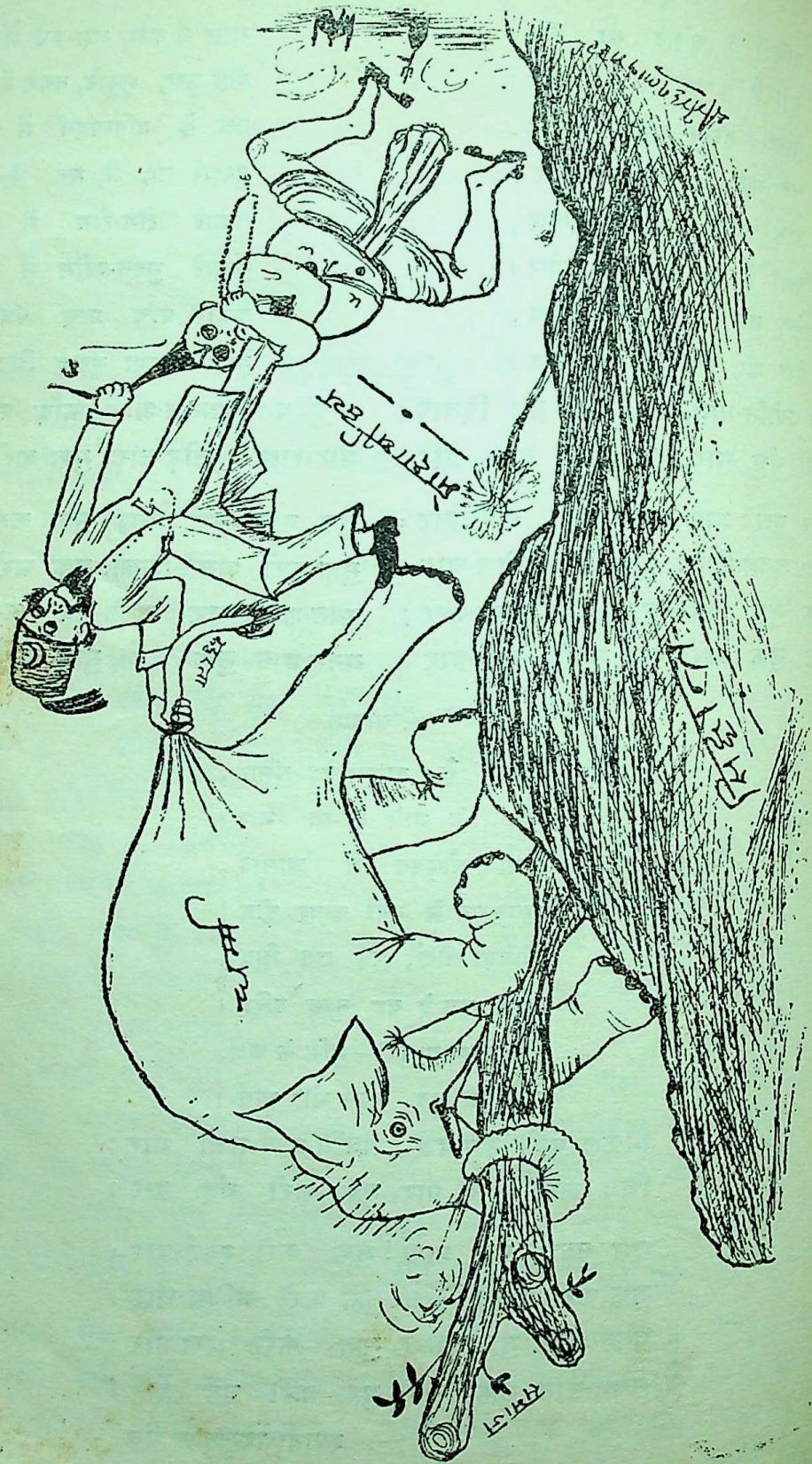

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो साहित्यालंकार]

हमारे कार्टूनिस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सुमन-माला की पुस्तकें

संपादक—औपन्यासिक सम्राट् श्रीप्रेमचंदजी

अग्नि-समाधि

तथा

अन्य कहानियाँ

लेखक

श्रीप्रेमचंदजी

मूल्य १।)

प्रेमचंदजी की सर्वोत्तम आठ कहानियों का अपूर्व संग्रह

वैचित्र्य-चित्रण

लेखक

साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य ॥=)

सृष्टि की अजूबात का वर्णन। नर, वानर, जलचर, स्थलचर, उद्भिज्ज और प्रकीर्णक छः अध्याय हैं। जिसमें अद्भुत और विलक्षण वस्तुओं तथा जंतुओं का वर्णन

ठलुआ-क्लब

लेखक

श्रीगुलाबराय एम्०ए०, एल्-एल्० बी०

मूल्य ॥।)

हास्य और व्यंग्य की अपूर्व पुस्तक।

मधुमेही लेखक, बेकार वकील, आफ़त का मारा दार्शनिक, विज्ञापनयुग में सफल नवयुवक, निराश कर्मचारी, समालोचक, प्रेमी वैज्ञानिक, आलस्य-भक्त, सिद्धांती की बातें पढ़िए और ख़ूब हँसिए

बाल-कथा-कौमुदी

प्यारी कहानियाँ

लेखिका

श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

मूल्य ॥=)

बालोपयोगी कहानियों का अपूर्व संग्रह।

मूल्य ॥)

सुंदर, सरल भाषा में लिखी हुई मनोरंजक कहानियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बिहारी-सतसई की एक नई टीका

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने अपने लेखों में जितनी टीकाओं का उल्लेख किया है, उनमें इस टीका का नाम नहीं है, जिसकी विवेचना इस लेख में की जाती है। यह टीका जबलपुर के बिलहरी-नामक क़स्बे में मिली है, जिसे लोग पुरानी पुष्पावती-नगरी कहते हैं, और जिसमें माधवानल-कामकंदला-नाटक के नायक का निवास माना जाता है। मेरी समझ में मध्यप्रदेश में हिंदी-पुस्तकों की खोज अभी तक नहीं हुई; और इसीलिये कदाचित् इस टीका का समाचार हिंदी के विद्वानों को नहीं मिला।

प्रस्तुत टीका का नाम "अर्थ-बोधिका" है। यह काली-चरण-नामक किसी कवि की रची हुई है। इसमें कवि का जन्म-स्थान वा जन्म-काल नहीं मिलता। टीका कुंडलिया-छंद में है, पर कई एक छंदों की मध्य अथवा अंतिम दो पंक्तियों में रोला के बदले सोरठा का नूतन प्रयोग किया गया है; जैसे—

दीरघ सांस न लेहि दुख सुख सांई मत भूल॥
दई दई कत करत है, दई दई सुकबूल॥
दई दई सुकबूल, सोच नहिं करै उष्प मैं॥
भूलै नहिं हरिचरन, दुष्य जदि होइ सुष्प मैं॥
या निस्चै जिय मान, देत जुई दुष सुई सुष॥
तासों इकसम जान, दीरघ सांस न लेहि दुष॥*

टीका के रचना-काल का भी पता नहीं लगता; प्रतिलिपि का समय सं० १९०८ है, जो टीका के अंत में दिया गया है। वहाँ लिपिकार ने यह लिखा है—

इती श्रीबिहारीकृत सतसइया तस्य अर्थदीपक लाल कालीचरन कुंडलिया कीयते संपूर्न मिती जेठ बद १२ भौम वासरेकह संपूर्न १९०८ कौ लिषौ लाला जालिमसिंच विलहरी वाले जो केऊ बांचे सुनै ताकों राम राम ब्राम्हन कौ दंडौं जैसी प्रत पाई तैसी लिखी॥

लाला ज़ालिमसिंह की जन्म-कुंडली भी टीका के अंत में है, जिससे पता लगता है कि उनका जन्म सं० १८७२ में हुआ था, और टीका की प्रतिलिपि की समाप्ति के समय उनकी अवस्था ३६ वर्ष की थी।

ऊपर "सं० १९०८" इस प्रकार लिखा गया है कि उससे टीका के रचना-काल का भ्रम हो सकता है; पर उसके पश्चात् "कौ लिषौ" (का लिखा) से जाना जाता है कि वह संवत् प्रतिलिपि का ही है। लग्न-कुंडली में

* टीका से जो अवतरण लिए गए हैं, उनमें मूल पाठ और वर्ण-विन्यास की प्रतिलिपि है। दोहे पूर्ण-विराम-चिह्न मूल के हैं। मैंने स्वयं अल्प-विराम जोड़ दिए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अंश फट गया है, इसलिये समय-संबंधी और बातें नहीं मालूम हो सकतीं।

अनुमान होता है कि टीका सं० १९०८ के पूर्व की है; क्योंकि लिपिकार ने लिखा है कि "जैसी प्रत पाई तैसी लिखी"। यदि लेखक ने कवि की ही प्रति से अपनी प्रतिलिपि ली हो, तो भी वह सं० १९०८ के पूर्व की ठहरती है। किसी भी अवस्था में रचना सं० १९०८ के पश्चात् की नहीं है।

टीका का काग़ज़ पतला श्रीरामपुरी-सा जान पड़ता है, और उसकी काली स्याही बहुत गहरी है। शीर्षकों के लिये लाल स्याही का उपयोग किया गया है; पर वह फीकी है। प्रत्येक पृष्ठ में लगभग १६ लकीरें हैं, और प्रत्येक लकीर में अनुमान से १० शब्द हैं। टीका के भीतरी मुखपृष्ठों में पंचमनगरी काग़ज़ लगा हुआ है, और बाहर देशी मोटे पुट्ठे पर कपड़ा चिपका है।

टीका की लिपि सुडौल और सुपाठ्य है। अक्षरों में 'ख' के बदले 'ष' का प्रयोग किया गया है, और पंचम वर्ण के स्थान में सर्वत्र अनुस्वार आया है। 'य' और 'व' के नीचे बिंदी दी गई है। शब्दों के बीच में स्थान नहीं है, और प्रायः प्रत्येक अक्षर का सिरा अलग बाँधा गया है। 'ई' का आकार ई है। व और ब दोनों के लिये 'व' का प्रयोग हुआ है। ए और ऐ के स्थान में अे और अै लिखे गए हैं। ड और ढ के नीचे बिंदी नहीं है, तथा कहीं-कहीं अनुस्वार छूट गया है। ओ के बदले बहुधा 'वो' पाया जाता है।

टीका में सब मिलाकर ७५३ दोहों पर कुंडलियाँ हैं। इनमें ग्रंथकार की कई निजी कुंडलियाँ भी सम्मिलित हैं। दोहे ५५ विषयों में विभक्त किए गए हैं; जैसे—नेत्र-वर्णन, ओठ-वर्णन, दशन-वर्णन, मुख-वर्णन, विरह-वर्णन इत्यादि। मैंने अभी दोहों के क्रम का अध्ययन नहीं किया है, इसलिये इस विषय पर मैं यहाँ कुछ न लिख सकूँगा। सतसई की समाप्ति का दोहा इस टीका में नहीं मिला।

अर्थ-बोधिका की भीतरी रचना के विषय में कुछ लिखने के पूर्व इसके दो-चार अवतरण दे देना आवश्यक जान पड़ता है, इसलिये यहाँ टीका के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१)

तिय कित कमनैती सिषी, विन जिहि भौंह कमान ॥
चल चित बेझा चुकत नहि, वंक विलोकन वान ॥
वंक विलोकन वान, लगत सूधी जिम बरछी ॥
जदिप चवाई हेत, निपट तूं चितवन तिरछी ॥
भृकुटि वरुन धनुवानि, विन जिहि अनी कि विधत चित ॥
होत अचर्ज निदान, यौ गुन सीष्यो तिया कित ॥

(२)

कन दीबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुर हथ् जान ॥
नूप रहचटे लगि लग्यो, सब जग मांगन आंन ॥
सब जग मांगन आंन, लग्यो दरसन हित वाके ॥
सुन येकन सो येक, चलन मांगन नित ताके ॥
लई भीष की बिर्त्त, सबन धनवानौ निर्धन ॥
कितनो देत धराइ, ससुर पर नहीं अटत कन ॥

(३)

नाक मोर सीबी करै, जिते छबीली सैल ॥
फिर फिर भूल वहै गहत, पिय ककरीली गैल ॥
पिय ककरीली गैल, गहत भूलन कौं मिसकै ॥
जिहि मग पग धर तिया, लचककर छिन छिन सिसकै ॥
पिय हिय उमगत मैन, कसक प्रिया जिम पग धरै ॥
तकत समेटत नैन, नाक मोर सीबी करै ॥

(४)

विरह विथा जल परस विन, वसियत मो हिय ताल ॥
कछु जानत जल थंभ विध, दुरजोधन लौ लाल ॥
दुरजोधन लौ लाल, तुम्हैं कौन्यौं विधि आवत ॥
रुकै जौन विधि आंसु, उमडि जे नदी बहावत ॥
थाकी करत उपाइ, थम्हत नहीं केहू विरह ॥
दैहै मनो वहाइ, इम उमडत छिनके विरह ॥

(५)

अत अगाध अत ऊथरो, नदी कूप सर वाइ ॥
है ताको सागर जहा, जह कहु प्यास बुझाइ ॥
जह कहु प्यास बुझाइ, आइ ता हित सो सागर ॥
अरथी अरथै पाइ, करत नीचन को आदर ॥
कढ़त जाहि सों अर्थ, ताही को मानत नृपत ॥
जदि हो बड़ो समर्थ, विन स्वारथ लघु गिनत अत ॥

इन अवतरणों से तथा अन्य उदाहरणों से टीका की नीचे लिखी विशेषताएँ सूचित होती हैं—

(१) कई प्रचलित टीकाओं से इसमें पाठ-भेद कुछ अधिक है।

(२) मूल का भाव समझाने में टीका की कविता कई स्थानों में बहुत मनोहर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) भाषा में कहीं-कहीं बुँदेलखंडी झलक है।

(४) कई स्थानों में लिपि-दोष भी आ गए हैं।

(५) कहीं-कहीं किसी कारण से भाव स्पष्ट नहीं है।

(६) किसी-किसी स्थान में भाषा की भूलें पाई जाती हैं।

(७) कवि का किया हुआ विषय-विभाग न्याय-संगत तथा उपयोगी है। विषयों में नायिका-भेद भी है।

(८) कहीं-कहीं एक ही दोहा दो बार आ गया है; पर उसकी टीका भिन्न-भिन्न स्थानों में पृथक्-पृथक् है।

(९) टीका के कुछ बीच के पन्ने फट गए हैं।

(१०) टीका में कहीं-कहीं तुकांत-दोष है।

(११) किसी-किसी दोहे की दो-दो टीकाएँ हैं।

अब हम अपनी समझ के अनुसार टीका की उत्तम और मनोहर कविता के कुछ और उदाहरण देते हैं—

(१)

जप माला छापा तिलक, सरत न येकौ काम
मन कांचे नाचे वृथा, सांचे रांचे राम ॥
सांचे रांचे राम, सांचे बिन सकल जोग छल ॥
मनवांछित फल मिलै, चित्त दै भजै येक पल ॥
तज नहिं पुत्र कलित्र, नग्न होइ नहिं अग्न तप ॥
मन चित कर येकत्र, नेक राम को नाम जप ॥

(२)

आरन तन समुहाइ छिन, चलत तुरत दै पीठ ॥
वाही तन ठहरात है, किबुलनमा सी डीठ ॥
किबुलनमा सी डीठ, दिसा चारौ फिर धावै ॥
ठहरै वहि दिस नीठ, जौन दिस प्रीतम पावै ॥
ठहरत है नहि नेक, निमिष येक कहु पीव बिन ॥
गोपन हित हित भेव, औरन तन समुहात छिन ॥

(३)

किती न गोकुल कुलबधू, किहि न काहि सिष दीन ॥
कोने तजी न कुल गली, ह्वै मुरली रस लीन ॥
ह्वै मुरली रस लीन, सबन कुल कान गमाई ॥
मुरली धुनि नहिं जान, फिरी व्रज मदन दुहाई ॥
सुन मुरली धुन कान, तजी कान कुल व्रज जिती ॥
जिन न नकी कुल आन, व्रज कहि कुलपालक किती ॥

(४)

कहा भयो जो बीछुर, मो मन तो मन साथ ॥
उड़त जाइ कितहूँ गुड़ी, डोर उड़ायक हांथ ॥
डोर उड़ायक हांथ, गुड़ी है बांधी तासौ ॥
रहि मन नित तिहि साथ, प्रेम है सांचो जासौ ॥
सो मो मन तुव साथ, तुव तन मन रहि मम उरे ॥
हिलमिल रहि सहुलास, कहा भयो जो बीछुरे ॥

(५)

जाके येकै येकहूँ, जग वेवसाइ न कोइ ॥
सो निदाघ फूलै फरै, आंक उहडहो होइ ॥
आंक उहडहो होइ, रहत जो येक भरोसे ॥
सूषत जल थल जवै, तवै फूलत बिन पोसे ॥
सेवत है नर नरन, सरन को तजकै ताके ॥
फूलै फलै निदाघ, आक केवल बल जाके ॥

यद्यपि हमें अन्य टीकाओं से इस टीका का मिलान करने का अभी अवसर नहीं प्राप्त हुआ है, तथापि हम इतना कह सकते हैं कि यह टीका संग्रहणीय है। टीकाकार महाशय उत्तम श्रेणी के नहीं, तो मध्यम श्रेणी के कवि अवश्य हैं। उन्होंने परिश्रम-पूर्वक विहारी के प्रत्येक दोहे पर एक-एक और कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न अर्थवाली दो-दो कुंडलियाँ रचकर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है, और साथ ही सतसई के प्रति सहृदयता प्रकट की है। हम समझते हैं, विहारी के जिन-जिन टीकाकारों ने कुंडलियाँ रची हैं, उनमें कालीचरण कवि का स्थान किसी प्रकार नीचा नहीं है।

यदि यह टीका प्रकाशित की जायगी, तो इसमें पाए जानेवाले लिपि-दोष दूर करने की आवश्यकता होगी।

हमारी समझ में यह टीका मध्य-प्रदेश के कवियों के लिये गौरव की वस्तु है, और यहाँ के प्रकाशकों को इसे प्रकाशित कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय देना चाहिए। इस टीका में यत्र-तत्र बुँदेलीभाषा का जो प्रयोग किया गया है, उससे इस भाषा की योग्यता और व्रजभाषा से समता सूचित होती है।

अब हम कवि की प्रस्तावना से एक कुंडलिया उद्धृत कर इस लेख को समाप्त करते हैं—

बानी वानि सम्हार निज, मोहि दीजिये दान ॥
जीसों मम कृत काव्य को, मानैं कवि परमान ॥
मानैं कवि परमान, नेक दूषन नहिं पावै ॥
दूषो कमौ न जात, मात जो तूँ पद ध्यावै ॥
सेवक कालीचरन, कहत मुहिं सों हित मानी ॥
कीजै मातु सहाय, सुद्ध हो जिमि मम बानी ॥

कामताप्रसाद गुरु

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. बाबा धरनीदास

छपरे के निकट माँझी-नामक एक प्रसिद्ध पुराना ग्राम है। उसी ग्राम में, सत्रहवीं शताब्दी में, बाबा धरनीदास-नामक एक साधु हो गए हैं। उनके नाम पर अभी तक एक मठ उस ग्राम में मौजूद है। वह कविता भी करते थे। उनके बनाए हुए भजन अभी तक उस गाँव में तथा गाँव के आसपास में गाए जाते हैं।

स्वामीजी जाति के श्रीवास्तव-कायस्थ थे। आपके जन्म की ठीक तिथि तो नहीं मिलती; परंतु यह अनुमान किया जाता है कि उनका जन्म जहाँगीर के राजत्व-काल के अंतिम दिनों में हुआ था। प्रयाग के बेलिवेडियर-प्रेस द्वारा प्रकाशित आपकी एक पुस्तक में आपका जन्म सन् १६५६ ई० में होना लिखा गया है।

धरनीदास लड़कपन से ही ईश्वर के प्रेम में मग्न हो जाया करते थे। अपनी युवावस्था में आपको कुछ दिनों के लिये अपने ही ग्राम की मुसलमानी रियासत में दीवानगीरी करनी पड़ी थी। एक बार वह काग़ज़-पत्र लिख रहे थे; चट एक-ब-एक उठे और लोटे में जल लेकर उस पर डाल दिया। लोगों ने समझा, धरनीदास पागल हो गया है। रियासत से तुरंत जवाब तलब किया गया कि उन्होंने सरकारी काग़ज़ क्यों भिगोए?

धरनीदासजी ने कहा कि जगन्नाथपुरी में ठाकुरजी के कपड़ों में आग लगी थी, उसी को मैंने बुझा दिया है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि सचमुच उस दिन, ठीक उसी समय, पुरी में जगन्नाथजी के कपड़ों में आग लग गई थी, और एक अपरिचित आदमी ने दौड़कर लोटे के जल से उसे बुझाया था। हुलिया से मालूम हुआ कि वह धरनीदास ही थे।

अब काम करने में धरनीदास का मन नहीं लगता था। वह ईश्वर के प्रेम में मस्त हो गए थे। अस्तु, अब बाबा धरनीदास ने लगभग २५ वर्ष की उम्र में नौकरी छोड़ दी, और भक्ति में निरत रहने लगे। उन्होंने सरयू (जो माँझी के किनारे बहती है) के किनारे फूस की मढ़िया बनवाई, और उसी में रहने लगे; घर से कोई संबंध न रक्खा। स्वामीजी के विवाह होने का पता लगता है, परंतु नहीं कहा जा सकता कि उन्हें कोई संतान हुई, या नहीं। उसी मढ़िया में उन्होंने बहुत-से भजन और भक्तिरस-पूर्ण कविताएँ लिखीं। उनकी कविताओं के पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने कबीर के मत का अनुसरण किया था। उनका मत कबीर के मत से बहुत कुछ मिलता-जुलता भी है। वह हिंदू और मुसलमानों में भेद नहीं मानते थे। उनका कहना था कि राम कहो या रहीम, ईश्वर तो एक है। देखिए वह कहते हैं—

हिंदु के राम अल्लाह तुरुक के बहुविधि करत बखाना;
दुहुँ के संगम एक जहाँ तहँवा मेरो मन माना।

माँझी-ग्राम में आजकल भी आपके बहुत-से भक्त विद्यमान हैं। सुना जाता है कि गोरखपुर और बंगाल में भी आपके बहुत-से भक्त और अनुयायी आज भी मौजूद हैं। माँझी में जो मठ है, उसमें आपकी एक जोड़ी खड़ाऊँ रक्खी हुई है। वहाँ के लोग उसकी पूजा किया करते हैं।

उक्त स्वामीजी के बनाए हुए बहुत-से भजन तो नष्ट हो गए; परंतु जो कुछ बच रहे हैं, उसका अधिकांश श्रेय प्रयाग के बेलवेडियर-प्रेस और छपरे के नसीमसारन-प्रेस को है। आपकी तीन पुस्तकें इस समय पाई जाती हैं—

(१) शब्द-प्रकाश—यह ग्रंथ सन् १८८७ ई० में बाबू रामदेवनारायणसिंह द्वारा नसीम-प्रेस, सारन, छपरे में छपा था। इस ग्रंथ में आपके दोहों और भजनों का संग्रह है।

(२) धरनीदास की साखी—इस पुस्तक को, कुछ दिन हुए, प्रयाग के बेलवेडियर-प्रेस ने प्रकाशित किया था। परंतु इसकी प्रतियाँ प्रायः समाप्त हो गई हैं। इस पुस्तक में स्वामीजी का संक्षिप्त परिचय भी है।

(३) प्रेम-प्रकाश—इसका विषय कथात्मक है। यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है।

माँझी के साहित्य-सदन-नामक पुस्तकालय में इन तीनों पुस्तकों की एक-एक प्रति सुरक्षित है। द्रव्याभाव के कारण उक्त पुस्तकालय इनके प्रकाशन का कार्य, इच्छा होने पर भी, अभी तक नहीं कर सका है। यदि कोई सुयोग्य प्रकाशक इस काम को उठा ले, तो बड़ा अच्छा हो।

बाबा धरनीदास पक्के वैष्णव थे। मूर्ति-पूजा में आपका विश्वास एकदम नहीं था। वह कहते हैं—

अहमक पूजै अग्नि जल, प्रतिमा पुजै गँवार;
धरनी ऐसा को कहै, कि ठाकुर बिकै बजार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी का मुख्य ध्येय प्रेम था। वह कहते हैं—

उर उपजत प्रभु प्रेम ;
छुटि गयो तब व्रत नेम।

ईश्वर में मिल जाने से कैसा परमानंद प्राप्त होता है, इसे बाबा धरनीदास ने निम्न-लिखित पद्यों में बहुत ख़ूबी के साथ कहा है—

चित चित सरिया मैं लिहलों लिखाई।
हृदय-कमल धइलों दियना लेसाई॥
प्रेम पलँग तहँ धइलों बिछाई।
नखसिख सहज सिंगार बनाई॥
हृदय-कमल बिच आसन मारी।
ले सरधा-जल चरन खटारी॥
हितकै चंदन चरचि बढ़ायो।
प्रीति के पंखा पवन डोलायो॥
भावे कि भोजन परसि जेंवायो।
जो उबरा सो जूठन पायो॥
धरनी इत उत फिरहि न भोरे।
सन्मुख रहहिं दोउ कर जोरे॥

स्वामीजी की मृत्यु की भी ठीक तिथि नहीं मिलती। परंतु इतना निश्चय है कि अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में ही वह मरे थे।

हम बिहारियों की अकर्मण्यता से ही शाहजहाँ के समय का यह कबीर आज हिंदी-संसार में अपरिचित है। मिश्रबंधुओं के विनोद में आपका नाम तक नहीं मिलता! पं० रामनरेश त्रिपाठीजी ने भी अपनी कविताकौमुदी में बाबा धरनीदास को स्थान न देकर सचमुच बड़ा अन्याय किया है। हमारा प्रस्ताव है कि बिहार के और नहीं, तो सिर्फ़ सारन-ज़िले के कुछ चुने हुए लोगों की कमेटी इस काम को अपने हाथ में ले, और बाबा धरनीदास के ग्रंथों का सुंदर प्रकाशन करके, उन्हें हिंदी-संसार के सम्मुख उपस्थित करे।

जगन्नाथप्रसादसिंह

'माधुरी' मुफ़्त में पढ़िए!

कैसे?

अपने इष्ट-मित्रों में से छः सज्जनों को माधुरी का वार्षिक ग्राहक बनाकर हिंदी-प्रचार का पुण्य लूटिए।

साथ ही एक वर्ष आप भी पत्रिका मुफ़्त में लीजिए।

'माधुरी' में पुरुष, स्त्री, बच्चों सभी के योग्य सामग्री रहती है।

प्रतिमास ३-४ तिरंगे बढ़िया चित्र रहते हैं।

सैकड़ों सादे चित्र, सुंदर कविताएँ भी देखिए।

वार्षिक मूल्य केवल ६॥) है। नमूना ॥=)

यदि आप चाहें, तो छः रोज़ में ६ ग्राहक बना सकते हैं।

उपहार में देने के लिये माधुरी सर्वोत्तम भेंट होगी—

पता—मैनेजर 'माधुरी', लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. फुटकल

श्रीनामदेव-वंशावली—रचयिता व प्रकाशक, आयुर्वेद-भूषण नन्हेलाल वर्मा वैद्य-विनोद, साठियाकुआँ, जबलपुर ; मूल्य ।=)

श्रीनाभादास-कृत भक्तमाल में महात्मा नामदेव का वर्णन आया है । उसी के आधार पर लेखक के स्व० काका गणेशप्रसाद राजवैद्य ने श्रीनामदेव-वंशावली पहले, संवत् १९४४ में, छंदों में लिखी । लेखक को भक्तमाल का आधार संतोष-जनक न प्रतीत हुआ, और उन्होंने मराठी श्रीनामदेव-चरित्र के आधार पर यह नवीन वंशावली तैयार की । लेखक की सम्मति में "महाराज नामदेवजी के पूर्वज कुशकवंशी गाधिगोत्रीय देशस्थ क्षत्रिय थे । कन्नौज इनके आदि पुरुषों की जन्म-भूमि थी । परशुरामजी के द्वारा क्षत्रियों का विध्वंस किए जाने के बाद बहुत-से क्षत्रियों ने, क्षत्रियत्व को छिपाने के लिये, अनेक शिल्प-विद्याओं को ग्रहण कर लिया था ।" उन्हीं में कदाचित् नामदेवजी के पूर्वज भी हों । हमें इससे यहाँ कोई बहस नहीं । इस पुस्तक में इन्हीं महात्मा का जन्म से लेकर समाधि-काल तक का वर्णन तिथिवार दिया है । मराठी-पुस्तक के आधार पर वंश-परंपरा की खोज की गई है, और गद्य-पद्य में यह वंशावली लिखी गई है । नामदेव-वंशधारों के काम की है । "कोई नहीं"

× × ×

तेलगु-स्वयं-शिक्षक—लेखक, पं० हृषीकेश शर्मा ; प्रकाशक, दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, १९३ हाई-रोड, ट्रिप्लिकेन, मदरास ; पृष्ठ-संख्या १२४ ; मूल्य ॥) ; काग़ज और छपाई उत्कृष्ट ; प्रकाशक से प्राप्त ।

जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इस पुस्तक में अपने-आप तेलगु-भाषा सीखने के साधन प्रस्तुत किए गए हैं । भारतवर्ष के मदरास-प्रांत में हिंदी का अच्छा प्रचार हो रहा है ; परंतु उत्तर-भारत से जो प्रचारक मदरास को जाते हैं, उनको उक्त प्रांत की भाषाओं का ज्ञान न रहने से प्रचार-कार्य करने में कठिनता पड़ती है । इस पुस्तक की सहायता से तादृश कठिनाई बहुत कुछ दूर की जा सकती है । इस दृष्टि से भी यह पुस्तक उपादेय है । तेलगु-भाषा सीखनेवालों को इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ख़रीदनी चाहिए । पुस्तक बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई है । "पाठक"

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. पत्र-पत्रिकाएँ

वीणा—संपादक, पं० अंबिकाप्रसाद त्रिपाठी ; प्रकाशक, मध्य-भारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर ; वार्षिक मूल्य ५)

उक्त समिति से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'वीणा' सुंदर और सुपाठ्य है । इसका काग़ज़ तथा छपाई भी सुंदर है । श्रीत्रिपाठीजी-सरीखे अनुभवी और हिंदी-सेवी सज्जन द्वारा संपादन की जैसी आशा रखनी चाहिए, वैसी ही कार्यरूप में परिणत हुई । विविध विषयों पर शिक्षाप्रद मनोहर कविताएँ तथा लेख-कहानियाँ प्रतिमास रहती हैं । बच्चों के स्वास्थ्य-संबंधी गवेषणा-पूर्ण लेख प्रतिमास दिए जाते हैं, जिनको पढ़कर साधारण जन-समाज भी काफ़ी लाभ उठा सकता है । विद्यार्थियों के लिये पैमाइश एवं शिक्षा-संबंधी नोट भी बराबर दिए जाते हैं । संपादकीय टिप्पणियाँ सार-गर्भित तथा तर्क-पूर्ण होती हैं । तात्पर्य यह कि पत्रिका का संपादन और प्रकाशन ज़िम्मेदारी के साथ हो रहा है । हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि त्रिपाठीजी के संपादकत्व में इस पत्रिका का भविष्य-जीवन और भी उज्ज्वल तथा समाज के लिये कल्याणकारी हो । हिंदी-प्रेमियों को इस पत्रिका के ग्राहक बनकर मातृ-भाषा को प्रोत्साहन देना चाहिए ।

× × ×

सुकवि (रसांक)—संपादक, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ; प्रकाशक, सुकवि-प्रेस, फ़ीलख़ाना, कानपुर ; वार्षिक मूल्य ३)

'सुकवि' का रसांक हमारे सामने है । यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध, दो भागों में विभक्त है । इस अंक की छपाई तथा काग़ज़ तो साधारण है, परंतु संपादन सुरुचि-पूर्ण और विद्वत्ता-पूर्ण हुआ है । काव्य के प्राण सभी रसों पर लेखकों द्वारा छोटे-छोटे सुंदर निबंध विवेचना-पूर्ण ढंग पर लिखे गए हैं । साथ ही अन्य कविताओं की एक अच्छी संख्या का भी इस अंक में समावेश है । रसांक में काफ़ी कवियों का जमघट हो गया है । ऐसा जमघट एक कवि-सम्मेलन के रूप में ही भासित होता है । कवि-सम्मेलनों द्वारा जनता में काव्य की सुरुचि उत्पन्न करने का बहुत बड़ा श्रेय सनेहीजी को है । इसी की पूर्ति के लिये रसांक भी समझिए । साधारण अंकों में भी बहुत-सी स्फुट कविताएँ तथा समस्या-पूर्तियाँ रहती हैं । सच तो यह है कि 'सुकवि' अपने ढंग का बड़ा ही मज़ेदार मसाला है । यह कवियों को भी आनंद देता है, और साधारण पाठकों का भी काफ़ी मनोरंजन करता हुआ ज्ञान-वर्द्धन में सहायता देता है । सनेहीजी काव्य-जगत् में अच्छी ख्याति पा चुके हैं । विश्वास है, उसी भाँति उनका 'सुकवि' भी हिंदी-संसार में अपना एक ख़ास स्थान प्राप्त करने में समर्थ होगा । काव्य-प्रेमियों को ३) भेजकर इस पत्र के ग्राहक बन जाना चाहिए । भगवान् 'सुकवि' को सुदृढ़ और लोकोपकारी होने का आशीर्वाद दे—यही प्रार्थना है ।

× × ×

हिंदी-ला-जनरल—संपादक, बा० रूपकिशोर टंडन एम्० ए०, एडवोकेट; प्रकाशक, पं० चंद्रशेखर शुक्ल, अथर्व क़ानून-प्रेस, कानपुर ; वार्षिक मूल्य ४)

संभवतः हिंदी में क़ानून और नज़ीरों का यह एक-मात्र पत्र है । इसमें बंबई, लाहौर, नागपुर, मदरास आदि हाईकोर्टों के उल्लेखनीय फ़ैसले प्रतिमास दिए जाते हैं । प्रिवी-कौंसिल की अपीलों के फ़ैसले भी शामिल रहते हैं । क़ानून-संबंधी अन्य उपयोगी बातें भी हर महीने दी जाती हैं । अँगरेज़ी की जानकारी न होने से जनता का अधिकांश भाग इन बातों से वंचित रह जाता है । पं० चंद्रशेखरजी शुक्ल ने क़ानूनी पुस्तकों का हिंदी में प्रकाशन करके और 'हिंदी-ला-जनरल' निकालकर बड़ा उपयोगी कार्य किया है । हिंदी-भाषा-भाषी जनता को प्रकाशक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए । क़ानूनी ज्ञान-प्रवर्द्धन के लिये यह पत्र उपयोगी है । इधर इसका मूल्य भी घटाकर ४) वार्षिक कर दिया गया है । अस्तु, अब सर्व-साधारण भी ग्राहक बनकर इससे लाभ उठा सकते हैं । पत्र की सफ़ाई-छपाई अच्छी है ।

× × ×

युवक—संपादक, श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, युवक-आश्रम, पटना ; वार्षिक मूल्य ४)

'युवक' के उत्साही जन्मदाता और संपादक श्रीरामवृक्षजी शर्मा ने बड़े मौक़े से 'युवक' को जन्म दिया । देश की वर्तमान परिस्थिति में ऐसे पत्रों की बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है। युवक-समाज ही समुज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकता है। उन्हीं में शक्ति, साहस, लगन, उत्साह, ज़िम्मेदारी और कर्तव्य-ज्ञान पैदा करने की ज़रूरत है। इसी उद्देश्य को लेकर 'युवक' ने पदार्पण किया है। इसके लेख भी तदनुकूल ही चुने जाते हैं। कविताओं में भी वीरता और उमंग की काफ़ी झलक रहती है। 'युवक' युवकों के लिये सब प्रकार से उपादेय है। हमारी इच्छा है कि भारत का प्रत्येक युवक इस पत्र को अपनाने का उत्साह दिखाए। हमारा विश्वास है, शर्माजी के संपादन और संचालन में 'युवक' दिनोंदिन उन्नति करेगा। 'युवक' में प्रतिमास एक फड़कता हुआ तिरंगा चित्र रहता है। छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है। ऐसे सत्साहस और सत्कार्य के लिये हम श्रीरामवृक्षजी शर्मा को हार्दिक बधाई देते हैं।

रामसेवक त्रिपाठी

यदि आपको सस्ती, सुंदर और सुरुचि-पूर्ण पुस्तकें
पढ़नी हैं, तो फ़ौरन् जगद्विख्यात—
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित
साहित्य-सुमन-माला के
॥) प्रवेश-शुल्क देकर स्थायी ग्राहक बन जाइए।
आपको सभी पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।
इस माला के संपादक हैं उपन्यास-सम्राट्
श्रीप्रेमचंदजी
विशेष लिखना व्यर्थ है।
आज ही ॥) भेजिए और नाम लिखाइए।
पता—मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. पैतृक गुणावगुण

एक महानुभाव का कहना है कि "बालक की शिक्षा उसके जन्म से पचास वर्ष पहले आरंभ होनी चाहिए।" इससे उनका अभिप्राय यही है कि माता-पिता, दादा-दादी और अन्य पूर्वजों का प्रभाव बालक पर बहुत पड़ता है, और यदि हमारी यह इच्छा हो कि हमारे बालक उन्नतिशील हों, तो माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि को सबसे पहले अपना सुधार शुरू करना होगा। हम लोगों में भी एक कहावत है—

"मा पर पूत पिता पर घोड़ा;
बहुत नहीं तो थोड़ा ही थोड़ा।"

अर्थात् पूत (पुत्र का अपभ्रंश) और घोड़ा (प्यार में लड़के को घोड़ा भी कहते हैं) मा और बाप पर होते हैं, और यदि वे अधिक बातों में अपने मा-बाप-जैसे नहीं होते हैं, तो थोड़े-बहुत अवश्य होंगे। इस विषय पर बहुत-से विशेषज्ञों ने लिखा है, और वे सब इस बात में सहमत हैं कि माता-पिता के गुण और अवगुणों का प्रभाव बालक पर बहुत पड़ता है। उन्होंने अपने इस मत को अनेक प्रकार से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, और बहुत बड़ी-बड़ी पुस्तकें रची हैं। इसी सिद्धांत को मैं भी इस लेख में, बहुत संक्षेप में, साबित करने का प्रयत्न करूँगी।

ऐतिहासिक दृष्टांत

अभिमन्यु अर्जुन-जैसे वीर और शस्त्रज्ञ, घटोत्कच भीम-जैसे पराक्रमी, अश्वत्थामा अपने पिता द्रोण-जैसे शस्त्र-विद्या में निपुण थे। लव-कुश ने बाल्यकाल में ही महाराज रामचंद्र के विरुद्ध युद्ध करके, उनकी सेना को इस तरह बाँध लिया कि रामचंद्रजी भी विस्मित हो गए और सोचने लगे होंगे कि मेरे पुत्रों के अतिरिक्त इस भूतल पर कौन हो सकता है, जो मुझको पराजित करे। इतिहास ऐसे दृष्टांतों से भरापुरा है। अनेक दृष्टांत ऐसे मिलेंगे, जिनमें बिलकुल माता-पिता-जैसी उनकी संतान हुई।

साधारण अनुभव

हम रोज़ ही देखते हैं कि अनेक मनुष्यों में अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी और अन्य पूर्वजों के गुण अथवा अवगुण विद्यमान रहते हैं *। यह अवश्य है कि

---

* गाल्टन का मत है कि बालक में जो गुणावगुणों की बपौती होती है, उसमें से औसतन् ½ माता-पिता से, ¼ दूसरी पीढ़ी के पूर्वजों से (अर्थात् दादा-दादी, नाना-नानी से), ⅛

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी में अधिक और किसी में कम। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मनुष्यों में कोई विशेष बात उसके पूर्वजों के विरुद्ध भी होती है। विशेषज्ञों का मत है कि खास हालतों में * विज्ञान का यह भी एक नियम है, जो कभी-कभी लागू होता है। इस विज्ञान के अध्यापक फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) और ग्रेगर मेन्डेल (Greger Mendel) का कहना है कि इस विषय का अध्ययन करने में हमको यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य के प्रत्येक गुण अथवा अवगुण को अलग-अलग देखें कि कौन-सी बात माता से, कौन-सी पिता से, कौन-सी दादा और कौन-सी दादी से मिलती है। किसी मनुष्य को देखकर एकदम कह देना कि वह माता से, पिता या दादा से मिलता है, या इनमें से किसी से नहीं मिलता, बहुत भूल है। मनुष्य को केवल देखकर डाक्टर यह नहीं कह सकता है कि वह स्वस्थ है, या रोगी। वह प्रत्येक अंग का निरीक्षण करता है, और फिर प्रत्येक के बारे में अपनी राय बतलाता है। ऐसा ही इस विषय के विद्यार्थी को करना होगा।

यदि सारी सृष्टि को लिया जाय, तो हम देखते हैं कि मनुष्य, पशु (शेर, हाथी, गाय, घोड़ा, गधा, कुत्ता, बिल्ली इत्यादि), पक्षी (तोता, मैना, कौआ इत्यादि), साग-भाजी (आलू, गोभी, सेम, लौकी आदि) इत्यादि सबसे उसी श्रेणी के जीव उत्पन्न होते हैं। आदमी से गाय, शेर से हाथी, कौए से तोता, आलू से गोभी नहीं होती। इसका कारण यही है कि एक श्रेणी के अंकुर से उसी श्रेणी के जीव उत्पन्न हो सकते हैं।

यदि हम मनुष्य-श्रेणी को देखें, तो योरप, एशिया और आफ्रिका-निवासियों के रूप-रंग इत्यादि में बहुत अंतर मिलेगा। एशिया के प्रत्येक देशों के रहनेवालों में भी कुछ विशेष अंतर होता है, और इस कारण चीनी, भारतवासी, अफ़ग़ानी आदि को हम देखते ही बतला सकते हैं कि वह कौन-से देश का रहनेवाला है। भारतवर्ष में ही काश्मीरी, पंजाबी, बंगाली, मराठे, मदरासी आदि सहज में ही पहचाने जा सकते हैं। बहुत-से कुटुंबों में देखा गया है कि उसके सब मनुष्य लंबे, मोटे, ठिंगने, गोरे, पतले, काले, नीली पुतलीवाले, अधिक बालवाले इत्यादि अनेक विशेष बातोंवाले होते हैं। इसी कारण बहुत-से बच्चों को देखकर तुरंत बतलाया जा सकता है कि वे अमुक के भाई-बहन या अमुक माता-पिता के लड़के हैं। कुछ कुटुंबियों में देखा जाता है कि उनकी नाक, कान, आँख, मुँह, ठोड़ी इत्यादि में कुछ विशेषता होती है। इसी प्रकार कुछ घरानों में देखा गया है कि उनके लड़के-लड़कियों को लगभग उसी आयु में कोई विशेष रोग हो जाया करता है—जैसे साँस, तपेदिक़, कोढ़, बहरापन, हकलाना, निकट दृष्टि, मोतियाबिंद *, दाँतों का जल्दी टूटना इत्यादि।

कुछ ख़ानदानों के मनुष्य बहुधा दीर्घ-आयुवाले होते हैं, कुछ के अल्प-आयुवाले। कुछ को कोई ख़ास रोग बहुधा हो जाता है। इस कारण बीमा की कंपनियाँ बीमा कराते समय इन सब बातों की तहक़ीक़ात कराती हैं,

---

पीढ़ी के पूर्वज……और इसी तरह अन्य पूर्वजों से होती है। परंतु यह नियम हमेशा लागू नहीं होता। कभी पूर्वज के गुण अधिक और कभी बहुत कम आ जाते हैं।

*(१) कभी-कभी पूर्वजों के गुणावगुणों का मिलान से बालक में बिलकुल नया स्वभाव देख पड़ता है।

(२) कभी ऐसा होता है कि मा-बाप या दादा-दादी में स्वभाव (जो उन्होंने अपने पूर्वजों से पाए हों) मौजूद हैं, पर दिखलाई नहीं देते। ऐसे छिपे हुए स्वभाव ख़ास में, संतान में, प्रकट हो जाते हैं।

(३) गाल्टन ने यह नियम निकाला कि जो बात माता-में **बहुत अधिक** होती है, वह बहुधा बालक में बहुत कारण होती है, अर्थात् यदि माता-पिता बहुत अधिक लंबे तो बालक औसत या उससे भी कम लंबा होगा, और यदि माता-पिता किसी कला या विद्या में बहुत अधिक निपुण होंगे, संभव है बालक उसमें बिलकुल शून्य हो।

(४) कुछ बड़े आदमियों के लड़के अपने पिता से गिरे इस कारण भी होते हैं कि इन आदमियों को इतना अधिक काम करना पड़ता है कि उनका दिमाग़ काम के मारे घबराया और थका रहता है।

---

* आँख की पुतली तोल में मनुष्य की तोल का १।३,०००,००० हिस्सा होती है, और पुश्तैनी मोतियाबिंद में पुतली का केवल बीसवाँ हिस्सा ख़राब होता है। पर ऐसा देखा गया है कि एक ख़ास उम्र में उस घर के समस्त बच्चों को यह रोग हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इनके अध्ययन से मनुष्य के भावी स्वास्थ्य और आयु का अनुमान कर लेती हैं। बाज़ कुटुंबों के सब बालक बहुधा मोटे होते हैं, चाहे वह कितनी ही दरिद्रता या दुःख में रहें; बाज़ कुटुंबवाले सब पतले होते हैं—वह कभी मोटे हो ही नहीं सकते—चाहे जितने सुख से रहें। कुछ कुटुंबवाले एक ख़ास आयु के लगभग गंजे हो जाते हैं, और बाज़ों के बुड्ढे होने पर भी बाल नहीं गिरते। बाज़ कुटुंबों में अधिक बच्चे होते हैं। बाज़ कुटुंबवाले बाएँ हाथ से काम करनेवाले होते हैं।

जैसे शारीरिक रचना, स्वास्थ्य, रोग इत्यादि में माता-पिता का प्रभाव पड़ता है, उसी तरह मानसिक स्थिति पर मनुष्यों की आदतें, स्वभाव, मानसिक प्रवृत्ति इत्यादि माता-पिता और अन्य पूर्वजों-जैसी होती है। गोडर्ड, डैवनपोर्ट, मौट और रोज़नौफ़ (Goddrd, Davenpart, Mott, Rosanaff) ने यह सिद्ध कर दिया है कि पागलपन, मानसिक क्षीणता, हिस्टीरिया, मृगी आदि माता-पिता के कारण बालकों में आ जाती । इच्छा-शक्ति का बलिष्ठ और कमज़ोर होना, बदमाशी और अपराध करने की आदत, शराबख़ोरी इत्यादि बुरी बातें माता-पिता के कारण ही बालकों में आती हैं। गाल्टन ने सिद्ध किया है कि कुछ ख़ानदानों के प्रत्येक मनुष्य तीव्रबुद्धि या अन्य बड़े काम करनेवाले होते हैं। उड (Wood) ने कई राजाओं की अनेक पुश्तों का अध्ययन करके देखा कि कुछ राज-परिवारों में बहुत उच्च या नीच कोटि के राजकुमार कई पीढ़ी तक हुए।

पशु-पक्षी और वनस्पति से तुलना

हमारे ऋषियों का कहना है कि जीव-जंतु, वनस्पति और खनिज-पदार्थ, सभी में मनुष्य की भाँति जीव है। कई शताब्दियों से विज्ञानाचार्य भी यही साबित कर रहे हैं कि शारीरिक रचना में मनुष्य भी एक साधारण पशु-पक्षी के तुल्य है, और वह भी साधारण पौदे या पशु-पक्षी की भाँति जन्म लेता है, बढ़ता है, बड़े होने पर उसके बच्चे होते हैं, और अंत में उनकी मृत्यु होती है। विज्ञानाचार्य सर जगदीशचंद्र बसु ने तो जीव के विकास और उसकी एकता अथवा समानता को बिलकुल प्रत्यक्ष रूप से दिखला दिया । उनका कहना है कि पौदों पर भी मनुष्य की भाँति सुख-दुःख, हँसने-रोने, विष और शराब का असर होता है। अतः ऋषियों के कथन, जीव के विकास और तत्संबंधी वैज्ञानिक सिद्धांत, अनगिनित अनुभव, निरीक्षण और प्रयोगों से यह सिद्ध है कि ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य भी अन्य पदार्थों की भाँति एक जीव है—ईश्वर की समस्त सृष्टि में जीव एक-सा सामान्य है—और वही नियम, जो खनिज-पदार्थ और पशु-पक्षियों के लिये लागू है, मनुष्य के लिये भी लागू है।

वनस्पति और पशु-पक्षियों पर अनेक प्रकार के प्रयोग और उनके नियमों का निरीक्षण और अनुभव भी बड़े ध्यान से किया जा सकता है। इसी कारण चिकित्सा ज्ञान में इतनी सफलता प्राप्त हुई है। इन्हीं के पैतृक गुणावगुण के नियमों का अध्ययन करके, विशेषज्ञों ने यह सिद्ध किया है कि पैतृक गुणावगुण का प्रभाव संतान पर अधिक पड़ता है, तथा इस संबंध में अन्य नियमों पर भी प्रकाश डाला है?

हमारे पूर्वज भी जानते थे कि अच्छे बीज से अच्छी उपज होती है। वे उस उपज के सुधारने और उसको स्वादिष्ट, बलिष्ठ और अधिक गुणदायक बनाने के नियमों से परिचित थे। पर उन्नीसवीं शताब्दी में टामस ऐंड्रू नाइट (Thomas Andrew Knight) ने इस विषय में अद्भुत जागृति उत्पन्न कर दी। बदमज़ा जंगली चीज़ों से उन्होंने ऐसे स्वादिष्ट सेब और अन्य फल उत्पन्न किए कि उनको खाकर बहुत अचंभा होता था। विशेषज्ञों ने जंगल के एक पत्तीवाले गुलाब के फूल से बहुत-से और कई रंगों के सुंदर-से-सुंदर और दिल को लुभानेवाले गुलाब के फूल उत्पन्न किए, जिनको देखकर हमारी आँखें अचंभे में आ जाती हैं। डाक्टर होलब्रुक का कहना है कि यदि वनस्पति और पशु-पक्षियों में पैतृक गुणावगुण के नियम लागू होते, तो हमारे यह सब यत्न व्यर्थ होते, और उनमें यह सफलता कभी न प्राप्त होती। भोजन के लिये मुर्ग़ी, कबूतर और अन्य परिंदों के पालनेवालों ने भी पैतृक गुणावगुणों के नियमों का पालन करके बड़ी उन्नति की। इन नियमों के ज्ञान और पालन से अनेक जातियों की मुर्ग़ी आदि उत्पन्न की गईं। इनका विशेषज्ञ देख लेता है कि उसको भोजन के लिये मोटे-ताज़े पक्षी की आवश्यकता है, या अंडों के लिये छोटे पक्षियों की। फिर वैसे ही पक्षियों को छाँटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार के पक्षी उत्पन्न कर लेता है। यदि जंगली सुअरों से अन्य सुअरों की तुलना करें, तो हम विस्मित हो जायँगे। सुअर की टाँग खाने के काम में बहुत कम आती है। इस कारण एक विशेषज्ञ का कहना है कि सुअर की टाँग इतनी छोटी होनी चाहिए कि उसका पेट ज़मीन से ज़रा ही ऊँचा रहे, ताकि वह ज़मीन से रगड़ न खाय, और लंबी टाँग व्यर्थ न जाय। इस कथन के अनुसार विशेषज्ञ ऐसे सुअर उत्पन्न करने लगे हैं, जिनकी टाँग जंगली सुअरों से बहुत छोटी होती है।

बैकवेल ने भेड़ों पर बहुत अद्भुत प्रयोग किए। उन्होंने तो मानो ऐसा किया कि अपनी इच्छानुसार भेड़ का चित्र खींच लिया, और फिर उसमें जान डाल दी। इस बात का विचार करके कि उनको किस प्रकार की भेड़ उत्पन्न करना है, उन्होंने उसी प्रकार की भेड़ें चुननी शुरू कीं, और फिर उनसे अपने आदर्श के अनुसार भेड़ें तैयार कर लीं, जो साधारण भेड़ों से बहुत भिन्न थीं।

जो विशेषज्ञ घुड़दौड़ के लिये घोड़ों को सधाते हैं, उनका कहना है कि घोड़ा चाहे जैसा तेज़ और अच्छा क्यों न हो, अगर घुड़दौड़वाले घोड़ों की नस्ल का नहीं है, तो वह घुड़दौड़ के काम का नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें वे गुण नहीं होंगे, जिनकी घुड़दौड़ में परम आवश्यकता होती है। उनका कहना है कि ऐसा कोई घोड़ा दौड़ में सफल नहीं हुआ, जो घुड़दौड़वाले घोड़ों की नस्ल का नहीं था। संभव है, थोड़ी दूर तक कोई घोड़ा विशेष तेज़ी से जा सके; पर जब दूर की घुड़दौड़ का मौक़ा आवेगा, तब उसमें वह साहस, धीरता और तेज़ी नहीं रहेगी, जो उसको सबसे आगे ले जाय।

अस्तु, जब पैतृक गुणावगुण का इतना प्रभाव पड़ता है, और ठीक ध्यान देने और इस विषय के नियमों का पालन करने से हम साग-भाजी, फल-फूल, पशु-पक्षी में इतनी उन्नति कर सकते हैं, तो क्या मानव-जाति के लिये यह उचित नहीं है कि हम इस प्रकार विवाह करें *, और विवाह-पश्चात् अपने को इस प्रकार सुधारें कि हमारी संतान हमसे अच्छी हो, और इस प्रकार देश, जाति तथा कुटुंब की उन्नति हो।

मायादेवी

× × ×

२. पश्चात्ताप !

१

इन ललचाई आँखों ने—
देखा है कौन ख़ज़ाना ?
छिपकर जिसके पाने को,
नित नए रंग दिखलाना !

२

मन की आशाएँ मन में,
क्यों मचल-मचलकर रोतीं ?
आहें क्यों आँसू बनकर—
दामन को आज भिगोतीं ?

३

मचले से मेरे जी ने—
सीखा है चोरी करना।
लूटना और उस पर फिर—
ये सीना-ज़ोरी करना ?

४

पड़कर उलझी-उलझन में,
मेरे कुछ हाथ न आया !
लालच के इन धंधों में,
जीवन को व्यर्थ गँवाया !!

सुशीला देवी त्रिपाठी

× × ×

* इसी कारण हमारे पूर्वज विवाह के समय लड़के-लड़की के ख़ानदान का इतना ध्यान रखते थे; क्योंकि निस्संदेह पैतृक गुणावगुण के नियमों को कोई नहीं तोड़ सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. परदा-निवारण के संबंध में कुछ विचार

इधर कुछ दिनों से भारतीय स्त्री-समाज के शुभ ग्रहों का उदय होता-सा प्रतीत हो रहा है। उसके ललाट के अक्षरों पर समाज-सुधारकों की दृष्टि जा पड़ी है। अब वे उसकी दयनीय कहानी तथा करुण-क्रंदन को ध्यान-पूर्वक सुनते एवं बड़ी सहृदयता के साथ समाचारपत्रों में पढ़ते हैं, और अवसर पाने पर कुछ कार्य भी करते हैं। अस्तु, वर्तमान समय में अन्य सुधारों के साथ-साथ परदा-प्रथा पर बड़ी गंभीरता से विचार किया जा रहा है। कोई-न-कोई समाचारपत्र—चाहे मासिक हो अथवा पाक्षिक या साप्ताहिक—को उठा लीजिए, इस विषय का मसाला कुछ-न-कुछ अवश्य मिलेगा। अपने-अपने अनुभव के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रमाणों द्वारा इस प्रथा को हानि-कारक बताने में तनिक भी नहीं सकुचता।

निस्संदेह इस प्राणघातक प्रथा को समूल नष्ट कर देना ही स्त्री-समाज के लिये कल्याणकारक होगा। किंतु अभी नहीं; अभी कुछ काल तक समय और समाज की गति परखने की आवश्यकता है। जिन प्रांतों से इस प्रथा का अंत हो चुका है, उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है; किंतु जहाँ और जिस समाज में इसका प्रवेश है, वहाँ इसका स्थिर होकर रहना ही कदाचित् लाभदायक है। जिस समाज के इंद्रिय-लोलुप, कामांध नर-पिशाचों के कुटिल नेत्र रूप और सौंदर्य की खोज में चौबीसों घंटे इधर-उधर भटकते रहते हैं, वहाँ से परदा हट जाना स्त्रियों के लिये महान् हानिकारक होगा।

जिस प्रांत में शिक्षित स्त्रियों की संख्या केवल शून्यवत् हो और पुरुषों की पौने पाँच प्रतिसैकड़ा, वहाँ पर परदा उठ जाने से कापालिकों का ही युग आ जायगा। और, अभी जो छिपे हुए, धर्म की आड़ लेकर, बड़े-बड़े जघन्य पाप करते हैं, वे सब एक बार, रूप-राशि को निराश्रित जानकर उसे ख़ूब लूटने की चेष्टा अवश्य करेंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

मैंने अपने जीवन के तुच्छ दिनों में दोनों धारणाओं के विषय में अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार कुछ थोड़ा-सा विचार किया है, अतएव उसी आधार पर कुछ निवेदन करने का साहस करती हूँ। मेरी पैदाइश बरार-प्रांत के एक छोटे-से ज़िले की है। मेरी पूर्ण अवस्था का चतुर्थांश वहीं व्यतीत हुआ। माता-पिता की आर्थिक दशा संतोष-जनक न होने के कारण उच्च शिक्षा से वंचित रही। साधारण मराठी इत्यादि का अध्ययन करने के पश्चात् [illegible] इच्छा के विरुद्ध, धनाभाव के कारण शिक्षाक्षेत्र से पृथक् होना पड़ा। सारांश यह कि महाराष्ट्र-स्त्री-समाज में रहने का सुअवसर मुझे मिल चुका है, और आजकल [illegible] वर्षों से संयुक्तप्रांतीय स्त्री-समाज के विषय में भी अध्ययन कर रही हूँ। लेकिन दोनों में बड़ा अंतर है—आश्चर्य-जनक अंतर है! यदि वह प्रांत स्वर्ग है, तो यह नरक; यदि वहाँ सतयुग है, तो यहाँ कलियुग। यदि वहाँ मनुष्य हैं, तो यहाँ राक्षस। तात्पर्य यह है कि वहाँ और यहाँ से कौड़ी-मोहर का भेद है। वहाँ यदि स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं, तो किसके बल पर?—केवल पुरुषों की सच्चरित्रता के बल पर। अन्यथा नित्य ही दो-चार के ज़बरन् सतीत्व नष्ट किए जाने के समाचार पढ़ने एवं सुनने को मिला करें।

संयुक्त-प्रांत में इस प्रथा के विशेष अनुयायी देखे जाते हैं। ठीक है। यहाँ प्रत्येक समाज में परदा-प्रथा की विशेष आवश्यकता भी प्रतीत होती है। यहाँ गुंडा-समाज नाम की कोई संस्था है, जिसके सदस्य समस्त भारतवर्ष-भर में फैले हुए हैं और जिसका मुख्य उद्देश्य अनाथ, निराश्रित बहनों को धोखा दे-देकर उनका सतीत्व नष्ट करना और अंत में उनको विधर्मियों के हाथ सौंप देना है। इन लोगों की काली करतूतें समाचारपत्रों में प्रायः पढ़ने को मिला करती हैं। जिस समाज के धर्माचार्यों को बहन-बेटी का ज्ञान न हो, मैं नहीं जानती कि वहाँ से परदा उठ जाने में क्या लाभ होगा! मेरी बुद्धि से तो ऐसी जगहों में परदे पर क्यों न और अधिक ज़ोर दिया जाय और उसका ठीक-ठीक सुधार किया जाय। हम लोगों के यहाँ परदा तो होता है, किंतु इस परदे से तो परदा न होना अच्छा है। यदि परदा किया जाय, तो पूर्ण रूप से किया जाय। इस विषय में हमको अपने मुस्लिम भाइयों की ओर देखना चाहिए। मियाँ चाहे भिश्ती का काम क्यों न करते हों, परंतु बीबी दो क़दम के लिये भी डोली मँगाएँगी। बड़ी बी चाहे भीख ही क्यों न माँगती हों, किंतु क्या मजाल कि किसी तरह से भी आप एक उँगली तक तो देख लें। परदा करे, तो इस प्रकार करे। यह परदा नहीं कहा जाता है कि रात को दो-दो बजे तक धार्मिक उत्सवों को देखने के लिये मारी-मारी फिरो, और धर्म के ठेकेदारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्वासनाओं का निशाना बनो। यह ठीक नहीं। परदा नियमित रूप से होना चाहिए। भाई-बहन में परदा चाहिए, मा-बेटे में परदा चाहिए, पिता-पुत्री में परदा चाहिए। किंतु परदा हो भावना का—शील का। स्त्री-पुरुष के मध्य में भी तो परदा होता है। अतएव मैं अपने उन भाइयों और बहनों से सविनय प्रार्थना करती हूँ—जिनके हृदय नारी-समाज की मूक-वेदना के कारण तिलमिला उठे हैं—कि कोई कार्य करने के प्रथम ख़ूब अध्ययन कर लें, और ख़ूब सोच-विचार कर आवाज़ उठावें। अन्यथा लेने के देने पड़ेंगे। मेरे विचार से सब जगह से परदा-प्रथा का उठ जाना आवश्यक नहीं है। जो प्रांत इस योग्य हो चुका हो, जहाँ इस प्रथा के उठ जाने से कोई किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं है, वहाँ की तो कोई बात नहीं; किंतु अपना संयुक्त-प्रांत अभी इस योग्य नहीं है। अतएव यहाँ के परदे में सुधार होने की तो परमावश्यकता है, लेकिन बिलकुल उठ जाने की नहीं।

सुभद्रा बाई

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की ओषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों ओषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

ठि० लारो रोल० जोरुसबर्ग (एम्० ए०)
१३।१२।२८

मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ। बच्चे की तबियत अच्छी है।

नारायणदास रामा—
ठि० मुकुर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर
बंबई—१३।१२।२८

आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ। अब दस मास का हुआ है।

अमृतलाल माषजी—
फ़ैज़पुर, (जि० ख़ानदेश) ता० १०।१२।२८

आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ।

केशवजी माणिकचंद—
छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८

आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षुधा लगती और खाना भी हज़म होता है। अब पेट, पेडू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो। २२

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विनोद

१. कोयल

फुदक-फुदककर बड़े सवेरे,
शीटी ख़ूब बजाती है;
मानो "हुआ सवेरा, उठ बैठो"—
यह कहने आती है।
या छोटे-छोटे बच्चों को,
गा-गा गीत सुलाती है;
या मीठी बोली छन्नू मुन्नू
को रोज़ सिखाती है।
काली-काली दिखती है, पर
सचमुच भोली-भाली है;
मीठी बोली के हित ही तो
जगदीश्वर ने पाली है।
पेड़-पेड़ पर जा-जा करके,
वह मीठे फल खाती है;
कौए के रँगवाली है, पर
उसको रोज़ छकाती है।
उसको सभी मान देते हैं,
कौआ झिड़का जाता है;
गुण से जग में यश मिलता है,
रूप-रंग क्या पाता ?

चौधरी गौरीशंकर

× × ×

२. तीन अहमक

मूर्खपुर-नगर में तीन ठाकुर रहते थे। उन्होंने अपनी धाक सारे नगर में जमा ली थी। किसी को ऐसा साहस न था कि कोई उनके खेत के पास से निकल जाय। यदि कोई निकलता भी, तो वे सब मिलकर उसको पीटते। एक समय एक नाई उनके खेत के पास से निकला और ज्यों ही उसने उनको देखा, त्यों ही उसने कहा—"ठकुरो जुहार"। ऐसा सुनते ही सब ठाकुर बड़े प्रसन्न हुए। और किसी ने उसको नहीं पीटा। लेकिन प्रत्येक कहने लगा कि उसने मुझको "जुहार" की है। इस कारण हमने उसको नहीं पीटा।

तीनों ठाकुरों ने यह निश्चय करने के लिये कि उसने किसको जुहार की है, उसका पीछा किया। नाई डर के मारे दूर पर खड़ा हो गया, और कहने लगा—आप क्या पूछते हैं? उनमें से एक ने पूछा—तुमने किसको "जुहार" की है? उसने उत्तर दिया—हमने उसको जुहार की है, जो तुममें से सबसे ज़्यादा "अहमक" हो। नाई तो इतना कहकर चला गया, और वे लोग आपस में झगड़ने और कहने लगे—"हम सबसे ज़्यादा अहमक हैं", "हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे ज़्यादा अहमक हैं।" तीनों लड़ते-लड़ते मुखिया के पास पहुँचे। मुखिया ने कहा—अच्छा, तुम लोग अपने-अपने अहमकपन का क़िस्सा सुनाओ।

एक कहने लगा—एक समय जब हम अपनी ससुराल को चले, तब हमने किसी से साफ़ा बँधवा लिया; क्योंकि हमको साफ़ा बाँधना न आता था। रास्ते में हमको नींद लगी। इस डर से कि कहीं साफ़ा बिगड़ न जाय, हम कुएँ में मूड़ लटकाकर सोने लगे। इतने ही में साफ़ा कुएँ में गिर पड़ा। थोड़ी ही देर बाद जब हम जगे, तो मालूम हुआ, बड़ी देर हो गई है। हम सीधे अपनी ससुराल को दौड़े चले गए। शीघ्रता के कारण हम जूते भी वहीं भूल गए थे। ससुराल के लोगों ने ज्यों ही हमको इस दशा में देखा, त्यों ही वे सब रोने लगे। इस प्रकार उनको रोते देखकर हम भी रोने लगे। थोड़ी देर के बाद किसी ने हमसे पूछा—कौन मर गया है? हमने कहा—हमको तो मालूम नहीं, इन्हीं लोगों से पूछो। वहाँ के लोगों से पूछा गया, तो कहने लगे—जब हम लोगों ने इनको इस दशा में देखा, तो रोने लगे। जब हमने यह सुना, तो हमको मालूम हुआ कि साफ़ा मूड़ पर है ही नहीं; पैरों में जूते भी नहीं हैं। उस समय मारे शर्म के हम अपने घर की तरफ़ भागे।

दूसरा कहने लगा—अब हमारी सुनो। एक समय जब हम अपनी ससुराल गए, तो हमसे कहा गया—कुछ खा लो। हमने मारे ऐंठ के कहा—आज हम नहीं खायँगे। रात को जब भूख लगी, तो कुछ खाने के लिये घर में घुसे। अँधेरे में और तो कुछ न मिला, केवल एक मुर्ग़ी का अंडा मिला; हमने फ़ौरन् उसको मुँह में रख लिया। परंतु हमसे मुँह न चलाया गया। उसी समय खटपट के कारण किसी ने हमको पकड़ लिया और मारने और कहने लगा—"चोर"! "चोर"! बाद को जब हमको लोगों ने पहचाना, और गालों पर एक फोड़ा-सा देखा, तो फ़ौरन् डाक्टर को बुलवाया, और गाल चिरवा डाला। फिर मालूम हुआ कि गाल में फोड़ा न था, बल्कि अंडा था। लोगों ने हमको उस समय बहुत बनाया। तब हम मारे शर्म के उसी समय घर भाग आए।

तीसरा कहने लगा—हम इनसे भी ज़्यादा अहमक हैं। लो, सुनो। एक समय जब हम परदेस से आए, तो अपनी स्त्री से पूछा—आज खाना क्यों नहीं बनाया? उसने कहा—आज आग न थी, और आज हमें बड़ा बुख़ार है। न हो, तो तुम्हीं माँग लाओ। हमने कहा—हमने तो कभी आग माँगी नहीं। अच्छा, तुम हमारे कंधे पर बैठ जाओ, और आग माँग लाओ। हमने उसको कंधे पर बिठला लिया, और चले। ऐसा हुआ कि आग दूर मिली। मेरी स्त्री ने आग का तवा मेरे सिर पर रख दिया, और दोनों घर की तरफ़ चले। रास्ते में तवा गर्म होने की वजह से हमारा मूड़ झुलस गया, और उसकी वजह से आज तक बाल नहीं उगे। न मानो तो देख लो।

यह सुनते ही मुखिया ठठाकर बोल उठा—नाई ने तुम्हीं को "जुहार" की होगी।

बाँकेबिहारी मेहरोत्रा

× × ×

३. मार्गीय वक्र

बाल्यावस्था में प्रायः हम इस प्रकार के खेल खेला करते हैं—जैसे नीचे बने हुए रूप को तीन बार में मिटाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

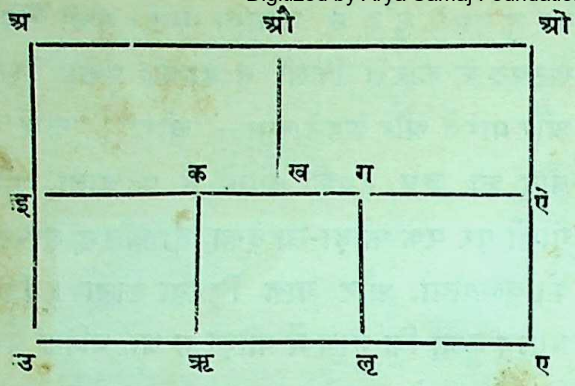

किंतु प्रथम इसके कि हम पाठकों की ओर से इस रूप को तीन बार में मिटाने का प्रयत्न करें, हम, तीन बार में मिटाने का अर्थ स्पष्ट किए देते हैं। यदि हम किसी एक स्थान से इसे मिटाना आरंभ करें, तो एक बार में मिटाने का अर्थ यह होगा कि उँगली को बिना उठाए हुए मिटाते चले जायँ। जब उँगली उठाने के लिये विवश हो जायँ और उँगली उठानी ही पड़े, तो मानो एक बार समाप्त हो गया। उँगली उठाने के लिये विवश होने का कारण यह है कि खेल की परिभाषा के अनुसार मिटी हुई रेखा पर उँगली नहीं जा सकती।

अब इस परिभाषा का स्पष्टीकरण पहले बतलाए हुए रूप को फिर खींचकर और तत्पश्चात् तीन बार में मिटाने का प्रयत्न करके करते हैं—

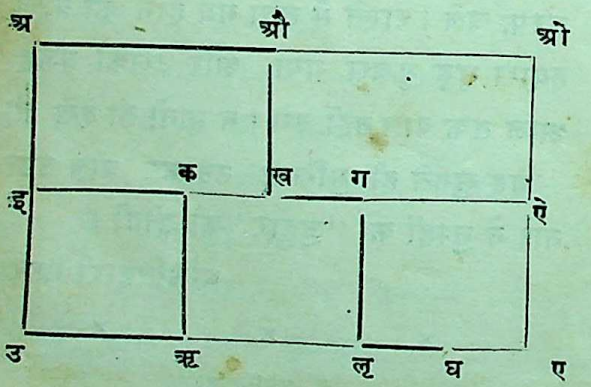

कल्पना करो, पहली बार में हमने लृ और ए के बीच में किसी बिंदु घ से मिटाना आरंभ किया, और लृ ग ख औ अ इ क ऋ उ होते हुए अंत में इ पर पहुँचे, तो इ पर पहुँचते ही उँगली को विवश होकर उठाना पड़ा; क्योंकि रूप की रेखाओं पर इ से जो जाने के मार्ग हैं, वे पहले से ही मिट गए हैं। इसलिये पहली बार में केवल घ लृ ग ख औ अ इ क ऋ उ इ इतना ही भाग मिट सका।

दूसरी बार में औ ओ ऐ ए घ इतना भाग मिट गया।

अब जो भाग बच गए हैं, वे स्पष्टतः तीन ही बार में मिट सकते हैं।

अतः यह सारा रूप पाँच बार में मिट सकेगा।

अनुभव बतलाता है कि इस प्रकार का रूप चार बार से कम में नहीं मिट सकता। हाँ, कोई कोई चालाक लोग, औ ख और ग लृ रेखाओं को पास-पास बनाते हैं, और जब ऐ से, ग पर होते हुए लृ की ओर जाते हैं, तो अपने मोटे अँगूठे से ग पर पहुँचते ही ग और ख बिंदुओं के मध्य भाग को भी लगे हाथों मिटाते जाते और कहते हैं कि देखो, हमने तीन बार में इस रूप को मिटा दिया। परंतु जो लोग इन खेलों के गणितीय विवेचन से परिचित हैं, उनके सामने इस माया का भंडाफोड़ हुए बिना नहीं रहता।

अब प्रश्न यह है कि किसी रूप को देखकर बिना उसको मानसिक अथवा दैहिक क्रिया से मिटाए हुए हम किस प्रकार बतला सकते हैं कि अमुक रूप कम-से-कम कितनी बार में मिट सकता है। इस लेख में हम इसी प्रश्न का उत्तर देंगे। परंतु उत्तर जानने से पहले कुछ मार्गीय वक्र संबंधी परिभाषाएँ जान लेना आवश्यक है।

परिभाषाएँ

पात (अथवा द्वीप)—उस बिंदु को कहते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँनआरा की पूजा

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे अथवा जिस तक रेखाएँ खींची जाय—जैसे क।

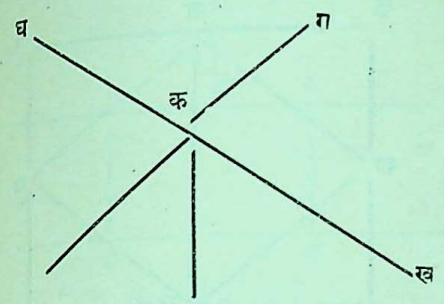

चित्र नं० २

शाखा (पुल अथवा पथ)—उस रेखा को कहते हैं, जो दो अनुश्रुत (Consequitive line) पातों को मिलावे—जैसे क ग, क ख, इत्यादि। परंतु ध्यान रहे, घ क ख एक शाखा नहीं, वरन् दो शाखाएँ हैं।

अंत (कटिया अथवा कंटक)—उस विंदु को कहते हैं, जो किसी शाखा के प्रत्येक सिरे पर होता है—जैसे क और ख, ये क ख शाखा के अंत हैं।

जितनी शाखाएं किसी पात पर आकर मिलती हैं, उन शाखाओं की संख्या को उस पात का क्रम कहते हैं—जैसे क पंचक्रम-पात है, तथा ग इत्यादि एक क्रम-पात हैं।

एक क्रम-पात को **स्वतंत्र पात** अथवा **स्वतंत्र अंत** भी कहते हैं।

जिस पात पर सम-संख्यक शाखाएँ मिलती हैं, उसको सम-पात तथा जिस पर विषम-संख्यक शाखाएँ मिलती हैं, उसको विषम-पात कहते हैं। जैसे—ऊपर के चित्र में प्रत्येक पात विषम-पात है, और नीचे के चित्र नं ३ में प्रत्येक पात सम-पात है।

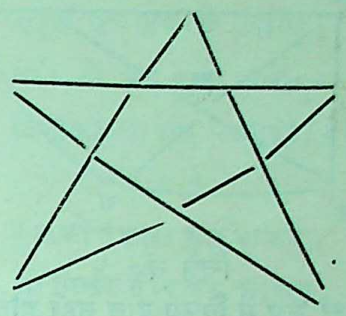

चित्र नं० ३

यदि किसी चित्र में स्वतंत्र अंत न हो, तो उस चित्र को 'वंद-रूप' कहते हैं। जैसे—चित्र नं० ३ तथा १ वंद-रूप हैं। वंद-रूप को प्रायः वंद-जालिक भी कहते हैं।

जब शाखाओं की कोई संख्या अनुश्रुत क्रम में इस प्रकार ली जाती है कि कोई शाखा दो बार आक्रांत न हो, तब इस शाखा-समूह को एक मार्ग कहते हैं, जैसे चित्र नं० १ में समझाया गया है।

वंद-मार्ग उस मार्ग को कहते हैं, जो उसी विंदु पर समाप्त हो, जहाँ से आरंभ हुआ था। जब कोई चित्र एक ही मार्ग से आक्रांत हो जाता है, तो उस चित्र को एकमार्गीय रीति से खींचा गया कहते हैं, और उस चित्र को एकमार्गीय रूप कहते हैं।

इसी प्रकार द्विमार्गीय, त्रिमार्गीय इत्यादि रूपों की परिभाषाओं को जान लेना चाहिए।

अब आएलर के कुछ अनुभूत नियम इसके विषय में दिए जाते हैं।

१. किसी वंद-रूप में विषम-पातों की संख्या सम होती है। उदाहरण—

चित्र नं० ४ में क, ख, ग और ङ, ये विषम-पात हैं, और इनकी संख्या चार है, जो एक सम-संख्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

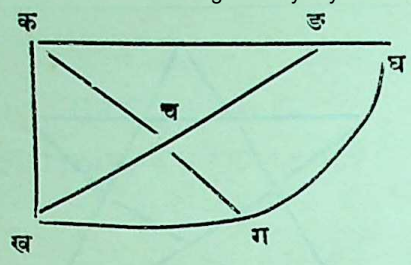

चित्र नं० ४

२. जिस रूप में विषम-पात नहीं होते, वह एक-मार्गीय रीति से खींचा जा सकता है, और जिस बिंदु से खींचना आरंभ करते हैं, वहीं पर आकर समाप्त करते हैं ; चाहे रूप के किसी ही बिंदु से खींचना क्यों न आरंभ करें। उदाहरण—

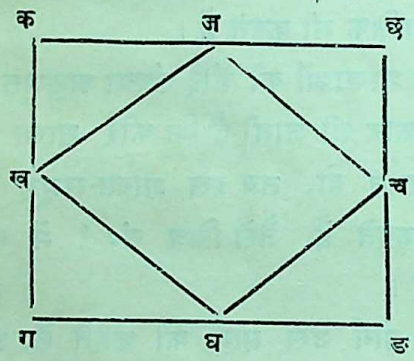

चित्र नं० ५

चित्र नं० ५ में क ग ङ छ, ये द्विक्रम-पात हैं, और ख घ च ज, ये चतुःक्रम-पात हैं। इसलिये इस रूप में कोई भी विषम-पात नहीं है । अतः इस रूप को नियम २ के अनुसार खींचना नितांत संभव है। जैसे, ज से आरंभ करके ख क ज च घ ख ग घ ङ च छ पर होते हुए फिर ज पर अंत में आ जाना। और, चूँकि ऐसा करने में किसी शाखा पर दो बार नहीं जाना पड़ा, इस-लिये यह खींचना एकमार्गीय रीति से हुआ। इसी प्रकार किसी बिंदु से खींचना आरंभ कर सकते हैं।

३. जिस रूप में केवल दो ही विषम-पात हों, उसे हम एकमार्गीय रीति से खींच सकते हैं ; परंतु ऐसा करने के लिये हमें उन दोनों विषम-पातों में से किसी एक विषम-पात पर खींचना आरंभ करना पड़ेगा, और अवशिष्ट दूसरे विषम-पात पर खींचना समाप्त करना पड़ेगा। उदाहरण—

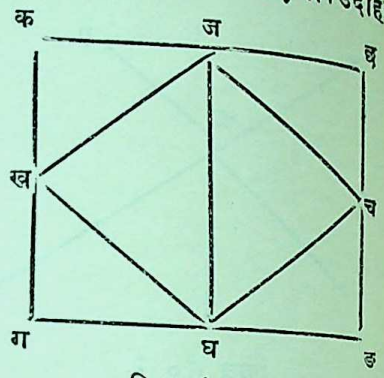

चित्र नं० ६

चित्र नं० ६ में ज और घ ये पंचक्रम-पात हैं। इस-लिये ये दोनों विषम-पात हैं। अवशिष्ट सब सम-पात हैं, क्योंकि क, ङ, ग, छ ये द्विक्रम-पात हैं, और ख और च ये चतुःक्रम-पात हैं। इसलिये इस रूप में केवल दो ही विषम-पात हैं। अतः इस रूप को एकमार्गीय रीति से खींच सकते हैं। परंतु ऐसा करने के लिये हम दो ही ढंग स्वीकार कर सकते हैं—या तो ज पर आरंभ करें और घ पर समाप्त करें, या घ पर आरंभ करें और ज पर समाप्त करें ।

४. जिस रूप में दो से अधिक विषम-पात होते हैं, वह रूप एक मार्ग में पूर्ण रूप से नहीं खींचा जा सकता।

आयलर के इस चौथे नियम पर लिस्टिंग का एक उपसिद्धांत है कि यदि किसी रूप में २ स-विषम-पात हों, तो वह रूप पूर्णतः स-मार्गों में खींचा जा सकता है। अर्थात् यदि २ ही विषम-पात हों तो एक मार्ग में, चार हों तो दो मार्गों में, छः हों, तो तीन मार्गों में और इसी प्रकार आगे भी। उदाहरण—

चित्र नं० १ को, जो आरंभ में विवादास्पद था, हम यहाँ दुहराते हैं। इस रूप में झ, ञ, ठ, ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट, छ, ङ और घ ये आठ विषम-पात हैं। अतः यह रूप चार मार्गों में खींचा जा सकता है।

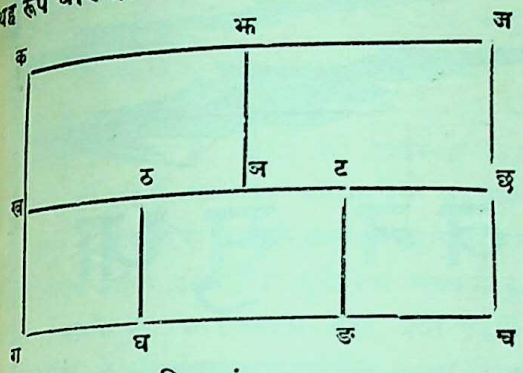

चित्र नं० ७

इसलिये आरंभ में जो प्रश्न उठाया गया था, उसका ठीक-ठीक उत्तर यह हुआ कि चित्र नं० १ बार बार से कम में नहीं बिगड़ सकता।

दुर्गाप्रसाद मिश्र

× × ×

४. वह माता आज कहाँ है ?

(१)

जिसने मुझको अपनाया,
गोदी में सदा सुलाया,
था अपना दूध पिलाया। वह०

(२)

जिसने सब संकट झेला,
पर छोड़ा नहीं अकेला,
जिसकी गोदी में खेला। वह०

(३)

पड़ता काफ़ी था जाड़ा,
मैं फिर देता था झाड़ा,
चुप धोती थी तन सारा। वह०

(४)

पलने पर कभी सुलाती,
गोदी ले कभी घुमाती,
जो चंदा रही दिखाती। वह०

(५)

पढ़ने को जब मैं जाता,
देरी से था कुछ आता,
जिसका था मन घबड़ाता। वह०

(६)

मुझको उदास कुछ पाकर,
थी निकट दौड़कर आकर,
सिर छूती हाथ बढ़ाकर। वह०

(७)

जब पीड़ा मुझको होती,
दिन-रात नहीं थी सोती,
बस, सिरहाने थी रोती। वह०

(८)

जब जाता था मैं बाहर,
उँगली में दही लगाकर,
थी तिलक लगाती सिर पर। वह०

(९)

जब आने को कह जाता,
उस समय नहीं यदि आता,
कुछ भी तो जिसे न भाता। वह०

(१०)

भोजन के समय न पाती,
तो जल्दी रही बुलाती,
आगे थी बैठ खिलाती। वह०

(११)

जिसका था सबसे प्यारा,
बनकर मैं रहा दुलारा,
हूँ 'राघव' बिना सहारा। वह०

श्रीराघवप्रसादसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

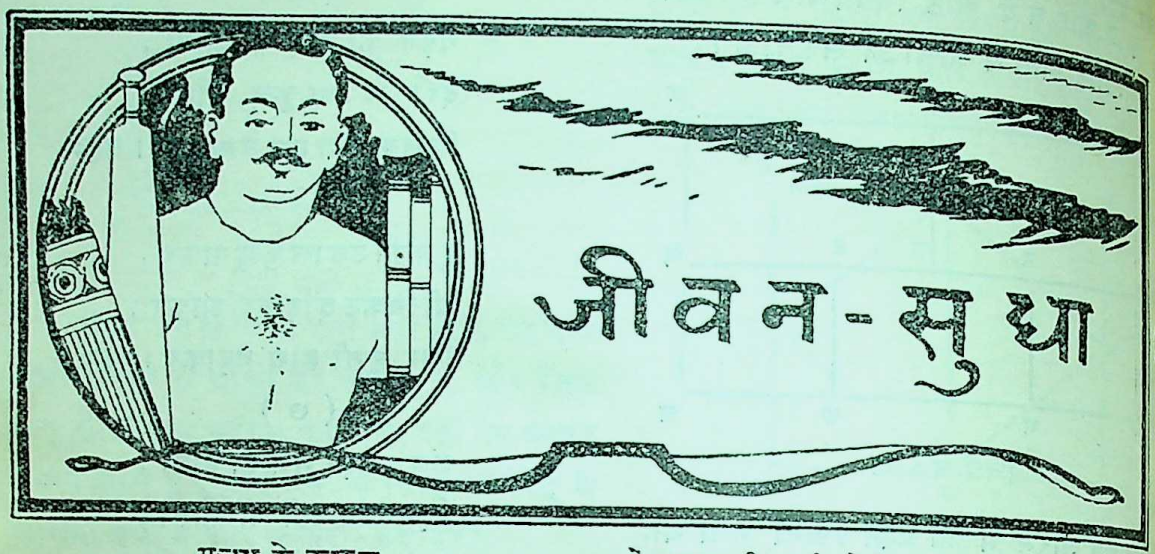

यक्ष्मा के कारण

यक्ष्मा की व्यापकता

ऐसे प्राणियों में, जिनका रक्त ठंढा रहता है, यह रोग बहुत कम देखा जाता है। इसके विपरीत पक्षियों में—विशेषकर मुर्ग़े-मुर्ग़ियों में—यह बहुत देखा जाता है। पालतू पशुओं में यह बहुत जल्द बढ़ता है। भेड़, बकरे और घोड़ों में बहुत कम पाया जाता है। कुत्ते और बिल्लियों को यह रोग होता ही नहीं। बंदर को पिंजड़े में बंद कर देने पर उसे बहुत शीघ्र पकड़ता है। गायों को तो यक्ष्मा इतना अधिक होता है कि शायद ही हमें कीटाणु-रहित दूध मिलता हो।

पशु-संसार

मनुष्यों में यह रोग विश्व-व्यापी है। जितने रोगों से मनुष्य-मात्र की मृत्यु होती है, अनुमानतः उनका आठवाँ भाग इसी रोग का है। अन्य देशों की कथा छोड़कर यदि केवल भारत की मृत्यु-संख्या निर्द्धारित की जाय, तो डाक्टर मुथू * के अनुसार प्रतिवर्ष प्रायः ९ या १० लाख भारतवासी इस रोग से काल-कवलित होते हैं। यह गणना केवल उन रोगियों की है, जिन्हें लोग वास्तव में यक्ष्मा-ग्रस्त हुआ जान सकते हैं; किंतु ऐसे बहु-संख्यक रोगियों की

मनुष्य-समुदाय

तो गणना ही नहीं होती, जिनकी मृत्यु "जीर्णज्वर", "साधारण खाँसी", "खाँसी-बुख़ार", "अपच (Dyspepsia)", "प्रसूत" एवं "कुछ नहीं" से होती हैं। देहातों की मृत्यु-गणना तो एक प्रकार से असंभव-सी होती है।

ऑस्लर साहब हिसाब लगाकर कहते हैं कि इँगलैंड या अन्य स्वतंत्र देशों में, गत ५० वर्षों के भीतर, यह रोग घटता गया है। किंतु इस अभागे देश की अवस्था ठीक इसके विपरीत है—यहाँ की मृत्यु-संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। इसके कुछ विशेष कारण हैं, जो आगे दिए गए हैं। ऑस्लर साहब के कथनानुसार रोग घटने के निम्न-लिखित कारण हैं—

(क) उन्नत सामाजिक अवस्था—अर्थात् अच्छे घर, अच्छे भोजन और अच्छी आदतें।

(ख) सर्वसाधारण की उपयुक्त शिक्षा—जिससे लोग स्वस्थ रहने की चेष्टा करें, शराबख़ोरी कम करें, स्वच्छ वायु और उत्तम भोजन के लिये चेष्टा करें, और जहाँ-तहाँ थूकने की आदत छोड़ दें।

(ग) रोगी को सबसे पृथक् कर देना—जिससे रोग एक व्यक्ति से दूसरे को न पकड़ने पावे।

(घ) बहुत आरंभिक अवस्था में रोग का पहचाना जाना—जिससे इसको सरलता-पूर्वक चिकित्सा हो सके।

कहना नहीं होगा कि उपर्युक्त बातों में से एक भी हमारे देश के लिये लागू नहीं है। यही महाशय एक स्थान पर प्लेग के विषय में लिखते हुए भारत का चित्र इस प्रकार अंकित करते हैं—

* शिमला, १८ अगस्त, १९२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"In India, where fifteenth century conditions prevail, and where the scale of Epidemics is so enormous, the problem of prophylaxis looks hopeless."

"अर्थात् भारतवर्ष में, जहाँ की अवस्था १५वीं शताब्दी की-सी हैं, एवं जहाँ महामारियों का पलड़ा बहुत भारी है, बीमारियों से बचने के प्रबंध करने का प्रश्न निराशा-जनक प्रतीत होता है।" मुझे इस संबंध में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

बाल्डविन ने संयुक्त-राज्य (अमेरिका) का हिसाब लगाकर देखा है कि वहाँ यक्ष्मा की चिकित्सा के लिये प्रतिवर्ष १५ से २० करोड़ डालर तक ख़र्च कर दिए जाते हैं। और, ज़रा भारत की ओर ध्यान दीजिए। यहाँ उन रोगियों की संख्या बहुत ही बड़ी है, जो किसी अच्छे चिकित्सक तक पहुँच भी नहीं सकते; और जो पहुँचे भी, तो द्रव्याभाव के कारण अपनी चिकित्सा नहीं करा सकते। यहाँ ख़ास यक्ष्मा की चिकित्सा के लिये सरकारी ख़ज़ाने से कितने पैसे ख़र्च होते हैं? इसके अतिरिक्त हमारे अस्पतालों में रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध होने के बदले हुकूमत और डाक्टरों के उदर-पोषण का कहीं अधिक प्रबंध होता है। ऐसी अवस्थाओं में यक्ष्मा-सरीखे एक भीषण रोग से लड़ने की चेष्टा कहाँ तक संभव है, पाठक स्वयं ही इसका अनुमान कर लें।

गत ५० वर्षों में, कई पाश्चात्य नगरों में, यक्ष्मा का आश्चर्य-जनक ह्रास हुआ है। उदाहरण लीजिए—

पश्चिम में यक्ष्मा का ह्रास एवं भारत में इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि

सन् १८५१-६० में	इँगलैंड के	प्रत्येक	१,००,०००	व्यक्तियों में	यक्ष्मा से	३५८	की	मृत्यु	हुई					
,, १९११-२० में	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	१७१	,,	,,	,,		
,, १९२२ में	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	११२	,,	,,	,,		

भारत के सिवा अन्य ब्रिटिश-उपनिवेशों में, योरप के सभी नगरों में एवं अमेरिका में, यक्ष्मा का प्रायः इसी प्रकार ह्रास हुआ है। इसके प्रतिकूल भारत में इसी अर्द्ध-शताब्दी के भीतर इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। भारत के साथ-साथ आफ़्रिका, फिलीपाइन-द्वीप-पुंज और ब्राज़िल में भी इसकी वृद्धि होती जा रही है।

अपने अन्वेषणों के फल-स्वरूप लैंकेस्टर साहब का अनुभव है कि भारत की बहुत-सी भूमि, जहाँ ४० वर्ष पहले यक्ष्मा को कोई जानता तक न था, आज इस रोग से पूर्णतः ग्रस्त है। सर लियोनर्ड रौजर्स कहते हैं कि कलकत्ता-मेडिकल-कालेज के शवालयों (Post-mortem Houses) की रिपोर्ट से यह जाना जाता है कि कलकत्ते में यक्ष्मा से जितनी मृत्यु होती है, उतनी अन्य किसी उष्णदेश-जनित रोग (Tropical Disease) जैसे मलेरिया, काल-ज्वर इत्यादि—से नहीं होती। इस लोमहर्षण दृश्य की विकरालता उस समय और भी बढ़ जाती है, जब लैंकेस्टर के बताए हिसाब पर ध्यान दिया जाता है, जिसके कथनानुसार केवल बंबई-शहर में पूर्ण यक्ष्मा-ग्रस्त रोगियों की संख्या १०,००० से भी अधिक रहती है।

भारत में यक्ष्मा के अनेकानेक रोगी रहने का एक दूसरा प्रबल प्रमाण केशवपाई और वेनुगोपाल का अनुभव है, जिनके कथनानुसार मदरास के साधारण लोगों में, जिनमें प्रायः सभी अवस्था के व्यक्ति आते हैं, वौन पिर्के की चर्म-प्रतिक्रिया—Von Pirquet's Cutaneous Reaction—जो शरीर में यक्ष्मा के विद्यमान रहने का यथेष्ट प्रमाण है—प्रतिशत ९४·२ व्यक्तियों में पाई जाती है। इसके साथ-साथ योरप की अवस्था की तुलना कीजिए। फ्रांस के लिल्ली (Lille)-नामक स्थान में, जहाँ सन् १९१२ में, योरप के अन्य किसी नगर की अपेक्षा, यक्ष्मा द्वारा अधिक मृत्यु हुई थी, उपर्युक्त प्रतिक्रिया केवल ६० प्रतिशत व्यक्तियों में पाई जाती थी *।

* C. Frimodt Moller M. B. Ch. B. (Copenhagen), Medical Superintendent, Union Mission Tuberculosis Sanatorium, Arogyavaiam, Madaupella, Madras—in a paper read at the Fourteenth Indian Science Congress at Lahore in January, 1927.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग के बीज और भूमि

रोग-बीज

रोग के बीज हैं यक्ष्मा-कीटाणु। एक रोगी के २४ घंटे के खखार में कभी-कभी कई अरब यक्ष्मा-कीटाणु पाए जाते हैं!

रोग की भूमि

ओस्लर साहब ने बाइबिल की एक उपदेश-प्रद कहानी के आधार पर इसकी वास्तविक भूमि से सुंदर रूप में तुलना की है। वह यह है—"बीज-वपन के समय कुछ बीज रास्ते में गिर पड़े, और आकाश के पक्षी उन्हें खा गए।" यह उपमा उन कीटाणुओं की द्योतक है, जो शरीर के बाहर हवा में उड़ते फिरते हैं, और जिनमें बहुत-से मर मिटते हैं। "कुछ बीज पथरीली भूमि में पड़े"—इससे अभिप्राय उन कीटाणुओं से है, जो हममें बहुतों के शरीर में संभवतः पाए जायँगे, और जो केवल एक क्षुद्र केंद्र स्थापित कर पाते हैं, किंतु अपनी जड़ मज़बूत नहीं कर सकते और अंत में स्वयं मर मिटते हैं। "कुछ काँटों में पड़ गए, और काँटों ने उन्हें घेरकर दबा दिया।" यह उन रोगियों का वर्णन है, जिनके शरीर में कीटाणु प्रवेश कर पाते हैं, और जिनके बढ़ने की भी संभावना तो रहती है; किंतु जिनमें शरीर की रक्षा करनेवाली शक्तियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि ये कीटाणु बढ़ने नहीं पाते। "किंतु कुछ बीज अच्छी भूमि में पड़ और बढ़े एवं सौगुना फल लाए—" यही चौथे प्रकार के कीटाणु हैं, जिनसे आक्रांत व्यक्तियों की मृत्यु-संख्या डाक्टर मुथू ने भारत में प्रतिवर्ष १० लाख बतलाई है।

यक्ष्मा-कीटाणु के लिये अच्छी भूमि कौन-सी है?—मनुष्य-शरीर वास्तव में इसके लिये अच्छी धरती नहीं है। साधारणतः स्वस्थ अवस्था में कोई भी युवक इसके विरुद्ध रोग-क्षमता (Immunity) प्राप्त कर लेता है, और हममें से बहुत-से ऐसे हैं, जो युवावस्था प्राप्त करने के पूर्व एक-न-एक समय इस रोग द्वारा आक्रांत हो चुके हैं, किंतु रोग इनकी कोई क्षति नहीं कर सका है। यदि प्रकृति की ऐसी व्यवस्था न होती, तो केवल इसी रोग द्वारा मनुष्य-जाति इस पृथ्वी से कब की उठा दी गई होती। इसके साथ-साथ किसी-किसी मनुष्य-शरीर की यह विशेषता होती है कि वह इसके रोग-बीज को फूलने-फलने में सहायता करे। इस विशेषता को प्रवृत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति (Disposition) वंश-परंपरा-गत या स्वयं-प्राप्त (Hereditary or Acquired) होती है।

वंश-परंपरा-गत प्रवृत्ति—साधारणतः यक्ष्मा-रोगियों की संतान में इस रोग की ओर अधिक प्रवृत्ति रहती है, अर्थात् उन्हें यह बहुत सरलता-पूर्वक पकड़ सकता है।

स्वयं-प्राप्त प्रवृत्ति—यह शरीर की अवरोधिनी शक्तियों के ह्रास से उत्पन्न होती है। शहरों के रहने वाले—विशेषकर नाबदानों के निकट के मकानों में रहने वाले—प्रकाश-रहित, बंद हवावाली कोठरियों में काम करनेवाले बहुत शीघ्र इसके शिकार बनते हैं। ट्रूडू (Treadue) ने यह सिद्ध कर दिखाया था कि कुछ खरहों में यक्ष्मा-कीटाणु प्रवेश कराकर यदि उनमें से कुछ को बंद, गंदे, सर्द घरों में रक्खें (जहाँ न सूर्य का प्रकाश जाता हो, न साफ़ हवा पहुँचती हो), तो ये खरहे शीघ्र मर जायँगे; और यदि कुछ को खुली हवा में छोड़ दें, तो ये चंगे हो जायँगे, अथवा इनके शरीर में बहुत कम यक्ष्मा-क्षत पाया जायगा। जेलों या अन्य जनाकीर्ण संस्थाओं में इसके विस्तार की बहुत संभावना रहती है। बड़-बड़े कारख़ानों के अथवा आफ़िसों के किरानियों, नौकरों आदि में यह रोग बहुत देखा जाता है।

आयु—किसी भी आयु के व्यक्ति में यह रोग संभव है। दूध पीते बच्चे से लेकर मरणासन्न वृद्ध तक को यह पकड़ सकता है। किंतु विशेषतः यह युवावस्था का रोग है। १ से १० वर्ष की आयु तक अस्थि, संधि, ग्रंथि तथा अंत्र के यक्ष्मा की अधिक संभावना रहती है। १० से १४ वर्ष की आयु तक उदर और मस्तिष्कावरण के यक्ष्मा की अधिक संभावना रहती है। १४ से ४०वर्ष की आयु तक फुफ्फुस-यक्ष्मा की अधिक संभावना रहती है। ४० से अधिक आयुवाले व्यक्तियों को यक्ष्माक्रांत होने की कम संभावना रहती है।

जाति—किसी-किसी जाति के व्यक्तियों में यह रोग बड़ा भयंकर रूप धारण करता है। उदाहरणार्थ, हवाई में यह रोग प्रायः प्राणघातक होता है। किंतु यहूदियों की इससे बहुत कम मृत्यु होती है।

स्त्री-संसार—हमारा सामाजिक जीवन इस प्रकार का हो गया है कि स्त्री-जीवन का मूल्य प्रायः नहीं के बराबर रह गया है। अस्तु, हम इस बात की बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परवा करते हैं कि हमारी स्त्रियाँ जीवित रहें या यमराज उन्हें उठा ले जायँ। अन्य देशों की कथाएँ यदि ध्यान में न लाई जायँ, तो यह कहना अनुचित न होगा कि (भारत में) इस रोग से आक्रांत स्त्रियों की ही संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक है। इस दुर्दैव-ग्रस्त देश में इस प्रधानता के कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि हमारी स्त्रियाँ परदे की प्रधान अधिकारिणी हैं। पुरुष घर से बाहर निकलकर चाहे कितने ही कुकर्म क्यों न करे, पर इन्हीं कर्मों से बचने के लिये स्त्रियों को सूर्य-ताप और स्वच्छ वायु से भी वंचित रहना पड़ता है! कहना नहीं होगा कि जिसे दिन-रात एक प्रकार की विषैली वायु में, नाबदानों के किनारे, सूर्य के प्रकाश से रहित घरों में रहना पड़ता है, उस पर यक्ष्मा का आक्रमण न हो, तो यही आश्चर्य है। दूसरा कारण है स्त्रियों के खाद्याखाद्य का कुप्रबंध। सच पूछिए, तो प्रत्येक परिवार में साधारणतः जितनी बलदायक एवं सुस्वादु चीज़ें तैयार होती हैं, वे सब-की-सब पुरुषों के ही हिस्से में पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त परिवार के प्रत्येक पुरुष जब भोजन कर चुकते हैं, तब कहीं स्त्रियाँ खाने बैठती हैं। फल यह होता है कि बचे-खुचे पदार्थ एवं बासी-तिबासी भोजन इन्हें प्राप्त होता है। तीसरा बहुत बड़ा कारण है गर्भाधान और प्रसव। बालविवाह ने हमारा पिंड नहीं छोड़ा है। कम आयु की कन्याएँ माताएँ बन जाती हैं, अर्थात् जिस अवस्था में उनके अंग पुष्ट होते, उस अवस्था में वे दो-दो, तीन-तीन संतानों का भार वहन करती हुई गार्हस्थ्य-जीवन की सारी ज़िम्मेदारियाँ अपने सिर पर ले लेती हैं। उनमें से बहुतों के विकास का समय आता ही नहीं; वसंत में ही लताएँ सूख जाती हैं। इन अवसरों पर यक्ष्मा-कीटाणु अपनी कार्य-निपुणता दिखाने में बाज़ नहीं आते। इसके अतिरिक्त रोग का निदान भी नहीं होने पाता; क्योंकि प्रसव के बाद यक्ष्मा का आक्रमण होने से रोग बहुत दिनों तक प्रसूत-रोग के नाम से पुकारा जाता है, और मृत्यु-पर्यंत कोई जानने भी नहीं पाता कि रोगिणी की मृत्यु यक्ष्मा से ही हुई है।

व्यवसाय (Occupation)—इसका प्रभाव अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं पर निर्भर करता है—जैसे धूल से लदे हुए, चारों ओर से बंद कमरों में काम करना, बहुत देर तक अनियमित रूप से तुच्छ वेतन पर काम करना इत्यादि यक्ष्मा के सहायक होते हैं। इसके साथ-साथ घरेलू अवस्थाओं का भी ध्यान रखना उचित है। उदाहरणार्थ, किसी दफ़्तर के किरानी की अवस्था की ओर ध्यान दीजिए। १५ या २० रु० मासिक आय पर सारे दिन जनाकीर्ण कोठरियों में काम करने पर भी रात को उसे फ़ुरसत नहीं मिलती। फ़ाइलों की गठरियाँ दिन-रात पीठ पर लदी ही रहती हैं। साथ-साथ गृह-कलह, क़र्ज़, दुर्व्यसन और अन्य चिंताएँ उसके कलेवर को जर्जर बना देती हैं। ऐसी अवस्था में यक्ष्मा का आक्रमण होना आश्चर्य की बात नहीं।

जल-वायु—पश्चिमवालों को इसका अनुभव हो चुका है कि प्रतिकूल जल-वायु यक्ष्मा की चिकित्सा का प्रतिरोध करती है। इँगलैंड में किए गए अनेकों प्रयोगों ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है। गार्डन ने यह दिखला दिया है कि ऐसे स्थानों के निवासी, जहाँ बादल को साथ लानेवाली तेज़ आँधी उठती रहती है, इन उपद्रवों से, निरापद स्थान के निवासियों की अपेक्षा, अधिक यक्ष्मा-ग्रस्त होते हैं। लैंकेस्टर एवं रौजर्स ने यह दिखाया है कि भारत के उन प्रांतों में, जहाँ अधिक वर्षा होती अथवा मानसून की मूसलाधार वृद्धि होती है, यक्ष्मा का अधिक प्रकोप होता है।

मदनापल्ली-स्वास्थ्यालय के अन्वेषणों से यह पता चलता है कि यक्ष्मा-रोगी गरमी के दिनों में बहुत कम स्वास्थ्य लाभ करते हैं; क्योंकि तीन महीने तक, जिस समय खूब गरमी पड़ती रहती है और तापक्रम ९५ से ९६ तक जाता है, रोगी और समयों की अपेक्षा तोल में बहुत ही कम बढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त सैकड़े ३३ रोगी इन दिनों शय्या की शरण लेते हैं, जब कि जाड़े के दिनों में ऐसे रोगियों की संख्या सैकड़े १६ होती है।

पाश्चात्य शिक्षा और वाणिज्य-व्यवसाय का प्रचार—यह रोग पढ़े-लिखे एवं संपन्न व्यक्तियों में ही—जिनकी स्वास्थ्य-रक्षा का प्रबंध अपेक्षा-कृत अधिक रहता है—विशेषकर देखा जाता है। इसका कारण यह है कि स्कूल और कालेजों के छात्रों में परस्पर एक दूसरे को रोग-ग्रस्त करने की संभावना रहती है। दूसरी बात यह है कि भारत में आजकल बड़े-बड़े व्यवसाय-केंद्र स्थापित हो गए हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से इसके प्रचार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता पहुँचाते हैं। उदाहरण-स्वरूप, देहातों से आ-आकर सहस्रों व्यक्ति इन कल-कारख़ानों में एकत्रित होते हैं, जिनमें से बहुतों को यह रोग पकड़ता है, और पुनः यही लोग जब घर लौटते हैं, तो वहाँ भी इस रोग का प्रचार करते हैं। अस्तु, बड़े-बड़े व्यवसाय-केंद्र कम-से-कम भारत में यक्ष्मा के कारख़ाने बन गए हैं।

आवागमन का विस्तृत प्रबंध—आने-जाने की सुविधाएँ (रेल, मोटर आदि द्वारा) हो जाने के कारण इसका आक्रमण शहरों से देहातों की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। इसके संबंध में यह भी कह देना अनुचित न होगा कि मोटर-लारियों ने मनुष्यों का जितना उपकार नहीं किया है, उतनी उन्हें हानि पहुँचाई है। जिस-जिस मार्ग से ये एक बार निकल जाती हैं, उस मार्ग में धूल का एक पहाड़-सा खड़ा हो जाता है। फल यह होता है कि ये एक स्थान में पड़े हुए कीटाणुओं को शीघ्रता-पूर्वक चारों ओर फैला देती हैं। इन्हीं बातों को लक्ष्य कर लैंकेस्टर ने कहा है—आज-कल की सामाजिक एवं व्यावसायिक अवस्थाएँ ऐसी हो गई हैं कि वे स्वास्थ्यरक्षा-संबंधी चेष्टाओं को बिलकुल निकम्मा बना देती हैं; क्योंकि स्वास्थ्य-रक्षा के प्रबंध अपने साथ-साथ ऐसे भयंकर कारण उपस्थित करते हैं, जिनसे स्वास्थ्य-हानि की अधिक संभावना रहती है।

अशिक्षा और दरिद्रता—हमारा नैतिक ह्रास चरम सीमा को पहुँच चुका है। शिक्षा के नाम पर जो वस्तु हमें प्राप्त होती है, वह शिक्षा की छाया-मात्र है। यह शिक्षा हमें पूरी तरह निकम्मा करने में सहायता करती है। ऐसी शिक्षा हमें नहीं मिलती कि हम स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका प्राप्त कर सकें, अथवा किसी शास्त्र में पारंगत बनने की चेष्टा करें। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-संबंधी शिक्षा तो हमें एकदम नहीं मिलती। देश की किन संस्थाओं में यह बात बताई जाती है कि जहाँ-तहाँ थूकना बुरा है? कहाँ इस बात की शिक्षा दी जाती है कि रोगी के साथ सोना बुरा है? कहाँ इस बात की शिक्षा दी जाती है कि रोग से बचने के लिये शुद्ध वायु एव उत्तम भोजन की आवश्यकता है? किसी-किसी स्कूल में स्वास्थ्य-संबंधी कुछ बातें बताई जाती हैं अवश्य, किंतु व्यावहारिक रीति से नहीं। सच पूछिए, तो मास्टरों को स्वयं बहुत-सी बातों का व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता *। फलतः ऐसी शिक्षा का कुछ भी असर नहीं होता। यह तो हुई उन लोगों की बात, जिनको किसी प्रकार की पाठशाला में कुछ समय बिताना पड़ता है, किंतु उनको क्या कहा जाय, जिनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' है।

चाहे परिस्थिति कितनी ही ख़राब क्यों न हो, यदि शरीर की अवरोधिनी शक्तियाँ नष्ट नहीं हुईं, तो यक्ष्मा उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। इस शक्ति को नष्ट न होने देने के लिये उत्तम पुष्टिकारक भोजन की नितांत आवश्यकता है। हमारे देश की अवस्था तो इसके प्रतिकूल है। उपादेय वस्तुओं की तो बात ही क्या है, जहाँ दोनों समय आहार जुटाना प्रत्येक मनुष्य के लिये एक कठिन समस्या होती जाती है, वहाँ यक्ष्मा से युद्ध करने का साहस किस बल पर किया जा सकता है!

कमलाप्रसाद

---

* ऐसे शिक्षकों की शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ सकता है जो स्वयं तो तंबाकू खाते रहते और सारा दिन जहाँ-तहाँ "थू", "थू" करते रहते हैं, किंतु पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा बालकों को यह समझाना चाहते हैं कि जहाँ-तहाँ थूकते रहना बुरा है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

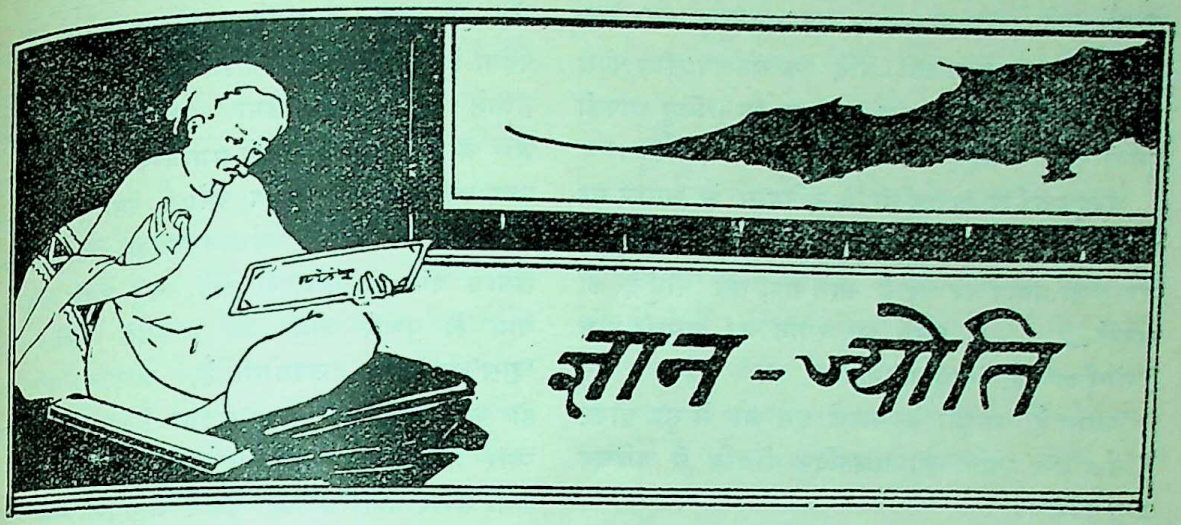

१. "धर्मत" नहीं धर्मांठ-युद्ध

गत पौष (तु० सं० ३०५)-मास की माधुरी में श्री० व्रजरत्नदासजी का "धर्मत-युद्ध"-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है; किंतु उसमें उल्लिखित स्थानों के नाम एवं अंतर बतलाने में दो-तीन भद्दी भूलें हो गई हैं। ज्ञात होता है कि लेखक महाशय ने केवल अँगरेज़ी के आधार पर या उसके अनुवाद को ही विना किसी बात की छानबीन किए ज्यों-का-त्यों भेज दिया है। अतएव इन पंक्तियों के लेखक को, अपने इन प्रांतीय नगरों के विषय में ऊटपटाँग उल्लेखों की ठीक छानबीन करके, भ्रम-निवारणार्थ यह नोट लिखना पड़ा है। आशा है, इतिहास-प्रेमियों को इससे संतोष होगा।

लेख का शीर्षक ही प्रथम धर्मत-युद्ध के बदले धर्मांठ-युद्ध होना चाहिए; क्योंकि धर्मत नाम का कोई गाँव "गँभीर"-नदी के तट पर नहीं है। कदाचित् प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार द्वारा इस युद्ध का "धर्मतपुर का युद्ध" के नाम से उल्लेख किए जाने से आपने भी उसे धर्मत-युद्ध बना दिया है। पूरी खोज-पड़ताल करने के बाद पता लगा है कि "धर्मांठ" नाम का ही एक छोटा-सा गाँव मालव-प्रांत में "गँभीर"-नदी के तट पर अभी तक विद्यमान है, जहाँ उक्त युद्ध का आरंभ हुआ था। यह स्थान उज्जैन से ठीक सात कोस दक्षिण में है, और इसी के निकट "फ़तेहाबाद" नाम का एक गाँव भी है, जिसे औरंगज़ेब ने इस युद्ध में विजयी होने के उपलक्ष्य में बसाया था। उस समय की मसजिद और सराय भी आज तक विद्यमान है। फ़तेहाबाद रेलवे का स्टेशन भी है, जो राजपूताना-मालवा-रेलवे (R. M. Ry.) के रतलाम और इंदौर-स्टेशनों के बीच तथा उज्जैन से ठीक १४ मील के अंतर पर स्थित है। धर्मांठ-गाँव भी इसी के निकट है, और ग्वालियर-राज्य के उज्जैन-ज़िले में लगता है।

लेखक महानुभाव ने दूसरी भूल यह लिखकर की है—"इधर औरंगज़ेब दक्षिण का प्रबंध कर १८ फ़रवरी को बरानपुर पहुँचे, जो उज्जैन से केवल अठारह कोस दक्षिण में है।" किंतु यथार्थ में यह स्थान उज्जैन से १६८ मील दक्षिण में है, और मध्य-प्रदेश का एक मशहूर ज़िला है, जहाँ इसी मुग़ल-काल का बना हुआ एक अभेद्य दुर्ग आज तक विद्यमान है। कहाँ अठारह कोस और कहाँ एक सौ अड़सठ मील! १३२ मील का अंतर कितना भ्रम उत्पन्न कर सकता है, पाठकगण स्वयं ही विचार करें। इसी प्रकार आपने देपालपुर (इंदौर-राज्य) का दीपलपुर के नाम से उल्लेख किया है, जो भ्रम में डालनेवाली बात है।

आगे चलकर आपने फिर ऐसी ही एक भूल और की है—"अहमदाबाद उज्जैन से बयालीस कोस के लगभग ठीक पश्चिम में है।" किंतु यथार्थ में यह स्थान उज्जैन से ३६२ मील पश्चिम में है। इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी २७८ मील का अंतर कम कर देना कुछ ऐसी-वैसी भूल नहीं कहा जा सकती। यदि एक सौ बयालीस कोस भी लिख देते, तब भी कुछ ग़नीमत था। किंतु आपको इतनी खोज के लिये अवकाश ही कहाँ था ! अस्तु।

अब्दुलक़ादिर बदायूँनी के इतिहास के आधार पर आपने लिखा है—"जब महाराज मानसिंह और आसफ़ख़ाँ महाराणा प्रताप पर चढ़ाई करने गए, तब 'गोघूँदे' की लड़ाई..... ।" इसमें भी स्थान का असली नाम "गोसूँडा" है, 'गोघूँदा' नहीं।

आशा है, माधुरी के पाठक इस भ्रम से मुक्त होकर ऐतिहासिक स्थानों की वास्तविक स्थिति से परिचय प्राप्त करेंगे।

गोपीवल्लभ उपाध्याय

× × ×

२. स्त्री-पुरुष की समानता

जगन्नियंता जगदीश्वर ने अपनी सृष्टि की रचना में स्त्री और पुरुष, दोनों को स्वतंत्र पैदा किया है, और दक़ियानूसी ख़याल के ख़ूसट हिंदू ऋषि-मुनियों का यह बड़ा भारी अन्याय और अत्याचार है कि उन्होंने हिंदू-शास्त्रों में विविध विधानों द्वारा अनाथ अबलाओं का सुख और स्वातंत्र्य धूल में मिलाकर उनको पुरुष-समाज की दासी—दासी से भी बदतर—बना डाला, इसलिये ऐसे धर्मशास्त्रों को देश-निकाला देकर शिक्षित रमणियों को चौथे आसमान पर चढ़ा देना चाहिए। इसके बिना न तो भारतवासियों को स्वराज्य मिल सकता है, और न दुनिया के सभ्य समाज में वे मुँह दिखलाने योग्य हो सकते हैं। यही ख़याल आजकल के देश-हितैषी विद्वानों का है, इसी के उद्योग में भाँति-भाँति के क़ानून बनाने का सूत्रपात हो रहा है, और इसीलिये देश-भाषाओं के साहित्य में नए-नए ग्रंथों का संपादन किया जा रहा है। परंतु तीन प्रमाण ऐसे हैं, जिनकी ओर न तो आज तक शिक्षित जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है, और न सहज में ही वे हल होने के योग्य दिखाई देते हैं। एक यह कि जिन देशों की महिलाएँ उन्नति के मौंट-एवरेस्ट तक जा पहुँची हैं, उनमें भी आजीवन कुँआरी रह जाना जुदी बात है; किंतु जब वे किसी से विवाही जाती हैं, तब से लाचार होकर उन्हें अपने शौहर की जोरू के नाम से ही पुकारा जाना स्वीकार करना पड़ता है। पुरुषों ने यह अधिकार—यह दरजा—बहुत ज़माने तक भोग लिया। बस, जितने अत्याचार और अन्याय अब तक स्त्री-समाज पर हुए हैं, उनका मुख्य कारण यही है। अब क्यों न ऐसा क़ानून बनाया जाय, जिसकी बदौलत वर्तमान अथवा होनहार ललना-समाज पति के नाम से नहीं, किंतु उनके पति उनके नाम से पुकारे जाया करें। इसके लिये न तो 'दास'-शब्द ही उपयोगी है, और न 'पति'-शब्द ही काम में लाया जा सकता है। यद्यपि पुरुष प्यार में पत्नी का दास बन जाया करता है, किंतु यह कभी संभव नहीं कि वह पुकारे जाने के समय जोरू का ग़ुलाम (दास) कहलाना पसंद करे। संस्कृत के 'पति'-शब्द का समूल ही नाश कर देना चाहिए। यह शब्द सरासर स्वतंत्र रमणियों के लिये अपमान-जनक है, और जितना जल्द हो सके, इसका बहिष्कार होना चाहिए। हाँ, इस कार्य के लिये ब्राइड-ग्रूम (ब्राइड का ग्रूम—दुलहिन का साईस) कुछ-कुछ मुनासिब है; और जो शब्द नियत किया जाय, वह ऐसा होना चाहिए, जो दुलहिनपन के दरजे से आगे जाकर इसी तरह का दरजा क़ायम रख सके। बड़े-बड़े विद्वानों के लिये शब्द नियत करना कुछ कठिन नहीं है। इसके लिये पाँच व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई जाय, जिसमें तीन स्त्रियाँ और दो पुरुष हों। उसकी सभापत्नी, स्त्री बनाई जाय, और उसे दो वोट देने का अधिकार दिया जाय। हाँ, यह भी होना चाहिए कि संस्कृत-ग्रंथों से कोई शब्द न चुना जाय।

दूसरा मसला भी कम आवश्यक नहीं है। इसमें सचमुच प्रकृति ने अथवा परमेश्वर ने—जिस पर लोगों की आस्था हो, अथवा दोनों में से जिसे मानना स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक हुआ हो, उसने—स्त्री-समाज पर बड़ा भारी अन्याय किया है। अनादि-काल से ये बेचारी अबलाएँ गर्भ धारण कर अनेक यातनाएँ भोगतीं और आजीवन संतान-पालन करने की झंझट में फँसी रहकर अपनी उन्नति करने का कुछ उद्योग नहीं कर सकतीं। हाँ, आजीवन कुँआरी रहने का व्रत धारण कर इस कष्ट से बचने का प्रयत्न आरंभ हो गया है, और विज्ञान की बदौलत ऐसे-ऐसे पदार्थ बनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे हैं, जिनका व्यवहार करने से ..... का सुख भी भोग लिया जाय, और प्रसव-वेदना का शिकार उन कोमलांगी ललनाओं को न बनना पड़े। व्यष्टि-रूप पर अवश्य ही इस प्रकार के उद्योगों से उन्हें इच्छित फल मिलने लगा है; किंतु संसार की मनुष्य-गणना घटती जाने से जो हानियाँ होती दिखलाई देने लगी हैं, उसका भय अभी से देश-हितैषी विद्वानों को सताने लगा है। विज्ञान के करिश्मे जनता के सामने हैं, और पश्चिम के वैज्ञानिक इस उद्योग में लगे हुए हैं कि स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री बनाई जा सके। ईश्वर करे, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र सफलता प्राप्त हो, अथवा कम-से-कम हिंदू-पुराणों का सहारा लेकर यदि राजा सुद्युम्न से इला और इला से सुद्युम्न की तरह बारी-बारी से महीने-महीने के लिये स्त्री और पुरुष बन जाय, तो इतनी भी ग़नीमत है। केवल ग़नीमत ही क्यों—बड़ी भारी उन्नति है। पहले प्रयत्न से एक अनुभव होता है, और दूसरे से दोनों; और फिर जो जिसमें रहना चाहे, उसे दूसरे उद्योग द्वारा परिणाम में ग्रहण कर सकता है।

तीसरा प्रश्न उक्त दोनों प्रश्नों से हलके दरजे का है, और टर्की के देश-हितैषी कमालपाशा ने स्त्रियों को इस कष्ट से छुड़ाने के लिये क़ानून बनाकर सचमुच कमाल ही कर डाला है। हिंदू-समाज का विधवा-वपन द्वारा भले ही युवती विधवाओं पर अत्याचार बतलाया जाय; किंतु कमालपाशा की कमालियत को देखकर कहना पड़ता है कि हिंदुओं ने इस अंश में विधवाओं की अपेक्षा सधवाओं पर अधिक अत्याचार किया है। ऐसा अन्याय केवल हिंदुओं में ही समाप्त नहीं हुआ है, अपितु इस अन्याय का दोषी सारा संसार है। जब पुरुष-समाज को स्वतंत्रता है कि वह मनमाने ढंग और इच्छित फ़ैशन से अपने सिर के बाल बनवा सके, तो बेचारी अबलाओं ने क्या बिगाड़ा है, जो उनको इस आज़ादी से वंचित रखकर कमज़ोर बनाने का उद्योग किया गया? यह उलझन केवल इसीलिये है कि न उन्हें माँगपट्टी सँवारने से तथा संतति-प्रसव और उनके पालन-पोषण से अवकाश मिलेगा, और न वे स्वतंत्रता माँगेंगी। विवाह में पति की अपेक्षा पत्नी की कम उमर होने की इधर विधि और उधर ज़ेवर की बेड़ियाँ—बस, ऐसे-ऐसे अनेक कार्य उनकी स्वाधीनता अपहरण के लिये किए गए हैं। ऐसी दशा में कमालपाशा ने यदि क़ानून बनाकर स्त्रियों के बाल लंबे रखने का निषेध किया, तो अच्छा ही किया है। इस पर इन पंक्तियों के लेखक से कहा जा सकता है कि नहीं जो, स्त्रियाँ सिर के बाल रखकर और ज़ेवर पहनकर अधिक-से-अधिक सुंदरी बनने के लिये जो कुछ करती हैं, अपनी स्वेच्छा से करती हैं; किंतु नहीं, इसमें उनकी स्वेच्छा नहीं—जन्म-जन्मांतर का—दूसरे की देखादेखी अथवा भेड़ियाधसान की भाँति—उनका अभ्यास है, और अभ्यास प्रकृति का छोटा भाई है।

लज्जाराम

× × ×

३. साहित्याचार्यजी के आक्षेपों के उत्तर

कोई ख़ूबी नहीं होती है, जिस इंसान में 'दानिश';
समझना फ़क़त अपना है, वह औरों की बुराई में।

माधुरी में कई मास से "साहित्य-दर्पण की 'विमला'-टीका"-शीर्षक जो मेरी लेख-माला निकल रही है, उसके संबंध में श्रीयुत शालग्रामजी शास्त्री ने माघ की माधुरी में एक लेख प्रकाशित कराया है। इस लेख में आपने जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यही है कि—(१) मैंने अपनी लेख-माला के प्रारंभ में पं० कृष्णविहारीजी मिश्र की प्रशंसा तथा आपकी निंदा की है। (२) साहित्य-दर्पण के मंगल-श्लोक में श्लेष नहीं है। (३) मैंने किसी गुरु से साहित्य-शास्त्र पढ़े बिना ही, अपने-आप 'साहित्य-स्वयंभू' बनकर, आपकी टीका की आलोचना कर दी है, जो अनधिकार-चेष्टा है। (४) जब कि इस (विमला) टीका पर बड़े-बड़े दिग्गज महामहोपाध्यायों को अनुकूल सम्मति मिल चुकी है, तो फिर उस पर चीं-चपड़ करना मुझ-जैसे जीवों की निरी हिमाकत है, बेजा हरकत है। (५) मैंने जो लेख-माला लिखी है, उसमें कोई संघटित कूटनीति है। (६) आप, आपके मित्र और शिष्य मेरी लेख-माला के आक्षेपों के उत्तर इसलिये नहीं देना चाहते कि यह अनुचित है, बेमेल जोड़ है—"सिंह बादल की गड़गड़ाहट सुनकर प्रतिध्वनि करता है, शृगालों की 'हूहू' सुनकर नहीं।"

इस लेख में अब हम इन पाँचों बातों पर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार प्रकट करते हैं। आशा है, साहित्याचार्यजी के 'बुद्धिमान् पाठक' सब समझ जायँगे।

साहित्याचार्यजी की पहली बात बिलकुल ग़लत है। मैंने न तो पं० कृष्णविहारीजी मिश्र की कोई प्रशंसा की है, और न आपकी निंदा ही। इस लेख-माला के पाठक ही इसमें 'परमं प्रमाणम्' हैं। साहित्याचार्यजी कहते हैं कि मिश्रजी को 'माधुरी' का 'यशस्वी संपादक' लिख देना तथा यह कह देना कि 'उनके पत्र का मुझ पर बड़ा असर पड़ा', भारी प्रशंसा करना है! इस बात को सहृदय ही सोचें। रही बात आपकी निंदा की। सो यह तो बिलकुल ही 'शशश्रृंगायमाण' है। मैं साहित्याचार्यजी को चुनौती देता हूँ कि आप इस बात को साबित करें। यदि यह बात सच होती, तो कुछ तो आप प्रमाण देते ही। महाराज, सभी आपके समान दूसरों को गाली सुनानेवाले अहम्मन्य नहीं हैं। जिन्होंने उक्त लेख-माला पढ़ी है, वे सब अच्छी तरह जानते हैं। और अधिक क्या कहा जाय? साहित्याचार्यजी का वाक्य सुनहले अक्षरों में छपाकर साहित्य-शास्त्र और व्याकरण की छाती पर चिपका देने योग्य है—"लेख-माला का उपक्रम मेरी निंदा और पं० कृष्णविहारीजी मिश्र की प्रशंसा से प्रारंभ होता है।"

इसके आगे साहित्याचार्यजी ने 'श्लेष' समझाया है। इस पर तीन-चार पन्नों तक ऐसा लिखते गए हैं, मानो पाठशाला में किसी विद्यार्थी को पढ़ा रहे हों। फिर अंततोगत्वा सबका सार निकालकर आप कहते हैं—"(१) श्लेष तब तक नहीं होता, जब तक दोनों* अर्थ मुख्य न हों। यदि एक अर्थ गौण और एक मुख्य हो, तो श्लेष नहीं हो सकता। (२) श्लेष की व्याख्या में टीकाकार लोग 'च', 'पक्षे', 'पक्षान्तरे' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। (३) यदि कहीं 'यद्वा', 'किंवा', 'अथवा' आदि शब्द हों, तो उसे विकल्प या संशय समझना चाहिए। यह स्थल श्लेष का नहीं होता।" आपका कहना है कि इन्हीं नियमों के अनुसार दर्पण के मंगल-पद्य में श्लेष नहीं, संशय अथवा विकल्प है।

मैं कहता हूँ—नहीं, इन्हीं नियमों के अनुसार दर्पण के उस पद्य में श्लेष है, संशय या विकल्प नहीं। कारण—उक्त पद्य में दोनों अर्थ मुख्य हैं, दोनों प्राकरणिक हैं, दोनों प्रकृत में उपयोगी हैं। सरस्वती और दुर्गा, दोनों शक्तियाँ अज्ञानांधकार नाश करने में समर्थ हैं। दोनों अर्थ वाच्य हैं। पहला वाच्य और दूसरा व्यंग्य नहीं है। दोनों अर्थ बराबरी के हैं, इनमें गौण-मुख्य भाव नहीं है।

साहित्य-शास्त्र के इस प्रकरण में 'मुख्य' का अर्थ होता है प्राकरणिक। हमने एक जगह लिखा था कि 'मुख्य' अर्थ करने के बाद तर्कवागीशजी ने दूसरा अर्थ भी किया है। हमारे इस वाक्य में, 'मुख्य'-शब्द का अर्थ 'प्राकरणिक' नहीं, किंतु 'पहला' है। अर्थात् पहला (सरस्वती-परक) अर्थ करके तर्कवागीशजी ने दूसरा (दुर्गा-परक) अर्थ भी किया है। मुखे—आदौ—भवः=मुख्यः, आद्यः।

तर्कवागीशजी ने दूसरा अर्थ करते समय 'पक्षान्तरे' का पर्याय 'अथवा' दिया है। मामूली विद्यार्थियों को भी मालूम है—'अथवेति पक्षान्तरे'। जब दूसरे पक्ष का अर्थ करना होता है, तो 'पक्षे' और 'पक्षान्तरे' की तरह 'अथवा' शब्द का प्रयोग भी कविजन करते हैं। तर्कवागीशजी को इस पद्य के अर्थ में कोई संशय नहीं था, अतएव 'अथवा' का अर्थ 'पक्षान्तरे' ही है।

एक बात साहित्याचार्यजी ने और लिखी है। आपका कहना है कि तर्कवागीशजी ने प्रकृत पद्य का सरस्वती-परक अर्थ पूरा लिखकर तब फिर दुर्गा-परक अर्थ लिखा है; अतएव श्लेष नहीं। यदि श्लेष होता, तो साथ-ही-साथ दोनों अर्थ करते चलते। उत्तर यह है कि दीनानाथ ने लिखने के दोनों ढंग हैं। साथ-साथ भी दोनों अर्थ व्याख्या कार करते चलते हैं, और एक अर्थ को पूर्ण लिखकर भी दूसरा अर्थ लिखते हैं। अर्थ करने में पौर्वापर्य तो होगा ही। चाहे एक-एक पद का एक-एक अर्थ करके फिर दूसरा अर्थ लिखा जाय, और चाहे पूरे वाक्य का एक अर्थ करके फिर दूसरा अर्थ किया जाय। बात एक ही है। साहित्याचार्यजी को कौन समझावे? 'केसरी' हैं!

*वस्तुतः साहित्याचार्यजी को 'दोनों' की जगह 'सब' कहना चाहिए; क्योंकि श्लेष में सिर्फ़ दो अर्थों का नियम नहीं होता, तीन-तीन और चार-चार अर्थ भी निकलते हैं। यही कारण है कि शब्द-श्लेष के लक्षण "श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते" में 'दो' नहीं, 'अनेक' पद आया है। इसी प्रकार अर्थ श्लेष के लक्षण—"शब्दैःस्वाभावादेकार्थैः श्लेषोऽनेकार्थ-वाचनम्" में भी 'दो' नहीं 'अनेक' पद है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश यह कि दर्पण के मंगल-पद्य में श्लेष है, और इसीलिये तर्कवागीशजी ने उसके (सरस्वती-परक तथा दुर्गा-परक) दो अर्थ किए हैं। उन्हें 'संशय' न था। यह तो हमारे साहित्याचार्यजी को ही मुबारक हो।

हाँ, यह बात आपने कई जगह लिखी है कि कोई-कोई कुछ व्याकरण और दर्शन आदि पढ़कर अपने-आप साहित्य-ग्रंथों के पन्ने पलटने लगते हैं, और यों विना किसी गुरु के ही 'साहित्य-स्वयंभू' बन बैठते हैं। मैं कहता हूँ, साहित्याचार्यजी को क्या मालूम कि मैंने किसी गुरु से साहित्य पढ़ा है, या नहीं ? और, यदि कोई व्यक्ति किसी गुरु से पढ़े विना भी कोई विद्या प्राप्त कर ले, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? न्यूटन को किसने बतलाया था कि पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है ? फिर इससे आपको मतलब ? क्योंजी, 'साहित्य-स्वयंभू' का अर्थ क्या हुआ ? वैयाकरण जानें।

अंत में साहित्याचार्यजी ने फ़र्माया है कि मेरी बनाई टीका पर मेरे बड़-बड़े स्वर्गीय और वर्तमान गुरुओं तथा अन्य महामहोपाध्यायों ने अनुकूल सम्मति दी है; अतएव उस पर क़लम उठाना किशोरीदास-जैसे जीवों की धृष्टता-मात्र है।

मैं कहता हूँ, एक स्वर्णकार बनावटी सोने का आभूषण बाज़ार में लाकर उसे विशुद्ध सोने का कहकर बेचता है, और लोगों को ठगता है। उसे एक स्वयंसेवक ने ताड़ा और पकड़ लिया। कसौटी पर घिसकर कहा कि यह तो मुलम्मासाज़ी है। यह सोने का नहीं, मुलम्मे का गहना है ! इस पर वह स्वर्णकार बिगड़े और कहे कि "वाह ! इस गहने की प्रशंसा तो मेरे अमुक-अमुक स्वर्गवासी उस्ताद ने की थी; और फ़लाँ-फ़लाँ सेठ भी इसकी तारीफ़ करता है। विशुद्ध सोने का बतलाता है। तब फिर तुम-जैसे लकीड़ियों की गिनती ही किसमें है, जो इसे मुलम्मे का बतलाने चले हो ?" उस स्वर्णकार की इस दलील पर हम क्या कहेंगे ? भाई, जब कसौटी सामने है, तब गवाही-साखी की क्या हक़ीक़त है ? उन्हें कौन पूछता है ? मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि जिन महानुभावों के सर्टिफ़िकेट साहित्याचार्यजी ने पेश किए हैं, उन्होंने पूर्ण पुस्तक पढ़े विना ही, आपके आग्रह से, इसकी प्रशंसा में दो-दो शब्द लिख दिए होंगे। प्रत्यक्ष प्रमाण लीजिए। साहित्याचार्यजी के प्रमाणपत्र-दाताओं में महामहोपाध्याय श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आदि दो-तीन महानुभाव अभी भगवान् की कृपा से विद्यमान हैं। क्या साहित्याचार्यजी इनके हाथ का लिखा कोई पत्र प्रकाशित करा सकते हैं, जिसमें लिखा हो कि हमने 'विमला' आदि से अंत तक देखकर सम्मति दी है ? क्या सचमुच इन महामहोपाध्यायों ने माघ आदि महा-कवियों के "पल्लवोपमिति साम्यसपक्षम्" आदि पद्यों को अशुद्ध कहकर कविता की अव्युत्पत्ति का सूचक बतलाया है ? मुझे पूर्ण विश्वास है, यह बात ऐसी नहीं है। सब-के-सब अज्ञान के इस भारी दलदल में नहीं फँस सकते।

परंतु यदि यह बात सच है—अगर उन महामहोपाध्यायों ने भी आपकी 'विमला' को आदि से अंत तक पढ़कर अनुकूल सम्मति लिखी है, तो मैं विना संकोच के कहूँगा कि उन्होंने भी भारी ग़लती की है, और अपने पद में धब्बा लगा दिया है। ऐसी दशा में आपके साथ उनको भी अपने पक्ष की पुष्टि करनी चाहिए। आपने यह भी लिखा है कि मेरी टीका एम्० ए०-परीक्षा के कोर्स में है, अतएव उस पर ऐसा-वैसा आक्षेप करना ठीक नहीं। महाराज, आपकी टीका नहीं, साहित्य-दर्पण इस परीक्षा में है, और उसके साथ टीका भी वहाँ तक पहुँच गई है—'कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः।' सो भी दूसरी हिंदी-टीका के अभाव में—'एरण्डोऽपि द्रुमायते।'

सबसे अंत में आपने लिखा है कि हम इस लेख-माला का उत्तर न देंगे। हमें तो यह बात पहले से ही मालूम थी।

रही संघटित कूटनीति की बात। सो यह साहित्याचार्यजी का पूर्ण भ्रम है। और, यदि संघटित कूटनीति ही इस लेख-माला का कारण हो, तो इसमें बात क्या है ? अपनी लज्जा की रक्षा करनी चाहिए। यह उस समय न देखना चाहिए कि मेरी भूल दिखलानेवाला संघटित कूटनीति के सहारे आया है, अथवा कैसे।

किशोरीदास वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकार--अज्ञात] [स्वरकार--श्रीमुरारिप्रसाद

काफी—सूल

आए हैं व्रज ऊधो, श्याम को सँदेसो लिए,
कहत जगाओ योग, भसम रमाओ अंग;
मन में बसे श्याम, नयनन भरे श्याम,
श्याम रंग रँगी अब तो, चढ़त न और रंग।

स्थायी

×		०		२		३		०	
स	र	ग	र	ग	म	प	म	प	—
आ	ए	हैं	ऽ	व्र	ज	ऊ	ऽ	धो	ऽ
									स
ध	प	ध	न	ध	प	म	ग	र	न
श्या	म	को	ऽ	सँ	दे	सो	लि	ए	ऽ
					न	रं.	सं		रं
									सं
ध	प	ग	म	प	ध	स	न	सं	ग
छ	ह	त	ऽ	ज	गा	ओ	यो	ऽ	
							म	स	
सं	न	ध	प	ध	मप	म	ग	र	सन
म	स	म	ऽ	र	माऽ	ओ	ऽ	अं	माऽ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतरा

×		०		२		३		०	
म	म	प	—	प	ध	न	सं	—	सं
म	न	में	ऽ	ब	से	ऽ	श्या	ऽ	म
न	सं	रं	सं	न	ध	—	प	—	प
न	य	न	न	भ	रं	ऽ	श्या	ऽ	म
		गं	मं	सं		सं			
गं	गं	मं	गं	रँ	सं	न	सं	सं	सं
श्या	म	रं	ग	रँ	गी	ऽ	अ	ब	तो
							म	स	
सं	न	ध	प	ध	मप	म	ग	र	मन
च	ढ़	त	ऽ	न	मोऽ	र	रं	ऽ	गऽ

जादूगरों का बाबा

इस सुंदर और सचित्र पुस्तक की गुप्त विधियों को सीखकर जो चाहेंगे हो जायेगा। दुर्भाग्य और शत्रु का नाश होगा, मुकद्दमा में जीत, संतान, रोजगार और धन की प्राप्ति होगी, अर्थात् जिसके साथ प्रेम है वह व्याकुल होकर स्वयं तुम्हारे पास चला आवेगा। कोई सिद्धि, कोई जप, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। केवल -) का टिकट भेजकर पुस्तक मुफ़्त मँगवाओ। अपना पता साफ़ लिखो। मिलने का पता—**गुप्त विद्याप्रचारक आश्रम,**

२६ P. B. 150 लाहौर

जर्मन प्रोफ़ेसर का नया आविष्कार

सिर्फ़ बाह ही वायोकेमिक दवाइयों से सब रोग आराम हो रहा है। वायोकेमिक होम्योपैथिक के अंतर्गत है। पुरानी होम्योपैथिक का पूरा ज्ञान लाभ करना कठिन है। पर वायोकेमिक बहुत ही सुगम है, प्रसिद्ध होम्योपैथ **एम्० आर० बनर्जी, एम्० ए०, हेड मास्टर रेलवे हाई स्कूल मोकामाघाट** की बनाई हुई, **वृहत् वायोकेमिक विधान** (२॥।=)) अवश्य पढ़िए, और बहुत आसानी से एक प्रवीण डाक्टर बनिए नहीं तो मूल्य वापस। भाषा, छपाई बहुत ही सरल, सुगम और अच्छी है। पुस्तक सजिल्द, पेज क़रीब ४०० के हैं।

शांति-औषधालय, मोकामाघाट, E. I. Ry.

याद रखिए दौलतमंद पुरुष धनी नहीं, हुनरमंद पुरुष धनी है।

इंडियन

☞ टैलरिंग-कॉलेज (रजि०)

में शीघ्र प्रविष्ट हो जायँ। ११० लिबास साइंटीफ़िक शुद्ध रीति द्वारा सिखलाकर सनद दी जाती है। फ़ीस ६०), समय दो मास से तीन मास।

हर लिबास की कटाई विद्या पर अद्वितीय पुस्तकें

सब परिवार, पाठशालाओं और दर्जी पेशा के लिये अद्वितीय कोट: १७२ प्रश्न कपड़ा लगाने के विषय में, ४८ चित्र आर्ट पेपर पर मू० १) अ० कमीज १५८ प्रश्न कपड़ा लगाने के विषय में, ५६ चित्र आर्ट पेपर पर मू० ॥।) अ० पाजामा ॥) अ०, फ़ाकविनी कोट ॥) अ०, दौलत-दर्जियाँ ५)। नियम मुफ़्त।

इंडियन टैलरिंग-कालेज, होशियारपुर (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

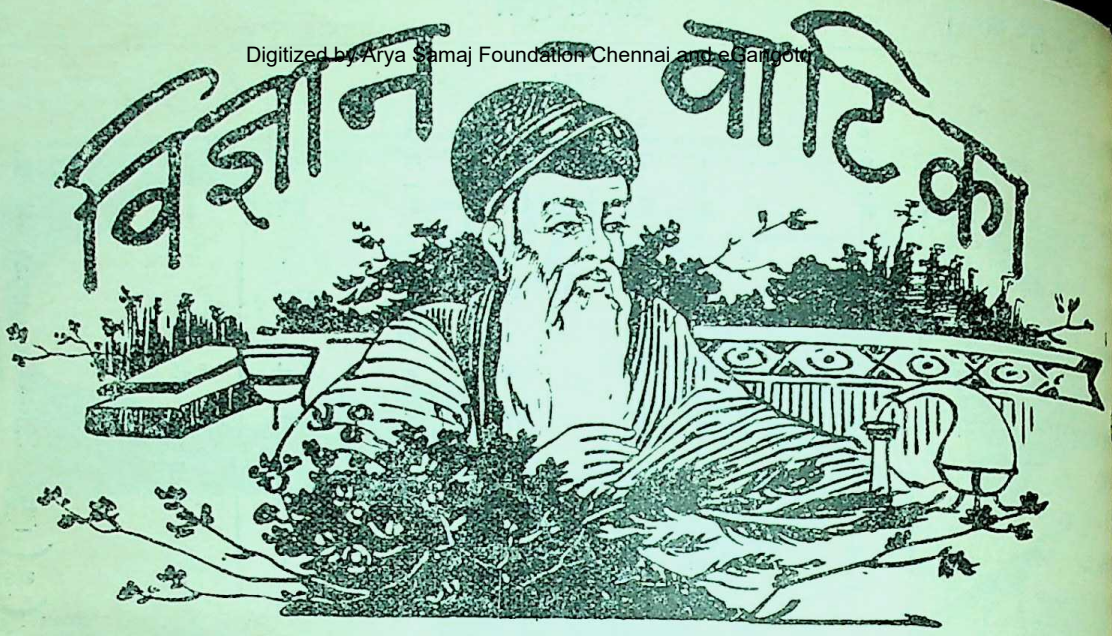

१. आकाश की सैर

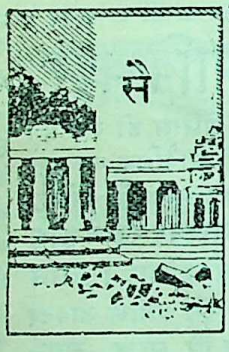

र करनेवाले आकाश में उड़कर क्या-क्या दृश्य देख आए, उसे उन लोगों की लिखी हुई पुस्तकों से संग्रह करके इस स्थान पर लिखने से, आशा है, पाठक महोदय प्रसन्न होंगे। 'समुद्र' नाम केवल जल-समुद्र के लिये ही व्यवहार किया जाता है; किंतु जिस वायु के द्वारा पृथ्वी घिरी है, उसका भी एक समुद्र ही है, और जल-समुद्र से वह बहुत बड़ा है। हम लोग इस वायु-समुद्र के तलचर जीव हैं। इसमें भी मेघ के उपद्वीप, वायु के स्रोत आदि हैं। इस विषय की थोड़ी जानकारी कर लेने में कोई हानि नहीं।

व्योमयान थोड़ा ही ऊँचा उठने पर मेघों को पार कर जाता है। मेघ के आवरण से पृथ्वी फिर नहीं दिखाई देती, अथवा कभी-कभी दिखाई देती है। पैरों के नीचे अच्छिन्न, अनंत, दूसरी वसुंधराकी भाँति मेघजाल फैला रहता है। इस वाष्प के आवरण से भूगोलक ढका हुआ है। यदि अन्य ग्रहों में ज्ञानवान् जीव रहते हैं, तब तो वे पृथ्वी के वाष्पीय आवरण ही देख पाते होंगे, पृथ्वी उन लोगों को दिखाई देती होगी। इसी प्रकार हम लोग भी बृहस्पति आदि ग्रहों का रौद्र-प्रदीप्त, रौद्र-प्रतिघाती वाष्पीय आवरण ही देख पाते हैं। आधुनिक ज्योतिर्विदों का ऐसा अनुभव है।

इस प्रकार पृथ्वी से संबंध-रहित होते ही, मेघमय जगत् के ऊपर स्थित होने पर दिखाई देता है कि संपूर्ण आकाश जीव-शून्य, शब्द-शून्य, गति-शून्य, स्थिर और

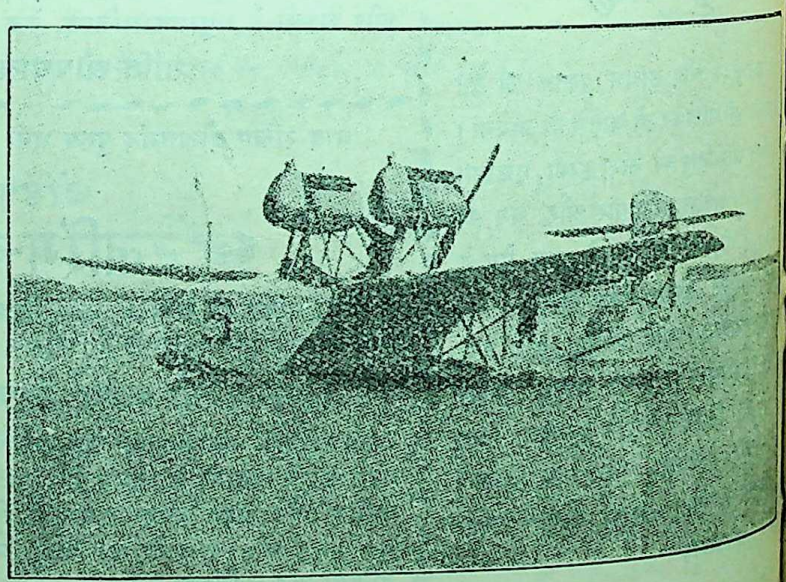

सी-प्लेन

(यह पानी पर भी चल सकता है, और हवा में भी उड़ सकता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीरव है। मस्तक के ऊपर का आकाश अति निविड नील-वर्ण का है। उसकी वह नीलिमा आश्चर्यमयी है। आकाश वास्तव में तो अंधकारमय है—उसका रंग गहरा काला है। अमावस की रात में बिना दीपक के घर में सब दरवाज़े और झरोखे बंद कर देने से जिस प्रकार का अंधकार दिखाई देता है, आकाश का प्रकृत-वर्ण वैसा ही है। उसमें स्थान-स्थान पर प्रचंड ज्वालामय नक्षत्र हैं। किंतु उनके आलोक से अनंत आकाश के अनंत अंधकार का विनाश नहीं होता; क्योंकि ये सब प्रदीप बहुत दूर-स्थित हैं। हम जो आकाश को अंधकारमय न देखकर उज्ज्वल देखते हैं, इसका कारण वायु है। सूर्य का आलोक सात रंग का है। स्फटिक के द्वारा उन रंगों को अलग-अलग भी किया जा सकता है। सात रंग का सम्मिश्रण ही सूर्य का आलोक है। वायु जड़ पदार्थ है, किंतु वह आलोक के मार्ग का अवरोध नहीं करती। वायु सूर्यालोक के और-और रंगों का रास्ता तो छोड़ देती है, किंतु नीले रंग को रोक देती है। रुका हुआ रंग वायु से विनष्ट हो जाता है, और उन विनष्ट रंगवाली आलोक-रेखाओं के हमारी आँखों में प्रवेश करने से आकाश हमें उज्ज्वल नीलिमामय दिखाई देता है—अंधकारमय नहीं दिखाई देता *। किंतु जितना ही ऊँचे उठा जाय, वायु का स्तर उतना ही क्षीण होता जाता है, जिससे आकाश का उज्ज्वल नीला रंग भी क्षीण होता जाता है, और आकाश की श्यामता धीरे-धीरे उस आवरण को भेदती हुई दिखाई देती है। इसी कारण ऊर्ध्वलोक में प्रगाढ़ नीलिमा है।

ऊपर तो यह गाढ़ नीलिमा है, नीचे तुंग-शृंग-विशिष्ट पर्वत-माला पर शोभित मेघलोक। वह पर्वतमाला भी वाष्पीय मेघों की है। अहा! पर्वत के ऊपर पर्वत, उसके ऊपर पर्वत—कोई कृष्ण-वर्ण के पार्श्व-देश से पड़नेवाली धूप की प्रभा से शोभित हैं, कोई धूप से बिलकुल नहाए हुए या नहा रहे हैं, कोई जैसे श्वेत-प्रस्तर-निर्मित हैं, और कोई जैसे हीरक-निर्मित। इन सब मेघों के बीच में होकर व्योमयान चलता है। उस समय नीचे मेघ, ऊपर मेघ, पीछे मेघ—चारों ओर मेघ-ही-मेघ दिखाई देते हैं। कहीं बिजली चमक रही है, कहीं बर्फ़ गिर रही है—अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। मसूर फ़नविल ने एक बार एक मेघ-गर्भ को भेदकर उसके भीतर से व्योमयान में गमन किया। उनके दिए हुए वर्णन के पढ़ने से जान पड़ता है कि जैसे मुंगेर के रास्ते में पहाड़ के भीतर होकर रेलगाड़ी चली जाती है, वैसे ही उनका व्योमयान भी मेघों को चीरता हुआ चला जा रहा था।

इस मेघलोक में सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य बड़ा ही आश्चर्यमय था। इस भूलोक में उसकी उपमा किसी चीज़ से नहीं दी जा सकती। व्योमयान पर सवार होकर बहुतों ने एक दिन में दो बार सूर्यास्त देखा, इसी प्रकार किसी-किसी ने एक ही दिन में दो बार सूर्योदय देखा।

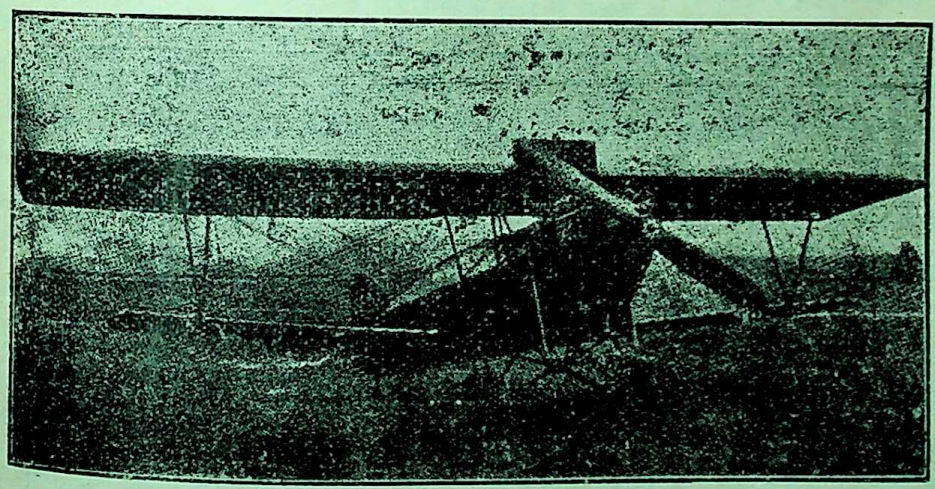

सौदागरों का वायुयान

* कोई-कोई कहते हैं कि वायु की जल-वाष्प से प्रतिहत नील रश्मि-रेखा ही आकाश की उज्ज्वल नीलिमा का कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार सूर्यास्त के बाद रात्रि का आगमन देखकर, और ऊँचे उठने पर दूसरी बार सूर्यास्त दिखाई दिया ; इसी तरह एक बार सूर्योदय देखकर, और नीचे उतरने पर उसी दिन दूसरी बार भी सूर्योदय दिखाई दिया ।

व्योमयान से जिस समय पृथ्वी दिखाई देती है, तो वह एक बड़े भारी नक़शे की तरह दिखाई देती है ; सर्वत्र समतल—अट्टालिका, वृक्ष, ऊँची भूमि एवं थोड़े ऊँचे मेघ, जैसे सभी चपटे हैं और सभी समतल भूमि पर चित्रित-से दिखाई देते हैं । पृथ्वी के ऊपर के नगर, ऐसे, जैसे छोटी-छोटी गठी हुई प्रतिकृति या तसवीरें चली जा रही हों । बड़े-बड़े शहर नेर की तरह दिखाई देते हैं । नदी सफ़ेद डोरे या साँप की तरह दिखाई देती हैं । समुद्र पर चलनेवाले बड़े-बड़े जहाज़, बच्चों के खेल के लिये बनी हुई छोटी-छोटी नौकाओं-जैसे दिखाई देते हैं । जो लोग आकाश में उड़कर लंदन या पेरिस-नगरी के ऊपर आए हैं, वे वहाँ का दृश्य देखकर मुग्ध हो गए हैं—उनसे उस दृश्य की प्रशंसा करते नहीं बनती । ग्लेशोर साहब ने लिखा है कि लंदन के ऊपर आकर हमने एकदम तीस लाख मनुष्यों के वास-गृह देखे । रात के समय महानगरी के राजपथों की दीप-मालाएँ अत्यंत रमणीय दिखाई देती थीं ।

जाती है । शिमला, नैनीताल, दार्जिलिंग आदि पहाड़ी स्थानों की शीतलता का यही कारण है, और इसी कारण हिमालय बर्फ़ से ढका रहता है । (आश्चर्य की बात है कि भारतवर्षीय कवियों ने हिम को "एको हि दोषो गुणसन्निपाते" समझा है, किंतु आधुनिक राज-पुरुषों ने उसको भी गुण समझकर वहाँ राजधानी स्थापित की है ।) व्योमयान में सवार होकर ऊँचे उठने पर भी इसी तरह से बर्फ़ की अधिकता का अनुभव होता है । गरमी ताप-मान-यंत्र (थर्मामीटर) द्वारा नपती रहती है । यंत्र में डिगरियाँ बनी हुई हैं । मनुष्य का खून कुछ गर्म होता है, उसका परिमाण ९८ डिगरी है । २२२ डिगरी ताप में जल भाफ़ बन जाता है । ३२ डिगरी ताप में जल बर्फ़ हो जाता है । ताप से जल बर्फ़ हो जाता है, यह कैसी बात ? वास्तव में गरमी से जल बर्फ़ नहीं होता, गरमी के अभाव में होता है । ३२ डिगरी गरमी जल की स्वाभाविक गरमी का अभावसूचक है ।

पहले के विज्ञानविदों का ख़याल था कि प्रति ३०० फ़ीट ऊँचे उठने पर एक डिगरी गरमी कम हो जाती है—अर्थात् ३०० फ़ीट पर एक डिगरी कम, ६०० फ़ीट पर दो डिगरी कम इत्यादि । किंतु ग्लेशोर साहब ने बहुत बार परीक्षा करके स्थिर किया है कि ऊँचे पर गरमी

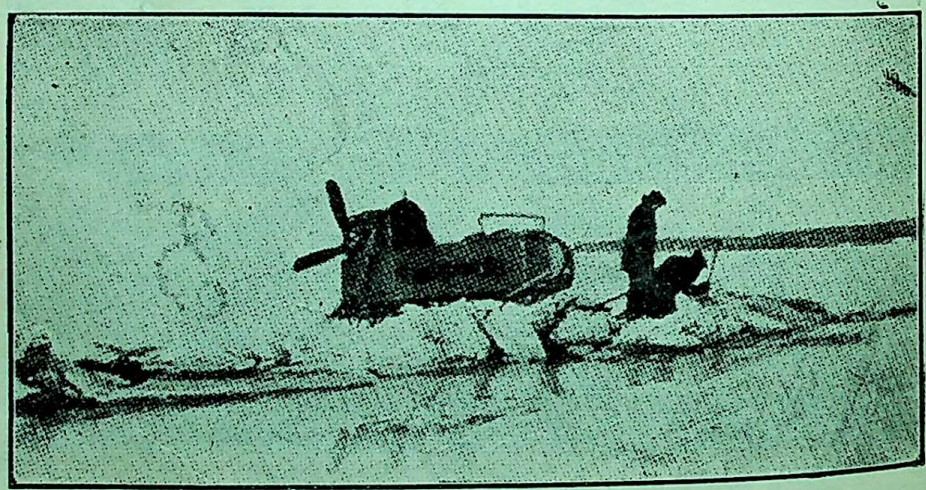

वायुयान बर्फ़ पर गाड़ी खींचता है ; यह मुसाफ़िरों को उन ऊँची पहाड़ियों पर ले जाता है, जहाँ और कोई सवारी नहीं जा सकती ।

जो लोग पहाड़ों पर चढ़े हैं, वे जानते हैं कि जितना ही ऊँचे उठा जाय, उतनी ही गरमी की कमी होती

की कमी ऐसे किसी साधारण नियम के अनुसार नहीं होती । अवस्था-विशेष में गरमी की मिक़दार में कमी-बेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। मेघ होने से गरमी की कमी में अल्पता हो जाती है। कारण यह है कि मेघ ताप-रोधक और ताप-ग्राहक होते हैं, और दिन में जितनी ताप-हानि में कमी होती है, रात में उतनी नहीं होती। ग्लेशोर साहब की परीक्षा का फल इस प्रकार है—

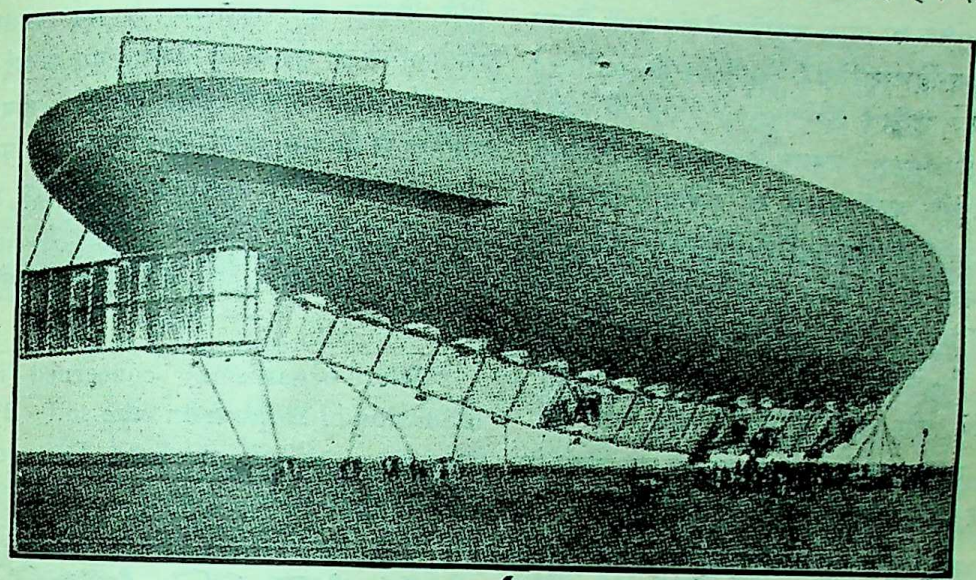

इटली का वायुयान
(यह गैस के ज़ोर से उड़ता है)

"भूमि से हज़ार फ़ीट तक मेघाच्छन्न अवस्था में ताप-हानि का परिमाण ४·५ डिगरी, मेघ न होने पर ६·२ डिगरी, दस हज़ार फ़ीट तक मेघाच्छन्न अवस्था में २·२ डिगरी और मेघ न होने पर २ डिगरी होता है। बीस हज़ार फ़ीट ऊँचे पर मेघाच्छन्न अवस्था में १·१ डिगरी; और मेघ-शून्य अवस्था में १·२ डिगरी होता है। तीस हज़ार फ़ीट ऊँचे पर लगभग ६·२ डिगरी ताप-ह्रास की परीक्षा की गई है—इत्यादि।' इस ताप-हानि का कारण ऊपर जगह-जगह पर बर्फ़ के कण नज़र आए हैं, और कभी-कभी व्योमयान उनमें गिर भी गया है। शीत की अधिकता से बहुत बार व्योमयान के सवार मुसीबत में पड़ गए हैं। यही नहीं, कितनी ही बार उनके हाथ-पैर सुन्न, और वे अचेत हो गए हैं।

महेशचरणसिंह

× × ×

२. जीवाणु-विद्या

माधुरी के पिछले विशेषांक में श्रीयुत डॉ० मुकुंदस्वरूप वर्माजी ने जीवाणु-विद्या शीर्षक लेख दिया है, वह अति उत्तम है। यथार्थ में वर्तमान समय में ऐसे लेखों की आवश्यकता है। ऐसे ही लेखों द्वारा प्राप्त किए हुए ज्ञान से मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा पूरी तरह से कर सकते हैं। इसी के ऊपर देश की उन्नति निर्भर है। ऐसे वैज्ञानिक विषय को आपने जिस योग्यता से सर्वसाधारण की समझ में आ जाने के योग्य लिखा है, उसके लिये वर्माजी को बधाई है, और आशा है कि आप ऐसे ही लेखों द्वारा भारतीय जन-समुदाय को लाभ पहुँचावेंगे।

जीवाणुओं की जीवन-चर्या के विषय में लिखते हुए आपने यह बतलाया है कि जीवाणु वृक्षों की भाँति अपना भोजन नहीं तैयार कर सकते। मनुष्यों के लिये जैसा तैयार भोजन चाहिए, वैसा उनके लिये भी होना चाहिए। वे अपना भोजन चेतन अर्थात् सेंद्रिय (Organic) पदार्थों से पाते हैं। इन जीवाणुओं के उन्होंने दो विभाग—पराश्रयी (Parasitic) और मृताश्रयी (Saprophytic)—किए हैं।

यथार्थ में अधिकांश—विशेषतः रोगोत्पादक जंतु, जिनसे उनके लेख का विशेष संबंध है, ऐसे ही होते हैं; परंतु पाठकों के ज्ञानार्थ मैं यहाँ पर यह बतला देना चाहता हूँ कि कुछ जीवाणु ऐसे भी हैं, जो अपना भोजन सिर्फ़ अचेतन (Inorganic) पदार्थों से ही प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। मुझे कुछ ऐसे ही जीवाणुओं से अपने प्रयोगों में सहायता लेनी पड़ी है। गंधक से गंधक का अम्ल बनाने वाले अथवा वनस्पति के लिये नत्रजन (Nitrogen) के लवण (Nitrate) बनानेवाले जीवाणु इसी श्रेणी के हैं।

प्रकृति में गंधक का अम्ल बनानेवाले जंतु अपने भोजन के लिये कारबन-द्विअम्लजिद (Carbon-de-oxide) वायु-मंडल से, शक्ति (Energy) गंधक से और नत्रजन (Nitrogen) नत्रजन के लवणों से प्राप्त करते हैं। वेक्समेन और जाफी साहब का कहना है कि इन्हीं जंतुओं का, जिनको बहुत थोड़े ही अचेतन पदार्थों की आवश्यकता है, पृथ्वी पर प्रथम अवतरण हुआ होगा। इन्हीं के परिश्रम से पहले गंधक का तेज़ाब बना होगा, जिससे स्याही अघुलनशील पदार्थ घुलनशील हुए होंगे, और जिनके उपयोग से अन्य निम्न श्रेणी के जीवाणु उत्पन्न हुए होंगे। क्रम-क्रम से उच्च श्रेणी के जीवाणु और चेतन पदार्थ तथा जीवधारी उत्पन्न हुए होंगे।

व्यवसाय-विभाग में इन जंतुओं का महत्व अभी तक नहीं बढ़ा है। हाल ही में कुछ खाद्य इनकी सहायता से घुलनशील बनाए जाने लगे हैं। इनकी उपयोगिता उस समय अनिवार्य होगी, जिस समय अन्वेषणकर्तागण गंधक का अम्ल इन्हीं के द्वारा तैयार करने की रीति निकाल देंगे। क्रम-क्रम से कई व्यवसाय—जैसे भाँति-भाँति की शराबों का बनाना, दूध के कई प्रकार के परिवर्तित पदार्थों का तैयार करना इत्यादि—जीवाणुओं की सहायता से ही चल रहे हैं, और संभव है, उसी भाँति शीघ्र ही गंधक से अम्ल बनाने का व्यवसाय भी इन्हीं की सहायता से होने लगे *।

नारायण-दुलीचंद व्यास

---

* Micro-organisms concerned in the oxidation of sulphur in the soil--By S. A. Waksman and J. S. Joffe. Jour. of Bact., Vol.-VII, p. 254.

हर शहर में एजेंट चाहिए

काफ़ी कमीशन मिलेगा

'माधुरी' के एजेंट बनने पर—

एक पंथ दो काज होंगे।

विशेष हाल जानने के लिये हमें पत्र लिखिए—

मैनेजर 'माधुरी', लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

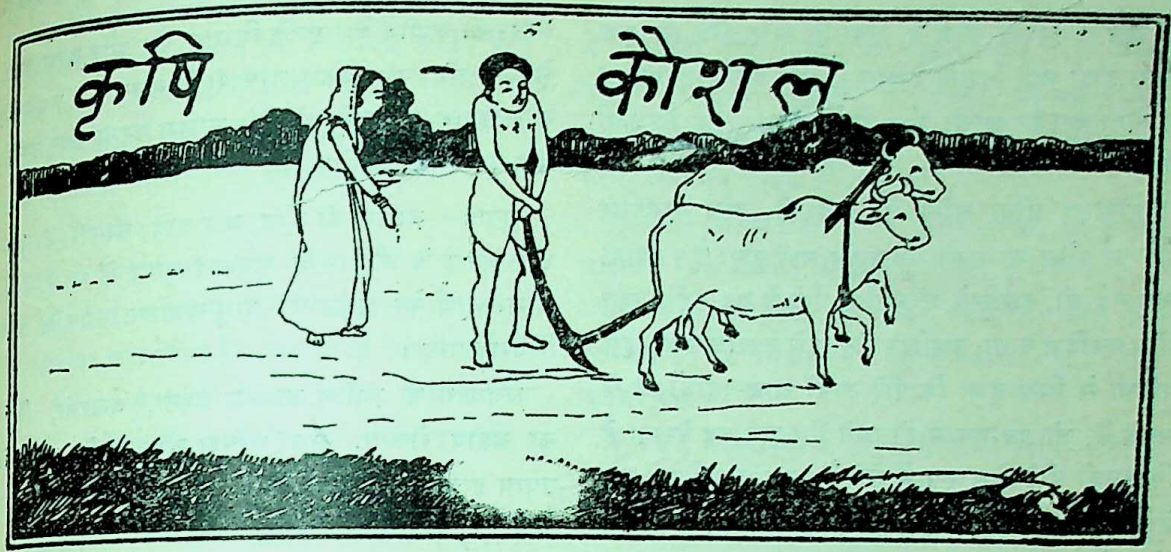

१. तरकारी की खेती

प्रथम लेख में यह बतलाया गया है कि पौदे किस प्रकार पत्तों द्वारा वायुमंडल से कोयला लेते हैं। अब यह देखना है कि अन्य खाद्य-पदार्थ किस प्रकार लेते हैं। इसके लिये पौदों की जड़ों की ओर ध्यान दीजिए। पौदों में प्रायः तीन प्रकार की जड़ें होती हैं—

(१) मूसला

(२) झखरा

(३) मूसला-झखरा दोनों मिली हुई।

इन सब जड़ों पर अन्य छोटी जड़ें होती हैं, जो चारों ओर फैलती हैं। इन्हीं सबके द्वारा पौदा ज़मीन में जमा रहता है और खाद्य-पदार्थ खींचता है। परीक्षा के लिये दो गमलों में मिट्टी भरकर दोनों में गोभी बोओ। जब पौदे उग आवें और कुछ बड़े हो जायँ, तो दोनों को मिट्टी से निकालकर एक को मिट्टी-भरे गमले में और दूसरे को जड़ें काटकर दूसरे गमले में लगा दो। जिस पौदे की जड़ें नहीं काटी गई थीं, वह हरा रहेगा। परंतु दूसरा सूख जायगा; क्योंकि उसको खाद्य-पदार्थ नहीं मिला है। इससे सिद्ध है कि जड़ें पौदों के जीवन के लिये आवश्यक हैं, और इन्हीं के द्वारा ये ज़मीन से खाद्य-पदार्थ खींचते हैं। यदि आप ध्यानपूर्वक देखेंगे, तो पतली जड़ों पर भी अति सूक्ष्म केशों के समान और बारीक जड़ें मिलेंगी। यही मुख्य जड़ें हैं, जो खाद्य-पदार्थ खींचकर जड़ों द्वारा पौदों के सब भागों में पहुँचाती हैं। ये नली के समान पोली होती हैं, और इनमें एक प्रकार का गाढ़ा रस भरा रहता है। यह भी आप जानते हैं कि ज़मीन छोटे-छोटे बारीक असंख्य कणों से बनी है। इनके चारों ओर जल चिपका रहता है। इस कण से चिपके जल में पौदों का खाद्यपदार्थ, जो ज़मीन में है, घुलकर मिला रहता है। जब ये अति सूक्ष्म जड़ें इन कणों के निकट आती हैं, तो इन मिट्टी के कणों से सट जाती हैं, और उनमें घुसकर इनके आसपास जो द्रव-रूप में खाद्य-पदार्थ रहता है, उसको खींचती हैं। इन जड़ों के सिरों पर एक अति सूक्ष्म छिद्र-वाली झिल्ली रहती है, जिससे द्रव पदार्थ सरलता से आते हैं। अस्तु, ये जड़ें जब मिट्टी के कणों से सट जाती हैं, तब द्रवरूपी खाद्य-पदार्थ को खींचती हैं, जो झिल्ली से अंदर चला आता है, और अंदर का थोड़ा-सा गाढ़ा रस बाहर आ जाता है। इसी प्रकार पौदे खाद्य-पदार्थों को जड़ों द्वारा द्रव-रूप में खींचते रहते हैं। यदि आप यह संशय करें कि वे दृढ़ रूप में भी ले सकते हैं, तो इसकी जाँच के लिये नीचे की परीक्षा कीजिए। दो काँच के गिलास लो और हरएक में जल भरो। एक में मोम घोलो, और दूसरे में लाल स्याही। तब यह देखेंगे कि मोम जल में घुलकर एकदिल नहीं हुआ है, परंतु पूरे जल में डाके कण उतरा रहे हैं। दूसरे गिलास में देखेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जल बिलकुल लाल हो गया है, और कोई भी कण तैरता हुआ नहीं दिखलाई देता। अब एक पौदे की दो टहनियाँ काटकर लाओ और दोनों गिलासों के मिश्रणों में एक-एक डाल दो। कुछ समय में देखेंगे कि स्याहीवाला पौदा लाल हो गया है, और मोमवाले पौदे पर मोम का असर बिलकुल नहीं हुआ है। स्याही घुल गई थी, इसलिये शीघ्रता से पौदे में चढ़ गई; परंतु मोम एकदिल न था, इसलिये पौदा उसे न खींच सका। इस परीक्षा से सिद्ध हुआ कि पौदे उन्हीं खाद्य-पदार्थों को ले सकते हैं, जो द्रव-रूप में हो जाते हैं। अब यह देखना है कि इनको पौदे किस रूप में लेते हैं। यह पदार्थ कई रूप में परिवर्तित होते हैं, तब द्रव-रूप धारण करते हैं। इनमें कौन-कौन परिवर्तन होते हैं, इसके लिये खाद्य-पदार्थ के मुख्य भागों को देखना चाहिए। पौदे नाइट्रोजन को उसके असली रूप में नहीं लेते हैं। पहले यह अमोनिया के रूप में रहती है, जो परिवर्तित होकर नाइट्राइट और पश्चात् नाइट्रेट के रूप में पहुँचती है, और इसी रूप से घुले रूप में होकर पौदों को मिलती है। यह परिवर्तन बैक्टीरिया अर्थात् एक प्रकार के अदृश्य कीटाणु द्वारा होता है। ज़मीन में वायुमंडल की अपेक्षा अधिक कार-बन-डी-ऑक्साइड है। यह ज़मीन के खाद्य-पदार्थ पर प्रभाव डालकर उसका बहुत-सा भाग द्रव-अवस्था में कर देता है। वर्षा का जल भी इनको परिवर्तित करके घुले रूप में लाता है। इस प्रकार इनके और कई अन्य रासायनिक क्रियाओं द्वारा यह खाद्य-पदार्थ घुले रूप में परिवर्तित हो जाता है। ऊपर के विवरण से यह विदित हो गया होगा कि ज़मीन का पौदों से घनिष्ठ संबंध है। अब यह मालूम हो सकता है कि ज़मीन किस प्रकार की है, और ज़मीन में यह सब पदार्थ कितने हैं। यदि किसी की कमी है, तो उनको कृत्रिम उपायों से पूरा करना चाहिए।

(१) बग़ीचे के लिये स्थान का चुनाव—

स्थान चुनते समय कौन-कौन-सी बातें उस स्थान में होना आवश्यक है? ज़मीन और पौदों का संबंध—जैसे पौदे कौन-कौन-से पदार्थों से बने हैं, वे कैसे, किस रूप में, किस तरह और कितना खाद्य-पदार्थ लेते हैं?

(२) ज़मीन का चुनाव—भारतवर्ष में कितने प्रकार की ज़मीनें हैं? इनके विभाग, रंग और खाद्य-पदार्थ से कौन-सी ज़मीन किस तरकारी के योग्य है? ज़मीन में खाद्य-पदार्थ की कमी को कैसे मालूम करना और उसको कैसे पूरा करना चाहिए?

जुताई—ज़मीन की ज़ात, जल-वायु, तरकारी की ज़ात और जुताई के औज़ार के अनुसार जुताई के लाभ—जैसे खाद्य-पदार्थ का बदलना, वायु-संचालन, प्रकाश और निचरा आदि।

लेवलिंग या ज़मीन का सम करना, बखरनी, मिट्टी का बहाव रोकना, सब सॉयल और उसके बनाने के उपाय इत्यादि।

(३) ज़मीन का निचरा—

स्वाभाविक व कृत्रिम

(४) खाद—

ज़मीन को खाद की आवश्यकता, तरकारी की ज़ात, खाद की ज़ात, जलवायु और खाद की क़ीमत के अनुसार खाद कितनी प्रकार की है, वज़नी और हलकी खादें, सैंद्रिय तत्त्ववाली खादें, क्षार की खादें, गोबर की खाद, असली और कृत्रिम, खली की खाद, हरी खादें, पत्तों की खाद, मूत्र, लीद, लेंड़ी, मृतक शरीर, चूना, विष्ठा और रुधिर इत्यादि।

नाइट्रोजनवाली खाद—अमोनियम सलफेट, सोडियम नाइट्रेट, कैलशियम साइनामाइट या नाइट्रोलाइम या नाइट्रोलम, नाइट्रेट आफ़ लाइम और नाइट्रेट आफ़ पोटास इत्यादि। इन सबका पृथक्करण करने की विधि और किसको कितना, किस समय, किस प्रकार और किस तरकारी में देना चाहिए।

फ़ासफेरिक ऐसिड देनेवाली खाद—हड्डी की खाद, एपीटाइट और फासफराइड कापर लाइट, या सुपर फासफेट, कैलशियम फासफेट, बेसिक स्लेग या टामस्लेग, बेसिक फासफेट या टामस फासफेट या बेसिक सिंडर, और ग्वायनो इत्यादि।

पोटास देनेवाली खाद—म्यूरेट आफ़ पोटास केनाइट, काटन सीडहल, लकड़ी की राख, मिट्टी इत्यादि की राख, हरएक ज़ात की तरकारी को कितना क्षार की खाद देनी चाहिए अथवा कौन-कौन-सी न देनी चाहिए।

(५) बीज—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस प्रकार का हो, बीज की उत्पादक शक्ति, बीज का तैयार करना, बीज के बोने की गहराई, क्यारियाँ, बीज के शीघ्र उगाने की विधि, बीज बोने की रीति, बीज के रखने की विधि, रोपा लगाना ।

(६) सिंचाई—

सिंचाई की आवश्यकता और लाभ, ज़मीन की ज़ात, तरकारी की ज़ात, जलवायु, ज़मीन की ज़ात । पानी के स्थान ख़र्च पर अवलंबित है । सिंचाई के स्थान—कुआँ, तालाब, नहर, बावली, नाला, नदी इत्यादि का वर्णन और इनके बनाने के स्थान का चुनाव इत्यादि । सिंचाई कितनी तरह से की जाती है ?

(७) कचरा—

कचरे से नुक़सान और निकालने के फ़ायदे । कचरा कितने प्रकार के होते हैं और कैसे निकाले जा सकते हैं ? टाप ड्रेसिंग क्यों और कितना प्रत्येक फ़सल में करना चाहिए ? मलचिंग या डुंडिया करना ।

(८) प्रत्येक तरकारी के रोगों का अलग-अलग वर्णन, उनके रोकने और अच्छा करने का उपाय । जो दवाइयाँ काम आती हैं, उनका पूरा विवरण और उनके बनाने के उपाय तथा उनके देने के यंत्र ।

(९) रोटेशन अर्थात् फ़सल बदल के बोना—

इसकी आवश्यकता, किस प्रकार, कब और कौन-कौन-सी फ़सल बदल के बोनी चाहिए ; दो फ़सलें एक साथ लेना, तीन फ़सलें एक साथ लेना इत्यादि । घरू बग़ीचा और ऋतु के अनुसार घरू तरकारी बोना ।

(१०) तरकारी को बहुत समय तक सुरक्षित करना और बिक्री के नियम ।

(११) बग़ीचे के यंत्र—

जुताई, मलचिंग, लेवलिंग, हेरोईरा, सिंचाई, गोड़ाई, निराई, रोपा लगाना, कटाई, दवा छिड़कने के यंत्र इत्यादि का पूरा वर्णन, उनके उपयोग, क़ीमत मिलने के स्थान इत्यादि । यंत्र ख़रीदते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

(१२) [क] पूँजी—

कितनी, क्यों और किस समय ज़रूरी है—साधारण तरह एकड़ के बग़ीचे के लिये पूँजी ।

(१२) [ख] सहायता—

कहाँ से और किस प्रकार मिल सकती है ? भारतवर्ष में सरकारी कृषि-विभाग का संगठन और उनके प्रत्येक विभाग का कार्य, किसानों को उनकी सहायता किस प्रकार और कौन-कौन-सी मिल सकती है, अर्द्धसरकारी कृषि-संस्था एवं पुस्तकें इत्यादि ।

पुस्तकें—प्रत्येक तरकारी पर अलग-अलग जो पुस्तकें भारतीय और विदेशी विद्वानों ने लिखी हैं । तरकारी के उत्तम बीज औज़ार, रोगों की दवाइयाँ, खाद की पुस्तकें कहाँ पर मिलती हैं, बग़ीचा-संबंधी देशी तथा विदेशी पत्र ।

(१३) तरकारियों के उत्पन्न करने की विधि—आलू की खेती ।

(१४) शकरकंद और प्याज़ की खेती ।

(१५) लीक या किराथ, सैलाट और चुक़ंदर की खेती ।

(१६) शलजम, पारसनिय या इसतुप़र्यन और याम या कंद की खेती ।

(१७) सूरन या जिमीकंद, गाजर, मूली और टरनिप, स्टेड चरबेल ।

(१८) रुटाबाग़, सेल्सीफ़ाई, स्कालीमस और हार्स रेडिश की खेती ।

(१९) स्कारजोनिय, घुइयाँ, रैमपियन, आइटा चोक, ऐसपेरेगस और सूत-मूली की खेती ।

(२०) बँधी-गोभी, फूल-गोभी, गाँठ-गोभी और केले की खेती ।

(२१) चोक कोबी, ब्रकोली, मशरूम या कुकर-मुत्ता, यार्ड, कार्न, स्लाद और पार्सली की खेती ।

(२२) चायनीज़ केबिज़, डेनडिलिन, स्पिनाय, मस्टर्ड और रिह्यू बार्व, डाक्स और सारिल्स, तथा सीकेल की खेती ।

(२३) सेलरी, सेलिरिक, चिकोरी, केस सलाद, चैरवेल और इनडाइब या कसनी की खेती ।

(२४) टमाटर, भाँटा और बटाना की खेती ।

(२५) चिरपुटा, सेम, बटर, बीन सोर्डबीन, बालसेमी, ग्वारसेमी, लाइमबीन, देशी सेम, बरबटी, ककड़ी, तरबूज़, ख़रबूज़ा, मेरो कुम्हड़ा और भूरे कुम्हड़ की खेती ।

(२६) लौकी, तरोई, घी-तरोई, भिंडी, चचींड़ा, करेला और मक्का की खेती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२७) स्वीट कार्न, मारटीनिया, मेथी, भाजी, पालक, चौराई, भतुआ, सौंप और अन्य भाजियाँ, धनियाँ और पोदीना।

(२८) मिर्च, अदरक, हल्दी और लहसुन की खेती।

(क्रमशः)

उमाशंकर नायक

× × ×

२. आलू को सुरक्षित रखने का उपाय

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आलू इस समय हमारे देश के भोज्य-पदार्थों में एक प्रधान वस्तु हो रही है। मुख्य भोज्य-पदार्थ के रूप में इसका व्यवहार यद्यपि नहीं होता – और ऐसा होना भी नहीं चाहिए; क्योंकि इसमें नाइट्रोजन-संबंधी द्रव्य-गुण बहुत अल्पमात्रा में वर्तमान रहता है—तथापि साल-भर तक इसे भोज्य-पदार्थ के रूप में व्यवहार करते रहने में सबसे बड़ी कठिनाई इसे सड़ने से बचाकर रखना है। ज़मीन से उखाड़ने के बाद से ही यह सड़ने लगता है। कई प्रकार के आलू, जो बहुत सख़्त होते हैं, ग्रीष्म-ऋतु के आरंभ में ही सड़ने लगते हैं। आलू की क़िस्म मिट्टी की जाति पर—जिसमें यह पैदा होता है—खाद के व्यवहार पर, इसकी खेती के मौसम और बीज के व्यवहार पर निर्भर करती है।

जाड़े के अंत में जो आलू रोपा जाता और एप्रिल के आदि या मध्य में उखाड़ा जाता है, उसमें कीड़ा पड़ने और सड़ने का बहुत अधिक भय बना रहता है। जाड़े के शुरू में ही रोपा हुआ आलू, जो फ़रवरी-महीने के अंत तक तैयार हो जाता है, बीज के लिये या साल-भर तक सुरक्षित रखने के लिये सबसे उम्दा समझा जाता है।

आलू के सड़ने के बहुत-से कारण होते हैं। सर्द जगहों के रखने से इसके सड़ने का बहुत डर रहता है। अतएव सड़ने से रोकने के लिये इसे ऐसे स्थान में रखना चाहिए, जो हमेशा सूखा रहता हो, और जहाँ हवा और रोशनी पूरी मात्रा में पहुँचती हो। बालू पर इसे रखने से भूमि या सहन की सर्दी से बचाव होता है।

आलू को बचाकर रखने का एक उम्दा तरीक़ा यह है कि इसे गंधक के तेज़ाब में भिगोकर रक्खा जाय। इससे न तो आलू को ही कोई हानि पहुँचती है, और न इसके खानेवालों को ही। विशुद्ध, कड़ा (Sulphuric Acid) गंधक का तेज़ाब, १-८२ Specific-gravity का (जो प्रतिपौंड आठ आने के हिसाब से मिलता है), इस काम के लिये व्यवहार में लाना चाहिए। एक मिट्टी के बर्तन में एक हिस्सा यह तेज़ाब और बीसगुना पानी मिलाकर लकड़ी की एक छड़ी से पानी को खूब हिला देना चाहिए। जब यह जल ठंढा हो जाय, तो इसमें आलू को डाल देना चाहिए। तीन घंटे तक पड़े रहने देना चाहिए। इसके बाद आलू निकालकर छाया में सूखने देना चाहिए। धूप में न सूखने देना चाहिए, क्योंकि धूप के संसर्ग से इसमें विष पैदा हो सकता है। इस प्रकार सूख जाने पर फिर इसे एकत्र करके रखना चाहिए। आलू को बचाकर रखने का यह प्रयोग पहले थोड़ी मात्रा में, साल के शुरू में करना चाहिए, और इसका परिणाम देखकर तब बृहत् रूप में इसका प्रयोग करना चाहिए।

× × ×

३. फल की गुठली का उपयोग

फल की गुठली को हम लोग बेकार समझकर फेंक दिया करते हैं, किंतु ईश्वर की बनाई हुई कोई वस्तु निरर्थक नहीं होती। इस सिद्धांत के अनुसार कुछ उत्साही व्यवसायियों ने इन गुठलियों से भी काम लेना शुरू कर दिया है। इस प्रकार का उद्योग, अभी थोड़े दिन हुए, पाश्चात्य देशों में आरंभ हुआ है, और इसका परिणाम भी संतोष-जनक सिद्ध हो रहा है। गुठली को कुचलकर लवण-मिश्रित क्षार-जल में छोड़ देते हैं। इस जल की तह में कुछ देर तक गुठली के रहने से उसका ऊपरी भाग छिल्का, गूदा-सहित, पानी की ऊपरी सतह पर चला आता है। इसके बाद उस गूदे को साफ़ करके उससे तेल निकाला जाता है। तेल निकाल लेने के बाद उसका जो अंश बच जाता है, वह पशुओं के लिये बहुत उम्दा चारा समझा जाता है। छिल्के को आग में जलाकर उसके कोयले से फलों का रस, लेमोनेड आदि साफ़ किया जाता है।

इस व्यवसाय में अब तक जो सफलता प्राप्त हुई है, उसे देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत जैसे फल उत्पन्न करनेवाले देश में फलों की गुठलियों का उपयोग, व्यवसाय के रूप में, शीघ्र आरंभ होना चाहिए। इस व्यवसाय के लिये सामान की कमी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगी, और इससे लाभ भी पर्याप्त परिमाण में होने की संभावना है। छिलकों का उपयोग करने की प्रक्रिया छोड़ देने पर शेष काम बहुत साधारण रह जाता है, और इसके लिये विशेष पूँजी की भी आवश्यकता नहीं होगी। बड़े-बड़े शहरों में फलों की गुठलियों को एकत्र करने का काम बहुत ख़र्चीला है; क्योंकि इसके लिये बहुत अधिक मज़दूरों को नियुक्त करने की ज़रूरत होगी। अतएव ज़िले के अंदर देहातों में घूमकर फलों की गुठलियाँ काफ़ी तादाद में इकट्ठी की जा सकती हैं, और इसमें ख़र्च भी अधिक नहीं पड़ेगा। देश के उद्योगी व्यवसायियों का ध्यान यदि इस ओर आकृष्ट हो, और वे इस व्यवसाय में पूँजी लगाकर प्रयोग-रूप में काम शुरू करें, तो इससे अनेक लोगों को लाभ पहुँच सकता है, और उनकी देखादेखी और लोग भी इस धंधे को अपनाने की चेष्टा करेंगे।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

सुंदर और चमकीले बालों के बिना चेहरा शोभा नहीं देता।

कामिनिया ऑइल

(रजिस्टर्ड)

यही एक तेल है, जिसने अपने अद्वितीय गुणों के कारण काफ़ी नाम पाया है।

यदि आपके बाल चमकीले नहीं हैं, यदि वह निस्तेज और गिरते हुए दिखाई देते हैं, तो आज ही से "कामिनिया ऑइल" लगाना शुरू करिए। यह तैल आपके बालों की वृद्धि में सहायक होकर उनको चमकीले बनावेगा और मस्तिष्क एवं सिर को ठंडक पहुँचावेगा।

क़ीमत १ शीशी १), ३ शीशी २॥=), वी० पी० ख़र्च अलग।

ओटो दिलबहार

(रजिस्टर्ड)

ताज़े फूलों की क्यारियों की बहार देनेवाला यही एक ख़ालिस इत्र है। इसकी सुगंध मनोहर एवं चिरकाल तक टिकती है।

आध औंस की शीशी २), चौथाई औंस की शीशी १।) हर जगह मिलता है।

सूचना—आजकल बाज़ार में कई बनावटी ओटो बिकते हैं—अतः ख़रीदते समय कामिनिया ऑइल और ओटो दिलबहार का नाम देखकर ही ख़रीदना चाहिए।

सोल एजेंट—ऐंग्लो-इंडियन ड्रग ऐंड केमीकल कंपनी,

२८५, जुम्मा मसजिद मार्केट, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

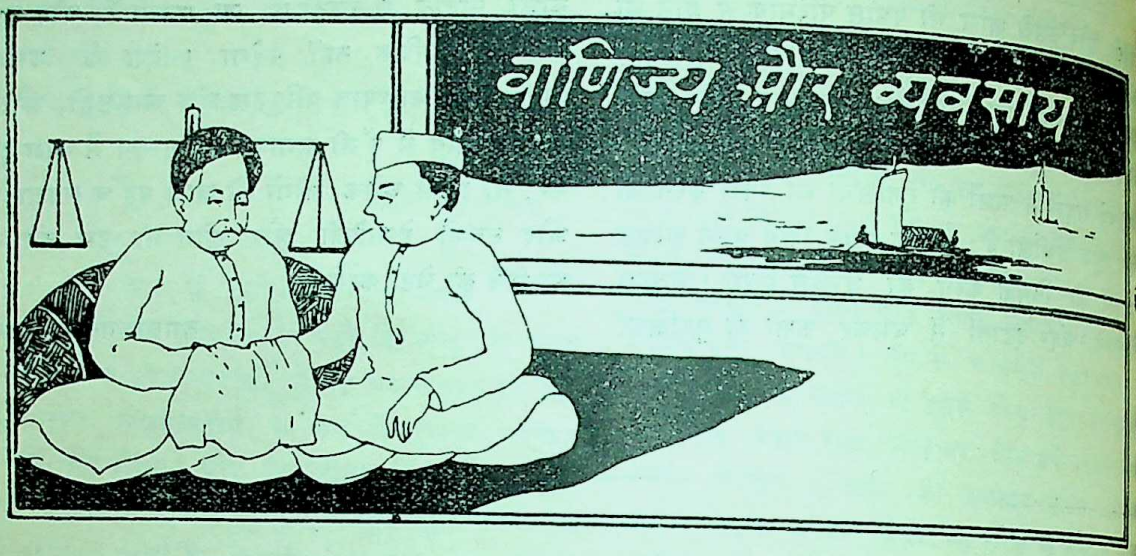

भारत में फ़िल्म-निर्माण-कला

विज्ञान जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में आश्चर्य-जनक उन्नति का कारण हुआ है, उसी प्रकार ललित-कलाओं के नूतन विकास में भी आगे बढ़ रहा है, और दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर जा रहा है।

जहाँ तक हमें इतिहास का पता लगता है, उससे सिद्ध होता है कि सृष्टि के आदि काल से ही मनुष्य की प्रकृति में कला-सौंदर्य के ज्ञान का अस्तित्व चला आता है। मनुष्य चाहे जब, जहाँ और जिस अवस्था में रहा हो, ललित-कलाएँ उसके जीवन में सदा जादू का काम करती आई हैं। आधुनिक असभ्य और जंगली जातियों में भी संगीत तथा नृत्यादि अनेक प्रकार की ललित-कलाएँ, उनके जीवन के एक आवश्यक अंग के रूप में, पाई जाती हैं। सभ्य जातियों की मनोविनोद-संबंधी सामग्रियों में जिन वस्तुओं को उच्च स्थान प्राप्त हैं, उनमें से नाट्य-कला यदि सर्व-श्रेष्ठ नहीं, तो सर्व-श्रेष्ठ मनोमुग्धकारी कलाओं में से एक तो अवश्य ही है। किंतु प्राचीन भारत में नाट्य-कला का जो रूप था, आधुनिक विज्ञान के युग में पाश्चात्यों के संपर्क से वह बिलकुल परिवर्तित हो गया है। पाश्चात्य प्रणाली के अनुकरण करने के कारण हमारी आधुनिक नाट्य-कला का भविष्य क्या होगा, इसका अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि [illegible] यूरोप और अमेरिका में जितने नाट्यागार थे, वे अब सिनेमा-हाउस के रूप में परिवर्तित हो गए और होते जा रहे हैं। अभी तक हमारे देश में जितना कुछ सिनेमा-प्रदर्शन प्रचलित हुआ है, वह केवल आरंभिक अवस्था में है। योरप और अमेरिका में तो Acting (अभिनय) के साथ-ही-साथ Conversation (वार्तालाप) और Singing (गायन) का भी समावेश विज्ञान की बदौलत हो रहा है, जिससे नाटक और सिनेमा में साकार और निराकार के अतिरिक्त कोई भेद ही नहीं रह जायगा। किंतु भारत के लिये अभी वह दिन कुछ दूर है। यहाँ अभी तक इस लाइन में जो कुछ हो पाया है, वह विदेशियों के उद्योग का फल है। कारण यह है कि इस कला का मूलाधार फ़िल्म-निर्माण है, जिसका अभी तक भारत में श्रीगणेश भी नहीं हुआ। यहाँ जो कुछ फ़िल्म दिखाए जाते हैं, वे वैदेशिक चरित्र-चित्रण करते हैं। यद्यपि महाराष्ट्र-फ़िल्म-कंपनी आदि दो-एक कंपनियों ने उसे भारतीय रूप देने की चेष्टा की है, तथापि उनके परिश्रम को अभी अंतर-राष्ट्रीय आदर नहीं प्राप्त हुआ है। यदि ज़रा उच्च दृष्टि-कोण से इसका विचार करें, तो कदाचित् संसार की किसी भी कला में विद्या की भिन्न-भिन्न शाखाओं का ज्ञान उतना आवश्यक नहीं है, जितना सिनेमा में। साहित्य, कला, इतिहास, विज्ञान और सभी भाँति के चातुर्य की "Cinematograph" (चित्रण-कला) में परम आवश्यकता होती है। सिनेमा का विषय चुनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये एक विस्तृत परख की आवश्यकता होती है। कथानक ऐसे विस्तार के साथ लिखे होते हैं कि उन्हें सीमित करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यह लिखने की तो आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती कि सिनेमा, शिक्षा और ज्ञान के इतने बड़े प्रवर्तक होते हैं कि आधुनिक संसार उनका बहुत बड़ा कृतज्ञ है। इसकी भाषा विश्वभाषा है, और वास्तव में चूँकि यह शब्द-रहित है, इसलिये इसका अंतर-राष्ट्रीय मूल्य बढ़ जाता है। आशा है, आगे चलकर राजनीतिक और जाति-बंधन तोड़ने में भी समर्थ होगा, और इस प्रकार संसार को विश्व-बंधुत्व का पाठ पढ़ावेगा। यह बड़े-बड़े आवश्यक समाचारों को संसार-भर में फैलाने का साधन हो रहा है। सिनेमा एक ऐसी वस्तु है, जिस पर हमारे बड़े-बड़े नेताओं, विचारकों और सुधारवादियों को गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। अभी हम शिक्षा-साम्राज्य की सीमा पर ही हैं, अंदर नहीं घुसे। संभव कुछ ही वर्षों में हमारी आँखें खुलेंगी, और हम इस कला को अप्रतिहत गति से आगे बढ़ते हैं। खेद की बात है कि अभी तक हमने इस भारत से इस कला के लिये कुछ लाभ नहीं उठाया है। भारत की अनुपम सौंदर्य-युक्त दृश्यावलियाँ और इसकी अद्वितीय ऐतिहासिक सामग्री इस कला के लिये पर्याप्त सामग्री हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय कथाओं और अन्य अद्भुत पूर्वी सामग्रियाँ इस कार्य में बड़े रूप से सहायक हो सकती हैं। पुरानी वस्तुओं से जनता का पेट भर गया है। वह नित्य कुछ-न-कुछ नूतनता चाहता है। अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में लोग नित्य अपने ढंग के दैनिक जीवन के दृश्य देखते-देखते ऊब गए हैं। वे नित्य नए कथानक, नई रहन-सहन और भूषण, सिनेमा द्वारा, देखना चाहते हैं। अतः हमारे लिये यह एक अच्छा अवसर है कि हम इस क्षेत्र में कुछ और कुछ कर दिखावें। इसमें हमें आर्थिक लाभ तो होगा, साथ ही संसार की जो हमारे संबंध में भ्रांत धारणा है, उसे भी हम इसके द्वारा बहुत कुछ दूर कर सकेंगे। यदि हम आगे न बढ़े, तो अमेरिका आदि दूसरे देशों की कंपनियाँ तो स्वतः इस ताक में हैं ही। वे शीघ्र ही भारत में जमकर इस देश की घटनाओं के फ़िल्म, यहाँ के लोगों की सहायता से, यहीं के जल-वायु में तैयार करेंगी। केवल अमेरिका ही नहीं, अन्य देश भी इस सुयोग की राह देख रहे हैं, और यथासंभव अवसर पाते ही मनमाने रूप में यहाँ की घटनावलियों का अभिनय कराकर फ़िल्म तैयार करेंगे। और, तब हम इस योग्य नहीं रहेंगे कि अपने पूर्व-पुरुषों का वास्तविक आदर्श-चित्रण अपनी अभिरुचि के अनुसार कर सकें।

उपर्युक्त कला को भारतीय रूप देने में जिन महानुभावों ने सतत परिश्रम करके, देश-देशांतरों में जाकर, उसका ज्ञानार्जन किया है, तथा जो उसका वास्तविक रूप में भारत में प्रचार करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनमें श्रीजगजीतप्रसाद माथुर एम्० पी० पी० ए० भी एक हैं। आप दिल्ली के प्रतिष्ठित, उन्नत और शिक्षित माथुर-कायस्थ-वंशज हैं। सन् १९२५ में "Light of Asia" (भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित्र) का फ़िल्म तैयार करने के बाद उसे दिखाने तथा विक्रय आदि करने के लिये अन्य डायरेक्टरों के साथ माथुर महोदय भी जर्मनी गए थे। वहाँ जाकर आपने जिस दृढ़ता, धीरता और स्वावलंबन के साथ इस कला का अभ्यास किया, वह प्रत्येक भारतीय नवयुवक के लिये अनुकरणीय है। हम लोग ।), ॥) देकर सिनेमा देखने जाते और हास्य-मनोरंजन करके घर चले आते हैं। किंतु उन फ़िल्मों की तैयारी में कितना द्रव्य और परिश्रम ख़र्च करना पड़ता है, संसार के कितने बड़े-बड़े वैज्ञानिक इसके विकास की चेष्टा में संलग्न हैं—इसका किंचिन्मात्र भी विचार नहीं करते। माथुर महोदय के हृदय पर जिन मूल भावनाओं का प्रभाव पड़ा, उनमें भारतीय सौंदर्य और सभ्यता का पाश्चात्यों द्वारा दुर्दर्शन ही मुख्य था। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि योरप और अमेरिका के सिनेमा-गृहों में आए-दिन भारतीयों की कुरूपता और उनके जंगलीपन का नमूना दिखलाकर सभ्य संसार में उनके प्रति बुरी धारणाएँ उत्पन्न की जा रही हैं, तथा किस प्रकार सारा संसार उनके विचार-रोत्कर्ष, अध्यात्मवाद और सांसारिक सौंदर्य से अपरिचित है। इस विचार ने माथुर महोदय को इस कार्य के लिये इस प्रकार सन्नद्ध किया कि उन्होंने यह संकल्प ही कर लिया कि चाहे जो हो, भारत की एक National जातीय समिति स्थापित की जाय, जो भारतीय रहन-सहन, चाल-ढाल, वेष-भूषा और विचार-सौंदर्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-चित्रण द्वारा वास्तविक रूप में व्यक्त करके, उसे विदेशियों के मज़ाक़ की सामग्री न कर, एक International (सार्वभौम) वस्तु बनावे। इसके लिये उन्होंने "जगजीत-फ़िल्म-कंपनी" स्थापित करके भारत की राजधानी दिल्ली में कार्य आरंभ कर दिया है। भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र "Light of Asia" पहला भारतीय Production था, जिसमें योरप और अमेरिका ने भारतीय सौंदर्य का दर्शन किया। इस कृति का न केवल योरप की जनता ने हृदय से स्वागत किया, वरन् बड़े-बड़े लार्डों—यहाँ तक कि श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज और श्रीमती साम्राज्ञी मेरी तक—ने देखकर इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। जिस समय माथुर महोदय भगवान् बुद्ध के फ़िल्म-निर्माण में लगे थे, उसी समय से उनके हृदय में यह विचार दृढ़ हो गया कि भारत की प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण घटनाओं और महापुरुषों की जीवनियों को, उसके आदर्श के रूप में चित्रित करने पर, न केवल विदेशियों का हमारे संबंध में भ्रम दूर हो जायगा, वरन् हम लोगों को भी, जिन्होंने सिनेमा में अभी तक विदेशी रूप-रंग और हाव-भाव का ही दर्शन किया है, अपने पूर्वजों पर वास्तविक गर्व होगा। और, हम चोरी, डकैती और आशिक़-माशूकों की अदाओं से भरे हुए गंदे चित्रों के देखने से बाज़ आएँगे। भारत आते ही उन्होंने अपने विचार को कार्य के रूप में परिणत करना, भारतीय घटनाओं का फ़िल्म Acting (अभिनय) द्वारा तथा Original मौलिक रूप में तैयार करना आरंभ कर दिया है। इ[illegible] लिये उन्हें अथक परिश्रम और विपुल धन-राशि [illegible] व्यय तो करना ही पड़ता है, साथ ही भारत में [illegible] कला के अभाव से उन्हें इसकी तैयारी में ऐक्टरों [illegible] साहित्यिक मतदाताओं का अभाव भी एक बड़ी [illegible] कठिनाई का कारण हो रहा है। इतने दिनों तक वि[illegible] में रहने पर भी माथुर साहब का हृदय पूर्णरूप[illegible] भारतीय है। वह बड़े ही सरल, मृदुभाषी, मिलन[illegible] और भारतीय सभ्यताभिमानी हैं। वह किसी से आ[illegible] सहायता नहीं चाहते—चाहते हैं केवल साहित्यिक पु[illegible] की सहानुभूति। उन्होंने भारत के आधुनिक सा[illegible] का अच्छा अध्ययन किया है, और उपन्यास-स[illegible] श्रीप्रेमचंदजी के "रंगभूमि" की घटना पर मुग्ध हैं, [illegible] उसे फ़िल्म के रूप में जनता के सम्मुख लाने का वि[illegible] कर रहे हैं। श्रीप्रेमचंदजी की अन्य रचनाओं [illegible] हास्यरस-विशारद श्री जी० पी० श्रीवास्तव की र[illegible] का भी वह अध्ययन कर रहे हैं, वह और इन दोनों ले[illegible] की रचनाओं को वर्तमान भारत की छिपी हुई जान [illegible] हैं। वह चाहते हैं कि इस कोटि के बड़े-बड़े लेखक [illegible] सिनेमा में रुचि और उसके विषय में कुछ ज्ञान [illegible] वाले सज्जन उन्हें इस कार्य में समुचित सहायता दें, [illegible] भारत के वास्तविक आदर्श के चित्रण के पुण्य-का[illegible] अपनी विद्या-बुद्धि द्वारा सहायक बनें।

देवीप्रसाद [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. कहानी की कहानी

कहानियों का आरंभ बड़े प्राचीन समय में हुआ था। वैदिक-साहित्य में अनेक शिक्षाप्रद कथानक वर्णित हैं। उपनिषद् * में ऐसी कथाएँ हैं, जिनमें श्रोत्र आदिक इंद्रियों का परस्पर संवाद है। साधारण जनता के हितार्थ इंद्रियों में पुरुषवत् कर्तृत्व का आरोपण किया गया है। आजकल छोटी-छोटी किताबों में जो आँख-कान का पेट के साथ झगड़ा दिखाया गया है, उसका मूल वैदिक-साहित्य में है।

बौद्ध-साहित्य में जानवरों की कहानियों का बहुत प्रचार था। इस प्रकार की कहानियाँ ईसा से ३८० वर्ष पूर्व वैशाली की बौद्ध-सभा में थीं। चीन के दो विश्व-कोषों में अनेक भारतीय कथाओं का समावेश है। उनमें लिखा है कि उन कहानियों का मसाला २०२ बौद्ध-ग्रंथों से एकत्रित किया गया है। संस्कृत का पंचतंत्र बौद्ध-कथाओं का रूपांतर प्रतीत होता है। इसका असली नाम क्या था, यह नहीं मालूम। संभव है, उसमें वर्णित दो शृगालों के नाम पर "करटक-दमनक" नाम रहा हो। सैसेनिया के राजा ख़ुसरो अनुशीरवाँ (अनुशीरवान्?) की आज्ञा से फ़ारस के बर्जोई-नामक एक वैद्य ने पहलवी-भाषा में इस कथा-संग्रह का अनुवाद किया था।

सिरिया में इसका अनुवाद ५७० ई० में किया गया, और नाम रक्खा गया "कलिलग-दमनग"। यह नाम "करटक-दमनक" का ही रूपांतर है। इस अनुवाद की हस्त-लिखित प्रति १८७० ई० में पाई गई, और १८७६ में छापी गई।

पहलवी के कथा-संग्रह का अनुवाद, ईसा की आठवीं शताब्दी में, अरबी-भाषा में किया गया, जिसका नाम रक्खा गया "कलिलाह-दिमनाह"।

अरबी से इन कथाओं के अनेक अनुवाद हुए। जैसे—

सिरिया में, १००० ई० में,

पर्शियन में, ११३० ई० में,

---

* उदाहरणार्थ—

"ते ह वाच मृचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायत्"। इत्यादि।

(बृहदारण्यक-उपनिषद्, अ० १, ब्रा० १, मं० २)

अर्थात् उन्होंने वाणी से कहा—"गान करो"। यह सुनकर वाणी ने गान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीक में, ११८० ई० में,

हेब्रू में, १२५० ई० में।

हेब्रू से, जौन आफ़् कौप्युआ ने, लैटिन में, १२७० ई० में अनुवाद किया।

लैटिन से, ड्यूक ऐवरहार्ड ने, जर्मन में उल्था किया, जो पहली बार १४९१ ई० में छपा।

जर्मन से, १५५२ ई० में, इटली में अनुवाद हुआ।

इटली से, १५७० ई० में, सर टॉमस नॉर्थ ने, अँगरेज़ी-भाषा में अनुवाद किया।

एक फ़्रेंच-लेखक ने, १६७८ ई० में प्रकाशित अपनी कथाओं के द्वितीय संस्करण में, स्वीकार किया है कि मेरी कथाओं की बहुत-सी सामग्री भारत से ली गई है।

इस प्रकार अनेक भाषाओं में परिवर्तित होने से कथांश भी बदल जाते हैं। फ़्रेंच में एक ग्वालिन की कथा ऐसी है कि उसकी भावी उन्नति के विचारों की प्रसन्नता में सिर हिलने से उसके सिर पर रक्खी हुई दूध की मटकी गिर गई। यह कथा पंचतंत्र के उस ब्राह्मण की कथा की नक़ल है, जिसने भिक्षा में मिले हुए सत्तुओं द्वारा अपने भविष्य-सुख की कल्पनाओं में सत्तुओं के पात्र को नष्ट कर दिया।

इसी तरह पंचतंत्र में एक शृगाल की कथा है, जिसने अनेक भक्ष्य पदार्थ प्राप्त होने पर भी, प्रत्यंचा को खाने की चेष्टा में धनुष से आहत होकर प्राणोत्सर्ग किया। यही कथा फ़्रेंच में कुछ परिवर्तित रूप में है। गीदड़ की जगह भेड़िया होता है, और मृत्यु होती है धनुष के छूने से छुटे हुए बाण द्वारा।

ख़लीफ़ा अल्मंसूर (७५३—७७४ ई०) के दरबार में 'जौन आफ़् डैमेस्कस्' नाम से प्रसिद्ध एक ईसाई रहता था, जिसने ईसाई-धर्म पर 'बरलाम ऐंड जौज़ेफ़ट'-नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का कई पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद हुआ। इसमें अनेकों कथानक हैं, जिनका मूल भारतीय कथाएँ हैं। पुस्तक के नायक जौज़ेफ़ट बुद्धजी ही हैं। 'जौज़ेफ़ैट', 'बोधिसत्व' का तथा 'बरलाम' 'बलराम' का अपभ्रंश हैं। इसके पीछे जौज़ेफ़ट ग्रीस और रोम में एक संत माने जाने लगे। धार्मिक इतिहास में यह आश्चर्य का विषय है कि ईश्वरवाद से उदासीन बुद्धजी ईसाई-मत के संत हो गए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत ही संसार का 'कहानी कहनेवाला' गुरु है *।

कृष्णदत्त भारद्वाज

× × ×

२. सुहृद-संदेश

(१)

बुझ न जाय जीवन-प्रदीप,
झंझानिल के झोंके खाकर;
चिटख न जाए शीशे-सा
दिल कहीं विषम ज्वाला पाकर

(२)

गिनते-गिनते प्रणयावधि के,
कर पर दिन जो थक जाते हैं—
तो युगल नेत्र तारे गिनते
या अविरल अश्रु बहाते हैं

(३)

नयनों से मोती झड़ते ही,
पत्थर क्यों व्यर्थ पिघलते हैं?
जब जीवन-धन करुणाकर हों
न दयालु हृदय से मिलते हैं

(४)

यदि मुझे शलभ बन था जलना,
तो तुम प्रदीप क्यों बन करके;
मेरे जलने से पहले ही
हँस पड़े अहा! क्यों जल करके

(५)

यदि करना था कुसुमित, तो क्यों
मम हृदय-वाटिका के भीतर,
यह विरह-वह्नि सुलगाई है
मृदु आश-लता आरोपित कर

* मैक्डॉनल के आधार पर।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

है छेड़ तुम्हारी कब अच्छी,
जो हृदय विपंची छेड़ चले ;
पर क्या इन बिखरे तारों से
हो सुन सकते सुर-ताल भले ?

(७)

लख करके नाथ हँसेंगे सब,
तेरे कौतुक-व्यापारों को ;
समुचित है इससे तुम बदलो
अपने को, या निज प्यारों को।

(८)

माना मैंने, तुम मिटा नहीं,
सकते विधि-वक्र विकारी को ;
पर क्या ठुकराना समुचित है,
प्रभुवर! निज द्वार-भिखारी को ?

श्रीनाथ मिश्र "द्विरेफ"

× × ×

३. कला का अर्थ

मनुष्य अपने प्राचुर्य के प्रभाव के कारण ही अपने को अभिव्यक्त करता है। अपने लिये जो कुछ आवश्यक है, मनुष्य की आत्मा उतने से ही तृप्त नहीं होती। ब्रह्म, सृष्टि-मात्र में अपने को अभिव्यक्त करके ही आनंद प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि यह समग्र सृष्टि उनके प्राचुर्य को प्रकट करती है। मनुष्य भी उसी प्रकार सृष्टि से ही आनंद का उपयोग करता है। यह सृष्टि उसके आतिशय्य तथा अमितव्ययिता का प्रभाव है—उसके कार्पण्य का नहीं, और न दैन्य का। मनुष्य अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करना चाहता है; क्योंकि उस मिलन में अपूर्व स्वाधीनता का आनंद है, और वह उसी स्वाधीनता के आनंद की खोज कर रहा है। कला मनुष्य-जीवन के एक उसी विशेषत्व को अभिव्यक्त करती है। कला साधना है। वह स्वयमेव फल-रूपा है। इस साधना के भीतर ही सिद्धि का आनंद निहित है।

इस जगत् का उद्भव कहाँ से है? हमारे उपनिषदों में इस संबंध में दो परस्पर विरोधी उक्तियाँ हैं। उपनिषद् के एक स्थान में कहा गया है—"आनन्दो भव खल्विमानि भूतानि जायन्ते; आनन्देन यातानि जीवन्ति।"

आनंद से ही इस जगत् का उद्भव हुआ है। इसके अतिरिक्त एक स्थल पर कहा गया है—"ब्रह्म तपस्या में लीन थे। इस तपस्या से जो ताप निकला, उसके प्रभाव से ही उन्होंने इस विश्व की सृष्टि की।" स्वाधीनता का आनंद तथा तपस्या का संयम, ये सृष्टि के भीतर ब्रह्मात्मा के विकास के मूल में दो सत्य हैं। यह जगत्, कला ही के समान, उस परम-पुरुष की लीला अथवा क्रीड़ा है—उन्हीं का विकास-मात्र है।

आप कह सकते हैं कि यह माया है, अतएव उस पर अविश्वास भी किया जा सकता है; परंतु मायावी की उससे कुछ हानि नहीं होगी। कला माया ही सही; कारण, इसके सिवा उसकी कोई व्याख्या ही नहीं हो सकती। मानव-जीवन उसकी स्वाधीनता के मार्ग का अवलंबन है। स्वाधीनता ही मनुष्य की वृत्ति है—उसकी उपजीविका है। मृत्यु के आश्रित होकर उसने इस उपजीविका को नूतन रूप में पाया है। जीवन के निदारुण दुःखादि साधारणतः देखने से कभी सुंदर नहीं कहे जा सकते। परंतु कला के द्वारा जब वे फूट पड़ते हैं, तब वे वास्तव में हमें आनंददायक होते हैं। इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि जो वस्तु हमारे मन के ऊपर अपनी सत्ता को प्रतिष्ठित कर सकती है, वही सुंदर है। संस्कृत-भाषा में उसको मनोहर कहते हैं। ज्ञाता एवं ज्ञेय इन दोनों के मध्य में हमारा मन है।

इस विश्व में अनंत विषय हैं, परंतु उनमें से कुछ ही हमारी दृष्टि में पड़ते हैं। हमारे समीप तत्त्व-वस्तु आकार धारण करती है। अपरोक्ष-ज्ञान द्वारा वही वस्तु आमत्त होती है, जो हमारे मन में सृष्टि के आनंद को जाग्रत् करने में समर्थ होती है। कला की सृष्टि—हमारे जीवन में जितनी वस्तुएँ सत्य ही उठती हैं, सुंदर ही उठती हैं—उन्हीं की भावमय अभिव्यक्ति है। कला फ़ोटो के उस केमरा की भाँति नहीं है, जो केवल प्रकाश और छाया के चित्र को ही चित्रित करता है। विज्ञान किसी का पक्ष नहीं लेगा। वह तो अपरिसीम आग्रह के साथ सत्य को ही ग्रहण करता है—उसे चुनाव करना पसंद नहीं। परंतु शिल्पी तो चुनाव ही करता है। ऐसे अवसर पर उसकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समय मुझसे यह प्रश्न पूछा गया था कि मैं संगीत को कला में कौन स्थान प्रदान कर सकता हूँ। विज्ञान में गणित का जो स्थान है, कला में संगीत का वही स्थान है। यहाँ संपूर्ण वस्तु निरपेक्ष है। अभिव्यक्ति का जो कुछ सार-तत्त्व है, वही संगीत है। संगीत की झंकार मुक्त है—अबाध है। वस्तु-विचार का बंधन अथवा चिंता का बंधन उसे नहीं बाँध सकता। संगीत हम लोगों को प्रत्येक वस्तु की आत्मा के समीप ले जाता है। सृष्टि के मूल में जो आनंद-धारा है, वह आनंद के स्पर्श से हम लोगों को विभोर कर देता है। कई शताब्दी पहले हमारे देश में एक ऐसा दिन आया था, जब मनुष्य की आत्मा में भगवत्प्रेम का चिरंतन लीला-नाट्य, भगवदुपलब्धि की आत्यंतिक आनंद-धारा को चतुर्दिक् विकीर्ण करके, सजीव रूप में अभिव्यक्त हुआ था।

समग्र जाति के अंतस्तल में उस दिन भाव का एक आवर्त आलोड़ित हो उठा था। भारतवर्ष में उसी भावावर्त से देश के कीर्तन-गान की रचना हुई थी। हमारी जाति के इतिहास में कितने ही ऐसे स्थल मिलेंगे, जहाँ हमारे दैनिक जीवन की तुच्छता में जो वस्तु प्रतिष्ठित है, वह किसी एक वस्तु की अनुभूति से समग्र जाति के अंतस्तल को आलोकित कर चुकी है।

वह दिन एक ऐसा ही दिन था, जिस दिन महात्मा बुद्ध की वाणी भौतिक एवं नैतिक बाधाओं की उपेक्षा करके भारत के उपकूलों से दूर देशों तक पहुँची थी। मानव-जीवन में उस महती अभिज्ञता के संपद् को चिरंतन करने के लिये मनुष्य उस दिन असंभव को संभव करने के लिये प्रवृत्त हुआ था। उसने पर्वत से अपनी वाणी सुनाई थी। शिलाओं पर अंकित करके उसने अपना गीत गाया था; गुहाओं को विपुल आनंद की ध्वनि स्मरण रखने के लिये बाध्य किया था। पर्वत, मरुभूमि, ऊसर, निर्जन प्रदेशों तथा जनाकीर्ण नगरियों में मनुष्य की आशा ने अमर मूर्ति का परिग्रह किया था। सृष्टि की उस विपुल प्रचेष्टा ने अपने मार्ग के बाधा-विघ्नों से मुँह नहीं मोड़ा। समस्त बाधा-विघ्नों को पद-दलित करके उसने अपने उद्देश्य को सिद्ध किया था—भाव को मूर्तिमान् किया था। प्राच्य महादेश के अनेक स्थानों में इसी एक शक्ति की क्रीड़ा देखी गई थी। कला किसे कहते हैं, इस प्रश्न का उत्तर उसी क्रीड़ा से प्राप्त होता है। जो सत् है, जो सुंदर है, उसकी पुकार में मानव-सृष्टि पर आत्मा का जो उत्तर है, उसे ही कला कहते हैं।

गांधार-देश में बुद्ध की जो प्रस्तर-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें हम ग्रीक-शिल्प का प्रभाव देखते हैं। वे मूर्तियाँ कल्पना में एनाटमिर वैज्ञानिक की दृष्टि पर रची गई हैं; परंतु समग्र भारतीय शिल्प ने, बुद्ध की आत्मा को अभिव्यक्त करने के लिये, उनके अंतस्तल के भाव की योजना के ऊपर ही विशेष महत्त्व दिया है।

विख्यात योरपीय स्थापत्यविद् रोडिन की शिल्प-रचना में हम क्या देखते हैं? अपूर्णता के बंधन से मुक्त होने के लिये अपूर्ण का संग्राम ही हमें दृष्टिगोचर होता है। प्राच्य कलाविद् स्वभावतः अंतर्दृष्टि-परायण होते हैं। पूर्णता से ही उनकी प्रेरणा उत्पन्न हुई है। भारतवर्ष के शिल्पीगण दूसरों से जो कुछ उपलब्ध करते हैं, उसके होते हुए भी वे अपनी इस विशिष्टता को नष्ट नहीं होने देते।

जो लोग प्रतिभा-संपन्न हुए हैं, उनका एक विशिष्ट लक्ष्य दूसरों से उधार लेने की एक असाधारण क्षमता है। उधार लेते समय उन्होंने संसार की सभ्यता को जो अपरिमित संपद्-ऋण दिया है, वह बात तक उन्हें ज्ञात नहीं है। योरपीय विचार तथा योरपीय साहित्य की धारा ने आदर के साथ हमारे साहित्य में जो स्थान पाया है, वह साहित्य की दृष्टि से आनंद का ही विषय है। योरपीय साहित्य की विचार-धारा में, हमारे संस्पर्श में आते ही, कई परिवर्तन हुए हैं; परंतु हमारी भारतीय आत्मा उस विपर्यय के होते हुए भी प्रबल प्रभाव से अपने को सुरक्षित रख सकी है।

इस विश्व-सृष्टि के भीतर विश्वेश्वर वास करते हैं। मनुष्य को अपनी पारिपार्श्विक अवस्था तथा अपने वास-स्थान को इस भाँति तैयार करना चाहिए कि वह उसकी आत्मा के अनुकूल हो सके। जो शिल्पी हैं, उन्हें आज यह घोषित करना चाहिए कि हम अमरत्व में विश्वास करते हैं। उन्हें आज यह घोषणा करना चाहिए कि हम आदर्श में विश्वास करते हैं। एक आदर्श ही इस निखिल विश्व के ऊपर स्निग्ध छाया का विस्तार कर रहा है। वह आदर्श समस्त पृथ्वी को स्निग्ध-धारा से सिंचित कर रहा है। वह स्वर्गिक आदर्श कल्पना का विषय नहीं है। वह परम सत्य है—उसी में इस विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. प्रकीर्ण पद्य

(१)

मुझे बहादुरगंज, प्रयाग के बा० देवीप्रसादजी ऐडवोकेट के द्वारा उनके मित्र, उर्दू-फ़ारसी के सुकवि "माजिद" साहब इलाहाबादी का निम्न-लिखित शेर उनके एक निमंत्रण-पत्र में मिला—

जे राहेदोस्ती हरकस कि बे-मिन्नत क़दम सायद ;
ब-हर-गामे कि बरदारद अज़ो पाए ज़ मा चश्मे ।

इसके भाव-वैचित्र्य पर मुग्ध होकर मेरे मित्र ने इसका हिंदी-अनुवाद अपने कनिष्ठ भ्राता के वैवाहिक निमंत्रण-पत्र में देने का विचार करके, उसके लिये मुझसे आग्रह किया। मुझसे जैसा कुछ अनुवाद हो सका, वह निम्न-लिखित सोरठा से विदित होगा—

नेह-नात उर धारि, बिनु बिनती जे आवहीं ;
तुरत बिछाउँ उघारि, तासु चरन-मग निज-नयन ।

दोनों की तुलना से पाठक कह सकेंगे कि फ़ारसी से हिंदी में जो अर्थ का यत्किंचित् वैसा दृश्य है, उसका भाव की शोभा पर क्या प्रभाव पड़ा है ।

(२)

एक लेख के संबंध में मुझे भर्तृहरि के—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥ २ ॥

(वैराग्य-शतक)

इस श्लोक का हिंदी-पद्यानुवाद देने की आवश्यकता हुई । "ज्ञानसागर"-यंत्रालय, बंबई से प्रकाशित भर्तृहरिशतक के पृ० १११ पर महाराज श्रीप्रतापसिंहजू की यह कुंडलिया मिली—

पंडित मत्सरता भरे, भूप भरे अभिमान ;
और जीव या जगत के, मूरख महा अजान ।
मूरख महा अजान, देख के संकट सहिए ;
छंद प्रबंध कवित्त, काव्य-रस कासों कहिए ।
वृद्ध भई मन माहिं मधुर वाणी गुण-मंडित ;
अपने मन को मार मौन धरि बैठत पंडित ।

इससे मेरा संतोष न हुआ ; क्योंकि इसमें बहुत विस्तार हो गया है । अतः मैंने स्वयं प्रयत्न किया । मुझसे जैसा दोहा बन सका, वह यह है—

मत्सर-मरित सुबोध जन, नृपति दबे मद-भार ;
अज्ञ अन्य जन, लखि, मनहिं, वृथा गल्यो सुविचार ।

(३)

उसी संबंध में मुझे महाकवि भवभूति के—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ;
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।

(मालती-माधव १।६)

इस पद्य का भी हिंदी-छंदोबद्ध अनुवाद देना था । मुझे स्वर्गीय श्रीसत्यनारायण कविरत्न के अनुवाद का बड़ा भरोसा था, परंतु उस समय खोजने से वह तो न मिला ; हाँ, श्रद्धेय लाला सीतारामजी का अनुवाद अवश्य मिल गया, जो इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसैं ग्रंथ यह देखि जे, ते समुझैं मन माहिं ;
ऐसे जन के हेत यह, जतन किंयो हम नाहिं।
जनिहैं जो हँहैं कबहुँ, गुन के जाँचनहार ;
अवधि नहीं कछु काल की, बहुत बड़ो संसार।

परंतु मेरा प्रयोजन इससे सिद्ध नहीं होता था ; क्योंकि न तो मेरे लेख के संबंध में ही 'ग्रंथ' और 'हँसने' की चर्चा प्रासंगिक थी, और न मूल संस्कृत में ही ये शब्द । और, फिर संक्षेप भी इष्ट था। अतः मैंने यथेष्ट भावानुवाद-स्वरूप यह दोहा लिखा—

"जे न सराहहिं मम जतन, अस सुधियन यह दूरि ;
मम सम-गुन कोउ होइ है, काल अमित छिति भूरि।"

इसके प्रथम पाद को मैंने "जे कोउ निंदरइँ मम जतन" ऐसा प्रथम रक्खा था, परंतु पश्चात्—यद्यपि 'ज्ञानिन' का लक्ष्यार्थ 'अज्ञानी' तो 'निंदरइँ' के साथ ठीक बैठ जाता है, तथापि वाच्यार्थरूप 'आत्म-ज्ञानियों' की अद्वैतनिष्ठा के कारण इस विषय से 'उदासीनता' ही अधिक उचित होगी, न कि 'अनादर' या 'निंदा'—इस विचार से 'न सराहहिं' इस निषेधात्मक क्रिया का प्रयोग करके प्रथम पाद का वर्तमान स्वरूप ही रखना उचित समझा।

लेख भेज देने के पश्चात् मुझे सत्यनारायणजी का अनुवाद भी मिला, जो यह है—

निंदरत करि उपहास जे, लखि यह रचना-साज ;
समझि लेइँ ते जतन यह, नहिं किंचित तिन काज।
उपजै मति कोऊ सुहृद, मो गुन परखनहार ;
है यह समय अगाध बहु, औ अपार संसार।

इसमें भी मुझे वैसी ही आपत्ति है, जैसी लालाजी के अनुवाद में ; क्योंकि इसमें भी 'उपहास' और 'रचना-साज' की चर्चा है, जो मेरे-जैसे सामान्य विषय में अभीष्ट नहीं। एक न्यूनता यह भी है कि मूल के "जानन्ति किम्—अपि" इन शब्दों में जो (१) सरल तथा (२) सोल्लुंठ अभिप्रायवाला उभयार्थ है, जो लालाजी के 'ते समुझैं मन माहिं' में भी आ जाता है, उससे कवि-रत्नजी का अनुवाद बहुत दूर चला गया है ; क्योंकि उन्होंने "जानन्तु ते" इस पाठ का अवलंबन लेकर 'समझि लेइँ ते' ऐसा अनुवाद किया है। फिर उनके द्वितीय दोहे के प्रथम पाद में 'मति' शब्द का औचित्य भी मेरी बुद्धि में नहीं आया।

मेरे अनुवाद में कोई अनावश्यक शब्द भी नहीं आने पाए हैं, जैसे अन्य अनुवादों में हैं। अतः मैं अपने पद्यों को औरों से कुछ अच्छा समझता हूँ। इनके गुण-दोष का विचार पाठक ही करें; क्योंकि मैंने हिंदी में सर्व-प्रथम यही तीन पद्य लिखे हैं।

र० मि० शास्त्री

× × ×

२. वकील

दयनीय दशा होती जा रही वकीलों की है,
सारा मान गया, हुआ भारी अपमान है।
न्याय के सहायकों का भाग्य-निरणै है आज,
हाथ में दलालों के रही न आन-बान है।
ताकते हैं मुँह सदा घर-बैठी नारि-सम,
बनें या निखट्टू नर-सदृश निदान हैं;
इस वृंद का जहाज़ भँवर में डूब रहा,
रक्षक न कोई फिरा काल बलवान् है।
कोई कठपुतली दलालों के करों की बनें,
सात-आठ आने तक हक़ बाँट खाते हैं;
कोई अति ओछी फ़ीस लेके मज़दूरी करें,
करते वकालत न समय बिताते हैं।
कोई अति शान बना, फ़ैशन की बाढ़ चढ़ा,
धोखा दे मुअक्किलों को रक़म कमाते हैं;
ऐसा जो न करते, न पूछता उन्हें है कोई,
भगवान ! आप भी उन्हें ही हा सताते हैं।
किसी मजिस्ट्रेट की स्वकीया बनें कोई एक,
नाचते उसी के बल धन भी कमाते हैं।
परकीया सैकड़ों की बनें हुए कोई दीन,
चापलूसी करने में कला दरशाते हैं।
कोई किसी सीनियर का ही ले सहारा नेक,
नैया किसी भाँति खेके पार पहुँचाते हैं;
जिनका सहायक न कोई जग-बीच नाथ !
आस आपकी ले डूबते व उतराते हैं।

केशवराम गुप्त 'वज्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. शिवराज-भूषण की इतिहास अनुकूलता

क

महाकवि भूषण ने महाराज शिवाजी के लिये, उन्हीं के आश्रय में 'शिवराज-भूषण'-नामक एक उत्कृष्ट ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथ में अलंकारों का वर्णन है। ग्रंथ की विशेषता इस बात में है कि कवि ने प्रत्येक अलंकार को समझाने के लिये जो उदाहरण दिए हैं, उनमें महाराज शिवाजी की प्रशंसा अथवा स्तुति है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता यदुनाथ सरकार का कहना है कि भूषण की इस प्रकार की कविता में तत्कालीन हिंदू-जनता के भावों का सुंदर चित्रण हुआ है। सरकार महोदय भी विना किसी प्रकार के संकोच के भूषण को शिवाजी का राजकवि मानते हैं। मराठी-भाषा में शिवाजी महाराज से संबंध रखनेवाले अनेक बखर-ग्रंथ हैं। इनमें ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। एक बखर में भूषण कवि का भी हाल है। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि शिवाजी महाराज भूषण कवि की कविता सुनकर अपना मनोरंजन किया करते थे। प्रसिद्ध मराठा इतिहास-लेखक राजवाड़े महोदय भी भूषण कवि को शिवाजी का आश्रित कवि मानते हैं। भूषण और शिवाजी का समय भी प्रायः एक ही है। भूषणजी को जिन हृदयरामजी ने कवि की पदवी दी थी, वे विक्रम-संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मौजूद थे। 'तज़किरा सर्व आज़ाद'-नामक फ़ारसी-भाषा के इतिहास-ग्रंथ में भी भूषण और शिवाजी के आश्रित और आश्रयदाता होने का उल्लेख है। बूँदी-दरबार के आनुवंशिक कवि लोकनाथ ने (जो भूषणजी के समसामयिक भी थे) भूषण का शिवाजी के द्वारा पुरस्कृत होना लिखा है। उसी दरबार के दूसरे चारण कवि सूर्यमल्ल ने 'वंश-भास्कर'-नामक वृहत् ग्रंथ में भूषण और शिवाजी का उपर्युक्त संबंध स्वीकार किया है। हिंदी की अन्य कई पुस्तकों में भी भूषणजी शिवाजी के आश्रित कवि माने गए हैं। स्वयं भूषणजी ने 'शिवराज-भूषण' में यह बात लिखी है कि मैं शिवाजी महाराज के यहाँ गया। इनकी कविता में वर्तमानकालिक-क्रियाओं का प्रयोग भी जिस ढंग से हुआ है, उससे भी यही निश्चित जान पड़ता है कि उन्होंने उक्त रचनाएँ शिवाजी के आश्रय में ही की हैं। 'शिवराज-भूषण' में उक्त ग्रंथ का निर्माण-संवत् १७३० दिया है। इससे भी उपर्युक्त मत पुष्ट होता है। इस प्रकार के अनेक अंतरंग और बहिरंग प्रमाणों के होते हुए भी एकाध व्यक्ति को यह शंका उत्पन्न हुई है कि भूषणजी ने 'शिवराज-भूषण'-ग्रंथ महाराज शिवाजी के आश्रय में न बनाकर उनके पौत्र महाराज साहूजी के आश्रय में बनाया है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका का एक कारण यह बतलाया गया था कि महाराज शिवाजी के समय में तो भूषणजी अपने इस उपनाम से कविता ही न करते थे। हम अपने एक पिछले नोट में यह दिखला आए हैं कि एतादृशी शंका का यह कारण ठीक नहीं है, क्योंकि हृदयरामजी सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मौजूद थे। शंका का दूसरा कारण यह बतलाया जाता है कि 'शिवराज-भूषण' में प्राप्त अनेक छंदों में जिन घटनाओं का निर्देश है, वे संवत् १७३० के बाद की हैं। इस नोट में इसी कारण पर विचार किया जायगा।

'शिवराज-भूषण'-ग्रंथ में निर्माण-संवत् अंकों में नहीं दिया गया है, बरन् शब्दों में है। 'सत्रह सै तीस' मूल पाठ है। अधिकांश विद्वान् इसे संवत् १७३० मानते हैं। पर कुछ लोग इसे १७३७ बतलाते हैं। 'सै' को वे लोग अलग न रखकर तीस से मिलाकर 'सैतीस' पढ़ते हैं। उनका कहना है कि लेखकों के प्रमाद से 'सै', 'तीस' से भिन्न लिख गया है, और उसके ऊपर के बिंदु का लोप हो गया है। ऐसा होना संभव है, पर हम 'शिवराज-भूषण' का निर्माण-काल-संवत् १७३० ही मानते हैं। पूज्यपाद मिश्रबंधुओं से हम इस बात में पूर्णतया सहमत हैं कि यदि 'शिवराज-भूषण' में हमको दस-पाँच ऐसे छंद भी मिलते, जिनमें ग्रंथ-निर्माण-संवत् के बाद की घटनाएँ होतीं, तो भी हम उक्त ग्रंथ को संवत् १७७० के लगभग का बना न मानते; क्योंकि जब भूषणजी संवत् १७३० के बाद भी जीवित रहे और कविता भी करते रहे, तो उनके लिये यह असंभव न था कि बाद को अपने ग्रंथ में नवनिर्मित छंदों का भी समावेश करते। 'शिवराज-भूषण' कोई रजिस्ट्रीशुदा दस्तावेज़ न था कि स्वयं रचयिता को, बाद को, उसमें परिवर्तन का अधिकार न रहता। आज भी समय-समय पर लेखकगण अपने ग्रंथों में मनमाने परिवर्तन किया करते हैं। पर इस तर्कावली का आश्रय लेने की हमको आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत 'शिवराज-भूषण' में वस्तुतः संवत् १७३० के बाद की किसी घटना का समावेश है ही नहीं। पूज्यपाद मिश्रबंधु इस विषय में अपने विचार विस्तार के साथ प्रकट कर चुके हैं। हमने भी थोड़ा-बहुत इस संबंध में अन्यत्र विचार किया है। इस नोट द्वारा इसी विषय की कुछ बातों पर आज फिर प्रकाश डाला जाता है।

बहलोलखाँ और याकूतखाँ

बहलोलख़ाँ के बंदी होने और उनकी पराजय का हाल भूषण ने अपने कई छंदों में दिया है। सलहेर के भीषण युद्ध में बहलोलख़ाँ पकड़ लिया गया था, ऐसा भूषणजी ने लिखा है। सभासद बखर में भी बहलोल के पकड़े जाने का उल्लेख है। इस बखर का जो अँगरेज़ी-अनुवाद कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित हुआ है, उसमें १०५ पृष्ठ पर सलहेर-युद्ध के संबंध में स्पष्ट लिखा है—

"*Bahlol Khan* and the Nawab and Wazirs who had been taken prisoners were dismissed with horses and robes."

अर्थात् बहलोलख़ाँ तथा नवाब एवं वज़ीर लोग, जो बंदी कर लिए गए थे, वे सब घोड़े और वस्त्र देकर छोड़ दिए गए। बहलोलख़ाँ मोग़लों का सैनिक था और दक्खिन में लड़ने के लिये नियुक्त था, यह बात भी बखर में है। लाल कवि ने अपने 'छत्र-प्रकाश'-ग्रंथ में बहलोल और छत्रसाल की लड़ाई का विशद वर्णन किया है। स्वर्गवासी मुंशी देवीप्रसादजी द्वारा संपादित 'औरंगज़ेबनामा' में स्पष्ट लिखा है कि प्रसिद्ध बीजापुरी सरदार का वंशज बहलोलख़ाँ मोग़ल-दरबार में नौकरी के लिये उपस्थित हुआ। औरंगज़ेब ने उसे नौकर रख लिया, और 'इख़लासख़ाँ' की उपाधि से विभूषित किया। इससे स्पष्ट है कि बहलोलख़ाँ को मोग़ल-दरबार से 'इख़लासख़ाँ' की उपाधि मिली थी। श्रीयदुनाथ सरकार ने भी सलहेर की लड़ाई में इख़लासख़ाँ के पकड़ लिए जाने की बात साफ़-साफ़ लिखी है। बात यह है कि बीजापुर में पठान-शाखा का एक मियाना सरदार था। उक्त दरबार से इस सरदार को बहलोलख़ाँ की उपाधि मिली थी। समय पाकर यह उपाधि वंश-परंपरा-गत हो गई थी। इस घराने के अबूमुहम्मद, अब्दुलबारी तथा अब्दुलकरीम नाम के सभी प्रसिद्ध मियाना सरदार 'बहलोलख़ाँ' कहलाते थे। श्री सुरेंद्रनाथ सेन एम्० ए० ने 'शिवा-छत्रपति' की जीवनी में एतादृश बहलोलख़ाँ उपाधि का उल्लेख अपने एक नोट में किया है। श्रीयदुनाथ सरकार ने अपने 'शिवाजी' नामक इतिहास-ग्रंथ के पृष्ठ २०६ पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'इख़लासख़ाँ मियाना' बीजापुर के प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार अब्दुलक़ादिर बहलोलख़ाँ का लड़का था। इसी अब्दुलक़ादिर का दूसरा लड़का अब्दुलकरीम था। वह भी बहलोलख़ाँ कहलाता था, और बीजापुर की ओर से शिवाजी से लड़ा था। इख़लासख़ाँ इसी अब्दुलकरीम का बड़ा भाई था। मोग़ल-दरबार से उसको 'इख़लासख़ाँ' की उपाधि मिली थी, एवं बीजापुर-दरबार से वंश-परंपरा-गत उसकी उपाधि बहलोलख़ाँ थी। इस प्रकार वह बहलोलख़ाँ भी कहलाता था, और इख़लासख़ाँ भी। मोग़ल इतिहासकारों ने उसे प्रायः 'इख़लासख़ाँ लिखा है, पर दक्षिण में उसकी वंश-परंपरा-गत उपाधि ही अधिक प्रसिद्ध है, इसी कारण सभासद बखर में वह बहलोलख़ाँ लिखा गया है। ऐसी दशा में यह बात स्पष्ट है कि एक बहलोलख़ाँ बीजापुर की ओर से शिवाजी से लड़ता था, तथा दूसरा मोग़लों की ओर से। दोनों बहलोल भाई भाई थे। दिल्ली की ओर से लड़नेवाला बड़ा भाई था। बीजापुरी बहलोल को संबोधित करके भूषणजी ने क्या ही ठीक बात कही है—

"बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा;
तुझसे सवाई तेरा भाई सलहेर पास,
क़ैद किया साथ का न कोई बीर गरजा।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सलहेर की लड़ाई में बहलोल के पकड़े जाने का जो वर्णन भूषणजी ने किया है, वह संपूर्ण सत्य और इतिहास के अनुकूल है।

जिस प्रकार बहलोलख़ाँ एक उपाधि थी, उसी प्रकार से जँजीरा के सीदी हबशियों को 'याक़ूतख़ाँ' की उपाधि प्राप्त थी। इस उपाधि से ही सीदी सरदार प्रसिद्ध थे। भूषण ने भी 'याक़ूत' का वर्णन किया है। सीदी सरदारों को यह उपाधि सन् १६७० में मिली थी। यदुनाथ सरकार अपने 'शिवाजी'-ग्रंथ के ३०२-३०३ पृष्ठ पर लिखते हैं—

"The contest came to a crisis next year (1670) Shivaji staked all his resources on the capture of Janjira. × × × × × × × × × × × The general title of *Yaqut Khan* was conferred on successive Sidi admirals from this time." (K. K. ii 224; only authority.)

जो लोग सन् १६७० में सीदियों को याक़ूत-उपाधि न मिलने की बात कहते हैं, वे भूल करते हैं। उनका कथन इतिहास के विरुद्ध है। भूषणजी ने संवत् १७३०में समाप्त होनेवाले 'शिवराज-भूषण' में यदि याक़ूत का उल्लेख किया, तो अनुचित ही क्या किया।

भड़ोच

"सोचचकित भरोचचलिय विमोचचख जल", भूषणजी के इस पद्यांश में कुछ लोग भड़ोच की लूट का वर्णन मानते हैं। पूज्यपाद मिश्रबंधुओं ने इसका अर्थ यह किया था कि सूरत की लूट का हाल सुनकर भड़ोच-शहर भागा। इस नोट के लेखक ने भी इसका कुछ ऐसा ही अर्थ किया था। श्रीयुत पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने इसका यह अर्थ किया है कि सूरत-शहर के लोग भड़ोच की ओर भागे। भागते समय बेचारे आँखों से आँसू बहाते जाते थे। पद्यांश पर फिर से विचार करने के बाद अब हम त्रिपाठीजी का ही अर्थ ठीक मानते हैं, क्योंकि इतिहास में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि शिवाजी के आतंक से भयभीत सूरत-निवासी भड़ोच को भागने को उद्यत थे। सरकार महोदय के 'शिवाजी'-ग्रंथ में पृष्ठ २२० पर लिखा है—

"The helpless citizens were seized with a panic. The rich went to the governor that very night and wanted permission to remove their families to Broach and other towns for safety."

भड़ोच की लूट का वर्णन इस पद्यांश में कदापि नहीं है। भूषणजी का वर्णन इतिहास के सर्वथा अनुकूल है, किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं है।

कारतलबख़ाँ

संवत् १९५० में नवलकिशोर-प्रेस में 'शिवराज-भूषण' पहलेपहल छपा। इसके संग्रहकर्ता परमानंदजी सुहाने थे। इसमें 'लह्यो मार तलबख़ाँ' पाठ नहीं है। इसमें जो पाठ है, वह इस प्रकार है 'लूट्यो कारतलबख़ाँ'। कई प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों में भी 'कारतलबख़ाँ' पाठ है। इतिहास में भी कारतलबख़ाँ और शिवाजी के संघर्ष का उल्लेख है। मोग़ल-साम्राज्य की ओर से कारतलबख़ाँ जुन्नार में अवस्थित थे। इसी जुन्नार को शिवाजी ने लूटा था। ऐसी दशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भूषणजी का यह कथन उचित ही है कि 'लूट्यो कारतलबख़ाँ'। 'शिवाजी'-ग्रंथ से आवश्यक अवतरण नीचे दिए जाते हैं—

"Kar Talab Khan was posted *near Junnar*" (Shivaji Page 59) "By the end of April 1670 he (Shivaji) had looted 51 villages *near* Ahmednagar, *Junnar* and Parenda."

(Sivaji Page 190)

दिलेरख़ाँ और बहादुरख़ाँ

भूषणजी ने बहादुरख़ाँ और दिलेरख़ाँ की पराजय का भी वर्णन 'शिवराज-भूषण' में किया है, और उचित ही किया है। यह कहना ग़लत है कि संवत् १७३० तक दिलेर एवं बहादुर से शिवाजी की मुठभेड़ नहीं हुई थी। सन् १६७२ (संवत् १७२९) में सलहेर-युद्ध में विजय प्राप्त कर चुकने के बाद शिवाजी ने बहादुर और दिलेर, दोनों को ख़ूब अपमानित और क्षति-ग्रस्त करके भागने पर मजबूर किया था। यह घटना भी संवत् १७२९ की है। 'शिवराज-भूषण' में दिलेर और बहादुर की पराजय का वर्णन मिलना सर्वथा उचित और इतिहास के अनुकूल है। एतदर्थ सरकार-कृत 'शिवाजी'-ग्रंथ का पृष्ठ २१७ देखना चाहिए—

"From the English records we learn that Shiva now forced the two generals (viz. Bahadur and Dilir), who with their armies had entered into his country, *to retreat with shame and loss*" O. C. 3633 Surat to Co., 6th April 1672.)

ख़वासख़ाँ

ख़वासख़ाँ-नामक प्रसिद्ध बीजापुरी सेनापति से भी शिवाजी से संवत् १७२३ में विकट संघर्ष हुआ था, और इस युद्ध में भी ख़वासख़ाँ को पराजित होकर भागना

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

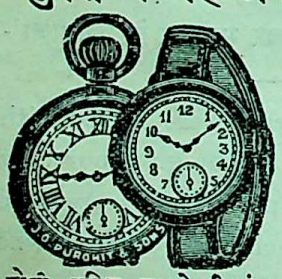

और दाद के अंदर चुरचुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की प्लेट निबवाली फ़ाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ बी जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥-) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥।≡) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीज़ें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर

"मजलिसे हैरान केश तैल"

३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। खास कर बालों को बढ़ाने और भ्रमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तैल एक ही है। दाम १ शीशी ॥।), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-ख़र्च ॥।-) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख़० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख़० १॥।) १२ शीशी मँगाने से १ रिस्टवाच मुफ़्त इनाम डा० ख़० २।) जुदा।

१५ पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० २८८, कलकत्ता (आफ़ीस नं० ७१ क्लाइव स्ट्रीट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा था। इस युद्ध का वर्णन सभासद बखर में भी है। असल में, इस युद्ध में, शिवाजी मोग़ल-सेनापति दिलेरख़ाँ के सहायक थे, और दोनों ने मिलकर बीजापुर पर चढ़ाई की थी। बड़ा ही विकट युद्ध हुआ था। जिनकी यह धारणा हो कि ख़वासख़ाँ और शिवाजी से खुला युद्ध संवत् १७३० के बाद हुआ है, वे कृपा करके सरकार-कृत 'शिवाजी'-ग्रंथ के १४५-१४६ पृष्ठों का अवलोकन करें। भूषणजी ने 'शिवराज-भूषण' में ख़वासख़ाँ की पराजय का वर्णन सर्वथा इतिहास के अनुकूल किया है। श्रीयदुनाथ सरकार लिखते हैं—

"At last on 20th November 1665 Jaisingh set out on the invasion of Bijapur, from the fort of Purandhar. The Maratha contingent, 9000 strong under Shiva and his Kinsman Netaji Palker × × × × × formed the left centre of the Moghul army × × × × For these services Shivaji received a letter of praise, a robe of honour and a jewelled dagger from the Emperor, × × × × × The invaders marched on × × × × × and fought a Bijapur army of 12 thousand under the famous generals Sharza Khan and *Khawas Khan* and their Maratha auxiliaries and Jadu Rao of Kalian and Vynkoji, the half brother of Shivaji × × × × After a long contest, Dilir Khan's tireless energy and courage broke the enemy force by repeated charges and they retired in the afternoon, leaving one general (Yqut the Abyssinian) and 15 captains dead on the field and many flags, horses and weapons in the Moghul hands."

फ़ारसी-इतिहास में इस युद्ध की जीत का श्रेय दिलेरख़ाँ को दिया गया है, और मराठी बखरों में शिवाजी को। कुछ भी हो, संवत् १७३० के पूर्व ख़वास-शिवा-संघर्ष स्पष्ट है। उपर्युक्त अवतरण से यह भी स्पष्ट है कि संवत् १७२३ में भी बीजापुर का मातहत हबशी सरदार याक़ूत कहलाता था।

× × ×

२. पं० बदरीनाथ भट्ट की माता का स्वर्गवास

बड़े ही दुःख की बात है कि स्वर्गवासी श्रीयुत रामेश्वरजी भट्ट के सुयोग्य पुत्र, लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी-साहित्य के लेक्चरर एवं हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और कवि पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० ए० की माता का विगत २७ एप्रिल को स्वर्गवास हो गया। इस कौटुंबिक विपत्ति में भट्टजी के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है, और जगदीश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह परलोकगत आत्मा को शांति और सद्गति एवं भट्ट-परिवार को इस घोर दुःख के सहने की शक्ति दे। तथास्तु।

× × ×

३. भावी निर्वाचन

भारत में और इँगलैंड में दोनों ही जगह इस समय भावी निर्वाचन की तैयारी धूम-धाम के साथ हो रही है। भारत के निर्वाचन में जीहुज़ूरी और राष्ट्रीय दल का प्रबल संघर्ष होगा। अधिकांश जनता राष्ट्रीय दल का समर्थन करेगी, यह निश्चित है और यह भी स्पष्ट दिखलाई देता है कि सरकार जीहुज़ूर दल की पीठ ठोंकेगी। नेहरू-रिपोर्ट के समर्थक और साइमन-कमीशन का बहिष्कार करनेवाले एक ओर होंगे, और नेहरू-रिपोर्ट के विरोधी संप्रदायवादी तथा साइमन-कमीशन के समर्थक सरकार के सहयोगी दूसरी ओर होंगे। प्रकट में सरकार तटस्थ ही रहेगी, पर परोक्ष में अपने साथ सहयोग करनेवालों की विजय चाहना उसके लिये एक स्वाभाविक बात होगी। जनता अपनी शक्ति से राष्ट्रीय दल को कितना लाभ पहुँचा सकेगी, इसका अंदाज़ा सरकार पहले से ही लगा लेना चाहती है। इसीलिये बंगाल और आसाम की कौंसिलों का इस आधार पर विसर्जन कर दिया गया है कि वर्तमान कौंसिलों का दलबंदी से मंत्रिमंडल का स्थायित्व संभव नहीं है। उपर्युक्त दोनों प्रांतों में मई-मास के अंत में नया निर्वाचन होगा। यदि निर्वाचन में राष्ट्रीय दल का बल बहुत बढ़ा-चढ़ा पाया जायगा, तब शायद सरकार अन्य प्रांतों की कौंसिलों का जीवन-काल बढ़ा दे, और साइमन-कमीशन की रिपोर्ट निकल जाने बाद नया निर्वाचन हो। इसके विपरीत यदि राष्ट्रीय दल का प्राबल्य न दिखलाई पड़ा, तो सभी प्रांतों में कौंसिलों का विसर्जन हो जायगा, और सारे भारत में ऑक्टोबर अथवा नवंबर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास में निर्वाचन की धूम मचेगी। भारत के 'लीडर'-सदृश राष्ट्रीय पत्रों का ऐसा ही अनुमान है। इँगलैंड में तो मई-मास के अंत में नवीन निर्वाचन का होना एक प्रकार से निश्चित ही है। वहाँ तीन दलों में संघर्ष है। कंसर्वेटिव-दल को अपनी विजय की पूर्ण आशा है। बजट में कुछ रियायतें दिखलाकर वह जनता को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न कर रहा है। उधर लिबरल-दल के नेता लायडजार्ज ने प्रतिज्ञा की है कि अगर लिबरल-दल जीतेगा और उक्त दल की सरकार बनेगी, तो बेकारी का प्रश्न आनन्-फ़ानन् में हल कर दिया जायगा। लेबर-पार्टी को निर्वाचन में बहुमत प्राप्त करने की बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। इस दल ने तो अभी से लेबर-सरकार बनने पर कौन किस पद का अधिकारी होगा, इसका भी निश्चय कर डाला है। जहाँ तक इन तीनों दलों का भारत की राजनीति से संबध है, वहाँ तक ये तीनों ही दल 'एकदिल' हैं। भारत को साम्राज्यवाद के भार से कुचलने में इन तीनों दलों के समान विचार हैं। इसलिये निर्वाचन में चाहे जिस दल की जीत हो, भारत को इसकी रत्ती-भर भी परवा नहीं है। भारत में कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं, जिनका लेबर-पार्टी पर विश्वास है, वे उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते हैं; पर हमें तो उक्त दल सरकारी वाला मेघ जान पड़ता है, बरसनेवाला नहीं। कुछ दिन के लिये लेबर-पार्टी की सरकार बनी तो थी, पर भारत को अँगूठा दिखाने के सिवा उसने क्या किया। उसी सरकार से हम भविष्य में क्या आशा कर सकते हैं। भारत की मुक्ति स्वयं उसके उद्योग से होगी। लेबर अथवा अन्य किसी पार्टी की सहायता से नहीं। क्या ही अच्छा हो कि भारतवासी इस मृगतृष्णा के फेर में न पड़ें? हाँ, इँगलैंड और भारत के निर्वाचन में एक विचित्र विषमता भी होगी। भारतीय निर्वाचन में शायद ही कोई उम्मेदवार कम्यूनिस्ट की हैसियत से खड़ा हो, और यदि खड़ा भी हो, तो शायद ही मत-दाता लोग उसे वोट देने पावें। इसके विपरीत इँगलैंड में बीसियों कम्यूनिस्ट उम्मेदवार खड़े होंगे, और उनको हज़ारों वोट भी मिलेंगे। इन दोनों देशों में भी ऐसी विषमता क्यों दिखलाई पड़ेगी? इसीलिये कि इँगलैंड

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान बिना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू-मैं-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का मान और निज स्वरूप तथा महिमा की पहिचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सक। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ६)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,, ८)
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़े की जिल्द का मूल्य ॥।)

स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं।

पता—**श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्र है, वहाँ का बच्चा-बच्चा स्वतंत्रता के समीरण का उपभोग करता है। वहाँ विचारों की स्वाधीनता है, और यहाँ भारत में परतंत्रता का साम्राज्य है। हमारे महापुरुषों की जो इच्छा होगी, उसके विपरीत हम विचार भी नहीं करने पावेंगे। हम कम्यूनिस्ट नहीं हैं, और न भारत में कम्यूनिज़्म के प्रचार के पक्षपाती ही हैं; परंतु इस बात का हम स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि धीरे-धीरे भारत में विचार-स्वातंत्र्य पर भी खुल्लमखुल्ला प्रहार होने लगा है। भारतीय निर्वाचन में हम राष्ट्रीय दल की विजय चाहते हैं।

× × ×

४. हिंदी के कुछ लेखकों की वर्तमान साहित्यिक सुरुचि

प्रयाग की प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' के सुयोग्य संपादक मित्रवर पं० देवीदत्तजी शुक्ल ने उक्त पत्रिका की मार्च-संख्या में एक 'साहित्यिक चिट्ठी' प्रकाशित की है। चिट्ठी बहुत ही विचार-पूर्ण और गंभीर है। इसमें जिन बातों का उल्लेख है, उनकी ओर पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करने के लिये उसे हम यहाँ पर अविकल उद्धृत करते हैं। शुक्लजी से हमारी प्रार्थना है कि भविष्य में वह और भी ऐसी चिट्ठियाँ प्रकाशित करें। जिन वयोवृद्ध लेखक महोदय ने यह चिट्ठी लिखी है, हिंदी-संसार को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। वयोवृद्ध लेखक महोदय ने बातें सब यथार्थ लिखी हैं। क्या हिंदी के लेखक चिट्ठी में दी गई नेक सलाह से लाभ उठावेंगे? चिट्ठी की नक़ल नीचे दी जाती है—

"तुम्हारी चिट्ठी मिली। 'वर्तमान साहित्यिक रुचि' के संबंध में क्या लिखूँ। आजकल लेखकों का रंग-ढंग कुछ और ही तरह का है। मेरे समय में यह बात नहीं थी। अधिकांश लेखक समय और सदाचार का ध्यान रखते थे। परंतु अब वह बात कहाँ!

आजकल के उदीयमान लेखक तो साहित्य की चर्चा न करके साहित्य-क्षेत्र में काम करनेवालों की चर्चा करना ही साहित्यिक कार्य समझने लगे हैं। वे जब साहित्य-चर्चा में आते हैं, तब या तो पुराने साहित्यकारों की फ़ज़ीहत करते हैं या वर्तमान समय के साहित्य-क्षेत्र में काम करनेवालों की खबर लेते हैं। उनकी इस समय ऐसी ही साहित्यिक सुरुचि दिखाई देती है। तुम्हारे नगर के एक साप्ताहिक ने तो इस कार्य का ठेका-सा ले लिया है। संपादक और लेखकों का उसमें ख़ूब उपहास किया जाता है। कहते हैं, इस पत्र की बड़ी खपत है। तब तो यही जान पड़ता है कि लोग निंदापरक लेख लिखना और पढ़ना बहुत पसंद करते हैं। मेरे समय में नवयुवक लेखकों की भी ऐसी ही रुचि थी या नहीं, इसका ज्ञान मुझे नहीं। ऐसे लेख भी मुझे इधर ही अधिक देखने में आए हैं। इन लेखों में बड़े-से-बड़े हिंदी-लेखक का उपहास किया जाता है। उसकी कमज़ोरियाँ बताकर उसका विद्रूप किया जाता है, सड़ी-से-सड़ी बात को आधार मानकर उसके रूप-रेखा की, उसके रहन-सहन की, तसवीर बड़ी साफ़-सुथरी भाषा में खींची जाती है। और यह सब हमारे वे नवयुवक करते हैं, जिनसे मातृभाषा के भविष्य में हित की आशा है। इनकी इस प्रकार की रुचि की याद आते ही मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दूर जाने की ज़रूरत नहीं। वर्तमान साहित्यिक सुरुचि का प्रसाद तुम भी तो काफ़ी पा चुके हो। एक पत्र की जिस 'चरित-चर्चा' के कटिंग तुमने मेरे पास भेजे थे, उन्हें मालूम होता है, तुमने ध्यान देकर नहीं पढ़ा है। उसकी आड़ में तुमको जो भीतरी मार दी गई है, उसे वर्तमान साहित्यिक सुरुचि का एक बढ़िया नमूना समझो। उसी पत्र के, हाल के, एक अंक में तुम्हारे संबंध में जो स्थानीय 'मिश्री' घोली गई है, उसे युवक साहित्यिकों के साहित्यिक सदाचार का उत्कृष्ट उदाहरण मानो। भाई, यह क्रांति का युग है। और क्रांति के समय में ऐसी बातें शोभाजनक मानी जाती हैं। क्रांति-काल का शील-सदाचार ही अपना अलग होता है। और क्रांति के उपासक अपने नवयुवक लेखकों की इस प्रकार की काक-वृत्ति को क्षमा कर सकते हैं। मैं पुराने युग का हूँ, मैं तो यह कहूँगा कि वे समय और सदाचार की अवहेलना कर रहे हैं, जिसमें उन्हीं का अहित है; क्योंकि वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा का दुरुपयोग कर रहे हैं।"

वयोवृद्ध लेखक महोदय ने उपर्युक्त चिट्ठी में जिन उदीयमान लेखकों की सुरुचि का उल्लेख किया है, उनमें से कुछ तो अपने नाम से लेख अपना यथार्थ नाम देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते हैं, पर अधिकांश गुमनाम रहना पसंद करते हैं। गुमनाम लिखनेवालों में हमारा अनुमान है कि कई लेखक ऐसे हैं, जो उच्च कोटि के विद्वान् और उत्तरदायी पुरुष हैं। ऐसे लेखक जब अपना यथार्थ नाम देकर लिखते हैं, तो स्वयं भी अशिष्टता, गाली-गलौज और परनिंदा का विरोध करते हैं। असल में उनका अंतर रूप कुछ और है और प्रकट रूप कुछ और। चिट्ठी में जिन सुरुचि-संपन्न लेखकों की ओर वयोवृद्ध लेखक महोदय ने अंगुलि-निर्देश किया है, उनकी एक और भी विशेषता है। अगर उनके लेखों की अभद्रता को कोई बुरा कहे, तो वे नाराज़ हो जाते हैं और अगर कहीं गुमनाम लिखे हुए लेखों के लेखकों का यथार्थ नाम कोई भाँप जाय, तो खिजलाकर और भी विकट रूप धारण करते हैं। फिर तो सचमुच उनका लेख-प्रवाह इतना कटु हो जाता है कि उसे पढ़कर वयोवृद्ध लेखक महोदय के रोंगटों का खड़ा होना नितांत स्वाभाविक प्रतीत होता है। इन लेखकों के भ[illegible] शायद ये हैं कि उनके गालि-प्रदान-कार्य को कोई बु[illegible] न कहे, और अगर कहे, तो स्वयं भी कटु-से-कटु गालि[illegible] सुनने के लिये तैयार हो जाय। उनको धारणा यह प्र[illegible] होती है, बुरा कहे जाने के बाद अपने अशिष्ट आलो[illegible] कार्य से विरत हो जाना मानो अपनी पराजय स्वीकार क[illegible] है। सो टोके जाने के बाद सुरुचि-प्रदर्शन का काम [illegible] भी अधिक शानदार और आयोजन के साथ होता है। जो कुछ भी हो, हम वृद्ध लेखक महोदय की चिट्ठी [illegible] समर्थन करते हैं, और चिट्ठी की अंतिम पंक्तियों की [illegible] अपने सहयोगी लेखकों का ध्यान अत्यंत नम्रता-पू[illegible] आकर्षित करते हैं। चिट्ठी में सत्य पक्ष का समर्थन [illegible] और हमारा विश्वास है कि अंत में उसी पक्ष [illegible] जय होगी।

× × ×

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-ख० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

मीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।
इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।
नक़्क़ालों से सावधान रहिए

१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. अलंकार-पीयूष

श्रीयुत पं० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' एम्० ए० ने हिंदी में 'अलंकार-पीयूष'-नामक एक सुंदर पुस्तक लिखी है। इसे प्रयाग के प्रसिद्ध प्रकाशक बाबू जगनरायनलाल ने प्रकाशित किया है। उन्हीं से २॥) में यह पुस्तक मिल सकती है। इस पुस्तक का प्राक्कथन महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा महोदय ने लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक में ३२५ पृष्ठ हैं, और यह संपूर्ण ग्रंथ का पूर्वार्ध-मात्र है। संभवतः उत्तरार्ध भी इतना ही बड़ा होगा। ग्रंथ की छपाई और काग़ज़ उत्तम है। इसमें झा महोदय का एक चित्र भी है।

हिंदी में अलंकार-शास्त्र पर विवेचना-पूर्ण ग्रंथ बहुत कम हैं। संस्कृत-साहित्य में इस शास्त्र की बहुत पांडित्य-पूर्ण विवेचना है। हर्ष की बात है कि इस पुस्तक के लिखने में पं० रामशंकरजी ने संस्कृत-साहित्य में प्राप्त विवेचना से पूर्ण लाभ उठाया है। अँगरेज़ी में भी इस विषय के जो पांडित्य-पूर्ण ग्रंथ हैं, उनका अध्ययन शुक्लजी ने किया है, और वहाँ से सुलभ सामग्री का भी अपने ग्रंथ में सदुपयोग किया है। हिंदी के पुराने कवियों ने अलंकार-विषयक बीसों ग्रंथ बनाए हैं। उन ग्रंथों से भी इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक ने ग्रंथ में प्रतिपाद्य विषय

पं० रामशंकर शुक्ल "रसाल"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पूर्ण अध्ययन करके तब उसके प्रणयन में हाथ लगाया है। इसी से यह ग्रंथ बहुत अच्छा बन पड़ा है। ऐसे ग्रंथों के प्रकाशन से हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि होती है। हम शुक्लजी के इस अभिनव सदुद्योग की मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हैं। हिंदी में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। अलंकार-शास्त्र की विवेचना करनेवाले पूर्वाचार्यों में कई अलंकारों के लक्षणों के संबंध में घोर मतभेद है। परवर्ती आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खंडन भी किया है। ऐसे स्थलों पर शुक्लजी ने अपने ग्रंथ में दोनों प्रकार के मतों का दिग्दर्शन कराया है। यही उचित भी है। ग्रंथ के प्रारंभ में, १४१ पृष्ठों में, अलंकार-शास्त्र के संबंध में जो विवेचन है, वह प्रौढ़ एवं गंभीर विचारों से ओत-प्रोत है। 'अलंकार-शास्त्र का इतिहास' लिखने में शुक्लजी ने विशेष अध्यवसाय और परिश्रम से काम लिया है। ग्रंथ में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिन पर लेखक से मतभेद होना स्वाभाविक है, उनकी चर्चा करने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। शुक्लजी को ऐसे उत्तम और उपयोगी ग्रंथ के लिखने के उपलक्ष्य में हृदय से बधाई देते हैं, और आशा करते कि हिंदी-संसार में इस ग्रंथ का समुचित आदर होगा। यह ग्रंथ विश्वविद्यालयों द्वारा भी आदर पाने के अधिकारी है। यदि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन इसे अपनी परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रंथ करे, तो विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा। अंत में हम शुक्लजी को इस ग्रंथ के बनाने के उपलक्ष्य में धन्यवाद देते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे इसका उत्तरार्ध-भाग भी शीघ्र प्रकाशित करा दें। तथास्तु।

× × ×

यदि आप सफ़र करते समय
"माधुरी"
पढ़ना चाहते हैं तो
हीलर के बुक-स्टाल पर ख़रीदिए।
मूल्य प्रति संख्या ॥=)
प्रायः सभी बड़े-बड़े रेलवे स्टेशनों पर
माधुरी मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. भारतीय साहित्यिक का अपमान

हाल में विश्वविख्यात महाकवि डाक्टर रवींद्रनाथ टैगोर अमेरिका को गए थे। उक्त देश में प्रवेश करने के पूर्व कस्टम्स आफ़िसर प्रत्येक व्यक्ति की जाँच करते हैं, और उससे कुछ प्रश्नों के उत्तर माँगते हैं। निदान जब महाकवि टैगोर महोदय की जाँच की बारी आई, तो आफ़िसर ने इनसे पूछा कि आप उत्तर दीजिए कि आपको कुछ लिखना-पढ़ना आता है या नहीं, तथैव आप इस देश की मालगुज़ारी पर भार-रूप तो न होंगे। महाकवि ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना नितांत अपमान-जनक समझा, और अमेरिका में प्रवेश करने से इनकार कर दिया। टैगोर महोदय ने ऐसे प्रश्न करनेवाले आफ़िसर को मूर्ख, गधा कहा। सोचने की बात है कि जो विश्वकवि नोबेल-पुरस्कार प्राप्त कर चुका है, जिसके ग्रंथों को पढ़कर पाश्चात्य देशों के भी विद्वान् अपने को कृतकृत्य मानते हैं, जो संसार-विश्रुत है, उसी से यह प्रश्न किया जाता है कि क्या तुमको लिखना-पढ़ना आता है। कितनी लज्जा-जनक बात है! कैसा घोर अपमान है! शायद अमेरिकावालों की ओर से यह कहा जाय कि इस प्रकार के प्रश्न तो बहुत दिनों से निर्दिष्ट हैं। छोटे-बड़े का भेद-भाव भुलाकर सभी से उनके उत्तर लिए जाते हैं, तब वे टैगोर महोदय से क्यों न पूछे जायँ। संभव है, इस तर्क में कुछ तथ्य हो, पर जिसकी पढ़ाई-लिखाई संसार पर प्रकट है, उससे ऐसे प्रश्न की आवश्यकता ही क्या थी। अगर ऊपरी कार्रवाई की पूर्ति करना आवश्यक ही था, तो आफ़िसर बिना पूछे इन प्रश्नों का उत्तर लिख सकता था। डाक्टर टैगोर ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर न देकर भारत के मान की रक्षा की है। उनके इस काम का हम समर्थन करते हैं। महाकवि से ऐसे प्रश्न करके भारत का घोर अपमान किया गया है।

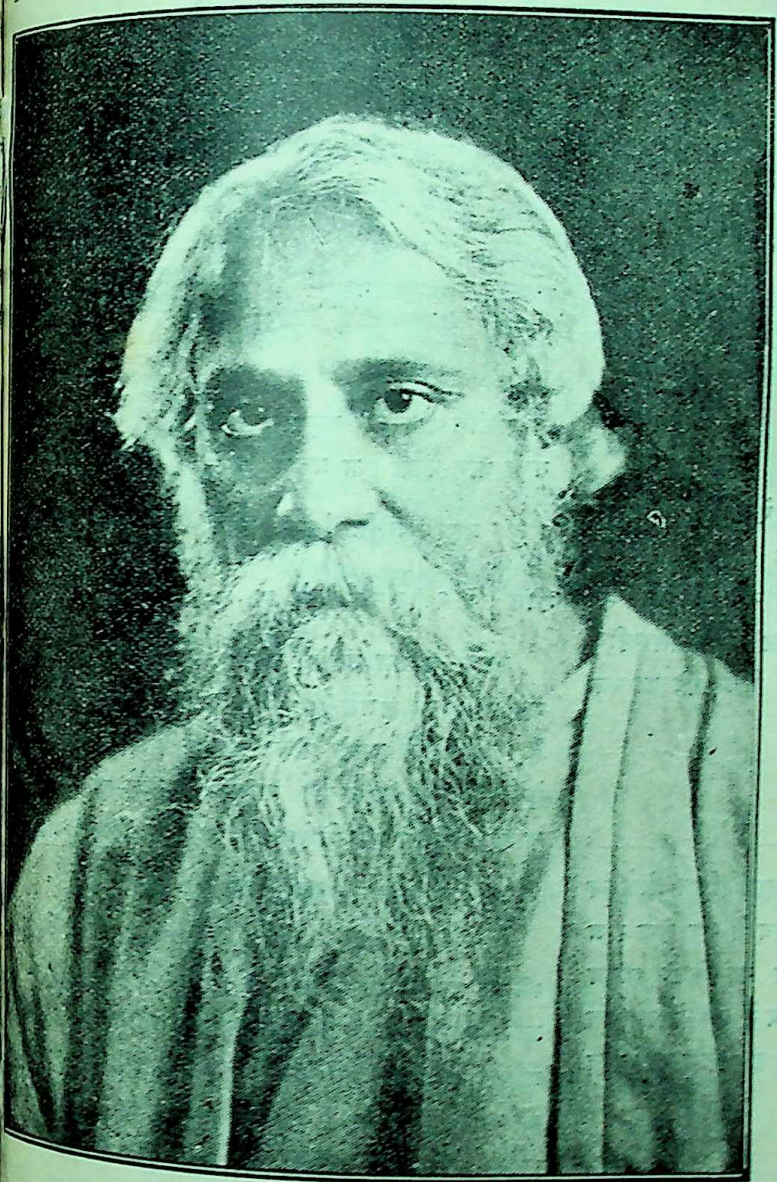

डाक्टर रवींद्रनाथ टैगोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. राणा संग्रामसिंह

राणा संग्रामसिंह भारत के एक ऐतिहासिक महा-पुरुष हैं। मुग़लों के भारत-प्रवेश के समय बाबर से इन्होंने युद्ध किया था। राजपूतों की कीर्ति-रक्षा में ही इनका जीवन उत्सर्ग हुआ। इस प्रातःस्मरणीय महावीर का यह चित्र प्राचीन जयपुरी चित्रकला का एक अच्छा नमूना है।

२. वसंत-राग

इस चित्र के चित्रकार पाठकों के सुपरिचित प्रोफ़ेसर ईश्वरीप्रसाद वर्मा हैं। प्रोफ़ेसर साहब ने यह राग राज नव्वाबअली साहब से हारमोनियम पर किसी समय सुना था। संगीत-सुदर्शन के स्वराध्याय में इसको रागपुत्र लिखा है, और प्रचलित भी यही है। इस राग का ध्यान इन शब्दों में किया गया है—

चूताङ्कुरणैव कृतावतंसो
विघूर्णमानारुणपद्मनेत्रः ;
पीताम्बरः काञ्चनचारुदेहो
वसन्तरागो युवतीप्रियश्च।

संगीत-शास्त्र के अनुसार इसके स्वरों का उतार-चढ़ाव तथा ऋतु-काल इस प्रकार है—

ऋतु	प्रहर	जाति	उतरे स्वर	चढ़े स्वर	वर्जित स्वर
शीत	४-६	संपूर्ण	रे, म, ध	ग, म, नी	०

इसमें ऋषभ उतरा, गंधार, धैवत, निषाद, ये चार, मध्यम दोनों लगते हैं; किंतु उतरा मध्यम बहुत कम है। आरोह में इसके प्रायः ऋषभ और पंचम को छोड़ देते हैं। अवरोह में भी ऋषभ को ज़रा-सा ही लगाना चाहिए। चित्र की विशेषताएँ ध्यान से देखने योग्य हैं।

३. जहाँनआरा की पूजा

यह चित्र स्वयं अपना परिचायक है। चित्रकार श्रीयुत हकीम मुहम्मदख़ाँ ने इसमें उपासना-गत ध्यान का मानो रूप ही खड़ा कर दिया है। जहाँनआरा इतिहास-प्रसिद्ध शाहंशाह शाहजहाँ की शहज़ादी और औरंगज़ेब की बहन थी। उसमें कट्टर मुसलमानों की भाँति तमो-गुणी वासना का अभाव था, सतोगुणी धार्मिकता और नारी-हृदय की स्वाभाविक सहिष्णुता थी। अस्तु, चित्र-कार ने धर्म को कला में परिवर्तित करके, मानो शाहजहाँ की ही मनोनीत कला-प्रियता का प्रदर्शन इस चित्र में कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७
खंड २

वैशाख, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)

संख्या ४
पूर्ण संख्या ८२

पदरथ

चाह मुझको है नहीं स्वर्ण बन जाने की।
यद्यपि हूँ जानता कि कंचन हो पाऊँ तो
मौलि का तुम्हारे अलंकार बन जाने की
बात क्या, सरूपता तुम्हारी मिल जायगी;
अहोभाग्य धन्य हो नगण्य यह जन, पै
हाय हिया क्षुद्र इसका तो है सिहरता
कसने के साथ ही कसौटी पै, कनक की
कांति, भ्रांति क्षणदा-छटा की घटा श्याम पै,
कौंध उठती है जहाँ, हाय वहीं अपना
एक अंग खोके और होके अनुत्तीर्ण भी
पारखी! तुम्हारी उस प्रथम परीक्षा में
पड़ता है पतित तुम्हारे पद में पुनः
इसका निसर्ग-स्थान प्राणनाथ था जहाँ
उठके जहाँ से इस धूलिकण ने प्रभो!
होड़ की थी हाटक की, हाँ-हाँ उस हेम की,
कौन कसे जाने की कहे जो ताप ताड़ना
छेदनादि को भी खेल में ही झेल लेता है
पाया उसका जो स्वाद याद सदा रक्खेगा।
किंतु अब है हुआ पदस्थ, अब तो इसे
कामद पदारविंद का पराग होने दो;
मधुर मरंद से उसी के सदानंद हो॥

कृष्णदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू-कौटुंबिक जीवन

यह सुख पाया मैंने मैया कि राज मैं,
जू कारी बदरिया मैं झूले क झूलना।
यह सुख पाया मैंने सासू कि राज मैं,
आधीहू राति लौं जू चक्की क पीसना।
यह सुख पाया मैंने बलमा कि राज मैं,
जू चंदा-समान भोले मुखड़े क चूमना।
यह सुख पाया मैंने रामू कि राज मैं,
जू गंगा नहाय बृंदा गौरा क पूजना।

हिंदू-कौटुंबिक जीवन का आधार अगाध प्रेम है। संसार में चार प्रधान जातियाँ हैं, अर्थात् बौद्ध, हिंदू, मुसलमान और ईसाई। बौद्धों के प्रधान स्थान चीन, जापान, स्याम, बरमा, लंका आदि हैं। इन देशों का सामाजिक जीवन पृथक्-पृथक् है; किंतु तो भी कोमलता, दयालुता आदि में हिंदू-जीवन से यह कुछ-कुछ मिलता है। हिंदू-जीवन कौटुंबिक प्रेम का प्रौढ़तम उदाहरण है। इसमें कौटुंबिक प्रेम की मात्रा इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि संतानहीन मनुष्य बहुत बड़ा आदमी होने पर भी, बहुत अंशों में, अपने जीवन को फीका एवं उद्देश्यहीन पाता है। हम किसके लिये शरीर धारण कर रहे हैं, इस प्रश्न का उत्तर अपने हृदय से उसे बहुत संतोष-जनक नहीं मिलता। लक्ष्य-शून्यता उसके लिये सांसारिक उद्यमों, ईर्ष्या, द्रोह आदि को कुछ फीका बनाकर संसार से निर्लिप्ति उत्पन्न करती है। इस उदासीनता की मात्रा उसकी शिक्षा, चित्तवृत्ति आदि के अनुसार न्यूनाधिक अवश्य होती है; किंतु सौ में प्रायः नब्बे ऐसे मनुष्यों में यह उदासीनता न्यूनाधिक रूप में कुछ-न-कुछ होती अवश्य है। ये लोग अपने जीवन में एक प्रकार का ख़ाली गड्ढा-सा पाते हैं, जो इनकी प्रसन्नता में कुछ-न-कुछ कमी अवश्य लाता है। संसारी मनुष्यों से मानों ये कहते हैं—

'My care is want of care by past care done;
Your care is gain of care by fresh care won.'

शेक्सपियर ने ये दोनों पंक्तियाँ, राज्य-च्युत होने के समय दूसरे रिचर्ड द्वारा, चौथे हेनरी से कहलाई थीं। प्रयोजन यह है कि इस काल मेरे मन का मुख्य विषय उत्तरदायित्व का अभाव है, जो मेरी प्राचीन अकर्मण्यता से प्राप्त हुआ है, तथा तुम्हारी मुख्यता उत्तरदायित्व की प्राप्ति है, जो तुम्हारे नवीन प्रयत्नों से उपलब्ध हुई है। ऐसी मानसिक दुर्बलता संतानहीन सभी हिंदुओं में तो नहीं होती, किंतु बहुत अधिक अंश में होती है। जिन संतानहीन लोगों पर भाई, भतीजे आदि के भरण-पोषण का भार होता है और वे अच्छे मनुष्य भी होते हैं, तो उनका यह मानसिक अभाव बहुत अंशों में कम हो जाता है; किंतु जो लोग कोई एक अथवा अनेक उत्तराधिकारियों को अपने ही पर आश्रित नहीं पाते हैं, वे उपर्युक्त अभाव का अनुभव करते हैं। यह मानसिक दुर्बलता हिंदुओं में इतनी अधिक व्यापिनी है कि बहुतेरे अनुभव-शून्य हिंदू यहाँ तक समझते हैं कि योरपियनों के इसके प्रतिकूल कथन मौखिक विडंबना-मात्र हैं, और वास्तव में, ऐसी दशा में, योरपियन लोग भी इस अभावात्मक क्लेश का न्यूनाधिक रीति से अनुभव अवश्य करते होंगे। यह विचार पूर्ण रूप से सर्वथा अशुद्ध है। योरपियनों में भी बहुतेरे ऐसे लोग अवश्य हैं, जो इस अभाव को क्लेशप्रद मानते हैं। किंतु यदि हिंदू संतानहीन सौ मनुष्यों में नब्बे इसके भार से दबे हैं, तो योरपियनों में प्रायः दस होंगे, और मुसलमानों में प्रायः साठ। अंदमान, निकोबार के टापुओं में एक ऐसा भी है, जहाँ की बहुतेरी गर्भवती स्त्रियाँ अपने पति द्वारा प्राप्त गर्भ को भी प्रसव-वेदना से बचने के लिये गिरवा देती हैं। फल यह हुआ कि गत जन-संख्या में, उस टापू में, पहलीवाली दशाब्दी की अपेक्षा जन-संख्या बहुत कुछ घट गई। ऐसे विचार हिंदू-रमणियों को असंभव से जँचेंगे। अवैध मैथुनोद्भूत कलंक से बचने के लिये हिंदू-रमणियाँ भी कभी-कभी गर्भपात कराती हैं; किंतु धर्मानुकूल मैथुन में, उनके चित्त में भी, ऐसा विचार नहीं उठता। आयुर्वेद-शास्त्र की ऐसी बहुतेरी युक्तियाँ ज्ञात हैं, जिसके प्रयोग से मैथुन द्वारा गर्भाधान हो ही नहीं सकता। हिंदुओं में संतति-प्रेम इतना बढ़ा-चढ़ा है कि उनके धर्म-शास्त्र में भी इन विधियों की शरण लेना घोर पातक माना गया है, यद्यपि इतर देशों तथा जातियों में इन युक्तियों का न्यूनाधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार सुना जाता है। एक हिंदू महाशय की डेढ़-दो हज़ार की मासिक आय थी, किंतु थे वह अपुत्र। एक दूसरे महाशय के तीन पुत्र तथा कुछ पौत्र थे, किंतु उन महाशय की आय पहलेवाले महाशय की आय से प्रायः पंचमांश थी। संततिहीन महाशय निर्द्वंद्वता-पूर्वक बड़ी प्रसन्नता से रहते थे, और उधर पुत्रवान् महाशय को अपने कुटुंब पर बहुत कुछ व्यय करना पड़ता था, जिससे वे तंग रहते थे, अथच पुत्रों को नौकरी आदि दिलाने में उन्हें बहुत कुछ दौड़ना पड़ता था, तथा मित्रों से सिफ़ारशें भी करनी पड़ती थीं, जिससे बेचारे बहुत स्थानों पर अपमानित हो जाते थे। एक योरपियन महाशय इन दोनों हिंदुओं को भली भाँति जानते थे। उन्होंने संततिहीन महाशय से पूछा कि भला आप अपना पूरा व्यक्तित्व संततिवान् महाशय से बदला चाहेंगे, या नहीं। उन्होंने इस प्रश्न के उत्तर देने में एक मिनट भी विचार करने की आवश्यकता न समझकर चट उत्तर दे दिया कि मैं तो उनके व्यक्तित्व को दाँत से उठा लूँ; किंतु वह मेरे व्यक्तित्व की ओर फूटी आँख से भी न देखेंगे! इस उत्तर को सुनकर योरपियन महाशय बहुत चमत्कृत हुए। इस उदाहरण से हिंदुओं के कौटुंबिक प्रेम का असली रूप प्रकट होता है।

यह कौटुंबिक प्रेम सारे जीवन का एक बहुत ही बलवान् साथी रहता है, और इससे हिंदू-समाज में बहुतेरे सुगुण तथा दुर्गुण आए हैं। यह एक स्वाभाविक नियम है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इस प्रेम की मात्रा अधिक होती है। संतति का परिपोषण केवल मनुष्य का धर्म ही नहीं है, वरन् संसार के सभी जीवधारी न्यूनाधिक रीत्या असमर्थ संतानों का पालन, बिना किसी आशा के, सहज क्रियाओं द्वारा प्रेरित होकर (Instinctively) करते हैं। मनुष्य इस भार का वहन इतर जीवों की अपेक्षा बहुत अधिक तथा चिर-काल-पर्यंत करता है। हिंदुओं में यह कौटुंबिक संबंध बहुत ही दृढ़ है। योरपियनों में इस दृढ़ता में तुलना-जन्य दृष्टि से देखने पर बहुत कुछ शिथिलता पाई जाती है। हाल ही में 'लीडर'-पत्र में निकला था कि पोलैंड-निवासी एक सज्जन उद्यम की खोज में अमेरिका चले गए, किंतु उनकी स्त्री एक पुत्र तथा एक कन्या के साथ देश ही में रह गई। कुछ दिनों में वह मर भी गई, और बालक-बालिका का भरण-पोषण उनके कुटुंबियों ने किया। अमेरिका जानेवाले पोल महाशय ने वहाँ उद्यम से करोड़ों रुपए प्राप्त किए, और विवाह करके एक नव-जात पुत्री के पिता भी हो गए। कारण-वश उनको अपना नाम भी बदल डालना पड़ा, और कुछ दिनों में उनकी अमेरिकन स्त्री भी मर गई। इतना कुछ हो जाने पर भी उन्होंने यह कभी न सोचा कि पोलैंड में भी मेरे कन्या-पुत्र हैं। इधर उनके पोलैंड-निवासी पुत्र ने भी लाखों रुपए कमा डाले, और अपनी भगिनी का भी उचित मान किया। विधि का विधान कुछ ऐसा आ पड़ा कि यह महाशय अपनी बहन के साथ अमेरिका पधारे, और वहाँ बाप-बेटे का संबंध न जानते हुए बेटे का विवाह बाप की अमेरिकावाली कन्या से हो गया, तथा बाप का तीसरा विवाह अपनी ही पोलैंडवाली पुत्री के साथ हो गया। कई मास पति-पत्नी की भाँति एक साथ रहने के पीछे इन दोनों दंपति ने अपना असली संबंध जाना, और तब यह दोनों विवाह शास्त्र के प्रतिकूल होने के कारण अवैध समझे जाकर तोड़ दिए गए। इस सच्ची घटना में दो अवैध विवाह हो जाने से यह कष्टप्रद हो गई, किंतु यहाँ अनुचित उदाहरण के लिये न दिखलाई जाकर योरपियनों में कौटुंबिक शृंखला के शैथिल्य का भाव-मात्र प्रकट करने को कही गई है। इस शैथिल्य से दो अनुचित विवाहों का हो जाना एक बिलकुल अनहोनी आकस्मिक घटना है, जो करोड़ों-अरबों मामलों में कहीं दो-एक बार घट जाती होगी। अतएव वह न होने के बराबर है। प्रयोजन केवल कौटुंबिक शृंखला के शैथिल्य का है। वह शृंखला सभी योरपियन लोगों में इतनी शिथिल होती भी नहीं है, किंतु तुलना-जन्य दृष्टि से हिंदुओं की अपेक्षा योरपियनों में होती वह बहुत शिथिल है। उन लोगों में यदि एक भाई इँगलैंड में रहता है, तो दूसरा आस्ट्रेलिया में, और तीसरा कनाडा या दक्षिण-आफ़्रिका में। चिट्ठी-पत्री तक साल-दो साल में चाहे एक-दो बार लिख दें। न शत्रुता है, न मित्रता। किसी मित्र को साल में यदि दस पत्र लिखेंगे, तो भाई-भतीजे को शायद एक ही, या वह भी नहीं। यदि उनमें से किसी से मित्रता हो, तो उसके नाते से अधिक पत्र-व्यवहार आवागच्छ आदि होंगे, न कि बिरादरी के नाते। स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अपने कुटुंबियों से अधिक प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखती हैं । फल यह होता है कि उन लोगों में स्त्री के कारण साले, ससुर आदि से तो अधिक संबंध रहता है, किंतु भाई-भतीजों से प्रायः कुछ भी नहीं । काम-काज, विवाहादि तक में उपस्थित मित्र निमन्त्रित होते हैं, न कि भाई-भतीजे । व्यवहार में उनका केवल इतना संबंध समझा जाता है कि यदि विना अधिक कष्ट के संभव हो, तो अस्वस्थता में बिरादरी अथवा नातेदारी में से कोई आकर दवा-दारू का प्रबंध कर दे । यदि न आवे, तो कोई बात नहीं ; क्योंकि नरसें, दाई आदि प्रस्तुत ही हैं । पेंशन पाने पर यदि कहीं बसने का प्रश्न हो, तो भी जहाँ स्वास्थ्य, उद्यम आदि से संबंध रखने वाले विचारों से गौं पड़गी, वहीं बसेंगे ; न कि उस स्थान में, जहाँ बिरादरी, नातेदारी आदि का मनुष्य रहता हो । हमने दो-चार योरपियन मित्रों से पूछा, तो उत्तर मिला कि ऐसे लोग अपने मामलों में प्रायः टाँग अड़ाया करते हैं, जिससे मानसिक स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है, और अनेक प्रकार की अड़चन पड़कर मनमैली हो जाती है । दूर रहने से ये बाधाएँ कम पड़ती हैं, और व्यवहार भी अच्छा रहता है । हिंदुओं की दशा इस मामले में एक प्रकार की है, तथा योरपियनों की उससे प्रायः विपरीत । मुसलमानों की दशा इन दोनों के बीच की है । भारतीय मुसलमानों पर हिंदुओं का बहुत कुछ प्रभाव पड़ने से उनकी दशा हिंदू-कौटुंबिक जीवन से दूर होने पर भी बहुत दूर नहीं है, किंतु फिर भी काफ़ी दूर है । अन्य देशों के मुसलमानों की दशा योरपीय कौटुंबिक संस्था से कुछ अधिक निकट है ।

देखने में तो योरपीय कौटुंबिक संस्था, कौटुंबिक प्रेम-शैथिल्य के कारण, कुछ हलकी जँचती है ; किंतु वास्तव में उसमें बहुत-से सद्गुण हैं । उनमें भी प्रेमाभाव नहीं है, वरन् हमसे उनमें प्रेम-पात्रों के चुनाव में भेद-मात्र है । जहाँ हम लोग कुटुंबियों से गाढ़ा प्रेम रखते हैं, और इतरों से बहुत कुछ ओछा तथा दिखलावा-मात्र, वहीं वे लोग सब मित्रों से वास्तविक प्रेम रखते हैं । यह अवश्य है कि हमारे कुटुंबी प्रमो समय पड़ने पर हमारी जितनी सहायता करते हैं ; उतनी उनके कुटुंबी अथवा मित्र नहीं करते । करते वे भी बहुत कुछ हैं ; किंतु तुलना-जन्य दृष्टि से जितनी सहायता हम पाते हैं, उतनी क्या, उससे आधी भी वे नहीं पाते । फिर भी सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि सहायता प्राप्तिवाली यह तलवार दो धारवाली है, जो दोनों ओर काटती है, केवल एक ओर नहीं । जहाँ हम कुटुंबियों से अधिक सहायता पाते हैं, वहीं हमको वह सहायता करनी भी तो पड़ती है ।

यह सहायता धन, समय, मंत्र-प्रदान आदि के रूपों में होती है । संतान को सहायता तो न्यूनाधिक रीति से सभी देहधारी देते हैं ; किंतु मनुष्य—विशेषतः हिंदू—के लिये सहायता का क्षेत्र, न्यूनाधिक रीति से, बहुतेरे असहाय कुटुंबियों तथा नातेदारों पर भी विस्तृत है । इसका पहला भार माता-पिता पर है ही, किंतु उनके पीछे ज्येष्ठ भ्राता उनका मुख्य प्रतिनिधि समझा जाता है । शास्त्रों में भी आया है—

> ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ।
> सह्येषां वृत्तिदाता स्यात् सह्येषां प्रतिपालयेत् ।
> कनिष्ठास्तन्नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्त्तिनः ;
> तमेव चोपजीवेयुर्यथैव पितरन्तथा ।

इन श्लोकों में साफ़ कहा गया है कि पिता के पीछे बड़ा भाई छोटों के लिये पिता का स्थान लेकर उनका भरण-पोषण एवं उनकी जीविका का प्रबंध करे, अथवा छोटे भ्राता उसे पिता के समान मानें तथा उसके आज्ञाकारी रहें । यह दशा केवल शास्त्रीय आज्ञा नहीं, वरन् नित्य के बर्ताव में आती है । सधन हिंदू छोटे भाइयों के अतिरिक्त अन्य बहुतेरे सपिंडों तथा नातेदारों पर भी यथाशक्ति ऐसी ही कृपा, आवश्यकता पड़ने पर, साधारणतः किया करते हैं । मित्रों एवं अनजान सहायता-पात्रों की जितनी सहायता योरपियन लोग करते हैं, उतनी हिंदू न करते होंगे—ऐसी हमारी धारणा है । फिर भी कुल मिलाकर हिंदू लोग, योरपियनों की अपेक्षा तुलना-जन्य दृष्टि से, सहायता-प्रदान का कर टैक्स चौगुना-पँचगुना देते होंगे । अब पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से कौटुंबिक सहायता की मात्रा कुछ घटती पर है, अथच उपर्युक्त दूसरे प्रकार के सहायता-प्रदान का दिनोंदिन उत्कर्ष होता जाता है । जीवन-होड़ की दिनोंदिन अधिकाधिक वृद्धि से भी अकर्मण्य कुटुंबियों की संख्या उत्तरोत्तर घटती जाती है । अपने लड़कपन में हमने देखा है कि बिरादरी तथा नातेदारों में से अतिथि लोग आकर दो-दो, तीन-तीन महीने हमारे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ तथा इतरों के यहाँ रहते थे। कहा भी है—'मैं पाहुन हनुमंता नाउँ, समौ पलट्टे घर का जाउँ'। किंतु अब ऐसे पाहुनों का पता भी नहीं लगता।

जिस प्रकार हमारे यहाँ कौटुंबिक उदारता की मात्रा बढ़ी-चढ़ी रही आई है, उसी प्रकार छोटों के अधिकारों पर भी बड़ों का हस्तक्षेप बहुत रहा आया है। यद्यपि समय के साथ नवीन विचारों ने इसकी मात्रा बहुत कुछ घटा दी है, तो भी अब तक सभ्य कुटुंबों में इसका काफ़ी ज़ोर है। हिंदुओं में बड़े भाई पचास वर्ष की अवस्थावाले छोटे भाई तक के अभिभावक बने रहते हैं। हमारे ही अँगरेज़-मित्रों ने हमीं को दो-चार बार जब अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करते न पाया और इस पर आश्चर्य प्रकट करने पर जाना कि यह अंतर बड़े भाई साहब की आज्ञा के कारण हुआ है, तब उन्होंने कहा कि प्रायः पचास बरस के होकर भी तुम कब तक पीर नाबालिग़ बने रहोगे? संवत् १९६३ के निकट हमारा यह संकल्प हुआ था कि भारतवर्ष छोड़कर जापान में बस जायँ; क्योंकि यहाँ की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी, और अब भी नहीं है। हम दोनों भाइयों के इस अनोखे विचार को जानकर हमारे सबसे बड़े भ्राता (चौथे मिश्रबंधु, जो वास्तव में पहले थे) ने पहले तो बहुत कुछ समझाया, और इतने पर भी हमारे दृढ़ होने पर बोले—"तुम तो हो ख़ासे अहमक़! कह चुके कि न जाने देंगे; न मानोगे और छिपकर चले ही जाओगे, तो हम ख़ुद जापान में जाकर कान पकड़ वापस ले आवेंगे।" इस कथनोपकथन के पीछे यह प्रश्न ही सदा के लिये हल हो गया। इसी प्रकार अन्य विषयों में समझना चाहिए। इतना अवश्य है कि यह आज्ञा तथा आज्ञापालन, दोनों प्रेम के विषय हैं। मानो तो देव, नहीं तो पाथर की कहावत है। फिर भी बहुत बातों में मानना ही पड़ता है, और स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है। हमारे यहाँ के मंत्र-दाता कौटुंबिक होने पर केवल मंत्री ही नहीं होते, बरन् स्वामीपन का भी कुछ भाव लिए रहते हैं। फिर भी हर अवस्था में हठ नहीं करते। उन्हीं की अभिभावकता में हम दोनों भाइयों ने शिक्षा पाई। उनकी इच्छा थी कि हममें से एक वकालत अवश्य करे। हम दोनों भाइयों में से बड़े ने जब डिप्टी कलेक्टरी कर ली, तब कनिष्ठ को वकील बनाए रखने की उनकी बड़ी इच्छा थी। फिर भी जब वकालत में हमारा मन लगते न देखा, तब स्वयं उन्हीं ने अपनी इच्छा के प्रतिकूल प्रयत्न करके हमें मुंसिफ़ का पद दिलवाया। कुल मिलाकर कौटुंबिक सहायता में धन, समय, पुरुषार्थ, मंत्र-प्रदान आदि का कष्ट सहते अथच सहायता-प्राप्ति से अपनी स्वतंत्रता कुछ-न-कुछ खोते हुए भी हम लोग कौटुंबिक प्रेम के इस परिणाम को हिंदू-जीवन का एक बहुत ही मधुर फल समझते हैं, और इसमें जो हानि होती एवं इच्छा के प्रतिकूल जो आज्ञाएँ माननी पड़ती हैं, ये दोनों बातें सभ्यता और जीवन-माधुर्य के शृंगार हैं।

कौटुंबिक प्रेम का एक फल सम्मिलित कुटुंब भी है। इसमें कुटुंबी एक दूसरे के साथ बहुत ही प्रेम-पूर्ण बर्ताव करते हैं, जिससे हर प्रकार का लाभ ही होता है। फिर भी उचित सीमा के आगे बढ़ जाने से सम्मिलित कुटुंब बहुत हानिकर भी हो जाता है, और प्रेम के स्थान पर द्वेष का कारण होता है। जब तक कुटुंबी आपस में प्रेम-पूर्वक बिना एक दूसरे का अविश्वास किए रह सकें, तभी तक सम्मिलित कुटुंब का औचित्य ग्राह्य है, उसके पीछे नहीं। इस मेल में इतना दोष भी है कि यदि इसका कोई कुटुंबी बहुत अधिक धनोपार्जन करता हो, तो अन्य कुटुंबी थोड़ी योग्यता रखने पर अपनी योग्यता के अनुसार हलका काम नहीं करते, बरन् आलसी हो जाते हैं। ऐसी दशा में सम्मिलित कुटुंब से संसार में निरुद्यमता बढ़ती है, और आलसी कुटुंबियों की अवहेलना होना भी स्वाभाविक है। कमाऊ कुटुंबियों की बचत अनेक दशाओं में नियमानुसार सब कुटुंबियों में बँट भी सकती है, जिससे व्यवसायी कुटुंबियों के साथ अन्याय होता है। कुटुंब में बँटवारा करना संसार में हीन दृष्टि से देखा जाता है। इससे बदनामी से बचने के लिये वस्तुतः विभक्त कुटुंब भी संसार में सम्मिलित की भाँति व्यवहार दिखलाना पसंद करते हैं। इससे समय पर कभी-कभी मुक़दमेबाज़ी हो पड़ती है, जिससे प्रचुर हानि होती है, तथा प्रेम-पूर्ण व्यवहार में पूरी क्षति आ जाती है। अपनी अवहेलना देखकर निरुद्यमी कुटुंबी कभी-कभी अपनी अयोग्यता का विचार न करके कुढ़ने भी लगते हैं। उद्योगी कुटुंबियों के लिये उचित यह है कि ऐसी दशा में कुटुंब का विभाजन कर दें, और जितनी कुछ सहायता देनी उन्हें पसंद हो, सब यों ही दें; किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सारी संपत्ति को झगड़े में डालकर आगे के लिये मुक़दमेबाज़ी तथा मनोमालिन्य की सामग्री न जुटावें।

हिंदुओं में स्त्रियों का पद वस्तुतः नीचा नहीं है, किंतु सम्मिलित कुटुंब के ही कारण वह नीचा समझ पड़ता है। कुटुंबी तो निकट के संबंधी होने के कारण एक दूसरे का बहुत कुछ दबाव मानते हैं, और आपस में प्रेम भी बहुत कुछ रखते हैं, जिससे कार्य-कुशल कुटुंबी आलसियों की अवहेलना की मात्रा यथासाध्य बहुत कम रखते हैं, और जो कुछ थोड़ी-बहुत अवहेलना हुई भी, उसे निरुद्यमी कुटुंबी कार्य-संपादन में अपनी अपटुता समझकर बहुधा प्रसन्नता से सह भी लेते हैं। उधर स्त्रियों में पति को छोड़कर उसके कुटुंबियों से कोई रुधिर का संबंध तो होता नहीं, सो इन लोगों से, कुटुंबियों की स्त्रियों से, केवल मौखिक और दिखाऊ प्रेम रहता है। इसलिये कमाऊ लोगों की स्त्रियाँ निकम्मे कुटुंबियों तथा उनके स्त्री-बच्चों के साथ प्रायः बड़ा ही कठोर व्यवहार करती हैं, जिसे पुरुष तो चाहें सह भी लें, किंतु उनकी स्त्रियाँ नहीं सहतीं। उन्हें समझ पड़ता है कि यदि मेरा पति निकम्मा न होता, तो अपनी बराबरवाली की ठसक मुझे क्यों सहनी पड़ती। इन कारणों से कमाऊ की पत्नी को अपने पति की योग्यतानुसार पूरा आनंद नहीं मिलता, और निकम्मों की स्त्रियाँ अपने से बहुत नीचे दरजेवालियों की अपेक्षा भी बहुत अधिक दुःखित रहती हैं। इस मानसिक भाव में बहुत कुछ न्याय भी है। चौबीसों घंटे की किच-किच कौन बरदाश्त कर सकता है? सभी वस्तुओं के उपभोग में अपने तथा अपनी संतानों के कष्ट को देख-देखकर उपजाऊ कुटुंबी उन्हें कभी-कभी सहायक के स्थान पर शत्रुवत् दिखने लगता है।

यह तो हुई सम्मिलित कुटुंब की दशा। अब स्त्रियों की अन्य दशाओं पर विचार किया जाता है। कन्या के रूप में, हिंदू-समाज में, स्त्री सुख-पूर्वक रहती है, और उसका समुचित सत्कार होता है। यह सत्कार पुत्रों की अपेक्षा कुछ कम अवश्य रहता है, किंतु फिर भी उनकी प्रसन्नता की मात्रा में कोई त्रुटि नहीं रहती। विवाह होने पर यदि पतिदेवता किसी सम्मिलित कुटुंब के सभ्य न हुए, तो उसकी स्त्री को कोई कष्ट नहीं होता। पति की माता से उसे कुछ दिक़्क़त अवश्य उठानी पड़ती है, किंतु थोड़ा-सा सौहार्द दिखलाने से वह प्रसन्नता-पूर्वक रह सकती है। बात यह होती है कि कुटुंब में स्त्रियों को भी कुछ-न-कुछ काम करना ही पड़ता है। माताएँ बहुत मान्य समझी जाती हैं, और सयानी पुत्रियों तथा पुत्र-वधुओं का यह कर्तव्य समझा जाता है कि वे माता को काम न करने दें, वरन् उसके स्थान पर स्वयं काम करें। माताएँ पुत्र का तो यथोचित आदर करती हैं, किंतु पुत्रियों के बराबर स्वभावशः बहुओं को नहीं मान सकतीं। इसी से बहुओं के मत्थे उचित से अधिक कार्य का भार पड़ जाता है, जिससे उनको अवहेलना-सी दिखने लगती है। ननदें माता के बल से गर्वित होकर भावजों की कुछ अवहेलना भी करती हैं, जिसका माता द्वारा उचित न्याय नहीं होता। यह बात पतियों को अच्छी नहीं लगती, जिससे उनका माता एवं भगिनियों में कुछ वैमनस्य-सा दिखने लगता है। इसी से कहावत चल पड़ी है कि विवाह के पीछे बेटा पराया हो जाता है। कहते हैं—

"लोग सबै घर घेरु करैं, अब ही सों ये चेरे भए दुलही के।"

माता का संबंध बहुत ही कोमल, मधुर और सुखप्रद होने पर भी अमिट नहीं है। उसके विना भी सयाने होने पर मनुष्य का काम चल ही जाता है, किंतु यदि वह स्वस्थ हो, तो विना स्त्री के काम नहीं चलता। साहित्य तथा दिखाऊ ऊँची बातें निकाल डालने से स्त्री और माता के संबंधों में आवश्यक तथा अनावश्यक का भेद है। माताएँ समझने लगती हैं कि मेरा बेटा ऐसा निकम्मा है कि मैंने उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया और इतना प्रेम किया, किंतु तो भी वह ऐसा स्त्रैण है कि मुझे छोड़कर पराई लड़की का अधिक मान करता है। किंतु उनको समझना चाहिए कि संसार का यह नियम ही है कि माता संतानों को पालती है। यदि उसने हमें पाला, तो कौन-सी अनहोनी की? उसकी माता ने भी तो उसे पाला था, और हम भी तो अपनी संतानों को पालते हैं। अनुभव से जाना जाता है कि सास-बहू के वैमनस्य में प्रायः सास का ही दोष अधिक होता है। बुरे मनुष्य भी अपनी माता का यथावत् मान करते हुए प्रायः देखे गए हैं। बुरी माताएँ भी अपने पुत्रों का यथावत् मान करती हैं, किंतु अच्छी सास भी पूर्ण न्याय के साथ बहू का मान कम करती हैं। सास को समझना चाहिए कि उनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति बहुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अन्याय करने की है। यदि पहले से ही सोच-समझकर सावधान रहें, तो वे इस पातक से बच सकती हैं, अन्यथा नहीं।

पुत्र उत्पन्न होने के पीछे हिंदू-कुटुंब में वधुओं का मान बढ़ने लगता है। पितामही पौत्र पर अत्यंत प्रेम रखती है, जिससे सास-बहू का भी वैमनस्य कम होने लगता है। देवरानी-जिठानी आर्थिक असमता न होने से एक दूसरे पर अन्याय नहीं कर पातीं, और करती भी नहीं। पति दुराचारी न होने से स्त्री पर सदैव पूरा प्रेम रखते हैं। बाल-वय में उन्हें कभी-कभी यह भय लगा रहता है कि कहीं लोग मुझे स्त्री का दास न समझने लगें। मित्र लोग भी प्रायः ऐसा कह बैठते हैं कि यार कहीं ऐसा न हो कि भावज तुम्हें दबा दे। इन कारणों से मूर्ख पति लोग कभी-कभी दिखलाने-भर को स्त्रियों पर क्रोध भी प्रकाशित कर दिया करते हैं, जिससे उनका आतंक जमा रहे। किंतु वास्तव में हिंदू-स्त्रियाँ बहुत ही प्रेमपात्री तथा साध्वी होती हैं। उनकी तो "तन, मन, धन, श्रीगुसाईंजी के अर्पण" वाली कथा रहती है। सहिष्णुता की मात्रा पति के संबंध में उनमें प्रायः अनंत है। कहा ही है—

"है परमेश्वर तें पति नीको,
सदा पतिनी को जो लोक लहावै;
देवजू तासों कहा कहिए,
दुख कै सुख सो सहिए जो सहावै।
दूरिहिं सों रहिए कर जोरे,
भले गहिए पग जो पै गहावै;
रारि करै मनुहारि बिसारि,
परै कुल गारि कुनारि कहावै।"

हिंदुओं में स्त्री-पुरुष का संबंध बहुत ही प्रेम-पूर्ण है। स्त्री का आदर भी बहुत कुछ होता है, किंतु योरपीय बर्ताव के आगे वह कुछ कम अवश्य है। स्त्रियों का प्रेम पुरुष की अपेक्षा समानता लिए हुए भी कुछ आश्रित रूप का रहता है, योरपीय दांपत्य-प्रेम की भाँति पूर्ण साम्य-रूप का नहीं। शिक्षित अथच सभ्य पुरुषों में अब स्त्री-माहात्म्य की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। जहाँ साम्य के कारण योरपीय दंपति एक बृहत् संख्या में एक दूसरे के साथ प्रेम-पूर्ण नहीं रह सकते और अलग-अलग रहने लगते हैं, वहाँ हिंदुओं में यह बात नहीं होती। यह बात देखने में तो अच्छी है, किंतु इसका कारण कुटुंब में पुरुष की प्रधानता है। यह प्रधानता काग़ज़ पर देखने में तो भद्दी ज्ञात होती है, किंतु वास्तव में कौटुंबिक दिनचर्या के देखते हुए अपनी परम प्राचीन स्वाभाविकता के कारण कुछ ऐसी साधारण हो गई है कि किसी को लेश-मात्र भी नहीं खटकती। दांपत्य-प्रेम में इसके कारण कोई विच्छेद तो पड़ता नहीं; क्योंकि यह इसी रूप में सदा से चली आ रही है। सो दांपत्य-प्रेम अक्षुण्ण एवं अगाध रहता है, जिससे पत्नी पर लेश-मात्र अनुचित दबाव नहीं समझ पड़ता, और दोनों एक दूसरे से अथच संसार से पूर्णतः संतुष्ट रहते हैं। जितनी कुछ बातें गृह में होती हैं, वे दोनों की सलाह से प्रेम-पूर्वक हुआ करती हैं। कौटुंबिक जीवन पर पत्नी का पूर्ण प्रभुत्व है, और पति उसका सहायक-मात्र है। पत्नी पति को प्रसन्न रखने का सदैव प्रयत्न करती है, और पति पत्नी को। हमारे यहाँ विवाह के समय दंपति को अरुंधती और वशिष्ठ-नक्षत्रों के दर्शन कराए जाते हैं, जिसका प्रयोजन यह है कि पत्नी पति की इच्छा को रोकने वाली न हो, और उधर पति पत्नी के वश में रहे। प्रयोजन यह है कि दोनों एक दूसरे का मान करते हुए प्रेम-पूर्वक रहें। यह बात हिंदू-कौटुंबिक जीवन में दंपति के बीच बहुत कुछ चरितार्थ देख पड़ती है। पत्नी का मान संसार में पति से बहुत अधिक है। नातेदारी, बिरादरी आदि के निमंत्रणों में पति के जाने पर भी यदि पत्नी न जाय, तो निमंत्रण की स्वीकृति अधूरी समझी जायगी। उधर यदि पत्नी जाय, तो पति के जाने-न-जाने पर कोई लेश-मात्र भी परवा न करेगा। पत्नी और बच्चों के जाने पर बिना किसी विशेष कारण के पति महाशय जायँगे अवश्य ही; क्योंकि सूने घर में उनका जी भी तो न लगेगा। सज्जनों के घरों की हिंदू-स्त्रियाँ बहुत ही सच्चरित्र अथच पतिप्राणा होती हैं। पति से उनका प्रेम इतना अगाध होता है कि कोई निकम्मा पति भी अपनी स्त्री का अपमान नहीं कर सकता। हिंदुओं के यहाँ, केवल सम्मिलित कुटुंब में, सास के द्वारा बहू को कुछ कष्ट पहुँचता है, शेष किसी दशा में नहीं। साधारणतः पत्नी गृह-स्वामिनी है, तथा पति उपार्जन-कर्ता। पुत्रों के साथ हिंदू-कुटुंब में सभी संबंधियों द्वारा अच्छा बर्ताव होता है। ऊपर जो छंद दिया गया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हिंदू-कौटुंबिक जीवन में स्त्रियों की दशा का सारांश है। किंतु फिर भी सास द्वारा कष्टों का वह अत्युक्ति-पूर्ण साहित्यिक वर्णन है, न कि अमत्त कथन।

श्यामविहारी मिश्र
शुकदेवविहारी मिश्र

सूक्ति-सुधा

१

बंधु निज जानि तुम्हैं पौरि पै पुकारैं दीन,
दीनबंधु जातैं नींद रावरी उचटि जाय;
सुकबि 'रसाल' कहै यातें प्रभु ऐसो करौ,
दीनन के भौन संपदा को ठाट ठटि जाय।
दूर करि दीनता दुनी सों किधौं और कहूँ,
राखौ तऊ सगरो यो झगरो निपटि जाय;
इत-उत दौरिबो रमा को छुटि जाय सबै,
दीनन को आय तुम्हैं दीबो दुःख हटि जाय।

२

सुनत सबै तें अरी राधिके! तिहारे नैन,
तीखे तीर धारे, भला हमहूँ परेखैं तौ;
व्यथित किए हैं नर-केहरी कौं बेधि-बेधि,
हरि के हिए मैं चोट-चिह्न सबै पेखैं तौ।
सुकबि 'रसाल' कहै होत ना प्रतीति तौहूँ,
नित्त हम चित्त माँहि बात यही लेखैं तौ;
हुलसि हँसौहैं घालि सौहैं नेकु नैन-बान,
मेरे क्लेस-केहरि कौं मारौ, हम देखैं तौ।

रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

श्रीबदरीनाथ की यात्रा

(दस वर्ष पूर्व और अब)

यः दस वर्ष की बात है। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीबदरीनाथजी का मुझे आदेश है कि मैं पुण्यतीर्थ श्रीबदरीधाम के दर्शन करूँ। बस, इसी अनुभूति की प्रेरणा पर मैं यात्रा के लिये चल पड़ा।

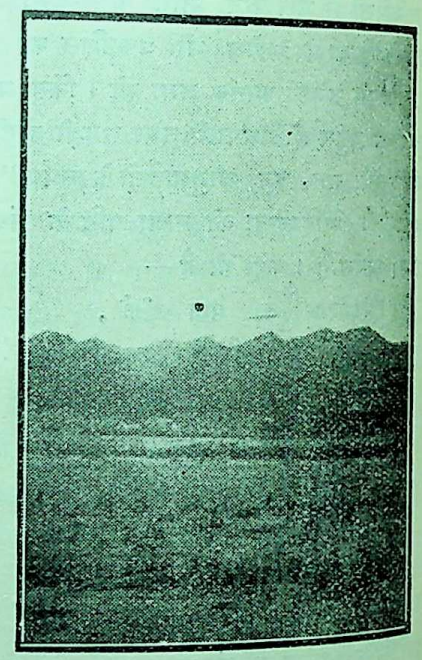

हरद्वार का विहंगम दृश्य

श्रीबदरीनाथधाम के लिये तब हरद्वार तक ही रेल-यात्रा की सीमा थी। अब तो रेल हृषिकेश तक आ गई है। हरद्वार से फिर श्रीबदरीनाथपुरी तक पैदल चलना पड़ता है। केदारनाथ से होकर जाने में बदरीनाथ हरद्वार से कोई २५० मील के लगभग है। हरद्वार से बदरीनाथ पहुँचने में साधारण चाल के यात्रियों को कभी-कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२० से २५ दिन तक लग जाया करते हैं। यात्रा लंबी ही नहीं, कुछ कठिन भी है। दस वर्ष पूर्व, जब मैं पहले आया था, गंगाजी को पार करने के लिये लछमनझूला में एक पुल था; किंतु १९२४ की भयंकर बाढ़ में वह बह गया, और अभी तक नहीं बन पाया है। इसलिये अब की बार हमें नावों पर गंगा पार करनी पड़ी।

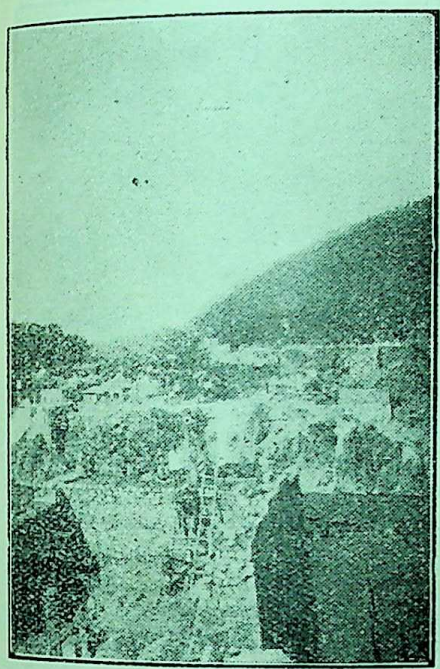

लछमनझूला का पुल बन रहा है
(यहीं से यात्रियों के कष्टों का आरंभ होता है)

लछमनझूला से आगे रास्ता, गंगा की तलहटी में, प्रायः अलखनंदा के समानांतर-सा चला जाता है। गंगा का यह तट कुछ उष्ण भी है। प्रायः प्रत्येक ३ या ४ मील की दूरी पर छोटी-मोटी दूकानें हैं, जिन्हें चट्टी कहते हैं। इन दूकानों पर खाने का सामान महँगा तो मिलता ही है, वह स्वच्छ, स्वादिष्ट और शुद्ध भी नहीं होता। ज़रा स्पष्ट लिखने से हमारी बात पाठकों की समझ में आ जायगी। हृषिकेश में रुपए के चार सेर चावल बिक रहे थे, और कुछ ही दूर आगे चलकर महादेवचट्टी पर उसी क़िस्म के चावल का भाव दो सेर का था।

यों तो तमाम रास्ता छोटी-छोटी दूकानों और साधारण देवालयों—जैसे व्यासमुनि का आश्रम, व्यासघाट इत्यादि—से भरा पड़ा है; पर हरद्वार के पश्चात् गिनती के लायक़ केवल देवप्रयाग ही है। देवप्रयाग अलखनंदा और भागीरथी के संगम पर स्थित है। यहाँ से आगे अब दोनों की सम्मिलित धाराएँ पतितपावनी गंगा के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ रघुनाथजी का एक मंदिर है।

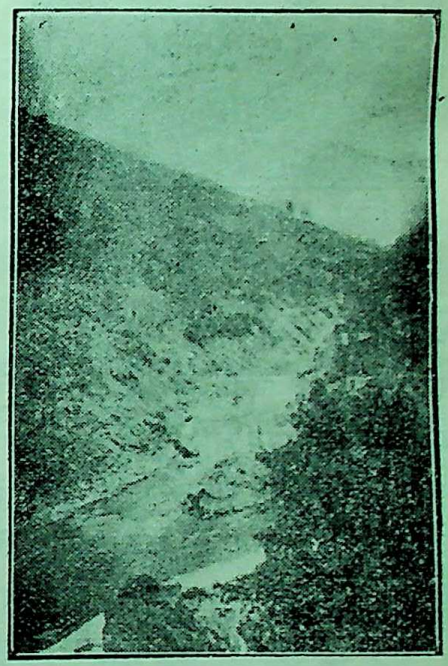

देवप्रयाग का दृश्य
(भागीरथी और अलखनंदा का संगम)

देवप्रयाग स्वयं सुंदर और सुहावना स्थान है। यह देवप्रयागी पंडों का निवास-स्थान है। यहाँ का जलवायु पार्वतीय प्रांतों के ख़याल से कुछ उष्ण है। स्थान में सफ़ाई की बहुत कमी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूँकि मंदिर और देवप्रयाग टिहरी-महाराज के राज्यांतर्गत हैं, इसलिये हम उनके संबंध में कोई आलोचनात्मक बात नहीं लिखेंगे।

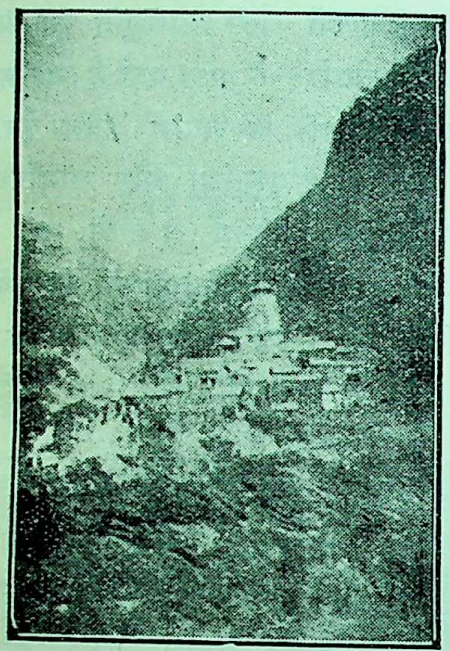

श्रीरघुनाथजी के मंदिर का दृश्य

देवप्रयाग से आगे प्रायः १८ मील की दूरी पर एक सुंदर, सुहावना, सुरम्य और सुस्थित नगर है। इसका नाम श्रीनगर है। यह गढ़वाल के प्राचीन राजाओं की राजधानी था। यहाँ का बाज़ार सुंदर और साफ़ है। इसे देखकर चित्त प्रसन्न होता है। सबसे प्रसन्नता की बात तो यह है कि यहाँ पर फल और शाक-भाजी यथोचित मिल सकती हैं, जो शेष यात्रा में कहीं प्राप्य नहीं। यहाँ आटा, दाल, चावल, दूध, दही इत्यादि भोज्य-पदार्थ अच्छे और प्रचुर तथा उचित दाम में मिल जाते हैं।

श्रीनगर से १९ मील चलकर हम अलखनंदा और मंदाकिनी के संगम पर रुद्रप्रयाग पहुँचे। रुद्रप्रयाग से मंदाकिनी के किनारे-किनारे केदारनाथ के लिये सड़क है। मंदाकिनी का उद्गम केदारनाथ के ही समीपवर्ती पर्वतों में है। केदारनाथ शिवजी के १२ ज्योतिर्लिंगों में से हैं।

केदारनाथ से हम ऊखीमठ और चोपता होते हुए, चमोली पहुँचकर, श्रीबदरीशधाम को पहुँचे।

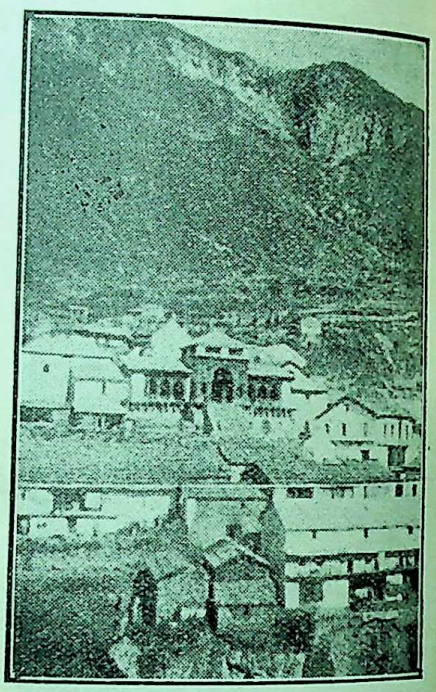

श्रीबदरीनाथ का विहंगम दृश्य

बदरीनाथपुरी बहुत ही सुरम्य, मनोमोहक और चित्ताकर्षक एक छोटा-सा ग्राम है। यहाँ के मकान बड़े अच्छे ढंग के बने हैं। सबसे हृदयहारी दृश्य विष्णुभगवान् के भक्ति-आह्लादकारी मंदिर का है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों तथा सुदूर सिंहल-द्वीप से प्रायः चालीस हज़ार यात्री प्रतिवर्ष यहाँ तीर्थयात्रा के लिये आते हैं। बदरीनाथ वर्ष के अधिकांश में बर्फ़ से ढका रहता है, और मई से लेकर सितंबर तक मनुष्य वहाँ रह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

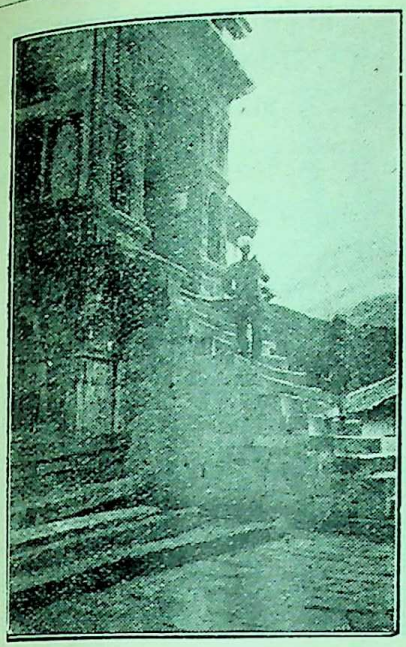

श्रीबदरीनाथ के मंदिर का फ़ाटक

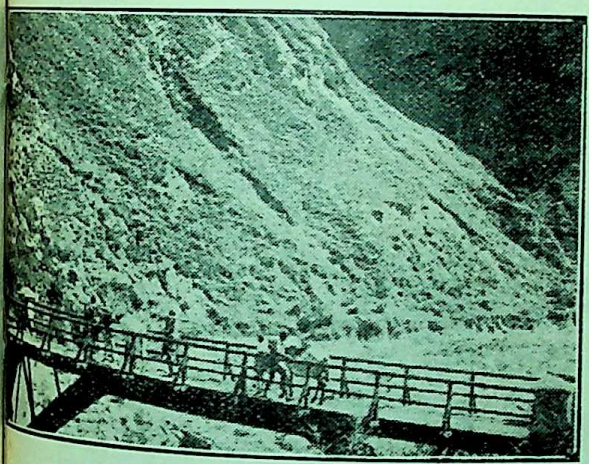

अलखनंदा का पुल

श्रीबदरीनारायण का दर्शन कर लेने पर तो दर्शनार्थी का चित्त भक्ति, सौंदर्य से प्रफुल्लित हो उठता है; किंतु वहाँ के निवासियों से वास्ता पड़ने पर उसका जी खिन्न हो जाता है। यहाँ के रहनेवाले कुछ लोग क्रूर हैं।

बदरीनाथ से कुछ मील दूर पर माणा है। सम्राट् पंचम जार्ज के साम्राज्य की यहीं तक सीमा है। माणा के उस पार फिर तिब्बत का इलाक़ा है। यहाँ की वनस्थली बड़ी रमणीक और देखने योग्य है।

बदरीश-यात्रा कर चुकने पर हम जोशीमठ, चमोली, कर्णप्रयाग, मेलचौरी होते हुए रामनगर में फिर गाड़ी में बैठकर घर को रवाना हुए।

उल्लेखनीय अंतर

इस बार यद्यपि दूरी, भोजन और धूप की कठिनाइयाँ प्रायः पूर्ववत् थीं; किंतु सड़कों की दशा बहुत सुधर चुकी थी। विकट चढ़ाई को कैंचियाँ लगाकर सीधा बनाने की चेष्टा की गई थी। मेलचौरी तक चट्टियों की सफ़ाई की ओर भी समुचित ध्यान दिया गया था। रास्ते में यत्र-तत्र जलाशयों को भी सुरक्षित किया गया था। इन बातों से पता चलता है कि इंजिनियरिंग और सैनिटरी-विभाग के कर्मचारी बेचारे यात्रियों की यात्रा को सुगम बनाने की ओर ध्यान दे रहे हैं। मुझे ऐसी भी आशा है कि प्रांतीय सरकार भी, जहाँ तक उससे बन पड़ेगा, दुःखी यात्रियों की विकट यात्रा को सरल एवं सुविधा-जनक बनाने में कोर-कसर न रक्खेगी। बड़े खेद की बात है कि पुरी में सरकार की ओर से पुलिस आदि का उचित और आवश्यक प्रबंध नहीं है। कहीं चोरी हो जाय, तो २० मील के भीतर हमारी रक्षा करनेवाली अथवा फ़र्याद सुननेवाली मानो कोई सरकार ही नहीं। दुर्भाग्य की बात है कि इन पिछड़े प्रांतों में भी चोरी आदि दुर्गुण अपना घर करने लगे हैं। कम-से-कम पिछले दस वर्ष की अपेक्षा इस समय यह अवश्य ही अधिक है। और कुछ नहीं, तो एक चलते हुए मुसाफ़िर के मन में यह ख़याल हो ही गया है। अतएव यात्रियों को चाहिए कि वे अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपया-पैसा, गहना-ज़ेवर आदि बड़ी सावधानी से रक्खें, अन्यथा उन्हें बड़ा कष्ट और दुःख उठाना पड़ेगा।

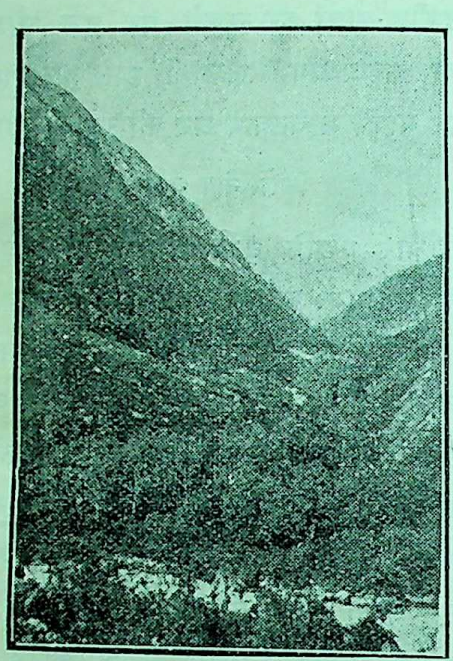

मार्ग का हिमदृश्य (१)

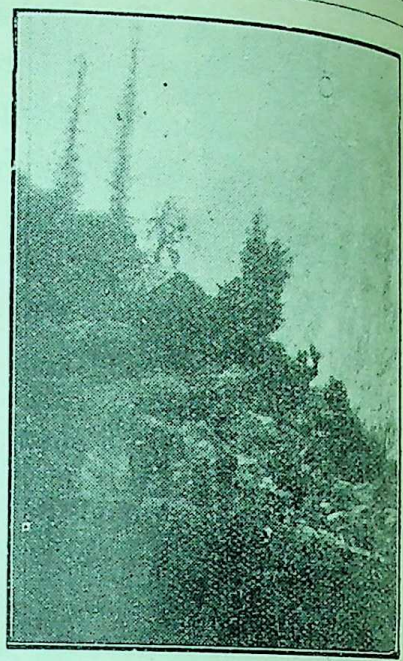

मार्ग का हिमदृश्य (३)

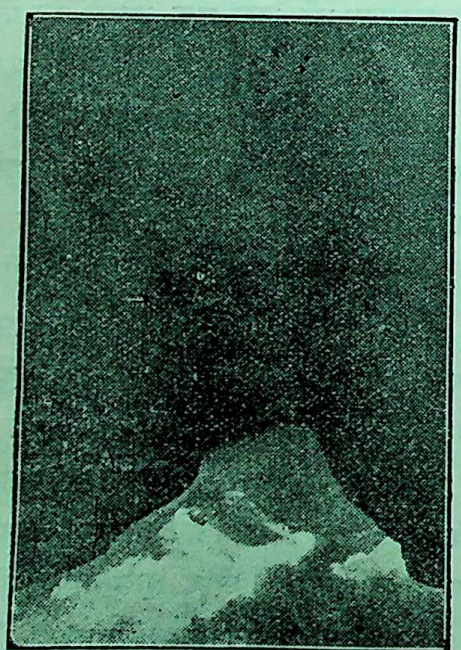

मार्ग का हिमदृश्य (२)

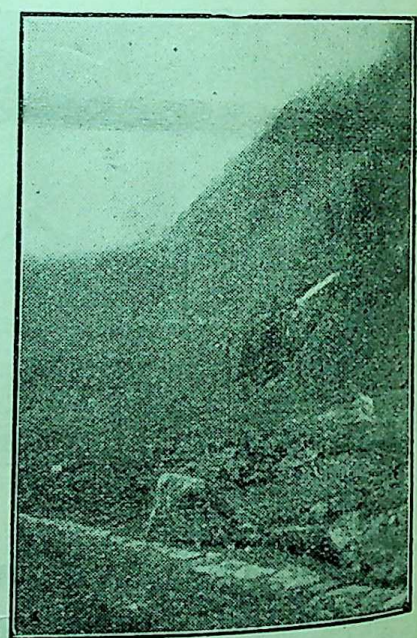

पहाड़ी खच्चर

(नीचे मन्ना-गाँव बसा हुआ है)

सुनते हैं, सरकार की इच्छा हृषिकेश से कर्णप्रयाग तक रेलवे-लाइन ले जाने की है। यदि ऐसा हो, तो यात्रियों का बहुत उपकार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु शायद इसमें व्यापारिक दृष्टि से सफलता की संभावना न हो। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि भारत और बोल्शेविक रूस के बीच में केवल तिब्बत की एक छोटी-सी टुकड़ी है। यदि केवल यात्रियों के ही सुबीते का विचार रक्खा जाय, तो यदि रेल नहीं, तो दिल्ली अथवा किसी दूसरे केंद्र-स्थान से वायुयानों की टोली का प्रबंध कर दिया जाय। *

पीतांबर पंत

सपना ले लो—?

१

ले तंद्रा के प्याले में
मैं बेच रहा हूँ सपना;
कोई क्रय कर सकता है
देकर "चेतन-सुख" अपना।

× × ×

२

चित्रों से भरी हुई है
यह उस महान् की छाया;
जिसके चरणों को तृण बन
नित चूमा करती माया।

३

या मूर्तिमान यह स्मृति है
या है सजीव शुभ आशा;
या आज देह धर आई
मेरी पीड़ा की भाषा?

४

निद्रा के कोमल स्तर पर
या कविता नाच रही है;
छूकर कल्पना-कुसुम की
पंखड़ियाँ जाँच रही है?

५

या यह उनकी बस्ती है
नीरवता के अंचल में;
जो सब कुछ लुटा चुके हैं
पड़ मुग्धापन के छल में?

६

ले लो—ले लो—बस, ले लो,
'चेतन-सुख' देकर ले लो;
फिर छिप जग की आँखों से,
पनपो, हिल-मिलकर खेलो!

श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी"

---

* हिंदी-रूपांतरकार श्रीयुत महेशानंद थपत्याल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना और पराया

(१)

शिवसहाय ने झुँझलाकर कहा—"पिताजी ! यह बात शहर के बच्चे-बच्चे को मालूम है। आप मुझे क्यों व्यर्थ झूठा बना रहे हैं ? याद रखिए, अब मैं पहले-जैसा नादान नहीं रहा।"

ईश्वरीदास ने अपना झुका हुआ सिर ऊपर उठाया, और बोले—"नादान छोड़ तुम बुड्ढे क्यों न हो जाओ, पर हमारी निगाह में तो बच्चे ही रहोगे।"

"बच्चा हूँ ! इसलिये कि तुम लोग मुझे लूटकर खा जाओ। मेरी सारी संपत्ति—पचास लाख की जायदाद—को ख़ाक में मिलाकर ख़ुद गुलछर्रे उड़ाओ, और मुझे पहला-सा नंगा कर जाओ।"

"पचास लाख की क्यों, पचास करोड़ की बताओ। अगर इल्ज़ाम ही लगाना है, तो ज़रा सहूलियत के साथ क्यों न लगाया जाय।"—ईश्वरीदास ने एक व्यंग्य-पूर्ण हँसी हँसकर कहा।

"क्यों कटे पर नमक छिड़कते हो ? किसी के घर में आग लग रही हो, और तुम लोग खड़े-खड़े ताने मारो—मज़ाक उड़ाओ। उफ़ ! मुझे नहीं मालूम था कि मनुष्य इतना हृदयहीन हो सकता है !"

"मज़ाक़ नहीं, सच है। भाई गुरुसहायजी छोड़ ही क्या गए थे। जो कुछ भी उनके पास था, उन्होंने जीते-जी सब उड़ा डाला। सारी रात रंडियों का नाच होता था, महफ़िलें सजाई जाती थीं, और आए दिन वोटिंग-पार्टियाँ होती थीं। दरवाज़े पर ख़ुशामदी टट्टुओं का ठट्ठ जमा रहता था। एक गया, तो दूसरा आया। यार लोग उन्हीं की जेब से खाते थे, और उन्हीं को गाँठ काटते थे। पर तुम्हें ये सब बातें कहाँ मालूम। उनका तो नाम-ही-नाम था।"

"ठीक है, बिलकुल ठीक है। मुझे क्या मालूम। ये सब बातें तो आपको मालूम होंगी, या उस बदमाश, नमकहराम कन्हैयालाल मुंशी को।"

जब ईश्वरीदास ने देखा कि शिवसहाय इस [illegible] हाथ आनेवाला आदमी नहीं, तो उन्होंने [illegible] बदलकर कहा—"आज तक मैंने तुम्हारे लिये जितने [illegible] सहे हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ। तुम्हारे गोद लेने के [illegible] साल बाद ही भाई गुरुसहायजी का देहांत हो गया [illegible] उस समय तुम आठ वर्ष के दुधमुँहे बच्चे थे। [illegible] से मैंने तुमको पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, [illegible] विवाह किया और सदा तुम्हारे सुख में सुखी और [illegible] में दुखी रहा हूँ। गुरुसहायजी के अंतिम शब्द [illegible] अभी तक याद हैं। वह कह गए थे—मैं इस [illegible] बालक को आपकी गोद में छोड़े जाता हूँ। पहले [illegible] यह आपका था, और अब भी आपका ही रहेगा।"

"और, तुमने गोद में पड़े हुए एक अनाथ बालक [illegible] गले पर ही छुरी चलाई। छिः ! बड़ी बहादुरी की !"

ईश्वरीदास ने अनसुनी करके कहा—"रही तुम्हा[illegible] जायदाद, उसका मैंने यथाशक्ति प्रबंध किया। न कन्हैया[illegible] लाल-जैसा चतुर और ईमानदार मुंशी मिलता—भगवान् उसकी आत्मा को शांति दे—और न [illegible] इतना बड़ा काम सँभल पाता। ईश्वर जानता है, [illegible] मैंने तुम्हारी एक पाई भी अन्याय से खाई हो [illegible] इतने पर भी लोग मुझे दोष दें, तो यह संसार [illegible] नियम ही है।"

शिवसहाय अब की बार चुप थे।

ईश्वरीदास ने फिर कहना शुरू किया—"कपड़े [illegible] व्यापार में गुरुसहायजी को कितना टोटा पड़ा था, [illegible] भी तुमसे छिपा नहीं है। एक का न, दो का न, एक [illegible] बत्तीस हज़ार का। उफ़ ! उन दिनों की याद करते हुए [illegible] दिल काँप उठता है। हज़ारों तबाह हो गए, सैकड़ों दि[illegible] लिए होकर घर बैठ गए। भगवान् ने ही लाज रख [illegible] नहीं तो कसर ही क्या रह गई थी। लोग कहते हैं, [illegible] धक्का ही गुरुसहायजी को ले बैठा। इसके पछाड़े हुए [illegible] वह सँभलने ही न पाए। जो कुछ भी हो, वह इस दु[illegible] से चल बसे, और मेरे सिर पर यह कर्ज़ का बोझा [illegible] गए। दो-चार गाँवों की मुट्ठी-भर निकासी भला [illegible] क्या चुका सकती थी। और, सच पूछो, तो [illegible] ही क्या थी। कारिंदे और पटवारियों के मुँह से जो [illegible] बचता है, वह मुक़दमेबाज़ी और मालगुज़ारी [illegible] चला जाता है। कुएँ की मिट्टी कुएँ में ही लग [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मजबूर होकर दो कोठियाँ और चार दूकानें बेचनी पड़ीं। तब कहीं उऋण होने पाया। यह घाव हरा ही था कि यार लोगों ने तुमको चंग पर चढ़ाकर एक आइस-फैक्टरी और खुलवा दी। साल-डेढ़ साल चलकर वह भी टूट गई, और तुम्हारे हाथ मशीन की एक कील भी न लगी। पर इन सब बातों से औरों को क्या पड़ी थी। उन्हें तो बे-सिर-पैर की उड़ाने से मतलब।

ईश्वरीदास ने सोचा था, उपर्युक्त मार्मिक स्पीच शिवसहाय को ठीक राह पर ले आएगी; पर बात उलटी हुई। ईश्वरीदास का छिड़का हुआ पानी शिवसहाय की क्रोधाग्नि में घी होकर पड़ा। मियाँ की जूती मियाँ ही के सिर! मेरा नुक़सान और मेरे ही सिर मढ़ा जाय—इस ख़याल ने उन्हें और भी भड़का दिया। बोले—"आप कहते हैं, मैंने एक पाई भी अन्याय से नहीं खाई। आपने न खाई, अपने लड़कों को खिला दी। चाक़ू खरबूज़े पर पड़े या खरबूज़ा चाक़ू पर, बात एक ही है। हर एक बात के तरीक़े होते हैं। यह भी खाने का एक तरीक़ा है। अच्छा, आप ही बतलाइए, जिस दिन आपके दोनों बड़े लड़के बिशनदास और हज़ूरासिंह आपसे अलग हुए थे, उस दिन उनके पास क्या था? पैंतालीस-पैंतालीस रुपए के दोनों डी० एल्० ऑफ़िस में नौकर थे। अलग होते वक़्त आपने उन्हें सैकड़ों गालियाँ दी थीं, हर तरह से बुरा-भला कहा था। पर घुटना पेट को ही झुकता है। जिनकी यह हालत थी कि जो दिन गुज़रा, वही ग़नीमत, वे अब मोटरों में घूमते फिरते हैं, फ़र्स्ट क्लास में बैठकर सिनेमा देखते हैं, और किसी से कम नहीं। यह सब किसकी करतूत से? किसकी मेहरबानी से? किसके बल पर? आपके। इसे कहते हैं भाग्य।"

शिवसहाय जिस बात को कहने के लिये बहुत देर से आगा-पीछा कर रहे थे, उसे आख़िरकार उन्होंने कह डाला। तीर ठीक निशाने पर लगा। लगते ही ईश्वरीदास तलमला उठे। उन्होंने शिवसहाय को निरा बुद्धू समझ रक्खा था। आज उन्हें मालूम हुआ कि इससे बाज़ी लेना कितना मुशकिल है। वह बात को ख़त्म करने के ढंग पर बोले—"अच्छा, अगर तुम्हारी यही धारणा है कि मैंने तुम्हारे गले पर छुरी चलाई है, तो संसार की कोई भी शक्ति इसे तुम्हारे हृदय से नहीं हटा सकती। मैंने सुना है, तुम मुक़द्दमेबाज़ी पर उतारू हुए हो। मुझे तो विश्वास नहीं होता। अगर यह किसी रूप में सत्य भी हो, तो इतना तो मुझे कहना ही है कि ज़रा सोच-विचारकर क़दम रखना। आगे तुम्हारी मर्ज़ी। ग़रीबों के भी भगवान् हैं।"

इतना कहकर ईश्वरीदास चल दिए।

(२)

भाई गुरुसहायजी लाहौर के इने-गिने रईसों में थे। आप जाति के अरोड़ा थे। आपके दो विवाह हुए थे। दुर्भाग्यवश दोनों ही स्त्रियाँ चल बसी थीं। पहली दो साल का एक बच्चा छोड़कर और दूसरी प्रसूत की असह्य वेदना से। गुरुसहायजी को अब संसार शून्य और निराधार-सा प्रतीत होने लगा था। अपनी अज्ञात और विषम जीवन-यात्रा में अगर उन्हें कोई पथ-प्रदर्शक ज्योति दिखलाई पड़ती थी, तो वह केवल मदन का नन्हा-सा मुख था। वही उनके बुढ़ापे की लकड़ी थी। अगर उन्हें कोई तीसरे विवाह की सलाह देता, तो वह मदन के सिर पर हाथ फेरकर कहते—"परमात्मा इसे बनाए रक्खे। मेरे लिये तो यही सर्वस्व है। परंतु 'यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति'। शहर में अचानक मोतीझिरा फूट पड़ा, और उसका पहला शिकार मदन बना। गुरुसहायजी पर अनभ्र वज्रपात हुआ। उनके पास लाखों की संपत्ति थी, शहर में बीसों मकान थे, कई एक कोठियाँ थीं, शहर के बाहर बड़े-बड़े आबाद बग़ीचे और दो-चार गाँव भी थे। उनके मरने के बाद इन सबका उत्तराधिकारी कौन होगा? यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसका उत्तर पाने के लिये वह सदा बेचैन रहते थे। कभी वह इस विपुल संपत्ति को किसी संस्था को दान देने की आयोजना करते, और कभी इसके सूद से एक अनाथालय खोलने का विचार करते। पर न-जाने क्यों उनको संतोष न होता था। उनकी दशा ठीक उस बालक की-सी थी, जो बार-बार मिट्टी का घरौंदा बनाता है, और बार-बार उसमें कुछ फ़ी निकालकर उसे मिटा देता है। शायद वह अपनी स्मृति को किसी निर्जीव रूप में न छोड़कर सजीव रूप में छोड़ जाना चाहते थे। आख़िर उन्होंने इस झगड़े को सदा के लिये तोड़ डालना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित समझा, और ईश्वरीदास के सबसे छोटे लड़के को गोद ले लिया। यह पौदा अच्छी तरह जमने भी न पाया था कि दो साल बाद उनकी ख़ुद ही परलोक-यात्रा के लिये तैयारियाँ हो गईं। चलते वक़्त उन्होंने ईश्वरीदास को बुलाया और बिना कुछ कहे-सुने शिव-सहाय को उन्हें सौंप दिया।

गुरुसहायजी के मरने के बाद शिवसहाय के भाग्य-विधाता ईश्वरीदास बने। वही उसकी जायदाद के सोलहों आने मालिक और सर्वेसर्वा थे। जो कुछ करते, वही करते; और था ही कौन? ऐसी दशा में नेकनियत रहना कहाँ तक संभव था—ख़ासकर ईश्वरीदास-जैसे व्यापारी के लिये, जिसे रुपए की हमेशा ज़रूरत रहती हो। कुछ दिन तक तो उन्होंने अपनी नियत ठीक रखने की कोशिश की और सफल भी हुए; परंतु अंत में लोभ की विजय हुई। कर्तव्य और लालच के अंतर्द्वंद्व ने उन्हें किंकर्तव्य-विमूढ बना रक्खा था—उनके हृदय में हलचल मचा रक्खी थी। वह इसे कब तक सहन करते? आख़िर उन्होंने एक दिन हिम्मत बाँधी और इस बंधन को तोड़ डाला। बस, अब क्या था। पाप-पंक में पैर रखने की देर थी कि उन्होंने अपने को उसमें आकंठ निमग्न पाया। वह जानते थे कि इसका परिणाम बुरा है, पर विवश थे। जितना ही वह इस पंक से बाहर निकलने की चेष्टा करते थे, उतना ही वह और नीचे धँसते चले जाते थे।

मतलब यह कि दस-बारह वर्ष तक ईश्वरीदासजी ने ख़ूब लूटपाट की। गुरुसहायजी के समय का एक मुंशी था कन्हैयालाल। उसको भी उन्होंने माया-जाल में फँसा कर अपनी तरफ़ मिला लिया। परंतु वह इस अमूल्य अवसर का चिरकाल तक उपयोग न कर सका, और शीघ्र ही इस संसार से बिदा हो गया। अब ईश्वरीदासजी का मार्ग और भी निष्कंटक हो गया। लगे खुल कर खेलने। अगर किसी कोठी का चार सौ रुपया भाड़ा आता, तो वह हिसाब-बही में तीन सौ ही जमा करते। बाक़ी उनकी पाकेट में जाता। जो दूकान गुरुसहायजी के सामने साठ में उठती थी, उसको वह अब दस कम में उठाते, और तीस की रसीद लिखते। शहर में अब उनकी प्रतिष्ठा पहले से कहीं बढ़ी-चढ़ी थी। वही ईश्वरीदास, जो कुछ दिन पहले एक मध्यम-श्रेणी के आदमी और साधारण व्यापारी समझे जाते थे, अब लाहौर के एक-मात्र रईस थे। उनका खान-पान, बैठा-उठी, आहार-व्यवहार, सब बड़े आदमियों के साथ था। उनके दोनों बड़े लड़के, जिनकी कुपात्रता का वह सदा रोना रोया करते थे, अब उनके दाहने हाथ थे। उनकी कृपा से अब उन्होंने 'बिशनदास एंड हज़ूरासिंह-एसिड-कंपनी' खोल ली थी, और हर तरह से चैन कर रहे थे।

परंतु यह चाँदनी चार दिन की थी। ईश्वरीदास के क्षणिक राज्य की अवधि आ चुकी थी। शिवसहाय सवाल क्या हुआ, मानो सोते से जाग उठा। आँखें खुलीं तो देखा, घर में प्रलय मची हुई है। उसने इसके घातक परिमाणुओं को झट से निकालकर बाहर फेंक दिया। अब वहाँ भीषण अंधकार के स्थान पर निर्मल आलोक था—कर्णभेदी कोलाहल की जगह शांति का अखंड साम्राज्य।

ऊपर लिखी बातें एक दिन स्वर्गभ्रष्ट ईश्वरीदास और उनके पुत्र शिवसहाय में हो रही थीं। बूढ़ा सुबह की फिराक़ में अपने पुत्र की कोठी पर आया था।

(३)

शाम को पाँच बज चुके थे। शिवसहाय अपने कमरे में बैठे थे। सामने की मेज़ पर कई बहियाँ और पुराने काग़ज़ पड़े हुए थे। वह सोच रहे थे—मनुष्य की स्वार्थ-भावना कितनी प्रबल होती है। इस पिशाचिनी का माया-मंत्र उसे कितनी जल्दी अपने वश में कर लेता है। यह वह चुंबक है, जिससे एक बार स्पर्श होते ही मनुष्य का रोम-रोम उसका दास बन जाता है। उसके चिरसंचित एवं बार-बार कसौटी पर कसे हुए सिद्धांत, पर्वत के समान अचल पारस्परिक संबंध इसके सामने, अग्नि के आगे मोम की तरह, क्षण-भर में पानी होकर बह जाते हैं। अगर यह न होती, तो संभव है, मनुष्य की जीवन-समस्या इतनी दुरूह न होती। जिसने मुझे इस संसार में जन्म दिया है, जिसकी गोद में खेल-खाकर मैंने अपना बचपन बिताया है, उसके साथ मुझे यह घृणित व्यवहार करना पड़ेगा, यह किसे मालूम था। परंतु इसमें मेरा क्या दोष है!

शिवसहाय इसी उधेड़-बुन में लगे हुए थे कि नौकर ने आकर कहा—"महाराज! आपसे बाबूजी मिलने आए हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कौन, बाबू दौलतराम ?"

"हाँ"

"अच्छा, बुला लाओ।"

बाबू दौलतराम लाहौर के एक वयोवृद्ध वकील और शिवसहाय के ससुर थे। गुरुसहायजी के सामने ही आपकी लड़की के साथ शिवसहाय का संबंध निश्चित हो गया था। आप उनके सच्चे हितैषी और शुभ-चिंतक थे।

बाबू दौलतराम के कमरे के अंदर प्रवेश करते ही शिवसहाय कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए और प्रणाम कर बोले—"आइए, पधारिए, आज तो कई दिन बाद दर्शन हुए।"

दौलत०—हाँ, जालंधर चला गया था—दो दिन के लिये। वहाँ एक होटल खोल दिया है; बीच-बीच में उसकी देखरेख भी करनी पड़ती है। कोई विश्वास-पात्र आदमी मिलता नहीं, जो वहाँ के काम को सँभाल लिया करे। क्या करूँ, बड़ी मुसीबत में जान फँसी हुई है।

शिव०—आजकल वहाँ कौन है ?

दौलत०—अभी तो बेचारा शंकरलाल ही काम कर रहा है, पर वहाँ ज़्यादा दिन टिकनेवाला नहीं। उसके पैर में सनीचर है।—और, कोई नई ख़बर ?

शिव०—आज सबेरे आए थे।

दौलतराम ने विस्मित होकर पूछा—कौन, ईश्वरी-दासजी ?

शिव०—जीहाँ।

दौलत०—मैंने कहा था न तुमसे। अच्छा, क्या कहते थे ?

शिव०—कहते थे, मैंने तुम्हारी एक पाई भी अन्याय से नहीं खाई है।

यह सुनते ही दौलतराम खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—ठीक है! और कुछ ?

शिव०—कहते थे, अगर मुक़दमेबाज़ी पर ही उतारू हुए हो, तो ज़रा सोच-समझकर क़दम रखना। ग़रीबों के भी भगवान् हैं।

दौलत०—यह सब बंदर-घुड़की है। तुम्हें मालूम नहीं, बुड्ढा बड़ा चालबाज़ है। उसके चाटे रोंगटे नहीं जमते।

शिव०—जो कुछ भी हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि वे तीनों बाप-बेटे हमारे विपक्ष में लड़ने के लिये पूरी तरह पर आमादा हैं।

दौलत०—हुआ करें। तुम्हें डर किस बात का है ? तुम्हारे पास तो पूरे सबूत हैं।

शिव०—हाँ, मैं एक बात तो आपसे कहना भूल ही गया।

यह कहते वक़्त शिवसहाय के मुख पर एक आशा-पूर्ण उल्लास की मधुर रेखा दौड़ गई।

दौलतराम ने कुतूहल-पूर्ण दृष्टि से शिवसहाय की तरफ़ देखते हुए कहा—क्या ?

शिव०—यह कि उनका एक पत्र मिला है।

दौलत०—किसके नाम है ?

शिव०—लीजिए, यह देखिए।

यह कहकर उन्होंने दौलतराम के हाथ में एक पत्र दे दिया। उसमें लिखा था—

"कठला

२९ फ़रवरी, १९१२

प्रिय मुंशीजी,

आपका पत्र आया। हाल मालूम हुआ। मेरे आने का अभी कुछ ठीक नहीं है। यहाँ के काश्तकार बड़े बद-ज़ात हैं। आज मुझे चार दिन यहाँ पड़े हुए हो गए, एक पाई भी वसूल नहीं हुई है। यहाँ का झगड़ा निपट जाने के बाद मेरा विचार आगे जाने का है। आप मेरी राह न देखें, और रामकलीवाले मकान की शीघ्र मरम्मत शुरू कर दें। फ़र्किन साहब अगर कोठी लेना चाहें, तो साढ़े तीन सौ तक मामला तय कर देना। दिल्लीवाले विश्वंभरनाथजी से चौक की दोनों दूकानों का पचास रुपए के हिसाब से सौ रुपए भाड़ा ले लेना और तीस के हिसाब से साठ की रसीद काट देना। उनका परसों का वादा है। जहाँ तक हो सकेगा, मैं शीघ्र ही लौटने की कोशिश करूँगा। इस पत्र को फाड़कर फेंक देना।

भवदीय—

ईश्वरीदास"

दौलत०—अब मालूम पड़ेगा। बच्चा कहाँ निकलकर जायँगे।

शिव०—न-जाने कैसे यह पत्र उस सत्यानाशी मुंशी के चंगुल से बच गया; नहीं तो वह ऐसी ग़लती करने वाला आदमी नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

पिता-पुत्र में अभियोग लाहौर की जनता के लिये एकदम नई बात थी। वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक सिवा इसके और कोई चर्चा ही न थी। अगर अधिकांश लोग शिवसहाय के काम को न्याय-पूर्ण बतलाते थे, तो बूढ़े पिता की सफ़ेदी पर रहम करनेवालों का भी अभाव न था। बिशनदास और हज़ूरासिंह के लिये तो घर से बाहर पैर रखना मुशकिल हो गया था। अगर कभी बाज़ार में निकल जाते, तो लोग आपस में कानाफूसी करने लग जाते। कहनेवाले तो यहाँ तक कह जाते थे कि बहुत हराम का माल मारा है, अब सब आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। बेकारों को वक़्त काटने के लिये कई एक दिन का ख़ासा मसाला मिल गया था।

अस्तु, मुक़दमा शुरू हुआ। तारीख़-पर-तारीख़ पड़ने लगी। ईश्वरीदास के पास रुपयों की कमी न थी। ग़ल्ले के व्यापारी थे। हाल ही बीस हज़ार का एकदम मुनाफ़ा हुआ था। इस मुक़दमे के लिये उन्होंने दो सौ रुपए रोज़ पर दो अँगरेज़-बैरिस्टर नियुक्त किए थे। उनका ख़याल था कि गौरांग-प्रभुओं का असर हाकिमों पर ज़्यादा पड़ता है। पाप की कालिमा को वह रुपए की सफ़ेदी से ढकना चाहते थे।

पेशीवाले दिन कचहरी में इतनी भीड़ होती कि खड़ा होना मुशकिल हो जाता। क्या ग़रीब क्या अमीर, सभी को इस विषय में एक अनिर्वचनीय कुतूहल था। कुतूहल मुक़दमे के कार्यक्रम में था, परिणाम में नहीं। परिणाम का अनुमान तो जनता बहुत दिन पहले ही कर लेती है, पीछे वह सत्य निकले या असत्य। अब की बार वह एक स्वर में कह रही थी कि शिवसहाय की विजय होगी।

हुआ भी वही। सबसे पहले रसीद-बहियाँ और घर के बहीख़ाते पेश किए गए, और गुरुसहायजी के समय का और तब के भाड़े का मिलान किया गया। फिर वे दूकानदार तलब कराए गए, जिनसे मिलकर ईश्वरीदास ने अपना घर भरा था। इसके बाद वह पत्र पेश किया गया, जिसमें उन्होंने अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी थी। और, सबसे अंत में पूर्णाहुति के तौर पर, शिवसहाय के वकील ने एक मार्मिक वक्तृता दी, जिसमें उसने बतलाया कि दस-बारह वर्ष के लंबे अरसे में एक नाबालिग़ की ज़ायदाद से, नियत बिगड़ने पर, क्या-क्या और किस-किस तरह फ़ायदा उठाया जा सकता है। हाकिम वादी की तरफ़ पहले ही से झुका हुआ था। फ़ैसला सुना दिया गया। ईश्वरीदास पर पचास हज़ार की डिगरी हो गई।

(५)

छः वर्ष बीत गए।

मुक़दमे के बाद ईश्वरीदास की हालत गिरती ही चली गई। अपने मुक़दमे की पैरवी में उनका जो कुछ ख़र्च हुआ, उसके अलावा मुद्दई का ख़र्च भी उन्हीं के सिर पड़ा, और फिर पचास हज़ार की डिगरी। इस भारी रक़म के अदा करने के बाद उन्हें मालूम हुआ कि अब वह वही ईश्वरीदास रह गए हैं, जो दस-पंद्रह वर्ष पहले थे, बल्कि उससे भी गए-बीते।

डिगरी तो जैसे-तैसे अदा हो गई, पर कर्ज़ का बोझा सिर पर छोड़ गई। आज से ६-७ वर्ष पहले, जब उनका सितारा चमक रहा था, दस हज़ार रुपयों का नाम सुन कर उनके कान पर शायद जूँ भी न रेंगती। उन दिनों लक्ष्मी उनके इशारों पर नाचती थी। अगर राह-चलते से कह देते, तो वह बिना पूछे-ताछे दस हज़ार की थैली उनके पैरों पर उलट देता। परंतु आज भाग्य का पाँसा पलट गया था। लोगों में उनकी साख उठ गई थी। दस हज़ार तो क्या, दस रुपए भी उनके नाम पर आज कोई देने को तैयार न था। वर्षों के कठोर परिश्रम और अध्यवसाय से बनाया हुआ विपुल वैभव का गगनचुंबी प्रासाद समय का एक हलका-सा झोंका भी न सह सका।

बिशनदास और हज़ूरासिंह का उनके यहाँ आना-जाना उसी दिन से बंद हो गया था, जिस दिन उन्होंने उनसे डिगरी के आधे रुपए देने के लिये कहा था। उन्होंने लोअर-मालरोड पर अब एक कोठी ख़रीद ली थी, और वहीं पर सकुटुंब रहते थे। ईश्वरीदास का वे नाम लेने से भी अब डरते थे। माया ने स्नेह पर परदा डाल दिया था।

ईश्वरीदास जब यह देखते, उनके कलेजे पर बर्छियाँ चल जातीं। गुरुसहायजी के देहांत के बाद उन्होंने कपट और विश्वासघात का जो घृणित नाटक खेला था, एक अबोध हृदय को फँसाने के लिये पाप का जो जाल रचा था, वह क्या अपने लिये? संसार में वह केवल दो प्राणी थे—एक वह, दूसरी उनकी स्त्री। दो पेटों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये यह तूल बाँधने की—यह पाप का बोझा सिर पर लादने की—क्या आवश्यकता थी। परंतु उनका लक्ष्य तो कुछ और ही था। वह अपने तीनों लड़कों को सुखी और समृद्धिशाली देखना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो कुछ नहीं करना चाहिए था, वह भी उन्होंने किया। दूसरों को धोखा दिया, झूठ बोले, विश्वासघात किया और आज पाई-पाई के लिये मोहताज हो रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह बेईमान थे, परंतु उनकी बेईमानी के पीछे ईमानदारी छिपी हुई थी। वह पापी थे, परंतु उनके पाप में स्वार्थ की नारकीय गंध नहीं थी।

इन विचारों से ईश्वरीदास के उद्विग्न हृदय को कुछ सांत्वना मिल जाती; परंतु जब वह अपने पुत्रों की करतूतों की याद करते, तो उनके शरीर का ख़ून उबलने लगता और वह पद-दलित सर्प की भाँति गरम-गरम साँसें लेने लगते थे। वह सुना करते थे कि दुःख में कोई किसी का साथ नहीं देता। आज यह प्रत्यक्ष उनके सामने था। जिनको वह संसार में अपना कह सकते थे, आज उन्होंने भी उनका साथ छोड़ दिया था। एक तो वह थे, जो दूसरों की शुभाकांक्षाओं की वेदी पर अपनी प्रतिष्ठा का बलिदान कर चुके थे; दूसरे बिशनदास और हज़ूरासिंह थे, जो उनकी तरफ़ निगाह उठाकर देखते भी न थे। आह! अगर उन्हें ऐसा मालूम होता—अगर उन्हें यह मालूम होता कि दुनिया भलाई का बदला इस तरह दिया करती है, तो उन्होंने कभी का इंतिज़ाम कर लिया होता। अगर आज उनके पास दस-पंद्रह हज़ार की गाँठ होती, तो वही, जो आज उनकी तरफ़ आँख उठाकर देखते भी नहीं थे, कुत्ते की तरह उनके मुँह की तरफ़ ताका करते। परंतु वह स्वर्णावसर उनके हाथ से निकल चुका था। उन्हें जब पिछले ज़माने की याद आती, तो वह हाथ मल-मलकर रह जाते। उनकी दशा ठीक उस फ़क़ीर की-सी थी, जो स्वप्न में अपने को राजा बना हुआ देखकर फूला नहीं समाता है; किंतु निद्रा-भंग होने पर अपने को फिर उन्हीं फटे-पुराने टाटों पर पड़ा हुआ पाता है, जो सदा से उसके भाग्य में बदे हैं।

दोपहर का समय। गरमियों के दिन। ईश्वरीदास ने बाहर से आकर बैठक का दरवाज़ा खोला ही था कि उनकी स्त्री ने अंदर से आकर कहा—"चलो, कुछ खा-पी लो, सबेरे के गए हो।"

ईश्वरीदास अपना चुस्त पाजामा उतारने में लगे हुए थे। उन्होंने शायद सुना नहीं। बोले—"बड़ी तेज धूप पड़ रही है। लाहौर-जैसी गरमी शायद ही कहीं पड़ती हो। आग बरस रही है।"

ईश्वरीदास भोजन करने बैठ गए। उनका मुँह इस समय विभिन्न विकारों का क्रीड़ा-स्थल बना हुआ था। जिस प्रकार बरसात में आँधी, मेह और अंधकार बारी-बारी से उमड़-उमड़कर आते और फिर आकाश में विलीन हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार चिंता, विषाद, नैराश्य और क्रोध थोड़ी देर के लिये उनके मुँह पर अपना रंग दिखलाकर वहीं अदृश्य हो जाते थे। वह देख रहे थे कि किस प्रकार उनके हाथ और मुँह मशीन की तरह अपना काम कर रहे हैं, और किस प्रकार उनका मस्तिष्क कुछ और ही समस्याओं को हल करने में लगा हुआ है। शांति का यह नीरव अट्टहास रामो के निर्बल हृदय से नहीं सहा गया। वह जानती थी कि ईश्वरीदास लच्छीशाह के यहाँ गए थे। वह यह भी जानती थी कि उनसे कुछ रुपया उधार माँगने गए थे; परंतु फिर भी पूछने लगी—"कहाँ गए थे?"

"लच्छीशाह के यहाँ।"

"क्या कहा?"

"कहते थे, बाज़ार बड़ा मंदा है, आमदनी की कहीं से सूरत नहीं। इधर से आता है, इधर चला जाता है। क्या करूँ, लाचार हूँ।"

"हज़ार-दो हज़ार की बात हो, तो कोई दे भी दे। एकदम दस हज़ार आजकल के ज़माने में कौन दे सकता है।"

"यह तो ठीक है, पर मैं मुफ़्त तो नहीं माँगता। कह दिया बाबा, मकान लिखा लो, जो मन में आवे, सूद लगा लो; इससे ज़्यादा और क्या हो सकता है। यह मकान क्या दस हज़ार का भी न होगा।"

"न हो, तो हीरालाल के ही पास जाओ। शायद कहने-सुनने से कुछ थोड़े दिन के लिये और मान जायँ।"

"उस बेचारे का भी क़सूर नहीं। आज-कल करते-करते जब छः साल गुज़र गए और उसके हाथ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधेला भी न लगा, तब उसने नालिश कर दी। रुपए-पैसे के मामले में आजकल कौन किसका लिहाज़ करता है।"

"तुम्हारी आँखें भी तो अब खुली हैं। अब तक हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहे।"

ईश्वरीदासजी के पिछले छः वर्षों की यह बड़ी तीव्र आलोचना थी, वह इसका क्या जवाब देते? रामो ने फिर कहा—"अच्छा, अगर तुम्हें रुपया मिल भी जाय, तो क्या करोगे? फिर भी तो वही रोना रहेगा।"

बात सच थी। ईश्वरीदास झुँझला उठे। बोले—"करूँगा क्या? यह आई हुई बला सिर पर से टल जायगी; नहीं तो मुँह दिखाने लायक़ भी नहीं रहूँगा। (कैलेंडर की तरफ़ देखकर) मालूम है, आज ९ तारीख़ हो गई। आज पंद्रहवें दिन बर्तन-भाँडे सब नीलाम हो जायँगे।"

ईश्वरीदास जब भोजन करके चलने लगे, तब रामो ने कहा—"सुनो तो सही, एक बात कहती हूँ।"

ईश्वरीदास ठहर गए। बोले—"कहो।"

"एक बार बिशनदास के पास जाकर भी देख लो, हर्ज क्या है। मतलब पड़ने पर गधे को भी बाप बना लिया करते हैं।"

ईश्वरीदास ने उत्तर में केवल हँस दिया। इस हँसी में घृणा और उपेक्षा, दोनों का भाव मिला हुआ था। रामो समझ गई। बोली—"मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम जाकर उनसे रुपए माँगो। रुपए तो वह दे चुके; नहीं तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता।"

ईश्वरीदास—"तो?"

रामो—"मेरा मतलब था कि बिशनदास और सेठ हीरालाल का बहुत हेल-मेल है। वह उनकी कंपनी के हिस्सेदार भी रह चुके हैं। अगर बिशनदास उनके ऊपर दबाव डाले, तो संभव है, वह कुछ दिन के लिये और मान जायँ।"

ईश्वरीदास की समझ में बात कुछ-कुछ आ गई। "अच्छा, इस पर विचार करूँगा", यह कहकर वह चल दिए।

आपत्तियाँ मनुष्य को आशावादी बना देती हैं। डूबता हुआ मनुष्य तिनके की तरफ़ हाथ फेंकता है कि शायद वह मुझे बचा ले। ईश्वरीदास के ऊपर इस समय निराशा के काले बादल मँडरा रहे थे। इस गहन अंधकार में आशा की एक क्षीण ज्योति भी उनके लिये वरदान के तुल्य थी। उन्होंने सोचा—रामो ठीक कहती थी। एक बार बिशनदास से भी मिल आना चाहिए। देखूँ, क्या कहता है। मैं उससे कोई रुपए तो माँगता ही नहीं। दो शब्द मेरे लिये हीरालाल से कह दे, बस, यही चाहता हूँ। अगर ख़ाली ज़बान हिला देने से किसी का भला हो सकता है, तो इसमें उसका क्या बनता-बिगड़ता है? अगर उससे इतना भी नहीं हो सकता, तो किसी की ज़बरदस्ती नहीं।

शाम को ईश्वरीदास बिशनदास और हज़ूरासिंह से मिलने के लिये मालरोड की तरफ़ जा रहे थे। रास्ते में वह यही सोचते जाते थे कि जा तो रहा हूँ, पर कहूँगा क्या? यह कि मेरे ऊपर बड़ी आपत्ति आई है; कुछ सहायता करो? नहीं, यह तो एक भिक्षुक की तरह हाथ पसारना होगा। मैं अपनी आत्मा का इतना अधःपतन स्वप्न में भी नहीं देख सकता। भाग्य के साथ मैंने अपनी प्रतिष्ठा तो नहीं गँवा दी! मैं चाहे जितना निर्धन क्यों न हो जाऊँ, रहूँगा आख़िर उनका पिता ही, और वह चाहे जितने धनाढ्य क्यों न हो जायँ, उनको मुझसे हर तरह से दबना ही पड़ेगा। तो फिर कहूँगा क्या? यह कि जिस तरह भी हो, मुझे इस फंद से छुड़ाओ; मेरी इज़्ज़त तुम्हारी ही इज़्ज़त है। परंतु इन सब बातों तक तो नौबत ही नहीं आने पाएगी। वह मुझे देखते ही जान जायँगे कि मकान की बाबत बातचीत करने आए हैं। नीलाम का ढिंढोरा, कई दिन हुए, शहर में फिर चुका है।

ईश्वरीदास चलते-चलते ठहर गए। कोठी थोड़ी ही दूर रह गई थी, परंतु उनकी शंकाओं का अभी अच्छी तरह से निवारण नहीं हुआ था। सहसा हृदय में विचार उठा—अगर मना कर दिया, तो फिर क्या रह जायगा? आह! मरना हो जायगा। मुख का मुँह बर्फ़ की तरह सफ़ेद हो गया, और वह शून्य भाव से सामने आते हुए आदमियों की तरफ़ ताकने लगे, जैसे वे कोई अदृष्ट-पूर्व जीव हों। परंतु उन्हें याद आया—मैं क्यों मरूँ? मरें वे, जिन्होंने सदा के लिये अपनी आँखों पर ठीकरा रख लिया है। मैं किसी की धौंस में तो बसता ही नहीं। मैंने ही अपना पेट काटकर आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका घर न भरा होता, तो यह बँगले कहाँ से बन जाते, यह फुलवारियाँ कहाँ से लग जातीं ? अगर आज किसी बाहर के आदमी के साथ इतना किया होता, तो वह आजन्म मेरा दास बनकर रहता । ईश्वरीदास ने आँखें उठाकर देखा, तो सामने बिशनदास की मोटर खड़ी थी । वह सपत्नीक कहीं सैर करने जा रहे थे। बिशनदास ने ईश्वरीदास को अपनी तरफ़ आते हुए देखा, तो झट से मोटर से उतर पड़े और हाथ जोड़कर कहने लगे—"बड़ी कृपा की ।"

ईश्वरीदास ने बिशनदास को एक बार सिर से पैर तक सरसरी निगाह से देखा। उस समय वह कोट-पतलून पहने, सिर पर साहबी टोप लगाए, मुँह में एक मोटा-सा सिगार दबाए और हाथ में एक पतली-सी छड़ी लिए बीसवीं सदी के फ़ैशन का नया एडीशन थे । उधर सुशीला का वेश-भूषा भी इसके अनुकूल ही था । उसके शरीर पर एक रेशमी साड़ी, अंदर एक क़ीमती जाकिट, हाथ में गोल्डेन वाच और पैरों में ऊँचे एड़ीवाले जूते थे । परंतु विदेशी सभ्यता अभी हृदय को पूर्णतः नहीं रंग सकी थी । लज्जा, किसी मग्न प्रेम की स्मृति की भाँति, वहाँ अभी बाक़ी थी । सुशीला ने जब देखा कि आगंतुक व्यक्ति और कोई नहीं, किंतु स्वयं उसके ससुरजी हैं, तो वह भी मोटर से उतर पड़ी और पीठ फेरकर दूसरी तरफ़ खड़ी हो गई ।

ईश्वरीदास कुछ देर तक चुप रहे, मानो किसी ने जादू कर दिया हो, और फिर बोले—"मुझे कुछ कहना था ।"

बिशनदास ने लापरवाही से कहा—"कहिए ।"

ईश्वरी०—एकांत में चलिए ।

बिशनदास ने ऊपर को सिर उठाया—ठीक उसी तरह जिस तरह रईस लोग किसी दुरूह समस्या पर विचार करते वक़्त उठाया करते हैं—और कुछ देर तक सोचने के बाद बोले—मुझे ठीक साढ़े छः बजे एलफ़िंस्टन-थिएटर पहुँचना है । रायसाहब ख़ुद आज सवेरे आए थे, और आने के लिये विशेष आग्रह कर गए हैं। कहते थे—'हंचबैक ऑफ़ नोट्रेडम का खेल होगा; बिलकुल नई फिल्म है, विलायत से सीधे यहीं आ रही है, और आज आख़िरी दिन है ।' (कुछ देर ठहरकर) अगर आप मिनट-दो मिनट बातें करना चाहते हैं, तो कर सकते हैं । (घड़ी की तरफ़ देखकर) छः बजकर बीस मिनट हो गए हैं ।

ईश्वरीदास को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने नीचे से आग लगा दी हो । उनके होंठ ज्येष्ठ की लू में सूखे पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगे । बिशनदास ने उनकी तरफ़ देखा, तो सहम गए । उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं, मानो इन्हें भस्म करने के लिये जलते हुए दो अँगारे हों । कुछ देर तक वह उसी तरह खड़े रहे । फिर बोले—"अच्छा, तो आज्ञा हो, मुझे देर हो रही है ।"

मोटर चल पड़ी, और क्षण-भर में इधर से उधर आती-जाती हुई और मोटरों में मिलकर अदृश्य हो गई

ईश्वरीदास कुछ देर तक खड़े-खड़े उस दौड़ती हुई मूर्तिमती आशा की तरफ़ टकटकी लगाए देखते रहे, और फिर घर लौट आए ।

(६)

एक-एक करके दिन बीत गए, परंतु रुपयों का प्रबंध न हुआ । ईश्वरीदास से जो कुछ बन पड़ा, सब उन्होंने किया । ख़ुद हीरालाल के यहाँ गए, मिन्नतें कीं, पैरों पर पगड़ी रख दी कि अब तो लाज तुम्हारे हाथ है, जैसे बने वैसे बचा लो; परंतु उनकी सब चेष्टाएँ निष्फल हुईं, और अंत में वह दिन आ गया, जब कुर्क़अमीन उनके दरवाज़े पर खड़ा हुआ नीलाम की बोली बोल रहा था, और वह चुपचाप खड़े-खड़े अपने घर का विध्वंस देख रहे थे । निर्धनता उनके हाथ-पैरों को बाँधे हुई थी । उनकी दशा ठीक उस हरिणी की-सी थी, जो अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे बच्चे का वध देखती हो, और प्रतिकार के बदले विवशता के दो गर्म आँसू बहाकर रह जाती हो ।

मकान के सामने लोगों की भीड़ लगी हुई थी । दफ़्तर जानेवाले बाबू, कॉलेज के विद्यार्थी, व्यवसायी, फेरीवाले चलते-चलते थोड़ी देर के लिये वहाँ ठहर जाते और अपनी आकांक्षा की निवृत्ति हो जाने पर फिर अपनी राह लेते । बीसों आदमी मकान के अंदर घुसे हुए थे । कोई कहता—मकान है तो छोटा, पर नया है । दूसरा कहता—मकान मौक़े का है, छोटा है तो क्या हुआ ।

सामने खड़ा हुआ कुर्क़अमीन मारामार पुकार रहा था—एक.....दो.....इस मकान के वास्ते नव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ार रुपए—बिलकुल नया, नल, बिजली, सब तरह से फिट। नीचे सड़क पर खड़ी हुई भीड़ इस इंतिज़ार में थी कि देखें, यह तोहफ़ा किसके हाथ आता है।

एकाएक एक मोटर निकली, और मकान के सामने आकर रुक गई। मोटर को देखने से मालूम होता था कि वह कोई लंबी मंजिल तय करके आ रही है। नीचे से ऊपर तक वह धूल से सफ़ेद हो रही थी, और अंदर बैठनेवालों के मुँह सूख रहे थे। मोटर के खड़े होते ही एक व्यक्ति ने अंदर से सिर निकाला और पास खड़े हुए एक आदमी से पूछा—"क्या मामला है?"

"मकान नीलाम हो रहा है।"

प्रश्नकर्ता के मुँह पर भय और आश्चर्य के चिह्न दिखाई दिए। उसने काँपते हुए स्वर में फिर पूछा—"किसका—ईश्वरीदासजी का?"

"जीहाँ।"

"किसने कराया?"

"सेठ हीरालाल ने।"

इतने ही में कुर्क़अमीन ने फिर पुकारा—एक...दो... इस मकान के वास्ते नव हज़ार रुपए। कुर्क़अमीन के आख़िरी शब्दों के साथ मोटर से आवाज़ आई—"दस हज़ार।"

सबके मुँह एक बार मोटर की तरफ़ मुड़ गए, परंतु मोटर चल पड़ी थी। एकदम दस हज़ार! इससे आगे कौन बढ़ता? आख़िरी बोली बोल दी गई, मकान नीलाम हो गया।

(७)

नीलाम के बाद ईश्वरीदास को किसी ने नहीं देखा। वह अब शहर के एक अज्ञात भाग में रहते थे—वहाँ, जहाँ दारिद्र्य डेरा डाले पड़ा रहता है, और अशांति तालियाँ बजा-बजाकर नाचती है। ऐसी जगह न मोटरें दौड़ती हैं, और न किसी परिचित व्यक्ति की सूरत ही दिखलाई पड़ती है। दिवालिया, असफल व्यापारी, बिगड़े हुए रईस—वह जिनका सब कुछ चला गया है, परंतु अभिमान किसी जली हुई रस्सी की ऐंठन की तरह अभी बाक़ी है—यहाँ रहते और अतीत स्मृति के काल्पनिक प्रकाश में अपने अंधकारमय जीवन को व्यतीत करते हैं। ईश्वरीदास की भी गणना अब उन्हीं लोगों में हो गई थी। उन्हें अपना जीवन अब पहाड़ मालूम होता था। वह एक एकांत पथिक की तरह टकटकी लगाए देख रहे थे कि कब इसका अंत आता है। वह दिन-भर मुँह छिपाए घर में बैठे रहते। बाहर में निकलने को अब उनके पैर ही न पड़ते थे। अगर कभी बाहर निकलने की इच्छा होती, तो वह रात में बग़ीचों की तरफ़ चले जाते, और थोड़ी देर घूम-घामकर फिर घर लौट आते। उनका हृदय अब अंधकार को खोजता था, प्रकाश को नहीं। विपत्तियों के मर्मांतक आघातों ने उसे चलनी की तरह निर्बल बना दिया था।

सूर्यास्त हो चुका था, परंतु सामने की सड़क किसी दुखिया के हृदय की भाँति अभी जल रही थी। गरम हवा कलेजे पर ऐसा चुभती थी, जैसे दर्दभरी आहें। अंधकार मकानों को चारों तरफ़ से ऐसा घेरे चला आता था, जैसे विपत्तियाँ मनुष्य को घेर लेती हैं। ईश्वरीदास बैठे-बैठे अपनी नई समस्याओं पर विचार कर रहे थे। सुनसान घर का सन्नाटा उनकी मानसिक अशांति को उसी तरह बतला रहा था, जिस प्रकार प्रकृति की निस्तब्धता आगामी तूफ़ान की सूचना दे देती है। वह सोच रहे थे—"अगर आज अकेला होता, तो हर तरह से अपना गुज़ारा कर सकता था। साधु होकर हरद्वार की तरफ़ निकल जाता, तो अपने जीवन के शेष दिन किसी-न-किसी तरह बिता देता। भला अकेले पेट को भरना ही क्या! परंतु इस रामो ने न इधर का रहने दिया, न उधर का। एक मन होता है, छोड़कर चला जाऊँ, जिन्हें शर्म होगी, वे ख़ुद लिवा ले जायँगे। परंतु जिन्होंने बाप को पैरों से ठुकरा दिया, वे मा की तरफ़ भला क्यों आँख उठाकर देखेंगे। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा। जीवन का अधिकांश जिसके साथ बिताया है, सुख-दुःख में, आशा-निराशा में, जिसने सदा साथ भाग लिया है, उसे इस संकट में छोड़कर चला जाऊँ, तो मुझ-जैसा कायर कौन होगा? आह! उस दशा की कल्पना-मात्र से ही कलेजा थर्रा उठता है।

"तो करूँ क्या? कोई दूकान कर लूँ? दो-चार आदमी जो कुछ बच रहा करेंगे, वह निर्वाह के लिये काफ़ी हैं। पर दूकान करूँ, तो किस चीज़ की करूँ? ग़ल्ले की? आह! फिर वही प्रपंच रचना पड़ेगा—धोखेबाज़ी का और झूठ का, जो व्यापार का मूल है; फिर उसी निन्नानवे के फेर में पड़ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ेगा, और फिर जीवन के इस शांत संध्या-काल में—जब मनुष्य अपनी समस्त लालसाओं का संवरण कर उस अंतिम रात्रि की प्रतीक्षा में बैठा रहता है, जो उसे सब चिंताओं से निर्मुक्त कर देगी—आशा की सजीव मूर्ति बनकर दूकान पर बैठना होगा। नहीं, नहीं, यह मुझसे नहीं होगा—त्रिकाल में नहीं होगा। यह सब रास्ते पद-दलित किए जा चुके हैं। इनमें कोई सार नहीं।"

तो अब क्या बाक़ी रह गया? नौकरी? ईश्वरीदास अपने प्रस्ताव पर आप ही हँस पड़े। लोग क्या कहेंगे? रथी पर बँधा हुआ रक्खा है, पर अभी नौकरी करने की हविस नहीं गई! फिर नौकरी भी इस उम्र में कौन-सी मिलेगी? मुनीमी कहीं ज़रूर मिल सकती है, पर अब मुनीम भी कौन रक्खेगा? शहर में पहले ही काफ़ी बदनामी उड़ चुकी है। ईश्वरीदास को अपनी सब करतूतों का स्मरण हो आया, जैसे मरते हुए मनुष्य को एक-एक करके अपने पिछले पापों की याद आती है। उन्होंने एक निराश्रय बालक का पेट काटकर अपना घर भरना चाहा था। उसी का यह फल था कि आज उन्हें पैसे-पैसे के लिये दूसरों का मुँह ताकना पड़ता था। यह कुछ अंश तक शायद न्याय ही था।

वह विकल हो उठे, जैसे कोई भूला-भटका बटोही रास्ता न मिलने पर अधीर हो जाता है। वह समझता है कि यह रास्ता मुझे गंतव्य स्थल पर ले जायगा; परंतु जब वह थोड़ी दूर चला जाता है, तब उसे मालूम होता है कि उसमें काँटे हैं, और वह उसे अपने लक्ष्य से दूर ले जा रहा है। ईश्वरीदास हरएक क्षण नए मंसूबे बाँधते, कभी कहते यह करूँगा, कभी कहते वह करूँगा; परंतु उनका निर्बल हृदय किसी एक बात पर न जमता। उसे बार्धक्य का कीड़ा लग चुका था। वह आशा, जो जीवन-प्रदीप को सदा प्रज्वलित रखती है, उनसे विदा हो चुकी थी; वह उत्साह, जो उसे आपत्तियों के झोंकों से सदा सुरक्षित रखता है, उन्हें कभी का छोड़ चुका था। वह उस वृक्ष के समान थे, जो नीचे से ऊपर तक सूख गया हो, परंतु जड़ से न उखड़ा हो। वह भले ही वर्षों खड़ा रहे, परंतु उसमें पत्ते नहीं आ सकते। वायु का एक हलका-सा झोंका उसे गिराने के लिये काफ़ी है।

अंततः उन्होंने वही निश्चय किया, जिसे मनुष्य ऐसी परिस्थिति में करने के लिये बाध्य होता है। और, वह निश्चय था बिशनदास और हज़ूरासिंह का। यही एक पाँसा था, जिसे एक बार वह फिर फेंकना चाहते थे। उन्होंने सोचा—इस बुढ़ापे में, जब कि इंद्रियाँ शिथिल पड़ गई हैं, हृदय बालू की दीवाल की तरह प्रति-क्षण नीचे धँसता चला जा रहा है, नया जंजाल रच कर क्या होगा। अब तो मानापमान को तिलांजलि देकर, ऊँच-नीच का विचार छोड़, वह उपाय करना चाहिए, जिससे जीवन के दो-चार दिन सुख-पूर्वक कट सकें। बिशनदास और हज़ूरासिंह लाख खोटे हों, पर हैं तो अपने ही। उस दिन, जब मकान के बारे में बिशनदास से मिलने गया था, बेचारा कैसी नरमी से पेश आया था, देखते ही मोटर से उतर पड़ा! और कहने लगा—'कहिए, क्या आज्ञा है।' अगर उसे बायस्कोप देखने की जल्दी न होती, और कहीं मकान की बात छिड़ जाती, तो मुझे पूरा विश्वास है कि वह कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य करता। पर उस दिन मेरी ही बुद्धि में पत्थर पड़ गए, उस बेचारे का क्या क़सूर है। उस शिवसहाय से तो वह लाख दरजे अच्छा है, जो उस दिन हज़ारों आदमियों के सामने, एक निर्लज्ज की तरह, दस हज़ार की बोली बोल गया, और मुँह फेरकर भी न देखा कि पीछे क्या हो रहा है। भला उसे मकान ख़रीदने की ऐसी कौन-सी जल्दी पड़ी थी, जो एकदम एक हज़ार बढ़ गया। शहर में उसके बीसों मकान हैं। पर उसका एकमात्र उद्देश्य कटे पर नमक छिड़कने का—मुझे जलाने का—था। अगर यह भी मान लिया जाय कि बिशनदास और हज़ूरासिंह ने मुझे कुछ सहायता नहीं दी, तो उन्होंने मुझसे कुछ छीन भी तो नहीं लिया। अगर आज घरवालों को छोड़कर मैं ही बाहरवालों के दरवाज़ों की ख़ाक न छानता फिरता, तो यह नाव कभी की किनारे लग गई होती। परंतु अब आँखें खुल गईं। अब इधर-उधर भटकने की कोई ज़रूरत नहीं। जो कुछ कहना-सुनना होगा, सब उन्हीं से कहूँगा। आख़िर हैं तो आदमी, कोई पत्थर तो हैं ही नहीं, जो समझाने पर भी न समझेंगे, और पिघलाने पर भी न पिघलेंगे। जब बाहरवालों का अपमान सह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया, तो घरवालों का सहने में क्या हर्ज है।

उन्होंने बिशनदास को पत्र लिखा—

"ऊँचा मोहल्ला, लाहौर
८ जुलाई, १९२४

चिरंजीव बिशनदास और हज़ूरासिंह !

जिस दिन से तुम दोनों मुझसे अलग हुए हो, उसी दिन से मेरे ऊपर विपत्ति के काले बादल मँडरा रहे हैं। जब तक एक से नहीं सुलझने पाता हूँ, तब तक दूसरी आकर घेर लेती है। सबसे पहले मुक़दमा हारा, फिर पचास हज़ार की डिगरी हुई, इसके बाद मकान नीलाम हुआ, और आजकल जैसी बीत रही है, मैं ही जानता हूँ। जिस दिन मैं तुमसे मिलने के लिये तुम्हारी कोठी पर गया था, उस दिन मैं चाहता था कि तुम मेरी कुछ सहायता करो; पर तुम्हें बायस-कोप की जल्दी थी, अतः मैंने उस वक़्त कुछ कहना-सुनना उचित न समझा। उसके बाद जो कुछ हुआ, उससे तुम भली भाँति परिचित होगे। नीलाम के बाद मैंने समझा था कि तुम मुझसे मिलने आओगे; परंतु जब बाट देखते-देखते कई दिन हो गए, तो आज पत्र लिखने बैठा हूँ। यह भी संभव है कि तुम्हें मेरे मकान का पता न लगा हो; क्योंकि आजकल मैं ऐसी जगह रहता हूँ, जिसका तुम्हें स्वप्न में भी ख़याल न होगा। आधे से ज़्यादा दिन का हिस्सा मेरा अपनी परिस्थिति पर विचार करते हुए बीतता है। जब मैं अपने भविष्य की तरफ़ देखता हूँ, तब मेरा वही हाल होता है, जो एक बिना पेंदे की नाव में बहते हुए यात्री का। तुम्हारी माता की चिंता मुझे दिन-रात चैन नहीं लेने देती है। मैं चाहता हूँ कि तुम उसकी कुछ सहायता करो, जिससे उसका बुढ़ापा शांति-पूर्वक कट जाय। जहाँ तक मैं समझता हूँ, मैं उसी बात की तुमसे आशा कर रहा हूँ, जिसका मुझे पूर्णतः अधिकार है। ऐसे संकट में अपनी वृद्धा माता की सेवा करना तुम्हारा न्यायोचित कर्तव्य है। तुम्हारे लिये यह कोई ऐसी बात नहीं, जो तुम्हारी शक्ति से परे हो। रहा मैं, सो मेरी कोई चिंता न करो। मैं पुरुष हूँ, सौ तरह से अपना पालन कर सकता हूँ। अंत में मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे ऊपर आपत्तियों का प्रकोप ऐसे समय में हुआ है, जब कि मैं उनका सामना करने में बिलकुल असमर्थ हूँ; नहीं तो सच समझना, मैं तुम्हें इतना कष्ट कभी न देता।

तुम्हारा शुभचिंतक,
ईश्वरीदास"

पत्र की आख़िरी लाइन के साथ ही सीढ़ियों में किसी के पैर की चाप सुनाई दी। ईश्वरीदास चौंक पड़े, जैसे झाड़ी में चुपचाप बैठा हुआ हरिण शिकारी की आहट पाकर चौंक पड़ता है। उन्होंने मन-ही-मन कहा—आज इतने दिनों के बाद मेरे दरवाज़े पर कौन आ सकता है? एकाएक उन्हें याद आया—कहीं बिशनदास तो नहीं! उन्होंने इस घबराहट में एक बार दरवाज़े की तरफ़ देखा और एक बार सामने पड़े हुए पत्र की तरफ़, और फिर झट से उसे चटाई के नीचे छिपा दिया। दूसरे ही क्षण शिवसहाय उनके सामने खड़ा था। ईश्वरीदास की आशाओं पर पानी फिर गया। किसे सोचा था, और कौन निकला! उन्होंने निराशा की उस तीव्र यातना में चीख़कर कहा—क्यों, किसे देखते हो?

शिवसहाय के साथ उनके ससुर दौलतराम भी आए थे। उन्होंने आगे बढ़कर उत्तर दिया—"आपको।"

ईश्वरीदास ने दौलतराम की तरफ़ देखा, तो सहम गए; परंतु उसी स्वर में बोले—"कहिए।"

अब तक शिवसहाय और दौलतराम खड़े थे, पर अब एक पास पड़ी हुई चटाई पर बैठ गए। अब की बार शिवसहाय ने कहा—"बहुत दिनों से आपके दर्शन करने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। नीलाम के बाद मैंने आपका बहुत पता लगाया, बीसों आदमियों से पूछताछ की; परंतु जब आपका कहीं पता न लगा, तो निराश होकर घर बैठ रहा। अगर कहीं बाबूजी को (दौलतराम की तरफ़ इशारा करके) कल बाज़ार में बिशनदासजी न मिलते और आपका ज़िक्र न छिड़ता, तो संभव है इसी तरह १०-१५ दिन और भी गुज़र गए होते। परंतु हमारे भाग्य सीधे थे, और उन्होंने आपका यहाँ का पता बतला दिया।"

ईश्वरीदास के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्होंने मन-ही-मन कहा—आह! उसे मालूम था कि मैं यहाँ रहता हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवसहाय ने फिर कहना शुरू किया—"आपका मकान नीलाम होने के एक महीने पहले ही मैं बाबूजी के साथ किसी आवश्यक कार्य से जालंधर चला गया था। अगर इससे पहले आप मुझसे ज़रा भी मकान की बात छेड़ देते या किसी तरह मेरे कानों तक यह बात पहुँचा देते, तो संभव है, यहाँ तक नौबत न आती। आठ-दस हज़ार रुपए भला कौन-सी बड़ी बात थी। परंतु यह भी अच्छा हुआ, जो हम ठीक मौक़े पर आ पहुँचे, नहीं तो मकान हाथ से निकल जाता।" यह कहकर शिवसहाय ने अपनी जेब से एक लंबा-सा पर्चा निकाला, और उसे ईश्वरीदास के सामने रख दिया। यह उस मकान का हिबानामा था, जिसे शिवसहाय ने नीलाम में ख़रीदा था।

ईश्वरीदास को ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह कोई स्वप्न देख रहे हों। हिबानामे ने उनके क्रोध पर वही काम किया, जो ठंढा जल जलते हुए अँगारे पर करता है। उनकी आँखें डबडबा आईं, आवाज़ भर्रा गई। वह सिर्फ़ इतना ही कह सके—"शिवसहाय! तुम पराए हो, लेकिन तुमने वह कर दिखाया, जो अपने नहीं कर सके। तुम मनुष्य नहीं, देवता हो!"

रामकृष्णदेव गर्ग

अंतिम आकांक्षा

कितने युग से हाय! भटकता आया हूँ इस जग में,
तज निवास ज्योतिष्क-लोक का प्यारा;
दुख-कंटक से होकर पीड़ित, मूर्च्छित मैं पग-पग में
परदेसी फिरता हूँ मारा-मारा।

पार कर चुका हूँ कितने ही कठिन मार्ग, वन कानन,
पार कर चुका हूँ कितनी ही नदियाँ;
सुन-सुनकर घर्घर-रव-मुखरित झरनों का चिर-क्रंदन
बीत चलीं कितनी ही लंबी सदियाँ!

नव-वसंत के मत्त मधुप-सा झूम-झूमकर बेकल
कभी चला हूँ मैं होकर मतवाला;
कभी देखकर शरत्-काल का सांध्य-गगन अति निर्मल
गूँथी मैंने अश्रु-कुसुम की माला।

कभी खींचकर मुझे ले गई है गृहस्थ की कुटिया—
जननी-सम अति प्यारी, करुणा-शीला;
देख-देखकर रोया हूँ होकर पुलकित मैं रसिया—
राग-रंग, सकरुण क्रंदन की लीला।

क्रीड़ा-कौतुक-रत शिशु-जीवन की नव-मुकुलित लतिका
देख देखकर हुआ हर्ष से गद्गद;
नवल वधू की नव-सुवास-मय अर्द्ध-स्फुट कल-कलिका
मुझे कर चुकी है नव-जीवन-उन्मद।

कभी किसी निर्जन कानन में बालाएँ अलबेली
देखी हैं मैंने यौवन-मद-माती;
तोड़-तोड़कर घन उमंग से बेला और चमेली
थीं वे फूलों से सौगुन सरसाती।

विस्मित, उत्सुक, सरस नयन से घूर-घूर वे परियाँ
मुझ परदेसी को करती थीं व्याकुल;
मुझे याद आती थीं अपनी प्यारी की गलबहियाँ,
हो जाता था मैं विह्वल, विरहाकुल।

नव-प्रभात के अरुण राग से नित्य खेलकर होरी
रँग देती थी मुझको जो नव वनिता;
पुनर्जागरित हो जाती थी मन में वही किशोरी
नवल धवल हिम-राशि-समान पुनीता।

उसे अकेली छोड़ यहाँ आया हूँ मैं निर्मोही,
खींच ले गई मुझको हाय! दुराशा;
कर्म चक्र में पिसकर दिन-दिन बना विकट विद्रोही,
कहाँ पड़ी हो प्यारी कर्म-विनाशा?

इस विदेश में कहाँ मिलेगी वह अमृतमय माया?
पुलक-प्रकंपित प्रेम कहाँ वह प्यारी?
कहाँ उज्ज्वलित रंगों से रंजित वह रत्नच्छाया?
कहाँ हृदय की विकल उमंगें न्यारी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक भटका करता था मैं ग्रामों में या वन में
तब तक तोभी मन में थी कुछ स्थिरता ;
मन को हलका कर लेता था रो-रोकर निर्जन में,
अपने ही स्वप्नों में रमता फिरता।

भाग्य-चक्र से फिरता हूँ अब प्रतिदिन नगरी-नगरी,
सुनता हूँ केवल उत्कट कोलाहल ;
डूब गई है सुधा-सरस स्वप्नों की सारी गगरी,
शेष रह गया है केवल हालाहल।

कहाँ गया वह वन-देवी का स्नेह-सुधा-रस-वर्षण ?
कहाँ ग्राम के सरल प्रेम-मय मानव !
अब संचारित करते हैं रोमों में भीषण हर्षण
राजनीति, व्यापार, युद्ध के दानव।

कहाँ शांति-मय करुणा है अब, कहाँ प्रीति है भाई ?
माता की माया—युवती का यौवन ?
सभी ओर कुहरे की नाईं राजनीति है छाई,
सुनता हूँ नित प्रलय-युद्ध का गर्जन।

बार अनेकों फाँद पड़ा हूँ समर-भूमि में, निर्भय,
लौट चला हूँ पर फिर-फिर उकताकर ;
फिर-फिर उदित हुई है मन में प्रीति पुरातन, मधुमय,
उमड़ा अश्रु-जनित सागर—मुक्ताकर !

* * *

आओ, आओ बालाओ ! अलबेली, सुघड़, छबीली !
तोड़ो अपन कर्म-चक्र का बंधन !
दुखिया परदेसी की आँखें पोछ रसीली, गीली,
मधुर स्पर्श से करो उसे आलिंगन !

महाशून्य के गहन अंक में स्तब्ध शांति की दृढ़ता
मुझे जकड़ती वज्र-कठिन बाँहों से ;
रह-रहकर विद्रोह हृदय का जाता है नित बढ़ता,
छाती फूल उठी मेरी आहों से !

स्नेह-सुधा-रस से सींचो अब मेरे शुद्ध हृदय को,
संचारित करके निज कोमल करुणा ;
करो सचेतन, संजीवित मुझ उदासीन, निर्दय को,
अपने मद से, तुम यौवन-मद-अरुणा।

मुझे सिखाओ इस विदेश की कल-गुंजन-युत भाषा,
करके प्यारी-प्यारी मीठी बतियाँ ;
उमड़ा संध्या की व्याकुलता, नव-प्रभात की आशा,
राग-रंग से कटें अँधेरी रतियाँ !

प्यारी परियो ! लौटूँगा जब मातृदेश को अपने,
पार करूँगा गहन मृत्यु का सागर ;
संचित करके अश्रु-सुसिंचित, सुस्मृति रंजित सपने,
माला गूथ सजाऊँगा अपना घर।

अथवा डाल गले में अपनी प्यारी के वह माला,
उसे करूँगा विकल हर्ष से विह्वल ;
बुझ जाएगी विमल स्पर्श से उस विरहिन की ज्वाला,
उमड़ेगी हृत् सरिता करके कलकल !

* * *

हाय दैव ! अब नहीं सही जाती यह वज्र-कठिनता,
अति भीषण पाषाण-भार की दृढ़ता !
दिन-दिन इस एकांत-वास से बढ़ती है दुश्चिंता,
दिन दिन जीवन ज्वर जाता है चढ़ता !

चलो वासना ! नग्न, विवसना, लाओ अपनी नौका,
करें संतरण मृत्यु-जलधि के ऊपर।
देखें उसकी फेनिल, विस्फूर्जित लहरों को,
चुंबन, आलिंगन भी चले परस्पर !

जीवन-लीला की समाप्ति का गाकर गीत रसीला,
देख-देख निर्मुक्त प्रसार गगन का ;
बहे चलें अब द्विधाहीन हम करके बंधन ढीला,
उत्सव देखें जीवन-मृत्यु-लगन का।

इलाचंद्र जोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक के दो लेटर-बक्स

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो "वियोगी" साहित्यालंकार]

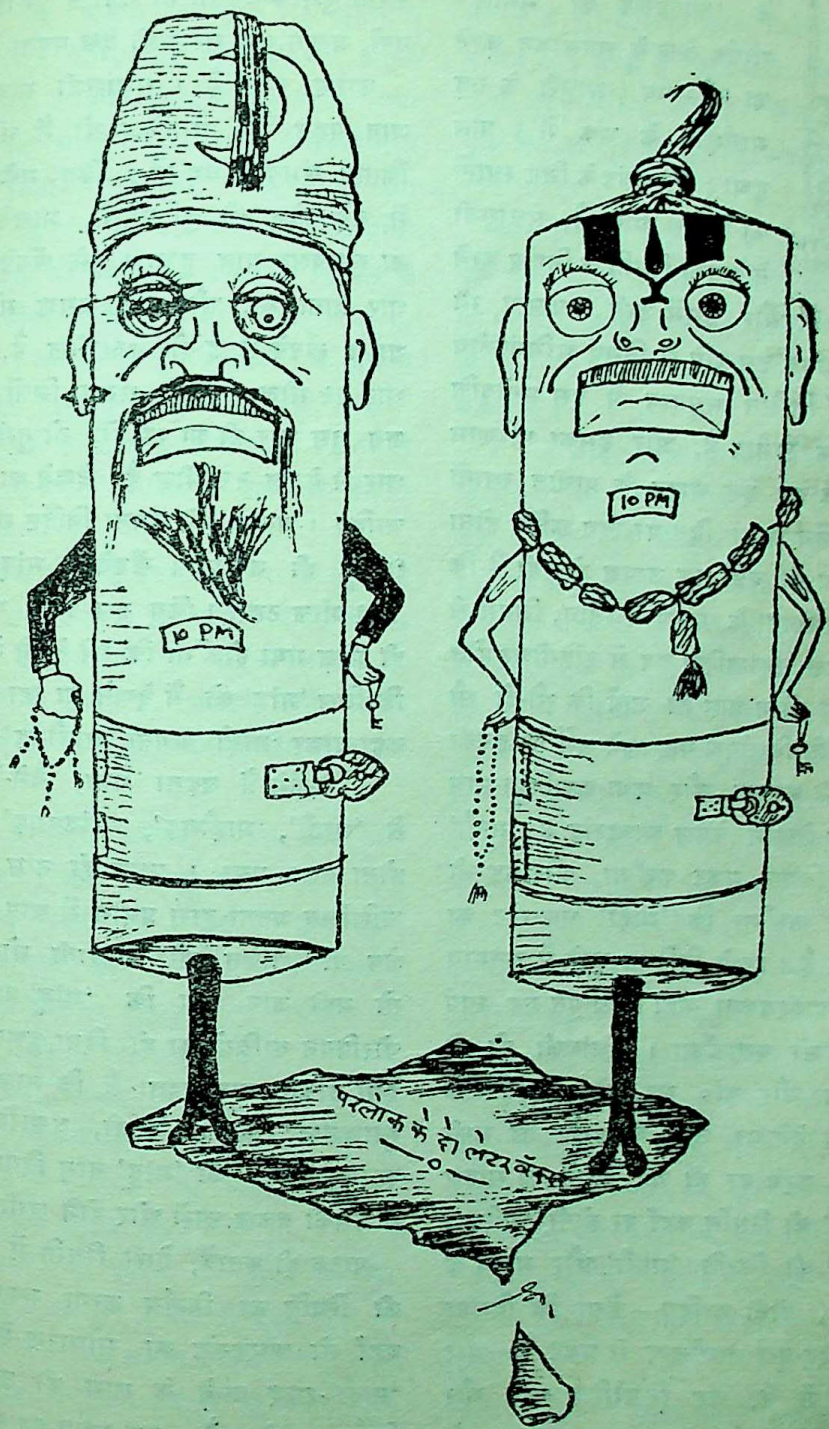

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आल्हखंड का 'माड़ौ'

श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंहजी 'सुधांशु' के 'आल्हखंड का भूगोल'-शीर्षक लेख के अवलोकन करने का सौभाग्य (माधुरी के गत मार्गशीर्ष के अंक में) प्राप्त हुआ। आल्हखंड के जिन स्थानों का उल्लेख आया है, सुधांशुजी ने उनकी स्थिति के निर्णय करने का प्रयत्न किया है, और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। उनका प्रयत्न इस दृष्टि से विशेष अभिनंदनीय है कि आजकल के शिक्षित समुदाय में इस मनोवृत्ति का किसी सीमा तक अभाव है, और इसका परिणाम यही हो रहा है कि इस वृद्ध भारत के प्राचीन स्थानों की स्थिति का निर्णय करना दिन-पर-दिन कठिन होता जा रहा है। आशंका तो यहाँ तक उत्पन्न हो रही है कि हम लोगों की उदासीनता के कारण ये स्थान, जिनमें से अधिकांश अब केवल भग्नावशिष्ट रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, कहीं ऐसी दशा को न प्राप्त हो जायँ कि सौ-दो सौ वर्ष के बाद के स्थिति-निर्णायक यह कहने लगें कि इनकी स्थिति, कवियों की कल्पना और कथा-कहानिया-मात्र में थी। मैं इस लेख में केवल आल्हखंड के 'माड़ौ' के संबंध में अपने विचार प्रकट करूँगा, और यह भी दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि 'माड़ौ' धार-स्टेट का वर्तमान 'मांडू' ही है। इसके निश्चित करने में अनुमान और दलीलों की आवश्यकता नहीं है प्रत्युत यह स्वयं प्रमाणित है, यह भी बताऊँगा। सुधांशुजी को तो मिस्टर वाटरफ़ील्ड और डॉ० सर जॉर्ज ग्रियर्सन के विचार, तत्संबंध में देने पर, तथा आल्हखंड का भली भाँति अवलोकन करने पर ही यह बताने का साहस हुआ है कि 'माड़ौ' की स्थिति कहाँ पर होनी चाहिए। साथ ही 'सिरउँज' की स्थिति 'माड़ौ' और महोबे के मध्य में, मार्ग पर, होनी चाहिए—जैसा कि विजमा और ऊदल के विनोद-पूर्ण वार्तालाप से प्रकट है—और 'सिरउँज' मालवे में है, यह निर्द्धारित करने और सफल अनुमान लगाने पर ही आप इस समस्या को हल कर सके हैं। मेरे विचार में तो यह सब करना उचित था ही; किंतु 'माड़ौ' कहाँ है, यह स्वयंसिद्ध है, और तब सुधांशुजी को यह कहने की किंचित्-मात्र आवश्यकता न पड़ती कि "माड़ौगढ़ का स्थान-निर्णय करना कुछ कठिन-सा हो गया है"। किंतु वह कठिन तो नहीं, प्रत्युत कुछ सरल ही देख पड़ता है।

कारण स्पष्ट है। सुधांशुजी मालवे से अनभिज्ञ जान पड़ते हैं। अनभिज्ञ तो मैं भी उतना ही था, जितना संभवतः वह हों; किंतु मुझे पिछले दिसंबर में, बड़े दिन की छुट्टियों में, मालवे में भ्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मुझे खँडवे से इंदौर होकर धार जाना था, और यह भ्रमण मोटर द्वारा करना था। खँडवे से इंदौर ७९ मील है, और इंदौर से धार ३५ मील। चलते समय मित्रों ने मुझसे कहा कि जब तुम धार ही जा रहे हो, तो तुम्हें 'मांडू' को, जो धार से केवल २२ मील है, देखने का अवसर न खोना चाहिए। अतएव मैंने अपना निर्दिष्ट स्थान धार न करके 'मांडू' ही बनाया। खँडवे से मांडू पूर्व-कथनानुसार १३६ मील ठहरा। किंतु इस १३६ मील में से मैं ४० ही मील गया होऊँगा कि मेरे देखने में यह आने लगा कि जिस 'मांडू' को मैं देखने जा रहा हूँ, वह 'मांडू' न कहा जाकर "माड़ौ' अथवा 'माड़ौगढ़' ही कहा जा रहा है।

जैसे-जैसे मैं बढ़ता गया, वैसे-वैसे 'मांडू', मांडू से 'माड़ौ', 'माड़ौगढ़', 'मांडवगढ़' और 'मांडौगढ़' होता चला गया। प्रथम दो नाम तो देहाती और अशिक्षित जनता द्वारा प्रयोग में लाए जा रहे थे, और शेष दो शिक्षित और शहराती लोगों द्वारा। मुझे तो यही जान पड़ा कि 'मांडू'-नाम अँगरेज़ और योरपियन यात्रियों का ही दिया हुआ है। तथापि मुझे ऐसा उचित जान पड़ता है कि मालवे के मांडू-स्थित मुसलमान सूबेदारों ने ही, उच्चारण की कठिनाई के कारण, 'माड़ौ' को 'मांडू' नाम दिया होगा, और बाद में उसकी नक़ल चारों ओर होने लगी होगी।

पाठक ही बतावें, ऐसी स्थिति में मालवे में 'माड़ौ' की स्थिति का निर्णय करना सुकर है, या नहीं। यहाँ तो आल्हखंड का साधारण-से-साधारण पाठक 'माड़ौ'-शब्द आने के साथ ही उसकी स्थिति का निर्णय कर लेता है। इस स्थान पर एक मज़ेदार घटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उल्लेख करना अनुचित न होगा। मैं जब 'मांडू' से लौटकर आया और अपनी यात्रा का वर्णन सविस्तर लिपि-बद्ध करने लगा, तथा उसे समाप्त ही कर चुका था कि एक मित्र ने मुझसे पूछा—"कहिए, आपने 'माड़ौ' के अतीत गौरव का इतिहास दिया है, या नहीं ? और, यदि दिया है, तो आपने उसमें आल्हखंड का उल्लेख किया है, या नहीं ? क्या आप सोचते हैं कि आल्हखंड की कथा किंवदंती-मात्र है ?" मैंने उत्तर दिया—"जी नहीं, आल्हखंड की कथा किंवदंती-मात्र तो कदापि नहीं है, और आधुनिक इतिहास उसका उल्लेख भी करता है, हालाँकि विस्तार के साथ नहीं; और आल्हखंड का 'माड़ौ' यही 'मांडू' है, यह तो प्रत्यक्ष है। अपने दिए हुए इतिहास में इसका वर्णन भी मैंने कर दिया है।" दूसरे ही दिन 'माधुरी' मिली, और सुधांशुजी का लेख पढ़ने में आया। साथ ही मुझे भी अपने 'मांडू-वर्णन' के लेख के पहले ही लेखनी उठाने को बाध्य होना पड़ा।

(१) मेरे कथन की पुष्टि इतने से ही नहीं होती है कि 'माड़ौ'-नाम का उल्लेख आल्हखंड में आया है, और 'माड़ौ'-नाम का एक गाँव भी धार-रियासत में है, जो अब 'मांडू'-नाम से प्रसिद्ध है, अतएव दोनों एक ही होने चाहिए। और भी बातें मेरे कथन का समर्थन करती हैं। सुनिए—

(२) डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन की भी राय, जिसे सुधांशुजी ने उद्धृत किया है, इस अनुमान की पुष्टि करती है। विलियम वाटरफ़ील्ड साहब तो इस संबंध में कुछ निश्चय ही नहीं कर पाए हैं, तथापि इतना निश्चित है कि "उस नाम का दूसरा क़िला" अवश्य है, (Unless there is a second fort of that name—वाटरफ़ील्ड साहब के इस वाक्य से Unless शब्द को निकाल दीजिए), और वह नर्मदा-नदी के इसी पार है (Not on the further side), यही ग्रियर्सन साहब कहते हैं।

नर्मदा-नदी 'माड़ौ' से क़रीब २० मील दक्षिण, धर्मपुरी के पास, है। धर्मपुरी वास्तव में इसी नदी के तट पर, धार-रियासत में, एक क़सबा है। यह नदी वर्षा-ऋतु में मांडू के उच्चतम स्थान—रूपमती के महल—से देख पड़ती है।

(३) सिरउँज—वर्तमान 'सिरौंज'—मध्य-भारत में, टोंक-रियासत में, है, और ग्वालियर-राज्य के भेलसा (मेघदूत की प्राचीन 'विदिशा')-ज़िले के बासोदा-तहसीलांतर्गत भोराँसा-थाने से प्रायः २० मील की दूरी पर स्थित है। भोराँसा जी० आई० पी०-रेलवे के ढोरा-स्टेशन से ७ मील है। महोबे से घूमते-घामते हुए 'माड़ौ' जाते हुए सिरौंज अवश्य मिलेगा, और इससे इसकी पुष्टि फिर भी हुई कि सिरौंज, महोबे से माड़ौ के मार्ग में होना चाहिए।

अब मैं अपने कथन के समर्थन में कुछ ऐसी दलीलें पेश करूँगा, जो संभवतः अपनी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकी होंगी, किंतु जो निर्विवाद-रूप से सिद्ध कर देंगी कि आल्हखंड का 'माड़ौ' यही हो सकता है।

(४) आल्हा और ऊदल, दोनों भाइयों के पिता 'दस्सराज' थे, और पितृव्य 'बच्छराज' (इसमें संदेह नहीं कि इनके शुद्ध संस्कृत नाम 'दशराज' और 'वत्सराज' रहे होंगे, और आल्हखंड में कहने के नाम ही प्रयोग में बुँदेली-भाषा में लाए गए हैं)। इनकी मृत्यु माड़ौगढ़ में 'करिंगाराय' के हाथों हुई थी। यह करिंगाराय कौन था और उसने इनको क्यों मारा, इसका वर्णन आल्हखंड के ही शब्दों में सुनिए। माहिल, जो उरई में राज्य करता था, महोबे के राजा परमाल (परमर्दी) का साला था। ऊदल ने उरई में जाकर वहाँ 'दाख-छोहारे की बगिया' नष्ट कर दी थी, और इसकी शिकायत परमाल से करने (इसी के राज्य में ऊदलर हता था) माहिल महोबे पहुँचा था। शिकायत करते हुए माहिल कहता है—

चढ़ो करिंगा माड़वार से, जो जंबै को राजकुमार।
दस्सराज औ बच्छराज की, दीन्हीं तुरतै मुश्क बँधाय।
गज पच शाबद लाखा पातुर, घोड़ा पपिहा संग लिवाय।
माल खजाना लै महुबै को, माड़ौ कूँच गयो करवाय।
दस्सराज औ बच्छराज को, पत्थर-कोल्हू दियो पिराय।
खुपड़ी टाँगि दई बरगद में, क्यों ना लेयँ बाप को दाँय।

पुनः इन दोनों भाइयों की माता देवलदेवी भी बाद में अपने पति 'दस्सराज' की हत्या का वर्णन करते हुए कहती है—

चढ़ो करिंगा गढ़ माड़ौ को, सो महुबे माँ पहुँचो आय।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँधि लै गयो तेरे ददुआ को, पत्थर-कोल्हू दियो पिराय।
खुपड़ी टाँगि दई बरगद में, बिपदा कछू कही ना जाय।

और, ऊदल यह सब सुनकर कहता है—

शीश काटि लेउँ मैं करिया को, जंबै मूँड़ लिहौं कटवाय।
पत्थर-कोल्हू माँ पेरवैहौं, खुपड़ी महुवे दिहौं टँगवाय।

बाद में माड़ौगढ़ की लड़ाई हो चुकने के पश्चात् इन दोनों भाइयों ने जंबै को इस प्रकार से मारकर 'बाप का दाँय' लिया था—

आल्हा मलिखै, कोल्हू मचिगै, ऊदनि कातर दई घिराय।
राजा जंबै को ढेबा ने, तुरतै कोल्हू दियो दबाय।
ठाढ़े पेरि दयो जंबै को, पाछे मूँड़ लियो कटवाय।

इन अवतरणों से यह मालूम होता है कि इन दोनों भाइयों के पिता दस्सराज की हत्या राजा जंबै ने माड़ौगढ़ में, पत्थर के कोल्हू में पिरवा करके, की थी, और राजा जंबै को लड़ाई के बाद स्वयं आल्हा और ऊदल ने कोल्हू में पेरकर मारा था।

आप माड़ौ में जाइए! अधिकांश दर्शकों के समान उस प्राचीन गढ़ को, दो-चार भव्य और प्रसिद्ध इमारतों को देखकर न लौट आइए। ऐसा ही करने से लोगों को माड़ौ के प्राचीन स्थानों—विशेषकर हिंदू-शासन के भग्नावशिष्टों—के संबंध में अनभिज्ञता रह जाती है। आपको रूपमती के महल को जाते हुए एक पत्थर की बनी हुई छोटी किंतु मज़बूत, इमारत आधा रास्ता तय कर चुकने पर, बाईं ओर देख पड़ेगी। बीहड़ वृक्षों से वह आच्छादित है, और समय के चिह्न दीवालों पर अंकित हैं। यदि आपको उत्सुकता उत्पन्न हुई, और वहाँ का कोई निवासी भील आदि साथ में रहा और आपने उससे प्रश्न किया, तो उत्तर मिलेगा कि "हिंदू-ज़माने में वह आदमी पेरने का घाणा था"। (मारवाड़ी-भाषा में कोल्हू को घाणा कहते हैं, मालवी में घाना) किंतु स्मरण रखिए, महत्त्व की न होने और वैसी सैकड़ों इमारतें 'माड़ौ' में होने के कारण कोई अपनी ओर से उसे न बतावेगा। वह तो, यदि दर्शक को उत्सुकता हुई, तभी मालूम पड़ेगी।

कहिए, यह बात ठीक जँचती है न? मुझे जहाँ तक स्मरण है, उसके समीप ही उसकी दीवालों को चूमता हुआ बरगद का एक प्राचीन वृक्ष है। वृक्ष को देखते ही विचार उठता है कि यह सैकड़ों वर्षों से ज़माने की चोटों को सहता हुआ आज खड़ा होगा।

(५) ऊदन ढेबा दोनों चलि भए, रानि देवै को शीश नवाय
नदी नर्मदा की घाटिन पर, पहुँचे जाय उदयसिंह राय।

× × ×

नदी मँझाई तहँ दोउन ने, सो कम्मर से परी दिखाय।
लागि गाड़ी दई पारिन पर, अपनो चीन्हा दयो बनाय।

× × ×

नदी नर्मदा जहँ थोरी है, तहँ पर लैहैं फौज उतार
पाट देखिकै हम नदी की, अपनो चीन्हों दयो बनाय।
राह न सूझति है जंगल में, ताको अब कछु करो उपाय।
बारह कोसन लौं बबुरी-बन, चहुँ दिसि रही अँधेरिया छाय।

× × ×

इतनी सुनिकै बघऊदनि ने, चंदन बढ़ई लियौ बुलाय।
हुकुम दै दियो है ऊदनि ने, सब बबुरी-बन देउ कटाय।

× × ×

सैयद बोले तब ऊदनि से, बढ़ई देहैं देर लगाय।
जल्दी पहुँचौ सब जंगल माँ, चार घरी माँ देहु गिराय।
सुनि कै बातें ये सैयद की, सब उठि पड़े महुबिया जवान।
कोई गँड़ासी कोई तेगा कोई लीन्हे हाथ कृपान।
काटन लागे बबुरी-बन को, लै बजरंगबली को नाम।

× × ×

कह खबर सुनाई सुनि आल्हा को, जंगल काटि करो मैदान।
बिच-बिच छोड़े रूख हरियरे, छैहाँ जहाँ करें बिसराम।

ऊपर उद्धृत लाइनों से मालूम होता है कि इन दोनों भाइयों की सेना ने जहाँ पर नर्मदा-नदी पार की थी, वहाँ पर वह अधिक गहरी न थी। नर्मदा-जैसी गहरी नदी में ऐसे स्थान को ढूँढ लेना सुकर नहीं, जहाँ पर वह इतनी कम गहरी हो कि बात-की-बात में पार की जा सके। तथापि 'माड़ौ' से दक्षिण-दिशा की ओर धर्मपुरी और खलघाट नर्मदा के किनारे प्रसिद्ध स्थान हैं। दोनों अधिक दूर नहीं हैं, और धर्मपुरी के बारे में तो मुझे अधिक ज्ञान नहीं है, यद्यपि इतना अवश्य सुनने में आया है, जैसा पहले लिख भी चुका हूँ कि मांडू से धर्मपुरी के ही समीप नर्मदाजी के दर्शन वर्ष ऋतु में होते हैं। खलघाट नर्मदाजी का एक प्रसिद्ध घाट है, और वह प्रसिद्ध इसलिये है कि नर्मदाजी वहाँ पर इतनी उथली किसी कारण से हो गई हैं कि वहाँ सड़क का पक्का सीमेंट का पुल आसानी से हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय बना लिया गया है। बंबई-आगरा-रोड पर खलघाट है, और वह 'माड़ौ' से सीधे रास्ते से २०-२५ मील से अधिक नहीं है। अतएव इस सेना ने संभवतः खलघाट के समीप ही नर्मदा-नदी पार की होगी।

"बबुरी-बन" के संबंध में मैं यह कहूँगा कि मध्य-भारत में बबूल की कमी नहीं है। मालवे में तो बबूल के वृक्ष—विशेषतः धार-रियासत में—बहुत ही ज़्यादा हैं। इंदौर से धार की सड़क पर बबूल-वृक्षों का जंगल-ही-जंगल लगा हुआ है, और सड़क के दोनों ओर यही वृक्ष मीलों तक चले गए हैं। 'माड़ौ' के समीप भी बबूल-वृक्ष ज़्यादा हैं। अतएव खलघाट के समीप भी ऐसा ही जंगल कहीं रहा होगा, और उसी का उल्लेख इस स्थान में आता है। सोचने की बात है कि जब ८०० वर्ष बाद वहाँ बबूल-वृक्षों की इतनी भरमार है, तो पहले क्या हालत रही होगी।

(५) करिंगाराय जब गंगा-स्नान के लिये बिठूर जा रहा था, तब उसके पिता राजा जंबै ने कन्नौज के अंतिम राजा जयचंद्र के पास पहले ही से, राज्य-कर न देने के कारण सावधान रहने के संबंध में, ख़बर भेज दी थी, और गुजरात के समीप ही माड़ौगढ़ के जंबै राजा ने कई वर्षों से जयचंद्र को राज्य-कर नहीं दिया था। ये दोनों वाक्य मैं 'सुधांशुजी' के लेख ही से दे रहा हूँ। इनसे यह प्रकट है—यद्यपि ये परस्पर-विरोधी आशय के वाक्यों के सिवा और कुछ नहीं हैं—कि इस घटना के १००-५० वर्ष पहले इन दोनों राजाओं के पूर्वजों में से कोई किसी के अधीन चाहे रहा हो, और वह राज्य-कर भी शायद देता रहा हो, तथापि उस समय राजा जंबै और राजा जयचंद्र, दोनों यह अधिकार एक दूसरे पर जमाना चाहते थे, और तदनुसार राज्य-कर भी वसूल करना चाहते थे।

१२वीं शताब्दी के भारत की यही विशेषता है। सब हिंदू राजा आपस ही में लड़ रहे थे, और यह घोषित कर रहे थे कि अमुक राजा उनके अधीन है, और वह उसे अस्वीकार करता और राज्य-कर भी न देता था। 'माड़ौ' हिंदू-शासन-काल में स्वतंत्र राज्य नहीं था। वह 'धारा' के राजाओं के अधीन था, और उसका एक प्रांत-मात्र था। धारा के प्रसिद्ध राजा दो थे—राजा मुंज (९७४—९९५ ई०) और राजा भोज (१०१०—१०५३ ई०)। भोज मुंज का भतीजा था, और इसके शासन के अंतिम दिनों में चेदि और गुजरात के राजाओं ने संयुक्त-आक्रमण करके उसकी राजधानी (धारा) को जीत लिया था। तभी धारा के हिंदू-राज्य का अंत हो गया—अंत इस अर्थ में कि भोज के वंशज राज्य करते अवश्य रहे; किंतु मालवे के प्राचीन हिंदू-राज्य का एक राजा न रह गया। धारा में भोज के वंशज राज्य करते रहे, और मालवा-प्रांत छोटे-छोटे राजपूत-राजाओं में, जो राजपूत सरदारों के ही समान थे, बँट गया। अतएव यह निश्चित है कि दिल्ली के ग़ुलाम सुलतान अल्तमश ने जब मांडू को, सन् १२३१ ई० में, जीता, तब वह १७७ वर्ष पूर्व से—राजा भोज के बाद १०५३ ई० से—ऐसे ही राजपूत-सरदारों में से किसी एक के हाथ में था। यह राजपूत-राजा या सरदार भी उन्हीं राजपूत-सरदारों में से अवश्य एक ऐसा रहा होगा, जो आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे, और एक दूसरे पर अपना रोब जमाना चाहते थे, साथ ही राज्य-कर का अधिकार भी बतलाते थे।

अतएव यह अनुमान—और संभवतः यह सफल अनुमान हो—होता है कि माड़ौ में कोई जंबै राजा राज्य करता रहा हो। उसी समय महोबे में, सन् ११८५ ई० में, परमाल (परमर्दी) राज्य करता था, और कन्नौज में जयचंद्र। करिंगाराय (शुद्ध नाम कुछ और रहा होगा—यह तो केवल कहने का नाम जान पड़ता है) उसी जंबै राजा का पुत्र था, और इसने महोबे के आक्रमण में दस्सराज और बच्छराज को बंदी कर लिया था, तथा माड़ौ ले जाकर उन्हें मार डाला था। ये सब घटनाएँ सन् ११८५ ई० से १२०३ ई० तक की हैं। और, यह भारत के इतिहास में ऐसा समय था, जब छोटे राजा इसी प्रकार से उत्पन्न हो रहे थे, जैसे खेत में मूली।

(६) 'माड़ौ' मालवा, गुजरात और माड़वार की सीमा पर है। वहाँ पर यह संशय मन में उत्पन्न होता है कि इस समय मैं कहाँ पर हूँ। भाषा, वेष-भूषा आदि इनकी सबकी इतनी ज़्यादा मिलती है! देश भी एक-सा ही देख पड़ता है। ऐसी स्थिति में दूर-देशस्थ महोबे में देवलदेवी का 'चढ़ो करिंगा गढ़ माड़ौ को' और माहिल का 'चढ़ो करिंगा मारवाड़ से' कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता, प्रत्युत वह इसी माड़ौ की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जो मारवाड़ की सीमा पर है।

संभव है, कुछ और भी बातें ढूँढ़ने से निकल आवें, तथापि इतनी ही, आवश्यकता से कहीं अधिक, 'माँड़ौ' को आल्हखंड का 'माड़ौ' प्रमाणित करने के लिये हैं। इन सबका सार केवल यही निकलता है कि 'आल्हखंड' का "माड़ौ" धार-रियासत में धार से २१ मील दूर-स्थित 'मांडू' ही है।

रीवाँ के समीप एक 'माधोगढ़' है, और एक 'राघोगढ़' इंदौर के आसपास ही कुछ दूरी पर है, दूसरा 'राघोगढ़' ग्वालियर-रियासत में ईसागढ़-ज़िले में दिखता है, और न-मालूम कितने 'गढ़ांत' नाम के स्थान इस मालवे और मध्य-भारत में होंगे, जिनका कोना-कोना प्राचीन भारत के इतिहास से भरा पड़ा दिखता है। तो भी आल्हखंड का "माड़ौ" और कहीं भी हो सकता है, ऐसा विचार करना और तदनुसार उसके ढूँढ़ने का प्रयत्न करना मुझे तो हास्यास्पद ही जान पड़ता है।

सुधांशुजी ने यद्यपि डा० जार्ज ग्रियर्सन का मत देकर यह बताया है कि धार-स्टेट का Marro or Maurogarh ही आल्हखंड का माँड़ौ है, तथापि देश से अपरिचित होने के कारण, लेख में सर्वत्र, आपने यही कहा है कि धार-रियासत का **माँधोगढ़** ही आल्हखंड का 'माँड़ौ' दिखता है, और इसे ही 'माँड़ौ' मानना पड़ेगा। यह 'माँधोगढ़' को 'माँड़ौ' बनाने का प्रयत्न उनके मालवे और धार-रियासत से अपरिचित होने के कारण तथा उसी 'माँड़ौ' के आल्हखंड का 'माँड़ौ' निश्चित रूप से होने के कारण ही अविचारणीय है। अन्यथा वह प्रश्न का रूपांतर ही कर देता, और स्थिति-निर्णय में भी बहुत कठिनाई जाती। जहाँ तक मैं जानता हूँ, माँधोगढ़ नाम का कोई भी ग्राम धार-रियासत में नहीं है, जो माँड़ौ की ऐसी भूमि पर बसा हो। और 'माँड़ौ' भी आज तक अनेक नामों से पुकारा गया है; किंतु 'माँधोगढ़' नाम से कभी नहीं।

मेरी क्षुद्र सम्मति में पैरीगढ़, झुन्नागढ़ और पथरीगढ़ इत्यादि अन्य नाम भी काल्पनिक नहीं हैं। ये वास्तव में कहीं-न-कहीं रहे होंगे, और आज भी होंगे। संभवतः खोज से इनके संबंध में कुछ और भी पता लगेगा।

'माड़ौ' की स्थिति भारत के इतिहास में निराली और अद्वितीय है। यह १,५०० वर्षों से अधिक का प्राचीन स्थान है। जिस प्रकार भारत के अनेक स्थानों ने हिंदू और मुसलमान-राज्य-काल में अपने उत्कर्ष की चरम सीमा प्राप्त की थी, और आज वे अपने अतीत गौरव पर बिना चार-चार आँसू फूट-फूटकर रोते हुए दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार मांडू भी किसी समय अतुल सौभाग्य-श्री और समृद्धि से संपन्न था, और मालवे और मध्य-भारत की राजधानी था। जिस समय पूना, इंदौर, बड़ौदा, जबलपुर, नागपुर आदि पचासों स्थान संभवतः जंगली लोगों की झोपड़ियों के रूप में स्थित रहे होंगे, और शायद इनकी नींव तक न पड़ी होंगी, उस समय धार, मांडू और उज्जैन विशाल राज्यों की राजधानी थे। किंतु आज तो वे बहुत गिर गए हैं, ख़ासकर मांडू तो एक झोपड़ियों का ग्राम-मात्र-सा है।

मुझे दृढ़ आशा है कि माधुरी के पाठकों की सेवा में शीघ्र ही, 'मांडू' के संबंध में, एक विस्तृत लेख भेंट कर सकूँगा।

वासुदेवप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुकुर

(१)

मुकुर ! न कोई तुझ-सा है भाग्यशाली, और
मिलता सदैव तुझे मान अति भारी है ;
सुमन-समान निज कोमल करों में नित्य,
लेती तुझे प्यार से सहर्ष सुकुमारी है।
प्रतिदिन देखता है जी-भर जिसे तू, वह
मंजु मनोहारी छवि किसने निहारी है ;
तेरे अंक में है वह शोभा अनायास आती,
प्यारी सुखकारी तीन लोक से जो न्यारी है।

(२)

दिखती तनिक इतराई इठलाई जैसी,
तेरे पास आने पर छवि मन भाई है ;
इस भाँति तुझसे सदैव मिल जाती वह,
लगती अभिन्न दिव्य गात की गोराई है।
शीघ्र ही बनाता तुझको भी दर्शनीय सदा,
उसका रुचिर प्रतिबिंब मोददायी है ;
मुकुर ! बता तू क्यों न देख पड़ती है अब,
वह सुघराई कहाँ तुझमें समाई है।

(३)

देखकर रम्य रत्न-जटित विभूषणों को,
आती बार-बार सुध दिव्य तारागण की,
किसको नहीं है सब काल यह होता ज्ञात,
चारु चाँदनी-सी चारुता है मंजु तन की।
पूर्ण चंद्रमा की उपजाती मन में है भ्रांति,
कमनीय कांति मृदु मंजुल वदन की ;
मुकुर ! सभी दिन अनूप रूप-राशि वह,
तुझको दिखाती छटा राका के गगन की।

(४)

धन्यवाद दे तू उस मूर्तिमती मंजुता को,
मिलती सदैव तुझे जिससे बड़ाई है ;
मुकुर ! न कर मन में तू अभिमान नेक,
उसकी छटा में तेरी छवि भी समाई है ;
उसकी प्रभा में देख ले तू प्रतिबिंब निज,
तुझमें ज़रा भी कहाँ वैसी सुघराई है ;
होता चूर तेरी चारु आभा का गरूर सारा,
जब वह देखती कपोल की लुनाई है।

गोपालशरणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह के पूर्वार्द्ध पर एक दृष्टि

(१)

यह संग्रह काशी-नागरी-प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित हुआ है। संपादक इसके म० म० रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा और लेखक भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् हैं। यह ग्रंथ सुप्रसिद्ध बाबू श्यामसुंदरदासजी बी०ए० को हिंदी का बृहत् कोश तैयार करने के उपलक्ष्य में समर्पित किया गया है। ऐसे सुयोग के कारण, आशा है, हिंदी-साहित्य-सेवी इसका समुचित आदर करेंगे। ऐसे ही इस सर्वमान्य ग्रंथ के पूर्वार्द्ध पर हम एक सरसरी नज़र डालने का साहस करते हैं। हम यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदी-संसार इसे हमारी अनधिकार-चर्चा, धृष्टता या चपलता ही समझेगा : क्योंकि इसके संपादक-प्रवर हमारे परम कृपालु, श्रद्धेय गुरु हैं, और इसके लेखकों में विद्यावयोवृद्ध जायसवाल महाशय-जैसे सर्वमान्य और पूज्य विद्वान् हैं, जिनके शिष्य होने की योग्यता भी हममें नहीं है। फिर भी हमारा उक्त संग्रह पर कुछ लिखना विद्यावयोवृद्धों के सामने शिष्य-भाव से और अन्य समवयस्क विद्वानों के सामने मित्र-भाव से केवल अपनी शंकाओं के निवारणार्थ ही है। साथ ही हमारा यह भी नम्र निवेदन है कि लेख की नीरसता मिटाने के लिये इसमें जो कुछ यथास्थान परिहास का समावेश किया जायगा, उसके लिये भी सहृदय विद्वान् हमें क्षमा करने की कृपा करेंगे।

उक्त संग्रह में पहला लेख जायसवाल महाशय का है। इसमें ज्योतिष-विषय के अप्रकाशित और अलभ्य ग्रंथ गर्ग-संहिता के युगपुराण-नामक अध्याय से भारत का इतिहास उद्धृत किया गया है।

उसमें कलि के प्रारंभ के विषय में लिखा है कि द्रुपद की पुत्री कृष्णा (द्रौपदी) के मरने पर कलियुग का प्रारंभ हुआ। यह एक नवीन सिद्धांत है ; क्योंकि भागवत में श्रीकृष्ण की मृत्यु के उपरांत कलि का प्रारंभ माना है। यथा—

विष्णुर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवंगतः।
तदाविशत्कलिर्लोके पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥
(स्कंध २, अध्याय २)

विष्णुपुराण से भी इसी बात की पुष्टि होती है। परंतु वृद्ध गर्ग ने कृष्ण के स्थान पर कृष्णा को ला बिठाया है। हमारी समझ में कलि-जैसे युग में स्त्री की प्रधानता को इस प्रकार प्रकारांतर से घोषित करना कुछ अनुचित नहीं हुआ है। वराहमिहिर ने, जिसकी मृत्यु ईसवी सन् ५८७ में हुई थी, वाराही संहिता बनाई थी। उसमें उन्होंने गर्ग की इस संहिता का उल्लेख किया है। परंतु उन्होंने लिखा है—

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥ ३ ॥
(वाराहीसंहिता, सप्तर्षिचार)

इससे युधिष्ठिर का समय शक-संवत् से २,५२६ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। कलियुग-संवत् का और शक-संवत् का अंतर साधारणतः आजकल ३,१७९ वर्ष का माना जाता है। ऐसी हालत में वराहमिहिर के मतानुसार कलियुग-संवत् के ६५३ वर्ष बाद महाभारत-युद्ध हुआ था। अतः इस हिसाब से तो कलि के प्रारंभ के समय शायद कृष्ण और कृष्णा, दोनों इस संसार में अवतीर्ण ही नहीं हुए होंगे ?

इसके आगे गर्ग-संहिता में जनमेजय के विषय में लिखा है—

सोपि राजा द्विजैः सार्द्धं विरोधमुपधास्यति।
दारविप्रकृतामर्षः कालस्य वशमागतः ॥

परंतु महाभारत से जनमेजय का स्त्री और ब्राह्मणों से विरोध होना प्रकट नहीं होता। संभव है, पुराणांतर में यह बात लिखी हो।

आगे शिशुनागवंशी उदायी के बसारा पुष्पपुर (कुसुमपुर) के बारे में लिखा है कि यह नगर पाँच हज़ार पाँच सौ पाँच वर्ष, पाँच महीने, पाँच दिन (?) और पाँच मुहूर्त तक आबाद रहेगा।

यह भविष्यवाणी तो उज्जैन के प्रसिद्ध परमार राजा भोज के विषय में की गई निम्न-लिखित भविष्यवाणी के समान ही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि सप्तमासं दिनत्रयम् ।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः ॥

वायुपुराण में भी एक स्थान पर गुप्तों के राज्य-विस्तार के विषय में भविष्यवाणी मिलती है—

अनुगङ्गाप्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा ।
एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥

इसके आगे गर्ग ने लिखा है—

तस्मिन्पुष्पपुरे रम्ये जनराजाशताकुले ।
ऋतुज्ञा कर्मसुतः शालिशूको भविष्यति ॥
स राजा कर्मसूनो दुष्टात्मा प्रियविग्रहः ।
स्वराष्ट्रं मर्दते घोरं धर्मवादी अधार्मिकः ॥
स ज्येष्ठभ्रातरं साधुं केतितिप्रथितं गुणैः ।
स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम् ॥

इसका भावार्थ उक्त लेख के १३वें पृष्ठ पर इस प्रकार दिया है—

"पुराणों के अनुसार यह राजा (शालिशूक) मौर्य-वंश में अशोक के बेटे सुयश अथवा कुनाल का पुत्र था। इसके बड़े भाई संप्रति ने जैन-धर्म को ख़ूब फैलाया। मालूम पड़ता है, शालिशूक ने इसकी नक़ल की। अशोक ने अपने शिलालेख में कहा है कि मेरे बेटे और पोते 'धर्मविजय' को स्थापना करें। शालिशूक के बारे में, यहाँ गर्ग-संहिता में, लिखा है कि यह अधार्मिक मोहात्मा राजा धर्मविजय नाम की स्थापना करनेवाला हुआ, अर्थात् इसने अवैदिक धर्म चलाया।"

परंतु पुराणों में इस शालिशूक को अशोक के पुत्र सुयश अथवा कुनाल का पुत्र लिखा देखने में नहीं आता। इस विषय में हम भिन्न-भिन्न पुराणों के कुछ वचन यहाँ उद्धृत कर देते हैं—

'तस्याप्यशोकवर्द्धनस्ततस्सुयशास्ततश्च दशरथस्ततश्च संयुतस्ततश्शालिशूकस्तस्मात्सोमशर्मा ।'

(विष्णुपुराण पृ० १९९—वेंकटेश्वर-प्रेस)

अर्थात—अशोकवर्द्धन का पुत्र सुयशा, उसका दशरथ, उसका संयुत और संयुत का शालिशूक तथा उसका सोमशर्मा।

इस संयुत को ही शायद कहीं संप्रति लिखा हो।

षट्त्रिंशत्तु समाराजा ह्यशोको भविता नृपु ॥ ३२६ ॥
तस्य पुत्रः कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति ।
कुनालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ॥ ३२७ ॥
बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालितः ।
भविता सप्तवर्षाणि देववर्मा नराधिपः ॥ ३२८ ॥

(वायुपुराण पृ० १७६—वेंकटेश्वर-प्रेस)

अर्थात—अशोक का पुत्र कुनाल, उसका बंधुपालित, बंधुपालित का उत्तराधिकारी इंद्रपालित, उसका देववर्मा।

इसमें शालिशूक का नाम ही नहीं है, और कुनाल के पुत्र का नाम बंधुपालित लिखा है।

……ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥
सुयशा भविता तस्य सङ्गतस्सुयशस्सुतः ।
शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥

(भागवत, द्वादश स्कन्ध, अध्याय २—वेंकटेश्वर-प्रेस)

अर्थात—अशोकवर्धन का सुयशा, उसका पुत्र संगत और संगत का शालिशूक।

संभव है, संगत का ही दूसरा नाम संप्रति हो, वह शालिशूक का भाई भी हो, और ये दोनों सुयश के पुत्र हों। परंतु मूल से यह बात नहीं प्रकट होती।

षट्त्रिंशत्तु समाराजा भविता शक (ऽशोक) एव च ।
सप्तानां दशवर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति ॥ २३ ॥
राजा दशरथाष्टौ तु तस्य पुत्रो भविष्यति ।
भविता नववर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥ २४ ॥

(मत्स्यपुराण, अध्याय २७२—वेंकटेश्वर-प्रेस)

इसमें भी शालिशूक का नाम नहीं है।

षट्त्रिंशत्तु समाराजा अशोकानां च तृप्तिदः ॥ ४५ ॥
तस्य पुत्रः कुशालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति ।
कुशालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ।
बन्धुपालितदायादो भविता चेंद्रपालितः ।
भविता सप्तवर्षाणि देववर्मा नराधिपः ॥ ४७ ॥
राजा शतधनुश्चापि तस्य पुत्रो भविष्यति ।
बृहद्रथश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः ॥ ४८ ॥

(ब्रह्मांडपुराण, अध्याय ७४, पृ० १८५—वेंकटेश्वर-प्रेस)

अर्थात—अशोक का पुत्र कुशाल (कुनाल), उसका बंधुपालित, बंधुपालित का उत्तराधिकारी इंद्रपालित, उसका देववर्मा और देववर्मा का शतधनुः तथा उसका बृहद्रथ।

इसमें भी शालिशूक का नाम नहीं है।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ ने भी अपने इतिहास (The Early History of India) के पृ० २०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अशोक के पौत्र का नाम दशरथ लिखा है, और पृ० २०७ पर उस (दशरथ) को और वायुपुराणोक्त कुशाल को एक माना है। इसी प्रकार संगत को वायुपुराण के बंधुपालित से और शालिशूक को वायुपुराण के इंद्रपालित से मिलाया है। साथ ही शालिशूक का खारवेल द्वारा हराया जाना भी लिखा है। फिर उन्होंने अपने उसी इतिहास के पृ० २२८ पर गर्गसंहिता का हवाला देकर कोष्ठक में शालिशूक को अशोक का चौथा उत्तराधिकारी (The fourth successor) लिखा है।

इसके अलावा गर्गसंहिता से उद्धृत श्लोकों में 'कर्मसुतः शालिशूको' और 'स राजा कर्मसूतो' लिखा है। समझ में नहीं आता कि इस विशेषण का प्रयोग ग्रंथकार ने किस मतलब से किया है।

इसी प्रकार—

सज्येष्ठभ्रातरं साधुं केततिप्रथितं गुणैः।
स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम् ॥

इस श्लोक से अपने बड़े भाई संप्रति के समान ही शालिशूक के धर्मविजय-स्थापन करने का उल्लेख मानना भी शब्दार्थ के अनुसार तो क्लिष्ट कल्पना ही प्रतीत होती है। इस श्लोक में 'केतिति' (केतति *) इस शब्द को छोड़कर अन्य शब्दों का अर्थ स्पष्ट ही है।

आगे यवनों के पुष्पपुर पर आक्रमण करने पर 'शस्त्रद्रुममहायुद्धं' का होना लिखा है। संभव है, यवनों को भगाने के लिये पुष्पपुरवालों ने दरख़्तों की टहनियाँ तोड़-तोड़कर उन पर फेंकी हों, अथवा शेक्सपियर के मैकबैथ-नामक नाटक में प्रदर्शित जंगल के आगमन के समान ही इसमें भी कोई रहस्य रहा हो †।

इसी प्रकार कलि के अंत में देश की दशा दर्शाते हुए गर्ग ने 'समवेषाः समाचारा भविष्यन्ति न संशयः' इस श्लोकार्द्ध का दो बार प्रयोग किया है। इससे अनुमान होता है कि वर्तमान काल के जेंटिलमैनों की तरह उस समय भी कुछ लोग यवनानुकारी बन गए थे।

कलि के अंत के विषय में खुलासा करते हुए, पृ०१२ पर, लिखा है—"मनु ने १,२०० वर्ष कलि को माना है।" परंतु मनुस्मृति में इस विषय में लिखा है—

दैवेरात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥
(अध्याय प्रथम)

इसके अनुसार तो मनुष्यों के एक वर्ष की देवताओं की एक दिन-रात होती है, और देवताओं के १,२०० वर्षों, अर्थात् मनुष्यों के ४,३२,००० वर्षों का कलियुग सिद्ध होता है। परंतु ऐतिहासिक इस दैवी झमेले को क्यों मानने लगे।

आगे स्मारक-संग्रह के पृष्ठ १४ पर लिखा है—

"पुराणों में भी साफ़ लिखा है कि परीक्षित के अभिषेक से बारह सौ वर्ष तक कलि का काल है। इससे जान पड़ता है कि २०० वर्ष विक्रम-पूर्व के लगभग कलि शेष माना गया। फिर पीछे जब समय लौटता नहीं देखा, तो कलि को विक्रम तक माना और फिर कलि तक, जो पाँचवीं सदी में हुए।"

इससे प्रकट होता है कि या तो विद्वानों के ये सब अनुमान व्यर्थ गए, या पाँचवीं सदी से फिर सत्युग लौट आया !

---

* धातुपाठांतर्गत एक 'कित' धातु है। यह निवास या रोगापनयन के अर्थ में प्रयुक्त होती है। कहीं-कहीं इससे संशय और इच्छा का भी मतलब लिया जाता है। रोगापनयन के अर्थ में इसका रूप 'चिकित्सति' होता है। परंतु इच्छा और निवास के अर्थ में इसका रूप 'केतति' माना गया है।

† मैकबैथ को चुड़ैलों द्वारा बुलाए हुए भूत ने कहा था कि जब तक 'बर्नम' का जंगल 'डंसीनन'-पहाड़ तक चढ़ाई न करेगा, तब तक तू पराजित नहीं होगा। अतः इस असंभव बात को सुनकर वह निश्चिंत हो गया था। परंतु जब मालकम ने 'डंसीनन' पर चढ़ाई की, तब उसके सैनिकों ने मार्ग में 'बर्नम' के जंगल के वृक्षों की शाखाएँ तोड़-तोड़कर अपने हाथों में ले लीं। इस प्रकार वह भविष्यवाणी पूरी हुई और युद्ध में मैकबैथ मारा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने भी लिखा है—

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादश साहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥
(अध्याय प्रथम)

अर्थात—इस प्रकार पहले के श्लोकों में जो १२,००० वर्षों के चार युग * कहे हैं, उन युगों की चौकड़ी की १२,००० संख्या बीतने पर देवताओं का एक युग होता है।

इससे भी ज्ञात होता है कि कलियुग के बाद फिर सत्ययुग आ जाता है। किसी अंश तक यह ठीक भी प्रतीत होता है; क्योंकि आज ही हम गौरवर्णवाले देवताओं के विमानों को आकाश में उड़ते हुए देखते हैं, और रेडियो के द्वारा घर-बैठे गंधर्वों और अप्सराओं के वाद्य-गान का आनंदानुभव करते हैं। अतः अपने को कलियुगी प्राणी समझनेवाले भारतवासियों को इस प्रकार सतयुगी जीव सिद्ध हो जाने पर हम हार्दिक बधाई देते हैं।

आगे गर्ग ने लिखा है—

'धर्ममीततमा वृद्धा जनं मोक्ष (क्ष्य) न्ति निर्भयाः ।
यवना ज्ञापयिष्यन्ति [नश्येरन्] च पार्थिवाः ॥
मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदा ।
तेषामन्योन्यसंभावं भविष्यति न संशयः ॥
आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम् ।'

इसका खुलासा करते हुए पृ० ११-१२ पर लिखा है—

"ईसवी सदी से कोई २०० वर्ष पूर्व देमित्रिय (Demetrios) नाम का यवन-राजा हुआ, जो काबुल से पश्चिम, बल्ख में, राज्य करता था। उसे ग्रीक एतिहासिकों ने "भारतीयों का राजा" कहा है। उसी के बारे में वहाँ लिखा हुआ है कि जब उसके मूल-देश बैक्ट्रिया (बल्ख) में उसके अपने आदमी बिगड़ गए, और गृह-युद्ध मच पड़ा, तो देमित्रिय अपने देश को भारत से वापस चला गया। स्पष्ट है कि यही राजा मौर्यों के अंतकाल और शुंग-राज्य (पुष्यमित्र-बृहस्पतिमित्र के राज्य) के आदि में आया था, जिसे यहाँ धर्ममीत कहा है, और जो आत्मचक्रोत्थित युद्ध के कारण मध्यदेश छोड़ वापस गया। इसके अफ़सरों को 'तमावृद्धाः कहा है, अर्थात् वे तमा के बड़े अफ़सर थे। तमा ग्रीक में ख़ज़ाने को कहते हैं, अर्थात् ये उस समय के बकशी या कलेक्टर साहब थे, जिनका अब्ल देश में बच रहा।

"यवनराज का पटने की ओर आना श्रीखारवेल के शिलालेख से भी साबित होता है, और उसका साकेत घेर लेना पुष्यमित्र की सभा के व्याकरण-भाष्यकार पतंजलि के 'अरुणद् यवनसाकेतं' उदाहरण से भी विदित है।"

यह डिमेट्रियस यूथेडिमस (Euthydemus) का पुत्र और ऐंटिओकस (Antiochus) का जामाता था। शायद ग्रीक-लेखक जस्टिन और स्ट्रेबो ने इसे हिंदुस्थान का राजा लिखा है। डाक्टर पर्सी गार्डनर का मत है—"वास्तव में अपने पिता के समय ही डिमेट्रियस ने लाहौर तक का उत्तरीय भारत विजय किया था। परंतु इसका सिंधु (Indus), सौराष्ट्र आदि विजय करना मानना ठीक नहीं प्रतीत होता; क्योंकि स्ट्रेबो के लेख से तो इतना ही ज्ञात होता है कि कुछ ग्रीक-राजाओं ने इन देशों पर अधिकार कर लिया था। इससे इस विजय का श्रेय मिनैंडर को देना ही अधिक युक्तिसंगत है।

डिमेट्रियस और यूक्रेटिडस (Eucraitidus) के आपस के द्वेष और ऐंटिमेकस (Antimachus) की प्रभाव-वृद्धि के कारण यूथेडिमस के मरने पर उसका राज्य बँट गया था। अतः डिमेट्रियस भारत के उत्तरीय प्रदेश का शासन थोड़े ही काल तक कर सका। इसी से इसके बहुत ही थोड़े सिक्कों को छोड़कर बाक़ी सब पर केवल ग्रीक-लिपि के लेख ही मिले हैं, और ये सिक्के भी भारत में नहीं के बराबर ही मिले हैं। हाँ, कुछ थोड़े से शायद पंजाब में मिले हैं। परंतु यूक्रेटिडस के भारत में बने ग्रीक और खरोष्ठी-लिपियोंवाले (Bronze धातु के) चौकोर सिक्के अधिक संख्या में मिलते हैं।

परंतु वी० ए० स्मिथ अपने इतिहास में डिमेट्रियस का काबुल, पंजाब और सिंध विजय करना लिखते हैं *।

जायसवाल महाशय के तैयार किए खारवेल के शिला-

* मनु ने देवी ४,८०० वर्ष का सत्ययुग, ३,६०० का त्रेता, २,४०० का द्वापर और १,२०० का कलि माना है। इस प्रकार इन चारों युगों की चौकड़ी में कुल मिलाकर १२,००० दैवी वर्ष होते हैं।

* The Early History of India, p. 237.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख के पाठ * में 'मधुरं अपयातो यवनराज डिमित'... लिखा होने से डिमेट्रियस का मथुरा तक पहुँचना सिद्ध होता है।

पतंजलि के भाष्य में 'अरुणद्यवनो साकेतं' के साथ ही 'अरुणद्यवनो मध्यमिकां' का उल्लेख भी है। वी० ए० स्मिथ आदि विद्वान् इससे मिनैंडर के आक्रमण का तात्पर्य लेते हैं †। परंतु जायसवाल महाशय के लिखे अनुसार यदि इससे डिमेट्रियस को विजय का ही अर्थ लिया जाय, तो यह भी मानना होगा कि यह राजा उदयपुर से उत्तर आठ मील पर स्थित मध्यमिका (नगरी) तक भी पहुँचा था ‡।

इसके बाद गर्ग ने ग्रीक-नरेशों के नाश के बाद साकेत में अग्निवैश्य × के वंशज सात राजाओं का उदयास्त होना और शकों के आगमन, उत्पात और नाश का वर्णन किया है। अनंतर अम्लाट, गोपालोभाम, पुष्य और सविल-नामक म्लेच्छ-राजाओं का वर्णन है। जायसवाल महाशय इनसे क्रमशः अमिनट (Amynlos), अपोलोफान (Appolophanes) प्युकेल (Peukelaos) और ज़िओल (Ziolos) का तात्पर्य लेते हैं।

इसके आगे गर्ग लिखते हैं—

ततो विकुयशा कश्चिद् ब्राह्मणो लोकविश्रुतः।
तस्यापि त्रीणि वर्षाणि राज्यं दुष्टं भविष्यति॥

इस श्लोक के 'लोकविश्रुतः' इस पद के विषय में संग्रह के पृ० २ पर लिखा है—

"वरन् एक जगह तो ऐसा लिखा है कि अमुक बात मौखिक सुनी (जनविश्रुत) है, अर्थात् गर्ग ने या लेखक ने उसे सुनकर लिखा।"

परंतु इस विशेषण को (जिसका अर्थ साधारणतः 'प्रसिद्ध' हो सकता है) इतना महत्त्व देने से इससे पूर्व की सारी बातें भी तो जनश्रुत, मौखिक या सुनी-सुनाई हो जायँगी—ख़ासकर इसी के पहले का शकों का वर्णन, जिसके बारे में उसी पृ० २ पर लिखा है—'तब शकों का हाल इस तरह दिया है कि जैसे आँख से देखा हो'—भी सुना-सुनाया ही मानना होगा।

इसके बाद गर्ग-संहिता में पुष्पपुर के राजा अग्निमित्र का उल्लेख कर एक रूपवती कन्या के कारण उसके और ब्राह्मणों के बीच विरोध के बढ़ने तथा अग्निमित्र की मृत्यु होने का उल्लेख है। इसके पीछे अग्निवैश्य-नरेश का २० वर्ष राज्य करना लिखा है। यह राजा जंगली क़ौमों के साथ के एक युद्ध में मारा गया था। परंतु यह युद्ध गर्ग के लेखानुसार आधुनिक योरपीय महायुद्ध से भी भयंकर था। इससे पृथ्वी-भर में नहीं, तो कम-से-कम भारत में तो मनुष्यों के दुष्प्राप्य हो जाने से कामरूप का-सा स्त्री-राज्य सर्वत्र फैल गया था। एक-एक पुरुष के गले दस-दस, बीस-बीस स्त्रियाँ मढ दी जाती थीं। गाँव हो या नगर, पुरुषों को देखते ही स्त्रियाँ मधु-मक्खियों की तरह उनके चारों तरफ़ चिमट जाती थीं।

---

* नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भा० ८, अं० ३, पृ० ३१५।

† The Early History of India, p. 227.

‡ श्रीयुत भुवनेश्वर झा ने गर्गसंहिता पर लिखते हुए अपने एक लेख में मध्यमिका से मध्यप्रदेश का तात्पर्य लिया है, और खारवेल के लेख में मध्यमिका को घेरनेवाले यवन-राजा का नाम नष्ट हो जाने की सूचना दी है। परंतु नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भा० ८, अं० ३, पृ० ३१५ में दिए जायसवाल महाशय के खारवेल-लेख के पाठ में 'यवनराज डिमित...' इतने अक्षर हैं, और उदयपुर-राज्य के नगरी-स्थान से मिले सिक्कों पर 'मझिमिकायशि बिजनपद' लिखा होने से और वहाँ से मिले लेखखंड पर 'वीराय भगवते..... चतुरशीति.....मिझमिका ... .' लिखा होने से इसी नगरी का नाम मध्यमिका होना अधिक संभव प्रतीत होता है

वी० ए० स्मिथ भी ऐसा ही मानते हैं।

The Early History of India, p. 227.

× जायसवाल महाशय ने अग्निमित्र के पिता पुष्य-मित्र के वंशजों का अयोध्या में राज्य करना बतलाकर अग्नि-वैश्यों से उन्हीं का तात्पर्य लिया है।

* संभवतः यह उक्ति सिप्रापर के शकों के उपद्रव के विषय में हो; परंतु वहाँ पर मूल में 'इति श्रुतिः' ये शब्द आए हैं। अतः ये वृत्तांत भी 'लोकविश्रुतः' की तरह ही सुनाए ही होने चाहिए।

† विंशद्वार्या दशो या वा भविष्यन्ति नरास्तदा।
ततः संघातशो नार्यो भविष्यन्ति न संशयः॥
आश्चर्यमिति पश्यन्तो दृष्ट्वाधः पुरुषाः स्त्रियः।
स्त्रियो व्यवहरिष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि ईश्वर ऐसे ही समय आधुनिक रसिया बाबुओं को उत्पन्न कर देता, तो उनकी पूर्ण तृप्ति हो जाने पर आज बहुत-सी बीमारियों से देश का उद्धार हो जाता।

इसके बाद वृद्ध गर्ग ने सातुराज-नामक किसी राजा का उल्लेख कर, सिप्रापर-शकों के उपद्रव का वर्णन किया है। इन सब निरंतर की घटनाओं को देख-कर शायद ईश्वर भी घबरा गया था। इसी से उसने दुर्भिक्ष और महामारी को भेजकर भारत को ग़ारत कर देने की ठान ली। इस प्रकार कलियुग का अंत हो गया।

वास्तव में पुराणादिकों में अप्राप्य बहुत-सी बातें गर्गसंहिता में मिलती हैं। परंतु शैली और लेखक-दोष आदि से उनका निश्चित रूप से उपयोग कठिन हो गया है। फिर भी ऐतिहासिक लोग इस खोज के लिये जायस-वाल महाशय के आभारी रहेंगे।

लेख के बहुत बढ़ जाने से आगे संक्षिप्त विचार से ही संतोष करना उचित प्रतीत होता है।

दूसरे लेख 'अवधी-हिंदी-प्रांत में राम-रावण-युद्ध' के लेखक रायबहादुर हीरालाल बी० ए० हैं।

इस लेख में दक्षिण-कोशल में लंका का होना प्रमाणित किया गया है। रावण की लंका को सीलोन से उठाकर भारत के किसी कोने में ला रखने के विषय में, लेखकों में, ख़ासा वाद-विवाद चल रहा है। राय-बहादुर महाशय ने इसके पक्ष में अपने भिन्न-भिन्न स्थानों के भ्रमण में प्राप्त अनुभवों को भी उपस्थित किया है। हम भी यहाँ एक स्थानीय किंवदंती उपस्थित करते हैं। मारवाड़ * की प्राचीन राजधानी मंडोर या मंडोवर रावण की भार्या मंदोदरी (मारवाड़ी भाषा की मंडोवरी) का जन्म-स्थान था, और रावण को विजय कर अयोध्या को लौटते हुए श्रीरामचंद्र भी दलबल-सहित मंडोवर से ३ मील पर स्थित बैजनाथ-महादेव के दर्शन को आए थे। उस समय वह तो लक्ष्मण और सीता के साथ मंदिर में वंदना करने को चले गए, परंतु बाहर निठल्ले बैठे हुए वानरों (उराँवों) और ऋक्षों (शबरों) का जी ऊब उठा। इस पर महादेव बाबा ने आसपास के समग्र पर्वत में इतस्ततः छोटे-छोटे श्वेतलिंग उत्पन्न कर दिए। इससे प्रत्येक वानर और ऋक्ष उनकी अर्चना कर कृतकृत्य हो गया। आज भी उक्त पर्वत पर इस घटना के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह बात कहाँ तक ठीक है, सो तो हमें नहीं मालूम; पर उपर्युक्त लेख के साथ दिए नक़शे में देखने से सीलोन अपेक्षा अवधी-हिंदी का प्रांत ही मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मंडोर से नज़दीक प्रतीत होता है। हाँ, लंका के इस स्थान-परिवर्तन से राम के तीर से समुद्र का उत्तरीय भाग सूखने पर जिस मरु-स्थल की उत्पत्ति हुई थी, उसमें कुछ गड़बड़ आ जाने की आशंका ज़रूर है। अतः या तो रामायण के 'उत्तरेणावकाशोस्ति काश्चित्पुण्यतरो मम' इस श्लोकार्द्ध में 'उत्तरेण' के स्थान में 'पश्चिमेन' पाठांतर कर देना होगा, या फिर वहीं कहीं उत्तर की तरफ़ आसपास मरु-स्थल का पता लगाना होगा। परंतु हो वह स्थल रामायण में कहे अनुसार—'पशव्यश्चाल्परोगश्च' और 'बहुस्नेही बहुक्षीरः'। बस, फिर सब मामला साफ़ है।

तीसरा लेख स्वयं संग्रह-संपादक स्वनामधन्य श्रद्धेय ओझाजी का है। इसका शीर्षक 'पृथ्वीराज-रासो का निर्माण-काल' है। यद्यपि श्रीमान् ने इसका आकार बढ़ाने के लिये इसमें बहुत-सी बातों का समावेश कर दिया है, तथापि पहले के ३२ पृष्ठों में बहुत अधिक नवीनता नहीं आई है; क्योंकि इस विषय में सरस्वती आदि में पहले से ही बहुत-से पन्ने काले किए जा चुके * हैं। हाँ, इस लेख के शीर्षक के असली तात्पर्य पर 'पृथ्वीराज-रासो का समय-निर्णय' हेडिंग के नीचे दो पृष्ठों में विचार किया गया है। इसके आगे के क़रीब तीन पृष्ठों का मैटर भी अच्छा है। फिर डेढ़ पृष्ठ में उपसंहार देकर यह ३८ पृष्ठ का लेख समाप्त किया गया है।

चौथा लेख 'आमेर के कछवाहा और रावपूजन तथा राव कीलहण का समय'-शीर्षक है। इसके लेखक श्रीहरि-चरणसिंह चौहान हैं। आपसे व्यक्ति-गत परिचय न होते हुए भी यह अकिंचन श्रीमान् के लेख से परम प्रसन्न, परंतु किंचिन्मात्र अप्रसन्न भी हुआ है। इस विरोधालंकार

* मारवाड़-राज्य के रावणिया और रावणियाणा-नामक गाँव भी इस बात की पुष्टि में सहायता देते हैं।

* फिर स्वयं ओझाजी ही नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में इस विषय पर लिख चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खुलासा आगे किया जाता है। प्रसन्न तो इसलिये कि आपने अपने सवा पाँच पृष्ठों के लेख में हमारे श्रद्धेय गुरु और जिस स्मारक-संग्रह में आपका यह लेख छपा है, उसके विद्वान् संपादक रायबहादुर पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा का कीर्तन पूरे ६½ बार किया है। चौथाई बार से हमारा तात्पर्य एक स्थान पर केवल 'ओझाजी'-मात्र लिखकर किए गए उल्लेख से है, और शायद इसी प्रेम के बंधन के कारण उक्त लेख ने भी ओझाजी के लेख से गठजोड़ा-सा बाँध लिया है। हमारे किंचिन्मात्र अप्रसन्न होने का कारण आपकी पृ० ७४ पर छपी ये पंक्तियाँ हैं—

"रायमलरासो में लिखा हुआ वृत्त कि 'राय कील्हण का महाराणा कुंभा की सेवा में रहना' यह राव और भाटों की गढंत नहीं तो क्या है? इसको कविराजा श्यामलदास-सरीखे ही विद्वान् मान सकते हैं; शोधकों के लिये तो जैसा पृथ्वीराजरासो वैसा ही रायमलरासो, दोनों समान हैं।"

हरे! हरे! यह अनजान में आपने क्या लिख मारा! स्वयं श्रद्धेय ओझाजी वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह के जीवन-चरित्र में, जो इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है, लिखते हैं—

"क्योंकि आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था।"

इसी प्रकार उन्होंने अपने राजपूताने के इतिहास के द्वितीय भाग के पृष्ठ ६१९ में भी लिखा है कि (महाराणा कुंभा ने) 'आंबेर को पीस डाला'। फिर वहीं फ़ुटनोट में वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से इसका प्रमाण भी दिया है—

'आम्रदाद्रि दलनेन दारुणः।'

हाँ, यह संभव है कि उस समय वहाँ पर कील्हण न होकर उसका कोई उत्तराधिकारी ही हो। परंतु था वह अवश्य महाराणा का अनुचर। अतः या तो आप इसे अंगीकार करें या, फिर इसे महाराणाश्रित कवि का उन्माद मानकर इसका अर्थ 'आम्र की दादी—अर्थात् बड़े-बड़े आमों के चूसने में कमज़ोर' करें। शायद यह संभव भी हो; क्योंकि मेवाड़ में छोटे-छोटे पहाड़ी चूसी आम ही अधिक होते हैं। हाँ, यदि अशास्त्रीय अर्थ को न मानकर शास्त्रीय अर्थ का ही शौक़ हो, तो जो है सो 'आम्रदा आदि' करिके भई आमवाली कुंजड़िन, आदि, तिनन पर 'दलन' करिके भया दंड देना, लगाना, तामें 'न' करिके नहीं जो है सो दारुणः कठोर। जैसा कि मनुस्मृति में भी लिखा है—

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्कर संज्ञितम्।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम्॥
(अध्याय ७, श्लोक ११७)

ख़ैर, जो कुछ भी हो, यह भूल आपसे अनजान में हुई है। इसी से यह आपका अज्ञात और अकिंचन मित्र यत्किंचिन्मात्र ही अप्रसन्न हो सका है। आगे एक तथ्य की बात नम्रता-पूर्वक और भी आपकी सेवा में निवेदन कर देना आवश्यक है। आपने लेखारंभ के समीप लिखा है कि—

"शिलालेख में सुमित्र का नाम न होने पर भी उन्होंने (ओझाजी ने) मूता नैणसी की ख्याति के आधार पर सुमित्र को उपरोक्त वज्रदामा के पुत्र मंगलराज का दूसरा पुत्र माना है। यद्यपि अन्य वंशावलियों की भाँति मूता नैणसी की दी हुई वंशावली भी बडवा-भाटों की वंशावलियों का ही आधार है, तथापि शिलालेखों के आधार पर चलनेवाले रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने जब उसको प्रमाण मान लिया है तो मानना ही पड़ेगा कि वज्रदामा के पीछे मंगलराज, सुमित्र, मधुब्रह्म, कहान, देवानीक, ईशासिंह, सोढदेव और दूलहराय हुए।"

परंतु क्या आपको यह ज्ञात नहीं कि उस्ताद को सो न करके, उस्ताद कहे सो ही करना चाहिए। माधुरी में प्रकाशित ओझाजी की लेखमाला के पाठकों को विदित ही है कि श्रीमान् के पास परब्रह्म की माया की तरह एक अनिर्वचनीय कसौटी है; जिसका भेद चराचर जगत में आज तक किसी पर भी प्रकट नहीं हो सका है। अतः वह जहाँ उचित समझते हैं, उसी की सहायता से चुपचाप मामला निपटा लेते हैं।

आगे आपने लिखा है कि "इनका संवत् शिलालेखों में कहीं नहीं मिला; पर वंशावलियों में सोढदेवजी का समय संवत् १०२३ से १०६३ तक मिलता है। जब कि वज्रदामा का संवत् १०३४ में ग्वालियर लेना मिलता है, तब उसके सातवें वंशधर का * संवत् १०२३ कैसे हो

* स्मारक-संग्रह, पृष्ठ ६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है ? किंतु पंडित मोहनलाल-विष्णुलालजी पंड्या के निर्णय किए हुए अनंद-संवत् के ९०-९१ वर्ष का अंतर जोड़ने से वज्रदामा से लेकर ईशासिंह तक ७ राजाओं के ७९ वर्ष होते हैं, जिनमें प्रत्येक का राज्य-समय ११ वर्ष ३ मास के ऊपर पड़ता है।... .....इस प्रकार जब अनंद-संवत् का अंतर लगने से वंशावलियों के संवत् शास्त्रीय अथवा शिलालेखों के संवतों से क्रमवार मिल जाते हैं, तब इस युक्ति का समर्थन करना उचित ही जँचता है।"

परंतु खेद है, यह युक्ति अब जराजीर्ण और निस्तेज हो चुकी है, और इसी युक्ति पर स्वयं श्रीओझाजी भी 'अनंद-संवत् कल्पित है' की टिप्पणी लगा चुके हैं। अतः अब तो सोढदेवजी को अपने सातवें पुरखा वज्रदामा से ११ वर्ष पहले ही धौसा (ढूंढार) की गद्दी पर बिठाना पड़ेगा।

आगे पृष्ठ ७२ पर आपने ओझाजी के मत के विषय में लिखा है—

"उसी वंशावली में उन्होंने सोढ़देवजी का धौसा आने का समय किसी आधार से संवत् ११२५ लिखा है, जो उनकी २० वर्ष की गणना से नहीं मिलता।"

किंतु इस 'किसी आधार' का उत्तर तो आपको स्वयं श्रद्धेय ओझाजी ही दे सकते हैं।

इसी प्रकार रावपजूनजी के समय का मामला भी, जिसे वह (ओझाजी) संवत् १२९४ और आप १२२६ मानते हैं, पूज्य ओझाजी के लिये ही छोड़ा जाता है।

आगे आपने, पृष्ठ ७४ पर, महाराणा रायमल के समय में बने रायमल-रासो के कर्ता और प्रसिद्ध वीरविनोद-नामक मेवाड़ के इतिहास के लेखक श्यामलदासजी के इस लेख पर कि कील्हणराय महाराणा कुंभा की सेवा में रहते थे, आक्षेप किया है।

यद्यपि इस पर हम पहले ही अपना वक्तव्य सुना चुके हैं, तथापि इतना और निवेदन कर देते हैं कि मेवाड़ के कविगण तो शायद किसी हालत में भी अपने आश्रय-दाताओं की झूठी प्रशंसा न करते थे। संशय हो, तो श्रीमान् ओझाजी से जाँच देखें।

फिर भला आप तो इतने से ही नाराज़ होते हैं। परंतु पहले ज़रा श्रद्धेय ओझाजी के लिखे महाराणा प्रताप के जीवन-चरित्र के सातवें पृष्ठ को ये पंक्तियाँ तो पढ़ लें—"क्योंकि आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था, पृथ्वीराज राणा सांगा के सैन्य में था, और भारमल का पुत्र भगवानदास भी पहले महाराणा उदयसिंह की सेवा में रहा था।" अब इन बातों का मानना-न-मानना आपकी इच्छा पर ही निर्भर है।

हाँ, यहाँ एक शंका और भी उत्पन्न होती है, और वह यह है कि श्रद्धेय ओझाजी ने तो राजपूताने के पवित्र इतिहास के द्वितीय खंड के पृष्ठ ६८५ पर, वीर-विनोद का आश्रय लेकर, वि० संवत् १५८४ के बाबर के साथ के युद्ध में आंबेर के राजा पृथ्वीराज का महाराणा सांगा की सेवा में होना लिखा है। परंतु इसी विषय पर विचार करते हुए आपने अपने लेख में (पृष्ठ ७६-७७) लिखा है—

"कवि राजा श्यामलदासजी ने बीकानेर की तवारीख़ के अनुसार आमेर के राजा पृथ्वीराज का अंतिम संवत् १५८४ सही माना है, वह भी ठीक नहीं है।..... .....संवत् १५८५ के आरंभ में..... आंमेर में राव रत्नसिंह, राव पृथ्वीराज का पोता और राव भीमसिंह का बेटा, राज्य करता था, जिसके और पृथ्वीराज के बीच पूर्णमल और भीमसिंह, दो नरेश राज्य कर चुके थे।"

अब्रह्मण्यं ! अब्रह्मण्यं ! अस्तु, हमें हर्ष इतना ही है कि बंदर की बला तबेले के सिर नहीं गई, और आपकी घुड़की के भागी असली दोषी श्यामलदासजी ही हुए।

पाँचवाँ लेख श्रीलोचनप्रसादजी पांडेय का—'पुराने सिक्कों की कुछ बातें' नाम का है।

इसके दूसरे पैरेग्राफ़ में अँगरेज़-विद्वानों की समालोचना करते हुए आपने सिंध के मोहनजोदड़ो से मिली प्राचीनतम मुद्राओं का उल्लेख किया है। हमें जहाँ तक स्मरण है, इन मुहरों (Seals) का सिक्कों से कुछ भी संबंध नहीं है। ये तो तावीज़ की तरह काम में लाई जाती थीं, और इनमें से अधिकांश मिट्टी या मिश्रित मसाले की बनी हैं।

इसके बाद लेख में अँगरेज़ी-पुस्तक का अवतरण देकर ८० कौड़ियों का १ पण बतलाया है, और आगे पृ० ८३ तक प्राचीन तोल और मुद्राओं के नाम उद्धृत किए हैं। यहाँ पर हम इस विषय के कुछ शास्त्रीय अवतरण देते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रिसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥
त्रिसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपास्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३ ॥
सर्षपाः षट् यवोमध्यस्त्रियवं तेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १३४ ॥
पञ्च सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दशः ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेया रौप्यमाषकः ॥ १३५ ॥
ते षोडशः स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ १३६ ॥
धरणानि दशज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ १३७ ॥

(मनुस्मृति, अध्याय ८)

अर्थात्—छेद में से आई हुई सूर्य की किरण के प्रकाश में जो धूलि के कण उड़ते हुए देख पड़ते हैं, उसके एक कण को त्रिसरेणु कहते हैं।

८ त्रिसरेणु की	१ लिक्षा या लीख
३ लिक्षाओं का	१ राजसर्षप (शायद राई का दाना)
३ राजसर्षपों का	१ गौरसर्षप (सरसों का दाना)
६ राजसर्षपों का	१ जौ (मध्य दरजे का)
३ जौ की	१ (कृष्णल) रत्ती
५ रत्ती का	१ माषा
१६ माषे का	१ सुवर्ण
४ सुवर्ण का	१ पल
१० पल का	१ धरण
२ रत्ती का	१ रौप्यमाषक (चाँदी का माषा)
१६ रौप्यमाषकों का	१ रौप्यधरण या रौप्य-पुराण

(एक कर्ष ताँबे के पण को कार्षापण कहते थे।)

१० रौप्यधरण का	१ रौप्यशतमान
४ सुवर्ण का	१ निष्क

कार्षापण के बाबत कात्यायन-स्मृति में लिखा है—

माषः षोडशभागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य तु ;
काकिनी तु चतुर्भागो माषस्य परिकीर्तिता ॥

अर्थात्—

४ काकिनी का	१ माषा
१६ माषे का	१ कार्षापण

परंतु हेमाद्रि ने २० माषों का एक कार्षापण माना है। भविष्यपुराण में लिखा है—

'ते षोडशः पुराणं स्यात् रजतं सप्तभिस्तुतैः'

अर्थात्—

१६ पणों का	१ पुराण
७ पुराणों का	१ रजत

काकिनी और पण की क्रय-शक्ति की बाबत लीलावती में लिखा है—

वराटकानां दशकद्वयं यत्
सा काकिनीताश्च पणश्चतस्रः ।

अर्थात्—

२० कौड़ियों की	१ काकिनी
४ काकिनी का	१ पण

आगे कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र से उस समय की तौल उद्धृत करते हैं—

१० उड़द के दानों का	१ सुवर्ण-माषक
५ रत्ती का	१ सुवर्ण-माषक
१६ सुवर्ण-माषकों का	१ सुवर्ण या कर्ष
४ कर्ष का	१ पल
८८ सरसों का	१ रौप्य-माषक
१६ रौप्य-माषकों का	१ धरण
२० शैम्ब्य का	१ धरण
२० चावल का	१ वज्रधरण
(१०० पल की	१ तुला)
२० तुला का	१ भार
१० धरण का	१ पल
१०० पल की	१ आयमानी

लेखांत के १½ पृष्ठ पर मुद्राओं में अंकित चित्रों पर विचार किया गया है, और इससे यह तात्पर्य निकाला गया है कि 'बहुत-से नृप-वृंद अपने नाम (जाति, कुल और देश) के बदले में चित्रकाव्य या श्लेष से काम लेते थे। जैसे चंद्रगुप्त के सिक्कों पर चंद्रमा का चिह्न (यौधेयगण और औदुंबर-जाति के राजाओं के सिक्कों पर क्रमशः सशस्त्र योद्धा और उदुंबर-वृक्ष का चित्र, पद्मावती-नरेश के सिक्कों पर पद्म का चिह्न) आदि। परंतु इस मत में अव्याप्ति और अतिव्याप्ति, दोनों ही दूषण पाए जाते हैं। पहला जैसे—चंद्रगुप्त की बहुत-सी मुद्राओं पर चंद्रमा के चिह्न का अभाव, (यौधेय और औदुंबर-जाति के सिक्कों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमशः योद्धा और वृक्ष का लोप तथा नरवर के नागकुल के राजाओं की मुद्राओं पर पद्म या नाग के चित्र का न होना)। दूसरा जैसे—समुद्रगुप्त के सिक्कों पर चंद्र का चिह्न (औदुंबर-जाति के सिक्कों पर योद्धा और अर्जुनायन-नरेशों के सिक्कों पर वृक्ष का आकार तथा नरवर के गणपति या गणेंद्र के सिक्के पर वृष* की मूर्ति)।'

इन उदाहरणों का प्रमाण और विस्तार वी० ए० स्मिथ की कलकत्ता-म्यूज़ियम के सिक्कों की सूची के प्रथम भाग में मिल सकता है।

यहाँ पर नम्रता-पूर्वक इतना और भी निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि ऐसे स्थान पर 'चित्रकाव्य'-शब्द का प्रयोग कुछ असंगत-सा ही प्रतीत होता है।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

निराशा

मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो;
कुछ-कुछ बचा हृदय-आशा का आसव सब पी लेने दो।
करना मत कोई सवाल,
टुक कर लेने दो जी बहाल,
दे दो प्यालों में ढाल-ढाल,
चुप रहो, उतरता है सरूर, कुछ घड़ियाँ हूँ, जी लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
आँखों में कटती रही रात,
कुछ झपकी-सी आई प्रभात,
बाक़ी आहों-सी हुई बात,
फीके हो बैठे सभी रंग बुझती आशा सो लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
सो उठा दुःख, छेड़ो न इसे,
मचले बेचैनी देख इसे,
क्या जाने रोवे कौन किसे,
आँचल में मुँह छिपा सो रहा हलका तन हो लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
अब बची कौन-सी रही साध,
जो बाक़ी आशा एक-आध,
बदले में सौंपा विष-विषाद,
सौभाग्य-दीप बुझ गया, अँधेरा घर-भर में हो लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
हिचकियाँ ठहरकर भर आतीं,
दिल कुचल रहा कोई घाती,
बेकसी गोड़ती है छाती,
सब मचल साधना बिखर गई, इनको भी जी भर लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
अब बरस निठुर नैराश्य-घटा,
हत्तल की हो सब नष्ट छटा,
जुगुनू से जीवन को लिपटा,
भरता है कुछ मन विषम आह, जी घुट-घुटकर मिट लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
है ध्येय विषमता जीवन की,
हसरतें मिटें बहके मन की,
सुध-बुध सब छीजे इस तन की,
घड़िया चूस रही जीवन की, हटो ख़ूब उस लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज फिर जी-भरकर रो लेने दो।
पिछली स्मृति की वह क्षीण कांति,
सूखे जीवन की भीष्म भ्रांति,
वह सुख की छाया-भरी शांति,
सब ख़त्म हुई, स्मृति ठठरी हैं, चिंता-रज से मिल लेने दो;
मानो, कुछ मत कहो, आज जी भरने दो—मर लेने दो।

उदयशंकर भट्ट

---

* आपके लेखानुसार यह वृष की मूर्ति कौशांबी के सिक्कों पर होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोने की चिड़िया

पहले वहाँ क्या था ? विस्तृत घास के जंगल थे, नदियाँ अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता से किलोल करती थीं। उनकी गोद में सुरक्षित मछलियाँ खेलती थीं। किनारे मकाई के हरे-हरे खेत लहलहाते थे, और उन्हीं के निकटवर्ती स्थानों में फूस के झोपड़े खड़े थे। इन झोपड़ों में शक्तिशाली, पाश्चात्य सभ्यता से दूर रहनेवाले, मूल-निवासियों का वास था। इनकी कई प्रतिभाशाली क़ौमें थीं। ये ग़ज़ब के निर्भीक लड़ाके थे। सारे देश में—बर्फ़ से ढकी हुई झीलों, नदियों और पहाड़ों से लेकर सुखदायी आबहवावाले स्थानों तक में—इनका राज्य था।

सोलहवीं शताब्दी के मध्यकाल में व्यापार के लालची, पूर्व के प्रेमी, योरप-निवासियों ने चीन और भारत का नया मार्ग ढूँढ़ निकालने का निश्चय किया। कावेट और कारटियर ने (१५३४ई०) अपने जहाज़ों को सजाकर समुद्र की यात्रा शुरू कर दी। कारटियर फ़्रांसीसी था। तूफ़ानों और लहरों से टक्कर मारते-मारते उसे कनाडा की कुछ भूमि दिखाई दी। इसे ही उसने पूर्व की भूमि समझी। परंतु उसका स्वप्न शीघ्र मिट गया। स्वप्न के दूर होने से उसे और भी हर्ष हुआ। जिस तरह एक लुटेरा किसी भले आदमी के मकान को ख़ाली देखकर अपने को ही उस जगह का स्वामी समझकर आनंद से उछल पड़ता है, वही अवस्था इसकी थी। दूसरे के मकान पर फ़्रांस का राष्ट्रीय झंडा गाड़ ही दिया।

अब आगे बढ़ने की बारी आई। फूँक-फूँककर क़दम बढ़ाने लगे। लारेंस-नदी के मुख से देश के पेट में घुसने का प्रयत्न किया गया। मूल-निवासियों का रेड-इंडियन की उपाधि मिल गई। उन्हें चमड़े के वस्त्रों और विचित्र प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित पाया। उन्हें आश्वासन दिया गया कि आप कोई चिंता न कीजिए, हम यात्री हैं, यहाँ-वहाँ के दृश्य देखकर अपना रास्ता पकड़ेंगे। परंतु यहाँ की मछलियों को देखकर उनके मुँह से लार टपकने लगी, यहाँ के ऊन को देखकर उसके वस्त्र पहनने की इच्छा होने लगी, और यहाँ-वहाँ सोने, ताँबे, हीरे आदि की खदानों को देखकर, ये भेद-युक्त होकर अपने साथियों से इशारे करने लगे। कुछ समय में रेड-इंडियन के समस्त देश की भूमि को ग़ौर से खोजा, और योरप वापस आ गए।

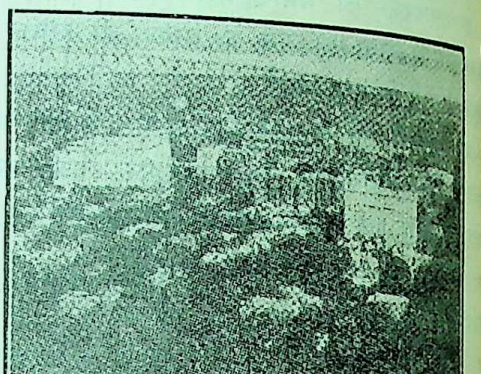

व्यापार का केंद्र वर्तमान मानट्रियल
(दूर से)

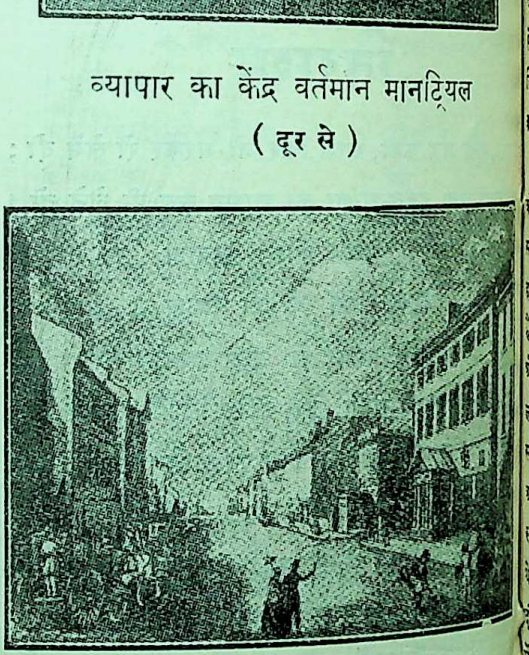

पुराने मानट्रियल की एक गली

ख़ूब सुसज्जित होकर फिर से कनाडा आना शुरू कर दिया। वहाँ के निवासियों से ऊन और मछलियाँ ख़रीदकर योरप में लाते थे। इन्होंने नई दुनिया में अपने घर भी बना लिए थे। सन् १६०८ में क्वेबेक नगरी की नींव पड़ी, और ३३ वर्ष बाद मानट्रियल की झोपड़ियाँ तैयार हुईं। अभी तक यहाँ योरप-निवासियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या सैकड़ों की सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाई थी। इनकी ऐसी उद्दंडता को देखकर मूल-निवासियों ने इनके स्थानों पर धावा किया। परंतु कहाँ पाषाण-युग के निवासी तीर-तुपकवाले—कहाँ लौह-युग के खिलाड़ी "बैंग-बैंग" उड़ानेवाले। विजयी ये ही रहे।

फ्रांसीसियों को ऊन का व्यापार करते देख अँगरेज़ों को भी चिंता हुई, और सन् १६७० में हड्सन-बे-कंपनी की स्थापना कर, इन्होंने भी नई दुनिया में अपना सिर घुसेड़ा। बस, उसी दिन से रक्तपात के दिनों के स्वप्न दिखने लगे। फ्रांस से पादरी लोग आए। ये ईश्वर के बड़े सच्चे और साहसी पुत्र थे। इन्होंने मूल-निवासियों के द्वारा बड़े कष्ट सहे। रुष्ट मूल-निवासी हाथ-पैरों का मांस नोंच डालते थे, लकड़ी के खंभों से बाँधकर चारों तरफ़ आग जलाकर उन्हें भूँजते थे, हाथों में कीलें ठोक देते थे, नाक-कान काट लेते थे, सिर के बालों को कुल्हाड़ी से छील डालते थे; परंतु ये धर्मप्रिय आकाश की ओर सिर उठाकर यही कहते थे— "हे ईश्वर! इन्हें क्षमा करना, ये तेरे भूले-भटके अज्ञानी पुत्र हैं।"

पादरियों के कष्टों की बदौलत ही उत्तरीय अमेरिका की भूमि के कोने-कोने का पता लगा, ख़ूब व्यापार हो सका, जगह-जगह क़िले खड़े किए जा सके। अस्तु, अब हम वर्षों के इतिहास पर परदा डालना उचित समझते हैं। फिर भी इतना कह देना अनुचित नहीं समझते कि अँगरेज़ और फ्रांसीसी जी खोलकर रोटी के टुकड़े के लिये लड़े, और मूल-निवासियों को धो डाला। धीरे-धीरे उनके सब प्रांतों को ले लिया। योरप से नए-नए बाशिंदे आने लगे। उनको यहाँ बसाने के लिये पेरिस तथा अन्य स्थानों से सुंदर नवयुवतियों को जहाज़ में भरकर लाते थे, और क्वेबेक के बाज़ार में एक-एक बाशिंदे को वे पकड़ा दी जाती थीं। यद्यपि फ्रांसीसियों ने लगभग २०० वर्षों में, कनाडा में, बहुत कुछ आबादी की, तो भी वर्षों के युद्ध और राजनीतिक चालों से, सन् १७६३ में, सारा कनाडा अँगरेज़ों के हाथ में निकल गया। वर्षों के विकास में मूल-निवासी स्त्री-बच्चों-सहित तलवार की घाट उतार दिए गए। अब उनकी संख्या बहुत कम रह गई है।

कनाडा के नवीन निवासियों ने अपनी बस्तियों को नदियों के किनारे बसाने में ही जीवन की कुशलता समझी थी। क्योंकि रेड-इंडियनों का रुष्ट हो जाना एक स्वाभाविक और सरल बात थी। उपर्युक्त वर्णन से फ्रांसीसी बस्तियों के नाम ज्ञात हो ही गए होंगे। उसी तरह अँगरेज़ों ने भी भूमि पर अपना पंजा कसा था। गेरी-फ़ोर्ट-नामक बस्ती बसाई थी। पूर्व-काल में यहाँ एक छोटा-सा क़िला नदी की शोभा बढ़ाता था। सन् १८६७ में गेरीफ़ोर्ट में केवल २५३ मनुष्य थे। आज उसी गेरी-फ़ोर्ट में ३ लाख मनुष्य विहार करते हैं। झाड़ियों से ढके हुए स्थानों पर बीस-बीस मंज़िल ऊँची, आकाश से मिलने की उत्कंठा करनेवाली इमारतें खड़ी हैं। जहाँ रास्ता चलना कठिन था, वहीं लाखों मोटरें घूमती हैं। फ़ोर्ट गेरी के चारों ओर विनीपेग-नामक राजधानी की

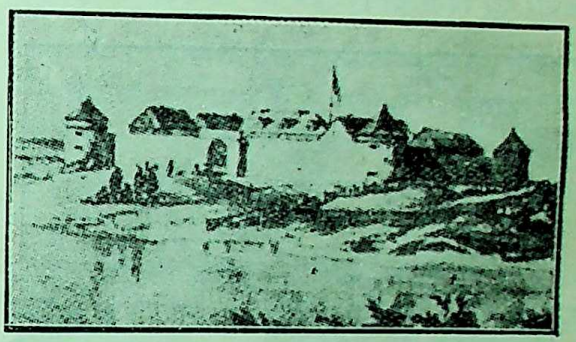

गेरी का क़िला
(विनीपेग इसके चारों ओर बसा है :)

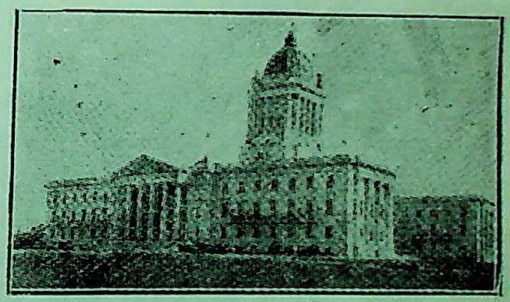

विनीपेग का पार्लियामेंट-भवन

सृष्टि हो गई। पाठक स्वयं नेत्रों से पुराने फ़ोर्ट गेरी और वर्तमान विनीपेग का दर्शन कर, आश्चर्यजनक काया-पलट का तमाशा देख सकते हैं।

इस कौतूहल को देखकर एकदम हृदय पूछ बैठता है कि इस परिवर्तन का प्रधान कारण क्या है? इतने थोड़े समय में किस जादू के प्रभाव से जंगल ने बग़ीचे का रूप धारण कर लिया? वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने धूल में मिले हीरे को उठाकर संसार की आँखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चकाचौंध डालने के लिये प्रकट कर दिया ? पृथ्वी-माता ने अपने पुत्र को अपनी गोद में छिपे हुए लाल एकदम कैसे सौंप दिए ? इन बातों को कौन बतला सकता है ? दो सौ वर्ष के जीवन-मरण के युद्धों का रत्ती-रत्ती हाल केवल उस जगत्पिता को ही ज्ञात है। हाँ, लोग कहते हैं, उस उन्नति का महान् कारण पूर्वी और पश्चिमी किनारे को मिलानेवाली रेल ही है। रेल ने ही मानट्रियल को बेंकोवार से जोड़ दिया। रेल ने ही दो महासमुद्रों के बीच में प्रेम का सूत्र बाँध दिया। रेल ने ही जंगलों के बीच में आवागमन की सुविधा उपस्थित कर, नए बाशिंदों के हृदयों में अपूर्व साहस का संचार कर दिया था।

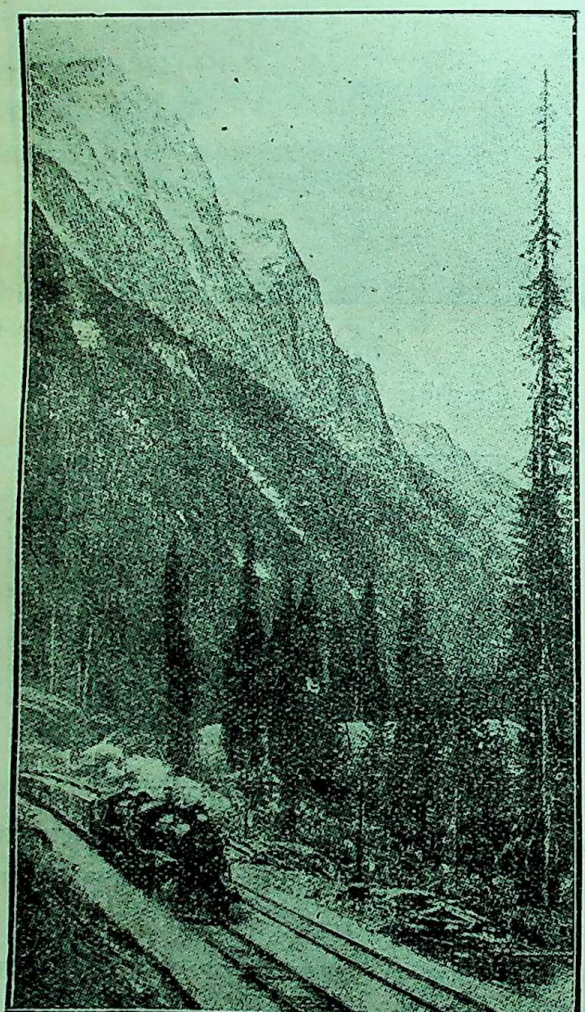

तीन हज़ार फ़ीट ऊँचे पहाड़ों के बीच से रेल जा रही है।

परंतु इस रेल के बनाने में कुछ कम कठिनाइयाँ नहीं पड़ीं। लोहे के चने चबाना था ! तीन हज़ार मील लंबी रेल की सड़क बनाना कोई खेल नहीं था। एक ऐसी रेल की सड़क को बनवाना—जिसका मार्ग सैकड़ों मीलों ऊँची-नीची घाटियों और पर्वतों के मध्य से हो, और जिसे भी एक ऐसे राष्ट्र के द्वारा, जिसके कुल मनुष्यों की संख्या केवल ४० लाख हो—बड़ा कठिन काम था। अँगरेज़ी सरकार से निवेदन किया गया। सरकार का जाँच-कमीशन कनाडा भेजा गया। यह बात सन् १८५७ की है। कमीशन ने अगणित आपत्तियाँ पेश कर इस कार्य के विरुद्ध ही अपना मत प्रकट किया ; परंतु कनाडा के लोगों ने इसी कार्य में अपने राष्ट्र की उन्नति देखी, और अंत में सरकार को भी मदद देनी पड़ी। डेढ़-दो करोड़ रुपए और २ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि तथा अन्य कई सुविधाएँ नवीन पैसिफ़िक-कंपनी को प्राप्त हो गईं। स्टीफ़ेंसन—रेल का प्रधान आविष्कारक—स्वयं इँगलैंड से यहाँ आया, और इस चिरजीवी कार्य को पूरा करने में भिड़ गया। रेल के तैयार होने में ४ वर्ष तक १२ हज़ार आदमी, २ हज़ार घोड़े और उनके भोजन आदि के प्रबंध के लिये १२ वाष्प-नौकाएँ झीलों और नदियों पर विचरण करती रहीं। लगभग २५ लाख रुपए की बारूद पहाड़ों को उड़ा देने में ख़र्च हो गई। एक-एक मील लंबी टनेल बनाई गईं। मकड़ी के जाल-सरीखे विशाल लोहे के पुलों का निर्माण हुआ। तीन-तीन सौ फ़ीट तक बर्फ़ से रेल को बचाने का प्रबंध करना पड़ा। अनेकों का बलिदान हो गया।

रेल के बनते ही लोगों को सूचित किया गया कि उसके किनारे की भूमि पर कोई भी निवासी १६० एकड़ ज़मीन मुफ़्त में पा सकता है। योरप में कठिनता से जीवन व्यतीत करनेवाले, नवीनता के प्रेमी, साहसी वीरों ने यहाँ आना प्रारंभ कर दिया। रूस, जापान, जर्मनी, स्कॉटलैंड, सभी जगह से लोग आने लगे। निपुण कारीगरों—स्वतंत्रता के भक्तों—ने इस ओर क़दम बढ़ाए। बेकारी के रोग से ग्रसित लोगों को जीवन-साधना का एक अच्छा उपाय मिल गया। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति राजनीतिक और धार्मिक अत्याचारों को न सह सकने के कारण मातृभूमि को अंतिम प्रणाम कर यहाँ आ बसे। वे महाकवि गेटे के शब्दों में कहते थे—"यदि हमें कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी जगह मिल सकती है, जहाँ हम अपनी संपत्ति-सहित आराम से रह सकते हैं, एक खेत जीविका के लिये प्राप्त हो सकता है, और एक झोपड़ी हमारी रक्षा कर सकती है, तो क्या वही हमारी पितृभूमि नहीं है ?" ये लोग अपनी पत्नियों और नन्हे-नन्हे बच्चों को लेकर अंधकार में, केवल आशा-दीपक का सहारा लेकर, कूद पड़े। जगत्पिता ही उनका दाहना हाथ था।

धीरे-धीरे अनेक नगरों की स्थापना हुई। कुटुंब-वृद्धि के साथ ही गिरजेघर और स्कूल की इमारतों का भी शिलान्यास होने लगा। अन्य भाषा-भाषियों ने भी अँगरेज़ी को अपनाना समयोचित समझा। एक स्कूल में कहीं-कहीं ७ भाषाएँ बोली जाती थीं। आसपास के खेतों में गेहूँ की अपार उपज होने लगी। रेल-कंपनी ने रेगिना, केलिगेरी, विनीपेग आदि स्थानों में अपने केंद्र और कारख़ाने खोल दिए। इन्हीं को केंद्र बनाकर इमारतें खड़ी होने लगीं। यहाँ-वहाँ अनेक नगर बस गए, पार्लियामेंट-भवन तैयार हो गए, पुस्तकालयों की कमी भी न रही, प्रेस दृष्टिगोचर होने लगे, और अख़बारों ने डंके की चोट संसार का संदेश सुनाना आरंभ कर दिया।

विनीपेग पश्चिम की आश्चर्य-जनक नगरी है। लगभग ६० वर्ष पहले इसकी गलियों में पैर कीचड़ में धँस जाते थे। अब यहाँ की सड़कें १३२ फ़ीट चौड़ी हैं, और संसार की सर्वोत्तम सड़कें कहलाने का दावा करती हैं। जो बात भारतवर्ष अँगरेज़ी-राज्य में प्राप्त न कर सका, उसे स्वयंनिर्णयी कनाडा ने कर दिखाया। सड़कों के किनारे विशाल होटल और सुंदर वस्तुओं से सजी हुई दूकानें पथिकों का मन हर लेती हैं। रात्रि को विद्युत् के प्रकाश में गलियाँ हर्ष से खिल उठती हैं। विनीपेग की गलियों में लगभग ३० राष्ट्रों के व्यक्ति चक्कर काटा करते हैं। आबहवा भी यहाँ की विचित्र है; गरमी में आग की भट्टी-सी रक्त-शोषक रहती है, और शरद्-ऋतु में रक्त को जमा देनेवाली हो जाती है। केवल हृष्ट-पुष्ट लोग ही यहाँ की बहार लूट सकते हैं। बीमार और कमज़ोर ज़्यादा दिन यहाँ के मेहमान नहीं रह सकते; क्योंकि विनीपेग की आबहवा उन्हें दूसरे लोक का मेहमान बनाने का प्रयत्न करती है। वास्तव में वह इलाहाबाद की आबहवा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

इसी तरह एडमिंटन, इस शताब्दी के प्रारंभिक काल में, केवल एक छोटा-सा ग्राम था। इसकी निकटवर्ती भूमि पर घास के जंगल खड़े थे। आज उसी एडमिंटन की

एडमिंटन दो सौ वर्ष पूर्व ऐसा था।

७० हज़ार आबादी है। अलबर्टा-प्रांत की राजधानी का उसे सौभाग्य प्राप्त है। वहाँ का पार्लियामेंट-भवन दर्शनीय है। परंतु आज भी एडमिंटन से शिकारी और खोजी वीर, कुत्तों की गाड़ियों पर सुसज्जित होकर, बर्फ़ के मैदानों में घूमने जाते हैं।

केलिगेरी इन शहरों की अपेक्षा आबहवा की दृष्टि से अधिक अच्छा है। यहाँ वसंत की बहार हमेशा रहती है। गलियाँ रंग-बिरंगे फूलों की डालियों से सजी रहती हैं। सुगंध का समुद्र लहराया करता है। हृदय क्षण-भर के लिये स्वर्गीय आनंद में मग्न हो जाता है।

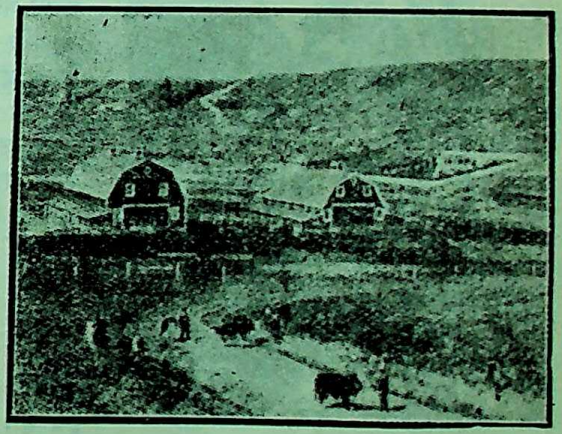

अलबर्टा के जंगल में

अलबर्टा-प्रांत के बाद रेगिना-नगरी को पथिक नहीं भूल सकता। रेगिना की स्थापना सन् १९०२ में हुई थी, और आज उसके सार्वजनिक भवनों को देखने के लिये लोग दूर-दूर से आते हैं। इसीलिये रेगिना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सार्वजनिक महलों का नगरी' की उपाधि मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

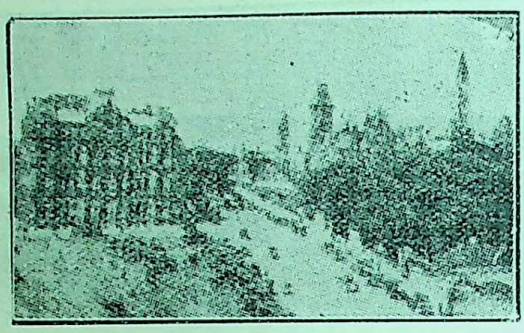

ओटावा का सरकारी पोस्टआफ़िस और पार्लियामेंट-भवन

इस युवावस्था में पदार्पण करनेवाले राष्ट्र का नाम-मात्र का ही वर्णन हम पाठकों के सामने रख सके। कनाडा का भविष्य उज्ज्वल है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों ने अपने अपने हृदय के टुकड़ों को इसके निर्माण के लिये अर्पित कर दिया है। इँगलैंड के डॉक्टर, जर्मनी के राजनीतिज्ञ, चीन के कारीगर, इटली के कला-कोविद्, पेरिस के सौंदर्य-विशारद और भारत के संन्यासी आदि सभी इस भूमि पर विराजमान हैं। पाश्चात्य सभ्यता के सब आभूषण यहाँ आ रहे हैं। घरों में बिजली लग ही चुकी, टेलिफोन से संभाषण होने ही लगे, बेतार के द्वारा संवाद, नाटकालय के अभिनय का वर्णन ज्ञात ही होने लगा। मोटर-साइकिल यहाँ है ही, और अब वायुयान भी आकाश में मँडराने लगे। कृषि और सोने आदि की खानों की उन्नति ने भी बड़ा रंग जमाया है। इसीलिये तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि कनाडा सचमुच एक "सोने की चिड़िया" है।

नाथूराम शुक्ल

सुंदर और चमकीले बालों के बिना चेहरा शोभा नहीं देता।

कामिनिया ऑइल

(रजिस्टर्ड)

यही एक तेल है, जिसने अपने अद्वितीय गुणों के कारण काफ़ी नाम पाया है।

यदि आपके बाल चमकीले नहीं हैं, यदि वह निस्तेज और गिरते हुए दिखाई देते हैं, तो आज ही से "कामिनिया ऑइल" लगाना शुरू करिए। यह तैल आपके बालों की वृद्धि में सहायक होकर उनको चमकीले बनावेगा और मस्तिष्क एवं सिर को ठंडक पहुँचावेगा।

क़ीमत १ शीशी १), ३ शीशी २॥=), वी० पी० खर्च अलग।

ओटो दिलबहार

(रजिस्टर्ड)

ताज़े फूलों की क्यारियों की बहार देनेवाला यही एक ख़ालिस इत्र है। इसकी सुगंध मनोहर एवं चिरकाल तक टिकती है।

आध औंस की शीशी २), चौथाई औंस की शीशी १।) हर जगह मिलता है।

सूचना—आजकल बाज़ार में कई बनावटी ओटो बिकते हैं—अतः ख़रीदते समय कामिनिया ऑइल और ओटो दिलबहार का नाम देखकर ही ख़रीदना चाहिए।

सोल एजेंट—ऐंग्लो-इंडियन ड्रग ऐंड केमीकल कंपनी,
२८५, जुम्मा मसजिद मार्केट, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्ध्वनि

(२१)

होते प्रेम-निधि तो कमी ही उन्हें होती कौन,
प्रेम का पियाला एक भरके पिलाते वे;
मेरे अरमान-भरे हृदय को हाय, यदि
होते हृदयेश, तो क्यों नाहक घुलाते वे।
उनमें अभाव दया का भी है तभी तो नित्य
निठुर सदा ही मुझे रहते रुलाते वे;
अपने पराए कभी छिपते छिपाए नहीं,
होते अपने, तो भला काहे कलपाते वे।

(२२)

लोग कहते हैं कि पसीजता है पत्थर भी,
वे तो न पसीजे, हाय, देख मेरी दीनता;
किंतु कब देखी बेकली है किसी आकुल की,
जानें क्या कि होती कैसी मन की मलीनता।
होता उनको भी अनुमान यदि जान पाते,
मणि से विहीन किसी फणि की अधीनता;
वे भी कुछ जानते कि होती विरहागि कैसी,
कहते किसे हैं प्रेम और प्रेम-लीनता।

(२३)

सच है, गुलाब तो सभी को लगते हैं मंजु,
किंतु कौन चाहता है काँटों-भरी छड़ियाँ;
होता है संयोग सब भाँति सुखदायी, किंतु
लगतीं वियोग की सुखद किसे घड़ियाँ!
क्या ही हँसी-खेल था लगाना नेह का भी, यदि
पड़तीं प्रतीक्षा में जो गिननी न कड़ियाँ;
लेते करवट कटते न दिन-रैन हाय,
गूँथती न आँखें मंजु मोतियों की लड़ियाँ।

(२४)

भरती रही हैं हाय शीतल समीर नित्य,
उर से उसासें ताप दूर करती रहीं;
आँखें बहलाती रहीं गिन तारिकाएँ रैन,
दिन में, न-जाने, जल-धार कितनी बही।
जाती बढ़ती ही तो भी कैसी है अनोखी ज्वाल,
वेदनाएँ मुझसे न जातीं अब तो सही;
हृदय लगाने से सुना है घट जाती ताप,
उनके, न जाना वह है भी, अथवा नहीं।

(२५)

साधना हमारे पास है ही भला और कौन,
ध्यान में उन्हीं के कुछ शांति मिल जाती है;
वे ही हैं उपास्य, इष्टदेव मेरे कर्णधार,
रसना गुणानुवाद उनके ही गाती है।
नेह-नीर से उन्हीं को नित्य नहलाते नैन,
इनमें उन्हीं की सदा छवि छहराती है;
भेंट लेते उर से उन्हीं की प्रतिमा को नित्य,
भर-भर आती, आह, मेरी जब छाती है।

[समाप्त]

रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-दर्पण की 'विमला'-टीका

[उत्तरार्द्ध]

काव्य-दोष-परिज्ञान का एक उदाहरण

साहित्य-दर्पण के सातवें परिच्छेद में काव्य-दोषों का वर्णन है। 'अप्रतीतत्व'-दोष का लक्षण है — "एकदेशमात्रप्रसिद्धत्वम् (तत्त्वम्)।" अर्थात् किसी विशेष शास्त्र में ही, विशेष अर्थ में, प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग, उसी अर्थ में, यदि और कहीं किया जाय, तो वहाँ 'अप्रतीतत्व'-दोष होता है। उदाहरण दिया है—"योगेन दलिताशयः।" इस पद्यांश में 'आशय'-शब्द का अर्थ 'वासना' है। परंतु इस शब्द का यह अर्थ योग-शास्त्र (पातञ्जल-दर्शन) में ही प्रसिद्ध है। और कहीं 'आशय'-शब्द का अर्थ 'वासना' प्रसिद्ध नहीं है। अतएव योगशास्त्रातिरिक्त विषय में प्रयुक्त यह 'आशय'-शब्द 'अप्रतीतत्व'-दोष का निदान होगा, जैसा यहाँ है।

इस पर साहित्याचार्यजी लिखते हैं—"यहाँ 'योग' का अर्थ 'समाधि' है—यह योग-शब्द 'युज् समाधौ' से बना है, युजिर् योगे (धातु) से नहीं। अतएव व्यास-भाष्य (योग-दर्शन) के आरंभ में लिखा है—"योगः समाधिः" समाधि का अर्थ है चित्त की वृत्तियों का रोकना। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यो० समाधि पाद २ सू०—उक्त भाष्य पर श्रीवाचस्पति मिश्र ने लिखा है—"युज् समाधौ इत्यस्माद् व्युत्पन्नः समाध्यर्थो न तु युजिर् योगे इत्यस्मात्संयोगार्थ इत्यर्थः" श्रीतर्कवागीशजी ने योग का अर्थ किया है—'प्रकृति-पुरुष का अभेद-चिंतन।' यह अर्थ उक्त प्रमाणों से (के ?) विरुद्ध है। प्रकृति और पुरुष का अभेद योग का नहीं, वेदांत का सिद्धांत है। योग-शास्त्र में प्रकृति भिन्न पदार्थ है। उसका पुरुष के साथ 'अभेद-चिंतन करना' मिथ्या-ज्ञान होगा। मिथ्या-ज्ञान मोक्ष का साधक नहीं हो सकता, अतएव वह 'आशय' या वासनाओं का विनाश कभी नहीं कर सकता। दूसरे, 'अभेद' का अर्थ है—भेदाभाव—किंतु अभाव के चिंतन से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, आत्मा के ही चिंतन से होती है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करने से 'अप्रतीतत्व'-दोष होता है।"

हम नहीं समझ पाते कि साहित्याचार्यजी ने ये बातें अनवधानता-वश लिखी हैं, या किसी और कारण से। ध्यान देने से तो यही जँचता है कि आपकी समझ में इस 'अप्रतीतत्व-दोष का स्वरूप आया ही नहीं है, अतएव यह सब गड़बड़ी फैली है!

क्या साहित्याचार्यजी ने कभी इस बात की भी खोज की है कि यह पद्यांश योग-शास्त्र का है, या वेदांत का? इसे यदि योग-शास्त्र का कहा जाय—जैसा कि आप फ़र्माते हैं—तो फिर 'अप्रतीतत्व'-दोष का नाम-निशान भी यहाँ नहीं रहने का; और यों फिर यह इस दोष का उदाहरण कभी नहीं हो सकता। अपने-अपने शास्त्र में, उन-उन विशेष अर्थों में प्रसिद्ध, उन-उन शब्दों का प्रयोग उक्त दोष का हेतु नहीं हो सकता। अन्यथा सभी शास्त्र सर्वतोभावेन इस दोष से बुरी तरह सने नज़र आवेंगे।

साहित्याचार्यजी के अनुसार इस पद्यांश को योग-शास्त्र का मान लेने पर यह उक्त दोष का उदाहरण नहीं बन सकता, और इसे योग-शास्त्रीय माने बिना इसमें आए हुए 'योग'-शब्द का अर्थ, योगशास्त्रानुसारी 'समाधि' (चित्त-वृत्ति-निरोध) हो नहीं सकता। आपने योग-शास्त्र के प्रमाण दे-देकर यहाँ 'योग'-शब्द का अर्थ 'समाधि' किया है, और तर्कवागीशजी के वेदांतशास्त्रानुसारी 'प्रकृति-पुरुष के अभेद-चिंतन'वाले अर्थ का खंडन किया है! परंतु, ये प्रमाण आपके ही विरुद्ध हो बैठे। "बलि चाह्यो आकास को हरि पठयो पाताल!"

वस्तुतः यह पद्यांश योग-शास्त्र से नहीं, वेदांत से संबंध रखता है, अतएव इसमें प्रयुक्त 'आशय'-शब्द प्रकृत-दोष का कारण है; क्योंकि यह शब्द 'वासना' अर्थ में केवल योग-शास्त्र में ही आया है। इसलिये तर्कवागीशजी ने 'योग'-शब्द का अर्थ योग-शास्त्र-प्रसिद्ध 'समाधि' न करके वेदांत के अनुसार 'प्रकृति-पुरुष का अभेद-चिंतन' किया है। वेदांत के इस पद्य में योग-शास्त्र-प्रसिद्ध 'आशय'-शब्द 'वासना' अर्थ में आया है, अतएव 'अप्रतीतत्व'-दोष से संवलित है।

आप कहते हैं कि 'अभेद' का अर्थ है 'भेदाभाव'; किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु 'अभाव' के चिंतन से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्रीजी! 'अभाव' के चिंतन से नहीं, प्रकृति-पुरुष के 'ऐक्य'-चिंतन से तो मोक्ष मिलता है न? यहा 'ऐक्य' तर्कवागीशजी के 'प्रकृति-पुरुष के अभेद-चिंतन' का अर्थ है। कृपा कर अद्वैत-वेदांत देखिए।

इस पद्यांश का 'योग'-शब्द, साहित्याचार्यजी ने युज् समाधौ से निष्पन्न बतलाया है। यह ग़लत है। यहाँ 'योग'-शब्द युज् समाधौ से नहीं, युजिर् योगे से बना है। सारांश, योग-शास्त्र में 'योग'-शब्द का 'समाधि' अर्थ होता है, और वेदांत में प्रकृति-पुरुष का ऐक्य-चिंतन। इसलिये वेदांत के इस पद्य में 'योग'-शब्द का अर्थ 'प्रकृति-पुरुष का अभेद-चिंतन' है, जो तर्कवागीशजी ने किया है। साहित्याचार्य का 'समाधि' वाला अर्थ बिलकुल ग़लत है। आपको 'चित्त-वृत्ति का निरोध' करके इस पर पुनः विचार करना चाहिए।

अलंकार-परिज्ञान

युक्तः कलाभिस्तमसां विवृद्ध्यै,
क्षीणश्च ताभिः क्षतये य येषाम्;
शुद्धं निरालम्बपदावलम्बं,
तमात्मचन्द्रं परिशीलयामि।

इसकी व्याख्या करते हुए साहित्याचार्यजी लिखते हैं—"श्रीतर्कवागीशजी ने इस पद्य को लौकिक चंद्रमा में भी लगाया है—'कलाभिःक्षीणस्तमसां विवृद्ध्यै,ताभिर्युक्तश्च येषां तमसां क्षतये।' इस मत में एक तो इस पद्य का प्रधान चमत्कार (आत्म-चंद्र का अलौकिकत्व-सूचन) नष्ट हो जाता है। इसी के लिये कवि का सारा प्रयत्न है। दूसरे 'युक्तः' को 'क्षतये' के साथ लगाने से दूरान्वय और 'संकीर्णत्व'-दोष आते हैं। अतः यह अर्थ अस्वारसिक होने से त्याज्य है।"

बहुत ठीक! "जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।" आपको तर्कवागीशजी का यह अर्थ अस्वारसिक जँच गया, सो कोई अचरज की बात नहीं। संसार में यह बात बहुधा देखी जाती है। परंतु साहित्य-शास्त्र और सहृदय-हृदयों के अनुरोध से तो तर्कवागीशजी का ही अर्थ स्वारसिक और युक्ति-युक्त है, तथा आपका किया हुआ अशास्त्रीय, अधूरा और युक्ति-प्रतिकूल है। आपने इन विशेषणों को केवल 'आत्मा' में ही लगाया है, 'चंद्र' में नहीं! क्या आप बतला सकते हैं कि यहाँ 'आत्मा'-शब्द के आगे 'चंद्र'-शब्द क्यों जड़ा हुआ है? और, ऐसे विशेषण क्यों रक्खे हैं, जो ज़रा हेर-फेर के साथ दो जगह लगाए जा सकें? साहित्य-शास्त्र का एक नवछात्र भी कह देगा कि यहाँ 'आत्मा' में 'चंद्र' का रूपण है; अतएव ये विशेषण 'आत्मा' और 'चंद्र', दोनों जगह लगाए जायँगे, जिसके लिये कवि ने प्रयत्न-पूर्वक वैसे विशेषण रक्खे हैं, और समास-विहीन रक्खे हैं। अतएव तर्कवागीशजी का अर्थ बहुत बढ़िया है, जिसमें ये विशेषण 'आत्मा' और 'चंद्र', दोनों में लगाए गए हैं। साहित्याचार्यजी का किया अर्थ बिलकुल रद्दी है; क्योंकि उसमें ये विशेषण 'चंद्र'-पक्ष में लगाए ही नहीं गए हैं!

आप कहते हैं कि इन विशेषणों को 'चंद्र'-पक्ष में भी लगाने से पद्य का चमत्कार (आत्म-चंद्र का अलौकिकत्व-सूचन) ही नष्ट हो जायगा! यह भी एक ख़ास बात है! क्योंकि कैसे चला जायगा? क्यों नष्ट हो जायगा? क्या इसकी भी कोई विधि है? न तो कहीं चमत्कार नष्ट होता है, और न कुछ। हाँ, आपके अर्थ में चमत्कार की धज्जियाँ उड़ जाती हैं। आपको ध्यान रखना चाहिए कि यह 'अधिकारूढ-वैशिष्ट्य' रूपक अलंकार है। लौकिक चंद्र से प्रकृत आत्मा में विशेषता बतलाई गई है कि वह कलाओं से युक्त होकर तो तम (अज्ञान) की वृद्धि करता है, और उनसे अलग होकर उस (तम) का नाश करता है। यही विशेषता इस पद्य की जान है। अतएव, यहाँ अधिकारूढ-वैशिष्ट्य रूपक होने के कारण पद्य के विशेषणों को दोनों ओर लगाना बिलकुल ठीक है। तर्कवागीशजी ने ऐसा ही किया है। इसी पर साहित्याचार्यजी ख़फ़ा हो गए हैं।

अंत में आपने 'दूरान्वय' और 'संकीर्णत्व'-दोषों का डर बतलाया है। परंतु ध्यान रखना चाहिए कि अमुख्य (अप्रकृत)-अर्थ में जब विशेषण लगाए जाते हैं, तो दूरान्वय आदि होते ही हैं। सभी काव्यों में आपको यह बात समान मिलेगी, अतएव उदाहरण आदि देकर पिष्ट-पेषण करना 'अच्छा' नहीं। आपकी समझ में यह भी नहीं आया है कि 'यहाँ अधिकारूढ-वैशिष्ट्य' रूपक अलंकार है!

अनुप्रास-प्राश

लाटानुप्रास

"शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः;
लाटानुप्रास इत्युक्तः.....।"

अर्थात् कर्तृत्व-कर्मत्व आदि रूप से अन्वय-मात्र के भेद से शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति को लाटानुप्रास कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण—

"स्मेरराजीवनयने नयने किं निमीलिते ;
पश्य निर्जितकन्दर्पे कन्दर्पवशगं प्रियम् ।"

यहाँ 'नयन' और 'कंदर्प'-शब्दों की उभयविध (शब्दतः और अर्थतः) पुनरुक्ति है । अर्थ में बिलकुल भेद नहीं है ।

अथवा—

"यस्य न सविधे दयितादवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ।
यस्य च सविधे दयितादवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ।"

यहाँ अनेक पदों की शब्द और अर्थ से पुनरुक्ति है ।

जहाँ अर्थ में कुछ भी भिन्नता हो जाय, वहाँ यह अलंकार नहीं होता ; क्योंकि शब्द और अर्थ की पूर्ण रूप से पुनरुक्ति ही इसकी उद्भाविनी है । अतएव 'अर्थान्तर-संक्रमितवाच्य'-नामक ध्वनि में यह अलंकार नहीं होता ; क्योंकि वहाँ अर्थ में भेद हो जाता है ।

जैसे—

"कदली कदली करभः करभः ,
करिराजकरः करिराजकरः ;
भुवनत्रितयेऽपि विभर्ति तुला ,
मिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः ।"

यहाँ द्वितीय 'कदली'-शब्द जाड्यगुण-विशिष्ट कदली का बोधक है, और प्रथम केवल कदली-स्वरूप का । इसी प्रकार 'करिराजकर' भी पहला केवल स्वरूप का और दूसरा खरदीलेपन से युक्त स्वरूप का बोधक है । अतएव शब्द की पुनरुक्ति होने पर भी अर्थ की पुनरुक्ति न होने के कारण यहाँ लाटानुप्रास नहीं है । इसी सिद्धांत के अनुसार साहित्य-दर्पणकार ने इस अनुप्रास का यह प्रत्युदाहरण दिया है—

"नयने तस्यैव नयने च"

यहाँ दूसरा नयन शब्द भाग्यवत्त्वादि-विशिष्ट नयन का बोधक है । पहला केवल 'नयन' का वाचक है । अर्थ में भेद हो जाने के कारण यहाँ लाटानुप्रास नहीं है । दर्पणकार ने लिखा है—"अत्र द्वितीयनयनशब्दो भाग्यवत्त्वादिगुणविशिष्टत्वरूपतात्पर्यमात्रेणभिन्नार्थः" अर्थात्, यहाँ दूसरा 'नयन'-शब्द भाग्यवत्त्वादिगुण से विशिष्टत्व-रूप तात्पर्य-मात्र से भिन्नार्थक है, अतएव यहाँ उक्त लाटानुप्रास नहीं है ।

सब आलंकारिकों का यही सिद्धांत है, और बिलकुल साफ़ है । काव्य-प्रकाश, काव्यानुशासन आदि सभी ग्रंथ इसके पोषक हैं । किसी की भी इस विषय में विप्रतिपत्ति नहीं है । तर्कवागीशजी ने भी यही लिखा है । परंतु हमारे साहित्याचार्यजी यहाँ कुछ और ही समझ बैठे हैं ? आपके मत से 'नयने तस्यैव नयने च' प्रत्युदाहरण नहीं, इस अनुप्रास का उदाहरण है ! बलिहारी है ! आप आदेश करते हैं—"केवल तात्पर्य-भेद है, अतएव यह तो लाटानुप्रास का उदाहरण है ।" साथ ही तर्कवागीशजी को फटकार बतलाते हैं—

"श्रीतर्कवागीशजी ने इस पंक्ति पर बड़ा अकारण तांडव किया है । वह कहते हैं कि 'नयने तस्यैव नयने च' यह लाटानुप्रास का उदाहरण ही नहीं । यह तो अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि का उदाहरण है । आपको यह भ्रम हुआ क्यों, सो भी सुन लीजिए । सप्तम परिच्छेद में 'कथितपदत्व'-दोष की अदोषता के जो स्थल बताए हैं, उनमें लाटानुप्रास और अर्थान्तर-संक्रमितवाच्य-ध्वनि इन दोनों को गिनाया है । बस, इसी से आपने यह सिद्धांत निकाला है कि ये दोनों कभी एक हो ही नहीं सकते । (साहित्याचार्यजी अवश्य ही इन दोनों को, लाटानुप्रास और अर्थान्तर-संक्रमितवाच्य-नामक ध्वनि को, एक मानते होंगे !) और मूल में "अत्र द्वितीयनयनशब्दो...तात्पर्यमात्रेण भिन्नार्थः" यह पंक्ति जो "भेदे तात्पर्यमात्रतः" इस लाटानुप्रास के लक्षण का स्पष्ट समन्वय समझा रही है, उसे आप योजनावैपरीत्य से मरोड़ते हैं । परंतु फिर भी बनता कुछ नहीं । अब आपकी बात को आपके ही श्रीमुख से सुनिए । "नन्वर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनावापाततः शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यावभासमानेऽपि पर्यवसाने वक्तृतात्पर्य्यविषयविशेषणान्तरप्रतीत्या भिन्नार्थत्वावभासनेनायमनुप्रास इत्यभिप्रायेणाह—नयने इति—" अर्थात् अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि में यद्यपि आपाततः शब्द और अर्थ का पौनरुक्त्य भासित होता है । परंतु विचार करने पर पर्यवसान में वक्ता का तात्पर्य किसी विशेषणांतर (विशिष्टता) में प्रतीत होता है । अतः भिन्नार्थता होने के कारण वहाँ (उक्त ध्वनि में) यह अनुप्रास नहीं होता ; इस अभिप्राय से प्रत्युदाहरण देते हैं 'नयने तस्यैव नयने च' इति ।"

इस प्रकार तर्कवागीशजी का मत उद्धृत करके आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका खंडन करते हैं—"श्रीतर्कवागीशजी विशिष्टत्व के आगे चिपकाए हुए मात्र शब्द से नयनत्व का व्यवच्छेद करना चाहते हैं। आपके मत से द्वितीय 'नयने' पद केवल भाग्यवत्त्वादिरूपगुण का बोधक है, नयनत्व का वाचक नहीं। वास्तव में यह मत भी अज्ञानमूलक है।"

नहीं साहित्याचार्यजी ! तर्कवागीशजी का कथन नहीं, आपकी ही ये बेसिर-पैर की बातें अज्ञानमूलक हैं; क्योंकि न तो आप मूल-ग्रंथ ही समझ सके हैं, और न तर्कवागीशजी की पंक्तियाँ ही। तर्कवागीशजी 'मात्र'-शब्द से नयनत्व का व्यवच्छेद करते हैं, इसका मतलब आप निकालते हैं कि द्वितीय नयन शब्द नयनत्व का वाचक ही नहीं। यह आपका भ्रम है। मूल की "अत्र द्वितीयनयनशब्दो भाग्यवत्त्वादिगुणविशिष्टत्वरूपतात्पर्य-मात्रेण भिन्नार्थः" इस पंक्ति में आए हुए 'मात्र'-शब्द के विषय में तर्कवागीशजी ने लिखा है—"मात्रपदेन नयनत्वस्य व्यवच्छेदः।" मतलब यह कि नयनत्व-मात्र से तो दोनों नयन शब्द एकार्थक हैं; परंतु भाग्य-वत्त्वादिगुणविशिष्टत्वरूप से दूसरा 'नयन'-शब्द पहले से भिन्नार्थक है। "मात्रपदेन नयनत्वस्य व्यवच्छेदः" अर्थात् मूल-पंक्ति में 'तात्पर्य' के आगे जो 'मात्र'-शब्द है, उससे नयनत्व का व्यवच्छेद होता है। तात्पर्य यह कि भाग्यवत्त्वादिविशिष्टता से ही दूसरा 'नयन'-शब्द पहले से भिन्नार्थक है, नयनत्व से नहीं। नयनत्व से तो दोनों नयन बराबर (समानार्थक) ही हैं। इसी का व्यवच्छेद करने के लिये 'मात्र' है। यह कौन कहता है कि दूसरा 'नयन' पद केवल भाग्यवत्त्वादिगुण का बोधक है, नयनत्व का वाचक ही नहीं। इसकी तो यहाँ बात ही नहीं। न-जाने आपने यह विचित्र बात कहाँ से निकाल ली !

आप फ़र्माते हैं—"तर्कवागीशजी का यह कथन कि "पर्यवसाने भिन्नार्थतावभासने नायमनुप्रासः" असंगत है। वस्तुतः यहाँ भिन्नार्थता है ही नहीं।" लीजिए, आप इस ध्वनि में द्विरुक्त पदों की बिलकुल भिन्नार्थता ही उड़ाए देते हैं ! परंतु यहीं पीछे आप ही लिख चुके हैं—"यहाँ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि है ; क्योंकि दूसरा नयन पद अपने विशेष अर्थान्तर में संक्रमित हुआ है।" यह 'अर्थान्तर' क्या है, जिसमें दूसरा नयन शब्द संक्रमित हुआ है ? अन्यः अर्थः 'अर्थान्तरम्' कि और कुछ ? यहाँ तो आप कहते हैं कि दूसरा नयन पद 'अर्थान्तर' (दूसरे अर्थ) में संक्रमित हुआ है, और इससे दस ही पंक्तियों के आगे कहते हैं कि अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि में वस्तुतः अर्थ में कुछ भेद ही नहीं होता ! महाराज ने क्या इस ध्वनि की इस महासंज्ञा पर भी विचार किया है कि 'अर्थान्तर-संक्रमितवाच्यध्वनि' यह इतना लंबा-चौड़ा नाम क्यों रखा ? वाच्य अर्थान्तर (दूसरे अर्थ) में, अर्थात् अपने विशेष अर्थ में, संक्रमित होता है ; अतएव इसका यह नाम है। आप कहते हैं कि अर्थ में कुछ भिन्नता ही नहीं होती ! क्या कहा जाय ?

आपका कहना है कि 'भेदे तात्पर्यमात्रतः' इस लक्षण का समन्वय 'तात्पर्यमात्रेण भिन्नार्थः' यह मूल-पंक्ति स्पष्ट करती है ! आपको ध्यान रखना चाहिए कि इस अनुप्रास में शब्दार्थ की पूर्ण पुनरुक्ति होती है, केवल तात्पर्य-मात्र से भेद होता है ; अर्थात् कर्तृत्व-कर्मत्व या उद्देश्यत्व-प्रति-निर्देश्यत्व आदि अन्वय-मात्र से भेद होता है। अर्थ में तात्पर्य-भेद होने से तो यह अलंकार ही उड़ जायगा। लक्षण में आए हुए 'तात्पर्य' का अर्थ आपने भी ऐसा ही किया है—"वाक्य में कर्तृत्व-कर्मत्व आदि रूप से संबंध को यहाँ 'तात्पर्य' कहते हैं।" निष्कर्ष यह निकला कि शब्द और अर्थ की पूरी पुनरुक्ति हो, केवल अन्वय-भेद हो, तो यह अनुप्रास होता है। प्रत्युदाहरण की संगति के लिये जो पंक्ति आई है, उसमें 'तात्पर्य'-शब्द का अर्थ 'अन्वय' नहीं, वक्तृ-तात्पर्य, अर्थात् मतलब है। समझे आप ? अब बतलाइए कि यह पंक्ति 'नयने तस्यैव नयने च' इस प्रत्युदाहरण में लक्षण का समन्वय कर रही है कि यह बतला रही है कि यहाँ भाग्यवत्त्वादि-विशिष्टत्वरूप तात्पर्य से दूसरा नयन भिन्नार्थक होने के कारण यह अनुप्रास नहीं है ? आप अभी तो कह चुके हैं वस्तुतः यहाँ अर्थ-भेद है ही नहीं ; परंतु फिर कहते हैं—"विशेषणकृत भिन्नता यहाँ नहीं मानी जाती।" इससे यह निकला कि यहाँ विशेषणकृत भिन्नार्थता है तो ज़रूर ; पर वह मानी नहीं जाती ! ख़ैर, भिन्नार्थता स्वीकार तो कर लो ! कई बार उलट-फेर आपने किया है। अच्छा, तो भिन्नार्थता यहाँ है अवश्य, और वह विशेषणकृत है ; पर यहाँ मानी नहीं जाती ! क्यों ? क्यों नहीं मानी जाती ? केवल आपकी इच्छा ही ऐसी है कि यहाँ भिन्नार्थता न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानी जाय, या इसमें कुछ प्रमाण भी है ? आपकी इच्छा के हम बाधक नहीं। परंतु प्रमाण की बात यदि आप कहें, तो ग़ज़ब हो जायगा। संस्कृत-साहित्य-शास्त्र से कोई भी प्रमाण आप पेश नहीं कर सकते कि यहाँ विशेषणकृत भिन्नार्थता मानी नहीं जाती। यदि आपके पास कोई प्रमाण हो, तो कृपा कर प्रकाशित कीजिए।

इसके आगे आप यों निकलते हैं -"अब रही 'कथित-पदत्व' के अदोष-स्थल में उक्त ध्वनि के पृथक् निर्देश की बात। उसका उत्तर यह है कि लाटानुप्रास उक्त ध्वनि से अन्यत्र भी होता है, जैसे 'स्मेरराजीव' इत्यादि में उक्त ध्वनि के न होने पर भी लाटानुप्रास है। अतः उक्त स्थलों में उसका निर्देश करना आवश्यक है।"

कैसी बढ़िया उक्ति और युक्ति है ! शंका तो यह कि अगर उक्त ध्वनि में भी लाटानुप्रास होता हो, तो फिर 'कथितपदत्व' की अदोषता में—

"कथितं च पदं पुनः। विहितस्यानुवादत्वे विषादे विस्मये क्रुधि। दैन्येऽथ **लाटानुप्रासेऽनुकम्पायां** प्रसादने। **अर्थान्तरसंक्रमितवाच्येहर्षेऽवधारणे।**"

पृथक्-पृथक् लाटानुप्रास और इस ध्वनि का ग्रहण क्यों किया गया ? उक्त ध्वनि का ग्रहण तो 'लाटानुप्रास' के कहने से ही हो जाता ; क्योंकि जहाँ भी यह ध्वनि होगी, लाटानुप्रास ज़रूर ही होगा। इसका उत्तर आपने यह दिया है कि 'स्मेरराजीवनयने' इत्यादि स्थल में जहाँ उक्त ध्वनि के विना भी लाटानुप्रास है, उसके ग्रहण के लिये 'लाटानुप्रास' का पृथक् निर्देश है ! कैसा सुंदर उत्तर है ? प्रश्न तो यह है कि लाटानुप्रास में ही उक्त ध्वनि आ जाती है। अतः इस (ध्वनि) का अलग नाम क्यों लिया गया ? उत्तर है कि जहाँ 'स्मेरराजीव' इत्यादि स्थलों में उक्त ध्वनि के विना भी लाटानुप्रास है, उसके ग्रहण के लिये लाटानुप्रास का पृथक् निर्देश है ! अजी साहित्याचार्यजी ! बात यह है कि जब आप उक्त ध्वनि में भी उक्त अलंकार मानते हैं, तो फिर बतलाइए कि यहाँ 'लाटानुप्रास' कहकर फिर उक्त ध्वनि का अलग नाम क्यों लिया ? क्या ऐसा भी कोई स्थल आप बतला सकेंगे, जहाँ उक्त ध्वनि तो हो, किंतु (आपका) लाटानुप्रास न हो ? असंभव बात है।

तात्पर्य यह है कि लाटानुप्रास में शब्द और अर्थ की पूर्ण पुनरुक्ति होती है ; पर उक्त ध्वनि में शब्द की पुनरुक्ति होने पर भी अर्थ की पुनरुक्ति इसलिये नहीं होती कि द्वितीय 'नयन' आदि शब्द स्वविशेषरूप अर्थान्तर में संक्रमित हो जाते हैं, केवल 'नयनत्व' आदि के बोधक नहीं होते। अतएव अर्थ की पुनरुक्ति नहीं होती। जब अर्थ की पुनरुक्ति नहीं होती, तो फिर लाटानुप्रास कैसे भी उक्त ध्वनि के विषय में हो ही नहीं सकता। इसीलिये उक्त ध्वनि का पृथक् ग्रहण है। यदि दर्पणकार उक्त ध्वनि के विषय में भी लाटानुप्रास मानते होते, तो फिर यहाँ 'लाटानुप्रास' के साथ व्यर्थ उक्त ध्वनि का ग्रहण क्यों करते ? अतएव सिद्ध है कि इस ध्वनि के विषय में लाटानुप्रास नहीं होता।

आप कहते हैं कि 'ब्राह्मणवशिष्ट' न्याय से प्रधानता सूचित करने के लिये 'ध्वनि' का यहाँ पृथक् निर्देश है। यह डूबते को तिनके का सहारा है। इससे काम नहीं चल सकता। भला, यहाँ इस प्रधानता के सूचन करने का कौन-सा मौक़ा है, और इससे लाभ क्या है ? इसी प्रकार 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' आदि न्यायों को व्यर्थ ही लिखकर आपने अपनी हँसी कराई है। इन न्यायों की गंध भी प्रकृत-स्थल में नहीं पहुँचती। सिर्फ पुस्तक के कई पन्ने यों आपने बढ़ा दिए हैं, और बस। फिर आपकी उलटी डाँट तो देखिए—"इस पृथक् निर्देश के भरोसे तर्कवागीशजी का इस मुख्य ग्रंथ को इस प्रकार भ्रष्ट कर डालना भ्रममूलक और प्रामादिक है।" अवश्य भ्रममूलक और प्रामादिक है !

ध्यान रखना चाहिए कि केवल साहित्य-दर्पण में ही नहीं, सभी साहित्य-ग्रंथों में ऐसा ही निर्णय है। कहीं भी अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि में लाटानुप्रास नहीं माना गया है। अतएव 'काव्य-प्रकाश' में भी उक्त दोष की अदोषता के विषय में उक्त अनुप्रास और उक्त ध्वनि का अलग-अलग नाम लिया गया है—"कथितपदं क्वचिद्गुणः लाटानुप्रासे, अर्थान्तरसंक्रमितवाच्ये विहितस्यानुवाद्यत्वे च।" इन सबके उदाहरण भी अलग-अलग दिए गए हैं। आश्चर्य तो यह है कि साहित्याचार्यजी यों भी कहते हैं कि हमने इन सब ग्रंथों को पढ़ा और परीक्षा के लिये तैयार किया ! इन तैयारशुदा ग्रंथों में भी ऐसी समझ ?

संस्कृत में साहित्य के एक-से-एक बढ़कर ग्रंथ-रत्न हैं। खूब विचार किया गया है। एक-एक लक्षण के बीस-बीस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण दिए गए हैं। क्या साहित्याचार्यजी कहीं से कोई ऐसा भी उदाहरण दे सकेंगे, जिसमें अर्थान्तर-संक्रमितवाच्यध्वनि के विषय में लाटानुप्रास बतलाया गया हो? यदि ऐसा आप करेंगे, तो बड़ी कृपा होगी। वस्तुतः आज तक किसी ने उक्त ध्वनि में उक्त अलंकार नहीं माना है, और न किसी ने ऐसा उदाहरण ही दिया है। कोई दे कैसे? लक्षण में तो है 'शब्दार्थ की पुनरुक्ति' तब फिर उक्त ध्वनि में यह अनुप्रास हो कैसे सकता है, जहाँ स्वविशेषरूप अर्थान्तर में दूसरी बार उक्त शब्द संक्रमित हो जाते हैं।

इस साफ़ बात को समझाने के लिये अधिक और क्या लिखा जाय? सहृदय-हृदय प्रमाण हैं।

साहित्याचार्यजी से यह भूल इसलिये हुई कि लाटानुप्रास के लक्षण में 'तात्पर्य्य'-शब्द आया है, और दर्पण के उस प्रत्युदाहरण की पंक्ति में भी 'तात्पर्य्य' पड़ा हुआ है। इन दोनों शब्दों का अर्थ आप एक ही समझ बैठे हैं। वस्तुतः लाटानुप्रास के लक्षण में आए हुए 'तात्पर्य्य' का अर्थ है 'अन्वय'। और, इस पंक्ति में आए 'तात्पर्य्य' का अर्थ है 'आशय' वक्तृ-तात्पर्य्य। काव्य-प्रकाश में भी इस अनुप्रास के लक्षण में 'तात्पर्य्य'-शब्द आया है, और वहाँ भी उसके सब टीकाकारों ने उसका अर्थ 'अन्वय' ही किया है।

देखिए—

"शाब्दस्तु लाटानुप्रासौ भेदे तात्पर्य्यमात्रतः।"

इसके 'विवरण' में लिखा है—"उद्देश्यविधेयभावादिः कर्तृकर्मत्वादिरूपश्च पदार्थयोः सम्बन्धोऽन्वयः, तदेवाऽत्रतात्पर्य्यम्।" श्रीवामनाचार्यजी ने भी लिखा है—"तात्पर्य्यमन्वयभेदः।"

इसी बात को न समझने के कारण साहित्याचार्यजी ने यह सब लिखा है; लाटानुप्रास के प्रत्युदाहरण को उदाहरण समझ बैठे हैं, और कितनी खरी-खोटी सुनाई है तर्कवागीशजी को! हमारी समझ में नहीं आता कि एक साहित्याचार्य पुरुष इस प्रकार की बातें कैसे लिख देता है! उसे कम-से-कम मिली हुई अपनी उपाधि का भी तो कुछ ख़याल रखना चाहिए। न लिखने से क्या बिगड़ा जाता था?

शब्दार्थ-परिचय

'पुनरुक्तवदाभास'-नामक अलंकार के उदाहरण में निम्न-लिखित पद्य दर्पण में उद्धृत हुआ है—

"भुजङ्गकुण्डली व्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः।
जगन्त्यपि सदापायादव्याच्चेतो हरः शिवः।"

इसका अर्थ है, साँपों के कुंडल पहने हुए, साफ़ कपूर के समान शुभ्र किरणों से युक्त चंद्र को धारण किए हुए मनोहर शिवजी सदा विघ्नों से संसार की रक्षा करें।

यहाँ 'व्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः' का अर्थ है—व्यक्ताः शशिनः कर्पूरस्येव शुभ्राः श्वेताः अंशवो यस्य स तथा भूतः शीतगुः चन्द्रः यस्य। शशि-पद का अर्थ यहाँ कपूर है, जो कोशादि में प्रसिद्ध है। इसका यही अर्थ यहाँ तर्कवागीश आदि ने किया है। परंतु हमारे साहित्याचार्यजी ने इसका दूसरा अर्थ किया है! ऐसा न करते तो शायद आपको कोई तर्कवागीशजी का 'पिछलगुआ' कह देता। तब तो बड़ी भारी मान-हानि होती न? आपने इस पद्य का यह अर्थ किया है—"सर्पों के कुंडल धारण किए हुए, सुव्यक्त शश (कलक) वाले और श्वेत किरण-युक्त 'शीतगु'—चंद्रमा से युक्त, चित्त को हरण करनेवाले शिवजी सदा अपाय (विघ्न या नाश) से जगत् की रक्षा करें।"

साहित्याचार्यजी ने यहाँ भारी ग़लती की है 'व्यक्तशशिशुभ्रांशु' में शशि-पद का अर्थ कपूर है, जिसे आपने 'कलंकवाला' किया है। यह अशुद्ध भी है और अनर्थकारी भी। अशुद्ध और असंगत तो इसलिये है कि ऐसा अर्थ करने पर व्यर्थ ही वृत्ति-गौरव होता है। यदि इस पद्य के कवि को वह अर्थ अभिप्रेत होता, जो साहित्याचार्यजी ने किया है, तो वह 'व्यक्तशशिशुभ्रांशु' न लिखकर 'व्यक्तशशशुभ्रांशु' ऐसा लिखता। कारण, वह अर्थ तो ऐसा करने से ही निकल जाता—व्यक्तः शशः यस्य यस्मिन् वा, तो फिर तद्धित प्रत्यय (इति) की क्या ज़रूरत थी? कोई भी चतुर कवि अपने काव्य में वृत्ति-गौरव न आने देगा, जहाँ तक संभव होगा। कवि तो कवि, इस महादोष से तो संस्कृत के मामूली विद्यार्थी भी बचते रहने की चेष्टा करते हैं। यह सब होते हुए भी न-जाने साहित्याचार्यजी ने क्यों इस पद की वैसी छीछालेदर कर डाली है!

दूसरी बात यह है कि 'कलंकवाला' अर्थ प्रकृत में बिलकुल उपयुक्त न होकर उलटे बिगाड़ करनेवाला होता है। शिवजी विघ्नों से या विनाश से संसार की रक्षा करें, यही इस पद्य में कहा गया है। परंतु जो पुरुष स्वयं किसी 'कलंकी' को अपने सिर पर चढ़ाए है, वह दूसरों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विघ्न से कैसे रक्षा कर सकेगा? ऐसा पुरुष तो स्वयं विघ्न-बाधाओं का शिकार बना रहेगा।

जब शशि-शब्द का कपूर अर्थ करते हैं, तो प्रकृत को यह क्षति नहीं उठानी पड़ती है; प्रत्युत उसका उत्कर्ष होता है। कपूर के समान शुभ्र किरणों से युक्त चंद्र का जो आश्रय है, वह अवश्य संसार की रक्षा कर सकेगा—त्रिविध ताप शांत कर सकेगा।

यह ख़ुशी की बात है कि यहाँ साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीशजी को याद नहीं किया है। हम और कुछ न लिखकर विद्वान् सहृदयों से यही अनुरोध करते हैं कि इन दोनों अर्थों की तुलना साहित्य-विद्या से करके देखिए और तब जैसी इच्छा हो, वैसा मानिए।

शशि-शब्द का अर्थ कपूर अत्यंत प्रसिद्ध है। जितने भी चंद्रमा के वाचक शब्द हैं, सब कपूर के पर्याय भी हैं—"अथ कर्पूरमस्त्रियाम्। घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताश्रो हिमबालुकः"—इत्यमरः।

भाषा-विज्ञान

'भाषासम'-नामक शब्दालंकार के उदाहरण में नीचे लिखा उदाहरण 'दर्पण' में दिया गया है—

मञ्जुलमणिमञ्जीरे कलगम्भीरे विहारसरसीतीरे।
विरसाऽपि केलिकीरे किमालि धीरे च गन्धसारसमीरे।

यह स्वयं दर्पणकार श्रीविश्वनाथ कविराज का बनाया चमत्कारी पद्य है। यह संस्कृत, प्राकृत तथा सौरसेनी, प्राच्य, अवंती, नागर-नामक अपभ्रंश भाषाओं में एक समान ही पढ़ा जाता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये साहित्य-दर्पण में यह लकीर लिखी है—"एष श्लोकः संस्कृतप्राकृतसौरसेनीप्राच्यावन्तीनागरापभ्रंशेष्वेकविध एव।" इसका अर्थ साहित्याचार्यजी ने यह किया है—"यह श्लोक संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, प्राच्या, अवंती, नागर और अपभ्रंश भाषाओं में एक-सा ही है।"

साहित्याचार्यजी के मत से सौरसेनी, प्राच्या, अवंती, नागर, ये भाषाएँ अपभ्रंश नहीं। तभी तो लिखा है कि "नागर और अपभ्रंश भाषाओं में एक-सा ही है।" अच्छा, तो फिर इन भाषाओं को क्या आप 'प्राकृत' के अंतर्गत करते हैं? नहीं। यह हो नहीं सकता, क्योंकि पंक्ति में पड़ा हुआ शब्द इन भाषाओं के साथ अन्वित नहीं हो सकता। तो फिर इन भाषाओं का किसमें समावेश है? साहित्याचार्यजी ही जानें।

वस्तुतः द्वंद्वांत में पड़ा हुआ 'अपभ्रंश'-शब्द 'सौरसेनी' आदि और नागरांत सभी भाषाओं के साथ संबद्ध है, अतएव सौरसेनी आदि भाषाएँ ही अपभ्रंश भाषाएँ हैं। साहित्याचार्यजी का अर्थ भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण के विरुद्ध मनमाना है।

संबंध-साधन

"भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।"

यह उत्प्रेक्षा का लक्षण है। यहाँ साहित्याचार्यजी फ़र्माते हैं—"श्रीतर्कवागीशजी ने लिखा है कि 'परात्मना' यहाँ 'आत्म' पद तादात्म्य-संबंध का बोधन करने के लिये है, अतः उपमानप्रकारक, उपमेय-विशेष्यक, तादात्म्य-संसर्गक, उत्कटैककोटिक संशय को उत्प्रेक्षा कहते हैं। यह लक्षण असंगत है; क्योंकि सब उत्प्रेक्षाओं में तादात्म्य-संसर्ग नहीं हुआ करता—केवल धर्म्युत्प्रेक्षा में होता है। अन्यत्र अन्य संसर्ग हुआ करते हैं—अतः उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षण में 'तादात्म्य' का निवेश करना अनुचित है।"

साहित्याचार्यजी को विदित हो कि श्रीतर्कवागीशजी ने कुछ अपनी तरफ़ से तो 'तादात्म्य' मिला ही नहीं दिया है। जो कुछ मूल में लिखा है, उसी को स्पष्ट कर दिया है। और 'उत्प्रेक्षा' में तादात्म्य-संबंध और लोगों ने भी माना है। काव्य-प्रकाश में उत्प्रेक्षा का लक्षण दिया है—

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।"

इसके टीकाकारों ने लिखा है—"प्रकृतस्योपमेयस्य समेनोपमानेन सह एकरूपतया तादात्म्येन यत् सम्भावनम्, सा उत्प्रेक्षा।"

सो, तादात्म्य-संबंध प्रायः सभी प्राचीन आलंकारिकों ने स्वीकार किया है।

फिर आप (साहित्याचार्यजी) लिखते हैं—"इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षालंकार में संशय आहार्य होता है, वास्तविक नहीं। कवि को या कवि-कल्पित वक्ता को प्रकृत वस्तु का ज्ञान अवश्य रहता है। वक्ता मुख को मुख समझता हुआ ही उसका चन्द्रत्वेन सम्भावन करता है कि "मुखमेणी दृशो भाति पूर्णचन्द्रइवापरः", अतः इस लक्षण में केवल 'संशय' पद दे देना पर्याप्त नहीं है, आहार्य संशय कहना चाहिए।"

बात ठीक है। आहार्य संशय ही उत्प्रेक्षा में होता है। सो, यह 'आहार्यत्व' तर्कवागीशजी के लक्षण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही जाता है। तभी तो काव्य-प्रकाश के टीकाकारों ने ऐसा ही लिखा है—"सम्भावनं चोत्कटैककोटिः सन्देहः।" इस प्रकार साहित्याचार्यजी का इतना सब लिखना व्यर्थ है। यह बतलाना अनावश्यक है कि यहाँ जो कुछ साहित्याचार्यजी ने लिखा है, उनका अपना कुछ नहीं! सब ज्यों-का-त्यों 'रसगंगाधर' का रखा है। जो चाहे, मिलान कर लें। इस प्रकार दूसरे के सिद्धांत से दूसरे मत की समालोचना करने बैठ जाना और उसके नाम का ज़िक्र तक न करना क्या साहित्य-जगत् में क्षम्य है? किसी ग्रंथ का मतलब समझे बिना यों ही जो मन में आया, सो लिख देने से लोग अपनी ही हँसी कराते हैं। जहाँ कहीं बात समझ में न आए, वहाँ चुप रहना ही अच्छा है।

साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीश की धज्जियाँ (?) उड़ाते हुए लिखा है—"उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षण में 'तादात्म्य' का निवेश करना अनुचित है।" परंतु आपको यह मालूम नहीं कि ग्रंथकार ने मूल में जो 'परात्मना' 'आत्म' पद रखा है, वह 'तादात्म्य' बोधन करने के लिये ही है। अन्यथा केवल 'पद'-शब्द से ही काम चल जाता—परेण उपमानेन प्रकृतस्य उपमेयस्य सम्भावनम् उत्प्रेक्षा। साहित्याचार्यजी ने इसका ऐसा ही अर्थ किया है, और 'आत्म' पद को बिलकुल डकार गए। इस प्रकार ग्रंथकार के आशय को न समझकर उसने ग्रंथ भ्रष्ट करने की चेष्टा की है। मूल-ग्रंथकार को यहाँ उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षण में तादात्म्य-संबंध का कहना अभीष्ट है। इसीलिये 'आत्म' पद जोड़ा है, और इसीलिये आगे "अन्ये तु अनेकत्वनिर्धारणः"... इत्यादि मत का खंडन करते हुए मूल में ही लिखा है—"निगीर्णस्वरूपस्यान्यतादात्म्यप्रतीतिर्हि सम्भावना।" ग्रंथ की इस पंक्ति का अर्थ साहित्याचार्यजी ने किया है—"किसी पदार्थ का स्वरूप निगीर्ण करके उसकी अन्य पदार्थ के साथ तादात्म्य (एकता) की प्रतीत को ही संभावना कहते हैं।" इसी संभावना का नाम उत्प्रेक्षा है। कैसे आश्चर्य की बात है कि इस पंक्ति में मूल-ग्रंथकार का स्पष्ट मत देखकर भी, और उसकी ठीक वैसी ही व्याख्या करके भी, आप लिखते हैं कि उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षण में न तो 'तादात्म्य'-संबंध का ज़िक्र है, और न उसकी ज़रूरत ही! धन्य!!

आपका यह कहना भी वैसा ही है कि तर्कवागीशजी को उत्प्रेक्षा के लक्षण में 'संशय' के विशेषण के रूप में 'आहार्य' पद ज़रूर देना था, केवल 'संशय' पर्याप्त नहीं।

यद्यपि उत्प्रेक्षा में संशय आहार्य ही होता है; परंतु तर्कवागीशजी के किए हुए लक्षण में इस 'आहार्य' पद के देने की ज़रूरत नहीं। वह अर्थापत्ति से यों ही आ जाता है। उन्होंने लिखा है—'उत्कटैककोटिकः संशयः', अतएव लक्षण की संदेहालंकार में अतिव्याप्ति नहीं जाती; क्योंकि वहाँ संशय समकोटिक होता है। इस बात को उन्होंने लिख भी दिया है—"संदेहालङ्कार-वारणाय 'उत्कटैककोटिकः' इति।" केवल तर्कवागीशजी ही क्यों, मूल-ग्रंथकार ने भी लक्षण में 'आहार्य' पद नहीं दिया है। यही क्यों, वाग्देवतावतार श्रीमम्मट भट्टाचार्य आदि ने भी काव्य-प्रकाश आदि में उत्प्रेक्षा के लक्षण में 'आहार्य' पद नहीं दिया है; क्योंकि वह तो यों ही आ जाता है। हाँ, व्याख्यातः विशेष प्रतिपत्ति हो जाती है।

इसलिये साहित्याचार्यजी ने 'रसगंगाधर' के आधार पर जो कुछ यहाँ लिखा है, बिलकुल असंगत है। 'रसगंगाधर' में जो उत्प्रेक्षा का लक्षण किया है, उसी के उपयुक्त ये बातें हैं। यही कारण है कि निर्भीक समालोचक पंडितराज ने अपने उक्त ग्रंथ में साहित्य-दर्पण अथवा काव्य-प्रकाश के उत्प्रेक्षा-लक्षणों की कुछ भी समालोचना नहीं की है। कारण, वे बातें यहाँ स्वयं लब्ध हो जाती हैं। यदि ऐसा न होता और उक्त ग्रंथों के उत्प्रेक्षा-लक्षण पंडितराज को सदोष मालूम पड़ते, तो वे उनकी आलोचना ज़रूर करते; क्योंकि यह उनकी प्रकृति थी, जैसा कि रसगंगाधर के प्रत्येक स्थल से मालूम होता है।

ख़ैर, जो काम पंडितराज श्रीजगन्नाथ भी न कर सके, उसे हमारे साहित्याचार्य ने यों ही कर दिखाया! हिम्मत चाहिए!

विश्वनाथ व्याकरण खाक न जानते थे

"स्मेरं विधायनयनं विकसितमिव नीलमुत्पलं मयि सा।
कथयामास कृशाङ्गी मनोगतं निखिलमाकूतम्।"

इस पर दर्पणकार ने लिखा है—"अत्रैकमेव प्रफुल्लत्वं पत्रिवस्तुपमावद् विभिन्नाभ्यां स्मेरविकसितशब्दाभ्यां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दिष्टम् ।" इस पंक्ति की जगह "अत्रैके एव स्मेरत्व-विकसितत्वे प्रतिवस्तूपमावच्छेन निर्दिष्टे" यह अशुद्ध पंक्ति लेखकों के प्रमाद से लिख गई है, और छप भी गई है। इसी अशुद्ध पंक्ति को लिखकर साहित्याचार्यजी लिखते हैं—"वस्तुतः संख्यावाचक 'एक'-शब्द से द्विवचन नहीं हुआ करता, अतः यहाँ मूल का पाठ अशुद्ध है। यदि 'एकमेव स्मेरत्वं विकसितत्वं च' ऐसा पाठ होता है, तो ठीक होता।"

साहित्याचार्यजी का मतलब यह है कि विश्वनाथ व्याकरण-विषयक इतनी भी बुद्धि न रखते थे कि उनको यह भी मालूम होता कि संख्यावाचक 'एक'-शब्द का द्विवचन नहीं होता। इस बात का पता केवल साहित्याचार्य को ही चला, और किसी को नहीं। अतः मूल का पाठ विश्वनाथ ने ग़लत बनाया है। यदि वे ऐसा पाठ बनाते, जैसा साहित्याचार्यजी बतलाते हैं, तो ठीक होता! पढ़कर दिल बाग़-बाग़ हो जाता है! अहो बुद्धे वैभवम्!!!

पाठकों को समझ लेना चाहिए कि साहित्याचार्यजी यहाँ भी लोगों की आँखों में धूल झोंककर अपनी विशेषज्ञता प्रकट करना चाहते हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि जिस पंक्ति पर साहित्याचार्यजी ने ये शब्द लिखे हैं, वह कविराज श्रीविश्वनाथ की नहीं; प्रमादी पुस्तक-लेखकों की है। इस बात को तर्कवागीशजी ने लिख भी दिया है—"संख्यार्थादेकशब्दाद् द्विवचना-सम्भवादयं पाठो न युक्तः। किंतु 'अत्रैकमेव प्रफुल्लत्वं प्रतिवस्तूपमावद् विभिन्नाभ्यां स्मेरविकसितशब्दाभ्यां निर्दिष्टम्' इति पाठो बोद्धव्यः।" अर्थात् संख्यावाचक 'एक'-शब्द से द्विवचन हो नहीं सकता, अतएव (अत्रैके—इत्यादि) पाठ ठीक नहीं। सो 'अत्रैकम्' इत्यादि पाठ यहाँ जानना चाहिए।

सहृदय देखें कि तर्कवागीशजी की ही बतलाई हुई बात साहित्याचार्य ने लिखी है; पर किसी दूसरे मतलब से। तर्कवागीशजी तो लिखते हैं कि यहाँ (अत्रैके—इत्यादि) पाठ ग़लत है। उसकी जगह 'अत्रैकं' इत्यादि समझना चाहिए। अर्थात् शुद्ध पाठ 'अत्रैकम्' इत्यादि है। उसकी जगह प्रमाद से किसी ने 'अत्रैके' इत्यादि कर दिया है, सो ठीक कर लेना चाहिए। परंतु साहित्याचार्यजी ने इसी बात को, 'पिछलगुआ' कोई न कहे, इस डर से, कुछ और टोन से लिखा है। [illegible] कहना है—"मूल का पाठ अशुद्ध है, यदि [illegible] पाठ होता, तो ठीक होता।" अर्थात् विश्वनाथ [illegible] आप व्याकरण की शिक्षा दे रहे हैं! भला, इन [illegible] चतुराइयों से क्या मिल जाता है?

प्रसव-परीक्षा

"ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव॥"

यह गुणोत्प्रेक्षा का उदाहरण है। राजा दिलीप [illegible] वर्णन है। ज्ञान होने पर भी वे थोड़ा बोलते थे; [illegible] होने पर भी क्षमाशील थे, और दान देने पर भी [illegible] श्लाघा से रहित थे। गुणों के प्रयोजक होने के [illegible] उनके गुण सप्रसव-से थे।

साहित्याचार्यजी यहाँ लिखते हैं—"गर्भाशय से [illegible] स्थित बच्चे के विभाग (?) को यहाँ प्रसव कहा [illegible] वस्तुतः ग्रंथकार का यह उदाहरण और उक्त अर्थ [illegible] असंगत हैं। जिस प्रकार बँदरियों की गोद में [illegible] बच्चा चिपटा रहता है, उसी प्रकार राजा दिलीप के [illegible] भी बच्चेदार थे, यह कविकुलगुरु श्रीकालिदास [illegible] तात्पर्य नहीं है। यदि उनका यह तात्पर्य होता कि [illegible] गुण के पेट से दूसरा गुण निकल पड़ा, तो 'ज्ञाने [illegible] के स्थान पर 'ज्ञानान्मौनम्' इत्यादि पाठ बनाते। [illegible] अतिरिक्त प्रसव स्त्रियों को ही होता है, पुरुष और न[illegible] को नहीं होता। कालिदास-जैसे कविकुलगुरु पुरुषों [illegible] नपुंसकों को बच्चे जनने का काम दें—यह कैसे हो [illegible] है? 'गुणाः' पुल्लिंग है, और 'ज्ञान' नपुंसक है। [illegible] भी पुल्लिंग है। ये बेचारे कैसे प्रसव करेंगे, यह [illegible] विश्वनाथजी ने नहीं सोची। यहाँ श्रीतर्कवागीश[illegible] भी इस प्रसव-कार्य में विश्वनाथजी की पूरी मदद [illegible] आप लिखते हैं—"ज्ञानादीनां मौनाद्युत्पादने [illegible] सम्भावना।" वस्तुतः कालिदासजी ने दिलीप [illegible] पुरुषता सूचित करने के लिये उनमें विरोधी [illegible] समावेश दिखाया है। ज्ञान और मौन, क्षमा और [illegible] आदि परस्पर विरोधी गुण भी उनमें थे, और इस [illegible] मिले-जुले थे कि मानों वे भाई भाई हों। सप्रसव [illegible] 'प्रसवेन सह वर्त्तमाना' यह अर्थ नहीं है, अपितु [illegible] प्रसवो येषां ते सप्रसवाः' यह अर्थ है। 'सह' [illegible] साथ प्रसव का बहुव्रीहिसमास हुआ है, और 'ब[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...' ६+३+८२ में 'सह' के स्थान में 'स' आदेश हुआ ...। इस पद्य की व्याख्या में यही अर्थ श्रीमल्लिनाथ ने ...किया है।

'गुणानुबंधी' में अनुबंधी का अर्थ है अनुकूल रहने ...आज्ञाकारी या वशवर्ती। जैसे प्रचंड पराक्रमी और ...भीमसेन, सहोदर होने के कारण, युधिष्ठिर के साथ ...दबकर रहते थे। भीम के क्रोध को युधिष्ठिर की ...के आगे दबना पड़ता था। इसी प्रकार दिलीप की ...को उनकी क्षमा के आगे सिर झुकाना पड़ता था ...आदि तात्पर्य जानना।

"इस प्रकार यह उदाहरण गुणोत्प्रेक्षा का नहीं हो ...। भ्रातृ-स्वरूप की ही यहाँ उत्प्रेक्षा है, अतः इसे ...उत्प्रेक्षा कह सकते हैं, गुणोत्प्रेक्षा नहीं। गुणस्वरूपो-...का यह उदाहरण हो सकता है—"अम्भोजिनी ...बन्दनायां कूजन् बकानां समजो विरेजे। रूपान्त-...गृहः समन्तात्पुञ्जीभवन् शुक्लइवाश्रयार्थी।" ...बगलों के समूह में शुक्ल गुण का स्वरूप उत्प्रेक्ष्य है। ...पंडितेंद्र जगन्नाथ ने यह अपना बनाया पद्य रसगंगाधर ...गुणोत्प्रेक्षा के उदाहरण में दिया है। इसमें 'समज' ...चिंत्य है। क्योंकि 'समुदो रजः पशुषु' इस पाणिनि-...से सम पूर्वक अज् धातु से पशु-समुदाय के वाच्य होने ...घञ् प्रत्यय होता है। परंतु बगले पशु नहीं होते, ...होते हैं।"

यही सब इतना शास्त्रार्थ करके आपने एक साँस में ...तर्कवागीश, दर्पणकार और पंडितेंद्र जगन्नाथ के ...छुड़ाए हैं! सबका खंडन कर अपना 'मत' स्थापित ...किया है! 'आचार्य्यत्व' यह है!!!

साहित्याचार्यजी के कथन का निष्कर्ष यही है कि ...प्रसवाः' पद में सह के साथ बहुव्रीहिसमास है, अतएव ...सप्रसवत्वरूप गुण की नहीं, केवल भ्रातृ-स्वरूप की उत्प्रेक्षा ...। उसमें पहली दलील आपकी यह है कि यदि सप्रस-...स्वरूप गुण की उत्प्रेक्षा होती, तो पद्य में 'ज्ञाने मौनं' ...आदि न होकर 'ज्ञानान्मौनम्' इत्यादि होता। साहि-...आचार्यजी की यह युक्ति मन में बड़ा कुतूहल पैदा ...करती है। कारण, यह एक 'आचार्य' की उक्ति है। ...आपको यह ख़याल नहीं है कि यदि 'ज्ञानान्मौनम्' पाठ ...कर दिया जाता, तो फिर उत्प्रेक्षा हो ही कैसे सकती? ...फिर तो वस्तु सिद्ध हो जाती। भला, सिद्ध वस्तु में भी कहीं उत्प्रेक्षा हुआ करती है? वस्तुतः न तो ज्ञान से मौन पैदा होने का कोई नियम है, और शक्ति आदि से क्षमा आदि का। राजा दिलीप में ये परस्पर दुर्लभ गुण एक साथ ही वर्तमान थे, अतएव यह उत्प्रेक्षा है कि मानों वे एक दूसरे को पैदा किए हों। इससे उन गुणों का अवि-च्छिन्न रूप से साहचर्य ध्वनित होता है। जो जिसे पैदा कर सकता है, उसका उससे कभी भी राहित्य संभव नहीं हो सकता। साहित्याचार्यजी का यह लिखना कि "कालिदासजी ने दिलीप की महापुरुषता सूचित करने के लिये उनमें विरोधी गुणों का समावेश दिखाया है" बिलकुल असंगत है। ये गुण परस्पर विरोधी नहीं हैं महाराज! परस्पर दुर्लभ हैं। ज्ञान और मौन का, क्षमा और शक्ति का तथा त्याग और श्लाघाभाव का क्या आपस में विरोध है, सो तो बतलाइए! यदि इनका आपस में विरोध हो, तो एक जगह ठहर ही कैसे सकते हैं? क्या प्रकाश और अंधकार आदि परस्पर विरोधी कभी एक जगह रह सकते हैं?

ज्ञान और मौन, क्षमा और शक्ति तथा त्याग और श्लाघा-विपर्यय गुण किस प्रकार आपस में विरोधी हैं, इनमें क्या विरोध है, और यदि साहित्याचार्यजी की आज्ञा से ये सब विरोधी हो भी गए, तो फिर एक स्थान पर टिक कैसे सके, ये सब बातें सहृदयजन साहित्याचार्यजी से पूछ सकते हैं।

आपने अपनी पुष्टि में श्रीमल्लिनाथजी को याद किया है—"इस पद्य की व्याख्या में यही अर्थ श्रीमल्लिनाथजी ने भी किया है।" "इस पद्य की व्याख्या में यह अर्थ किया है! इस पद्य की यही व्याख्या श्रीमल्लि-नाथजी ने भी की है, अथवा इस पद्य का यही अर्थ श्रीमल्लिनाथजी ने भी किया है, इस प्रकार केवल 'व्या-ख्या' अथवा 'अर्थ' कह देने से साहित्याचार्यजी का मतलब न निकलता; अतः 'व्याख्या' और 'अर्थ' दोनों का उपादान है। साहित्याचार्यजी ने श्रीमल्लिनाथजी के अनुसार ही यह अर्थ नहीं किया है; क्योंकि ऐसा करने से तो वे 'पिछ-लगुआ' हो जाते। हाँ, श्रीमल्लिनाथजी ने भी ऐसा ही अर्थ किया है, जैसा साहित्याचार्यजी ने। जो भी हो, यह कोई युक्ति नहीं हुई। अगर श्रीमल्लिनाथजी की अपेक्षा कविराज श्रीविश्वनाथ ने अथवा तर्कवागीशजी ने कुछ अच्छा अर्थ किया है, तो कोई कारण नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका अर्थ अनुपादेय समझा जाय । यह तो काव्यार्थ है । जो सुंदर होगा, ग्राह्य है ।

आपने अपने अर्थ को पुष्ट करने के लिये एक और दलील दी है कि पुरुष (त्याग) और नपुंसक (ज्ञान) ने प्रसव कैसे किया । अवश्य ही इस प्रकार के विषय की विवेचना आपके उपयुक्त है ; क्योंकि आप शारीर शास्त्र के वेत्ता आयुर्वेद-भूषण भी हैं । परंतु महाराज, साहित्य-शास्त्र में यह विचार अविचार-कोटि में आ जाता है । पुरुष और नपुंसक प्रसव कर सकते हैं, यह बात न तो श्रीकालिदास ने कही है, और न साहित्य-दर्पण के निर्माता श्रीविश्वनाथ ने ; और न श्रीतर्कवागीशजी ने ही । यदि इनसे प्रसव सिद्ध होता, तो फिर उत्प्रेक्षा ही कैसे होती ? ये सब प्रसव नहीं कर सकते हैं, तभी तो उसकी उत्प्रेक्षा है—प्रसव की संभावना है—मानों वे सप्रसव हैं । आपके अद्वितीय विचार साहित्य-शास्त्र में किस स्थान में रखे जाने योग्य हैं, इसे साहित्यिक बंधु ही बतलाएँगे ।

फिर आप समझते हैं कि यहाँ प्रसवत्व गुण की नहीं, भाईपने की उत्प्रेक्षा है ; अतएव यह गुणोत्प्रेक्षा नहीं, जात्युत्प्रेक्षा है । ये गुण परस्पर सहोदर भाई हैं, और इनका प्रसव दिलीप ने किया है । साहित्याचार्यजी दिलीप को शायद स्त्री समझते हों ; क्योंकि प्रसव करना पुरुष का काम तो है ही नहीं ।

आपकी आज्ञा है कि इसलिये यह गुणोत्प्रेक्षा का उदाहरण नहीं हो सकता । 'गुणस्वरूपोत्प्रेक्षा' का यह उदाहरण हो सकता है "अम्भोजिनी बान्धववन्दनायाम्... इत्यादि ।" परंतु एक कसर इसमें भी आपने निकाल दी है—"पंडितेंद्र जगन्नाथ ने यह अपना बनाया पद्य रसगंगाधर में गुणोत्प्रेक्षा के उदाहरण में दिया है । इसमें 'समज'-शब्द चिंत्य है । क्योंकि 'समुदो रजः पशुषु' इस पाणिनि-सूत्र से सम् पूर्वक अज् धातु से पशु-समुदाय के वाच्य होने पर अप् प्रत्यय होता है । परंतु बगले पशु नहीं, पक्षी होते हैं ।" 'पंडितेंद्र' विशेषण के साथ श्रीजगन्नाथ और 'रसगंगाधर' का नाम तथा 'अपना बनाया' यह सब साभिप्राय है । अर्थात् आप पंडितेंद्र श्रीजगन्नाथ के उस पद्य को भी ग़लत साबित करते हैं, जिसे उन्होंने स्वयं बनाकर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसगंगाधर' में उक्त उत्प्रेक्षा के उदाहरण में बड़े गर्व से दिया है, और ग्रंथ के आदि में लिखा है—"निर्मायनूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयाऽत्र निबद्धं न परस्य किञ्चित् ।" भला, हमारे साहित्याचार्य के बुद्धि-वैभव का भी कुछ ठिकाना है ! आपकी व्याकरण-योग्यता लासानी है । यही नहीं, पाणिनि व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्य श्रीनागेशभट्ट से भी आप बड़े हैं । कारण, श्रीनागेशभट्ट को भी इस पद्य के इस पद पर यह समालोचना करने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ है ।

वस्तुतः साहित्याचार्यजी उलटे जा रहे हैं । 'समज' पद नहीं आपका कहना ही ग़लत है । 'समज' ठीक है । 'समुदो रजः पशुषु' इस पाणिनि-सूत्र में उपादानलक्षणा के द्वारा, 'पशु'-शब्द पक्षियों का बोधक है । अतएव बक-पक्षि-समुदाय के वाच्य होने में भा, सम् पूर्वक अज् धातु से अप् प्रत्यय होगा । इसमें कोई संदेह नहीं । ऐसे लाक्षणिक प्रयोगों से काव्य भरे पड़े हैं, और उन्हें सब आचार्यों ने स्वीकार किया है । अगर यह बात साहित्याचार्यजी को स्वीकार नहीं, तो कृपाकर बतलावें कि 'वृषलस्य पत्नी' कैसे शुद्ध समझी जायगा ? क्योंकि 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' से यह कभी बन नहीं सकता । अतएव 'पत्नीव पत्नी' इस प्रकार औपचारिक प्रयोग है, यह 'सिद्धांतकौमुदीकार' ने लिखा है । इसी प्रकार 'समज' पद है ।

पाणिनीय व्याकरण में श्रीनागेशभट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है । आपने ही 'शब्देन्दुशेखर' आदि ग्रंथ बनाये हैं, जिन्हें पढ़-पढ़कर आजकल के लोग 'व्याकरणाचार्य' बनते हैं । इन्हीं श्रीनागेशभट्ट ने पंडितेंद्र श्रीजगन्नाथजी के 'रसगंगाधर' की भी व्याख्या की है । आपने इस पद्य की व्याख्या में लिखा है—"समज संघः ।" अगर 'समज'-शब्द में व्याकरण-संबंधी कोर-कसर दीखती, तो प्रसिद्ध और निर्भीक समालोचक व्याकरणपरमाचार्य श्रीनागेशभट्ट ज़रूर इस पर कुछ लिखते । वे ऐसी चुप्पी इस पर न साध लेते ।

अस्तु—

इस प्रकार इस गुणोत्प्रेक्षा के उदाहरण में साहित्याचार्यजी एक साथ ही इन तीनों आचार्यों पर टूटे, और सबकी ख़बर ली । परंतु 'भाग्यं फलति सर्वत्र,' इसलिये साहित्याचार्यजी को पश्चात्ताप न करना चाहिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में ऐसी बातों की क़लई एक दिन खुलती ही है। सार्वदेशिक नियम है।

तो, कविराज श्रीविश्वनाथजी का वह उदाहरण ठीक गुणोत्प्रेक्षा का है। 'सप्रसवत्व' गुण उत्प्रेक्ष्य है। तर्कवागीशजी का अर्थ बिलकुल ठीक है। पंडितराज श्रीजगन्नाथ का पद्य उद्धृत करके जो उसके 'समज' शब्द को साहित्याचार्यजी ने ग़लत बतलाया है; सो उनका कहना ही ग़लत है। 'समज' ठीक है।

अभावोत्प्रेक्षा में चमत्कार

"कपोलफलकावस्थाः कष्टं भूत्वा तथाविधौ।
अपश्यन्ताविवान्योन्यमीदृक्षां क्षामतां गतौ।"

यह अभावोत्प्रेक्षा का उदाहरण है। इसका अर्थ और लक्षण-समन्वय साहित्याचार्यजी यों करते हैं—"कितने कष्ट की बात है कि इस सुंदरी के कमनीय कपोल, जो किसी दिन बड़े सुंदर और सुडौल थे, वे आज इतने क्षाम (कृश) हो गए हैं कि मानों एक दूसरे को देखते ही नहीं। कृश हो जाने के कारण मानों एक दूसरे के दर्शन से वंचित हैं।"

"यहाँ 'अपश्यन्ताविव' इस शब्द से दर्शन-क्रिया का अभाव उत्प्रेक्ष्य है। और क्षामता उसका कारण है।"

साहित्याचार्यजी का यह अर्थ अशुद्ध है। प्रकृत-पद्य में विरहिणी नायिका की दुर्बलता का वर्णन है। उसके कपोलों की कृशता ही यहाँ विधेय है। परंतु साहित्याचार्यजी ने इसकी विधेयता धूल में मिला दी है! दूसरी बात यह कि 'अपश्यन्ताविव' में नञ् 'पर्युदास' है, जिसे आपने 'असज्यप्रतिषेधी' समझ लिया है, और वैसा ही लिख भी दिया है! यह एक प्रसिद्ध बात है कि जब उत्तर पद के साथ नञ् हो, तो विधि में प्रधानता और निषेध में अप्रधानता होती है। ऐसा ही आचार्यों ने निर्णय किया है—

"प्रधानत्वं विधेर्यत्र प्रतिषेधेऽप्रधानता।
पर्युदासः स विज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ्॥"

अर्थात् जहाँ विधि में प्रधानता और निषेध में अप्रधानता हो, तथा नञ् उत्तर पद के साथ हो, तो वहाँ उस (नञ्) को 'पर्युदास' समझना चाहिए। जैसे—

"जुगोपात्मानमत्रस्तः भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥"

उन (राजा दिलीप) ने निडर होकर अपनी रक्षा की, आतुरता-रहित होकर धर्म का सेवन किया, लोभ-रहित होकर धन-संग्रह किया और आसक्ति-रहित हो कर सुखों का उपभोग किया। यहाँ नञ् पर्युदास है; क्योंकि त्रासादिकों का निषेध प्रधान नहीं है। प्रधानता यहाँ है 'आत्म-गोपन' आदि विधि में। इसी प्रकार प्रकृत अभावोत्प्रेक्षा के उदाहरण में 'अपश्यन्ताविव' इस पद में नञ् पर्युदास है। परंतु इस सिद्धांत के विरुद्ध साहित्याचार्यजी ने उसे प्रसज्यप्रतिषेधी समझकर वैसा ही अर्थ कर दिया है, जो बिलकुल असंगत और अशुद्ध वर्णन है नायिका के कृशत्व का; अतएव उसी की प्रधानता होनी चाहिए। परंतु साहित्याचार्यजी ने निषेध को प्रधानता दे दी है—"कृश हो जाने के कारण मानों वे एक दूसरे के दर्शन से वंचित हैं।"

इस पद्य का ठीक अर्थ यह है—"बड़ दुःख की बात है कि इस सुंदरी के ये कपोल, जो पहले वैसे सुंदर भरे हुए थे, आज एक दूसरे को न देखते हुए-से ऐसे (अनिर्वचनीय) दुर्बल हो गए हैं!"

यहाँ 'अपश्यन्ताविव' यह दर्शन-क्रिया का अभाव उत्प्रेक्ष्य है। उस उत्प्रेक्षा का निमित्त है कपोलों की वह वैसी क्षामता।

सो, इस प्रकार इस पद्य के समझने और अर्थ लिखने में पूरी गड़बड़ तो साहित्याचार्य ने स्वयं की है; परंतु बिगड़ बैठे हैं अकारण ही तर्कवागीशजी पर! आप लिखते हैं—"श्रीतर्कवागीशजी ने लिखा है कि यहाँ दर्शनाभाव के कारण उत्पन्न कृशत्व की संभावना में तात्पर्य है। "विरहजनितकृशत्वे परस्परदर्शनाभावजन्यकृशत्वसम्भावनायां तात्पर्यात्।" यह अत्यंत असंगत और अज्ञान-पूर्ण कथन है। (?) मूल-ग्रंथ में तो स्पष्ट लिखा है कि यहाँ दर्शनाभाव उत्प्रेक्ष्य है, और क्षामता-गमन उसका निमित्त है। परंतु आप लिखते हैं कि कृशत्व (क्षामता) की संभावना अर्थात् उत्प्रेक्षा है!! यदि यह ठीक है, तो इसे अभावोत्प्रेक्षा कहीं नहीं सकते। क्योंकि क्षामता भावरूप है। दर्शनाभाव को तो आप उत्प्रेक्ष्य मानते ही नहीं। उसे तो उत्प्रेक्षा का निमित्त मानते हैं। फिर इसे ग्रंथकार ने अभावोत्प्रेक्षा के उदाहरण में क्यों रक्खा?"

हृदय बंधु साहित्याचार्यजी को इन पंक्तियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान से पढ़ लें। वस्तुतः साहित्याचार्यजी ने यहाँ अद्भुत और भीषण 'अकांड तांडव' किया है। न तो तर्कवागीशजी ने कहीं कृशत्व की संभावना (उत्प्रेक्षा) स्वीकार की है, और न दर्शनाभाव को निमित्त ही माना है। उन्होंने तो दर्शनाभाव को उत्प्रेक्ष्य और क्षामतागमन को ही निमित्त माना है। और, इस प्रकार इसे अभावोत्प्रेक्षा का उदाहरण स्वीकार करके मूल-ग्रंथ के अनुसार ही सुंदर व्याख्या की है। तर्कवागीशजी की जो पंक्ति साहित्याचार्यजी ने उद्धृत की है, और उसका वैसा अनर्गल मतलब निकालने की क्षमता प्रदर्शित की है, उसका आप मतलब ही असल में नहीं समझ पाए हैं; अतएव यह सब लीपापोती कर डाली है। तर्कवागीशजी की वह पूरी पंक्ति इस प्रकार है—"ननु कपोलयोः परस्परदर्शनाभावः सिद्ध एव, कथमत्र सम्भावना? इति चेत्, न; विरहजनितकृशत्वे परस्परदर्शनाभावजन्यकृशत्वसम्भावनायां तात्पर्य्यात्।" अर्थात् यदि यह शंका की जाय कि कपोलों का परस्पर अदर्शन सिद्ध ही है, तो फिर यहाँ संभावना अर्थात् उत्प्रेक्षा कैसे हो सकती है? तो उसका उत्तर यह है कि यद्यपि दर्शनाभाव यहाँ उत्प्रेक्ष्य है सही; परंतु असली तात्पर्य है विरहजन्यकृशत्व में परस्परदर्शनाभावजनितकृशत्व की संभावना में। अतएव उक्त दोष की आशंका नहीं।

इसका खुलासा यह है कि दोनों (वाम और दक्षिण) कपोल स्वतः ही एक दूसरे को नहीं देखते। जब यह बात है, जब कि कपोलों का परस्पर दर्शनाभाव स्वयंसिद्ध है, तब फिर उसकी संभावना (उत्प्रेक्षा) क्योंकर हो सकती है? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यहाँ दर्शनाभाव उत्प्रेक्ष्य है; परंतु तात्पर्य है विरहजन्य कृशता में परस्पर दर्शनाभावजनितकृशत्व की संभावना में। अर्थात् उस सुंदरी के कपोल कृश तो हो गए हैं विरहजन्य दुःख के कारण, पर उसमें संभावना की है परस्पर दर्शनाभावजन्यकृशत्व की—उसके कपोल एक दूसरे को न देखते हुए-से ऐसे कृश हो गए हैं।

इस विषय में सहृदयों से यही अनुरोध है कि इन दोनों अर्थों को देखकर तारतम्य की परीक्षा की जाय। साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीशजी पर जो इलज़ाम लगाया है, वह बिलकुल झूठा है।

साहित्याचार्यजी ने क्या यह भी सोचा था कि तर्कवागीशजी की पंक्ति में 'तात्पर्य्यात्' क्यों पड़ा है? वह किस मर्ज़ की दवा है? अगर वे वस्तुतः दर्शनाभाव की उत्प्रेक्षा बिलकुल न मानते, और विरहजन्यकृशत्व में परस्परदर्शनाभावजन्यकृशत्व की संभावना मानते, तो वह पंक्ति वे यों बनाते—विरहजन्यकृशत्वे परस्परदर्शनाभावजनितकृशत्वस्य सम्भावना। और फिर यों इस पंक्ति के पूर्व उन्होंने शंका उठाई है, उसकी भी क्या ज़रूरत थी।

उपसंहार

साहित्याचार्यजी की कृतज्ञता

साहित्याचार्यजी ने अपनी 'विमला'-टीका तर्कवागीशजी की 'विवृति' के ही सहारे लिखी है। यदि 'विवृति' न होती, तो कौन कह सकता है कि साहित्याचार्यजी 'विमला' लिख सकते, या नहीं? सब बातें तर्कवागीशजी की ही हैं, कहीं कुछ फ़र्क़ नहीं है। जहाँ कहीं साहित्याचार्यजी इधर-उधर दौड़े हैं, वहीं प्रायः मुँह की खाई है! और तो और, यदि तर्कवागीशजी की 'विवृति' न होती, तो श्रीमान् उन प्राकृत-पद्यों का मतलब ही न समझ पाते, अर्थ ही न कर सकते, जो 'दर्पण' में जगह-जगह उद्धृत हुए हैं। कारण, आपको प्राकृत भाषा का बिलकुल सामान्य ज्ञान है, जैसा कि आजकल के 'साहित्याचार्यों' को हुआ करता है! यदि किसी नाटक में किसी प्राकृत-वाक्य की संस्कृत 'छाया न मिले' तो फिर परिताप से कुम्हलाते इन्हें देर नहीं लगती। तब फिर 'दर्पण' में उद्धृत 'गाथा सप्तसती' आदि की गंभीर आर्याओं का अर्थ लगा लेना क्या कुछ मज़ाक़ है!

यही नहीं, सैकड़ों जगह तो साहित्याचार्यजी ने तर्कवागीशजी की 'विवृति' के अक्षरों का हूबहू अनुवाद करके रख दिया है! कुछ नमूने देखिए—

(१)

"शरदिन्दुसुन्दररुचिः" इत्यादि मंगलाचरण की उत्थानिका वृत्ति में यों दी है—"ग्रन्थारम्भे निर्विघ्नेन समाप्तिमभिलषितपरिसमाप्तिकामो वाङ्ममाधिकृततया वाग्देवतायाः साम्मुख्यमाधत्ते।" इसका अर्थ लिखकर साहित्याचार्यजी कहते हैं—"यहाँ 'ग्रंथारंभे' इस पद में 'आरंभ'-शब्द लक्षणा से आरंभ के पूर्वकाल का बोधक है। मुख्य अर्थ के बाधित होने से प्रयोजनवती लक्षणा है। मंगलाचरण और ग्रंथारंभ इन दोनों क्रियाओं के बीच में अव्यवधान का सूचन करना इस लक्षणा का प्रयोजन है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तूरी-नृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्याचार्यजी की उक्त पंक्तियाँ तर्कवागीशजी के इन अक्षरों के अनुवाद-मात्र हैं—"ग्रंथस्य महावाक्य-विशेषस्य आरम्भे आरम्भप्राक्काले। आद्यकृतिरूपस्यारम्भस्य मङ्गलाचरणाधिकरणत्वबाधादियं लक्षणा। तत्प्रयोजनन्तु मङ्गलारम्भयोरव्यवहितत्वबोधः।"

कहिए, है अनुवाद ?

(२)

मंगल-पद्य का अर्थ लिखने के बाद साहित्याचार्यजी लिखते हैं—"यद्यपि विश्वनाथ कविराज ने अपनी कारिकाओं की व्याख्या भी स्वयं ही लिखी है, अतः कारिकाकार और वृत्तिकार के एक होने के कारण अवतरण में उत्तम पुरुष के एकवचन (आदधे) का प्रयोग होना चाहिए, प्रथम पुरुष (आधत्ते) का नहीं, तथापि भेद का आरोप करके ऐसा प्रयोग किया है। जैसे "जीवत्यहो रावणः" नागेशः कुरुते "इत्यादि।"

साहित्याचार्यजी का यह सब पांडित्य तर्कवागीशजी की इन पंक्तियों का अनुवाद है—"अत्र प्रथमपुरुषाभिधानं "रामः स्वयं याचते" "जीवत्यहो रावणः" इत्यादिवत्कालपनिकभेदमूरीकृत्य। अन्यथा अस्मत्कर्तृत्वेन उत्तमपुरुष एव स्यात्। न च वृत्तिकारकारिकाकारयोर्वास्तवो भेद इति वाच्यम्, "रसस्वरूपं निरूपयिष्यामः" इति प्रतिज्ञातुर्वृत्तिकारस्य कारिकया रसनिरूपणं तथात्वेऽसङ्गतं स्यात्।"

यह चोरी है, या सीना-ज़ोरी ?

(३)

संकेत-ग्रह के कारणों का विवेचन करते हुए साहित्याचार्यजी ने लिखा है—"ये उक्त उदाहरण उपलक्षणमात्र हैं। शक्ति-ग्रह के, और भी कारण होते हैं। जैसे—"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च। वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।" 'दाक्षि' पद का अर्थ 'दक्ष-पौत्र' है, यह बात व्याकरण से प्रतीत होती है। 'गौ के सदृश गवय होता है' यह वाक्य सुनकर, जंगल में गो-सदृश व्यक्ति के देखने पर, पूर्व वाक्य के स्मरण द्वारा 'यह गवय है' इत्याकारक ज्ञान उपमान से होता है। आप्त वाक्य, सान्निध्य और व्यवहार के उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। वाक्यशेष से शक्ति-ग्रह का उदाहरण—"यवमयश्चरुर्भवति" यहाँ 'यव'-शब्द से आर्य-जाति के व्यवहारानुसार जौ लेना चाहिए अथवा म्लेच्छ-जाति के व्यवहारानुसार मालकाँगनी लेनी चाहिए, इस संदेह में "वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्। मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः" इस पिछले वाक्य से जौ ही लिए जाते हैं; क्योंकि वसंत में वे ही फलते हैं। कहीं-कहीं 'विवृति' अर्थात् उस पद के अर्थ का विवरण करने से भी शक्ति-ज्ञान होता है।"

साहित्याचार्यजी का यह सब वाक्य-जाल 'विवृति' के इन अक्षरों का अनुवाद है—"एतदुपलक्षणम्। व्याकरणादयोऽपि शक्तिग्रहोपाया द्रष्टव्याः। तदुक्तम्—"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च। वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।" इति। दाक्ष्यादिशब्दानां दक्षाद्यपत्येषु शक्तिग्रहो व्याकरणात्। गोसदृशपिण्डदर्शनात् "गोसदृशो गवयपदवाच्यः" इत्यतिदेशवाक्यस्मरणे 'अयं गवयपद-वाच्यः' इत्युपमानात्। "विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः" इति कोषात्। आप्तवाक्यादित्रयमुदाहृतं स्वयमेव ग्रंथकृता। वाक्यशेषाच्छक्तिग्रहो यथा—'यवमयश्चरुर्भवति। वाराही चोपानत्। वैतसे कटे प्राजापत्यं धिनोति।' इत्यत्र यववराहवेतसशब्दाः किं म्लेच्छप्रयोगात् बङ्गुवायसजम्बूनां वाचकाः, उत आर्य्यप्रयोगात् दीर्घशूकसूकर-बञ्जुलानामिति विप्रतिपत्तौ "वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रसादनम्। मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः। "वराहं गावोऽनुधावन्ति।" "अप्सुजो वेतसः" इति वाक्यशेषरूपवेदविरोधिनी म्लेच्छप्रतीतिः स्मृतिरिव वेदविरुद्धा हेया। इत्यार्य्यप्रयोगादेव दीर्घशूकादौ शक्तिग्रह इति। 'शक्तिः' कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः इत्यादौ विवृतेः (शक्तिग्रहो भवतीति शेषः)।

(४)

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।"

इस लक्षणा-शक्ति की लक्षण-कारिका का अर्थ लिख कर इसमें आए हुए 'अन्य'-शब्द पर साहित्याचार्यजी फ़र्माते हैं—"इस कारिका में 'अन्य'-शब्द मुख्यार्थ से अन्य का बोधक नहीं है। ऐसा मानने से उपादान-लक्षणा में यह सामान्य लक्षण अव्याप्त होगा; क्योंकि वहाँ लक्ष्यार्थ के साथ मुख्यार्थ भी लगा रहता है। इस कारण यहाँ 'अन्य'-शब्द का अर्थ है "मुख्यार्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावच्छेदकातिरिक्तधर्मावच्छिन्नः'' । ''समोऽस्मि सर्वं सहे'' इस उदाहरण में मुख्यार्थतावच्छेदक है 'रामत्व' तदतिरिक्त धर्म है 'दुःखसहिष्णुत्व' तदवच्छिन्न में 'राम'-शब्द की लक्षणा है।''

यह सब 'विवृति' की इन पंक्तियों का अनुवाद है—''अन्यः मुख्यार्थतावच्छेदकातिरिक्तधर्मावच्छिन्नः । 'मुख्यार्थभिन्नः' इत्यर्थस्तु न मनोरमः । प्रयोजनाभावात् । स्वार्थस्याऽपि बोधिकायामुपादानलक्षणायां 'रामोऽस्मि सर्वं सहे' इति वक्ष्यमाणायां स्वार्थस्यैव दुःखसहिष्णुत्वेन बोधिकायां रामशब्दलक्षणायामव्याप्त्याधायकत्वाच्च ।''

कैसी सुंदर साहित्याचार्यजी की मौलिकता है !

(५)

''गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति'' इसके अनुसार जो लोग गुणवाचक शब्दों को गुणि-वाचक भी मानते हैं, उनके मत में 'श्वेतो धावति' इत्यादिक में लक्षणा नहीं है।''

(साहित्याचार्य)

''गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति'' इति विशिष्टशक्तिवादिनां मते लक्षणाऽत्र नास्त्येवेत्यवधेयम् ।''

(तर्कवागीश)

पाठक देखें, है पूरा अनुवाद ? इसी प्रकार सब टीका है। कहाँ तक उदाहरण दें ? और अधिक उदाहरण देने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इसलिये इस विषय में यहीं रुकते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि 'विमला'-टीका बिलकुल तर्कवागीशजी की 'विवृति' के सहारे है। पर आश्चर्य और दुःख की बात है कि साहित्याचार्यजी ने कहीं भी इस विषय में दो शब्द नहीं लिखे कि हमें 'विमला' के लिखने में तर्कवागीशजी की 'विवृति' से सहायता मिली है। कृतघ्नता का भी कुछ ठिकाना है ? उलटे बड़ी-बड़ी गालियाँ उन्हें दी गई हैं, और प्रतिद्वंद्विता प्रकट की गई है, जिसकी बानगी पीछे के कितने ही लेखों में दी जा चुकी है। समय की बलिहारी है !

'विमला' की भाषा

'विमला' की भाषा साधारणतः ठीक है ; पर कई जगह 'पंडिताऊ' लिंगव्यत्यय बहुत खटकता है। कहीं-कहीं वचन-विन्यास में भी गड़बड़ है। छापे की अशुद्धियाँ इनके अतिरिक्त हैं। इन बातों को छोड़, और सब तरह से भाषा अच्छी है।

छूट

'विमला' में छूटें भी बहुत जगह हैं। छठे परिच्छेद में तो प्रायः किसी भी उदाहरण का अर्थ नहीं दिया गया है ! यह कितनी भारी कमी है ! साहित्य-दर्पण का छठा परिच्छेद नाट्य-संबंधी है। इसके उदाहरणों का अर्थ न करने से हिंदीवालों की समझ में वह कैसे आ सकता है ? साहित्याचार्यजी भले ही समझ गए हों ! इस भारी कमी को देखते 'विमला'-टीका अधूरी कही जा सकती है।

'विमला' पर मेरी सम्मति

'विमला' साहित्य-दर्पण की एक मामूली टीका है। पर हिंदी में अन्य कोई अच्छी टीका अभी तक न बनने के कारण यही सब कुछ है। साधारण छात्र इससे कुछ लाभ उठा सकते हैं, और कुछ नुक़सान।

तर्कवागीशजी की 'विवृति'

साहित्य-दर्पण पर तर्कवागीश, श्रीरामचरण भट्टाचार्य की 'विवृति' बड़ी सुंदर है। अब ऐसी 'विवृति' लिखने वाले भारत में नहीं हैं। इस विवृति को बने कई सौ वर्ष हो गए हैं, अतएव लेखकों के प्रमाद से किंवा लेखन के कारण दो-एक जगह कुछ और-का-और ही लिख गया है। इसका संशोधन हो जाना चाहिए।

अंतिम निवेदन

मैंने यह लेख-माला पूर्ण सद्भाव से लिखी है। मेरा साहित्याचार्य श्रीशालग्रामजी शास्त्री से कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष परिचय अभी तक नहीं है। मैं उन्हें पूर्ण मैत्री-भाव से देखता हूँ। केवल साहित्यिक कर्तव्य समझकर यह लेख-माला लिखी है। इसका उत्तर दीजिए। आप दगे, तो सहर्ष उस पर विचार किया जाय। पर मुझे तो कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस लेख-माला का उत्तर मिलना प्रायः असंभव ही है।

किशोरीदास वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती पियरिया

(जँतसारी)

सुरुरु-सुरुरु पुरवैया हो सनकइ ,
महर-महर बनु होई हो राम ;
अगर-मगर करैं जोंधा बादर मैहाँ ,
जेहि तें अनंद मनु होई हो राम ।
हहर-हहर होइ पिपरा-बिरिछु, जेहि के
चारिउ वार बाँधा है चउतरा हो राम ;
तेहि तर थापे हैं बाबा महादेव ,
जग माँ सुजसु जिनका पसरा हो राम ।
बहे तीर बना एकु टिलवा सोहावन ,
जहाँ देखि परैं जन दोई हो राम ;
दूरि के सुने तें जनाइ परै न जौनि
दुनहूँ माँ खुचुमुचि होई हो राम ।
मनई कहइ—"सुनु बात पियरिया ! मोरी ,
निभरम देखु आँखि खोली हो राम ;
बहुते दिनन केरी साध पुरउ मोरी ,
हम सेनी मीठे-मीठे बोली हो राम ।
"तोरे हेत हिया जरे कुँभरा क आँवा-जैसे,
यहि केरी तपनि बुझाऊ हो राम ;
रंग-बिरंगी अपने अँचरा कि बेनियाँ कि
बाउ तें सुखु पहुँचाऊ हो राम ।
"बड़ी-बड़ी आँबे केरी फँकियन-ऐसी अपनी
अँखियन रोइ न फुलाऊ हो राम ;
मघवा के बड़-बड़ बुँदवन-ऐसे अपने
अँसुवन कजरा न बहाऊ हो राम ।
"सुरँग अँचरवा तोहरा गोरिया ! गलकि जाई ,
देहियाँ धुमिलि होइ जाई हो राम ;
भुँइवाँ तुहार इहु पूस औ माहें केरे—
केवँलु-अइस मुरझाई हो राम !
"हियाँ नाईं ननँद खबीसिनि री जनियाँ ! औ
हियाँ नाईं भुतिनी है ससुवा हो राम ;
हियाँ नाईं देवरा सैतनवाँ सताई तोका ,
सोचु कै बहाउ जनि अँसुवा हो राम ।
"हियाँ देवरनियाँ जेठनियाँ न गोरिया ! हैं ,
ठेनवन जो दुखु देईं हो राम ;
हियाँ नाईं मोहरे पर बूढ़े ससुर हैं जो
आवै-जाइ क सुखु हरि लेईं हो राम ।
"ईतें कहा मोरा मानु पियरिया ! तुइ
भुइयाँ न आँसू टपकाऊ हो राम ;
छोड़ि दे डेरु अपने स्वमियाँ औ जेठवा क ,
हियाँ नाईं आई ताती बाऊ हो राम ।
"टुटही झोपड़िया कि सुधि बिसराउ हियाँ
सब सुख-आगरि महलिया हो राम ;
मालु-खजाना मोरे भरा है असंखिन ,
तेहि केरी बनु मलिकिनियाँ हो राम ।
"जेतने सिपाही मोरे दल माँ हैं, तिन पर
सब पर हुकुम जनाऊ हो राम ।
डाकुन केरे ई सिरदार मर्दन कैहाँ ,
आपन सेवकु बनाऊ हो राम ।"
इहु सुनि मनु डिढ़ कैकै पियरिया पोंछि
अँखियन केरे आँसू-बुँदवा हो राम ;
बोली कि—"तुम मोरे नौरे के भइया हौ,
जनि बेसहौ अधरमवाँ हो राम ।
"राम राजा केरी लागी बजरिया ईमाँ
नेकी-बदी सउदा बिकाई हो राम ;
जौन बजरहा हैं चतुर-सुजान, उइ तौ
देखि-भालि बेसहैं निकाई हो राम ।
"ई दुनियाँ केरे देउता हैं बाँभन ,
जेहिका बँधनु जेहितें ज्वारैं हो राम ;
अस जन नरकन कलपन कलपईं ,
बचन जो उन केरे त्वारैं हो राम ।
"ई जग माँ मैया ! वैसे जियबु, जैसे—
ख्यात मँ ककरी औ खिरवा हो राम ;
जस भुजवा केरे भारे क नजवा, औ
नदिया-कगारे जैसे बिरवा हो राम ।
"बँदरा के हाथे जैसे फलु मोरे भइया ! औ
जस साँपे-मुँह माँ मेंजुकिया हो राम ,
वैसे जियन का न तनकौ भरवासा, ईते
जनि बाँधौ पाप की गठरिया हो राम ।
"हम तौ बाँभन केरी ज्वैया, समुझि ग्याखौ,
तुम पसिया केरे पुतवा हो राम ;
होमवाँ कि अगिया मँ मुतवा के उलचैक
हठुकै बनउ जनि भुतवा हो राम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्वमियाँ हमार गए दखिन चकरिया क,
घर माँ कसाइनि जेठनियाँ हो राम ;
हम ते कुटावै औरु हम ते पिसावै वह,
दिनु-भरि भरावै हमते पनियाँ हो राम ।
"ठेनवन भूँखे-दूखे जिउ झरसावै, ईते
ऊबि कै भागिउँ नइहरवै हो राम ;
भूलि डगरिया जँगल-बिच परि गइउँ,
आइ गइउँ टिलवा-उपरवै हो राम ।
"मुलउ मैं पति कै न पति उतरैहौं औरु
ददुवा क नाउँ न धरैहौं हो राम ;
छोंड़ि धरमवाँ क हटिया-बजरियन—
आपनि न हँसिया करैहौं हो राम ।
"सुखु औरु दुखु जैसे छहियाँ औ घमवाँ है
एकु आवै तौ एकु जाई हो राम ;
चारि दिनन केरी ई जिंदगनियाँ मँ,
कौनु बनइ हरजाई हो राम ।"

मर्दन—

"बतियन मैहाँ जनि हमका भोराउ गोरी !
पोथियन-ज्ञानु सुनाई हो राम ;
बघवा जो धरमु बिचारन बइठै, तौ
याकै दिना मँ मरि जाई हो राम ।
"सावन-भादउँ केरी उमही हो नदिया,
गनै न बाँभन कै बखरिया हो राम ।
आँधी गनइ नाईं बिरवा देउहरा क,
भेंड़हा न राजा कै बकरिया हो राम ।
"अब ही तौ आह भरि मौज उड़ाइ लेई,
को जानै मरे की खबरिया हो राम ;
सरग के अँबिरित भोजन-भरोसे पर,
को छाँड़ै आगे परसी थरिया हो राम ।
"टपकै पनियाँ जैसे फुटहे घइलवा क,
तैसे यहि भिनसै जुवनियाँ हो राम ;
ई ते बुढ़ापा जौ लै आवै न तब हेलौं,
मौजै उड़ाइ ले खुब जनियाँ ! हो राम ।
"चारि दिनन केरी पहुनी जुवानी यह,
आइ क फिरि ते न ऐहैं हो राम ;
अब हीं जो कहा नाईं मनिहै तौ फिरि तुइ,
हाँथ मलि-मलि पछितैहै हो राम ।

"अब ही तौ नीके समुझावौं मैं तोहि कैहाँ,
कैकै खुसामति पियरिया ! हो राम ;
अतनेउ पर मोरी बात न मनिहै, तौ
की तुइ, कि यहि तरवरिया हो राम ।"

पियरिया—

"ई दुनियाँ मैहाँ जब लौं धरमु अहै,
जब लौं अहइ चउबहियाँ हो राम ;
तब लौं धरतिया क फोरि को निकरा, जो
छुवइ सतिया केरी छहियाँ हो राम ।"
इहु सुनि लाली-लाली आँखी काढ़ि मर्दनु,
खर्र दे खैंचै तरवरिया हो राम ;
दाँत कररावति—बाँठ फररावति,
दौरै पियरिया कि वरिया हो राम ।
झपटि पियरिया जो पहुँचै पिपर तर,
महादेव क द्याखै तरसुलवा हो राम ;
हुमकि उखारि जो चलावै मर्दन पर,
छेदि डारै पापी का करेजवा हो राम ।
गिरइ ऊ राकसु चउतरा के निचवैं औ
काली-असि कूदइ पियरिया हो राम ;
छेदे तरसूलु ब्यार-ब्यार हललावै वह,
रकतु बँबकै चारिउ वरिया हो राम ।
हाँथ-ग्वाड़ समिटैं औ काँपै मर्दनवा के,
अँखियन तेंनी बहै पनियाँ हो राम ;
हुचकी आवति साथै मुँहवाँ पसरि गवा,
लकरी अइसि ह्वै गै देहियाँ हो राम ।
इहे बीच उतरइँ जोंधा बादर तेंनी,
निकसैं भगउती उइ गौरा हो राम ;
स्याबसि ! स्याबसि !! करैं दुनउँ मिलि,
नाचैं महादेउ बौरा हो राम ।
बन के अउर देई-देउता जो बटुरइँ,
गूँथैं फुलन केरे हरवा हो राम ;
हरषि-हरषि सब चारिउ वारन तेंनी
डारैं सतिया केरे गरवा हो राम ।

ब्रजेश त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

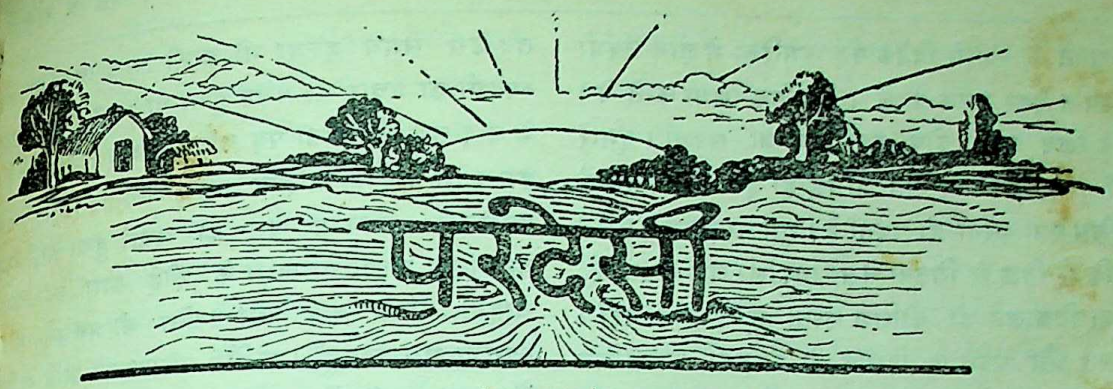

(उपन्यास)

चौदहवाँ परिच्छेद

एक दिन ललित अपने बाल्य-सहचर भगवतीप्रसाद से मिलने गया। उसके घर के पास पहुँच कर बाहर से पुकारने लगा—"भगौती भैया, कहाँ हो ?"

भगवतीप्रसाद "कौन है ?" कह कर हड़बड़ाता हुआ बाहर आया। ललित को देखकर उसने आश्चर्य और हर्ष से उल्लसित होकर कहा—"अरे, तुम आए हो! आओ भाई, आओ !" यह कहकर वह ललित के गले से लिपट गया। ख़ूब ज़ोर से अपनी छाती से उसकी छाती दबाकर जब वह शांत हुआ, तब उसने ललित को छोड़ा और कहा—"मैंने सुन लिया था कि तुम लखनऊ से वापस चले आए हो। कल तुम्हारे यहाँ जाने का इरादा कर रहा था। तुम ख़ुद ही चले आए। अच्छा ही किया। कहो, कुशल से तो हो ? चलो, भीतर चलो। आज तुम्हारे बड़े अपूर्व दर्शन हुए। कुछ दिन तो अब यहाँ रहोगे न ?"

उसकी अस्थिरता देखकर ललित मुस्किराता हुआ बोला—"हाँ, कुछ दिन अभी यहीं हूँ।"

भीतर जाकर ललित उसकी चारपाई पर बैठ गया। चारपाई के ऊपर खद्दर की एक सुंदर सफ़ेद चादर बिछी हुई थी। भगवती बड़ा कट्टर स्वदेशी था। वह अपने हाथ से चरखे में सूत काता करता था, और उसकी स्त्री उस सूत से कपड़े बुना करती थी। यह चादर भी उसकी स्त्री की बुनी हुई थी। जिस समय ललित ने उसे पुकारा था, उस समय भी वह शायद चरख़ा चला रहा था। चरख़ा वहाँ पर रक्खा हुआ था। वह ग्रामीण पाठशाला में अध्यापक था, और २०) माहवार पाता था। स्कूल से अवसर पाने पर चरख़े कातने में लग जाता था। उसने एक कपड़े सीने की मशीन भी ख़रीद ली थी। उसकी अम्मा उससे कपड़े सीती थीं, और वह उन कपड़ों को गाँववालों में बेचता था। चादरें और बुने हुए कपड़ों के टुकड़े वह पहले भी बेचता था। पर मशीन की बात ललित को मालूम नहीं थी। इसलिये नीचे फ़र्श पर मशीन पड़ी देखकर उसने पूछा—"यह कब ख़रीदी भगौती भैया ?"

भगवती ने उत्तर दिया—हाल ही में ख़रीदी है। सेकंडहैंड है, पर काम अच्छा देती है।

ललित ने फिर पूछा—खद्दर की और सिले हुए कपड़ों की बिक्री कैसी हो रही है ?

भगवती बोला—ख़ासी अच्छी हो रही है। इस गाँव में ईश्वर की और तुम लोगों की कृपा से स्वदेशी का अच्छा प्रचार हो रहा है।

ललित ने उसकी चुटकियाँ लेते हुए कहा—दाम ज़रा सस्ते करो भगौती भैया, और देश को ख़ातिर कुछ घाटा भी सहा करो, तब स्वदेशी का प्रचार और भी बढ़ेगा। ब्राह्मण होकर बनियाशाही के जाल में मत फँसो !

उसकी इस बात से सरल-प्रकृति भगवती को दुःख हुआ। वह बोला—माफ़ करो भाई, ऐसी देशभक्ति मुझे नहीं चाहिए। मैं ग़रीब आदमी हूँ, बड़ी मुशकिल से अपना गुज़ारा कर रहा हूँ। घाटा सहकर कारबार चलाने से तो मेरी बधिया ही बैठ जायगी। दुनिया में आकर लेन-देन के चक्र में सभी को पड़ना पड़ता है। कितना ही बड़ा परोपकारी, ज्ञानी, साधु क्यों न हो, मोक्ष-पद का प्रार्थी होने पर भी उसे लेन-देन का हिसाब रखना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सुनते हैं, स्वामी विवेकानंद अमेरिका में ज्ञान-संबंधी व्याख्यान देकर उनके बदले पारिश्रमिक लिया करते थे। इसके लिये उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। हमारे यहाँ गुरु-दक्षिणा की बात प्रसिद्ध ही है। 'शरीर-यात्रा' के लिये ऐसा करना ही पड़ता है। तुम क्या यह समझते हो कि मैं तिल से जितना तेल निकाला जा सकता है, उतना निकालने की कोशिश करता हूँ? कभी नहीं। ज़रूरत और पड़ते के हिसाब से जितना न्यायोचित होता है, उतना मुझे लेना ही पड़ता है। इसके अलावा कितने ही वस्त्रहीन किसानों को मैं यथाशक्ति बिना पैसों के वस्त्र दिया करता हूँ, और स्कूल के दो-चार लड़कों को कातने और बुनने का काम सिखा रहा हूँ। थोड़े दिनों में ये लड़के काम सीखकर अपना कारबार चलाने लगेंगे, जिससे मेरा कारबार बिगड़ जायगा—यह जान कर भी मैं चाहता हूँ कि लड़के अपने पैरों आप खड़े होना सीखें और स्वदेशी का प्रचार बढ़े। इससे अधिक मैं कर क्या सकता हूँ?

ललित ने देखा कि इस निष्कपट व्यक्ति पर उसकी छोटी-सी बात का बड़ा बुरा असर पड़ा है। बात टालकर उसने पूछा—अच्छा भैया, तुम्हारा क्या यह ख़याल है कि चरख़े के प्रचार से भारत को स्वराज्य मिल जायगा, और उसकी आर्थिक दशा सुधर जायगी?

भगवती ने कहा—चरख़ा और खद्दर से स्वराज्य मिल जायगा—जो आदमी यह बात कहता है, वह अपने-आपको ठगता है, और देश को निकम्मा और आलसी बनाना चाहता है। अगर प्रत्येक कुटुंब में चरख़े का उद्यम हो, तो भारत का बहुत कुछ धन सुरक्षित रह सकता है, इसमें संदेह नहीं। पर ऐसा होना इस युग में असंभव है; कारण चाहे कुछ भी हो। इसके सिवा अगर ऐसा हो भी जाय, तो स्वराज्य कैसे मिलेगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। और, अगर केवल इसी कारण से स्वराज्य मिल भी गया, तो उससे अनिष्ट ही होगा। हमारे देश की प्रवृत्ति ऐसी नीच हो गई है कि बिना लोभ की प्रेरणा के हम कोई काम ही नहीं कर पाते। असहयोग-आंदोलन के अवसर पर जब हमारे देश के पशुओं को अधिक पशु बनाने के लिये यह लोभ दिखलाया गया था कि एक साल के अंदर स्वराज्य मिल जायगा, खूब हल्ला मचाओ, स्कूल छोड़ो और खद्दर पहनो, तब उस समय हल्ला भी काफ़ी मच गया था और स्वदेशी का प्रचार भी यथेष्ट हुआ था। पर एक ही साल के बाद सब जोश ठंढा पड़ गया। इसका सबब क्या है? हम लोग कर्म की महिमा नहीं जानते। जिस देश में पहलेपहल निष्काम धर्म का प्रचार हुआ था, आज वही बिना आशा या लोभ के कोई काम नहीं करना चाहता। मैं तो कर्म और उद्योग की प्रबलता को ही स्वराज्य समझता हूँ। पार्थिव स्वराज्य की प्राप्ति के लिये मैं व्याकुल नहीं हूँ। जब तक हम लोगों के हृदयों में यह धारणा बद्धमूल नहीं होगी कि अँगरेज़ों के हमारे अधिपति होने या न होने से हमें कोई सरोकार नहीं है—अपनी व्यक्तिगत संस्कृति के लिये कर्म के मार्ग में आगे को बढ़े चले जाने में ही हमारा श्रेय है—तब तक मैं इस देश की किसी प्रकार की भी उन्नति पर विश्वास नहीं करता। मैं चरख़ा चलाता हूँ—इस ख़याल से नहीं कि मैं देश की उन्नति कर रहा हूँ, पर इस ख़याल से कि इससे मेरी आत्मोन्नति में सहायता मिलती है। इसमें स्वावलंबन, जीवन की सरलता और आलस्यहीनता का आनंद मिलता है।

चरख़े और खद्दर के संबंध में ललित ने अनेक राजनीतिज्ञों की थोथी दलीलें सुनी थीं। उनके पाखंड से वह उकता गया था। पर इस सच्चे, सहृदय स्वदेशी व्यक्ति की सहज, स्वाभाविक बातें सुनकर उसके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गई। वह यद्यपि स्वयं स्वदेशी कपड़े पहनता था, तो भी केवल खद्दर की ओर ही उसका विशेष झुकाव नहीं था—स्वदेशी मिलों के कपड़े ही वह अधिकतर पहनता था। पर, फिर भी, वह खद्दर के प्रति विरक्त नहीं था।

उसने कहा—"तुम्हारी बात से बिलकुल सहमत हूँ भैया। पर इस समय भूख लगी है, कुछ खिलाओगे नहीं?"

भगवती हड़बड़ाता हुआ बोला—"क्यों नहीं! क्या खाओगे? आलू की टिकिया बनवाऊँ, या पकौड़ियाँ?"

उसका प्रश्न सुनकर ललित मुस्किराने लगा। आलू की टिकियों से उसे विशेष प्रेम था, भगवती को यह बात मालूम थी। उसका स्वभाव अन्यमनस्क होने पर भी उसे इन छोटी-छोटी बातों का ख़याल रहता ही है, यह जानकर उसे हँसी आ रही थी। उसने कहा—"तुम तो जानते ही हो कि मुझे कौन-सी चीज़ ज़्यादा पसंद है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवती भीतर चला गया। ललित सोचने लगा कि बाहर से घोंघा दिखलाई देने पर भी भीतर से उसका जीवन रहस्यमय है, विशेष शिक्षित न होने पर भी उसके विचार सरल, सहृदय और स्वस्थ हैं। उसके हृदय की सरलता मूर्खताजन्य नहीं है। वह प्रकृति-माता के मूल-रस से अभिषिक्त है। न उसे अपने स्वदेशीपन का गर्व है, न राजनीतिक जीवन के प्रति इच्छा। न वह धन के लिये व्याकुल है, और न तुच्छ 'महात्त्वाकांक्षा' के लिये पागल ही है। मज़दूरों और किसानों की सेवा का पाखंड वह नहीं दिखलाना चाहता; पर उन्हें हृदय से प्यार करता है, और अवसर पड़ने पर सभी बातों में यथाशक्ति उनकी सहायता करता है। उसने मन में विचार किया कि उसकी सहृदयता का कारण क्या है? उत्तर मिला कि वह अशिक्षित होने पर भी मनुष्य है, और देश के अधिकांश नेता लोग शिक्षित होने पर भी कोरे राजनीतिज्ञ हैं।

खा-पीकर दोनों बाहर निकल पड़े। अरहर, मटर, सरसों और गेहूँ के खेतों को पार करते हुए रेलवे-लाइन के उस पार ऐसी जगह में आ पड़े, जहाँ रामबाँस के पेड़ों की क़तार-पर-क़तार लगी हुई थी। रामबाँस के तीखे, नुकीले, काँटेदार पत्तों में न-मालूम क्या आकर्षण था, जो उसे उसके बचपन के चिंताहीन, निष्कलुष आनंद-मय दिनों की याद दिलाने लगा। चलते-चलते वे दोनों रास्ते में हरे-हरे बेर खाते हुए बहुत दूर ईख के खेतों के पास आ पड़े। ललित ईख बहुत पसंद करता था। उसका जी तोड़कर खाने को करने लगा।

भगवती ने कहा—"चलो, पास ही बलदेवा की झोपड़ी है, वह ईख का रस पिलावेगा।"

यह प्रस्ताव और भी उत्तम था। दोनों दाहनी तरफ़ को मुड़े। कुछ दूर चलकर भगवती ने पुकारा—"बल-देवा! ओ बलदेवा!"

श्रम-भार से अवसन्न एक अधेड़ किसान बाहर आया। भगवती को देखकर वह सलज्ज मुस्किराता हुआ बोला—"कहिए बाबूजी, क्या हुकुम है?" भगवती इससे बहुत प्रेम रखता था, और अक्सर ज़रूरत पड़ने पर इसे और इसके कुटुंबवालों को बिना दाम के कपड़े-लत्ते दिया करता था।

भगवती ने कहा—"यह बाबू चलते-चलते थक गए हैं, इन्हें ज़रा ईख का रस पिलाओ।"

वह हड़बड़ाता हुआ भीतर गया, और बाबू लोगों के बैठने के लिये एक खटिया ले आया। खटिया के ऊपर उसने ताड़ के पत्तों की एक चटाई बिछा दी। फिर अपने लड़के को पुकारकर उसने कहा—"रामधनवा, लपककर ईख तोड़ तो ला।" रामधनवा दौड़ता हुआ चला। उसकी स्त्री रधिया, सात साल की लड़की सुकिया और पाँच साल का लड़का मातादीन हल्ला सुनकर तमाशा देखने के लिये बाहर चले आए थे। वे तीनों एकटक बाबू लोगों—विशेष करके ललित—को देख रहे थे। ललित उन्हें एक अजीब जीव जान पड़ता था। ललित ने दोनों भाई-बहन को अपने पास बुलाया और पकड़कर दोनों से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?" दोनों ने अपना नाम बतलाया। फिर उसने पूछा—"हमारा नाम क्या है? दोनों ने सलज्ज मुस्किराते हुए कहा—"हम का जानी?" दोनों फटे चीथड़े पहने थे, और वे भी मैले और गंदे। तमाम बदन से बदबू आ रही थी। ललित बड़ी मुशकिल से अपने को सँभाल रहा था। वह अपने मन को धिक्कारने लगा। वह सोचने लगा कि 'बाबू लोगों' का संस्कार उसकी नस-नस में व्याप्त है। उसे पूरा विश्वास था कि भगवती के मन में कभी यह प्रश्न नहीं उठेगा कि उनकी गंदगी के कारण उन्हें प्यार करना चाहिए या नहीं; क्योंकि उसके हृदय और मस्तिष्क में कोई भिन्नता, कोई व्यवधान नहीं है। पर वह स्वयं उन्हें प्यार करना चाहता है, लेकिन सच्चे दिल से नहीं कर सकता। तब दूसरों की भावनाओं को विचार करने का उसे क्या अधिकार है?

कुछ देर तक स्थिर रहकर उसने फिर विचार किया—गंदगी का होना क्या अच्छा है? मलिनता से घृणा करना तो मनुष्यमात्र का कर्तव्य है। तब इसमें मेरा क्या दोष है? पर इन दीन-हीन व्यक्तियों का भी तो कोई दोष नहीं है! बेचारे करें क्या? पाश्चात्य देश-वासियों की कल्पनातीत घोर दरिद्रता अपना विकराल रूप लेकर, इस दलित देश के शापभ्रष्ट कृषकों की आत्माओं को जकड़कर पैशाचिक नृत्य करा रही है, और उन्हें अपने अट्टहास्य से भीत करके, उनका मूल-जीवन ही शोषित करने में लगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचते-सोचते क्षोभ और दुःख के कारण उसके भीतर एक युग-युगांत का करुण-क्रंदन उमड़ पड़ा। उसकी आत्मा रो-रोकर कहने लगी—हाय, कब इस धरातल से मनुष्य का स्वार्थांध हिंसाभाव विलुप्त होगा! हज़ारों वर्षों के अनुभव से भी मानव-जाति की पाशविक प्रकृति का अंत नहीं हुआ, बल्कि वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। सबल जाति दुर्बल जाति के लोगों को बरसात के घृणित कीटों से भी तुच्छ समझकर उन्हें जूतियों से मसल-मसलकर भी तृप्त नहीं होती; उनका रक्त सोख-सोखकर, उनका मांस चीलों को खिलाकर, बोटियाँ गीदड़ों को उपहार देकर, हड्डियाँ कुत्तों को चिचोड़ने के लिये देकर भी चैन नहीं पाती। इधर कहा यह जाता है कि सभ्यता चरमावस्था को पहुँच गई है। हा भगवन्! क्या तुम्हारी इस विपुल सृष्टि में प्रलयांतक रुद्रशक्ति की ही प्रधानता है? क्या बलवान् का वज्र दुर्बल पर पड़कर उसे अस्तित्वहीन बनाने के लिये ही यह सब माया रची गई है? क्या इस पृथ्वी में अनंत काल तक जातियों में आत्मरक्षा के लिये पारस्परिक विनाश-साधन का चक्र चलता रहेगा? डार्विन का Survival of the fittest ही क्या सृष्टि का मूल-नियम है? स्नेह-प्रेम, दया-करुणा क्या कवियों की झूठी कल्पनाएँ हैं? हाय, क्या इस क्षुद्रातिक्षुद्र पृथ्वी की संकीर्ण परिधि में, सब मनुष्यों का समान भाव से बराबरी के बर्ताव में वैर-रहित होकर उच्च जीवन व्यतीत करने का स्वप्न सफल होने की बात इतनी असंभव है? क्या वर्तमान युग का कठोर नियम ही चिरकाल तक वज्रलेख के समान सुदृढ़ और अविचल रहेगा?

रामधनवा ईख ले आया था, और रस बनकर तैयार हो गया था। रस के भरे हुए दो सकोरे लाकर बलदेवा ने बाबू लोगों को दिए। पी चुकने पर वे लोग वहाँ से उठकर चल दिए। चलते-चलते बातें करते-करते स्टेशन तक जा पहुँचे। ललित भगवती की बातों का उत्तर तो देता जाता था, पर वह अन्यमनस्क हो रहा था।

गाड़ी के आने का समय था। सिगनल 'डाउन' हो चुका था। दो-चार यात्री बड़ी उत्सुकता से उसकी बाट देख रहे थे। थोड़ी देर में भक-भक करती हुई, सीटी की तेज़ आवाज़ से अगल-बगल के दोनों प्रांतों को विकंपित करती हुई गाड़ी आ पहुँची। जो लोग इंतिज़ार में थे, वे स्थान अधिकृत करने के लिये जा झपटे। डब्बे के भीतर बैठे हुए यात्री नवागतों को ढकेलकर भीतर घुसने से मना करने लगे। एक आदमी एक बुढ़िया का हाथ पकड़कर भीतर को बलपूर्वक घुसने लगा। भीतर से किसी ने इतने ज़ोर का धक्का दिया कि बुढ़िया धड़ाम से चित होकर प्लेटफार्म पर गिर पड़ी और "हाय दय्यारे! मैं मरी रे!" कहकर चिल्लाती हुई ज़ोर से रोने लगी। गार्ड महाशय ने एक बार उस ओर उदासीनता से ताका, और 'डैम इट' कहकर सीटी बजाई। इससे भी अधिक हृदय-विदारक घटनाओं को नित्य देखने का उन्हें अभ्यास था। इस कारण इससे वह बिलकुल विचलित न हुए। पर ललित का सारा शरीर दुःख, शोक, घृणा और क्रोध से काँपने लगा। देशवासियों की निष्ठुर नीचता और स्वजातीय द्वेष देखकर एकदेशीयता की ग्लानि से उसकी आत्मा जर्जरित हो उठी। गाड़ी निर्विकार-भाव से चलने लगी। यात्री लोग हृदयहीन कौतूहल के वश होकर खिड़कियों से झाँककर तमाशा देखते हुए चले। ललित को ऐसा मालूम होने लगा, जैसे जीवन की गाड़ी में चढ़कर मनुष्य-मात्र मृत्युलोक की यात्रा को चल रहा है; पर इस बुढ़िया-जैसे ऐसे व्यक्ति भी इस मनुष्य-समाज में वर्तमान हैं, जिन्हें यम भी नहीं पूछता।

वह नीचे बैठकर बुढ़िया के सिर पर, पीठ और पाँवों पर हाथ फेरने लगा, और दिलासा देते हुए कहने लगा—"बूढ़ी अम्मा, कुछ चिंता की बात नहीं है। जान बच गई है, यही ग़नीमत समझो। गाड़ी के नीचे पड़ जातीं, तो हड्डियों का भी पता न चलता।"

बुढ़िया ने कराहते हुए कहा—"तुम जीते रहो बेटा, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खें। पर मैं अब बचना नहीं चाहती। गाड़ी के नीचे दबकर मर जाती, तो मुक्ति पा जाती। दुनिया के झंझट अब सही नहीं जाती।"

पूछने पर मालूम हुआ कि वह उन्हीं के गाँव में रहती है। ललित ने फिर प्रश्न किया—"कहाँ को जा रही थीं?"

बुढ़िया ने कहा—"बेटा, इस जन्म में बहुत पाप किए हैं, इसलिये अंत समय एक बार काशी जाकर गंगा-स्नान करने की इच्छा थी। पर भाग में बदा नहीं है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आदमी उसके साथ था, वह उसका लड़का जान पड़ा। बुढ़िया का कराहना जब कुछ कम हुआ, तो वह बोला—"भैया, अब उठ खड़ी हो, कब तक पड़ी रहोगी! गाँव में पहुँचने में देर हो जायगी।"

ललित ने कहा—"यह पैदल नहीं चल सकेंगी। ज़रा ठहर जाओ, शायद कोई गाड़ी मिल जाय। मैं ढूँढता हूँ।"

यह कहकर वह भगवती को साथ लेकर गाड़ी की खोज में गया। बहुत खोजने के बाद एक भैंसा-गाड़ी मिल गई। गाड़ीवान को उसने पहले ही अपनी जेब से पैसे निकालकर दे दिए थे। बुढ़िया को उसके लड़के के साथ उसमें बिठालकर दोनों पैदल वापस चल दिए।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

भगवती को उसके घर पहुँचाकर जब ललित अपने घर की तरफ़ चला, तब सूर्य डूब चुका था। सिर के ऊपर आकाश में तीतर के पंखों के समान फैले हुए बादल रक्तिमा से रंजित होकर अनुपम छटा दिखला रहे थे। समस्त प्रकृति स्तब्ध थी। झिल्लियों की झनकार इस स्तब्धता को और भी अधिक विह्वल तथा विश्रांत कर रही थी। दूर कहीं से बाँसुरी का करुण-राग बजता हुआ सुनाई दिया। उसे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे इस अनंतलीलामयी विपुल प्रकृति का वह कभी एकमात्र अधिकारी था, पर न-जाने किस देवता के अभिशाप से एक विजातीय लोक में आकर, परदेसी की तरह, जीवन व्यतीत कर रहा है! आनंदमय प्रेम की मधुर लज्जा से रक्तिमवर्ण इस मेघलोक के पार उसकी जन्मभूमि थी, पर इस संसार में जन्म लेकर वह सुख-दुःख, स्वार्थ-परमार्थ, राजनीति-समाजनीति, स्वतंत्रता-परतंत्रता, युद्ध-संधि के द्वंद्वों से जर्जरित हो रहा है! हाय, उसका वास्तविक जगत् परदे की आड़ में छिपा हुआ असत्य-सा प्रतीत हो रहा है, और यह जल-बुद्बुद की तरह भ्रमात्मक मिथ्या-चक्र, कठिन सत्य की तरह, उसकी आँखों के सामने आसमान है। उसे जी भरकर रोने की इच्छा हो रही थी; पर जीवन-भर उसके भाग्य में रोना ही तो बदा है—जब तक जीता रहेगा, तब तक रोता रहेगा—यह सोचकर उसे धैर्य हुआ।

घर पहुँचने पर सुभद्रा ने उसे एक पत्र दिया। यह पत्र आज की डाक से आया था। लिफ़ाफ़े में हस्ताक्षर देखकर वह समझ गया कि छैलबिहारी ने उसके उस पत्र का उत्तर भेजा है, जो उसने लखनऊ से वापस आने पर उन्हें भेजा था।

उसे खोलकर वह पढ़ने लगा। छैलबिहारी ने लिखा था—"प्यारे ललित, तुम्हारा पत्र पढ़कर आश्चर्य और दुःख हुआ। तुम्हारा मेरे ऊपर इतना अविश्वास है! तुम्हारे एक-एक शब्द से संकोच और संशय प्रकट हो रहा है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम कितने बड़े Egoist हो, पर फिर भी मैं कभी स्वप्न में नहीं समझता था कि तुम अपने दिल की बातें मेरे सामने खोलने में इतना असमंजस में पड़ोगे। मुझे मालूम नहीं था कि तुम इस बीच लखनऊ भी हो आए हो। कुछ भी हो, इतने दिनों तक यह बात मुझसे छिपाकर तुमने मेरे प्रति कितना बड़ा अन्याय किया, यह तुम नहीं समझ सकते। मैं हर बात में, हर वक़्त, यथाशक्ति तुम्हें सहायता देने के लिये तैयार हूँ। मैं तुम्हें किस दृष्टि से देखता हूँ, यह बात तुम जानकर भी नहीं जानना चाहते। कितनी ही बार मेरे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हुई है कि तुम और हम एक साथ अपनी इस 'वैराग्य-कुटी' में रहकर शांत, स्निग्ध और प्रेमपूर्ण जीवन बितावें। संसार के समस्त तुच्छ कोलाहल से मुक्ति पाकर प्रकृति की स्नेहमयी आड़ में दो छोटे बच्चों की तरह एक दूसरे को पृथ्वी की पवित्र धूल से लिप्त करते हुए, हँस-हँसकर भाई भाई की तरह खेलें, और यहीं शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा करें। पर तुम्हारी अम्मा का ख़याल मुझे बार-बार हो आता है। इसलिये मैं कुछ नहीं कह सकता, और मेरे मन की बात मन ही में रह जाती है। माधवी के विवाह के संबंध में मैं तुम्हारे साथ मिलकर बातें करना चाहता हूँ। यहाँ उसके योग्य एक वर भी मेरी नज़र में है। हो सके, तो तुम यथाशीघ्र चले आना। इस समय अधिक क्या लिखूँ। तुम्हारे आने पर सब बातें होंगी। तुम्हारा—छैलबिहारी।"

पत्र पढ़कर ललित की आँखों से हर्ष के आँसू उमड़ने लगे। उसने अम्मा के सामने बल-पूर्वक उन्हें रोका। वह सोचने लगा, बात कितनी सत्य है! मेरे अंतस्तल में बिहारी भैया पर पूरा विश्वास होने पर भी मैंने उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविश्वास किया ! बिहारी भैया लिखते हैं कि मैं Egoist हूँ । यह बात भी कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ ! क्या करूँ, भगवान् ने मेरी प्रकृति ही अजीब बनाई है । भगवान् सबका भला करें । पर मैं अविश्वासी, कपटी और शकी आदमी किसी अँधेरी खोह में छिपकर किसी तरह संसार से अलग रह सकता, तो अपने को भाग्यशाली समझता । वह मन-ही-मन कहने लगा—बिहारी भैया, मुझे माफ़ करो ! तुम भाग्यशाली देवता हो, मैं एक अधम भिखारी हूँ । मैं तुम्हारे अनुग्रह के योग्य कदापि नहीं हूँ ; पर तुम्हारा प्रेम सूर्य की तरह सब पर समान भाव से तपता है, इसलिये संकोच प्रकट करके मैंने अन्याय किया, इसमें संदेह नहीं ।

सुभद्रा ने पूछा—"किसकी चिट्ठी है ललू ?"

ललित ने कहा—"बिहारी भैया की । मेरठ में जब मैं पढ़ता था, तब से इनसे मेरी पहचान है । मुझे बहुत प्यार करते हैं । कोई दूसरी गति न देखकर माधवी के व्याह के बाबत इन्हें लिखा था । लिखते हैं, मेरे पास आकर मिलो ।"

अप्रत्याशित आशा से उत्तेजित होकर सुभद्रा ने कहा—"तब तो ज़रूर जाकर मिलना चाहिए बबुआ ! भगवान् ने जब बड़ी कठिनाई के बाद कुछ भरोसा दिया है, तो चूकना न चाहिए । कल ही जाना ठीक होगा ।"

ललित मुस्किराकर बोला—"इतनी उतावली की क्या बात है अम्मा ? बिहारी भैया ने जब दिलासा दिया है, तब भगवान् की कृपा से निश्चय ही समझो ।"

सुभद्रा बोली—"क्या जानो बेटा, आदमी का मन कब बदल जाय, इसका ठिकाना थोड़े ही है ! इसलिये समय पर न चूकना चाहिए ।"

ललित ने कहा—"अम्मा, तुम उन्हें नहीं जानती हो । लेकिन वह तुम्हें विना देखे ही अपनी ही अम्मा समझे बैठे हैं । इतने प्रेमी हैं ! और तुम्हारी मति लोभ के कारण ऐसी मारी गई है कि उनकी बात सदा एक-सी रहेगी, इसका तुम्हें भरोसा नहीं है ।"

लड़के के समझाने पर सुभद्रा कुछ शांत हुई ।

रात को खाना खाकर वह सोने के पहले चारपाई पर लेटे-लेटे एक पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ने लगा । उसे इस बात का अभ्यास-सा हो गया था; विना कोई पुस्तक पढ़े उसे नींद न आती थी । पुस्तक किसी पाश्चात्य दार्शनिक की थी, और प्रेम के संबंध में लिखी गई थी । वह उसके पास बहुत दिनों से पड़ी थी, और उसे वह एक बार पढ़ भी चुका था । पर आज, न-मालूम क्यों, फिर एक बार पढ़ने की इच्छा हुई । उसमें एक स्थान पर लिखा था—"प्रेम धन्य है ! प्रेम का भाव स्वर्गीय है । प्रेमी पुरुष ही वास्तव में सुखी है । जिस व्यक्ति का प्रेम सफल होता है, वह अनंत आनंद में डूबा रहता है ; और जो असफल प्रेमिक होता है, वह अपनी असफलता के कारण ही अपने को देवता समझता है । प्रेम की शक्ति असीम और अपरिमित है ।" पढ़ते-पढ़ते ललित सोचने लगा कि हमारे देश में क्या इस "स्वर्गीय प्रेम" के आनंदमय भाव का अनुभव होना कभी संभव हो सकता है ? जिस देश में साधारण कौतूहल के वश होकर किसी स्त्री की ओर दृष्टिपात करना ही घोर पाप समझा जाता है, वहाँ क्या यह स्वर्गीय प्रेम नारकीय भाव से भरा नहीं है ? और तो क्या, प्रेम की चर्चा ही हमारे यहाँ कलुषित समझी जाती है ! विधाता का कैसा निष्ठुर परिहास है ! हमारे देश के असंख्य स्त्री-पुरुष भगवान् की दी हुई अपनी इस स्वाभाविक वृत्ति को समाज के भय से बलपूर्वक दबाने की चेष्टा करते और नीरस, निरानंदमय, पशुतुल्य जीवन बिताकर संसार-यात्रा समाप्त करते हैं । हाय, इस देश का यह Asceticism, यह संन्यास-वृत्ति मोक्ष का द्वार उद्घाटित करेगी, या मृत्यु का अंधकूप ? किस दुराशा से प्रेरित होकर हमारे समाज-पति और धर्माध्यक्ष मनुष्य के हृदय का समस्त अमृतमय रस निचोड़कर उसे पशु से भी अधम बनाने में लगे हैं ? जान-बूझकर भी इतने बड़े ढकोसले का जाल क्यों रचा जा रहा है ?

सोचते-सोचते उसे हँसी आने लगी । हमारे देश के कवि और औपन्यासिक जब प्रेम की चर्चा करते हैं, तो क्या उनका वह हृदयानुभूत सत्य होता है ? यदि वे अनुभव से लिखते हैं, तो वे पापी हैं, और हमारे धर्म के 'पिनल कोड' के अनुसार उन्हें दंड मिलना चाहिए । यदि पाश्चात्य पुस्तकें पढ़कर कल्पित प्रेम का वर्णन करते हैं, तो वे कवि और औपन्यासिक होने के योग्य नहीं है । अर्थात् इस देश में कवि होना भी भयंकर पाप है । जो कवि यह कहने का दम भरता है कि जिस स्त्री को पहले कभी देखा नहीं, सुना नहीं, जिसके साथ हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भावों का आदान-प्रदान करने का अवसर पहले कभी नहीं मिला है, जिसकी प्रकृति अनुकूल है या प्रतिकूल, यह भी मालूम नहीं, उसके साथ विवाह का संबंध स्थापित हो जाने से ही वह प्रेम की महिमा से परिचित हो जाता है, वह कवि कितना भयंकर मिथ्यावादी है ! अज्ञात स्त्री के साथ विवाह होने से कर्तव्य के कठिन नियम का पालन अवश्य पूर्ण रूप में किया जा सकता है । पर प्रेम—प्रेम की अनंत व्यापकता क्या इस प्रकार के संबंध से कभी प्राप्त हो सकती है ? इस प्रकार के दांपत्य-प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले अपने 'उन्नत भाव' की महिमा घोषित करने के कारण अवश्य ही सप्तम स्वर्ग में जायँगे, इसमें संदेह नहीं ; पर अधम मनुष्य-जाति को स्वाभाविक रूप से, बंधनहीन अवस्था में, इस महिमा को समझने का अवसर वे लोग क्यों नहीं देते ? जिस दांपत्य-प्रेम की महत्ता का अनुभव मनुष्य अपने हृदय की अनुभूति से नहीं करने पाता, किंतु उसे बलपूर्वक उसकी आत्मा के भीतर ठूँसने की चेष्टा की जाती है, वह महत्ता धन्य है, और वह अमर होकर रहे ! पर—

उसका अंतःकरण भयंकर धिक्कार का विष उगलने लगा । वह मन-ही-मन कहने लगा—अरे पाखंडी धर्मध्वजियो ! अरे मानव-हृदय के घोर शत्रुओ ! इतने सहज उपाय से तुम अक्षय पुण्य लूटना चाहते हो ? जीवन की मुक्ति-धारा को कठिन बंधन से बाँधकर तुम अपना स्वर्ग अलग रचना चाहते हो ? पुण्य, पवित्रता और महत्ता का आदर्श केवल तुम्हीं समझे हो, और किसी को क्या भगवान् ने इस योग्य बुद्धि ही नहीं दी है ? किसलिये यह सब बंधन है ? किसलिये ये सब बाधाएँ हैं ? किसलिये यह सब निषेध है ? स्त्रियों को काल-कोठरी में अवरुद्ध रहने की आज्ञा देकर तुम किस अनोखे सती-लोक में उन्हें भेजना चाहते हो ? उनका जीवन पाषाण-तुल्य नीरस बनाकर तुम किस महातीर्थ के पर्वत का निर्माण करना चाहते हो ? उनके हृदय को ईंधन की तरह शुष्क बनाकर तुम किस अग्नि-परीक्षा में उसे डालना चाहते हो ? अपने लोहे से भी कठिन नियमों के चक्र से तुम किन महापतिव्रताओं की 'फ़ैक्टरी' तैयार करने की इच्छा करते हो ? पाखंडियो ! पाषाण-हृदय निष्ठुर, हिंस्र पशुओ ! तुम्हारी इस घोर पैशाचिक, नारकीय पाप-प्रवृत्ति की कलंक-कालिमा का क्या कोई प्रायश्चित्त हो सकता है ? रक्तबीज की तरह तुम मनुष्य की आत्मा का रस सोख-सोखकर उसे अपने निर्दय हाथों से मसल रहे हो । एक समय ऐसा आवेगा, जब उसकी हाय का तूफ़ान उठकर तुम्हें अनंत-मृत्यु के विकराल गह्वर की ओर ढकेलकर चिरतमसावृत लोक में छोड़ देगा ।

वह अपने संबंध में सोचने लगा । वह जीवन-भर प्रेम की मिथ्या कल्पना से अपनी पिपासा शांत करने की चेष्टा करता आया है; पर वह पिपासा कितनी सर्वशोषी—कितनी व्यापक है ! हाय, ज्ञानी लोग इसे दमन करने का उपदेश दे रहे हैं ; पर उसका सारा जीवन ही इसी एक भावना पर केंद्रित है, यह बात कैसे लोगों को समझाई जाय । अनंत में विलीन होने पर ही कभी यह तृष्णा शांत होगी, इस आशा में अनंत के पल गिन रहा है ; पर इस तरह पल-पल करके कैसे उसके दिन बीतेंगे ? कब तक यह हाल रहेगा ? उसका स्वर्गमर्त्य, आकाश-पातालव्यापी प्रेम कभी फलीभूत होगा ही; यह दुराशा वह कब तक हृदय में पोषित किए रहेगा ? वह कहने लगा—हे भगवान् ! जब इस परदेस में तुमने मुझे उत्पन्न किया था, तो हृदय में इतनी भयंकर प्रमाग्नि क्यों जलाई थी ? इस अग्नि से मैं स्वयं जलकर संसार को भस्म करने चला हूँ ।

पुस्तक बंद करके, बत्ती बुझाकर जब वह सोने की चेष्टा करने लगा, तो दिमाग़ में गरमी पैदा होने के कारण नींद नहीं आई । बहुत देर तक करवटें बदलता रहा ।

सोलहवाँ परिच्छेद

आज शिवरात्रि का दिन था । इस अवसर पर गाँव से चार कोस की दूरी पर किसी दूसरे गाँव में नदी के किनारे मेला लगता था । ललित को मेलों में जाने का बड़ा शौक़ था । कर्मभारग्रस्त देहातियों को ऐसे ही अवसरों पर भगवान् के मुक्त आनंद का रस उपभोग करने का सौभाग्य प्राप्त होता है । उनके इस क्षणिक आनंद में ललित शरीक होना चाहता था । फलतः उसने आज के मेले में भी जाने का इरादा किया । भगौती भैया अपनी माल-असबाब लेकर पहले ही दिन एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी गाड़ी में सवार होकर चल दिए थे। वहाँ जाकर वह एक दूकान खोलना चाहते थे।

सुभद्रा और माधवी का व्रत था। ललित सुबह को कुछ नाश्ता करके चल पड़ा। आसपास के गाँवों के लोग टोलियाँ बाँधकर गीत गाते हुए उसी तरफ़ को चले जा रहे थे। देहाती गीतों से ललित को बड़ा प्रेम था। वे सब गीत देहाती कवियों के ही हृदयोद्गार होते हैं, और मौलिक भावों का सरल प्राकृतिक सौंदर्य उनमें पाया जाता है। देहाती औरतें जब उन्हें गाती जाती थीं, तो उन्हें सुन-सुनकर ललित का जी नहीं भरता था। वह अतृप्त हृदय से उनका रस लेता जाता था। अचानक उसके कानों में एक अनोखे गीत की भनक पड़ी। कुछ नव-युवती, यौवन-मद-माती, नवरसमयी, अलबेली स्त्रियाँ मुस्किराती हुई गा रही थीं—

सवति रोलिया मोर बलमवा लै चली रे!

गीत सुनकर आश्चर्यचकित होकर ललित ताकता रह गया। कितना सरल, सुंदर और अकृत्रिम भाव था! बहुत संभव है, यह रचना किसी ज्ञाता स्त्री-कवि की हो। हाय, यह रेल-राक्षसी प्रकृति-रूपिणी स्त्री-जाति की सौत नहीं तो क्या है, जो शांति-प्रिय मनुष्यों को अपनी तड़क-भड़क से रिझाकर कर्मचक्र की ओर बहका ले जा रही है! पल-भर के लिये सभ्य जगत् की नाना रसों से पूर्ण कविता और सूक्ष्म संगीत-कला के प्रति उसके हृदय में घृणा जागरित हो गई। वह स्वयं संगीत-कला में पार-दर्शी था। छैलबिहारी का शिष्यत्व ग्रहण करके उसने इस संबंध में यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर ली थी। पर इस अर्थहीन ग्रामीण संगीत के सरल, सकरुण राग की मधु-रता के आगे उसे सारी संगीत-कला तुच्छ जान पड़ी।

चलते-चलते वह थक गया। आधे रास्ते में ही एक जगह बैठकर आराम करने की ठानी। एक आदमी बैठा गन्ने का रस बेच रहा था। ललित ने एक सकोरा लेकर पिया, पर तृप्ति नहीं हुई। दूसरा लिया, फिर भी शांति नहीं मिली। तीसरा पिया, तब जाकर कुछ शांत हुआ। बैठा-बैठा वह लोगों को आते-जाते देखने लगा। इस उत्सव के दिन भी किसी के चेहरे में प्रसन्नता पूर्ण-मात्रा में नहीं झलक रही थी। लाख चेष्टा करने पर भी कर्म-चक्र से पीड़ित भारत के ये दरिद्र देहाती लोग अपने चिर-विषाद का चिह्न मुखमंडल से तिरोहित करने में समर्थ नहीं हो रहे थे। इस परम मंगलमय आनंद के अवसर पर भी वे लोग फटे हुए, मलिन वस्त्र पहनकर जीर्ण-शीर्ण, श्रांत-क्लांत अवस्था में निर्विकार, उदासीन भाव से चले जाते थे, मानो उनसे विकराल काल का चक्र कह रहा था—ख़बरदार, इस क्षणिक आनंद के राग में अपनी सुध-बुध मत बिसारो! प्रतिपल रोने और जीवन का कठिन भार ढोने के लिये ही तुम पैदा हुए हो। अभी घर जाकर तुम्हें अपने और बाल-बच्चों के लिये रात के भोजन की चिंता करनी पड़ेगी। रात किसी तरह कट ही जायगी, तो सुबह के लिये हाहाकार मचेगा। इस निरर्थक उत्सव के फेर में पड़कर एक घड़ी भी तुम गँवाओगे, तो बहुत दिनों तक तुम्हें पछताना पड़ेगा। काम करो, पिसो, चिंता से जलो और घुल-घुलकर मरो! रुद्र का यही वज्रलेख तुम्हारे लिये निर्द्धारित हुआ है!

बहुत देर तक वह वहीं पर बैठा रहा। फिर सोचते-सोचते आगे बढ़ा। जब निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा, तो भीड़ में शामिल होकर वह इधर-उधर उत्सुकतापूर्वक टहलने लगा। कभी चरक-हिंडोले के पास जाता, कभी शिव-मंदिर में जाकर औरतों की पूजन-विधि देखता, कभी नदी के किनारे लोगों का नहाना देखता। जगह-जगह देहातियों की दूकानें लगी थीं। वहाँ खड़े होकर ख़रीद-फ़रोख़्त देखने में भी उसे बड़ा आनंद प्राप्त हो रहा था। कुछ देर बाद इसी तरह टहलता हुआ वह भगौती भैया की दूकान की खोज में चला। दूर एक कोने में उनका ख़ीमा गड़ा हुआ था। एक झंडे के ऊपर लाल कपड़े में सिए हुए बड़-बड़े सफ़ेद अक्षरों में लिखा हुआ था—"खद्दर-प्रदर्शिनी।" भगौती भैया की व्यापारिक बुद्धि भी कम तीक्ष्ण नहीं है, यह जानकर ललित मन-ही-मन मुस्किराने लगा। दूकान के पास जाकर उसने देखा, भैयाजी तीन युवकों के साथ मोल-तोल की बातें कर रहे हैं। खद्दर के थानों के सिवा वह 'रेडी-मेड' कपड़े और अपने हाथ के बनाए हुए दो-चार चरख़े भी प्रदर्शनार्थ और विक्रयार्थ लाए हुए हैं। अपनी भोली-भाली चिकनी-चुपड़ी बातों से गाहकों को विश्वास दिलाकर उन्होंने ख़ासा माल बेच डाला। चिकनी बातें करने पर भी भैयाजी किसी से ज़्यादा दाम नहीं लेते थे। युवकों को बिदा कर उन्होंने ललित से बातें करनी शुरू कीं। कहा—"कहो भाई, आख़िर तुम आ ही पहुँचे!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित ने पूछा—"खद्दर का प्रचार कैसा हो रहा है भैया ?"

भगौती भैया ठठाकर हँस पड़े। आज या तो अच्छी बिक्री के कारण या अन्य किसी कारण से भैयाजी प्रसन्न थे। बोले—"हाँ भाई, प्रचार ख़ासा हो रहा है। 'रेडी-मेड' कपड़ों की खपत भी अच्छी हो रही है, और वैसे भी ख़ूब बिक रहा है।" यह कहकर वह जेब हिलाकर रुपए बजाने लगे।

ललित की इच्छा तैरने की हो रही थी। इतने लोगों को तीर्थस्थल में नहाते हुए देखकर उससे रहा नहीं जाता था। तैरने का उसे ख़ूब अभ्यास था। उसने भगौती भैया से एक धोती की फ़रमायश की। कपड़ वहीं दूकान में छोड़कर, धोती और अँगोछा लेकर वह नदी की तरफ़ चल दिया। उनके गाँव का एक आदमी किनारे पर खड़ा था। उसके घर की औरतें नहा रही थीं। वह उनके लिये रुका हुआ था। ललित धोती और अँगोछा उसके हाथ में देकर नदी में फाँद पड़ा। ख़ूब दूर तक ग़ोते लगाता हुआ चला गया। बहुत दिनों से ऐसा आनंद उसे नहीं प्राप्त हुआ था। सारे शरीर में वह एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव करने लगा। कभी इस तरफ़ को जाता, कभी उस तरफ़ को। कभी नीचे पनडुब्बों की तरह ग़ोते लगाता, कभी चित होकर तैरता था। लौटने की इच्छा नहीं हो रही थी। पर जिस आदमी को धोती और अँगोछा सौंप आया था, वह उसके इंतिज़ार में खड़ा होगा, यह सोचकर उसे लौटना पड़ा। किनारे आकर वह अँगोछे से पानी पोछने लगा। इस दुबले-पतले गोरे-उजले, घनी दाढ़ीवाले, फुर्तीले, नौजवान तैराक को सब स्त्री-पुरुष एकटक होकर उत्सुकता के साथ ताक रहे थे। वह इस समय अत्यंत प्रफुल्लचित्त जान पड़ता था, और लोगों की उत्सुकता को देखकर विनोद का-सा आनंद प्राप्त कर रहा था। अचानक उसकी दृष्टि एक सुंदरी, अप-टु-डेट फ़ैशनवाली, नवीना युवती पर पड़ी। वह भी अन्य लोगों की तरह कौतूहलवश बड़े ग़ौर से उसे ताक रही थी। इस देहाती मेले में, असभ्य लोगों के बीच, 'न्यूलाइट' से प्रकाशमान् यह युवती कहाँ से और कैसे आ पड़ी, यह सोचकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। देहाती स्त्रियों की उत्सुकता देखकर उसका विनोद हो रहा था, पर इस 'आलोकप्राप्त' युवती की उत्सुक दृष्टि से वह संकुचित होने लगा। उसकी तंग छाती बालों से घनाच्छन्न रहती थी। वह उसे यथासंभव स्त्रियों की दृष्टि से बचाया करता था। ग्रामीण स्त्रियों के स्वभाव की सरलता के कारण उसे कुछ संकोच नहीं हुआ था, पर अब अपनी अनावृत छाती देखकर उसे स्वयं लज्जा आने लगी। इस संबंध में वह स्त्रियों से भी अधिक संकोचशील था। और तो क्या, धोती बदलने में भी उसे संकोच होने लगा। वह वहाँ से कुछ दूर हटकर चला गया, और धोती बदलने लगा।

धोती बदल चुकने के बाद उसने अपनी गीली पंकमलिन धोती धो डाली, और उसे निचोड़कर वह भगौती भैया के पास लौट चला। पूर्वोक्त नवीना युवती की दृष्टि उसी की ओर लगी हुई थी। भगौती की दूकान में ग्राहकों की ख़ासी भीड़ थी। कोई तमाशा देख रहे थे, कोई कपड़ा ख़रीद रहे थे। ललित भी वहीं बैठकर तमाशा देखने लगा। थोड़ी देर बाद वह युवती भी वहाँ आ खड़ी हुई, और ललित को अपने चंचल कटाक्षों से वेधती हुई भगौती भैया द्वारा खोली हुई नुमाइश का मुआइना करने लगी। ललित स्तब्ध भाव से बैठकर उसकी हरकतों को देखने लगा। दूर से देखने पर उसके रूप का ठीक-ठीक निर्द्धारण वह नहीं कर सका था, अब अच्छी तरह से देखने का मौक़ा मिला। उसकी गठन अच्छी थी; चेहरे का रंग गेहुँआँ था; आँखें तनी हुईं, बड़ी और सुंदर थीं; उनसे संकोच नहीं प्रकट होता था, बल्कि विशेष धृष्टता का भाव व्यक्त हो रहा था, हाँ बुद्धिमत्ता अवश्य झलक रही थी; नाक तीखी की अपेक्षा चिपटी अधिक थी; भौंहों की रेखाएँ समान न होकर कहीं टेढ़ी, कहीं सीधी; गाल भरे हुए थे; होंठ कुछ मोटे थे, और उनके रंग का झुकाव लाल की अपेक्षा काले की ओर अधिक था। सब मिलाकर वह विशेष सुंदरी न होने पर भी देखने में कुछ ऐसी बुरी नहीं थी। स्वास्थ्य और उमंग से उसका चेहरा जगमगा रहा था।

वह एक चादर उठाकर देखने लगी। बड़े ग़ौर से उसकी बुनावट की परख करते हुए अचानक उसने ललित से पूछा—"देखिए, यह क्या 'प्योर' खद्दर है ?"

ललित ने कहा—"जीहाँ, बिलकुल प्योर है। भगौती भैया ने इसे हाथ से काता है और हाथ से बुना है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस युवती ने फिर पूछा—"इसके दाम क्या हैं? क्या आप बता सकते हैं?"

भगौती भैया से पूछने पर मालूम हुआ कि उसका मूल्य चार रुपए है। युवती ने फिर एक बार उसे परख कर कहा—"दाम कुछ ज़्यादा जान पड़ते हैं। इतने दाम के लायक़ चीज़ नहीं है।"

ललित बोला—"आपका ख़याल ग़लत है। मिल की बनी हुई चादरें अच्छी भी होती हैं, और सस्ती भी मिल सकती हैं, इसमें शक नहीं; पर आपको इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि कितनी आसानी से वहाँ वे तैयार की जाती हैं। यह एक तो हाथ का काम है, उस पर देहात में इसका कारबार है। इस काम में रेशम के काम से कुछ कम दिक़्क़त नहीं पड़ती। और, जिस प्रकार असंख्य कीड़ों की हत्या से रेशमी कपड़ा तैयार होता है, उसी प्रकार भगौती भैया के कलेजे के टुकड़ों के समान रुपयों और समय की हत्या से यह सब खद्दर बना है।"

उसकी रसिकता देखकर युवती अत्यंत मधुरता के साथ मुस्किराने लगी। इस दाढ़ीवाले जंगली युवक के चेहरे से ही यह भाव टपकता था कि वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी बात सुनकर युवती को पूरा विश्वास हो गया कि केवल देहात से ही उसका संबंध नहीं है—वह शहरों में रहकर दुनिया के कड़े तजुर्बे हासिल कर चुका है।

उसने पूछा—"आप यहाँ किस गाँव में रहते हैं?"

ललित ने अपने गाँव का नाम बतलाया।

युवती ने फिर पूछा—"माफ़ कीजिए, आप यहाँ करते क्या हैं?"

ललित बोला—"ख़ाक और पत्थर।"

युवती फिर पूर्ववत् मधुरता के साथ मुस्किराने लगी। उसके दाँत सुंदर, समान, सफ़ेद और साफ़ थे। उसने कहा—"फिर भी कुछ तो करते ही होंगे।"

ललित ने उत्तर दिया—"जी नहीं, आप यक़ीन मानिए, मैं बिलकुल निकम्मा और ठलुवा हूँ।"

व्यंग्य के साथ युवती ने पूछा—"ठलुवा ग्रेजुएट!"

ललित चौंका। इस युवती की तीक्ष्ण दृष्टि से कोई बात छिपी नहीं रह सकती, यह जानकर उसे आश्चर्य हुआ, और कौतूहल बढ़ा। धृष्टता और नम्रता, व्यंग्य और सरलता, इन दोनों परस्पर-विरोधी वृत्तियों की चालना में वह उससे कुछ कम निपुण नहीं है, यह मालूम करके वह कुछ झेंपा। उसका आवेग कुछ ढीला पड़ गया। उसने उत्तर दिया—"ग्रेजुएट तो नहीं, अंडर-ग्रेजुएट अवश्य हूँ।"

युवती ने पूछा—"आपका शुभ नाम?"

ललित ने अपना नाम बतलाया और बोला—"आपका शुभ नाम भी क्या मैं पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ?"

युवती ने कुछ संकोच के साथ कहा—"मुझे कादंबिनी कहते हैं।"

ललित बोला—"आपका वेश और आपकी बातें तो देहाती स्त्रियों की-सी कदापि नहीं हैं। आपका यहाँ शुभागमन कैसे हुआ?"

कादंबिनी ने अपनी सहज, स्वाभाविक धृष्टता से काम लेते हुए कहा—"चलिए न, टहलते-टहलते बातें भी कर लेंगे, और मेला भी देखा जा सकेगा।" ललित से कुछ कहते न बन पड़ा। उसे झिझक मालूम हुई। नवीन युग की एक शिक्षिता युवती के साथ, इस देहाती मेले के बीच में टहलना उसे अत्यंत अशोभित-सा जान पड़ा। उसे साथ लेकर इतने लोगों की उत्सुक दृष्टि का तीव्र कौतूहल सहन कर सकने का साहस उसे नहीं होता था। पर उसके आह्वान में एक ऐसी विशेषता थी कि उसकी अवज्ञा भी वह नहीं कर सकता था। फलतः उठ खड़ा हुआ।

इलाचंद्र जोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सीख

प्रेम के फंदन कौन परै ।

कौन करै बिपदा की संगति को त्रयताप जरै ।
चुनी चबाय चकोर कसै तन फिरि-फिरि साँस भरै ;
चंद्र-बदन हँसि तौहुँ न हेरत छिपि-छिपि जात बरै ।
झुकि-झुकि चूमत मधुप चरन-रज, भटकत साँझ फिरै ;
हाय बेदरदी हँसै नहिं सरसिज—कौन कहै बिखरै ।
अनिमिष नयननि फारि निहारत चौगुन चाव करै ;
बादर बजुर गिरावत आवत स्वाति न बूँद सरै ।
प्रेम बसीठी पठावत कैलिया लावत घेरि घरै ;
पै मधु जात बिलम न लगावत-अँखियन नीर झरै ।
प्रेम सों रीझि भजै मृग बन-बन छौननि तजि बिचरै ;
बीन सुनै सुनतै-सुनतै हँसि—प्रेम के हाथ मरै ।
तरफरात झख जाल बीच तउ मोह न नीर करै ;
मीन मरत बिनु बारि—बारि बहि जात न छिनु ठहरै ।
पसु-पंछी वहि घात न जानत प्रेम बिसासी करै ;
मानुस जनम न भूलिहुँ तौ कहुँ काहू सों प्रेम करै ।
प्रेम किए तन छीजि जात सखि, घुरि-घुरि गात गिरै ;
बिसराओ—बिसराएहु वाकी सुधि न अरी बिसरै ।
प्रेम की गाँसी गरेसति छिनु-छिनु कोउ बिधि ना निसरै ;
प्रेम की धार फँस्यो सो फँस्यो भवसिंधु न फेरि तरै ।

मातादीन शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग्योझा

(१)

भोला महतो ने पहली स्त्री के मर जाने के बाद दूसरी सगाई की, तो उसके लड़के रग्घू के लिये बुरे दिन आ गए। रग्घू की उम्र उस समय केवल १० वर्ष की थी। चैन से गाँव में गुल्ली-डंडा खेलता फिरता था। मा के आते ही चक्की में जुतना पड़ा। पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप और गर्व में चोली-दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई मोटा काम न करती। गोबर रग्घू निकालता, बैलों को सानी रग्घू देता, रग्घू ही जूठे बरतन माँजता। भोला की आँखें कुछ ऐसी फिरीं कि उसे अब रग्घू में सब बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ नज़र आतीं। पन्ना की बातों को वह प्राचीन मर्यादानुसार आँखें बंद करके मान लेता था। रग्घू की शिकायतों की ज़रा भी परवा न करता। नतीजा यह हुआ कि रग्घू ने शिकायत करना ही छोड़ दिया। किसके सामने रोए? बाप ही नहीं, सारा गाँव उसका दुश्मन था। बड़ा ज़िद्दी लड़का है, पन्ना को तो कुछ समझता ही नहीं; बिचारी उसका दुलार करती है, खिलाती-पिलाती है। यह उसी का फल है। दूसरी औरत होती तो निबाह न होता। वह तो कहो पन्ना इतनी सीधी-साधी है कि निबाह होता जाता है। सबल की शिकायतें सब सुनते हैं, निबल की फ़रियाद भी कोई नहीं सुनता। रग्घू का हृदय मा की ओर से दिन-दिन फटता जाता था। यहाँ तक कि आठ साल गुज़र गए और एक दिन भोला के नाम भी मृत्यु का संदेश आ पहुँचा।

पन्ना के चार लड़के थे—तीन बेटे और एक बेटी। इतना बड़ा ख़र्च और कमानेवाला कोई नहीं। रग्घू अब क्यों बात पूछने लगा। यह मानी हुई बात थी। अपनी स्त्री लाएगा और अलग रहेगा। स्त्री आकर और भी आग लगाएगी। पन्ना को चारों ओर अँधेरा ही दिखाई देता था। पर कुछ भी हो, वह रग्घू की आसरैत बनकर घर में न रहेगी। जिस घर में उसने राज किया, उसमें अब लौंडी न बनेगी। जिस लौंडे को अपना गुलाम समझा, उसका मुँह न ताकेगी। वह सुंदर थी, अवस्था भी अभी कुछ ऐसी ज़्यादा न थी। जवानी अपनी पूरी बहार पर थी। क्या वह कोई दूसरा घर नहीं कर सकती? यही न होगा लोग हँसेंगे। बला से! उसकी बिरादरी में क्या ऐसा होता नहीं। ब्राह्मण-ठाकुर थोड़े ही थे कि नाक कट जायगी। यह तो उन्हीं ऊँची जातों में होता है कि घर में चाहे जो कुछ करो, बाहर परदा ढका रहे। वह तो संसार को दिखाकर दूसरा घर कर सकती है। फिर वह रग्घू की दबैल बनकर क्यों रहे।

भोला को मरे एक महीना गुज़र चुका था। संध्या हो गई थी। पन्ना इसी चिंता में पड़ी हुई थी कि सहसा उसे ख़याल आया, लड़के घर में नहीं हैं। यह बैलों के लौटने की बेला है, कहीं कोई लड़का उनके नीचे न आ जाय। अब द्वार पर कौन है जो उनकी देखभाल करेगा। रग्घू को तो मेरे लड़के फूटी आँखों नहीं भाते। कभी हँसकर नहीं बोलता। घर से बाहर निकली, तो देखा रग्घू सामने झोंपड़े में बैठा ऊख की गँडेरियाँ बना रहा है। तीनों लड़के उसे घेरे खड़े हैं और छोटी लड़की उसके गर्दन में हाथ डाले उसकी पीठ पर सवार होने की चेष्टा कर रही है। पन्ना को अपनी आँखों पर विश्वास न आया। आज तो यह नई बात है! शायद दुनिया को दिखाता है कि मैं अपने भाइयों को कितना चाहता हूँ और मन में छुरी रक्खी हुई है। घात मिले तो जान ही ले ले। काला साँप है, काला साँप। कठोर स्वर में बोली—तुम सब-के-सब वहाँ क्या करते हो? घर में आओ, साँझ की बेला है, गोरू आते होंगे।

रग्घू ने विनीत नेत्रों से देखकर कहा—मैं तो हूँ ही काकी, डर किस बात का है।

बड़ा लड़का केदार बोला—काकी, रग्घू दादा ने हमारे लिये दो गाड़ियाँ बना दी हैं। यह देख एक में हम और खुन्नू बैठेंगे, दूसरी पर लछमन और झुनिया दादा दोनों गाड़ियाँ खींचेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से दो छोटी-छोटी गाड़ियाँ निकाल लाया, चार-चार पहिए लगे थे, बैठने के लिये तख़्ते और रोक के लिये दोनों तरफ़ बाजू थे।

पन्ना ने आश्चर्य से पूछा—ये गाड़ियाँ किसने बनाईं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केदार ने चिढ़कर कहा—रग्घू दादा ने बनाई हैं, और किसने। भगत के घर से बसूला और रुखानी माँग लाए और चट-पट बना दीं। खूब दौड़ती हैं काकी। बैठ खुन्नू, मैं खींचूँ।

खुन्नू गाड़ी में बैठ गया। केदार खींचने लगा। चर-चर का शोर हुआ, मानो गाड़ी भी इस खेल में लड़कों के साथ शरीक है।

लछमन ने दूसरी गाड़ी में बैठकर कहा—दादा खींचो।

रग्घू ने झुनिया को भी गाड़ी में बैठा दिया, और गाड़ी खींचता हुआ दौड़ा। तीनों लड़के तालियाँ बजाने लगे। पन्ना चकित नेत्रों से यह दृश्य देख रही थी, और सोच रही थी कि यह वही रग्घू है या और।

थोड़ी देर के बाद दोनों गाड़ियाँ लौटीं; लड़के घर में जाकर इस यान-यात्रा के अनुभव बयान करने लगे। कितने ख़ुश थे सब, मानो हवाई जहाज़ पर बैठ आए हों।

खुन्नू ने कहा—काकी सच, पेड़ दौड़ रहे थे।

लछमन—और बछियाँ कैसी भागीं, सब-की-सब दौड़ीं।

केदार—काकी रग्घू दादा दोनों गाड़ियाँ एक साथ खींच ले जाते हैं।

झुनिया सबसे छोटी थी। उसकी व्यंजना-शक्ति उछल-कूद और नेत्रों तक परिमित थी—तालियाँ बजा-बजाकर नाच रही थी।

खुन्नू—अब हमारे घर गाय भी आ जायगी काकी। रग्घू दादा ने गिरधारी से कहा है कि हमें एक गाय ला दो। गिरधारी बोला—कल लाऊँगा।

केदार—तीन सेर दूध देती है काकी। खूब दूध पीएँगे।

इतने में रग्घू भी अंदर आ गया। पन्ना ने अवहेला की दृष्टि से देखकर पूछा—क्यों रग्घू, तुमने गिरधारी से कोई गाय माँगी है?

रग्घू ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—हाँ, माँगी तो है, कल लावेगा।

पन्ना—रुपए किसके घर से आवेंगे? यह भी सोचा है?

रग्घू—सब सोच लिया है काकी। मेरी यह मोहर नहीं है। इसके पचीस रुपए मिल रहे हैं, पाँच रुपए बछिया के मुजरा दे दूँगा। बस गाय अपनी हो जायगी।

पन्ना सन्नाटे में आ गई। अब उसका अविश्वासी मन भी रग्घू के प्रेम और सज्जनता को अस्वीकार न कर सका। बोली—मोहर को क्यों बेचे देते हो। गाय की अभी कौन जल्दी है। हाथ में पैसे हो जायँ, तो ले लेना। सूना-सूना गला अच्छा न लगेगा। इतने दिनों गाय नहीं रही, तो क्या लड़के नहीं जिए।

रग्घू दार्शनिक भाव से बोला—बच्चों के खाने-पीने के यही दिन हैं काकी। इस उम्र में न खाया, तो फिर क्या खायँगे। मुहर पहनना मुझे अच्छा भी नहीं मालूम होता, लोग समझते होंगे कि बाप तो मर गया, इसे मुहर पहनने की सूझी है।

भोला महतो गाय की चिंता ही में चल बसे, न रुपए आए और न गाय मिली, मजबूर थे। रग्घू ने वह समस्या कितनी सुगमता से हल कर दी। आज जीवन में पहली बार, पन्ना को रग्घू पर विश्वास आया, बोली—जब गहना ही बेचना है, तो अपनी मुहर क्यों बेचोगे। मेरी हसली ले लेना।

रग्घू—नहीं काकी! वह तुम्हारे गले में बहुत अच्छी लगती है। मर्दों को क्या, मुहर पहने या न पहने।

पन्ना—चल, मैं बूढ़ी हुई। मुझे अब हसली पहन कर क्या करना है। तू अभी लड़का है, तेरा सूना गला अच्छा न लगेगा।

रग्घू मुस्किराकर बोला—तुम अभी से कैसे बूढ़ी हो गईं? गाँव में कौन तुम्हारे बराबर है?

रग्घू की सरल आलोचना ने पन्ना को लज्जित कर दिया। उसके रूखे-मुरझाए मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई।

(२)

पाँच साल गुजर गए। रग्घू का-सा मेहनती, ईमान-दार, बात का धनी, दूसरा किसान गाँव में न था। पन्ना की इच्छा के बिना कोई काम न करता। उसकी उम्र अब २३ साल की हो गई थी। पन्ना बार-बार कहती, भइया बहू को बिदा करा लाओ। कब तक वह नैहर में पड़ी रहेगी। सब लोग मुझी को बदनाम करते हैं कि यही बहू को नहीं आने देती। मगर रग्घू टाल देता था। कहता कि अभी जल्दी क्या है। उसे अपनी स्त्री के रंग-ढंग का कुछ परिचय दूसरों से मिल चुका था। ऐसी औरत को घर में लाकर वह अपनी शांति में बाधा नहीं डालना चाहता था।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख़िर एक दिन पन्ना ने ज़िद करके कहा—तो तुम न जाओगे ?

"कह दिया कि अभी कोई जल्दी नहीं है।"

"तुम्हारे लिये जल्दी न होगी, मेरे लिये तो जल्दी है। मैं आज आदमी भेजती हूँ।"

"पछताओगी काकी, उसका मिजाज अच्छा नहीं है काकी।"

"तुम्हारी बला से। जब मैं उससे बोलूँगी ही नहीं, तो क्या हवा से लड़ेगी। रोटियाँ तो बना लेगी। मुझसे भीतर-बाहर का सारा काम नहीं होता, मैं आज बुलाए लेती हूँ।"

"बुलाना चाहती हो, बुला लो, मगर फिर यह न कहना कि यह मेहरिया को ठीक नहीं करता, उसका गुलाम हो गया।"

"न कहूँगी, जाकर दो साड़ियाँ और मिठाई ले आ।"

तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गई। दरवाज़े पर नगाड़े बजे। शहनायियों की मधुर ध्वनि आकाश में गूँजने लगी। मुँह-दिखावे की रस्म अदा हुई। वह इस मरुभूमि में निर्मल जल-धारा थी। गेहुँआँ रंग था, बड़ी-बड़ी नोकीली पलकें, कपोलों पर हल्की सुर्खी, आँखों में प्रबल आकर्षण, रग्घू उसे देखते ही मंत्र-मुग्ध हो गया।

प्रातःकाल पानी का घड़ा लेकर चलती, तब उसका गेहुँआँ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुंदन हो जाता, मानो उषा अपनी सारी सुगंध, सारा विकास और सारा उन्माद लिए मुस्किराती चली जाती हो।

(३)

मुलिया मैके से ही जली-भुनी आई थी, मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे, और पन्ना रानी बनी बैठी रहें, उनके लड़के रईसज़ादे बने घूमें, मुलिया से यह बरदाश्त न होगा। वह किसी की ग़ुलामी न करेगी। अपने लड़के तो अपने होते ही नहीं, भाई किसके होते हैं। जब तक पर नहीं निकले हैं, रग्घू के घेरे हुए हैं। ज्यों ही ज़रा सयाने हुए, पर झाड़कर निकल जायँगे, बात भी न पूछेंगे।

एक दिन उसने रग्घू से कहा—तुम्हें इस तरह ग़ुलामी करनी हो, तो करो, मुझसे न होगा।

रग्घू—तो फिर क्या करूँ, तू ही बता ? लड़के भी अभी घर का काम करने लायक़ भी नहीं हैं।

मुलिया—लड़के रावत के हैं, कुछ तुम्हारे नहीं हैं। यही पन्ना हैं जो तुम्हें दाने-दाने को तरसाती थीं, सब सुन चुकी हूँ। मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपए-पैसे का मुझे कुछ हिसाब नहीं मिलता। न-जाने तुम क्या लाते हो ? और वह क्या करती हैं ? तुम समझते हो रुपए घर ही में तो हैं। मगर देख लेना, तुम्हें जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।

रग्घू—रुपए-पैसे तेरे हाथ में देने लगूँ, तो दुनिया क्या कहेगी, यह तो सोच।

मुलिया—दुनिया जो चाहे कहे। दुनिया के हाथों बिकी नहीं हूँ। देख लेना भाड़ लीपकर हाथ काला ही रहेगा, फिर तुम अपने भाइयों के लिये मरो, मैं क्यों मरूँ।

रग्घू ने कुछ जवाब न दिया। उसे जिस बात का भय था, वह इतनी जल्द सिर पर आ पड़ी। अब अगर उसने बहुत तत्थोथंभो किया, तो साल-छः महीने और काम चलेगा। बस, आगे यह डोंगा चलता नज़र नहीं आता। बकरे की मा कब तक ख़ैर मनाएगी।

एक दिन पन्ना ने महुए का सुखावन डाला। बरसात शुरू हो गई थी। बखार में अनाज गीला हो रहा था। मुलिया से बोली—बहू, ज़रा देखती रहना, मैं तालाब से न्हा आऊँ।

मुलिया ने लापरवाही से कहा—मुझे नींद आ रही है, तुम बैठकर देखो। एक दिन न न्हाओगी तो क्या होगा।

पन्ना ने साड़ी उठाकर रख दी, न्हाने न गई। मुलिया का वार ख़ाली गया।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रोपकर लौटी, तो अँधेरा हो गया था। दिन-भर की भूखी थी। आशा थी—बहू ने रोटी बना रक्खी होगी, मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था, और बच्चे भूख के तड़प रहे थे। मुलिया से आहिस्ते से पूछा—आज अभी चूल्हा नहीं जला ?

केदार ने कहा—आज तो दोपहर को भी दाल नहीं जला काकी। भाभी ने कुछ बनाया ही नहीं।

पन्ना—तो तुम लोगों ने खाया क्या ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केदार—कुछ नहीं, रात की रोटियाँ थीं, खुद्दू और लछमन ने खाईं, मैंने सत्तू खा लिया।

पन्ना—और बहू ?

केदार—वह तो पड़ी सो रही हैं, कुछ नहीं खाया।

पन्ना ने उसी वक़्त चूल्हा जलाया और खाना बनाने बैठ गई। आँटा गूँधती थी और रोती थी। क्या नसीब है, दिन-भर खेत में जली, घर आई तो चूल्हे के सामने जलना पड़ा।

केदार का चौदहवाँ साल था। भाभी के रंग-ढंग देखकर सारी स्थिति समझ रहा था। बोला—काकी, भाभी अब तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती।

पन्ना ने चौंककर पूछा—क्या, कुछ कहती थी।

केदार—कहती कुछ नहीं थी। मगर है उसके मन में यही बात। फिर तुम क्यों नहीं उसे छोड़ देतीं ? जैसे चाहे रहे, हमारा भी भगवान् है।

पन्ना ने दाँतों से जीभ दबाकर कहा—चुप, मेरे सामने ऐसी बात भूलकर भी न कहना। रग्घू तुम्हारा भाई नहीं, तुम्हारा बाप है। मुलिया से कभी बोलोगे, तो समझ लेना ज़हर खा लूँगी।

(४)

दसहरे का त्योहार आया। इस गाँव से कोस-भर पर एक पुरवे में मेला लगता था। गाँव के सब लड़के मेला देखने चले। पन्ना भी लड़कों के साथ चलने को तैयार हुई। मगर पैसे कहाँ से आवें ? कुंजी तो मुलिया के पास थी। रग्घू ने आकर मुलिया से कहा—लड़के मेले जा रहे हैं, सबको दो-दो आने पैसे दे दे।

मुलिया ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—पैसे घर में नहीं हैं।

रग्घू—अभी तो तेलहन बिका था, क्या इतनी जल्दी रुपए उठ गए ?

मुलिया—हाँ, उठ गए।

रग्घू—कहाँ उठ गए ? ज़रा सुनो, आज त्यौहार के दिन लड़के मेला देखने न जायँगे ?

मुलिया—अपनी काकी से कहो, पैसे निकालें, गाड़कर क्या करेंगी।

खूटी पर कुंजी लटक रही थी। रग्घू ने कुंजी उतारी और चाहा कि संदूक़ खोले कि मुलिया ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—कुंजी मुझे दे दो, नहीं तो ठीक न होगा। खाने-पहरने को भी चाहिए, काग़ज़-किताब को भी चाहिए, उस पर मेला देखने को भी चाहिए। हमारी कमाई इसलिये नहीं है कि दूसरे खायँ और मूछों पर ताव दें।

पन्ना ने रग्घू से कहा—भइया, पैसे क्या होंगे। लड़के मेला देखने न जायँगे।

रग्घू ने झिड़ककर कहा—मेला देखने क्यों न जायँगे ? सारा गाँव जा रहा है। हमारे ही लड़के न जायँगे।

यह कहकर रग्घू ने अपना हाथ छुड़ा लिया और पैसे निकालकर लड़कों को दे दिए। मगर कुंजी जब मुलिया को देने लगा, तब उसने उसे आँगन में फेंक दिया, और मुँह लपेटकर लेट गई। लड़के मेला देखने न गए।

इसके बाद दो दिन गुज़र गए। मुलिया ने कुछ नहीं खाया, और पन्ना भी भूखी रही। रग्घू कभी इसे मनाता, कभी उसे, पर न यह उठती न वह। आख़िर रग्घू ने हैरान होकर मुलिया से पूछा—कुछ मुँह से तो कह। तू चाहती क्या है ?

मुलिया ने धरती को संबोधित करके कहा—मैं कुछ नहीं चाहती, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रग्घू—अच्छा उठ, बना-खा। पहुँचा दूँगा।

मुलिया ने रग्घू की ओर आँखें उठाईं। रग्घू उसकी सूरत देखकर डर गया। वह माधुर्य, वह मोहकता, वह लावण्य ग़ायब हो गया था। दाँत निकल आए थे। आँखें फट गई थीं और नथुने फड़क रहे थे। अँगारे की-सी लाल आँखों से देखकर बोली—अच्छा तो काकी ने यह सलाह दी है, यह मंत्र पढ़ाया है। तो यहाँ ऐसी कच्ची नहीं हूँ। तुम दोनों की छाती पर मूँग दलूँगी। हो किस फेर में।

रग्घू—अच्छा तो मूँग ही दल लेना। कुछ खा-पी लेगी, तभी तो मूँग दल सकेगी।

मुलिया—अब तो तभी मुँह में पानी डालूँगी, जब घर अलग हो जायगा। बहुत झेल चुकी, अब नहीं झेला जाता।

रग्घू सन्नाटे में आ गया, एक मिनट तक तो उसके मुँह से आवाज़ ही न निकली। अलग होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसने गाँव में दो-चार परिवारों को अलग होते देखा था। वह ख़ूब जानता था, रोटी के साथ लोगों के हृदय भी अलग हो जाते हैं। अपने हमेशा के लिये ग़ैर हो जाते हैं। फिर उनमें वही नाता रह जाता है, जो गाँव के और आदमियों में। रग्घू ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर में न आने दूँगा। मगर होनहार के सामने उसकी एक न चली। आह ! मेरे मुँह में कालिख लगेगी। दुनिया यही कहेगी कि बाप के मर जाने पर दस साल भी एक में निबाह न हो सका। और फिर किससे अलग हो जाऊँ। जिनको गोद में खिलाया, जिनको बच्चों की तरह पाला, जिनके लिये तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्हीं से अलग हो जाऊँ। अपने प्यारों को घर से निकाल बाहर करूँ। उसका गला फँस गया। काँपते हुए स्वर में बोला—तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयों से अलग हो जाऊँ ? भला सोच तो कहीं मुँह दिखाने लायक़ रहूँगा।

मुलिया—तो मेरा इन लोगों के साथ निबाह न होगा।

रग्घू—तो तू अलग हो जा। मुझे अपने साथ क्यों घसीटती है।

मुलिया—तो मुझे क्या तुम्हारे घर में मिठाई मिलती है, मेरे लिये क्या संसार में जगह नहीं है।

रग्घू—तेरी जैसी मर्जी, जहाँ चाहे रह। मैं अपने घर-वालों से अलग नहीं हो सकता। जिस दिन इस घर में दो चूल्हे जलेंगे, उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकड़े हो जायँगे। मैं यह चोट नहीं सह सकता। तुझे जो तकलीफ़ हो, वह मैं दूर कर सकता हूँ। माल-असबाब की मालकिन तू है ही, अनाज-पानी तेरे ही हाथ है, अब रह क्या गया है ? अगर कुछ काम-धंधा करना नहीं चाहती, मत कर। भगवान् ने मुझे समाई दी होती, तो मैं तुझे तिनका तक उठाने न देता। तेरे यह सुकुमार हाथ-पाँव मिहनत-मजूरी करने के लिये बनाए ही नहीं गए हैं, मगर क्या करूँ अपना कुछ बसर ही नहीं है। फिर भी तेरा जी कोई काम करने को न चाहे, मत कर। मगर मुझसे अलग होने की न कह, तेरे पैरों पड़ता हूँ।

मुलिया ने सिर से अंचल खसकाया और ज़रा समीप आकर बोली—मैं काम करने से नहीं डरती, न बैठे-बैठे खाना चाहती हूँ, मगर मुझसे किसी की धौंस नहीं सही जाती। तुम्हारी काकी घर का काम-काज करती हैं, तो अपने लिये करती हैं, अपने बाल-बच्चों के लिये करती हैं। मुझ पर कुछ एहसान नहीं करतीं। फिर मुझ पर धौंस क्यों जमाती हैं ? उन्हें अपने बच्चे प्यारे होंगे, मुझे तो तुम्हारा ही आसरा है। मैं अपनी आँखों से यह नहीं देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, ज़रा-ज़रा से बच्चे तो दूध पीएँ, और जिसके बल-बूते पर गृहस्थी थमी हुई है, वह मठे को तरसे। कोई उसका पूछनेवाला न हो। ज़रा अपना मुँह तो देखो, कैसी सूरत निकल आई है। औरों के तो चार बरस में अपने पट्ठे तैयार हो जायँगे। तुम तो दस साल में खाट पर पड़ जाओगे। बैठ जाओ, खड़े क्यों हो ? क्या मारकर भागोगे, मैं तुम्हें ज़बरदस्ती न बाँध लूँगी, या मालकिन का हुक्म नहीं है। सच कहूँ तुम बड़े कठकलेजी हो। मैं जानती, ऐसे निर्मोहिए से पाला पड़ेगा, तो इस घर में भूल से न आती। आती भी तो मन न लगाती। मगर अब तो मन तुमसे लग गया। घर भी जाऊँ, तो मन यहीं रहेगा। और, तुम जो हो, मेरी बात नहीं पूछते।

मुलिया की ये रसीली बातें रग्घू पर कोई असर न डाल सकीं। वह उसी रुखाई से बोला मुलिया, मुझसे यह न होगा। अलग होने का ध्यान करते ही मेरा मन न-जाने कैसा हो जाता है। यह चोट मुझसे न सही जायगी।

मुलिया ने परिहास करके कहा—तो चूड़ियाँ पहनकर अंदर बैठो ना। लाओ मैं मूछें लगा लूँ। मैं तो समझती थी कि तुममें भी कुछ कस-बल है। अब देखती हूँ तो निरे मिट्टी के लोंदे हो।

पन्ना दालान में खड़ी दोनों की बातचीत सुन रही थी। अब उससे न रहा गया। सामने आकर रग्घू से बोली—जब वह अलग होने पर तुली हुई है, फिर तुम क्यों उसे ज़बरदस्ती मिलाए रखना चाहते हो। तुम उसे लेकर रहो, हमारे भगवान् मालिक हैं। जब महतो मर गए थे, और कहीं पत्ती की भी छाँह न थी, जब उस वक़्त भगवान् ने निबाह दिया, तो अब क्या अब तो भगवान् की दया से तीनों लड़के सयाने हो गए हैं। अब कोई चिंता नहीं।

रग्घू ने आँसूभरी आँखों से पन्ना को देखकर कहा—काकी, तू भी पागल हो गई है क्या ? जानती नहीं, रोटियाँ होते ही दो मन हो जाते हैं।

पन्ना—जब वह मानती ही नहीं, तब तुम क्या करोगे ? भगवान् की यही मरजी होगी, तो कोई क्या करेगा। परालबध में जितने दिन एक साथ रहना लिखा था, उतने दिन रहे, अब उसकी यही मरजी है, तो तुम क्या करोगे। तुमने मेरे बाल-बच्चों के लिये जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, वह मैं भूल नहीं सकती। तुमने इनके सिर पर हाथ न रक्खा होता, तो आज इनकी न-जाने क्या गति होती, न-जाने किसके द्वार पर ठोकरें खाते होते, न-जाने कहाँ-कहाँ भीख माँगते फिरते। तुम्हारा जस मरते दम तक गाऊँगी। अगर मेरी खाल तुम्हारे जूते बनाने के काम आए, तो ख़ुशी से दे दूँ। चाहे तुमसे अलग हो जाऊँ, पर जिस घड़ी तुम पुकारोगे, कुत्ते की तरह दौड़ी आऊँगी। यह भूलकर भी न सोचना कि तुमसे अलग होकर मैं तुम्हारा बुरा चेतूँगी। जिस दिन तुम्हारा अनभल मेरे मन में आएगा, उसी दिन विष खाकर मर जाऊँगी। भगवान् करे, तुम दूधों न्हाव, पूतों फलो। मरते दम तक यही असीस मेरे रोएँ-रोएँ से निकलती रहेगी। और, अगर लड़के भी अपने बाप के हैं, तो मरते दम तक तुम्हारा जस मानेंगे।

यह कहकर पन्ना रोती हुई वहाँ से चली गई। रग्घू वहीं मूर्ति की तरह खड़ा रहा। आसमान की ओर टकटकी लगी थी, और आँखों से आँसू बह रहे थे।

(५)

पन्ना की बातें सुनकर मुलिया समझ गई कि अब अपने पौ बारह हैं। चटपट उठी, घर में झाड़ू लगाया, चूल्हा जलाया और कुएँ से पानी लाने चली। उसकी टेक पूरी हो गई थी।

गाँव में स्त्रियों के दो दल होते हैं—एक बहुओं का, दूसरा सासों का। बहुएँ सलाह और सहानुभूति के लिये अपने दल में जाती हैं, सासें अपने दल में। दोनों की पंचायतें अलग होती हैं। मुलिया को कुएँ पर दो-तीन बहुएँ मिल गईं। एक ने पूछा—आज तो तुम्हारी बुढ़िया बहुत रो-धो रही थी।

मुलिया ने विजय के गर्व से कहा—इतने दिनों से घर की मालकिन बनी हुई हैं, राजपाट छोड़ते किसे अच्छा लगता है। बहन, मैं उनका बुरा नहीं चाहती, लेकिन एक आदमी की कमाई में कहाँ तक बरकत होगी। मेरे भी तो यही खाने-पीने पहनने-ओढ़ने के दिन हैं। अभी उनके पीछे मरो, फिर बालबच्चे हो जायँ, उनके पीछे मरो। सारी जिंदगी रोते ही कट जाय।

बहू—बुढ़ियाँ यही चाहती हैं कि यह सब जन्म-भर लौंडी बनी रहें। मोटा-झोटा खायँ और पड़ी रहें।

दूसरी बहू—किस भरोसे पर कोई मरे। अपने लड़के तो बात नहीं पूछते, पराए लड़कों का क्या भरोसा? कल इनके हाथ-पैर हो जायँगे, फिर कौन पूछता है। अपनी-अपनी मेहरियों को मुँह देखेंगे। पहले ही से फटकार देना अच्छा है। फिर तो कोई कलक न होगा।

मुलिया पानी लेकर गई, खाना बनाया और रग्घू से बोली—आओ न्हा आओ, रोटी तैयार है।

रग्घू ने मानो सुना ही नहीं। सिर पर हाथ रखकर द्वार की तरफ़ ताकता रहा।

मुलिया—क्या कहती हूँ, कुछ सुनाई देता है? रोटी तैयार है जाओ न्हा आओ।

रग्घू—सुन तो रहा हूँ, क्या बहरा हूँ। रोटी तैयार है, तो तू जाकर खा ले। मुझे भूख नहीं है।

मुलिया ने फिर कुछ नहीं कहा। जाकर चूल्हा बुझा दिया, रोटियाँ उठाकर छींके पर रख दीं और मुँह ढाँक कर लेट रही।

ज़रा देर में पन्ना आकर बोली—खाना तो तैयार है, न्हा-धोकर खा लो। बहू भी तो भूखी होगी।

रग्घू ने झुँझलाकर कहा—काकी, तू घर में रहने देगी कि मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ? खाना तो खाना ही है, आज न खाऊँगा, कल खाऊँगा। लेकिन अभी मुझसे न खाया जायगा। केदार क्या अभी मदर्से से नहीं आया?

पन्ना—अभी तो नहीं आया, आता ही होगा।

पन्ना समझ गई कि जब तक वह खाना बनाकर लड़कों को न खिलाएगी और ख़ुद न खायगी, रग्घू न खायगा। इतना ही नहीं, उसे रग्घू से लड़ाई करनी पड़ेगी, उसे जलीकटी सुनानी पड़ेगी, उसे यह दिखाना पड़ेगा कि मैं ही उससे अलग होना चाहती हूँ, नहीं तो वह इसी चिंता में घुल-घुलकर प्राण दे देगा। यह सोचकर उसने अलग चूल्हा जलाया और खाना बनाने लगी। इतने में केदार और खुन्नू मदर्से से आ गए। पन्ना ने कहा—आओ बेटा, खा लो, रोटी तैयार है।

केदार ने पूछा—भइया को भी बुला लूँ ना?

पन्ना—तुम आकर खा लो। उनकी रोटी बहू ने अलग बनाई है।

खुन्नू—जाकर भइया से पूछ न आऊँ?

पन्ना—जब उनका जी चाहेगा, खायँगे। तू बैठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खा, तुझे इन बातों से क्या मतलब। जिसका जी चाहेगा खायगा, जिसका जी न चाहेगा न खायगा। जब वह और उसकी बीबी अलग रहने पर तुले हैं, तो कौन मनाए?

केदार—तो क्यों अम्माजी, क्या हम अलग घर में रहेंगे?

पन्ना—उनका जी चाहे एक घर में रहें, जी चाहे आँगन में दीवाल डाल लें।

खुन्नू ने दरवाज़े पर आकर झाँका, सामने फूस की झोपड़ी थी, वहीं खाट पर पड़ा रग्घू नारियल पी रहा था।

खुन्नू—भइया तो अभी नारियल लिए बैठे हैं।

पन्ना—जब जी चाहेगा खायँगे।

केदार—भइया ने भाभी को डाँटा नहीं?

मुलिया अपनी कोठरी में पड़ी सुन रही थी। बाहर आकर बोली—भइया ने तो नहीं डाँटा, अब तुम आकर डाँटो।

केदार के चेहरे का रंग उड़ गया। फिर ज़बान न खोली। तीनों लड़कों ने खाना खाया, और बाहर निकले। लू चलने लगी थी। आम के बाग़ में गाँव के लड़के-लड़कियाँ हवा से गिरे हुए आम चुन रहे थे। केदार ने कहा—आज हम भी आम चुनने चलें, ख़ूब आम गिर रहे हैं।

खुन्नू—दादा जो बैठे हैं।

लछमन—मैं न जाऊँगा, दादा घुड़केंगे।

केदार—वह तो अब अलग हो गए।

लछमन—तो अब हमको कोई मारेगा तब भी दादा न बोलेंगे।

केदार—वाह, तब क्यों न बोलेंगे।

रग्घू ने तीनों लड़कों को दरवाज़े पर खड़े देखा, पर कुछ बोले नहीं! पहले तो वह घर के बाहर निकलते ही उन्हें डाँट बैठता था, पर आज वह मूर्ति के समान निश्चल बैठा रहा। अब लड़कों को कुछ साहस हुआ। कुछ दूर और आगे बढ़े। रग्घू अब भी न बोला, कैसे बोले। वह सोच रहा था, काकी ने लड़कों को खिला-पिला दिया, मुझसे पूछा तक नहीं। क्या उसकी आँखों पर भी परदा पड़ गया है। अगर उसने लड़कों को पुकारा और वह न आए तो? मैं उनको मार-पीट न सकूँगा। लू में सब-के-सब मारे-मारे फिरेंगे। कहीं बीमार न पड़ जायँ। उसका दिल मसोस-मसोसकर रह जाता था, लेकिन मुँह से कुछ कह न सकता था। लड़कों ने देखा कि यह बिलकुल नहीं बोलते, तो निर्भय होकर चल पड़े।

सहसा मुलिया ने आकर कहा—अब तो उठोगे कि अब भी नहीं? जिनके नाम पर फाका कर रहे हो, उन्होंने मज़े से लड़कों को खिलाया और आप खाया, अब आराम से सो रही हैं। मोर पिया बात न पूछें मोर सुहागिन नाँव। एक बार भी तो मुँह से न फूटा कि चलो भइया खा लो।

रग्घू को इस समय मर्मांतक पीड़ा हो रही थी। मुलिया के इन कठोर शब्दों ने घाव पर नमक छिड़क दिया। दुःखित नेत्रों से देखकर बोला—तेरी जो मर्ज़ी थी, वही तो हुआ। अब जा ढोल बजा।

मुलिया—नहीं, तुम्हारे लिये थाली परोसे बैठी हूँ।

रग्घू—मुझे चिढ़ा मत। तेरे पीछे मैं भी बदनाम हो रहा हूँ। जब तू किसी की होकर रहना नहीं चाहती, तो दूसरे को क्या गरज है, जो मेरी ख़ुशामद करे। जाकर काकी से पूछ, लड़के आम चुनने गए हैं, उन्हें पकड़ लाऊँ?

मुलिया अँगूठा दिखाकर बोली—यह आता है। तुम्हें सौ बार गरज हो जाकर पूछो।

इतने में पन्ना भी भीतर से निकल आई। रग्घू ने पूछा—लड़के बग़ीचे में चले गए काकी, लू चल रही है।

पन्ना—अब उनका कौन पुछत्तर है। बग़ीचे में जायँ, पेड़ पर चढ़ें, पानी में डूबें। मैं अकेली क्या-क्या करूँ।

रग्घू—जाकर पकड़ लाऊँ?

पन्ना—जब तुम्हें अपने मन से नहीं जाना है, तो फिर मैं जाने को क्यों कहूँ? तुम्हें रोकना होता, तो रोक न देते। तुम्हारे सामने से ही तो गए होंगे?

पन्ना की बात पूरी भी न हुई थी कि रग्घू ने नारियल कोने में रख दिया और बाग़ की तरफ़ चला।*

(आगामी अंक में समाप्त)

प्रेमचंद

---

* बिना लेखक की आज्ञा के कोई महाशय इस कहानी का किसी भाषा में अनुवाद न करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार साहब

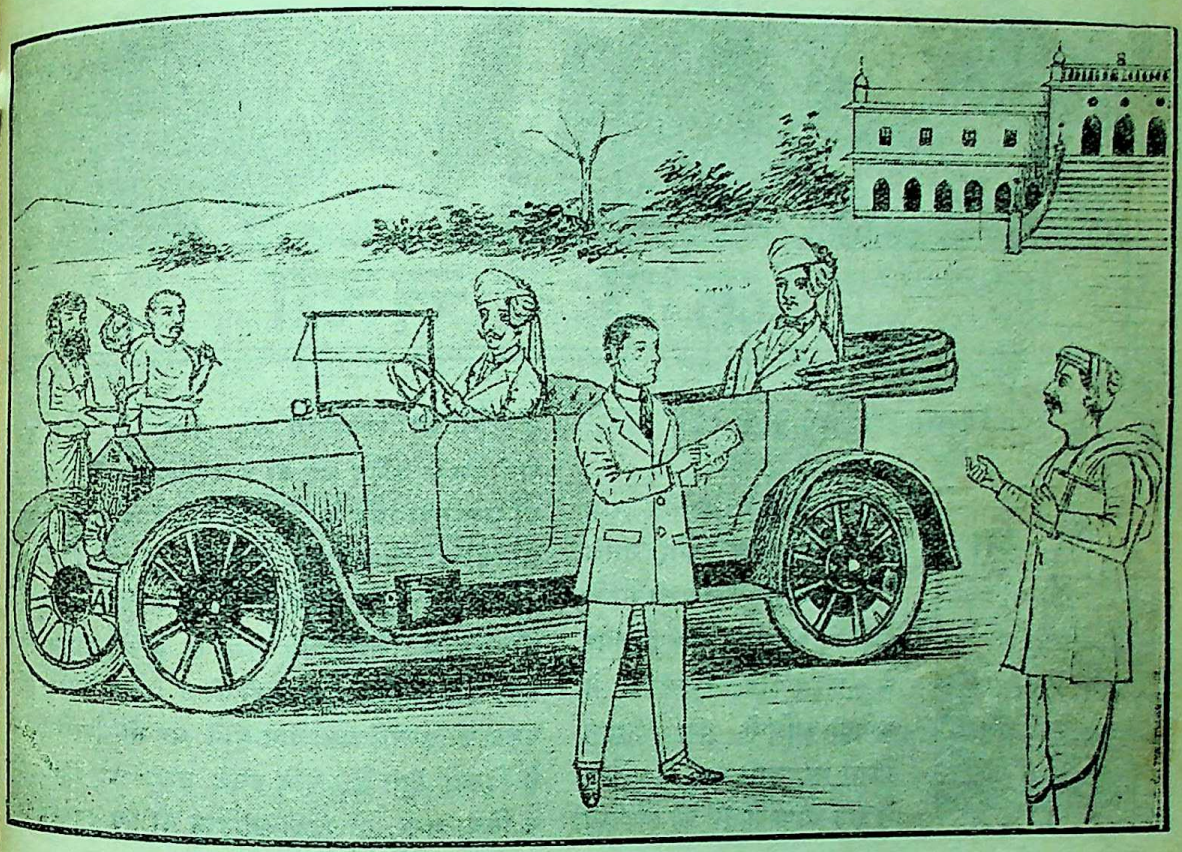

घर में भूँजी भाँग नहिं, मोटर पर असवार ;
होहिं तगादे मग चलत, भले बने सरदार ।

रामनारायण शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि - चर्चा

प्रेम-तरंग और उसके लेखक

आधुनिक हिंदी-समाज स्वर्गीय राय देवीप्रसाद "पूर्ण" और उनके "रसिक-समाज" से भली भाँति परिचित है। जिस कानपुर-नगर में आदि-कवि वाल्मीकि ने कविता-कामिनी का आह्वान किया था, उसी नगर में पूर्णजी ने राष्ट्र-भाषा हिंदी को अलंकृत करने में जो उद्योग किया, उसकी सराहना कौन नहीं करेगा ? अधिकतर लोगों का विश्वास है कि १८वीं और १९वीं शताब्दी में कविता का प्रवाह कम हो गया था, परंतु यह बात सत्य नहीं जान पड़ती। भारतीय नर-नारियों का जीवन सदा काव्यमय रहा है, और रहेगा। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस समय की रचनाएँ काल-गर्त में पड़कर नष्ट हो गई हैं। अब भी यदि भली भाँति खोज की जाय, तो प्रत्येक नगर में, प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक घर में कोई-न-कोई कविता-देवी का पुजारी मिलेगा।

१८वीं और १९वीं शताब्दी की कविताओं के नष्ट होने का मुख्य कारण मुद्रण-यंत्र का कम प्रचार, कवियों की उनके प्रति उदासीनता तथा जन-साधारण की अरुचि के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। नवीन सभ्यता ने लोगों को अकर्मण्य बना दिया है, और अब वे अन्वेषण के कठिन कष्ट की आवश्यकता नहीं समझते। वे तो उस सुख-स्वप्न में लीन हो गए हैं कि कविगण अपनी कृतियों को स्वयं उनके सम्मुख भेंट करेंगे। यही नहीं, उनकी यह प्रवृत्ति तो यहाँ तक परिमार्जित हो गई है कि जो पुस्तक चित्ताकर्षक ढंग से सुंदर काग़ज़ पर न छपे, उसका सत्कार ही नहीं होता। यही कारण है कि बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित होने पर भी विरले ही घरों में दिखाई देती हैं। यदि इनके उद्धार का शीघ्र उद्योग न किया गया, तो हिंदी-साहित्य की एक बहुमूल्य निधि सदा के लिये लोप हो जायगी।

कई वर्ष हुए, मुझे एक पंसारी की दूकान पर पूर्णजी का 'धाराधर-धावन', 'स्वदेशी कुंडल' तथा रसिक-समाज के रसिक कवियों की अनेक कृतियाँ मिली थीं। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ, और मैंने उन्हें रद्दी के भाव ख़रीद लिया। इन्हीं दीमक-चुंबित पुस्तकों में श्रीमन्नेलाल (व्रजचंद)-लिखित 'प्रेम-तरंग' भी प्राप्त हुई थी। मुझे जहाँ तक पता लगा है, व्रजचंदजी सुनार थे, और उनके वंशज अभी कानपुर में, चौक के पास, रहते हैं। आपके पिता का नाम जिवराखनलाल था। रसिक-समाज के अन्य सदस्यों की नाईं आप भी बड़े उदार और कविता-प्रेमी थे।

प्रेम-तरग में ११० छंद हैं, परंतु हैं सब एक-से-एक बढ़कर। हिंदी के नवीन कवियों का कथन है कि वे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोतल में नई शराब भर रहे हैं; परंतु इन प्राचीन पुजारियों ने स्वर्ण-झारी में जो अमृत भरा है, वह परम मनोहर है। यह नई बोतल की नई मदिरा सर्वप्रिय कदापि नहीं हो सकती, और भय है कि समय के अनिवार्य प्रभाव से नष्ट न हो जाय। लेकिन चाहे जो हो, यह झारियों का सुधा-रस तो सदा सुधा-रस ही रहेगा, और सब सहृदय पुरुषों को रुचिकर ही प्रतीत होगा।

व्रजभाषा ने वैष्णव-धर्म की उन्नति में जो हाथ बँटाया है, उसे कौन नहीं जानता। प्रायः सभी कवियों ने ईश्वर-कृष्ण और मानव-राधिका के गुणों का गान करके, उनकी ललित लीलाओं का बखान करके नर और नारायण का संबंध स्थिर किया है। वे राधा-माधव की महिमा का चारु चित्रण करना ही अपनी वाणी का ध्येय समझते थे। रसिक-समाज के वर्तमान सभापति रत्नेशजी के शब्दों में "रीझेंगे रसिक तो कहेंगे कबिताई, ना तो राधिका व्रजेस को अनूप गुनगान है।" यही उनका मंजु मनोरथ और विशद विचार था! उन्हें नाम प्राप्त करने की लालसा कभी नहीं सताती थी। उन्हें बड़े-बड़े डाक्टरों और साहित्य-महारथियों से भूमिका लिखाने का साहस नहीं होता था। निम्नांकित छंदों में व्रजचंदजी की भावना पूर्णतः झलकती है—

जो घनस्याम अहैं घनस्याम तौ, मो दृग नित्त बने रहैं मोर हैं;
जो सुखमा-सर सुंदर भृंग हैं, तो मम लोचन मीन-किसोर हैं।
जो दृग पंकज शोभा सने सुठि, तौ अखियाँ यह राजत भौंर हैं;
जो मुख रावरो चंद लसै, "व्रजचंदजू" तौ मम नैन चकोर हैं।

और भी—

चातक के हिय स्वाँति बसै जिमि मोरन के हिय मेघनमाला;
मीनन के हिय नीर बसै जिमि कामी-हिए में बसै नववाला।
भृंगन के हिय कंज बसैं, जिमि कोकिल के हिय बाग रसाला;
आठहूँ याम मेरे हियधाम, बसौ तेहि भाँति सदा नँदलाला।

आजकल के कुशल कवि कोमल कलित पल्लवों द्वारा काव्योद्यान को सजाकर पुराने तरुओं को उखाड़ फेकना चाहते हैं। उन्होंने प्राचीन कविता को भली भाँति कोसना आरंभ कर दिया है। उनकी नवीन भाषा में "वायु-मंडल बोझल होता है", "वृक्ष खिल उठते हैं", और एक अनोखी ही प्रकृति के दर्शन होते हैं। वे पूर्वजों के पवित्र परिश्रम को अपवित्र बताकर हँसी उड़ाते हैं, और स्वयं "उछल-उछल पड़ता था उसके कुसुमांगों से नवयौवन" तथा "उभरे यौवन को लाली" से अपनी बोतलों की सुरा को बहुरंगी बनाने में नहीं हिचकते! वास्तव में यदि देखा जाय, तो नायिका-भेद मनोविज्ञान का एक अंग है। जो लोग शृंगार-रस की कविता को भारतवर्ष की दुर्दशा का कारण मानते हैं, वे भ्रम में हैं। भारत की आधुनिक हीन दशा का उत्तरदायित्व तो उस समय के राजनीति-शून्य, वैभवहीन नरेशों और सामाजिक दुर्बलताओं पर है। समस्त विश्व-साहित्य में शृंगार-रस ही का प्राधान्य है, और रहेगा।

'प्रेम-तरंग' में प्रेम-रंग में रँगी नायिकाओं का भी कवि ने वर्णन किया है। उसे इस वर्णन में सफलता भी मिली है। नायिका-भेद के आचार्यों ने रूप-गर्विता का लक्षण लिखा है—

रूपगर्विता होत वह रूप-गर्व को धारि;
मों मुख चंदा-सम कहति अजब इ[illegible] नारि।

अब रसिक-समाज के एक रसिक कवि के द्वारा रूप-गर्विता का वर्णन देखिए—

दूती गई नँदनंदन की वृषभानु के भौन भरी मुद-मूल ह;
देखत राधिका ताहि कह्यो, हिय रे प्रगटी मम पीर अतूल है।
मो सुठि आनन की उपमा कही मोहन पंकज के अनुरूप है;
तौ "व्रजचंद" न हेरो करै किन रोज मगाय सरोज के फूल है।

कमल से मुख की उपमा देना क्यों ठीक नहीं है, इसका कारण पंडितवर केशवदासजी ने अपनी रामचंद्रिका में लिखा है। उन्होंने बताया है कि कमल और चंद्रमा से मुख की समता क्यों नहीं हो सकती।

होय जो कमल तो ये रैन में न सकुचै री,
चंद जो पै बासर न होय दुति मंद री।

चंद्रमा के लिये तो गुसाईं तुलसीदासजी ने भी बहुत-से कारण बताए हैं। अब रूप-गर्विता का दूसरा उदाहरण देखिए—

आनन रावरो चंद लखे "व्रजचंद" कलंक हमैं लगि जैहै;
त्यों चरचा करे मेरी कछू सिगरे व्रज चौचंद सौन सुनैहै।
मो तन हेरि हँसे मनमोहन हाँसी सखीन के ओंठन छैहै;
[illegible] जो मोहिं तौ गातन मेरे गोराई न रैहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब स्वयं-दूती का वर्णन व्रजचंद कवि की रसिक लेखनी द्वारा सुनिए—

साँझ भई मोहिं ढूँढ़त आजु,
समाय रह्यो उर में यह ख्याल है ;
सासु ननंद लरैं 'व्रजचंद',
जेठानिन सों न चलै कछु चाल है।
पैयाँ परौं अरु हाहा करौं,
एक आसरो तेरो हमैं नँदलाल है ;
आयकै दीजै हिराय इतै,
कहूँ दूरि परो मम मोतिनमाल है।

रति के वर्णन में भी कवि ने राधिका का कृष्ण के रूप में और कृष्ण का राधिका के रूप में चित्र-सा उपस्थित कर दिया है—

वे उनके धरे मोरपखा सिर वे उनकी धरे चंद्रिका प्यारी ;
वे उनकी सजे पीत पटी इत वे उनकी सजे सुंदर सारी।
देखत ही बन आवे छटा "व्रजचंद" मैं कुंजन जाय निहारी ;
भानुलली बने नंदलला अरु नंदलला बनी भानुदुलारी।

इस सुंदर छटा के साथ शब्दों की सजावट भी मन को बरबस अपनी ओर खींच रही है। मधुर भावों में व्रजभाषा की मिसरी मिली हुई देखकर तो "दाख दुखी मिसरी मुई सुधा रही सकुचाय।"

प्रेमियों का उराहना और पागलों का प्रलाप बराबर होता है। प्रेम के फंदे में मन को फसाकर यह कहना कि "मन फेर दो श्याम हमारौ हमें" कितनी वेदना प्रकट करता है। हृदय में अनुराग-अंबुधि उमड़ा पड़ता है। सचमुच इसकी गहराई का पता वही लगा सकते हैं, जिन्होंने कभी प्रेम किया हो, और नैराश्य के दर्शन किए हों! निर्दयी और छिछोरे लोग किस प्रकार प्रेम-कहानी आरंभ करते हैं, अच्छे-भलों को सुखद मार्ग से हटाकर कंटकाकीर्ण मार्ग में डाल देते हैं, उन्हें प्रेम की वारुणी पिलाकर सदा के लिये उन्मत्त बना देते हैं, और स्वयं तमाशा देखते हैं—

प्रथमै दिए फेरे नितै इतही छिनहू नहिं हाय बिसारयो हमैं ;
अब काहे इतो तरसाओ लला, बदनाम कियौ व्रजभारौ हमैं।
'व्रजचंद' दुरौ किन कुंजन में टुक दूर तैं नेकु निहारौ हमैं ;
छुपै प्रीति कौ तौ निबाहौ न तो मन फेर दो स्याम हमारौ हमैं।

हा! इतना अन्याय। जिन्हें प्रीति निबाहना न आता हो, वे कृपा करके प्रीति लगाना भी छोड़ दें। कबीरदासजी कहते हैं—

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ;
अघट प्रेम-पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय।

लोकोक्तियों का प्रयोग भी कविता में विशेष आनंद उत्पन्न कर देता है। अलंकार-शास्त्र के पंडितों ने लोकोक्ति को भी अलंकार माना है। व्रजचंदजी की कविता में लोकोक्तियों का रसास्वादन कीजिए—

श्रीमनमोहन के अनुराग रँगे दृग रावरे हैं सब गातन ;
काहे दुराव करौ हमसों हम जान लियो अलि बातन बातन।
है "व्रजचंद" प्रसिद्ध बखान करै किन ध्यानहिं ज्ञात है ज्ञातन ;
आम ह्वै हाट बिकाय है आय छिपै अँबिया कब लौं कहौ पातन।

इसी प्रकार "साप धजी को बनाय कहै", "बहती नदी पाँव पखारि ले री" और "ऊँची दुकान की फीकी मिठाई" इत्यादि लोकोक्तियों का भी प्रयोग कवि ने बड़े अच्छे ढंग से किया है। उद्धव द्वारा संदेश तो सभी कवियों ने भिजवाए, अब व्रजचंदजी जो उत्तर भिजवाते हैं, वह सुनिए—

तहाय धरौ इत जोग-कथाहि इतै "व्रजचंद" को प्रेम गँभीर ;
लखै केहिको कहौ नैनन मूँदि प्रतच्छ लखो दृग जो बल बीर।
न मोहन को अहै दोष कछूक अबै मम ऊधो फिरी तकदीर।
फिरे दिन फेरिके होइहैं फेरि त्यों नीर को नीर औ छीर को छीर।

व्रजचंदजी की कविता में कहीं-कहीं पर पुराने कवियों की भी छाया दिखाई देती है। कविवर मतिरामजी ने लिखा है—

आई हौ पाँय देवाय महावर कुंजन तैं करिकै सुख संचै ;
साँवरे आजु सँवारो है अंजन नैननि को लखि लाजत एचै।
बात के बूझत ही 'मतिराम' कहा करती मटू भौंहैं तनैचै।
मूँदी न राखत प्रीति अली यह गूँदी गुपाल के हाथ की बेचै।

अब व्रजचंदजी की कारीगरी देखिए—

अंगराग कियौ किन अंगन मैं किन मोतिन सों सिर माँग भरी ;
पग में दियौ जावक कौने कहौ मेंहदी कर में रचो ओप भरी।
किन गूँधी सुबेनी बताव सखी तोहिं सौंह कका की दै पूछौं खरी।
'व्रजचंद' सनेह दुरावति क्यों यह नाइन की नहीं कारीगरी।

मंडन कवि का निम्न-लिखित छंद वर्तमान सुरति-गोपना नायिका के उदाहरण में परम प्रसिद्ध है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलि हौं तौ गई जमुना-जल को,
सो कहा कहौ बीर बिपत्ति परी;
घहराइकै कारी घटा उनई,
इतने ही में गागरि सीस धरी।
रपट्यो पग घाट चढ्यो न गयो,
कवि 'मंडन' ह्वैकै बिहाल गिरी;
चिरजीवहिं नंद को बारो लला,
गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी।

इसी नायिका का वर्णन करते हुए ब्रजचंदजी लिखते हैं—

जमुना-जल लेन को आई हुती सु चली घर ज्यों घट को भरि ए;
बहुं ओरन सों घुरवागन छाय लगाय रहे जल की झरि ए।
रपट्यो पग नीर में बीर वही बदनाम करै ब्रजनागरि ए;
को बचावत प्रान हमारे, न जो गहतो ब्रजचंद दया करि ए।

दोनों कवियों के भावों में बहुत कुछ समानता है, परंतु "रपट्यो पग नीर में" लिखकर ब्रजचंदजी ने अपनी चतुरता का परिचय दिया है। घाट पर गिरने में बचाने की विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, जितनी जमुना के नीर में गिरने पर।

होली के अवसर पर कृष्णजी को पाकर एक सखी राधिका से कहती है—

फागु मच्यौ ब्रजबाथिन माँहि अलीन बुलायकै आजु समेटि ले;
चंचला-सी होरिहारन में धँसि धाय तुरंत अबै गहि फेंट ले।
कै रँग मों सरबोर अली 'ब्रजचंद' कपोल गुलाल लपेटि ले;
फेरि समय धौं मिलै न मिलै अब हीं मनमोहन को हँसि-भेंटि ले।

लेख के कलेवर-वृद्धि-भय से अधिक उदाहरण देना उचित न होगा। यदि ब्रजचंदजी के अन्य हस्त-लिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों का किसी प्रकार पता लग सके, तो अच्छा होगा।

के० पी० दीक्षित "कुसुमाकर"

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

मीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।

इससे बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।

नक़्क़ालों से सावधान रहिए

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-ख० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. काव्य

दौलत-बाग़-विलास—सपादक तथा प्रकाशक, श्रीयुत भास्कर-रामचंद्र भालेराव, मुरैना, ग्वालियर ; मूल्य ॥)

यह पुस्तक ग्वालियर-इतिहास-संशोधक ग्रंथ-माला का दूसरा पुष्प है। मूल-लेखक हिंदी-साहित्य के विख्यात 'शिव कविजी' हैं, जिन्होंने इसे महाराज दौलतराव सेंधिया को समर्पण किया था। वर्तमान संशोधक, संपादक तथा प्रकाशक श्री० भास्कर-रामचंद्र भालेराव हैं।

पुस्तक के नाम से ही उसका विषय ज्ञात होता है, और जिन महानुभावों को उद्यान से प्रेम है, उनके लिये अच्छी उपयोगी है। जिन विद्यार्थियों को कृषि-शिक्षा हिंदी में दी जाती है, उनके लिये भी यह पुस्तक लाभदायक होगी।

इस पुस्तक में सब विषय पद्य के रूप में लिखे गए हैं। इससे छोटी होने पर भी इसमें उद्यान-निर्माण तथा संचालन-विधि भली भाँति दर्शाई गई है। इसका विषय ५ भागों में विभाजित है।

प्रथम भाग में भूमि-परीक्षा, भूमि-सुधार, उचित-अनुचित वृक्षों का चुनाव, पौदों का पोषण, वनस्पति-चिकित्सा आदि विषयों का वर्णन है। इनके सिवा ग़ैर-मौसम में भी फल प्राप्त करना, भाँति-भाँति की रंग-बिरंगा कपास पैदा करना, बाँझ वृक्षों को फला देना, फलों के स्वाद में परिवर्तन कर देना, गुठली-रहित फल पैदा करना इत्यादि विषयों के उपाय भी दिए हैं, जिनमें से कुछ तो ठीक मालूम होते हैं, परंतु बहुत-से ऐसे हैं, जिनको वर्तमान अन्वेषण-सिद्धांतानुसार उपयोगी बताना ठीक नहीं जँचता। उनको सिद्ध करने के लिये प्रयोगों की आवश्यकता है। हाँ, अन्वेषण-कर्ताओं के विचार के लिये अच्छी सामग्री एकत्रित है।

द्वितीय भाग में, कौन-कौन-सी जाति के फूलदार और फलदार पौदों तथा वृक्षों का परस्पर पेबंद हो सकता है, एक ही पौदे पर भाँति-भाँति के फल-फूल उपजाना तथा पेबंद बाँधने के समय आदि का वर्णन है।

तृतीय भाग में, आसपास की वस्तुओं के निरीक्षण से निश्चय करना कि किस भूमि में कितनी दूरी पर जल प्राप्त हो सकता है, एवं कूप-निर्माण का मुहूर्त तथा दशा आदि का वर्णन बड़ी योग्यता से किया गया है।

चतुर्थ भाग में वृक्षों तथा फूलों की जाति का सविस्तार वर्णन है, और उद्यान-निर्माण अर्थात् उद्यान में किस स्थान पर निवास-स्थान बनाना चाहिए, कहाँ पर जल-कुंड और फ़व्वारे हों, और कौन-कौन-सी जगह पर किस-किस जाति के फल-फूल के वृक्ष लगाने चाहिए, जिससे उद्यान की शोभा झलक उठे—इत्यादि विषयों का वर्णन है।

पंचम भाग में मछलियों की जातियाँ दिखलाई गई हैं।

श्रीमान् भास्कररावजी का यह परिश्रम सराहनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिन्होंने इस पुष्प को पुस्तक-रूप में प्रकाशित कराया।

नारायण-दुलीचंद व्यास

× × ×

२. इतिहास

प्राचीन आर्य-वीरता—लेखक, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा; काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित; मूल्य १।)

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के हिंदी-साहित्य की ठोस उन्नति करने के प्रधान उद्योगों में मनोरंजन-पुस्तकमाला प्रकाशित करने का कार्य भी प्रशस्त और प्रशंसनीय समझना चाहिए। यह पोथी उसी माला का उनचासवाँ दाना है। प्रकाशक प्रयाग का इंडियन-प्रेस और पुस्तक-रचयिता हिंदी के पुराने साहित्य-सेवी श्रद्धेय मित्र महारथी पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी हैं।

राजपूताने की वीर-भूमि के चौदह नर-रत्नों के चरित्रों का इसमें दिग्दर्शन किया गया है। इसमें ऐतिहासिक भाग केवल कर्नल जेम्स टाड महोदय के "एनल्स ऐंड ऐंटीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान" के आधार पर लिखा गया है, किंतु भाषा इसकी चतुर्वेदीजी महाशय की है। भाषा बड़ी ओज-वर्द्धक है। पढ़ते-पढ़ते पाठक की नसें फड़क उठती हैं। हृदय में वीर-रस का प्रादुर्भाव होता है। उल्लिखित चरित्र-नायकों के चरित्रों की यदि आजकल के लोगों से तुलना की जाय, तो सचमुच बरबस लज्जा से सिर नीचे झुका लेना पड़ता है। "कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगा तेली"—बस, यही कहावत चरितार्थ होती है। जर्मन युद्ध के समय एक उच्चतम योरपियन अफ़सर ने, राजपूताने के राजपूतों के नाम लिखाने में आनाकानी करते देखकर, इन पंक्तियों के लेखक से कहा था—"क्या इनकी नस्ल में फ़र्क़ आ गया?" मैंने अवश्य ही इस सारगर्भित प्रश्न को एक ताना समझा, और उसी समय उत्तर दिया—"नहीं, नस्ल में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ा। आपके शासन के डेढ़ सौ वर्ष की चिर शांति ने इनको बिलकुल अकर्मण्य कर डाला है। गवर्नमेंट के साम्राज्य में किसी के पास शस्त्र नहीं, और देशी रजवाड़ों में जिनके पास शस्त्र हैं, उन्हें भी छोटे-मोटे जानवरों के शिकार के सिवा जब हथियार चलाने का अवसर ही नहीं मिलता, तब लड़ाई की मारकाट आँखों-देखकर इन्हें जड़ी आ जाय, तो आश्चर्य क्या है?" बस, यही दशा आजकल की जनता की है। ऐसी पुस्तकें पढ़कर यदि किसी के हृदय में किंचित् वीरता का संचार भी हो, तो वह बिलकुल क्षणिक है।

पुस्तक केवल 'टाड राजस्थान' के आधार पर लिखी गई है। साहबबहादुर ने अनेक स्थानों पर भारी-भारी भूलें की हैं। इससे अन्यान्य इतिहासों से मिलान करने का जब प्रयत्न नहीं किया गया, तब मैं इसे इतिहास-कोटि में नहीं मान सकता। हाँ, इतिहास-मूलक अवश्य है, और ऐसे रोचक शब्दों का प्रयोग किया गया है कि उपन्यास का-सा आनंद प्राप्त होता है।

हाँ, पृष्ठ ४० पर हम्मीर का विधवा-विवाह वाद-ग्रस्त है, और लेखक महाशय-जैसे कट्टर सनातनधर्मावलंबी सज्जन को चाहिए था कि अन्यान्य इतिहासों से मिलान करके इस विषय का स्पष्टीकरण करते। पृष्ठ ९७ में प्रतापसिंह के पत्र को उद्धृत न करने से अवश्य ही इसमें "परंतु" लग गया। पृष्ठ १४१ में राजसिंह का 'भगवाँ' झंडा नहीं होना चाहिए। भगवाँ झंडा शिवाजी का है, मेवाड़ का नहीं। पृष्ठ १८९ में अमरसिंह को काली टोपी के बदले काली पगड़ी देनी चाहिए थी। अमरसिंह के चरित्र में एक और भी त्रुटि है। इतिहास साक्षी दे रहे हैं कि उनके भय से बादशाह केवल महल में नहीं, ज़नाने में जा छिपा था, और खिड़की से निकलते हुए, पहले पैर निकालने में, उसके साले अर्जुन गौड़ ने उसके पैर काट डाले थे। सिर झुकाकर खिड़की से निकलने से अमरसिंह की ऐंठ में कमी आती जानकर उसने पहले पैर निकाले थे।

लज्जाराम

× × ×

३. स्त्रियोपयोगी

दंपति-परामर्श (सुखमय गृहस्थ के रहस्य)—प्रकाशक, हिंदी-भवन, लाहौर; मूल्य १।=)

जैसा कि प्राक्कथन से प्रकट है, प्रस्तुत पुस्तक डॉ० मेरी स्टोप्स की प्रसिद्ध पुस्तक Radiant Motherhood का हिंदी-छायानुवाद है। गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश करने के प्रथम नवदंपतियों की क्या-क्या उमंगें रहती हैं, प्रवेश होने के पश्चात् कौन-कौन-सी बाधाओं से घिर जाने का अंदेशा रहता है, उनसे बचने के उपाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हैं, गर्भाधान और संतान पर माता-पिता का प्रभाव, उनका लालन-पालन—आदि विषयों का बड़े सुंदर ढंग से निरूपण किया गया है।

छोटी-छोटी असावधानियाँ जीवन को कैसा विषमय बना देती हैं, इसका विवेचन मार्मिक और हृदयस्पर्शी है। पुस्तक नवदंपतियों के पढ़ने लायक़ है। अनुवाद की भाषा सुंदर है। सफ़ाई-छपाई भी अच्छी है। पुस्तक प्रकाशक से प्राप्त हो सकती है। मूल्य १।=) कुछ अधिक है।

× × ×

महिला-व्यवहार-चंद्रिका—लेखक, श्रीगंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०; प्रकाशक, रायसाहब रामदयाल अग्रवाल बुकसेलर एंड पब्लिशर, इलाहाबाद; साइज़ क्राउन सोलह पेजी; पृष्ठ १३२; मूल्य ॥।)

इस पुस्तक में १० अध्याय हैं। पहले में गृहस्थी का रहस्य और उसमें प्रेम की आवश्यकता बताई गई है। दूसरे में अविवाहित युवतियों के कर्तव्य और भावी जीवन-संग्राम में संयमी बनने की ज़रूरत दिखाई गई है। तीसरे में नवविवाहिताओं को पति के घर में चाल-चलन, रहन-सहन, बोलचाल आदि विषयों की शिक्षा दी गई है। चौथे में उन्हीं नवयुवतियों को शिशु-पालन और माता के कर्तव्य समझाए गए हैं। शेष अध्यायों में गृहस्थी-संचालन के ढंग, सौत और सौतेली माताओं के कर्तव्य, बाल-विधवा का सम्मान, पतित स्त्रियों को उपदेश और कुछ सामान्य शिक्षाएँ आदि विषय दिए गए हैं। पुस्तक स्त्रियों के लिये, ख़ासकर वयस्क कन्याओं के लिये, लाभप्रद और शिक्षाप्रद है। भाषा साफ़-सुथरी और मुहाविरेदार है। इच्छुक व्यक्ति प्रकाशक को लिखकर पुस्तक मँगा सकते हैं।

× × ×

अमेरिकन स्त्री-शिक्षा—अनुवादक, डा० महेंद्रलाल गर्ग; प्रकाशक, पं० छत्रपाल शर्मा, मालिक, सुख-संचारक कंपनी, मथुरा; पृष्ठ-संख्या ३२७, साइज़ क्राउन सोलहपेजी; मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक आठ अध्यायों में समाप्त की गई है। प्रत्येक अध्याय के अंदर कई-कई उपस्तंभ हैं। मूल-पुस्तक एक अमेरिकन स्त्री की लिखी हुई है। यह उसका हिंदी-अनुवाद है—ऐसा प्रकाशक महाशय की भूमिका से प्रकट होता है। परंतु पुस्तक के ऊपर अनुवादक न लिखकर "लेखक अमुक सज्जन" ऐसा लिखा गया है, जिसे हम उचित नहीं समझते। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक अमेरिका की परिस्थिति और अनुभवों के आधार पर लिखी गई है, फिर भी भारतवर्ष की स्त्रियों के लिये उसमें बहुत-सी ऐसी सामग्री है, जिससे शिक्षा ली जा सकती है—ख़ासकर नए विचार रखनेवाली युवतियाँ इससे समुचित लाभ उठा सकती हैं। भारतवर्ष के वातावरण को ध्यान में रखकर यदि स्त्रियों के लिये कोई मौलिक पुस्तक लिखी जाती, तो और भी अच्छा होता। सहायता तो लेखक महाशय दूसरे ग्रंथों से तब भी ले सकते थे। अनुवाद करने में असावधानी की झलक दिखाई दे रही है। भाषा भी लचर और बे-मुहाविरेदार मालूम होती है। काग़ज़ अच्छा है, छपाई अच्छी नहीं है। आशा है, प्रकाशक महाशय अगले संस्करण में इन त्रुटियों को दूर कर देंगे। यह सब रहते हुए भी स्त्रियों के लिये अन्य कूड़ापंथी प्रकाशित पुस्तकों से 'अमेरिकन स्त्री-शिक्षा' अधिक लाभदायक प्रतीत होती है। मूल्य भी बहुत उचित रक्खा गया है। जो सज्जन मँगाना चाहें, वे सुख-संचारक कंपनी, मथुरा को लिखें।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

४. प्राप्ति-स्वीकार

कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डॉक्टर एस्० के० बर्मन ने निम्नांकित वस्तुएँ भेजी हैं—

१. **केशराज-तैल**—मस्तिष्क को ठंढा और चित्त को प्रफुल्लित कर देता है। मू० १) शीशी।

२. **अर्क़ पुदीना**—ताज़े पुदीने को मात करता है। बदहज़मी, बादी और मिचली में गुणकारी है। मूल्य ॥।) शीशी।

३. **क्लोरोडिन**—पेट के मर्ज़ के लिये अच्छा है। परीक्षा करने पर संतोषप्रद फल मिलता है। मूल्य ॥) शीशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. संवत् १९८६ का पंचांग—(विना मूल्य वितरित) सदैव की भाँति नए वर्ष का पंचांग भी सुंदर और आवश्यक बातों से पूर्ण है।

उपर्युक्त वस्तुओं के प्रेषक महाशय को धन्यवाद। मिलने का पता है—

नं० ४, ताराचंददत्त-स्ट्रीट, कलकत्ता।

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ूनका स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

ठि० लारो रोल० जोरुसबर्ग (एम्० ए०)

१३।१२।२८

मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ। बच्चे की तबियत अच्छी है।

नारायणदास रामा—

ठि० मुकुर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर

बंबई—१३।१२।२८

आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ। अब दस मास का हुआ है।

अमृतलाल माषजी—

फ़ैज़पुर, (जि० खानदेश) ता० १०।१२।२८

आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ।

केशवजी माणिकचंद—

छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८

आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षुधा लगती और खाना भी हज़म होता है। अब पेट, पेड़ू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो। २२

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परदा-प्रथा

यह निर्विवाद है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति को पहचान उसकी महिला-समाज की स्थिति के द्वारा की जा सकती है। इस कथन के आधार पर यदि भारतवर्ष को वर्तमान दशा पर विचार किया जाय, तो स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्र में अभी बहुत अंशों तक कमी है। हमारे देश में उस कोटि की कितनी स्त्रियाँ हैं, जो प्राचीन आर्य-महिलाओं के मुक़ाबले में आ सकती हैं, अथवा जो अपनी शिक्षा, विद्या तथा निपुणता के आलोक में देश के भीतर वैसी संतानें उत्पन्न करती हैं, जिनके द्वारा भारतवर्ष के कल्याण की आशा की जा सके?

इस तरह तो इस देश के रहनेवालों में शिक्षा का अभाव वास्तविक परिस्थिति के समझने में बाधा अवश्य पहुँचाता है; किंतु जब हम स्त्रियों का प्रश्न उठाते हैं, तब उत्तर-भारत तथा विशेषतः बिहार में परदा की प्रथा, जिसके कारण हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बाह्य जगत् से अंतर्हित कर दी जाकर राष्ट्र-निर्माण के कामों से बेकार कर दी गई हैं, सबसे पहले हमारे ध्यान को आकृष्ट करता है। मैं यहाँ पर इस प्रथा के संक्षिप्त इतिहास को बतलाना उपयुक्त समझता हूँ।

हिंदुओं की दृष्टि में वैदिक काल की सभ्यता बड़ी उच्च कोटि की सभ्यता है। उस समय के सभी विषय आज-कल भी आदर्श माने जाते हैं। किंतु उस वैदिक काल में आर्य-स्त्रियाँ परदे में नहीं रहती थीं। नर-नारी सभी सुखमय सामाजिक जीवन व्यतीत करते थे। जो अधिकार पुरुषों के थे, वे सब स्त्रियों को भी प्राप्त थे। आज तो पंडित-वर्ग स्त्रियों के वेदाध्ययन में आनाकानी करता है, किंतु याद रहे, वेद की रचना में आर्य-स्त्रियों ने भी यथेष्ट भाग लिया था। और, यही कारण है कि गार्गी, मैत्रेयी-समान विदुषी महिलाओं से ही आर्यावर्त की उच्च प्राचान संस्कृति को, संसार की बीती अथवा वर्तमान सभ्यताओं में, इतना अच्छा स्थान दिया गया है। मुनियों के तपोवन में महिलाएँ पुरुषों के साथ रहती थीं। उनके अन्यत्र चले जाने पर आगंतुकों का स्वागत करती थीं। यज्ञ और हवन में साथ-ही-साथ पुरुष करती थीं। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष होता है कि जिन महान् ऋषियों ने हमारी सभ्यता की सृष्टि की थी, उनके विचार में स्त्रियों का परदे में रक्खा जाना कदापि अभीष्ट नहीं था।

उसके बाद ही महाकाव्यों का समय आता है। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय भी परदे का रिवाज़ नहीं हुआ था। रामायण में आपको मिलेगा कि महारानी कैकेयी महाराज दशरथ के साथ युद्ध-स्थल में गई थीं। चौदह वर्षों के वनवास में देवी सीता ने भगवान् रामचंद्र का साथ, रावण द्वारा हरे जाने पर ही, छोड़ा था। भगवान् श्रीकृष्ण के परामर्श से जब अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया, तब यादवों की सेना से घिर जाने पर, सुभद्रा अर्जुन के रथ का सारथी बनी थी। इस प्रकार युद्ध आदि की शिक्षा परदे के भीतर रहनेवाली स्त्रियों को नहीं मिल सकती थी, और न उपर्युक्त काम परदेनशीन स्त्रियों के लिये साध्य ही थे। लाक्षागृह के जल जाने पर, कुंती पांडवों के पर्यटन में साथ थी, और जब पांडवों का निर्वासन हुआ, तब देश-विदेश सभी स्थानों में द्रौपदी उनकी संगिनी बनी रही।

राजा दिलीप अपनी रानी के साथ, संतानोत्पत्ति की इच्छा से, वशिष्ठ-ऋषि की गउओं को चराते थे। कण्व मुनि के आश्रम में राजा दुष्यंत का आतिथ्य-सत्कार शकुंतला ही करती थी, तथा विवाह के बाद गौतमी को लेकर राजा के दरबार में शकुंतला स्वयं उपस्थित होती है। पिता के गृह न जाकर, अपनी इच्छा से, दमयंती ने राजा नल के साथ जंगल में विपत्तियों को सहा। राज-कुमारियाँ निस्संकोच स्वयंवरों में पति-वरण के लिये आती थीं।

भगवान् बुद्ध के उपदेश साम्यवाद के सिद्धांतों पर अवलंबित थे, और बौद्ध-काल में स्त्रियों और पुरुषों का समान अधिकार था। यह तो इतिहास की प्रसिद्ध बात है कि रानी यशोधरा, बुद्धत्व प्राप्त कर लेने पर, जब भगवान् कपिलवस्तु में आए, तब उनके शिष्य-समूह के साथ हो गई थी, और धर्म-प्रचार के लिये, पुरुष और स्त्री, दोनों को भिक्षु-संघ में लिया गया था।

इन विशिष्ट उदाहरणों को यदि छोड़ भी दें, तो भी जो मनुष्य हमारे संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करेगा, उसे विश्वास हो जायगा कि प्राचीन भारत परदे का हिमायती नहीं था। यदि पौराणिक काल में कहीं-कहीं परदे का ज़िक्र आया है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आर्यों का संबंध भारतवर्ष के बाहर के देशों से अति प्राचीन काल से चला आ रहा है, तथा इस देश पर शक, हूण आदि जातियों का कई बार आक्रमण हुआ था। ऐसी अवस्था में यह बहुत संभव है कि असुर-बैबिलोनियन-जातियों का प्रभाव (The influence of Sematic Civilization) हमारी सभ्यता पर पड़ा हो।

फिर जब ब्राह्मणों ने बौद्ध-धर्म को कुचलने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा दी थीं, तब उस क्रांति-काल में भी स्त्री-शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। शंकराचार्य और मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ में भारती मध्यस्थ बनाई गई। उसी समय में लीलावती के सदृश्य पंडिता महिला का आविर्भाव हुआ था। आप इन्हें अपवाद (Exception) कहकर उड़ा नहीं दे सकते। बल्कि ये सामान्यतः उन्नतिशील स्त्री-समाज (Generally advanced womanhood of the country) के दो नमूने हैं। किंतु आगे आकर जब धर्म तथा समाज का नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ लगा और बुद्धिवाद (Rationalism) का इस देश से निर्वासन हो गया, तब हो सकता है कि और-और धार्मिक तथा सामाजिक कड़ाइयों एवं नियंत्रणों के साथ हिंदू-स्त्रियों की स्वाधीनता को भी सीमाबद्ध करने की चेष्टा की गई हो। और, यही कारण है कि राजपूतों के समय में हम महिलाओं के कार्य-क्षेत्र को क्रमशः संकुचित होते हुए देखते हैं।

पर इस समय एक बात पर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है। वह यह कि इसी समय से मुसलमानों का आक्रमण इस देश पर होने लग गया था, और ज्यों-ज्यों मुसलमान इस देश पर चढ़ते आए, त्यों-त्यों परदा ज़ोर पकड़ता गया है। इसके दो कारण थे। एक यह कि परदा मुसलमानी सभ्यता में मौजूद था, और स्वाभाविक ही विजेता के गुण-अवगुणों का अनुकरण पराजित देश करने लग जाता है। दूसरी बात यह भी है कि बहुत स्थानों पर जब मुसलमानों का धार्मिक जोश सीमा को उल्लंघन कर गया, तो अबलाओं पर भी आक्रमण होने लगे, और तब स्त्रियों का परदे में रखना ही सुरक्षित समझा गया। यह बात तब और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हम देखते हैं कि आज तक भी उन प्रदेशों में (जैसे मदरास, मालावार, महाराष्ट्र इत्यादि), जहाँ मुस्लिम-प्रभाव कम पड़ा है, परदा नहीं माना जाता।

इधर जब सैकड़ों वर्षों से अविद्या ने इस देश में डेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल रक्खा है, और जनता मूर्ख हो गई, तो धर्म, समाज अथवा आचार-विचार के वे बंधन, जो कभी अच्छी नियत से भी चलाए गए थे, अब हमारी अवनति में और भी सहायक बन गए। पुरुषों के स्वार्थ तथा दबाव में पड़ कर स्त्री-समाज का और भी अधिक पतन हुआ। असली बातों के न जानते रहने से परदा-प्रथा का मतलब भी कुछ और ही समझा गया। बंधन में पड़ने से स्त्रियों के भाव दूषित और संकीर्ण होकर बहुत जगह केवल आडंबर में ही परिणत हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि गुरु, आत्मीय तथा परिचित लोगों को छोड़ कर अब प्रायः दूसरे लोगों से परदा करना आवश्यक नहीं समझा जाता। अब कहिए, जिस लज्जा, शील या मर्यादा की रक्षा के लिये परदा—जब कभी—चलाया गया होगा, क्या उसका पालन उसी के लिये हो रहा है। शुद्ध वायु, स्वच्छ और खुली धूप, निर्मल चाँदनी इत्यादि सभी वस्तुएँ स्त्रियों के लिये अप्राप्य-सी हो गईं। आजकल साधारणतः जन-परिवार में जब परिश्रम-साध्य कार्य नहीं रहे, तब स्त्रियों की तंदुरुस्ती का बिगड़ना तो मामूली बात है। फिर तो आश्चर्य ही क्या है, जब हमारी स्त्रियाँ निरंतर राजयक्ष्मा, निर्बलता इत्यादि सैकड़ों प्रकार की व्याधियों से हैरान रहती हैं, क्षीणकाय संतानें प्रसव करती हैं; सार्वजनिक स्वास्थ्य का प्रबलता से ह्रास हो रहा है। इसके सिवा मानसिक दुर्बलता, परावलंबन, निरुत्साह और परंपरा-गत संकीर्णता आदि अनेकों इस प्रकार की बुराइयाँ हैं, जो परदे के कारण आई अथवा बढ़ गई हैं। यहाँ पर यह जानना ज़रूरी है कि समाज के नीच कहे जाने-वाले घरों की स्त्रियों में परदा नहीं है। इधर शिक्षा तथा पाश्चात्य विचारों के प्रचार के साथ-ही-साथ समाज के प्रतिष्ठित और धनी कुलों की स्त्रियों में भी परदा धीरे-धीरे कम हो रहा है। तब केवल मध्य-अवस्था के साधारणतः कुछ कुलीन वंशों में ही परदे के रह जाने से कौन-सा उपकार होगा? इसलिये दूषित तथा मलिन सामाजिक वायुमंडल को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाने तथा संकीर्ण विचारों को परिष्कृत करने के लिये परदा हटाने की बड़ी ज़रूरत है।

यद्यपि परदे से मुसलमान भाइयों का भी संबंध है, तथापि यह प्रश्न ऐसा है, जिसे उन्हीं को हल करना पड़ेगा। मैं केवल उनके ध्यान को टर्की तथा अफ़ग़ानि-स्थान की ओर ले जाऊँगा। टर्की ने तो कमालपाशा की प्रेरणा से परदे का पहले ही बहिष्कार कर दिया था, और अफ़ग़ानिस्थान ने शाह अमानुल्ला और बेगम सोरिया के नेतृत्व में परदा हटाने का संकल्प किया है। इससे प्रकट होता है कि मुसलमानी धर्म में परदा अत्यंतावश्यक नहीं है। आज़ाद मुल्क के ख़याल भी आज़ाद होते हैं, और यही वजह है कि हिंदुस्थान के मुसलमानों ने परदे के विरुद्ध अभी तक कोई कोशिश नहीं की। अच्छा, तो मैं मुसलमानों के सामाजिक सुधार को उन्हीं के ऊपर छोड़कर केवल वही लिखता हूँ, जिससे हिंदू-समाज से यह प्रथा विना हानिकारक परिवर्तन के ही दूर हो जाय।

हिंदू-समाज ने यदि इसकी ओर पहले ध्यान नहीं दिया, तो इसका कारण यह था कि पुरानी बातों को हमारे देश के लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं। जब समाज के लोगों का ध्यान देश की दशा की ओर गया, तब उन्होंने अपनी सामूहिक शक्ति को स्वराज्य की लड़ाई में लगा दिया। किंतु जब उस ओर हम लोगों को पूरी सफलता नहीं मिली, तब हमारे नेताओं की समझ में आया कि राजनीतिक मामलों में असफलता का मुख्य कारण समाज के भीतर की कमज़ोरियाँ ही हैं। आए-दिन जब हिंदू और मुसलमानों में आपस के वैमनस्य के बढ़ने से जो विद्वेष-भाव पैदा हुए हैं, उन्होंने सामाजिक बुराइयों के हटाने के कामों को और भी उपयोगी सिद्ध कर दिया है। देश ने समझ लिया है कि जब तक अशिक्षा, असमानता, छुआछूत के विचार, बाल-विवाह, अनिवार्य वैधव्य (Enforced Widowhood) तथा धार्मिक असहिष्णुता हमारे यहाँ मौजूद हैं, तब तक इस शक्तिशाली ब्रिटिश-सरकार के मुकाबले में खड़ा होना दुराशा-मात्र है। इन्हीं बातों को विचार कर महात्मा गांधी के इशारे से, बिहार के नेताओं ने, परदा-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन आरंभ कर दिया है। गत ८ जुलाई को बिहार के समूचे प्रांत के पुरुष और महिलाओं की सम्मिलित सभाएँ की गई हैं, और इस आंदोलन का इस प्रकार श्रीगणेश हो चुका है। कुछ लोगों को आपत्ति है कि जब तक इसका अच्छी तरह प्रचार न हो ले, तब तक परदे का हटाना मानों समाज के भीतर और भी अशांति को पैदा करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। मेरा कहना यह है कि क्या आप उम्मीद करते हैं कि इस देश की संपूर्ण जन-संख्या अति शीघ्र शिक्षित हो जायगी, और देश तथा समाज के सभी कामों में दिलचस्पी लेने लगेगी? फिर जब ऐसा होना संभव नहीं है, तो क्या आप प्रतीक्षा में अकर्मण्य होकर बैठे रहेंगे? समय की प्रगति के अनुसार यह आंदोलन अब चल चुका है। अच्छा यही है कि यथा-साध्य हम लोग मार्ग की कठिनाइयों को दूर करते हुए आगे की ओर अग्रसर हों। यदि कहा जाय कि परदा के हटा देने से स्त्रियों के चरित्र और धार्मिक जीवन पर आघात पहुँचेगा, तब तो सीता और सावित्री की संतति के विषय में यह गौरवमय नहीं कहा जा सकता है। यदि नारी अपनी रक्षा नहीं कर सकेगी, आर्य-आदर्शों का पालन करने में असमर्थ होगी, तब तो परदे में रखकर इनकी ज़बरन् रक्षा करने का दावा भ्रम-पूर्ण और आडंबर-मात्र है। यदि समाज की कठिन परिस्थितियों में पड़कर, विपत्तियों का सामना करते हुए, हमारी महिलाएँ प्रलोभन की कसौटी से, खरे सोने के समान, इस क्रांति-युग में निकल आती हैं, तब तो हिंदू-सभ्यता के पुजारियों के लिये यह गर्व करने की होगी। हिंदुओं का कर्तव्य है कि इस प्रकार स्वतंत्रता के भावों से समाविष्ट विचारों को आगे रखते हुए, समाज के पुनर्संगठन के साधनों का आयोजन करें। योग्यता दिखलाने का अवसर देकर ही किसी को योग्य बनाना सबसे उत्तम साधन है। अतएव परदे के बाहर निकालते ही स्त्रियों की शिक्षा आप-ही-आप आरंभ हो जाती है।

जो लोग स्त्रियों के ऊपर अविश्वास करते हैं, उनसे मेरा पूछना है कि यदि आज तक हिंदू-सभ्यता ने अपनी बहुत कुछ पुरानी रीतियों और आदर्शों को नहीं खोया है, तो इसका श्रेय किसको है? ये हिंदू-ललनाएँ ही हैं, जिनके जीवन-पट पर, अशिक्षित रहने पर भी, रामायण और महाभारत के नीतिप्रद उपदेशों, हिंदू-शास्त्र के मर्मों, धार्मिक कृत्यों की ओर विश्वास-पूर्ण भक्ति तथा हिंदू-संस्कृति की विभूतियों के चित्र इस दृढ़ता के साथ अंकित हो गए हैं कि विपरीत विदेशी धाराओं में पड़कर भी, आर्यों की कृतियाँ आज तक संसार के सम्मुख समुपस्थित हैं। कोई संगठित तथा क्रमबद्ध शिक्षा के न होते हुए भी शताब्दियों से हमारी धर्म-पुस्तकें, हमारा साहित्य, हमारे महाकाव्य तथा भारतीय ऋषियों की तपस्या एवं उपदेश-मालाओं ने हमारी महिलाओं के हृदय में वे भाव भर दिए थे, जिससे उनके नसों में वह शक्ति प्रवाहित हो उठती थी कि राष्ट्रीय हलचल के समय में दुर्गावती, चित्तौर की पद्मिनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, छत्रपति शिवाजी की माता जीजीबाई, पृथ्वीराज की संयुक्ता, महाराज यशवंत की रानी महामाया तथा अहिल्याबाई के सदृश अलौकिक महिला-रत्न-समुदाय से भारत का स्वर्ण-मुकुट जगमगा उठता था। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आज इस परीक्षा के समय वे महिलाएँ चूक जायँगी।

यहाँ पर पुरुष-समाज का, जिसे महिलाओं के नेता बनने का अहंकार है, क्या कोई कर्तव्य ही नहीं है? सबसे पहले हम लोगों को समाज के भीतर पवित्रता तथा निरापदता के भाव को लाना होगा, और तभी परदे के विरुद्ध आंदोलन सफल हो सकता है। और, यह है पुरुषों ही का काम। जो रिवाज़, जो दूषित भाव अथवा जो शिथिलता हमारे यहाँ सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है, उसका हटाना यक-ब-यक नहीं हो सकता। पहले कुछ कठिनाई अवश्य होगी, किंतु तत्परता और कर्तव्य-ज्ञान सभी बातों को सहज बना देंगे। और, एक बात यह है कि परदा-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन जल्दीबाज़ी में नहीं हो रहा है, और न हम लोगों का उद्देश्य ही है कि पश्चिमी सभ्यता के आधार पर समाज का सुधार करें। हम लोगों को महिलाओं की शक्ति और योग्यता के अनुसार तथा अपने समाज के पूर्ण विकसित भावों से युक्त उपायों का अवलंबन करना पड़ेगा, जिससे हमारे उद्योग चिरस्थायी फल लावें, तथा स्त्रियों का बड़ा ही दृढ़ चरित्र-संगठन हो। अन्य शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा की भी बड़ी आवश्यकता होगी, और उसके लिये हम लोगों को बराबर प्रयत्न करना चाहिए। उसके बाद मेरा पूर्ण विश्वास है कि जो हिंदू-स्त्रियाँ अशिक्षिता, परावलंबिनी और संकुचित क्षेत्र में रहकर अपनी प्राचीन कीर्ति की रक्षा करती चली आई हैं, वे शिक्षिता होकर, स्वतंत्रता की हवा में पाली जाकर स्वाधीनता और स्वावलंबन के वायुमंडल में भी, अपनी तथा समाज की रक्षा कर लेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ उन्हें अपने गौरवमय अतीत का स्मरण हो आवेगा, जहाँ उन्हें और भी अधिकता से हमारे शास्त्रों और रामायण आदि महाकाव्यों के निर्मल और पवित्र उपदेशों को ग्रहण तथा हृदयंगम करने की शक्ति आ जायगी, जहाँ उन्हें बात-बात में परमुखापेक्षिता की ज़रूरत नहीं रहेगी, जहाँ उनमें निर्भीकता के भाव आ जायँगे, वहाँ पुरुषों को फिर उनके बचाव की चिंता नहीं रहेगी। और, इसका प्रभाव यह होगा कि हिंदू-समाज का पुराने सिद्धांत तथा आदर्शों के आधार पर इस प्रकार का संगठन हो जायगा कि मानों सचमुच पुनर्जागृति का युग आरंभ हो गया।

गयाप्रसाद सिंह

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

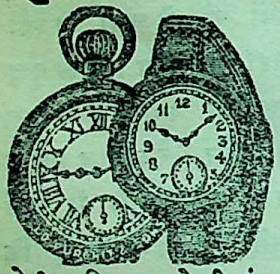

और दाद के अंदर चुरचुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की सेट निबवाली फाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ बी जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-खर्च ॥=) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-खर्च ।।।=) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-खर्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीजें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर

"मजलिसे हैरान केश तैल"

३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। जरा कर बालों को बढ़ाने और अमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तैल एक ही है। दाम १ शीशी ।।।), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-खर्च ।।।=) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख० १।।) १२ शीशी मँगाने से १ रिस्टवाच मुफ़्त इनाम डा० ख० २।)

१२ पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० २८८, कलकत्ता (आफ़ीस नं० ७१ क्लाइव स्ट्रीट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बाल-विनय

हे ईश ! तुम्हें हम ध्यावें ;
नित उठकर शीश नवावें।
वर दो यह हमको स्वामी ;
करुणाकर— अंतर्यामी ।
सुख पावें बंधु हमारे ;
कट जावें संकट सारे।
हम सबके बनें दुलारे ;
भू-माता के अति प्यारे।
दुष्कृति की नींव मिटावें ;
सत्कर्म्मों में मन लावें।
पातक - पाखंड हटावें ;
प्रिय धर्म-ध्येय अपनावें।
भ्रम-भय का भूत भगावें ;
साहसी वीर बन जावें।
उद्योग - कला - कौशल का ;
दें बजा लोक में डंका।
सबसे आगे बढ़ जावें ;
विजयी झंडा फहरावें।
मन में न तनिक घबरावें ;
सच्चे सपूत कहलावें।
सुख पावे देश हमारा ;
बंधन से हो छुटकारा।
"कवि नेह" यही आशिष दो ;
उर उत्साहों से भर दो।

शंभूदयाल त्रिपाठी "नेह"

× × ×

२. सुंदर कपड़े

एक छोटा-सा आदमी था। उसकी ग़रीब मा ने उसके लिये एक सुंदर रेशमी कुरता और कामदार टोपी बनाई। कपड़े हरे और सुनहरे थे—ऐसे सुंदर, मुलायम कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। कुरते में नए सोने के बटन थे, जो सितारों की भाँति चमकते थे। उन कपड़ों को पाकर वह बहुत ही ख़ुश और घमंडी हो गया। उन्हें पहनकर वह घंटों शीशे के सामने खड़ा रहा। वह इतना प्रसन्न और चकित था कि तब तक वहाँ से न हट सका, जब तक उसकी मा वहाँ से उसे घसीट न ले गई।

वह उन कपड़ों को हमेशा पहने रहना चाहता था, और हरएक को दिखलाना चाहता था। उसने उन स्थानों और दृश्यों के बारे में सोचा, जहाँ वह पहले कभी जा चुका था, और जिनको

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह देख चुका था। वह सोचने लगा—इन चमकदार कपड़ों को पहनकर उन स्थानों में कैसा लगेगा। वह हरी-हरी तृण-भूमि में घूमना चाहता था। लेकिन उसकी मा ने कहा—नहीं, इन कपड़ों को बहुत सँभालकर पहनो; क्योंकि फिर दूसरी बार तुमको ऐसा अच्छा कुरता और टोपी न मिलेगी। यह कपड़े तुम्हारे विवाह के समय के लिये हैं। इन कपड़ों को केवल बड़े-बड़े त्योहारों के दिन पहनने पाओगे। उसकी मा ने कुरते से बटन निकालकर, काग़ज़ के टुकड़े में लपेटकर रख दिए कि कहीं उनकी चमक न कम हो जाय।

उसकी मा ने कुरते के कामदार कफ़ों और गले में थोड़ा-थोड़ा कपड़ा टाँक दिया, टोपी पर एक मोटा-सा काग़ज़ चढ़ा दिया। यह सब उसे अच्छा न लगता था, लेकिन वह कर ही क्या सकता था। लाचार हो उसने कपड़ों को बंद करके रख दिया। लेकिन अब वह हर समय उन्हें पहनने के लिये सोचा करता। वह उन विशेष अवसरों की प्रतीक्षा करने लगा, जब वह स्वच्छंद होकर, अपनी पोशाक पहनकर घूमता फिरेगा। अहा! वह दिन कैसा होगा! सुंदर और अद्भुत!

एक दिन अपनी आदत के अनुसार वह कपड़ों के बारे में स्वप्न देख रहा था। उसने देखा कि बटनों के ऊपर से उसने काग़ज़ हटा दिया है, और उनकी चमक कम पड़ गई है। वह उनको रगड़-रगड़कर माँज रहा, लेकिन वे वैसे ही ज्योतिहीन हैं। वह जग पड़ा, बिछौने पर पड़ा-पड़ा सोचने लगा—कहीं सचमुच किसी बड़े अवसर पर ऐसा ही हो, बटनों की चमक-दमक कम हो जाय! यह विचार उसके हृदय में कई रोज़ तक खटकता रहा। जब दूसरी बार उसकी मा ने उसको कपड़े पहनाए, तो उसका जी मचल पड़ा। ज़रा-सा काग़ज़ फाड़कर उसने देखा कि बटन पूर्ववत् जगमगाते हैं, या नहीं।

कपड़ों ही के बारे में सोचता हुआ वह मेला देखने गया। उसकी मा उसको यह कपड़े त्योहारों या मेलों के दिन पहनने देती थी, जब बरसात का डर न होता था, न गर्द उड़ती थी, न बहुत धूप ही होती थी। उन बटनों पर काग़ज़ चढ़ा रहता और टोपी भी एक मोटे काग़ज़ से ढकी रहती थी। लौटकर वह उनको झाड़-पोंछकर और ठीक-ठीक तह लगाकर बंद कर देता था।

उसकी मा ने जो कपड़े पहनने की रोक की थी, उसे वह जानता था। परंतु एक रोज़ वह रात में जग पड़ा। उसने देखा—चाँदनी छिटक रही है। उसे यह जान पड़ा कि यह कोई मामूली चाँदनी नहीं है, न यह मामूली रात ही। इस विचित्र विचार में वह बिछौने पर पड़ा ऊँघता रहा। उसके हृदय में विचार-पर-विचार आ रहे थे, जैसे परछाईं में वस्तुएँ कानाफूसी करती-सी मालूम होती हैं। एकाएक चौंककर वह अपने पलँग पर उठकर बैठ गया। उसके हृदय में तूफ़ान-सा मचा हुआ था, और सारे शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई थी। उसने तय कर लिया था कि अब मैं अपने कपड़े पहनूँगा, जैसे कि पहनना चाहिए। इस बात में अब कोई शक नहीं था। वह डर रहा था, बहुत ही डर रहा था; परंतु खुश भी था बहुत ही खुश।

बिछौने से उतरकर खिड़की के पास खड़े होकर उसने बाग़ की ओर देखा। जान पड़ता था, चाँदनी की बाढ़ आ गई है। वायु में झींगुरों की तेज़ चिल्लाहट थी, और भी अन्य जीवों का रागालाप था। वह धीरे-धीरे कमरों को पार करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ बड़े कमरे में गया, जहाँ कपड़ों की संदूक़ें थीं। उसने संदूक़ खोलकर कुरता निकाला, तह खोली, और बड़ी बेचैनी से बटन के ऊपर के काग़ज़ को फाड़कर फेंक दिया। वह क्या करने जा रहा है, इस बात से वह स्वयं काँप रहा था। कपड़े उसी भाँति सुंदर और ठीक रक्खे थे। न एक भी बटन मैला हुआ था, न कुरते का एक तागा उधड़ा था। टोपी भी वैसी ही चमचमा रही थी। यह अनुभव आज उसे बहुत दिन बाद हुआ।

वह आनंद के वेग में रो पड़ा। जल्दी-जल्दी उसने उन्हें पहना, और लौट पड़ा। नीचे उतरने के पहले वह ज़रा देर तक बाग़ के सामनेवाली खिड़की के पास खड़ा रहा। चाँदनी में उसके वस्त्र चमक रहे थे, कमीज़ के बटन नक्षत्रों के समान टिमटिमा रहे थे। बहुत ही चुपके-चुपके सीढ़ी से उतरकर वह वाटिका में आकर खड़ा हो गया। सामने ही उसकी मा का कमरा था—बिलकुल सुथरा और सफ़ेद, जैसे दिन हो। पेड़ों का प्रतिबिंब काले फ़ीते की नाईं छोटे-छोटे आकार में भवन पर पड़ रहा था।

रात में बाग़ दिन का-जैसा नहीं था। चाँदनी झाड़ियों में उलझी हुई थी, और मकड़ी के जाल की तरह वृक्षों, छोटे पौदों और फूलों पर फैली हुई थी। प्रत्येक फूल—सफ़ेद, नीला, या लाल—चाँदनी में चमक रहा था, तथा वायु झींगुरों की गायन-ध्वनि से शब्दायमान थी। वे पेड़ों की गहराई में अदृश्य गा रहे थे।

संसार में उस समय अँधेरा नहीं था। उष्ण वायु चल रही थी। हवा से कंपित वृक्षों और पत्तियों की धुँधली परछाईं नीचे छोटे पौदों, क्यारियों तथा भूमि पर पड़ रही थी। और रातों की अपेक्षा आज की रात ज़्यादा गर्म थी। किसी कौतुक से आसमान अधिक चौड़ा जान पड़ता था, और ज़्यादा समीप आ गया-सा मालूम पड़ रहा था, यद्यपि हाथीदाँत के रंगवाला श्वेत चंद्रमा संसार पर राज्य कर रहा था, आकाश तारागणों से भरा था, जिनकी ज्योति मंद मालूम पड़ती थी।

उस छोटे आदमी ने इस असीम ख़ुशी में न गाया, न वह चिल्लाया ही। थोड़ी देर तक वह विस्मित खड़ा रहा, तब अनोखे ढंग से धीरे से चिल्लाया, और हाथ पसारकर दौड़ पड़ा। जान पड़ता था, वह पृथ्वी की अनंत गोलाई का आलिंगन कर लेगा। वह बाग़ के साफ़ रास्तों से नहीं चला, बल्कि क्यारियों में घुस पड़ा।

लंबे भींगे और ख़ुशबूदार ख़स और केवड़े के बीच में घुस पड़ा। तंबाकू के पेड़, कनेर, बेला और मालती के समीप से उनको रौंदता हुआ भागा। एक काँटेदार करौंदे की झाड़ी के पास पहुँचा, और ज़बर्दस्ती उसके भीतर घुस गया। यद्यपि काँटों से उसकी देह छिल गई, लहू बहने लगा, रेशमी कुरते के तागे निकल गए, और वह कई जगह फट भी गया था, टोपी का सुनहरा काम निकलकर लटकने लगा था, जंगली घास-फूस उसकी सारी देह पर चिमटी थी, तो भी उसने कोई पर्वा न की; क्योंकि वह तो केवल प्यारे कपड़ों के पहनने का परिणाम था, जैसी उसे लालसा थी—"मैं ख़ुश हूँ कि मैंने कपड़े पहने—अपने कपड़े पहनने से ख़ुश हूँ।"

झाड़ी के बाद वह बतख़ों के तैरनेवाले तालाब के पास पहुँचा। कम-से-कम दिन में जो तालाब ही था, लेकिन रात में वह गाते हुए मेंढकों की चिल्लाहट के साथ चाँदी-सी चाँदनी का बड़ा कटोरा था—अद्भुत चाँदी-सी ज्योत्स्ना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटोरा। वह छोटा आदमी उसके अंदर पैठ गया—छोटी-सी परछाईं उसके पीछे दौड़ रही थी। पानी कहीं-कहीं घुटनों तक था, कहीं कहीं कमर तक और कहीं-कहीं कंधों तक। दोनों हाथों से वह पानी को चुल्लू में भर-भरकर उछालने लगा, जिससे पानी में काली-काली और जगमगाती लहरें उठने लगीं।

फिर वह भीतर घुस गया, यहाँ तक कि वह तैरने लगा। सिंघाड़े की बेल और सेवार उसकी देह में चिमटी थी, पर उसे वह लंबा, टपकता और चमकता हुआ चाँदी का ढेर जान पड़ता था। तालाब की गीली मिट्टी और नरकुल सारे शरीर में लिपटे थे। वह बेहद ख़ुश और बेदम बाहर निकला। "मैं अत्यंत ख़ुश हूँ", उसने कहा—"मेरे पास ऐसे कपड़े थे, जो इस समय के उपयुक्त थे।"

वह तालाब के बाहर सड़क पर निकला। सड़क सीधी जा रही थी, जैसे तीर जाता है—सफ़ेद और चमकती सड़क। अपनी मा के प्यारे और अथक हाथों के बनाए हुए कपड़ों को पहने वह उसी सड़क पर चला। वह कभी दौड़ता, कभी उछलता हुआ चला। सड़क पर बालू बिछी थी, लेकिन उसके लिये वह सिर्फ़ मुलायम सफ़ेदी थी। जैसे ही वह दौड़ता हुआ जा रहा था, एक बड़ा-सा पतिंगा उसके उतावले, चमकते और भींगे शरीर के समीप आकर फड़फड़ाया।

पहले तो उसने उस पतिंगे की परवा न की। फिर उसने उसके ऊपर अपने हाथ नचाए। जब पतिंगे ने उसके सिर पर चक्कर लगाया, वह उसके साथ नाचा—"सुंदर पतिंगे!" वह चिल्ला उठा—"प्यारे पतिंगे! और, अद्भुत रात! संसार की अद्भुत रात! प्यारे पतिंगे! क्या तुम्हारी दृष्टि में मेरे वस्त्र सुंदर हैं?—वैसे ही सुंदर, जैसे तुम्हारी चमकीली पीठ और चाँदी के सफ़ेद कपड़े पहने हुए यह आकाश और पृथ्वी?"

पतिंगा उसके समीप तब तक चक्कर लगाता रहा, जब तक उसके मखमला पंखों ने उसके होंठों को चूम न लिया.....

दूसरे दिन वह छोटा आदमी मरा हुआ पाया गया। पत्थर के गड्ढे में उसकी गरदन टूट गई थी। उसके कपड़े थोड़े-थोड़े ख़ून में भींगे हुए थे और तालाब की मिट्टी और सेवार से ज़रा ख़राब और मैले हो गए थे लेकिन यदि तुम उसे देखते, तो उसका मुख इतना प्रसन्न पाते कि तुम्हें आश्चर्य होता।

राजीवनारायण शुक्ल

× × ×

३. उपालंभ!

क्यों भूल गए? बोलो तो,
सुंदर अतीत की घड़ियाँ;
ढीली न कभी क्या होंगी,
मेरे बंधन की कड़ियाँ!
अंतस्तल के दीवाने!
आतुर जीवन के प्यारे!
क्यों भूल गए तुम वे दिन,
आँखों से होकर न्यारे!
अंतर्वीणा बजती है,
सुन लो, किस आतुर स्वर में;
सारी स्मृतियाँ हो भूले,
तुम आह! एक ही पल में!
आँखों की वह मादकता,
यौवन-प्रभात की लाली;
लेकर, क्यों छलकाते हो,
जब पात्र पड़ा है ख़ाली!

श्रीरामनयन त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

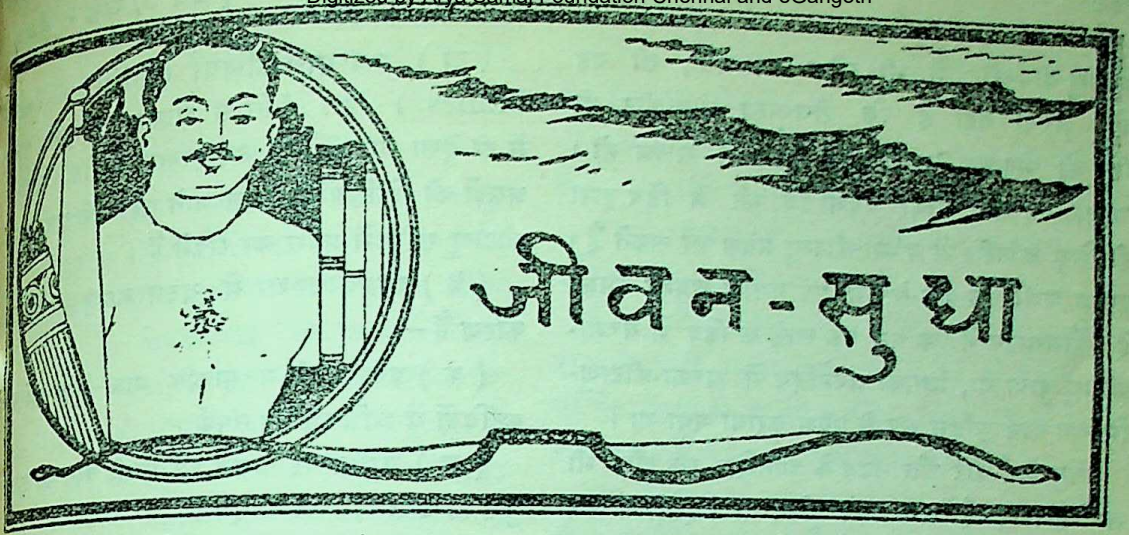

अन्य रोगों के साथ यक्ष्मा का संबंध

श्वास-मार्ग का किसी प्रकार का प्रदाह इसमें विशेष-रूप से अग्रगामी होता है। अन्य कीटाणु-जनित किसी प्रकार का ज्वर यक्ष्मा का सहायक होता है। ऐसी अवस्थाओं में यक्ष्मा का नूतन आक्रमण नहीं होता, बल्कि एक निर्धूमाग्नि का पुनः प्रज्वलन होता है। प्रमेह और यक्ष्मा में गहरी मित्रता है। अथवा यह कहिए कि किसी भी जीर्ण रोग के अंत में, प्राणी को "यमद्वारे महाघोरे सूर्यचंद्र विवर्जिते" तक पहुँचाने के लिये यक्ष्मा का ही आगमन होता है।

वक्षःस्थल, जानु एवं सिर में किसी प्रकार की चोट लगने पर स्थानीय यक्ष्मा का प्रादुर्भाव होता है, और ऐसी अवस्था में यक्ष्मा नए सिरे से नहीं होता, बल्कि जैसा पहले कहा गया है, पहले के आए हुए कीटाणुओं की प्रबलता हो जाती है; क्योंकि उन स्थानों की अवरोधिनी शक्ति चोट लगने के कारण कम हो जाती है। निम्न-लिखित रोग, यक्ष्मा के आक्रमण में अथवा अंतर्हित यक्ष्मा-केंद्र के विस्तार में, सहायता पहुँचाते हैं—

(क) कुछ नूतन श्वास-रोग—जैसे इन्फ्लुएंज़ा। फुफ्फुस-प्रदाह (Pneumonia) यक्ष्मा के रूप में नहीं परिवर्तित होता; किंतु जिस फुफ्फुस-प्रदाह के अंत में यक्ष्मा का आक्रमण होता है, वह आरंभ से ही यक्ष्मा का परिवर्तित फुफ्फुस-प्रदाह-रूप रहता है। यही बात फुफ्फुसावरण-प्रदाह और नलिका-प्रदाह (Bronchitis) के लिये भी सिद्ध है।

(ख) आजन्म-हृदय-रोग (Congenital Morbus Cordis)।

(ग) प्रमेह, मद्य-पान और अन्य यकृत एवं वृक्क-संबंधी शक्ति-क्षयकारी रोग।

(घ) त्रिदोष-ज्वर (Typhoid fever)।

निम्न-लिखित रोग यक्ष्माक्रमण के अवरोधक होते हैं—

(क) हृदय का एक विशेष रोग (Mitral Stenosis)।

(ख) वक्षःस्थल की बनावट में किसी प्रकार के परिवर्तन लानेवाले रोग—जैसे रिकेट्स-नामक अस्थि-रोग (Rickets)।

(ग) संधियों अथवा अस्थियों का यक्ष्मा-फुफ्फुस यक्ष्मा का अवरोधक होता है।

(घ) गठिया।

आक्रमण की रीतियाँ

(१) परंपरा-गत प्राप्ति (Heriditary Transmission)

इसके दो मार्ग हो सकते हैं—पुरुष के वीर्य-कीट (Spermatozoon) द्वारा या स्त्री के डिंब द्वारा। यद्यपि वीर्य में यक्ष्मा-कीटाणुओं का पाया जाना संभव है, तथापि वीर्य-कीट में उनका पाया जाना असंभव-सा है; क्योंकि वीर्य-कीट प्रायः शक्ति-केंद्र के ही बने रहते हैं, जिन्हें यक्ष्मा-कीटाणु ग्रस नहीं सकते। इसके अतिरिक्त यह मान लिया जाय कि यक्ष्मा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीटाणु वीर्य-कीट में भी प्रवेश कर गया, तो यह कोई ज़रूरी नहीं है कि रोग-ग्रस्त वीर्य-कीट ही डिंब को भेद कर, उसमें प्रवेश करने में सफल हो। अस्तु, यह मान लेना पड़ेगा कि स्त्री के डिंब द्वारा ही शिशु के शरीर में यक्ष्मा-कीटाणु प्रवेश कर सकते हैं। इसका अभी तक कम-से-कम एक प्रमाण अवश्य मिला है। वौमगार्टन ने एक बार एक खरहे के डिंब में यक्ष्मा-कीटाणु पाया था, जिसकी जननेंद्रिय में यक्ष्मा-कीटाणु-मिश्रित वीर्य कृत्रिम रूप से प्रवेश कराया गया था।

किंतु वीर्य-कीट और डिंब के अतिरिक्त एक और भी मार्ग है। वह है माता का दूषित रक्त। इसमें संचरण करनेवाले यक्ष्मा-कीटाणु कमल (Placeuta) को भेद कर गर्भस्थ शिशु के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यही मार्ग बहुधा काम में आता है; पर इस प्रकार का यक्ष्माक्रमण मनुष्यों में बहुत कम देखा जाता है।

वौमगार्टन और उसके सहकारी कार्यकर्ताओं का मत है कि नवजात शिशु में ये कीटाणु गुप्त रूप से छिपे रहते हैं, और अवसर पाते ही प्रकट हो जाते हैं। उनका कथन है कि ऐसे शिशु की अवरोधिनी शक्ति बहुत प्रबल होती है, जिससे ये कीटाणु शीघ्र ही प्रकट नहीं होने पाते।

(२) टीका द्वारा कीटाणुओं का प्रवेश (By innoculation)

(क) चर्म-मार्ग—इस मार्ग से बहुधा उन्हीं लोगों के शरीर में यक्ष्मा-कीटाणु प्रवेश कर सकते हैं, जिनका व्यवसाय मुर्दों एवं मृत पशुओं से संबंध रखता है—जैसे अंग-विकृति विज्ञान के शिक्षक (Demonstrators of Morbid anatomy), बूचर, चमड़े के व्यापारी इत्यादि। इनके हाथों में यक्ष्मा के दाने प्रादुर्भूत होते हैं, जो देखने में लाल पिंड-जैसे लगते हैं, और जिनमें यक्ष्मा-कीटाणु पाए जाते हैं।

सुन्नत के समय कभी-कभी यक्ष्मा-कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, और इस अवस्था में सुन्नत करनेवाले का दोष रहता है। कान में बालियाँ पहनने, यक्ष्मा-रोगियों के कपड़े धोने, इनके दाँत काटने और टूटे पीकदानों के मलने से भी यक्ष्मा का आक्रमण होता सुना गया है। गोटी के टीका लगाने के विरुद्ध आंदोलन करनेवालों ने इसके विरोध (टीके के विरोध) में यह भी एक कारण बतलाया था, किंतु उनकी धारणा सर्वथा निर्मूल थी।

(ख) श्लेष्मा-झिल्लियाँ (Mucou Membranes)—इस रीति से आक्रमण बहुधा बच्चों में ही देखा जाता है। उदाहरणार्थ—होठ, जिह्वा और मसूढ़ों की झिल्लियों के छिल जाने पर उनके द्वारा यक्ष्मा-कीटाणु शरीर में प्रवेश कर सकते हैं।

(३) बाल्यावस्था में यक्ष्माक्रमण—इसके कई कारण हैं—

(क) बच्चे, उनके यक्ष्माक्रांत माता-पिता एवं अन्य कुटुंबियों में अधिकाधिक संपर्क।

(ख) ज़मीन पर खेलने एवं किसी वस्तु को झट से मुँह में डाल लेने की आदत।

(ग) अन्य रोग—जैसे शीतला, खाँसी इत्यादि से बहुधा कमज़ोर हो जाना।

(घ) भोजन में अधिकांश दूध का होना।

(ङ) अन्य बालकों के साथ अधिक संपर्क।

इनका परिणाम—

(क) नूतन यक्ष्मा और मृत्यु।

(ख) कुछ दिनों के लिये रोगाक्रांत होकर फिर ठीक हो जाना।

(ग) जीर्ण यक्ष्मा।

(घ) प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के समय तक रोग का छिपा रहना।

(४) श्वास-मार्ग द्वारा आक्रमण—यक्ष्मा-रोगी के फुप्फुस से निर्गत वायु में नहीं, किंतु उसके मुँह से निकले द्रव-कणों में कीटाणु रहते हैं, जो धूल में मिलकर हवा के सहारे बहुत दूर-दूर तक फैल जाते हैं, और अन्य मनुष्यों के श्वास-मार्ग में प्रवेश कर पाते हैं। कौर्नेट ने कहा है कि यक्ष्मा-रोगी जान-बूझकर किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाता, किंतु अपनी अज्ञानता से ऐसा किया करता है। श्वास-मार्ग द्वारा आक्रमण के संबंध में निम्न-लिखित प्रमाण पाए जाते हैं—

(क) प्राथमिक यक्ष्मा-क्षत का, सभी रोगियों में प्रायः श्वास-मार्ग से ही संबंध रहता है।

(ख) उन संस्थाओं में, जहाँ लोगों को स्वच्छ वायु नहीं मिलती है, यक्ष्मा का प्रकोप अधिक देखा जाता है। इसके दो कारण हैं—एक तो परिमित वायु में अधिक कीटाणुओं का वर्तमान रहना; दूसरे, ऐसी परिस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने के कारण मनुष्य की अवरोधिनी शक्ति का नष्ट हो जाना।

(५) आहार-पथ द्वारा आक्रमण—

(क) घंटी द्वारा—पहले यह अवयव आक्रांत होता है। तदुपरांत कीटाणु गले की या वक्षःस्थल की लसीका-ग्रंथियों द्वारा, लसीका-स्रोत होकर, रक्त में प्रवेश कर जाते हैं, अथवा कोई आक्रांत ग्रंथि किसी फुफ्फुस-धमनी से सट जाती है, और इस प्रकार रक्त-नलिका की दीवार को तोड़कर बहुत-से कीटाणु रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। कीटाणुओं के रक्त में प्रवेश कर जाने पर बहुसंख्यक-यक्ष्मा (milliary tuberculosis) की संभावना रहती है। यदि इनकी संख्या कम हुई, तो वे फुफ्फुस-शिखर पर चढ़ने की चेष्टा करते हैं, जो इनकी वृद्धि के लिये बहुत ही उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार से शरीर में प्रवेश करने पर ये कीटाणु फुफ्फुस या अन्य स्थान में क्षत निर्माण कर लेते हैं, किंतु प्रवेश-स्थान पर इनका कोई चिह्न तक नहीं मिलता। बच्चों में आक्रमण की यह एक साधारण रीति है।

(ख) अंत्र द्वारा—अंत्र के आक्रमण के उपरांत फुफ्फुस-यक्ष्मा होने की बहुत संभावना रहती है। यह कहा जाता है कि प्रौढ़ावस्था का फुफ्फुस-यक्ष्मा बाल्यावस्था के अंत्र-यक्ष्मा—जो बहुधा कीटाणु-मिश्रित दूध पीने से होता है, और कुछ समय तक गुप्त रहता है—पर निर्भर है। ऐसी अवस्थाओं में अंत्र बहुधा क्षत पाया जाता है। अंत्र द्वारा आक्रमण दूध (कच्चा, कीटाणु-मिश्रित) पीने से ही होता है। पाश्चात्य देशों में पाश्चुरिज़ेशन (Pasteurisation)-क्रिया द्वारा दूध के यक्ष्मा-कीटाणु नहीं मरते। इसके लिये सबसे अच्छा उपाय है दूध को भली भाँति उबाल देना। यक्ष्मा-ग्रस्त पशुओं के मांस से इसके आक्रमण का भी भय रहता है।

(६) पुनराक्रमण—यह बहुधा प्रौढ़ावस्था में ही होता जाता है।

(७) विवाहोपरांत दंपति में एक दूसरे से आक्रमण की संभावना—पहले यह समझा जाता था कि वे एक दूसरे को रोग-ग्रस्त होने में बहुत सहायता देते हैं, परंतु अनुभवी लोगों का कथन इस प्रकार है—

(क) विवाहित स्त्री या पुरुष एक दूसरे से बहुत कम रोगाक्रांत होते हैं।

(ख) यदि होते भी हों, तो अन्य बाहरी कारणों के वर्तमान रहने से यह उपर्युक्त कारण छिप जाता है।

(ग) आक्रांत होने के लिये उपयुक्त प्रवृत्ति का वर्तमान रहना आवश्यक है।

(घ) जिन दंपतियों में स्त्री-पुरुष, दोनों को यह रोग होता है, उनमें बहुधा देखा गया है कि दो-तिहाई में तो रोग पहले से स्वतंत्र रूप से वर्तमान रहता है, किंतु एक तिहाई में वे एक दूसरे से ग्रहण करते हैं।

क्षत-विस्तार—जब यक्ष्मा का कोई केंद्र स्थापित हो जाता है, तब उसके कीटाणुओं की यही चेष्टा होती है कि वे जहाँ-तहाँ शरीर में फैल जायँ, यद्यपि इनके प्रवेश करने के साथ-साथ शरीर द्वारा क्षति-पूर्ति की भी कम या अधिक चेष्टा होती ही रहती है। यक्ष्मा-कीटाणुओं का विस्तार निकटवर्ती तंतुओं में, संपर्क के कारण, लसीका-स्रोत के विरुद्ध भी होता है, जैसा साधारणतः चर्म-यक्ष्मा में देखा जाता है। फुफ्फुस-यक्ष्मा में ये कीटाणु फुफ्फुस की लसीका-नलिकाओं में और श्वास-नली की लसीका-ग्रंथियों में प्रवेश कर जाते हैं।

इन मार्गों के अतिरिक्त यक्ष्मा-कीटाणु श्वास-मार्ग द्वारा या अन्य प्रकृत मार्ग द्वारा फैलते हैं, अथवा एक नली पर एक ओर से दूसरी ओर रक्त-नलिका की दीवारों के सहारे या रक्त-धारा में प्रवेश कर फैलते हैं। इस प्रकार यदि फुफ्फुस में यक्ष्मा-केंद्र हों, तो टेंटुए, वायु-नल और स्वर-नल में भी इसके नीड़ पाए जा सकते हैं, अथवा इन अवयवों से बढ़कर यक्ष्मा-कीटाणु फुफ्फुस पर आक्रमण कर सकते हैं। प्रकृत मार्ग द्वारा विस्तार का एक अच्छा उदाहरण है मूत्रेंद्रियों का यक्ष्मा। इसमें यक्ष्मा-कीटाणु अंड के निम्न-भाग से बढ़कर बस्ति और मूत्र-प्रणाली (Bladder and Ureter) द्वारा वृक्क में पहुँच जाते हैं। अंत्र-यक्ष्मा में ये कीटाणु अंत्र की श्लेष्मा-झिल्ली के सहारे एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचते हैं।

जब फुफ्फुसावरण, हृदयावरण या परिविस्तृत कला के गर्तों में यक्ष्मा-कीटाणु किसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं, तो तंतु-संपर्क द्वारा या लसीका-नलिकाओं के मार्ग से इनके संपूर्ण झिल्ली में फैल जाने की संभावना रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुधिर-धारा द्वारा यक्ष्मा का विस्तार साधारण क्रिया नहीं है। किंतु तो भी जब इसके कीटाणु किसी धमनी या सिरा को फोड़ डालते हैं, तब इस मार्ग द्वारा इसका विस्तार सहज हो जाता है। ऐसी अवस्था में क्षत-तंतुओं का कुछ भाग टूटकर रक्त-धारा में गिर जाता है, और एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रवाहित होकर भिन्न-भिन्न अवयवों को क्षत-ग्रस्त करता है। कभी-कभी लसीका-धारा में पड़े हुए कीटाणु रक्त-स्रोत में पड़ जाते हैं, और इस प्रकार भिन्न-भिन्न अवयव क्षत-ग्रस्त हो सकते हैं। इन्हीं अवस्थाओं में बहुसंख्यक यक्ष्मा (miliary tuberculosis) की उत्पत्ति होती है।

कमलाप्रसाद

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान बिना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू-मैं-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का भाव और निज स्वरूप तथा महिमा की पहिचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते ?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सकें। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ५)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,,
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़े की जिल्द का मूल्य ॥।)

स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं।

पता—श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

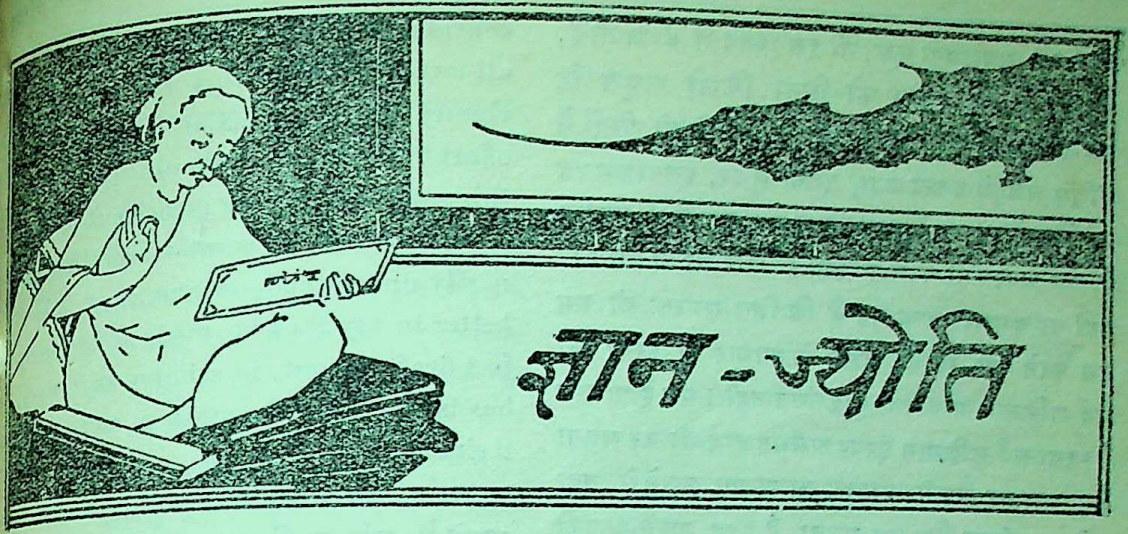

सृष्टि-कर्तृत्व पर विचार

सभ्यता के आदि-युग से, जब मनुष्य में विचार-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ होगा, सृष्टि-निर्माण-विषय की समस्या अकाट्य-रूप से उपस्थित रही है। संसार के सभी बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता इस पर अपना-अपना मत प्रकट कर चुके हैं; किंतु इस कठिन [illegible]म का कोई संतोष-प्रद उत्तर न अब तक मिला है, [illegible] मिलने की आशा की जा सकती है। हाँ, एक [illegible]त अवश्य है; एक मत दूसरे से अधिक युक्ति-[illegible]त हो सकता है। इसी दृष्टिकोण को लेते हुए हम [illegible]मपुरी'-विशेषांक, वर्ष ७, में प्रकाशित "ईश्वर और [illegible]नीश्वरवाद"-लेख पर अपने विचार पाठकों के सामने [illegible]ना चाहते हैं।

पृष्ठ १६ पर लेखक महोदयों ने लिखा है—"अब या [illegible] ऐसा मानना पड़ेगा कि बिना ईश्वर के संसार आप-ही-[illegible] बनकर नियम-पूर्वक स्थिर हो गया—क्योंकि उसे [illegible] उक्त दशा में अपने नेत्रों से देख ही रहे हैं—अथवा [illegible] कि बिना पदार्थों की सहायता के ईश्वर सदा से था, [illegible] अपनी इच्छानुसार उसने पदार्थों एवं संसार [illegible] रचना की। पहली बात के मानने में अकाट्य [illegible]चार सामने आती हैं, पर दूसरी में नहीं।" इस विशेष रूप से इसी बात पर विचार करेंगे कि दूसरी बात के मानने में कोई बाधा आती है, अथवा नहीं।

(१) आप स्वयं लिखते हैं कि "क्या किसी ने गेहूँ के पेड़ में आलू पैदा होते देखे हैं, अथवा बैंगन के पेड़ में चिरौंजी उत्पन्न हो सकती है?" अर्थात् प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव निश्चित है, जिसके विपरीत नहीं हो सकता। सृष्टि में यह नियम देखने में आता है कि माता-पिता के बिना मनुष्य नहीं उत्पन्न हो सकता, इस कारण स्त्री-पुरुष अनादि सिद्ध होते हैं। मनुष्य की स्थिति के लिये स्थान की आवश्यकता है, इस कारण स्थान अनादि ठहरा। मनुष्य-जीवन के लिये अन्न, जल और वायु अनिवार्य पदार्थ हैं, अतः यह भी सदा ही से होने चाहिए। मनुष्य श्वासोच्छ्वास द्वारा जो दुर्गंधित वायु निकालता है, यदि उसको परिष्कृत करने का सृष्टि में कोई साधन न होता, तो शुद्ध वायु का सेवन दुःसाध्य हो जाता। अतएव वनस्पति-काय का अनादि होना स्वतः सिद्ध हो जाता है; क्योंकि विज्ञानवादियों ने प्रयोगों द्वारा यह दिखला दिया है कि वायु की शुद्धि पेड़ों द्वारा ही होती है। जिस प्रकार वायु-शुद्धि के लिये वृक्षों की आवश्यकता है, उसी प्रकार जल-शुद्धि के लिये सूर्यदेव की आवश्यकता है। इन दलीलों से संसार अनादि सिद्ध होता है।

(२) किसी भी पदार्थ के उत्पन्न अथवा नाश होने का कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। संसार में हम जिसे उत्पत्ति और विनाश समझते हैं, वह वास्तव में केवल पदार्थ का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सबसे बड़ी भूल, जो इस विषय में की जाती है, वह यह है कि ईश्वर को विना किसी सबूत के सर्व-शक्तिमान् मान लिया जाता है। आपके ही शब्दों में "जिस सत्ता में इतना बड़ा, इतना सुंदर, इतना क्रमबद्ध एवं नियमों पर चलनेवाला संसार बना डालने की सामर्थ्य है, वह अवश्य ही परम शक्तिशाली और महान् होगी।" यहाँ पर हमारा कहना यह है कि जिस समस्या को हम हल करने जा रहे हैं, उसी के आधार पर ईश्वर को सर्व-शक्तिमान् मान लेना युक्तिसंगत नहीं। यह हेत्वाभास है। क्या सर्व-शक्तिमान् ईश्वर असंभव कार्य भी कर सकता है? क्या वह अपनी बराबरी का अथवा अपने से बड़ा शक्तिमान् ईश्वर पैदा कर सकता है, या अपने-आपको नाश कर सकता है? यदि नहीं, तो वह क़ादिर मुतलक़ नहीं हो सकता। ईश्वर में असंभव शक्तियाँ किसी हेतु से नहीं सिद्ध हो सकतीं।

(४) यदि ईश्वर अनादि है, तो अन्य वस्तुओं का भी अनादि होना सिद्ध हो सकता है।

(५) यदि ईश्वर अनादि है, तो पदार्थों को उत्पन्न करने से पहले हमेशा से उसकी पदार्थ पैदा करने की शक्ति को किसने स्तंभित कर रक्खा था, और उस शक्ति का एकाएक आविर्भाव कैसे हो गया? एक विद्वान् के निम्न प्रश्न विचारणीय हैं—

"Why should there be a change in the state of affairs which had prevailed till then? Does God also change His attitude from a non-creative to a creative one?"

(६) आप स्वतः आगे चलकर आकाश और काल को अनादि मानते हैं, तो स्थूल पदार्थों की उत्पत्ति शून्य आकाश से होना असंभव है; क्योंकि एक ही शून्य से नाना प्रकार के भिन्न प्रकृत पदार्थों की उत्पत्ति मानना कल्पनातीत है।

(७) वैज्ञानिक विकासवाद के सिद्धांतानुकूल संसार के प्रत्येक प्राणी ने क्रमशः उन्नति की है। आज विज्ञान-जगत् में यह बात पूर्ण-रूप से मानी जा रही है। ऐसी दशा में एन्० सुब्रह्मण्य अय्यर एम्० ए०, प्रेसिडेंट "मानव-विज्ञान-विभाग" इंडियन-साइंस-कांग्रेस, सन् १९२६, के निम्न शब्द बड़े मार्के के हैं—

"If that intellegent First Cause all that we consider God to be, omnipotent, omnisci[illegible] all-merciful, why this slow, painful [illegible] clumsy unfolding? Can He not do it by [illegible] effort? Again, why should He create [illegible] thing *out* of another, rather out of the [illegible] of another, which is what evolution, as ord[illegible]narily understood, means.....Is it [illegible] better to say that he made a bad or imper[illegible]fect draft at first, in a hurry as it were, [illegible] has been endlessly erasing and improv[illegible] it since?"

अर्थात्, सर्व-शक्तिमान् परमात्मा, जिसे हम सब [illegible] मानते हैं, सृष्टि का विकास इस भद्दे क्रम से क्यों [illegible] है? एक पदार्थ के भग्नावशेषों द्वारा दूसरे पदार्थ [illegible] रचना करता है, क्या इसका यह अर्थ नहीं कि परमा[illegible] पहले जल्दी में एक ख़राब और अधूरा-सा ढाँचा [illegible] लेता है, और फिर पीछे से अनंत काल तक उसे [illegible] सुधारा करता है?"

(८) बुद्धिमानों का प्रत्येक कार्य किसी प्रयोजन [illegible] हुआ करता है। ईश्वर ने संसार किस उद्देश्य से रचा? क्या इसमें उसका कोई निजी लाभ है? क्या उ[illegible] मनुष्यों को अपनी आत्मप्रशंसा के लिये रचा? [illegible] भी नहीं हो सकता; क्योंकि संसार में ऐसे भी मनुष्य [illegible] जो उसके अस्तित्व तक को नहीं मानते। इसके अ[illegible]रिक्त ईश्वर चापलूसी-पसंद भी नहीं हो सकता।

(९) ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने से उसकी सर्व[illegible]ज्ञता और सर्वतो-दयालुपने में दोष आता है। [illegible] सुब्रह्मण्य अय्यर अपने उपर्युक्त भाषण में कहते हैं—

"But He that gave free-will must have known *how* His creature was going to use his free-will, and knowing it, He should not have given free-will to be mis-used, consistently with ordinary fairness, not to s[illegible] fatherliness. If, however, He did not know what was going to happen, and if He is to plead like an ordinary parent who says 'I *did* give a revolver to my son and did give him the liberty to use it, but I did not bargain for his *misusing* it'—God cannot

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

claim any greater omniscience or all-mercy than that parent."

अर्थात्, जिस सर्वज्ञ परमात्मा ने मनुष्य को स्वतंत्र कार्य करने का अधिकार दिया, वह यह तो जानता ही होगा कि मनुष्य मेरी इस दी हुई स्वतंत्रता का किस प्रकार दुरुपयोग करेगा। ऐसा जानकर क्या उस पिता कहलानेवाले परमात्मा को यह उचित था कि जगत् में इतने पाप होने के लिये वह मनुष्य को यह स्वतंत्रता देता? और, यदि ईश्वर को इस होनेवाली अवस्था का पूर्व-ज्ञान नहीं था, तो वह सर्वज्ञ ही कहाँ रहा!

(१०) सृष्टि का बनाना और बिगाड़ना (प्रलय करना) कुछ युक्तिसंगत नहीं जँचता। यदि सृष्टि बनाने से कोई लाभ है, तो फिर बिगाड़ता क्यों है? और, यदि हानि है, तो उसे बनाया ही क्यों?

(११) आधुनिक विज्ञानवाद की आशातीत उन्नति हुई है, और हो रही है। उसका एक-मात्र कारण है वैज्ञानिकों का हठग्राही न होकर युक्तिसंगत विचारों का अपनाना। विज्ञानवाद ने युक्तियों द्वारा संसार को स्वतः सिद्ध प्रमाणित किया है। प्रो० एलबर्ट आइंसटाइन (सापेक्ष्य-वाद के जन्मदाता) ने, जो आधुनिक भौतिक विज्ञान के एक अद्वितीय विद्वान् हैं, गणित-शास्त्र द्वारा यह प्रमाणित किया है—

"Space and time would vanish into nothing if there were no matter. It is in matter that our world of perception originates."

"अर्थात्, यदि विश्व में पदार्थ का सर्वथा नाश हो जाय, तो आकाश और काल भी विलीन हो जायँगे। पदार्थ के ही सहारे हमें आकाश और काल का ज्ञान होता है।" दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि यदि आकाश और काल अनादि हैं, तो पदार्थ भी अनादि है।

जो हमारा अभीष्ट था, वह हम लिख चुके। यह विषय बड़ा गहन है। हम नहीं जानते, हमारी युक्तियाँ कहाँ तक ठीक हैं। हम आशा करते हैं कि इन युक्तियों पर कोई अन्य महानुभाव भी अपने विचार प्रकट करेंगे, ताकि हमें भी लाभ उठाने का मौक़ा मिले। अंत में केवल इस बात पर अपना विचार और प्रकट करना चाहते हैं कि "प्रत्येक वस्तु का स्वभाव आप-ही-आप कैसे स्थिर हो सकता है।" यह एक विचारणीय प्रश्न "ईश्वर और अनीश्वर-वाद" के लेखकों ने उठाया है। हमारे विचारानुसार "वस्तु-स्वभाव" का अर्थ उस वस्तु का function (कार्य) है, (the particular mode of existence of a substance)। कोई पदार्थ अपने कार्य से रहित होकर अपना अस्तित्व नहीं क़ायम रख सकता। अग्नि यदि अपनी उष्णता-उत्पादक क्रिया को छोड़ दे, तो अग्नि ही नहीं कहीं आ सकती। ऐसी दशा में 'वस्तु-स्वभाव' को स्थिर करने के लिये किसी ज्ञान-युक्ति शक्ति की आवश्यकता नहीं। यदि कोई वस्तु केवल ईश्वरीय आज्ञा के बल पर कार्य करती है, तो उसे वस्तु ही नहीं कह सकते।

ईश्वर में सृष्टि-कर्तृत्व आरोपण करनेवाले, विश्व की आदि दशा का कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं दे सके हैं, जैसा निम्न श्लोक से विदित होता है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

(मनु०, अ० १, श्लो० ५)

(यह विश्व अंधकारयुक्त, लक्षणों से रहित, संकेत के अयोग्य, तथा तर्क द्वारा और स्वरूप से जानने के अयोग्य, सब ओर से निद्रा की दशा में था)—इसके बाद परमात्मा ने विचारा—"एकोऽहं बहुस्याम्"

अंत में फिर हम माननीय सुब्रह्मण्य अय्यर के शब्दों में ही लेख की इतिश्री करते हैं—

"If we can take *some* one thing, matter, or person, to be our Creator, Preserver, and Destroyer, what is the difficulty in taking *all* things in their totality as their own creator, preserver, and destroyer, in fact as the one and true God."

घासीराम जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

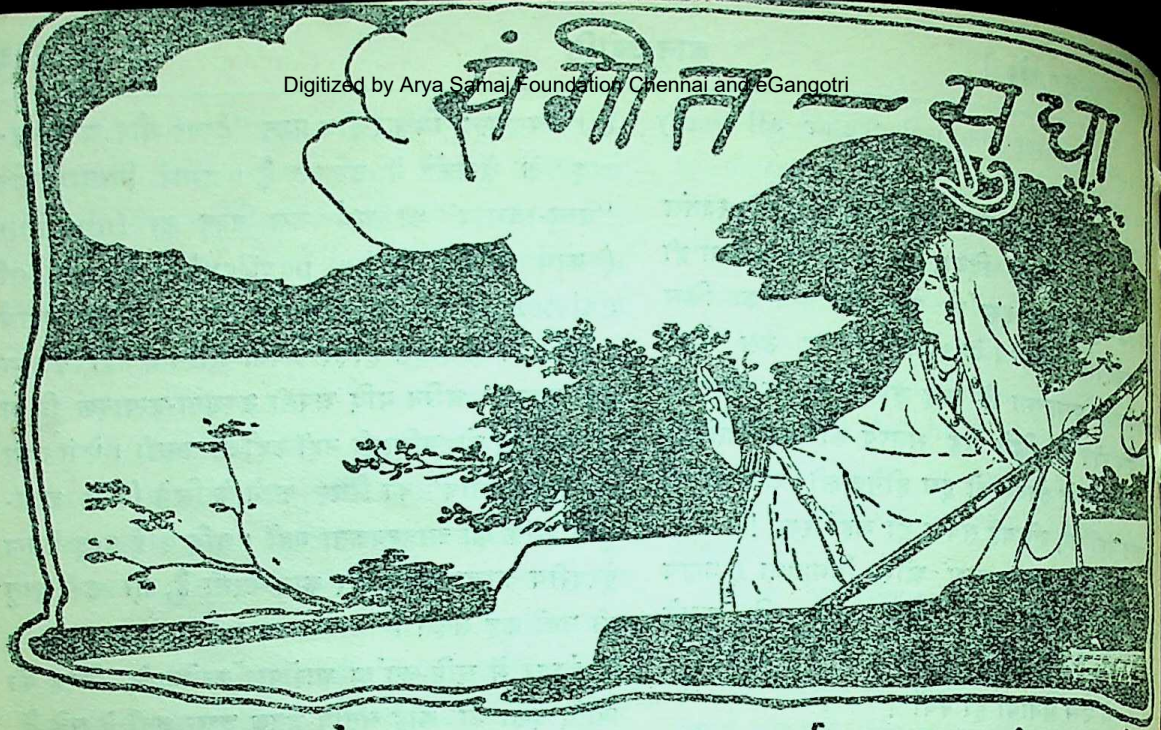

शब्दकार—अज्ञात] [स्वरकार—श्रीराजाराम भार्गव

राग तिलक-कामोद—त्रिताल (मध्य लय)

मग में झगरो करत अरे,
पनघट को चली जात गोरि,
समझावत समझत नाहीं आलि
ऐ मोरी, ऐसो निपट अनारि।

स्थाई

३				०				१				×			
							र		ध						स
स	र	—	र	र	ग	—	ग	म	प	—	म	ग	रे	ग	म
ग	में	ऽ	झ	ग	रो	ऽ	क	र	त	ऽ	अ	रे	ऽ	ऽ	ग
	ग				म		र		ध						म
स	र	—	र	र	ग	—	ग	म	प	—	म	ग	—	—	प
ग	में	ऽ	झ	ग	रो	ऽ	क	र	त	ऽ	अ	रे	ऽ	ऽ	
			प					ग	र					स	स
म	म	—	म	ग	र	ग	स	र	ऩ	—	ऩ	स	—		म
न	घ	ऽ	ट	को	ऽ	ऽ	च	ली	आ	ऽ	त	गो	ऽ	रि,	

अंतरा

३				०				२				०			
म	म	प	प	न	न	सं.	सं	रं	रं	न	—	सं	—	सं	सं
स	म	झा	ऽ	व	त	स	म	झ	त	ना	ऽ	हीं	ऽ	आ	लि
प								प	प						स
सं	सं	—	प	सं	प	—	ध	ध	ध	—	म	ग	र	ग,	भ
ऐ	सो	ऽ	रो	ऐ	सो	ऽ	नि	प	ट	ऽ	अ	ना	ऽ	रि,	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले पंद्रह साल में हवाई जहाज़ों का महत्त्व

मनुष्य की हवा में उड़ने की कल्पना बहुत पुरानी है। संभव है, यह तभी उत्पन्न हुई हो, जब से मनुष्य में समझने और विचारने की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ हो, और उसने पक्षियों को आकाश में उड़ते देखा हो। संभवतः इसी कारण प्रायः सभी धर्मों की पुस्तकों में आकाश-गमन का वृत्तांत किसी-न-किसी रूप में मिलता है। यूनानियों और रोम-निवासियों के ग्रंथों में आकाश-भ्रमण की कितनी ही कहानियाँ मिलती हैं। भारतवर्ष की पुस्तकों में भी विमान और उड़नखटोलों के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। परंतु उन पुस्तकों से यह विदित नहीं होता कि उनके उड़ने की विधि क्या थी। इसलिये इस संबंध में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में आधुनिक हवाई जहाज़ों के विज्ञान का जन्म हुआ। सन् १७८३ में स्टीफ़ेन और जोज़ेफ मौंट गोलफ़ीयर-नामक दो भाइयों ने पहली बार ११० फ़ीट परिधि के बेलून को गैस से भर कर ७,६६८ फ़ीट ऊँचा उड़ाकर दिखाया। दूसरे साल राजात्र-दे-रोज़िए और मारकिस दारलांदे-नामक फ़्रांसीसियों ने, तप्त-वायु-बेलून पर चढ़कर पहली बार पेरिस-नगरी की परिक्रमा की। यह संसार के इतिहास में बिलकुल नई बात थी, और इस आश्चर्य-पूर्ण व्यापार को सुनकर, दूर-दूर से भीड़-की-भीड़ इकट्ठी होकर लाखों आँखें आकाश की ओर एकटक देख रही थीं। इसके पश्चात् संसार बहुत दिनों तक इन बेलूनों से ही मनोविनोद करता रहा; परंतु यह उस समय की कल्पना के बाहर था कि किसी दिन हवाई जहाज़ में बैठना भी उतना ही साधारण और सुकर हो जायगा, जैसा उस समय की घोड़ा-गाड़ी में बैठना। वायुयान का वर्तमान रूप पूर्णतः बीसवीं शताब्दी का ही आविष्कार है। सन् १९०३ में श्री० राइट्स पहली बार एक ऐसे जहाज़ में उड़े, और उस समय से अब तक—२५ वर्ष में—आशा से अधिक सफलता प्राप्त हो गई है। गत महायुद्ध में हवाई जहाज़ों द्वारा ख़बर लाने, बंब फेंकने, घायलों की चिकित्सा आदि के काम लिए जाते थे; पर इस समय तक हवाई जहाज़ों की मशीनें पूर्ण भरोसे की नहीं थीं, और बहुत-से उड़ाके बे-मौक़े मशीनों के बिगड़ जाने या आँधी-तूफ़ान में पड़ने के कारण नष्ट हो गए। गत महायुद्ध में हवाई जहाज़ों का अधिक उपयोग नहीं हुआ; परंतु लोगों को उनके महत्त्व का पूर्ण अनुभव हो गया। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और राजनीति-विशारदों ने इस बात की घोषणा कर दी कि भविष्य में वही राष्ट्र सबसे अधिक शक्तिशाली होगा, जिसकी वायु-शक्ति सबसे अधिक होगी। युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त हुआ, और संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ—अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इँगलैंड, रूस, जापान आदि—अपनी वायु-शक्ति के बढ़ाने में लग गईं।

अस्तु, आगामी महायुद्ध हवाई जहाज़ों का युद्ध होगा। प्राचीन Strategy और Tactics, मोर्चेबंदी और क़िलेबंदी में पूर्णतः क्रांति हो जायगी। आगामी महायुद्ध की मोर्चेबंदी आकाश में होगी, युद्ध-क्षेत्र की कोई नियमित सीमा न होगी। अवसर प्राप्त होते ही एक ओर के हवाई जहाज़ दूसरे मुल्क को जाकर गोले-बारूद से नष्ट कर देंगे। युद्ध में तो हवाई जहाज़ों की प्रधानता होगी ही, पर शांति के समय में भी यह हमारे प्रतिदिन के जीवन में क्रांति कर देंगे। एक शताब्दी पहले आने-जाने की बड़ी असुविधाएँ थीं। मनुष्य अधिक-से-अधिक चालीस-पचास कोस प्रतिदिन चल सकते थे; परंतु रेल और जहाज़ों के चल जाने से वे अब हज़ार-हज़ार मील चौबीस घंटे में जा सकते हैं। किंतु अब प्रगतिशील पाश्चात्य लोगों के लिये बंबई से लंदन जाने में प्रायः पंद्रह दिन नष्ट करना कष्टकर प्रतीत होता है। न्यूयार्क के व्यापारी के लिये महीने-पंद्रह दिन अपने आफ़िस से ग़ैरहाज़िर रहना असंभव है। उसे पेरिस जाना आवश्यक है, पर वह चाहता है कि पहुँचने में उसे चौबीस या अधिक-से-अधिक अड़तालीस घंटे से अधिक न लगें। वह तीसरे दिन पेरिस के बढ़िया-से-बढ़िया होटल में भोजन करे; वहाँ अपने व्यावसायिक कार्य से निश्चित हो, शाम को घुड़दौड़ में एक-दो बाज़ी लगावे। इसके बाद वहाँ से रवाना होकर, पाँचवें दिन न्यूयार्क वापस आकर आवश्यक कार्यों की देखभाल कर ले। आशा यह की जाती है कि आगामी पंद्रह वर्षों में हवाई जहाज़ों में इतनी तरक़्क़ी हो जायगी कि लोग पाँच सौ मील प्रतिघंटे के हिसाब से यात्रा कर सकेंगे। इस समय बड़े-बड़े वैज्ञानिक इंजीनियर और उड़ाकों के सामने ये समस्याएँ हैं—

१. एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में कम-से-कम समय लगे।

२ अधिक-से-अधिक दूरी बिना ठहरे ही (Non-stop) उड़कर तय की जा सके।

३. अधिक-से-अधिक देरी तक हवा में ठहरा जा सके।

४. एक समय में एक जहाज़ अधिक-से-अधिक यात्री और बोझा ले जा सके।

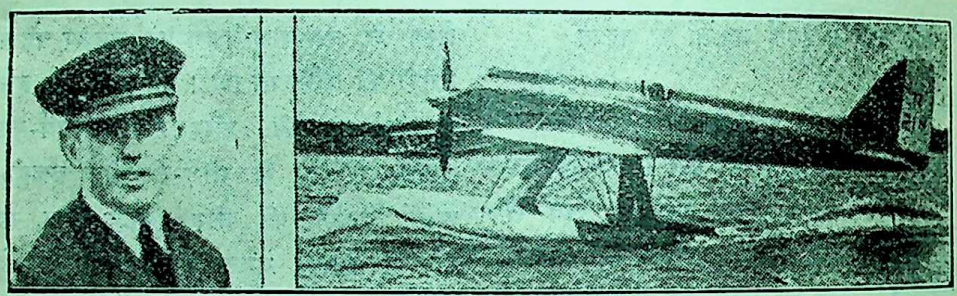

लेफ़्टिनेंट बेवस्टर और उनका हवाई जहाज़
(जिसमें वह ४७ मिनट में २१७ मील उड़े थे।)

५. यात्रियों के आराम और मनोविनोद के अधिक साधन हों।

६. यंत्र वग़ैरह इतने अधिक पूर्ण हों, जिससे भय और जान-जोखिम की शंका न रहे, और यात्री अच्छी तरह बे-खटके यात्रा कर सकें, जैसे रेल में या जहाज़ में करते हैं।

७. कम-से-कम ख़र्च हो। यात्रियों को न्यूयार्क से पेरिस जाने में उतना ही व्यय करना पड़े, जितना स्टीमर में करना पड़ता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या हवाई जहाज़ इतने ही सुगम और उपयोगी हो सकते हैं, जितनी रेल और जहाज़ अथवा नहीं? एक प्रसिद्ध अँगरेज़ ने 'Neon'-नाम से The great delusion-नामक की पुस्तक लिखी है। उसके मत से हवाई जहाज़ युद्ध और शांति, दोनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में अनुपयुक्त हैं। उसका मत है—'Aeroplanes can never be made to pay as passenger or freight carriers. The speed of air travel is illusory except in short or relay flights. उसने अपने पक्ष का समर्थन भी बड़ी योग्यता से किया है, और उसकी अनेक बातें ऐसी हैं, जो केवल मज़ाक़ में नहीं उड़ाई जा सकतीं। उसका मत है कि हवाई जहाज़ की यात्रा में तकलीफ़, जान-जोखिम, मौसम पर निर्भर होना आदि ऐसी बातें हैं, जिससे हवाई जहाज़ व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त $\frac{४}{५}$ ताक़त तो जहाज़ को पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से हवा में स्थिर रखने में ही व्यय हो जाती है, और केवल $\frac{१}{५}$ शक्ति ही हवाई जहाज़ के संचालन में व्यय हो सकती है। इस पर भी प्रतिपौंड बोझ को ले जाने में हवाई जहाज़ को उतनी शक्ति व्यय करनी पड़ती है, जिसके दसवें हिस्से से उतना बोझ रेल द्वारा ले जाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हवाई जहाज़ में बहुत ऊँचे दरजे का गेसोलीन ख़र्च होता है, जिसका दाम अन्य मशीनों में ख़र्च होनेवाले कोयले अथवा तेल से अधिक होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक हवाई जहाज़ में, एक पौंड प्रतिमील ले जाने में, उतना व्यय करना पड़ता है, जितना एक जलयान के लिये २,२४० पौंड प्रतिमील ले जाने में पड़ेगा। लंदन से पेरिस जाने हवाई जहाज़ में कुल १,१५५ घोड़ों की शक्ति व्यय होती है, और यह केवल १४ यात्रियों और ७०० पौंड वज़न को ले जा सकता है। इस हिसाब से एक हार्स-पावर में ३ पौंड वज़न पड़ता है। पर रेल अधिक सुरक्षित स्थिति में ३ टन फ़ी हार्स-पावर ले जा सकती है।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर बड़ी खलबली मची; पर लोग निराश नहीं हुए हैं। अधिकांश लोगों का विचार है कि ये समस्याएँ ऐसी नहीं हैं, जो हल न हो सकें, और उनका मत है कि आगामी पंद्रह वर्षों में आकाश-मार्ग इतना सुगम और सहज हो जायगा कि जलयान और रेलगाड़ियाँ केवल माल ढोने के काम की ही रह जायँगी।

पाश्चात्य देशों की सफलता का एक गूढ़ रहस्य यह है कि वे जीने के लिये मरना जानते हैं। भारतवासी ग़ुलाम हैं, ग़रीब हैं, और पराधीन हैं। उसका सबसे प्रबल कारण यह है कि वे जीने के लिये मरने से डरते हैं। उन देशों में प्रत्येक नवीन कार्य के लिये सैकड़ों युवक अपने प्राणों को हथेली पर लेकर आगे बढ़ आते हैं। उनका सिद्धांत होता है—मृत्यु या विजय। कप्तान पेलेटियर डी० ओसी (Pilletier D. Osey) को आकाश द्वारा संसार-यात्रा और सर रोज़ स्मिथ की आस्ट्रेलिया-यात्रा से यह बात सूझी कि भिन्न-भिन्न देशों में हवाई जहाज़ों के आने-जाने का प्रबंध हो। कर्नल लिंडबर्ग और चेम्बरलेन की विना ठहरे हुए अटलांटिक-महासागर की उड़ान के पश्चात् तो प्रशांत-महासागर और अटलांटिक-महासागर को पार करने का कितने ही अन्य उड़ाकों ने प्रयत्न किया है। इनमें से कितनों ही का आज तक पता

वीर-बलिदान

(Oldglory के (१) रग्योड वर्टोड, (२) जेम्स डी० विट् हिल्, (३) फ़िलिपपायने St Raphael के, (४) राजकुमारी लाउ'सटीन वेरथीन, (५) उड़ाके कप्तान लेस्ली हैमिल्टन और (६) लेफ़्टिनेंट कर्नल एफ़्-एफ़्० मिनचिन। आज तक पता नहीं चला कि इनका क्या हुआ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं लगा। सन् १९२७ में ही २४ उड़ाके (जिनमें दो स्त्रियाँ भी थीं) और ३० लाख रुपए अधिक दूर की उड़ान में गिरकर नष्ट हो गए, या जिनका आज तक पता नहीं लगा। अमेरिका और योरप में दूर की उड़ान का इतना शौक़ हुआ कि कई धनवान् और राजघराने की युवतियाँ भी उड़ाकों के साथ लंबी-लंबी यात्राओं में अग्रसर हुईं। लिंडबर्ग, चेम्बरलेन और वायर्ड ने अटलांटिक-महासागर की उड़ान में पूर्ण सफलता प्राप्त की, और मेटलैंड, हेजिन वर्ज़र, स्मिथ और ब्रोंटे आदि ने प्रशांत-महासागर में अपनी विजय का झंडा गाड़ दिया। इनकी सफलता से उड़ाकों में साहस का सागर उमड़ आया; पर इसके बाद अनेक घटनाओं के कारण समाचारपत्रों में आंदोलन उठा कि इस तरह बे-समझे-बूझे जो धन-जन-हानि हो रही है, उसे रोकना चाहिए। श्री० ओविन के मत से इन घटनाओं का मूल-कारण यह था कि अब तक उत्तरीय अटलांटिक-महासागर की उस ऊँचाई की, जहाँ जहाज़ उड़ता है, ऋतु और ठंढ का बहुत कम ज्ञान था। प्रतिदिन की मौसमी रिपोर्ट जानने का कोई साधन नहीं था। बर्फ़ और कुहरे की कठिनाइयाँ विदित थीं। पर उसका निराकरण कैसे किया जाय, यह अभी तक कोई नहीं जानता था। फ्रेंच-उड़ाकों के नष्ट होने का कारण यह समझा जाता है कि पानी की बूँदें इकट्ठी होकर ठंढ के कारण Wings पर जम गई थीं, जिससे वे आगे नहीं बढ़ सके, और गिरकर नष्ट हो गए। लिंडबर्ग ने मौसम की कठिनाइयों का अनुभव किया था। उसको मार्ग में कुहरा मिला, और उसने उस पर चढ़कर निकलने की कोशिश की; मगर वह असफल रहा। जब वह अधिक ऊपर पहुँच गया, तब उसके जहाज़ पर बर्फ़ जमने लगी, और उसे फिर गर्म हवा के लिये नीचे उतरना पड़ा। चेम्बरलेन ने कुछ नीचे उड़कर बर्फ़ न जमने देने में सफलता प्राप्त की; परंतु वह मुख्य कम्पास के बेकाम हो जाने के कारण अपने मार्ग से बहुत दूर भटक गया। वायर्ड को लिंडबर्ग से भी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जिसका परिणाम यह निकला कि यह निश्चय हो गया कि वर्तमान ढंग के हवाई जहाज़ों के लिये कुहरे से बचना असंभव है। वायर्ड-जैसे योग्य उड़ाके को भी अपने को भाग्य पर छोड़ देना पड़ा; क्योंकि उसे न तो ऊपर आकाश दिखाई पड़ता था, और न नीचे समुद्र। चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा था। रोम को जानेवाला जहाज़ Oldglory और Sir John Carling भी संभवतः इन्हीं परिस्थितियों के शिकार हो गए; क्योंकि उनका आज तक कोई पता नहीं लगा। Oldglory की बाबत न्यूयार्क-हेराल्ड लिखता है—"रोम में उसके स्वागत की धूमधाम थी। प्रत्येक पुरुष, स्त्री, बाल और वृद्ध उत्सुकता से उसके आने की राह देख रहा था। निशा ने कुहरे और वर्षा के साथ समुद्र की लहरों पर क़ब्ज़ा कर लिया था, पर प्रसिद्ध उड़ाकों का कहीं पता न था। खोज प्रारंभ हुई। चारों ओर जहाज़ भेजे गए। रेडियो-यंत्र में कभी-कभी सहायता के लिये पुकार सुन पड़ती थी; पर दूसरे दिन और मध्य-रात्रि तक खोज होती रही, और फिर निराश होकर जलयान लौट आए।" इसी समय एक दूसरा उड़ाका Sir John Carling पचीस हज़ार डालर का पारितोषिक प्राप्त करने की आशा से उड़ रहा था। वर्षा हो रही थी, कुहरा पड़ रहा था और इसके पास रेडियो का भी यंत्र नहीं था। दूसरे दिन इस जहाज़ का पता नहीं चला। किंतु अब लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि इतनी लंबी-लंबी यात्राओं के लिये वही जहाज़ उपयुक्त हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर पानी पर भी उतर सकें; अन्यथा जहाँ मशीन बिगड़ी और उसे पानी पर उतरना पड़ा, वहीं वह समुद्र की तरंगों में विलीन हो गया।

इस बात की भी जानने की चेष्टा हो रही है कि हवाई जहाज़ अधिक-से-अधिक कितनी देर तक हवा में रह सकता है। बर्ट ऐकोस्टा और क्लेरेंस डी० चेम्बरलेन ५१ घंटे, ११ मिनट और २५ सेकंड न्यूयार्क-नगर के चारों ओर वृत्ताकार में उड़ते रहे, और ४,००० मील की उड़ान पूरी की। इसमें से प्रायः आधे समय वह भूखे रहे। उनके नीचे संसार का सबसे धनवान् नगर न्यूयार्क खाद्य-पदार्थों से भरा पड़ा था, और वह ललचाई हुई दृष्टि से नीचे देख रहे थे; परंतु जब तक वह प्रतियोगिता में बाज़ी नहीं मार ले गए, तब तक नहीं उतरे। इससे पहले दो फ्रांसीसी उड़ाके ४५ घंटे, ११ मिनट और ५९ सेकंड हवा में रह चुके थे।

कोई डेढ़ वर्ष पूर्व २६ सितंबर को उड़ाकों की दौड़ हुई, इसमें विजय प्राप्त करनेवाले २७ वर्ष के एक युवक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेफ़्टिनेंट वेबस्टर थे। इनकी चाल २८१½ मील प्रति-घंटे अर्थात् क़रीब ५ मील फ़ी मिनट रही। इस उड़ान में भूतपूर्व इटली के मेजर डी० बर्नार्डी भी पिछड़ गए। इस प्रकार की प्रतियोगिता में, सन् १९१३ में, प्रीवोस्ट-नामक उड़ाका प्रथम रहा था। उसकी उड़ान ९४ मील फ़ी-घंटे थी। दूसरे वर्ष यह ५५ मील फ़ी-घंटे हो गई। इस बीच में लड़ाई ने इस प्रकार के प्रयत्नों का पाँच साल के लिये अंत कर दिया; पर लड़ाई के बाद इस ओर ज़्यादा तरक़्क़ी होने लगी। सन् १९१९ में जेनली-नामक उड़ाके ने १२४·९ मील प्रतिघंटे उड़कर दिखाया। दो साल तक यह रेकर्ड सबसे ऊँचा रहा; पर सन् १९२२ में वेयर्ड १४६ मील प्रतिघंटे उड़ा, और अगले २ वर्ष में यह २३२ मील तक पहुँच गया। सन् १९२६ में मेजर डी० बर्नार्डी २४६½ मील प्रतिघंटे उड़ा, और अब उक्त नवयुवक ने २८६½ मील उड़कर संसार को चकित कर दिया है। इसी प्रकार उन्नति होती रही, तो निश्चय है कि यह चाल सन् १९४० में ५०० मील प्रतिघंटे हो जायगी।

बर्ट हिंकलर-नामक उड़ाके ने यह दिखला दिया है कि किसी दिन हवाई जहाज़ कितने कम ख़र्च में उड़ सकते हैं। वह साढ़े पंद्रह दिन में बारह हज़ार मील से अधिक उड़ा। यद्यपि उसे तूफ़ान और आँधी का मुक़ाबला करना पड़ा, फिर भी उसका व्यय दो सेंट फ़ी-मील से अधिक नहीं पड़ा। उसके जहाज़ का मूल्य केवल ३,५०० डालर था।

Washington Star-नामक पत्र उसकी बाबत लिखता है—

"With a motor developing less than thirty horse power, including food, fuel, and accommodation, his expenses from Croydon Aerodrome outside London to his home in Australia, were two hundred and fifty dollars" आगे वह कहता है—'demonstrates that aeroplane cost and maintenance is rapidly being developed to conform to the average pocket book."

हवाई जहाज़ों की मशीनें सुधारने का भी काफ़ी प्रयत्न हो रहा है। प्रसिद्ध फ़ोर्ड-कंपनी के मालिक श्री० हेनरी फ़ोर्ड भी वायुयानों के बनाने में दत्तचित्त हैं। इस समय उनके कारख़ाने में २० मनुष्यों के बैठने-लायक़ एक जहाज़ प्रायः बन चुका है। अमेरिका का प्रसिद्ध उड़ाका चार्ल्स ए० लेवाइन ६० लाख रुपए से Trans-Atlantic Air Service खोलने का प्रयत्न कर रहा है। योरप में भी अमेरिका को जाने के लिये हवाई जहाज़ों की व्यवस्था हो रही है। सितंबर-महीने में जर्मनी का एक बड़ा ज़ेपलिन तैयार हो जायगा, जिसमें सभी प्रकार के आराम की व्यवस्था की गई है। इधर इँगलैंड की Air Ministry कनाडा जाने के लिये दो ऐसे जहाज़ बना रही है, जिसमें ४० और १०० आदमी बैठ सकेंगे। फ़्रांस में एक ऐसा मोनोप्लेन बन रहा है, जो ३०० मील फ़ी-घंटे की चाल से उड़ेगा, और उसमें १० यात्री बैठ सकेंगे। अमेरिका में श्री० हेनरी आउड ऐसे हवाई जहाज़ बनाने के प्रयत्न में हैं, जिसमें १०० यात्री बैठ सकें। इसमें केबिन, भोजनालय, डेक वग़ैरह सब होंगे।

जर्मनी का उक्त ज़ेपलिन प्रायः तैयार हो चुका है। उसमें हाइड्रोजन और हिलियम-नामक दो गैसें व्यवहार में लाई जायँगी, जिन्हें जर्मन लोग किसी गुप्त प्रयोग से बहुत सस्ता बना सकते हैं। आराम के ख़याल से जर्मनी के ज़ेपलिनों को कोई भी नहीं पा सकेगा। इसमें ४० डबल और सिंगल कमरे होंगे, एक नाचघर होगा, जहाँ गायन भी सुनाई देगा। हवाई जहाज़ के ऊपर रेलों से घिरा हुआ एक बग़ीचा होगा, जहाँ वे स्वच्छ वायु के लिये चेहल-क़दमी कर सकेंगे। स्नान-गृहों में गर्म और ठंढा पानी दिया जायगा। एक पुस्तकालय भी होगा, जहाँ पुस्तकें और ताज़े समाचारपत्र मिल सकेंगे। इसके अतिरिक्त एक आबज़र-वेशन-रूम (Observation Room) एक होटल और एक रसोईघर भी होगा। यह शाही ज़ेपलिन स्पेन को उड़ेगा। श्री० बेलंको—जिसने चेम्बरलेन के लिये हवाई जहाज़ बनाया था—का विचार है कि योरप से अमेरिका को बिना ठहरे हुए यात्रा करने में कंपनी को आर्थिक लाभ नहीं होगा; क्योंकि इसके लिये पेट्रोल बहुत बड़ी तादाद में रखना पड़ता है, जिससे बोझ बढ़ जाता है। उसकी राय में बीच समुद्र में लंगर डालकर प्लेटफ़ार्म बनाए जायँ, जहाँ जहाज़ उतरकर आवश्यक सामान ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकें, और यदि यात्री चाहें, तो वे भी जहाज़ बदल सकें। उसने बीस हज़ार पौंड की लागत का एक हवाई जहाज़ भी बनाया है, जिसमें १०० पौंड देकर यात्री योरप से अमेरिका की यात्रा कर सकेंगे।

योरप और अमेरिका के भिन्न-भिन्न नगरों से हवाई जहाज़ द्वारा यात्री लाने और ले जाने का नियमित प्रबंध हो रहा है। पेरिस-वेलोन, पेरिस-लंदन, बर्लिन-हेम्बर्ग, पेरिस-क़ुस्तुनतुनिया-ऐयर-सर्विस स्थापित हो चुकी है, और पेरिस-मैडरिड, पेरिस-बर्लिन, लंदन-बर्लिन वग़ैरह लाइनें हाल में खुली हैं। इस तरफ़ जर्मनी ने सबसे ज़्यादा उन्नति की है। जर्मनी में एक नगर से दूसरे नगर को यात्री और डाक आकाश द्वारा ले जाने का अच्छा ख़ासा प्रबंध हो गया है। दूसरा नंबर अमेरिका का है। यहाँ हवाई जहाज़ों का व्यवसाय सरकार ने अपने हाथ से व्यक्तिगत हाथों में दे दिया है, और अब वहाँ १५ कंपनियों के प्रायः ५० जहाज़ रोज़ १६,००० मील की यात्रा करते हैं। यहाँ की सबसे बड़ी कंपनी National Air Transport न्यूयार्क से शिकागो के लिये १८ हवाई जहाज़ चलाएगी।

उधर तो पाश्चात्य जगत् आकाश-यात्रा को सुगम बनाने के लिये जब पागल हो रहा है, लेकिन इस देश में इस ओर अधिक चर्चा भी नहीं है। बंबई, कराँची, दिल्ली आदि में Light-aeroplane की स्थापना हुई है, और सरकार ने इनकी सहायता के लिये १,०५,७७६ रु० देना स्वीकृत किया है, जिससे इँगलैंड में ८ छोटे हवाई जहाज़ ख़रीदे जायँगे। पर यह निश्चय है कि जब तक स्वयं इस देश में उन्हें बनाने का भी उद्योग नहीं प्रारंभ होता, तब तक कुछ अधिक लाभ नहीं हो सकता। 'स्वराज्य' का एक संवाददाता लिखता है—

"एक भारतीय सज्जन ने एक मशीन का आविष्कार किया है, जो ५०० मील प्रतिघंटे जा सकेगी। उसका कहना है कि भयानक-से-भयानक तूफ़ान भी इसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकेगा, और यह सीधे उत्तर और चढ़ सकेगी। इन सज्जन ने १२ एप्रिल, सन् १९२१ ई० लंदन में Air Ministry को लिखा कि हम अपना आविष्कार बेचने को तैयार हैं, और यदि वह न लेना चाहे, तो किसी और कंपनी को दिला दे। परंतु उन्हें जवाब मिला कि न तो वही ख़रीदना चाहती है, और न उन्हें वह इस कार्य में सहायता ही देना चाहती है। यह सज्जन इस आविष्कार को केवल इसलिये नहीं बेचना चाहते कि उन्हें बहुत-सा धन मिल जायगा, वरन् इसका कारण यह है कि उन मशीनों के बनाने के लिये उन्हें यहाँ काफ़ी साधन और धन प्राप्त नहीं हो सकता। यदि यह सज्जन अमेरिकन होते, तो इन्हें लाखों रुपए मिल गए होते, और संसार के सारे समाचारपत्रों में इनकी धूम मच जाती।"

यदि हवाई जहाज़ के संबंध में हमारी आशाएँ सफल हुईं, तो इसमें संदेह नहीं कि हमारे जीवन में क्रांति हो जायगी। प्रत्येक देश एक दूसरे के इतना सन्निकट हो जायगा कि योरप और अमेरिका जाना इतना ही सहज हो जायगा, जैसा एक प्रांत से दूसरे प्रांत को जाना। लंदन, बर्लिन और न्यूयार्क जाना लोग ऐसा ही समझने लगेंगे, जैसे कलकत्ते से बंबई जाना। ५०० मील प्रतिघंटे की गति से लोग आगरे से कलकत्ते-बंबई डेढ़ ही घंटे में पहुँच जायँगे। यदि वे चाहें, तो दिन-भर रहकर शाम को वापस भी आ सकते हैं। बंबई से लंदन पहुँचिए, वहाँ से पेरिस और बर्लिन का आनंद लूटिए। इसके बाद न्यूयार्क और शिकागो की सैर कीजिए, और फिर कलकत्ते वापस आ जाइए। इस लंबी यात्रा में केवल सात दिन लगेंगे। पर निर्धन भारतवासी इनका उपयोग न कर सकेंगे, इसमें संदेह है।

देवकीनंदन "विमल"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि - कौशल

भारतवर्ष में कृषि

हमारा भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की जनता जीविकोपार्जन के इस काम में जितनी लगी हुई है, उतनी अन्य किसी में नहीं। ७२ प्रतिशत अर्थात् अनुमान तीन-चतुर्थांश जनता अपने पेट-पालन के लिये इस काम पर निर्भर करती है। जिस पर जनता का इतना बड़ा भाग आश्रित है, उसको उन्नत करना, उसकी दशा सुधारना कितना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है, यह सहज ही समझ में आ सकता है। यद्यपि हमारी सरकार का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ है, और उसका बैठाया हुआ कमीशन भी काम कर रहा है, तथापि अभी इस काम के लिये बहुत परिश्रम और व्यय की आवश्यकता है। अभी हाल की सरकारी रिपोर्ट से पता लगता है कि ९० करोड़ रुपए की मालगुज़ारी में से सिर्फ़ १ करोड़ ३½ लाख खेतों के लिये ख़र्च हुआ, या यों कहिए कि प्रति मनुष्य पीछे सिर्फ़ ८ पाई अर्थात् तीन पैसे से भी कम। अमेरिका में केवल ३० सैकड़ा कृषक हैं, किंतु वहाँ की सरकार भारत से ८ गुना अधिक व्यय करती है। जापान की आबादी सिर्फ़ ६ करोड़ है; और वहाँ की सरकार भारत से ६ गुना अधिक व्यय करती है। इसलिये कहना पड़ता है कि भारत में कृषि के महत्त्व के अनुसार अभी कुछ नहीं हो रहा है, और जो कुछ व्यय यहाँ की सरकार करती भी है, उससे कृषि को विशेष लाभ नहीं; क्योंकि उस रक़म में तो अधिकतः बड़े-बड़े अफ़सरों का वेतन ही शामिल है।

आज भारत में उद्योग और कल-कारख़ानों की वृद्धि देखकर ऊपरी दृष्टि से देखनेवाला चाहे यह कह दे कि ओहो! हमारा देश कितनी द्रुत गति से उन्नति कर रहा है। कहने को यह भी कहा जा सकता है कि यह उद्योग का ही बल है, जो जंगल में टाटा-नगर बस गया। आज खेतों के स्थान में जलती हुई भट्टियाँ, एंजिन और कल-कारख़ानों का तुमुल शब्द हो रहा है। हुगली-नदी के किनारे दूर तक पाट की मिलों की क़तार लगी हुई है, जिनमें ३ लाख से अधिक मज़दूर लगे हैं। इसी भाँति बंबई, अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर, मदरास, दिल्ली, लाहौर और कानपुर आदि नगरों में मिल और कल-कारख़ानों की ऊँची चिमनियाँ देखकर आप कदाचित् यह कहने का साहस करें कि हमारे देश में उद्योग का अधिक महत्त्व है, और भारत उन्नति कर रहा है; क्योंकि उसके ये नगर बरमिंघम, ओल्डहम, पिट्सबर्ग या शिकागो का दृश्य प्रदर्शित कर रहे हैं। किंतु यह सब होते हुए भी उचित है कि आप उस लाखों एकड़ भूमि को भूल न जायँ, जिस पर खेती होती है। कोसों दूर चले गए मैदान का दृश्य—जिसमें बेचारा कृषक अपने दुबले-पतले बैलों से वही पुराने ढंग का टूटा-फूटा हल चला रहा है—क्यों नहीं आपकी दृष्टि के सामने आता? क्या यह उन चिमनियों की आड़ में छिप गए हैं, या इन कल-कारख़ानों के शोर में उन कृषकों की आवाज़ का पता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? पर मुश्किल तो यह है कि उन ग़रीब किसानों के आवाज़ भी तो नहीं, वे तो केवल भीतर-ही-भीतर अपनी दशा पर रोते हुए अपने दुर्दिन पूरे करना जानते हैं। तो भी यह ध्यान में रखने की बात है कि भारत की कृषि इस दशा में होते हुए भी अपने ही यहाँ की नहीं, बल्कि कई पदार्थों के लिये दुनिया की आवश्यकता के बहुत कुछ भाग की पूर्ति करती है। यद्यपि चीनी यहाँ से बाहर नहीं जाती है, तथापि दुनिया में सबसे अधिक चीनी यहीं बनती है। भारत में रुई की पैदावार एक अमेरिका को छोड़कर सबसे अधिक होती है, और उससे दुनिया की आवश्यकता के एक चतुर्थांश की पूर्ति होती है। इसी भाँति यहाँ के तिलहन-पदार्थों से विदेशों का काम चलता है, और पाट तो एक ऐसा पदार्थ है, जिस पर भारत का एकाधिपत्य है; अर्थात् जो यहाँ के सिवा और कहीं नहीं होता, जिससे सब विदेशों को पाट के लिये भारत ही पर निर्भर रहना पड़ता है। चावल और गेहूँ भी दुनिया की माँग की बहुत कुछ पूर्ति करते हैं, और अभी चा, काफी, तमाखू आदि अन्य कई पदार्थों की बात तो बाक़ी ही है।

सत्य समझिए, आपके हमारे कहने की बात नहीं है, सरकारी अंक इसके प्रमाण हैं कि ३२ करोड़ भारतीय जनता में से २२ करोड़ का निर्वाह कृषि पर है। सब तरह के उद्योगों पर केवल ११ प्रतिशत जनता निर्भर है, जिसमें ९ प्रतिशत तो केवल छोटे घरेलू उद्योगों में लगी हुई है, और आपके इन बड़े-बड़े उद्योगों अर्थात् कल-कारख़ानों से तो सिर्फ़ २ प्रतिशत जनता का निर्वाह होता है। व्यापार में ६ और उसके वाहन में २ प्रतिशत जनता लगी हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इतनी मिलों और कल-कारख़ानों के होते हुए भी कृषि ही भारतीय जीवन और जीविका में प्रधान है। बंगाल में पाट की मिलों और कोयले की खानों, बिहार-उड़ीसा में कोयले की खानों और भोडल एवं जमशेदपुर में लोहे की भारी पैदावार होते हुए भी जनता बहुत बड़े परिमाण में खेतिहर है, और मुख्यतः बिहार-उड़ीसा की जनता तो भारत के अन्य किसी भी प्रांत की अपेक्षा खेती पर अधिक आश्रित है। हाँ, बंबई, पंजाब और संयुक्त-प्रांत की जनता अन्य प्रांतों की अपेक्षा उद्योग-संबंधी कार्यों में अधिक लगी हुई है; पर यह अधिक परिमाण बड़ी-बड़ी मिलों के कारण नहीं, केवल घरेलू उद्योगों के कारण है। सारांश यह कि प्रत्येक प्रांत में कृषि ही सर्व-प्रधान स्थान रखती है।

इतने महत्त्व के विषय के लिये—जिस पर भारतीय जनता का इतना बड़ा भाग अवलंबित है—'माधुरी' ने अलग स्तंभ नियत किया, यह एक संतोष की बात है; पर अभी आवश्यकता है कई पत्र-पत्रिकाओं के निकलने की, जो उन कृषकों तक पहुँचें। पर वे बेचारे अभी पढ़ ही क्या सकेंगे। जहाँ अन्य देशों में कृषि-संबंधी बड़े-बड़े विद्यालय स्थापित हैं, अभी हमारे यहाँ तो पहले उस अपढ़ अज्ञान जनता को अक्षर-ज्ञान-सहित करना ही भारी हो रहा है। देश के इस बड़े समुदाय की दशा पर विचार एवं उसकी उन्नति का उपाय करना देश के लिये हितकारक ही नहीं, पूर्ण आवश्यक है।

कृषि पर देश का वाणिज्य-व्यवसाय, कला-कौशल, उद्योग-धंधे, कल-कारख़ाने सभी आश्रित हैं, और इसी के भले-बुरे पर व्यापारी, उद्योगी, सेठ-साहूकार, आढ़तिया, बैंक एवं विदेशों को माल भेजने और मँगानेवाले सबकी समृद्धि का आधार है। पर हमारे यहाँ कृषि और कृषकों की दशा संतोष-जनक नहीं है। सरकार ने कृषि-विभाग खोला तो है; पर अभी इसके सुधार, अन्वेषण और खोज में बहुत कम ख़र्च किया गया है। इसके सुधार के लिये विदेशों में क्या-क्या प्रयत्न हुए और हो रहे हैं, यह ध्यान देने योग्य है, और वैज्ञानिक क्रिया एवं उपायों द्वारा वहाँ की कृषि में क्या हेर-फेर किए गए हैं, यह देखकर आपको आश्चर्य हो जायगा। उन सब बातों को अपने कृषक-समुदाय को समझा देना और उनका उपयोग करने के योग्य उन्हें बना देना, अभी बहुत दूर की बात है। इस सब काम के लिये भारी परिश्रम, मस्तिष्क-शक्ति और द्रव्य की आवश्यकता है।

आज वे पुराने दिन गए, जब खेतीबारी और आवश्यकता के पदार्थ अन्न, घास और रुई आदि हो गई, तो चलो बहुत है, खाते रहो और बैठे रहो। आज गाय, भैंस और बैल भूखों मरें; सो अलग। कृषि के लिये पूँजी की आवश्यकता है। ग़रीब कृषक-समुदाय के पास—जिन्हें अपने खाने और पहनने-भर को भी पूरा नहीं पड़ता—कृषि-संबंधी नवीन आविष्कृत यंत्र आदि ख़रीदने को रुपया कहाँ है ? भारतीय कृषक अपने महाजन (रुपया उधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनेवाले) या ज़मींदार की क़र्ज़दारी के नीचे सदा दबा रहता है । जिस कृषक के कड़े परिश्रम से समस्त भारतवर्ष एवं विदेशों का भी पालन होता है, उसे स्वयं अपने खाने-पहनने को समुचित रूप से नहीं मिलता । कठिनता से वह अपना गुज़ारा जैसे-तैसे करता है; जैसा भी रूखा-सूखा मिले, खाता और फटा-पुराना पहनता है । इस पर भी जब फ़सल बिगड़ जाय, तब तो उसकी दुर्गति की पूछिए ही नहीं । हज़ारों की संख्या में उन्हें मरना पड़ता है । बेचारे महाजनों के द्वार खटखटाते हैं । उन्हें जो कुछ उधार मिलता है, वह भारी ब्याज पर, जिसके बोझ से फिर कभी छुटकारा नहीं मिलता । हाँ, यहाँ एक बात यह लिख देने की है कि कृषकों की जो कुछ भी ग़रीबी की दशा हो, उनमें अविद्या के कारण किफ़ायतसारी या समय-कुसमय के लिये बचा रखने की आदत नाम-मात्र को भी नहीं है । यद्यपि अधिकांश के लिये यह कहा जा सकता है कि उनके पास बचा रखने को होता ही क्या है, तथापि यह अदूरदर्शिता और किफ़ायतसार न होने का दोष उन पर भली भाँति लगा सकता है । कृषक को अपनी उपज और व्यय का पता लगाना नहीं आता । अच्छी पैदावार के समय वह सब कुछ शादी-विवाह आदि में लगा देगा, यहाँ तक कि क़र्ज़ लेने से भी पीछे न रहेगा । इसी भाँति आगे के लिये विचार बिलकुल नहीं होता । हमारे कृषकों पर यह बात ठीक घटती है—"केवल आज की जानते हैं, कल को देव जाने" । इसीलिये जब फ़सल बिगड़ जाती है, तो क़र्ज़ करने के सिवा और कुछ उपाय नहीं रहता । यह सब दशा शिक्षा न होने के कारण है, और शिक्षित होने से उनके इस स्वभाव में बहुत कुछ परिवर्तन और सुधार हो सकता है ।

बहुधा उधार देनेवाले महाजन या साहूकार को बहुत बुरा-बुरा कहा जाता है कि वह बहुत भारी ब्याज लेता है, रक्त चूसनेवाला राक्षस है, क़र्ज़दार बेचारा बोझ के नीचे इस तरह दब जाता है कि उसे ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं रहता । इत्यादि । इसका प्रतिकार उधार देनेवालों को गालियाँ देने से नहीं होगा । आवश्यकता है क़र्ज़ लेनेवालों की दशा एवं आदत में सुधार करने की; क्योंकि जहाँ क़र्ज़ लेनेवाला ही न होगा, वहाँ क़र्ज़ देनेवाला क्या करेगा ? इसलिये कृषक-समुदाय की दशा सुधरे, उन्हें, वे जो कुछ पैदा करें, उसमें निर्वाह एवं बचा रखने की आदत सिखाई जाय, केवल यही उपाय सबसे हितकारक होगा । इसी भाँति अभी जब तक यह बात न हो जाय—क्योंकि इसके होने में भी समय लगेगा—तब तक सस्ते ब्याज पर रुपया उधार मिले, ऐसे साधन होना आवश्यक है । इसके लिये कोआपरेटिव-बैंक खुलने चाहिए, जो कृषक-समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए अपना कारबार करें । कृषकों को निर्धन होने के कारण अपनी पैदावार मद्दे-सस्ते दामों में बेच देनी पड़ती हैं, उनमें असमय में कुछ ठहरने की शक्ति कहाँ ! जो दाम मिलते हैं, वही लेने पड़ते हैं । यह सब बुराइयाँ मेटने के लिये कृषकों की दशा में सुधार की आवश्यकता है ।

कृषि की ऐसी बुरी दशा होने, उसके लिये वही पुराने टूटे-फूटे साधन काम में लाए जाने, नए साधन और सुधार के लिये पूँजी की कमी एवं बोई गई भूमि के परिमाण में बहुत कम पैदावार होने पर भी भारत की कृषि अपने यहाँ खाद्य-पदार्थ एवं उद्योग-संबंधी कच्चे माल की आवश्यकता की पूर्ति कर देती है । केवल इतना ही नहीं, बल्कि हमारी सरकार के ध्यान में खाद्य-पदार्थ निर्यात करने लायक़ बच रहते हैं, और अन्य कच्चे पदार्थ तो निश्चय ही आवश्यकता से अधिक बड़े परिमाण में बच रहते हैं । लेकिन इस सब पैदावार से भारत की सुख-समृद्धि में तभी वृद्धि हो सकती है, जब कृषि की दशा सुधारी जाय, और पैदावारी का परिमाण नई प्रणाली द्वारा बढ़ाया जाय । अमेरिका-जैसा उन्नत देश भी आज कृषि की शिक्षा और अन्वेषण-कार्य में बहुत भारी रक़म ख़र्च करता है । वहाँ कृषि-विभाग की कई भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, जो सब अपना काम कर रही हैं । इसी भाँति अन्य देशों में भी वहाँ की सरकारें कृषि-सुधार के लिये भारी ख़र्च ही नहीं करती हैं, बरन् इस काम को सुधारना अपना कर्तव्य-कर्म समझती हैं । कृषि ही उद्योग की नींव है, और उसकी उन्नति पर अन्य सब उद्योगों की सफलता का आधार माना जाता है । इससे देश की समस्त जनता को लाभ पहुँचता है, यही खाने को खाद्य-पदार्थ देती है, और उद्योग-धंधे के लिये कच्चा माल । यदि कृषि न हो, तो ये दोनों पदार्थ, अर्थात् खाद्य-वस्तु और कच्चा माल, कहाँ से आवे ? अमेरिका में कृषि-संबंधी नवीन आविष्कृत यंत्रों का बड़ा प्रचार है, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं के बल पर वहाँ कृषि-कार्य में से ४० लाख व्यक्ति कम किए जाकर अन्य उद्योग और व्यापार के काम के लिये दे दिए गए हैं। इससे यह नहीं कि वहाँ की उपज या पैदावार में किसी भी भाँति कमी हुई हो। यह सब केवल यांत्रिक शक्ति के बल पर हुआ, जिससे इतनी बड़ी मानुषिक शक्ति का बचाव हो गया।

हमारी दयालु सरकार भारत से खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल के निर्यात के विषय में कहा करती है कि यह सब निर्यात यहाँ की आवश्यकता की पूर्ति में कुछ बाधा नहीं पहुँचाता; क्योंकि यहाँ की पूर्ति के बाद जो बचता है, उसी का निर्यात होता है। इसी तरह चावल और गेहूँ के निर्यात के लिये "सरकारी गज़ट" ने एक जगह लिखा है—"यह निर्यात भारत की खाद्य-पूर्ति में कोई बाधा नहीं पहुँचाता; क्योंकि ये पदार्थ न तो आवश्यकता के स्थानों से और न गहरी आबादीवाले स्थानों ही से खींचे जाते हैं।" क्या मज़े की बात है! यह लिखते समय ध्यान में नहीं रहा कि आज देश में एक जगह से दूसरी जगह लाने-ले जाने के साधन—रेल, जहाज़—मौजूद हैं, तब फिर जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ क्या एक जगह से दूसरी जगह माल नहीं पहुँच सकता? ऐसी दशा में उल्लिखित बात कह देना केवल बालक को बहलाने के सदृश नहीं, तो और क्या है? इसी भाँति फिसकल-कमीशन की रिपोर्ट में भी कहा गया कि "खाद्य-पदार्थ की कमी उतना कारण नहीं, जितनी यह बात कि बहुत-सी जनता इतनी ग़रीब है कि वह अपनी आवश्यकतानुसार खाद्य-सामग्री मोल नहीं ले सकती।" यह भी एक बड़े मज़े की बात है, कोई पूछे कि 'मरा क्यों'? तो कह दिया जाय कि "श्वास नहीं आया।" यदि भारतीय जनता का अधिक भाग इतना ग़रीब है कि वह जीवनोपयोगी पदार्थ ख़रीद ही नहीं सकती, तो ऐसी दशा में खुले व्यापार (Free Trade) की नीति रखना और खाद्य-पदार्थ का निर्यात कर जनता के लिये ख़रीद में और भी अधिक कठिनाई डाल देना बुरा ही नहीं, पर पाप है। यह स्पष्ट है कि फिसकल-कमीशन ने सब कुछ जानते हुए भी उस पर एक सच्ची निष्पक्ष राय देने के बदले किसी तरह टाल-टूल का जवाब देना ही ठीक समझा।

इसी भाँति अन्य कच्चे माल के निर्यात की बात समझिए। किसी भी वस्तु का आधिक्य तभी कहना चाहिए, जब पहले अपनी आवश्यकता पूरी हो जाय, और फिर कुछ बच रहे। जब भारतीय जनता भूखों मरे, और चिथड़े भी पहनने को न मिले, उस दशा में आधिक्य बतलाना किस अर्थशास्त्र के अनुकूल है, इसका कुछ पता नहीं लगता! देखें, भला ग्रेट-ब्रिटेन ही अपने यहाँ से जब वहाँ की जनता शीत-ऋतु में जाड़ों मरे, कोयला तो बाहर भेज दे!

उद्योग-प्रेमी कभी उद्योग को कृषि से ऊँचा स्थान देने की भूल न करें। हाँ, पैदावार के साथ-साथ उद्योग की वृद्धि होना भी वांछनीय है, पर कृषि को भुलाकर उद्योग की ओर झुक जाना बड़ी भारी भूल होगी। यदि पैदावार ही न होगी, तो उद्योग भी किसके बल पर बढ़ेगा? जिन पाश्चात्य देशों ने उद्योग की बेहद वृद्धि कर ली, पर जीवनोपयोगी पदार्थों के लिये दूसरे देशों पर अवलंबित हैं, उन्हें अब खाद्य-पदार्थ की पूर्ति के लिये बड़ी चिंता व्याप रही है। यह बात आज नहीं, पर बहुत पहले ही जर्मनी ने अनुभव कर ली थी। जर्मनी में पहले ही यह विचार उठ खड़ा हुआ था कि उद्योग बहुत बढ़ रहा है, इसलिये सबसे पहले सस्ते खाद्य-पदार्थ की प्राप्ति हो, इस बात की नहीं, पर खाद्य-पदार्थ की प्राप्ति का मार्ग निश्चय और निरापद हो, इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है। महायुद्ध के पूर्व योरप की स्वनिर्वाह-शक्ति मिट चुकी थी, और वह खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल पर बाहरी दुनिया का आश्रित बन चुका था। इसी कारण मिस्टर हूवर (Mr. Hoover) ने कहा था कि सन् १९१८ के समय, युद्ध-काल के योरप में जितनी जनसंख्या का वह अपनी पैदावार पर निर्वाह कर सके, उससे १० करोड़ जनसंख्या अधिक थी। इसलिये महायुद्ध ने कृषि की ओर केवल ध्यान ही नहीं आकर्षित किया, वरन् इसकी उन्नति करने के लिये भी योरप के नेत्र खोल दिए।

महायुद्ध के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन अपनी ज़रूरत से आधे से भी कम खाद्य-पदार्थ पैदा करता था, जिसमें केवल एक पंचमांश गेहूँ होता था। पर आजकल वहाँ कृषि-सुधार का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व रखता है, और भूमि-संबंधी क़ानून में सुधार किया गया है, जिससे कृषि के लिये भूमि सुलभ हो गई है, और केवल खेल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये ज़मीन को रोक रखने में रुकावट डाल दी गई है। इस भाँति कृषकों की स्थिति में सुधार किया गया है। पूँजी की प्राप्ति के लिये बैंक-प्रणाली और कृषि-संबंधी यंत्रादिकों की लेवा-बेची में सुबीता आदि प्रत्येक बात से कृषि को पूर्ण उत्साह दिया जा रहा है। ग्रट-ब्रिटेन के लिये उसके आधीन देशों से पहले की भाँति आज भी खाद्य-पदार्थ और कच्चा माल खींच लेना सहल है, पर पिछली घटनाओं ने उसकी आँखें खोल दी हैं, जिससे उसने अपनी पुरानी धारणा बदल दी है, और अब वह इस बात से चौकन्ना है कि न-जाने पूर्वी देशों की जागृति किस समय विकट परिस्थिति उपस्थित कर दे, जिससे वहाँ के उद्योग की वृद्धि होकर खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल का आना बिलकुल बंद हो जाय। न-जाने वह दिन कब आवेगा; पर भारत के हित की दृष्टि से ऐसा दिन निश्चय ही अभिनंदनीय होगा।

इस भाँति आज योरप की जातियाँ चारों ओर से उन्नति के लिये घोर प्रयत्न कर रही हैं, जिससे उन्हें किसी भी बात के लिये दूसरे पर अवलंबित न रहना पड़े। उद्योग का योरप में इतना प्राबल्य है, पर वहाँ आज उसकी भी बुराइयाँ समझकर उसे घटाने और उसके स्थान में कृषि को बढ़ाने की प्रबल चेष्टा हो रही है। दुःख की बात है, हमारा भारत अभी गाढ़ निद्रा ले रहा है, यहाँ यांत्रिक उद्योग की जड़ बलवती करने का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है, कृषि की ओर भी बे-परवाही चल रही है। वास्तव में हमारे यहाँ आर्थिक सुधार (Economic development) और पैसा कमाने के मार्गों का कोई उचित नियंत्रण ही नहीं है। हमारे आर्थिक जीवन की जड़ के लिये कोई भी राष्ट्रीय नीति निर्द्धारित नहीं है। यदि ऐसा होता, तो आज हमारी आर्थिक समस्या का चारों ओर से सुधार नज़र आता, और कृषि और उद्योग की दशा ऐसी उन्नत और परिष्कृत हो जाती, जिससे दोनों आपस में एक दूसरे से मानों जुड़े हुए नज़र आते।

आज न तो देश में उद्योग की ही अच्छी दशा है, जिससे उद्योगी-वर्ग तो संपन्नावस्था में हो। उन्हें भी चिंता खा रही है। इसका प्रमाण बंबई की मिलें हैं। कृषकवर्ग की भी ऐसी दशा नहीं है, जिससे उन्हें तो खाने-पहनने को पूरा मिल सके। हमारे यहाँ की उपज का परिमाण बोई गई भूमि की तुलना में अन्य देशों से बहुत कम है, लेकिन इसका यह कारण नहीं है कि हमारे यहाँ की भूमि ख़राब हो, जिससे उसमें इतनी कम पैदावार हो।

इस सबका मुख्य कारण पूँजी की आवश्यकता, उचित खाद्य-सामग्री, अच्छे बीज और नए आविष्कृत यंत्र आदि पदार्थों की कमी ही है। क्या किया जाय, देश के दिन ही ऐसे हैं, जो आज ऐसी दशा में पड़े रहकर व्यर्थ ही उसकी जन, बल, शक्ति और भूमि का नाश किया जा रहा है। वह दिन कब आवेगा, जब भारत की भूमि में भी कृषि के वे नवीन आविष्कृत यंत्र चलते नज़र आवेंगे, कृषि पर अवलंबित जनता उन्नत और संपन्नावस्था में होगी, तथा आज की भाँति सब कुछ पैदा करके भी भूखे पेट न सोएगी।

मोहनलाल बड़जात्या

ग्राम-गीतों की पुस्तक छप रही है

१५ अगस्त १९२९ तक ग्राहक होनेवालों को ३) की पुस्तक २॥) में

स्त्रियों के रचे हुए गीतों में जो रस है, वह न तो वाल्मीकि की कविता में है, न कालिदास और भवभूति की, और न सूर और तुलसी की। कविता का सच्चा आनन्द लेना हो, तो गीतों को पढ़िये। प्रत्येक गीत के साथ उसका हिंदी-अनुवाद भी है।

पहला संस्करण हाथोंहाथ निकल जायगा। इसलिये ग्राहक-श्रेणी में जल्दी नाम लिखाइये। नहीं तो दूसरे संस्करण तक के लिये अहकना पड़ेगा।

पुस्तक सजिल्द होगी। छपाई बहुत सुन्दर होगी। मूल्य तीन रुपये।

पताः—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

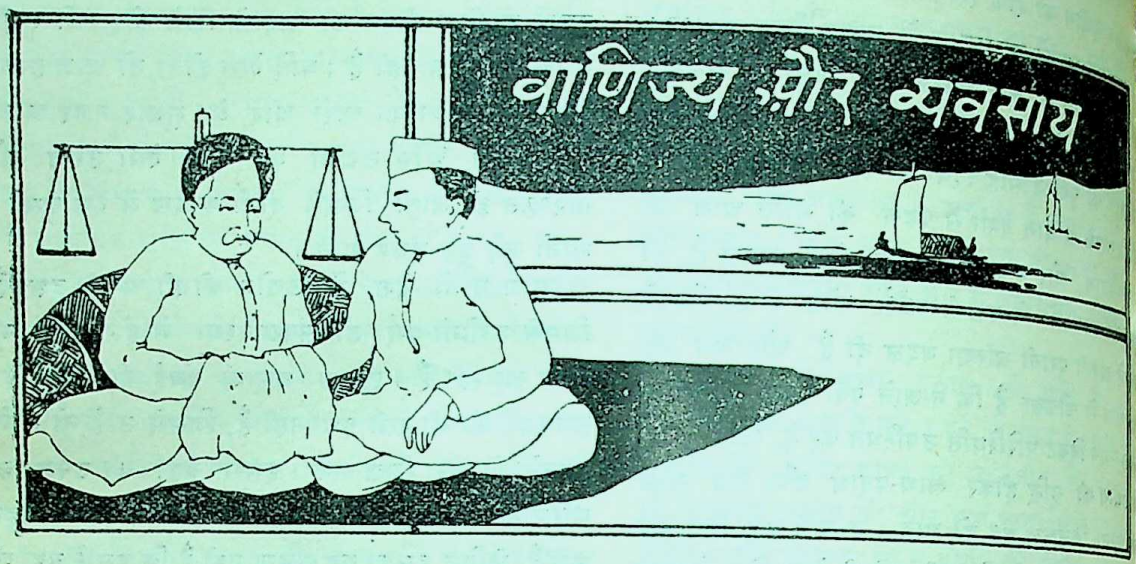

पूँजी-व्यापार का बीज-मंत्र

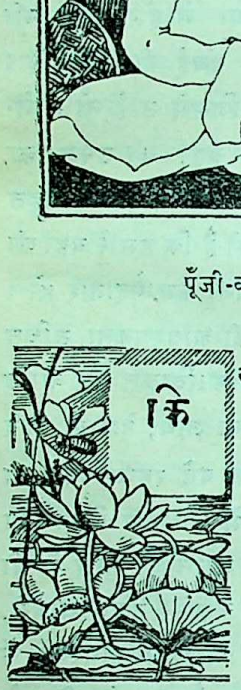

किसी भी व्यापार में उस पुरुष का अधिकार रहता है, जो अपनी पूँजी को अच्छी तरह से सँभालता है।

पूँजी सँभालने की योग्यता आजकल के नवीन व्यापार में सामयिक ज्ञान से प्राप्त होती है। पैतृक व्यवसाय की बुद्धि भी तभी काम देती है। पूँजी तो व्यापार-युद्ध की गोली-बारूद है। इसे वही अच्छी तरह से चला सकते हैं; जो युद्ध के नए मैदान में, अपनी ज़मीन छोड़कर भाग नहीं खड़े होते हैं। ऐसे बड़े-बड़े शूरवीर लड़ाके हुए हैं, जो सिंह के समान शक्तिशाली थे—दुश्मन भी उनसे थर-थर काँपते थे; पर वे लड़ना ही जानते थे। वे यही ख़याल करते थे कि हम तो सदैव से लड़ते आए हैं। हमारे सम्मुख कौन जीतेगा? पर लड़ना आने से क्या हुआ? राजनीति का ज्ञान तो नहीं रहा था। दूसरे, जो कभी नहीं लड़े थे, उन्होंने युद्ध में शत्रुओं को राजनीति के बल पर हरा दिया था। व्यापार के रण-क्षेत्र की भी ठीक यही अवस्था है। जो व्यापारी सैनिक पुराने किसी अभिमान या भरोसे पर रहता है, वह सब प्रकार के उद्योग करने पर भी हार बैठता है।

पूँजी हर प्रकार के व्यवसाय की जान है। अंत में दूसरों का देना पूँजी से ही तो होता है। व्यापारी को अपने वादों की पूर्ति के लिये इसी की चिंता करनी पड़ती है।

हमारे देश में कई विदेशी कंपनियाँ अनेक वर्षों से सारे संसार में कारबार कर रही हैं। लाखों रुपए का माल वे बेचती और मँगाती हैं। उनके लिये व्यापार सुलभ हो गया है। वे सोचती हैं कि माल आसानी से ख़रीदा जा सकता है। ऐसी कंपनियों में से एक कंपनी के प्रधान संचालक से पूछा गया कि वह अपने व्यापार में किन-किन कामों की स्वयं देखभाल करते हैं, उनका उत्तर इस प्रकार था—

"मैं स्वयं बहुत थोड़ी देखभाल करता हूँ। मेरे कारबार का ख़ास आदमी माल के बेचने और ख़रीदने में, माल के बेचने के लिये नई-नई तरकीबें सोचने में, विज्ञापन देने में और आफ़िस का सारा इंतज़ाम करने में मेरी तरह हर प्रकार से योग्य है। शायद ही कभी ऐसा मौक़ा आता है कि इनमें से कोई बात मेरे सामने आवे। लेकिन मुझे अपने व्यापार में तो काम अवश्य करने पड़ते हैं। मुझे प्रत्येक चेक, हुंडी और पुर्ज़े पर दस्तख़त करने पड़ते हैं। मैं बैंक में जानेवाली प्रत्येक चिट्ठी और दस्तावेज़ पर दस्तख़त करता हूँ। पहले काम से रोकड़ पर मेरा अधिकार रहता है, और दूसरे काम से मेरी साख पर नियंत्रण रहता है।"

यह है कुशल व्यापारी। इन्हीं दो बातों से वह अपने व्यापार की पूँजी पर सीधा और विस्तृत रूप से नियंत्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता है। इसका यह अर्थ है कि व्यवसाय के ख़र्च का हरएक आँकड़ा उसकी निगाह में पड़ता है। इस जाँच में यदि कोई ख़र्च अनुचित या नुक़सान पहुँचानेवाला मालूम पड़ता हो, या कोई रक़म ज़्यादा दी जाती हो, तो वह तुरंत उसकी देखभाल कर, सुधार कर सकता है। इस प्रकार ख़र्च पर उसका अंकुश रहता है।

इसके अतिरिक्त बैंक में जानेवाली चिट्ठियाँ और दस्तावेज़ों पर दस्तख़त करने का अर्थ है—व्यापार की जीवनाधार साख। वर्ष-भर में व्यापार लाख रुपए या करोड़ रुपए का होवे, या एक रुपए का—वह उसमें लगाई हुई पूँजी से होता है, जो माल की आमदनी और खपत की दृष्टि से बहुत ही थोड़ी होती है। देश और विदेश से बहुत बड़ी तादाद में माल ख़रीदने के लिये प्रायः पूरा-का-पूरा रुपया देशी और विदेशी बैंक देते हैं। जब माल रास्ते में होता है, या फिर से बिक्री के लिये होता है, तब यही बैंक माल की क़ीमत पर सौ प्रतिसैकड़ा तक उधार देते हैं। उधार या साख पर व्यवसाय के जिन सौदों से असर पड़ता हो, वे अत्यंत महत्त्व-पूर्ण हैं, उन पर नियंत्रण रखना अत्यंत आवश्यक है। इसीलिये, वह बैंक में भेजे जानेवाले चेक काग़ज़ को स्वयं मंज़ूर कर, दस्तख़त करता है।

यद्यपि बहुत-से व्यापारी अपनी देखभाल का क्षेत्र इतना संकीर्ण नहीं रखते हैं, बड़ा व्यवसाय होने पर भी वे प्रायः सभी विभागों को देखते हैं, फिर भी वे यह हमेशा याद रखते हैं कि पूँजी पर नियंत्रण रखना अपने व्यापार की नींव को मज़बूत बनाए रखना है।

कोई पुरुष अकेला व्यापार करता हो, या उसके नीचे बहुत-से लोग काम करते हों; किंतु वह अपने व्यवसाय की पूँजी के दोनों काम करने का अधिकार किसी को नहीं सौंप सकता।

बंबई और कलकत्ता-जैसे शहरों में ऐसे व्यापारी हैं, जिनकी उन्हीं शहरों में अनेक शाखाएँ हैं। यदि कोई किसी व्यापारी के आफ़िस में सवेरे दस बजे जाकर देखे, तो वहाँ कोई चहल-पहल नहीं दिखाई देगी। व्यापारी की टेबुल साफ़ नज़र आती है। सिर्फ़ एक काग़ज़ दिखलाई पड़ता है, जो शाखाओं के व्यवसाय के मुख्य आँकड़ों की दैनिक, संक्षिप्त तालिका होती है। इस दैनिक तालिका से वह अपने संपूर्ण व्यापार के रुख़ को देखता है, और तदनुसार अपनी नीति निश्चित करता है। यह तालिका बतलाती है कि उसे अपनी शक्ति किस-किस ओर लगाने की अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार किसी का व्यापार—एक शहर में फैला हुआ हो, या देश-विदेश में, उसे सर्वत्र इसी नीति से काम करना पड़ता है।

व्यापार की पूँजी से ही नीति निश्चित होती है।

व्यापार बड़ा हो या छोटा, उसकी नीति इसी से निश्चित होती है। इसी नीति के बल पर यदि किसी का व्यवसाय चालीस-पचास हज़ार रुपए की पूँजी से ही चलता हो, तो वह लाख रुपए से चलनेवाले व्यवसाय से टक्कर ले सकता है। अक्सर बड़ी-बड़ी कंपनियों और गद्दियों में पूँजी पर पूरी देखभाल नहीं रहती है। बहुत थोड़ी बातें मालूम पड़ती हैं। भविष्य के संबंध में भी उनकी पूर्ण दृष्टि नहीं पड़ती है। इसी से छोटे-छोटे व्यापारियों के कारबार उन्नति कर जाते हैं। इस नीति की उपेक्षा से बड़ी-बड़ी लिमिटेड कंपनियाँ या बड़ा-बड़ी गद्दियाँ दिवाला निकाल बैठती हैं। लिमिटेड कंपनियों में उनके असली मालिक हिस्सेदारों का—प्रबंध में कोई हाथ नहीं होता है, उनके मैनेजिंग एजेंट्स और डाइरेक्टरों का बोर्ड ही सब कुछ करता है। यदि उनकी पूरी दिलचस्पी नहीं हुई अथवा—उन्होंने ग़ैर ज़िम्मेदारी से काम किया, तो लोगों की पूँजी डूब जाती है। जिस प्रकार वे कंपनियाँ फ़ेल होती हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े शहरों में बहुत-से लोग गद्दियाँ खोलकर धन कमाते हैं, और फिर बदनियती से दिवाला निकाल देते हैं। जो लोग इस प्रकार दिवाला निकालते हैं, उनसे दूसरे व्यापारियों को बचना चाहिए। अगर ऐसे लोगों को व्यापार करना है, तो हमें बैंक में खाता खोलने के लिये मजबूर करना चाहिए, और तब बैंक के मार्फ़त उससे काम-काज करना चाहिए। इस प्रकार चाहे जैसा भी व्यापार हो—बड़ा हो या छोटा—और कंपनी, गद्दी या दूकान आदि के रूप में कैसी भी संगठित हो, हमें पूँजी के संबंध में—दोनों सिद्धांतों को कदापि न भूलना चाहिए।

सफलता का बीज-मंत्र पूँजी सँभालना ही है।

जी० एस्० पथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

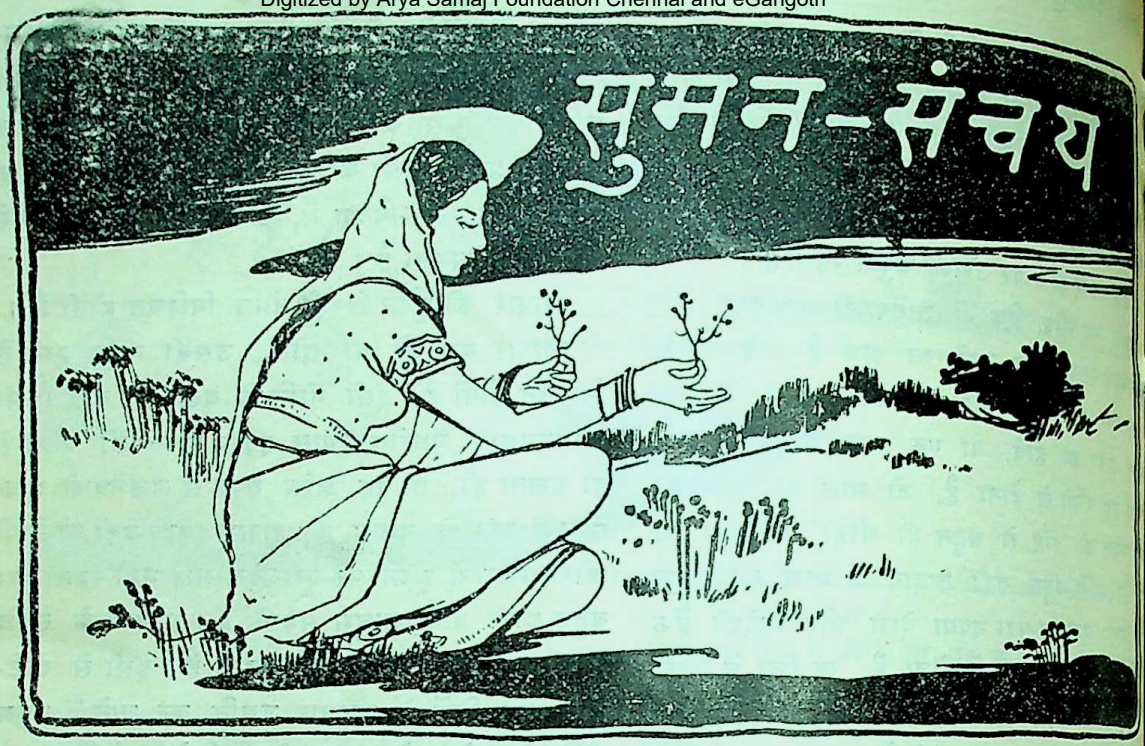

१. साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा एम्० ए०

कुछ ही दिनों की बात है, गत तीसरी एप्रिल को भारत का सबसे प्यारा लाल, भारत ही नहीं, बरन् संसार के ख़ज़ाने का एक अमूल्य रत्न इस नश्वर संसार से सर्वदा के लिये बिदा हो गया।

इस असार-संसार में न-जाने नित्य कितने प्राणी जन्म लेते और कितनों की मृत्यु होती है। इन प्राणियों के जन्म-मरण से नित्य ही संसार की गोद भरती तथा ख़ाली होती रहती है। परंतु कभी-कभी यह मरण इतना भयानक, इतना मर्मांतक पीड़ा देनेवाला एवं इतनी क्षति करनेवाला होता है, जिसकी स्मृति से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शर्माजी का अंत भी ठीक इसी प्रकार का है।

आपका जन्म बिहारांतर्गत छपरे-शहर में, सन् १८९७ ई० में, हुआ था। आप एक ग़रीब माता-पिता की संतान थे। ब्राह्मणकुलोद्भूत शर्माजी ने अपनी आर्थिक अवस्था की परवा न कर, काशी में विद्याभ्यास की ठानी। लड़कपन से ही आप मा सरस्वती के अनन्य भक्त थे। काशी में आपने पं० गंगाधरजी शास्त्री तथा पं० शिवकुमार शास्त्री से विद्या सीखी।

शर्माजी ने छोटी ही अवस्था में साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त कर, अँगरेज़ी का अध्ययन शुरू कर दिया और आप अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय के बल एम्० ए० भी बन बैठे।

आप अपने समय के संस्कृत-भाषा के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। आपकी अगाध विद्वत्ता का विश्लेषण करते कहना पड़ता है कि शर्माजी संसार के उन प्रतिभाशाली दिग्गज विद्वानों में थे, जिन पर संसार को नाज़ हो सकता है। प्रत्येक दृष्टि में, अपने युग के विद्वानों के सिरमौर भाषाविज्ञानविद्, सफल तार्किक, पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दोनों दर्शनों के पूर्ण मर्मज्ञ, वेद-वेदांगों के ज्ञाता, कवि, सर्वश्रेष्ठ कोषकार और क्या-क्या नहीं थे?

आपकी जैसी पैनी बुद्धि थी, वैसी ही विलक्षण स्मृति शक्ति भी। संस्कृत-साहित्य के लगभग दस हज़ार श्लोक आपको याद थे। वर्ष-दो वर्ष की बात जाने दीजिए, आपको चालीस वर्ष पहले की पढ़ी हुई पुस्तक भी आपको इस प्रकार याद थी, मानों कल की पढ़ी हुई हो, और उस पर यह कि केवल पद्य ही नहीं, गद्य की पुस्तकें भी आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद थीं, जिस प्रकार पद्य की। शर्माजी की वाद-विवाद करने की शक्ति एवं असाधारण मौलिकता देखकर मानना पड़ता है कि आपका स्थान भी भारत के उन्हीं प्राचीन ऋषि-महर्षियों में है, जिन्होंने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को संसार के सामने सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दिया है।

विख्यात विद्वान् श्री० के० पी० जायसवाल के मत से शर्माजी कपिल, कणादि के जोड़ के दार्शनिक एवं शंकर के जोड़ के वेदांती तथा कालिदास के जोड़ के कवि थे। "I proudly felt that I had by me walking or sitting as great a Hindu thinker as the past had produced and that the dynasty of Kapila and Kanada was not dead in my time. With a command over Sanskrit as great as that of Sankara, the vedantist, with a mind acuter than that of Sankara he combined in him poetic powers of a rare order. He could compose verses which would be mistaken for those of Kalidasa..."

श्रीजायसवाल का कहना अक्षरशः सत्य है, यह सभी मानते हैं। वास्तव में शर्माजी ने 'परमार्थ-दर्शन' लिखकर जायसवाल की उक्ति सिद्ध कर दी है। आज तक, भारतीय दर्शन केवल छः ही थे, अब उनकी संख्या सात हो गई।

इधर २५ वर्षों से शर्माजी संस्कृत-कोष को up to date बनाने की फ़िक्र में लगे हुए थे। यह कोष अंग्रेज़ी के Oxford Dictionary के ढंग का है। तथापि २५ वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद शर्माजी इसे किसी प्रकार समाप्त भी कर सके, परंतु तो भी उन्हें इसके प्रकाशित कराने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। प्रकाशित होने पर यह कोष संस्कृत-भाषा का संसार में सबसे बृहत् एवं पूर्ण कोष होगा।

आज तक किसी ने भी अकेले, बिना किसी की सहायता के, इतने कम समय में, इतना बड़ा कोष नहीं तैयार किया है। इसका श्रेय शर्माजी को ही है। आपकी योग्यता, बहुज्ञता एवं विद्वत्ता के सभी क़ायल हैं।

शर्माजी की पठन-पाठन ही दिनचर्या थी। पढ़ना ही आपके जीवन का मूल-मंत्र था। पढ़ना ही आपकी ख़ुराक थी, और पढ़ना ही आपकी औषधि। कोई भी नई पुस्तक मिल जाती, फिर चैन कहाँ। आज तक शर्माजी को किसी ने कहीं चुपचाप बैठे नहीं देखा। रेल पर, मोटर में, घर पर, कालेज में, जहाँ देखिए आप मा भारती की आराधना कर रहे हैं। आपके दर्शन-मात्र से ही हृदय श्रद्धा एवं भक्ति के हिलोरों में डुबकियाँ लेने लगता था। हृदय में एक विचित्र भाव की जागृति होती थी, एक अजीब स्फूर्ति पैदा होती थी और हृदय उल्लसित हो उठता था।

शर्माजी प्रत्येक विषय में मौलिक थे। आपका रहन-सहन, खान-पान, पठन-पाठन, आचार-विचार सभी पर मौलिकता की छाप लगी हुई थी। न आपके खाने के समय का ठिकाना, न सोने का। जभी जी में आता घंटे-दो घंटे विश्राम कर लेते, जभी जी में आता कुछ खा लेते, चाहे वह कालेज का पाठ-भवन हो वा घर का रसोई-घर। आप बराबर अपने साथ एक छोटी-सी लुटिया, चार-पाँच केले और तीन-चार केवले रक्खा करते थे। रहन-सहन भी इतना सादा और मौलिक कि देख कर हँसी आती। गर्मी के दिनों में पैर में स्लीपर, बदन में एक खद्दर का कुर्ता, सिर पर हैट, गले में यज्ञोपवीत और उसमें चाभियों का गुच्छा। जाड़े में कुर्ते के ऊपर एक या दो कोट, यही आपकी पोशाक थी। शान-शौकत की बू-बास नहीं। चेहरे से तेजस्विता टपकी पड़ती थी। लोग लाख बकते, पागल कहते, आपको इसकी परवा नहीं।

पागल कहलाने में भी आपको सुख मिलता था। और वास्तव में शर्माजी पागल थे भी। वह ठीक शंकर के जैसे पागल थे। उनका पागलपन बुद्ध का पागलपन था। ऐसे पागलों पर संसार को नाज़ है। शर्माजी भी उसी कोटि के पागल थे।

शर्माजी के विचारों में भी पागलपन था। वह केवल सत्य के पुजारी थे। सत्य ही उनका धर्म था, सत्य ही उनकी निष्ठा थी, और सत्य ही उनका आराध्य था। आप रूढ़िवादिता के कट्टर दुश्मन 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' के घोर विरोधी एवं शक्तियों के पुराने शत्रु थे। तंत्र-मंत्रादि में आपका कुछ भी विश्वास न था। आप प्रकृति के विरुद्ध कुछ सुनना नहीं चाहते थे। प्राकृत नियमों पर आपका अटल विश्वास था। आप अपने सिद्धांत के ख़ूब पक्के थे। जो सोचते, वही कहते और वही करते। आप 'मनसावाचाकर्मणा' एक थे। 'There

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

was unanimity in his thought, speech, and deed.'

शर्माजी विद्वान् तो परले सिरे के थे ही, साथ-ही-साथ आप कट्टर देश-भक्त भी थे। महात्मा गांधी के खद्दरवाद में आपका पूर्ण विश्वास था। आप खद्दर के परम भक्त थे। छोटी-छोटी संस्थाओं की बात तो जाने दीजिए, सन् १९१२ ई० में आप अखिल-भारतवर्षीय सामाजिक सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। हाल ही में, बिहार में, जो परदा-प्रथा के विरुद्ध घोर आंदोलन हुआ था, उसमें आपने काफ़ी हाथ बँटाया था। सामाजिक क्रांति में आपका पूर्ण विश्वास था।

संस्कृत आपकी मातृ-भाषा थी, परंतु तो भी राष्ट्र-भाषा हिंदी पर आपका अगाध प्रेम था। आप प्रायः हिंदी के पत्रों में अपने विचार प्रकट किया करते। हिंदी-संसार में भी आपकी काफ़ी प्रतिष्ठा थी। अखिल-भारत-वर्षीय साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति भी रह चुके हैं।

यों तो आजकल लीडरों और समाज-सुधारकों की एक बाढ़-सी आ गई है, परंतु शर्माजी वास्तव में सच्चे देश-भक्त और समाज की भलाई चाहनेवाले थे। आप जो कहते, वह अवश्य करते, यही उनमें विशेषता थी।

बिहार को उन पर गर्व था और उनको बिहार पर। आज उनकी मृत्यु से बिहार की गोद सूनी हो गई। बिहार का 'शंकर', बिहार का 'दयानंद' और बिहार का 'कालिदास' आज उठ गया। ऐसे-ऐसे अमूल्य रत्न नित्य जन्म नहीं लेते।

ईश्वर इस क्षति को सहने की क्षमता प्रदान करे।

श्रीनारायणलाल जिंजल

× × ×

२. साध

क्या अनुभव तुम कर पाओगे, अंतरतम की ज्वाला!
मसल रहे हो निठुर! हाथ से, हुलसी हिय की माला!
मौन और अभिव्यक्ति-बीच में, असमंजस का मेला!
बिखराए जी के टुकड़ों को, फेंक दूर कर डाला!
तेरी झिड़कन की थिरकन पर नाचूँगा मतवाले!
एक बार अपने हाथों से, भर दे विष के प्याले।
मिला आज अमरत्व मुझे है; गरल-पान की लाली—
बिलसी है अधरों पर मेरे: भरी आँख की डाली—
बगराती अपने वैभव को; लूट इन्हें मत लेना।
गूँध रहा चुपके, धीरे से, 'डोरे' में कुछ माधो
साध भरा 'शृंगार' सकुचता, अरे लाज-अवगुंठन—
एक बार सरका कर प्यारे! भर दे उर में कंपन।

"वीरात्मा"

× × ×

३. सिक्कों की भाषा

प्रत्येक राज्य में सिक्कों पर, राजा की मूर्ति या कोई अन्य चिह्न-विशेष तथा सिक्कों की क़ीमत तद्देश भाषा में लिखी रहती है। इस लिखावट का व्यावहारिक की अपेक्षा ऐतिहासिक मूल्य ही अधिक होता है; क्योंकि पुराने सिक्कों का मूल्य इसी भाषा के द्वारा जाना जाता है, तथा और भी अनेक गुत्थियाँ इसी के आधार पर सुलझाई जाती हैं। चूँकि भारत में स्व-शासन नहीं है, अतएव भारतीय सिक्कों पर, किसकी भाषा हो, शासक की हो अथवा शासितों की हो, इस विषय में, शासकों में भी मत-भेद पाया जाता है।

"ईस्ट-इंडिया-कंपनी" के समय १८४० का बना एक रुपया इस समय हमारे सामने है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय सिक्कों पर अँगरेज़ी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रयोग होता था। इसके बाद विक्टोरिया-काल के रुपयों पर केवल अँगरेज़ी-अक्षरों का प्रयोग किया गया है। पर एडवर्ड के समय से फिर पूर्ववत् दोनों भाषाओं का प्रयोग आरंभ हुआ, जो जार्ज के समय (आज) तक प्रचलित है।

मैंने यहाँ केवल रुपयों का ही वर्णन किया है, पर पाठकों को अन्य सिक्कों के विषय में भी, यही समझनी चाहिए। हाँ, अब जो गिलट के सिक्के, इकन्नी आदि चले हैं, उन पर कई भाषाओं का प्रयोग है—जिनमें हिंदी भी एक है। अब विचारणीय है कि कंपनी के समय में, जो सिक्कों पर उर्दू का प्रयोग हुआ, वह तो स्वाभाविक और उचित ही था; क्योंकि कंपनी ने मुसलमानों से राज्य लिया था और मुस्लिम-काल की भाषा उर्दू थी। इसके बाद विक्टोरिया ने अँगरेज़ी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा की आवश्यकता ही न समझी, पर इसके बाद एडवर्ड के समय, सिक्कों में उर्दू को फिर स्थान दिया गया। इसका कारण संभवतः यही है कि सिक्कों पर देशीय भाषा का होना आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा गया और उस समय, मुस्लिम-साम्राज्य को गए अधिक दिन न होने के कारण, उर्दू का काफ़ी प्रभाव था, अतएव यही भाषा उपयुक्त समझी गई। हिंदी-भाषियों का इधर ध्यान न होने के कारण, जार्ज के समय में भी यही बात रही। पर, आज, जब कि भारत के सब प्रांतों के प्रायः सब विद्वानों की सम्मति से, हिंदी राष्ट्रभाषा के महत्त्व-पूर्ण पद पर अधिष्ठित हो चुकी है, इस भूल के सुधार की ओर हमारा ध्यान न जाना, क्या सचमुच लज्जा और दुःख की बात नहीं है? और क्या इस प्रकार, हमारी यह उपेक्षा, राष्ट्रभाषा और राष्ट्र के घोर अपमान का कारण नहीं हो रही है?

हिंदी-सेवियों और विशेषतः हिंदी-साहित्य-सम्मेलनको, इस महत्त्व-पूर्ण विषय की ओर उचित ध्यान दे, हिंदी के इस अपमान का प्रतिकार करने के लिये आंदोलन करना चाहिए।

कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"

× × ×

४. वनवासी

छोड़ जगत का सब सुख-वैभव, हो विरक्त संन्यासी;
करते क्या इस निर्जन कानन में विमूढ़ वनवासी?
तुझे न क्या कोई अपना है? सगा, हृदय का प्यारा;
जो इस भाँति हृदय तेरा हो गया जगत से न्यारा।
वनवासी! तुम अभी युवक हो, फिर विराग क्यों छाया?
ऐसी अवस्था में तुझको एकांत-वास क्यों भाया?
कहो, कहो तो वनवासी, क्यों सदन छोड़कर आए?
काकी, इस निर्जन वन में कैसे चित्त रमाए?
आह! छलक क्यों पड़े नयन से नीर तुम्हारे, प्यारे!
विलित हो गए हैं क्या सब दिल के अरमान तिहारे?
शांत! शांत हो! सखे, आह! मत विलख-विलखकर रोओ;
व्याकुल, अति व्यथित-हृदय हो, मत यों धीरज खोओ।
समझ गया, हाँ, समझ गया मैं कारण सखे तिहारा;
आह! सत्य!! है दग्ध-हृदय का वन ही एक सहारा।

यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज'

× × ×

५. एक अपूर्व पहेली

श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा का नाम किसी भी इतिहास-प्रेमी से छिपा नहीं है। आप इस समय राजपूताने का इतिहास लिख रहे हैं, और अब तक इसके दो भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं। इसी इतिहास के प्रथम भाग के उस पृष्ठ के पीछे, जिस पर उन्होंने अपने इतिहास को कर्नल जेम्स टाड की पवित्र स्मृति में सादर समर्पित किया है, ओझाजी द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों की सूची दी गई है। इसमें दी हुई ओझाजी की स्वतंत्र रचनाओं की सूची में नंबर ९ पर 'राजस्थान-ऐतिहासिक-दंतकथा'—प्रथम भाग का भी नाम है, और आगे कोष्ठक में 'एक राजस्थान-निवासी' के नाम से प्रकाशित लिखा है। साथ ही इसके मूल्य के स्थान में 'अप्राप्य' और नीचे फ़ुटनोट में 'खड्गविलास-प्रेस, बाँकीपुर से प्राप्त'? लिखा है। परंतु उक्त दंतकथा की 'दूसरी बार की भूमिका' में लिखा है—

"उदयपुर-निवासी इतिहास-प्रेमी महता जोधसिंहजी ने १९०१ ई० में इस दंतकथा का संग्रह किया था। उसी साल पहली बार छपी भी, किंतु आपके समय में दूसरी बार छपने का संयोग नहीं हुआ। पहली बार आपने एक राजस्थान-निवासी-नाम से प्रकाशित किया। अपना नाम पुस्तक पर नहीं लिखा था।"

यह भूमिका खड्गविलास-प्रेस के संचालक और उक्त पुस्तक के प्रकाशक द्वारा २० जनवरी, १९२३ को लिखी गई थी।

पुस्तक २५ पृष्ठों की है, और इसमें १२ दंतकथाएँ हैं। इनके बाबत इसी पुस्तक की प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है—

"जो-जो दंतकथाएँ इस संग्रह में प्रकाशित की जावेंगी, उनके ऐतिहासिक सत्यासत्य का उत्तरदाता संग्रहकर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि उनका मुख्य आधार प्राचीन जनश्रुति-मात्र है। संभव है कि उनमें बहुत-सी असत्य तथा मनोकल्पित बातें हों।"

ऐसी ही इस महत्त्वहीन पुस्तक को, एक तरफ़ तो श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा अपनी 'स्वतंत्र रचना' बताते हैं, और दूसरी तरफ़ उक्त पुस्तक के प्रकाशक खड्गविलास-प्रेस, पटना के संचालक उसे स्वर्गवासी 'महता जोधसिंह द्वारा संगृहीत' दंतकथाओं के नाम से घोषित करते हैं। दोनों तरफ़ के श्रद्धेय पक्षों को देखकर इसे अपूर्व पहेली नहीं कहें, तो क्या कहें? आशा है, श्रद्धेय ओझाजी और खड्गविलास-प्रेस के संचालक इसको बूझने की कृपा करेंगे।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. स्वप्नागंतुक

तनिक पैर धीरे रख आना।
मेरे मृदु-स्वप्नों का पथ है, इसको भूल न जाना।
विकल नींद ने ले निज माया,
क्षणिक शांति का मार्ग बनाया,
इसका कौन ठिकाना?
सुप्त वेदना कुचल न जाए,
अश्रु न ठोकर खा जग जाए,
निज पद-लाज बचाना।
रूप-सुधा पूरित, अति रूरी,
कंचन की मणि-जटित कटोरी,
कहीं छलक मत जाना।
मृदुल रश्मि उस 'ज्योतिर्मय' की,
ग्रंथि मनोरम उस 'रहस्य' की,
मेरे हिय पड़ जाना।
तुझे खोलने में उलझूँगा,
उलझ,उलझ तुझमें,सुलझूँगा,
सुलझा बंधन नाना।
तुम हो उस विराट की चेरी,
यह छोटी है कुटिया मेरी,
सकरा द्वार पुराना।
होगा झुक कुटिया में आना,
धरना होगा मेरा बाना,
सोच-समझकर आना।

वीरेश्वर

× × ×

७. धरमपुर

धरमपुर शिमला-पर्वत-श्रेणी में बसा हुआ है। यह कालका से १६ मील और शिमला से ४० मील की दूरी पर है। रेल एवं मोटरों की सवारियाँ यहाँ होती हैं। यह समुद्र की सतह से ५,००० फ़ीट ऊँचा है।

यद्यपि धरमपुर एक बहुत छोटा-सा शहर है, फिर भी इसकी ख्याति सारे भारतवर्ष में प्रचलित है। यहाँ बड़ी-बड़ी दूकानें नहीं हैं, गगन-चुंबी एवं सुंदर इमारतें नहीं हैं, फिर भी इसका नाम कौन नहीं जानता। यहाँ वायु-परिवर्तन के लिये दूर दूर से लोग आते हैं। कारण, यहाँ का जल-वायु राजयक्ष्मा (Tuberculosis) के लिये बहुत ही लाभप्रद है। लोगों का यहाँ तक अनुमान है कि इस रोग की औषधि के लिये भारतवर्ष में सबसे श्रेष्ठ स्थान यही है। ईश्वर जाने यह बात कहाँ तक सच्ची है, लेकिन स्वानुभव है कि यहाँ बहुत अधिक संख्या में रोगी आरोग्य-लाभ करते हैं। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य भी बहुत ही सुंदर एवं रम्य है।

डाक्टर और वैद्यों का मत है कि राजयक्ष्मा के लिये कोई औषधि संसार में मिली ही नहीं, और प्रायः देखा भी गया है कि शत-प्रतिशत मनुष्य इस रोग के द्वारा अकाल ही संसार से बिदा ले लेते हैं। यहाँ तक कि कितने चतुर डाक्टर इस रोग से पीड़ित मनुष्य की दवा ही करना व्यर्थ समझते हैं, और जो दवा करते भी हैं वह भी शायद ही कभी सफलीभूत होते हैं। इस कारण जिस हतभाग्य पर इस रोग की कृपादृष्टि पड़ी, वह अपने जीवन की आशा एकदम खो बैठते हैं। इस दशा में धरमपुर ही एक जीवन का सहारा बनता है।

धरमपुर का जल-वायु राजयक्ष्मा के लिये लाभप्रद होने का कारण यह है कि यहाँ चीर (Pine) का बहुत ही घना जंगल है, इसलिये यहाँ की वायु इस लिये अत्यंत हितकर है। यहाँ का जल भी बहुत स्वच्छ और निर्मल है। इसमें पाचन-शक्ति बहुत है।

यक्ष्मा-रोग-पीड़ितों के लिये यहाँ दो बड़े-बड़े सैनेटोरियम (Sanatorium) तथा एक असपताल (पटियाला-राज्य की ओर से) स्थापित हो गए हैं जिनकी जनसाधारण में अतुलनीय सेवा प्रशंसनीय है।

दि किंग एडवर्ड सैनेटोरियम (The King Edward Sanatorium) और राणा दुर्गासिंह सैनेटोरियम (Rana Durga Singh Sanatorium) यही दो यहाँ सैनेटोरियम हैं। हार्डिंग हॉसपिटल (Hardinge Hospital) भी इन रोग-पीड़ित मनुष्यों के लिये है।

१. दि किंग एडवर्ड सैनेटोरियम (The King Edward Sanatorium) यह The Consumptive Home Society, Bombay, द्वारा १९०९ ई० में, श्रीयुत बी० एम्० मालवन (Mr. B. M. Malvan) के उद्योग से स्थापित हुआ था। यह सैनेटोरियम चीर (Pine) के घने जंगल में, १०० एकड़ में विस्तृत है। इसमें ८५ रोगियों के लिये स्थान है। मकान का किराया ३५) से ८०) तक है, जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

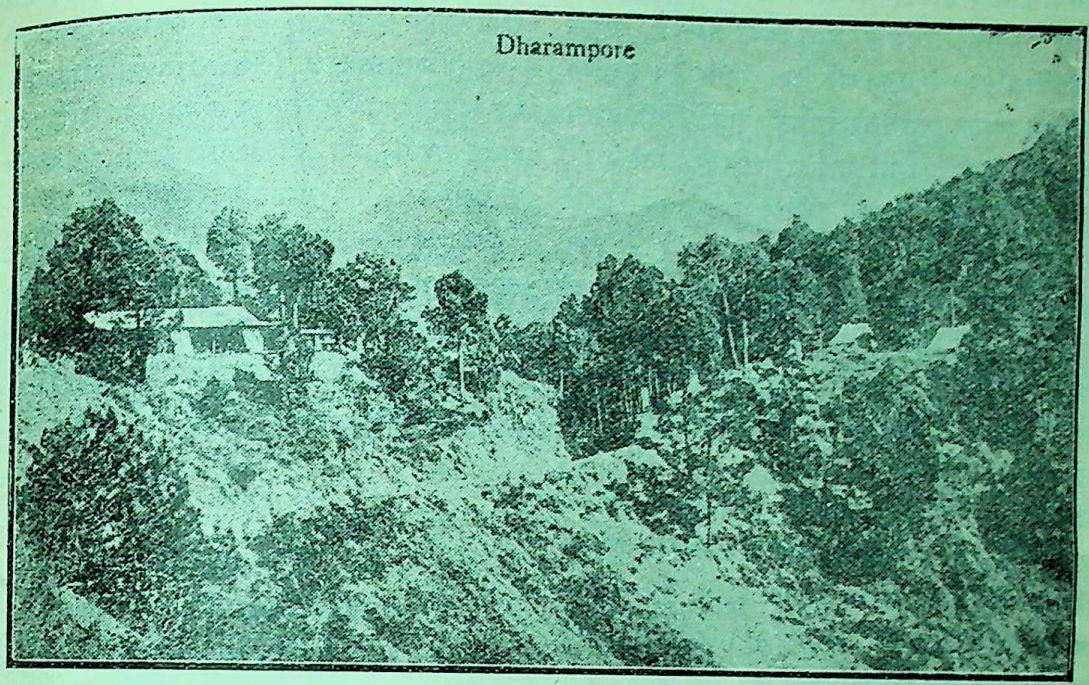

धरमपुर

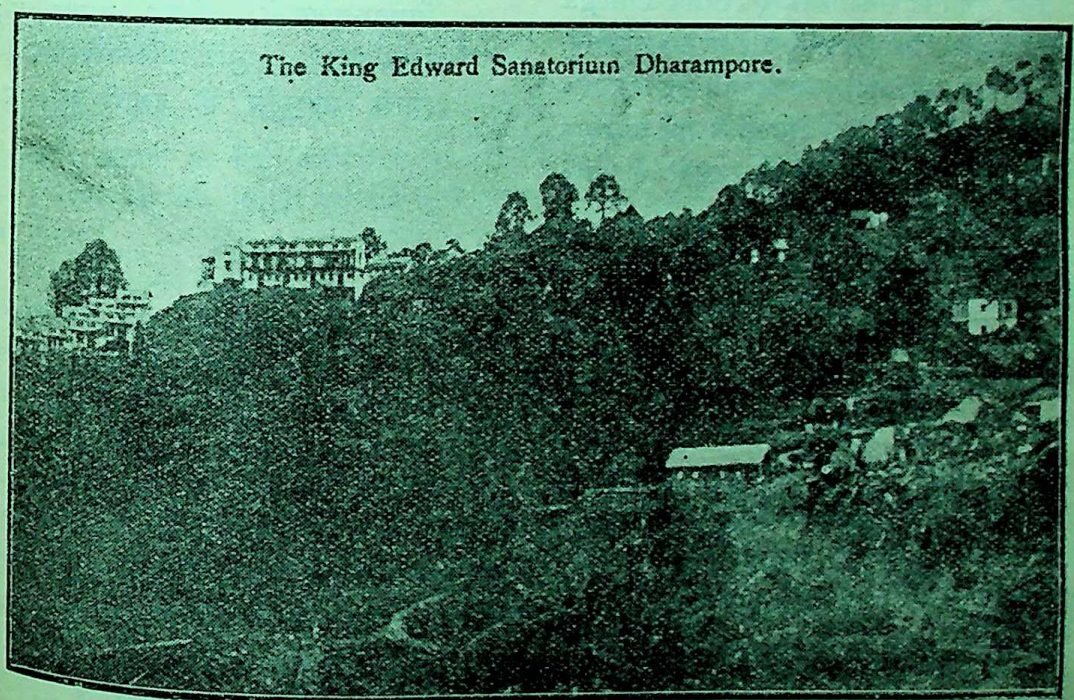

धरमपुर का किंग एडवर्ड सैनेटोरियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण औषधि और डाक्टर की फ़ीस सम्मिलित है। खाने का प्रबंध भी सैनेटोरियम ही द्वारा किया जाता है, जिसके लिये मासिक ४५) से ६५) तक देना पड़ता है। ३६दीन रोगियों को मकान का किराया नहीं देना पड़ता, इसमें अधिकांश से खाना का भी ख़र्च नहीं लिया जाता है।

रोगियों के विनोदार्थ यहाँ एकRecreation Hall (नाचघर) भी पटियाला महाराज की ओर से बन गया है। इसमें खेलने की सब वस्तुएँ मौजूद हैं। यहाँ एक नाट्य-समिति भी है, जिसके द्वारा बराबर ही अभिनय होता रहता है। इसके अलावा यहाँ एक अच्छा पुस्तकालय भी है; जिसमें अँगरेज़ी, हिंदी, उर्दू और मराठा आदि की सब पुस्तकें हैं।

यहाँ की रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि ६० फ़ी-सदी रोगी आरोग्य-लाभ करते हैं। यहाँ के सुपरिंटेंडेंट डा० एफ़० एस० मास्टर (Dr. F. S. Master) बहुत योग्यता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं। रोगियों के साथ उनका वात्सल्य-प्रेम सराहनीय है।

यह सैनेटोरियम पटियाला-राज्य में है। महाराज की ओर से एक लाख से ऊँचा दान मिल चुका है।

२. राणा दुर्गासिंह सैनेटोरियम (Rana Durga Singh Sanatorium)यह सैनेटोरियम डा० नानावती (Dr.F.D. Nanavati)—के उद्योगसे सन् १९२२ई० में स्थापित हुआ था। यहाँ ५० रोगियों के रहने का स्थान है। यहाँ सब अवस्था के रोगी लिए जाते हैं। डा० नानावती अनुभवी तथा योग्य चिकित्सक हैं। सोलन के राजा साहब द्वारा इसमें अच्छी सहायता मिल रही है।

हार्डिंज हॉसपिटल (Hardinge Hospital)—यह अस्पताल पटियाला-नरेश की ओर से है। यहाँ भी राजयक्ष्मा की दवा की जाती है। इस अस्पताल में रोगियों के लिये ६ स्थान हैं।

इसके अतिरिक्त 'अरकेडिया' (The Arcadia) में बहुत-से मकान हैं, जहाँ रोगी भी रहते हैं; परंतु यहाँ रहकर डाक्टर, दवा तथा खाने का प्रबंध स्वयं करना पड़ता है। इसके अलावा यहाँ कुछ और मकान हैं, जिसमें रोगी रह सकते हैं।

अश्विनीकुमारसिंह

× × ×

८. मातृभूमि

गंग की तरंगवारी, हिम-गिरि-शृंगवारी,
पुण्य-प्रेम रंगवारी विश्व अभिराम है;
सुजन समूहवारी, सुमन सुरभिवारी,
सरस समीरवारी सुखद निकाम है।
ब्रह्मवाद रागवारी, विषय विरागवारी,
विज्ञवर-वृंदवारी, विबुध सुधाम है;
स्वर्ग-अपवर्गवारी, भुक्ति-मुक्ति-सर्गवारी,
प्यारी "मातृभूमि" ही हमारी पूर्ण-काम है।

"श्रीहरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं' और 'हम'

आत्म-ज्ञान का मार्ग बड़ा गहन है। कोई तो ठोकरों की आशंका से उसमें पैठते ही नहीं; कोई पैठ कर दूर जाकर, फिर ठोकरें खाकर लौट पड़ते हैं। बिरले ही भाग्य-शाली उसे प्राप्त कर पाते हैं।

× × ×

उसके लिये साधना की—कड़ी तपस्या की ज़रूरत है। कोई उसी के लिये जाड़ों में जल-समाधि लगाते हैं, कोई प्रचंड ताप में पंचाग्नि तापते हैं। फिर भी वह कितनों को प्राप्त हुआ अथवा होता है!

× × ×

आत्म-ज्ञान की सिद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण—परोक्ष नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाण—है—मैं क्या हूँ, इसका भान हो जाना। इस 'मैं' और 'हम' के ही भ्रम में संसार न-जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा।

× × ×

बड़े हर्ष की बात है कि पं० हरिभाउ उपाध्यायजी को 'मैं' की संपूर्णतः ज्ञानसिद्धि प्राप्त हो गई—अथवा यह कि 'मैं' का ज्ञान प्राप्त करने के उनके उद्योग की पूर्णाहुति हो चुकी। अब कोई झगड़ा-झाँसा नहीं। और, फिर इतने अल्पकाल में—शताब्दियों की कौन कहे—दशाब्दी भी शायद न लगी होगी। न-जाने प्राचीन योगी, सिद्ध, तापस किस अंधकार में भटकते रहे। वहाँ कहीं आज वे होंगे, बेचारे अपनी मूर्खता पर हाथ मल-मल पछताते होंगे।

× × ×

यह क्रांति—यह विप्लव—यह महान् परिवर्तन—अभी १० ही ५ वर्षों के भीतर हुआ है। पहले इसके यथार्थ तत्त्व को जानते हुए भी उनके हृदय में तुमुल द्वंद्व—भयंकर सिविल वार—होता रहा; किंतु विजय उसी की हुई, जिसका प्रवेश पहले हो चुका था। कमबख़्त 'हम' ने उन्हें न-जाने क्यों इतने दिनों तक परेशान किया। लेकिन आख़िर हार खाई। व्यष्टि के सामने समष्टि को सिर झुका ही देना पड़ा! इस विजय पर उपाध्यायजी को बधाई!

× × ×

पहले कभी व्यष्टि समष्टि के चरणों में झुकता रहा होगा, समष्टि के भीतर उसे आश्रय मिलता रहा होगा; किंतु इस विकास-युग में और बातों की तरह इसमें भी विप्लव अपेक्षित था। और, वह होकर ही रहा। यह ठीक ही है। परिवर्तन का ही नाम तो जीवन है! कि और कुछ? पहले कभी समष्टि के लिये व्यष्टि का बलिदान होता रहा होगा, किंतु आज वह असंगत है। आज तो व्यष्टि के लिये समष्टि का बलिदान अपेक्षित है; क्योंकि वह समष्टि की सत्ता को मिटाकर एकछत्र राज्य करना चाहता है। समाज की पहेलियाँ कितनी अन्योन्याश्रित संबद्ध हैं! और कितनी दुरूह हैं!!

× × ×

हिंदू-धर्म में मुक्ति वैयक्तिक साधना है—वैयक्तिक सिद्धि है, समष्टि से भला उसे क्या मतलब! कभी रहा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ! इसी प्रकार 'मैं' की सत्ता अनादि काल से रही है। इसीलिये तो.....के संपादकों के लिये समष्टि-गत व्यवहार की ज़रूरत नहीं। त्याग इसे कहते हैं ! विकास-वाद के इतिहास में व्यष्टि का ही तो प्राधान्य पहले कभी हुआ था न ! नहीं तो भगवान् रामचंद्र कैसे कहते—

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि ;
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

ठीक है न !

× × ×

दस-बारह वर्ष पूर्व उपाध्यायजी को 'मैं' भारी मालूम हो रहा था। और कुछ नहीं, केवल 'अल्पता-ज्ञान' के कारण। किंतु अब उसकी बादी छँट गई। आख़िर इतना समय भी क्या काफ़ी न था ! अब अल्पता के स्थान में सूक्ष्मता अथवा व्यापकता आ गई है। इसलिये 'मैं' और 'हम' का कायिक और मानसिक अंतर स्पष्ट हो जाने पर एक निश्चय हो जाना कुछ अनुचित नहीं हुआ !

× × ×

इस अध्यात्म-साहित्यिक परिवर्तन—कायापलट—में, भाई बनारसीदासजी का भी ज़बर्दस्त हाथ रहा है। इस-लिये उन्हें भूल जाना अभी अपने को अज्ञानी ही प्रकट करने के समान होगा। पहले भाईजी 'हम' के उपासक थे, लेकिन चूँकि आप भी भाई हरिभाउजी को 'हम' से 'मैं' के पक्ष में तैयार करनेवालों में एक हैं, इसलिये अनुमान होता है कि दूसरी सिद्धि भी निकट आती जा रही है; क्योंकि उनका मत बदल गया है, जो बिलकुल अस्वाभाविक नहीं है। हमें दुःख इतना ही है कि भाई बनारसीदासजी ने शुरू से ही कंधा डाल दिया ; नहीं तो आज ऐसा दिन न आता।

× × ×

उनमें अभी 'छोटे' और 'बड़े' का भेद तो घुसा हुआ है। भाई बनारसीदासजी इस 'विकास' के युग में भी बेचारे 'मैं' को छोटा ही बनाए रखना चाहते हैं। न-जाने कमबख़्त ने क्या बिगाड़ा है। 'विशाल क्षेत्र' वाली बात हो सकती है। लेकिन भाई हरिभाउजी तो दोनों को अब एक दृष्टि से देखते हैं। (सो ठीक ही है) अब प्रति-निधिसत्ता (मैं) और जनसत्ता (हम) में आपको भेद नहीं जान पड़ता। अब तो सर्वत्र वह 'सोऽहम्' का प्रकाश देखते हैं। बस, केवल इतना अंतर हो गया है। सो यह कोई बड़ा अंतर नहीं है —केवल उतना ही बड़ा है, जितना 'मैं' और 'हम' में पहले 'प्रचलित प्रथा'-अनुसार था। व्यष्टि और समष्टि में आख़िर क्या बहुत अंतर है। जैसे एक, वैसे अनेक ! एक ही से तो बहुत होते हैं—एकोऽहं बहुस्यामः। रहा मान-अपमान, बड़प्पन अथवा नम्रता की बात, सो यह सब व्यर्थ है। यह तो ख़ाली प्रचलित प्रथा के 'अनुसार' लोग कुछ-का-कुछ समझ लेते हैं। जब 'मैं' और 'हम' का भेद नहीं जानते, तब जो कुछ भी समझें, सभी स्वाभाविक है। अब दलीलें क्या ख़ाक सिर मारेंगी—

"पाहन पतित बाण नहिं वेधत रीतो करत निषंग।"

"सोऽहं शर्मा"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. भारतीय समाचारपत्र-संपादक और उनकी कठिनाइयाँ

भारतवर्ष में पत्र-पत्रिकाओं, विशेष करके समाचारपत्रों का संपादन-कार्य कठिनाइयों से ओत-प्रोत है। पत्र-संपादन का काम स्वतंत्र जनता की स्वतंत्रता का संरक्षक है, परंतु दुर्भाग्य से भारत परतंत्र है। यहाँ राजा और प्रजा के हितों में घोर विषमता है। ऐसी दशा में साहस और निर्भीकता के साथ अपना संदेश सुनाने में पत्रकारों को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ता है। यद्यपि १९१० का प्रेस-ऐक्ट इस समय प्रचलित नहीं है, फिर भी इंडियन पिनलकोड की १२४ अ तथा १५३ अ धाराएँ ऐसे अमोघ अस्त्र हैं, जिनके द्वारा नौकरशाही स्वतंत्रता के संदेशों को सहज में नष्ट कर सकती है। इसी प्रकार क्रिमिनल प्रोसेजरकोड की १४४ धारा का भी आतंक बहुत व्यापक और विस्तृत है। मान-हानि करने का अपराध भी पत्रकारों के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट उपस्थित करता है। इन सबके अलावा कस्टम्स, पोस्टऑफ़िस, रजिस्ट्रेशन ऑफ़ बुक्स एवं प्रिंसेज़ प्रोटेक्शन-ऐक्ट भी ऐसे हैं, जो पत्रकार को सहज में विपत्ति के गर्त में ढकेल सकते हैं। सुनते हैं, सरकार और भी कोई नया क़ानून बनाकर पत्रकारों की रही-सही स्वाधीनता भी हरण कर लेना चाहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि परतंत्रता के कारण भारत में पत्र-संपादन का काम पूर्ण उत्साह और बल के साथ नहीं होने पाता है। यह तो एक कठिनता हुई। दूसरी कठिनता भारत का संप्रदायवाद है। सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण पत्रकार स्वातंत्र्य-संदेश को निष्पक्षपात भाव से नहीं सुना पाते हैं। एक संप्रदाय का समाचारपत्र दूसरे संप्रदाय के समाचारपत्र की बातों पर न्याय-बुद्धि से प्रेरित होकर टीका-टिप्पणी करने में प्रायः असमर्थ रहता है। पत्रकार-कला के विकास में यह मनोभाव बहुत बड़ा बाधक है। सरकार का डर और संप्रदाय-विशेष में लोकप्रियता प्राप्त करने का लोभ, ये दोनों ऐसी बातें हैं, जिनके कारण बहुत-से पत्र निर्भीक और निष्पक्ष आलोचना नहीं कर पाते हैं।

भारतीय पत्रकारों की आर्थिक दशा प्रायः शोचनीय पाई जाती है। समाचारपत्र-संपादन का काम पत्रकार को इतना स्वल्प वेतन प्राप्त कराता है कि वह सदा आर्थिक चिंताओं में मग्न रहता है। फिर जब पत्र की नीति बदलती है अथवा उसका पुनर्संगठन होता है, तब संपादकीय मंडल में भी उलट-फेर हो जाता है। पत्र के स्वामी तथा संपादक में जब मतभेद होता है, तब भी इसी प्रकार का झंझट उठ खड़ा होता है। पत्र यदि लोक-रुचि के विरुद्ध हुआ, तो उसका प्रचार कम हो जाता है, और कभी-कभी तो उसके बंद तक होने की नौबत आती है। इन सभी दशाओं में प्रायः पत्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दूसरा काम ढूँढ़ने के लिये विवश होना पड़ता है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि पत्र-संपादन का काम सुदृढ़ और स्थायी नहीं है। किसी भी समय संपादक को अपने काम से हटना पड़ सकता है। इस अस्थिरता का भाव भी उत्कृष्ट संपादन-कार्य का बाधक है। किसी दुर्घटना के घट जाने पर, बीमारी की दशा में अथवा बुढ़ापे में, पत्र-संपादक को न तो कहीं से पेंशन की आशा है, न प्रावीडेंट फंड की। उसको इन सब चिंताओं के कारण अपने काम को मनोयोग के साथ करने में बड़ी कठिनता पड़ती है। एक और मुसीबत का ख़याल कीजिए। समाचारपत्रों के संपादकों को विश्राम के लिये छुट्टियों का भी सर्वथा अभाव है। काम तो अधाधुंध करना पड़ता है, पर छुट्टियों का कहीं पता नहीं। फिर काम भी ऐसा रहता है कि जिसे जल्दी-से-जल्दी पूर्ण करना परमावश्यक होता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि बेचारे संपादक का शरीर क्लांत और मस्तिष्क उत्तेजित रहता है, और स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिये संगठन की परमावश्यकता है। भारतीय समाचारपत्र-संपादकों का अब तक कोई सुदृढ़ संगठन नहीं है। जो दो-एक हैं, वे अभी संतोषदायक रीति से काम नहीं कर रहे हैं। एक उत्कृष्ट पत्रकार में सहिष्णुता, पक्षपात का अभाव और जनता की सेवा का भाव अधिक-से-अधिक परिमाण में रहना चाहिए। पत्रकार का व्यवसाय बड़ा उच्च और पवित्र व्यवसाय है। इस समय मनुष्य-जाति के भविष्य का निर्माण बहुत कुछ पत्रकारों के हाथ में है। पत्रकारों को अपने उच्च आदर्श की रक्षा का सदा ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक दृष्टि से भारतीय पत्रकारों के लिये संगठित होने की परमावश्यकता है। इस नोट के लिखने में करनाटक-जर्नलिस्ट कानफ़्रेंस के सभापति के भाषण से हमने सहायता ली है।

× × ×

२. शिवराज-भूषण की इतिहास-अनुकूलता

ख

बखत बुलंद

टाड राजस्थान का दूसरा भाग श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस में प्रकाशित हुआ है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी टिप्पणियाँ लगाकर टाड साहब के किए हुए ऐतिहासिक अनौचित्यों का संशोधन भी इस संस्करण में कर दिया है। इस ग्रंथ के पृष्ठ ८१७-१८ पर राव भावसिंह बूँदी-नरेश का हाल दिया है। टाड साहब का मत है कि राव भावसिंह संवत् १७१५ में सिंहासन पर बैठे, और संवत् १७३८ में उनका स्वर्गवास हुआ। इनकी मृत्यु के बाद अनिरुद्धसिंह बूँदी के सिंहासन पर बैठे। मुंशी देवीप्रसादजी ने भी भावसिंहजी का मृत्यु-काल संवत् १७३८ माना है। ख़ास बूँदी में निवास करनेवाले प्रसिद्ध लेखक मेहता लज्जारामजी ने 'उम्मेद सिंह-चरित्र' और 'पराक्रमी हाड़ाराव'-नामक उत्कृष्ट ग्रंथों में बूँदी-नरेशों का हाल लिखा है। इन ग्रंथों में भी राव भावसिंह का शासन-काल वही है, जो टाड राजस्थान में दिया है। मेहताजी ने भी भावसिंह का मृत्यु-काल संवत् १७३८ में माना है। सूर्यमल्ल नामक चारण कवि ने 'वंश-भास्कर'-नामक एक बहुत बड़ा काव्य-ग्रंथ बूँदी-नरेश के आश्रय में बनाया है। इसमें बूँदी का इतिहास भी है। इस ग्रंथ के अनुसार भी राव भावसिंह संवत् १७१५ में राजसिंहासन पर बैठे थे, और संवत् १७३८ की वैशाख कृष्ण ८ को दक्षिण में स्थित औरंगाबाद के निकट भावपुरा-ग्राम में इनका देहांत हो गया था। यदुनाथ सरकार ने अपने 'शिवाजी' ग्रंथ में भावसिंहजी का दक्षिण के युद्धों में सम्मिलित होना लिखा है। अब तक हमें इतिहास-ग्रंथों में भावसिंहजी का मृत्यु-काल संवत् १७३८ के बाद लिखा नहीं मिला है।

चूँकि सूर्यमल ने भावसिंह का मृत्यु-काल वैशाख कृष्ण ८, संवत् १७३८ में माना है, और चूँकि मतिराम का 'ललित ललाम' भावसिंह के समय में बना था, इसलिये उसका निर्माण-काल वैशाख कृष्ण ८, संवत् १७३८ के पूर्व मानना चाहिए। चूँकि मृत्यु के समय भावसिंह दक्षिण में थे, और मतिराम के उनके साथ दक्षिण जाने का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त है। चूँकि भावसिंह का संवत् १७३८ में केवल २३ दिन जीवित रहना प्रमाणित होता है, इसलिये 'ललित ललाम' का रचना-काल संवत् १७३७ के आगे नहीं खींचा जा सकता है, यद्यपि हम स्वयं उस ग्रंथ का निर्माण-काल संवत् १७३८ के लगभग मानते हैं। मतिराम ने इसी 'ललित-ललाम' ग्रंथ में एक हिंदू-राजा के लिये 'बखत बुलंद'-शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग किया है। गोंडवाने के राजा को औरंगज़ेब ने 'बखत बुलंद'-उपाधि संवत् १७४३ में दी थी, सो उसके पहले भी हिंदी के कवि हिंदू-राजाओं को 'बखत बुलंद'-शब्दों से प्रशंसित करते थे, यह स्पष्ट है।

प्रसिद्ध रजवाड़े

मोरंग जाहु कि जाहु कमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए ;
बाँधव जाहु कि जाहु अमेर कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए,
जाहु कुतुब्ब की एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बुलाए ;
'भूषन' गाय फिरौ महिमैं बनि है चित चाहि सिवाहि रिझाए।

उपर्युक्त छंद में भूषणजी ने अपने समय के कवियों को संबोधित करके कहा है कि देखिए आप चाहे जितने कवियों को आश्रय देनेवाले प्रसिद्ध-प्रसिद्ध रजवाड़ों में घूम आइए, चाहे जितने कविता-प्रेमी नरेशों की सेवा में उपस्थित हो आइए—सारे संसार में प्रशंसा के गीत गाते फिरिए—पर अंत में मन-चीती तभी पूरी होगी—मनमाना अर्थ-लाभ तभी होगा—जब आप लोग शिवाजी महाराज का यश-वर्णन करके उन्हें रिझा सकेंगे। इस संपूर्ण उक्ति का सारांश यह है कि इस समय कवियों के लिये शिवाजी के समान दूसरा दानी नहीं मिल सकता। इस छंद में भूषणजी ने अपने ख़ास आश्रयदाताओं का उल्लेख नहीं किया है, वरन् प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुछ गुणग्राही नरेशों का वर्णन कर दिया है। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि आदिलशाही और कुतुब्बशाही राज-घराने कविता-प्रेमी और कवियों के लिये कल्पवृक्ष रहे हैं। इसी प्रकार कुमाऊँ, श्रीनगर, अंबर, जोधपुर और चित्तौर के दरबारों में भी वंश-परंपरा से कवियों का आदर रहता था। पर इस सूची में उस समय के सभी कविता-प्रेमी नरेशों का उल्लेख नहीं है, और हो भी नहीं सकता था ; क्योंकि चार पंक्ति की छोटी सवैया में और अधिक गुंजायश कहाँ। जो महाशय इस छंद में भूषण के आश्रय-दाताओं का उल्लेख मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि संवत् १७५० के पूर्व भूषणजी को कवि-पदवी नहीं मिली थी, उनको इस विषमता पर ध्यान देना चाहिए कि साइस्ताख़ाँ ने संवत् १७३३ में मोरंग को जीता था। गोलकुंडा और बीजापुर (एदिल-कुतुब्ब) भी १७४३ में मोग़ल-राज्य में मिला लिए गए थे। ऐसी दशा में इन संवतों के पहले तो कवि भूषण की सत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। आश्रयदाता के नष्ट हो जाने के बाद आश्रित की कैसी बात ? अगर भूषण मोरंग गए, तो संवत् १७३३ के पूर्व ; और एदिल-कुतुब्ब के यहाँ तो संवत् १७४२-४३ के पूर्व।

× × ×

३. त्रिपाठी-बंधु

'भाषा-पिंगल'-ग्रंथ में चिंतामणिजी ने लिखा है कि मैं इस ग्रंथ की रचना मकरंदशाह भोंसले की आज्ञा से करता हूँ। मकरंदशाह शिवाजी के पितामह थे। भाषा-पिंगल में शिवाजी के पिता शाहजी के नाना का भी नाम आया है। याज्ञिक महोदयों ने जो चिंतामणि के कई छंद 'माधुरी' में छपाए थे, और जिनमें साहू नाम आया था ; वे वास्तव में 'मकरंदशाह' की प्रशंसा के छंद हैं ; क्योंकि 'भाषा-पिंगल' में वे सभी छंद साहिजू (मकरंदशाह) के लिये दिए हैं। इस दृष्टि से चिंतामणि का जन्म-काल सं० १६५५, और कविता-काल का प्रारंभ संवत् १६७० के लगभग पड़ता है। तज़किरा सर्व आज़ाद हिंद के अनुसार चिंतामणि शाहजहाँ के पुत्र शुजा के आश्रित थे। शुजा की प्रशंसा में चिंतामणि के बनाए छंद भी मिलते हैं। चिंतामणि का बनाया एक छंद 'जैन दी महम्मद' के नाम का भी मिला है। जदुनाथ सरकार के 'औरंगज़ेब'-नामक इतिहास में इनका स्पष्ट उल्लेख है। जैन दी महम्मद का शुद्ध नाम 'जैनुद्दीन मुहम्मद' था। वे शुजा के बड़े पुत्र थे। शायद हिंदी के कवि भी थे, क्योंकि इनका बनाया एक छंद भी मिलता है। चिंतामणि ने बाबू रुद्रशाह, महाराज रामसिंह, राव भावसिंह आदि की प्रशंसा की है। किंवदंती एवं मराठा बखर के अनुसार वे औरंगज़ेब के आश्रय में भी रहते थे। तज़किरा सर्व आज़ाद हिंद के अनुसार सं० १७४५ के लगभग जाजमऊ के शाही दीवान और बिलग्रामवासी सैयद रहमतुल्ला का आश्रय भी इनको प्राप्त था। 'कविकुल-कल्पतरु' में इन्होंने दिल्ली-पति का उल्लेख किया है तथैव अनन्वय-अलंकारवाला वह दोहा भी 'कल्पतरु' में है, जिसमें रहमतुल्ला ने दोष निकाला था। चिंतामणि कई नामों से कविता करते थे। इसमें चिंतामणि, मनि और मनि-लाल मुख्य थे। मतिराम के वंशज विहारीलाल ने इनको टिकमापुर का बसनेवाला लिखा है। इनकी बनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामाश्वमेध के कुछ पृष्ठ मिले हैं, जिनसे ये कश्यप-गोत्री त्रिपाठी प्रमाणित होते हैं। 'तज़किरा सर्व आज़ाद' इनको भूषण और मतिराम का भाई बतलाता है। यह कहना ग़लत है कि 'तज़किरे' के लेखक ग़ुलामअली ने चिंतामणि को अपना समकालीन माना है। वंश-भास्कर के अनुसार भी चिंतामणि, मतिराम और भूषण भाई थे। मराठा बखर भी चिंतामणि और भूषण को भाई मानता है। किंवदंती भी यही कहती है। चिंतामणि के आश्रयदाताओं में बाबू रुद्रशाह १७वीं शताब्दी के मध्य-भाग में मौजूद थे। इसी समय में भूषण और मतिराम भी थे। मतिराम ने भी शिवाजी, भावसिंह आदि की प्रशंसा की है। कुमायूँ के महराज उद्योतचंद की प्रशंसा में उनके छंद प्रख्यात हैं। उद्योतचंद के पुत्र के भी वे आश्रित थे। भूषणजी ने भी महाराज जयसिंह, उद्योतचंद, फतेहशाह, छत्रशाल, हृदयराम, दाराशाह, शिवाजी और चिमनाजी आदि कितने ही राजाओं की प्रशंसा की है, जो प्रायः समकालीन हैं। मतिराम, चिंतामणि और भूषण, ये तीनों ही कवि कश्यप-गोत्री त्रिपाठी थे, और तिकवाँपुर-नामक एक ही गाँव में रहते थे। एक लेख में यह पढ़ने को मिला कि मतिराम बधई या बछई के तिवारी थे। पर कान्यकुब्ज-वंशावलियों के अनुसार बधई या बछई के कोई तिवारी नहीं होते हैं। अगर मतिराम के वंशज अपने को बधई या बछई के तिवारी बतलाते हैं, तो संभवतः उनकी शाखा का यह नाम या तो उनके पूर्व-पुरुषों के किसी स्थान-विशेष में निवास को लक्ष्य करके रक्खा गया है, या किसी पूर्व-पुरुष के नाम के अनुसार, जैसे उपमन्यु-गोत्री वाजपेयी लखनऊ के वाजपेयी प्रसिद्ध हो गए। इसी प्रकार से गिगांसों के पाँड़े, माँझगाँव के मिश्र और वटेश्वर के वाजपेयी आदि हैं। पुरुषों के नाम से जैसे सिद्धी के मिश्र, चत्तू के तिवारी, चंद के शुक्ल, हीरा के वाजपेयी आदि। 'वृत्तकौमुदी' के मतिराम का यह हाल है कि अभी तक वृत्तकौमुदी देखने को नहीं मिल रही है, फिर उस पर विचार क्या किया जाय। फिर नवलकिशोर-प्रेस से छपे एक संग्रह-ग्रंथ में (यह ग्रंथ शिवसिंह-सरोज के पहले का है) लिखा है कि मतिराम बंदीजन असनी में रहते थे। ब्रह्मभट्टों के एक पत्र में छपा है कि वृत्तकौमुदी के जिस दोहे का पाठ 'तिरपाठी बनपुर बसै' इत्यादि बतलाया जाता है, उसका शुद्ध पाठ 'बंदोजन बनपुर बसै' इत्यादि है। इन सब बातों से और मतिराम की सत्ता को जहाँगीर के समय में मानने से यही जान पड़ता है कि बनपुर के निवासी और विश्वनाथ के पुत्र मतिराम त्रिपाठी कवि बिहारीलाल के पूर्वज कश्यप-गोत्री मतिराम से भिन्न हैं। मतिराम, चिंतामणि और भूषण के भाई माने जानेवाली किंवदंती का और कोई बाधक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ऊपर जो बातें कही गईं, वे तो बंधुत्व की बात को ही पुष्ट करती हैं। सो चिंतामणि, भूषण और मतिराम भाई भाई थे, यही हमारा मत है।

× × ×

४. वायुयान-युग

लंदन से कराँची तक वायुयानों के द्वारा डाक लाने का प्रबंध हो गया है। जो डाक जल-मार्ग से १५ दिन में आती थी, वह अब ७ दिन में आने लगी है, और विश्वास किया जाता है कि थोड़े ही समय में यह काम केवल ३ दिन में संपन्न होगा। इँगलैंड में क्रवाइडन-नामक एक स्थान है। यहाँ पर हवाई जहाज़ों का एक अड्डा है। यहीं से भारत के लिये वायुयान रवाना होता है। यह वायुयान वज़न में ८ टन है। इसमें ३ इंजिन हैं। इसमें २९ आदमी बैठते हैं, और आधे टन के लगभग डाक रक्खी जाती है। पहली उड़ान में यह विना कहीं रुके स्विट्ज़रलैंड के बेसिल-नामक स्थान पर ठहरता है। बेसिल और लंदन के बीच ४८५ मील का अंतर है। यह यात्रा सवा पाँच घंटे में पूरी होती है। बेसिल से जिनोवा तक ट्रेन में जाना पड़ता है, क्योंकि आल्पसपर्वत-मालाओं के ऊपर उड़ने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। जिनोवा से फिर हवाई जहाज़ में यात्रा प्रारंभ होती है। इस यात्रा में रोम, सिराक्यूस, हैवरीनो और ट्रीपोली होते हुए मिसर-देश के अलेक्ज़ैंड्रिया-नगर में उतरना पड़ता है। इस यात्रा में लगभग तीन दिन लग जाते हैं। अलेक्ज़ैंड्रिया से दूसरी उड़ान प्रारंभ होती है। यह यात्रा बड़ी बीहड़ है। इसमें बड़े-बड़े रेगिस्तान, वीरान मैदान, बियाबान जंगल और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों के ऊपर से उड़ना पड़ता है। इस यात्रा का अंत कराँची में होता है। कराँची और अलेक्ज़ैंड्रिया के बीच में ढाई हजार मील का अंतर है। यह यात्रा प्रायः ४ दिन में समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। इस प्रकार क्वाइडन से कराँची तक पहुँचने में ६ दिन से कुछ अधिक समय लगता है। इस यात्रा में ५२ घंटे आकाश-मार्ग में उड़ना पड़ता है। सरकार की ओर से आकाश द्वारा यात्रा करने के अब तक जितने आयोजन हुए हैं, उनमें क्वाइडन-कराँची-यात्रा का आयोजन सबसे बड़ा है। यही क्यों, संसार में वायुयान-यात्रा के जितने मार्ग निर्धारित हैं, इस समय उन सबमें इँगलैंड और भारत के बीच का यह मार्ग सबसे लंबा है। यही संगठन इस समय सबसे विशाल समझा जाता है। इस विशाल यात्रा में प्रायः १० देशों की सीमाएँ पार करनी पड़ती हैं। क्वाइडन, बेसिल, रोम, सिसली नेपल्स, कायरो, बग़दाद, जेरुसलम, बेथलेहम अलेक्ज़ैंड्रिया और कराँची आदि स्थान इसके मार्ग में पड़ते हैं। टाइबर, नाइल, जारडन और टाइग्रीस-जैसी प्राचीन नदियों के ऊपर से इस यात्रा में उड़ना पड़ता है। ऊपर से स्थल पर के बड़े-बड़े मनोहर दृश्य देखने को मिलते हैं। जिन विशाल रेगिस्तानों में आज तक सभ्य जगत् का कोई मनुष्य न पहुँचा होगा, उन्हीं का अपमान करता हुआ हवाई जहाज़ उनके ऊपर से सनसन करता हुआ द्रुतगति से उड़ता है। हवाई जहाज़ में बैठने के लिये आराम-कुर्सियों का प्रबंध है। यात्री लोग पढ़ने-लिखने का काम मज़े में कर सकते हैं। उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नौकर-चाकर हैं। सिगरेट पीने की भी मनाई नहीं है। हाँ, जैसे समुद्र-यात्रा करते समय यात्रियों को सामुद्रिक बीमारी का सामना करना पड़ता है, ठीक वैसे ही वायुयान के यात्रियों को हवाई बीमारी से कुछ कष्ट अवश्य मिलता है; पर वह क्षणिक है। उससे घबराने की ज़रूरत नहीं है।

व्यापारिक ढंग से वायुयान-यात्रा का प्रबंध हुए अभी केवल १० ही वर्ष हुए हैं; पर इसी बीच में जो कुछ उन्नति हुई है, वह आश्चर्य-जनक है। भारत में बंबई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लाएड ने कराँची और बंबई के बीच में वायुयान-यात्रा का प्रबंध किया था, पर उसमें सफलता नहीं हुई। यह ९ वर्ष-पूर्व की बात है। उसी समय हैंडले-पेज-कंपनी ने भी कुछ उद्योग किया था, पर वह भी असफल रहा। इन उद्योगों में यात्रियों के ले जाने की ओर ध्यान अधिक दिया जाता था, डाक ढोने की ओर उतनी दिलचस्पी न थी; पर अब की बार जो विशाल प्रयत्न किया गया है, इसमें मुख्य लक्ष्य डाक-ढोना है, यात्रियों का आना-जाना गौण है, इसी से सफलता की विशेष संभावना है। इँगलैंड और भारत में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है, जो १५ दिन के बजाय ७ दिन में अपनी डाक पाने के लिये अधिक उत्सुक हैं। ये लोग निश्चय ही वायुयान द्वारा डाक मँगाना अधिक पसंद करेंगे। एक शताब्दी-पूर्व इँगलैंड और भारत की यात्रा में ७ महीने से भी अधिक लगते थे। आज विज्ञान की बदौलत वही काम ७ दिनों में हो सकता है, और निकट-भविष्य में ३ दिन में भी हो जानेवाला है। कौन कह सकता है कि किसी समय वह ७ ही घंटों में संपन्न हो जाय। इस नोट के लिखने में हमें श्री एच्० जी० पेरी के The air era arrives-नामक लेख से सहायता मिली है।

× × ×

५. लखनऊ का स्वास्थ्य

कहने को तो संयुक्त-प्रदेश की राजधानी प्रयागराज है, पर वास्तव में यह गौरवास्पद-पद लखनऊ-नगरी को प्राप्त है। प्रयागराज के समान ही लखनऊ भी पुराना नगर है। शाही ज़माने में लखनऊ का स्थान इस सूबे के अन्य नगरों में बहुत ऊँचा था। अवध के बादशाहों की वह प्यारी राजधानी थी। उसके ठाट-बाट निराले थे। संयुक्त-प्रदेश की स्वतंत्रता का अपहरण हुए अब पर्याप्त समय हो गया। शायद लखनऊ की स्वतंत्रता सबसे पीछे छिनी है। लखनऊ के हकीमों की प्रसिद्धि भी दूर-दूर तक रही है। लखनऊ की जन-संख्या पहले बहुत अधिक थी, पर इधर वह क्रम क्रम से क्षीण होती जा रही है। अँगरेज़ी-शासन में आने के बाद से इस नगर का स्वास्थ्य-सुधार कैसे हो, इस पर भली भाँति विचार किया गया। तदनुसार उपाय भी किए गए। यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि पहले की अपेक्षा अब स्वास्थ्य में सुधार अवश्य हुआ है, फिर भी दशा पूर्णरूपेण संतोषदायक नहीं कही जा सकती है। हाल में १७ मई के लीडर में Lucknow's public health (लखनऊ का स्वास्थ्य)-शीर्षक एक संपादकीय नोट निकला है। इस नोट के पढ़ने से जान पड़ता है कि इस नगर की स्वास्थ्य-दशा अत्यंत भयंकर है। श्वास-संबंधी बीमारियों में, इस नगर में, जितने मनुष्य मरते हैं, उतने इस प्रांत के और किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नगर में नहीं। २७ एप्रिल, सन् १९२९ को समाप्त होनेवाले सप्ताह में, इस नगर में, मृत्यु-संख्या का पड़ता बड़ा ही भयंकर और हृदय को दहलानेवाला रहा है। प्रति १,००० मनुष्यों में १२७ मौतें इस सप्ताह में हुई हैं। प्रांत-भर के किसी भी नगर में संभवतः मृत्यु-संख्या इतनी अधिक नहीं हुई है। मर्दुमशुमारी में प्राप्त अंकों से यह स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है कि इस नगर की जन-संख्या का ह्रास बड़ी द्रुतगति से हो रहा है। लखनऊ पार्कों का नगर है। प्रांत के सब नगरों से अधिक पार्क यहीं हैं। एशिया का गौरव लखनऊ का किंग जार्ज मेडिकल-कालेज भी यहीं है। सरकारी स्वास्थ्य-विभाग का प्रधान कार्यालय भी यहीं है। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य भी इस नगर में चिकित्सा करते हैं। आयुर्वेद और यूनानी मेडिकल-बोर्ड का केंद्र-स्थल भी यहीं है। एलोपैथ डाक्टरों का प्रधान केंद्र भी यहीं है। स्वास्थ्य-सुधार के लिये रुपया भी दिल-खोलकर व्यय किया जा रहा है। पर यह सब होते हुए भी 'चिराग़-तले अँधेरा' की कहावत चरितार्थ हो रही है। जिस नगर के स्वास्थ्य-सुधार के लिये रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है, जिसका सौंदर्य-वैभव अधिकाधिक पार्कों की हरियाली से संपन्न हो, जिसमें हर समय प्राचीन और अप-टू-डेट चिकित्सा सुलभ हो, उसी लखनऊ-नगरी का स्वास्थ्य प्रांत-भर में निकृष्ट हो; यह कैसे परिताप और लज्जा की बात है। लीडर ने व्यंग्य के साथ प्रयाग के स्वास्थ्य की सराहना की है, और लखनऊवालों को सलाह दी है कि वे आकर प्रयाग में बसें। सहयोगी का यह असमय का ताना अच्छा नहीं। प्रयाग का स्वास्थ्य अच्छा है, यह प्रसन्नता की बात है, और भी अच्छा हो जाय, तो और भी आनंद हो; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि लखनऊवाले लखनऊ को छोड़कर भागें। इंग्लैंड का स्वास्थ्य तो प्रयाग से भी अच्छा है, क्या सहयोगी प्रयागवालों को यह सलाह देगा कि वे प्रयाग छोड़कर इँगलैंड में जाकर बसें। हम जानते हैं कि प्रयाग को वास्तविक राजधानी का गौरव न प्राप्त होना सहयोगी को बहुत अखरता है, और इस सिलसिले में वह लखनऊ पर प्रायः फब्तियाँ कसा करता है; पर व्यंग्य का

दांपत्य-प्रेम की कुंजी ! बीसवीं सदी का आश्चर्य आविष्कार !!

संतान-वृद्धि-निग्रह-रसायन

भारत के प्रमुख नेताओं तथा सुसंचालित पत्रों ने देश की निर्धनता का उपाय अधिक बच्चों की पैदायश का रोकना ही बताया है। अतएव कृत्रिम किंतु अस्वाभाविक यंत्रों का प्रयोग अथवा दुःसाध्य ब्रह्मचर्यपरिपालन ये ही दो उपाय भी बताए हैं। परंतु पहला स्वास्थ्य और दांपत्य-प्रेम का नाशक और दूसरा एकांत दुःसाध्य अतएव असंभव है। इसी दुरूह सिद्धि को आ वेंद-पारंगत ने आविष्कार कर असाध्य को साध्य कर दिखाया है। पूर्वोक्त रसायन के प्रयोगसे न तो स्वास्थ्य को ही धक्का लगता है और न सहवास-सुख से ही वंचित होना पड़ता है। प्रत्युत स्त्री-पुरुषोंमें अपूर्व शक्ति का संचार एवं दांपत्य-प्रेम का पारावार उमड़ चलता है। तसदीक की कोई आवश्यकता नहीं। जो दंपति अविश्वासवाले परीक्षा लेना चाहें, आवें। अन्यत्र मूल्य जमाकर परीक्षा कर सकते हैं। केवल एक दंपति के लिये उपयुक्त १०) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

पीनोन्नतस्तनी सौभाग्य सुभगा

छोटी-छोटी अवस्था में ही शिथिल-यौवनसाम्राज्या युवतियों के लिये उनके पतियों का असमय वैराग्य यमयातना-तुल्य हो जाता है। पूर्वोक्त दोनों औषधें योनि-व्याधि को नष्ट, गुप्तेंद्रिय का नव्य-संकोचन एवं शिथिल स्तनों को कंदुक-कठोर कर युवतियों को फिर से पूर्ण कामिनी और मानिनी बनाती हैं। दोनों का १०) मात्र, अलग ५) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

नोटः—औषध-मूल्य मनीऑर्डर द्वारा पेशगी आने पर पोस्टेज आदि माफ़। कठिन-से-कठिन चिकित्सा एवं बड़ी-से-बड़ी औषधि-प्राप्ति का एक-मात्र पता—

मैनेजर, आयुर्वेदभवन, हुसेनगंज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर होता है। सहयोगी का इस समय का व्यंग्य कुअवसर का है। ऐसा व्यंग्य उसे शोभा नहीं देता। जो कुछ भी हो, लखनऊ-वासियों को तथा सरकार को पूर्ण उद्योग करना चाहिए कि संयुक्त-प्रदेश की सच्ची राजधानी लखनऊ का स्वास्थ्य आदर्श बन जाय। लखनऊ का उज्ज्वल-भविष्य बहुत कुछ नगर के स्वास्थ्य पर निर्भर है, इसलिये नगर के म्यूनिसिपल-चेयरमैन साहब को भी विशेष रूप से सचेष्ट होना चाहिए।

× × ×

६. पं० गौरीदत्तजी पांडेय की ओषधियाँ

अल्मोड़े के वैद्य पं० गौरीदत्तजी पांडेय ने अपनी कई ओषधियाँ हमारे पास समालोचनार्थ भेजी थीं। इनमें जुक़ाम की ओषधि तथा च्यवनप्राश मुख्य हैं। जुक़ाम की ओषधि का हमने स्वयं व्यवहार किया, और वह हमें आशुफलप्रद मालूम हुई। यह ओषधि तैल के रूप में है। जुक़ाम की अवस्था में इसे सिर में डालने से बड़ा लाभ होता है, और शीघ्र ही जुक़ाम नष्ट हो जाता है। च्यवनप्राश का व्यवहार हमारे एक मित्र ने किया था, और उन्हें भी उससे लाभ हुआ। अन्य ओषधियाँ भी फलप्रद प्रमाणित हुईं। पहाड़ों पर जड़ी-बूटियों तथा वनस्पतियों की सुलभता है। आयुर्वेद-ग्रंथों में जिन काष्ठादि ओषधियों के नुसख़े हैं, उनमें पड़ने वाली कई वनस्पतियाँ पहाड़ी प्रदेशों में ही मिलती हैं। शायद इसी कारण से पांडेयजी की ओषधियों में विशेष गुण दिखलाई पड़ते हैं। जो कुछ भी हो, हमें पांडेयजी की जुक़ाम की ओषधि से लाभ हुआ है। हमें आशा है कि जिन लोगों के शरीर में विकार है, तथा जो लोग उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदिक ओषधियों का व्यवहार करना चाहते हैं, वे एक बार पं० गौरीदत्तजी की ओषधियों को भी आज़मावेंगे, और उनसे लाभ उठावेंगे। वैद्यजी से पत्र-व्यवहार 'लाला बाज़ार, अल्मोड़ा' के पते से करना चाहिए।

× × ×

७. पं० व्रजेश त्रिपाठी का स्वर्गवास

यह बड़े ही शोक की बात है कि हिंदी-भाषा के उदीयमान कवि और लेखक पं० व्रजेश त्रिपाठी का

अमृत के तीन बूँद—कहाँ? मृत्युलोक में!!

१—कल्पलता-बटी

पुरुष को चाहे जैसा प्रमेह (वीर्य-विकार) हो, स्त्री को चाहे जैसा प्रदर हो, एक हफ़्ते में जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। हज़ारों स्त्री-पुरुष चंगे होकर ज़िंदगी का मज़ा लूट रहे हैं। हमारा दावा है कि "कल्पलता" आपके वीर्य-विकार-संबंधी हरएक मर्ज़ पर जादू का-सा असर करेगी। मू० ३)

२—कामकल्प (तिला)

जो लोग नामर्दी की ज़िंदगी से बेज़ार हो चुके हों, बचपन में भूल से या जवानी के चक्कर में कुटेवों से अपना सब कुछ खो चुके हों और जो हर तरफ़ से निराश हो गए हों, उन्हें यह तिला पहले ही दिन जादू का-सा चमत्कार दिखलाता है। ख़ास तौर पर बुड्ढों को जवानी की ताक़त देने में अक्सीर है। हमारे अनुरोध से एक बार ज़रूर आज़माइए। मूल्य २)

३—संजीवन-सुधा

इसे घरेलू डाक्टर ही समझिए। आजकल के चलते हुए हर मर्ज़ पर रामबाण है। बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष, हरएक को हर मर्ज़ में एक-सी लाभदायक है। लोभ छोड़कर बिला ज़रूरत भी एक शीशी मँगाकर रख लीजिए। मूल्य छोटी शी० ॥।), बड़ी शी० १।); डाकख़र्च सब दवाओं का अलग पड़ेगा।

नोट—असाध्य रोगों का इलाज ठेके पर करते हैं। मिलिए या पत्र लिखिए।

आयुर्वेदविज्ञानाचार्य, राजवैद्य,

पं० गयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेदवाचस्पति

अध्यक्ष—श्रीअवध आयुर्वैदिक फ़ारमेसी, गणेशगंज, लखनऊ (नं० ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशूचिका-रोग से शरीरांत हो गया। व्रजेशजी बड़े ही सज्जन और मिलनसार आदमी थे। वे कांग्रेस के भक्त थे, और असहयोग के ज़माने में कांग्रेस के वालंटियर होने के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा था। पं० व्रजेश त्रिपाठी इधर ग्राम्य-साहित्य का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी के साथ कर रहे थे। इस संबंध में उनके कई सुंदर लेख हिंदी की मासिक पत्रिकाओं में निकले थे। 'माधुरी' के इस अंक में 'सतो पियरिया'-नामक उनकी रचना प्रकाशित है। त्रिपाठीजी की शायद यही अंतिम रचना है। व्रजेशजी ज़िला सीतापुर के रहनेवाले थे। उनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। किसी प्रकार से ज्योतिष-संबंधी काम करके वे अपनी जीविका चलाते थे। उनके स्वर्गवास से इस समय उनकी विधवा स्त्री, वृद्धा माता एवं कई छोटे-छोटे बच्चे अनाथ हो गए हैं। नहीं कहा जा सकता है कि इनके भरण-पोषण का क्या प्रबंध होगा। व्रजेशजी के शोक-संतप्त परिवार के प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है, और जगदीश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह परलोक-गत आत्मा को शांति-प्रदान करे और दुखी कुटुंब को इस भीषण दुःख के सहने का धैर्य दे।

× × ×

८. सम्राट् जार्ज का आरोग्य-लाभ

महाराज सम्राट् जार्ज ने पूर्ण आरोग्य-लाभ कर लिया है। स्वास्थ्य-सुधार के लिये समुद्र-तट पर वे वागर नामक स्थान में ठहरे थे। अब वे वहाँ से लौटकर राजप्रासाद में पहुँच गए हैं। इँगलैंड में सम्राट् के आरोग्य-लाभ के उपलक्ष्य में बड़ा आनंद मनाया

प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का कर्त्तव्य

कम-से-कम माधुरी का एक ग्राहक

अवश्य बनाकर भेजे

इसलिये कि मातृभाषा के प्रति कुछ आपका भी तो कर्त्तव्य है।

क्योंकि--

भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित विद्वानों का कहना है—

माधुरी

सर्वश्रेष्ठ उपयोगी पत्रिका है

वार्षिक मूल्य केवल ६॥) रु०—छः मास का ३॥)

निवेदक--मैनेजर 'माधुरी', लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। भारत भी इस मंगल-समाचार से सुखी है। ईश्वर सम्राट् को दीर्घायु करें। हम एक बार फिर यह आशा प्रकट करते हैं कि सम्राट् भारत में शीघ्र पदार्पण करेंगे, और इस दुखी और विक्षुब्ध देश को औपनिवेशिक स्वराज्य देकर संतुष्ट करेंगे। राजा और प्रजा में मनोमालिन्य ठीक नहीं है। भारतवासी अपने सम्राट् के प्रति बड़े ही प्रेम-पूर्ण भाव रखते हैं। सम्राट् से उनको शिकायत नहीं है। उनका झगड़ा तो केवल अनुदार और सहानुभूति-शून्य नौकरशाही से है। वे सम्राट् के प्रति विरक्त नहीं हैं। वे तो शासन-प्रणाली का परिवर्तन चाहते हैं। एक बार हृदय का परिवर्तन यदि शासक-वर्ग दिखला सके, तो आनन्-फ़ानन् में भारतीय जनता का भाव बदल सकता है।

भारत के बड़े लाट अरविन महोदय ने सम्राट् के आरोग्य-लाभ करने के उपलक्ष्य में एक फंड खोला है। इस फंड में जो कुछ रुपया जमा होगा, उसका उपयोग भारत के दुखियों के लिये होगा। वाइसराय महोदय ने स्वयं भी इस फंड में एक सहस्र का दान दिया है। बड़े लाट के इस काम का हम भी समर्थन करते हैं। हमारा विश्वास है कि भारतीय जनता खुले हृदय से इस फंड में रुपया देगी। इससे दो लाभ हैं। एक तो इस रुपए के द्वारा भारतीय दुखियों के दुःख दूर होंगे; दूसरे सम्राट् के प्रति भारतवासी अपने प्रेम-पूर्ण और उदार भावों का प्रदर्शन कर सकेंगे। क्या ही अच्छा हो कि सम्राट् के आरोग्य-लाभ पर हर्ष प्रकट करने को कोई विशेष दिन निर्दिष्ट किया जाय, और उस दिन सारे भारतवर्ष में छुट्टी मनाई जाय।

जादूगरों का बाबा

इस सुंदर और सचित्र पुस्तक की गुप्त विधियां को सीखकर जो चाहेंगे हो जायेगा। दुर्भाग्य और शत्रु का नाश होगा, मुक़द्दमा में जीत, सतान, रोजगार और धन की प्राप्ति होगी, अर्थात् जिसके साथ प्रेम है वह व्याकुल होकर स्वयं तुम्हारे पास चला आवेगा। कोई सिद्धि, कोई जप, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। केवल -) का टिकट भेजकर पुस्तक मुफ़्त मँगवाओ। अपना पता साफ़ लिखो। मिलने का पता—गुप्त विद्याप्रचारक आश्रम,

२६ P. B. 150 लाहौर

जर्मन प्रोफ़ेसर का नया आविष्कार

सिर्फ़ वाह ही वायोकेमिक दवाइयों से सब रोग आराम हो रहा है। वायोकेमिक होम्योपैथिक के अंतर्गत है। पुरानी होम्योपैथिक का पूरा ज्ञान लाभ करना कठिन है। पर वायोकेमिक बहुत ही सुगम है, प्रसिद्ध होम्योपैथ एम्० आर० बनर्जी, एम्० ए०, हेड मास्टर रेलवे हाई स्कूल मोकामाघाट की बनाई हुई, बृहत् वायोकेमिक विधान (२॥।=)) अवश्य पढ़िए, और बहुत आसानी से एक प्रवीण डाक्टर बनिए नहीं तो मूल्य वापस। भाषा, छपाई बहुत ही सरल, सुगम और अच्छी है। पुस्तक सजिल्द, पेज क़रीब ४०० के हैं।

शांति-औषधालय, मोकामाघाट, E. I. Ry.

हुक्मी फ़ायदे की मुफ़्त परीक्षा

पुराने-से-पुराना सूज़ाक जिसका इलाज करते-करते हार गए हो, अगर सात दिन में आराम होना चाहते हो, तो हमारे कारख़ाने की सूज़ाकनाशक (सूज़ाक की गोलियाँ) मँगाकर सेवन कीजिए। तीन दिन के अंदर फ़ायदा न मालूम हो, तो क़ीमत वापस। इससे ज़्यादा और क्या गारंटी चाहिए। इसको किशोरीलाल खत्री कलकत्तेवाले ने बड़े परिश्रम से तैयार किया है। हज़ारों आराम हो चुके हैं। एक आने का टिकट आने पर दो गोली परीक्षा के लिये बाहर मुफ़्त में भेजी जाती हैं। क़ीमत २), अलावा महसूल डाक।

अरोड़ा ऐंड कंपनी,

३६, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. शिवाजी की रण-यात्रा

महाराज शिवाजी की वीरता और शौर्य को प्रत्येक शिक्षित भारतवासी जानता है। उन्हीं की एक रण-यात्रा का वर्णन महाकवि भूषण ने अपने एक छंद में किया है, जिसके आधार पर प्रस्तुत चित्र बनाया गया है। उस छंद को नीचे दिया जा रहा है। इससे चित्र का पूर्ण भाव बिलकुल स्पष्ट हो जावेगा।

प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरि हू,
मिलिं मिलि आपुस में गावत बधाई है,
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करत काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है;
सिवा पूँछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है।

इस चित्र के रचयिता हैं—माधुरी के सुयोग्य चित्रकार श्री बा० नारायणप्रसादजी वर्मा।

२. मयूरी-नृत्य

इस चित्र के चित्रकार श्रीपंचानन कर्मकार हैं। नृत्य-कला में प्रवीण एक स्त्री मयूरी-नृत्य कर रही है। जंगल की मयूरियाँ भी इस नवीन मयूरी के नृत्य को आश्चर्य-चकित देख रही हैं। स्त्री अपने नृत्य में तन्मय है। इन्हीं भावों का चित्र में समावेश है।

३. अहिल्योद्धार

अपने गुरु विश्वामित्रजी के साथ श्रीरामचंद्रजी तथा लक्ष्मणजी सीताजी के स्वयंवर के लिये जनकपुर जा रहे हैं। रास्ते में विश्वामित्रजी ने गौतम ऋषि की स्त्री के शाप से उद्धार करने की प्रार्थना की, जो शाप के कारण पाषाण हो गई थी। श्रीरामचंद्रजी ने अपने चरण से उसका स्पर्श किया। ऋषि-पत्नी (अहिल्या) दोनों हाथ जोड़कर भगवान् की प्रार्थना कर रही है। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में उसकी विनती निम्न भाँति है—

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई।
राजीवबिलोचन भवभयमोचन पाहि पाहि शरणहि आई।
मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं मानी।
देखेउँ भरि लोचन प्रभु भवमोचन यहै लाभ शंकर जानी।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न वर माँगौं आनी।
पदकमलपरागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रकट भई शिव शीश धरी।
सोइ पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76220

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताजी की अग्नि-परीक्षा

N. K. Press, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७
खंड २

ज्येष्ठ, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)

संख्या ५
पूर्ण संख्या ८३

जहाँगीर की सभा

प्रश्न

देवसभा-सी सुभ सभा तामैं जनु द्विजराज ;
देखौं भाग बिभाग सों कहौ कौन यह राज ?

उत्तर

भूमिदेव नरदेव देव देव आदि कौनु कौनु कौनु दीनों दान ऊँचो करि करु है ;
कोटि बिधि करि करि मेरे करतारु करि आवति न तोसों करतूतिनि को घरु है !
परदुख दारिदन कोऊ न सकत हरि केशौदास जद्यपि जगत हरि हरु है ;
जा बिन कबि अभूत भूत से भँवत ताही राजा बीरबरजू को बेटा धीरबरु है ।

(महाकवि) केशवदास

(जहाँगीर-चंद्रिका से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समांस मधुपर्क

१

धार्मिक क्रांति की दृष्टि से भारतीय इतिहास का माध्यमिक युग सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण कहा जा सकता है। सदियाँ गुज़र चुकी हैं, मगर आज भी वह समस्याएँ और वह पहेलियाँ, जिन्हें यह युग आलोचक-समाज के सामने उपस्थित कर गया है, ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं। भारतीय सभ्यता के समर्थक बड़े-बड़े दिमाग़ों ने उन गुत्थियों के सुलझाने का प्रयत्न किया; मगर यह तो वह जाल है, जो सुलझने के बजाय और भी उलझता जा रहा है। महात्मा बुद्ध इसी माध्यमिक काल की विभूति हैं, और उनकी सृष्टि का श्रेय संभवतः उन्हीं समस्याओं को है। जिस ज़माने का हम ज़िक्र कर रहे हैं, वह याज्ञिक काल था। उस समय लोगों की विचार-शक्ति और मनोवृत्ति एक विशेष प्रवाह में बह रही थीं। उस धारा में औद्धत्य था, वेग था, और थी हठात् दूसरों को बहा ले जाने की प्रबल शक्ति, जैसी बरसात की तूफ़ानी धार में पाई जाती है। परंतु वह सौम्यता, वह सौंदर्य और वह स्थिरता, जो शरद् में बहनेवाली गंगा की धारा में होती है, जो सुदूरवर्ती मानसरोवर में विचरण करनेवाले मराल-कुल-नायक को भी खींच ला सकती है, टुक देखने को भी न मिल सकती थी। उस भीषणता और उससे पैदा हुई मलिनता ने मंदाकिनी के उन मनोरम तटों को भी, जिन पर वास करने को देवता तक तरसते हैं, इतना भ्रष्ट और गँदला कर दिया कि बड़े-बड़े राजहंस, जिनके ऊपर जननी जाह्नवी भी नाज़ कर सकती थी, उसे छोड़कर जाने के लिये विवश हो गए। वह तो राजहंस हैं, परमहंस हैं; गंदगी को वह पसंद नहीं करते। भ्रष्टता और मलिनता उनके लिये असह्य है, फिर चाहे वह स्वर्ग के साम्राज्य में हो अथवा भगवती भागीरथी के भू-भाग में। वह तो हैं वह राजहंस—परमहंस, जो—

गङ्गातीरमाप त्यजन्ति मलिनं,
ते राजहंसा वयम्।

यही मलिनता एवं भ्रष्टता थी, जिसने कुमार सिद्धार्थ को जैसे आस्तिक कुलोत्पन्न राजहंस को 'बुद्ध' बना दिया—वैदिक विज्ञान से विमुख कर दिया। आज विश्व के इस विशाल वक्षःस्थल पर राम और कृष्ण ने, शंकर और दयानंद ने भी, वह व्यापक सम्मान नहीं पाया, जो याज्ञिक काल की इस विभूति—भगवान् बुद्ध—को प्राप्त हुआ है। कहीं वह राजहंस वैदिक विज्ञान के विमल वारि में विचरण करनेवाला राजहंस होता! वह तो राजहंस है, जहाँ भी रहेगा, पुजेगा—

यत्रापि कुत्रापि वसन्ति हंसाः,
हंसा महामण्डलमण्डनानि;
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां,
येषां मरालैः सह विप्रयोगः॥

मगर माध्यमिक युग की मलिन मनोवृत्ति ने हमारी मुक्तामाला का एक मनोहर और बहुमूल्य मोती खो दिया।

हमारा विश्वास है कि वेद का ज्ञान ईश्वरीय देन है। उसका उद्देश्य संसार में सुख-समृद्धि की वृद्धि और मानव-जीवन की ज्ञान-विषयक आवश्यकताओं को पूरा करना है। उनके भीतर यह सारे पवित्र और रहस्यमय सिद्धांत, जिनके ऊपर संसार की व्यवस्था निर्भर है, अंतर्हित हैं। परंतु माध्यमिक युग में वेद और वैदिक साहित्य के संबंध में लोगों की मनोवृत्ति बहुत कुछ बदली हुई थी। अगर हम यह कहें कि वैदिक भाषा के संबंध में हमारी और उनकी मनोवृत्ति में ३ के ३ और ६ का संबंध है, तो भी शायद कुछ अत्युक्ति होगी। जहाँ हम वेदों को तमाम ज्ञान का भांडार मानते हैं, वहीं माध्यमिक युग में कर्मकांडीय विनियोग के अधिक उनका कुछ भी महत्त्व न था। इसका एक अवश्यक परिणाम यह होना था कि वेदों को निरर्थक मान लिया जाय। अनेक स्थलों पर वेद-मंत्रों का विनियोग ऐसे ढंग से हुआ है, जो परस्पर अत्यंत विरुद्ध प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये हम सिर्फ़ एक मंत्र पेश करेंगे।

यजुर्वेद के चतुर्थ अध्याय के पहले मंत्र का अंतिम भाग है—

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः।
(यजुः, अ० ४, मं० १)

कर्मकांडीय विनियोग के अनुसार याग में यूप के लिये वृक्ष काटते समय उस पर कुशा रखकर कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—'ओषधे त्रायस्व'—हे ओषधे, इसकी रक्षा करो। इसके आगे दूसरे ही क्षण उस पर कुल्हाड़ा मारता हुआ कहता है—'स्वधिते मैनं हिंसीः'—हे कुल्हाड़े, इसकी हिंसा मत करो।

फलतः इस और इसी प्रकार के अन्यान्य कतिपय उदाहरणों को देखकर ही महामुनि कौत्स ने अपने शब्दों में अंतिम घोषणा कर दी—

अनर्थका हि मन्त्राः।

(निरुक्त, अ० १, मं० १५)

माध्यमिक साहित्य के दृष्टिकोण से वेद एवं वैदिक साहित्य का स्वाध्याय करनेवाले लोगों के सामने इस प्रकार की अनेकानेक जटिल समस्याएँ आकर उपस्थित होती हैं। इस समय इन सबकी आलोचना कर सकना हमारे विषय और शक्ति, दोनों के बाहर है। हम तो यहाँ सिर्फ़ यह दिखलाने का यत्न कर रहे हैं कि वैदिक विज्ञान की विमल किरणें माध्यमिक मनोवृत्ति के मीडियम में होकर गुज़रने से कितनी गँदली हो गई हैं, और उन्होंने लौकिक लोगों के मानवीय मस्तिष्क पर कितना प्रबल प्रभाव डाला है।

२

महाकवि भवभूति संस्कृत-साहित्य के गिने-चुने कवियों में हैं। उनकी क़लम में ज़ोर है, मज़मून में चोज़ है, और है फ़िक़रों में चुभती हुई चुलबुलाहट। शायद सातवीं सदी की समाप्ति में उन्होंने अपने हृदय-सर्वस्व उत्तर-रामचरित की सृष्टि की। इसी उत्तर-रामचरित के चौथे अंक की कुछ चुभती हुई पंक्तियों ने हमें प्रकृत-प्रसंग पर कुछ लिखने के लिये प्रेरित किया। पंक्तियाँ ये हैं—

सौधातकिः—भो दाण्डायन किन्नामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरन्धरोद्यातिथिरागतः ?

दाण्डायनः—धिक्प्रहसनम्। नन्वयं ऋष्यशृङ्गाश्रमात् अरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठ्य भगवान् वशिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि ?

सौधातकिः—हुं वशिष्ठः !

दाण्डायनः—अथ किम् ?

सौधातकिः—मया पुनर्ज्ञातं कोपि व्याघ्र इव एष इति।

दाण्डायनः—आः किमुक्तं भवति ?

सौधातकिः—येन परापतितेनैव सा बराकी कपिला कन्याणी बलात्कृत्य मड़मड़ायिता।

दाण्डायनः—समांसो मधुपर्कः इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं च धर्मसूत्रकारा धर्म इत्यामनन्ति।

(उत्तर-रामचरित, अंक ४)

उत्तर-रामचरित के कथांश के अनुसार ऊपर उद्धृत की हुई पंक्तियाँ उस प्रसंग की हैं, जब महर्षि वशिष्ठ महाराज रामचंद्र की माताओं को शृंगी ऋषि के यज्ञ से वापस लेकर आ रहे थे। लौटते समय महर्षि वशिष्ठ एक दिन के लिये महर्षि वाल्मीकि के अतिथि हुए। प्रकृत पंक्तियाँ महर्षि वशिष्ठ के उसी आश्रम-वास के समय की हैं। भवभूति के विश्वास के अनुसार वेदों की यह आज्ञा है कि जिस समय कोई अतिथि किसी के यहाँ आवे, तो उसके सम्मान के लिये दिए गए मधुपर्क के साथ गऊ का मांस अवश्य होना चाहिए। इसी शास्त्रीय विधान के अनुसार जिस समय महर्षि वशिष्ठ वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पहुँचे, तो उनके लिये भी एक बछिया काटी गई, और उस निरपराधिनी बछिया का मांस ऋषि नहीं—महर्षि कहलानेवाले वशिष्ठ के सामने रक्खा गया।

वाल्मीकि मुनि के आश्रमवासी अनेक विद्यार्थियों ने इस घटना को देखा, और उनके हृदयों पर इस घटना ने विविध प्रकार का प्रभाव पैदा किया। वाल्मीकि के आश्रमवासी इन विद्यार्थियों में से एक का नाम सौधातकि था। सौधातकि प्रकृति से अत्यंत कोमल था, और उसका हृदय मानों मानवोचित सहृदयता का स्थान था। उसके सामने जिस समय धर्म का यह नितांत नृशंसता-पूर्ण अभिनय किया गया, उसकी आँखें लाल हो गईं। वशिष्ठ के प्रति उमड़ी हुई घृणा के भावों ने उसके मनुष्योचित और सभ्यजनोचित भावों को दबा दिया। इस अमानुषीय अत्याचार एवं भयानक पाप को देखकर वशिष्ठ के प्रति उमड़े हुए सम्मान एवं श्रद्धा के भावों का स्थान घृणा और तिरस्कार ने ले लिया। उसने वशिष्ठ को आड़े हाथों लिया। अपने साथी दांडायन से उसने पूछा—

'भो दाण्डायन किन्नामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरन्धरोद्यातिथिरागतः ?'

अर्थात्—अजी, आज अपने महिला-मंडल की सेना को लेकर यह कौन साहब तशरीफ़ लाए हैं ?

मूल संस्कृत का 'स्त्रीसार्थस्य धुरन्धरो' कितना चुभता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ फ़िक़रा है। सौधातकि ने कैसी चुलबुलाती चुटकी ली है!

इस पर दांडायन ने उत्तर दिया—

"अरे सौधातकि, यह क्या बकते हो? इनका मज़ाक़ मत उड़ाओ। जानते नहीं, यह महर्षि वशिष्ठ शृंगी ऋषि के आश्रम से महराज दशरथ की पत्नियों को लेकर आ रहे हैं?"

उत्तर में सौधातकि ज़रा चुभते हुए लहज़े में कहते हैं, मानों उन्हें मालूम ही नहीं था—

"हुं वशिष्ठः"। अच्छा, यह हज़रत वशिष्ठ हैं! मैंने तो समझा, कोई बूढ़ा बाघ आ गया, जिसने आते ही उस बेचारी बछिया को चड़चड़ा डाला—

"मया पुनर्ज्ञातं कोपि व्याघ्र इव एष इति, येन परापतितेनैव सा बराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मड़मड़ायिता।"

अब को भवभूति ने ब्रह्मास्त्र निकाला। महर्षि वाल्मीकि के शिष्य, पवित्र वैदिक धर्म के अनुयायी दांडायन ने इस हत्या का जो समर्थन किया है, वह देखने लायक़ है। उसने कहा—

'समांसो मधुपर्कः इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं च धर्मसूत्रकारा धर्म इत्यामनन्ति।'

अरे भाई, तुम यह क्या कहते हो? यह तो पवित्रेव वेदों की आज्ञा है। 'समांसो मधुपर्कः' इन शब्दों में स्वयं वेद भगवान् इस सिद्धांत का समर्थन कर रहे हैं। फिर वेद-मतानुयायी महर्षि वाल्मीकि उसका पालन न करें, यह कैसे संभव है?

इस आदेश के साथ साक्षात् वेद-भगवान् का कहाँ तक संबंध है, इस निबंध में हम इसी की आलोचना करने बैठे हैं; परंतु, फिर भी, इसके विषय में कुछ लिखने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि थोड़ी देर ठहरकर और कवि के हृदय में घुसकर उसके इन शब्दों का वास्तविक भाव और अर्थ समझने का यत्न किया जाय।

३

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा;
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।

कवित्व दुनिया की एक विभूति है, और विष्णु-पुराण के अनुसार वह मानव-जीवन की सबसे उच्च अवस्था है। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि कवि—सच्चे कवि—का हृदय वह निर्मल दर्पण है, जिसमें संसार का प्रत्येक दृश्य उतने ही सुंदर और सजीव रूप में चित्रित हो सकता है, जितना ही सुंदर उसका अपना रूप है। यही नहीं, उसके भीतर इससे भी बढ़कर रहस्यमय एक और शक्ति छिपी हुई है; मगर इस शक्ति का परिचय मिलता है केवल उन लोगों को, जो हृदय के साथ मस्तिष्क को जोड़ सकते हैं, जो दिल के साथ दिमाग़ को लगा सकते हैं। मुँह की बात कान तक पहुँचती है, हृदय की आवाज़ हृदय तक पहुँचती है, और माइंड—मस्तिष्क—का एक कंपन दुनिया के वायुमंडल में ऐसी गति उत्पन्न कर देता है, जिसकी विश्रांति दिमाग़ पर, मस्तिष्क पर—माइंड पर—पहुँचकर होती है। कवि के दिल भी होता है, और दिमाग़ भी। इसलिये हमने कहा था कि कवि को वही समझ सकता है, जो दिल के साथ दिल को मिला सके। जो बहना जानते हैं, वे स्थिर होना भी जानते हैं; जो तैरना जानते हैं, वे डुबकी लगाना भी जानते हैं। किंतु कवि की मनोरम मंदाकिनी में बह जाना एक बात है, और उसमें डुबकी लगाकर उसकी तह का पता लगाना दूसरी बात है।

अब्धिर्लङ्घित एव वानरगणैः
किन्त्वस्य गम्भीरतां,
आपातालनिमग्नपीवरतनु-
र्जानाति मन्थाचलः।

धारा में वेग होता है, कवि की वाणी में शक्ति होती है। वह बहता है स्वयं; पर बहा ले जाता है संसार को। इसीलिये जो केवल अपने दिल पर एतबार करके वहाँ पहुँचते हैं, वे उस प्रबल प्रवाह में बह जाते हैं, जिसमें आनंद है, रस है, जिसकी उपमा संसार में दूसरी नहीं। परंतु वे नहीं जानते कि उसकी तह में क्या है। जो केवल हृदय लेकर कविता के बाज़ार में जाते हैं, उनके हाथ में कसौटी होती है पक्की। मगर एक दूसरी। वह संसार का चित्रण। जो कवि संसार का चित्र खींच सकता है, और हूबहू उसमें रंग दे सकता है, वही कवि है। मगर वे यह भूल जाते हैं कि कवि संसार को चित्रित करता है, तो महाकवि चित्रित करता है अपने आपको। उसके साथ वह संसार को खींचता है—केवल इसलिये कि धारा में वेग आ जाय, अपनी तह को छिपा ले, गंभीरता खुलने न पावे। वह चित्रित करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अपने को; मगर अपने साथ संसार को लपेटता है—केवल इसलिये कि उसका अपना चित्रण नग्न न हो जाय। वह अपने साथ तमाम दुनिया को चित्रित करता है, और करता है केवल इसलिये कि अपनी मूर्ति पर दुलम्मा चढ़ा सके—उसे सजा-धजाकर इतना मनोरम और आकर्षक बना सके कि दुनिया का सिर ख़ुद-ब-ख़ुद श्रद्धा और भक्ति के आवेश में उसके क़दमों पर झुक जाय।

यह कवि का माहात्म्य है; यह कवि की क्षमता है। जहाँ हम नहीं पहुँच सकते, जहाँ आप नहीं पहुँच सकते, जहाँ संसार की कोई शक्ति नहीं पहुँच सकती, वहाँ कवि की पहुँच है। जिस काम को व्याख्याता नहीं कर सकता, धर्मोपदेशक नहीं कर सकता, राजनीतिज्ञ नहीं कर सकता, कवि उसी काम को करता है, और करता है ऐसी ख़ूबी से कि देखनेवाले उसके कौशल पर हैरान रह जाते हैं।

ज़माने की बात है। महाराज की नई शादी हुई थी। कुमारी के पास सौंदर्य था, सौंदर्य के अणु-अणु में आकर्षण था; उसकी आँखों में जादू था। महाराज के पास यौवन था। उसके रूप में मोहिनी शक्ति थी, महाराज के हृदय में उल्लास था। इसके अतिरिक्त राजा के पास अतुल धन-संपत्ति थी, प्रभुत्व था और थी अविवेकिता।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्!

धारा के प्रवाह में प्रबलता थी, मगर अब वह भीषण हो गई थी। राजा स्थिर न रह सके, वह बह गए; और बहे, तो ऐसे बहे कि देखनेवाले दंग रह गए। राज से काम न पाट से काम, न खाना न पीना, न धर्म न कर्म। अगर दुनिया में कुछ है, तो वह कुमारी। लोग हैरान थे। राजा भी कभी दरबार न आते। मंत्री व्यग्र थे। उन्हें राज-काज में परामर्श देने के लिये समय नहीं था। सैन्याध्यक्ष व्याकुल थे; उनकी पहुँच नहीं हो सकती थी। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी, मगर व्यर्थ। उसका कोई फल न निकला। राजा का मन उधर से न लौट सका। अब की बारी थी विहारी की। जहाँ से राज्य की बड़ी-से-बड़ी शक्ति टकराकर लौट आई थी, वहाँ मोर्चा लेने गया था—विहारी—छोटा-सा साधारण कवि। मगर महाराज से मुलाक़ात न हो सकी। विहारी ने एक छोटा-सा दोहा गाया। आवाज़ राजा के कानों तक पहुँच गई—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल;
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल।

राजा चौंक पड़े, मानों कोई सोते-से जगा हो। जहाँ राज्य की कोई शक्ति काम न दे सकी, वहाँ मोर्चा लिया एक कवि ने। राजा की आँखें खुल गईं। उनका कायाकल्प हो गया। वह अब राजा थे, विलासी नहीं। वह अब प्रकृतिस्थ थे, उन्मत्त न थे। विहारी ने राजा को समझाने के लिये मनुस्मृति के श्लोक नहीं उद्धृत किए; उन्होंने राजा के सामने राजनीति की उलझी हुई गुत्थियाँ नहीं रक्खीं। उन्होंने एक फोटो रक्खा था। फोटो सुंदर था, सजीव था, आकर्षक था। एक भौंरा था, वह मर रहा था—मड़रा रहा था एक कली पर, जिसमें—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल।

राजा ने चित्र देखा। उन्हें भौंरे की अवस्था पर हँसी आई। उन्होंने सोचा—

अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल।

राजा के हृदय-पट बंद थे। एक चोट पड़ने की देर थी। विहारी के इस दोहे ने एक हलकी-सी थपकी दी। दरवाज़ा खुल गया। राजा होश में आ गए। यह तरीक़ा होता है कवियों का, जिससे वह संसार को उपदेश देते हैं। उनका अस्त्र तर्क नहीं, अनुभव है। उनका लक्ष्य मस्तिष्क नहीं, हृदय है। कालिदास का यक्ष तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता, मस्तिष्क उसकी पैरवी करने को तैयार नहीं। अगर फिर भी मेघदूत प्रथम श्रेणी का काव्य है, तो क्यों? इसलिये कि हमारा हृदय इस बात को स्वीकार करता है, हमारा अनुभव इस बात की साक्षी देने को तैयार है। मेघदूत का यक्ष कालिदास के शब्दों में—

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः;
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इस ज़रा-सी बात को भी नहीं समझता है, और पागल की तरह—

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।

उस जड़ बेजान मेघ से भीख माँगता है, उसके हाथ जोड़ता है, उससे प्रार्थना करता है। तर्क के दरबार में, मस्तिष्क के इजलास में, यह दुनिया का सबसे बड़ा अपराध होता, और अगर उसका वश चलता, तो शायद आज इस मेघदूत की हस्ती भी दुनिया से उठ गई होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर परिणाम इसके विरुद्ध है। आज मेघदूत संस्कृत-साहित्य के गौरव की वस्तु है, सहृदय का हृदय-सर्वस्व है, और कालिदास की कीर्ति का प्रकाश-स्तंभ है। इसीलिये हम कहते हैं कि कवि का लक्ष्य मस्तिष्क नहीं, हृदय है। वह अपने इष्ट के लिये मनुष्यों के हृदय में जगह ढूँढ़ता है; वह जिस बात का प्रचार करना चाहता है, उसकी श्रेष्ठता जनता के हृदय में बिठा देता है।

४

महाकवि भवभूति का समय, जैसा हम पहले कह चुके हैं.....शताब्दी के अंत का है। यह वह समय है, जिस समय कम-से-कम भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का सूर्य, धार्मिक आकाश के मध्य-शिखर पर पहुँचकर, अस्ताचल की ओर ढलने लगा था। बौद्ध-धर्म के उन पवित्र सिद्धांतों के ऊपर से, जिन्होंने एक दिन महात्मा बुद्ध के अशांत हृदय को शांति दी थी, लोगों को श्रद्धा उठने लगी थी, और महात्मा बुद्ध के उत्तराधिकारी बौद्ध संन्यासी और संन्यासिनियाँ, जिन्हें जनता के सामने आप आचार-व्यवहार और जीवन-यापन का आदर्श रखना था, सब अपने उस उच्च आदर्श से बहुत नीचे खिसक चुके थे। ऐसे समय में हमारे महाकवि भवभूति भी समय के प्रभाव से न बच सके। उसने उनके हृदय पर भी अपनी वही छाप लगा दी, जिसने भवभूति की क़लम से कामंदकी का चरित्र-चित्रण कराया है, और साथ ही इस 'समांस मधुपर्क' की कल्पना को जन्म दिया है।

यद्यपि भवभूति ने अपनी क़लम से—नहीं, स्पष्ट अक्षरों में, नहीं लिखा; मगर, फिर भी, जिन्होंने उनके तीनों नाटकों को देखा है, वे बड़ी सरलता से इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि बौद्ध-धर्म के प्रति बढ़ती हुई अश्रद्धा भी, जो बहुत दिन पहले उनके हृदय में घर कर चुकी थी, उनके इन तीनों नाटकों की जन्मदात्री है। परंतु वह अश्रद्धा कहीं भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई है। क्यों? इसलिये नहीं कि भवभूति में इतनी हिम्मत न थी, या वह उसे प्रकट ही न कर सकते थे, बल्कि इसलिये कि उनके यहाँ मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का अधिक आदर है। कवि का अस्त्र तर्क नहीं, अनुभव है। वह जानता है कि कोरा तर्क वह नंगी तलवार है, जो कमज़ोर का सिर तो नहीं देती है; परंतु उसके हृदय को छू भी नहीं सकती। इसीलिये वह हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक महत्त्व देता है, तर्क के बजाय अनुभव से काम लेता है। इसके लिये वह उन दोनों चित्रों को, जिसे वह पसंद करता है और जिससे घृणा करता है, जनता के सामने रख देता है, आगे आपकी इच्छा। चाहे इसे पसंद करें, या उसे। परंतु हाँ, एक बात अवश्य है। जिसे वह पसंद करता है, उसे अत्यंत सुंदर प्लेट पर चित्रित करेगा, और साथ ही उसको रँग देने और उसे सजाने में अपनी सारी विद्या, कौशल और होशियारी ख़र्च कर देगा। इसके विरुद्ध जिसे वह घृणित और हेय समझता है, उसका चित्र अत्यंत गर्हित रूप में पेश करेगा, ताकि देखनेवाले ख़ुद उससे घृणा करने लगें। ठीक यही बात भवभूति के नाटकों में भी पाई जाती है। बौद्ध-धर्म के प्रति उनकी अश्रद्धा का चित्र देखना हो, तो मालती-माधव को उठाकर देखिए, और बौद्ध-संन्यासिनी कामंदकी के चित्र की गंभीर दृष्टि से आलोचना कीजिए। दूसरे और महावीरचरित और उत्तर-रामचरित वैदिक धर्म के प्रति उनकी बढ़ती हुई श्रद्धा एवं सहानुभूति के उदाहरण हैं। इस प्रकार जो संबंध मालती-माधव और उत्तररामचरित या महावीरचरित, में है, वही संबंध प्रकृत में दांडायन और सौधातकि का प्रतीत होता है। यद्यपि भवभूति ने कहीं लिखा नहीं, फिर भी हमारी समझ में इस जगह उन्होंने जिसे सौधातकि का पार्ट दिया है, वह कोई बौद्ध या बौद्ध-धर्म से सहानुभूति रखनेवाला व्यक्ति होना चाहिए, क्योंकि दांडायन तो स्पष्ट ही वैदिक धर्म के कट्टर अनुयायी हैं, सौधातकि अत्यंत सरल-चित्त और 'अहिंसा परमो धर्मः' के पक्के समर्थक हैं, इसीलिये वह गो-हत्या के भीषण पाप को सहन न कर सके। मगर वह विवश थे, क्या ही क्या सकते थे! इसलिये उन्होंने उस अस्त्र का सहारा लिया, जो कमज़ोरों को सांत्वना देनेवाला है और निर्बलों का एक-मात्र सहारा है। उसका हृदय इस घोर पाप को देखकर क्षुब्ध हो गया, और उसने वशिष्ठ महर्षि को भला-बुरा कहना शुरू किया; क्योंकि वह जानता था कि गऊ 'अघन्या' है, उसका मारना पाप है। मगर दूसरी ओर दांडायन हैं, जिन्हें भवभूति ने वैदिक धर्म—का समर्थक बनाकर खड़ा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इस गो-हत्या के ऊपर आम्नाय का मुलम्मा चढ़ा कर उसे और भी मज़बूत कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आजकल गो-हत्या किए बिना मुसलमानों का धर्म एक दिन भी क़ायम नहीं रह सकता, वैसे ही उस समय अगर भवभूति इस भीषण हत्या का समर्थन न करते, तो शायद उनका पवित्र वैदिक धर्म आज—नहीं, उसी दिन—दुनिया से उठ गया होता। बौद्ध और वैदिक धर्म की यही कशमकश है, जिसने भवभूति की सहृदयता के कलेजे पर ज़हरीली छुरी फेर कर उनकी क़लम से यह 'समांसो मधुपर्कः' वाला वाक्य लिखाया, और वह भी वैदिक धर्म के निष्पाप और सुंदर चित्र के चित्रण में।

(अपूर्ण)

विश्वेश्वर ब्रह्मचारी

सौंदर्य

(चतुष्पद)

(१)

कांत-रविकर-किरीट-कमनीय ,
अलंकृत मंजुल मुक्तामाल ;
विपुल स्वर्गीय-विभूति-निकेत ,
कुसुम-कुल-विलसित प्रातःकाल ।

(२)

उषा का जग-अनुरंजन-राग ,
दिग्वधू का विमुग्धकर हास ;
पुरातन है, पर है अति दिव्य ,
और है भव-सौंदर्य-विकास ।

(३)

लोक का मूर्तिमान आनंद ,
अवनि तल परम अलौकिक लाल ;
बहु-विकच-सुमन-समान प्रफुल्ल ,
विहँसता भोलाभाला बाल ।

(४)

प्रतिदिवस के विकसे अरविंद ,
तरु-निचय किसलय ललित-ललाम ;
नवल हैं, पर हैं रम्य नितांत ,
वरन हैं अखिल-भुवन-अभिराम ।

(५)

विश्व-जन-मोहन है सौंदर्य ,
हृदय-तल-अभिनंदन-आधार ;
मधुर-तम मंजु सुधा-रस सिक्त ,
सरसता-युवती का शृंगार ।

(६)

किसी जग-ज्योतिमयी की ज्योति ,
इसी में लोचन सका विलोक ;
इसी में मिलता है सब काल ,
लोक को सकल-लोक-आलोक ।

(७)

किंतु उसका अनुपम प्रतिबिंब ,
कुछ हृदय-मलिन-मुकुर में आज ;
नहीं प्रतिबिंबित होता अल्प ,
मलिनता के हैं नाना व्याज ।

(८)

सुनाता है कल-वेणु-निनाद ,
सुशोभित है कालिंदी-कूल ;
ललित लहरें हैं नर्तनशील ,
हँस रहे हैं मुँह खोले फूल ।

(९)

मत्तता छाई है सब ओर ,
हो रहा है रस का संचार ;
बरसते हैं सुर सुमन-समूह ,
खुल गया है सुर-पुर का द्वार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

कल्पना है यह बहुकमनीय ,
सुधा-सर की है रुचिर तरंग ;
पर न होंगे कुछ हृदय विमुग्ध ,
क्योंकि यह है प्राचीन प्रसंग ।

(११)

हो रहा है अतीत-संगीत ,
छिड़ रहा है बहुमोहक-तार ;
बना है मुखर मुग्धता-मौन ,
सुनाती है वीणा-झंकार ।

(१२)

किंतु हैं कतिपय ऐसे कान ,
नहीं है जिनको इनसे प्यार ;
सरस को करता है रस-हीन ,
किसी छाया का क्षोभ अपार ।

(१३)

रूप रमणी का है रमणीय ,
लोक-मोहकता का है सार ;
है प्रकृति-भाल रुचिर सिंदूर ,
काम-कामुकता का आधार ।

(१४)

कलाधर-कलित-कांति-अवलंब ,
कुसुम-कुल-निधि है उसका हास ;
जग-सृजन-रंजन का सर्वस्व ,
है बनज-बदनी विविध विलास ।

(१५)

भाव-मय रचनाएँ हैं भूरि ,
हुआ जिनमें इनका सु-विकास ;
किंतु कुछ रुचियाँ हैं प्रतिकूल ,
उन्हें कहती हैं कुरुचि-निवास ।

(१६)

अलौकिक रस-लोलुप कुछ भृंग ,
गूँजते हैं करके मधुपान ;
लाभकर कतिपय नवल-प्रसून ,
सज रहा है प्रमोद-उद्यान ।

(१७)

कुछ विहग हो-हो विपुल-विमुग्ध ,
गा रहे हैं गौरवमय राग ;
उक्ति अनुपम-प्यालों के मध्य ,
छलक है रहा हृदय-अनुराग ।

(१८)

किंतु कुछ मानस हैं न प्रसन्न ,
मोह से हो-होकर अभिभूत ;
सकल भावों में लगी विलोक ,
न-जाने किस छाया की छूत ।

(१९)

उन्हीं का है यह अमधुर भाव ,
जिन्हें है सहृदयता-अभिमान ;
हो रहा है वंचित रस-बोध ,
रसिकता को सिकता अनुमान ।

(२०)

सुनाते फिरते हैं जो लोग ,
सत्य, शिव, सुंदर का शुभ राग ;
वे करें क्यों आँखें कर बंद ,
विविध सुंदर भावों का त्याग ।

(२१)

अ-मंजुल उर का है यह मोह ,
मानसिक रुज का है यह रोष ;
बनेगा क्या मकरंद-विहीन ,
मधुरिमा-कांत-कमल का कोष ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२)

घुसे क्यों कलित कुसुम में कीट ,
रहे क्यों अकलंकित न मयंक ;
लाभ क्यों करे मलिन-कल्लोल ,
पूत-सलिला-सुरसरि का अंक ?

(२३)

कंटकित-सुमन-समूह-मरंद ,
पान करता है मुग्ध-मिलिंद ;
कहीं भी मिले क्यों न सौंदर्य ,
तजे क्यों उसको सहृदय-वृंद ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

किंग एडवर्ड-सैनिटोरियम

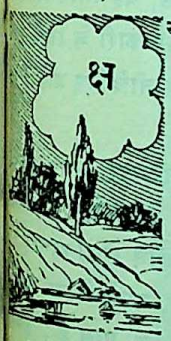

क्षय-रोग आज संसार के सामने उस पहेली के रूप में उपस्थित है, जिसके सुलझाने में उधर तो बड़े-बड़े विज्ञान-विशारदों की शक्ति जवाब दे रही है, और इधर उसकी भयंकरता और संहारकारिता नित्य-प्रति प्रबल ही होती जा रही है। सभ्य संसार के हर सात मनुष्यों में एक की मृत्यु इसी रोग से होती है, और दिन-रात के प्रत्येक पल में एक प्राणी का संहार इसी शत्रु द्वारा होता है ! इतना ही नहीं, होनहार नवयुवक, अविवाहित बहुएँ एवं कल-कारख़ानों में काम करने वाले दीन-हीन मज़दूरों के अलावा जिस घर का एक प्राणी इस रोग का शिकार होता है, उस घर के अधिकांश मनुष्यों का जैसा संहार यह रोग कर देता है, यह बहुत हृदय-विदारक है। इस रोग के प्रसार के कारणों में मनुष्य अपने-आप योग दे रहा है, यह एक दूसरी विचारणीय बात है, और ऐसा आत्मरक्षा के नियमों के पालन न करने से ही हो रहा है, यह शायद अभी सबको मालूम नहीं। और, इन सब बातों से बढ़कर खेद का विषय यह है कि मानव-समाज के इस भयंकर शत्रु को नीचा दिखाने वाली कोई औषधि अब तक नहीं आविष्कृत हो सकी है। पश्चिम में इस विषय में काफ़ी दिलचस्पी ली जा रही है, मगर अभी तक फल कुछ नहीं हुआ-सा नज़र आता है। स्वीज़रलैंड के डाक्टर सपालिंगर (Dr. Spahlinger) के सिरम की ओर संसार टकटकी लगाकर देख रहा था, मगर देखते-देखते ही वह सुख-स्वप्न झूठे आश्वासन के रूप में परिणत हो गया। फिर भी प्रयत्न हो रहे हैं, और आशा की जा रही है कि शीघ्र ही इसके विनाश का कोई मार्ग खुल जायगा। अस्तु, आजकल भारत में यह रोग असाध्य समझा जाता है, किंतु इसके विपरीत और-और देशों में इसकी कोई 'रामबाण-औषधि' न होने पर भी, इसे बहुत अंशों में साध्य समझते और वैसा करके दिखा भी देते हैं। क्षय के रोगियों को पहाड़ों का जलवायु बहुत अनुकूल होता है, Plains का बिलकुल नहीं। हमारे प्राचीन वैद्यक-ग्रंथों में भी नदी-तट तथा मुक्त वायु क्षय के रोगियों के लिये उपादेय बतलाए गए हैं। पश्चिमवालों ने इसका आशय समझा है, और पहाड़ों को अपनाया है ; किंतु हम तो अपने अतीत और अतीत की बातों को भूलने में नाम पाए हुए हैं। अतएव हम लोगों ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। ख़ैर, धीरे-धीरे इस रोग के प्रसार के साथ ही लोगों की आँखें भी खुलने लगी हैं। इस रोग से छुटकारा पाने के लिये पहाड़ों का आश्रय लिया जा रहा है, और उन पर सैनिटोरियम बनाए जा रहे हैं।

इस संबंध में भी पश्चिम ने कमाल कर दिया है। केवल अमेरिका में ही, सन् १९२६ई० में, ६०० सैनिटोरियम थे, जिनमें ६९,००० रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध था, और ११,१५२ ग्रेजुएट नर्सें अपना जीवन रोगियों की सेवा में बिता रही थीं। डेन्मार्क में एक लाख मनुष्यों में १०७ क्षय-रोगियों की दवा-दारू का इंतज़ाम है। इँगलैंड में, सन् १९२२ ई० में ही, २३,०३१ रोगियों की एक साथ ही दवा करने की व्यवस्था थी। स्काटलैंड के १०४ सैनिटोरियम और ३१ दवाख़ानों में ३,७११ रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध है। फ्रांस में, सन् १९१२ ई० में ही, इस रोग के नाश करने के लिये कानून जारी किए गए, और प्रत्येक काउंटी (County) में एक सैनिटोरियम की व्यवस्था की गई। इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी, इटली तथा जुगोस्लेविया प्रभृति प्रायः प्रत्येक देश में इस रोग के नाश के उत्तरोत्तर प्रयत्न हो रहे हैं। स्वीज़रलैंड तो आज समग्र संसार में, इस संबंध में, नाम पा चुका है। (भारतवर्ष से भी रोगी अब वहाँ जाने लगे हैं। वहाँ के सैनिटोरियम में एक रोगी के लिये २५०) से ४००) प्रतिमास ख़र्च के लिये काफ़ी है।) देखा-देखी जाग्रत् जापान के भी न केवल प्रति पचास हज़ार मनुष्य-पीछे एक सैनिटोरियम का आयोजन किया है, वरन् उसने सार्वजनिक स्थानों में थूकना भी क़ानून से बंद कर दिया है। चीन और हमारे पड़ोसी युवक अफ़ग़ानिस्थान तक इस संबंध में अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं; पर भारतवर्ष अभी तक इस विषय में उदासीन है। यह कितने अनुताप की बात है! एक तो यहाँ अज्ञानता इस दरजे की है कि हम इन बातों को जानते ही नहीं। फिर दरिद्रता इस सीमा को है कि वह परवश बना देती है। पुनः जो हैसियतवाले हैं, वे भी साधन के अभाव में घरों में घुट-घुटकर मर जाते हैं, और हमारी दयालु सरकार आँख खोले देखा करती है, यह कितने खेद की बात है? अस्तु, भारतवर्ष के लिये यह रोग नया नहीं है। प्राचीन-से-प्राचीन समय में भी यह यहाँ वर्तमान था। यह निश्चय है। परंतु उस समय के भारतीय बहुत बलवान् थे, और इस तरह इस रोग के अपवाद। तब के च्यवनप्राश और बसंतमालती में भी वह शक्ति थी कि वे बूढ़ों को जवान कर सकते थे। कैसा भी बुख़ार क्यों न हो, उखाड़ फेंकते थे। किंतु समय ने पलटा खाया। भारतीय बुद्धिहीन होने के साथ ही बलहीन भी हो गए। पश्चिम के संसर्ग ने हमें विलास-प्रिय बना दिया। बड़े-बड़े शहर बसे, उनमें पापाचार बढ़ा, गंदगी ने गला घोंटना शुरू कर दिया। बीमारियों ने, जिनमें क्षय-रोग प्रधान है, ज़ोर पकड़ा। रोगी गाँवों को भगे। वहाँ भी पट पड़ा, और ऐसा पड़ा कि पचास वर्ष पूर्व के हँसते खेलते हुए हज़ारों-लाखों परिवार आज रोते-रोते थक-से गए हैं। फिर सन् १९१८ ई० में इन्फ़्लुएंजा उठा। छः हफ़्तों में ही साठ लाख भारतीय उसकी भेंट हो गए! महायुद्ध के कारण महँगी इस क़दर हुई कि पेट के लाले पड़ गए। भारतीयों का रहा-सहा बल-वैभव भी ह्रास को प्राप्त हो गया। कमज़ोरों को तो क्षय-रोग चाहता ही है। बस, इसकी बाढ़ आ गई! आज कम-से-कम बारह लाख भारतीय प्रतिवर्ष इसकी बलि चढ़ते हैं। यह अंक भी सरकारी गणना के हैं। वास्तव में कितने प्राणियों का संहार यह करता है, इस बात के तो सोचने ही से हृदय काँप उठता है। इतना ही नहीं, जहाँ इँगलैंड आदि देशों में डाक्टर और वहाँ की सरकार तथा जनता डंके की चोट कहती है कि अगले तीस वर्षों में हम इस रोग का नामो-निशान मिटा देंगे *, वहाँ भारत में क्षय-रोग के विशेषज्ञ अगले तीस वर्षों में, इस अभागे देश में, इसकी ऐसी आग लगने की आशंका कर रहे हैं, जिसका तब बुझाना भी उनके मत से असंभव ही हो जायगा†। यहाँ की सरकार को न्यू-दिल्ली बनाने और सैनिक व्यय बढ़ाने की धुन समाई है, तथा मूर्ख जनता को आपस में लड़ने-मिटने का शौक़ चर्राया है। यही कारण है, जिससे आज भारत में इस रोग की ऐसी अंधाधुंध है, कुल ७०० रोगियों को सैनिटोरियम में चिकित्सा का प्रबंध! (वह भी सरकार द्वारा नहीं, इनमें भी केवल एक तिहाई रोगियों की ही मुफ़्त चिकित्सा होती है।) अस्तु, ऊपर जिन ७०० क्षय के रोगियों की चिकित्सा का उल्लेख है, वह निम्न-लिखित स्थानों में होती है। पाठकों को जानकारी के लिये उन सैनिटोरियम और अस्पतालों के नाम नीचे दिए जाते हैं—

पंजाब में—

१. किंग एडवर्ड-सैनिटोरियम, धरमपुर, आर० एस०, शिमला-हिल्स, एन्-डबल्यू० आर० (इसमें ६० रोगियों के रहने का प्रबंध है, और बारहों महीने खुला रहता है)।

२. राणा दुर्गासिंह-सैनिटोरियम, मांडो-हिल्स, धरमपुर, आर०, एस्० (यह कसौली के पास है; इसमें २० रोगियों के रहने की व्यवस्था है, और उपर्युक्त सैनिटोरियम की तरह यह भी बारहों महीने खुला रहता है)।

३. हार्डिंज-हास्पिटल, धरमपुर (यह पटियाला-राज्य की ओर से संचालित होता है, और अधिकतर राज्य की प्रजा के लिये ही है)।

---

* Sir Robert Phillip (honorary physician to the King) in his presidential address to the British Medical Association on July 19th 192[illegible]
—लेखक

† Dr. Fremodt Möller of the Madanapalle Sanatorium.
—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

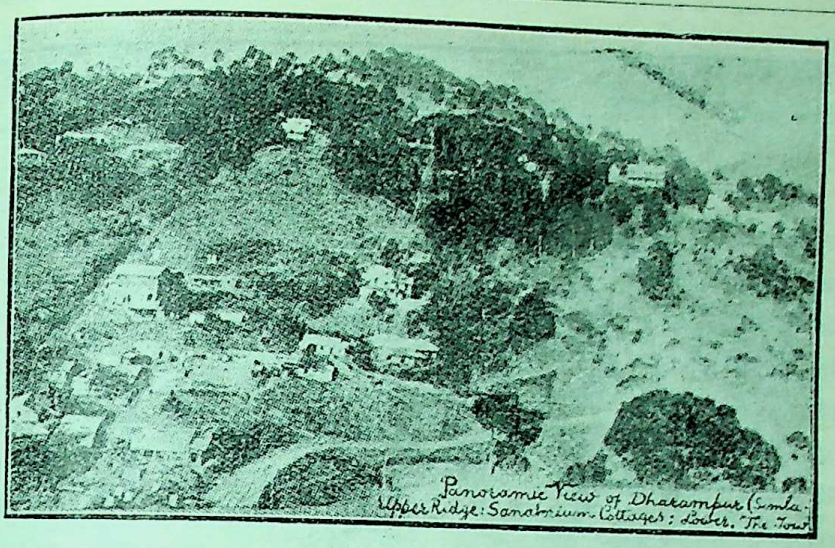

धरमपुर का सिंहावलोकन

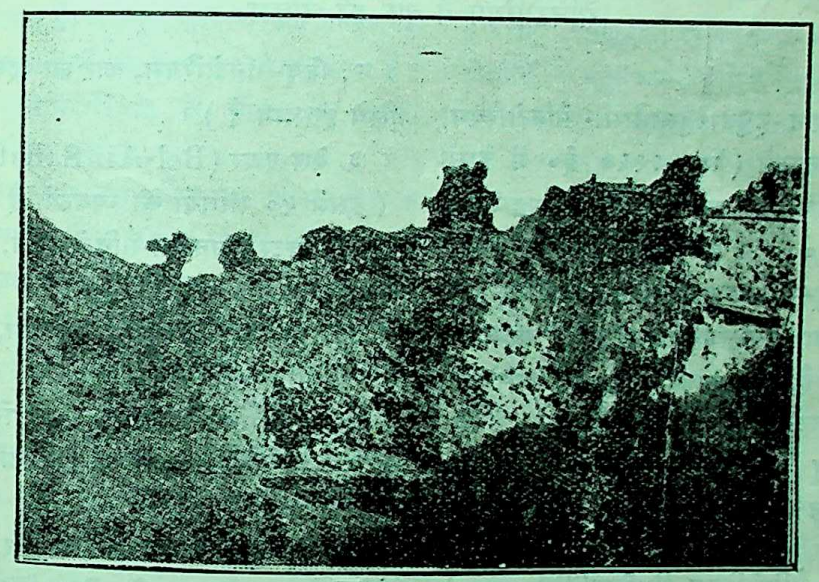

तुषार-मंडित धरमपुर

इसके अतिरिक्त धरमपुर से सटे हुए अर्केडिया (Arcadia) में भी रोगी अपना मकान लेकर रह सकते हैं।

संयुक्त-प्रांत में—

१. किंग एडवर्ड-सैनिटोरियम, भुवाली, कुमाऊँ-हिल्स (सन् १९२६ ई० में इसमें ८४ रोगियों के रहने का इंतज़ाम था; जाड़े में यह सैनिटोरियम बंद हो जाता है)।

२. मिशन-सैनिटोरियम, अल्मोड़ा (यह सिर्फ़ स्त्रियों के लिये है)।

बिहार-उड़िसा में—

१. गवर्नमेंट-सैनिटोरियम, इटकी (यह राँची से रेल द्वारा चौदह मील पर है। इसमें कुल ५२ रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध होगा, जिनमें प्रायः ४० निःशुल्क भरती किए जायँगे। यह अभी बन ही रहा है)।

चंद्रमोहन घोष-सैनिटोरियम, जादवपुर (कलकत्ते के पास ही है, सन् १९२७ ई० में खुला है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिटोरियम में बर्फ़ की बौछार

मदरास में—

१. युनियन-मिशन-ट्युबरक्युलोसिस-सैनिटोरियम, आरोग्यवरम्, मडनपल्ले (सन् १९२७ ई० में इसमें १७६ रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध था, समुद्र-तट से इसकी उँचाई २,५०० फ़ीट है। यह मिशन-सैनिटोरियम है, फिर भी हिंदू-मुसलमान सभी लिए जाते हैं और उनकी जात-पाँत का ख़याल किया जाता है। यह बारहों महीने खुला रहता है, और शायद भारत का सबसे बड़ा और उपयोगी सैनिटोरियम है)।

२. डाक्टर मुथ्थू (Dr. Muthu) का सैनिटोरियम, पाल्लावरम्, थांवारन (अभी बन ही रहा है)।

राजपूताने में—

१. मेरी विल्सन-सैनिटोरियम, तिलौना (Tilaunia), अजमेर के पास (यह सन् १९०६ ई० में खुला, और सिर्फ़ ईसाइयों के लिये है)।

मध्य-प्रांत में—

१. मिशन-सैनिटोरियम, पेंड्रा-रोड, बिलासपुर।

इंदौर में—

सैनिटोरियम, राओ (Rao) मऊ और इंदौर के बीच में है।

बंबई में—

१. डाक्टर बहादुरजी-सैनिटोरियम, देवलाली (इसमें २८ रोगियों के लिये प्रबंध है, और पारसियों के लिये ही है)।

२. हिंदू-सैनिटोरियम, कार्ला (इसमें ४० रोगियों के लिये इंतज़ाम है)।

३. बेल-एअर (Bel-Air Sanatorium) पंचगनी (इसमें ५० रोगियों की व्यवस्था है)।

४. डाक्टर वानलेस-सैनिटोरियम, मिराज (अभी बन ही रहा है)।

५. टरनर-सैनिटोरियम, भोइवाड़ा, परेल, बंबई-शहर (३२ रोगियों के लिये व्यवस्था है)।

उपर्युक्त सैनिटोरियम के अतिरिक्त निम्न-लिखित जगहों में सैनिटोरियम बनने का निश्चय-सा हो चुका है।

१. गुलाबदेवी-हास्पिटल (लाहौर पास ही यह सैनिटोरियम बनेगा, और सिर्फ़ स्त्रियों के लिये। लाला लाजपत के स्वार्थ-त्याग और मनुष्य-मात्र की शुभ-चिंता का यह ज्वलंत उदाहरण होगा। देशवासियों को मुक्तहस्त हो इसकी सहायता कर उनकी स्मृति की रक्षा करते हुए उनकी इच्छा को पूर्ण करना चाहिए)।

२. हेल्थ-एसोसिएशन, हैदराबाद (सिंध) द्वारा झिरंक (Jhirrunk) में।

३. सिक्कम-एजेंसी द्वारा गंगटोक में।

४. डिप्टी कमिश्नर, रावलपिंडी द्वारा मुर्री में।

५. ऐंटी-ट्युबरक्युलोसिस-लीग सी० पी०, नागपुर द्वारा किसी उपर्युक्त ज़िले में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. पंजाब-सरकार द्वारा पालमपुर (काँगड़ा) में।

७. बंबई के नासिक-ज़िले में जनता और सरकार आए, की सम्मिलित शक्ति से *।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त शिमला, मसूरी, डलहौज़ी, नैनीताल, देहरादून, अल्मोड़ा, दार्जिलिंग, राँची, वाल्टेयर, पुरी, वानगूला (रत्नागिरी), विंध्याचल, देवघर प्रभृति जगहें भी समय-समय पर क्षय के रोगियों के लिये स्वास्थ्यप्रद हैं। अस्तु, सैनिटोरियम-चिकित्सा के विषय में और अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। सिर्फ़ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि वैसा करके, इस चील के चंगुल से न केवल अपनी ही जान की रक्षा की जा सकती है, बरन् अपने सारे परिवार और अड़ोस-पड़ोस के मनुष्यों को भी इस बाज से बचाया जा सकता है। मुझे इन सैनिटोरियमों की बाबत बहुत तो नहीं मालूम है, पर एक सैनिटोरियम में सुश्रूषक की हैसियत से कई महीनों तक रहने का मौक़ा मिला है। पाठकों से उसी सैनिटोरियम के विषय में उनकी जानकारी के लिये कुछ कहूँगा।

सिंध के दीवान दयारामजी गिडूमल और बड़ौदा के बहरामजी मालावारी को ही किंग एडवर्ड-सैनिटोरियम, धरमपुर (शिमला-हिल्स) के जन्मदाता कहे जाने का सौभाग्य प्राप्त है। सन् १९०७ ई० में इन दो हिंदू और पारसी मित्रों द्वारा पोस्ट-ऑफ़िस-सेविंग्स-बैंक में इस सैनिटोरियम का बीज वपन किया गया। ९,००० रुपए इन दो मित्रों ने सैनिटोरियम बनाने के अभिप्राय से श्रीगणेश-स्वरूप जमा कर दिए। पहलेपहल बंबई में कंज़ंपटिव होम-सोसाइटी खोलने की बात पक्की की गई। फिर एक ही वर्ष बाद संयुक्त-प्रांत की सरकार से कुमाऊँ-पहाड़ में थोड़ी-सी जगह और कुछ रुपए के लिये प्रार्थना की गई; मगर व्यर्थ। तदनंतर शिमला-शैल ढूँढ़ा गया, और अंततः धरमपुर उसके लिये उपयुक्त स्थान चुना गया। पटियाला-नरेश ने जगह की प्रार्थना सहर्ष स्वीकृत कर ली, और प्रायः एक लाख रुपए भी दे डाले! और-और दान-वीर भी सामने आए और सन् १९०९ ई० में काम शुरू हो गया!

दयारामजी, ए० सी० मजुमदार और डाक्टर एफ़० डी० नानवती को ही प्रारंभिक झंझटों का सामना करना पड़ा। पटियाला-नरेश द्वारा प्रदत्त 'कदम-वन' में कुदाल चलाई गई। देखते-देखते वह वीरान पहाड़ साफ़, सुंदर और काम लायक़ हो गया। रोगियों के लिये यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद सिद्ध हुआ। पूर्वी झंझावात से इस स्थान की रक्षा वेरोग पहाड़ के उत्तुंग शिखर करते हैं, और सपाटू पहाड़ की श्रेणी उत्तरीय वायु का वेग कम करने में समर्थ होती है। इस तरह इस सैनिटोरियम पर दक्षिणी और पश्चिमी वायु का ही आधिपत्य रहता है, जो रोगियों के लिये लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। यहाँ न बहुत जाड़ा पड़ता है, न गरमी; न बहुत वर्षा होती है, न बहुत बर्फ़ गिरती है। इस कारण इसकी महत्ता और भी बढ़ गई है। चीड़ के पेड़ चारों ओर फैले हैं—उनके नवजात पौदों से निकलकर भीनी सुगंध दिशाओं को भरती रहती है, और मनुष्य भले ही उस सुगंध में हुस्नोहिना या बेला-चमेली की बहार को महसूस न करे, किंतु स्वास्थ्य को सुधारने की उसमें ग़ज़ब की शक्ति है। औसत ५० इंच पानी यहाँ पड़ता है। जाड़े में ६० से ३२ डिगरी और गरमी में ९० से ६५ डिगरी यहाँ का टेंपरेचर है। समुद्र-तट से इसकी उँचाई ५,००० फ़ीट है।

कदम-वन के अलावा रोग की एकदम प्रारंभिक अवस्था में आनेवाले रोगियों एवं सैनिटोरियम के अन्य उच्च पदाधिकारियों तथा आफ़िस, डेयरी आदि के क्वार्टरों के लिये बाद में 'खादन-का-खेत'-नामक समतल-भूमि, जो सबसे ऊपर है, प्राप्त कर ली गई, और इस तरह कुल मिलाकर अब १०० एकड़ भूमि में सैनिटोरियम का विस्तार है। इसी में छोटे-बड़े क्वार्टर, कॉटेज और अन्य ब्लाक हैं। इसी में वाटर-वर्क्स, रिक्रिएशन-हाल, नर्स की कोठी, मेस और वार्डरों के घर हैं। इस समय सैनिटोरियम में ९० रोगियों के रहने की व्यवस्था है। गरमियों में जगह की बड़ी तंगी हो जाती है। जगह की कमी से निराश लौट जानेवालों की संख्या तो बहुत रहती ही है, पर 'वेटिंग-लिस्ट' में भी न-जाने कितने दर्जन

* राणा दुर्गासिंह साहब, भगत-स्टेट (Bhagat State) ने चीड़ के जंगल से भरे हुए और झरने से युक्त सौ एकड़ भूमि किसी भी संस्था या सज्जन को सैनिटोरियम बनाने के लिये देने का वचन दिया है। आशा है, शीघ्र इस उदारता से लाभ उठाया जायगा।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम दर्ज होकर पड़े रहते हैं। यहाँ आनेवाले रोगियों को पहले से ठीक करके आना होता है। चिकित्सा अच्छी तरह की जाती है। पहले तो कोशिश की जाती है कि रोगी आप ही स्वास्थ्यप्रद जल-वायु और थोड़ी-सी दवा-दारू से अच्छे हो जायँ, और बहुत करके ऐसा होता भी है; पर ऐसा न होने की हालत में शोडियम मरूपट, कैल्शियम क्लोराइड, गाल्डे आदि के इंजेक्शन दिए जाते हैं। जिसका एक ही फेफड़ा ख़राब हो या दूसरा पहले ख़राब भी रहा हो, वह जब चिकित्सा से नीरोग हो जाता है, तब कुछ और बातों का विचार कर Artificial Pneumothorax अर्थात् फेफड़े में यंत्र द्वारा हवा भरकर, उसे बेजान कर, आराम देकर, इस रोग को सेहत करने की जो प्रणाली प्रचलित हुई है, उसका आश्रय लेकर आशातीत सफलता-पूर्वक चिकित्सा की जाती है। खुली हवा, पुष्टकर पदार्थों का नियम-पूर्वक सेवन, आराम एवं स्वास्थ्यप्रद जल-वायु, उसमें चीड़ सोने में सुगंध भर देता है, तथा अनुभवी डाक्टर की देखरेख का फल रोगियों के स्वास्थ्य पर बहुत पड़ता है। यहाँ से अच्छे होकर जानेवाले रोगियों की संख्या अपेक्षा-कृत बहुत होती है। सन् १९२७ ई० में जिन १०२ रोगियों के पूर्ण-रूप से चिकित्सा प्राप्त कर घर लौटने की बात सैनिटोरियम की रिपोर्ट में लिखी है, उनमें १२ अच्छे होकर गए, ३८ बहुत सुधर कर (Much improved) गए, ३० सुधर (Improved) कर गए, १३ जैसे आए, वैसे (Stationary) गए, ६ ज़्यादा बीमार (Worse) होकर गए। इस संख्या में ४७ वैसे रोगियों का ज़िक्र नहीं है, जो या तो सैनिटोरियम-चिकित्सा के लायक़ न होने से या व्यक्तिगत झंझटों में पड़कर सैनिटोरियम में कुल छः हफ़्ते रहकर ही रवाना हो गए; ५ रोगी ऐसे आए, जिन्हें या तो क्षय-रोग था ही नहीं, या जो शक से आए थे। ३ रोगी कुछ ही हफ़्ते सैनिटोरियम में रहकर स्वर्गवासी हो गए। इन्हें ज़्यादा बीमार रहने के कारण घर न पहुँचाया जा सका। अस्तु, उपर्युक्त अंकों के देखने से सैनिटोरियम-चिकित्सा की महत्ता अच्छी तरह झलक जाती है। कहाँ तो Plains में यह असाध्य रोग है, और कहाँ यह याद कर लेने लायक़ अंक! अस्तु, इस सैनिटोरियम की इन्हीं विशेषताओं के कारण बहुत ख्याति है, और रोगी सुदूर बरमा, बंबई, काश्मीर, सीमांत-प्रदेश, बलूचिस्थान तक से स्वास्थ्य-लाभ करने यहाँ आते हैं। फिर भी पंजाब, संयुक्त-प्रांत, बंगाल, बिहार, दिल्ली आदि ही इससे विशेष फ़ायदा उठाते हैं। इस सैनिटोरियम के मेडिकल-सुपरिंटेंडेंट डाक्टर एफ़० एस्० मास्टर जितने ही योग्य, अनुभवी, दयालु और हँसमुख हैं, उतने ही

सन् १९२९ ई० के रोगी-समूह का सैनिटोरियम-स्टाफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने काम में तत्पर और सैनिटोरियम-हित-चिंतन में दत्तचित्त रहते हैं। असिस्टेंट मेडिकल-आफ़िसर डाक्टर डोंगरे भी काफ़ी उत्साही हैं। डाक्टर मास्टर ही अपने योग्य सहकारियों के साथ सारे सैनिटोरियम की देखरेख करते हैं। फिर भी सैनिटोरियम संपत्ति है बंबई के 'कंज़्यूमटिव होम-सोसाइटी' की, और उसके मंत्री श्रीयुत एस० पी० वाडिया सदा सैनिटोरियम की हित-चिंता में लगे रहते हैं। इस सैनिटोरियम का निरीक्षण करने के लिये देश के बड़े-बड़े आदमी और विदेशी विद्वान् आते रहते हैं। हर एकसेलेंसी लेडी इरविन और लेडी मैक्लागन (भूतपूर्व पंजाब-गवर्नर की पत्नी) आदि बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम भी प्रायः अपनी उपस्थिति से इसे सम्मानित करते रहते हैं। स्वीज़रलैंड के प्रसिद्ध डाक्टर स्टेफ़ाइन अपने डाक्टर-पुत्र के साथ आए साल यहाँ आए थे। वह इस सैनिटोरियम के विषय में जो कुछ लिख गए हैं, वह उसके योग्य ही है—

"... Cet établissement, bien situé bien compris, bien tenu on les malades recoivént, comme en Europe, tous les soins médicaux voulus, repond enticrement an but de ses créateurs."

अर्थात् यह अच्छी जगह पर, अच्छी तरह से बनी हुई और सुचारु रूप से संचालित संस्था—जहाँ रोगी वैसी ही चिकित्सा और देखरेख पाते हैं, जैसी योरप में—सचमुच अपने संस्थापकों की हार्दिक इच्छा को पूर्ण करती है।

इस सैनिटोरियम में निम्न-लिखित दर्शनीय स्थल हैं—

लेडी हार्डिंज-वाटर-वर्क्स—सैनिटोरियम स्थापित हो जाने पर भी उसमें पानी का अभाव बे-तरह खटकता था। अहमदाबाद के लक्षपति दानवीर श्रीमान् सर चुन्नीभाई माधवलाल ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंज को ५०,१००) सैनिटोरियम के इस अभाव की पूर्ति के लिये दिए। साथ ही लेडी हार्डिंज का नाम उसमें सन्निहित करने की प्रार्थना की। धरमपुर से आठ मील की दूरी पर अवस्थित बरोग के एक झरने से पानी पाइप द्वारा लाया गया, और सैनिटोरियम के हाते में ही एक रिज़रवायर बनाकर, जिसमें २,१०,००० गैलन पानी की गुंजाइश है, सैनिटोरियम के इस अभाव की पूर्ति की गई। इससे धरमपुर-बाज़ार और रेलवेस्टेशन भी लाभान्वित होते हैं। माधवलालजी ने इसके अतिरिक्त व्यय के लिये दस हज़ार रुपए और भी बाद में दिए।

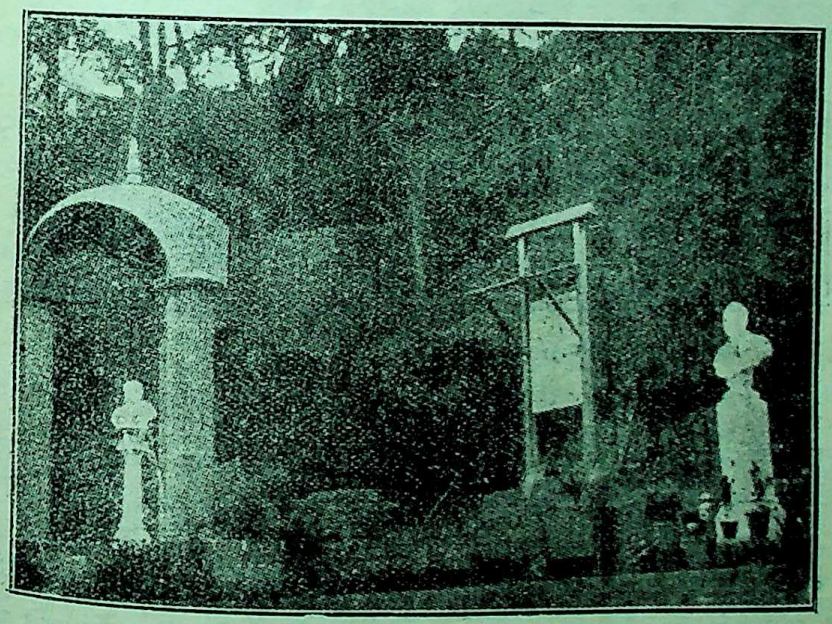

बहरामजी और माधवलालजी की प्रस्तर-मूर्तियाँ
(बगीचा और फ़व्वारा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

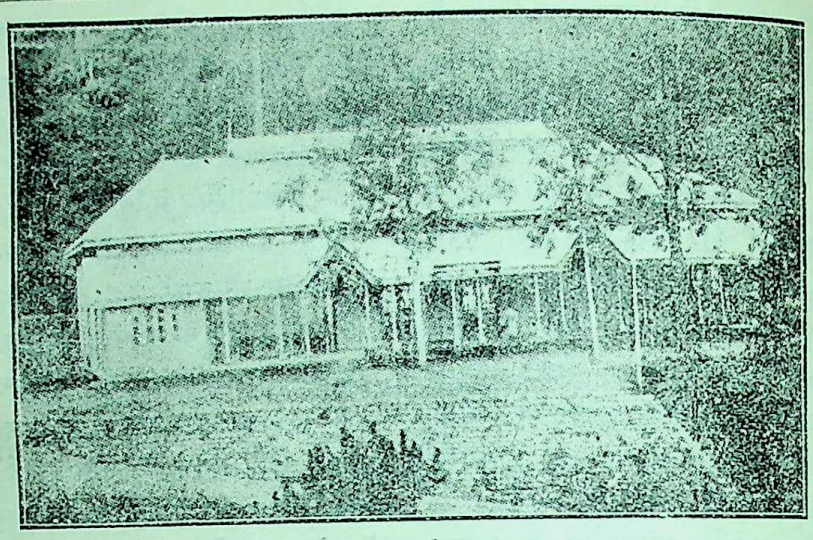

सर भूपेंद्रसिंह-रिक्रिएशन-हाल का बाहरी दृश्य

रिक्रिएशन-हाल का भीतरी दृश्य

(थिएटर का स्टेज और खेलने के अन्य सामान)

सर भूपेंद्रसिंह महिंद्रबहादुर-रिक्रिएशन-हाल—यह शायद सैनिटोरियम-भर में सर्वोत्कृष्ट भवन है। यह उपर्युक्त सर चुन्नीभाई तथा पटियाला-दरबार के सम्मिलित अर्थ-दान का फल है। इसमें २०० आदमी बड़ी आसानी और सुविधा से, जिसकी ज़रूरत ख़ासकर रोगियों को इतनी ज़्यादा है, बैठ सकते हैं। इसी में बैठकर सुबह-शाम रोगी कैरम, पिंगपाँग, बैडमिंगटन, ताश, शतरंज आदि से अपना मनोरंजन करते हैं। इसी में बैठकर वे हारमोनियम, ग्रामोफोन और तबले वग़ैरह से अपना दिलबहलाव करते हैं। यहीं अँगरेज़ी, हिंदी, मराठी, गुजराती, उर्दू और बँगला की कई आलमारियाँ पुस्तकों से भरी खड़ी हैं, जिन्हें रोगी या तो वहीं या अपने-अपने 'डेरे' ले जाकर पढ़ते और सुख पाते हैं। यहीं पर अँगरेज़ी और गुजराती (हिंदी जाननेवाले इतने अधिक रोगियों के होते हुए भी यहाँ हिंदी की कोई पत्र-पत्रिका नहीं आती ; इस ओर सैनिटोरियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हिंदी के धनी-मानी पत्र-संचालकों को ध्यान देना उचित है।) के कितने ही अख़बार आते और सजाकर रखे रहते हैं। यहीं एक सुंदर मंच बनाकर और सुंदर-सुंदर परदे से सजाकर थिएट्रिकल स्टेज है, जिस पर दशहरे आदि के अवसर पर रोगी और सैनिटोरियम-स्टाफ़ प्रहसनों का सुंदर अभिनय करते हैं। इसी में प्रति-वर्ष मास्टर मोहन, मियाँ महम्मदहुसेन (आफ़ नगीना ?) आदि को बुलाकर रोगियों का उनके मधुर गान से मनोरंजन किया जाता है। यहाँ दीवाली के अवसर पर ख़ूब आतशबाज़ी की धूम की जाती है, और बड़ा दिन भी मनाया जाता है। यहाँ सभाएँ होती हैं, और आगतों का स्वागत किया जाता है। अब तो सैनिटोरियम में बिजली (बेतार का तार) भी लग गया है, और शीघ्र ही इस 'नाचघर' की शोभा बढ़ाएगा। इसके समीप ही एक बहुत ही छोटा घर और बहुत ही रमणीक बाग़ है। उसमें श्री० बहरामजी मालावारी तथा चुन्नीभाई की प्रस्तर-प्रतिमाएँ स्थापित हैं। (सिर्फ़ एक कमी है दयारामजी के बस्ट की) जब कभी उसमें लगे हुए फ़व्वारे अपने जलकणों से प्रस्फुटित पुष्पों का मुख-मार्जन करते हैं, तो इस स्थान की शोभा देखने ही लायक़ हो जाती है।

नयनवती-माउंट और स्पाइरल-रोड—सन् १९१२ ई० में, एक पारसी रोगी के अयाचित दान से, सैनि-टोरियम के भूतपूर्व डाक्टर एफ़० डी० नानवती के स्मृति-स्वरूप इस मनोरंजक स्थान का रोगियों के मनबहलाव के लिये निर्माण हुआ। बहुत कम चढ़ाई की घूमती हुई सीढ़ियाँ एक छोटी, फिर भी सुंदर, पहाड़ी पर जाकर ख़त्म हुई हैं। रोगी इस पर आसानी से चढ़कर दिल बहलाते हैं!

लेवेल-रोड—रोगियों को टहलने में जिसमें सुबीता हो, इसलिये यह सड़क बनाई गई है। बहुत लंबा-चौड़ा होने पर भी यह स्थान एकदम समतल है, जिससे रोगियों को घूमते समय असुविधा नहीं होती। सुबह-शाम यहाँ टहलनेवालों की अच्छी भीड़ रहती है। इसके चारों ओर चीड़ के पेड़ हैं, बहुत दूर पर नीचे रेल की लाइन है। एक ओर डगसाई और दूसरी ओर परोन के पहाड़ों का बड़ा सुंदर दृश्य है। इसकी निर्जनता भली-सी लगती है।

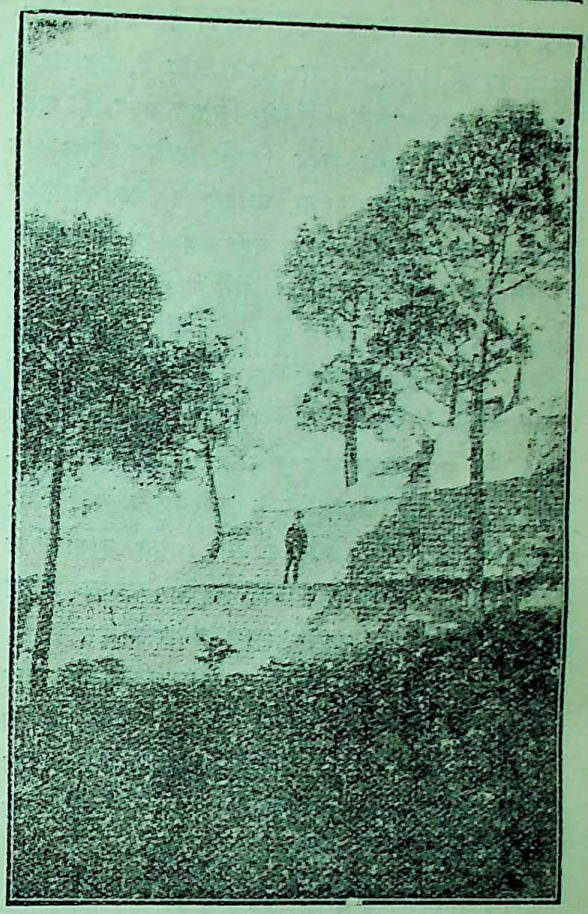

नानवती-माउंट और स्पाइरल-रोड

इनके अतिरिक्त पिरोज़बाई पाटक (Patuck) डेयरी, नौशेरवाँ अदुल गेस्ट-हाउस, मेस, डिस्पेंसरी, आफ़िस आदि स्थल भी विशेष महत्त्व के हैं।

सन् १९०९ ई० में राउटियों में ही दस रोगियों को रखकर सैनिटोरियम का श्रीगणेश किया गया था। दूसरे ही वर्ष यह संख्या सतगुनी हो गई, और आज तो प्रायः १५० रोगी प्रतिवर्ष इससे लाभ उठाने लग गए हैं। इतना ही नहीं, आज तक लगभग २,२७९ रोगियों की चिकित्सा यहाँ हुई है, और प्रायः इतने ही जगह की कमी के कारण या अन्य कारणों से इसकी उप-योगिता से लाभ उठाने में समर्थ नहीं हो सके। यह सैनिटोरियम क्षय-रोग की प्रारंभिक अवस्था (First stage) वाले रोगियों के लिये ही खोला गया था; पर अभाग्य-वश रोगी सैनिटोरियम की शरण तभी लेना चाहते हैं, जब वे घर पर आरोग्य-लाभ नहीं कर पाते! और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भी इसलिये कि अब वहीं चलकर तत्काल आरोग्य-लाभ कर लें !! यह धारणा कितनी भ्रांत है, यह कहना व्यर्थ है। पहाड़ जानेवालों को जितना जल्द हो सके, जाना चाहिए; इसी तरह जितने अधिक काल तक वे वहाँ रह सकें, रहना चाहिए। क्षय-रोग-जैसे असाध्य शत्रु को कुचलने के यही सब कुछ ऐसे नियम हैं, जिनका उचित पालन न होने से ही अंत में हाथ मलना पड़ता है। संयम और धैर्य भी उनका प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। इसी तरह कृपणता, असहिष्णुता तथा आतुरता त्याज्य हैं। अस्तु, इस सैनिटोरियम में प्रायः दस लाख रुपए अब तक लग चुके हैं, जो पटियाला-नरेश और बंबई-प्रांत के धनी-मानी सज्जनों की कृपा से ही अधिकतर प्राप्त हो सके। इन दाताओं में भी पारसी भाई सदा से आगे रहे हैं। पचास हज़ार रुपए से अधिक व्यय सैनिटोरियम का साल-भर का है, जो काटेजों के किराए, दान, ट्रस्ट किए हुए रुपए और अन्य रूप से जुटाया जाता है, फिर भी कई नितांत आवश्यकताओं के लिये सैनिटोरियम को प्रायः तीन लाख रुपए की आवश्यकता है, जिसे देकर दानवीरों को नाम के साथ कुछ 'काम' करना चाहिए। अस्तु।

सच बात तो यह है कि क्षय-रोग की अभी तक एकमात्र यही दवा है कि पहाड़ों पर चला जाय। वहाँ के जलवायु में ही ऐसा असर है कि यह रोग उससे हार मानता है। किंतु इस संबंध में भी कई बातें विचारणीय हैं। पहाड़ न तो बहुत ऊँचे हों, न एकदम हज़ार-डेढ़ हज़ार फ़ीट नीचे। यही नहीं, उन पर जब तक चीड़ (Pine) के पेड़ नहीं होते, सोने में सुगंध नहीं आती है। फिर नियम का सवाल जब आता है, तब तो ऐसा कहे विना रहा नहीं जा सकता कि पहाड़ों पर अवस्थित सैनिटोरियम ही इसके लिये उपयुक्त स्थान है। किंतु सैनिटोरियम-चिकित्सा के विषय में अभी साधारण जनता बहुत अंश तक अंधकार में है, इसी कारण उसमें बहुत-से दोष लगाए जाते हैं। मैंने प्रायः सुना है, और किसी सैनिटोरियम के न देखने तक स्वयं भी कहा करता था कि सैनिटोरियम इस रोग के निवारण के साथ ही इसके प्रसार के भी साधन हैं (Hot bed of Pthysis); किंतु यहाँ आकर हमारी यह धारणा निर्मूल ठहरी। खखार, पाखाना और पेशाब पर कड़ा 'पहरा' रहता है; उन्हें सावधानी से ले जाकर अग्निदेव को समर्पित कर दिया जाता है! इतना ही नहीं, धनी पर तो क्षय के रोगी यों ही जहाँ-तहाँ थूकते भी रहते हैं, और इस तरह इस रोग के कीटाणुओं का अपने प्रिय परिजन, नौकर-चाकरों और पड़ोसियों तक के शरीर में वपन करते रहते हैं; पर यहाँ तो यदि उसका एक कतरा भी कोई फेंके और पकड़ लिया जाय, तो बस, बिदाई की नौबत आ जाती है। लोगों का ख़याल ख़र्च की ओर भी जाता है, पर एक तो यह राज-रोग है ही, इसमें ख़र्च करते समय राजा बनना ही चाहिए। लेकिन मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि शहरों में सड़ियल मकान में रहकर और सड़ियल डाक्टर से चिकित्सा कराने में जितना व्यय होता है, उससे यहाँ कम ही होता है। फिर सब तरह के रोगियों के लिये अलग-अलग इंतज़ाम है। सैनिटोरियम के विषय में लोग ऐसा भी प्रायः कहा करते हैं कि वह निरे अस्पताल होते हैं। किंतु यह कल्पना निरर्थक है। जो नित्य-सुंदरी प्रकृति की गोद में बसा है, जो हज़ारों जगमगाते हुए दीपकों को बुझने से बचाता है, जिसमें मनोरंजन के इतने सामान हैं, और जहाँ के रोगी सब तरह के स्वस्थ आमोद-प्रमोद, पिकनिक और सैर में अपने जीवन के दुःख भूल-से जाते हैं, वह सैनिटोरियम न केवल दर्शकों के हृदय में श्रद्धा-भक्ति के भाव ही उत्पन्न करता है, प्रत्युत आनंद का एक वह पुट खोल देता है, जो बहुत दिनों तक भूला नहीं जा सकता!

सैनिटोरियम की दिनचर्या के विषय में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। सुबह साढ़े छः बजे घंटी बजती है। रोगी टेंपरेचर ले लेते हैं। मेस से दूध, टोस्ट, मक्खन और अंडे आ जाते हैं, और वे जलपान करते हैं। फिर काटेजों में योरपियन नर्स और अन्य ब्लाकों में कंपाउंडर जाकर रोगियों का टेंपरेचर और पल्स-रेट चार्ट में लिख देते हैं। प्रायः नौ बजे दोनों डाक्टर अपने-अपने राउंड में निकल जाते हैं, और रोगियों को देखते तथा दवा लिख देते हैं। बारह बजे फिर घंटी बजती है, फिर टेंपरेचर लिया जाता है, और अपने-अपने स्केल के मुताबिक़ रोगियों का खाना आ जाता है। रोगी अपने खाने का स्वयं भी इंतज़ाम कर सकते हैं। खा-पीकर रोगी चार बजे तक आराम करते हैं। फिर घंटी बजती है, फिर टेंपरेचर लेते हैं, फिर नर्स आकर चार्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षय-रोगियों की पिकनिक

पर लिखती है, और दूध तथा फल, जैसा स्केल रहा, रोगियों के लिये आ जाता है। साढ़े छः बजे जाड़े में और आठ बजे रात को गरमियों में रात की घंटी होती है। फिर खाना आता है। टेंपरेचर छः बजे ही ले लिया जाता है। रोगी खा-पीकर ९ बजे तक सो जाते हैं। इसके बाद उन्हें किसी प्रकार की झंझट नहीं रह जाती, सिर्फ़ चौकीदार का खाँसना सुन पड़ता है।

श्रीगिरींद्रनारायणसिंह

"मान सिगरे हेराने री"

दुरि गई दामिनि दमक दुति दंत लखि,
अधर रसाल लखि विद्रुम सुखाने री;
लखि-लखि नैनन निकाई त्यों "बिसारदजू",
कंज सकुचाने, खरे खंजन खिसाने री,
लंक लखि केहरी पराने नालखाने कहूँ,
वन ठहराने जाइ ऐसे सरमाने री;
चाल लखि ए री प्रानप्यारी तुव हारे हंस,
मान-सर सेवैं मान सिगरे हेराने री।

बलदेवप्रसाद टंडन

रमेश

(१)

वह वेश्या थी। उसकी मुखश्री यौवन के अंचल से अंतर की बिखरी हुई स्नेह-राशि को एकत्रित कर जब कभी यों ही निष्फल हँसी हँस देती, तब न-जाने क्यों वह रिक्त प्याली-सी आँखों से सूनी दीवालों की छाया में छिपी-भगी मानों अपनी हँसी को ढूँढ लाने के लिये व्यग्र हो जाती। वह अपनी ही एक पहेली थी। जब से अपने को वह जान सकी थी, अपने रूप, यौवन तथा जीवन की ममता का अनुमान कर सकी थी, तभी से वह एक पहेली बन गई थी। विधाता का यह उग्र आशीर्वाद शापभ्रष्टा गौतम-नारी की भाँति उसे कुंठित कर देता। उसकी मांसल देह पत्थर बन जाती, वह अपने अंतर की लज्जा से दबी-सी—मरी-सी जाती, डूबने-उतराने-सी लगती—किनारा खोजती। कहाँ? अनंत के उस पार, जहाँ वह अपने को भी न देख सके—उस निविड़ अंधकार के अंतस्तल में। विद्रोही मन आकुल होकर कहता—क्यों, ज़रूरत क्या है? वह शर्मा जाती, असंख्य यौवन चिल्ला उठता—मैं खींच लाऊँगा। वह व्याकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर पीछे हट जाती। यही उसके एकांत जीवन का रहस्य था। पिंजड़े का आबद्ध तोता जब कभी पुकार उठता—"क्यों मालती, तू जायगी नहीं।" मालती स्नेह-पुलकित होकर कभी-कभी कुछ यों ही गुनगुनाने लगती—

यह न पूछ मुझसे कि देहर में कि मैं कब से ख़ाना-ख़राब हूँ;
जो न मिट सका वह तिलिस्म हूँ, जो न उठ सका वह हिजाब हूँ।
मुझे ग़ैर समझें न अहले-दिल हमःतन अगर्चे हिजाब हूँ—
जो निहाँ है मेरी नज़र से भी मैं उसी के रुख़ की नक़ाब हूँ।

तोता कुछ भी न समझकर मौन रह जाता। उस दिन दीपावली की रजनी ज्योतिर्मयी बनकर हँस रही थी। मालती वेश-भूषा को अनुरूप कर अपने ऊपर के वातायान से ललचाई हुई अगणित आँखों को चुपके-चुपके कुछ दे रही थी। उसकी आँखों ने अपनी अट्टालिका से दूर एक युवक को बाँसुरी बजाते देखा। देखा—उसके घुँघराले बाल अपनी असंयत उलझन में बिखरे पड़े हैं। वह दुर्बल क्षीण-मलिन-काय युवक जैसे बाँसुरी के स्वरों में से प्राणों का क्रंदन फूँक रहा है। देखने में वह बंगाली जान पड़ता था। मालती की इच्छा हुई कि मैं भी बाँसुरी सीख लूँ। फिर क्या था। युवक बुलाया गया। युवक को सामने पाकर मालती अप्रतिभ हो गई। "आप बाँसुरी बजाते हैं?" मानों मालती के भारावनत कंठ से ये शब्द बड़े कष्ट से निकले। संकोच की लालिमा ने उसके यौवन को आरक्त कर दिया। युवक ने निःसंकोच होकर कहा—"जीहाँ, यही तो मेरा व्यापार है।" अतीत की कितनी ही उज्ज्वल स्मृतियाँ अंधकार बनकर उसकी आँखों में समा गईं। वह प्रस्तर-मूर्ति की भाँति खड़ा रहा। "हमें भी बाँसुरी सिखा दोगे...बैठ न जाओ"—मालती ने करुण स्वर से कहा। युवक जैसे भींग गया, बैठते-बैठते कहने लगा—"तुम...तुम्हारी इच्छा, हमें आता ही क्या है, जो तुम्हें सिखा दें।" वह जैसे अकिंचन था। मालती के अन्यमनस्क मन ने देखा—यह कौतुक है, पैसों में ख़रीद लेनेवाला खिलौना है। बुद्धि सहमत होने जा ही रही थी कि तोते ने कर्कश स्वर में कहा—"बाँसुरी बजाते हो, तो बजाओ न जी।" युवक अवाक् होकर बरामदे की ओर देखने लगा। मालती तथा अन्य बैठे हुए लोग हँस पड़े। एक बुढ़िया बोली—"हरामी! रामनाम तो लेता नहीं, हुकूमत चलाता है। अब चलें न हँसी तब न जानेगा।" शासनपटुता ने उसकी मुखाकृति को गंभीर बना दिया।

× × ×

रमेश वहीं रम गया। जीवन का सारा स्वप्न सिमटकर, आँखों की परिधि में प्रत्यक्ष मूर्तिमान् बनकर जम गया था। वह स्तब्ध था, किंतु था सचेत। उसका तर्क उसे विश्वसनीय था। अब उसकी बाँसुरी का स्वर बदल गया था। वसंत के पागल भौंरे झूम पड़े। बाँसुरीवाले ने हँस दिया—वह विजयी था। "रमेश!"—नीचे से मालती ने पुकारा। "क्या है, ऊपर आओ न"—कहकर रमेश सीढ़ियों की ओर प्रत्याशीत भाव से देखने लगा। मालती पान का डिब्बा लिए धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ती हुई छत पर जा पहुँची। उसके बाधा-बंधनहीन कुंचित केश अगहन के घाम में चमक उठे। रमेश मालती की स्वर्णवल्ली पर गुँथे हुए इतनी भौंरे की राशि देखकर चकित रह गया, जैसे उसके भरे हुए घर को डाकू लूट रहे थे। पर वह परवश था, किंतु प्रसन्न भी था। एक मख़मली क़ालीन पड़ा था। उसी पर वह बैठ गई। रमेश दूसरी ओर को देखने लगा था। बोला—"अब मन भाग जाने को कहता है मालती।"

मालती मानों दृष्टिविहीन नेत्रों से देखती हुई बोली—"क्यों रमेश, अभी तो मैंने बाँसुरी भी नहीं मँगाई, तुमने सिखा देने को कहा था न। आज जाने को कहते हो—क्या तुम्हें कोई तकलीफ़ है?"

"कुछ नहीं मालती, यों ही न-जाने क्यों इच्छा हो तो हो गई—होती है, मैं क्या करूँ बतलाओ न"—कहकर रमेश मालती का मुँह देखने लगा।

"नहीं-नहीं, तब तुम नहीं जाने पाओगे रमेश। मेरा भी तो दिल नहीं लगता, जैसे कोई कहीं मेरा हुई नहीं, तो क्या मैं भाग जाऊँ? नहीं, तुम्हें रहना पड़ेगा।"

मालती जैसे नशे में कुछ अनर्गल बकती हुई सचेत हो गई हो। हँसकर बोली—"घर की याद आती होगी, क्यों न रमेश?"

रमेश कुछ विरस होकर कहने लगा—"घर पर कौन है मालती, जिसे हम आज याद करें, कोई भी नहीं।"

मालती बात काटकर बोली—"कोई भी नहीं! तुम्हारी शादी नहीं हुई रमेश?"

रमेश की आँखें भर आईं, वह कहने लगा—"हुई थी मालती। मेरी शादी, जब मैं ५ वर्ष का था, तभी हुई थी। हम दोनों एक ही डाली के दो अनाघ्रात कुसुम थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति चिरआलिंगित हँसते थे। अपने पिता की टूटी यही बाँसुरी लाकर जब हम बजाते, वह बेटी हँसा करती। नहीं जानता था मालती कि वह रुलाने के लिये हँसाती थी।"

रमेश की सजल आँखें अनायास ही बरस पड़ीं। मालती गुरु-ताड़ित बालक की भाँति शांत, स्तब्ध और भयभीत होकर रमेश के शिथिल शरीर पर हाथ फेरने लगी। डरते-डरते बोली—"तुम बालकों की तरह रोते क्यों हो?"

रमेश जैसे क्रुद्ध होकर बोला—"तुम क्या समझोगी, मैं क्यों रोता हूँ? दुनिया क्यों रोती है? जिसके कलेजे में वायु के लहरों का भी झकोरा न पहुँचा हो, वह फटे हुए कलेजे की पीड़ा कैसे समझेगा?"

नम्रमुखी मालती बड़े करुण-स्वर में बोल उठी—"हाँ, क्यों नहीं, तुम्हीं अच्छे हो, अपने दर्द को समझते हो, उसकी ममता से तुम्हारा संतोष बलवान् है। रोकर तुम अपना हृदय हलका भी रखते हो: पर जो अपनी पीड़ा-रूप ज्वाला में कृत्रिम स्नेह से फुँक रहा हो, उसे...? मैं तो रोना चाहती हूँ; पर क्या करूँ, रो ही नहीं सकती। सच कहती हूँ, झूठ न मानना, जैसे मेरे भीतर आँसू की एक भी बूँद नहीं, जो आँखों को सींच सके रमेश।"

रमेश आश्चर्य-विमुग्ध होकर उसे देख रहा था। उस की मुद्रा टूटी। उसने देखा—निदाघ के एक ही झोंके ने मालती की कुसुमित वल्लरी को श्री-हत कर दिया। वह जैसे कुछ पहचानने लगा था। होंठ खुले-के-खुले ही रह गए। वह अभी तक मौन ही रहा। मालती ने पूछा—"वह कब क्या हुई रमेश?"

रमेश को जैसे बात मिल गई। कहने लगा—"आज १-२ साल हुए मालती, उसे क्या कहूँ, क्या हो गया। मेरे देश में ज्वर का प्रकोप प्रायः ६ मास सर्वव्यापी रूप धारण करता है। उसीने उसे आत्मसात् कर लिया। मैं नहीं जानता था कि भीषण लहरें मँझधार के पूर्व ही मल्लाह के डाँड़े छीन लेंगी। यह नाव कैसे कहाँ जायगी, जानती हो मालती? अभी तक डूब नहीं गई, यही आश्चर्य है—है न?"

रमेश बालकों-जैसा उत्सुक हो उसकी ओर देखने लगा।

"माँझी और डाँड़े की कमी नहीं रमेश, डरते क्या हो!"—कहकर वह हँसने लगी। फिर बोली—"उसके बाद तुम कैसे क्या करते थे? बताओ, आज यही सुनूँगी।"

रमेश गंभीर बना बैठा था। वह यों ही अन्यमनस्क भाव से कहने लगा—"जब से मैंने होश सँभाला, मा को गाँव-गाँव से भीख माँगकर लाते देखता था। वह मेरे तथा मा के लिये पर्याप्त होता।"

मालती ने पूछा—"तुम्हारे पास कोई पैतृक संपत्ति नहीं थी रमेश?"

रमेश ने उत्तर दिया—"थी, हम लोग एक प्रकार के वैष्णव-साधु हैं। देश में सौ-पचास गाँव अपनी ही यजमानी समझते हैं। उसी में भजन वग़ैरह सुनाकर अपनी वृत्ति चलाते हैं। यह हम लोगों के लिये कोई अपमान की बात नहीं। और, दूसरे भी मेरा सम्मान करते हैं। यह तो धार्मिक प्रथा है, यह क्या कोई पैतृक संपत्ति नहीं है?"

रमेश रुक गया। मालती ने रमेश को बिना कुछ उत्तर दिए ही नीचे आँगन में खेलती हुई एक ८-९ वर्ष की लड़की से बाल बाँधने का सामान ऊपर माँगा, और फिर रमेश से बोली—"हाँ जी, तुम कहते चलो और मैं भी तब तक अपने बाल ठीक कर लूँ।" कहकर उसने खुले बालों में अपनी उँगलियाँ उलझा लीं।

रमेश ने प्रसंग मिलाकर फिर कहना शुरू किया—"क्या कहूँ मालती, हम दोनों सुखी थे—न भूत का कोई गौरव, न भविष्य की कोई सुख-कल्पना थी। बेचारा वर्तमान जैसे लोरियाँ सुनाकर हम लोगों को सुख की नींद सुला जाता था। अब थोड़े में ही कहता हूँ मालती। इतने में ही अज की इंदुमती की घातकमाला की भाँति दैवदुर्विपाक से वही मेरी स्त्री मेरे गले पड़ी। कैसे कहूँ, उसके स्पर्श में पुलक था या नहीं, उसका सौरभ कहाँ तक मादक था। अब जानता, नहीं, वह घातक न थी। हाय घातक थी, कैसे कहूँ?"

मालती ने रमेश को उद्विग्न देखकर कहा—"उसके बाद तुम क्या करते थे, यही बतलाओ न?" कहकर वह चुप हो गई। सामने का शीशा जैसे उसके रूप को लील लेना चाहता था। रमेश इसे नहीं देख सका। वह कहने लगा—"फिर मैं करता ही क्या? जैसे शून्य को अपनी छाती में भरकर उस-की आकृति को सीमा में भूल गया था। मुझे सारा संसार अंधकार मालूम पड़ने लगा। वह घातकमाला मुझे अपना प्रेत बनाकर छोड़ गई। मैं चिर-व्यस्त रहता। मेरी माता इससे आकुल हो उठीं। अब वह जब बाहर से माँगकर आतीं, तो उन्हें यहाँ भी घर में सारा काम करना पड़ता। यह उनकी-जैसी वृद्धा के लिये दुःसह था, इससे वह चिड़-चिड़ी बन गईं। असंभवता के बोझ ने उन्हें क्रूर बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। मेरे दुःख का उन्हें ज्ञान नहीं है, मुझे यही ज्ञात होता था।"

मालती हँस पड़ी। रमेश करुण होकर कहने लगा—"मैं तो ऊब गया था। आत्महत्या कर लेना ही सुख-प्रद जान पड़ने लगा; पर जैसे साहस न होता—बुद्धि हताश थी। एक दिन मैं सारी ममता तोड़कर घर से भाग चला। कहाँ जाता था, पता नहीं। पर प्रसन्न था, दुर्बल साहस मुझे बलवान् बनाने में अत्यधिक प्रयत्नवान् था। मालूम नहीं, उस दिन एकादशी थी या नहीं: किंतु मैं निराहार रह गया। मेरी बाँसुरी मुझे बोझ मालूम पड़ने लगी। और पास में था ही क्या! समीप ही एक गाँव था, उसी के एक कुएँ पर कुछ स्त्रियाँ जल भर रही थीं। मैं वहीं जाकर बैठ गया। उसी के सामने एक तरफ़ बड़ा-सा मकान था। उसका मालिक कदाचित् उस गाँव का ज़िमींदार रहा होगा। उसके अत्यंत बीमार होने के कारण दूर के एक डाक्टर देखने आए थे। वह जब बाहर निकले, तब उनके साथ और भी बहुत-से आदमी थे। मेरी भी उत्सुकता बढ़ी। मैं भी वहीं पहुँच गया। लोगों ने मुझे अपरिचित पाकर मेरे बारे में मुझसे पूछताँछ की—मैंने सबको यथोचित उत्तर दिया। डाक्टर ने शीघ्र ही मुझे अनाथ दुखिया बालक समझ लिया। मेरा सूखा मुँह उन्हें दयालु बनाने में सहायक हुआ। वह बड़े कृपालु थे। अनाथों पर उनकी स्वाभाविक सहानुभूति थी, अतः वह मुझे अपने घर ले आए। वहाँ मैं उनकी सेवा करता था। वह मुझसे अनायास ही प्रेम करते, मेरा ध्यान रखते, और मुझे ब्राह्मण जानकर साक्षर बना देने की उनकी रुचि हो गई थी। यही उनकी मेरे लिये विशेष उदारता था। मैं पढ़ने लगा—बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ गया; पर जैसे मुझे सब भूला जाता था। सब जान-समझकर भी मैं जैसे कुछ नहीं जानता-समझता था। घातकमाला से मैं तो अपना प्रेत न था। वह कहते—मेरी बुद्धि तीक्ष्ण है। मैं समझता, ये नाहक़ डाक्टर हैं। वह सोचते—इसे कुछ और पढ़ा-लिखाकर कहीं अच्छी नौकरी दिला दूँ। मैं सोचता—यह मुझे ब्रह्मफाँस में फाँसेंगे। प्रायः चौथा वर्ष उनके यहाँ बीत रहा था। मा की याद कड़वी दवा की भाँति भीतर ज्वाला फूँक रही थी। एक दिन उनसे बिना कहे-सुने घर के लिये चल दिया। वहाँ जाकर देखा, मेरी कुटिया गिरी पड़ी है, कोई भी रहनेवाला नहीं। सुना, मा पागल होकर स्वपथगामिनी हुई। फिर मैं भी इधर को चला आया। लोग कहते थे—मेरी मा पागल हो गई। क्या यह सच हो सकता है मालती?"

रमेश का मुँह उदास हो गया। मालती ने चिंतित होकर कहा—"हो गई होगी रमेश।" रमेश उठ खड़ा हुआ। मालती भी नीचे जाने के लिये सामान समेटने लगी।

(२)

समय कदाचित् बलवान् होता है, अन्यथा उसे किसी डिबिया में बंद होकर ही रहना पड़ता। कम-से-कम रमेश यही समझता था। वसंत को आमंत्रित करनेवाला मलय-पवन समस्त लता-गुल्मों को अपने आलिंगन से सिहरा गया। तृण-राशि अनायास ही नाच रही थी। रमेश पूर्ण युवा था। कोकिल का स्वर उसे उसकी व्यथा मालूम पड़ती। कौन जाने, उसका अनुमान कहाँ तक सत्य था। हाँ, उसकी कल्पना उसे सुखद थी। उसे यहाँ रहते ४-५ मास बीत रहे थे; पर वह यह नहीं जानता था कि यहाँ क्यों रुका है। उसे यहाँ कोई काम भी नहीं करना पड़ता था। इस घर के सभी उससे भीतर से बुरा मानते थे, पर मालती? वह इसे चाहती थी। यद्यपि वह स्वयं नहीं जानती थी कि रमेश की क्या ज़रूरत है, किंतु रमेश के अभाव की भी कल्पना उसके लिये दुखद थी। वह जानती थी कि रमेश से लोग बुरा मानते हैं, यही उसके लिये अचिंतनीय चिंता थी। मालती का बाल्य-काल पाँव पसारते ही चला गया था। हाँ, व्यापार-पूर्ण यौवन चतुर नाविक की भाँति उसके जीवन से लगा था। उसका रूप समालोचकों के लिये नहीं, किंतु सुकुमार एवं करुण हृदयों के लिये अवश्य आकर्षक था, जिस पर भोलापन इतराया फिरा करता। पर जैसे उसे इसका मोह न था। उसके गाने की बाज़ार में धूम थी। लोग आते-जाते। रुपयों की भी कमी नहीं। पर उसका मन इधर से दूर-ही-दूर रहता। मृग-शावक की भाँति भयभीत बना रहता। वह स्वयं इस दुरवस्था से चिंतित थी। घर के सभी उसे मालिक समझकर व्यवहार करते। यद्यपि बुढ़िया उसकी मा-सी श्रेष्ठ थी, तथापि वह भी इसी का मुँह देखा करती। यही उसकी गर्वहीन अवस्था उसके लिये विशेष बंधन बनी थी। वह आलस्य-अभिभूता एक छाया की भाँति गिरी-पड़ी निस्पंद रहना चाहती थी। पर यह कैसे? जीव अचैतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर-मूर्ति कैसे होगा ? रमेश की उनींदी आँखों में यह सब रहस्य बन समा रहा था। वह चैतन्य पागल सब समझ रहा था; पर जैसे वह एक मायावी के निकट दर्शक की भाँति कौतूहल-पूर्ण अपनी जिज्ञासा को तृप्त कर रहा हो। लेकिन एक दिन वह चौंक पड़ा। सत्संग के सुअवसर ने रमेश को गँजेड़ी बना दिया। नशे में उसे जैसे संतोष मिलता। इसी भावना ने उसे बलवान् बनाकर विजयी किया था। मालती ने उस दिन रूखे स्वर से कहा—"रमेश, तुम्हारी आँखें लाल अंगारे की तरह हो रही हैं, तुम आजकल ख़ूब गाँजा पीते हो, यह बुरा है।" रमेश ने देखा, उसके हृदय का सारा स्नेह उसकी आँखों में उतर-सा उतर आया है। वह अप्रतिभ हो गया। मालती की दशा से वह कातर हो उठा। उसने मन में सोचा—भिखारी से भला याचक क्या पाएगा ? शायद संकोच फटी चुनरिया ही न रखवा दे। संसार मुझे संपूर्ण नग्न देखकर कहीं हँस देगा, तो ? हाय मैं तो डूब जाऊँगा। वह मालती से बिना कुछ कहे ही वहाँ से हट गया था। वह बाज़ार होते शहर के बाग़ में पहुँचा। उसका हृदय जल रहा था। वह सोचता—मालती वेश्या है, अपने परिवार की पोषिका है, उसके रूप-गुण की ख्याति उसे अवसर दे रही है। ऐसे समय मैं कहाँ से क्यों धूम-केतु की भाँति उसके यहाँ कूद पड़ा। कितनी ही उग्र भावनाएँ उसके हृदय को उद्वेलित करने लगीं। वह त्रस्त-भय-विह्वल की नाईं काँपने लगा। पास ही बेंच थी, उसी पर लेट गया। उसकी चिंता ने स्वप्न का रूप धारण किया। उसकी आँखों का सिनेमा बड़ा सुंदर था। एक सघन उपत्यका में नीड़ में दो सुंदर पक्षी विश्राम लिया करते थे, उनके मनोहर कल-नाद से यह प्रदेश मुखरित रहता। अकस्मात् वज्र वर्षा ने उपत्यका, नीड़ और उस पक्षी की चिर-संगिनी, सभी को ध्वंस कर दिया। रमेश पुनः काँप उठा, भय और सिमटकर पड़ रहा। देखने लगा—अभागा पक्षी एक वृक्ष के ठूँठ पर बैठा चारों ओर दृष्टिपात कर रहा है, क्या ? कुछ भी नहीं। वह जैसे अपने ही घर में अपरिचित हो गया था, शंकाकुल उसका मन उसे ही फाड़ खाने लगा। सारा दृश्य उसे असह्य हो उठा। वह उड़ गया—बहुत दूर अपरिचित देश के कोनों में, जहाँ वृक्षों के अंतराल न थे, अपने जीवन के परिचित एक भी चिह्न न थे। वह क्या करता ? संध्या समीप थी, एक घर की दीवाल पर वह जा बैठा। उसका सुकुमार शरीर संध्या की सुनहली छाया में निष्प्रभ दीपक की भाँति अपनी ही सीमा में संकुचित था, मनोहर वेश मलिन था; पर तो भी चिड़ीमार की नज़र से वह न छिप सका। उसके फंदे उसे फँसाने के लिये बार-बार समीप आने लगे; पर वह फँस न सका। उसका लासा इसकी पिच्छलता पर स्वयं फिसल पड़ता। पक्षी दुर्बल डैनों से खिसकना चाहता था, पर जैसे उसका मन उन्हें उभड़ने ही न देता था। रमेश मन-ही-मन आकुल हो उठा। आँखें खोलकर देखा—बाग़ के वृक्ष जैसे शिथिल चाँदनी के ज्योत्स्ना-पट पर अंकित हैं। कुछ विशेष रात्रि का अनुमान कर वह मालती के घर की ओर चल पड़ा।

× × ×

मालती ने देखा, रमेश कहीं चला गया है। उसने सोचा—उन्हें मेरा कहना बुरा लगा, लगा करे—वह मेरे यहाँ रहते हैं। यहाँ के लोगों का उन पर प्रभाव न पड़े, यह भी मेरा कर्तव्य है; नहीं तो एक दिन वह सोचेंगे—वेश्या के घर टिककर मैंने अपना इतना पतन किया ! यही तो मेरे मर जाने की बात होगी। रमेश बड़ा सीधा है, सरल है, उसके हृदय का दर्द उसकी एक कहानी है, जो उसे सदैव पवित्र, उन्मुक्त रखती है, तब तो उसकी रक्षा उन्हें सतर्क होकर करनी होगी, और हमें भी.....मैं क्या जानूँ। अपने कमरे में पड़ी-पड़ी वह यही सोच रही थी। घर में बुढ़िया बीमार थी, और सभी इतस्ततः पड़े थे। किसी को किसी की ख़बर न थी। रमेश चुपचाप घर में घुसकर अपने कमरे में चला आया। मालती के कमरे की रोशनी से उसके कमरे में आलोक आ रहा था। वह कपड़े उतार कर बिछौने पर जा ही रहा था कि मालती हाथ में लालटेन लिए वहाँ आ उपस्थित हुई। उसने देखा, रमेश का चेहरा भभरा हुआ रक्त-वर्ण है, और आँखें चढ़ी हुई। मालती की नसें ढीली पड़ गईं। उसने चिंतित होकर पूछा—"इतनी रात तक कहाँ रहे रमेश ?" रमेश ने कुछ संकुचित होकर कहा—"कहीं नहीं, यों ही ज़रा टहलने चला गया था।" मालती को रमेश का संकोच आज अधिक दुःखदायक मालूम पड़ा, जैसे वह मसल उठी हो। "कैसी तबियत है !" पूछते हुए उसने रमेश का हाथ पकड़ लिया, "अरे तुम्हें तो ज्वर है !" उसने घबड़ाकर कहा। उसका जैसे माथा घूम पड़ा। हाथ की लालटेन ज़मीन पर रख दी। रमेश ने बिस्तरे पर बैठते हुए कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ज्वर नहीं। बाग़ में लेट गया था, वहीं कुछ सर्दी लग गई, कोई हर्ज नहीं। तुम अभी तक सोई नहीं!"

रमेश का प्रश्न मालती के कान वेध गया। वह चुप थी, पर खड़ी न रह सकी। रमेश के पास ही बैठती हुई पूछ पड़ी—"अब भी जाड़ा मालूम पड़ता है?"

रमेश ने करवट बदलते हुए कहा—"नहीं, अब तो तबियत ठीक है। तुम जाओ, सो रहो।" वह कुछ उत्तर न दे, चुपचाप वहीं बैठी रह गई। न-जाने क्यों उसका हृदय बैठने-सा लगा। आँखों में बुल्ले उतरा आए, वहीं वह बिछौने के एक कोने पर बैठ गई थी: उससे मानों उठा ही न जाता था। रमेश सब जानता हुआ भी दूसरी तरफ़ मुँह किए जैसे सिकुड़ा जा रहा था। आज उसे अपना घर, मा की स्मृति, स्त्री का वियोग, डाक्टर का स्नेह और बाग़ का स्वप्न, सभी जाग्रत् होकर जैसे घेर रहे थे। वह सोच रहा था, यहाँ मैं क्यों ठहरा? मैं अब यदि न रहूँगा, तो कदाचित् मालती को कष्ट होगा। उसकी आसक्ति निराधार है। इन्हीं सब विचारों में पड़कर वह यांत्रिक कष्ट पाने लगा। रमेश बिलकुल शिथिल पड़ रहा था। ज्वर का वेग शरीर में कंप देकर और अधिक त्रस्त कर रहा था। रात यों ही बीत गई। फिर प्रभात हुआ। उषा की सलज्ज शय्या छोड़ सूर्य अँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे उठने लगा। इसे कितने लोग देख रहे थे! बाहर बरामदे में बुढ़िया तथा दो-एक लड़के बैठे थे। आज अभी तक मालती सोती है! यहाँ नहीं आई। उसका पालतू तोता उसके लिये व्याकुल होने लगा। वह मालती-मालती कई बार पुकार उठा। समीप बैठी बुढ़िया झल्ला उठी; अपने पास बैठी लड़की से बोली—"अरे, इसका पिंजड़ा नीचे उठाकर फेंक दे।" तोता राम-राम कहने लगा। मालती उठकर बाहर आने लगी। उसे मालूम हुआ कि रमेश जग रहा है। पर वह कुछ बोली नहीं। बाहर निकल आई। बुढ़िया जैसे जल उठी हो, उसने अपना मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया। मालती को मालूम हुआ, जैसे वह किसी नए संग्राम की योजना किया चाहती है। वह डर गई। इतने में रमेश बाहर निकला। मालती रमेश को देखकर जैसे गड़ गई। रमेश ने उसे देखते हुए कहा—"आज मैं घर जाऊँगा? और अभी जाऊँगा। मालती तुम नाराज़ न होना, मैं तुम्हारे यहाँ बड़े आनंद से रहा, पर आज घर की याद आ रही है, इसी से जाता हूँ।' मालती सूखे काठ की तरह खड़ी सुन रही थी। रमेश अपनी कोठरी में जाकर दो-एक आवश्यक चीज़ें निकाल लाया, और मालती से कहने लगा—"अच्छा, जाता हूँ, तुम मेरे अपराधों को क्षमा करना। यदि जीवित रहा, और इधर ईश्वर ले आएगा, तो अवश्य तुम्हारे दर्शन करूँगा।" बुढ़िया ने गर्विता की भाँति दृष्टि फेरकर एक बार रमेश और मालती को देखा। रमेश सीढ़ियों से नीचे की ओर उतरने लगा, तब मालती की जैसे तंद्रा टूटी। उसने आगे बढ़कर नीचे रमेश का हाथ पकड़ लिया, और कहा—"तुम न जाओ; नहीं तो शायद मैं जी न सकूँगी।" मालती का गला भर आया। रमेश ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"नहीं, आज तुम्हें छोड़ना होगा। मैं फिर कभी आऊँगा। आज नहीं।" कहकर रमेश आगे बढ़ा। मालती यह आघात न सह सकी। वह वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ी। रमेश ने इसे न देखकर बाहर निकलने के लिये दरवाज़ा खोला देखा—सामने सड़क पर कुछ लड़के एक पागल बुढ़िया को तंग करने के लिये बृहत् कोलाहल का आयोजन कर रहे हैं। वह क्षण-भर वहीं स्तब्ध खड़ा रह गया*।

वाचस्पति पाठक

कसक-कहानी

१

इस दुख में पाओगी सुख की धुँधली एक निशानी—
आहों के जलते शोलों में तुम्हें मिलेगा पानी
रो-रो देते मूर्ख यहाँ पर, हँस-हँस देते ज्ञानी
अरी दिवानी! सोच-समझकर सुनना कसक-कहानी

यहाँ कल्पना का संसार—
'छाया' है जिसका आधार।
मनसिज, मलय, मधुप, मधुमास,
कमल, कुंज, उल्लास, विकास,
नवल उमंगों का उपहार,
जीवन की सुषमा का सार—

यह बह गया पलक में बन अपलक नयनों का पानी
स्मृति ही शेष रह गई विस्मृति की अब एक निशानी
माया के फंदे में पड़कर नाच रहा था ज्ञानी
अरी दिवानी! बस, इतनी-सी मेरी कसक-कहानी

* अप्रकाशित 'वीथिका' से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

मानस की प्रमुदित लहरें थीं, थी प्रातः की बेला ;
खेल रहा था मचल-मचलकर पागल हृदय अकेला।
वहाँ हलाहल था, हाला थी, था प्यालों का मेला,
जीवन का मतवालापन था, जन-रव का था रेला।

मुसकाता था अरुण प्रभात,
और हँस रहा था जल-जात।
किंतु लोप हो गया विलास,
रुदन बन गया सहसा हास ;
घिर आई अँधियाली रात,
उमड़ पड़े लो सागर सात !

'थी प्रातः की अरुण उषा में अंधकार की रेखा।'
काल-चक्र के महाप्रलय में, बस, इतना ही देखा !
नत-मस्तक सगर्व चलते थे, झुकते थे अभिमानी।
अरी दिवानी ! विश्व-व्याप्त है मेरी कसक-कहानी।

३

कुछ रोते थे, जग सपना है, अपनापन ही छल है ;
कुछ हँसते थे, जीवन सुख है, दुख ही भ्रांति प्रबल है।
काल-चक्र है सबल, और यह विकल हृदय चंचल है—
इन दोनों में भ्रमता रहता यह ममत्व पागल है।

कभी उमंग कभी निःश्वास,
संशय कभी, कभी विश्वास ;
आज पुण्य है, कल है पाप—
भ्रम ही है भ्रम का अभिशाप !
एक दूसरे का है त्रास,
उनका रुदन, हमारा हास।

जो न शांत हो सके, हृदय की यह कैसी हलचल है ?
कुछ थोड़े-से क्षण, जीवन की अवधि आज है, कल है।
किंतु यहाँ उठता ही रहता प्रतिपल आगी-पानी।
अरी दिवानी ! एक पहेली है यह कसक-कहानी !

४

यहाँ प्रकृति है पाप, पुण्य आत्मा का पूर्ण दमन है ;
स्वेच्छा है भ्रम-पाश, यहाँ पर मुक्ति नियम-बंधन है,
यहाँ पूज्य अज्ञात, उपेक्षित तर्क तथा दर्शन है ;
अंधकार ही अंधकार यह छोटा-सा जीवन है !

जो अनुकूल, वही प्रतिकूल—
उनका फूल हमारा शूल।
अरे व्यर्थ है सकल प्रयास—
जो कुछ है, वह है विश्वास।
व्यर्थ भावना, यह निर्मूल,
संशय है जीवन की भूल।

यहाँ रंग है व्यंग्य, साधना शुष्क यहाँ पावन है ;
अपनों ही के लिये यहाँ पर दूषित अपनापन है !
यहाँ अंधविश्वास धर्म की सुंदर एक निशानी ;
अरी दिवानी ! एक व्यंग्य है मेरी कसक-कहानी।

५

यहाँ मिलेगी आग, यहीं पर तुम्हें मिलेगा पानी।
अरे, मिलेगी स्वर्ग-नरक की तुमको यहीं निशानी।
इतना रखना याद, यदपि है बीती बात पुरानी—
'बह जाते हैं मूर्ख, यहाँ पर रह जाते हैं ज्ञानी।'

अरुण अधर का सुमधुर हास—
नवयौवन का विकृत विलास,
एक व्यंग्य था व्यंग्य अजान !
था पतंग का स्वप्न महान।
यहाँ अंत आशा का ह्रास—
दुख का उजड़ा हुआ प्रवास।

यहाँ सदा नीचे-ही-नीचे, रुकना अरी दिवानी !
बच न सका इस कोलाहल में कोई भी अभिमानी।
अपनी-अपनी सब कहते हैं, सुनता कौन बिरानी ;
अरी दिवानी ! सोच-समझकर सुनना कसक-कहानी !

भगवतीचरण वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-महापुरुष

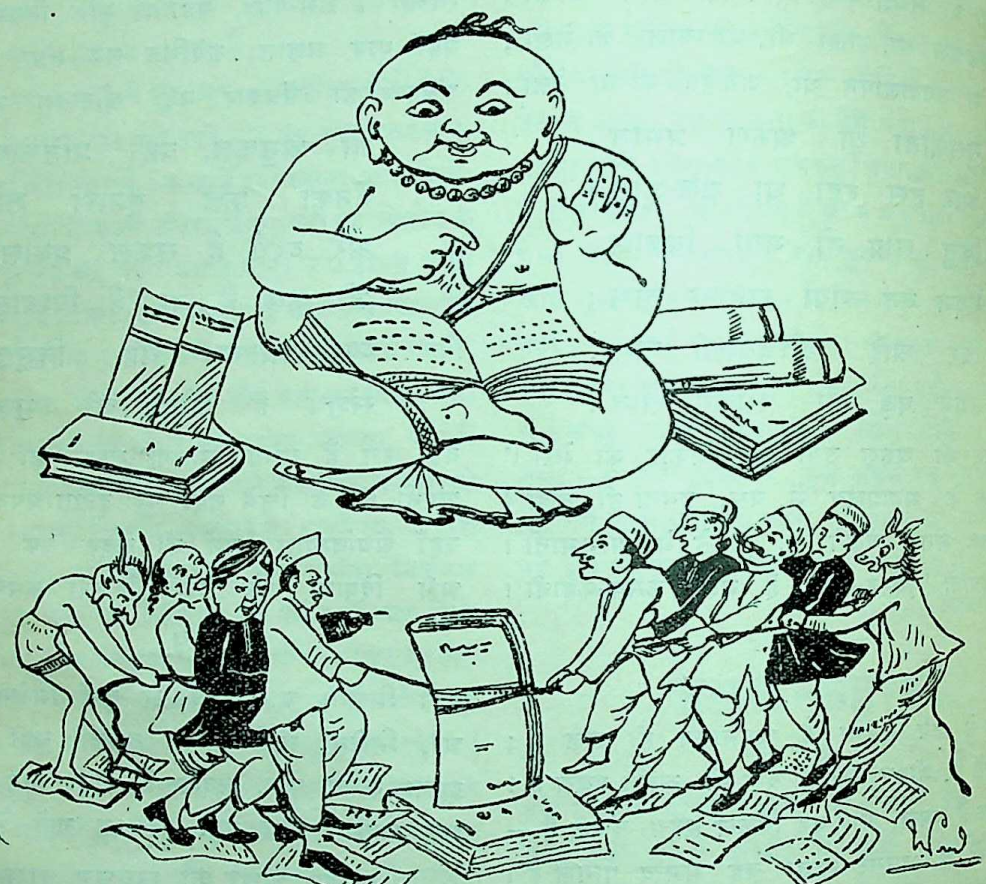

(प्रकट) ख़ूब ज़ोर लगाए जाओ। दोनों का पक्ष ठीक है।
(स्वगत) कैसा लड़ा रहा हूँ। बड़ा मज़ा आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय श्रम-समस्या

(२)

वस्तुतः सैद्धांतिक दृष्टि से १८ प्रतिशतक कम उत्पत्ति होती है। श्रीरजनीकांत दास ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है—यह हमारे ध्यान देने योग्य बात है। जैसा कि श्रीटॉमसन एनूसकफ ओ० बी० सी०, जो भारत और सीलोन के व्यापारिक कमिश्नर थे, कहते हैं—"मुझे बताया गया है कि ८०० तकुओं के जोड़े पर काम करने के लिये जहाँ कानपुर में ९ आदमियों की ज़रूरत होती है, वहाँ लंकाशायर में तीन ही पर्याप्त हैं। लंकाशायर का बुननेवाला चार करघों पर बुन सकता है, और एक बालक की सहायता से ६ करघों को चला सकता है; भारत में ५० प्रतिशत केवल एक करघा चला सकते हैं, और ऐसा भी कोई बुननेवाला है, जो दो से अधिक करघों को एक साथ चला सके, यह नहीं बताया गया।" यह हाल की जाँच है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय व्यवसायों की उन्नति के लिये किस क़दर शिक्षित, चतुर, कुशल तथा कार्यक्षम श्रमियों की ज़रूरत है। वर्तमान क़ानून—जो हमारी रचना नहीं है, और जिन्हें विदेशी गवर्नमेंट ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये बनाया था—का ध्येय व्यावसायिक श्रमियों की एक श्रेणी पैदा करना नहीं था। पर व्यवसायों की उन्नति के लिये व्यावसायिक श्रमियों और शिल्पियों की आवश्यकता है। ये पूँजी से भी ज़्यादा ज़रूरी है। प्रारंभ में यह कहना उचित होगा कि यहाँ पर कारख़ाना-विधान की सृष्टि ब्रिटिश-पूँजीपतियों के आंदोलन के फल-स्वरूप हुई है। इस आंदोलन का मूल-कारण मानव-हितचिंतना या उदार भावना नहीं थी, पर स्वार्थ था। भारतीय कारख़ानों के सामने, श्रम के बहुत सस्ते होने के कारण, ब्रिटिश व्यवसायपति प्रतियोगिता में टिक नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने यहाँ भी कारख़ाना-विधान बनाने के लिये ज़ोर दिया। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर यह बिल आपके सामने आज गवर्नमेंट पेश कर रही है।

ब्रिटिश-गवर्नमेंट के द्वारा बनाए गए वर्तमान कारख़ाना-विधान को समझने के लिये उसका इतिहास जानना अनावश्यक न होगा।

१८७२ और ७५ में बैठनेवाले कमीशनों में दो मेंबरों की राय थी कि मशीनरी का अवरोध पूर्णतः हो। ८ वर्ष से कम उमर के बच्चे काम न करने पावें, ८ से १४ तक के बालकों के लिये काम के घंटे ८ हों, तरुणों के लिये श्रम के १२ घंटे हों, जिसमें एक घंटा आराम का हो, साप्ताहिक एक छुट्टी हो, पानी का पर्याप्त प्रबंध हो। पर कमीशन ने बहुमत से निर्णय किया कि अभी इस संबंध में क़ानून बनाने की ज़रूरत नहीं है। किंतु माननीय मेंबर श्री एस० एस० बंगाली महोदय ने क़ानून बनाने के उद्योग से मुँह न मोड़ा। १८८१ में मदरास, बंबई के मिल-मालिकों की सभा और इंपीरियल व्यवस्थापक सभा ने कारख़ाना-विधान सर्वप्रथम पास किया, जिसके अनुसार ७ से १२ साल तक के बालकों के श्रम के ९ घंटे ठहराए गए, मास में ४ छुट्टियाँ दी गईं। कारख़ाने की परिभाषा यह की गई है कि वहाँ १०० आदमी काम करते हों और बिजली का प्रयोग होता हो। चा, काफ़ी और नील के कारख़ाने इससे सर्वथा बरी कर दिए गए। तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन भी इसको बना करके पछताए। १८९१ में फिर क़ानून बनाया गया, जिसके अनुसार जहाँ ५० श्रमी काम करते हों और जहाँ बिजली का प्रयोग होता हो, वह भी कारख़ाना माना गया। कार्य के बीच में विश्राम और साप्ताहिक छुट्टी दी गई। स्त्रियों के घंटे ११ ठहराए गए। बालकों और स्त्रियों का रात में काम निषिद्ध ठहराया गया। पर अवस्था बड़ी शीघ्रता से बदलने लगी। १८९२ में जहाँ कारख़ाने ६५६ थे और काम करने वाले ३,१६,८१६ श्रमी, वहाँ १९१० में इतनी वृद्धि हुई कि आश्चर्य होता है। २,३५९ कारख़ाने हो गए, और ७,९२,५११ काम करनेवाले श्रमी हो गए। १९०७ में एक कमीशन फिर बैठाया गया। दि स्मिथ-कमेटी द्वारा बताए गए प्रश्न इसके सामने विचारार्थ उपस्थित किए गए। १९०८ में इसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कमेटी की सम्मति थी कि "साधारणतः यदि श्रम के वर्तमान निश्चित घंटों पर अड़ा जायगा, तो श्रमियों की शारीरिक क्षति होगी।" इस सम्मति के होते हुए

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बहुसम्मति ने यह लिखना उचित समझा कि प्रत्यक्ष रूप से घंटों की सीमा निश्चित करना बेजा है। पर डॉ० नायर ने अपनी अलग सम्मति देते हुए इसकी निस्सारता को सिद्ध कर दिया, और तत्कालीन गवर्नमेंट ने उनके बताए निर्देशों के अनुसार, १९११ में, एक नया कारख़ाना-विधान बनाया। १९१० से १९१९ के बीच में कारख़ानों की बड़ी शीघ्रता से होनेवाली वृद्धि रुकी नहीं, बढ़ती ही गई। कारख़ाने जहाँ २,३५९ से ३,६४० हो गए, वहाँ श्रमियों की संख्या प्रतिदिन की ७,९२,५११ से बढ़कर ११,७१,५१३ हो गई। योरपियन महायुद्ध भारतीय व्यवसायों की वृद्धि का महान् कारण हुआ। १९१४-१९१९ के बीच में २५ प्रतिशत श्रमी बढ़े हैं। इस कारण १९२२ में इस विधान का संशोधन किया गया, जिसके अनुसार (१) कारख़ाने की परिभाषा यह की गई कि २० श्रमी जहाँ काम करें और पावर का प्रयोग हो। पहले ५० आदमी थे। स्थानीय सरकार को अधिकार दिया गया कि उसको भी वह कारख़ानों में गिन सकती है, जहाँ १० ही आदमी काम करते हों और चाहे शक्ति भी प्रयुक्त न होती हो। बिजली उत्पन्न करने, स्टेशन-परिवर्तन तथा यंत्रों के विषय में किए गए अपवाद हटा दिए गए। (२) श्रमी बालकों की उमर कम-से-कम १२ और अधिक-से-अधिक १५ ठहराई गई। (३) श्रमी पुरुषों के श्रम के साप्ताहिक घंटे ६० ठहराए गए, और ११ घंटे से अधिक किसी दिन काम कराना निषिद्ध ठहराया गया। १९२६ में भी कुछ हेर-फेर किया गया। पर वर्तमान क़ानून देश की इस आवश्यकता को उत्पन्न नहीं कर रहा है कि देश में व्यावसायिक और शिल्पी श्रमियों की एक श्रेणी ऐसी पैदा हो, जिसका व्यवसाय यही हो, जिसकी जीविका का साधन मज़दूरी या खेती न हो, पर कारख़ाने में काम करता हो। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर हमारी यह सम्मति है कि श्रमियों के लिये निवास-स्थान, शिक्षा और शिशुगृह की व्यवस्था आवश्यक रूप से की जानी चाहिए। श्रमियों के कार्य के घंटे कम किए जाने चाहिए। यह हम किन कारणों से चाहते हैं, इसको संक्षेप से यहाँ बताना ज़रूरी है।

श्रमियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिये यह ज़रूरी है कि जितनी उनकी सामर्थ्य हो, उतना ही उनसे काम लिया जाय। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी इस सचाई को जानता है। यदि सामर्थ्य से अधिक काम लिया जायगा, तो इसके परिणाम-स्वरूप श्रमियों के स्वास्थ्य का नाश होना अवश्यंभावी है। श्रीरजनीकांत दास के निम्न शब्द मिल-मालिकों को स्मरण रखना चाहिए—"परंतु यदि एक आदमी ५० वर्ष की उमर में होने के बजाय ४० वर्ष में ही व्यावसायिक दृष्टि से उत्पत्ति करने के अयोग्य हो जाय, तो इसका अर्थ यह है कि १० साल की जहाँ उसको हानि हुई है, वहाँ राष्ट्र को भी १० साल की क्षति हुई है।"

हमको यह न भूलना चाहिए कि ज़रूरियात पूरी होने के साथ-साथ जीवन व्यतीत करने का ढंग और रहन-सहन का तरीक़ा भी सम्मान-योग्य होना चाहिए। इसकी स्थापना हमें करनी है। इसके विरुद्ध कहा जा सकता है कि भारत की जल-वायु ऐसी है, जहाँ शीत-प्रधान देशों की अपेक्षा उसी काम के लिये अधिक घंटों की ज़रूरत है, श्रमी की कार्यक्षमता और व्यवसायों की व्यवस्था अन्य देशों की तुलना में घटिया होने से श्रम के घंटों को कम करने की आवश्यकता नहीं। भारत का व्यवसाय शैशवावस्था में है, लोगों की दरिद्रता देश को शीघ्र व्यावसायिक बनाने के लिये कह रही है—घंटे इतने कम न होने चाहिए कि व्यवसाय का बचपन में ही गला घुट जाय। इँगलैंड, जर्मनी, जापान-सरीखे देशों से मुक़ाबला है। इन सबका उत्तर यही है कि प्रतियोगी-संरक्षण-कर लगाए जायँ। इसी लिये गवर्नमेंट लटकर कमीशन बिठाने का प्रस्ताव इस अधिवेशन में उपस्थित करनेवाली है। मिल-मालिकों से मैं निवेदन करूँगा कि इस बात का सदा ख़याल रखें कि श्रमियों की मानसिक और शारीरिक स्थिति इस प्रकार की बनानी चाहिए कि वे देर तक आर्थिक उत्पत्ति में सहायक हो सकें। हमें यह भी न भूलना चाहिए कि मनुष्य का जन्म केवल उत्पत्ति करने के लिये हुआ है, उसका उपभोग करने के लिये नहीं। उसको भी अपने नागरिकता के कर्तव्यों का पालन करने के लिये, सामाजिक विशेषाधिकारों का उपभोग करने के लिये अवसर मिलना चाहिए। सामाजिक उन्नति का आधार उस जनता पर है, जो संस्कृति के आदर्शों को हृदयंगम करती हो। मनुष्यता की दृष्टि से विचार करते हुए हमें यह स्वीकार करना होगा, पर वस्तुतः क्या कम घंटे कार्य करने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्ति में बाधा आएगी ? यह की गई परीक्षाओं से नहीं सिद्ध होता। Psychology of Industry के लेखक ने, ७३ से ८० पृष्ठ में, विचार करते हुए लिखा है—"प्रतिदिन कुछ निश्चित काम के घंटों तक सबसे ज़्यादा उत्पत्ति होती है, और उत्तम कार्य होता है। वह उत्पत्ति और कार्य-शक्ति तथा कार्यक्षमता कम काम करने से या ज़्यादा काम करने से घट जाती है। बहुत कुछ काम का समुचित अनुपात व्यवस्था और आराम पर आश्रित है।"

अमेरिका से प्रकाशित होनेवाली 'Public Health Bulletin, 106' (१९२०) के पृष्ठ २६ पर लिखा है—"आठ घंटे कार्य का प्रत्यक्ष परिणाम स्थिर उत्पत्ति है। १० घंटे काम करने का प्रत्यक्ष परिणाम उत्पत्ति में ह्रास का होना है। ८ घंटे के कार्य करने की पद्धति में काम पूरी शक्ति से आरंभ होता है, और समाप्त शक्ति की समाप्ति पर होता है। व्यर्थ समय बहुत कम जाता है। १० घंटे कार्य करने की पद्धति में समाप्ति से पहले ही शक्ति नष्ट हो जाती है। समय बहुत व्यर्थ जाता है।"

भारत में भी इस विषय के परीक्षण हुए हैं। वे भी उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं। श्रीपारेख ने तुलनात्मक अध्ययन करके पता लगाया है कि कातने और बुनने के विभाग में १४ घंटे के हिसाब से काम कराया गया, याने कुल ४२ घंटे काम हुआ। परंतु वास्तविक कार्य २४ घंटे से ज़्यादा उन्होंने नहीं किया था, याने प्रत्येक ने ८ घंटे काम किया। Industrial Fatigue Research Board (१९१९) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि जब काम करने का समय प्रत्येक Shift का ८ घंटे के बजाय ६ घंटे कर दिया, तब उत्पत्ति ८·३% बढ़ी, और Shift में काम करनेवालों के श्रम के एक बार के घंटे ८ के बजाय ४ कर दिए, तब उत्पत्ति में ११·५ प्रतिशतक वृद्धि हुई। इसी रिपोर्ट के लेखक लिखते हैं कि कारख़ाने में यदि समुचित कार्य करने की परिस्थिति का और Ventilation का प्रबंध किया जाय, तो उत्पत्ति १२% और बढ़ सकती है। यही बात प्रबंध और मशीनरी की उत्तमता तथा कच्चे माल की उत्तमता के बारे में कही जा सकती है। डा० गवनिट्स ने एक तालिका दी है, जो सिद्ध करती है कि अधिक घंटे काम करने से हानि ही होती है—

	इँगलैंड	जर्मनी
श्रम के घंटे	९	१२ घंटे
वेतन	१६ शि० ३ पें०	११ शि० ८ पे०
उत्पत्ति प्रतिघंटे प्रतिश्रमी	७०६ गज़	४४६ गज़
प्रतिगज़ ख़र्च	·२७५ पें०	·३०३ पें०

अस्तु, वेतन की कमी और घंटों की अधिकता होने पर भी उत्पत्ति की मात्रा अधिक नहीं है। श्रीरजनीकांत दास के निम्न-शब्द मिल-मालिकों को ध्यान में रखने चाहिए—श्रम के घंटों की न्यूनता और उसके साथ साथ समुचित प्रबंध की व्यवस्था से कारख़ाने में काम करने वाले श्रमियों में से एक बहुत बड़ी संख्या को छुट्टी दी जा सकती है। ऊपर के प्रमाणों से आपने जान लिया होगा कि श्रम के घंटे कम करने से किसी प्रकार भी उत्पत्ति की मात्रा में अंतर न आएगा।

मिल-मालिकों की शिकायत है कि श्रमी काम से ग़ैरहाज़िर रहते हैं। श्री० पिले अनुपस्थितियों की संख्या प्रतिश्रमी प्रतिवर्ष इस प्रकार देते हैं—

काल १९०५-०६-०७

विभाग	मिल (अ)	मिल (ब)
कारडिंग	५५ दिन	४५ दिन
पोस्टल	६२ दिन	५१ दिन
बुनाई	७२ दिन	५० दिन

साधारणतः १०% प्रतिशत श्रमी काम से ग़ैर-हाज़िर रहते हैं। फ़सल के समय यह अनुपस्थत श्रमियों की संख्या ३० प्रतिशत बढ़ जाती है। छुट्टियाँ इसके अलावा हैं। प्रतिमहीने २ अनुपस्थिति प्रतिश्रमी साधारण बात है। साल में ३ से सात सप्ताह तक की छुट्टी लेता है। इसके साथ रविवार की छुट्टी और स्थानीय छुट्टियाँ लेता है। श्रमियों की अनुपस्थिति से उत्पत्ति की मात्रा में कितना अंतर होता होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। श्रीदेसाई का कहना है कि श्रमी मास में कठिनता से २१ दिन काम करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवाडिया ने प्रतिमास के हिसाब से अनुपस्थित श्रमियों की एक तालिका तैयार की है—

सन् १९०७	कार्य के दिन	प्रतिमास अनुपस्थिति के दिन	प्रतिदिन अनुपस्थित श्रमियों की संख्या	३,२०० श्रमियों पर प्रतिशतक अनुपस्थिति
जनवरी	२५	७,२७१	२९०	९·०६
फ़रवरी	२५	८,३५१	३३४	१०·४४
मार्च	२७	८,३८३	३१०	९·७९
एप्रिल	२५	७,११४	२८४	८·८७
मई	२७	९,५४६	३५३	११·०३
जून	२६	७,६८६	२९५	९·२२
जुलाई	२६	८,१९६	३१५	९·८४
अगस्त	२६	६,७८४	२६१	८·१६
सेप्टेंबर	२६	१२,०७५	४६४	१४·५
अक्टोबर	२७	१०,७९८	४००	१२·१९
नवंबर	२५	८,६०४	३३०	१०·३१

इस तालिका से स्पष्ट है कि अनुपस्थिति स्थिर रहती है। सितंबर में वह १४·५ तक हो जाती है। इस अनुपस्थिति का कारण जहाँ श्रम के घंटों की अधिकता है, वहाँ निवास-स्थानों की अस्वास्थ्यकरता भी मुख्य हेतु है। समय-समय पर गाँव में जाने से ये श्रमी लोग खोई शक्ति को प्राप्त करते और शक्ति को क़ायम रखते हैं। यदि ऐसा न करें, तो इनकी जीवनी-शक्ति बहुत शीघ्र क्षीण हो जाय। बच्चे स्त्रियों और पुरुषों की अपेक्षा ज़्यादा नियमित रूप से उपस्थित होते हैं, और स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा ज़्यादा नियमित रूप से। बंकिंग-हम-मिल और कर्नाटक-मिल की तालिकाएँ देखने से पता लगता है कि अनुपस्थितियों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। मिल-मालिक इसका अनुभव करते हैं। इसी कारण निवास-स्थानों की सुव्यवस्था की ओर में उन्होंने ध्यान दिया है। मिल-मालिक को बाध्य करना चाहिए या नहीं, यह प्रश्न निकट है। गवर्नमेंट न व्यावसायिक कमीशन की रिपोर्ट की इन पंक्तियों पर विचार किया है कि "भारतीय व्यवसायपति पश्चिमी प्रतियोगियों के मुक़ाबले में कम योग्य और समर्थ हैं—दोनों दृष्टियों से, संचित साधन के स्रोतों और आर्थिक सुविधा की दृष्टि से, यद्यपि उन्होंने युद्ध में बहुत रुपया कमाया है। चूँकि परंपरागत चतुर और कुशल श्रमियों का और इनके पूरक निरीक्षक श्रेणी का अभाव है, इस कारण यह व्यक्तियों से संबंध रखता है। बहुत-सी अवस्थाओं में क़ानून से उन्हें बाधित करना, उन पर अधिक बोझ डालना एवं अन्याय करना होगा।" कमेटी ने जिस भय के कारण सिफ़ारिश करने से इनकार किया है, उन कारणों को प्रस्तुत विधान दूर कर देगा। अतः अब मिल-मालिकों को बाधित करने में गवर्नमेंट कोई अन्याय न कर रही होगी, न अनुचित बोझ डाल रही होगी। The Bombay Development Committee और बिहार-सरकार की सिफ़ारिशें हैं कि मिल-मालिकों से यह लाभ मिलना चाहिए कि श्रमियों के लिये निवास-स्थान बनाएँ। निवास-स्थान बनाने से श्रमियों की न्यूनता दूर हो जायगी, परिवार के कारण श्रमी लोग शराब पीने से बरी रहेंगे, श्रमी के रहन-सहन का ढंग और जीवन का आदर्श ऊँचा होगा, सारा समय उसका कारख़ाने में ही व्यतीत होगा, राष्ट्रीय आय की वृद्धि की ओर हम प्रथम पग उठाएँगे। इन नवीन व्यावसायिक नगरों के कारण—जैसे जमशेदपुर में १,००,००० की बस्ती बसाई गई है—कार्य की उन्नति होगी। व्यावसायिक कमीशन यह सिफ़ारिश करने से पूर्व चाहता है कि मज़दूर उस मिल को छोड़कर अन्यत्र न चले जायँ। किंतु श्रमी स्वयं न चाहेंगे कि मिल-मालिकों के अधीन रहें। पर प्रस्तुत मिल इसे कर रही है। उपर्युक्त लाभों को ख़याल में रखकर ही श्रीपिल का कहना है कि राष्ट्रीय कार्यक्षमता श्रमियों के स्वास्थ्य की रक्षा चाहती है, ख़राब निवास-स्थान ह्रास की ओर ले जाते हैं, और केवल यही युक्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है कि उत्पत्ति में लगे हुए धन का एक भाग अब उत्पत्ति के मुख्य साधन—श्रमियों के स्वास्थ्य—को उन्नत करने के साधनों में लगाया जाय। इससे जान पड़ता है कि गवर्नमेंट ने आवश्यक समझा है कि मिल-मालिक श्रमियों के लिये निवास-स्थान बनाने के लिये बाध्य हों। इस संबंध में अपनी ओर से कुछ न कहकर बांबे-मिल-मालिकों की सभा के सभापति श्री जे० ए० के शब्दों को दुहराना पर्याप्त होगा—"यह देखकर मैं प्रसन्न हूँ कि हमारे बहुत-से सभ्य अब श्रमियों के कार्य करने तथा रहने की अवस्थाओं और परिस्थिति के सुधारने में क्रियात्मक तौर पर लगे हुए हैं। हमारे बहुत-से आर्थिक और व्यावसायिक कष्ट दूर हो जायँगे, यदि हम श्रमियों की अज्ञानता और प्रवास के अभ्यास को दूर कर दें। शिक्षा इस समस्या को आसानी के साथ हल कर देगी। इसके साथ-साथ हमको श्रमियों की सामाजिक स्थिति, उनके सुख-वर्द्धक उपायों की योजना से, उन्नत करनी चाहिए। हमने बहुत कुछ किया है, पर आपसे और ज़्यादा करने की अपील करता हूँ। मैं जानता हूँ कि समय का फल निराश जनक है। परंतु यदि हम अधिक उज्ज्वल परिस्थिति और और अधिक आकर्षक स्थिति से उनके जीवन के आदर्श को ऊँचा कर सकें, ताकि शराब पीने की आदत छोड़ दें, तो मानों इससे हमने बहुत कुछ पा लिया। जैसे-जैसे समय गुज़रता जाता है, वह अपनी कहानी आप कहेगा। मैं परामर्श देता हूँ कि जो इधर कुछ नहीं कर रहे, वे अपने लाभ का एक भाग श्रमियों की भलाई और स्थिति को उन्नत करने में लगावें।" तब क्या यह आशा करना अनुचित है कि मिल-मालिक अपने सभापति के शब्दों पर यथोचित ध्यान देंगे?

शिक्षा के बारे में कहना व्यर्थ होगा। मिल मालिक स्वयं इसकी आवश्यकता का अनुभव रखते हैं। इसलिये उन्होंने इसकी व्यवस्था की है, पर शिक्षा अनिवार्य न होने के कारण उनको सफलता नहीं मिल रही है। गवर्नमेंट इसको संगठित, सुव्यवस्थित और विस्तृत कर सकती है। स्वर्गीय श्रीगोखले ने प्रस्ताव किया था कि जिस कारख़ाने में कम-से-कम २० बच्चे काम कर रहे हों, उस कारख़ाने के मालिक को उनकी निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध करना आवश्यक होगा। साधारण शिक्षा के साथ-साथ शिल्प-शिक्षा कितनी आवश्यक है, यह मा० मालवीयजी द्वारा व्यावसायिक कमीशन की रिपोर्ट में मतभेद-सूचक नोट के ३२२ से ३२७ पृष्ठ तक पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा। यहाँ श्रीरसल और सेमुलसन के कुछ उद्धरणों को देना अप्रासंगिक न होगा।

योरप में भी व्यावसायिक शिक्षा का प्रारंभ १८५१ से हुआ है। लंदन की सार्वभौमिक प्रदर्शिनी (Universal Exhibition 1851) ने ही व्यावसायिक शिक्षा को उत्पन्न किया है। ब्रिटिश लोग व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को इससे पहले नहीं अनुभव कर पाए थे। अँगरेज़ लोग व्यावसायिक शिक्षा की महत्ता को जानें, इस प्रयत्न की सफलता के लिये श्रीजे० स्कॉटरसल ने, १८६९ में 'Systematic Technical Education for the English People'-नामक पुस्तक लिखी। साधारण और विशेष शिक्षा की आवश्यकता को दर्शाते हुए वह कहते हैं—"संसार के बाज़ार में वह राष्ट्र सर्वोपरि ऊँचा क़ीमत पाएगा, जो अपने निवासियों के लिये साधारण शिक्षा को फैलाने का अत्यधिक यत्न करेगा; और तदुपरांत उच्च शिक्षा और विशेष व्यवसाय की शिक्षा प्रत्येक को दे। दूसरे शब्दों में राष्ट्र के कार्य का मूल्य, व्यावसायिक शिक्षा की राष्ट्रीय पद्धति की उत्तमता की भिन्नता से आँका जायगा।" आगे चलकर वह कहते हैं—"आधी शताब्दी से ब्रिटिश लोग कुछ प्रतिभाशाली पुरुषों के आविष्कारों के फलों का उपभोग कर रहे हैं। जिन्होंने वर्तमान कारीगरी की पद्धति का निर्माण किया है, परमात्मा ने भी उन्हें शताब्दियों से भूगर्भ में कोयले और लोहे के रूप में संचित धन की एक बहुत बड़ी भारी राशि दी है, जो उपयोग के लिये, उड़ाने के लिये या इस कारीगरी की शताब्दी में काम में लाने के लिये तैयार पड़ी है। कुछ आदमियों की प्रतिभा ने कोयले और लोहे को कारीगरी में लगाया। ग्रेटब्रिटेन के नागरिकों ने समझा कि वे उन लोगों से, जिनके पास कोयला नहीं है—लोहा नहीं है, सभ्यता में और बुद्धि में किसी क़दर ज़्यादा ऊँचे हैं। इस स्वप्न से उन्हें जागे हुए अभी आधा शताब्दी नहीं गुज़रा, और उस समय से अंगरेज़, इंगलिश और इंगलिश कोयले के कामों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में सबसे ज़्यादा प्रसिद्धि प्राप्त की है, तथा संसार में सबसे ज़्यादा क़ीमत पाई है।

"१८ साल गुज़रे, जब सभ्य जातियों के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में प्रतिभा, बुद्धि और व्यावसायिक दक्षता की होड़ आरंभ हुई थी। १८५१ में लंदन में इसका पहला दृश्य दिखाया गया। यह सब राष्ट्रों की उत्पत्ति और व्यवसायों की सार्वभौम प्रदर्शिनी थी। उस महान् शिक्षणालय में योरप के सभ्य राष्ट्रों ने व्यावसायिक शिक्षा का प्रथम पाठ पढ़ा। वे यह जानने में समर्थ हुए कि किन-किन चीज़ों में इँगलैंड वंश परंपरागत श्रेष्ठता रखता है, और इँगलैंड यह जानने में समर्थ हुआ कि किस-किस चीज़ में अन्य राष्ट्र चातुर्य और विशेषता रखते हैं, जिनका उसमें अभाव है।"

१८६७ में चतुर्थ प्रदर्शिनी पेरिस में हुई। इसने राष्ट्रों को—विशेषतः इँगलैंड को—अंतिम पाठ पढ़ाया। श्रीरसल कहते हैं—उस प्रदर्शिनी द्वारा हम पूरी तरह जगाए गए और पूर्णतः भयभीत हो गए। हमने वहाँ जाना कि हम औरों के समान तो नहीं हो गए हैं; हाँ, हराए ज़रूर गए हैं—न केवल एक जगह पर, बल्कि जिन बातों के लिये हम गर्व करतेथे, उन सब जगह हम किसी-न-किसी से हराए गए हैं।...इँगलैंड को विश्वास हो गया कि हम जागृति के युग में सोते रहे, सुदक्ष श्रमी अन्य देशों में १८५१-१८६७के बीच में शिक्षा देकर निपुण बनाए गए।

पेरिस की प्रदर्शिनी के जुरर श्रीमंडेला ने कमिशनरों के सामने बयान देते हुए कहा—"मेरी सम्मति में ब्रिटिश श्रमी, अन्य विदेशी श्रमियों की उच्च शिक्षा के कारण, जिसको उनकी गवर्नमेंट अपने कारीगरों में सावधानी और चिंता के साथ उन्नत कर रही है, धीरे-धीरे अपनी जाति को खोते जाते हैं।...जर्मनी की शिक्षा राष्ट्रीय संगठन का परिणाम है, जो प्रत्येक किसान को अपने बच्चे को स्कूल भेजने को बाध्य करती है। तदुपरांत जिस व्यावसाय को वह करना चाहता है, उस व्यवसाय के उपयुक्त व्यावसायिक और यांत्रिक शिक्षा की व्यवस्था करती है।... अगर हम व्यावसायिक प्रतियोगिता में अपनी स्थिति क़ायम रखना चाहते हैं, तो हमको उस राष्ट्रीय संगठन का, जो एक समान साधक गुणकारी और पूर्ण है, सामना करना चाहिए। यदि हम वर्तमान स्वेच्छा-पद्धति से लड़ाई जारी रक्खेंगे, तो हम पराजित होंगे। अगली पीढ़ियों में हम अज्ञानता, गंदगी, ग़रीबी और पाप से लड़ेंगे। पर मैं विश्वास करता हूँ कि अनिवार्य राष्ट्रीय शिक्षा की पद्धति से, व्यावसायिक और कलात्मक शिक्षा के साथ-साथ, इँगलैंड २० सालों में ही संसार में सर्वाधिक प्रतिभाशाली, बुद्धिमान् और आविष्कारक श्रमियों की श्रेणी को प्राप्त होगा।"

जिस प्रकार इँगलैंड के लिये व्यावसायिक शिक्षा की ज़रूरत है, उसी प्रकार भारत को भी है। इस विषय में अपनी ओर से कुछ न कहकर श्रीसेमुलसन के शब्द यहाँ उद्धृत करते हैं—"अंत में मैं अपना यह गंभीर विश्वास प्रकट करना चाहता हूँ कि भारतीय आशा करते हैं, और चाहते हैं कि गवर्नमेंट वैज्ञानिक पद्धति से व्यावसायिक और यांत्रिक शिक्षा की और संगठन की व्यवस्था करे। इसको एकदम शुरू कर देने की अत्यंत आवश्यकता है; क्योंकि अन्य राष्ट्रों ने आज से ६० साल पहले से इसे आरंभ कर रक्खा है, और उन्होंने शिक्षित व्यवसायी नवयुवकों की कई पीढ़ियाँ उत्पन्न कर दी हैं। हम कल से ही प्रारंभिक शिक्षा-प्राप्त १२ वर्ष से ऊपर के नवयुवकों की व्यावसायिक और यांत्रिक शिक्षा आरंभ करें। इन नवयुवकों के क्रियात्मक व्यावसायिक जीवन आरंभ करने में सात वर्ष लगेंगे, और ये अशिक्षित सर्वसाधारण जनता में बहुत ही अपर्याप्त संख्या में होंगे। इससे पहले कि वे बच्चे, जिन्होंने अभी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करना आरंभ नहीं किया है, ७ से २१ वर्ष की अवस्था को पहुँचें और सर्वथा पूर्ण शिक्षित पीढ़ी को उत्पन्न करें। वे अपने आधे से अधिक सहयोगियों को अपने से कम शिक्षित पाएँगे। राष्ट्रों की इस दौड़ में, जो ६० वर्ष खोए गए हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। कल से ही उपस्थित काम की ओर अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। आवश्यकता दो प्रकार की है। हमारे नवयुवकों में से एक बहुत छोटे हिस्से ने प्रारंभिक शिक्षा तो प्राप्त की है, पर उन्होंने व्यावसायिक शिक्षा नहीं पाई। उस हिस्से के लिये, प्रत्येक छोटे शहर में, व्यावसायिक स्कूल, प्रत्येक बड़े शहर में व्यावसायिक कालेज और प्रत्येक प्रांत की राजधानी में व्यावसायिक विश्वविद्यालय की स्थापना कर देनी चाहिए। और उठती हुई पीढ़ी के लिये, जिसने अभी प्रारंभिक शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं प्राप्त किया है, एकदम अनिवार्य—यदि आवश्यकता हो तो बाधित की भी—शिक्षा की व्यवस्था आरंभ कर देनी चाहिए।"

भारत में व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता को बतलाने के लिये ये शब्द पर्याप्त हैं।

शिशुगृह की व्यवस्था मिल-मालिक स्वयं कर रहे हैं। गवर्नमेंट को केवल इसको क़ानूनी रूप देना बाक़ी है। माताएँ बच्चों को अफ़ीम खिलाकर जिस प्रकार राष्ट्र की शक्ति का नाश करती हैं, उसको यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं। कारख़ाने में रहने से बच्चे के स्वास्थ्य पर हानिकारक और ख़तरनाक प्रभाव होंगे। और, बाहर बच्चों के रहने से, यदि दाइयाँ न हों तो, मातृस्नेह बच्चों की चिंता की प्रेरणा करता है, अतः कार्य में बाधा पहुँचती है। इसलिये कारख़ानों के मालिकों द्वारा प्रचलित व्यवस्था को गवर्नमेंट क़ानून का जामा पहनाकर अपने कर्तव्य का पालन करेगी, इससे ज़्यादा नहीं।

हम पूँजीपतियों और मिल-मालिकों तथा व्यवसायपतियों से कहना चाहते हैं कि इन सुधारों का विरोध करने से पूर्व श्रीपिल्ले के इन भावपूर्ण शब्दों का ख़याल कर लें—क्या यह उचित से अधिक आशा करना होगा कि अगर उन्नति की प्रगति यही बनी रहे और भारतवर्ष की व्यावसायिक उन्नति, कम-से कम एक दिशा की ओर, पश्चिम की अपेक्षा ज़्यादा मंगलमय, सुखद और स्वास्थ्यकर मार्ग की ओर अग्रसर हो? व्यावसायिक क्रांति के युग का परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य की शक्ति पर मशीनरी को पूर्ण किया गया है, ताकि उत्पत्ति की मात्रा बढ़े—इसलिये नहीं कि राष्ट्रीय श्री और संपत्ति की अभिवृद्धि हो, पर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये। इसका परिणाम यह हुआ कि ग़रीबी बढ़ी, गंदगी जमा हो गई और श्रम और पूँजी में लाग-डाँट और जानी दुश्मनी उत्पन्न हो गई है। सामाजिक कल्याण की वर्तमान-कालिक योजना, इस अशांति को शांत करने के लिये और उत्पत्ति के मुख्य दो साधनों के बीच के बढ़ते फटाव को पाटने के लिये, आवश्यक है। भारतवर्ष व्यावसायिक क्षेत्र में पीछे उतरा है, अतः उसको एक विशेष लाभ प्राप्त हुआ है। उसे अन्य देशों के व्यावसायिक कार्यों और मार्गों के अवलोकन करने का मौक़ा मिला है, और अपने अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर भी। अगर केवल भारतीय व्यवसाय के नेता लोग ही इस प्राप्त शिक्षा को भली भाँति अमल में लावें, तो यह विश्वास-पूर्वक आशा की जा सकती है कि भारत पश्चिम की व्यावसायिक उग्रता के ख़तरों से बचाया जा सकता है। और, यह समुचित निवास-स्थान की व्यवस्था से, न्याययुक्त वेतन देने से, श्रम के घंटों की युक्तियुक्त व्यवस्था करने से, और स्वास्थ्यकर तथा मनोविनोद की सामग्री जुटाने से किया जा सकता है। भारतीय श्रमी उस समय कारख़ाने में काम करना अपने लिये अपमानजनक न समझेगा, न अपने कार्य को पिसौनी समझेगा, प्रत्युत इसको अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन का और सामाजिक सम्मान का एक साधन समझेगा। पुनः मिल-मालिक उसके ख़ून पर जीनेवाला वैंपायर-नामक कीड़ा न होगा, पर भाई और सहयोगी होगा; समाज की सेवा में दोनों एक समान लगे होंगे।" इस उज्ज्वल भविष्य को उपस्थित करना पूँजीपतियों के अधीन है। हमें पूरा विश्वास है कि मिल-मालिक इस बात को हृदयंगम करेंगे।

अंतर-राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत ज़्यादा डावाँडोल है। वर्सिलीज़ की संधि ने अंतर-राष्ट्रीय मज़दूर-संघ के सामने संसार के श्रमियों की स्थिति उच्च और अंतर-राष्ट्रीय बना दी है। भारत में भी The Trade Union का आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा है। ट्रेड-यूनियन का विस्तार बड़ी शीघ्रता से हो रहा है। संसार के श्रमियों की एक माँग है—ज़्यादा आराम, ज़्यादा सुविधाएँ, मानसिक और शारीरिक उन्नति के अधिक साधन, बच्चों की रक्षा, चिकित्सकों का प्रबंध, स्त्रियों की रक्षा, स्वास्थ्यकर घर, शिशुगृह आदि-आदि। इसमें सारे संसार के श्रमी एक हैं। गवर्नमेंट और व्यवसायपति इनकी माँग को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। इसी प्रकार व्यवसाय में तीव्र प्रतियोगिता है। वस्त्र-व्यवसाय विकट परिस्थिति से गुज़र रहा है। गवर्नमेंट के पास सहायता के लिये आवेदनपत्रों-पर-आवेदनपत्र आ रहे हैं। यह अंक वस्तुतः मन में भय उपजानेवाले हैं। सन् १९२६ ई० के पहले पाँच महीनों में यहाँ बंबाई से जहाँ ८,००० पौंड माल आया था, वहाँ इस साल के उन्हीं पाँच महीनों में २१,००,००० पौंड आया! आमदनी कपड़े की आमदनी भी इसी प्रकार बढ़ रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान से सन् १९२५ ई० के पहले पाँच महीनों में यहाँ ७,६०,००,००० गज़ कपड़ा आया था; १९२६ के इन्हीं महीनों में ९,८०,००,००० गज़ आया, और इस साल के पहले पाँच महीनों में १३,१०,००,००० गज़ आया। अनुमान किया जाता है कि इस साल ३० करोड़ गज़ से कम कपड़ा न आएगा। इस अवस्था में श्रमियों की माँगों को सोलहो आने मानने का अर्थ था कि व्यवसाय चौपट हो जाय। उत्पत्ति के दोनों मुख्य अवयवों को कुछ-न-कुछ बोझ उठाना चाहिए। हमें विश्वास है, अब भारत के जाग्रत् श्रमी लोग और उनके नेता राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर अपनी माँगों को और ज़्यादा न बढ़ाएँगे। राष्ट्र को दोनों के सद्भाव और सहयोग की ज़रूरत है। जर्मनी का व्यापारिक माल भी युद्ध के समय से ज़्यादा आ रहा है। जहाँ १९१३-१४ में १३ प्रतिशत था, वहाँ अब ३६ प्रतिशत व्यापारिक माल आ रहा है। अमेरिका, इँगलैंड और जापान पुराने योद्धा हैं। भारतीय व्यवसाय अभी शैशवावस्था में है; उसको अभी बहुत ज़्यादा संरक्षण की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि इस अवस्था में, जब हमारे ऊपर एक विदेशी गवर्नमेंट शासन कर रही है, भारत के श्रमी जापान और जर्मनी के श्रमियों का अनुकरण ही नहीं, प्रत्युत राष्ट्र-हित के लिये—राष्ट्र की गौरव-वृद्धि के लिये—अपने हितों का बलिदान करने में उनसे भी आगे बढ़ जायँगे। विश्व-बंधुत्व और सार्वभौमिक श्रमी-संघ के उदात्त कल्पना-जाल में न फँसेंगे। उनके सामने सदा ब्रिटेन के श्रमी-दल का उदाहरण रहना चाहिए, जो उसने साइमन-कमीशन की नियुक्ति के समय रुख़ धारण किया है। इससे उन्हें समझ लेना चाहिए कि अभी सार्वभौम श्रमी-संघ का अस्तित्व केवल कल्पना में है। आर्थिक स्वतंत्रता का प्रवेश-द्वार व्यवसायों की उन्नति है। ज्यों-ज्यों व्यवसाय उन्नत होंगे, त्यों-त्यों श्रमियों की अवस्था उन्नत होगी। यह बात भारतीय श्रमी-समाज को सदा ध्यान में रखनी चाहिए।

दूसरी ओर व्यवसायपतियों, मिल-मालिकों और पूँजीपतियों को समझ लेना चाहिए कि भारतीय श्रमी दल अकेला, असहाय और निर्बल नहीं है। उसकी पीठ पर भारत की शिक्षित जनता ही नहीं, प्रत्युत संसार के श्रमी-समाज की क्रियात्मक सहानुभूति उसके साथ है। इस कारण उनसे युद्ध ठानने, उन्हें असंतुष्ट करने, उनको अक्षम बनाए रखने से जहाँ स्वयं उनकी हानि है, वहाँ साथ ही भारतीय आर्थिक स्वतंत्रता भी पीछे पड़ जाती है। श्रमी जितने स्वस्थ, बलिष्ठ, चतुर और कार्यक्षम होंगे, उतने ही व्यवसाय फले-फूलेंगे—यह बात पूँजीपतियों को सदा ध्यान में रखनी चाहिए। भारत को श्रम और पूँजी के अत्यधिक सहयोग की इस समय ज़रूरत है। जो पक्ष अपना हाथ खींचेगा, वह भारत-राष्ट्र पर छुरी चला रहा होगा—यह समझ लेना चाहिए।

अवनींद्रकुमार

वीर-वक्ष

(१)

गंडक-सी भीषण दधीचि-अस्थि-ग्रंथित-सी,
दिग्गज के कुंभ-सी कि कच्छप कराल-सी;
चुंबक-सी चंड तंड-भूमि अस्त्र-शस्त्रन की,
दंभिन की थंभिनी कि ब्रह्म-शक्ति-जाल-सी।
सुकवि 'उमेश' विज्जु-पुंज को पटल कैधौं,
खेड़ी-सी कि बज्र-सी विरोधिन को काल-सी;
संगर सनद्ध वीर वच्छस शिला ए तेरी,
साहिन को साल-सी असाहिन को ढाल-सी।

(२)

म्लेच्छन के मुंडन की मींजति मसक मानि,
मेरु-सी महान महि-मंडल की मंडिनी;
सुकवि 'उमेश' ज्वालमाल-सी कुचालिन को,
कुटिल कुचक्रिन कुदंडिन की दंडिनी।
जोड़न के जुत्थन को जमजातना-सी जुटी,
खल की खरादिनी खबीसनि की खंडिनी;
चक्र सी प्रचंड तेरी हीरक-सी छाती वीर,
विपुल विपच्छिन के विंध की विहंडिनी।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Panjab Digital Library, Chandigarh

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

नेह बिन दीप सों दिवाकर बुझैहै, अरु
प्रलय-पयोद मैं नछत्र लै बिलैहै चंद ;
उछरि नदीसानल छैहै गगनांचल मैं,
सूखिकै हिमांचल अखंडल हू ह्वैहै कंद।
सत्ता बिन पत्ता-सी न भूमि रहि पैहै थिर,
पवन प्रचंड हू बिलुंज ह्वैकै वैहै मंद ;
फटकि फनिंद के फनाली फेन ऐहै, तेरे,
बच्छस तनत्र को तरकि जदि जैहै बंद।

(४)

वृंद-वृंद वैरिन के कुंडन के तोरिबे को,
मुडन मरोरिबे को फाटक-पखान-सी ;
पापिन के पाटिबे को कठिन कपाटवारी,
दुष्टन के डाटिबे को मृत्यु के बिधान-सी।
वीरन को सान यही धीरन की आन यही,
जुद्ध-सिंधु-मंथन को मंदर महान-सी ;
धरम-धुरीनन को दीनन अधीनन को,
अजनि के नंद तेरी छाती ए बितान-सी।

(५)

नवल किसोरिन के कंचुकी के बंदनि मैं,
हाय-हाय बच्छस बिसाल क्यों अरूझै रे ;
सबल समथ्थन के हेरि क्रूर कांडन को,
निबल निहथ्थन की बात क्यों न बूझै रे।
देखि कै उपद्रव महान आततायिन के,
कैसे तोहिं सौरभ-सिंगार-साज सूझै रे ;
ए रे सूरबीर क्यों न कूदि आज संगर मैं,
रौंदि रिपुमंडल को छाती खोलि जूझै रे।

"उमेश"

त्योहार-दर्पण

भूमिका

संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसको अपने जातीय तथा धार्मिक पर्वों और अपने देश, जाति, समाज के प्राचीन लोकाचारों में रुचि या मनोल्लास न हो, और जो उनसे अनभिज्ञ हैं, वे उनका आदि-कारण, आस्था और विवरण जानने के लिये व्यासंगेच्छु और उत्सुक न हों ? अधिकांश दशाओं में नवयुवक और शिशुओं को कौन कहे, बड़े-बड़े वयोवृद्ध तक यह नहीं जानते कि अमुक त्योहार की उत्पत्ति कैसे हुई, किस आदर्श कृति, धार्मिक या ऐतिहासिक घटना का वह स्मारक-स्वरूप है, उसके संबंध में कौन-सी कथाएँ हैं, तथा उसके उचित उद्यापन की रीति क्या है ? अतएव यही उद्देश्य समक्ष रखकर वर्ष-भर के त्योहारों और पर्वों का अत्यंत संक्षिप्त वर्णन काल-क्रम से किया जाता है।

सर्वसाधारण हिंदू-त्योहार

समस्त जातियों में प्राक्तन काल से त्योहारों की प्रथा पाई जाती है। किसी विशेष स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रदेशों एवं प्रांतों से लोक-समुदाय एकत्र होकर कुछ काल तक आमोद-प्रमोद में लिप्त और निरत रहता था, जिसके अभ्यंतर कोई-न-कोई धर्म-विधान अवश्य निहित रहता था। इसके अतिरिक्त यह दिवस प्रदर्शिनी के ढंग पर मनाए जाते थे। परस्पर दर्शन-लाभ, देश-बांधवों में सभ्यता और लोकाचार की उन्नति को तथा आविर्भूत और दुर्लभ पदार्थों एवं नूतन आविष्कारों को प्रकाशित और प्रचलित करना भी इनका मंतव्य था। इन पर्वों से अवकाश-काल का भी तात्पर्य निकलता था, जिनमें विविध उद्योग-निरत तथा श्रमजीवी व्यक्तियों का व्यवसाय तथा कृषि-कर्मियों के हलादि अभिधायक कार्य-क्रम स्थगित रहते थे, और प्रत्येक मत-मतांतर के जन-समवाय केलि-क्रीड़ानंद में सम्मिलित होकर, परस्पर बंधु-भाव प्रकट करके, आत्मीयता का चिर-संबंध स्थापित रखते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई पर्वों में प्राचीन काल से कुछ विकृति या परिवर्तन घटित हो गए हैं, जिनकी व्याख्या व्रतार्क और भविष्योत्तरादि पुराणों में यदा-कदा स्थल-प्रसंगांकित हैं। शास्त्रों में अगणित व्रतों का वर्णन है, जिनमें ईश्वर-प्राप्ति, पाप-नाश, आत्मोन्नति, पुण्य-संचयादि लाभ हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये त्योहार अतीतकालीन इतिहास के साक्षी और जन-जिह्वाग्र-वृत्तांत हैं, जो पिता-पितामहादि से पुत्र-पौत्रादि-पर्यंत प्रत्येक कुटुंब में स्मृति-रूप सुरक्षित हैं, और धर्म-पंथ-संप्रदाय में अद्यावधि प्रचलित हैं। हाँ, अर्वाचीन समय में पाश्चात्य सभ्यता के कारण अधःपतन तथा अवनति पर हैं। सब त्योहार ऋतु-परिवर्तन अर्थात् शरत्, हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, प्रावृट्-क्रमानुसार नियत किए गए हैं। उन्हीं में संलग्न प्रत्येक की संपादन-शैली भी स्थित की गई है, जिससे धर्म-सरिता में प्रेम-प्रवाह-गति प्रवर्द्धित होती है, और पूर्वजों के संस्कार-विधान तथा लोकरीति-विश्वास में दृढ़ता प्राप्त होती है। इनमें से कोई-कोई तो पुरुष ही के लिये हैं, और कोई-कोई स्त्रियों लिये नियुक्त एवं व्यवस्थित हैं। कोई अतीत समय के स्मारक हैं। कोई नियत समय से संबद्ध हैं, और कोई केवल उत्साह-मात्र, मंगलमय मनोमोदन के हेतु नियोजित हैं।

जो व्यक्ति नियमबद्ध रहते हैं, वे प्रत्येक व्रत के दिन प्रातःकाल उठकर, आह्निक क्रियादि से निवृत्त हो, स्नानादि से निश्चित होकर 'संकल्प' करते हैं कि मैं आज इष्ट अभ्यर्हित देवता का पूजार्चन करूँगा। सम्यक् पाप-पुंज, समग्र कलुषराशि—जो भूत, भविष्य, वर्तमान में मनसा-वाचा-कर्मणा से मैंने किए हों—निस्तार पाने, निर्मुक्त होने, तथा पुनः क्षमा-प्राप्ति के लिये व्रत धारण करता हूँ। उसके प्रभाव से मेरे मनोवांछित फल प्राप्त हों, और सुलभ्य, भव्य, सुनव्य, सुसंतान, सकल सुश्री-संप्रदाय-समाकुल सुषमा-संदोह, सुख-समृद्धि तथा आयुष्यवृद्धि लाभ हों। तदुपरांत ध्यान, मंत्र, जप, अंगन्यास, करन्यास, नमस्कार, वंदनादि अंगों को समाप्त करता है। मूल, फूल, फल, पर्णादि पूजार्पण चढ़ाकर, सुगंधित द्रव्य जलाकर, आरती करता है, हवन करता है, ब्राह्मण, पुरोहित और पंडितों को अरुणोदय-बेला में भोजन कराता है, कुछ मुद्रा भी दक्षिणा-स्वरूप दान करता है, स्तोत्र-समूह उच्चारण करता है। यही विधान प्रत्येक व्रत के समय न्यूनाधिक विधि से संपादित किए जाते हैं। अस्तु।

मकर की संक्रांति

यह सर्वसाधारण जनता में प्रायः "खिचड़ी" के नाम से अधिक प्रख्यात है; क्योंकि जिस दिन सूर्य मकर-राशि-गत होता है, उस दिन खिचड़ी खाना-खिलाना और प्रदान करना पुण्य-कार्य है। उस दिन से उत्तर को "अयन" बढ़ता है, और दिनमान भी क्रमशः दीर्घ होता है। हिंदू-मतानुसार उत्तरायण में प्राण-परित्याग करना वैकुंठधाम-प्राप्ति का लक्षण है, जैसे भीष्मपितामह, जिन्होंने दस दिन तक महाभारत किया था, घायल होकर षट् मास तक बाणशय्या-शायी रहे, और उत्तरायण में स्वर्गगामी हुए। इसमें संदेह नहीं कि शुषीम के प्राबल्य तथा प्रचंड शीताधिक्य से जठराग्नि मंद और निर्बल हो जाती है। अतः आशुपचनीय आहार की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे समय खिचड़ी से उत्तमतर अन्य कोई भोजन ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकता। खिचड़ी के अवयव—घी की टँहक, हींग की महक, अदरक की कचर, नींबू की पचर, मूली की चुर, दही की सुर, तब खिचड़ी फुर।

शकट-गणेश-चौथ

माघ कृष्ण-पक्ष की चौथ है। चंद्रोदय-समय शुभ और व्रतयोग्य है। इसे 'विनायक चतुर्थी' या 'संकट-हरण चतुर्थी', भी कहते हैं। स्त्रियों का व्रत पुत्रार्थ है। श्रीगणेशजी आदि-देवता हैं। सर्वप्रथम इन्हीं का नाम उच्चारण किया जाता है। प्रत्येक सूत्रपात या उपक्रम के समय प्रत्येक कार्यकर्ता "श्रीगणेशाय नमः" कहता है। किसी ग्रंथ का रचयिता इसी वाक्य से प्रणयन या लेखारंभ करता है। प्रत्येक कार्यक्रम—चाहे वह धर्म-संबंधी अथवा देश-काल-सबंधी हो—विशेषतः उत्तम कार्य इसी नाम से प्रारंभ किए जाते हैं। सर्वप्रथम इन्हीं की आराधना होती है। यह गिरि-नंदिनी महेश-वल्लभा पार्वतीजी के आत्मज हैं। विद्या और बुद्धि के अधिष्ठाता यही हैं। गयंद का वदन बुद्धिमत्ता का लक्षण है। पूर्व-काल में गणनायकजी की प्रतिमा मृतिका-निर्मित रक्त-वर्ण करके पूजन-अन्वासन करते थे। अब रात्रि-समय स्त्रियाँ तिल के मोदक (लड्डू) और फलाहार—यथा गांजी आदि—से अभ्यर्हणा करती हैं। माघ में तिल-भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक लाभप्रद और हितकर है। वैद्यक-शास्त्र ने उसे रसायन बतलाया है; क्योंकि यह ऋतु शीत-शुष्क (सर्द-खुश्क) है, और उसके विरुद्ध तिल का गुण उष्णार्द्र (गर्मतर) है। एतदर्थ प्रकृति में स्वास्थ्यकारक समभाव उत्पन्न करता है। परंतु अधिक मात्रा में खाना रेचक (दस्तावर) है। लोकोक्ति है—

तिल गुड़ भोजन तुरुक मिताई;
आगे मीठ पीछे कड़वाई।

उस दिवस चंद्रमा पर दृष्टि डालने का निषेध है। कारण यह कि एक दिन सिद्धसदन गजवदन गणेशजी अपने वाहन (मूषक) पर से गिर पड़े। चंद्रमा ने उपहास किया। इस पर गणेशजी ने उसे शाप दिया! एतद्कारणात् शास्त्रों में वर्जित है। एक समय समस्त देवतागण में महत्त्व के लिये बड़ा कलह हुआ कि सबमें शीर्षस्थानीय कौन है। अंततोगत्वा यह निष्कर्ष निकला कि जो भूप्रदक्षिण करके सर्वप्रथम लौट आवेगा, वही सर्वोपरि परिगणित होगा। सभी देवताओं ने श्रेणि-बद्ध होकर, निज-निज वाहनों पर विराजमान हो, पृथ्वी की चतुर्दिक् यात्रा को प्रस्थान कर दिया। परंतु मनीषी-मनस्क गणेशजी ने अपने विवेक-बल के कारण मूषक पर आरूढ़ होकर "राम" नाम के चारों ओर गोलाकार गति कर ली; क्योंकि उन्हें यह ज्ञात था कि इसी नाम के अंतर्गत सब कुछ है। अब देखिए, भ्रमणांतर में जो देवता जहाँ पहुँचता था, वहीं चूहे का चरण-चिह्न अंकित देखता था। अतः सम्यक् सुर-समूह ने निरुत्तर होकर उनकी सर्वश्रेष्ठता को स्वीकृत किया, और इस प्रकार गणपतिजी अग्रगण्य हुए।

शकट-कथा

सत्यपाल-नामक ब्राह्मण और उसकी भार्या सत्यवती से "संकटा"-नामक एक दुहिता थी, जो अति दीन-मलीन, सकल संपदाहीन और धनहीन थी। परंतु गणनायकजी के आराधन से देवताओं के कोषपाल धनद अर्थात् कुबेरजी ने उसे धनाढ्य कर दिया! इस व्रत के माहात्म्य से एक षट्वर्षीय बालक एक नृशंस नृपति के प्रज्वलित उद्दंड हसंतिका (धधकती भट्टी) से सांगोपांग सजीव बच निकला।

शिवरात्रि

फाल्गुन-कृष्णा चतुर्दशी है, देवाधिदेव महादेवजी का व्रत है, प्रदोष-व्यापिनी ग्राह्य है। इसके करनेवाले कलुष-पाश से विमुक्त हो शिवलोक को प्राप्त होते हैं। एक बार विष्णु और विधाता में विभीषिका-जनक वाद-विवाद हुआ कि हम दोनों में कौन बड़ा है। न्याय के लिये तत्क्षण शिवजी का आद्यंतहीन और अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ, और यह निर्द्धारित हुआ कि दोनों में श्रेष्ठतर वही है, जो इसके अंत को अवगत करे। विष्णुजी उसके मूल की ओर और सृष्टि-नियंता ब्रह्माजी उसके शिखर की ओर चले। उन युगलान्वेषकों ने उसके तिरोहित आरंभ और अवसान-अनुसंधान में अर्बुदावधि अब्द-पर्यंत अविच्छिन्न श्रम किया। अंततः क्लांत और श्रांत होकर परावर्तित हुए, और महेश शंभुजी को सर्वोत्कृष्ट और महत् माना। इस दिन लोग अनशन-व्रत धारण करते हैं, रात्रि-भर जागरण करते हैं, तथा मयंक-मस्तक की पूजा में दत्तचित्त रहते हैं। अब तो सर्वसाधारण जनता में यह नियम प्रचलित है कि जहाँ कहीं शिवालय या शंकर का मंदिर होता है, वहाँ जाकर दुग्ध, जल, मंदार, धतूरा, इक्षुदंड, खंड-तंडुल, विल्वपत्र, पुष्पादि नैवेद्य या सपर्या-स्वरूप समर्पित करते हैं। अहर्निशि जनसंकुल एकत्र रहते हैं।

प्रागुक्त वाग्युद्ध में विरंचि ने केतकी-कुसुम की साक्षी समक्षोपस्थित की थी कि "इसे मैं लिंग के शृंग के ऊपर से उतार लाया हूँ"; परंतु अंत में अनृत प्रमाणित हुए। निदान रमारमण विष्णुजी ने शाप दिया कि शिवरात्रि के सिवा केतकी का फूल कदापि शिवजी को न चढ़ाया जाय। अतः यह सुमन सर्वदा निषिद्ध है; परंतु उस दिन सिद्ध है। यह ईशानसंहिता में वर्णित है। शिवपुराण में उल्लेख है कि एक वनवासी मनुष्य था, व्याघ्र के आतंक से वह एक विल्ववृक्ष पर जागता रहा, और निराहार रह गया। उस अभिषाद क्रूर केसरी के संत्रस्त करणार्थ बेल की पत्रियों को तोड़-तोड़ कर नीचे फेंकता रहा, जो उस स्थलवर्ती शिवलिंग पर गिरती थीं। अंततोगत्वा जब वह मनुष्य काननचारी व्याघ्र से वध होकर उसका ग्रास बना, तो कालांतक यमराज के दूत उसे लेने को आए, जिनसे मृत्युंजय महादेवजी के गणों से घोर संग्राम हुआ। परिणाम यह हुआ कि यमदूत पराजित हुए, और शंभुगण उसे शिवलोक को ले गए। इसका अर्थ यह है कि यदि भ्रमवशात् भी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रत हो जाय, तो भी फल-दातार है। पुराणों में इसके अनेकानेक फल कथित हैं।

होली या होलिका

फाल्गुन-शुक्ल पूर्णिमा है, किंतु भद्रा वर्जित है। शर्वरी समय उत्तम है, पिछले प्रहर उत्तमतर है। वंगदेश में इसे "डोलयात्रा" "दोला-यात्रा" या "डोलोत्सव" कहते हैं, जो वसंत से संबद्ध है। वहाँ इस त्योहार के देवता श्रीकृष्णजी हैं, जिनका डोल या झूला पड़ता है। परंतु भारतवर्ष के शेष खंडों में इसका संबंध "होलिका" से है, जो छोटे-छोटे बालकों को भक्षण करनेवाली राक्षसी थी। इसकी अपर संज्ञा "ढुंढी" भी लिखित है, जिसके नाम से इस त्योहार को "ढुँढेरी" या "ढुँढेहरो" भी कहते हैं, और धूल उड़ाते हैं। एतदर्थ "धुलेंडी" नामकरण हुआ। यथार्थ कथा यों है—"होली" हिरण्यकश्यप की सहोदरा भांगनी थी, जिसको वरदान प्राप्त था कि अग्नि से न जले। सुरद्विष राक्षस तथा दानववर्ग विष्णुजी को अपना परम शत्रु और कराल काल समझते हैं। कारण यह कि कमलासक्त विष्णु ही उनको नष्ट-भ्रष्ट करने में तत्पर रहते हैं। अतः व परमात्मा के नाम के स्थान पर उन क्रव्याद निशाचरों के यहाँ उन्हीं के पिता, पितामह और पितृ-पुंज (बाप-दादों) का नाम जपते हैं, तथा उन्हीं का पर्युपासनाराधन करते हैं। परंतु इसके प्रतिकूल, मुनि-शार्दूल नारद के मंत्रानुसार, प्रह्लादजी ने "राम" नाम का जप आरंभ किया, जिनके अनुकरण और अनुसरण से अखिल पाठशालावर्ती छात्रगण और बालकवृंद भी यही रटने लगे। इस पर गुरु संडामर्क परम कोपित तथा महामर्ष हुए, और उनके पिता से लांछना की, जिससे वह प्राणपण से उनके प्राणघात पर सन्नद्ध और बद्ध-परिकर हो गया। वह हत्याग्रही दुराग्रहारोही राक्षस प्रह्लादजी को मत्त गयंद के पदतल-दलित कराकर, गरल या विष-पान कराकर, उत्तुंग भूधर शिखर से नीचे गिराकर, अंत में सर्वविध प्रयत्न चरितार्थ करके, उस गज-स्नान में थकित और निराश हो "होली" के शरणागत हुआ, और बोला—"तू प्रह्लाद को निज अंक में लेकर बैठ जा। मैं एध-काष्ठ (ईंधन) में फुँकवा दूँ। यह भस्म हो जायगा, परंतु तू सजीव बच जायगी।" ऐसा ही किया गया। परंतु रामनाम की महिमा से परिणाम उलटा हुआ। होली तो जलकर राख हो गई; परंतु राम-नामासक्त ईशचरणानुरक्त भक्तवर प्रह्लादजी आह्लाद-पूर्वक पूर्ववत् काय-समेत अविक्रियतमः अविक्रित रह गए। भगवद्भक्ति का परा काष्ठादर्श यह है!

उनके समस्त सहपाठी और समकक्ष तथा अन्यान्य इतर नगरनिवासी जन-मानव प्रभृत्ति ने उत्कर्ष-उत्साह उद्यापन किया, और उस पर नाना भाँति क कुत्सित तथा व्यंग्य-वचन-वाण-वर्षा करने और दुर्वचनारोपण करने लगे, जो अब भी रीति है। होली से एक सप्ताह पूर्व, जिसे "होलाष्टक" कहते हैं, होली की कृत्रिम प्रतिकृति को (मूर्ति) वंश-वृक्षादि द्वारा निर्मित कराकर उसे जन-स्थान (बस्ती) से बाह्यवर्ती किसी पृथुल चौगान (मैदान) में गाड़ देते हैं, और चतुर्दशी की रात्रि को किसी विप्र को दक्षिणा देकर उसके हाथ से अग्नि-संस्कार कराते हैं। प्रथमतः युन्थ-के-युन्थ लड़के और युवा ग्राम अथवा टोले-मुहल्ले के लोगों की लकड़ियाँ या दारु-द्रव्य तस्करवत् चुराकर उसमें डाल देते थे।

यदि अनुसंधान लग जाता अथवा सूचना हो जाती थी, तो उन वस्तुओं का स्वामी बलात्कार उन्हें छीन ले जाता था। परंतु जो अलाव में पड़ चुकता था, तब कोई हिंदू उसे परमापवित्र शव-वस्तु समझकर ग्रहण नहीं करता था, और संतोष-वृत्ति धारण करता था। अब प्रत्येक गृह से ईंधन या लकड़ियाँ याचने या चंदा करके जलाने का प्रबंध किया जाता है। उसके साथ सम्यक् प्रकारेण चिता का व्यवहार किया जाता है। सुतराम् जो प्रथम स्फुलिंग (ज्वाला) पावक प्रज्वलित करने से निष्पन्न होती है, उसे कोई नहीं दृष्टिगोचर करता, सब-के-सब मुँह फेर लेते हैं, और १५ के प्रभात-पर्यंत पुरवासीगण आकर सात-सात बार उसके चतुर्दिक् परिक्रमा करके, प्रत्येक परिक्रमा के साथ अलसी तथा यवादि की डालियाँ और बालियाँ अथवा शुष्क गोमय, उपला (कंडा) करीषादि आहुति-स्वरूप उसमें छोड़ते हैं। तदुपरांत चिल्लाना, कोलाहल मचाना, बकना, निंदनीय और अश्लील वाणी-निक्षेप और जल्पना करना आरंभ करते हैं। पुनरागमन-समय वहाँ से किंचित् अनल गृह भी लेते आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतावन्मात्र लक्षण अतीत-कालीन समय का साक्षी-स्वरूप संप्रति समावशिष्ट है। वेदों के समय में अग्निहोत्र की वह्नि वर्ष-भर तक उपशम नहीं की जाती थी। यह ग्रास और ईरान के अग्नि-पूजकों की समीचीन (पुरानी) अग्नि, जो देवोत्थान (डिठवन) के दिवस जलाई जाती है, होली को निकालकर सद्य कर दी जाती है। धार्मिक पक्षपात का परित्याग कर लाभालाभ निर्णय अथवा विज्ञान-विवेक से विचार करने से यह ज्वलंत अभिप्राय स्पष्ट विदित होता है कि डिठवन से अग्नि-सवन आरंभ होता है, और होली को समाप्त। एक आदि है, दूसरा अंत। वस्तुतः उष्णता ही प्रचुर सुशीमाधिक्य या अत्यंत शीतकाल में जीवनाधार एवं स्वास्थ्यावलंब है। इसके प्रथम और पश्चात् अनावश्यक अथच महाहानिकर है। पूर्णमासी को कृष्णावतार की लीला दृश्यमान हो जाती है। गुलाल या अबीर-बुक्कादि लगाकर वदनादि मर्दन करना, पिचकारी द्वारा रंग-क्रीड़ा करना, कुमकुमादि फेंककर मारना, दिन-भर गायन-वादन करना, परस्पर अंक-भर कंठ लगाना, परिरंभनालिंगन—निशिवासर यही आमोद-प्रमोदादि लोग प्रीणन में तल्लीनता रहती है। इसमें संदेह नहीं कि यह सबसे बड़ा त्योहार और सर्वोच्च सांद्रानंद का दिन, तन-प्रकंप-तंचक शिशिर का गमन और निदाघ-ग्रीष्म-ऋतु का शुभागम तथा पुष्पागम जलांचल इष्म या ऋतुराज मधु (वसंत) का मधु-प्रभाव तरुण-युवाओं को उन्मत्त और वृद्धवृंद को ओजबल प्रकर्षेण प्रदत्त करता है। पादपपुंज तथा वृक्ष-समुदाय रस से परिपूर्ण और परिवर्धित एवं प्रफुल्ल हो जाते हैं, और शीत-बाहुल्य से गाढ़ रुधिर के द्रव-रूप धारण करने से सब जीवधारी श्वापद-समूह-सहित पूर्ण मनोविनोद-युक्त और अंग-अंग में उमंग-उमंग से पूरित हो जाते हैं। मृदुल-मंजुल पुष्प-समूहान्वित, कोमल किशलय-संपन्न, कुंज-पुंज उद्यान के उल्लास का वर्णन केवल कवि ही कर सकता है, मुझ अल्पज्ञ में क्या सामर्थ्य!

इसी तिथि को "मदन-दहन" भी हुआ था, जो मदन-प्रांत की ओर होली के स्थान में संपादित किया जाता है। जब कंदर्प वसंत चमू-समूह-समेत शशिभूषण शिवजी में क्षोभ तथा कामोद्दीपन करने के प्रयत्न में प्रवृत्त हुआ—इस प्रयोजन से कि वह नगाधिराज हिमाचल-तनया से परिणय करें, तब शिवजी ने अपनी तपश्चर्या और भगवद्भजन में विघ्न पड़ने से उसे अपने मस्तक-मध्यस्थ तृतीय नयन के संहारकारी, रौद्र ज्वाला-मयूख से भस्म कर दिया; परंतु तत्पश्चात् कामदेव की अर्द्धांगिनी रतिदेवी के दयितार्थ करुण-क्रंदन पर दयार्द्र हो आशुतोष शिवजी ने पुनः उसे जीवित कर दिया, किंतु अनंग रक्खा। यह स्मृति अद्यावधि समावशिष्ट है। यह तो भास्कर इव भासमान है कि वसंत ऋतु में वह कैसा उद्गारित तथा उत्तेजित होता है, उसका शम, दम और वश में करना संयमशील इंद्रियजित की ही शक्ति है, प्रत्येक व्यक्ति को नहीं। होलिका-दाह का भी यही आशय है। कतिपय प्रांतों में उसे 'पूतना' का दग्ध करना कहते हैं, जो इंदीवर-कांत श्रीकृष्णजी को विषाक्त स्तन-पान कराने के हेतु उनके मातुल कंस की प्रेरणा से आई थी, किंतु स्वयं काल-ग्रास हुई और जलाई गई थी। कथांतर में कहीं-कहीं होलिका या ढूंढा के स्थान में अहकूटा राक्षसी नाम दिया है, जिसके भय से यह बालक-कृत अग्नि-पूजन होता है।

नृशंस निशाचरी ढुंढी का विस्तृत विवरण जनार्दन श्रीकृष्णजी ने पांडवपुंगव पांचालीश युधिष्ठिरजी से भविष्योत्तर-पुराण में सुंदर ढंग से किया है। राजा रघु से प्रजा ने प्रार्थना की कि एक भ्रूणभक्षी पलाशना शिशु-समुदाय को कष्ट तथा पीड़ा देती है। इस पर नरेश ने नारदजी से कृतपुट जिज्ञासा की, तो उन्होंने परामर्श दिया कि जनता को आज्ञा दीजिए कि आज सित पक्ष की राका है, सब नृत्य-गान केलि-क्रीड़ा करें, तथा बालवृंद काष्ठ-कृत कृपाणों से समर-स्वाँग-तांडव करें, और लकड़ियों की राशि जलाकर उसके चतुर्दिक् तीन बार प्रदक्षिणा करें एवं किल-किल कहें। जिसके अंतः-करणाभ्यंतर जो विचारोत्थान हो, स्वच्छंदता से बोले, इसी से वह परोक्ष हो जायगी। बालकों को खीर खिलाई जाय। न्यूनाधिक रीति से अद्यावधि ऐसा ही है। जैसे आजकल कबीर गाते हैं, वैसे निकृष्ट और अश्लीलोक्ति, कुत्सित वाक्य-भाषण पूर्व-काल में नहीं होते थे। उसके स्थान में श्रीआनंदकंद व्रजेंद्र श्रीकृष्णजी के मंगलकारी चरित्रों को गाते थे। स्थानाभाव से उनका उल्लेख नहीं किया जाता। विविध वादनयंत्रों के साथ वसंत का गुण-गणगान तथा श्राराधिकादि आभीर प्रमदादि गोपियों का श्रीमुरारि मुरलीधर के साथ होली खेलना, रासो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास-लीला, सुधासंचारक, वृंदार-गीतस्तव गाकर सुनाते थे।

वर्ष-भर में एक ही दिवस है, जिस दिन चांडालादि अछूत जातियों के छूने में छूत न मानकर मानों यह कहते हैं कि इन्हें विस्मृत न करना। अरे मेहतर, तू हमारा ही लघु भ्राता है, एक ही वृक्ष की शाखा है, यद्यपि अस्वच्छ कर्म ने निरादृत ईषद कर दिया है। शोक! ईश्वरीय सृष्टि के एक-एक अंग के प्रति, जिसके विना निर्वाह दुष्कर एवं दुस्तर है, यह घोर घृणा! और, वारांगनाओं को गोद में मोद-सहित तथा साथ लेकर सबके सामने व्रीड़ास्पद क्रीड़ा करते, गाते-बजाते और रंग खेलते चलने में लज्जा नहीं?

बुढ़वा मंगल इसी के संबंध में, विशेषतः बनारस में, मनाया जाता है। होलिकोपरांत प्रथम मंगलवार को। छः प्रहर का मेला होता है। मंगल की संध्या से बुध के मध्याह्न तक नगर के लोग गंगाजी पर विराजमान रहते हैं। नौकाओं को यथाशक्ति चित्रादि से अलंकृत करते हैं, बाज़ार भी लगता है, तांबूल तथा मिष्टान्न-विक्रेताओं की दूकानें रहती हैं, नृत्य-गान होता है, दीपावली तथा आतशबाज़ी (अग्नि-क्रीड़ा) ऐसी होती है कि रात का दिन हो जाता है। गुलाल आदि रंग से नदी का जल लाल हो जाता है। दर्शनीय है, वर्णनीय नहीं।

इस होली की वैदिक संज्ञा वार्षिक यज्ञ है। इसमें आजकल कौतूहल और परिहास-कौतुक भी होते हैं। टेसूराय बनते हैं। अनेक प्रकार के राक्षसी आकार नील, कज्जलादि वर्ण के बनाते हैं—जैसे महादेव की बारात। रासभारोहण, उपानह-माल-परिधारण और विजया (माजूम) आदि मादक द्रव्य-सेवन-वृत्तांत विदित है। लिखना व्यर्थ है।

रामनवमी

चैत्र-शुक्ल ९ को होती है। रामचंद्रजी की जन्मतिथि है। जिन मंदिरों में श्रीरामचंद्रजी की मूर्ति होती है, आभूषित तथा अलंकृत की जाती है। जाज्वल्य दीपावली से मंदिर प्रकाशमान् किया जाता है। नृत्य-गान और रामायण-कीर्तन होता है। नव दिनों तक आनंदोत्सव होता है, जिसे राम-नवरात्रि कहते हैं। ब्राह्मण-साधु-संतों को भोजन दिया जाता है। स्त्री-पुरुष झुंड-के-झुंड आकर दर्शन करते हैं। विशेषतः नवमी को व्रत करते हैं। पुनः सरयूजी में स्नान करते हैं। बहुत दूर-दूर के लोग अयोध्याजी में आते हैं। यह अत्यंत प्रसिद्ध अवतार है। पूरी कथा रामायण से प्रकट है। इस पर्व में भाग लेने वाले साकेत-लोक को प्राप्त होते हैं।

वटसावित्री

ज्येष्ठ-कृष्ण अमावस्या है। पति-हितकारी सधवा स्त्रियों का व्रत है। महाभारत की एक प्रसिद्ध कथा है। सावित्री (सरस्वती) ने बुद्धिमानी तथा चातुर्य से किस प्रकार यमराज से अपने मृत स्वामी सत्यवान् की जीवात्मा को लौटाकर जीवित किया, जो पश्चात् ४०० वर्ष तक जीता रहा, और अपने ससुर महाराज अश्वपति का नष्ट राज्य तथा नेत्रों की ज्योति पुनः प्राप्त की। इसी के अनुसरण में स्त्रियाँ अब तक इसकी पूजा करती हैं। इस दिन पूर्व-काल में पति की पूजा होती थी, परंतु अब वट-वृक्ष की पूजा प्रचलित है। यह जंगल का पवित्र वृक्ष है, और इसी दिन से प्रावृट् प्रारंभ होता है। पुनः वर्षा-काल के अंत तक कोई जंगलों में नहीं जाता। उनकी रक्षा की जाती है। कोई तरुच्छेद नहीं करता। नए पेड़ उत्पन्न और वर्द्धित होते हैं। इस व्रत से पति को दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जिन स्त्रियों के पति जीवित होते हैं, उन्हीं सौभाग्यवती सधवाओं का विशेष व्रत है।

(क्रमशः)

बृहस्पतिदत्त मिश्र

उद्गार

(१)

किंशुक-कुसुम देख शाखा पर फूला तुझे,
मेरा मन आज यह फूला न समाता है;
पूरे एक वर्ष पीछे आया फिर देखने मैं,
इतने दिवस भला कहाँ तू बिताता है;
कौन-कौन देश घूम आया इस बीच में तू,
हाल क्यों वहाँ का नहीं मुझको सुनाता है;
भूल तो गया न मुझे जाके उस अंचल में,
क्या न उपहार कुछ मेरे लिये लाता है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

है क्या तुझे याद कभी ठीक इसी ठौर पर,
तेरे साथ खेलने में प्रात मैं बिताता था ;
एक ओर ऊषा का अरुण-हास, एक ओर
आनन अरुण तव देख सुख पाता था।
ठीक इसी भाँति यह आम खूब मौरकर,
अपनी अपार छटा हमको दिखाता था ;
तुझको झुलाता कभी धीरे से, कभी तो रम्य
स्वागत में तेरे मैं मधुर गीत गाता था।

(३)

कभी किसी तरु को ही मान वन-देव मैं तो,
श्रद्धायुत तेरी कुसुमांजलि चढ़ाता था ;
कभी तुझे महानदी-नीर में बिखेर कर,
तेरी दिव्य आभा देख मोद उर लाता था।
शिशुओं के हेतु कभी किंशुक-कुसुम तुझे,
यत्न से मैं तोड़-तोड़ साथ लिए जाता था ;
लाल पँखड़ी के बाल-विहग बनाके अहा !
बाल-उर उनका न हर्ष से समाता था।

(४)

छाया वन-बीच आज सरस वसंत वही,
मैं भी वही और वही भूमि भी पवित्र है ;
बदला न तू भी, पर देखने में आता नहीं,
आज किस हेतु वह सुखद चरित्र है ?
भूल-भूल जाता मम मानस नयन-बीच,
विविध विनोदमय वह मोद चित्र है ;
बात कल की थी, और आज कुछ और ही है,
विधि का विधान मित्र ! ऐसा ही विचित्र है।

(५)

कहता तुझे था कभी किंशुक-कुसुम देख,
जैसा तव रूप, वैसी तुझमें न बास है ;
सरसिज-सुमन-सुसौरभ से सौरभित,
करता समीर यह तेरा उपहास है।
किंतु हैं मलीन मम जीवन-कुसुम आज,
वह न सुगंधमय सरस विकास है ;
देख-देख मेरी दशा आती है दया क्या तुझे,
किंवा तेरे मुख पर यह व्यंग्य-हास है ?

(६)

किंशुक-कुसुम, जब विगत वसंत होगा,
मौन होगी कोकिल, प्रखर ग्रीष्म आवेगा ;
सूखेंगे कुटज-कचनार के सुमन-हार,
तरुण तरणि लोनी लतिका जलावेगा।
होके वृंतच्युत तब तू भी यह भूमि छोड़,
मुझसे बिदा हो दूर देश चला जावेगा ;
होगी भगवान् से जो भेंट कहीं याद कर,
करुण कथा तू मेरी उनको सुनावेगा।

(७)

अपनी दशा पर विचार करता हूँ जब,
सत्य कहता हूँ, नयनों में अश्रु छाते हैं ;
दूर करने के दुख यत्न हैं किए अनेक,
किंतु एक भी तो कुछ काम नहीं आते हैं।
एक अब आश भगवान् रामचंद्रजी की,
आर्तत्राण कह जिन्हें वेद-बुध गाते हैं ;
करुणा करेंगे वह करुणा-निधान कब,
किंशुक कुसुम, मेरे प्राण अकुलाते हैं।

मुकुटधर पांडेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्यवेध

(२)

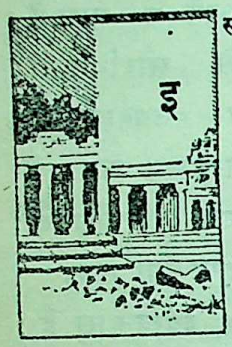

इसी प्रकार शब्दवेध का अभ्यास किया जाता है। पहलेपहल आँख पर पट्टी बाँधकर बहुत क़रीब मिट्टी के घड़ या शब्द करनेवाली चीज़ को रक्खे। उसे कोई अन्य व्यक्ति कंकड़ मारकर शब्द करे, और उस पर फ़ैर किया जाय। कुछ दिनों के अभ्यास से किसी प्रकार के परोक्ष शब्द पर गोली मारने का पूरा महावरा हो जायगा।

ऊपर जो क़ायदे बंदूक़ की सिस्त के बतलाए गए हैं, वही वाण से लक्ष्यवेध करने से संबंध रखते हैं। दोनों हथियारों की सिस्त लेने में अंतर यह है कि बंदूक़ के लक्ष्य को मक्खी के ऊपर रक्खा जाता है, परंतु वाण के लक्ष्य को वाण की अनी में पोह लेना चाहिए। बंदूक़ में दृष्टि की एकाग्रता के सहारे के लिये बैक-साइट अर्थात् दीदवान् होता है, परंतु वाण की सिस्त के बैक-साइट का काम धनुष को पकड़नेवाले बाएँ हाथ की मुट्ठी से लिया जाता है। जिस जगह वाण धनुष की मूँठ को स्पर्श करता है, किंवा वाण मुट्ठी पर आश्रय पाता है, उसी जगह दृष्टि को आश्रय देकर वाण की अनी को देखना चाहिए, और फिर उस अनी को लक्ष्य-पदार्थ के बीच में डालकर वाण छोड़ देना चाहिए, तब वह उसी जगह लगेगा। परंतु बंदूक़ की तरह वाणवेध में भी कमान की ताक़त, अपनी ताक़त और लक्ष्य की दूरी का पूरा-पूरा ध्यान रहना आवश्यक है। केवल इतना ही नहीं, इसमें साँस की साधना उतनी ही आवश्यक है, जितनी बंदूक़ में।

वर्ण-व्यवस्था-स्थापन करनेवाले महर्षियों ने उस समय युद्ध में काम आनेवाले अस्त्र-शस्त्रों को भी चार श्रेणियों में विभाजित करके, प्रत्येक वर्ण को प्रत्येक भिन्न श्रेणी का अधिकारी माना है—जैसे धनुष-वाण ब्राह्मणों का हथियार माना गया है, तो तलवार क्षत्रियों का हथियार है; कुंतभाला वैश्यों का है, तो गदा शूद्रों का। आजकल धनुष-वाण का स्थान बंदूक़ ने ले लिया है। इससे भी विकट और संहारकर्ता तोप है। परंतु वाण, तोप, बंदूक़, इन सबकी साधना और अभ्यास के तत्त्व प्रायः एक ही-से हैं। अस्तु अब हम इसके आगे तलवार का बयान आरंभ करते हैं।

उपर्युक्त वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था के अनुसार तलवार द्वितीय श्रेणी का शस्त्र माननीय है, परंतु हमारी राय में तलवार संपूर्ण अस्त्र-शस्त्रों में शिरोमणि एवं अग्रगण्य है। कारण, संसार में जैसा इसका बोलबाला रहा, वैसा अन्य किसी का नहीं रहा। जो धनुष किसी समय सर्व-श्रेष्ठ हथियार था वही आजकल नाटक, थिएटरों या लड़कों के खिलवाड़ के सिवा अन्यत्र कहीं देखने में भी नहीं आता। परंतु तलवार की ईजाद के समय से लेकर सारे संसार में अब तक उसका एक-सा आदर चला आता है। यह बात दूसरी है कि देश-भेद, लोह-भेद और कारीगरों की चतुराई के अनुसार तलवार के भी अनेक भेदाभेद हैं; परंतु उसकी असलियत में, उसके उपयोग और उसके प्रयोग में, कोई रद्दोबदल नहीं हुआ। जैसा कुछ उसका बयान हम प्राचीन शास्त्रों में पाते हैं, उसी दशा में हम उसे आँखों से देख रहे हैं। इसका कारण यह है कि तलवार अति सुगम प्रयोग और दुर्गम परिणाम-सूचक हथियार है। तलवार बाँधने और उसकी क्रिया को जाननेवाला किसी भी अवस्था में उसे उपयोग में ला सकता है। यह बात अन्य किसी भी शस्त्र में नहीं है, यथा भाषा-धनुर्वेद-संहिता में कहा है—

> सूधौ परे कोटा लिए,
> औ ढाल पीठ पर दिए,
> उकरूँ बैठ निहुरे खड़े,
> हाथी अंर अस्त्र पै चढ़े;
> हानि मारै दुश्मन के माथ,
> जा कृपान के जानै हाथ।

यहाँ तलवार के हाथ बतलाना ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। परंतु प्रसंग-वश तलवारों की जातियों का वर्णन भी कर देते हैं—

> लीलम लहरदार बँदरी सिरोही रूमी
> मानमाही खाँड़ा धोय ऊना तेग तानौं।
> सैफ गुजरात अंगरेजी औ दुदम्मी रूमी
> मक्कई दुधारी नादोर नाम धरनौं।
> मिसरी निवाजखानी गुपती जुनब्बख नी
> अलेमानी खुरासानी कत्ती तेग ढनौं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुन्दा मगरबां मिगोही आ पिरोजखानी
'मान कवि' एने तरवार-जानि बरनौं।

इस कवित्त में कुछ भूलें एवं अशुद्धियाँ भी हैं। कारण, हमने एक अपढ़ सिपाही की ज़बानी सुनकर इसे क़लमबंद किया है। फिर भी इससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। इस कवित्त में क़रीब तीस क़िस्म की तलवारों के नाम गिनाए हैं। ये सब भेदाभेद देश-भेद और लोह-भेद से संबंध रखते हैं। परंतु सबके मूल-ढाँचे और उनके अंग-प्रत्यंग एवं प्रयोग-उपयोग में कोई भेद नहीं है। तलवार मोटे तौर से प्रायः दो भागों में विभाजित मानी जाती है, और यही दो भाग उसके प्रधान दो अंग हैं। तलवार का वह भाग, जो हाथ से पकड़ा जाता है, मूठ कहलाता है। इसको अँगरेज़ी में Hilt (हिल्ट) कहते हैं। शेष इसके लंबायमान घातक अंश को डार कहते हैं। नीचे लिखे अनुसार मूठ के नौ अंग और डार के छः अंग माने गए हैं। यथा—

पराज चाक चिंजुक गटा अमियाँ बौंडी फूल;
कंठ कटोरी ये सखी गिनता नौ नग मूल।
पीठ बाढ़ मैदन अरु और डार डस जान;
ये बाने तलवार के पुनि षट अंग प्रमान।

ख़ैर, इस निष्प्रयोजनीय कथा को यहीं छोड़कर अब हम अपने उद्दिष्ट विषय की ओर झुकते हैं।

बंदूक़ या बाण के चलाने से तलवार का चलाना नितांत भिन्न है। जहाँ बंदूक़ की साधना में दृष्टि की एकाग्रता और संपूर्ण शरीर के अवयवों की स्थिरता आवश्यक है, वहाँ तलवार के अभ्यास में दृष्टि और शरीर की अति चंचलता आवश्यक है। परंतु श्वास-प्रतिरोध की करामात दोनों में एक-सा काम देती है। जब श्वास को रोककर भरपूर हाथ मारा जायगा, तभी साधक अपेक्षित मर्म-स्थान पर घात कर सकेगा, और पुनः श्वास खींचने के साथ-साथ हाथ की खींच हो सकेगी। यदि इस क्रिया में गड़बड़ हुई, तो हाथ पट पड़ जाना और तलवार का लक्ष्य में अटक जाना सर्वथा संभव है। ख़ैर, यह बात तो बहुत पीछे की है। अभ्यास करनेवाला जब कृत्रिम लक्ष्य का घात करने लगेगा, तो ज़रा-सा ध्यान देने पर उसे इस बात की बारीकी समझ में आ जायगी। सबसे पहले तो यह जानना चाहिए कि तलवार की शिक्षा का श्रीगणेश कहाँ से होता है।

तलवार के अभ्यास की इच्छा रखनेवाले को सबसे पहले पैंतरे बदलना सीखना चाहिए। पैंतरे सीखने की अति सरल युक्ति यह है कि अभ्यास करनेवाला किसी समभूमि पर तीन-तीन फ़ीट की लंबाई-चौड़ाई का एक चतुष्कोण (Squire) खींचकर उसके चारों कोनों पर अपने पैर रखने योग्य चार चक्र बना ले, और उक्त चतुष्कोण के किसी एक रुख़ को शत्रु-मुख मानकर बराबर

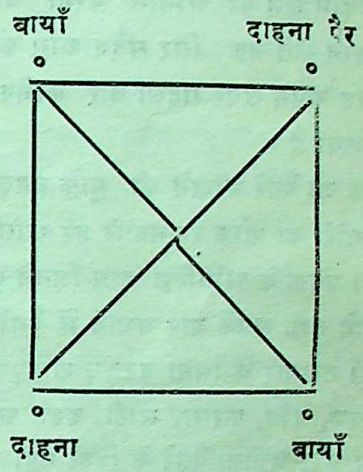

वाले दो चक्रों में आगे-पीछे पैर करके, ख़ूब तनकर खड़ा हो जाय। संभवतः आरंभ में दाहना पैर आगे और बायाँ पैर पीछे रक्खे, तो उत्तम है। खड़े होने का नियम यह है कि अगले पैर का घुटना टेढ़ा हो, और पिछला पैर सीधा रहे। सीना ऊपर को उभड़ा हुआ और निगाह सीधी रहनी चाहिए। इसी अवस्था में अगले पैर को कम-से-कम ज़मीन से एक फ़ुट ऊँचा उठाकर दूसरी तरफ़ के पिछले चक्र में रक्खे, और पिछले पैर को अगले चक्र में रखकर उसी रीति से खड़ा हो, जैसा पहले कहा गया है। अगर चारों चक्रों का तीन-तीन फ़ीट का फ़ासला साधक के मन के अनुसार कुछ अधिक है, चक्रों के अदल-बदल में उसका शरीर झोंका खाता है, तो चतुष्कोण का विस्तार कम भी किया जा सकता है।

ऊपर बताई हुई विधि से दस-बीस मिनट रोज़ाना एक सप्ताह तक अभ्यास करने से जब पैंतरा साफ़ हो जाय, तब उड़ान का महावरा डालना चाहिए, याने अगले पैर को अपनी जगह से न उठाकर, पिछले पैर को इस प्रकार आगे बढ़ाकर ले जाय कि दोनों जाँघों की क़ैंचीसी बनकर पिछला पैर अगले के बराबर आ पहुँचे। तब एकदम अगले पैर को ऊँचा करके, आगे को बढ़ते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही ताक़त-भर पिछले पैर को भी ज़मीन से उठाकर आगे को फेंके। परिणाम यह होगा कि अगला पैर पीछे रह जायगा, और पिछला पैर आगे पहुँच जायगा। इस क्रिया से साधक इतनी ज़मीन जीत जायगा कि कोई दौड़कर दस क़दम में भी नहीं जा सकता। यह शत्रु पर सहसा वार करने की क्रिया है। इसी प्रकार पैतरे बदलते हुए दोनों पैरों की क़ैंची बाँधकर एकदम पीछे को उड़ान लेने का अभ्यास करना चाहिए। परंतु पिछली उड़ान लेते वक़्त सिर सदैव आगे को ही रहना चाहिए। यह अपने ऊपर सहसा वार करनेवाले शत्रु से बचने की क्रिया है।

यहाँ तक जो पैतरे बदलने की युक्ति बतलाई गई है, वह सिपाहगीरी का शौक़ रखनेवाले हर ख़ास-व-आम के काम की है। बंदूक़ के अतिरिक्त अन्य जितने कुछ शस्त्र हैं, सबके चलाने तथा सबके वार बचाने में पैतरे की क्रिया प्रधान है। तलवार के सिवा बरछी, शक्ति, पास, गदा, मुग्दर, गुरज, दाँव, फरसा, लाठी, डंडा आदि किसी का चलाना और बचाना पैतरे के बिना नहीं हो सकता। जो व्यक्ति पैतरे बदलने में जितना कुशल होगा, वह उतनी ही हस्त-लाघवता-पूर्वक शत्रु या शिकार पर वार करके अपना बाल-बाल बचाव कर सकेगा। किंतु हम यहाँ तलवार के लक्ष्यवेध का वर्णन कर रहे हैं, इसलिये इतर बातों का लिखना निष्प्रयोजनीय समझकर फिर मुख्य विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

पैतरे का अभ्यास करते समय ही यदि अभ्यास करने वाला तलवार या तलवार के नाप की याने पृथ्वी से अपनी कमर तक लंबी लकड़ी को हाथ में रक्खे, तो और भी अच्छा है। तलवार की मूठ को हाथ से पकड़ने की विधि यह है कि पंजे को जोड़वाली गाँठों के बाद की बीचवाली गाँठें तलवार की धार की सीध में रहनी चाहिए, और अँगूठे को अनामिका की मध्यवाली गाँठ तक पहुँचाकर मूठ को कसकर पकड़ना चाहिए। यदि तलवार हाथ में ज़रा भी ढीली रही या मूठ पर हाथ का पंजा भीतर या बाहर पड़ गया, तो अपेक्षित लक्ष्य पर लगते ही तलवार पट पड़ जायगी; अच्छा ताक़तवर जवान भी तलवार का वार करके बकरे का बाल बाँका नहीं कर सकेगा। अतएव तलवार को हाथ में लेकर, मूठवाली मुट्ठी को अपनी बाईं ओर से सटाकर, तलवार के मध्य-भाग को भुज-मूल पर आश्रय देते हुए सिंह-स्थिति से तनकर खड़ा होना चाहिए। यह पैतरा बदलते समय का पोज़ीशन है। परंतु पैतरा बदलकर ज्यों ही सीधे खड़े हो, त्यों ही तलवारवाले हाथ को सामने की तरफ़ लंबा पसार दो। परंतु मूठवाली मुट्ठी ठीक नाभी की सीध में रहे, और तलवार का अंतिम भाग नाक की सीध में हो। तात्पर्य यह कि कमर से लेकर सिर तक सारा शरीर तलवार की आड़ में आ जाना चाहिए, और तलवार के द्वारा दोनों नेत्रों की दृष्टि अलग-अलग काम करने के लिये अलग-अलग होकर एक ही लक्ष्य पर आ लगनी चाहिए। यदि दो अभ्यासी एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़े होकर अभ्यास करें, तो अति उत्तम है।

एक दृष्टि को दो भागों में विभाजित करके, दोनों को एकत्र एक ही लक्ष्य पर रखकर, अलग-अलग काम लेने का यह मतलब है कि अपनी दोनों आँखों की ज्योति को शत्रु की आँखों में मिला देना चाहिए, और फिर जिस हाथ में तलवार है, उस ओर की आँख से देखना चाहिए कि शत्रु का कौन-सा अंग कमज़ोर या वार करने लायक़ है। पुनः दूसरी आँख से यह देखना चाहिए कि शत्रु अपने किस अंग को लक्ष्य कर रहा है, एवं वह किस मतलब से, किस रुख़ को चाल देकर, क्या करना चाहता है। ध्यान रहे, जब तक नज़र से नज़र मिली रहेगी, कैसा ही प्रबल शत्रु हो—मनुष्य हो या पशु—आक्रमण नहीं कर सकेगा। अपनी इस बात की सार्थकता के लिये हम यहाँ एक शृंगार-रस की मिसाल देते हैं। यथा—

भय विषाद आलप अमल, सुख दुख हेत अहेत;
मन महीप के आचरन, दृग दिमान कहि देत।

पैतरे की अदल-बदल, उड़ान और दृष्टि की एकाग्रता का कुछ अभ्यास हो जाने के बाद तलवार के ख़ाली दाँव का अभ्यास करना चाहिए। तलवार के दाँव, घात या वार को 'हाथ' कहते हैं। तलवार के असली हाथ तीन हैं। यथा—तमाचा, कम्मर और सिर। इनके सिवा चीर, हूल और बाहरा, ये तीन उपहाथ हैं। ये उपहाथ इस लिये माने गए हैं कि मौक़ा पड़ने पर इनसे काम चल सकता है। परंतु ये शक्तिया घातक नहीं है, अर्थात् इनसे लक्ष्य घायल हो सकता है, न कि दो टूक।

तमाचा—तलवार के सब हाथों में तमाचा सर्वश्रेष्ठ, अग्रगण्य एवं जेठा हाथ माना गया है। कारण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवार प्रायः कमर के बाएँ तरफ़ बाँधी जाती है। मौक़े पर दाहने हाथ से मूठ पकड़कर म्यान से खींचते ही तमाचे का वार स्वभावतः भर जाता है, याने जिस तरफ़ बाएँ अंग पर लटकती या बँधी हुई तलवार को म्यान से पूरा खींचा जाता है, तब मूठवाली मुट्ठी सिर के बराबर आ पहुँचती है। उसी क्षण मुट्ठी को कंधे के पीछे तक ले जाने से और तलवार को पीछे की तरफ़ झोंक देने से तमाचे का वार भर जाता है, और इसके शत्रु की गरदन के काट और जनेऊ-उतार (आड़ा चीरना), दो वार सरलता से हो सकते हैं। यदि इन दोनों का मौक़ा नहीं है, तो मूठवाले हाथ को अपने सिर पर ले जाकर नाक की सीध से सीधा हाथ बाहने में सिर का वार होता है। यदि यह भी असंभव हो, तो बाएँ कंधे की तरफ़ मूठ ले जाकर और तलवार की नोक को पीठ पीछे दाहने कंधे तक या दाहनी खुटी तक झोंक देकर वार करने से बाहरा हाथ का वार हो सकता है। बाहरे हाथ को तमाचे का ही दूसरा भेद समझना चाहिए। जब लक्ष्य अपने दाहने रुख़ पर हो, तब बाहरा वार ही काम देता है, और जब लक्ष्य बाएँ रुख़ हो, तब दाहना तमाचा काम देता है। इस हाथ के संबंध में विशेष यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि दाहने तमाचे का वार भरते समय बायाँ पैर आगे रहना चाहिए; परंतु वार करते ही दाहना पैर आगे हो जाना चाहिए। इससे एक तो पूरी ताक़त पड़ेगी ; दूसरे, खींच पूरी हो सकेगी ; तीसरे, अपना बायाँ अंग अपने ही हथियार के आघात से बचेगा। इसी तरह जब बायाँ तमाचा याने बाहरा वार भरा जाय, तब दाहना पैर आगे रहना चाहिए। परंतु वार होने के साथ ही बायाँ पैर आगे और दाहना पीछे हो जाना चाहिए। अगर घोड़े के ऊपर से वार किया जा रहा है, तो हाथ करनेवाले सवार को घोड़े की दाहनी-बाईं बाग का ख़याल रखना चाहिए। घोड़े की बाग का विशेष विवरण घुड़सवारी के लेख में दिया जायगा।

कम्मर—तमाचे के बाद कम्मर के हाथ का नंबर आता है। इसका एक स्वाभाविक नियम से संबंध है। आप देखेंगे, जब साधक खड़ा होकर दाहने या बाएँ किसी तमाचे का वार करेगा, उसका हाथ—लक्ष्य को वेध कर या ख़ाली—उसकी कमर तक आ जायगा। उसी समय मूठवाली मुट्ठी को चित से पट या पट से चित करने से ज्यों ही तलवार की धार बाहरी पड़े, बराबर का वार होता है, और यह वार प्रतिपक्षी की काँख पर पड़कर उसके कमर के ऊपरवाले हिस्से को सरलता से काट सकता है। यह मनुष्य या पशु किसी का भी अति सुकोमल मर्म-स्थान होता है। इस स्थान को भंडारा कहते हैं। अतः भंडारे का काट करनेवाले कम्मर के हाथ को भंडारा भी कहते हैं। इसका काट एक-सा बराबर होता है। प्रायः रीछ, तेंदुआ और शेर पर, जब ये जंतु दो पैरों से खड़े होकर आक्रमण करते हैं, यही हाथ मारा जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिपक्षी योद्धा यदि क़द में लंबा है, तो भी अंदर पैठकर सरलता से भंडारे का वार किया जा सकता है। शत्रु से मल्ल-युद्ध होते समय कटार, छुरा, चाक़ू आदि से प्रायः भंडारे पर ही वार किया जाता है। पृथ्वीराजरासो के कुछ छंद देखिए—

आकाश सीस दढ़ै प्रचंड। जमरूप जांव ताड़ंत तुंड।
इक्यौ सुराय संजम कुँआर। छुट्यौ सुतेज जनु तीर तार ॥१९॥
भए लत्थ वत्थ नर जीव जोध। नृप अग्ग केल जनु मल्लक्रोध।
गलबांह घल्ल दब्यौ सु सूर। फारयौ सु उदर जम दाढ़ पूर॥२०॥
हथयार एक के हरिय कीन। पय हेत्थ अंखि कर फन्न हीन।
आए सुदौरि सब सत्थ जाम। लंगा सधन्न हम कहिय स्वांम॥

सर—कम्मर या भंडारे का वार होने पर हाथ अपने-आप खींच की झोंक से अपने सिर पर आ जाता है। अस्तु, अपने सिर के ऊपर से शत्रु के सिर पर जो वार किया जाता है, उसे 'सर' कहते हैं। यह वार एक हाथ से और प्रायः दोनों हाथों से भी किया जाता है। इस वार का नाम 'सर' होते हुए भी आख़िरी दरजा इस कारण दिया गया है कि परस्पर के युद्ध में यह बहुत कम काम में आता है। यह वार प्रायः उसी हालत में हो सकता है, जब या तो शत्रु क़द में छोटा हो, या अपना वार ख़ाली देने के लिये बैठक ले या झुके। वस्तुतः इस वार को अधिकतर घुड़सवार ही पैदल शत्रु पर अधिक प्रयोग में ला सकते हैं। इसके अतिरिक्त शिकार के खेल में सुअर, संबर और चीतल आदि जंतुओं पर 'सर' का वार अच्छा कारगर होता है। इस वार की प्रायः यह क्रिया है। अपने एक हाथ या दोनों हाथों को—जिससे या जिनमें तलवार की मूठ जकड़ी हुई है—ठीक अपने सिर के ऊपर ले जाकर इस ढंग से सीधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार करना चाहिए कि तलवार लक्ष्य को काटकर या ख़ाली हाथ छूटकर अपने दोनों पैरों के बीच में आवे, ताकि अपने दोनों पैर अपने ही वार से बच जायँ। इसमें पैतरे की रद्दोबदल न होकर दोनों पैर बराबर पर कुछ अंतर से रहने चाहिए, और वार को पूर्ण घातक बनाने के लिये अपने संपूर्ण शरीर के भार से काम लेना चाहिए।

उपहाथ—पहले कहा जा चुका है कि तीन असली हाथ हैं, और तीन उपहाथ हैं। उपहाथ या उपवारों में बाहरे का विवरण तमाचे के बयान में हो चुका है। रहे शेष दो हाथ—चीर और हूल। अस्तु, चीर वह वार है, जिससे शत्रु पर उसकी दोनों जाँघों के बीच वार करके उसको बीच से चीरने का यत्न किया जाय। परंतु यह कोरा यत्न-ही-यत्न है। इसमें पूरी सफलता कभी नहीं होती। हाँ, शत्रु की जाँघों के मध्यवर्ती मर्म-स्थान में आघात पहुँचने से वह बेकार अवश्य हो जाता है। इस वार का प्रयोग भी प्रायः उसी दशा में हो सकता है, जब वार करने वाला या तो घायल होकर लेटा हो, या अपने प्रतिपक्षी के मुक़ाबले में बहुत नीचे स्थान में हो। यह वार, कठिन समय पर प्रयोग में आनेवाला और मर्म-स्थान पर चोट करनेवाला होने पर भी, उपहाथ क्यों माना गया, इसका यही कारण है कि यह पूर्ण घातक न होकर अधूरा काम करनेवाला है। यही दशा इसके सहयोगी हूल के हाथ की है। यह वार प्रायः सीने और पेट के जोड़ पर, कलेजा फाड़ देने के लिये, किया जाता है। परंतु अव्वल तो मुक़ाबले के युद्ध में—ख़ासकर जब कि प्रतिद्वंद्वी ढाल से आच्छादित हो—इस वार का बहुत कम मौक़ा हाथ आता है। दूसरे, सभी तलवारें ऐसी नहीं होतीं, जिनसे हूल का वार हो सके। जो तलवारें लचीली होती हैं, वे नोक के बल ठोस चीज़ में कभी घुसेड़ी नहीं जा सकतीं।

यह जो वार बतलाए गए हैं, इन्हें तो प्रारंभिक शिक्षा के सरल पाठ समझिए। बाक़ी वार तो मौक़े और हिम्मत से संबंध रखते हैं। परंतु अच्छा अभ्यास होने और आप अपने हाथ का पूरा भरोसा होने पर हिम्मत भी काम दे जाती है। इस प्रकार के अभ्यास के तरीक़े नीचे लिखे जाते हैं।

तलवार का अभ्यास करनेवाले को चाहिए कि पैतरे और उड़ान का अभ्यास हो जाने के बाद तलवार को हाथ में लेकर उपर्युक्त वारों के अनुसार ख़ाली हाथ चलाने का महावरा डाले। साथ ही पैतरे भी बदले। जब शनैः-शनैः ख़ाली हाथ का इतना अभ्यास हो जाय कि सहसा या भरपूर वार करने से भी तलवार छूटकर अपने शरीर में लगने की आशंका न रहे, तब काट का अभ्यास करना चाहिए।

काट का अभ्यास करने का अति उत्तम और सुगम तरीक़ा यह है कि केले के ऐसे वृक्ष को बग़ीचे से ले आवे, जो फूल चुका हो। उसके पत्तोंवाले सिरे को छाँटकर केवल मूल दंड को मज़बूती के साथ ज़मीन में गाड़ दे, और उसे प्रतिपक्षी मानकर उस पर तमाचे और कम्मर के वार आज़मावे। वार करते समय पैतरे के साथ अपने शरीर के बल का झोंका देने और वार पड़ते ही अपने शरीर की पिछली झोंक के साथ हाथ को खींचने का सदैव ध्यान रक्खे। ऐसा न करने से तलवार का लक्ष्य में अटक जाना बहुधा संभव है। पुनः वार करने के पूर्व ही लक्ष्य के स्थान-विशेष की नज़र से जाँच ले कि अमुक अंग पर वार करना है, और जब उसी जगह वार पड़कर कदली-खंभ पूरा-पूरा कटने लगे, तब समझे कि कुछ सफलता हुई। 'सर' के हाथ का अभ्यास करने के लिये लक्ष्य को कमर के बराबर ऊँची वस्तु पर आड़ा रखकर अभ्यास करना चाहिए। कुछ दिनों में जब अपनी जाँघ के बराबर मोटा खंभ एक ही वार में दो टूक होने लगे, तब उसमें सीसे का गज और फिर लोहे की सलाख़ डालकर काट करना चाहिए। जब वह भी कटने लगे, तब समझना चाहिए कि अब हमारे हाथ से हड्डीवाला अंग भी कट सकेगा। इसके बाद मिट्टी में रुई मिलाकर और उसे ख़ूब कूट-कूटकर उस मिट्टी का कुंदा-नुमा एक तूदा-सा बना ले। उस तूदे के भीतर केले के वृक्ष के टुकड़ को दबा दे। फिर उस पर भरपूर वार का अभ्यास करे। जब वह भी अच्छी तरह से कटने लगे, तब रोहू-मछली के मुख में रस्सी लगाकर उसे टाँग दे, और उस पर तलवार के वार करे। जब रोहू-मछली भी एक वार में दो होने लगे, तब अभ्यास करनेवाला अपने को पूरा खिलाड़ी समझे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ज़ल-वध

[चित्रकार—श्रीनारायणप्रसाद वर्मा]

दाबि यों बैठो नरिंद अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछाड्यो ।

महाकवि भूषण

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ज़िंदा जानवरों पर हाथ डालनें का साहस करे। यदि मछली के काट के अभ्यास के बाद पहले बंदूक़ से मारे हुए जानवरों पर हाथ साफ़ कर ले, तो और भी उत्तम है।

ऊपर बताए हुए सब प्रकार के अभ्यासों के लिये छः महीनें का समय काफ़ी है। ज़्यादा या कम समय लगना प्रायः अभ्यास करनेवाले की बुद्धि पर निर्भर है। कारण, हरएक काम में बुद्धि-बल से ही सफलता होती है। इसीलिये कहा गया है कि अक़्लमंदाराँ इशारा काफ़ी अस्त (A word to the wise is enough)। इसके अतिरिक्त सदैव ध्यान में रखनें योग्य एक बात और भी है कि—

लिखा देख भूलौ जिन कोई ;
गुर बिन ज्ञान सिद्ध नहिं होई।

अस्तु, जिस प्रकार बंदूक़ और बाण के लक्ष्यवेध का गुर है—सुरत जुरत तुरत फुरत—उसी प्रकार तलवार, बरछा, शक्ति आदि के प्रहार की सफलता का गुर नीचे लिखा हुआ दोहा है—

सूरा अपने हृदय में, समझ देख यह बात ;
पग आगे पैंत रहत है, पग पाछे पत जात।

तात्पर्य यह कि जो आगे पैतरा बढ़ाकर हाथ मारेगा, वह सफलता प्राप्त करेगा। इसके विपरीत जो संकुचित-हृदय होकर प्रहार करते समय पैतरा बढ़ाने का साहस नहीं करेगा, उसका वार ख़ाली जायगा। इसी भाव को पुष्ट करनेवाली, हमारे देश की एक गँवारू मसल—"पहले मार पीछे सँभार"—विशेष ध्यान देनें योग्य है। इसका आशय यह है कि जब तुम मुक़ाबले में शत्रु को घात में पा जाओ, तब पहले अपना वार करनें से न चूको। परंतु वार करने के साथ ही अपने बचाव का भी ध्यान रखना ज़रूरी है। अपना बचाव ज़रूरी होते हुए भी उसे पीछे इस कारण रक्खा गया है कि वार करते समय यदि अपने बचाव पर ध्यान रहेगा, तो पग पीछे पड़नें के कारण हाथ पूरा नहीं बैठेगा। पुनः इसी बात को पुष्ट करनेवाली दूसरी कहावत यह है कि "मारकर टर जा—खाकर पड़ जा"। अर्थात् वार करके तुरत पीछे हट जाना चाहिए, और अगर अपना वार करते हुए यह संभव हो कि प्रतिपक्षी के वार से अपने को चोट पहुँचेगी, तो उसकी परवा न करनी चाहिए। हाथ मारकर हटना मसलहत है ; परंतु हाथ मारते ही यदि अपना मरना संभव है, तो मर जाओ, लेकिन अपनें बचाव की आशा में पड़कर अपने प्राणों के लोभवश हाथ को ढीला और वार को ख़ाली न पड़नें दो।

उपर्युक्त कड़खा (दोहा) सिपाहगिरी का मुख्य गुर है। सिपाही-पेशा आदमी को हमेशा रहीम का यह दोहा याद रखना चाहिए—

रन बन व्याधि बिपत्ति में, वृथा मरै जनि रोय ;
जो रच्छक जननी-जठर सो हरि गए कि सोय।

अस्तु, हृदय को दृढ़ और ईश्वर पर विश्वास करके (Heart within and God overhead) हथियार (अस्त्र-शस्त्र) को हाथ में लेना चाहिए, और शेर के मुक़ाबले का प्रबंध एवं साहस करके ख़रगोश के शिकार को जाना चाहिए। कारण, अस्त्र-शस्त्र येन केन प्रकारेण घातक यंत्र है। जिस प्रकार वे अपनें हाथ से चलाए जानें पर दूसरे का प्राण-हरण कर सकते हैं, वैसे ही वे अपने प्राणों का भी घात कर सकते हैं। इसलिये हथियार बाँधनेवाले को सदैव सचेत और सावधान रहना चाहिए। किसी भी हथियार का प्रयोग और उपयोग जानें विना उसे हाथ में लेना अपनी मौत आप बुलानें के बराबर है। इसी बात को शाहंशाह अकबर के प्रधान सेनानायक ख़ानख़ाना रहीम नें मीठी भाषा में कहा है—

लोहे की न लुहार की रहिमन कही बिचारि ;
जो हनि मारै सीस में ताही की तरवारि।

तात्पर्य यह कि भारत-सरकार नें कृपा-पूर्वक बंदूक़ के सिवा अन्य सब शस्त्रों के रखने और बाँधनें की आज़ादी दे दी है; परंतु जब तक हम उनके प्रयोग और साधन नहीं जानते, तब तक इस आज़ादी से कोई लाभ नहीं उठा सकते। यदि आज हम लोग प्रस्तुत आज़ादी से उचित लाभ उठानें की योग्यता अपनें में प्रमाणित कर दें, तो संभव है, कल हमको बंदूक़ें रखनें और उन्हें उपयोग में लानें की भी आज़ादी मिल जाय। हमारी इन बातों का चापलूसी से या किसी प्रकार की गरम-नरम पालिसी से रंच-मात्र भी कोई संबंध नहीं है। हम जो कुछ भी लिख रहे हैं, शुद्ध हृदय से, केवल इस धारणा से लिख रहे हैं कि स्वदेश की स्वतंत्रता का जो महान लक्ष्य है, वह केवल व्याख्यान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंचों पर भाषणों द्वारा नहीं वेधा जा सकता। उसके लिये शस्त्र-विद्या में अभ्यास की ही परम आवश्यकता है।

यह निश्चय है कि इस छोटे-से लेख में लक्ष्यवेध की जो संक्षिप्त और सूक्ष्म क्रियाएँ बतलाई गई हैं, केवल उनको पढ़ लेने से कोई सिपाही नहीं बन सकता। इसको तो "मास्टर आफ़ आर्ट" पद की ए, बी, सी, डी, समझना चाहिए। परंतु यह भी शर्त है कि यदि प्रेमी पाठक इसका प्रेम से अध्ययन करके, इसके अनुसार अभ्यास करने की ठान लेंगे, तो उनके लिये आगे की कोर्सबुक तैयार करने को अनेक सज्जन तैयार हो जायँगे; बल्कि आश्चर्य नहीं कि सरकार स्वयं इस काम में सहायता देने को तैयार हो जाय। समझने की बात है कि प्रत्येक देश की रक्षा उसी देश के उत्साही नागरिकों पर निर्भर रहा करती है।

खेद है, लक्ष्यवेध का वर्णन लिखते हुए हम स्वयं अपने लक्ष्य को भूल गए। इसके लिये पाठकों से क्षमा चाहते हैं। तलवार का वर्णन समाप्त करके हमको कुंत और गदा का बयान लिखना चाहिए था, परंतु नशे की झोंक में न-जाने क्या-क्या लिख गए। ख़ैर, लेख-विस्तार के भय से इस लेख को इसी जगह समाप्त करते हैं। यदि आप लोगों की रुचि एवं प्रवृत्ति इस ओर हुई, तो सावकाश इसी सिलसिले में अन्य लेख लिखकर तलवार के अतिरिक्त अन्य शस्त्रों के संचालन की विधि ब्योरेवार लिखेंगे। हमारा विनीत वक्तव्य केवल इतना ही है कि राज्य-श्री और प्रतिष्ठा की प्राप्ति माँगने से नहीं हो सकती; इसके लिये योग्यता और आत्मबल की सिद्धि ही प्रयोजनीय है। पुनः राज्य-प्राप्ति की योग्यता की जो एकमात्र कुंजी शस्त्र-विद्या है, उसके अभ्यास और साधन से रहित होकर स्वराज्य-प्राप्ति की आशा केवल दुराशा-मात्र है। अतः ब्रिटिश-सरकार की छत्रच्छाया में हमको जो सुअवसर प्राप्त है, उसे व्यर्थ न खोकर स्वराज्य-प्राप्ति और उसकी रक्षा की उचित योग्यता संपादन करनी चाहिए। कारण, किसी महत् पद या लक्ष्य का प्राप्त करना एक बात है, और उसकी रक्षा एवं निर्वाह करना दूसरी बात है। परंतु राज्य-शासन के संबंध में दोनों बातों की कुंजी एक-मात्र शस्त्र-विद्या है। इस कारण स्वराज्य के पक्षपाती सज्जनों को इस विद्या की उन्नति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

संभव है, नशे की झोंक में हम कुछ अंट-शंट लिख गए हों; परंतु आप तो नशे में नहीं हैं। हमने तो नीचे लिखे हुए एक श्लोक की सार्थकता पर विश्वास करके इस प्रकार के लेख लिखने का साहस किया है। यदि आपके पास हमारी बातों का खंडन करनेवाले प्रमाण मौजूद हों, तो आइए, मैदान में उतर आइए, और नीचे लिखे श्लोक को व्यर्थ प्रमाणित करने के लिये क़लम उठाइए—

शस्त्रविद्या स्वभावेन शास्त्रेभ्योऽस्ति महीयसी;
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।
(सुभाषितावली, काव्यलिंग अलंकार)

कन्हैया

बनजारा

१

वह हैं भूले स्वप्न हमारे।
पथिक! हँसे थे उस दिन तुम भी
समझ हमें माया के मारे।

२

संध्या के संत्रस्त ताप में,
आले-से शशि-कर-कलाप में;
किसी दिवस ठिठुरा करते थे,
इस तटिनी के बैठ किनारे।

३

थिरक निकुंजों में निद्रा के,
धोखे में आकर आशा के;
पथ टटोलते हुए खोजते,
यह प्रतिमाएँ पलक पसारे।

४

भिक्षुक के विनीत वैभव में,
पाया—और खो दिया लव में—
अस्त हो गए दिवा-स्वप्न-से,
लोभी की आँखों के तारे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

जिस मद की स्पर्द्धा उदार है,
आज उसी मद का उतार है;
आज देखते जाओ उनको,
इस खँड़हर में आसन मारे।

६

तब यद्यपि महँगा सोना था,
किंतु न जीवन का रोना था;
तब न आज की भाँति घूमते थे,
बन बन-बन के बनजारे।

७

उधर आप पूजक अरूप के,
और इधर हम भक्त रूप के,
नहीं देखते, बने हमारे
ठाम - ठाम में ठाकुरद्वारे।

दुर्गादत्त त्रिपाठी

किरातार्जुनीय और शिशुपाल-वध

माघुरी के 'विशेषांक' में महाकवि भारवि के किरातार्जुनीय-काव्य पर संक्षिप्त विचार कर चुके हैं। इस काव्य से मिलता-जुलता संस्कृत-साहित्य में एक और काव्य है, जिसका नाम है 'शिशुपाल-वध'। इसके रचयिता महाकवि माघ हैं, जो भारवि के पश्चात्, दो शताब्दियों के मध्य—ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी—में हुए हैं। यह दोनों कवि सरस्वती के वर पुत्र, अखिल शास्त्र-निष्णात और विशेषतः राजनीति से प्रेम रखनेवाले हैं। इन (दोनों) के काव्यों (किरातार्जुनीय और शिशुपाल-वध) की गणना बृहत्त्रयी में है, तथा समग्र भारत में इनका प्रचार है। इन दोनों काव्यों पर प्रकृत लेख में तुलनात्मक विचार किया जायगा।

माघ ने किरातार्जुनीय का ख़ूब अध्ययन किया होगा, और अध्ययनोपरांत उनके हृदय में इच्छा उत्पन्न हुई होगी कि मैं भी किरातार्जुनीय के टक्कर का काव्य लिखूँ, और साहित्यिक जगत् में उनके समान ही यश प्राप्त करूँ। तदनुसार उन्होंने शिशुपालवध की रचना की। रचना में 'किरातार्जुनीय' लक्ष्य रहा है। कथा-भाग में भी सादृश्य है। भारवि की भाँति माघ ने भी कथा-भाग भारतीय उपाख्यान से लिया है। भारतीय कथानक इतना ही है कि महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ के उपलक्ष्य में समग्र राजमंडल को निमंत्रित किया था। उसमें सभी देशों के नृपतिगण सम्मिलित हुए थे। सभा में पांडवों की ज़्यादा आव-भगत हुई। कृष्ण को अर्घ्य प्रदान किया गया। यह कार्य चेदिराज शिशुपाल को असह्य हुआ। उसने भरी सभा में इसका विरोध किया, तथा इसके समर्थन करने वाले भीष्म की भी निंदा की। जब कृष्ण को उसने सैकड़ों गालियाँ दीं, तब उन्होंने सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला। माघ ने इतने कथा-बीज को किरातार्जुनीय के आधार पर विस्तृत किया है। किरातार्जुनीय में गुप्तचर आता है, और दुर्योधन के राज्य का वर्णन करता है। माघ में नारदजी आते हैं; वह शिशुपाल के अत्याचारों का वर्णन करते हैं। किरातार्जुनीय में जिस तरह द्रौपदी और भीम ने असमय में युद्ध का प्रस्ताव छेड़ा है और युधिष्ठिर ने उसका खंडन किया है, उसी तरह शिशुपाल-वध में मंत्रणा के अवसर पर कृष्ण और बलदेव ने युद्ध के लिये सम्मति दी है और उद्धव ने विरोध किया है। किरातार्जुनीय में, युद्ध से प्रथम, दूत आता है। शिशुपाल-वध में भी युद्ध से प्रथम दूत के आने का वर्णन है। किरातार्जुनीय में हिमालय-पर्वत का वर्णन है, शिशुपाल-वध में रैवतक का। दोनों काव्य श्रीशब्द तथा वंशस्थ वृत्त से प्रारंभ हुए हैं। कुसुमावचय, जल-क्रीड़ा, संध्या, प्रभात, चंद्रोदय, पानगोष्ठी, युद्ध तथा ऋतुओं का वर्णन दोनों काव्यों में समान रूप से है। दोनों में वीर-रस प्रधान है। उभयत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-काव्य भी प्रयुक्त हुआ है। किरातार्जुनीय में व्यास के आने पर जिस तरह युधिष्ठिर ने शिष्टाचार दिखलाया है, उसी तरह शिशुपाल-वध में नारद के आने पर श्रीकृष्ण ने। दोनों काव्यों के सदृश वर्णनों को अब हम विशेष-रूप से दिखलाते हैं।

युद्ध-मंत्रणा

माधुरी के 'विशेषांक' में भीम और युधिष्ठिर के संभाषणों को हम लिख चुके हैं। संक्षेप में फिर यहाँ लिखे देते हैं। भीमसेन के संभाषण का सारांश यह है कि शत्रुओं की बढ़ती हुई प्रभु-शक्ति के प्रति उपेक्षा करना ठीक नहीं। यद्यपि हम लोग निस्सहाय हैं, तथापि प्रजा हमारा ही साथ देगी। यदि कहिए कि वनवास की अवधि के पश्चात् कौरव स्वयं राज्य लौटा देंगे, सो इसकी आशा नहीं; क्योंकि दुर्योधन राजलक्ष्मी को भोगकर उसको कभी न छोड़ेगा। अथवा वह लौटा भी दे, तो फिर आपके भाइयों ने किया ही क्या। उनका भुज-बल व्यर्थ है। सिंह स्वयं हाथियों को मार कर अपनी जीविका उपार्जन करता है। तेजस्वी पुरुषों की वृत्ति दूसरों के अधीन नहीं होती है। अतः युद्ध करना ही समुचित है। युद्ध में, मालूम नहीं, किसकी जीत हो? इस संदेह को हृदय में लाना ही नहीं चाहिए। अभिमान को धन माननेवाले वीर चंचल प्राणों से स्थायी यश का ही संग्रह करते हैं। वे यश को तो मुख्य और विद्युत्-विलास के समान चंचला लक्ष्मी को गौण समझते हैं। जलती हुई आग पर कोई पैर नहीं रखता; ख़ाक के ढेर पर सब रखते हैं। पराभव के भय से यानी सुख-पूर्वक प्राण छोड़ देते हैं, पर तेज को नहीं छोड़ते। किस फल की अभिलाषा से गरजते हुए मेघों की ओर सिंह दौड़ता है? महापुरुषों का स्वभाव ही है कि वे शत्रु की उन्नति को नहीं सह सकते। इसलिये प्रमाद से उत्पन्न मोह को छोड़कर युद्ध कीजिए।

युधिष्ठिर का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—मनुष्य को एकाएक कार्य नहीं करना चाहिए। अविवेक परम आपत्तियों का स्थान है। विचारकर कार्य करनेवाले की सेवा संपत्तियाँ स्वयं करती हैं। पवित्र शास्त्र का अनुशीलन शरीर को भूषित करता है। शांति उसका आभूषण है। शांति का भूषण पराक्रम है, और पराक्रम का भूषण नीति-संपादित सिद्धि ही है। विजिगीषु राजा को पहले क्रोध को जीतना चाहिए, पश्चात् महत्त्वपूर्ण फल-सिद्धि को (जिसका उत्तरकाल में नाश न हो) लक्ष्य कर उपाय से पराक्रम का उपयोग करना चाहिए। क्षमा के समान शत्रुओं को नाश करनेवाला और कोई साधन नहीं। अभी उपेक्षा करने पर भी दुर्योधन संपूर्ण राजाओं को कभी वश में न कर सकेगा। यादव लोगों का, जो हम लोगों के स्वाभाविक स्नेह से बँधे हुए हैं, हम सबके प्रति जैसा व्यवहार रहता है, वैसा दुर्योधन से नहीं। समय पड़ने पर वे और उनके संबंधी हम लोगों से मिल जायँगे। दुर्योधन मद से उद्धत है। वह राजाओं का अपमान किए विना न रहेगा। अपमानित राजाओं में भेदनीति खूब कारगर होती है। अमात्य आदिकों में थोड़ा भी भेद राजा का नाश कर डालता। वृक्षों की डालियों की रगड़ से उत्पन्न आग संपूर्ण पर्वत को जला डालती है। अविनीत शत्रु की उन्नति की उपेक्षा करता छिद्र के उपस्थित होने पर उस पर चढ़ाई कर दे, तो वह सुगमता से जीता जा सकता है। इस समय युद्ध के लिये अनुकूल वातावरण नहीं है।

(किरातार्जुनीय)

श्रीकृष्ण की सम्मति

शिशुपाल के अत्याचारों से क्रुद्ध श्रीकृष्ण अंतरंग-सभा में कहते हैं—जिस प्रकार नाटक में नाटकीय वस्तु के प्रवेश के लिये पूर्व रंग होता है, उसी प्रकार मेरा कथन आप लोगों की सम्मति को अवसर देने के लिये होगा। इस समय विचारणीय यह है कि युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिए, अथवा शिशुपाल का दमन करना चाहिए। मेरी सम्मति में रोग की भाँति बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि नीतिज्ञों ने शत्रु और रोग को समान कहा है। सात्वती का पुत्र (शिशुपाल) मेरे साथ शत्रुता का आचरण कर रहा है, इसके लिये मुझे खेद नहीं है। खेद यही है कि वह निरपराध जनता को सता रहा है। अतः उसी के दमन की चेष्टा करनी चाहिए। रह गया युधिष्ठिर का यज्ञ। वह हम लोगों के विना भी हो सकता है। युधिष्ठिर के वीर भ्राताओं ने दिग्विजय कर राजाओं से कर वसूल ही कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलदेवजी का मत

बलदेवजी ने कहा—कृष्ण के वचनों से मुझे विरोध नहीं है। उनके वचन सूत्र-रूप हैं। मैं उन पर भाष्य करूँगा। सुनो, छः गुणों (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय छः गुण कहलाते हैं) की तीन शक्तियाँ (प्रभुत्व, मंत्र और उत्साह ये तीन सिद्धियाँ कहलाती हैं) और तीन सिद्धियों की व्याख्या नीति-शास्त्र को पढ़कर कुबुद्धि भी कर सकती है। पर व्याख्या करनेवाला राजनीतिज्ञ नहीं कहला सकता। राजनीतिज्ञ वही है, जिसको कार्य-अकार्य का ज्ञान है। जिस प्रकार बौद्ध-शास्त्र में पंच-स्कंध (रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और वासना ये पंच स्कंध कहलाते हैं) के अतिरिक्त संपूर्ण शरीर में आत्मा कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार अंग-पंचक (कार्य के आरंभों का उपाय, सहायक, देश-काल-विभाग, अनर्थ-प्रतीकार और कार्य-सिद्धि अंग-पंचक कहलाते हैं) के अतिरिक्त मंत्र कोई वस्तु नहीं है।

पर मंत्र को शीघ्र कार्यान्वित करना चाहिए, अन्यथा भेद होने का डर रहता है। शत्रु जब तक एक भी है, तब तक सुख नहीं। अकेला राहु चंद्रमा को ग्रस लेता है। यदि कहिए कि शिशुपाल फूफू का लड़का होने से हमारा सहज मित्र है, उस पर चढ़ाई न करनी चाहिए, तो यह उचित नहीं है; क्योंकि शिशुपाल सहज मित्र होने पर भी अपने कार्य से शत्रु हो रहा है। उपकार करनेवाले शत्रु से संधि करनी चाहिए, न कि अपकार करनेवाले मित्र से। शत्रुता और मित्रता का लक्षण अपकार और उपकार ही है। शिशुपाल हमारा क्रिया-निवृत्त शत्रु है। रुक्मिणी-हरण करके आपने उसको विरोधी बनाया। जब आप भौमासुर जीतने गए, तब उसने द्वारका को घेर लिया। उसने हमारे साथ जो-जो अपकार किए हैं, उन्हें कहाँ तक कहें। बभ्रु-यादव की भार्या तक को हर लिया। सहनशील भी एक-आध बार ही क्षमा कर सकता है, बार-बार नहीं। शत्रु के अपमान से अपमानित पुरुष को धिक्कार है। उसने जन्म लेकर माता को ही काट दिया। पैर से दबी हुई धूलि सिर पर चढ़ बैठती है। अपमान होने पर भी शांत रहनेवाले से तो जड़ धूलि ही अच्छी है। शत्रु के प्रति कोमलता का फल स्पष्ट है। राहु चंद्रमा को जल्दी ग्रसता है, सूर्य को नहीं। पौरुष करनेवाले और न करनेवाले का दृष्टांत लीजिए—चंद्रमा मृग को गोद में लिए रहता है। इससे उसका नाम 'मृगलांछन' पड़ा। सिंह निर्दयता-पूर्वक मृग-यूथ को मारता है, इससे उसका नाम 'मृगाधिप' पड़ा। यदि कहिए कि राजनीतिज्ञों ने कहा है कि साम आदि तीन उपायों से काम चलावे, युद्ध न करे, सो इस नीति का यह अवसर नहीं। दमन से ही जो शत्रु ठीक करने योग्य है, उसके साथ साम-प्रयोग उलटा हानिकारक होता है। जिस आम-ज्वर में पसीना निकालना चाहिए, उसको जल से कौन सींचेगा। नीति-विशारद कहते हैं कि अपने अभ्युदय-काल में शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिए। कुछ नीतिकारों का कथन है कि शत्रु पर विपत्ति समय चढ़ाई करनी चाहिए। इस समय हमको दोनों अवसर प्राप्त हैं। शिशुपाल के मित्र जरासंध को भीम ने मार ही डाला है। अतः उस पर मित्र-विपत्ति पड़ी ही है। अपना अभ्युदय-काल है ही। युधिष्ठिर अपना यज्ञ करें, इंद्र स्वर्ग की रक्षा करें, और हम शत्रु को मारें। अपना-अपना स्वार्थ सभी सिद्ध करते हैं। अतः शीघ्र ही शिशुपाल पर चढ़ाई कर उसका दमन करना चाहिए।

उद्धव का परामर्श

उद्धव ने कहा—विजिगीषु राजा को बुद्धि और उत्साह दोनों की आवश्यकता है; क्योंकि बुद्धि और उत्साह ही संपत्ति के मूल हैं। उत्साहरूपी वृक्ष प्रज्ञा-मूल पर ही खड़ा होकर विशाल प्रभु-शक्ति को फलता है (बलदेव के भाषण में केवल उत्साह का प्राधान्य दिया गया है, अतः इन उक्तियों से उनके पक्ष का खंडन होता है), जिस प्रकार रसायन ओषधि को बल के अनुसार जो सेवन करता है, उसके अंग दृढ़ होते हैं, उसी प्रकार शक्ति का (प्रभाव, मंत्र और उत्साह) विचार करके जो राजा षाड्गुण्य (छः गुण) का उपयोग करता है उसके अंग—राष्ट्र के अंग मंत्री आदि—दृढ़ होते हैं। देश-काल को जाननेवाले राजा को न केवल क्षमा से ही कार्य लेना चाहिए, और न केवल क्रोध से ही, जैसे रस और भावों के मर्म को जाननेवाला कवि रचना में न केवल प्रसाद-गुण को ही लाता है, और न केवल ओज को ही। अपथ्य को सहन करता हुआ जैसे रोग समय पर कुपित हो जाता है, वैसे ही शत्रु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुराइयों को सहता हुआ राजा समय पर कोप करता है (बलदेव की इस बात का कि सहनशील भी बार-बार क्षमा नहीं कर सकता, उत्तर हो गया) ; मेरी सम्मति में इस समय चेदिराज (शिशुपाल) से युद्ध करना ठीक नहीं। उसे अकेला न समझना चाहिए। जैसे राजयक्ष्मा रोग-समूह होता है, वैसे ही चेदिराज भी राजाओं का समष्टि-रूप है। बाण उससे संधि कर लेगा। कालयवन, शाल्व, रुक्मिद्रुम आदि नृपति भी उसी का अनुसरण करेंगे। इस समय शिशुपाल के साथ ज़रा भी झगड़ा उन राजाओं को प्रज्वलित कर देगा, जैसे सूखी लकड़ियों को ज़रा-सी आग जला देती है। शिशुपाल के मित्र और तुम्हारे शत्रु शिशुपाल का साथ देंगे, और तुम्हारे मित्र और शिशुपाल के शत्रु तुम्हारा साथ देंगे। इस प्रकार समस्त राजमंडल को क्षुभित कर राजसूय-यज्ञ में विघ्न उपस्थित करोगे। जिससे अजातशत्रु (युधिष्ठिर) के प्रथम शत्रु बनोगे। खेद है कि अजातशत्रु अपने यज्ञ की धुरा को तुम्हारी सहायता से ही ढोना चाहते हैं। बली पुरुष देर करके भी शत्रुओं पर आक्रमण कर सकता है, पर विमन हुए मित्रों को मनाना बड़ा कठिन है। इसके अतिरिक्त आपने प्रतिज्ञा भी की है कि मैं शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करूँगा। पर इससे मेरा मतलब यह नहीं है कि शिशुपाल की सर्वथा उपेक्षा की जाय। प्रथम गुप्तचरों को भेजना चाहिए, जो शत्रुओं की स्थिति को जान आवें। कुछ गुप्तचर ऐसे होशियार भेजे जायँ, जिनको शत्रु न जान सकें, और वे शत्रुओं के यहाँ नौकरी कर उनके प्रकृति-वर्ग में भेद डलवा दें। कुछ गुप्तचरों को अपने मित्र-वर्गों में भेजना चाहिए, जो जाकर कहें कि राजसूय-यज्ञ में तैयारी करके आवें। शिशुपाल से विना चढ़ाई के ही युद्ध हो जायगा। कारण, पांडव आपमें विशेष भक्ति दिखलावेंगे, वह शिशुपाल-जैसे मत्सरियों को असह्य होगा। उस समय शत्रुओं में भी, जो अपने को जानते हैं, वह मिल जायँगे, जैसे कोयल कौओं को छोड़कर अपने में मिल जाती है। तब तुम्हारे असह्य पराक्रम की अग्नि में शत्रु लोग पतंगे हो जायँगे। अतः शिशुपाल के प्रति चढ़ाई न कर यज्ञ में ही सम्मिलित होना चाहिए।

(शिशुपाल-वध)

उपर्युक्त दोनों काव्यों के अवतरण पढ़ने से भली भाँति मालूम हो जाता है कि माघ ने किरातार्जुनीय की ही छाया लेकर भीम और उद्धव के संभाषणों की कल्पना की है। भारतीय मूल उपाख्यान में कृष्ण का उद्धव आदि से परामर्श लेने का उल्लेख नहीं है। भीमसेन की अंतरात्मा बलदेव के रूप में प्रतिबिंबित हुई है। दोनों बलियों का स्वभाव एक-सा ही है। दोनों के संभाषण में पौरुष-मात्र को प्राधान्य देकर युद्ध के लिये सम्मति दी गई है। युधिष्ठिर और उद्धव के कथनों में भी बहुत कुछ सादृश्य है। युधिष्ठिर ने भेद-नीति की सम्मति दी है, और उद्धव भी गुप्तचरों द्वारा शत्रुओं में भेद डलवाने को कहते हैं। अपने-अपने कथा-संदर्भ के अनुसार, भाषणों में विभिन्नता होने पर भी, तत्त्व-विनिर्णय एक-सा ही है। माघ ने छाया-मात्र अवश्य ली है (छाया लेना कवि का हक़ है—कविरनुहरति च्छायाम्) ; पर इसे हम निःसंकोच कह सकते हैं कि भीम की अपेक्षा बलदेवजी का भाषण अच्छा है। भीम में कोरा शौर्य है। वह शत्रु के बलाबल का विचार नहीं करते। वह मर मिटनेवाले आदमी हैं। राजनीति में ऐसे शौर्य का विशेष मूल्य नहीं है। इससे प्रजा और देश का अधिक लाभ नहीं हुआ है। बलदेवजी के कथन में भी पौरुष का प्राधान्य है ; पर वह किसी अंश तक नीति का पहलू लिए हुए हैं। यह दूसरी बात है कि उनकी राजनीति गहरी नहीं है। उनका मत युक्तियुक्त न होने पर भी सहसा युक्ति-संगत-सा प्रतीत हो पाठकों के हृदय को खींच लेता है। युधिष्ठिर के कथन से उद्धव का संभाषण गंभीर और कुछ अधिक नीति-पूर्ण है। दोनों कवियों ने 'राजनीति' की अच्छी व्याख्या की है ; पर माघ का पलड़ा कुछ झुका हुआ है।

श्रीकृष्ण द्वारा बलदेव के संभाषण का प्रस्ताव-स्वरूप कृष्ण का जो मत माघ ने प्रकट करवाया है, वह औचित्य-पूर्ण नहीं है। शिशुपाल-वध के नायक श्रीकृष्ण हैं। उनका मत अदूरदर्शिता-पूर्ण न होना चाहिए। माना कि भ्रांति मानव-स्वभाव-सुलभ है, और सत्परामर्श द्वारा उसका दूर करना गुण है, अवगुण नहीं ; पर कृष्ण का चरित बहुत ऊँचा है। कवि ने स्वयं उनको ईश्वरावतार माना है। पांडवों के प्राण-स्वरूप श्रीकृष्ण के मुख से यह नहीं अच्छा मालूम होता है कि "विनाप्यस्मद्वचः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः'' इससे प्रकृति-विपर्यास-दोष आ गया। यदि माघ श्रीकृष्ण द्वारा अंतरंग-सभा में इतना ही प्रश्न उठवाते कि यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिए अथवा शिशुपाल का दमन करना चाहिए, तो क्या ही अच्छा होता।

गज-वर्णन

गंधर्वों की सेना इंद्रकील-पर्वत पर पड़ी हुई है। प्रस्थान-श्रम के कारण आई हुई निद्रा को त्याग कर गजपति ने सोने के उस स्थान को छोड़ दिया, जहाँ मद से कीचड़ हो रहा था। भौंरों की पंक्ति वहाँ क्षण-भर ऐसा मालूम हुई, मानों जल्दी में उठने के कारण ज़ंजीर टूट गई हो।

प्रस्थानश्रमजनितां विहाय निद्रा-
मामुक्ते गजपतिना सदानपङ्के।
शय्यान्ते कुलमलिनां क्षणं विलीनं
संरम्भच्युतमिव शृङ्खलं चकाशे ॥३१॥

गंगा के दूसरे किनारे की तरफ़ से जंगली हाथी के मद की गंध आ रही थी। सेना का हाथी उधर जाने के लिये उत्सुक था। किंतु मार्ग में गंगा का प्रवाह रोड़ा बन रहा था। फीलवान तीक्ष्ण अंकुश मार रहा था। पर वह गुस्से से सिर हिलाता हुआ कुछ परवा नहीं करता था।

आयस्तः सुरसरिदोघरुद्धवर्त्मा
सम्प्राप्तुं वनगजदानगन्धिरोधः।
मूर्धानं निहितशिताङ्कुशं विधुन्वन्
यन्तारं न विगणयाञ्चकार नागः ॥३२॥

सेना के किसी हाथी ने ज्यों ही जंगली हाथियों के मद से मिले हुए जल को सूँघा, त्यों ही वह आँखें घुमा कर क्रोध से दूसरे किनारे की ओर ताकने लगा। यद्यपि वह अत्यंत प्यासा था और जल शीतल था, तथापि उसने पिया नहीं।

आघ्राय क्षणमतितृष्यताऽपि रोषा-
दुत्तीर्णं निहितविवृत्तलोचनेन।
संपृक्तं वनकरिणां मदाम्बुसेकै-
र्नाचेमे द्विरमपि वारि वारणेन ॥ ३४ ॥

गंगा में जल-क्रीड़ा करते हुए गजपति अपने मद से जल को सुगंधित कर निकल रहे थे। उनके गंड-स्थलों से कमल की गंध आ रही थी। इस कारण कि मद-रेखाएँ कमल-किंजल्क से ढँक गई थीं।

प्रश्च्योतन्मदसुरभीणि निम्नगायाः
क्रीडन्तो गजपतयः पयांसि कृत्वा।
किञ्जल्कव्यवहिततामदानलेखै-
रुत्तेरुः सरसिजगन्धिभिः कपोलैः ॥३५॥

(किरातार्जुनीय)

रैवतक-पर्वत पर कृष्ण की सेना डेरा डाले हुए पड़ी है। सेना का हाथी दूसरे हाथी के मद से सुगंधित जल को न पीना ही चाहता है, और न छोड़ना ही। फीलवान अंकुश मारता है, पर वह हटता नहीं। इस तरह नदी के किनारे को क्रोध से रोके हुए है। आदमियों की भीड़ ख़ाली बर्तन लिए हुए देर तक खड़ी रही।

नादातुमन्यकरिमुक्तमदाम्बुतिक्तं
धृताङ्कुशेन न विहातुमपीच्छताम्भः।
रुद्धे गजेन सरितः सरुषावतारे
रिक्तोदपात्रकरमास्त चिरं जनौघः ॥ ३३ ॥

अन्य गज के मद की गंध से मिले हुए पवन ने ज्यों ही सेना के गज का स्पर्श किया, त्यों ही उसको क्रोध आया। पानी के कुल्ले को फेंककर मूसल-जैसे बड़े-बड़े दाँतों से प्रहार करना चाहा। पर विशाल दाँतों का मध्यभाग प्रहार में व्यवधायक हो गया। स्वयं समुद्र के किनारे पर धड़ाम से गिर पड़ा।

गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं
नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-
रुद्धोद्दन्तमुसलप्रसरं निपेते ॥ ३६ ॥

जल के भीतर सेना का गज जैसे ही घुसना चाहता था, वैसे ही भौंरों की पंक्ति गंड-स्थलों को छोड़कर आकाश में मँडराने लगी। उस समय वह ऐसी लगती थी, मानों नीला वर्ण गज से (गुणों के द्रव्याश्रय होने पर भी) पृथक् हो गया।

अन्तर्जलेचमवगाढवतः कपोलौ
हित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरीक्षे।
द्रव्याश्रयेष्वपि गुणेषु रराज नीलो
वर्णः पृथग्गत इवालिगणो गजस्य ॥३८॥

हाथी के शरीर से गेरू का रंग जल में मिल रहा था, और कमलों की अंतःपराग हाथी के शरीर में लग रही थी। इस प्रकार मानों नदी और महागज ने संभोग का अनुभव कर आपस में कपड़े बदल लिए हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसर्पिभिः पयसि गैरिकरेणुरागै-
रम्भोजगर्भरजसाङ्गनिषङ्गिणा च।
क्रीडोपभोगमनुभूय सरिन्महेभा-
-वन्योन्यवस्त्रपरिवर्तमिव व्यधत्ताम् ॥ ३९ ॥
(शिशुपाल-वध)

दोनों कवियों के 'गज-वर्णन' के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारवि का गज-वर्णन माघ की दृष्टि में था। माघ ने भारवि के भावों को अपनाया तो है, पर 'अपहरण' से बचने का प्रयास किया है। माघ के तेंतीसवें छंद में किरात के चौंतीसवें छंद का भाव है। भारवि का गज प्यासा होने पर भी मद-मिश्रित जल को सूँघकर प्यास भूल जाता है, और वह अपने प्रतिद्वंद्वी गज को घूरने लगता है। माघ का गज क्रोध से मद-सुगंधित जल को पीता भी नहीं है, और न प्यास के कारण जल छोड़ता है। माघ ने गज में प्यास और क्रोध को यद्यपि समान रूप से वर्णन किया है, तथापि गज में प्यास ही अधिक प्रकट होती है; क्योंकि अंकुश मारने पर भी उसकी चेष्टा जलावतार के अवरोध में ही प्रतीत होती है। किंतु भारवि के गज को जल सूँघते ही प्यास भूल गई है। वह अपने प्रतिद्वंद्वी गज के ढूँढने में ही सप्रयत्न है। क्रोध में भूख प्यास का भूल जाना स्वाभाविक है। भारवि का वर्णन माघ के वर्णन से अधिक स्वाभाविक और हृदयग्राही है।

किरात के ३५वें श्लोक में भारवि ने गंगा और गजपति के मध्य में मद और कमल-गंध के विनिमय का वर्णन किया है। माघ ने ३९वें श्लोक में नदी और गजपति में नायिका और नायक का आरोप कर वस्त्र-विनिमय की उत्प्रेक्षा की है। माघ ने मद के स्थान में गैरिकरेणु कर दिया है। इस प्रकार माघ ने भारवि के भावों को लेते हुए भी परिवर्तन द्वारा अर्थ में विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। किरात के ३२वें पद्य और माघ के ३६वें श्लोक में एक ही विषय का वर्णन किया गया है। पर वर्णन करने का ढंग भिन्न है। अपने-अपने रंग में दोनों अच्छे हैं। माघ के गज में क्रोध खूब ही प्रस्फुटित हुआ है। दंत-प्रहार में वह किनारे पर फिसड़ पड़ा है। भारवि का गज प्रतिद्वंद्वी गज से युद्ध करने के लिये दूसरे किनारे पर जाना चाहता है। फीलवान के अंकुश पड़ रहे हैं, पर वह ध्यान नहीं देता है। माघ के गज में क्रोधाधिक्य है, सो वह निरंकुश भी है। जिन हाथियों के मद चूता है, उनके पास भौंरों की पंक्ति रहती है। भारवि ने उसे ३१वें श्लोक में टूटी हुई श्रृंखला बनाया है। घबड़ाकर उठने से टूटी हुई श्रृंखला की उत्प्रेक्षा हृदय-ग्राहिणी है। किंतु माघ ने भ्रमर-पंक्ति का बड़ी ही सुंदर रीति से वर्णन किया है। उन्होंने एक दार्शनिक तथ्य को मिथ्या बनाने की कल्पना की है। गुण सदा द्रव्य में समवाय संबंध से रहते हैं। द्रव्य से उनका पृथक् होना असंभव है। पर माघ कहते हैं कि भ्रमर-पंक्ति नहीं मँडरा रही है, प्रत्युत नील-रूप गुण, गज-रूप द्रव्य से पृथक् हो, शोभित हो रहा है।

(क्रमशः)

रामसेवक पांडेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँखियाँ

निसिबासर रीतत ही रहैं बारि, तऊ रस सों सरसाती रहैं;
रहै नीर मैं मीन जहान कहै, यह मीन मैं नीर बसाती रहैं।
गति है इनकी कछू जानी न जाति, कला उलटी ही दिखाती रहैं;
"द्विज श्यामजू' तो अँखियाँ सरिता ए, सरोजन सों प्रगटाती रहैं।

नहीं सीख सुनैं धुनैं सीस बृथा, अँसुआन की धार बहाती रहैं;
फँसि फंद बुरे "द्विज श्यामजू", ए गरबीली गरूर गँवाती रहैं।
उर कारी भई, हिए कारो बसाय, न कारी तऊ रँग-राती रहैं;
उनहीं पै निछावरि है अँखियाँ, अपनो सपनों-सो मिटाती रहैं।

कल खंज-सी कै बनि खंजन ही, मन-खंजन पी को फँसाती रहैं;
मृग-सी ह्वै किधौं मृग-रूप ही ह्वै, मृग-तृष्णिका मैं भरमाती रहैं।
यहि मीन-सी ह्वै किधौं मीन ही ह्वै, दृग मीन पै बंसी लगाती रहैं;
"द्विज श्यामजू" ए हैं अयानी भई, अपने ही पै वार चलाती रहैं।

रँग नेकु हूँ फीको परै न कबौं, अँसुआन सों रोज अन्हाती रहैं;
रहैं वेष-विरागिनी-कैसो धरे, अनुरागिनी राग सों राती रहैं।
निसिबासर नीर मैं डूबी रहैं, "द्विज श्याम" तऊ बनी ताती रहैं;
ए अनोखे कलावत की-सी कला, कल कंज-सी आँखें दिखाती रहैं।

हनै पैने कनैखिन बानन सों, घने घायन तौहूँ मिटाती रहैं;
अनुराग-भरी रँग कारे पै ए, अँखियाँ निज रँग चढ़ाती रहैं।
मन ऐसे मतंगज को बनि अंकुस, ए बश मैं निज लाती रहैं;
"द्विज श्यामजू" जात की हैं अबला; पै बला के कमाल दिखाती रहैं।

भरैं भूरि मनोरथ मानस के, कुलकानि की भीति भगाती रहैं;
जग के परितापन सों पियरो, हियरो हरे हेरि सिराती रहैं।
सुख की सरिता सरसाती रहैं, दुख की सदा दूरि दुराती रहैं;
"द्विज श्यामजू" ए अँखियाँ अनुकूल, है जो पै सनेह सों राती रहैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा कानन के ढिग बास करें, सुख सों श्रुति को रस लेती रहैं ;
निशिवासर दर्सन ही में रमैं, अरु देखन हूँ में सचेती रहैं।
कुटिलाई नहीं अँखियाँ ए तजैं, बनी जाहिर में किती हेती रहैं ;
हित हूँ सों लखे "द्विज श्याम" सदा, हियरे घने घायन देती रहैं।

बिनु बोले ही सों कर जोरे खड़ी, बिनती अड़ी सौंह सुनाती रहैं ;
उमड़ी रस सों निसिबासर ही, निज दीन दसा दरसाती रहैं।
अभिलाष भरी उर में "द्विज श्याम", सदा अनुराग सों राती रहैं ;
पिय ए अँखियाँ नित तेरे लिये, हर के गर हार पिन्हाती रहैं।

तन औ मन दोऊ समर्पन कै, "द्विज श्याम" हियो सियराती रहैं ;
रसरासि को अंतर ध्यान सों आनि, पियें रस प्यास बुझाती रहैं।
त्यों अनोखी घटा घुमड़ाती रहैं, रस की सरिता सरसाती रहैं ;
नित तौहूँ बिलोकनि की दुखिया, अँखियाँ ए बनी उर ताती रहैं।

ए अयानी गुनी ह्वै प्रसूनन के, निगुने नित हार बनाती रहैं ;
दुख भूरि भरी उर पीतम के गर, दूरि ही सों पहिनाती रहैं।
"द्विज श्याम" न भेद पिछानैं कछू, मन को चहूँ ओर फिराती रहैं ;
घट अंतर ही मैं बस्यो तेहि को, अँखियाँ लखिबे को ललाती रहैं।

"द्विज श्याम"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-परिचय

सामने नदी थी, उसके पार अस्त होता हुआ सूर्य और पीछे बहुत दूर सुरमई गोधूली की छाया। चित्रकार हेमेंद्र भागा हुआ जा रहा था। क्यों? सतरंगे आकाश की शेड में भावों को जाग्रत् करने, सोने और ताँबे की चादर ओढ़े लहरों की प्रसुप्त अनुभूति को नवीनता प्रदान करने। वह इस दौड़ में भी अपने को बहुत पीछे समझता था; क्योंकि उसकी कल्पना पहले ही से वहाँ पहुँच चुकी थी। उसके पैर पूरी गति से आगे बढ़ रहे थे कि वह एकाएक रुक गया। वह ऐसा ठहर गया, जैसे बर्स्ट हो जाने से मोटर ठहर जाती है, और रास्ते के दाहनी ओर मकान की दीवार से सटकर शंकित शिकारी की तरह खड़ा हो गया, जिसके ज़रा-से हिलने-डुलने से चिड़िया के उड़ जाने की संभावना हो। उसके मुँह पर ख़ुशी का ऐसा विकार और चेष्टा में उसकी उत्तेजना इतनी प्रबल हो गई थी कि वह ख़ुद अपने को न रोक सका। आख़िर मुँह से निकल ही गया—यही अच्छा है, तुम ख़ुद ही नहीं जानते कि कितने सुंदर हो! नहीं तो पैरों से रौंदी जानेवाली धूल में लोटने की कभी इच्छा न करते। सच तो यह है कि तुम्हारा अज्ञान ही संसार का सबसे अमूल्य धन है।

दीवार के उस पार एक अबोध बालक किलकारियाँ भरता हुआ अपने खिलौने के साथ धूल में लोट रहा था। अहा! उसकी कैसी मनोहारी छवि थी। मालूम पड़ता था, मानों संसार की चिंता की छाया वहाँ से डरकर भाग गई हो, या विश्वव्यापी कलुष की अँधेरी रात का अंत कर देने के लिये भगवान् अंशुमाली पृथ्वी की गोद में आ बैठे हों।

उसने बड़े यत्न से वहाँ खड़े होकर बालक की सरल चेष्टाओं को देखा। उसका अपूर्व सौकुमार्य, उसकी निर्दोष चपलता का प्रत्येक उभार, कौतूहल-पूर्ण विश्व के प्रति उसका सरल मनोविकार, उसका अम्लान रूप, उसके अंगों की गठन, यहाँ तक कि उसकी प्रत्येक बात को चित्रकार ने अपने स्मृति-लोक में बंद कर लिया। प्राणायाम की पूर्ण अवस्था को प्राप्त कोई महान् आत्मा जब समाधि-मग्न होकर अनहद-नाद सुनने में तल्लीन हो जाती है, तो उसका बाह्य ज्ञान शून्य हो जाता है। ठीक इसी तरह वह अपनी सुधि-बुधि भूल गया। उसे बालक की प्रत्यक्ष मूर्ति तक का ध्यान न रहा। उसे नहीं मालूम हुआ कि कब उसकी मा आकर उसे उठा ले गई। उसके स्मृति-लोक में जिस सर्वांग सुंदर बालक की सृष्टि हुई थी वह उसी के ध्यान में तन्मय हो रहा था, और उसी को जब बालक की साक्षात् मूर्ति समझकर गोद में उठा लेने के लिये व्यग्रता के साथ बढ़ा, तो दीवार से सिर टकरा गया। ध्यान की माला बिखर गई। बालक को वहाँ न देखकर वह अपनी दशा पर आप ही लज्जा का अनुभव करने लगा। उसने पीछे फिरकर देखा कि कोई उसकी दशा पर तरस की हँसी तो नहीं हँस रहा है। इधर-उधर दूर तक केवल संध्या का अँधेरा और भी गाढ़ा हो गया था। वह झपटकर अपने रास्ते की ओर चल दिया।

नदी की लहरों पर अब भी हलकी लालिमा की दो-एक किरणें झलमला रही थीं। आकाश ने नीले रंग पर कुछ-कुछ सुनहले बादलों की चादर ओढ़ रक्खी थी। दृश्य मनोरम था, पर चित्रकार के मन में जिन स्वर्गीय कुसुमों का चयन हो रहा था, उनकी छटा ही निराली थी। उसने एक बार भी आँखों को उठाकर अपनी स्वाभाविक व्यग्रता से नहीं देखा।

हाथ से निकला हुआ राज्य फिर प्राप्त करके जितनी ख़ुशी हुमायूँ को न हुई होगी, उतनी ख़ुशी इस चित्रकार को हो रही थी। उसकी नसों में ख़ुशी की सरसराहट फैल गई थी। न वहाँ से उठने की इच्छा होती थी, न कुछ देखने की। जिन आँखों में उस भुवन-मोहन छवि का प्रतिबिंब पड़ चुका था, उनसे देखता भी और क्या? अपनी ग़रीबी की सारी कथा भूल गई थी। क्या ही आत्मविस्मृति थी! घर में स्त्री के अंचल को नोच-नोचकर बच्चे चीख़ रहे होंगे। थिएटर के मालिक की नाक-भौं ज़मीन-आसमान के दृष्टिकोण मान रही होगी। परदा कोई तैयार नहीं हुआ। आज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल दर्शकों का उफ़ान भी कम हो गया है। आमदनी बढ़ाने की सूरत बिना नवीनता पैदा किए हो नहीं सकती। जीवन-समस्या उलझी हुई थी—पारिवारिक कष्ट बढ़ा हुआ था, फिर भी बेफ़िक्री की इतनी तल्लीनता और भविष्य की इतनी उज्ज्वल आशा!

बाहर चंद्रमा का प्रकाश, कमरे में चित्रकार की तूलिका का रंग एक भाव से फैल रहे थे, और उन्हीं के साथ उसके मानसिक विकारों की छटा बिखर रही थी। वह चित्र पर की एक-एक रेखा पर प्रसन्न होता था। अपनी अमर कला के गौरव पर उसका हृदय उछला पड़ता था। बेचारी कलावती पति की उस दशा को देखकर घबराहट से खड़ी हो गई। बच्चों की भूख-प्यास और गृहस्थी के प्रबंध का सारा कार्य-क्रम भूल गया। उसने बढ़कर कहा—अरे! यह क्या?

चित्रकार के हाथ में चित्रपट काँप गया। उसने फिरकर कलावती को देखा, और मुस्किराकर कहा—क्या डरा रही हो?

"मैं डरा रही हूँ या तुम?"

"मैं?"

"हाँ—अभी यह क्या कर रहे थे? भगवान् जाने मेरा तो हृदय काँप गया।"

"तो आओ, अब हम उसे शांत कर दें।"

"कोई ज़रूरत नहीं—पर मैं कहे देती हूँ। इस तरह पागलों-जैसी बातें करके दूसरों को परेशान न किया करो।"

"बहुत अच्छा सरकार, पर जिसे देखकर मैं पागल हो सकता हूँ, उसमें कुछ अश्रुतपूर्व विशेषता होगी। यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा।"

"चलो तुम यों ही बातें करते हो। यहाँ रात-दिन चिंता खाए जा रही है।"

"चिंता काहे की!"

"घर की—बच्चों की। तुम तो बाहर रहते हो, तुम्हें क्या पता, यहाँ हर समय मेरे सिर पर मूँग दली जाती है।"

"लो, देखो! परमात्मा ने चाहा, तो तुम्हारी ये सभी चिंताएँ सुख और आनंद में बदल जायँगी।"—यह कहकर उसने अपनी स्त्री के हाथों में चित्रपट रख दिया।

पति के चित्रण-चातुर्य पर कलावती की आँख हर्ष से सजल हो गईं। आज उसने अपनी हीन दशा में भी अभूतपूर्व गौरव का अनुभव किया। उसने कहा—"ऐसी सुंदर और सजीव सृष्टि करनेवाला दुनिया को आँखों से कब तक छिपा रहेगा?"

"तुम्हारी जैसी समालोचिका पाकर भी छिपा रहूँगा, ऐसा मैं नहीं समझता।"

"समालोचना तो नहीं, अगर कहो, तो इसका चित्र-परिचय मैं ही लिख दूँ।"

"अजी, ज़रूर—इसके लिये पूछने की क्या आवश्यकता।"

"इसका नाम जानते हो क्या होगा?"

"क्या?"

"साकार शैशव"

"भई वाह! यह तो जँचा हुआ नाम है।"

कलावती ने चित्र के नीचे 'साकार शैशव' लिख दिया, और एक उसी साइज़ की कापी लेकर उसका विस्तृत परिचय लिखने बैठ गई। कमाल की कल्पना थी। चित्रकार बैठा हुआ अपनी स्त्री की लेखन-प्रतिभा पर आश्चर्य और आनंद से फूला जाता था। चित्रकला के बड़े-बड़े विद्वान् और समाचार-पत्रों के संपादकों की लेखनी जहाँ पर मौन और संदिग्ध हो जाती है, वहाँ पर उछलती हुई भाषा का सजीव चित्र था, किंतु उस सारे कौशल में सात्त्विक और आदर्श-जीवन की झलक के साथ-साथ एक प्रकार की गूढ़तम करुणा की छाया, लेखिका के अपने जीवन का अस्पष्ट प्रतिबिंब होकर पड़ रही थी। फिर भी ऐसा सुंदर चित्र-परिचय कभी देखने में न आया था।

कलावती की कोमल उँगलियों ने लिखना समाप्त किया, और चित्रकार ने उन्हें पकड़कर चूम लिया। कलावती ने अपना हाथ खींच लिया, और कुछ कहने को थी कि नीचे से थिएटर के नौकर ने आवाज़ दी। सब काम बंद हो गए। दोनों विस्मृति और सौंदर्य-कला के स्वर्ग से उतरकर फिर मृत्युलोक में आ गए। चित्रकार के सामने थिएटर-हाल की गैलरी में घूमते हुए परदों का ध्यान आ गया, और कलावती को मिठाई के लिये रूठे हुए बच्चों का। उसने पति के सामने गृहस्थी की कठिनाइयों को पेश किया। चित्रकार उसका प्रबंध करने का आश्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे कर बाहर निकल गया। कलावती ने चित्र और चित्रकार, दोनों लेकर बक्स में रख दिए।

× × ×

Royal Exhibition की Picture Gallery साकार शैशव की धूम मच रही थी। सारी नुमायश भीड़ उसी चित्र पर उमड़ी पड़ती थी। हेमेंद्र भी अपनी विचित्र वेश-भूषा के साथ Picture Gallery में दाख़िल हुआ, और उस कौतूहल-पूर्ण चीज़ को देखने के लिये जाने लगा, तो लोगों ने उसे बुरी तरह धक्का देकर एक ओर कर दिया। उसका दिल दुखा था, पर संसार के ऐसे अनेक अनुभव उसे अक्सर हो चुके थे, इसलिये वह अपनी लालसा को दबाकर चुपचाप घर की ओर लौट आया।

बाहर निकलकर उसने जहाँ देखा, वहाँ लोगों की जबान पर 'साकार शैशव' और चित्रकार 'हेमेंद्र' का नाम सुन पड़ता था। क्षण-भर के लिये हेमेंद्र ने सोचा कि वह पागल तो नहीं हो गया है; क्योंकि उसने तो कोई चित्र किसी नुमायश में नहीं भेजा था। वह फिर एक बार पिक्चर-गैलरी में जाने को व्यग्र हो उठा। इस बार वह ज़बरदस्ती भीड़ को चीरकर वहाँ पहुँच गया। चित्र को ग़ौर से देखा, पहचाना और ख़ुशी से उछल पड़ा। उसे ताज्जुब तो इस बात का हुआ कि यहाँ आया कैसे? यह सोचते-ही-सोचते वह बढ़ चित्र को उठाने लगा, त्यों ही पीछे से गार्ड का लंबा हाथ उसकी पीठ पर सड़ से चिपक गया। वह बिलबिलाकर चीख़ पड़ा, पर उसके कहने को किसी ने सुना नहीं। एक-दो सेकंड में भीड़ के धक्के खाकर, समुद्र की लहरों के फेन की तरह वह फिर बाहर जा पड़ा। वह अपनी ख़ुशी और तिरस्कृत दशा के मिश्रित भाव से उस ओर चला गया, जहाँ बहुत लोगों की अलग-अलग मंडली उस चित्र और चित्रकार की तारीफ़ करके गुण-ग्राहकता का परिचय दे रही थी।

पढ़ी-लिखी युवती अपने साथी युवक से कह रही थी—ओह! जिन उँगलियों के भीतर ऐसा चित्रण-गुण छिपा होगा, उनके कमाल का कहना ही क्या?—कुछ और कहने जा रही थी, पर हेमेंद्र के आ जाने से रुक गई।

युवक ने हेमेंद्र की उपस्थिति का ख़याल न करके कहा—पर शायद उन उँगलियों को तुम्हारे होठों की मिठास की ज़रूरत न होगी।

"बस, तुम्हें इसके सिवा कुछ और भी आता है? कभी किसी की तारीफ़ भी करते हो?"

"तारीफ़ करने के लिये एक आदमी काफ़ी है। तारीफ़ करनेवालों की तारीफ़ के लिये भी तो किसी को रहना चाहिए?"

"क्या ख़ूब!"

"ख़ुश हुई न?"

"नहीं—आज तो मैं तभी ख़ुश हूँगी, जब जाकर उस चित्रकार और चित्र-परिचय लिखनेवाली महिला से मिलूँगी।"

"तो क्या मैं समझ लूँ कि चिड़िया उड़ गई?"

"हाँ-हाँ, चाहे जो समझ लेना। मैं तो—" हेमेंद्र बीच ही में बोल उठा—अजी, वहाँ जाकर क्या करेंगी। वह अभागा तो कहीं ग़ायब हो गया है।

युवक—"आप उसे जानते हैं?"

हेमेंद्र—"ख़ूब।"

युवती—"कब लौटेगा?"

हेमेंद्र—"यही, दो-तीन रोज़ में।"

युवक—"आप आ गए, नहीं तो अभी—"

युवती ने युवक को हाथ के इशारे से चुप कर दिया। हेमेंद्र वहाँ से लौट पड़ा। तारीफ़ की उन्मादिनी मदिरा पीने से उसके पैर इधर-उधर पड़ रहे थे। घर पहुँचते-पहुँचते मन में यही एक ग्लानि रह गई कि युवती के सामने अपने-आपको प्रकट करके क्यों न गौरव-पूर्ण तारीफ़ के सुंदर शब्द सुनकर कानों को सार्थक कर लिया!

× × ×

'साकार शैशव' पर नुमायश में पहला इनाम मिला। यह पढ़कर कलावती का हृदय ख़ुशी से उछल पड़ा। उसकी मुरझाई हुई आत्मा वसंत की नवीन लता की तरह खिल उठी। काग़ज़ को एक बार फिर खोलकर पढ़ा। अहा! कैसे सुंदर सजीव सोने की स्याही से लिखे हुए वे अक्षर मालूम पड़ते थे!

हेमेंद्र सोकर कमरे से निकला। कलावती ने लिफ़ाफ़ा तो पाकेट में छिपा लिया, पर होठों के भीतर आवश्यकता से अधिक भरी हुई ख़ुशी की स्वच्छ मुस्किराहट न छिप सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमेंद्र ने कहा—ऐसी क़ीमती चीज़ छिपे-छिपे क्यों लुटाए देती हो कला ? कलावती ने हँस दिया। कुछ जवाब नहीं दिया।

"वन में मोर नाचा—व्यर्थ। यही हँसी किसी गुणी की नज़र में पड़ जाती तो—"

"बस-बस, रहने दो। बहुत-सी बातों की मुझे फ़ुरसत नहीं है। मैं काम से जा रही हूँ।"

"क्या काम ?"—कहकर हेमेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"चलो देख न लेना। हरएक बात की कहानी कौन कहे।"

"हाँ, तो अब इसी तरह रूठी रहोगी। बात करने की भी फ़ुरसत न निकाल सकोगी ?"

"नहीं।"

"खूब, आप ही ग़लती करें और आप ही दंड की व्यवस्था।—यह तो असहनीय अत्याचार है कला।"

"असहनीय ?"

"हाँ"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुमने बिना पूछे तस्वीर भेजी ही क्यों थी ? कहीं नष्ट-भ्रष्ट हो जाय—खो जाय ?"

कला ने हल्की हँसी छिपाकर उत्तर दिया—"अपनी चीज़ के लिये कोई पूछने की ज़रूरत नहीं समझता। फिर मैं ही क्यों ऐसा करती ?"

"अच्छा"

"और अगर एक तस्वीर खो भी जाय, तो कौन बड़ी बात है ? फिर भी तो बन सकती है।"

हेमेंद्र उत्तेजित होकर कुछ कहना चाहता था, पर कला की खिलखिलाहट से कुछ दब गया और उसके मुँह की ओर किंचित् आश्चर्य से देखने लगा।

कला ने कहा—"बात मानो, वह खो नहीं सकती।"

"तभी मानूँगा, जब मेरे हाथ में आ जाए।"

इसी समय बालक ने आकर कहा—बाहर बाबू को कई लोग बुलाते हैं।

कलावती सब बातें समझ गई। उसने पहले अपने ही मुँह से पति को सुंदर समाचार सुनाने का सुयोग जाने न देना चाहा। उसने हँसकर झटपट लिफ़ाफ़ा निकाला, और हेमेंद्र को पुकारकर देना चाहती थी, वह तुरंत लौटने की कहता हुआ चला ही गया।

बाहर कई बड़े घर की स्त्रियाँ और पुरुष मौजूद थे। पहले तो उन्होंने हेम को पागल से अधिक कुछ न समझा, पर बातचीत होने पर सबने बड़े आदर से कौतूहल से उससे हाथ मिलाए। उनमें सभी ने हेम की चित्रकला की बड़ी तारीफ़ की, और उसके दर्शन पाकर अपने को धन्य मानने लगे। हेम ख़ुद ही हक्का-बक्का रह गया। कभी ऐसे बड़े-बड़े आदमियों ने उसकी तारीफ़ की थी ? जिन सुंदरियों की सुंदरता के लिये लोग उस नियंता की रचना पर मुग्ध हो जाते हैं, वे भी हेम के चित्र की तारीफ़ में अपनी पतली ज़बान और कोमल हाथ हिलाते नहीं थकीं।

कलावती की इच्छा पूरी न हुई। हेम को यह समाचार बाहर ही मालूम हो गया। वे लोग हेम को उन्हें यहाँ ले जाने के लिये अनुरोध करने लगे। हेमेंद्र इनकार करना नहीं चाहता था, फिर भी इस समय अपनी असमर्थता जताकर किसी और समय मिलने का वचन देकर अपने गौरव को प्रदर्शित किया।

वे लोग चलते-चलते अनुरोध कर गए कि हेम के लिये ठीक समय पर गाड़ी आ जायगी। मारे ख़ुशी के हेम का कलेजा मुँह को आ गया।

कलावती मन-ही-मन पछताकर बार-बार पत्र पढ़ रही थी कि हेम ने चुपचाप आकर उसे सहसा आलिंगन करके कहा—मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी चतुर हो ?—सचमुच तुम्हारी जीत हुई !

क्यों—क्या हुआ ?—कहकर कला मुस्किराने लगी।

आख़िर अब तुम बड़े आदमी की स्त्री हो गई। मामूली चित्रकार की स्त्री कहलाना तुम्हें पसंद न था—क्यों न ?—तभी इतना छिपाकर यह सब प्रपंच रच डाला।

कला रत्ती-रत्ती समझ गई, पर ज़रा बनकर बोली—क्या वाहियात बेलगाम बातें कर बैठते हो। मैं कुछ न समझती, साफ़-साफ़ कहना हो तो कहो।

हेमेंद्र—अजी, कह तो दिया कि अब तुम एक धनी और लोक-प्रसिद्ध आदमी की स्त्री बन गई।

"उँहुँ !"

"नहीं समझीं—तुम्हारे 'साकार शैशव' पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार का इनाम मिला।—और, और चित्रशाला प्रेस की प्रोप्राइटूस आकर तय कर गई हैं। उनके यहाँ तीन सौ रुपया मासिक की नौकरी मिल गई है। कल Agreement हो जायगा।

पिछली बातों से कला और भी ख़ुशी के भार से झुक गई। उसके गले से उस समय कोई बात नहीं निकली। कुछ ठहरकर उसने पूछा—सच कहो।

"बिलकुल सच कहता हूँ कला।"

"तुम्हीं, देखो—अच्छा, अब तो मुझसे बुरी तरह नाराज़ न होगे।"

हेम ने चुंबन को बीच का साक्षी बनाकर कहा—"नहीं, कभी नहीं।"

कला ने हाथ का पत्र खोलकर हेम की गोद में रख दिया। दोनों गद्गद हो गए।

× × ×

अब हेमेंद्र राज-सम्मानित चित्रकार है। 'साकार शैशव' के बाद से उसकी मान-प्रतिष्ठा चंद्रमा की किरणों की तरह सर्वत्र व्याप्त हो गई है। धन-संपत्ति की कमी नहीं रही है। यही नहीं, चित्र का परिचय मिलकर कलावती भी योग्य पति की उपयुक्त सहधर्मिणी हो गई है। अब उसे घर के छोटे-मोटे कामों में अपनी शक्ति नहीं लगानी पड़ती। चित्रकला में अभिरुचि होने के कारण वह अधिकतर चित्रशाला में ही रहती है।

एक दिन वह कुरसी पर पड़ी कुछ सोच रही थी। शायद किसी सुंदर चित्र की कल्पना कर रही होगी। तभी चित्र हाथ में लिए हुए हेमेंद्र बाहर का दरवाज़ा खोलकर उसके पास आ गया। आते ही उसने बड़े ऊँचे स्वर में पुकारकर कहा—कला!

कलावती—क्यों, मैं तो जाग रही हूँ—सोई नहीं।

हेमेंद्र—बस, आज से हमारा काम ख़तम हो गया।

कलावती बात को बिलकुल न समझकर घबड़ाहट के स्वर में बोली—कहो भी तो क्या बात है?

हेमेंद्र ने दोनों चित्र कलावती को देते हुए कहा—चित्रकला से जो बड़े-से-बड़ा उपयोग सिद्ध हो सकता है, वह सब हो चुका। हम लोगों ने जिसकी कभी आशा नहीं की थी, वह हमें मिल गया। फिर और क्या चाहिए। देखो, यह नया नीचेवाला चित्र देखो। इसकी बदौलत हमें जो कुछ मिला है, वह संसार में किसी चित्रकार को नहीं मिला।

कलावती ने देखा, ऊपर वही चिर-परिचित 'साकार शैशव' था। उसे देखकर एक बार फिर नवीन रूप से कला के स्मृति-लोक में गत जीवन का सुखमय चित्र अंकित हो गया। पर उसे उठाकर ज्यों ही उसने नीचे का चित्र देखा, तो एक बार उसका सारा शरीर आँधी से झकझोरी हुई लता की तरह काँप उठा। वैसा कठोर और अमानुषिक चित्र उसने पहले कभी न देखा था! उसकी स्त्री-सुलभ आँखें चित्र की भयंकरता को न सह सकीं। उसने डर से उन्हें बंद कर लिया। वह चिल्लाकर हेमेंद्र से बोली—ले जाओ, ऐसे चित्र को देखने की ताक़त मुझे नहीं है। ओह भगवान्! जिसे देखते डर लगता है, ऐसे चित्र को बनाया किसने है?

हेमेंद्र ने हँसकर चित्र कलावती के हाथ से ले लिया, और कहा—जिसे पहली बार देखकर तुमने इस उपेक्षा से वापस कर दिया है यदि उसकी पूरी कथा तुम सुनो, तो निश्चय है कि तुम उसे बहुत ही पसंद करने लगोगी।

कला—नहीं, ऐसे चित्र को मैं कभी पसंद न करूँगी। मेरा हृदय ऐसा कठिन नहीं है।

हेमेंद्र—तुम्हारा हृदय नितांत कोमल और भावुक है। बस, इसी लिये मैं कहता हूँ कि तुम उसे सहानुभूति की दृष्टि से देखोगी—मैं जानता हूँ कला, तुम उतनी अमानुषी नहीं हो।

कलावती ने हेमेंद्र की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप उसकी बातों को सुनती रही।

थोड़ी देर ठहरकर हेमेंद्र फिर बोला—अच्छा सुनो, ऐसे चित्र की तलाश में मैं बरसों से था। मैंने कल्पना के आधार पर अनेकों बनाए भी, पर किसी में ऐसा स्पष्ट चित्रण नहीं बन पड़ा। कल्पना दौड़ते-दौड़ते एक हद पर जाकर रुक जाती थी। विश्व की मूर्तिमान् अमानुषिकता का सजीव चित्र न मैंने कहीं देखा, न अब तक मैं स्वयं ही बना सका। तुम जानती हो अनेक बार दूर-दूर राज्यों के कारागारों का निरीक्षण क्या मैं यों ही करता फिरता था? उसका उद्देश्य केवल यही था—बहुत दिनों बाद एक महाविकराल, यमराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह भयावनी मूर्ति मुझे मिली। बिना काफ़ी उद्दीपन सामग्री हुए भावों और लेखनी में धारा-वाहनी शक्ति नहीं आती। उस मनुष्य को देखते ही मैं उसका चित्र बनाने लगा। अनेक वर्षों की संचित की हुई कल्पना के साथ वास्तविकता ने मिलकर मिनटों में यह चित्र-पट तैयार करा दिया। इतनी जल्दी ऐसे सुंदर चित्र बन जाने की मुझे कभी आशा न थी—इसी से मारे ख़ुशी के मुझे बेअख़्तियार हँसी आ गई। मुझे हँसते हुए देखकर उसने उपेक्षा के भाव से सिर हिला कर पूछा—क्यों क्या बात है ?

उस एकांत स्थान में उसके भीम स्वर को सुनकर एक बार मेरा हृदय दहल गया। उसने फिर तुरंत ही पूछा—क्या कुछ गहरी रक़म हाथ लगी है ? इतना हँसते क्यों हो ?

उस समय मेरे पास और कोई उपाय नहीं था। चित्र उसके सामने रखना ही था, पर इस ख़याल से कि कहीं वह नाराज़ होकर मेरे ऊपर कुछ दे न मारे, मैंने साथ में 'साकार शैशव' भी रख दिया। उसने एक बार अपने चित्र को ग़ौर से देखा, फिर अपने शरीर को मरोड़कर कहा—ओह ! तो मैं क्या ऐसा ही दिखता हूँ ?—मैं उसकी लाल-लाल आँखों और क्रोध के चढ़ाव-उतार के भावों को देखकर अपनी कुशल की प्रार्थना कर रहा था। थोड़ी देर में वह दूसरा चित्र भी बड़े ग़ौर से देखने लगा। इस बार उसके मनोविकारों में जो परिवर्तन हो रहा था, उसे देखकर तो मैं कुछ भी निश्चय ही न कर सका। देखते-ही-देखते वह आदमी एक नन्हें-से बालक की तरह परिताप से बिलख-बिलखकर रोने लगा। उसने मेरे पैरों पर अपना माथा रखकर बड़े करुण स्वर में कहा—बाबा, मैंने तो सब कुछ खो दिया। हाय ! अब मैं क्या करूँ। एक दिन जो अमूल्य ख़ज़ाना मेरे पास था, उसे मैंने मृग-तृष्णा के लोभ में पड़कर गँवा दिया।

उसके अनुतप्त हृदय की वेदना-विहित पुकार से मेरा हृदय पानी-पानी हो गया। मैंने उसके भीगे हुए चेहरे को अपनी गोद में रखकर कहा—कहो तो क्या हुआ ? ऐसी कौन-सी बात हो गई है, जो लौटाई नहीं जा सकती ?

उसने अपने मस्तक को मेरी गोद से अलग कर कहा—बाबा, मैं महापातकी हूँ। मैंने अपना अमूल्य धन लुटाकर थोड़े-से ख़ून में भीगे हुए हीरे-मोती इकट्ठे किए हैं। मैं नितांत हीन और अस्पृश्य हूँ। यह पहला चित्र जो आप दिखा रहे हैं, वह भी मेरा ही है। हाय ! वह संसार के वैभव से भी परम पुनीत सरलता खोकर आज मैंने क्या बटोर रक्खा है ? बाबा, तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं, पर क्या अब वह दिन लौटाया जा सकता है ?—नहीं, मैं रौरव का कीड़ा हूँ। अब इस जीवन में मेरा उद्धार कहाँ ?

यह सब सुनकर मेरा शरीर आनंद और गौरव से अवसन्न हो गया। मैंने उसका मुँह फिर अपनी गोद में रखकर बड़े प्यार से उसे ढाढ़स दिया—अरे यह क्या कहते हो। तुम्हारा पश्चात्ताप फिर से तुम्हें तुम्हारी संपत्ति दिला सकता है। उठो तो सही, देखो—तुम्हें तो संध्या होने से पहले ही अपनी भूल का पता लग गया है।

उसने उसी समय उठकर मेरे चरणों की धूल को सिर पर लगाया, और प्रतिज्ञा की कि आज से अब वह कोई भी दुष्कर्म न करेगा—सुनता हूँ, उसका जीवन बदलकर एक पवित्र और सरल बालक-सा हो गया है। जानती हो, वह कौन है ?—वही प्रसिद्ध डाकू सुहराब !

कलावती ने अकचकाकर पूछा—ऐं ! यह क्या सच कहते हो ?

हेमेंद्र—हाँ, बिलकुल सच। भला, इससे बड़ा ख़ज़ाना और हमें अब क्या मिल सकता है—मैं समझता हूँ। अब इस चित्र का भी परिचय लिखना तुम पसंद करोगी।

कला—इसका तो अमर परिचय तुम्हीं ने सुना दिया है। अब मुझे लिखने की ज़रूरत नहीं ! पर हाँ, लाओ, अब मैं एक बार उस चित्र को ग़ौर से देखूँगी।

शंभूदयाल सक्सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरहिणी राधिका

१

लोचन लोल ललाम थके तकि बाट तुम्हारी,
पाई खोज कहीं न नदी-नद-घाट तुम्हारी;
नित विकलित चित रही लगी ओचाट तुम्हारी;
हंत! मिलो मुझको न प्रेम की हाट तुम्हारी।

खोजा पर पाया नहीं, लिया निखिल जग छान;
कहाँ मिलोगे साँवरे? क्या है प्रिय पहचान?
छिपे हो जा कहाँ?

२

हृदय-कुसुम में विरह-शूल क्यों हूल रहे हो?
स्मृति की मृदु माधुरी आज क्यों भूल रहे हो?
मेरे हृदय-हिंडोल आप नित झूल रहे हो;
उर-उपवन में नाथ! तुम्हीं फल-फूल रहे हो।

उसी फूल की तुम बिना, अब उड़ती है धूल;
इस दुख-सागर का कहीं क्या न मिलेगा कूल?
प्रभो कुछ तो कहो!

३

वन-उपवन घन सघन गगन निर्जन कानन में,
कुसुम-कुंज अलि-पुंज-गुंज में त्रिविध पवन में;
झंझावात-झकोर प्रलय-घन के गर्जन में,
जलधारा - धर मध्य और तड़िता तर्जन में।

कहीं पता भी आपका, पाऊँगी भगवान;
अथवा जीवन-दीप का हो यों ही अवसान!
प्रेम-फल क्या यही?

४

मृदु मुरली-ध्वनि वही गूँजती आज कान में,
उस कदंब-तल रहूँ खड़ी नित मग्न ध्यान में;
यमुना-तट ढूँढ़ती कभी मृदु लहर-गान में,
पर तुम बिन सम विषम, निरस रस हुआ तान में।

लालायित लोचन रहें, निशिदिन लाल ललाम;
समा रही है प्राण में, वह छवि सुंदर श्याम।
भुवन मन मोहिनी।

५

किस तरुवर-तल मोहन मुरली मधुर बजाते?
कहाँ पीतपट मोर मुकुट धर भेष सजाते?
कहाँ दुग्ध दधि गिरा चुराकर माखन खाते?
वंशी के स्वर छेड़ गोपियाँ कहाँ बुलाते?

कहाँ रास मंडल रचा नाच रहे चित-चोर?
कृपा-कोर होगी न क्या नाथ! कभी इस ओर?
शून्य व्रजभूमि है।

६

गोवर्द्धन भी वही, वही घनघोर विकट भी,
यमुना-तट भी वही, वही है वंशीवट भी;
गोकुल गोपी वही वही दधि-पूरित घट भी,
प्रेमोत्कंठित वही सुछवि अंकित हृत्पट भी।

वही रम्य व्रजवीथियाँ, सरस सुमन के पुंज,
किंतु व्यर्थ हैं आज वे वृंदावन के कुंज—
एक वंशी बिना।

७

नित ले गोपी-ग्वाल संग रसरंग मचाया,
व्रज में मुरली मधुर बजाकर रास रचाया;
गोकुल का गोपाल रूप धर मान बढ़ाया,
बनकर मोहन पुण्य प्रेम का पाठ पढ़ाया।

सिखा रहे अब ज्ञान का कृति का पाठ नवीन;
किंतु यहाँ तो बस वही सरस प्रेम-रस लीन—
बसी मन बाँसुरी।

८

प्रथम भुलाया प्रीति रीति रस बात बनाकर,
अब विदेश जा छिपे हमारा चित्त चुराकर;
विरहानल बुझती न दिवसनिशि अश्रु गिराकर;
शांत करो फिर मृदु वंशी-स्वर-सुधा बहाकर।

एक बार छवि देख लूँ दृग भर ललित ललाम;
करती अंतिम प्रार्थना यही आपकी श्याम।
विरहिणी राधिका।

कन्हैयालाल जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-चित्रकला का इतिहास

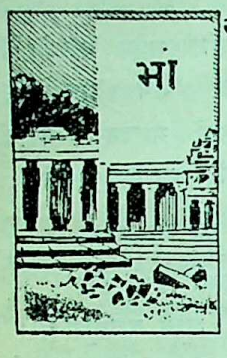

भारतवर्ष के इतिहास में एक समय ऐसा भी हो गया है, जब यह देश सारे एशिया का नेता था, जब भारतीय तीर्थ-स्थानों के दर्शन करके संसार के लोग अपने-आपको धन्य मानते थे, और भारतीय भाव-भावनाएँ सर्वत्र सर्वमान्य थीं। यह समय ईस्वी सन् का आरंभ अथवा बौद्धमत के प्रचार का काल था। उन्नति के इस स्वर्ण-युग के मूल-कारण बौद्धधर्म के सर्वग्राह्य सिद्धांत थे। इस धर्म ने सारे प्राच्य जगत् के दर्शन, नीति और सामाजिक नियमों में खलबली मचा दी, परंतु कला के क्षेत्र में तो इसका विशेष ही प्रभाव पड़ा। जन-समुदाय की रुचि और भावनाओं को बनाने में धर्म का बड़ा हाथ रहता है। किंतु कदाचित् संसार का कोई भी धर्म इस उद्देश्य से बौद्धमत के बराबर सफलता नहीं प्राप्त कर सका है। लंका, जावा, स्याम, बरमा, नेपाल, खोटान, तिब्बत, जापान और चीन की प्राचीन शिल्प एवं चित्रकला के अवशेष इस बात के साक्षी हैं कि उक्त देशों में कला-प्रेम का जन्म-दाता बौद्धधर्म ही है। सत्रहवीं शताब्दी का इतिहासकार तारानाथ लिखता है कि "बौद्ध-संप्रदाय के साथ-साथ धार्मिक भावनामय ललित कला का भी प्रसार हुआ।" समय ने अधिकांश को तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, परंतु अब भी यह बताने के लिये बहुत कुछ अवशिष्ट है कि बौद्धधर्माधिकारी संसार की एक प्रमुख चित्रण-शैली का जन्मदाता था।

बौद्धकला के उद्गम और उत्थान का इतिहास बहुत सहज ही अवगमनीय है। बौद्धधर्म मुख्यतः चित्रित धर्म है। इसके सिद्धांतों को समझाने के लिये लेखनी की अपेक्षा वर्णिका (Brush) का अधिक प्रयोग किया गया है। धार्मिक दंतकथाएँ चित्रों द्वारा ही प्रदर्शित कराई गई हैं। बौद्ध-सिद्धांतों के प्रचार के लिये भारतवर्ष से अन्य देशों को बौद्ध-भिक्षु जाते थे, और वे अपने उद्देश्य की पूर्ति चित्रों की सहायता से करते थे। बहुधा भगवान् बुद्ध के उपदेशों का प्रचार कागज़ अथवा कपड़ों पर अंकित चित्रों से किया जाता था *। इन चित्रों को प्रचारकगण यात्रा में अपने साथ रखते थे। तिब्बत और नेपाल के मंदिरध्वज आज भी इस बात के साक्षी हैं। ऐसे लोगों में, जो न उपदेशक की भाषा ही समझ सकते हैं, न उसकी लिपि ही पढ़ सकते हैं— मर्मस्पर्शी चित्रों द्वारा ही ध्येय-पूर्ति हो सकती है। बौद्धस्रोतस्विनी के ज्ञान-जल की पिपासा सर्वप्रथम

पाँचवीं शताब्दी की भित्तिचित्रकला का नमूना
(सिगिरिया, सीलोन से प्राप्त)

* वर्तमान समय में ईसाई पादरी भी इसी प्रकार चित्रों द्वारा अपने धर्म का प्रचार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन में उदय हुई। सम्राट् 'मिंग टी' ने काश्यप-मादुंग को सन् ६७ ई० में भारतवर्ष से चीन बुलाया। वह अपने साथ अनेक धार्मिक चित्र भी लेता गया। उस समय से बराबर विदेशों में बौद्ध-ज्ञान और कला का प्रसार होता रहा। भारतवर्ष से बौद्ध-पुरोहित चीन को जाते थे। उनमें से बहुतेरे वहीं बस गए, और उन्होंने वहाँ भित्तिचित्र (Fresco) बनाए। भित्तिचित्र अथवा फ्रेस्को नई दीवार पर गीली दशा में ही बनाए गए चित्रों को कहते हैं। यह कला भारतवर्ष की ही विशेषता है। जापान में इस शैली के अधिकाधिक चिह्न मिलते हैं। सातवीं सदी के 'नर' काल के विषय में डिलन कहता है कि "बौद्ध-कला की इन प्रारंभिक रचनाओं में एक स्पष्ट गौरव तथा जीवन पाया जाता है। परंतु हम निश्चय-पूर्वक यह कदाचित् ही कह सकें कि ये चित्र जापानी चित्रकार के हाथ के हैं। न ये पूर्णतः चीनी ही कहे जा सकते हैं, बल्कि तत्कालीन भारतीय कला को अर्थात् अजंता के चित्रों को देखकर इन स्मारकों की याद आ जाती है।" होरियुजी के मंदिर के भित्ति-चित्रों के संबंध में, जो आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए समझे जाते हैं, बिनयोन कहता है कि "ये रंग-ढंग में पूर्णतया भारतीय हैं। निस्संदेह ये चित्र अजंता के चित्रों के नमूने पर बनाए गए हैं। इस बात से यह सिद्ध होता है, उस समय भारतवर्ष और जापान में व्यापारिक घनिष्ठता थी।" 'टोसा' शैली की जापानी कला को, जो पाँच सौ वर्ष पुरानी है, रिकेट भारतीय बताता है। फ़ाहियान आदि की भाँति और भी अनेक चीनी यात्री भारतवर्ष में आए, और यहाँ उन्होंने भारतीय चित्रकला का अध्ययन किया।

भारतवर्ष बौद्ध-धर्म की जन्मभूमि है, अतएव बौद्ध-कला का जन्मदाता भी यही देश है। अजंता के भित्तिचित्रों से उक्त कला की क्रमोन्नति प्रदर्शित होती है। सीलोन में सिगिरिया और ग्वालियर के पास बाघ के चित्र बौद्ध-कला की परिपक्व अवस्था के दर्शन कराते हैं। भारतवर्ष में यही तीन चित्रालय अवशिष्ट रह गए हैं, यद्यपि इनको जलवायु ने बहुत हानि पहुँचाई है। अजंता का परिचय हम दूसरे लेख में देंगे, इस लेख में केवल सिगिरिया और बाघ का परिचय देते हैं।

सिगिरिया (लंका) का चित्रालय प्रथम काश्यप के राज्य-काल (ई० सन् ४७९ से ४९७ तक) में तैयार किया गया। पत्थर में कटे हुए दो कमरों की दीवारों पर चित्र बने हुए हैं। बीस के लगभग स्त्रियों के (कद आदम से पौने) चित्र हैं। इन चित्रों में कोई धार्मिक भावना नहीं पाई जाती। बौद्ध लोगों के मतानुसार ये चित्र राजा काश्यप की रानियों के हैं। इनमें बहुत ही कोमल चित्रण-कौशल प्रदर्शित किया गया है।

पाँचवीं शताब्दी की भित्तिचित्रकला का नमूना
(सिगिरिया, सीलोन से प्राप्त)

बाघ के चित्रों का निश्चित समय विदित नहीं, तो भी अजंता के नवीनतम कौशल से इनकी समानता होने के कारण ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा की छठी अथवा सातवीं शताब्दी में इनकी रचना हुई होगी। चित्रों में से अधिकांश नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। ये चित्र कई गुफाओं में बने हुए हैं। सबसे बड़ा हाल ४० फ़ीट लंबा-चौड़ा है। इसकी दीवारों, खंभों और छत पर चित्र अंकित हैं। ये चित्र पूर्णतया धार्मिक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहे जा सकते । अधिकांश में सांसारिक भावनाएँ पाई जाती हैं ।

बाग़, सिगिरिया और अजंता के अधिकांश चित्रों की रचना गुप्त-राज्य-काल में हुई । यद्यपि गुप्त राजा वैष्णव-धर्मावलंबी थे, अतः बौद्ध-धर्म के साथ उनकी सहानुभूति नहीं थी, तथापि उनके दीर्घतम राज्य के सुप्रबंध के कारण साहित्य और कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई । फ़ाहियान (४०० ई०) और हियानत्सांग (६३० ई०) के वर्णन से पता चलता है कि प्रायः सारे देश में चित्र-कला के ऐसे ही सुललित उदाहरण पाए जाते थे । घरों की दीवारों और दरवाज़ों पर अत्यंत सुंदर चित्र बनते थे । ये इमारतें अब गिर गई हैं, और इनके साथ ही कला के वे उत्कृष्ट उदाहरण भी नष्ट हो गए हैं । मुसलमानों ने भी भारतीय कला का नाश करने में कोई कसर नहीं रक्खी, अपि च, दो शाखाओं (हीनयान एवं महायान) में विभक्त हो जाने तथा हिंदू-धर्म की उत्तरोत्तर उन्नति होने के कारण बौद्ध-धर्म का ह्रास हुआ, और उसके साथ बौद्ध-कला का भी पतन होता गया ।

इतिहासकार तारानाथ ने बौद्ध-कला के विषय में कई लाभप्रद बातें बताई हैं, उनको यहाँ दे देना हम उचित समझते हैं ।

उक्त कला तीन शैलियों में विभक्त थी—देव, यक्ष और नाग । देव-शैली मगध में प्रचलित थी । इसका समय ईसा-पूर्व छठी शताब्दी था । यक्ष-शैली का समय अशोक के राज्य-काल से साथ मानना चाहिए । नाग-शैली नागार्जुन-नामक विद्वान् के समय (ईसा की तीसरी शताब्दी) में प्रचलित थी । अमरावती में ईसा की दूसरी शताब्दी के बने हुए स्तूपों से इस शैली का कुछ ज्ञान हो सकता है ।

ईसा की तीसरी शताब्दी के पश्चात् कला की उन्नति एकदम रुक गई । कुछ समय बाद इसमें पुनः जागृति उत्पन्न हुई । तत्कालीन कला के ये स्कूल थे—मध्य-देशीय, पश्चिमी और पूर्वी । मध्यदेश का अर्थ वर्तमान संयुक्तप्रांत से समझना चाहिए । यहाँ के स्कूल का प्रवर्तक बिंबसार था, जो पाँचवीं या छठी शताब्दी में मगधराज बुद्धपक्ष के समय में हुआ । यह शैली देव-शैली से मिलती-जुलती थी, एवं इसके चित्रकार बहु-संख्यक थे । पश्चिमी शैली को राजपूताने की कला मानना चाहिए । इसका प्रधान आचार्य शृंगधर हुआ है, जो संभवतः सातवीं शताब्दी में, उदयपुर के शासक शिलादित्य गुहिल के समय में, हुआ । यह यक्ष-शैली से मिलती थी । पूर्वी शैली की उन्नति नवीं शताब्दी में धर्मपाल और देवपाल के राज्य-काल में हुई । वारेंद्र (बंगाल) इसका प्रधान केंद्र था । भीमान और उसका पुत्र वित्तपाल इस शैली के अग्रगण्य चित्रकार हो गए हैं । ये दोनों चित्रकार होने के साथ ही शिल्पी एवं धातु-निर्माता भी थे ।

छठी और दसवीं शताब्दी के बीच काश्मीर, नेपाल, बरमा और दक्षिण-भारत में चित्रकला के कई स्कूल विद्यमान थे, परंतु इनको तारानाथ पूर्वोक्त शैलियों की ही शाखाएँ बताता है ।*

गोपालस्वरूप भटनागर

भेंट

तजिकै स्वधामैं वसुधा मैं धरि आयौ देह,
गेह को भुलानी नेह की हूँ बिसरानी है,
रानी श्री-सरिस-संग, हरिजू, बतावौ नेकु,
कुछ तौ परी ती—ऐसी हम अनुमानी है।
चक्र चलि आए, वक्र भृकुटी नवाए, समु-
हाए दया-दीठि जस विरद बखानी है,
'सुकवि नरेश' की हेरानी सुधि आई, किधौं
घेरि आन्यौ करुना-प्रवाह—हम जानी है।
खोलि दीन्हें द्वार दुख दारिद गुहार पर,
कहति पुकार बज्र-जटित निसानी तौ;
सोर सुनि तेरी पौरि दौरि आयौ खोरि करि,
'सुकवि नरेश' की न माखौ मनमानी तौ।
केते धौं उबारे हिय हारे पैज टारे नाहिं,
यामैं है लखात कछू हित की न हानी तौ,
गुनिकै पुरानी, हेरि रावरी नजरि, फेरि
हमहूँ कहैंगे नेकु आपुनि किहानी तौ।

मातादीन शुक्ल

---

* Indian Paning से ।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उपन्यास)

सत्रहवाँ परिच्छेद

चलते-चलते कादंबिनी ने कहा—"आपको मुझे यहाँ अकेली देखकर अवश्य ही आश्चर्य हो रहा होगा। मेरा निवास पास ही किशनपूर नाम के गाँव में है।"

ललित बोला—"पर माफ़ कीजिए, आप तो शिक्षिता हैं—"

"जीहाँ, मैं छोटी उम्र में ही विधवा हो गई थी, इसलिये बाबूजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने दुःख के कारण अत्यंत उत्तेजित होकर आर्य-समाजी होने की ठानी, और मेरा द्वितीय विवाह करने का निश्चय किया। पर विवाह के पहले मेरा शिक्षित होना उन्होंने आवश्यक समझा। वह मुझे आगरा ले गए। वहाँ पहले ईसाई लड़कियों के एक स्कूल में मैंने पढ़ा, फिर डाक्टरी सीखी। किसी कारण से भी हो, बाबूजी का विचार पीछे बदल गया था, और वह आर्य-समाजी नहीं बने। मैंने भी दूसरा विवाह करने से इनकार किया। अलमोड़े के सैनिटोरियम में मैं स्त्री-चिकित्सक हूँ। छुट्टियाँ लेकर कुछ दिनों के लिये यहाँ आई हूँ।"

इन बातों से कादंबिनी के प्रति ललित के हृदय में यद्यपि श्रद्धा नाम को भी उत्पन्न नहीं हुई, तथापि उसके स्वभाव में उसे एक ऐसी विशेषता मालूम हो रही थी, जो उसे अपनी ओर आकर्षित करती थी। वह विशेषता क्या थी, यह निश्चय-पूर्वक नहीं बतला सकता था। पर शिक्षिता स्त्रियों के प्रति उसके हृदय में जो एक स्वाभाविक घृणा का भाव भरा था, उसे वह किसी प्रकार भी इस युवती के प्रति आरोपित न कर सका।

एक देशी ईसाई बड़े आवेग के साथ, ज़ोरदार शब्दों में व्याख्यान देता हुआ ईसा का माहात्म्य लोगों को सुना रहा था। चारों तरफ़ से कौतूहली श्रोतागण उसे घेरकर भीड़ लगाकर खड़े थे। कादंबिनी ने अत्यंत घृणा का भाव प्रदर्शित करके कहा—"कैसे बेवकूफ़ और तंगदिल ये ईसाई लोग होते हैं! अपने धर्म की ऊटपटाँग बातें सुनाकर, हिंदू-धर्म के दोष दिखलाकर, हिंदू-देवी-देवताओं को गालियाँ देकर दूसरे लोगों को भी अपने भेड़ों के दल में शामिल करना चाहते हैं। मनुष्य के हृदय का धर्म सब जगह एक-सा है, तब इस तू-तू मैं-मैं के झगड़े से इन लोगों को फ़ायदा क्या होता है?"

उसकी इस बात में कोई नवीनता नहीं थी। इसलिये उसकी विवादास्पद प्रवृत्ति जागरित नहीं हुई। फिर भी चुप रहना उचित न समझकर वह बोला—"फ़ायदा यथेष्ट होता है। उदरनिमित्तम्। इन बेचारों का क्या क़सूर है! वे मन-ही-मन अच्छी तरह जानते हैं कि ईसा हो, चाहे मूसा हो, चाहे कृष्ण हो—सबकी भजना टके के लिये होती है। टका धर्मः टका कर्मः टका हि परमं तपः। इसलिये जिसका खाते हैं, उसी का गाते हैं।"

कादंबिनी ने पूछा—"आपकी राय में हमारे यहाँ के निम्नश्रेणी के लोगों का ईसाई होना अच्छा है या बुरा?"

ललित ने उत्तर दिया—"मैं कोई विशेष हानि तो नहीं देखता। हिंदू-समाज अपनी सभी संकीर्णताओं और नीचताओं को लेकर धरातल में युग-युगांतर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये टिका ही रहे, यह इच्छा करके मैं 'संगठनिस्ट' लोगों की वाहवाही लूटना नहीं चाहता। भगवान् की कृपा से यह लोभ दमन कर चुका हूँ। जो समाज अपने अधिकार-गत मनुष्यों को पशु से भी अधम बनाकर, पैरों-तले रौंदकर, उनके मुँह में थूककर भी टस से मस नहीं होता, उनके जीवन को मृत्यु से भी भयंकर बनाकर उनकी रक्षा का कोई उपाय सोचना आवश्यक नहीं समझता, उसे यह कहने का क्या अधिकार है कि तुम इस दलित और गलित अवस्था में भी हिंदुओं की संख्या बढ़ाने के लिये और परम पुण्य कमाने के लिये इसी समाज में मर-मरकर ज़िंदगी बसर करते रहो? ईसाई बनकर जब उनकी अवस्था अपेक्षाकृत सुधर जाती है, तो उन्हें विधर्मी होने से रोकना मैं तो घोरतम पाप समझता हूँ। किसी भी उपाय से मनुष्य की आत्मरक्षा हो, उसके हृदय का धर्म और उसका मनुष्यत्व बचा रहे, यह बात मुख्य रूप से विचारणीय और आवश्यक है। हिंदू-धर्म रहे चाहे जाय, इस देश में मुसलमानों का संगठन दृढ़ हो, चाहे ईसाई लोगों की संख्या बढ़े, इसमें सृष्टि की स्थिति में बिलकुल फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। प्रलय-काल तक लाखों धर्मों का आविर्भाव होता रहेगा, लाखों का तिरोभाव। किसके विनाश के लिये दुःख प्रकाश किया जाय, किसकी उन्नति के लिये सुख! वैयक्तिक मनुष्य का धर्म उन्नत रहे—चाहे वह किसी भी धर्म का हो—इसकी चेष्टा होनी चाहिए। अधिकांश पशुओं की ऐसी जातियाँ होती हैं, जिन्हें अँगरेज़ी में Gregarious करते हैं। वे दल बाँधकर रहते हैं और प्रत्येक दल विरोधी दल से अपनी रक्षा के लिये अपना दल सुगठित बनाने की चेष्टा में रहता है। हमारे संगठनकर्ता पशुओं के इन्हीं दलों की तरह अपना भी दल संगठित करना चाहते हैं। केवल अपना अस्तित्व क़ायम रहे, यही वे लोग चाहते हैं, पर जाति में मनुष्यत्व और पुरुषार्थ की प्रबलता हो, इस संबंध में वे बिलकुल उदासीन हैं।"

ललित की बातों से कादंबिनी का मत न मिलने पर भी वे अकाट्य थीं। इसीलिये वह मुस्किराती हुई, नयन-बाणों से उसके वज्रहृदय पर आघात करने की चेष्टा करती हुई चुप हो रही। बहुत देर तक वे लोग इधर-उधर टहलते रहे। मेला धीरे-धीरे घटने लग गया था। ललित ने घर लौट चलने का विचार किया।

कादंबिनी ने कहा—"क्या अभी से जाइएगा? चलिए, मेरे घर चलिए, पास ही है। वहीं से होकर जाइएगा।"

ललित असमंजस में पड़ा। कुछ सोचकर उसने कहा—"चलिए।"

मेले की भूमि पार करके वे लोग बाईं ओर को मुड़े। इमली, बेर, अर्जुन और आमले के पेड़ों की छाया के नीचे होते हुए वे लोग चलने लगे। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। अचानक कादंबिनी, न मालूम क्या सोचकर, पूछ बैठी—"आपका विवाह कब हुआ?"

ललित ने एक बार उसके अंतःकरण का भाव जानने के लिये उसकी ओर ताका। फिर अपनी स्वाभाविक रहस्यमयी भाषा में कहा—"पूर्व जन्म में हो चुका है।"

कादंबिनी ने भी व्यंग्य-पूर्वक पूछा—"किसके साथ?"

ललित बोला—"जिसके साथ हुआ था, वह पूर्व जन्म में ही अनंतकाल के लिये अदृश्यलोक में विलीन हो गई थी। न अब वह कभी जन्म लेगी, और न कभी अब मेरा विवाह होगा।"

उसकी इस बात को अर्थहीन रसिकता समझकर कादंबिनी ने सहज भाव से कहा—"आपकी उम्र तो काफ़ी जान पड़ती है। अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मुझे तो इसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ जान पड़ता है।"

ललित बोला—"रहस्य जो कुछ है, वह मैं आपको बतला चुका हूँ। इससे अधिक रहस्य और क्या हो सकता है।"

कादंबिनी ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि किसी के साथ आपका गुप्त प्रेम है।"

ललित ज़ोर से ठठाकर हँस पड़ा। इस दुबले आदमी के भीतर इतने ज़ोर से हँसने की शक्ति छिपी हुई है, कादंबिनी को यह बात मालूम न थी। वह चकित रह गई। ललित ने उसके संदेह का निराकरण करना उचित न समझा, और केवल हँसकर ही चुप हो रहा। बहुत देर तक दोनों मौन होकर चलते रहे। चलते-चलते एक पक्का मकान दिखाई दिया।

कादंबिनी ने कहा—"यही हमारा मकान है। चलिए, भीतर बाबूजी बैठे होंगे, उनके साथ दो-चार बातें कर लीजिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-जैसे देश में, ग्राम-निवासी पिता की लड़की को अपने साथ अकेले लेकर उन्हीं के सामने बिना किसी अन्य कार्य के उपस्थित होना ललित को अत्यंत अशोभन जान पड़ रहा था, और संकोच के कारण उसके पैर आगे नहीं बढ़ते थे। वह कितना ही मन को समझा रहा था कि जिस व्यक्ति ने अपनी लड़की को डाक्टरी पढ़ाने का साहस किया है, और उसका दूसरा विवाह तक करना चाहा है, वह कभी इस बात का ख़याल नहीं कर सकते। पर उसके हृदय में जो संस्कार बद्धमूल था, वह निकलना नहीं चाहता था।

कादंबिनी के पिता ब्रजेश्वरीप्रसाद चौबे भीतर बैठ कर, आँखों में चश्मा लगा कर, एक सिगार मुँह में लेकर और एक अँगरेज़ी अख़बार हाथ में थामकर उसे पढ़ रहे थे। कादंबिनी को किसी आदमी के साथ आते हुए देखकर उन्होंने चश्मा ऊपर को किया, और ख़ाली आँखों से उस आदमी को पहचानने की चेष्टा करने लगे। मालूम हुआ कि आदमी नया है।

कादंबिनी ने कहा—"बाबूजी, यह मेरे नए मित्र श्रीयुत ललितमोहन हैं।" ललित से कहा—"पाठकजी, यह मेरे बाबूजी हैं।"

ललित ने ससंकोच मुस्कराते हुए प्रणाम किया। चौबेजी ने प्रणाम का उत्तर देकर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करके कहा—"आइए, तशरीफ़ रखिए।" यह कहके उन्होंने एक कुरसी आगे को बढ़ाई।

"मैं अभी आई पाठकजी, आप तब तक बैठिए।"—कहकर कादंबिनी कुछ काम के लिये भीतर चली गई।

चौबेजी की अवस्था पचास से अधिक होने पर भी वह बड़े उत्साही पुरुष थे। उनकी आवाज़ बुलंद थी, उनके शरीर में बड़ी फ़ुर्ती थी, उनके हृदय में यथेष्ट आवेग था। पर उनकी प्रकृति अत्यंत तीक्ष्ण थी, या कई कारणों से हो गई थी। उन्होंने ललित से पूछा—"आपका शुभस्थान?"

गाँव का नाम मालूम होने पर उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—"इतनी दूर से आप मेला देखने आए हैं? मुझे तो साहब, इन सब मेलों-ठेलों से नफ़रत हो गई है—ख़ासकर पर्व-संबंधी मेलों से। हिंदू-समाज के धार्मिक दकोसले देखकर मेरे दिल में जलन-सी पैदा होती है।"

चौबेजी का आवेग देखकर ललित का संकोच काफ़ूर हो गया। उसने स्थिरता के साथ कहा—"इस संबंध में आपकी प्रकृति मेरी प्रकृति से मिलती हुई जान पड़ती है। मुझे भी इन बातों से चिढ़ है।"

चौबेजी उसकी बात पर विशेष ध्यान न देकर अपनी ही धुन में पूर्ववत् आवेग के साथ कहते चले गए—"बतलाइए, कब तक कोई आदमी इस समाज के दम-झाँसे सहता जाय! मैं तो जनाब, उसका दबाव मान कर किसी तरह नहीं चलना चाहता। लोग डरकर कहते हैं, समाज हमें बायकाट करेगा। अरे बाबा! तुम्हें इतनी हिम्मत क्यों नहीं है कि तुम ख़ुद समाज का बायकाट करो! समाज के इस डर ने ही तो भारत को ग़ारत कर दिया। एक ईश्वर का डर होना चाहिए, बस! आप सचाई पर अटल रहिए, फिर चाहे समाज कुछ करे! समाज को मारिए गोली और दुनिया जाय भाड़ में! यहाँ तो किसी से लेना एक, न देना दो, यह हिसाब रहता है!"

ललित ने कहा—"मैं आपकी बातों से सहमत हूँ।"

चौबेजी अपनी ही धुन में मस्त थे। वह सहमत हैं या नहीं, यह बात जानने के लिये वह बिलकुल उत्सुक नहीं थे। उसकी बात शायद उनके कानों में पूरी तरह से गई भी नहीं। वह पहले की तरह कहते चले गए—"बतलाइए, क्यों धर्मध्वजी लोगों का शासन माना जाय? जैसे ब्रह्मा ने सृष्टि का सारा भार इन्हीं लोगों को सौंप दिया है! विधवा का विवाह मत करो, विवाह होने के पहले जो स्त्री रजस्वला हो जाती है, उसका छुआ पानी मत पीओ, पत्थर के देवतों की पूजा करो, काली को बकरे भेंट चढ़ाओ, मंदिर में घंटा बजाओ, ब्राह्मणों को खीर-पूरी खिलाओ—इतना खिलाओ कि छक जायँ, उन्हें दान-दक्षिणा दो, उनसे डरते रहो—कहीं शाप न दे डालें, ऐसी ही बातों के शासन से समाज भय-कंपित किया जा रहा है। इस दबाव और इस धौंस से जो लोग डरते हैं, और गौरव समझकर सब अत्याचार सहते जाते हैं, वे घोर पापी हैं।"

"ललित ने गंभीरता के साथ कहा—"आप बिलकुल सही बात कहते हैं।"

पर वह उसकी बात का ख़याल न कर, उसी पूर्व आवेग के साथ, उसी तेज़ी से कहने लगे—"बतलाइए, ऐसे तंत्रित Priesthood का प्रभुत्व स्वीकार करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप नहीं, तो क्या है ? मैं तो जनाब, सनातनधर्म की ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बाज़ आया। मैं तो आर्य-समाज की तारीफ़ करता हूँ, आप चाहे कुछ भी कहें।"

ललित बोला—"माफ़ कीजिए, Dogmatism और Formalism से आपका पिंड वहाँ भी नहीं छूटेगा। यह बुरी बला सभी मज़हबों में पाई जाती है। यही कारण है कि एक मज़हबवाले दूसरे मज़हबवालों को गालियाँ देते हैं। ईसाई-धर्म इस समय संसार के सब धर्मों से अधिक उदार समझा जाता है। पर वास्तव में इसी Dogmatism के कारण उसमें इतनी संकीर्णता पाई जाती है कि देखकर आश्चर्य होता है।"

कादंबिनी भीतर से वापस आ गई थी, और ललित की अंतिम बातें पूरी तरह से सुन चुकी थी। उसने पिता की तरफ़ से उत्तर दिया—"इसीलिये तो बाबूजी ने आर्य-धर्म में दीक्षा नहीं ली।"

ललित की बात और कादंबिनी का उत्तर सुनकर चौबेजी का जोश ठंढा पड़ गया था। उन्होंने अन्यमनस्क होकर शांत भाव से कहा—"हाँ, बात तो यही है।"

थोड़ी देर बाद नौकर भीतर से चाय ले आया। कादंबिनी शायद इसीलिये भीतर गई थी। तीन रकाबियों में मेवे भी आए। चा बहुत उमदा बनी थी। स्वाद पहचान कर ललित ने पूछा—"यह क्या लिपटन की दार्जिलिंग पीको है ?"

चौबेजी ने कहा—"जोहाँ, आपका 'सेंस आफ़ टेस्ट' बहुत 'फ़ाइन' जान पड़ता है।"

ललित बोला—"देहात में रहने पर भी आपके यहाँ शहर की सभी चीज़ें मौजूद हैं। मेवे हैं, लिपटन की पीको है, सिगार हैं—"

हड़बड़ाकर चौबेजी ने दुःख प्रकाश करते हुए कहा—"बड़ी ग़लती हुई, माफ़ कीजिए ? अभी तक मैंने आपको एक सिगार भी 'आफर' नहीं की। अब चा पी लीजिए, तब—"

ललित ने मुस्किराकर कहा—"ग़लती आपसे कुछ भी नहीं हुई। मैं पाता नहीं। कितनी ही बार पीने की कोशिश कर चुका हूँ, पर बार-बार असफल हुआ हूँ। किसी तरह पिया नहीं जाता।"

देर हो गई थी। ललित को बहुत दूर जाना था। चा पी चुकने पर उसने कहा—"अब आप लोग मुझे इज़ाजत दीजिए। मेरा बड़ा सौभाग्य था कि आप लोगों के दर्शन हुए।" यह कहकर वह खड़ा हुआ।

चौबेजी बोले—"आप-जैसे Liberal विचार के आदमी के साथ दो-चार बातें हो जाने के कारण मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। कभी इस तरफ़ आना पड़े, तो दर्शन देना न भूलिएगा।"

ललित ने चौबेजी को प्रणाम किया। कादंबिनी ने कहा—"चलिए कुछ दूर तक आपके साथ मैं भी चलती हूँ।"

थोड़ी दूर पहुँचने पर ललित बोला—"आप कहाँ तक मेरे साथ चलकर कष्ट उठाएँगी ? धन्यवाद।"

कादंबिनी ने कुछ सोचकर पूछा—"फिर कब आपके दर्शन होंगे ?"

ललित ने कहा—"आप यहाँ कब तक हैं ? मेरे ख़याल से आप तो जल्दी ही अल्मोड़े चली जायँगी ? क्यों ?"

"जीहाँ।"

"मैं भी कल-परसों मेरठ की तरफ़ जाऊँगा। अच्छा, एक काम क्यों न कीजिए। मुझे अपना पता लिखकर दीजिए। संभव है, कभी अल्मोड़े की तरफ़ हवाख़ोरी के लिये चला आऊँ। आने का इरादा होगा, तो आपको लिखूँगा।"

"अवश्य आइएगा, स्वास्थ्य के लिये ऐसी अच्छी जगह युक्तप्रांत में कहीं नहीं है। आपके पास काग़ज़ का एक टुकड़ा भी है ?"—कहकर कादंबिनी ने हाथ बढ़ाया।

जेब टटोलने पर क़ागज़ का एक टुकड़ा तो मिला, पर पेंसिल किसी के पास न थी।

कादंबिनी ने कहा—"मेरा पता लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। सैनिटोरियम, अल्मोड़ा—इतना याद रहना चाहिए।"

ललित बोला—"अच्छी बात है। आपकी मित्रता पाकर मैं आज अपने को कृतार्थ समझता हूँ। ऐसा सौभाग्य बहुत कम प्राप्त होता है। नमस्कार।"

कादंबिनी ने मुरझाई हुई आवाज़ में कहा—"नमस्कार।"

ललित के चले जाने पर बहुत देर तक शून्य निर्विकार दृष्टि से वह उसकी ओर ताकती रही। जब वह आँखों से ओझल हो गया, तो उसने एक लंबी साँस ली, और वापस चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारहवाँ परिच्छेद

ललित ने जो अंतिम चाटुता-पूर्ण बात कादंबिनी से कही थी, वह केवल इस ख़याल से कि उसका दिल न दुखे। यह युवती उसे एक विशेष दृष्टि से देख रही है, बिदाई के समय उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया था। पर उसने अपने हृदय में किसी विशेष भाव का अनुभव नहीं किया। मेले की तरह उसके साथ में केवल उसका दिल-बहलाव ही हुआ था। इस कारण घर पहुँचने पर वह उसे बिलकुल ही भूल-सा गया।

इसके दो-तीन रोज़ बाद वह छैलबिहारी से मिलने के लिये चल पड़ा। मेरठ से प्रायः तीस मील की दूरी पर छैलबिहारी का निवास था। एक सुरम्य उद्यान के भीतर उनकी 'वैराग्य-कुटी' शोभित थी। ज़मींदारी का सारा इंतज़ाम अपने मामा को सौंप कर वह शांति-पूर्वक अपनी ज्ञान-संबंधी संस्कृति में लगे हुए थे। इस वैराग्य-कुटी में वह अकेले रहते थे। कुटुंब के अन्य सब लोग उनके मामा मातादीन के साथ उनके पुराने पैतृक घर में रहते थे। खाना खाने के लिये छैलबिहारी को भी वहीं जाना पड़ता था। पर अन्य समय वह वैराग्य-कुटी में ही रहते थे। ललित इस कुटी में एक बार पहले भी रह चुका था। इस निवास का काव्यमय जीवन उसे बहुत पसंद था।

छैलबिहारी बड़ी उत्सुकता से ललित के आने की बाट जोह रहे थे। उसके आने पर उमंग से उछल पड़े, और उसे छाती से लगाकर कहने लगे—"तुमसे मिलने पर मेरा वैराग्य भ्रष्ट हो जाता है भाई! विरक्ति हट कर आसक्ति बढ़ जाती है।"

ललित ने कहा—"यह मेरा क़सूर नहीं है भैया। यह मेरी दाढ़ी का क़सूर है। जो इसे देखता है, वही मोहित हो जाता है।" यह कहकर अपने परिहास से स्वयं प्रसन्न होकर वह ठट्ठा मारकर हँस पड़ा। इसके बाद कुछ गंभीर होकर बोला—"यह सब विरक्ति और अनासक्ति, वैराग्य और ज्ञान, यम और नियम आदि की नीरस चिंता को अब तिलांजलि दे दो भैया। इन बातों में क्यों अपना सारा जीवन बरबाद करके अपनी रसमय प्रकृति को सुखाते जाते हो?"

छैलबिहारी ने कहा—"तुम ठीक कहते हो भाई। मैं भी अब इन बातों से उकता गया हूँ। आनंद का आभास मिलेगा, इस ख़याल से शुष्क ज्ञान की चर्चा में मैंने अपनी समस्त शक्तियाँ लगा दी हैं। पर विशेष फल प्राप्त नहीं हो रहा है। फिर भी भौतिक विज्ञान द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का Passion मुझे किसी तरह छोड़ना नहीं चाहता। तुम्हें शायद मालूम नहीं होगा कि हाल में मैं प्रकाश-तत्त्व के पीछे पड़ गया हूँ। इस विपुल सृष्टि में आलोक के समान रहस्यमय और कोई भी तत्त्व नहीं है। इसी के सहारे समस्त दृश्य जगत् हमारी आँखों के सामने प्रभासित हो रहा है। पर यह आलोक है क्या चीज़? अंधकार से उसका क्या संबंध है? अमावस्या की अर्द्धरात्रि में बंद कमरे के भीतर निबिड़ कालिमा व्याप्त है—हाथ से हाथ नहीं सूझता; ऐसे समय झट एक मसालेदार काष्ठखंड को अन्य एक मसाला-विशिष्ट काष्ठ के टुकड़े में घिसिए। तत्काल कमरे के भीतर की समस्त दृश्य वस्तुओं का भिन्न-भिन्न स्वरूप प्रकट होने लगता है। अभ्यास-वश हम लोग इस बात पर विशेष ध्यान नहीं देते; पर यह कितना रहस्यमय है, ज़रा सोचने की बात है। निबिड़ अंधकार में सब रूप एक अखंड अभिन्न तत्त्व में लीन थे, केवल एक काष्ठ को दूसरे काष्ठ से घिसने पर नाना रूप दृष्टिगोचर हो गए! यह कैसी विचित्र माया है! अब प्रश्न यह उठता है कि यह आलोक कहाँ से उत्पन्न हुआ। इसमें संदेह नहीं कि काष्ठ के भीतर ताप और अग्नि का तत्त्व निहित है, और ताप तथा अग्नि के समुचित विकास से ही आलोक उत्पन्न होता है। पर यह विकास कैसे होता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि ईश्वर के कंपन से। पर यह निश्चित है कि ईश्वर का कंपन अंधकार के माध्यम में ही चलता है। जब यह कंपन न्यूनतम अवस्था में होता है, तब हमें आलोक नहीं दिखाई देता, और जब चरमावस्था में पहुँच जाता है, तब भी अंधकार ही दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् अंधकार की दो विशेष अवस्थाओं के बीच की अवस्था ही आलोक है। इससे यह स्पष्ट है कि आलोक अंधकार के राज्य से किसी दूसरे राज्य का तत्त्व नहीं है। अंधकार से ही वह प्रसूत होता है, और वास्तव में वह अंधकार की ही एक विशेष अवस्था है। मेरी यह बात वैज्ञानिक और दार्शनिक लोग स्वीकार नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेंगे, पर यह सिद्धांत मुझे स्पष्ट और अकाट्य जान पड़ता है। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर का कंपन जब चरमावस्था को प्राप्त हो जाता है, तो वह ज़ाहिरा तौर पर अंधकार के रूप में प्रकट होने पर भी क्या वास्तव में अंधकार की साधारण अवस्था है? मुझे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता। कंपन की न्यूनतम अवस्था में जो अंधकार प्रकट होता है, उसकी चरमावस्था में भी वही अंधकार रहेगा, यह सिद्धांत कल्पनातीत भ्रामक है। ऐसी उलटी बात कभी सत्य हो नहीं सकती। मेरे ख़याल में तो कंपन की चरमावस्था का अंधकार आलोक की ही चरमावस्था है। हमें वह इस कारण अंधकारमय जान पड़ती है कि मनुष्य साधारणतया कंपन की जिस अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करता है, अंधकार की यह अवस्था उसके अतीत है। या तो मनुष्य की आँखों की बनावट में फ़र्क़ पड़ जाता है, या हृदय और मस्तिष्क के गठन में। हम आलोक से उतना ही परिचित रहते हैं, जितना हमारी आँखों से उसका संबंध है। पर आलोक के मूल तत्त्व का अस्तित्व हमारी आँखों से अलग, स्वतंत्र रूप में अवस्थित है, यह बात तुम स्वीकार करोगे। अर्थात् हम चाहे देखें या न देखें, पर आलोक सब समय—अमावस्या की घोर कालिमामय अर्द्धरात्रि में भी—वर्तमान रहता है। सूर्य से ही उसका विशेष संबंध नहीं है। कई जानवर ऐसे होते हैं, जो दिन की अपेक्षा रात को अच्छी तरह से देख सकते हैं। हम नहीं देख सकते, इसमें अंधकार का दोष नहीं है। यह हमारी ही आँख के Retina की बनावट का दोष है—जिसे हम अंधकार कहते हैं, वह आलोकमय ही है। नहीं तो विशेष-विशेष जीव कभी अंधकार में न देख सकते।

जो बात मैंने इस समय तक प्रमाणित करने की चेष्टा की है, यदि वह सत्य है, तो इसके द्वारा मृत्यु का रहस्य उद्घाटित होने में सहायता मिल सकती है। मृत्यु को साधारणतः अंधकारमय बतलाया जाता है। दीप-निर्वाण से उसकी तुलना की जाती है। मृत्यु प्रकट रूप से अंधकारमय है, इसमें संदेह नहीं; पर जब बालक गर्भावस्था में रहता है, वह अवस्था भी अंधकारमय है। गर्भावस्था की तुलना ईश्वर के कंपन की न्यूनतम अवस्था से की जा सकती है। पर मृत्यु ईश्वर के कंपन की चरमावस्था है। जीवन-भर नाना उलटे-सीधे चक्रों के फेर में पड़कर मनुष्य की प्रकृतिगत वृत्तियों का कंपन जब चरमावस्था को प्राप्त हो जाता है, तब वह अवस्था मृत्यु के रूप में प्रकट होती है। पर यह अवस्था कंपन की चरमावस्था होने के कारण अंधकारमय कदापि नहीं हो सकती—वह अनंत आलोकमय है। हमारे ही भ्रम के कारण वह हमें अंधकारमय जान पड़ती है। यदि मनुष्य अपनी वृत्तियों के समुचित परिचालन द्वारा अपनी अनुभूति को यथेष्ट प्रबल बना सके, तो वह अत्यंत अंधकार के रूप में प्रकट इस अनंत आलोक से परिचित हो सकता है। दर्शनेंद्रिय की अनुभूति के विकास में वह अमावस्या की रात में आलोक की तीव्रता से अभिज्ञ हो सकता है, और मानसिक वृत्तियों की अनुभूति यथेष्ट विकसित होने से मृत्यु में अनंत जीवन का अनुभव कर सकता है। दोनों अवस्थाएँ केवल उपमा के रूप में नहीं, व्यावहारिक रूप से वैज्ञानिक दृष्टि से समान हैं। अमृतत्व-मुक्ति—की अवस्था को हमारे उपनिषत्कारों ने अनंत प्रकाशमय बतलाया है। पर साधारण सांसारिक मनुष्य की अनुभूति के अनुसार वह अवस्था अंधकारमय है। मानसिक ईश्वर के कंपन की अवस्था विशेष ही ब्रह्मानंद है। मैं आजकल ऐसे प्रयोगों में लगा हूँ, जिनके द्वारा आँखों की अनुभूति—शक्ति बढ़ाकर, उनकी बनावट बदलकर अमावस्या के अंधकार में आलोक की उज्ज्वलता का अनुभव कर सकूँ, और योग के द्वारा मानसिक वृत्तियों की शक्ति बढ़ाकर मृत्यु में भी जीवन का अनुभव करके उस पर विजय प्राप्त कर सकूँ। इसके अतिरिक्त आधुनिक सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार काल को Space से अभिन्न मानकर लंबाई, चौड़ाई और उँचाई की तरह उसे एक चौथा अनुमाप बतलाकर गणितज्ञों ने जो एक नया रहस्य उद्घाटित किया है, उसकी सत्यता के अनुभव से केवल वर्तमान में ही अवस्थित, काल के क्षणिक रूप को जीतकर अनंत काल की अनुभूति से परिचित होना चाहता हूँ।"

एक क्षुद्र प्रश्न के उत्थापन से छैलबिहारी ने यह जो एक लंबी-चौड़ी नवाविष्कृत थ्योरी व्याख्यान के रूप में ललित के सामने पेश की, उसे सुनकर उसकी बुद्धि चकरा गई। श्रद्धा, आश्चर्य, भ्रम और भय ने एक साथ उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर अधिकार किया। कुछ देर तक भ्रांति से विमूढ़ होकर उसने कहा—"देखो भैया, तुम्हारी बुद्धि दिन-दिन अधिक-अधिक विकसित होती जाती है; यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। पर बुद्धि के इस विकास को नियंत्रित न कर सकने के कारण एक दिन तुम्हें भ्रांति के अकूल सागर में निस्सहाय होकर बहना पड़ेगा, यह निश्चित है।"

छैलबिहारी ने अचानक इस चर्चा से ऊबकर कहा—"मारो गोली! इन बातों में क्या रक्खा है! तबला पकड़ो, मैं सितार लेता हूँ। एक-आध गत हो ले!" यह कहकर उन्होंने नीचे बैठकर सितार हाथ में लिया, और उसमें मधुर झंकार देने लगे। ललित तबला पकड़कर हथौड़े से ठोक-पीटकर उसकी आवाज़ ठीक मिलाने लगा। धीरे-धीरे छैलबिहारी अपूर्व, अनिर्वचनीय स्वर-लहरी झंकृत करने लगे। ललित भी तबला बजाता हुआ उसमें तल्लीन हो गया। छैलबिहारी सितार बजाने में अत्यंत सिद्धहस्त थे। ललित उसका सुसामंजस्य-युक्त, सुललित झंकार सुन-सुनकर मस्त हो गया। तुच्छ तत्त्वों की आलोचना की झूठी माया पल-भर में विलीन हो गई, और रस का आनंदमय सागर उमड़ चला। बहुत देर तक दोनों मित्र इस रस में बेसुध होकर डूबे रहे। बहुत दिनों से पारस्परिक स्नेह का संगीत-सुधा-मिश्रित ऐसा रस उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। जब होश में आए, तो प्रेम और मद से भरे नेत्रों से विह्वल होकर एक-दूसरे की ओर ताकते रहे।

इलाचंद्र जोशी

कुरुक्षेत्र

(महाकाव्य)

वनवास

(१)

मालती-निकुंज, कुंज-पुंज, कंटकित-वन,
नद ताल झील भरु मेरु पथ कर पार;
फाँद खाँइयाँ कठिन, लाँघ वीथिका विजन,
तोड़-तोड़ मार्ग-अवरुद्ध कुश की कतार।
फुंकारते भुजंग फन पद से कुचल,
ललकारते, प्रचंड हिंस्र प्राण-पशु भयंकर,
आ पड़े गहन वन बीच पांडु पुत्रगण,
सहते भयंकरी विपत्ति देवि के प्रहार।

(२)

रक्त-विंदु शुष्क धूलि से सने कमल-पद,
कंटकित पथ पर चल न सके तनिक;
ज्योतिहीन हो गए नयन, तन की न सुध,
हो रहा कराल काल युद्ध-देश काल्पनिक।
भ्रांति-सा बना भविष्य, भीषण अतीत काल,
क्योंकि वर्तमान था अदृष्ट खेल कारुणिक,
अँटक रहे थे शेष प्राण इस भावना में,
'रह जायगी न आपदा अधिक आधुनिक।'

(३)

बीतने लगे प्रहर दिन रात्रि मास वर्ष,
सबके इसी विपिन में दुखी दिवस गिन;
क्रांति की अशांति मूर्ति मानस प्रदेश पर,
आग थी लगा रही लपट-तुल्य छिन-छिन।
खेलता वसंत जो चला गया विदेश को तो,
रोप कर आ गया प्रचंड ग्रीष्म एक दिन,
वट-वृक्ष के तले खड़े-खड़े स्व-बांधवों से,
कहने लगे नकुल सोच दुर्दशा कठिन।

(४)

"ढूँढ़ता दिगंबरी भयंकरी स्व-शक्ति कौन,
उग्र रूप धर रवि लेकर मशाल लाल;
चिनगारियाँ बिखरतीं, चिता-समान भूमि,
कौन जलता अखंड, किसका है अंतकाल?
अट्टहास करती मरीचिका उधर—दूर,
जल है न पास शुष्क थल-सा अगाध ताल;
उड़ता बवंडर, पिशाचिनी लपट 'लू' की,
है न ध्वनि-प्रतिध्वनि, शून्यता घिरी विशाल।

(५)

"किरणें उगलतीं ज़हर नागिनी-समान,
टूट-से पड़े हैं भारती के अग्निमय तार?
मुरझा गए सुमन उड़ती नहीं सुगंध,
एक भी मधुप करते कहीं नहीं विहार!
तरु पत्र गिरि भूमि रजकण ताल पर,
कौन-सी अनल है धधकती, किसे निहार?
होश हैं न वन-उपवन के, विहंग मौन,
मृत्यु का न पता, पता, काल की कुटिल क्रूर मार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

"विधवा-समान लतिका कतार मृतवत्,
घूमता किधर है प्रकृति का मनोविनोद ?
मोर मरते, गगन में न एक मेघ-खंड,
छेड़ते न कोकिल तनिक तान-स्व समोद ;
केवल कुटिल काक बोलते हैं रह-रह,
हो रहा हृदय-हीन प्राणि-मात्र का प्रमोद ;
रुक-रुक झुक-झुक तरु-डालियाँ नवीन,
जल-जल, खोजती हैं जल की विमल गोद ।"

(७)

भूमि से समेट एक अंजुलि मृदुल पत्र,
मुख-स्वेद पोंछ बोले सत्यव्रत धर्मराज—
"है प्रकृति का अपूर्व दान ग्रीष्म हे सुहृद !
करता प्रचंड रवि जो है इस कालराज ;
एक-एक किरण सहस्र बन-बनकर,
आग खेलती है एक यह भी विचित्र नाज़ ;
देखना, अभी-अभी तनिक देर बाद, देवि—
साँझ मुसुकायगी पहन के कनक-ताज ।

(८)

"जिसकी दया से फैल जायगा सुवर्ण राज्य,
बिहँस उठेगी वन-वन की मृदुल बेल ;
फूलों से हटा के दृष्टि देखना जगत-बीच,
शांति सुख धैर्य और धर्म का सुखद मेल ।
निशि आयगी, शशी बहायगा अमृत-सिंधु,
बह जायँगे उसी लहर में सभी झमेल ;
हेर-फेर उलट-पुलट सुख और दुख,
दुनिया विचित्र, सब इंद्रजाल का है खेल ।

(९)

"सोचते हैं, देखते हैं जो दृगों से हम सब,
हर ओर सबमें विराजमान भगवान ;
धूप में वही है ताप, संध्या में वही है साज,
गौरव वही है औ' वही है मान अभिमान ।
बुद्धि है वही, हृदय आँख कान मन-प्राण,
क्षुद्र और रुद्र सबमें वही सदा समान ;
ग्रीष्म औ' शरद् ऋतु पावस वसंत काल,
सुख-दुख भोग-रोग उसका है नित्य दान ।

(१०)

"धर्मवीर प्रणवीर होकर रहें सदैव,
करते रहें स्व-कर्म कर्मवीर की तरह ;
धर्म को न भूल जायँ, धर्म-साधना अमर,
साधते रहें, स्व-धर्म सिंधु-बीच वह-वह ।
बन के रहें त्रिलोक के नरेश यदि हम,
दिन में न नींद में न स्वप्न में करें कलह ;
आपस की फूट का हृदय दे मसल वीर,
विधि और वामता के भीषण प्रहार सह ।

(११)

"भूल के न मोह नागपाश में लिपट जायँ,
धर्मपाल कर दें सुमन-तुल्य दुख-क्लेश ;
ढूँढ़ते रहें सदैव सत्य शिव मुक्ति-पथ,
मानते रहें विरोध को न हम लवलेश ।
अलख जगाते रहें द्वार-द्वार घूम-घूम,
बनकर भूप से भिखारी दीन दरवेश ;
खिलते रहें कमल-से नियति-सर मध्य,
ईश की दया से पहचान भोर-रवि-वेष ।

(१२)

"पाते गुरुदंड औ' दुलार प्यार चुमकार,
जगदीश न्याय का है यह एक लघु कण ;
बोरता वही है और तारता वही है ईश,
धन्य, भक्त और भगवान का विचित्ररण ।
खेलता कहीं है बालरूप धर शिशु-साथ,
रमता कहीं है आसपास राधिकारमण ;
सत्य है वही, असत्य और सब है प्रपंच,
कौन भूल जायगा अधम-नर एक क्षण !

(१३)

"हलकी किरण रवि की पहुँचती जहाँ न,
जलता वहाँ रमेश का सुवर्ण-दीप-प्रिय ;
उसकी दया, अमृत बनता गरल-तुल्य,
कहते गरल को कभी-कभी हमी अमिय ।
दूर है न वह, हर ओर उसका प्रकाश,
जीवन का केवल वही है एक-मात्र जिय ;
वह है चतुर नट नायक कुशल-कवि,
भाग्य-सुंदरी का वह है परम प्रिय पिय ।"

(असमाप्त)

"गुलाब"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(६)

रेमांट

पुरस्कार-निर्णायकों का सदा से ही यह ध्येय रहा है कि जहाँ तक हो, छोटे-छोटे देशों के साहित्यिकों को प्रोत्साहन मिले, और वहाँ के काव्य तथा जीवन पर विशेष प्रकाश पड़े। संसार के मान-चित्र पर यदि किसी देश का नाम प्रतिष्ठा-पूर्वक नहीं लिखा जाता है, तो कोई कारण नहीं कि वहाँ के कवि एवं लेखक किसी प्रकार घटकर हैं, अथवा गौरव के पात्र नहीं हो सकते। पोलैंड भी उन्हीं छोटे और उपेक्षित देशों में था; पर १९०५ ई० से, जब हेनरी सिंकीवीज़ को पुरस्कार मिला, यहाँ के साहित्य की ओर संसार का ध्यान आकर्षित होने लगा। सिंकीवीज़ ने आक्रांत एवं दुखित पोलैंड का चित्र खींचा था, पर १९२४ ई० के पुरस्कृत उपन्यासकार रेमांट ने अपने देश के किसानों का सहानुभूति-पूर्ण वर्णन किया। निर्णायकों ने स्पष्ट शब्दों में इन्हें पुरस्कार देने का कारण भी लिख दिया—और बहुत संक्षेप में—कि "For his great epic *The Peasants*" *

रेमांट का पूरा नाम लेडिस्लॉ स्टैनिस्लॉ रेमांट (Ladislaw Stanislaw Reymont) है, और यह बहुत साधारण कुल के हैं। इनके पिता ने गाँव में चक्की खोल रक्खी थी, और इसी से परिवार का निर्वाह होता था। रेमांट का जन्म १८६८ ई० में, वहीं गाँव में, हुआ था। छुटपन में यह खेती का काम देखते तथा ढोर चराते रहे। कभी-कभी गाँव की पाठशाला में पढ़ने भी जाते थे; पर उन दिनों पोलैंड में रूसी राज्य की तूती बोलती थी, यहाँ तक कि पाठशालाओं में लड़के पोलिश-भाषा भी नहीं बोलने पाते थे। बालक रेमांट को यह बात बहुत खटकती रही, और इन्होंने मातृभाषा बोलना नहीं छोड़ा। इसके लिये कई बार स्कूल से निकाले भी गए थे।

पढ़ाई छोड़ने पर यह एक दूकान में क्लर्क हो गए। फिर रेल के दफ़्तर में काम करते रहे, और कुछ दिनों तारघर में भी रहे। नवयुवक थे ही, सैर-सपाटा करने की इच्छा बहुत प्रबल थी, जिसका चित्रण 'The Dreamer'-नामक अपने ग्रंथ में इन्होंने स्वयं किया है। उसका नायक भी लेखक की ही भाँति उत्साही युवक है, और निरंतर महत्त्वाकांक्षाओं के स्वप्न देखा करता है। इस समय इनकी तबियत कहीं एक जगह न लगती थी, जीवन बड़ा अव्यवस्थित-सा था। दफ़्तरों से ऊबकर यह एक छोटी नाटक-मंडली में सम्मिलित हो गए, और अभिनय सीखते रहे। इस समय के जीवन की छाया The Comedienne * तथा Lilly दो ग्रंथों में मिलती है। मंडली में भी जी न लगा, तो पॉलिस्ट पादरियों के साथ कुछ दिन बिताए। इतने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त करने पर भी इनकी आदर्शवादिता कम न हुई, और अपने देश के बेचारे किसानों के प्रति पूँजीपतियों के अत्याचारों से दुखित होकर यह उनकी दीन दशा के सुधार के लिये प्रयत्नशील हुए। इस विषय पर इन्होंने एक ग्रंथ भी लिखा, जिसका नाम The Promised Land है, और जो इनके उच्चादर्शों का द्योतक है। इसमें सहानुभूति तथा कला के वे अंकुर अवश्य हैं, जो आगे चलकर इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ में विकसित हुए; पर Ferments, The Vampire अथवा Opium Smokers की कथाओं से इसकी कथा कुछ बढ़कर नहीं है। जैसे इन पुस्तकों में क्रांतिकारियों तथा विद्रोहियों के वर्णन हैं, वैसे ही इसमें भी भविष्य के किसी आदर्श देश की कल्पना है। पर न तो इसमें सिंकीवीज़ का नाट्य-कौशल अथवा ऐतिहासिक विवरण है, और न ज़ोला की प्रगाढ़ प्राकृतिकता। यह पुस्तक ज़ोला के Germinal की श्रेणी की कही गई है। सिंकीवीज़ का अनुकरण करके रेमांट ने 'The Year 1794'-नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा था,

* Inscription with the Nobel Prize Award, 1924.

* Translated by Edmund Obecuy (Putnams, New York, 1920.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर विवरणों की अधिकता के कारण इसमें ऐतिहासिक चित्रण फीका पड़ गया है।

इस सबका कारण है। रेमांट में सरलता एवं सहृदयता है, और इसीलिये उनकी कहानियों में न तो संगठन है, और न एकाग्रता। अलबत्ता उनमें दरिद्रों के प्रति गहरी सहानुभूति है, और वह दीन-दुखियों के स्वातंत्र्य-प्रेम तथा मानसिक भावों को भली भाँति समझते हैं। यों तो एक पुस्तक में उन्होंने एक लड़की का चित्र खींचा है, जिसके जीवन का लक्ष्य सुंदर बनना था, यद्यपि यह कभी पूरा न हो सका; पर इनकी सच्ची मौलिक प्रतिभा पोलैंड के ग्राम्य जीवन के यथार्थ वर्णन में ही मिलती है, जैसा कि एक समालोचक ने लिखा है—

"Reymont was born to be the epic poet of the Polish village" *

यद्यपि रेमांट ने अपना अधिकांश जीवन पेरिस में बिताया है, तथापि अपने देश और गाँव का प्रेम इनके हृदय में वैसा ही प्रबल है, जैसा बाल्य-काल में था। यह कई बार अमेरिका भी गए, पर वहाँ कोलाहल-पूर्ण समाज में इनका जी न लगा, और न इन्हें ख्याति कमाना ही इष्ट था। इनकी एक-आध पुस्तकों के अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके थे, और अंतर-राष्ट्रीय साहित्य में इन्हें स्थान भी मिल चुका था। इनकी कई कहानियाँ संसार की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कहानियों के संग्रह † में सम्मिलित हुई हैं, और कुल मिलाकर इनके उपन्यासों की संख्या २० से ऊपर है।

पुरस्कार मिलने के थोड़े ही दिन पूर्व इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ का एक भाग अँगरेज़ी में अनूदित होकर निकला था‡। यद्यपि अनुवादक महोदय क्रेकौ-विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर थे, तथापि पुस्तक की ओर किसी का विशेष ध्यान न गया। हाँ, पुरस्कार-प्रकाशन के पश्चात् तो इसकी धूम ही मच गई, और पुस्तक के शेष अंशों की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाने लगी। इस कहानी के चार भाग हैं, जिनके नाम से ही लेखक का प्रकृति-प्रेम सूचित होता है। चारों नाम वर्ष-भर की चारों मुख्य ऋतुओं के ऊपर रक्खे गए हैं। जाड़ा (Winter), वसंत (Spring) तथा ग्रीष्म (Summer), ये तीन खंड शरद् (Autumn) के बाद प्रकाशित हुए। जान-बूझकर ही ये प्रकृति-सूचक नाम रक्खे गए हैं; क्योंकि पुस्तक में किसानों के जीवन का विस्तार-पूर्ण विवरण है, जो सर्वथा प्राकृतिकता में शराबोर रहता ही है। यों तो पोलैंड के कृषक-जीवन का वर्णन अन्यान्य पोलिश-लेखकों ने भी किया है, पर The Peasants में कई विशेषताएँ हैं। कथा में विस्तृत चित्रण तथा निर्भीक आदर्शवाद तो हैं ही, मार्मिक जिज्ञासा और सहानुभूति भी है। यदि कहीं-कहीं ज़मींदारों से कृषकों का स्वाभाविक भय मिलता है, और श्रम-जीवियों तथा धनाढ्यों का संघर्ष है, तो मानव-स्वाभाव के सनातन भावों—प्रेम, द्वेष, क्रोध आदि—की भी लीलाओं के असंख्य उदाहरण पाए जाते हैं। कहानी धीरे-धीरे चलती है अवश्य; पर भिन्न-भिन्न ऋतुओं के गमनागमन में इतनी शीघ्रता हो भी तो नहीं सकती। अँगरेज़ी के प्राचीन ग्रंथ Shepherd's Calendar में भी इसी प्रकार की कल्पना है; पर उसमें न तो वह आधुनिकता है, और न दुःखी जीवन के प्रति वह सहानुभूति। कथा की शिथिलता को उकसाने के लिये स्थल-स्थल पर समयोचित घटनाएँ रक्खी गई हैं, जैसे शरद्-काल में विवाह, पिता-पुत्र का कलह अथवा वसंत के अंत में बूढ़े पिता बोरीना की करुणा-जनक मृत्यु। जाड़े में यागूना और अंतेक की प्रेम-पूर्ण खोज अथवा ग्रीष्म में यागूना के ऊपर भीड़ का आक्रमण—ये दो स्थल बड़े मर्मस्पर्शी हैं। बीच-बीच में देहाती कहावतों और कथानकों का साहित्यिक आनंद तो मिलता ही है, वहाँ के रीति-रस्मों का भी घनिष्ठ परिचय दिया है। गाँवों की गंदगी के साथ-साथ वहाँ की संध्या एवं उषा की छटा मिलती है, और अकिंचन दरिद्रों के सरल तथा संतोषमय जीवन के संपर्क से सच्चे सुख का दिग्दर्शन हो जाता है। अन्य देश के पाठकों को एक-आध स्थल खलेंगे अवश्य; पर सार्वभौमिक भावनाएँ कथा को अतीव मर्मभेदी बना देती हैं। परिश्रमशील और धर्म-भीरु कूबा की मृत्यु का दृश्य बड़ा ही कारुणिक है। वर्षों की दुर्घटनाओं और दुःख-पूर्ण झंझटों के अनंतर

* Rupert Hughes: Preface to the German edition of *The Peasants*.

† *World's Classics* (Oxford University Press), 1921.

‡ *Autumn* translated by M. H. Dziewicki (Knopf, New York), 1925.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं, तो वहाँ का वेदना-पूर्ण वर्णन आँखों में आँसू ला देता है—

"And higher yet it flew, and higher,
yet higher, higher
Yea, till it set its feet,
Where man can hear no longer the voice
of lamentation, nor the mournful discords
of all things that breathe—
Where only fragrant lilies exhale balmy
odours, where fields of flowers in bloom
waft honey-sweet scents athwart the air ;
Where starry rivers roll over beds of a milloin
hues ; where night comes never at all." *

देखिए, स्वर्गीय शांति का कैसा वर्णन है। रेमांट की काव्य-कला में ही नहीं, उनके व्यक्तिगत जीवन में भी बड़ी सरलता है। उनकी स्त्री भी साहित्यिक रुचि की हैं, और कई भाषाएँ जानती हैं। उनसे रेमांट को बहुत सहायता मिलती है। दोनों जनों ने अपने स्वदेश (पोलैंड) के लिये साहित्य में ही नहीं, सामाजिक सेवा तथा सुधार में भी बहुत कार्य किया है। इनकी इस कृति में किसानों के जीवन का औदार्य-पूर्ण विवरण, साहित्यिक सहानुभूति की दृष्टि से, एक विशेष स्थान रखता है। भारतीय किसानों के दुःख-पूर्ण जीवन पर ऐसे ही महत्त्व-पूर्ण ग्रंथों की आवश्यकता है। यदि हमारे साहित्य ने इन ग़रीबों की इतनी भी सहायता न की और दारिद्र्य में छिपे हुए इनके सच्चे हृदय का रहस्य न खोला, तो भला वह स्वदेश का और क्या उपकार कर सकता है? इस विषय में रेमांट भारतीय कवियों तथा लेखकों के पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं।

जार्ज बर्नर्ड शॉ

ध्यान देने की बात है कि आज तक जिन तीन, अथवा टैगोर को लेकर चार, कवियों को ब्रिटिश-साम्राज्य में नोबेल-पुरस्कार मिला है, उनमें से कोई भी इँगलैंड का पक्का निवासी नहीं कहा जा सकता। किप्लिंग का जन्म बंबई में हुआ था, और वह बहुत दिनों तक भारतवर्ष में रहे; यीट्स तथा बर्नर्ड शॉ, दोनों ही आयर्लैंड के रहने वाले हैं। १९२५ का पुरस्कार जब शॉ को दिया गया, तो आपने पुरस्कार-समिति को लिखा कि मेरे ही पास जितना रुपया है, उसी का ठीक उपयोग मैं नहीं कर सकता; और लेकर क्या करूँगा। फिर बहुत कहने-सुनने पर आपने उसे स्वीकार भी किया, तो इस शर्त पर कि समिति उसे लौटाकर इँगलैंड तथा स्वीडन के साहित्यिक संबंध को दृढ़ एवं सुसंगठित करने में व्यय करे। नियमानुसार रुपया लौटाया नहीं जा सकता था, अतएव शॉ ने स्वयं इसे उसी लक्ष्य के लिये व्यय करना स्वीकार किया है।

इस बात से लोगों को यह अनुमान होगा कि शॉ बहुत धनी हैं। इस समय तो अवश्य इनके पास धन हो गया है, पर जीवन के प्रारंभ में इन्हें बहुत कष्ट सहन करना पड़ा है। इनका जन्म डब्लिन में, जुलाई, १८५६ ई० में, हुआ। इनका घराना प्राचीन तथा प्रतिष्ठित अवश्य था, पर इनके पिता सरकारी पेंशन लेकर गल्ले की दूकान करते थे। पिता के विषय में तो शॉ ने स्पष्ट रूप से बहुत कुछ लिखा है, माता का भी इन पर बहुत प्रभाव पड़ा। माता-पिता में पटती नहीं थी, और इसी से वह अपना अधिकांश समय संगीत में ही लगाती थीं। यही कारण था कि शॉ ने प्रारंभ से ही गाने-बजाने में अपना ध्यान लगाया, और आगे चलकर संगीत-समालोचक भी हो गए। इनके नाटकों में कहीं-कहीं तो संगीत-शास्त्र के अनेक वैज्ञानिक विवरण दिए हुए हैं। प्रारंभिक शिक्षा इधर-उधर होती रही, पर लड़के का चित्त स्कूलों में न लगता था। वहाँ का काम यह अपने साथियों से करा लेते, और उनके विनोदार्थ बदले में उन्हें क़िस्से सुनाया करते! उन्होंने स्वयं लिखा है कि "स्कूल में मैंने कुछ भी नहीं सीखा"। बस, कभी चित्रालय में जाकर चित्रों को देखा करते, और कभी संगीत की पुस्तकें पढ़ा करते। पिता की स्थिति ऐसी थी नहीं कि उच्च शिक्षा इन्हें दे सकते। अतएव १५ वर्ष की ही अवस्था में इन्होंने एक ठेकेदार की दूकान में नौकरी कर ली। यहाँ रहकर आपने कुछ ईसाई पादरियों के विरुद्ध पत्रों में लेख लिखे; और ५ वर्ष नौकरी करके फिर लंदन चले गए। तंगी के कारण इनकी माता

* *The Peasants: Autumn* (Alfred A. Knopf, New York, 1924).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने लंदन में गाने का एक स्कूल खोल दिया था, और वहीं अपनी लड़कियों के साथ रहती थीं। उनके पहुँचने के पूर्व ही इनकी एक बहन का देहांत हो गया था। इधर शॉ की कोई दूसरी नौकरी भी न लगी, तो माँ को और भी कष्ट होने लगा। एक-आध महीने टेलीफ़ोन-कंपनी में भी नौकर रहे; पर वहाँ इनका जी न लगा, और तभी से इधर-उधर पत्रों में लिखकर थोड़ा-बहुत कमा लिया करते थे। पहले संगीत पर समालोचनाएँ लिखीं, फिर एक नाटक प्रारंभ किया, जो पूरा भी नहीं हो पाया। इसी समय के अनुभव में आपने लिखा है कि एक दवा का विज्ञापन लिखने के लिये मुझे पाँच पौंड मिले थे। अभी तक यही इनकी सबसे बड़ी साहित्यिक कमाई थी। इस बीच में रुपयों की इन्हें बड़ी कमी रही, यहाँ तक कि कई साल आपने नए कपड़े ही नहीं बनवाए। बीच-बीच में संपादकों को अपने लेख भेज-भेजकर तंग करते रहे; क्योंकि एक भी लेख इन लोगों ने स्वीकार न किया। इससे निराश न होकर आपने उपन्यास लिखने की ठान ली; पर इन्हें कोई प्रकाशित ही करने को तैयार न था। बात यह थी कि इनकी भाषा बड़ी कड़वी और तीखी रहती थी, जिसे सभी लोग पसंद न करते थे।

इन सभी अप्रकाशित ग्रंथों को यह सुरक्षित एक कोने में रखते गए। लेकिन शीघ्र ही इनकी माँग हुई। साम्यवाद के दिन आए, और पत्रों में तीव्र लेखनीवाले लेखकों के लिये स्थान मिलने लगा। इस प्रकार के वायु-मंडल में शॉ खूब घूम चुके थे, और साम्यवाद पर इनका अच्छा अध्ययन भी हो चला था। अतएव पत्रों में दो-एक उपन्यास इनके प्रकाशित हुए, जिनकी प्रशंसा विलियम मॉरिस-जैसे कवि ने की। इसी समय के इनके दो उपन्यास The Irrational Knot (मूर्खता की गाँठ) और Love Among the Artists (कलावंतों का प्रेम) एक पत्र में छपे, जिसकी संपादिका उस समय श्रीमती एनी बीसेंट थीं। इन्होंने शॉ को आर्थिक सहायता भी बहुत की, जिसके लिये वह अभी तक इनके कृतज्ञ हैं। बाइरंस प्रोफ़ेशन (Cashal Byron's Profession)-नामक उपन्यास, जिसे इनके एक मित्र ने प्रकाशित किया था, बहुत पसंद किया गया, और इनकी अन्य पुस्तकों के लिये प्रसिद्ध लेखक स्टिवेंसन तक ने उत्सुकता प्रकट की। धीरे-धीरे वह समय बीत गया, जब इन्हें प्रकाशकों का द्वार खटखटाना पड़ता था। इस चिंता से मुक्त होकर अब वह देश-सेवा का उपाय सोचने लगे, और यह निश्चित कर लिया कि साम्यवाद द्वारा ही यह कार्य हो सकता है। इसी बीच में प्रसिद्ध फ़ेबियन सोसायटी (Fabian Society) की नींव पड़ गई थी। इनके मित्र सिडनी वेब ने इसके लिये बड़ा प्रयत्न किया, और शॉ को भी इसमें सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया। यह उनके साथ हो लिए, और दोनों जनों के परिश्रम से इस संस्था का आज बड़ा नाम हो गया है। इसके लिये प्रचारार्थ पैम्फ़लेट लिखना तथा वक्तृता देना शॉ के मुख्य कार्यों में से हो गया, और इसी अभ्यास ने इन्हें पूरा व्याख्यानदाता बना दिया। कभी-कभी तो इन्हें ठेलों पर खड़े होकर सड़कों पर चिल्ला-चिल्लाकर बोलना पड़ा है, और अभ्यास करने के लिये एकांत में जाकर प्रायः यों ही जोश के साथ बड़बड़ाते रहना भी इनकी दिनचर्या का भाग रहा है। तभी से इनके विचार तथा भाव साम्यवादमय हो गए हैं, और इसकी छाप इनके नाटकों पर भी स्पष्ट पड़ी है। इस संबंध में इनकी एक महत्त्व-पूर्ण पुस्तक भी है।*

साम्यवाद के नाम से उन दिनों इँगलैंड के लोग बहुत घबराते थे। इसीलिये शॉ को कोई विद्रोही, कोई आदर्शवादी और कोई सनकी कहता था। यह बात इनके कुछ और असाधारण विचारों के कारण भी थी। आप यद्यपि प्युरिटनशाला के धार्मिक हैं, तथापि ईसाई-धर्म के अनेक अंशों का विरोध करते हैं। विवाह-पद्धति के भी प्रतिकूल हैं, और मांस भी नहीं खाते। एक बार आप लंदन में निरामिषता (Vegetarianism) के ऊपर व्याख्यान देने खड़े हुए। पहले ही वाक्य में आपने कहा—" I am a vegetarian, because I believe vegetarianism makes a man fierce." इतना सुनकर सब लोग दंग हो गए और सभी आश्चर्य से इन्हें देखने लगे। तब तक आपने दूसरे वाक्य में झट कह दिया—"If you doubt this, look at me." और यह कहकर झट आँखें चढ़ाकर तेवर बदल दिए, और लगे सबको घूर-घूर

* The Illusions of Socialism.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ताकने। सारी जनता चकित हो गई; क्योंकि इनका व्याख्यान पूरा अभिनय ही था।

शॉ ने देखा कि साम्यवाद से ही काम न चलेगा; क्योंकि पैसे की तंगी से यह कष्ट में थे। इधर प्रतिष्ठित समालोचक विलियम आर्चर से इनकी मैत्री हो गई थी। वह उस समय एक प्रसिद्ध पत्र के नाट्य-समालोचक थे, और शॉ की सब प्रकार से सहायता करना चाहते थे। शॉ ने चित्रों की आलोचना प्रारंभ की, और थोड़े दिन बाद जान-बूझकर आर्चर ने अपना पद-त्याग करके इनकी नियुक्ति, चित्र-समालोचक के रूप में, करा दी। इस पद पर यह कई वर्ष रहे, और चित्र-कला-संबंधी आधुनिक विचारों का विरोध करके इस क्षेत्र में यथार्थता (realism) का प्रचार करने का प्रयत्न करते रहे, यद्यपि राजनीति में इनका नाम आदर्शवादी (idealist) होने के कारण बदनाम था। सभी का विचार था कि इतने शक्तिशाली लेखक के लिये इस पद का वेतन बहुत कम है, अतएव यह शीघ्र ही 'स्टार'-नामक पत्र के संगीत-समालोचक होकर चले गए। संगीत का अध्ययन इन्होंने परिश्रम-पूर्वक किया ही था, वहाँ भी इनकी मौलिक प्रतिभा झलक उठी। इनकी तीव्र आलोचना के मारे लोगों का नाक में दम हो गया, और कई बार तो इन पर मान-हानि का अभियोग चलते-चलते रह गया। परंतु अपनी विद्वत्ता पर इन्हें विश्वास था, इसी से यह निर्भीक थे, और अपने व्यंग्य-पूर्ण हास्य द्वारा सबको चिढ़ाते ही रहे। जब लोग इनका लोहा मान गए, तो थोड़े ही दिन पीछे यह Saturday Review-पत्र के नाट्य-समालोचक हो गए। इस बीच में इन्होंने दो कला-संबंधी अच्छी पुस्तकें भी लिख डाली थीं। एक तो थी इनके कला-संबंधी विचारों की एक प्रकार की सारावली, जिसका नाम था "Sanity of Art", और दूसरी नाटकों पर थी, जिसमें आपने नारवे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन के आदर्श-विचारों का सारांश दे दिया है, और उन्हीं के नाम पर इसका नाम भी रक्खा है "Quintessence of Ibsenism।" शॉ का विचार है कि इब्सन शेक्स-पियर से भी बढ़कर हैं, और संसार के विचारों को परिष्कृत तथा परिपक्व करने में जितनी सहायता इन्होंने की है, उतनी शेक्सपियर ने नहीं। आपका यह भी कहना है कि अँगरेज़ों ने अपने इस सर्वश्रेष्ठ कवि को आवश्यकता से अधिक आदर देकर संसार के अन्यान्य कवियों का गौरव कम कर दिया है। शॉ अपने बाल्य-काल में ही शेक्सपियर के सारे नाटकों का अध्ययन समाप्त कर चुके थे, और यह इनको बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं; परंतु इब्सन के विषय में जो कुछ अपनी वास्तविक सम्मति है, उसे स्पष्ट कहने में यह अँगरेज़ी-जाति के अकारण क्रोध से कदापि नहीं डरते।

इन तीनों समालोचना के क्षेत्रों में पूर्ण अनुभव प्राप्त करके अब शॉ ने केवल नाटकों के लिखने में ही समय बिताने का निश्चय कर लिया। इनके अब तक के लिखे हुए नाटक प्रचलित भी हो रहे थे, और इन्हें धीरे-धीरे विश्वास हो रहा था कि अब पुस्तकों से ही पर्याप्त आय हो जायगी। समालोचना के काम से कुछ समय बचा कर इन्होंने इसी बीच में "Widowers' Houses" (रँडुओं के घर)-नामक एक साम्यवाद-पूरित नाटक का कुछ अंश लिखा था। १८९२ में इसे संपूर्ण करके प्रकाशित कराया, तो इनके विरोधी लोग घबरा उठे, और पुस्तक की ख़ूब आलोचना हुई। इसका अभिनय भी किया गया, पर बहुतों को पसंद नहीं आया। इससे चिढ़कर आपने "Philanderer"-नामक एक दूसरा सामाजिक नाटक लिखा, जिसमें स्त्रियों के स्वातंत्र्य पर कटाक्ष किया गया है, और समाज को जली-कटी सुनाई गई है। इसे विशेषतः अभिनय के लिये लिखा था, पर पहले नाटक की मेहमानी से घबराकर कंपनी ने डर के मारे इसे खेला ही नहीं। शॉ के दिल की कसक नहीं मिटी, और तुरंत आपने Mrs. Warren's Professions-शीर्षक वेश्या-समाज-संबंधी एक दूसरा नाटक उसी कंपनी को दिया। इसमें आपने वेश्याओं के कुत्सित जीवन को वर्तमान सामाजिक प्रणाली का आवश्यक परिणाम बतलाया, और इँगलैंड के आंतरिक जीवन की ख़ूब पोल खोली। फिर क्या था, सरकार ने इसका अभिनय रोक दिया, और अमेरिका में इसके खेलने पर कई अभिनेताओं पर अभियोग चलाया गया। ये तीनों नाटक "Plays Unpleasant" के नाम से एकत्र संगृहीत हैं।

इतनी छेड़-छाड़ के बाद अब इन्होंने कुछ दूसरे ढंग से नाटक लिखने का विचार किया। "The Arms and the Man" लिखकर युद्ध के आधुनिक आदर्शों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ख़ूब आलोचनात्मक खंडन किया। इसमें कहीं-कहीं योरप की अर्द्धमाध्यमिक तथा अर्वाचीन सभ्यताओं का संघर्ष भी दिखाया गया है। The Man of Destiny में नेपोलियन के राजनीतिक सिद्धांतों तथा चरित्र-संबंधी त्रुटियों की आलोचना है। "You never can tell" में आजकल की अप-टु-डेट औरतों का उपहास है, जो थोड़ा-बहुत "The Arms and the Man" में भी पाया जाता है। इन सभी नाटकों में शॉ स्पष्टवादी के रूप में कटाक्ष करते हैं, और साधारण बातों को भी इस ढंग से व्यक्त करते हैं कि दिल में वे घर कर लेती हैं। इन सभी ग्रंथों का संग्रह फिर "Plays Pleasant and Unpleasant"-नाम से प्रकाशित हुआ (१८९८)।

समाज की काफ़ी ख़बर ले ही चुके थे, एक नाटक Caesar and Cleopatra-नामक उस प्राचीन ऐतिहासिक विषय पर लिखा, जिसे शेक्सपियर ने भी अपने एक ग्रंथ में स्थान दिया है। पर दोनों लेखकों में बड़ा भेद है—शॉ में ऐतिहासिक सत्य अधिक है, और शैली नवीन है; शेक्सपियर में अपना नमक-मिर्च बहुत है। १८९९ में टालस्टाय के ढंग का "शैतान का चेला" (The Devil's Disciple)-नामक एक सामाजिक प्रहसन लिखा, और चार वर्ष बाद एक दूसरा नाटक प्रकाशित किया, जिसे बहुत लोग इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहते हैं। इसका नाम है—"Man and Superman", अर्थात् "मनुष्य तथा दैवी पुरुष", और इसमें समाज के कई प्रश्नों पर बड़ी मौलिक दृष्टि से विचार किया गया है। विवाह-प्रणाली, परमेश्वर में विश्वास, स्वर्ग का अस्तित्व तथा साम्यवाद का प्रभाव आदि-आदि कई समस्याओं पर स्पष्ट सम्मतियाँ नाटक के रूप में रक्खी गई हैं, जिनके कारण शॉ का स्थान संसार के मौलिक विचारकों में बहुत ऊँचा हो गया है। नाटक का वह स्थल अतीव प्रभाव-जनक है, जहाँ मरे हुए पिता-पुत्री मिलते हैं, और स्वर्ग एवं नरक का विवरण देते हुए अपनी पूर्व जीवन-घटनाओं की स्मृतियों पर आश्चर्य करते और पाठकों को भी आश्चर्य में डाल देते हैं।

"John Bull's other Island" में इँगलैंड तथा आयर्लैंड के संबंध की कटाक्ष-पूर्ण आलोचना है, जिसके कारण उन दिनों के राजनीतिज्ञों में विशेष गवेषणा चल पड़ी थी। उन दिनों सप्तम एडवर्ड जीवित थे, इसकी प्रशंसा सुनकर उन्होंने अपने लिये इस नाटक का एक अलग अभिनय कराया। हम भारतीयों के लिये यह ग्रंथ विशेषतः शिक्षाप्रद है; क्योंकि इँगलैंड का चंगुल आयर्लैंड तथा भारतवर्ष, दोनों पर बराबर शक्ति से चढ़ा हुआ है। जिस प्रकार Widower's Houses में निर्धनों के प्रति किए गए पूँजीपतियों के घोर अत्याचारों का दिग्दर्शन है, वैसे ही Major Barbara (१९०५)-नाटक में दरिद्रता का नग्न चित्र है, और उसकी दार्शनिक विवेचना करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि जनता के दरिद्र होने के ही कारण समाज में अत्याचारों और पापों की वृद्धि होती है। अभी तक शॉ के विचारों से साम्यवाद का साम्राज्य हटा नहीं था, और Doctor's Dilemma (१९०६) में आपने बीसवीं शताब्दी के चलते-पुर्ज़े डाक्टरों की मिट्टी पलीद की है। Getting married में इन्होंने फिर से अपने पुराने विषय, विवाह-संबंध, पर कटाक्ष किए, और १९०८ में "ब्लैंको पॉस्नेट"-नाटक में ईसाइयत पर तीव्र आलोचना की, जिसका फल यह हुआ कि इसके अभिनय की मनाही कर दी गई, तथापि टाल्स्टॉय आदि बड़े-बड़े विचारकों ने इसे बहुत पसंद किया। अगले वर्ष फिर सरकार को तंग करने के लिये आपने समकालीन राजनीतिज्ञों तथा विद्वानों की भद्द "Press Cuttings"-नाटक में उड़ाई; क्योंकि प्रकाशन-संबंधी रोक-टोक के निश्चय करने के लिये पार्लियामेंट ने एक कमेटी बैठाई थी, और उन दिनों शॉ के नाटकों के कारण विशेष तहलका भी मचा था। यह नाटक भी रंगमंच में रोक दिया गया, यद्यपि शॉ ने स्वयं इस कमेटी के सम्मुख गवाही दी, और अपने विचार बड़ी निर्भीकता से प्रकट किए।

"Androcles and the Lion" (१९१३) तथा Saint Joan of Arc (१९२१), दो और ऐतिहासिक नाटक इनके प्रकाशित हुए, जिनमें यत्र-तत्र सामाजिक व्यंग्य अवश्य हैं। बीच में Back to Methusilah (१९२१)-नाटक लिखा, जिसमें सामाजिक विकास का काल्पनिक चित्र खींचा गया है, और मानव-हृदय की प्रवृत्तियों के स्वाभाविक प्रस्फुटन के सिद्धांत बतलाए गए हैं। कुछ लोगों की सम्मति में इनके और सभी ग्रंथों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश इसी में कूट-कूटकर भर दिया गया है। शॉ के नाटकों में सबसे महत्त्व की बात उनकी भूमिकाएँ हैं, जो कभी-कभी तो मूल पुस्तक से पाँच-छः गुनी लंबी हो गई हैं। कारण यह है कि अपने नए सिद्धांतों तथा नाट्य-कला-संबंधी मंतव्यों को, बिना इन भूमिकाओं के, यह जनता को स्पष्ट बतला भी नहीं सकते। इनके क्रांतिकारी विचार प्रत्येक क्षेत्र में वैसे ही हैं। धर्म की दृष्टि से तो प्यूरिटन (कट्टर) हैं, पर उपासना और भक्ति के बड़े पक्षपाती हैं। आडंबर के शत्रु तो हैं ही। आपका कहना है कि मेरी सर्वप्रिय पुस्तक जॉन बनियन की Pilgrim's Progress है, जो प्रायः नवयुवकों को अच्छी नहीं लगती। पुस्तकों में तो कहीं-कहीं यह निरीश्वरवादी जान पड़ते हैं, पर आप गिरजाघरों में अकेले जाकर उपासना करते हैं, और कहते हैं कि गिरजे में भीड़ के साथ प्रार्थना करने से तो खलियान में परमात्मा की उपासना करना अच्छा है। जब यह लिखते-पढ़ते नहीं होते, तो पैरगाड़ी या मोटर की मरम्मत करते, तैरते अथवा चित्र खींचते हैं, ख़ाली कभी नहीं रहते। आप में हास्य-रस का बड़ा प्राबल्य है। एक बार एक सज्जन ने इनकी पुस्तकों से आय का हिसाब लगाकर पता लगाया कि इन्हें प्रति शब्द एक शिलिंग पुरस्कार मिला है; बस, आपने एक शिलिंग इनके पास भेजकर प्रार्थना की कि मुझे कृपया एक शब्द भेज दीजिए। भला, बर्नर्ड शॉ हँसी में कब चूकनेवाले थे, आपने तुरंत उन्हें तार भेज दिया, और उसमें एक ही शब्द भेजा—"Thanks!"। देखिए, कैसा अच्छा मज़ाक़ रहा। उनका शिलिंग भी लौटा दिया, और एक ही शब्द भेजा भी। *

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

---

* शॉ की अनेक जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं, पर इनमें सर्वश्रेष्ठ निम्न-लिखित लेखकों की लिखी हुई हैं—
१. G. K. Chesterton (London, 1910).
२. J. Webb (Berlin, 1910).
३. Edward Shanks (London, 1924).
४. H. C. Duffin (London, 1920),
५. Archibald Henderson (London).
इनकी पुस्तकों की प्रकाशक है Constable Co., London

स्वागत में *

हरा हो गया मेरे जीवन का कुम्हलाया बाग;
आते हो मेरी कुटिया में, है मेरा बड़ भाग।

लगी लहलहाने लतिकाएँ फूले फूल अनंत;
मेरी दुनिया में आता है मेरा मधुर वसंत।

अमृत बरसाकर करते हो तुम कितना कल्याण?
भीग-भीगकर सिहर रहे हैं सुख से मेरे प्राण!

वृंदावन में छिड़ती है फिर मुरली की मृदु तान;
मैं करता हूँ बेसुध करनेवाले मधु का पान।

बिछी हुई हैं पथ पर पलक, आओ हे सुकुमार!
स्वागत में—तुमको पहना दूँ मैं अपना हिय-हार।

सोहनलाल द्विवेदी

---

* Convocation के अवसर पर होनेवाले हिंदू-विश्व-विद्यालय-कवि-सम्मेलन में संयोजक की हैसियत से पठित।
—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिजाब

[चित्रकार—श्रीयुत एम्० ए० मुनीमखाँ]

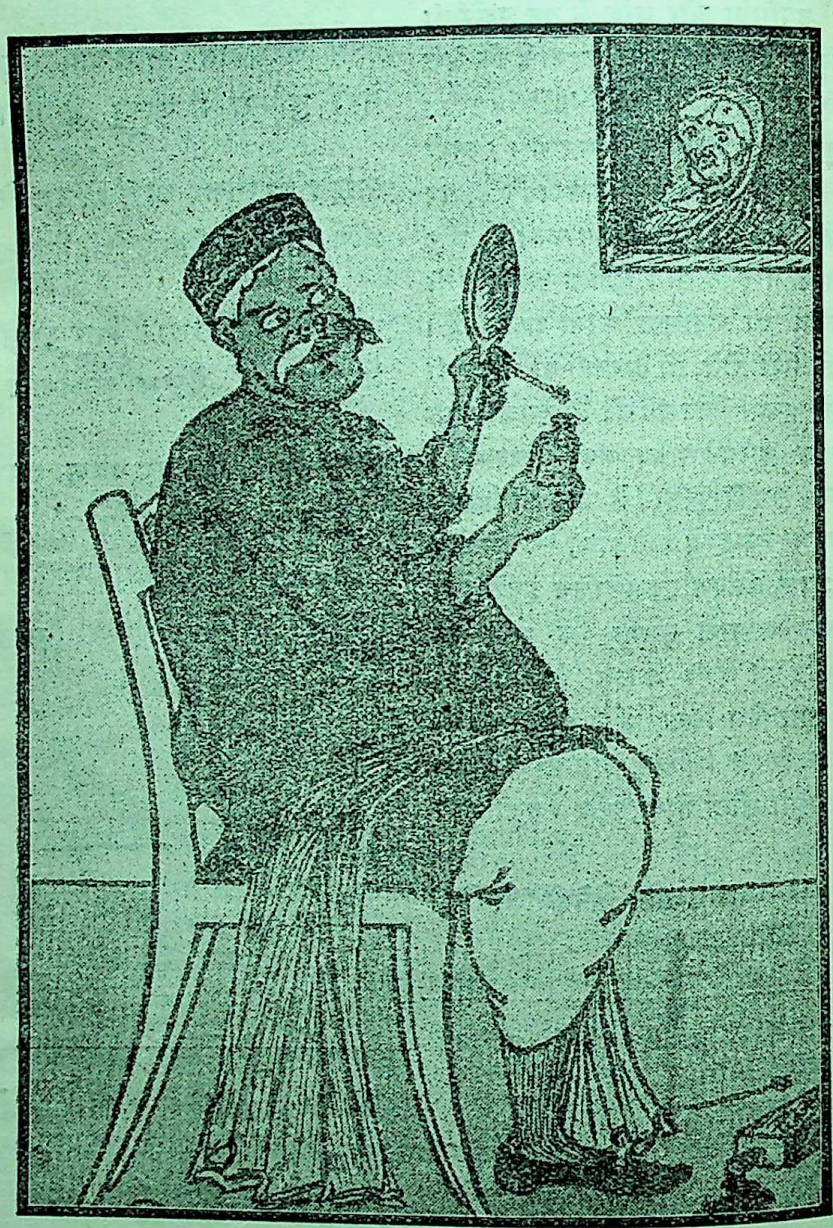

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. ससुरारि-पचीसी

फ़र्रुख़ाबाद-ज़िले में कन्नौज के निकट मकरंदनगर-नामक एक गाँव है। यहाँ पर सषली * शुक्ल-नामक एक ब्राह्मण रहते थे, जिनके तीन पुत्र हुए—शिवनाथ, गुरुदत्त और देवकीनंदन। शिवसिंह-सरोजकार के अनुसार देवकीनंदन का जन्म विक्रम-संवत् १८०१ में हुआ था। यह अपने अन्य दोनों भाइयों की अपेक्षा अधिक तीव्र-बुद्धि और विद्या-व्यसनी थे। इनके भाई शिवनाथ एक अच्छे कवि थे, परंतु इनकी काव्य-शक्ति उनसे भी बढ़ी-चढ़ी थी। पहले यह अपने गाँव में ही काव्य-रचना करते रहे। इनका पहला ग्रंथ नायिका-भेद तथा अलंकार-शास्त्र-संबंधी शृंगार-चरित है, जिसका निर्माण विक्रम-संवत् १८४१ में हुआ। पीछे उमरावगिरि के पुत्र कुँअर सरफराज के आश्रय में चले गए, तथा उनकी आज्ञा से संवत् १७४३ विक्र० में सरफराज-चंद्रिका-नामक एक दूसरे अलंकार-शास्त्र-संबंधी ग्रंथ की रचना की। यहाँ यह अधिक दिन नहीं रहे। कुछ काल-पश्चात् यह रुद्धामऊ (ज़िला हरदोई)-निवासी राजा अवधूतसिंह के आश्रय में चले गए। वहाँ संवत् १८५६ वि० में राजा साहब के नाम पर अवधूत-भूषण-नामक एक अलंकार-शास्त्र-विषयक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ की कविताएँ ललित, चमत्कार-पूर्ण और उच्च श्रेणी की हैं। उक्त तीनों ग्रंथों का नोटिस काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्टों में हो चुका है, तथा मिश्रबंधु-विनोद में भी इनका उल्लेख आ चुका है। हाल में 'ससुरारि-पचीसी'-नामक इनकी एक चौथी पुस्तिका मिली है। इसकी कविता अधिक उच्च श्रेणी की नहीं है, किंतु फिर भी काव्य-गुण यथेष्ट परिमाण में विकसित है। जान पड़ता है, यह देवकीनंदनजी के आरंभ-काल की रचना है। इस पुस्तिका में ससुराल तथा सुहाग-रात के सुख और आनंद का निरूपण किया गया है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम उस पुस्तिका का संपूर्ण अंश नीचे दे रहे हैं—

* मिश्रबंधु द्वारा संपादित काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की सन् १९०९-१०-११ की खोज की रिपोर्टों में देवकीनंदन के पिता का नाम शिवनाथ दिया है। यथा—

Deokinandana Sukla, of Makrand Nagar, District Farrukhabad (not Cawnpur) was the son of the poet, Siva Nath (not his brother).

परंतु मिश्रबंधु-विनोद में, जो रिपोर्ट से पीछे संवत् १९७० में प्रकाशित हुआ है, इनके पिता का नाम सषली ही दिया है। जान पड़ता है, पहला विवरण ठीक न होने के कारण उसका सुधार मिश्रबंधु-विनोद में किया गया।

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगणेशाय नमः

अथ ससुरारि-पचीसी लिख्यते

दोहा—रसिक कन्हैयालाल के, रस रसाल सब ख्याल।
प्रथम मिलन ससुरारि को, कहत भरो रस-जाल ॥ १ ॥
पिउ पाई नव तरुनई, भइ नव तरुनी नारि।
जाइ जु बहु ससुरारि में, ताकी कहत बहारि ॥ २ ॥
तिय नैहर मिलिबो कठिन, बस संधि को जोगु।
लाज बिबस नहिं मिल सकत, क्यों पावै रस भोगु ॥ ३ ॥
जा दिन ते ससुरारि में आपनी लालजू आए महारस ठाने।
भे दिन चारिक बात नहीं भे भुलावत ही रहीं वे बहकाने ॥
आजु न माँगत पानिहुँ पान भई अधरात भरे दुख माने।
जाइ मिलो बृषभानु लली वे लला घर आपने जात रिसाने॥४॥
दोहा—घर न जाइ ससुरारि ते, निकरि जाइ परदेस।
कहा भयो पूछै हमै, तौ कछु जाइ न पेस ॥ ५ ॥
जो समुझौ तौ है भली, सुनौ लली यह बात।
आजु मिलौ तुम जाइके, लाइ बड़ो हितु गात ॥ ६ ॥
लाड़िले आए कढ़े ससुरारि ह्वै लाल उतारि धरो सब टाँडो।
तेहि मिले बिन जात न आगे सबै बिसरी मिसरी अरु खाँडो ॥
ऐसी न हूजै बलाइ लेउँ पायन लेती हो काहे न आनँद भाँडो?
जाइ मिलौ उनको ठकुराइनि ये लरिकाइनिन की बुधि छाँडो॥७॥
दोहा—नहिं मानत है मौजि की, बात उठत झहराइ।
नैननि में अँसुआ भरत, सुनि-सुनि तन कुम्हिलाइ ॥८॥
माने न काहू की बात मिलाप की आपु बड़े-बड़े आँसुन रोवै।
'नंदन' जू वह मौजिन को पतियात नहीं औ' नहीं दृग जोवै ॥
जात अटा पै अकेली न बाल सु लालन के जिय में दुख बोवै।
जो दिन में घर माँझ रहे वह साँझ ते माई के तीरहिं सोवै॥९॥
दोहा—चले लाल ससुरारि को, तुम्हरे मिलिबे काज।
सो तुम तो मिलती नहीं, होत न पूरन काज ॥ १० ॥
का फलु री उनको ससुरारि को 'नंदन' वे तो वृथा दिन खोवैं।
साँझ ते पौढ़ि रहे पलँगा पर तारे गनै अति ही दृग जोवैं ॥
तू बहकावत रोज उन्हैं न मिलै वे खिझैं मन ही मन रोवैं।
आस लगाए जगैं सब रात प्रभात निरास ह्वै साँवरे सोवैं॥११॥
मिलिबो ससुरारि को लाल सुनौ बहु नैनन में रस बोरु भयो।
उठि साँझ ते पौढ़ि रहे परजंक भलो मनुआँ रस सोर भयो ॥
सब तौर निहारे न बाल मिली तब तौ चटकीन को सोर भयो।
पछितात परे-परे रोस भरे सब रात जगे-जगे भोरु भयो ॥१२॥
दोहा—नहीं जगत बोलत नहीं, सरहज ठढ़ी तीर।
जल लाई मुख धोनु को, लेत नहीं जदुबीर ॥ १३ ॥
उतरि अटा ते ननँद सों, बोली बहुरि रिसाइ।
ससुरे रातिसुहाग की, अब मिलि हौ तुम जाइ ॥ १४ ॥
गौने चली हो लली तुम मोर भली बिधि जाइके सेज में स्वैहो।
जो अब ही बनि आवै मिलापु तो माइके को डरु कौन बतैहो ॥
वे तो रिसाने लला नहिं मानत को लगि भौनहि में घुसि रैहो।
आजु न जैहो यहाँ बलि जाउँ सुहाग की राति वहाँ मिलि जैहो॥१५॥
दोहा—गौने लै आए घरै, भरे बहुत रिस लाल।
आई रातिसुहाग की, आजु देखिबो बाल ॥ १६ ॥
निसि आई बुलाइ सबै रिझवारिनि बोलीं पिया ढिग मैं सुख पैहो।
साजौ सिंगार अभूषन अंगन साँझ भई हठु काहे करैहो ॥
जो करिहौ नहिं प्रीतम को बस सौतन को केहि भाँति सतैहो।
जो मिलिहौ न सुहाग की राति कहौ जु सुहागिन कैसे कहैहो ॥१७॥

अथ दूसरी रिझवारि को वचन—

भाग सों पाई सुहाग की राति कितौ हितु लाइ सखी समुझावै।
'नंदन' ज्यों-ज्यों चलै डग चारिक आँगन में बिछिया झनकावै॥
हाथ बिसाखा मलै झहराइ कितो करिके ललिता दहलावै।
ठाढ़ी जकै नवजोबन बाल पै लाल की सेज न सोवन आवै॥१८॥
दोहा—रिझवारिन डरपाइ कै, चढ़ी अटा लै बाल।
चंद्रबदनिया नाइका, प्रण कीजै नँदलाल ॥ १९ ॥
लीजिए लाल बुलाइ लै आई मैं बाल नई जेहि ते सुख पाओ।
देखो चहो मुख पोछों रुमाल सों चाहौ गुलाब लौं आँखि लगाओ॥
संगहि राखौ हिए कबि 'नंदन' क अब छाती लै छाती मिलाओ।
दूर तें देखन को तरसौ तिनको चहौ आपनी सेज सुलाओ॥२०॥
यह कालिह न आई जो रावरी सेज गई ननँदी ढिग सोइ महा।
तकसीर मिटावत 'नंदन' आजु लगावत नैनन नेह लहा॥
अब रावरी ओर चुई सी परै यह कुंदन माल-सी बाल हहा!
रस प्रेम के बूँदन भीजै लला इतने पै न रीझौ तो रीझौ कहा॥२१॥
गहिं बाँह लई पिय प्रानपिया परजंक पै रंग परो जरबीलो।
देन लगो नख गाढ़े उरोजन लेन लगो रस रंग रँगीलो॥
तोरन लागो हरा मोतियान को जो रसिया रस राह रसीलो।
बाल समाइ गई कुम्हिलाइ रहो छबि मैं छकि छैल छबीलो॥२२॥
धुनि किंकिनी होत जगैंगी सबै सुक सारिका चौंकि चितै परि हैं।
कबि 'नंदन' कान दए हैं परोसिनि सो सिसकी सुनि को डरि हैं॥
जनि दीजै उरोजन मैं नख-दान प्रभात सखी वा हँसी करि हैं।
नँदलाल हहा अधरा न दसौ ननँदी मुख देखि बदो करि हैं॥२३॥
दोहा—रीझि भरी आई सबै, रिझवारिनि लखि प्रात।
लगो जगावन स्याम को, ऊँचे बोल सुहात ॥ २४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ी चारिक चौंस चढ़ो न जगो पछराति के सोए दुओ जु लहैं।
दुलही-दुलहा के जगावै सबै उठे लाल लली पै न पाउ गहैं॥
कवि 'नंदन' मौन हँसै ननँदी रिझवारे कन्हाई-कन्हाई कहैं।
उतरैं न अटा ते न बोलै दुवौ सकुचै मिलि आँढ़िके पौढ़ि रहैं॥२५॥
उठि कूदि लला परभात गए नवला के नई यह रीति लहै।
कवि 'देवकीनंदन' टूटी तनी चटका चुरियाँ ते चुराइ गहै॥
कुच ओर निहारि उसास भरै न परै पग बाहिर केतो चहै।
उठिकै मुख आरसि लै निरखै फिरिकै पलका पर पौढ़ि रहै॥२६॥
दोहा—रिझवारिनि भरि रीझि सों, गई अटा चढ़ि एक।
जाइ जगायो स्याम को, सकी हँसी नहिं नेक॥२७॥
राति गई सब केलि में खेलि रही संग सोइ जु औ सुवती तू।
'देवकीनंदन' लागि गरे लपटाइ पगी औ किती पगती तू॥
चीर पटो लपटो परो प्रात जु हौ न घटो तौ भली लगती तू।
जो न जगाउती जाइ मैं ठाकुरे तौ ठकुरानी कहा जगती तू॥२८॥
जागि सेज ते पीतम द्वार गयो रिझवारिनि को गन आयो चहै।
परखै जु उरोजन मैं नख त्यों उमड़ै बड़े नैनन आँसू बहै॥
रद के छद को अवलोकन को नवला सकुचाइ उपाइ गहै।
उठि आरसि लै-लै लखै मुख को अधरानिमैं आँगुरी दै-दै रहै॥२९॥
कंचुकी चींथि गई उघरे कुच नीके लगै नर हू के बटा ते।
'नंदन' सोहै घने नखचंद करै अति ही छबि बिधु-छटा ते॥
चीर सुधारि सँभारिकै भूषन लीन्हों निकारि है लाल घटा ते।
गाई बड़ाई भली रिझवारिनि आँगन लाइ उतारि अटा ते॥३०॥
दावत है अँगुरी अधरानि सुधारत बीर उठावत बाँही।
'नंदन' रीझि हँसै रिझवारिनि आवन देत न ऊपर छाँही॥
सावुत ना कुच कंचुकि दावत अंचरु डारि करै चित चाही।
जागी सुहाग की रैन सुहागिन लाज सों घूँघट खोलत नाही॥३१॥
आई उठाइ बहू को लियो मुख चूमि महारस आनँद पागी।
'नंदन' मोतिन हार मँगाइ निछावरिकै अति ही अनुरागी॥
आपनो भाग सराहि रही मन पाई बहू यह मैं बड़ भागी।
वासुकि देवता को तन में गहि आरति सासु उतारन लागी॥३२॥
लागो दुकूलन माँझ सुगंध चहूँ दिसि भौंर की भीर परै।
जुरि आई बिलोकि कै दासी सबै लिए चार चमीकर चौंर ढरै॥
उझकै बँद कंचुकि ते बिधुरे भुव फूलन हार ते फूल झरै।
लपटी लट माँझ में मोती रहैं छहरै तिय आनन मैं थहरै॥३३॥
दोहा—लाई नीर गुलाब कै, करवाए असनान।
सुखवत केसन बाल है, कौतुक लावत कान्ह॥३४॥
ज्यों-ज्यों भरे नीर केस सुखवै उफालि कर,
त्यों-त्यों कुच उघरै, उपकि छाँव आती मैं;
'देवकीनँदन' कहै ललको गिरोई परै,
मनुआ लला को रहटाई बहु भाँती मैं।
बतियाँ सुनाइ बहकावै बहु लाड़िली को,
लाड़िली न जानै भेद कौन कीं क्या छाती मैं;
मीठ लागो सखी के बिलोकै दुरो घाटी ओट,
दीठि छाय रही जाय साँवरे की छाती मैं॥३५॥

इति

अखौरी गंगाप्रसादसिंह

× × ×

२. कवि भूधरदासजी

माधुरी में मित्रवर महावीरचंदजी बयेद ने कवि बनारसीदासजी की रचना पर कुछ प्रकाश डाला था। आप लिखते हैं कि साहित्य-जगत् में जैन-कवियों की गणना बहुत कुछ सामान्य अंश में की जाती है। आपका यह लिखना ठीक है। जैनियों में बहुत-से कवि हो गए हैं। उनकी रचना भी बहुत उच्च कोटि की है। उनमें कवि भूधरदासजी की रचना तो जैसी सुमधुर-सुपाठ्य है, उसका रसास्वादन विद्वान् क्या, सर्व-साधारण भी ले सकते हैं। कविजी अठारहवीं शताब्दी के लगभग आगरे में हो गए हैं। आप खंडेलवाल-जाति के मुकुटमणि थे। आज जैनियों में स्त्री-पुरुष, बालक, कोई ऐसा न होगा, जिसे आपके बनाए हुए सुमधुर पद्य कंठाग्र न हों। इसी से रचनाओं की सुमधुरता जानी जाती है।

कविजी की रचना में पार्श्वपुराण एक उच्च कोटि का काव्य-ग्रंथ है। इसके अलावा भूधर-शतक, पद-संग्रह आदि और भी कई ग्रंथ हैं।

कवि अपना परिचय इस प्रकार देते हैं—

आगरे में बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल,
बालक के ख्याल सों कवित्त करि जानै है;
ऐसे ही करत भई जैसिंह सवाई सूबा,
हाकिम गुलाबचंद आए तिहि थानै है।
हरीसिंह साह के सुवंश धर्मरागी नर,
तिनके कहे सों जोरि कीनी एक गानै है;
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलस को अंत भयो,
उनकी सहाय यह मेरो मनमानै है।

अब कविवर की रचना-रत्नावली को परीक्षा कीजिए। संसार की अनित्यता के ऊपर कवि की मर्मभेदी रचना को देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार ;
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ।
दलबल देवी देवता मात-पिता परिवार ;
मरती बेरियाँ जीव को कोउ न राखनहार ।
दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णावश धनवान ;
कहीं न सुख संसार में सब जग देखो छान ।
आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय ;
एक वही इस जीव का साथी, सगा न कोय ।
जहाँ देह अपनी नहीं तहाँ न अपना कोय ;
घर संपति पर प्रगट ए पर है परिजन लोय ।

देखिए, होनहार और काल की सामर्थ्य के ऊपर कवि ने कैसी रचना रची है—

कैसे-कैसे बली भूप भू पर विख्यात भए,
बैरीकुल काँपे नैकु भौंहों के विकार सों ;
लंबे गिरि सायर दिवायरसें दिए जिनों,
कायर किए है भट कोटिन हुँकार सों ।
ऐसे महामानी मौत आए हू न हार मानी,
क्यों ही उतरेन कभी मान के पहार सों ;
देव सों न हारे पुनि दानौ सों न हारे, और
काहू सों न हारे, एक हारे होनहार सों ।
लोहमयी कोट केई कोटन की ओट करो,
कांगुरे न तोप रोपि राखौ पट भेरिकै ;
इंद्र चंद्र चौकायत चौकस ह्वै चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहूँ ओर रहौ घेरिकै ।
तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलो मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकै ;
ऐसैं परपंच पाँति रचो क्यों न भाँति-भाँति,
कैसेहूँ न छोरै जम देख्यो हम हेरिकै ।

मनुष्य-जन्म की आयु का लेखा करके कविजी किस प्रकार प्राणियों को समझाते हैं—

सौ बरस आयु ताको लेखा करि देखा सब,
आधी तो अकारथ ही सोवत बिहाय रे ;
आधी में अनेक रोग बाल-वृद्ध दशा-भोग,
औरहुँ संजोग केते ऐसे बीत जायँ रे ।
बाकी अब कहा रही ताहि तू बिचार सही,
कारज की बात यही नीके मन लाय रे ;
खातिर मैं आवै तो खलासी कर इतने मैं,
भावै फँसि फंद बाँचै, दीनों समुझाय रे ।

संसारी जीव धन के लिये कैसे उत्सुक रहते हैं, कैसे मन में संकल्प रखते हैं, उसका कविवर ने कैसा चित्र खींचा है—

चाहत है धन होय कोऊ बिधि तौ सब काजु सरैं जिय राजी ;
गेह चिनाय कहै गहना कछु ब्याहि सुतासुत बाँटिए भाजी ।
चिंतत यों दिन जाहिं चले जम आनि अचानक देत दगा जी ;
खेलत खेल खिलारि गए रहि जाइ रुपी शतरंज की बाजी ?

किसी मित्र ने कविजी से कुशल पूछी, उसके प्रत्युत्तर में मित्र को अपनी कुशलता का आप कैसा परिचय देते हैं—

जोई दिन कटै सोई आयु में अवाशि घटै,
बूंद बूँद बीत जैसे अँजुरी का जल है ।
देह नित भीन होत नैन तेज-हीन होत,
जोबन मलीन होत, छीन होत बल है ।
आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवै,
परभौ नजीक जात नर भौ निफल है ;
मिलके मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी दसा माँही मित्र काहे की कुशल है ?

बुढ़ापे का वर्णन कवि ने जैसा किया है, उसको बाँच कर हृदय में कँपकँपी छूटती है—

दृष्टि घटी पलटी तन की छबि बंक भई गति लंक नई है ।
रुस रही परनी घरनी अति रंक भयो परजंक लई है ।
काँपत नार बहै मुख लार महामति संगति छारि गई है ।
अंग उपंग पुराने परे त्रिसना उर और नवीन भई है ।
रूप कौ न खोज रह्यो तरु ज्यों तुषार दह्यो,
भयो पतझार किधौं रही डार सूनी-सी ;
कूबरी भई है कटि, दूबरी भई है देह,
उबरी इतेक आयु, सेर माँहि पूनी-सी ।
जोबन नैं बिदा लीन्हीं, जरा नैं जुहार कीन्हीं,
हीनी भई सुधि-बुधि सबै बात ऊनी-सी ;
तेज घट्यो ताव घट्यो, जीवन कौ चाव घट्यो,
और सब घट्यो एक त्रिस्ना दिन-दूनी-सी ।
सुमतिहिं तजि जोबन समय सेवहु विषय बिकार ;
खलसाँटे नहिं खोइए जनम जवाहिर सार ।

कविजी जैन-धर्मानुयायी थे । यज्ञ में जो अन्य मतावलंबियों में पशु होमे जाते हैं, उन पशुओं की करुणा से द्रवित होकर किस प्रकार यज्ञ-मतावलंबियों को आड़े हाथों लिया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहिं ।
होमत हुताशन में कौन-सी बड़ाई है ;
स्वर्ग-सुख मैं न चहौं, देहु मोहिं यौं न कहौं ,
घास खाय रहौं यही मेरे मन भाई है ।
जो तूँ यह जानत है बेद यौं बखानत है ,
जाय जरौं जीव पावै, स्वर्ग सुखदाई है ;
डारि क्यों न बीर यामैं अपने कुटुंब ही कौ ,
मोहि जिन जारै जगदीस की दुहाई है ।

इन्हीं पशुओं की तरफ़ से आप पूरे वकील होकर आखेट का कैसा निषेध करते हैं —

कानन मैं बसैं ऐसौ आन न गरीब जीव ,
प्रानन सौं प्यारो प्रान पूँजी जिस यहै हैं ;
कायर सुभाव धरै काहूँ सौं न द्रोह करै ,
सबही सौं डरै दाँत लियैं तृन रहै हैं ;
काहू सौं न रोष पुनि काहू पै न पोष चहै ,
काहू के परोच्छ पर दोष नाहिं कहै हैं ;
नेकु स्वाद सारिबे कौ ऐसे मृग मारिबे कौं ,
हा हा रे कठोर तेरौ कैसे कर बहै हैं ।

मिष्ट वचनों के ऊपर आपकी रचना को देखिए—

काहे को बोलत बोल बुरे नर नाहक क्यों जस धम गमावै ;
कोमल बैन चबै किन ऐन लगै कछु है न सबै मन भावै ।
तालु छिदै रसना न भिदै न घटै कछु अंक दरिद्र न आवै ;
जीभ कहै जिय हानि नहीं तुझ जी सब जीवन कौ सुख पावै ।

इस प्रकार कविजी की कुछ सामान्य रचना पाठकों के सामने रक्खी है । कैसी सरल, सुस्वादिष्ट रचना है । आशा है, पाठकों को रुचिकर होगी ।

बालचंद सेठी

अमृत के तीन बूँद—कहाँ ? मृत्युलोक में !!

१—कल्पलता-बटी

पुरुष को चाहे जैसा प्रमेह (वीर्य-विकार) हो, स्त्री को चाहे जैसा प्रदर हो, एक हफ़्ते में जड़ से उखाड़कर फेंक देती है । हज़ारों स्त्री-पुरुष चंगे होकर ज़िंदगी का मज़ा लूट रहे हैं । हमारा दावा है कि "कल्पलता" आपके वीर्य-विकार-संबंधी हरएक मर्ज़ पर जादू का-सा असर करेगी । मूल्य ३)

२—कामकल्प (तिला)

जो लोग नामर्दी की ज़िंदगी से बेज़ार हो चुके हों, बचपन में भूल से या जवानी के चक्कर में कुटेवों से अपना सब कुछ खो चुके हों और जो हर तरफ़ से निराश हो गए हों, उन्हें यह तिला पहले ही दिन जादू का-सा चमत्कार दिखलाता है । ख़ास तौर पर बुड्ढों को जवानी की ताक़त देने में अक्सीर है । हमारे अनुरोध से एक बार ज़रूर आज़माइए । मूल्य २)

३—संजीवन-सुधा

इसे घरेलू डाक्टर ही समझिए । आजकल के चलते हुए हर मर्ज़ पर रामबाण है । बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष, हरएक को हर मर्ज़ में एक-सी लाभदायक है । लोभ छोड़कर बिला ज़रूरत भी एक शीशी मँगाकर रख लीजिए । मूल्य छोटी शी० ॥।), बड़ी शी० १।); डाकख़र्च सब दवाओं का अलग पड़ेगा ।

नोट—असाध्य रोगों का इलाज ठेके पर करते हैं । मिलिए या पत्र लिखिए ।

आयुर्वेदविज्ञानाचार्य, राजवैद्य,
पं० गयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेदवाचस्पति
अध्यक्ष—श्रीअवध आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, नवाबगंज, लखनऊ (नं० ५)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Noida.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. इतिहास

मौर्य-साम्राज्य का इतिहास—लेखक, सत्यकेतु विद्यालंकार, इतिहास-प्रोफ़ेसर, गुरुकुल, काँगड़ी ; प्रकाशक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ; मूल्य ५) ; पृष्ठ-संख्या ७१७ ; चित्र-संख्या ८, नक़शे ३ ; पुस्तक पर सुंदर जिल्द भी चढ़ी है।

इस पुस्तक में मौर्य-साम्राज्य का विशद और प्रामाणिक इतिहास संकलित किया गया है। इस परिश्रम और सफलता के लिये हम प्रोफ़ेसर सत्यकेतुजी को हार्दिक बधाई देने के साथ ही हिंदी-संसार के इतिहास-प्रेमियों को विश्वास दिलाते हैं कि उन्हें इस ग्रंथ में इस विषय की अनेक स्थलों पर बिखरी हुई सामग्रियों का एक ही स्थान में समावेश मिल सकेगा। प्रत्येक भारतीय पुस्तकालय में इसकी एक प्रति रहना अत्यंत आवश्यक है। आशा है, आगे भी विद्यालंकारजी ऐसे ही ग्रंथ-रत्नों से हिंदी-भाषा का भांडार भरते रहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल २८ अध्याय हैं। पहले अध्याय में मौर्य-इतिहास की आवश्यक सामग्री का वर्णन है। पृ० ६ पर गुणाढ्य की 'बृहत्कथा के अनुवाद-रूप' 'कथा-सरित्सागर' का उल्लेख किया गया है। गुणाढ्य ने अपनी पुस्तक ईसवी सन् की पहली शताब्दी में बनाई थी, और काश्मीर-नरेश अनंतराज के समय (ई० स० १०२८-८०—वि० सं० १०८५-११३७) उसकी विदुषी रानी सूर्यवती की आज्ञा से सोमदेव भट्ट ने उसका अनुवाद (कथा-सरित्सागर) तैयार किया था।

दूसरे अध्याय में, ग्रीक-लेखकों के सैंड्रोकोट्टस के व्यक्तित्व के विषय में, सर विलियम जोंस के अनुवाद और विरोधी ऐतिहासिकों के मतों का विवेचन है। इसमें पृष्ठ ४४ से ४६ तक श्रीनारायण शास्त्री का शक-संवत्-विषयक मत उद्धृत किया गया है। उक्त महाशय का कहना है कि "वर्तमान पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने अपने कल्पित तिथि-क्रम के अनुसार शक-काल को भी यहाँ तक पीछे ले जाना संभव हुआ, ले जाने का प्रयत्न किया है। इसे उन्होंने 'शालिवाहन शाक' के साथ मिला दिया है।.....अतः शक-काल का प्रारंभ ४१० ई० पू० में ही मानना चाहिए।" उक्त मत के अनुयायियों से हमारा नम्र निवेदन है कि क्या इस प्रकार मान लेने पर उन प्राचीन लेखों अथवा ताम्रपत्रों के, जिनमें केवल शक नृप-काल के नाम से ही संवत् का उल्लेख किया गया है, तिथि-वार आदि ठीक-ठीक मिल जायँगे? यदि उत्तर 'नहीं' में हो, तो फिर उनका यह आग्रह निरर्थक ही है।

तीसरे में बौद्ध-कालीन भारत की अवस्था और मगध-साम्राज्य के विकास का वर्णन है। इसमें पृष्ठ ५० पर लिखा है कि 'पुराण आदि के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस महापद्मनंद ने बहुत-सी जातियों और राष्ट्रों को विजय किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पर हम इस राजा के समय के संबंध में मत्स्य-पुराण से एक श्लोक उद्धृत करते हैं—

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः ;
एवं वर्ष सहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।

(अध्याय २७३, श्लोक ३५)

अर्थात्—परीक्षित् के जन्म और महापद्म के राज्याभिषेक के बीच क़रीब १,०५० वर्ष का अंतर था ।

चौथे अध्याय में चंद्रगुप्त के वंश के बारे में विचार कर यह निष्कर्ष निकाला है कि चंद्रगुप्त शूद्रा-गर्भ-संभूत न होकर मौर्य-जाति का राजकुमार था । इस जाति के लोग शाक्यवंशी थे, और हिमालय के मयूर-बहुल-प्रदेश में जाकर रहने के कारण ही मौर्य कहलाए । आपने भी अपने 'भारत के प्राचीन राज[1]वंश'-नामक इतिहास के द्वितीय भाग में यही मत स्वीकार किया है ।

इस प्रकरण में प्रसंग-वश वररुचि और व्याडि का भी उल्लेख आया है । इनमें पहले व्यक्ति का दूसरा नाम कात्यायन था । 'अष्टाध्यायीवृत्ति', 'व्याकरणकारिका', 'प्राकृतप्रकाश', 'पुष्पसूत्र', 'लिंगवृत्ति' आदि अनेक ग्रंथ इसके बनाए हुए हैं । व्याडि के 'संग्रह' का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है ।

पाँचवें अध्याय में सिकंदर की भारत पर चढ़ाई और चंद्रगुप्त की राज्य-प्राप्ति का उल्लेख है । पहले का आधार पाश्चात्य लेखकों के इतिहास और दूसरे का विशाखदत्त का मुद्राराक्षस और उसकी पूर्व पीठिका है । इसी अध्याय के पृष्ठ ११३ पर दी हुई टिप्पणी में दारा के पश्चिमी पंजाब-विजय का उल्लेख किया गया है । हेरोडोटस के लेखानुसार इस प्रदेश का राजस्व दारा के साम्राज्य के अन्य १९ प्रदेशों से अधिक था । वह सुवर्ण के रूप में प्राप्त होता था ।

छठे अध्याय में सिल्यूकस के आक्रमण का और चंद्रगुप्त के राज्य-विस्तार का उल्लेख है । इसमें पृष्ठ १४५ पर मुद्राराक्षस-नाटक के एक श्लोक को चन्द्रगुप्त की राज्य-सीमाओं का आधार माना है । वहाँ पर लिखा है—

'यदि चंद्रगुप्त के राज्य में दो समुद्रों के अंतर्गत प्रदेश—दक्षिणापथ—का कुछ भी भाग सम्मिलित न होता, तो विशाखदत्त शायद ऐसा वर्णन न करते ।' परंतु एक तो स्वयं सत्यकेतुजी ने ही अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६ पर विशाखदत्त का मौर्य-साम्राज्य की स्थापना से ११ सौ वर्ष बाद होना माना है, और दूसरे, जब वह मुद्राराक्षस के अनुसार चंद्रगुप्त को वृषल—शूद्र मानने को तैयार नहीं है, तब उसी के एक श्लोक के लिये उपर्युक्त पंक्तियाँ कहाँ तक ठीक मानी जा सकती हैं । उसी १४५ वें पृष्ठ पर आगे लिखा है—"कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि राज-विहीन या संघ-राज्यों की स्वतंत्रता को सर्वथा नष्ट नहीं किया गया था, अपितु उनको साम्राज्य के अंदर ही स्वतंत्रता से रहने का अवसर दिया गया था । अशोक के समय में भी ये संघ-राज्य विद्यमान थे ।" परंतु पृष्ठ ८४ पर लिखा है—"चंद्रगुप्त सब प्रजातंत्र-राष्ट्रों का विनाश कर मौर्य-साम्राज्य स्थापित कर सका था[1] ।"

पृष्ठ १४७ पर गिरनार-नदी के सम्मुख बाँध बाँधकर सुदर्शन-झील के बनवाए जाने का उल्लेख है । रुद्रदामा श० सं० ७२ के लेख से ज्ञात होता है कि सुवर्ण-सिकता और पलाशिनी आदि नदियों की बाढ़ से यह झील नष्ट हो गई थी । अतः संभव है, उस समय उक्त नदी इन्हीं नामों में से किसी एक नाम से प्रसिद्ध रही हो ।

सातवें अध्याय से लेकर तेरहवें अध्याय तक चंद्रगुप्त-कालीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का सविस्तर वर्णन है । इसका मुख्य आधार कौटिल्य का अर्थशास्त्र और मैगेस्थनीज़ का यात्रा-विवरण ही है । परंतु इसमें अनेक स्थलों पर वही पूर्वोद्धृत विवरण फिर से लिखे गए हैं । यद्यपि इससे पाठकों को विषय के समझने में तो सुबीता हो गया है, तथापि इस भाग का आकार अधिक बढ़ गया है । आगे लिखे पत्रांकों में इसके उदाहरण मिलेंगे—

कौटिल्य के मत से दक्षिणापथ के मार्ग का महत्त्व—पृ० २११ और ३५८ पर, शुल्काध्यक्ष के पुरुषों की व्यापारियों

१. यह इतिहास वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१) में प्रकाशित हुआ था । इसमें मौर्य-वंश का इतिहास भी दिया गया है ।

१. पृष्ठ ८३ पर उद्धृत अर्थशास्त्र के 'संघवृत्त' वाले उल्लेख को पढ़कर प्रजातंत्र और संघ-राष्ट्रों में अभेद ही प्रतीत होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बातचीत—पृ० २४७ और ३५६ पर, माल ढोनेवाले पशुओं के ऊपर का कर और कर लेने पर, माल की राजकीय ज़िम्मेदारी—पृ० २५०-५१ और ३५६-६० पर, मौर्य-कालीन राज्य या जनपद का विभाग—पृ० २१७ और पृ० ३७१ पर, नदियों और ऊँचे स्थानों पर स्थित नगरों का वर्णन—पृ० २४७ और पृ० ३७२-७३ पर, तुआरियों पर कर—पृ० २५१ और २६५ पर। इत्यादि।

यद्यपि पुस्तक के पृ० २५० पर विद्यालंकारजी ने कौटिल्य के 'नान्यतो देशीयं'—१।१८ के आधार पर राजा के अंग-रक्षकों में अन्य देशी व्यक्तियों के रखने का निषेध प्रकट किया है, तथापि 'अभिज्ञानशाकुन्तलं' और 'विक्रमोर्वशीयं' आदि नाटकों में क्रमशः—'एष बाणासन-हस्ताभिर्यवनीभिः परिवृतः' और 'प्रविश्य चापहस्ता-यवनी' - आदि प्रयोग मिलते हैं। नहीं कह सकते, कौन-सा पक्ष ठीक है। संभव है, यहाँ की भाषा और रहन-सहन से पूर्णतः अपरिचित होने से स्थानीय षड्यंत्र में सम्मिलित होने का भय न रहने के कारण ही यवनों को मौर्य-काल के बाद राजा के अंग-रक्षकों में प्रविष्ट कर लिया हो? (परंतु ईसा की पाँचवीं शताब्दी के पूर्व तक ही भारत से यवनों का अधिक संबंध रहना प्रकट होता है।)

पृ० २३४ पर राजकीय आय के साधनों में कौटिल्योक्त 'चोररज्जु'-शब्द का अर्थ 'हथकड़ियों से होनेवाली आय' लिखकर नीचे टिप्पणी में उस पर विचार किया है। नहीं कह सकते कि यदि इससे जेलख़ानों में क़ैदियों द्वारा बनवाई हुई रस्सियों के बेचने से होनेवाली आय का तात्पर्य मान लें, तो कहाँ तक अर्थ की संगति ठीक हो सकती है। यद्यपि पृ० २३३ पर 'नागरिक जेलख़ानों द्वारा आय' का पृथक् उल्लेख हो चुका है, तथापि हमारी सम्मति में अन्यत्र के साधारण जेलख़ानों में अकुशल क़ैदियों द्वारा बनाई गई रस्सियों के विक्रय से होनेवाली आय को मान लेने में कुछ आपत्ति नहीं नज़र आती। फिर कौटिल्य ने स्वयं ही—'सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जात्पुरुषैः कारयेत्'—२—२२—लिखकर इस व्यवसाय का उल्लेख किया है। और, लेखक महाशय स्वयं भी उपर्युक्त टिप्पणी में लिखते हैं कि "कौटिल्य ने एक स्थान पर रस्सी बनाने का वर्णन किया है।"

पृ० ३८३ पर लिखा है—"भविष्य-वाणी अशुद्ध होने की अवस्था में दार्शनिक फिर जीवन-भर मौन-अवलंबन कर लेता है।" परंतु मैगेस्थनीज़ के लेख से तो प्रकट होता है कि तीन बार झूठी भविष्य-वाणी करनेवाला आजीवन मौन रहने के दंड का भागी होता था।

चौदहवें और पंद्रहवें अध्यायों में सम्राट् चंद्रगुप्त के अंतिम समय का और उसके पुत्र बिंदुसार के राज्य का वर्णन है। इसमें पृ० ४२७ पर लिखा है कि "कदंब-वंश के राजा अपनी उत्पत्ति नंद से ही बताते हैं।" परंतु तालगुंड से मिले कदंबवंशी शांतिवर्मा के स्तंभ-लेख में कदंब-वंश को ब्राह्मण-वंश लिखा है। नहीं कह सकते वास्तविक बात क्या थी?

सोलहवें से पच्चीसवें अध्याय तक अशोककालीन चर्चा है। इसमें वैसे तो अधिकतर भंडारकरजी की लिखी अशोक-नामक पुस्तक को ही आधार रक्खा गया है, फिर भी इसमें बौद्ध-ग्रंथों से बहुत-सा इतिवृत्त और कथाएँ भी यथास्थान जोड़कर ग्रंथ को सर्वांग-पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें पृ० ४५१ पर श्रीयुत भंडारकरजी का मत उद्धृत कर अशोक के पाँचवें शिलालेख में उत्कीर्ण 'राष्ट्रिक पेतनिक से' महाराष्ट्र जाति का तात्पर्य लिया है। परंतु नहीं कह सकते कि महाभारतोक्त (पंजाब की तरफ़ के) आरट्ट-देश के, सुराष्ट्र (सोरठ) के, राठ (काठियावाड़ और मालवे के बीच का प्रदेश या अलवर के पास के एक प्रदेश) के अथवा राष्ट्रकूट-जाति के विद्यमान होते हुए भी उक्त उल्लेख में एक-मात्र पूने के आसपास के प्रदेश—महाराष्ट्र—में स्थित जाति-विशेष का तात्पर्य मान लेने में ही कौन-सा प्रबल प्रमाण मिलता है।

पृ० ४६६ पर श्रीयुत भंडारकरजी के मत का आश्रय लेकर लिखा है—

"ढाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। मैंने अधिक उद्योग नहीं किया। किंतु एक वर्ष से अधिक हुआ, जब मैं संघ में आया हूँ, तब से मैंने अधिक उद्योग किया है। इसलिये जब यह शिलालेख लिखवाया गया, तब अशोक को बौद्ध-धर्म का अनुयायी कम-से-कम ३½ साल (२½ साल से कुछ अधिक संभवतः ३¾ या ४ साल) व्यतीत हो चुके थे।" परंतु जिन पंक्तियों का अर्थ उद्धृत कर यह तात्पर्य निकाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंक्तियाँ सिद्धपुर के लेख में इस प्रकार दी हुई हैं—

'अधिकानि अढातियानि वसानि यहकं.....नो तु खो
ढं पकंते हुमं एकं सवछरं सतिरेकेतु खो सवछरं यं मया संघे
पयाते वाढं च पकंते'

नहीं कह सकते कि इन पंक्तियों का अर्थ निम्न-लिखित
कार से भी हो सकता है, या नहीं—

"ढाई वर्ष से अधिक हुआ कि मैं उपासक हुआ।
तु निश्चय ही एक वर्ष तक अच्छी तरह से उद्योग
हीं किया। निश्चय ही एक वर्ष से अधिक हुआ कि
ने संघ में प्रवेश किया, और खूब उद्योग भी किया।"

यदि यह अर्थ भी ठीक हो, तो उक्त लेख के लिखे
ने के समय अशोक को उपासक हुए ढाई वर्ष से कुछ
ही अधिक समय हुआ होगा, और इसी के कुछ काल
बाद १४ शिलालेखों में भी चौथा लेख खुदवाया
या होगा। (भंडारकर महाशय उक्त दोनों लेखों के
तों में समानता मानते हैं।)

पृ० ५४ चौर ५८८ पर दी हुई टिप्पणी में अशोक के
विषय में जो राजतरंगिणी के श्लोक उद्धृत किए हैं, उनके
रंभ में लिखा है—

'यः शान्तिं वृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्'

इसी प्रकार पृ० ५३१ पर लंका के बौद्ध-इतिहासों के
धार पर अशोक के संदेश की पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

'जिन के उच्चतम धर्म का आश्रय लो, गुरु बुद्ध की
रण में आने का निश्चय करो।'

इन दोनों अवतरणों में प्रयुक्त 'जिनधर्म' या 'जिन-
सन'-शब्दों से अनुमान होता है कि उस समय या
बौद्धधर्म के लिये भी 'जिनधर्म' नाम का उपयोग
ता था, या फिर साधारणतः 'जिनधर्म' और 'बौद्ध-
र्म' में अधिक भेद या विरोध नहीं समझा जाता था।

पृ० ५५४ पर लिखा है कि 'इसी प्रकार कुमार जब
ने अधीनस्थ महामात्रों को कोई आज्ञा भेजते थे, तब
लिये अपने नाम से नहीं, अपितु महामात्रों के साथ ही,
के और अपने, दोनों के नाम से आज्ञा प्रकाशित
ते थे।' डाक्टर भंडारकरजी ने भी अपनी पुस्तक में
खा[1] है—

"In the Jaugada separate edict, the King is not giving orders direct to the mahamatras of Samapa, but says that they might be Communicated to them, apparently, by the Kumara in Council stationed at Tosali."

साथ ही स्वयं भंडारकरजी के दिए सिद्धपुर और जौगढ़ के लेखों के अनुवाद में इस विषय की स्पष्ट तौर से तो कोई सूचना नहीं मिलती है। परंतु यह भी संभव है कि उक्त सूचना जल्दी में हमारी समझ में ही न आई हो।

पृ० ५१३ पर लिखा है—'आजीवक लोग वैष्णव साधुओं को कहते थे, बौद्ध-भिक्षुओं को नहीं।' पृ० ६०२ पर लिखा है—'भगवती-सूत्र में आजीवक-संप्रदाय की उत्पत्ति की कथा विस्तृत रूप से वर्णित की गई है। इससे प्रतीत होता है कि जैन-धर्म के संस्थापक भगवान् महावीर के समकाल में ही 'मक्खलिपुत्त' (संस्कृत-मस्करिपुत्र) गोसाल ने अपने नवीन सिद्धांतों का प्रचार शुरू किया था। इस संप्रदाय के सिद्धांतों पर विचार करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। इतना निश्चित है कि अशोक के समय में यह बहुत शक्तिशाली संप्रदाय था।' पृ० ६०३ पर बौद्ध-साहित्य के अनुसार उस समय 'वासुदेव-धर्म' का और पृ० ६०५ पर भागवत-धर्म का आजीवकों से भिन्न होना प्रकट किया है। यदि आजीवकों से वास्तव में वैष्णव-साधुओं का ही तात्पर्य हो, तो इस संप्रदाय के विषय में बहुत-से पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का निराकरण स्वयं ही हो जाता है।

पृ० ६३४ पर लिखा है—'राष्ट्रकूट-सम्राट् पुलकेशी से उसने (हर्षवर्धन ने) अनेक युद्ध किए।' परंतु यह पुलकेशी बादामी का चौलुक्य (सोलंकी) पुलकेशी द्वितीय था, राष्ट्रकूट नहीं। वि० सं० ६७७ (ई० स० ६२०) के क़रीब नर्मदा के किनारे इसने हर्षवर्धन को हराया था।

पृ० ६३८ से ६४१ तक 'मौर्य-साम्राज्य के पतन में अशोक की नीति भी कारण थी, या नहीं' इस पर विचार किया गया है, और लेखक ने अशोक का नीति-पक्ष लेकर उसे इस विषय में निर्दोष बताया है। परंतु हमारे चित्त में एक शंका फिर भी रह जाती है। वह यह है कि जब नंद नरेश की शक्ति का हाल जानकर

१. देखो—श्रीयुत रामचंद्र शुक्ल का मैगेस्थनीज़ का भारतवर्षीय वर्णन, पृ० ४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एलेक्ज़ैंडर-जैसे प्रबल पराक्रमी नरेश को भी आगे बढ़ने का साहस न हुआ, जब मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक चंद्रगुप्त के प्रताप के सामने सिल्यूकस-जैसे विजेता के शस्त्र भी झुक गए, तो अशोक के बाद ही एकाएक मौर्य-साम्राज्य में इतनी निर्बलता कैसे आ गई ? क्या यह संभव नहीं कि सम्राट् के 'शस्त्र-विजय' को छोड़कर 'धर्म-विजय' में प्रवृत हो जाने और स्तूपों आदि के बनवाने और यात्राओं में किए जानेवाले दान के कारण राजकीय ख़ज़ाने के ख़ाली हो जाने से ही साम्राज्य की सैनिक शक्ति का ह्रास हो गया हो, तथा इसी से भीतर और बाहर के शत्रुओं को सफलता मिली हो ? स्वयं विद्यालंकारजी की पृ० ६४६ पर लिखी ये पंक्तियाँ विचारणीय हैं—

'अनेक जैन-ग्रंथों में लिखा है कि इस कार्य (जैन-धर्म-प्रचार) के लिये संप्रति ने अपनी सेना के योद्धाओं को साधुओं का वेष बनाकर प्रचार के लिये भेजा।'

भला ऐसी अवस्था में मौर्य-साम्राज्य की भी लखनऊ की-सी दशा हुई हो, तो क्या आश्चर्य की बात है।

अस्तु, अशोक के इतिहास में भी पूर्वोक्त कारण से ही कहीं-कहीं द्विरुक्तियाँ हुई हैं। यथा—

कलिंग-विजय पर अशोक का दुःख-प्रकाश—पृ० ४४५ और ४६३ पर

शिलालेखों में अंकित तेरहवीं आज्ञा का कुछ भाग—पृ० ४८२-८३ और ५२३ पर

बौद्धधर्म की तीसरी सभा का वर्णन—पृ० ५१६ और ५२६ पर

छब्बीसवें अध्याय में मौर्य-वंश के पिछले राजाओं का हाल है।

पृ० ६४४ पर लिखा है—"बौद्ध और जैन—दोनों साहित्य इस विषय में सहमत हैं कि कुनाल अंधा था, इसलिये संभवतः वह राजकार्य स्वयं नहीं कर सकता था। राज्य की बागडोर अशोक के पौत्र और कुनाल के पुत्र संप्रति या 'संपदि' के हाथ में थी। दिव्यावदान से मालूम पड़ता है कि अशोक के समय में संप्रति युवराज था, और इस उच्च तथा महत्त्व-पूर्ण पद पर होने के कारण राज्य का बहुत-सा कार्य वही करता था। संभवतः कुनाल के शासन-काल में भी राजकार्य उसी के हाथ में रहा।"

परंतु पृ० ६४६ पर कुनाल के पुत्र दशरथ को पिता का उत्तराधिकारी लिखा है। इसके साथ यह भी लिखा है—'ब्रह्मांडपुराण के अनुसार कुनाल के उत्तराधिकारी का नाम 'बंधुपालित' है। संभवतः 'बंधुपालित' दशरथ का ही उपनाम है। ऐसा प्रतीत होता है कि दशरथ के शासन-काल में भी शासन की बागडोर संप्रति के हाथ में थी। संप्रति और दशरथ भाई-भाई थे। दशरथ के समय में भी संप्रति ही वास्तविक रूप से शासन कर रहा था। संभवतः इसीलिये उसे 'बंधुपालित' कहा गया है।'

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक तो दशरथ और संप्रति के भाई होने का क्या आधार है, दूसरे, जब संप्रति अशोक के समय से ही राज्य-धुरा का वहन कर रहा था, तब दशरथ के हाथ राज्य कैसे आया ; तीसरे, यदि ब्रह्मांडपुराणोक्त 'बंधुपालित' की व्युत्पत्ति उपर्युक्त प्रकार से मान ली जाय, तो क्या पुराणोक्त 'इंद्रपालित'-शब्द की (जो बंधुपालित—दशरथ—के उत्तराधिकारी इसी संप्रति के लिये प्रयुक्त हुआ है), क्या व्युत्पत्ति की जायगी ?

यद्यपि इस इतिहास में अन्य सब मौर्य-नरेशों का राज्य-काल तो वायुपुराण में कहे अनुसार ही माना है, तथापि इंद्रपालित (संप्रति) का १० वर्ष के बजाय बृहत्संहिता (गर्गसंहिता) के लेखानुसार ९ वर्ष मानकर १ वर्ष शालिशुक का राज्य-समय माना है।

पृ० ६६० पर बृहद्रथ को शतधनु का भाई लिखा है। इसका प्रमाण भी दिया जाता, तो अच्छा होता।

माधुरी-संपादकों के आग्रह से जल्दी में लिखी गई इस समालोचना में कुछ त्रुटि रह गई हो, तो क्षमा है, विद्वान् ग्रंथकार और पाठक क्षमा करने का अनुग्रह करेंगे।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

× × ×

२. नाटक

सती सुलोचना—लेखक, लाला किशनचंद जैन, प्रकाशक, यूनियन-बुकडिपो, बाज़ार सीताराम, देहली। पृष्ठ-संख्या १५१ ; मूल्य ॥)

कथा-भाग रामायण से लिया गया है। भाषा परिमार्जित नहीं। कहीं तो ऐसे उर्दू-शब्द हैं, जो हिंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों की समझ में न आएँगे, और कहीं ऐसे ठेठ हिंदी-शब्द हैं, जो उर्दूवाले ख़ाक न समझेंगे। नाटक वही है दे-हवस और "काली नागिन" के ढंग का है। नाट्य-कला की दृष्टि से लेखक का प्रयत्न बिलकुल सफल नहीं हुआ। दर्शक चाहे देखकर भले ही तालियाँ पीटने लगें, पर वह उनकी बिगड़ी हुई रुचि का दोष होगा। हमें इस समय ऐसे नाटकों की ज़रूरत है, जो हमारी रुचि को सुधारें, नाटक को संगीत, नृत्य और भड़कीले परदों के माया-जाल से छुड़ाएँ। 'सती सुलोचना' उसी पुराने प्रभाव की ओर जा रहा है।

× × ×

अँधेरे में उजाला—महात्मा टालस्टाय के Light Shines in darkness का हिंदी-अनुवाद; अनुवादक, श्रीहेमानंद 'राहत'; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर; पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ≡)

राहतजी का अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है। ऐसी पुस्तकों के अनुवाद से हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ता है। टालस्टाय का परिचय भी लेखक ने प्रस्तावना में दे दिया है। एक आत्मा किन साधनों से पवित्र और ऊँची हो जाती है, यही इस नाटक में दिखाया गया है। इस पुस्तक का ≡) मूल्य रखकर मंडल ने ग़रीब हिंदी-प्रेमियों के साथ बड़ा उपकार किया है।

× × ×

३. सामाजिक

शैतान की लकड़ी—लेखक, बैजनाथ महोदय; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर; पृष्ठ-संख्या ३६६; मूल्य ॥।=)

लेखक ने पुस्तक को चार भागों में विभक्त किया है—(१) शराब, (२) अफ़ीम, (३) तमाखू, चाय, काफ़ी, भांग इत्यादि और (४) व्यभिचार। इन चारों दुर्व्यसनों में पड़कर हमारी मिट्टी कैसी पलीद होती है, यही इस पुस्तक में बड़े मनोरंजक ढंग से दिखाया गया है। चित्रों से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। लिखने की शैली ऐसी है कि पढ़नेवाले के दिल पर गहरा असर होता है।

प्रेमचंद

× × ×

पगली—लेखक, श्रीवियोगीहरिजी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी; २०३, हरिसन-रोड, कलकत्ता; मूल्य १); सजिल्द १।)

पुस्तक धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक-क्रांतिमय विचारों से ओत-प्रोत है। वर्तमान समय की तीनों अवस्थाओं का व्यंग्यात्मक ढंग से बड़ा ही सुंदर विवेचन किया गया है। पगली के चरित्र का चित्रण बड़ा ही हृदय-ग्राही है। भाषा हिंदी-उर्दू मिली हुई मुहाविरेदार और चटपटी है। उसमें ओज, काव्यानंद और हृदय के मर्मस्थल को तड़पा देनेवाली स्फूर्ति है। टाइटिल पर एक पगली का तिरंगा चित्र है। काग़ज़ एंटिक, छपाई साफ़-सुथरी। प्रत्येक हिंदी-प्रेमी के पढ़ने योग्य है।

× × ×

४. साहित्य

इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी—लेखक और संपादक, श्रीव्रजरत्नदास बी० ए०; प्रकाशक, कमलमणि-ग्रंथमाला-कार्यालय, काशी; मूल्य ॥=)

सैयद इंशा अरबी-फ़ारसी के विद्वान् होते हुए भी हिंदी खड़ी बोली के गद्य-साहित्य के एक मुख्य आचार्य माने गए हैं। इंशा साहब कई मुस्लिम-शाही दरबारों में प्रतिष्ठा के साथ रहे। इनकी कवित्व शक्ति की प्रतिभा दिल्ली-लखनऊ के शाही दरबारों में खूब फैली। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी जीवनी और यथासाध्य प्राप्त कुछ कविताओं का संग्रह है। इंशा की कविताओं में बाँकपन, निरालापन, चोट और अदा सभी बातें मौजूद हैं। इन्होंने बहुत-से ग्रंथ लिखे, जो प्राप्त हैं। उनकी सूची इस पुस्तक में मौजूद है। सैयद इंशा हिंदी-गद्य-साहित्य के जन्मदाताओं में से एक थे, जैसा कि लेखक महोदय ने सप्रमाण सिद्ध किया है। इनकी लिखी हुई "रानी केतकी की कहानी" ठेठ हिंदी में है, जिसमें हिंदी-फ़ारसी के एक भी शब्द नहीं हैं। कहानी में हँसी और मनोरंजन, दोनों का समावेश है। प्रस्तुत पुस्तक के अंत में यह कहानी भी मौजूद है। यह पुस्तक ऐतिहासिक और साहित्यिक, दोनों दृष्टिकोणों से उपादेय है। इन महाकवि का जीवन-चरित्र भी अजब पहेली की तरह है, जैसा इस पुस्तक से ज्ञात होता है। इनकी आख़िरी ज़िंदगी बड़ी मुसीबत की रही। ऐसे ही वक़्त में एक मुशायरे में पढ़ी हुई ग़ज़ल हम पाठकों के लिये नीचे दे रहे हैं। इसका एक-एक मिसरा नश्वर संसार के कष्टों की जीती-जागती तस्वीर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं,
बहुत आगे गए बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं।
न छेड़ ए निगहते बादे-बहारी राह लग अपनी,
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं।
तसव्वर अर्श पर है और सर है पाए-माक़ी पर,
गरज़ कुछ ज़ोर धुन में इस घड़ी मै ख़्वार बैठे हैं।
बसाने नक़्श पाए-रहरवाँ कूए-तमन्ना में,
नहीं उठने की ताक़त क्या करें लाचार बैठे हैं।
यह अपनी चाल है उफ़तादगी से अब कि पहरों तक,
नज़र आया जहाँ पर सायए-दीवार बैठे हैं।
कहाँ सब्रो तहम्मुल, आह! नंगो नाम क्या शै है,
मियाँ रो-पीटकर इन सबको हम एक बार बैठे हैं।
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो,
जहाँ पूछो, यही कहते—हम बेकार बैठे हैं।
भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इंशा',
ग़नीमत है कि हम सूरत यहाँ दो-चार बैठे हैं।

पुस्तक की सफ़ाई, छपाई, भाषा आदि सभी बातें अच्छी हैं। साहित्य और काव्य-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पुस्तक प्रकाशक से प्राप्त हो सकती है। लेखक महोदय का परिश्रम सफल और सराहनीय है।

× × ×

श्रीसप्तशती गीता (दुर्गा)—प्रकाशक, भारतधर्म सिंडिकेट लिमिटेड, बनारस; पृष्ठ-संख्या ३४६; मूल्य ॥)); सजिल्द १)

प्रत्येक हिंदू के घर में दुर्गाजी का पूजन और पाठ एक अनिवार्य तथा आवश्यक धर्म का अंग माना गया है। भारतवर्ष-भर में दुर्गाजी का पाठ-पूजन होता है। प्रत्येक हिंदू इससे परिचित है। इस पुस्तक के आरंभ में मूल-श्लोक, उसके नीचे उसका अन्वय और तदोपरांत हिंदी-भाषानुवाद दिया गया है। इस अन्वय और अनुवाद से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। दुर्गा-पाठ के श्लोकों में माता दुर्गा की अतुल प्रतिभा और महत्त्व का ज्ञान अब साधारण पाठक भी कर सकेंगे, साथ ही पंडित-समाज भी इससे यथोचित लाभ उठा सकेगा। पुस्तक का आकार-प्रकार, बाइंडिंग भी अच्छी है। मूल्य भी उचित रक्खा गया है। हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक हिंदू-मात्र इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदे।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

बाँसुरी—लेखक, श्रीयुत ललितकुमारसिंह नटवर; प्रकाशक, बर्मन-कंपनी, मुज़फ़्फ़रपुर; पृष्ठ-संख्या ९६; मूल्य १); कागज़ और छपाई साधारण।

बाँसुरी में सरसता, माधुर्य एवं भाव सभी बातें हैं। यदि ऐसा न होता, तो 'नटवर' जी नटनागर की भावमयी मूर्ति पर मुग्ध होकर मौलवी ख़लीफ़ुहुसेन से ललितकुमारसिंह क्यों बन जाते।

पुस्तक के आदि में बाबू शिवपूजनसहाय-लिखित ५ पृष्ठों की उत्तम भूमिका भी है। सप्त-स्वरी-वंशी की भाँति यह 'बाँसुरी' भी सात सुंदर भागों में विभाजित है। कविताएँ ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू, सभी प्रकार की एवं भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी गई हैं, तथा हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। कहीं-कहीं पर कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। पुस्तक का मूल्य मेरे विचार से कुछ अधिक है।

× × ×

कवि-विनोद—लेखक एवं प्रकाशक, विश्वंभरनाथ खत्री; ९९, हरिसन-रोड, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य ॥-); कागज़ अच्छा; छपाई साफ़।

इस पुस्तक में सभी सुपरिचित प्राचीन कवियों का जीवन-चरित्र, उनसे संबंध रखनेवाली किंवदंतियाँ एवं उनकी विनोद-पूर्ण रचनाओं के रोचक अंश आलोचनात्मक शैली पर दिए गए हैं। संकलित सामग्री बड़ी सुंदर एवं मनोरंजक है। 'कवि-विनोद' वस्तुतः प्रत्येक काव्य-प्रेमी के लिये एक विनोद की वस्तु है। मूल्य भी उचित से कम ही रक्खा गया है।

× × ×

५. बाल-साहित्य

जगमगाते हीरे (प्रथम भाग)—लेखक, साहित्यालंकार पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाला, दारागंज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य १) ; कागज़ बढ़िया; छपाई उत्कृष्ट ।

उक्त पुस्तक का जैसा नाम है, वैसी ही इसमें संपत्ति भी है । राजा राममोहनराय के समय से लेकर, विगत १५० वर्षों में होनेवाले १७ महापुरुषों का चरित्र-चित्रण बड़ी खूबी के साथ किया गया है । स्वामी दयानंद सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले, दादा भाई नौरोजी, गांधी, टैगोर एवं जगदीशचंद्र वसु आदि महापुरुषों के सुंदर चित्र भी, उनकी जीवनी के साथ, आर्ट-पेपर पर दे दिए गए हैं। भाषा सरल और मुहाविरेदार है, तथा उसका सौष्ठव कहीं भी नष्ट नहीं होने पाया है । पुस्तक प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिये समान उपयोगी है, तथा रूप और गुण को देखते हुए कहना पड़ता है कि मूल्य अधिक नहीं । आशा है, साहित्यालंकारजी के जगमगाते हीरे वास्तव में जगमगाते हीरे समझकर अपनाए जायँगे, और प्रथमावृत्ति की १,००० पुस्तकें हाथोंहाथ निकल जायँगी ।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की ओषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं । यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है । क़ीमत ३) मात्र । डाक-ख़र्च पृथक् ।

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है । हमारी ये दोनों ओषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं । मूल्य ४) मात्र । डाक-ख़र्च अलग ।

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं !

ठि० लारो रोल० जोख्सबर्ग (एम्० ए०)
१३।१२।२८

मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ । बच्चे की तबियत अच्छी है ।

नारायणदास रामा—
ठि० मुकर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर
बंबई—१३।१२।२८

आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ । अब दस मास का हुआ है ।

अमृतलाल माषजी—
फैजपुर, (जि० खानदेश) ता० १०।१२।२८

आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ ।

केशवजी माणिकचंद—
छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८

आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षुधा लगती और खाना भी हज़म होता है । अब पेट, पेड़ू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता ।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो । २२

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. स्त्री-समाज

जगत्-पालक ! लेखनी उठाते हाथ काँपता है, और लेखनी भी अपना कर्तव्य दिखाने में असमर्थ हुई जाती है। हृदय गद्-गद हो उठता है, नेत्रों से अश्रु-वर्षा होने लगती है, और चारों ओर निस्तब्धता-सी छाई हुई प्रतीत होती है। शांति के स्थान में अशांति के बीहड़ वृत्त हहराते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं। चारों ओर से करुण-क्रंदन की भयंकर झंकार जब कर्ण-कुहरों में पड़ती है, तो हृदय काँप उठता है। विचार करने से प्रतीत होता है कि जिस परमपावन भारत-भूमि में स्त्रियों को देवी मान पूजा हुआ करती थी, आज उन्हीं के हृदय-विदारक चीत्कार से कठोर-से-कठोर हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हुए जाते हैं। क्यों न हो ? एक या दो के कहने से कुछ नहीं होता, परंतु जब बड़े-बड़े शास्त्रकार भी स्त्रियों के पीछे डंडा लेकर पड़े हैं, तो फिर वे अबलाएँ कहाँ तक धैर्य का आश्रय ले सकती हैं।

आज स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिये बड़े-बड़े शास्त्रों के उदाहरण देने आरंभ किए हैं। कहीं तुलसीदासजी की चौपाई

"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी;
ये सब ताड़न के अधिकारी।"

को लेकर स्थान-स्थान पर बताते हैं, और अपने हृदय में बड़े प्रसन्न होते हैं कि तुलसीदासजी ने भी स्त्रियों को ताड़ना देने की ही आज्ञा दी है। स्त्रियों को अपने भोग-विलास की सामग्री समझकर मनमाने अत्याचार करते हैं, और फिर भी उनको पातिव्रत धर्म का उपदेश सुनाते रहते हैं। उन स्वार्थांध पुरुषों को यह दिखाई नहीं देता कि जिस स्थान पर स्त्रियों को पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया गया है, वहीं पुरुषों के लिये पत्नी-व्रत धर्म भी ख़ूब बताया गया है। परंतु इस बात को कौन सुने। ठीक तो है—

"सबै सहायक सबल के कोऊ न निबल सहाय।"

दुनिया में कमज़ोर की ओर कोई नहीं देखता है। ईश्वर भी मरे हुए को ही मारता है। स्त्रियों को तो पुरुषों ने ढोल की भाँति जितना ठोंका-पीटा गया, उतना ही अपना बल दिखाया है। कहीं इन्हें विष-लता कहकर दुतकारा है, तो कहीं विषैली सर्पिनी कह डाला है। किंतु जैसा वृक्ष होता है, फल भी तो उसी के अनुसार ही होगा। यदि तुम्हारी माता विष-लता है, तो तुम जो उससे उत्पन्न हुए हो, क्या तुम विष के फल नहीं ? क्या कभी संभव हो सकता है कि विष-वृक्ष से अमृत का फल उत्पन्न हो ? क्या ऐसे-ऐसे शब्द कहने से पहले कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार किया है कि तुम्हारी जननी की कोख को कलंक लगता है ? तुम्हारी सहधर्मिणी का धर्म विनष्ट होता है ? अन्य भगिनियों आदि की तो गिनती ही क्या है।

आप ड्रामे और सिनेमा देखते फिरें, परंतु स्त्रियों के नाम से झट फूट पड़ेंगे कि उन्हें ऐसी बातें नहीं दिखानी चाहिए। इससे इनके चरित्र पर बुरा असर होता है। तनिक विचार तो करो, तुम्हारे चरित्र पर कितना अच्छा असर होता है। घर की स्त्री भूखी-नंगी मर जाय, परंतु वेश्याओं में घर-बार लुटा दो, या एक के जीवित रहते भी कई-कई विवाह कर लो। परंतु स्त्रियों को वैधव्यावस्था में भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं। इतना कह देना तो सुगम है, परंतु उनके विधवा हो जाने पर उनकी जीविका के लिये भी कोई सोचता है ! आज यहाँ कितनी अल्पवयस्का विधवाओं के भाग्य-भानु सदा के लिये अस्ताचल के अतिथि बन चुके हैं। क्या उनकी कोई ख़बर लेता है ! उनके दुखित हृदयों पर कोई हाथ रखता है।

फिर मुँह फाड़-फाड़कर बातें करते लज्जा नहीं आती। देखिए, विदेशी स्त्रियाँ कितनी निडर और बहादुर होती हैं। हमारी भारतीय स्त्रियाँ घर से बाहर पैर रखते काँपती हैं, और तनिक-तनिक-सी बातों से डरती हैं। इत्यादि शेख़ी मारते रहते हैं। परंतु यहाँ अपने ही मुँह अपने दुर्गुण बताना है। भला क्या कोई चाहता है कि मैं आयु-पर्यंत क़ैद में पड़ा रहूँ। संसार की किसी भी विभूति को न देखूँ। नहीं, कदापि नहीं। विवशता के कारण चाहे जो कुछ करवा लो, परंतु हृदय से कोई नहीं चाहता। स्त्रियाँ नहीं चाहतीं कि वे परदे की चिड़िया बनकर आयु-पर्यंत क़ैद में पड़ी रहें। ये पुरुषों के ही भयंकर अत्याचार हैं, जिन्होंने स्त्रियों को भीरु बना दिया है। वे पुरुष की सूरत को देखते ही सिंह के समान भय मानती हैं; और उनका हृदय धड़कने लगता है। कारण, उनके हृदय चहारदीवारी के अंदर क़ैद रहने से क्षुद्र पड़ गए हैं। उनका साहस और उत्साह सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

फिर पुरुष वर्तमान स्त्रियों की कायरता प्रकट करते हुए प्राचीन ललनाओं के जीवन-चरित्र का उदाहरण देकर बड़े ऊँचे स्वर से चिल्लाते हैं कि देखिए प्राचीन देवियाँ कितनी बहादुर और पतिव्रता थीं, वे पति पर भार न बनकर सहायक थीं, युद्ध-क्षेत्रों में जाकर भी वीरता दिखाया करती थीं इत्यादि-इत्यादि। ऐसी ही बातें कह-कह अपने मन को शांत करते हैं। परंतु क्या कभी इन्होंने यह सोचते हुए यह भी सोचा है कि क्या हम भी राम-जैसे पत्नीव्रती और भीष्म-जैसे बाल-ब्रह्मचारी हैं ?

फिर यह कहाँ तक उचित है कि हम अपने दुर्गुणों को छिपाकर दूसरों के ही दुर्गुणों को प्रकट किए जायँ।

क्या ईश्वर के घर में यह अन्याय नहीं कि एक को अबल बनाए, और दूसरे को सबल ? स्त्री-पुरुष, दोनों ही उसकी संतान हैं। पुरुषों के ही अत्याचारों ने स्त्रियों को अबला बना दिया। इसी से अशांति का बीज बोया गया, और भारत के कोने-कोने में हाहाकार मच गया। न तो स्त्रियों को ही अपने धर्म-कर्म से कोई संबंध है, और न पुरुषों को ही। दोनों के ही जीवन-प्रवाह दुधारा में प्रवाहित हो रहे हैं।

तब यदि कोई वर्तमान सभ्यता की डींग हाँकता है, बड़े-बड़े ऊँचे मंचों पर खड़े होकर स्त्रियों को संबोधन करते हुए पुकारता है कि हे स्त्री-जाति, तू कब तक सोई रहेगी, अभी तक भी तेरी निद्रा भंग नहीं हुई, तो क्या यह उनके लिये उचित है ? शोक के साथ मुझे लिखना पड़ता है कि उनका हृदय साक्षी नहीं होता कि स्त्रियाँ इतने भयंकर अत्याचारों के होते हुए तथा अबला कहलाने पर भी जीती-जागती हैं, और बहादुर हैं। इसके उदाहरण आप बहुत-से घरों में देख सकते हैं। स्त्रियाँ प्रातः से सायंकाल तक घरेलू कार्यों में कोल्हू के बैल की भाँति पिसती रहती हैं। उस पर भी पति तथा सास आदि की झिड़कियों की मार को सहन करती हुई मूक रहती हैं। जो लड़कियाँ पढ़ती हैं, उनके जीवन की तुलना करने से प्रतीत होता है कि लड़कों से दस गुना काम लड़कियों को करना पड़ता है। फिर भी वे बिना किसी घबराहट के उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयत्न करती रहती हैं। बचपन से ही उनके कार्यों की गिनती की जाय, तो स्पष्ट प्रतीत हो जायगा कि स्त्रियों में काम करने की कितनी दृढ़ता है। वे प्रथम तो घरों के तुच्छ-से-तुच्छ काम को भी अपने हाथ से करेंगी, जिनको पुरुष घृणा की दृष्टि से देखते हैं। फिर साथ-ही-साथ पढ़ाई के काम में भी युनिवर्सिटियों में प्रथम पुरस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करती हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिये प्रतिदिन के प्रकाशित होनेवाले समाचारपत्रों के पन्ने काफ़ी होंगे। इतना होने पर भी संगीत, चित्र-विद्या आदि में भी लड़कियाँ अति प्रवीण होती हैं। जब ये सब बातें स्पष्ट हैं, सर्व-विदित हैं, तो फिर भी पुरुष झूठे ही मुँह फाड़-फाड़कर चिल्लाते हुए भी नहीं लज्जित होते, और मुँह भर-भर कोसते हैं। इससे बिगड़ता किसी का कुछ नहीं है, लेकिन जिसकी जैसी आदत होती है, वैसी ही रहती है। मुझे विश्वास है कि कोई दिन आवेगा, जब स्त्रियाँ सब झंझटों के होते हुए भी अपनी उन्नति के लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायँगी।

शकुंतला देवी

× × ×

२. विधवा का संकल्प

(१)

यदि प्रभु को यह इच्छा होती, मैं विधवा होकर जीऊँ,
पति-विहीन हो हृदय-रक्त को, आश-हीन होकर पीऊँ;
तो वह इस अमूल्य यौवन को, वृथा नहीं मुझको देता,
सुंदर मुझे बनाने का वह, व्यर्थ न कष्ट कभी लेता।

(२)

मुझको हृदय नहीं देता वह, उसमें प्रेम न विकसाता,
भाव रसीले मन में मेरे, कभी नहीं कुछ उपजाता;
मेरी आँखों में कुरूप ही, दुनिया सारी दिखलाती,
किसी पुरुष को देख भावना, नहीं तरंगित हो जाती।

(३)

प्रकृति-नियम को छोड़ सदा ही, मेरे मन के वश रहती,
हृदय-तरंगों की गंगा भी, उलटी ही निशि-दिन बहती;
रक्त-मांस मेरे शरीर का, परिवर्तित सब हो जाता,
पीड़ा उसे न कुछ भी होती, स्वाद नहीं मुझको आता।

(४)

किसी पुरुष का चित्त नहीं मैं, आकर्षित ही कर सकती,
अथवा किसी प्रेम-योगी का, हृदय नहीं मैं हर सकती;
मुझे देखने को आँखें भी, पुरुष न कभी उठा सकते,
परिजन तक भी बुरी नियत से, मुझे न घर में ही तकते।

(५)

किसी पुरुष से प्रकृति समागम, मुझे असंभव कर देती,
अथवा काम-शक्ति दोनों की, प्रभु की इच्छा हर लेती;
किंतु किसी सधवा में मुझमें, भेद नहीं प्रभु ने डाला,
प्रेमालिंगन कर देता है दोनों ही को मतवाला।

(६)

फिर कैसे मानूँ प्रभु-इच्छा, दुनिया के सब लोगों से,
मुझे रोककर पृथक् किए हैं, सांसारिक सुख-भोगों से;
जीव-जंतु हरएक विश्व का, भोगों का अधिकारी है,
कैसे मानूँ मेरे प्रति ही, प्रभु की इच्छा न्यारी है।

(७)

है समाज का नियम एक ही, पति को नारी अपनावे,
करे प्रेम से वही सदा, जो उसके पति के मन भावे;
उसके सुख-दुख को ही अपना, जीवन में सुख-दुख माने,
उसको छोड़ न अन्य पुरुष को, अपना दुनिया में जाने।

(८)

किंतु वही तो जीवित होवे, जो उसका आधार रहे,
जिसके होते प्रकृति-क्षेत्र पर, उसका भी अधिकार रहे;
अब तक डरती थी समाज से, किंतु न नेक डरूँगी अब,
मैंने ख़ूब विचार लिया है, बंधन-मुक्त बनूँगी अब।

देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'

× × ×

३. गर्भ पर माता-पिता की शारीरिक और मानसिक स्थिति का प्रभाव

डाक्टरों का मत है कि गर्भाधान के समय माता-पिता की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक स्थिति का प्रभाव भावी बालक पर बहुत पड़ता है। बहुत-से महानुभावों का भी यही विचार है कि यह समय शिशु के लिये बहुत महत्त्व का है। जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक डाक्टर ह्यूफ़लैंड (Dr. Hufeland) का कहना है कि यह समय ऐसा होना चाहिए, जब माता-पिता दोनों को संतानोत्पत्ति की पूर्ण कामना हो, और जब उनका चित्त प्रसन्न एवं प्रफुल्लित हो, उनको किसी भी बात की चिंता और व्यथा न हो। निस्संदेह यह बड़े पाप का काम है कि हम लापरवाही के साथ बालक के जन्म की नींव ऐसे समय डालें, जब हमारी शारीरिक और मानसिक स्थिति ठीक न हो।

हमारे पूर्वज इस बात को भली भाँति जानते थे। इसी कारण वे अपने सोने के कमरे को विशेष-रूप से स्वच्छ तथा अनेक प्रकार के पुष्प, सुगंध और चित्रों से सुगंधित रखते थे, और ऋतु, तिथि आदि का भी पूर्ण विचार रखते थे। हम अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ नीचे एक ऐसी ही सत्य घटना का उल्लेख करती हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे उन्हें भली भाँति ज्ञात हो जाय कि पशुओं तक के लिये यह समय कितने महत्त्व का है।

आज से ३,७०० वर्ष पूर्व की बात है। जैकब ने इस नियम का भली भाँति उपयोग किया, और उससे खूब लाभ उठाया। उसने अपने ससुर लैबन की भेड़ों की देखरेख और रक्षा का भार इस शर्त पर ले लिया कि लैबन की भेड़ों में जो चितकबरी होंगी, उनको वह अपने लिये ले लिया करेगा। चितकबरी भेड़ों का मूल्य साधारण भेड़ों की अपेक्षा अधिक होता है। अतः जैकब ने सोचा कि गर्भधारण के समय वह उन भेड़ों की मानसिक स्थिति ऐसी कर देगा, जिससे कि उनके बच्चे चितकबरे उत्पन्न हों, और इस प्रकार वह थोड़े समय में ही धनवान् हो जाय। बेचारे लैबन को यह बात बिलकुल न सूझी। उसने सोचा कि इनमें अधिक भेड़ें चितकबरी कैसे हो सकती हैं; क्योंकि वह तो भाग्य से एक-दो चितकबरी हो जाती हैं। इसलिये यदि जैकब का भाग्य प्रबल होगा, तो एक-दो भेड़ें चितकबरी हो जायँगी। अन्यथा नहीं।

जैकब ने चितकबरी भेड़ें उत्पन्न करने के लिये यह तरकीब भी की। उसने कुछ ऐसे वृक्षों की डालियाँ लीं, जो ऊपर से तो हरी होती हैं, पर छीलने से अंदर सफ़ेद निकल आती हैं। उसने इनको इस प्रकार छीला कि बीच-बीच में सफ़ेद धारियाँ पड़ गईं। भेड़ों में यह विचित्र बात पाई गई है कि उनके पानी पीने के पश्चात् ही प्रायः गर्भाधान होता है। जैकब इस नियम को जानता था, अतः वह अपनी हरी और सफ़ेद धारियों की डालियों को भेड़ों के पानी पीने की नाँद के पास रख देता था, ताकि जब पानी पीने के पश्चात् उनके गर्भाधान हो, तब उनकी दृष्टि के सामने चितकबरी डालियाँ अवश्य रहें! इसका परिणाम यह होता था कि गर्भाधान के समय उनके मस्तिष्क में हरी और सफ़ेद धारियाँ जम जाती थीं। इसीलिये उनके बच्चे भी चितकबरे और धारीदार होते थे। जैकब इन चितकबरे बच्चों का अलग झुंड बनाकर लैबन की साधारण भेड़ों के सामने रखता था, ताकि इनको देखकर उनके मस्तिष्क में चितकबरा रंग समाया रहे, और गर्भाधान के समय भी ऐसे ही रंगों को देखकर उनके चितकबरे बच्चे उत्पन्न हों।

जैकब इन चितकबरी भेड़ों को लैबन की अन्य साधारण भेड़ों से अलग रखता था, और उन्हें मिलने नहीं देता था, ताकि कहीं ऐसा न हो कि साधारण भेड़ों को देखकर चितकबरी भेड़ों के भी साधारण ही बच्चे हों। उसका सदा यह विचार रहता था कि चितकबरी और साधारण, दोनों प्रकार की भेड़ों के मस्तिष्क में सदा चितकबरा रंग जमा रहे, जिससे अधिक उत्तम चितकबरी भेड़ें उत्पन्न हों। वह इस बात का भी विशेष ध्यान रखता था कि जब मज़बूत भेड़ों के गर्भाधान का समय हो, तो उनके सामने अवश्य चितकबरी डालियाँ रक्खी जाएँ; परंतु वह दुर्बल भेड़ों के सामने ऐसी चितकबरी डालियाँ कभी नहीं रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में जैकब के पास मज़बूत और चितकबरी भेड़ें बहुत हो गईं, और वह बहुत धनी हो गया। लैबन के रेवड़ में केवल दुर्बल भेड़ों की साधारण संतान रह गई।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि एक ही माता-पिता की संतान में बहुधा शारीरिक, मानसिक और नैतिक अंतर होता है। सब भाई-बहनों की तबियत और शारीरिक बनावट आदि एक-सी नहीं होती। इसका बहुत बड़ा कारण उनके गर्भाधान, जन्म और शैशव-काल में माता-पिता की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और नैतिक स्थिति में होनेवाला अंतर ही है। हमारे देश में बहुधा देखा गया है कि जेठे भाई-बहन की अपेक्षा छोटे अधिक बलिष्ठ और बुद्धिमान् होते हैं। इसका यही कारण है कि भारतवर्ष में बाल-विवाह की प्रथा के कारण ज्येष्ठ संतान प्रायः उस समय ही उत्पन्न हो जाती है, जब माता-पिता का शारीरिक और मानसिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता।

दुर्गा देवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विनोद

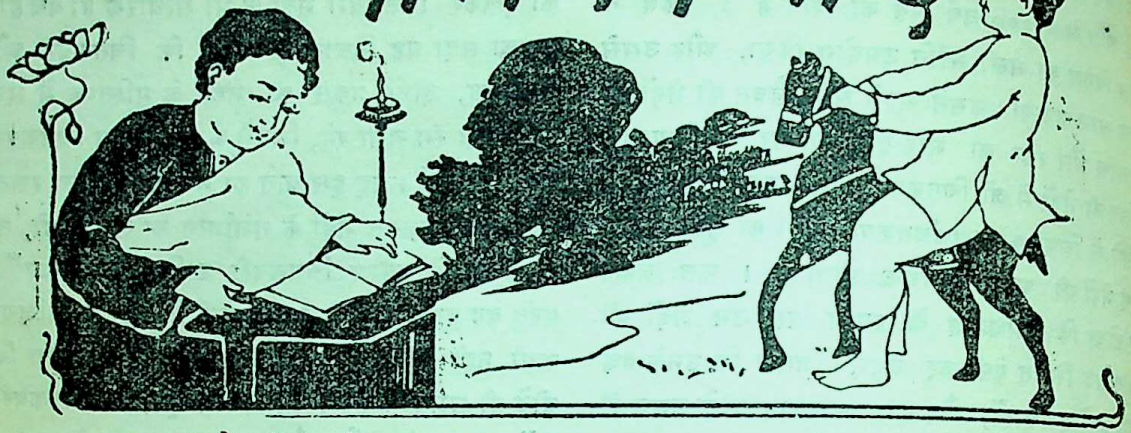

१. जेठ की दुपहरी

१

कैसी तपी हुई है धरती !
देह धूप से छन्-छन् जरती ;
बाहर चलने-फिरने की तो—
ज़रा नहीं है इच्छा चलती ।

२

नंगे पैर भूमि पर जलते ,
घर से कोई नहीं निकलते ;
सन्नाटा चारों दिशि छाया ,
नहीं पथिक हैं पथ पर चलते ।

३

बार-बार जल से सिर धोता ,
घर के कोने में जा सोता ;
लेकिन चैन न मिलती मन को ,
गरमी से है व्याकुल होता ।

४

कोई चीज़ न मुझको भाती ,
रह-रहकर है प्यास सताती ;
बर्फ़, सुराही का जल, शर्बत—
पीता, तो भी प्यास न जाती ।

५

बड़-पीपल के नीचे सारे—
गाय, भैंस औ' बैल हमारे—
बँधे छाँह में हैं, वे तो भी—
काँप रहे गरमी के मारे ।

६

देखो, मेरा कुत्ता आकर,
जीभ बड़ी अपनी लटकाकर;
खूब ज़ोर से हाँप रहा है,
खटिया के नीचे वह जाकर ।

७

पक्षीगण भी हैं अकुलाकर ,
छिपे हुए वृक्षों पर जाकर ;
पीपल की डाली पर देखो ,
बैठे हैं कौए मुँह बाकर ।

८

हन्नू, मत तुम बाहर जाओ ,
लू से अपनी देह बचाओ ;
बैठो, मैं क़िस्से कहता हूँ ,
'राघव' पंखा ज़रा डुलाओ ।

श्रीराघवप्रसादसिंह

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. गणित की एक पहेली

"एक गणित की उक्ति"

३६६२
४०२५
१३६१

ऊपर के दिए हुए १२ अंकों द्वारा सन् १९३० ईसवी के किसी महीने की किस तारीख को कौन-सा दिन पड़ेगा, यह जाना जा सकता है।

विधि—ऊपर के १२ अंक अँगरेज़ी के बारह महीने हैं। ३ जनवरी, ६ फ़रवरी, ६ मार्च, २ एप्रिल, ४ मई इत्यादि प्रदर्शक ये सिलसिलेवार बारहों महीने के अंक हैं। इसलिये जानने के लिये तारीख के अंक में महीने के अंक को जोड़कर ७ से भाग देने से जो शेष बचे, उस शेष को शनिवार से गिनकर बैठा देने से मालूम हो जायगा।

जैसे १५ जनवरी, १९३० को कौन-सा दिन पड़ेगा, यह जानना हो, तो १५ में ३ (फ़रवरी का सूचक मास-अंक) को जोड़ देने से १८ होगा, और उसमें ७ से भाग देने से ४ शेष रह जायगा। अब चौथा दिन, शनिवार से गिनने से मंगलवार पड़ता है। इसी प्रकार २ शेष रहने से रविवार, १ शेष रहने से शनिवार इत्यादि होगा।

विंध्येश्वरीप्रसाद

× × ×

३. मेंढकों की बोलियाँ

बरसात में, नाले के किनारे, एक साँप इस ताक में बैठा था कि मेंढक निकलें, तो उन्हें खाऊँ। मेंढक निकले। एक पर साँप झपटा। पर वह मेंढक उछलकर दूर के दूसरे मेंढक पर चढ़ बैठा, और उसकी देखादेखी एक तीसरा मेंढक भी इस ऊपरवाले मेंढक पर उछलकर चढ़ गया। अब सबसे ऊपरवाला मेंढक ऊपर रहने के कारण अपने को सुरक्षित समझकर बोलने लगा—खा जा, खा जा—खा जा, खा जा।

अर्थात् ऐ साँप, अब तो मैं सुरक्षित हुआ, आ मुझे खा जा। देखूँ, कैसे खाता है।

फिर बीचवाला मेंढक बोल उठा—

ऊपर गुलगुल नीचे गुलगुल ;
ऊपर गुलगुल नीचे गुलगुल।

अर्थात् ऐ साँप, मैं दो मेंढकों के बीच में दबा हूँ। कैसे मुझे निकाल के खायगा—खाना संभव नहीं।

तब तक नीचे का मेंढक साँप के डर से घबरा कर बोला—

अब गया तब गया ;
अब गया तब गया।

अर्थात् ऐ साँप, मैं तो सबसे नीचे हूँ। मेरे बचने की कोई आशा नहीं—अब मरा, तब मरा।

मेंढकों का यह तमाशा देखकर साँप कुछ निश्चय नहीं कर सका कि क्या करूँ। उसकी बुद्धि चकरा गई। वह दूसरी ओर अपने भोजन की खोज में चला गया। फिर मेंढकों ने पानी में धमाधम कूदकर अपनी जानें बचाईं, और खुशियाँ मनाईं। फिर तो क्या था—उन्होंने टरटें-टरटें की इकट्ठी आवाज़ से आसमान को सिर पर उठा लिया।

बालको! मेंढकों की भिन्न-भिन्न बोलियाँ इस प्रकार की होती भी हैं।

दामोदरसहाय "कविकिंकर"

× × ×

४. भारी है

पृथिवी की खोज माँहि ढूढ़ि डार्यो थल-थल,
फारि हिय ताको लियो रतन निकारी है ;
कल-कल जल की मिटायो जल-कल में है,
रंचि-पंचि तल में जलधि-निधि टारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगी भागी-भागी फिरै रेल औ जहाजन में,
बायलर इंजन में कैद करि डारी है;
बिजुरी बिचारी हारी जली गली-गली माँहि,
सत्ता तो विज्ञान ही की आजु बड़ी भारी है।

विद्यार्थी त्रिभुवनशंकर तिवारी

× × ×

५. वीर बालिका

रात्रि का समय था, बर्फ़ गिर रही थी। दरवाज़े के बाहर, खपरैल के नीचे, एक युवती कुल्हाड़ी से लकड़ियाँ चीर रही थी। वह लंबी थी, मगर उसका शरीर पतला, गठीला और शक्तिशाली था। उसका पालन-पोषण जंगल की खुली हवा में हुआ था, और वह ज़िमींदार की पुत्री थी।

* * * *

मकान के भीतर से आवाज़ आई, "ब्रथैन! अब चली आओ, आज हम अकेली हैं, और रात बहुत बीत गई है। जर्मन-सिपाही और भेड़िए इधर-उधर फिर रहे होंगे।"

लड़की ने एक बार और कुल्हाड़ी चलाते हुए कहा—"अभी आई, अम्मा! भय की कोई बात नहीं, अभी अधिक अँधेरा भी तो नहीं हुआ।"

वह बहुत छोटी-छोटी लकड़ियाँ उठाकर भीतर ले आई, और उनको लाकर चूल्हे के पास डाल दिया। फिर तमाम खिड़कियों को बंद करके, दरवाज़ा भी बंद कर दिया।

उसकी मा आग के सामने बैठी चर्खा कात रही थी। वह वृद्धा थी, इस कारण जल्दी घबरा जाती थी। वह फिर आप-ही-आप बड़बड़ाने लगी—"तुम्हारे पिता को इतनी देर तक बाहर नहीं रहना चाहिए। पुरुषों के बिना स्त्रियाँ बिलकुल बेकार होती हैं।"

बालिका ने उत्तर दिया—"एक-आध भेड़िया या जर्मन-सिपाही तो मैं भी मार लूँगी।" इसके साथ ही उसके बड़े नेत्र उस पिस्तौल की ओर उठ गए, जो अँगीठी के ऊपर खूँटी से लटक रहा था। उसका भाई युद्ध के आरंभ में ही सेना में भरती हो गया था। और, अब इस मकान में यह दोनों स्त्रियाँ—माता और पुत्री—और ब्रथैन का पिता निकोल्स, कुल तीन प्राणी रहते थे। शहर में रहना इन्हें पसंद न था।

* * * *

इस जंगल से, सबसे अधिक निकट शहर रैथल था, जो एक ओर पर्वत-माला से घिरा हुआ सुरक्षित स्थान था। इसके निवासियों ने यह निश्चय कर लिया था कि नगर के दरवाज़े बंद करके शत्रु का मुक़ाबिला करेंगे, और जब तक दम में दम है, अपने इस सुंदर नगर को शत्रु के हाथों न सौंपेंगे। फ़्रांस का यह नगर पहले अन्य राजाओं के समय भी दो बार इसी प्रकार शत्रु को भगा चुका था, इसलिये लोग अपने पूर्वजों की भाँति इस बार भी ऐसा ही करना चाहते थे।

इन्होंने तोपें और बंदूक़ें इकट्ठी कर ली थीं, सेना को तैयार करके उसे कंपनियों में विभाजित कर दिया था, और तमाम दिन शहर के चौक में 'परेड' करते थे। सब लोग—दर्ज़ी, हलवाई, वकील, बुकसेलर, बढ़ई, भिश्ती और क़साई आदि—अपने-अपने समय पर 'परेड' में उपस्थित रहा करते थे। एक व्यक्ति—'लिवग्ने"—जो सरकारी फ़ौज में जमादार रह चुका था, इस सेना का "मेजर" था। उसी के हाथ में इस सेना की कमान थी, उसने शहर के सभी युवकों को इसमें भरती कर लिया था। इसके अतिरिक्त बहुत से बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लोग भी—जिन्होंने फ़ौज में भरती होना चाहा था—इसमें मिला लिए गए थे। इस प्रकार यह एक बड़ी भारी सेना हो गई थी।

* * * *

बस, अब जर्मन-सेना की चढ़ाई की प्रतीक्षा थी। यद्यपि वे अभी दिखाई न देते थे, तथापि अधिक दूर भी न थे; क्योंकि उनकी कई छोटी-छोटी टोलियाँ 'निकोल्स' के घर के पास तक कई बार आ चुकी थीं।

शहरवालों ने तोपों का मुँह सीधा कर दिया था, परंतु जर्मन-सेना दिखाई न पड़ती थी। 'निकोल्स' हर तीसरे दिन आवश्यक सामान लेने नगर में जाता था, और यदि कोई नवीन समाचार होता, तो उन्हें पहुँचा दिया करता था। आज भी वह कहने गया था कि जर्मन-सेना की एक छोटी-सी टोली कल दो बजे दिन के उसके मकान के निकट आकर कुछ देर ठहरी थी, और उनका अफ़सर फ़्रांसीसी भाषा बोलता था। जब निकोल्स किसी ऐसे काम के लिये जाता, तो अपने दोनों कुत्ते—जो शेरों की भाँति थे—साथ ले जाया करता था कि मार्ग में भेड़िए तंग न करें। स्त्रियों से वह कह जाया करता था कि अँधेरा होने से पहले ही दरवाज़ा बंद कर लिया करें।

* * * *

बालिका तो किसी चीज़ से न डरती, परंतु उसकी माता काँपती रहती, और कहा करती थी—"अंत में फल अच्छा न निकलेगा, अवश्य ऐसा ही होगा। तुम देखोगी, और फिर याद करोगी कि अम्मा क्या कहा करती थीं।"

इस दिन वह आवश्यकता से अधिक घबराई हुई थी। थोड़ी देर पश्चात् फिर पूछने लगी—"तुम्हारे पिता किस समय आवेंगे?"

"११ बजे से पहले तो शायद न आ सकेंगे। जिस दिन उन्हें मेजर साहब के साथ खाना खाना होता है, अवश्य देर हो जाती है।"

वह एक धुली हुई पतीली आल्मारी में रख रही थी कि झोंपड़ी के बाहर आहट मालूम हुई। वह ठहरकर सुनने लगी, और कुछ देर बाद धीरे से बोली—जंगल में कोई फिर रहा है, कम-से-कम चार-पाँच आदमी होंगे।

उसकी माता भयभीत हुई, और चर्खा छोड़कर कहने लगी—परमात्मन्! कैसा होगा? ब्रथैन, आज तो तेरे पिता भी घर नहीं हैं।

बात अभी पूरी भी न हुई थी कि किसी ने दरवाज़े को ज़ोर से खटखटाया, और उत्तर न मिलने पर भारी आवाज़ में कहा—दरवाज़ा खोलो। कुछ देर के पश्चात् फिर उसी प्रकार आवाज़ आई—दरवाज़ा शीघ्र खोलो, नहीं तो सिर तोड़ दिया जायगा।

* * * *

ब्रथैन ने खूँटी से पिस्तौल उतारकर जेब में डाल लिया, और दरवाज़े के पास जाकर पूछा—तुम कौन हो?

उनमें से एक ने उत्तर दिया—हम वही सैनिक हैं, जो उस दिन इधर से निकले थे।

बालिका ने फिर पूछा—तो तुम क्या चाहते हो?

"हम मार्ग भूल गए हैं। दरवाज़ा शीघ्र खोलो, नहीं हम इसे तोड़ देंगे।"

बालिका ने लाचार होकर द्वार खोल दिया, और गंभीरता से पूछा—इतनी रात गए आए। तुम चाहते क्या हो?

अफ़सर ने उत्तर दिया—मैं मार्ग भूल गया हूँ, और मकान को देखकर इधर आ गया हूँ। प्रातःकाल से मैंने और मेरे साथियों ने कुछ नहीं खाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रथैन ने फिर कहा—परंतु इस समय तो मैं और माता, दोनों अकेली मकान में हैं।

अफ़सर भला आदमी मालूम होता था। बोला—कुछ हर्ज नहीं। हम तुम्हें कोई कष्ट न देंगे। केवल हमें कुछ भोजन दे दो, हम बहुत थके और भूखे हैं।

बालिका द्वार से पीछे हट गई—"तो भीतर आ जाओ।" और मेज़ के दोनों ओर जो बेंचें पड़ी थीं, उनकी ओर इशारा करके कहने लगी—"बैठ जाओ, तुम थकान में चूर मालूम होते हो। मैं अभी खाना तैयार किए देती हूँ।"

* * * *

बालिका ने दरवाज़ा फिर बंद कर दिया, और एक डेगची में आलू उबलने को रख दिए। सैनिक अपनी-अपनी बंदूक़ें और टोपियाँ एक कोने में रखकर स्कूल के तमीज़दार विद्यार्थियों की तरह चुपचाप बैठ गए। उनके भूखे नेत्र बालिका की ओर थे। वृद्धा ने फिर अपना चर्ख़ा कातना आरंभ कर दिया। परंतु कभी-कभी वह डरी हुई-सी सैनिकों की ओर भी देख लेती थी।

* * * *

भोजन तैयार हो गया, और उस पर वे ऐसे टूटे, जैसे महीनों के भूखे हों। दोनों स्त्रियाँ उनकी लाल-दाढ़ियों के हिलने को ध्यान-पूर्वक देख रही थीं। आलू और रोटी उनके बड़े-बड़े गालों में ग़ायब होती जा रही थीं।

सिपाही भोजन कर चुके, तो अंगूर खाने लगे। साथ ही ऊँघने भी लगे। कभी एक दूसरे पर बोझ डाल देता, और फिर होश में आकर झटके के साथ उठकर सीधा बैठ जाता।

ब्रथैन ने अफ़सर से कहा—आप यहीं आग के सामने सो जायँ। छः आदमियों के लिये यह स्थान काफ़ी होगा। मैं अम्मा के साथ ऊपर के कमरे में सोने जा रही हूँ।

दोनों स्त्रियाँ ऊपर की मंज़िल में चली गईं। दरवाज़ा बंद होने की आवाज़ सुनाई दी। कुछ देर तक उनके छत पर इधर-उधर फिरने की आहट होती रही। फिर सन्नाटा हो गया।

* * * *

जर्मन-सिपाही आग की ओर पैर फैलाए अपने बड़े-बड़े कोटों के तकिए बनाकर पत्थर के फ़र्श पर लेट गए, और थोड़ी देर में ज़ोर-ज़ोर के खुर्राटों की आवाज़ छः विभिन्न स्वरों से आने लगी।

उन्हें सोते लगभग एक घंटा बीत चुका था कि गोली लगने की आवाज़ आई, जो इतनी तेज़ थी कि मकान की दीवार के बिलकुल निकट मालूम होती थी। सिपाही तुरंत उठकर बैठ गए। दो गोलियाँ और चलीं; फिर तीन और।

ऊपर के ज़ीने का दरवाज़ा जल्दी से खुला, और ब्रथैन नंगे पैरों, सोने के कपड़ों पर एक छोटी-सी चादर लपेटे और हाथ में बत्ती लिए इस कमरे में आई। भयभीत होकर वह कहने लगी—फ़्रांसीसी फ़ौज है, कम-से-कम दो सौ सिपाही होंगे। यदि उन्होंने तुम्हें देख लिया, तो मकान में आग लगा देंगे। तुम तुरंत इस तहख़ाने में चले जाओ—चुपचाप। यदि आवाज़ हुई, तो हममें से किसी की भी ख़ैर नहीं।

अफ़सर ने घबराकर धीरे से उत्तर दिया—बहुत अच्छा, रास्ता किस ओर है।

बालिका ने तहख़ाने का छोटा-सा दरवाज़ा खोल दिया, और सिपाही एक-एक करके पेंचीले ज़ीने से उतरने लगे। जब अंतिम टोपी की नोक भी निगाह से ग़ायब हो गई, तो ब्रथैन ने दरवाज़े को बंद कर दिया, और बेंच पर बैठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसने लगी। वह इतनी प्रसन्न थी कि उसका मन अपने क़ैदियों के सिरों के ऊपरवाले फ़र्श पर नाचने को चाहता था।

* * * *

वह बार-बार घड़ी की ओर देखती थी।

आख़िर उठी, और बाहर का दरवाज़ा खोलकर सुनने लगी। दूर से एक कुत्ते के भूँकने की आवाज़ आई, और थोड़ी देर पश्चात् अँधेरे में दो बड़े-बड़े कुत्ते दिखाई दिए, जो पास आकर उछलने-कूदने और ब्रथैन पर अपने अगले पैर रखकर खड़े होकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे—ब्रथैन ने आवाज़ दी—पिता!

निकोल्स अपने भारी और मोटे डंडे को खड़खड़ाता हुआ मकान के भीतर चला आया।

बालिका ने कहा—"पिता! तहख़ाने के दरवाज़े के सामने से न निकलना, उसमें जर्मन-सिपाही हैं।"

निकोल्स ने घबराकर पूछा—ऐं! जर्मन-सिपाही, वे यहाँ क्या कर रहे हैं?

ब्रथैन हँसने लगी—"वही न, जो कल भी इधर आए थे। आज जंगल में रास्ता भूल गए, अब मैंने उन्हें तहख़ाने में बंद कर रक्खा है। बेचारे वहाँ आराम से रहेंगे, बहुत थक गए थे। इसके पश्चात् ब्रथैन ने सब बातें कहीं। तथा किस चालाकी से अपने कमरे की खिड़की में से स्वयं हाथ बाहर डालकर पिस्तौल चलाकर सिपाहियों को डरवाया और बंदी किया है।

बुड्ढे निकोल्स ने, जो अभी तक भय से काँप रहा था, पूछा—तो अब क्या करना चाहिए?

पुत्री ने उत्तर दिया—फिर शहर को जाओ, और मेजर साहब से कहकर फ़ौज को ले आओ। फँसा-फँसाया शिकार है, वह बड़े प्रसन्न होंगे।

अब उसका पिता तनिक मुस्किराया, "हाँ, प्रसन्न क्यों न होंगे।" यह कहकर वह फिर शहर को चला गया।

* * * *

उसके जाने के बाद जर्मन-अफ़सर को कुछ संदेह हुआ। उसने दरवाज़े के निकट आकर लड़की को डराने, धमकाने और दरवाज़ा खुलवाने की कई बार चेष्टा की। दरवाज़े के तख़्तों में से गोलियाँ भी चलाईं; परंतु ब्रथैन एक कोने में बैठी इनकी असफल चेष्टाओं को देखकर मज़े से हँसती रही। (अनूदित)

आनंदीप्रसाद मिश्र "निर्द्वंद्व"

× × ×

६. बालोद्गार

किरण हूँ सुंदर, हूँ रवि-बाल;
करूँगा भारत-उज्ज्वल भाल।
उषा की अरुणाई अभिराम;
बनाऊँगा भारत सुख-धाम।
छोड़ दूँगा कोकिल-सी तान;
रिझा लूँगा मा को गा गान।
रमा दूँगा बस सुखद वसंत;
बनाकर भारत भव्य-अनंत।
बहाकर सुख-सरिता की धार;
करूँगा दुष्टों का संहार।
पुत्र के कर कर्तव्य विशाल;
मातु के चरणों में सिर डाल।
प्राप्त कर प्रेमोदधि आशीष;
करूँ मैं सेवा ऐसी ईश।
चूम ले माता मेरा भाल;
और कह दे वह—प्यारे बाल।

हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

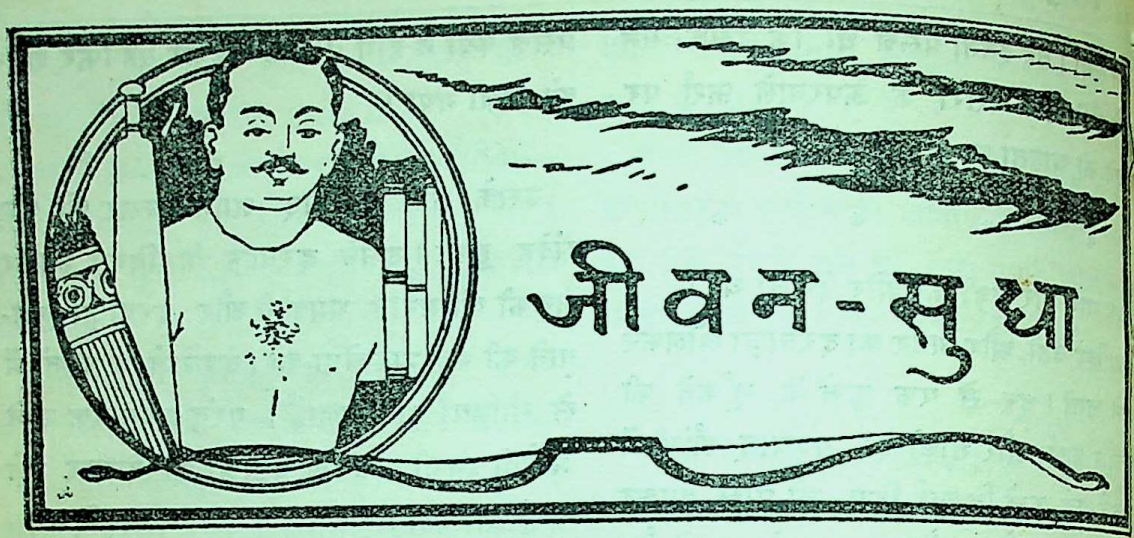

१. दाँतुन-क्रिया

प्रायः प्रत्येक भारतवासी इस क्रिया का महत्त्व भलि भाँति जनता है; परंतु ऐसे बहुत कम हैं, जो उचित रीति से इसका पालन करते हों। दाँतों की स्वच्छता पर उनकी मज़बूती, और उनकी मज़बूती पर स्वास्थ्य निर्भर है। दाँतों के ऊपर जो मैल जम जाता है, उससे उनके ऊपर की कलाई निकल जाती है, पेढ़ियाँ पीछे को हटती जाती हैं, और दाँतों की जड़ निर्बल हो जाती है। उसी मैल में कई प्रकार के व्याधि-कारक जंतु भी पैदा हो जाते हैं, जो मसूढ़ों तथा दाँतों को सड़ा देते हैं, और जब सड़ा हुआ रस भोजन के साथ पेट में जाता है, तो वही व्याधि पैदा करता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि दाँतों की स्वच्छता की ओर पूरा ध्यान रक्खे।

दाँतों की स्वच्छता के लिये, व्यवसायियों ने अपना मतलब साधने के लिये, कई प्रकार के मंजन और कूँचियाँ (Brushes) बना दी हैं। बाज़ार में इतने प्रकार के मंजन तथा ब्रुशों की भरमार है कि उनमें से, यथार्थ में, उपयोगी तथा निरुपयोगी का चुनाव कुछ कठिन है। बहुत-से तो उनमें निरर्थक ही हैं; और जो कुछ उपयोगी हैं, वे पूर्णरूपेण संतोष-जनक नहीं।

मैंने स्वयं कई दंत-मंजनों का उपयोग किया था, परंतु संतोष-जनक लाभ न होने से सबको छोड़कर फॉरवर्ड के किसी अंक में प्रकाशित एक जर्मन डाक्टर के लेखानुसार एक अल्प मूल्यवाली वस्तु का उपयोग किया। आज लगभग दो साल से उसी का उपयोग कर रहा हूँ। बहुत ही संतोष-जनक लाभ हो जाने के कारण आज जन-समाज की सेवा में अपना अनुभव इस लेख द्वारा बतलाता हूँ। मेरे कुछ मित्रों को भी इससे लाभ पहुँचा है, और उन्होंने अब इसी का उपयोग ग्रहण कर लिया है। जिन महानुभावों की इच्छा हो, वे चाहें एक ही महीने तक इसका सेवन कर स्वयं जाँच कर लें, और यदि लाभदायक सिद्ध हो, तो आगे भी इसका सेवन करते, रहें तथा अपने कठिन परिश्रम द्वारा उपार्जित द्रव्य को दंत-मंजनों के ख़रीदने में फूँकने से बचें।

दाँत साफ़ रखने के लिये नित्य-प्रति प्रातःकाल नमक मिले हुए ठंढे जल का और कूँची का उपयोग करना चाहिए। कूँची के लिये बड़, पीपर, आम, करंज, बबूल, नीम, मौरसिली इत्यादि पेड़ों की शाखाओं का उपयोग हमारे वैद्यक-ग्रंथों में पाया जाता है, और इनका उपयोग ठीक होगा। जहाँ इनका अभाव हो—जैसे कि बड़े शहरों में हो सकता है—वहाँ के निवासियों के लिये तैयार कूँचियाँ (Brushes) ही अच्छी होंगी।

जिन्हें ब्रुश का उपयोग करना हो, उन्हें चाहिए कि ज़रा सख़्त बालवाला ब्रुश काम में लावें, और उसी कूँची से दाँतों को ख़ूब मलें। पहले कुछ दिनों तक यदि मसूढ़ों से रक्त निकले, तो उससे घबराना नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। कुछ दिनों बाद वह आप ही बंद हो जाता है, और दाँत मज़बूत हो जाते हैं।

नमक का जल बनाने की विधि यह है—

तीन हिस्सा जल और उसमें एक हिस्सा नमक डाल कर बोतल में भर दो, और डाँट लगा दो। कुछ समय में नमक गल जायगा, और महीन बालू इत्यादि सख़्त पदार्थ नीचे बैठ जायँगे। दाँतुन करते समय बोतल के ऊपरी जल को हाथ में लेकर उसमें बार बार कूँची भिगो कर उससे दाँत मलना चाहिए। ऐसा करने से दाँतों के बीच में अटकी हुई वस्तुएँ भी निकल जायँगी, और दाँत साफ़ हो जायँगे। फिर उस जल को मुँह में भरकर उँगली से पेढ़ियों को ख़ूब मल देना चाहिए। इसके बाद दो-चार कुल्ले करके फिर स्वच्छ जल से मुँह साफ़ कर लेना चाहिए।

बहुत-से लोग सूखे नमक का उपयोग करते हैं; परंतु यह ठीक नहीं है। दंत-चिकित्सकों का यह मत है कि मंजन में महीन बालू इत्यादि कठोर पदार्थ नहीं होना चाहिए। इससे दाँतों की कलाई घिसती है, उनको हानि पहुँचती है। नमक में बालू तथा अन्य कठोर पदार्थों के होने की संभावना है, इसलिये नमक का जल ही काम में लाना चाहिए। इसके सिवा सूखे नमक के घुलने के लिये दाँतों की पेढ़ियों में से बहुत जल खिंचेगा, जिससे भी कुछ हानि हो सकती है। परंतु नमक के जल से ऐसा नहीं होगा।

जिनके दाँत बहुत ही मैले या बिगड़े हुए हों, उन्हें चाहिए कि पहले किसी योग्य दंत-चिकित्सक से एक बार साफ़ करा लें।

जब ब्रुश नया ख़रीदा जाय, तो उसको कुछ देर तक खौलते हुए जल में छोड़ रखना चाहिए। फिर २.५ प्रतिशतांश कार्बोलिक एसिड में १० मिनट तक डुबाकर रखना चाहिए। ऐसा करने से ब्रुश में जो व्याधि-कारक जंतुओं के होने की संभावना है, वह न रहेगी।

आशा है, पाठक मेरे इस अनुभव को परीक्षा कर लाभ उठावेंगे।

नारायण-दुलीचंद व्यास

× × ×

२. पान

पान का भारतवर्ष में कई शताब्दियों से प्रचार है। यह जड़ से भारत में ही पैदा होता रहा है, अथवा विदेशों से आया, यह ज्ञात नहीं; पर इसमें संदेह नहीं कि अज्ञात काल से यहाँ इसका किसी-न-किसी रूप में उपयोग होता रहा। धर्मशास्त्रों ने पान को पवित्र माना है। अनेक पूजा की सामग्रियों में इसका होना आवश्यक माना गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन हिंदू-सभ्यता जिस समय उन्नत अवस्था में थी, उस समय भी लोग पान को भली भाँति जानते थे; पर खाने के लिये इसका उपयोग होता था, इसका कोई पुष्ट-लिखित प्रमाण नहीं है। मुसलमान शासन-काल में निस्संदेह इसका व्यवहार बहुत अधिक बढ़ गया था। मुग़ल-बादशाहों के दरबारों में सबको पान दिए जाते थे। दरबार में जाते समय प्रत्येक दरबारी को उसके पद के अनुसार पान दिए जाते थे, कभी-कभी एक-एक व्यक्ति को सोलह और बीस पान तक मिलते थे। आजकल तो घर-घर में इसका उपयोग होता है। अनेक लोगों के लिये पान भोजन से भी अधिक आवश्यक है। नवीन योरपीय सभ्यता के प्रभाव से निस्संदेह इसका प्रयोग कहीं-कहीं कुछ कम हो गया है।

यद्यपि भारत के भिन्न-भिन्न भागों में पान के आकार-प्रकार तथा स्वाद में भिन्नता होती है, पर वैज्ञानिक दृष्टि से उसके गुण में कोई विशेष अंतर नहीं होता। खाने के लिये पान के जो बीड़े तैयार किए जाते हैं, वे भी प्रायः सब भागों में एक ही प्रकार से बनते हैं। विशेष रूप से स्वादिष्ट बनाने के लिये कुछ स्वादिष्ट और सुगंधित वस्तुएँ—जैसे पेपरमिंट, इलायची, लौंग, नारियल की गरी के बारीक टुकड़े, मुलहठी तथा और अनेक वस्तुएँ अथवा इन्हीं के संयोग से बने हुए कुछ बाज़ारू मसालों में पड़ जाती हैं।

यद्यपि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति पान का व्यवहार करता है, पर बहुत ही कम लोगों ने यह पता लगाया होगा कि इससे लाभ होता है, या हानि। पान के इस बढ़े हुए प्रचार से समाज और देश की कैसी भयंकर हानि हो रही है, इस बात को शायद ही किसी ने सोचा होगा। आज हम इस लेख में पाठकों के सामने इसके गुण और दोषों के संबंध में कुछ ऐसे ही विचार उपस्थित करेंगे। इस लेख में जो कुछ है, वह आयुर्वेदिक, यूनानी और एलोपैथिक-चिकित्सा के मान्य ग्रंथों के आधार पर ही लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पान के गुण

पान से जो कुछ लाभ या हानियाँ होती हैं, वे उसके रस के कारण ही होती हैं। सूखे पान के पत्ते में न तो कोई स्वाद ही होता है, और न गुण ही। अस्तु, प्रत्येक कार्य में पान के हरे पत्ते का ही प्रयोग किया जाता है। पान के पत्ते के रस में एक प्रकार की तैल वस्तु होती है, उसी पर इसके सारे गुण और दोष निर्भर हैं।

शरीर के बाह्य-भागों में इसका प्रयोग अनेक भिन्न-भिन्न रोगों में होता है। पान में सरसों का तेल या चूना लगा, उसे थोड़ा-सा गरम करके यदि मस्तक के बग़ल में कान के सामनें लगाया जाय, तो सिर-दर्द दूर होता है। यदि गले में लगाया जाय, तो गले का दर्द दूर होता है। सूजी हुई गिल्टियों में लगानें से लाभ होता है। कभी बालक की मृत्यु हो जानें के कारण माता के स्तन में दूध जमा हो जाता है, और उसे अत्यंत कष्ट होता है। ऐसी अवस्था में यदि सरसों का तेल लगाकर पान के गरम पत्ते स्तन पर लगा दिए जायँ, तो शीघ्र आराम हो जाता है। बच्चों के फेफड़े की अनेक बीमारियों में इससे लाभ होता देखा गया है। तेल लगाकर गरम किए हुए पत्ते छाती में कई बार लगानें से खाँसी और श्वास के कष्ट दूर होते हैं। अनेक दूषित घावों में पान के पत्ते, घाव को ढकने के लिये, रेशम की पट्टियों के स्थान पर लगाए जाते हैं। आँख के रोगों में भी पान का रस डालनें से लाभ होता देखा गया है। कान के दर्द में भी गरम रस डालनें से लाभ होता है।

पान के बीड़े चबाने से मुँह में थूक अधिक मात्रा में निकलनें लगता है, इसलिये यदि मुँह और गला सूखने लगे, तो पान खानें से तरावट आती है, और प्यास बुझ जाती है। मुँह की दुर्गंध दूर होती है। भोजन के पश्चात् चबानें से पाचन-शक्ति बढ़ती है, और पेट का दर्द भी दूर होता है। इसलिये पाचक औषधियों के साथ पान कभी-कभी अजीर्ण के रोगों में भी दिया जाता है। कड़वी औषधि खानें के पश्चात् पान खा लेनें से मुँह का स्वाद अच्छा हो जाता है। सर्दी और खाँसी में यह कफ बाहर निकालता है।

पान के दोष

यद्यपि एक-दो बीड़े प्रतिदिन खानें से लाभ होता है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उससे हानि होती ही नहीं। यदि संयम-पूर्वक केवल भोजन के पश्चात् प्रतिदिन एक या दो पान खाए जायँ, तो उनसे हानि की अपेक्षा लाभ ही अधिक होता है; पर यदि इससे अधिक इसका व्यवहार किया जाय, तो बहुत बड़ी हानि होती है। बहुत-से लोग दस-पंद्रह पान प्रतिदिन खाया करते हैं। कुछ लोग तो इस संख्या को सैकड़े तक पहुँचा देते हैं; पर अंत में उन्हें इसके दुष्परिणाम ज्ञान होते हैं।

भारतवर्ष में ९० प्रतिशत लोगों में दाँत के रोगों की शिकायत पाई जाती है। प्रायः चालीस-पचास वर्ष की अवस्था में ही लोगों के सब दाँत गिर जाया करते हैं। इने-गिने ही ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जिन्हें वृद्धावस्था तक दाँतों से काम लेनें का सौभाग्य प्राप्त हो, यहाँ तक कि लोगों नें दाँत गिरने को जीवन की एक बहुत साधारण घटना मान ली है। चालीस-पचास वर्ष की अवस्था होते-होते दाँत गिर जानें को लोग कोई रोग ही नहीं मानते। किंतु यह पता लगाया गया है कि १०० में ९० या इससे भी अधिक लोगों के दाँत गिरनें का कारण उनका पान का बहुत अधिक व्यवहार ही है। बात यह होती है कि पान के रेशे, सुपारी के बारीक टुकड़े और चूना आदि दाँतों के बीच में फँस जाते हैं। समय पाकर ये इतने अधिक हो जाते हैं कि दाँतों पर ज़ोर डालकर उनके बीच की संधि को बढ़ा देते हैं और इनको हटानें के लिये जीभ सदा दाँतों के बीच में लगी रहती है। कुछ समय पश्चात् मसूढ़ों में सूजन हो जाती है, और उनके भीतर पस (पीव) पैदा हो जाती है। दाँतों में असह्य पीड़ा होती है, और कुछ समय पश्चात् जब उनकी जड़ की नसें आदि भली भाँति नष्ट हो जाती हैं, तो वे गिर पड़ते हैं। इस प्रकार पान का व्यसन दाँतों का अंत कर देता है, और लोग बिना दाँत के भोजन को भली भाँति न कुचल सकने के कारण उसे वैसा ही निगल जाते हैं। अंत में दाँतों का काम पेट को करना पड़ता है, और वह भी कुछ समय के पश्चात् निर्बल हो जाता है। भोजन भली भाँति नहीं पचता और मनुष्य निर्बल होते-होते अंत में अपने पान के व्यसन के कारण काल के गाल में जा पहुँचता है।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, पान खानें से मुँह में थूक अधिक मात्रा में पैदा होता है; किंतु जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों की आदत बहुत अधिक पान खाने की हो जाती है, उनका दिन-भर में बहुत-सा थूक व्यर्थ निकल जाता है, और भोजन के समय वह बहुत कम निकलता है। परिणाम यह होता है कि भोजन में थूक भली भाँति न मिल सकने के कारण स्टार्च (Starch)-नामक पदार्थ भली भाँति नहीं पच सकता। कुछ लोग पान के साथ ज़रदा खाया करते हैं। पान और ज़रदा मुँह के भीतर की नरम चमड़ी और उसके ज्ञान-तंतुओं को नष्ट कर देते हैं। और कभी भोजन में स्वाद का अनुभव नहीं होता। इसलिये अधिक पान खानेवालों को भोजन की इच्छा बहुत कम होती है, और उसमें कोई स्वाद भी नहीं आता। पान, चूना और कत्था आदि अधिक मात्रा में पाचन-शक्ति को भी कम कर देते हैं। अस्तु, अधिक पान खाने से भूख कम हो जाती है, भोजन के स्वाद का अनुभव नहीं होता, और न वह भली भाँति पचता ही है।

कभी-कभी अधिक पान खाने से जीभ और गाल में फोड़े भी हो जाया करते हैं। पान के चूने के कारण रक्त में 'कैल्शियम' (Calcium)-नामक पदार्थ अधिक मात्रा में हो जाता है, जिसके कारण अनेक भयानक रोग हो जाते हैं। वाइटैलिटी (Vitality) कम हो जाती है, और रोगों के आक्रमण शीघ्र होने लगते हैं। पान में मद्य आदि की भाँति कुछ नशा भी होता है, जिसके कारण शरीर में निर्बलता आती जाती है।

इस प्रकार यदि पान में कुछ गुण है, तो उनसे कई गुना अधिक दोष हैं। इसी कारण जो लोग इसके गुण और दोषों को जानते हैं, वे सदा इसका प्रचार कम करने का उद्योग करते हैं। जैसा पहले लिखा जा चुका है, भोजन के पश्चात् एक-दो बीड़े खा लेने से कोई हानि नहीं, वरन् लाभ ही होता है; पर यदि संयम न किया गया, तो वही आदत धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, और अंत में उसका दूर करना कठिन हो जाता है। लोग एक के पश्चात् दो और दो के पश्चात् चार बढ़ाते हुए अंत में पान की संख्या पंद्रह-बीस और पच्चीस तक पहुँचा देते हैं। कुछ लोग तो पचास और सौ बीड़े तक एक दिन में खा जाते हैं, और अंत में इस व्यसन की वृद्धि के कारण उन्हें स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है। वे दाँत और पाचन-शक्ति को खोकर सदा के लिये वृद्ध हो जाते हैं। इसलिये सबसे अच्छा तो यही है कि इस व्यसन में पड़े ही नहीं। यदि पान किसी कारण से आवश्यक ही हैं, तो एक या दो बीड़े से अधिक कभी न चबाए।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति पान के प्रचार को कम करने का प्रयत्न करे, ताकि भारत के सिर के कलंक-स्वरूप बिना दाँत के लोगों की संख्या कम हो जाय। यदि पाठकों ने इस लेख पर ध्यान देकर इसका कुछ भी उपयोग किया, तो हम भविष्य में कुछ अन्य प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं पर वैज्ञानिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

रामकुमारसिंह

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान बिना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू-मैं-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का मान और निज स्वरूप तथा महिमा की पहिचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते ?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सकें। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ६)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,, ८)
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़े की जिल्द का मूल्य ॥।)

स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं।

पता—श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

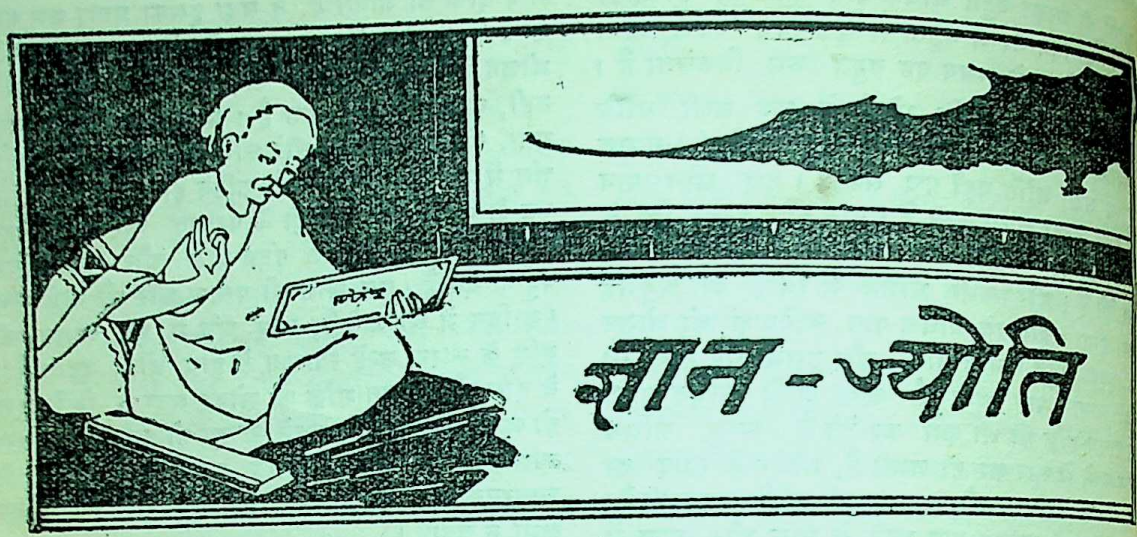

अद्वैतवाद की आलोचना पर मेरा कहना

(२)

ये समस्त नाम-रूपात्मक पदार्थ ही कल्पित अर्थात् अतात्त्विक हैं; क्योंकि वे नाशवान् और विकारी हैं। नाशवान् को कल्पित क्यों कहा। जब हम कहते हैं कि मनुष्य नाशवान् है, तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि मनुष्य कल्पित है? 'कल्पित' और 'नाशवान्' के भावों का विश्लेषण करने से ज्ञात हो जायगा कि इस प्रकार की 'युक्तियाँ' कहाँ तक ठीक हैं। इसी प्रकार आपका 'विकारी'-शब्द देखिए। दूध का विकृत रूप दही है, दही कल्पित नहीं। परंतु यदि कपास को दूर से देखकर कोई दही समझने लगे, तो अवश्य उसको कल्पना कहेंगे। यदि यह जगत् इस प्रकार की कल्पना है, तो उसका ब्रह्म को कारण मानना बच्चोंवाली बात होगी।

अब 'अविद्या'-संबंधी आक्षेप सुनिए—"उपाध्यायजी कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अविद्या-जन्य हैं। अतः वे विश्वास के योग्य नहीं। शंकर का तात्पर्य दूसरा ही है। शंकर ने पहले अध्यास का लक्षण किया है..... .....इसी अध्यास का नाम अविद्या है।" "विषय माने विस्तार (Scope) के हैं, अर्थात् इनका विषय अविद्या-जन्य नाम-रूपात्मक जगत् ही है।" "प्रत्यक्षादि प्रमाणों और सर्व-शास्त्रों का विषय (Scope) अविद्यावत् अर्थात् अविद्यावाला है।"

विषय का अर्थ यहाँ विस्तार (Scope) नहीं है। यदि पाठकवर्ग शंकर-भाष्य में इस वाक्य के पूर्वापर वाक्यों अथवा भामती, रत्नप्रभा या आनंदगिरि-कृत व्याख्याओं को पढ़ेंगे, तो हमारे कथन की सचाई स्पष्ट हो जायगी। परंतु इसको जाने दीजिए। केवल 'अविद्या' पर विचार कीजिए।

"बाज़ारू"-अर्थ में अविद्या किसको कहते हैं? यदि मैं रस्सी को साँप समझूँ, तो यह अविद्या है, मेज़ को गाय समझूँ, तो यह अविद्या है, सूरज को पहाड़ समझूँ, तो यह अविद्या है। सब लोग 'अविद्या' का यही अर्थ लेते हैं।

अब "बाज़ारू"-अर्थ बाज़ारी लोगों को छोड़ दीजिए। शांकर अर्थ पर विचार कीजिए। स्वयं अग्रवालजी कहते हैं कि "अध्यास का नाम अविद्या है।" अध्यास क्या है? शंकर स्वामी अध्यास के चार लक्षण देकर कहते हैं—

सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति।

(शां० भा० १।१।१)

अर्थात् सब लक्षणों में एक बात सामान्य है, वह यह कि अन्य वस्तु में अन्य के धर्म की प्रतीति ही अध्यास है। अर्थात् "अतस्मिँस्तद्बुद्धिः।" इसका वह दृष्टांत भी देते हैं—

शुक्तिकायां हि रजतवदवभासते।

अर्थात् जैसे सीपी ही चाँदी के समान प्रतीत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब पाठकगण हमारे "बाज़ारू"-अर्थ और शंकर के प्रति हमारे अन्याय का अंदाज़ा लगा लें। कितना घोर अन्याय है! कितनी विडंबना है। हमने अविद्या का "बाज़ारू"-अर्थ ले लिया। अर्थात् किसी चीज़ को वह न समझकर उससे अन्य समझ लेना। और अग्रवालजी ने इस 'अन्याय' और 'विडंबना' को दर्शाने के लिये और हमारी भूल को स्पष्ट करने के लिये संस्कृत के शब्द प्रयुक्त कर दिए, अर्थात् "इसी अध्यास का नाम अविद्या है।" हम 'काला पाख' दें, तो अनर्थ, अन्याय और बाज़ारू। और अग्रवालजी 'कृष्ण-पक्ष' कह दें, तो न्याय तथा दार्शनिक! हम पूछते हैं कि जब

(१) अध्यास अविद्या है।

(२) और एक वस्तु में दूसरी वस्तु का धर्म मानना अध्यास है।

(३) तो एक वस्तु में दूसरी वस्तु का धर्म मानना ही अविद्या हुई। जैसे रस्सी को साँप मानना या चींटी को घोड़ा मानना, या बर्फ़ को आग मानना।

(४) और शंकर मत में प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अविद्या-जन्य हैं।

(५) अतः यह कैसे विश्वास के योग्य हो सकते हैं? क्या बर्फ़ को आग मानकर या सीपी को चाँदी मान कर, जो व्यापार करेगा, उससे कुछ लाभ हो सकेगा! या उसके व्यापारों पर विश्वास हो सकेगा? हमको "शंकर का तात्पर्य दूसरा ही है" समझ में नहीं आया कि अग्रवाल महोदय से ही हमको यह सहायता प्राप्त हुई।

हमारा शांकर मत पर यह आक्षेप है कि यदि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अध्यास अर्थात् अविद्या का फल रूप हैं, तो वह

(१) विश्वास के योग्य कैसे?

(२) उपयोगी कैसे?

(३) प्रत्यक्ष आदि से उपलब्ध दृष्टांतों का "ब्रह्म-जिज्ञासा" में क्या मूल्य?

इसका उत्तर सुनिए—

(१) "उसका यह मतलब नहीं है कि वह ज़ेवर निरुपयोगी या बिलकुल खोटा है।"

(४७९ $\frac{२}{१४}$ गीता-रहस्य से)

(२) "जब तक यह अविद्या-जन्य बद्ध अवस्था है, तब तक हमें सब कार्यों में प्रवृत्त होना ही पड़ेगा। कोई क्षण-भर भी बिना कर्म नहीं रह सकता। लेकिन ज्ञानी के कर्म आध्यात्मिक दृष्टि से किए जाने के कारण बंधन के हेतु नहीं होते, अज्ञानी को वे ही कर्म आधि-भौतिक सुख के लिये होने से अधिकाधिक कर्म बंधन में बाँधते हैं।"

अर्थात् लोकमान्यजी अध्यास के फल रूप प्रत्यक्ष आदि को निरुपयोगी नहीं मानते। रेत को जल समझ कर बर्फ़ जमाने बैठो, प्यास बुझ ही जायगी। जुगनू को आग समझकर फूस जलाने बैठो, ठंढ से बच ही जाओगे। क्यों? इसलिये कि "अविद्या-जन्य बद्ध अवस्था है।" दही को कपास समझकर चर्ख़ा कातने बैठो, खद्दर बन ही जायगा; क्योंकि जैसे दही को कपास समझ लिया, उसी प्रकार दही की पुटों को कपड़ा समझ लेना। साँप को रस्सी समझकर उससे कपड़ा बाँध लो। जब काट खाय, तो समझ लो कि काटा नहीं है। बद्ध अवस्था ही तो ठहरी। कैसी विचित्र सफ़ाई है!! हमारे यह लिखने पर कि "प्रत्यक्ष, अनुमान आदि सभी प्रमाणों पर पानी फिर जाता है, और जो कुछ सूर्य, चंद्र, तारागण, पहाड़, नदी, मनुष्य आदि संसार में उपस्थित देखे जाते हैं, वह सब मिथ्या सिद्ध होते हैं।" अग्रवालजी कहते हैं—"वेदांत के मिथ्या-शब्द के अर्थ को न समझने के कारण ही यह विचित्र कल्पना की गई है।" परंतु यदि अग्रवालजी या तिलक महाराज या शंकर स्वामी के कथनों का विश्लेषण किया जाय, तो सिद्ध हो जाता है कि यह न तो हमारी 'कल्पना' ही है, न "विचित्र" है। यह अग्रवालजी की युक्तियों का वैचित्र्य अवश्य है, क्योंकि यदि प्रत्यक्ष अध्यास-जन्य, इसलिये अविद्या-जन्य है, तो वह अवश्य मिथ्या है। हमारा सूर्य को प्रत्यक्ष करना अन्य में अन्य के धर्म की प्रतीत करना है। अर्थात् जो हमको सूर्य प्रतीत होता है, वह सूर्य नहीं है। कुछ और है। फिर इस ज्ञान की उपयोगिता ही क्या? हम यहाँ एक बात पूछने का साहस करते हैं—यह अध्यास अख़्तियारी (Voluntary) है, या ग़ैर-अख़्तियारी (Involuntary)? अर्थात् मेरे सामने कुर्सी रक्खी है। मुझे कुर्सी का प्रत्यक्ष हो रहा है। अर्थात् शांकर भाषा में यों कहेंगे कि कुर्सी कुर्सी नहीं है! किंतु अन्य वस्तु है। मैंने उसमें कुर्सी के धर्मों का अध्यास किया है। यदि मैं कुर्सी को कुर्सी समझता, तो वह "अतस्मिँस्तद्बुद्धि" न होता। इसलिये अध्यास न होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये प्रत्यक्ष अध्यास या अविद्या-जन्य न होता। यहाँ मेरा प्रश्न यह है कि यह अन्य वस्तु में कुर्सी के धर्मों का अध्यास करना मेरे अख़्तियार में है, और जान-बूझकर किया है, या मुझको मजबूरन् अनजाने ऐसा करना पड़ा। पहली बात को तो आप स्वीकार कर नहीं सकते; क्योंकि यह अनुभव-विरुद्ध है, और आपकी भी सिद्धांत-हानि है। आपको ग़ैर-अख़्तियारी और अनजाने ही कहना पड़ेगा। फिर यह अनजाने और ग़ैर-अख़्तियारी अध्यास क्रम-बद्ध कैसा? हमको कुर्सी का अध्यास हुआ, उस पर बैठने का अध्यास हुआ, बैठकर लिखने का अध्यास हुआ, लिखकर लेख को पैकिट बनाने का अध्यास हुआ, पैकिट के 'माधुरी' के दफ़्तर में पहुँचने का अध्यास हुआ? और 'माधुरी' में छपने का अध्यास हुआ। क्या ग़लतियाँ भी क्रम-बद्ध हुआ करती हैं? आप लिखते हैं—"ज्ञानी के कर्म आध्यात्मिक दृष्टि से किए जाने के कारण" आदि। मैं पूछता हूँ 'ज्ञानी' कौन है? वही न, जिसको अध्यास नहीं होता? क्योंकि अध्यास को तो अविद्या या अज्ञान ही कहेंगे। जो ज्ञानी है, उसको अध्यास न होगा। अतः उसको प्रत्यक्ष आदि न होंगे। अतः वह काम कैसे करेगा? आप फिर लिखते हैं—"वेदांत कहता है कि इसी जन्म में ज्ञान प्राप्त होने के बाद हमारी इंद्रियाँ आत्म और अनात्म के विवेक को अच्छी तरह समझने लगती हैं" क्या यह उसी वेदांत की भाषा है, जो अध्यासवाद को मानता है? या हमारे समालोचक महाशय ने अध्यासवाद में अनध्यासवाद का अध्यास किया है। यदि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अध्यास-जन्य हैं, तो जन्म भी अध्यास-जन्य ही होगा, और इंद्रियाँ भी अध्यास-जन्य होंगी। फिर ज्ञान प्राप्त करने पर इंद्रियाँ आत्म और अनात्म का कैसे विवेक करेंगी। हमारे सिद्धांत से तो यह ठीक हो सकता है कि विकसित और शिक्षित होकर इंद्रियाँ आत्म और अनात्म ही का नहीं, किंतु अनात्म वस्तुओं में से एक दूसरे का विवेक कर सकेंगी। उनको न केवल यह ज्ञान होगा कि यह कुर्सी है, और यह मेज़ है; किंतु यह भी कि कुर्सी और मेज़ दोनों हैं तो, परंतु अनात्म हैं, जड़ हैं। परंतु आप तो इंद्रियों के विकास तथा शिक्षण से रुष्ट हैं। आप इंद्रियों को आत्मा का साधन नहीं मानते। आप हमारी तरह से यह नहीं कहते कि "मैं आँख से देखता हूँ" यह तो बाज़ारू वाक्य है। आपके वेदांत का सिद्धांत यह है कि "मैं आँख नहीं हूँ, परंतु मैंने अपने में आँख के धर्मों का अध्यास कर लिया है।" यह आँख क्या वस्तु है, जिसके धर्मों का मैंने अपने में अध्यास किया? आपके मत में अनात्म तो कोई वस्तु है ही नहीं, यदि अनात्म कोई वस्तु नहीं, फिर तो उसके धर्म भी कोई वस्तु नहीं, फिर अध्यास कैसे किया जायगा?

श्रीअग्रवालजी ने 'मार्मिक दुःख' प्रकट किया है कि हमने "विवेक-शब्द के दार्शनिक अर्थ न लेकर साधारण बोलचाल के अर्थ लिए हैं" और विवेक-शब्द के धातु और उपसर्ग भी दिए हैं। परंतु उससे यह तो नहीं निकलता कि हमारा बोलचाल का अर्थ धात्वर्थ अथवा प्रसंग से कहीं विरुद्ध है। हमारे ऊपर तो प्रसंगवित् न होने का लांछन है ही। परंतु यदि पाठकगण विचार करेंगे कि पशु आदि के डंडे से भागने और घास की ओर चलने का दृष्टांत शंकर स्वामी ने किस प्रसंग में दिया है, तो उनको हमारे आक्षेप की युक्ति-युक्तता अवश्य मालूम पड़ेगी। हम उसका कुछ अंश यहाँ फिर उद्धृत करते हैं—

(१) प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अविद्या-जन्य हैं क्यों?

(२) पशुओं के समान व्यापार होने से! पशुओं का कौन-सा व्यापार है, जिसकी तुलना हमारे 'प्रत्यक्ष' आदि अविद्या-जन्य व्यापार से दी जा सकती है?

(३) उनका डंडे से भागना और घास की ओर चलना। (देखो, शांकर भाष्य)।

डंडे को अपने शरीर का अहितकर और घास को उस शरीर का हितकर समझना "विवेक" है, या "अविवेक"। इसमें 'वि' पूर्वक विच् धातु लगता है, या नहीं। आपके मत में विच् धातुवाला विवेकी पुरुष क्या करेगा? यदि कोई डंडा लेकर आवे, तो वह कहेगा—मैं आत्मा हूँ। अनात्म कोई वस्तु है ही नहीं। शरीर अनात्म है, अतः शरीर भी कोई वस्तु नहीं, डंडा भी कोई वस्तु नहीं; अतः डंडे से मेरे शरीर को कोई हानि नहीं होने की; क्योंकि शरीर और डंडा सब भ्रम-मात्र ही तो हैं।

एक बात रह गई। उसे और देखिए। शंकर स्वामी कहते हैं—

'अविद्यावद्विषयाणि ..... शास्त्राणि च'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अग्रवालजी के मतानुसार विषय का अर्थ है विस्तार (Scope), तो इससे सिद्ध हुआ कि वेदांत-शास्त्र जो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' से आरंभ होता है या वेद जिसमें ब्रह्म का निरूपण है, इन सबका विषय अविद्यावद् हुआ। यहाँ या तो ब्रह्म को जगत् के समान अविद्या-जन्य मानिए, या वेदादि में ब्रह्म का निरूपण होने से इनकार कीजिए। पहली बात से अवश्य आपकी सिद्धांत-हानि है, और दूसरी बात से भी सिद्धांत-हानि ही है; क्योंकि आपने स्वीकार किया है—

"उपनिषद्-विद्या अध्यात्म-विषय का मथा हुआ घी है।" और "आस्तिकों के लिये जहाँ उन्हें निकला हुआ घी मिला, वहाँ शंकर तर्क के पचड़े में नहीं पड़े।"

अग्रवालजी का हम पर तो यह आक्षेप है कि हम 'बाज़ारू'-अर्थों के बहुत शौक़ीन हैं। परंतु कहीं-कहीं तो अग्रवालजी ने हमारे शब्दों में विचित्र परिवर्तन करके हमारा खंडन किया है। देखिए—

"उपाध्यायजी कहते हैं कि आत्मा का देह और इंद्रियों को 'मैं' समझना अध्यास के किसी लक्षण के अंतर्गत नहीं है।"

यह मेरे शब्द नहीं हैं। न मेरे शब्दों से यह तात्पर्य निकलता है। मैंने शंकर स्वामी-कृत अध्यास के चारों लक्षण देकर यह लिखा था—

"अब देखना यह है कि इनमें से किस अर्थ में आत्मा शरीर या इंद्रियों में अपना अध्यास करता है? विचार-पूर्वक देखा जाय, तो एक में भी नहीं।"

मेरा कहना है कि प्रत्यक्ष में आत्मा इंद्रियों में अपना अध्यास नहीं करता। किंतु इंद्रियों को अपना साधन समझता है। जब मैं मेज़ को देखता हूँ, तो "मैं" अपने को 'आँख' नहीं समझता; किंतु 'आँख' को देखने का साधन (organ) समझता हूँ। इस सीधी-सादी बात को मानने में भी अग्रवालजी को अड़चन हो गई, और उन्होंने "इंद्रियों को 'मैं' समझना" ऐसा शब्द परिवर्तन करके एक काला रंग डाला। आलोचक को सभी अधिकार होने चाहिए न? कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्। कहते हैं कि प्रोकस्टीज़ के पास एक पलँग था, जिस पर वह अपने मेहमानों को सुलाया करता था। यदि कोई मेहमान पलँग से बड़ा होता, तो उसके पैर छाँट दिए जाते, और यदि छोटा होता, तो उसकी हड्डी-पसलियों को खींचकर पलँग के बराबर कर देता। यही हाल श्रीअग्रवालजी की मेहमानिवाज़ी का है। यदि आलोचना रूपी पलँग से लेख घटे या बढ़े, तो उसे छाँटकर आलोचना के योग्य बना दिया जाय। इस नीति का एक दृष्टांत पाल ड्यूसन के अवतरण के संबंध में देखिए, यदि समालोचक महोदय हमारे लेख से यह अवतरण दे देते—

"परंतु ड्यूसन ने यह जानने का कष्ट नहीं उठाया कि इस बात के मानने के लिये क्या प्रमाण है कि शंकर का किया अर्थ ठीक ही है। तो उनको नीचे लिखी आलोचना न करनी पड़ती—

"भला भारतवर्ष की जल-वायु में रहकर कोई यह भी कहेगा कि प्रमाणों के समझने के लिये जो मस्तिष्क का विकास चाहिए, वह वेदांत में नहीं मिलता।" परंतु यह अवतरण उनके आलोचनारूपी पलँग से बढ़ जाता। इसलिये उनके आतिथ्य सत्कार ने मजबूर किया कि मेहमान को पलँग के बराबर कर दें। प्रोकस्टीज़ पैर काटता था। आपने पेट काट दिया, बस, इतना ही भेद तो है।

हमने शंकर स्वामी के—

अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे बालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति

वाक्य में वाक्-छल की ओर संकेत किया था। इस पर अग्रवालजी को बुरा लगा है। शंकर स्वामी के लिये 'छल'-शब्द का प्रयोग! ग़ज़ब हो गया। परंतु हमने 'छल'-शब्द का बाज़ारू अर्थ न लेकर दार्शनिक अर्थ लिया था। अर्थात्—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् ॥

(न्यायदर्शन १।२।१२)

या

सामान्यशब्दे वाचिच्छलं वाक्छलम्।

(न्या० भा०)

इस पर हम अधिक क्या कहें, शंकर ने किस प्रसंग में यह वाक्य लिखा। यहाँ दृष्टांत क्या है, और दार्ष्टांत क्या है। वक्ता का अभिप्राय किस वस्तु से है, और दृष्टांत में किस ओर संकेत है, इन पर विचक्षण पुरुष यदि विचार करेंगे, तो उनको भी दार्शनिक अर्थ में वाक्-छल ही प्रतीत होगा।

हमने यहाँ केवल मौलिक बातों पर ही प्रकाश डाला है, यों तो 'आलोचना' में हमारी बहुत-सी साधारण और सर्वमान्य बातों का भी खंडन किया गया है। जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सृष्टि में मितव्यय (Economy of Nature) की परा काष्ठा है।"

क्यों ? इसलिये कि अग्रवालजी को "प्रकृति ने दो दाँत अधिक दिए हैं।" अग्रवालजी को अपनी ज़रूरतों का पूर्ण ज्ञान है, अतः हम उनको इस ज़रूरत से ज़्यादा दो दाँतों की प्राप्ति पर बधाई देते हैं। यदि प्रकृति देवी नाक आदि में भी ऐसी उदारता दिखाती, तो और भी अच्छा होता।

या

"उपाध्यायजी ने स्वप्न को फ़ोटो के समान बताया है, सो ठीक नहीं है।"

यहाँ आलोचना तो कालम-भर में है, परंतु फ़ोटो में और स्वप्न में क्या "समानता" है, इस पर विचार नहीं किया गया। भामती में भी तो लिखा है—

"स्वप्नज्ञानस्यापि स्मृतिविभ्रमरूपस्यैवं रूपत्वात्। तत्रापि हि स्मर्यमाणे पित्रादौ निद्रोपप्लववशादसंनिधाना-परामर्शे, तत्र तत्र पूर्वदृष्टस्यैव संनिहितदेशकालत्वस्य समारोपः।"

सब बातों का उत्तर देने के लिये तो ३६ कालमों की जगह ७२ कालम चाहिए। अतः विज्ञ पुरुषों से यही अनुरोध करके अपने लेख को समाप्त करते हैं कि हमारे समस्त लेख को फिर से पढ़ें, और उसका उन-उन ग्रंथों के प्रसंग से मिलान करें, जिनके हमने अवतरण दिए हैं।

एक बात और कह दें। वह यह कि हमने "अद्वैत-वाद" में केवल शांकरीय अद्वैतवाद की ही मीमांसा नहीं की। अद्वैतवाद कई प्रकार का है, एक अर्थ में हम स्वयं अद्वैतवादी हैं। इसका पूरा पता तो हमारी समस्त पुस्तक के आद्योपांत पढ़ने से ही लग सकता है। अग्रवालजी ने यह समझा कि "अद्वैतवाद" शांकर मत के खंडन में ही लिखा गया है। अतः जो बातें अन्य मतों के विषय में लिखी गईं, उनको भी शांकर विषयक समझकर उन्होंने हम पर प्रसंग से हटने का आक्षेप किया।

हमारी इच्छा थी कि अति सूक्ष्म लिखें। स्पष्टता के लिये लेख को बढ़ाना पड़ा। पाठकगण और विशेष कर संपादक-युगल से क्षमा-प्रार्थना है। अग्रवालजी के लिये धन्यवाद है कि उन्होंने हमारे प्रति 'आदर' के भाव प्रकट किए हैं।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

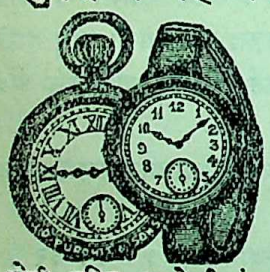

और दाद के अंदर चुरचुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की लेट निबवाली फाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥०) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ।॥=) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीज़ें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर

"मजलिसे हैरान केश तैल"

३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। लगा कर बालों को बढ़ाने और भ्रमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तैल एक ही है। दाम १ शीशी ।॥), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-ख़र्च ।॥=) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख० १।) १२ शीशी मँगाने से १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकार—श्रीराजाराम भार्गव] [स्वरकार—श्रीराजाराम भार्गव

राग हमीर—चौताल (विलंबित)

गीत

श्याम बछरा हिरान्यो मोर
कैसे जाऊँ ढूँढ़न रे।
श्याम घटा चमके दामिनि छाई रही अँधियारी
और मैं नारि अकेली कैसे जाऊँ ढूँढ़न रे।

स्थाई

×			०			२			०			३			४
न													न		
ध	—		—		नम	ध		रं	सं		—	न	ध	न	प
श्या	ऽ		ऽ		मऽ	ऽ		ब	छ		ऽ	ऽ	रा	ऽ	हि
ध									प	ध					
म	—														
रा	ऽ		प		ध	—		प	ध	म		प	म	ग	मर
			ऽ		न्यो	ऽ		मो	र	कै		ऽ	से	ऽ	ऽऽ
म									ग						
ग	—														
ढूँ	ऽ		म		ध	—		प	म	ग		मर	स	र	स
			ऽ		ढ़	ऽ			जा	ऽ		ऽऽ	ऊँ	ऽ	रे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतरा

	प							
प प —	सं	सं	—	सं	सं	सं	रं	सं	सं
श्या म ऽ	घ	टा	ऽ	च	म	के	दा	मि	नि
सं न न							न		
ध ध ध	सं	सं	रं	सं	सं	न	ध	न	प
छा ऽ ई	र	ही	ऽ	अँ	धि	या	ऽ	रो	ऽ
मं	न			सं	न		न		
गं मं रं	सं	रं	सं	ध	ध	सं	सं	रं	सं
औ ऽ र	मैं	ऽ	ना	रि	ऽ	अ	के	ऽ	लो
म		न					म		म
प — प	प	ध	रं	सं	न	ध	प	मप	गम
कै ऽ से	जा	ऊँ	ऽ	ढूँ	ढ	ऽ	न	ऽऽ	रेऽ

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

मीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।

इससे बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।

नक़्क़ालों से सावधान रहिए

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-ख़० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. स्वावलंबी और परावलंबी

संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं—(१) स्वावलंबी और (२) परावलंबी। स्वावलंबी स्वप्नदर्शी, क्रियाशील, आगे बढ़नेवाला होता है। परावलंबी लोगों से अत्यधिक मिलता-जुलता है। औरों की सलाह से लाभ उठाता है। उसमें आत्मनिर्भरता कम होती है। वह दूसरों से मित्र-भाव रखता है, और उन पर बहुत कुछ निर्भर भी करता है। उनके जीवन की सफलता या असफलता उन लोगों की स्थिति पर अवलंबित रहती है, जिनके बीच में वे सदा रहते हैं, और जिनके साथ काम करते हैं। इन्हीं कारणों से अधिकांश राजनीतिज्ञ, वक्ता और व्यापारी परावलंबी होते हैं। उदाहरण-स्वरूप, थियोडारे रुजोवोल्ट, मुसोलिनी, पं० मदनमोहन मालवीय, मिसेज़ एनी बीसेंट, और श्री० जमुनालाल बजाज आदि का नाम लिया जा सकता है।

इसके विपरीत, स्वावलंबी अपनी सफलता के लिये दूसरों पर नहीं निर्भर करता। वह एक बार जो निश्चय कर लेता है, उस पर सदा अड़ा रहता है। धुन का पक्का होने के कारण बिना किसी की सहायता के वह अपने निश्चित पथ पर अग्रसर होता रहता है। ऐसे लोग अच्छे खोजी (Researcher), अनुसंधानकारी, विश्लेषक (Analyst), अफ़सर, लेखक या संपादक होते हैं। ऐसे लोग बड़े बुरे व्यापारी, समाज-सेवी, रिपोर्टर या कानफ़ेंसर होते हैं। उदाहरण के लिये कर्नल लिंडबर्ग, कूलिज, हूवर, महात्मा गांधी, राणा प्रताप, शिवाजी आदि स्वनामधन्य व्यक्ति हैं।

यहाँ एक बात स्मरण रखने योग्य है कि संसार का कोई भी व्यक्ति शत-प्रतिशत स्वावलंबी या परावलंबी नहीं है; किंतु ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें एक की मात्रा अधिक और दूसरे की कम हो। डा० जान मार्गन, डा० सी० ए० नीमैन और डा० के० डी० कोलसटेड ने पचास ऐसे प्रश्नों का संग्रह किया है, जिसका उत्तर हाँ, और नहीं, दोनों होता है। नीचे ये प्रश्न दिए जाते हैं। आप प्रत्येक प्रश्न का जो उत्तर ठीक समझें, उस पर निशान देते जायँ। फिर नीचे दिए हुए उत्तर से अपने उत्तर को मिलावें। यदि आपके २८ या इससे अधिक उत्तर दिए हुए उत्तर से मिलें, तो समझिए कि आप परावलंबी हैं; यदि इसके विपरीत हों, तो आप अवश्य स्वावलंबी हैं। प्रश्नों का उत्तर ईमानदारी के साथ, जैसा आपका हृदय गवाही दे, दिया जाय। समय की कोई क़ैद नहीं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर ख़ूब समझ-बूझकर, सोच-विचारकर देना चाहिए इससे आप अपनी परीक्षा कर रहे हैं। हाँ, प्रश्नों का उत्तर देने के पहले मेरे उत्तरों को कृपया न देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ अपने-आप बहुत बड़े हो— हाँ, नहीं।
२ ज़िंदगी को सुख के रूप में देखो— हाँ, नहीं।
३ सदा शांत और संयमी रहो— हाँ, नहीं।
४ दूसरों में अत्यधिक विश्वास करो— हाँ, नहीं।
५ आज से पाँच वर्ष बाद क्या करोगे? उसे सोचो, या उसी का ख़याली-पुलाव पकाओ— हाँ, नहीं।
६ सामाजिक कार्यों के अवसर पर घर में रहो— हाँ, नहीं।
७ अपने चारों ओर बहुत-से मनुष्यों के साथ काम करो— हाँ, नहीं।
८ एक ही प्रकार का काम सब समय करते रहो— हाँ, नहीं।
९ केवल मनुष्यों का साथ करने के लिये सामाजिक उत्सवों में शामिल हो— हाँ, नहीं।
१० किसी निश्चय पर पहुँचने के पहले बहुत विचार करो— हाँ, नहीं।
११ अपनी राय क़ायम करने के बजाय दूसरों की राय ग्रहण करो— हाँ, नहीं।
१२ उत्तेजना-पूर्ण आमोद के बजाय शांत रहना अच्छा समझो— हाँ, नहीं।
१३ दूसरे मनुष्यों का अपनी ओर घूरना नापसंद करो— हाँ, नहीं।
१४ थकावट पैदा करनेवाले काम को छोड़ दो— हाँ, नहीं।
१५ धन ख़र्च करने के बजाय संचय करो— हाँ, नहीं।
१६ अपने विचारों या इच्छाओं का अक्सर विश्लेषण करो— हाँ, नहीं।
१७ दिवा-स्वप्न (Reverie) या कपोल-कल्पना में मग्न रहो— हाँ, नहीं।
१८ जिस काम को तुम अच्छी तरह कर सकते हो, उसे करते हुए दूसरों को दिखलाना चाहो— हाँ, नहीं।
१९ क्रोध की अवस्था में कार्य करते जाओ— हाँ, नहीं।
२० लोग जब प्रशंसा करें, अच्छा काम करो— हाँ, नहीं।
२१ उत्तेजित होओ— हाँ, नहीं।
२२ सामाजिक उत्सवों के नेता बनो— हाँ, नहीं।
२३ सर्वसाधारण में वक्तृता दो— हाँ, नहीं।
२४ जिन विषयों का ख़याली पुलाव पकाओ, उन्हें करो— हाँ, नहीं।
२५ सामाजिक पत्रों को दुबारा लिखो— हाँ, नहीं।
२६ धीरे और निश्चित रूप से काम करने के बजाय जल्दी-जल्दी काम कर डालो— हाँ, नहीं।
२७ अत्यधिक सोचो— हाँ, नहीं।
२८ अपने मनोभावों (ख़ुशी, शोक, क्रोध आदि) को प्रकट करने की योग्यता रक्खो— हाँ, नहीं।
२९ विस्तार (details) की ओर अक्सर ध्यान दो— हाँ, नहीं।
३० मनुष्यों से मिलने में बहुत सतर्क रहो— हाँ, नहीं।
३१ अपने विषय में अक्सर सोचो— हाँ, नहीं।
३२ पहेलियाँ (Puzzles) हाँ, नहीं।
३३ दूसरों की रायों पर बिना विचार किए ही काम करो— हाँ, नहीं।
३४ किसी काम को करने के बजाय उस विषय को पढ़ो— हाँ, नहीं।
३५ गल्प-लेखन की शैली के बदले गल्प की घटनाओं पर अधिक ध्यान दो— हाँ, नहीं।
३६ अपना रोज़नामचा रक्खो— हाँ, नहीं।
३७ साथियों के साथ जब बाहर जाओ, तब चुप रहो— हाँ, नहीं।
३८ बिना सोचे-विचारे काम करो— हाँ, नहीं।
३९ तुम्हारे मत के विरुद्ध जिनका मत हो, उनसे कोई संबंध न रक्खो— हाँ, नहीं।
४० अपने विषय में सोचने से घृणा करो— हाँ, नहीं।
४१ एक राय निश्चय कर लेने पर उसे पीछे न बदलो— हाँ, नहीं।
४२ एक प्रकार के काम के बदले सदा दूसरे दूसरे प्रकार के काम किया करो— हाँ, नहीं।
४३ कठिनाइयों का सामना करने के बदले उससे दूर ही रहो— हाँ, नहीं।
४४ अफ़वाहों पर विश्वास करो— हाँ, नहीं।
४५ दूसरों से अपनी गुप्त बातें कहो— हाँ, नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६ पूरा परिचय प्राप्त किए विना तुरंत की जान-पहचान के आदमी पर विश्वास न करो— हाँ, नहीं।

१७ अपने को अध्ययन करने के बजाय दूसरों का अध्ययन करो— हाँ, नहीं।

१८ अपनी छुट्टी के समय को शोर-ग़ुल के स्थान में बिताने के बजाय शांतिमय स्थान में बिताओ— हाँ, नहीं।

१९ कोई काम आरंभ करने के पहले उस पर अक्सर विचार कर लिया करो— हाँ, नहीं।

२० आसपास की बातचीत में भाग लो— हाँ, नहीं।

उत्तर—(१) नहीं (२) हाँ (३) नहीं (४) हाँ (५) नहीं (६) नहीं (७) हाँ (८) नहीं (९) हाँ (१०) नहीं (११) हाँ (१२) नहीं (१३) नहीं (१४) हाँ (१५) नहीं (१६) हाँ (१७) नहीं (१८) हाँ (१९) नहीं (२०) हाँ (२१) हाँ (२२) हाँ (२३) हाँ (२४) नहीं (२५) नहीं (२६) हाँ (२७) नहीं (२८) हाँ (२९) हाँ (३०) नहीं (३१) हाँ (३२) नहीं (३३) हाँ (३४) नहीं (३५) हाँ (३६) नहीं (३७) नहीं (३८) हाँ (३९) नहीं (४०) हाँ (४१) नहीं (४२) हाँ (४३) नहीं (४४) नहीं (४५) हाँ (४६) नहीं (४७) हाँ (४८) नहीं (४९) हाँ (५०) हाँ।

× × ×

२. चूहा पकड़ने का सहज तरीक़ा

चूहे मनुष्यों के बड़े भारी शत्रु हैं। वे बुद्धिमान् भी कम नहीं होते। उनसे रक्षा पाना आसान काम नहीं है। इस देश में उन्हें पकड़ने के लिये चूहेदानी काम में लाई जाती है; किंतु चूहेदानी सब जगह सुलभ नहीं होती। उनके पकड़ने का एक आसान तरीक़ा नीचे दिया जाता है—

किरासन-तेल का टिन प्रायः सब जगह मिलता है। उसके उपर के ढक्कन को काटकर अलग कर डालिए। अब इस टिन को ज़मीन में इस प्रकार गाड़िए कि उसका खुला हुआ मुँह ज़मीन के बराबर सतह में हो, बाक़ी हिस्सा ज़मीन के अंदर गड़ा हो। टिन को आधा पानी से भर डालिए। चूहे पानी की खोज में टिन के पास पहुँचेंगे, और पानी पीने की लालच में टिन में कूद पड़ेंगे। किंतु एक बार टिन के भीतर पहुँच जाने पर उससे बाहर निकलना उनके लिये आसान न होगा। इस प्रकार प्रतिदिन आप चार-पाँच चूहे पकड़ सकते हैं। जब चूहों की संख्या कम होने लगे, तो स्थान बदल डालिए। टिन गाड़ने के लिये स्थान निश्चित करने में एक बात का ध्यान रखना चाहिए। जहाँ पानी आसानी से न मिल सके, वहीं टिन गाड़ना चाहिए। अन्यथा चूहे टिन के पास आवेंगे तक नहीं।

श्रीरमेशप्रसाद

ग्राम-गीतों की पुस्तक छप रही है

१५ अगस्त १९२९ तक ग्राहक होनेवालों को ३) की पुस्तक २॥) में

स्त्रियों के रचे हुए गीतों में जो रस है, वह न तो वाल्मीकि की कविता में है, न कालिदास और भवभूति की, और न सूर और तुलसी की। कविता का सच्चा आनन्द लेना हो, तो गीतों को पढ़िए। प्रत्येक गीत के साथ उसका हिंदी-अनुवाद भी है।

पहला संस्करण हाथोंहाथ निकल जायगा। इसलिये ग्राहक-श्रेणी में जल्दी नाम लिखाइए। नहीं तो दूसरे संस्करण तक के लिये अटकना पड़ेगा।

पुस्तक सजिल्द होगी। छपाई बहुत सुन्दर होगी। मूल्य तीन रुपये।

पता—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

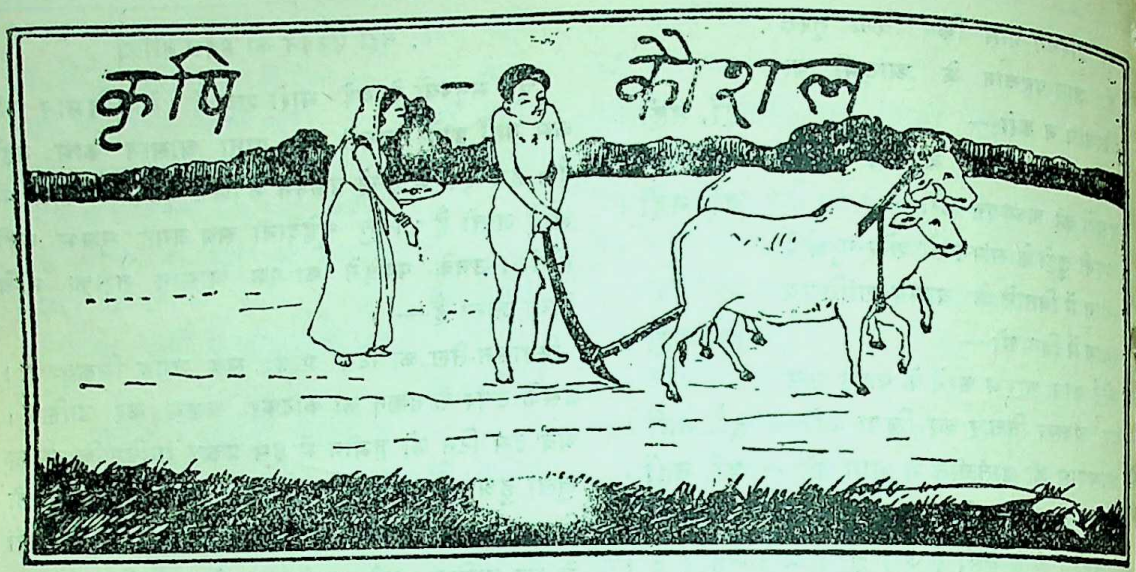

उद्यान

आजकल मकानों और बँगलों के आस-पास छोटे-छोटे बग़ीचे लगाए जाते हैं। अतएव इस लेख में उद्यान के स्थूल सिद्धांतों पर, संक्षेप में, विचार किया जायगा।

पौदे अपना भोजन ज़मीन से ग्रहण करते हैं। इसी कारण उनको 'पादप' नाम दिया गया है। पौदे ज़मीन से भोजन किस प्रकार ग्रहण करते हैं, और उनकी वृद्धि किस तरह होती है, इस पर, इस लेख में, कुछ नहीं लिखा जा सकता है। कारण कि यह एक स्वतंत्र विषय है।

ज़मीन—खेतों की मिट्टी चट्टानों के चूर-चूर होने से बनी होती है। वर्षा, शीत और ताप के कारण चट्टानें टूट कर धीरे-धीरे महीन मिट्टी के रूप में बदल जाती हैं।

साधारण तौर से खेतों की मिट्टी फ़सल बोने के उपयुक्त होती है। उसमें पौदे के भोजन के सभी तत्त्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं, तो भी सभी ज़मीनों में ये भोज्य-पदार्थ घुलनशील अवस्था में नहीं होते हैं। इनको पौदे की जड़ों द्वारा सोखे जाने योग्य बनाने के लिये जुताई करना और खेतों में खाद डालना ज़रूरी है।

बग़ीचे के लिये दुमट और बलुआ दुमट ज़मीन साधारण ठीक मानी जाती है। खाद देकर मटियार दुमट ज़मीन भी बग़ीचों के उपयुक्त बना ली जा सकती है। मटियार और बलुआ-ज़मीन बग़ीचे के लिये एकदम अनुपयुक्त है। हरी खाद देकर चिकनी मिट्टीवाली ज़मीन भी बग़ीचे के उपयुक्त बना ली जा सकती है। किंतु यह कार्य श्रमसाध्य है, और चार-पाँच साल तक लगातार हरी खाद देनी पड़ती है।

जुताई—बग़ीचे की छोटी-छोटी क्यारियों में हल या बखर से जुताई करना संभव नहीं होता है। इसलिये क्यारियों के ख़ाली हो जाने पर उनकी मिट्टी को हाथ बालिश्त की गहराई तक खोद कर ढीली कर देना चाहिए। गरमी के मौसम में खुदाई करना अच्छा है। मिट्टी ढीली करने से हवा उसमें प्रवेश कर सकेगी। धूप और हवा के प्रभाव से मिट्टी के ढेले आप-ही-आप चूर-चूर हो जायँगे। फ़सल बोने के पहले मिट्टी को दो-तीन बार उलट-पुलट देना चाहिए। इसके बाद खाद को फैलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए।

गमलों और बकस की मिट्टी को भी—अगर उनमें पौदे न लगाए गए हों तो—गरमी के मौसम में दो-तीन बार उलट-पुलट देना चाहिए। इससे मिट्टी में कड़ापन नहीं पैदा होगा।

खाद—बग़ीचों में, ज़मीन में एक के बाद एक, कई फ़सलें बोई जाती हैं। खेतों में लगातार कई फ़सलें बोई रहने से मिट्टी में मिले हुए भोज्य-पदार्थों का संचय घट जाता है, जिससे ज़मीन कमज़ोर हो जाती है। और, यदि वर्षों तक फ़सलें बोई जाती रहीं, तो एक-न-एक दिन ज़मीन की उर्वरा-शक्ति, अंतिम सीमा तक, घट जायगी। अतएव ज़मीन की उर्वरा-शक्ति को—उपजाऊपन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की—बनाए रखने के लिये खेतों में खाद देना अत्यंत आवश्यक है।

भारतवर्ष में गोबर की खाद ही ज़्यादातर काम में लाई जाती है। कहीं-कहीं खली, चूना, राख आदि को भी खेतों में डालते हैं। छोटे-छोटे बग़ीचों और गमले भरने के लिये पत्तों की खाद बहुत अच्छी होती है। किंतु स्मरण रखना चाहिए कि प्रतिवर्ष कम-से-कम दो-तीन महीने तक ज़मीन को आराम लेने देना चाहिए, अर्थात् दो-तीन महीने तक ज़मीन में कोई फ़सल नहीं बोई जानी चाहिए। इससे ज़मीन की उपजाऊ-शक्ति बनाए रखने में बहुत सहायता मिलती है।

आजकल सलफेट ऑफ़ अमोनिया, सुपर फ़ॉसफेट आदि खनिज और कृत्रिम खादों का भी उपयोग होने लगा है। ये खादें फ़सल पर बहुत जल्दी असर दिखलाती हैं। और, जिस फ़सल को दी जाती हैं, उसकी उपज भी अच्छी आती है। छोटे-छोटे बग़ीचों के लिये इनकी खादों को काम में लाना लाभप्रद भी है। किंतु इन्हें बहुत सोच-समझकर और सावधानी से ही काम में लाना चाहिए। क्योंकि ज़रूरत से ज़्यादा खाद देने से फ़सल नष्ट हो जाती है।

ज़मीन का उपजाऊपन बनाए रखने के लिये यह निहायत ज़रूरी है कि एक ही खेत में लगातार कई वर्षों तक एक ही फ़सल न बोई जाय। फ़सल का हेर-फेर किया जाना चाहिए। फलीवाली फ़सलें, कंदवाली फ़सलें, कोदो आदि को बारी-बारी से बोना चाहिए। इससे ज़मीन की ताक़त बनी रहती है, और फ़सल को नुक़सान पहुँचानेवाले कीड़ों की वृद्धि में भी रुकावट पहुँचती है।

गुलाब आदि कुछ पौदों की खाद का घोल देने से ज़्यादा लाभ पहुँचता है। किंतु स्मरण रखना चाहिए कि खाद का घोल सप्ताह में सिर्फ़ एक ही बार दिया जाय, और १०० सेर पानी में एक सेर से ज़्यादा खाद कभी नहीं मिलानी चाहिए। क्रोटन, ताड़ आदि पौदों के पत्तों को सप्ताह में एक बार पिचकारी से धो डालना चाहिए। इससे पौदे की तंदुरुस्ती अच्छी रहती है, और पौदे ख़ूबसूरत भी नज़र आने लगते हैं।

नरसरी—अधिकांश पौदे के बीज तो खेतों में ही बोए जाते हैं; किंतु कुछ पौदों के बाल-तरु को कड़ी धूप या प्रकाश से हानि पहुँचती है। ऐसे पौदों के बीज पहले नरसरी में बोए जाते हैं, और चार-छः इंच ऊँचे बढ़ जाने पर पौदे खेत में, स्थायी स्थान पर, लगाए जाते हैं।

नरसरी में बोए हुए पौदों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है। कीड़ों आदि से उनकी रक्षा कम ख़र्च में सहूलियत के साथ की जा सकती है।

नरसरी ज़मीन से क़रीब एक बालिश्त ऊँची होनी चाहिए। नरसरी की ज़मीन को उत्तम सड़ी हुई खाद दी जानी चाहिए। मिट्टी के कणों का महीन होना भी ज़रूरी है। नरसरी की ज़मीन क़रीब तीन फ़ीट चौड़ी और आवश्यकतानुसार लंबी तैयार की जानी चाहिए।

गमलों या देवदार के बकसों में भी बीज बोया जा सकता है। इनकी तली में मिट्टी भरने के पहले केवल ईंट आदि के टुकड़े रख दिए जाने चाहिए, और इनकी तली में तीन छेद भी कर दिए जाने चाहिए। इससे जड़ों को हवा भी मिलती रहेगी, और ज़रूरत से ज़्यादा, जितना भी पानी होगा, बहकर निकल जायगा।

बीजों को नरसरी में एक-साँ फैलाकर बोना चाहिए। बहुत ही छोटे बीज पाव इंच से ज़्यादा गहरे कदापि नहीं बोए जाने चाहिए। बोने के बाद मिट्टी को कुछ दबा देना चाहिए। मोटे बीज एक इंच गहरे बोए जाने चाहिए। नरसरी या क्यारियों को पानी सींचते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। उतना ही पानी दिया जाना चाहिए, जितना मिट्टी को गीली बनाए रखने के लिये ज़रूरी हो। बीज बोने के बाद नरसरी, गमले या बकस या क्यारियों को, जहाँ तक संभव हो, बहुत महीन छेदवाले हज़ारे से सींचना चाहिए।

क़रीब चार-छः इंच ऊँचे पौदे नरसरी, क्यारी आदि से हटाकर स्थायी स्थान पर बोए जाते हैं। किस पौधे को कब स्थानांतरित करना चाहिए, यह बात अनुभव—क्रियात्मक अनुभव—के बिना नहीं मालूम हो सकती है।

हाँ, सभी पौदे स्थानांतरित नहीं किए जा सकते हैं। अतएव नरसरी वग़ैरह में उन्हीं पौदों के बीज बोए जाने चाहिए, जो स्थानांतरित किए जा सकें। पपी, पोर्टुलाका आदि को स्थायी स्थान पर ही बोना चाहिए।

बीजों का चुनाव और उनकी रक्षा—'माधुरी' में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अतएव इस विषय को दुहराने की ज़रूरत नहीं समझी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौदों को स्थानांतरित करना—दिन में किसी वक़्त पौदे स्थानांतरित किए जा सकते हैं; किंतु हमारे—निज के—मत से शाम के वक़्त और बदली के दिन पौदों का स्थानांतरित किया जाना अच्छा है। यदि गरमी ज़्यादा हो और धूप तेज़ पड़ती हो, तो स्थानांतरित किए हुए पौदों पर घास की टट्टी से छाया कर दी जानी चाहिए। खजूर के पत्ते या ख़ूब पत्तेवाली डाली से ढक देने से भी काम चल सकता है।

स्थानांतरित करने के पहले नरसरी आदि की मिट्टी को ख़ूब पानी छिड़ककर तर कर देना चाहिए। खुरपी या चौड़े सिरे के किसी हथियार को ज़मीन में दो-तीन इंच गहरा घुसेड़कर हरएक पौदे को जड़-समेत उखाड़ लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके, जड़ों के साथ काफ़ी मिट्टी भी रहना चाहिए। ऐसा करने से पौदे की जड़ों को क्षति नहीं पहुँचती। जिस ज़मीन में पौदे को लगाना हो, उसमें काफ़ी गहरा और चौड़ा गड्ढा खोदकर पौदा लगा दिया जाना चाहिए; किंतु इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि ज़मीन में गाड़ते समय जड़ें टेढ़ी न होने पावें। जड़ों को अच्छी तरह से फैलाकर ही पौदे लगाए जाने चाहिए। पौदे को लगाने के बाद गड्ढे को भर कर, मिट्टी को ख़ूब दबा देना चाहिए, जिससे वह झुकने न पावे।

पौदे ज़्यादा पास-पास नहीं लगाए जाने चाहिए, और स्थानांतरित करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए, थोड़ी-सी ग़फ़लत से ही पौदे के नाज़ुक भाग टूट जाते हैं। क्यारियों या नालियों के किनारे लगाए जानेवाले ड्यूरेंटा-जैसे पौदे पास-पास लगाए गए, तो कोई हर्ज नहीं। किंतु फल और फूल के पौदे तो, उनके फैलाव के अनुसार, काफ़ी दूरी पर लगाए जाने चाहिए। यदि एक ही क्यारी में भिन्न-भिन्न प्रकार के पौदे लगाना हो, तो सबसे अधिक ऊँचे बढ़नेवाले पौदे क्यारी के बीच में लगाए जायँ, और तब क्रमशः कम ऊँचे बढ़नेवाले पौदे। सबसे छोटा पौदा क्यारी के किनारों पर लगाया जाय।

बाढ़ के समय पौदों की रक्षा—कई पौदों को बाढ़ के समय सहारे की ज़रूरत होती है। डेहलिया, होली हॉक, गार्डन पी आदि के सहारे के लिये लकड़ी देनी चाहिए। कई पौदों में पत्ते और फूल बहुत ज़्यादा लगते हैं, जिससे भार न सह सकने के कारण वह ज़मीन पर लेट जाता है। अतएव सहारा देना निहायत ज़रूरी है। छोटी लताओं को भी सहारा दिया जाना चाहिए।

क्यारियों की मिट्टी को ज़्यादा नहीं सूखने देना चाहिए, और खुरपी देकर मिट्टी ढीली करते रहना चाहिए। क्यारियों में खर-पतवार नहीं उगने देना चाहिए। सप्ताह में एक बार खर-पतवार उखाड़कर मिट्टी को खुरपी से ढीली करते रहना चाहिए। मिट्टी ढीली करने से पौदे की जड़ों को काफ़ी हवा मिला करती है, जिससे वह नीरोग रहता है, और बाढ़ भी अच्छी होती है।

पौदों की रक्षा-संबंधी अन्य बातें—फल झाड़ों के लिये ३ फ़ीट लंबे, तीन फ़ीट चौड़े और तीन ही फ़ीट गहरे गड्ढे खोदकर उनमें खाद और मिट्टी का मिश्रण भर दिया जाना चाहिए, और तब इनमें पौदा, गमले या नरसरी से हटाकर, लगाया जाना चाहिए। यदि ज़मीन की नीचे की सतह पथरीली हो, तो गड्ढा चार फ़ीट लंबा, चार फ़ीट चौड़ा और छः फ़ीट गहरा खोदा जाना चाहिए। प्रथम दो-तीन साल तक गरमी के मौसम में पौदों को सींचना पड़ता है। एक बार उनके जम जाने पर फिर सिंचाई की ज़रूरत नहीं रहती है।

क्रोटन, ताड़, फर्न आदि पौदे, शोभा के लिये, गमले, बकस या लकड़ी के टब में लगाए जाते हैं। इनकी मिट्टी हर साल शीत-काल में बदल दी जानी चाहिए। गमलों में जो मिट्टी भरी जाय, उसमें आधी खाद मिलाकर भरना ज़रूरी है। कारण, गमले की मिट्टी से ही पौदे का भरण-पोषण होता रहता है। फर्न के गमले भरने के लिये, जो मिट्टी तैयार की जाय, उसमें ईंटों का महीन चूना और पुराना चूना भी मिला दिया जाना चाहिए। इससे पौदे की तंदुरुस्ती अच्छी रहती है।

एक बार गमला बदलने पर फिर कई दिनों तक उसे बदलने की ज़रूरत नहीं रहती है। कारण, गमले की थोड़ी-थोड़ी मिट्टी निकालकर नई मिट्टी भरी जा सकती है। जड़ों के बहुत ज़्यादा फैल जाने या ज़रूरत से ज़्यादा पानी निकल जाने का इंतज़ाम न रहने पर ही गमला बदलना ज़रूरी हो जाता है।

पौदों की छँटाई—सूखी, रोगी और ज़्यादा बढ़ी हुई डालियों को काट डालने की क्रिया को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छँटाई करना कहते हैं। बीती हुई बहार में जिन शाखाओं पर फूल या फल लगे हों, उन्हें भी छँटाई के समय काट डालते हैं। छँटाई से पौदों पर फूल ज़्यादा और अच्छे आते हैं।

पौदों की कमज़ोर, रोगी और सूखी डालियों को काट डालना निहायत ज़रूरी है। छँटाई इस ढंग से की जानी चाहिए कि प्रत्येक शाखा को खूब हवा और प्रकाश मिलता रहे। ज़्यादा घनी डालियों को छाँट डालना ज़रूरी है।

छँटाई उसी मौसम में की जानी चाहिए, जब पौदों की बाढ़ ज़ोरों से न हो रही हो। जिस मौसम में बाढ़ ज़ोरों पर हो, उस मौसम में छँटाई करने से कटे हुए भाग से रस बहने लगता है, जिससे पौदा कमज़ोर हो जाता है। छँटाई के लिये तेज़ धारवाले चाकू या क़ैंची का उपयोग किया जाना चाहिए, और कटे स्थान पर, जहाँ तक संभव हो, डामर, गोबर या काली मिट्टी पोत देनी चाहिए। यदि घाव पर डामर वग़ैरह न पोता जायगा, तो उसमें सूक्ष्म कीटाणु या फंगस के सूक्ष्म बीज अपना घर कर लेंगे, जिससे पौदे को रोग लग जायगा, और तब संभव है, पौदे का वह अवयव-विशेष या सारा-का-सारा पौदा ही मर जाय।

क़लम, पेबंद, चश्मा बिठाना आदि—पौदों का उत्पादन दो प्रकार से होता है—प्रथम बीज से, द्वितीय शाखा, पत्ता आदि रोपकर या शंकरीकरण द्वारा। अधिकांश पौदे बीज से ही पैदा किए जाते हैं। गुलाब, कनेर, कमल, शकरकंद आदि पौदे शाखा लगाकर या चश्मा बिठाकर भी तैयार किए जा सकते हैं। आम आदि कुछ पौदों को पेबंद बाँधकर तैयार करते हैं।

पौदे के शत्रु—गोबी, अनार, जामफल, तरबूज़, सेम, कुम्हड़ा, गुलाब, सूरजमुखी आदि सभी पौदों को कीड़ों से बहुत नुक़सान पहुँचता है। सभी प्रकार के कीड़े अधिकतर इल्ली के रूप में ही पौदों को नुक़सान पहुँचाते हैं। ये इल्लियाँ पत्ते और फूल खा जाती और फलों के भीतर घुस कर उन्हें नष्ट कर डालती हैं। इल्लियों को पकड़ कर मार डालना ही फ़सल की रक्षा का उत्तम उपाय है। यदि तरकारियाँ छोटा-छोटी क्यारियों में बोई गई हों, तो तमाखू के मिश्रण या साबुन के मिश्रण से पत्ते धो डालने से लाभ हो सकता है। ये मिश्रण छोटे-छोटे पौदों के लिये भी काम में लाए जा सकते हैं। बड़े-बड़े झाड़ों के लिये इन मिश्रणों का उपयोग करना व्यय-साध्य और श्रम-पूर्ण है।

कुछ 'बीटिल' भी बहुत ज़्यादा नुक़सान पहुँचाते हैं। ये इधर-उधर उड़ते रहते हैं, अतएव इनका नाश करना कठिन है। 'बीटिल' खाद के ढेर में अंडे रखते हैं। अंडों से इल्लियाँ पैदा होती हैं। खाद के साथ ये इल्लियाँ क्यारियों में जा पहुँचती हैं। इल्लियों से परदार कीड़ा निकलता है, जो फ़सल को हानि पहुँचाता है। अतएव खाद को अच्छी तरह से देख-भालकर ही क्यारियों में मिलाना चाहिए। इल्लियों को चुनकर मार डालना या जला देना चाहिए।

टिड्डे और दीमक भी पौदों को नुक़सान पहुँचाते हैं। टिड्डों को पकड़कर जला देना चाहिए, और महुआ, अंडी आदि की खली की खाद देने से दीमक का नुक़सान कम हो जाता है। सिंचाई के पानी की नाली में हींग की पोटली देने से पानी में हींग की बास आने लगती है, इससे भी दीमक कम लगते हैं।

इनके अलावा और भी कई प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े पत्ते, तने आदि पर अपना घर कर लेते हैं। पिचकारी से पत्ते आदि को धो डालना चाहिए। माहू (plantbee) पर राख या चूना छिड़कने से वे मर जाते हैं। पत्ते धोने के लिये 'केरोसिन' मिश्रण का उपयोग किया जाना चाहिए। तमाखू-मिश्रण भी इसके लिये अच्छा है। *

कई प्रकार के फंगस-रोग भी पौदों को हानि पहुँचाते हैं। फंगस-रोग-पीड़ित पौदों को उखाड़कर जला डालना ही पौदों या फ़सल की रक्षा का एक-मात्र उपाय है। बड़े झाड़ों की रोग-ग्रसित डालियों को काटकर एकदम जला देना चाहिए।

अक्सर देखा जाता है कि माली लोग रोगी पौदों को खड़े ही रहने देते हैं, या उखाड़कर खेत में ही फेंक देते हैं। ऐसा होना बहुत ही बुरा है। फंगस-रोग के सूक्ष्म बीजाणु हवा के साथ उड़कर दूसरे पौदों पर जम जाते हैं, जिससे सारी-की-सारी फ़सल मारी जाती है। इसलिये मालिक को इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रोगी पौदे न तो खाद के ढेर पर और न खेतों में इधर-उधर फेंके जायँ। उनको तो उखाड़कर एकदम जला ही देना चाहिए।

शंकरराव जोशी

---

* इस विषय में 'फ़सल के शत्रु'-नामक पुस्तक में विस्तार-पूर्वक लिखा गया है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

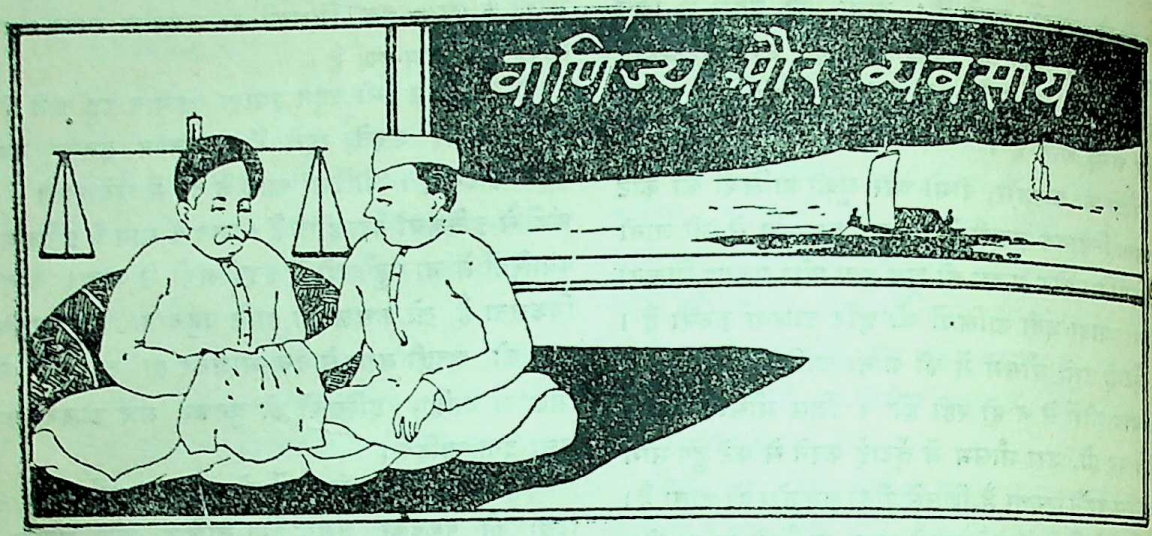

१. भारत में काग़ज़ का व्यवसाय

हमारे देश में काग़ज़ के व्यवसाय का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है ! किंतु यह खेद की बात है कि इस व्यवसाय के विकास के मार्ग में जो विशाल संभावनाएँ हैं, उन्हें पूर्णतः समझने और कार्य-रूप में परिणत करने की ओर हमारी प्रवृत्ति नहीं है। इस छोटे-से नोट में काग़ज़ के व्यवसाय के संबंध में कुछ तथ्य और अंक दिए जायँगे, ताकि इस देश के धनवान् और पूँजी-पतियों का ध्यान इस महत्त्व-पूर्ण व्यवसाय की ओर आकर्षित हो, और वे इस उद्योग को अपने हाथ में लेने की चेष्टा करें।

काग़ज़ का व्यवहार दिनोंदिन बढ़ रहा है। इँगलैंड में गत दो पीढ़ियों के अंदर काग़ज़ का ख़र्च प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति पीछे १० पौंड से लेकर ७५ पौंड तक बढ़ गया है। संयुक्त-राज्य अमेरिका में, सन् १९२३ ई० में, प्रतिव्यक्ति पीछे काग़ज़ का ख़र्च १५० पौंड था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस समय यह परिमाण २०० पौंड तक पहुँच चुका है। दूसरे शब्दों में हम इसे यों कह सकते हैं कि इँगलैंड में प्रतिव्यक्ति पीछे साल-भर में २०) और अमेरिका में ५०) मूल्य का काग़ज़ ख़र्च हुआ। भारत में भी काग़ज़ की खपत दिनोंदिन बढ़ रही है, और इसी हिसाब से विदेशों से काग़ज़ की आमदनी में भी वृद्धि हो रही है। सन् १९२१-२२ में ४०,२१६ टन काग़ज़ इस देश में बाहर से मँगाया गया, किंतु सन् १९२६ ई० में वह संख्या बढ़ कर १,००,४०० टन तक पहुँच गई थी। गत वर्ष में ३०८ लाख रुपए के मूल्य का काग़ज़ इस देश में अन्य देशों से मँगाया गया। भारत में प्रतिव्यक्ति पीछे काग़ज़ का ख़र्च तीन आने है।

भारत में काग़ज़ की जितनी खपत होती है, उस हिसाब से यहाँ बहुत कम काग़ज़ तैयार होता है। इस देश में काग़ज़ की लगभग १० मिलें हैं, जिनके द्वारा सालाना ५०,००० टन काग़ज़ तैयार हो सकता है; किंतु किसी भी साल तैयारी का परिमाण इस संख्या तक नहीं पहुँचता। इन मिलों में सिर्फ़ पाँच बड़ी-बड़ी मिलें हैं, और बाक़ी सब छोटी हैं। औसतन् प्रतिमास भारत में ४०० टन काग़ज़ तैयार होता है। उधर संयुक्त-राज्य अमेरिका में प्रतिमास ६,२५,००० टन तैयार होता है।

इन अंकों के देखने से पता चलता है कि भारत अपनी आवश्यकतानुसार काग़ज़ तैयार करने में अभी बहुत पीछे पड़ा हुआ है, और इस समय काग़ज़ की जो खपत हो रही है, वह यदि ज्यों-की-त्यों बनी रहे, तो उस हालत में भी अपनी ज़रूरत को पूरा करने के लिये हमें अपनी उत्पत्ति को चार सौगुना अधिक बढ़ाना पड़ेगा।

इस प्रसंग में इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि भारत कहाँ तक संसार के लिये काग़ज़ का बाज़ार बन सकता है।

पहले काग़ज़ वृक्ष की छाल, पत्ती और चमड़े से तैयार होता था। चीन में चिथड़े का व्यवहार किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा; किंतु इसमें यह कठिनाई मालूम पड़ी कि काफ़ी काग़ज़ तैयार करने के लिये बाज़ार में पर्याप्त परिमाण में चिथड़े मिलना दुर्लभ हो रहा है। लगभग ७० वर्ष हुए, योरप में लकड़ी के गूदे से काग़ज़ तैयार करने की क्रिया जारी की गई। इस आविष्कार से काग़ज़ बनाने वालों को उस समय बड़ी सुविधा हुई। वर्तमान काल में, संसार में, जितना काग़ज़ तैयार होता है, उसका कम-से-कम सैकड़े ७० से लेकर ८० भाग तक लकड़ी के गूदे से बनता है। यह अंदाज़ लगाया गया है कि काग़ज़ बनाने के लिये प्रतिवर्ष ४,००,००,००० टन से अधिक लकड़ी ख़र्च होती है। एक समय तो ऐसा भी सोचा जाने लगा था कि काग़ज़ बनाने योग्य गूदेवाली लकड़ी के वृक्षों का जंगल इतना अधिक है कि उसका कभी अंत हो ही नहीं सकता। किंतु काग़ज़ की बढ़ती हुई खपत देखकर लोगों का यह भ्रम बहुत शीघ्र दूर हो गया। जिन जंगलों को हम अक्षय समझ रहे थे, उनमें अब वृक्षों का अभाव हो रहा है, और अब हम यदि दूसरी चीज़ों से काग़ज़ बनाने का उपाय नहीं ढूँढ़ निकालेंगे, तो आगे की पीढ़ी में काग़ज़ की कमी होना अवश्यंभावी है।

प्रकृति ने हमारे देश को ऐसे अनेक समृद्धि-पूर्ण उपादान प्रदान किए हैं, जिनके द्वारा काग़ज़ मज़े में तैयार किया जा सकता है, और यही कारण है कि संसार के बड़े-बड़े काग़ज़ तैयार करनेवाले देश भारत की ओर दृष्टि लगाए हुए हैं, जिससे वे उसके समृद्धि-पूर्ण साधनों का शोषण करके इस व्यवसाय को हस्तगत करने में समर्थ हों। विदेशी वणिकों के इस आक्रमण के रोकने का एक-मात्र उपाय यही है कि भारतीय पूँजीपतियों का एक स्वदेशी ट्रस्ट निर्माण किया जाय, जो काग़ज़ के व्यवसाय के विशाल साधनों का यथार्थ रूप में उपयोग कर सके। कच्चे माल की प्रचुरता और काग़ज़ की बढ़ती हुई माँग से इस व्यवसाय के उज्ज्वल-भविष्य पर विचार करने से यह निश्चय जान पड़ता है कि हमारे देश में यदि सुसंगठित रूप में काग़ज़ बनाने के कारख़ाने स्थापित किए जायँ, तो उनकी उन्नति अवश्यंभावी है। शुरू में अन्य व्यवसायों की तरह काग़ज़ के व्यवसाय को भी विदेशी व्यवसायियों की गला-काट प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में सरकार पर दबाव डालकर टरिफ़-बोर्ड की इस कठिनाई से पार पाने के लिये सहायता लेने की ज़रूरत पड़ेगी। किंतु इसमें संदेह नहीं कि काग़ज़ के व्यवसाय में स्वदेशी पूँजी बिना किसी ख़तरे के लगाई जा सकती है, और इसका परिणाम लाभदायक होना निश्चित है।

× × ×

२. देशी ओषधियों का व्यवसाय

अन्न-वस्त्र के बाद मनुष्य को शरीर-रक्षा के लिये ओषधि का विशेष प्रयोजन पड़ता है। रोग-निवारण के लिये जो सब ओषधियाँ वृक्षों एवं लता-गुल्मों से तैयार होती हैं, उनका अभाव इस देश में बिलकुल ही नहीं है। किंतु वृक्षों एवं लता-गुल्मों का अभाव न होने पर भी उन्हें उत्पन्न करने तथा उनके द्वारा ओषधि प्रस्तुत करने के उद्योग का हमारे देश में सर्वथा अभाव है। विदेशी वणिक ही हमारे देश के तथा हमारे वाणिज्य-व्यवसाय के एक-मात्र कर्ता-धर्ता हैं। अतएव हमारी अपेक्षा हमारे देश के संबंध में विशेष परिचय वही रखते हैं। हमारे देश में ही ऐसे बहुत-से प्रकृति-प्रदत्त साधन वर्तमान हैं, जिनकी ख़बर हमें तो बिलकुल ही नहीं है, किंतु विदेशी वणिक न केवल उनकी ख़बर ही रखते हैं, प्रत्युत उनकी उपयोगिता समझकर उनसे लाभान्वित भी हो रहे हैं। देशी वृक्ष, लता-गुल्म आदि द्वारा ओषधि प्रस्तुत करने का व्यवसाय भी हमारे देश में विदेशी वणिकों द्वारा ही बहुत दिनों से हो रहा है। यद्यपि यह व्यवसाय बहुत दिनों से चल रहा है, तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि देशी ओषधियों के प्रस्तुत करने की मात्रा भी अधिक परिणाम में बढ़ रही है। देशी वृक्ष एवं लता-गुल्मों की उत्पत्ति किस प्रकार अधिक परिमाण में हो और उनके गुणागुण जानकर व्यवसायीगण उनका उपयोग करने में समर्थ हों, संप्रति इस प्रकार की चेष्टा देश में भी हो रही है। कलकत्ते का ओषधि-स्कूल इस प्रकार की परीक्षा में विशेष फल दिखा रहा है।

देशी वृक्ष एवं लता-गुल्म आदि द्वारा ओषधि प्रस्तुत करने के व्यवसाय के लिये यह आवश्यक है कि इस प्रकार के ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ, जिनमें इनका विशेष रूप से परिचय हो। इस प्रकार के ग्रंथों का देशी भाषा में बिलकुल ही अभाव-सा है। इसमें संदेह नहीं कि मासिक पत्रों अथवा कई बड़े-बड़े ग्रंथों में इस प्रकार के वृक्षों का उल्लेख होता है, किंतु उनका परिचय वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा में होने के कारण सर्वसाधारण का उपकार उनसे नहीं होता। हमारे गाँवों में रहनेवाले कुछ पुराने लोग तथा कतिपय कविराज, वैद्य आदि किन्हीं-किन्हीं देशों के वृक्षों का व्यवहार जानते हैं सही, किंतु उनका ज्ञान पर्याप्त नहीं है। वर्तमान काल में वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा उन वृक्षों का व्यवहार तथा उनके विविध गुण के संबंध में कुछ भी जानकारी नहीं होती।

देश एवं विदेशों में ऐसे बहुत-से व्यवसायी हैं, जो देशी वृक्षों का उत्पादन, व्यवहार-विधि एवं व्यवसाय-नीति यदि सम्यक् रूप में जान जायँ, तो पूर्ण उत्साह के साथ इस व्यवसाय में प्रवृत्त हो सकें। इस संबंध में, हाल में, एक अत्यंत उपयोगी एवं महत्त्व-पूर्ण पुस्तक श्रीयुक्त एन्० बी० दत्त एम्० आर० ए० एस्० (लंदन) ने लिखी है, जो अभी कलकत्ता की थैकर-स्पिंक-कंपनी से प्रकाशित हुई है, और जिसका मूल्य ५) है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

कौन-सी बीमारी आपको कष्ट देती है ?

संपूर्ण विवरण के साथ "ढाका आयुर्वेदिक फार्मेसी, ८, ८।१ आरमीनियन स्ट्रीट, ढाका" को लिख भेजिए। विना संकोच के सभी बातें लिख भेजिए ; क्योंकि आपका पत्र बिलकुल गोप्य रहेगा, और रोग-व्यवस्था मुफ़्त दी जायगी।

अश्वगंध मकरध्वज गोलियाँ
क्षीणता और धातु संबंधी कमज़ोरी में, मूल्य १) शीशी

दी ढाका आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटेड

संपूर्ण भारत में सर्वोपरि, सबसे सस्ती और सबसे अधिक विश्वास-योग्य फ़ैक्टरी है, जिसमें सभी ओषधियाँ पूर्णतः ऋषियों के आयुर्वेदिक विधान के अनुसार तैयार की जाती हैं।

स्वप्न-शांति-वटी
स्वप्न-दोष को नाश करने के लिये एक अचूक औषध है। मूल्य ॥=) शीशी

आज ही लिखिए

हम आपको स्वस्थ और प्रसन्न चाहते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० सर भवानीसिंहजी बहादुर

खेद की बात है कि झालावाड़ के विद्या-प्रेमी नरेश श्रीमान् सर भवानीसिंहजी बहादुर के० सी० एस्० आई० का १३ एप्रिल को योरप जाते समय जहाज़ में एकाएक शरीरांत हो गया। आपका जन्म सन् १९७३ में काका छत्रसालजी झाला जागीरदार के घर हुआ था, अजमेर के मेयो-कालेज में आपने शिक्षा पाई। संवत् १९५५ में आप राजसिंहासन पर विराजे और स्व० दीवान परमानंदजी चतुर्वेदी की सलाह से, सुचारु रूप से, शासन करना आरंभ किया। इसी समय संवत् १९५६-जैसे दुकाल का आपको सामना करना पड़ा। आपने कई लाख रुपए लगाकर तालाब बनवाए, जिनसे हज़ारों मनुष्यों की रक्षा हुई, और आबपाशी का ज़रिया भी निकल आया।

इसके बाद प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये आपने ग्राम्य स्कूल खुलवाए, और नगर में कई शिक्षालय क़ायम किए, जिनमें से कालविन गर्ल्स-स्कूल, कैबल-लाइब्रेरी, दरबार-हाइस्कूल और अमीरुद्दौला-कालेज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके सिवा वयस्क लोगों के लिये सरस्वती-परिषद्, संस्कृत-हिंदी-कविसमाज, उर्दू-मुशायरा, राजेंद्र-लिट्रेरी-इंस्टीट्यूट, शेक्सपियर-सोसाइटी आदि संस्थाएँ आपने क़ायम कर रक्खी थीं, जिनके अधिवेशनों में काव्यामृत प्रवाह ख़ूब बहता था।

श्रीमान् स्वयं अध्ययनशील नरेश थे। राजकाज से जो समय आपको मिलता था, उसे आप विद्याध्ययन में लगाते थे, यहाँ तक कि आप १२ बजे रात को राज्यगुरु पं० गिरिधर शर्माजी नवरत्न से संस्कृत का अध्ययन करते थे। पंडितजी ने "भवानीसिंह कारकरत्न", "सद्वृत्त पुष्पगुच्छ" और अनेक रचनाएँ महाराज के संबंध में रचकर महाराज को एक प्रकार से अमर कर दिया है। आपकी रचनाओं में महाराज के उच्च व्यक्तित्व की गहरी छाप है।

महाराज कई भाषाएँ जानते थे। आपकी परमानंद-लाइब्रेरी में ४० हज़ार चुनी हुई पुस्तकें मौजूद हैं, जिनकी लागत ४-५ लाख रुपया है। कहते हैं, बड़ौदे की लाइब्रेरी में इससे अधिक पुस्तकें हैं, पर इतना अच्छा चुनाव वहाँ भी नहीं है।

महाराज स्वयं विद्वान् थे, और विद्वानों की भी ख़ूब क़द्र करते थे। इसी का नतीजा है कि झालावाड़ में कवि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोविद, शायर और ग्रंथकारों का समुदाय काफ़ी हो गया है। आपकी दिनचर्या ही ऐसी थी कि अधिक समय आपका विद्याव्यसन ही में लगता था। उठते ही नित्य-कर्म से निवृत्त हो आप पंडितों की रचनाएँ सुनते थे। इसके बाद आप स्नान, भोजन और हवाख़ोरी करने के पश्चात् ३-४ घंटे राजकाज करते थे। संध्या-समय प्रधान-प्रधान कर्मचारियों के साथ हवाख़ोरी होती थी, जिसमें तरह-तरह की ज्ञान-चर्चा हुआ करती थी। मज़ाक़ भी आपका बामानी, बारीक और ज्ञान से भरा हुआ होता था। रात को आप नियमित रूप से स्वयं पढ़ते थे, और जब डाक्टर की मनाई होती थी, तब सेक्रेटरी आपको पढ़कर सुनाता था। इस प्रकार आपका जीवन विद्यामय बन गया था, और आपके पृथ्वी-विलास-पैलेस पर हर समय विद्या की चर्चा हुआ करती थी।

महाराज ने परमानंद-होस्टल खोला था, जिसमें ऐसे ग्रामीण लड़के भरती हुए थे, जो ए बी सी डी भी नहीं जानते थे। उनको महाराज ने एम्० एस्-सी० और बी० एस्-सी० करा दिया। जिस समय आप राजगद्दी पर बिराजे, यहाँ केवल दो ग्रेजुएट थे; पर आज आपकी कोशिश से दर्जनों ग्रेजुएट यहाँ हैं, जिनमें से ३०-३५ तो यहीं अच्छे-अच्छे पदों पर मुलाज़िम हैं, शेष बाहर सम्मान के साथ जीवन बिता रहे हैं।

स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता के भी महाराज बड़े पक्षपाती थे, इसी से यहाँ कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा भी अच्छी हो रही है। राजपूताने के नरेशों में रिवाज है कि रानियाँ परदे के बाहर नहीं जा पातीं; लेकिन आपने इस रिवाज की कुछ भी परवाह न करते हुए महाराजकुमार के साथ श्रीमती कुँवरानीजी साहिबा को भी योरप भेजा, और आक्सफ़र्ड में भर्ती कराया।

महाराज बड़े सहृदय, दयालु और उदार प्रकृति के नरेश थे। आपने अपने संयम और सदाचार से अपने चरित्र को इतना ऊँचा बना लिया था, जिसका शतांश भी आजकल नहीं देखा जाता। आजकल भारतीय नरेशों का द्रव्य जहाँ काम-सेवन, मदिरा-पान और तरह-तरह के आमोद-प्रमोद में ख़र्च होता है, वहाँ आपका द्रव्य शिक्षा-प्रचार, विद्या-विस्तार और विद्वानों की क़द्रदानी में ही अधिकतर व्यय होता था।

आप पूरे संयमी थे। आजकल हम देखते हैं कि हमारे देशी नरेशों को कई शादियाँ करने और कई खवासें तथा कई रखेलें रखने पर भी संतोष नहीं होता, और दिनोंदिन उनकी इंद्रिय-लोलुपता बढ़ती ही जाती है। पर महाराज सदा एकपत्नीव्रत बने रहे। संवत् १९७६ के कार्त्तिक-मास में श्रीमहारानीजी का देहांत हुआ, तब से आज मरण-पर्यंत पूरे दस साल तक आप पूर्ण संयम से रहे, और दूसरा विवाह आदि कुछ नहीं किया। यदि आप चाहते, तो दूसरा विवाह कर सकते थे, लेकिन सब प्रकार से समर्थ होते हुए भी केवल चरित्ररक्षा की दृष्टि से आपने इस मार्ग को नहीं ग्रहण किया। यह बहुत बड़ी तारीफ़ की बात है। इंद्रिय-संयम और आत्मनिग्रह का ऐसा उदाहरण शायद देखने में नहीं आएगा।

इसके सिवा आपमें किसी प्रकार का दुर्व्यसन नहीं था। आप मृदुभाषी थे। मिलनसारी का गुण आपमें अजीब था। जो कोई एक बार आपसे मिल लेता था और आपकी मोहक मधुर वाणी सुन लेता था, उसे बार-बार आपसे मिलने की और आपकी प्रेम-रस में पगी हुई मीठी वाणी सुनने की लालसा बनी रहती थी। सचमुच मधुर भाषण का आपमें एक ख़ास गुण था।

श्रीमान् ने अपने शासन-काल में प्रजा की भलाई के कई उपाय सोचे। राज्य से बेगार-प्रथा उठाई, प्रजा को म्यूनिसिपैलिटी के अधिकार दिए, भवानी-मंडी बसाई, कई जगह नए कुएँ बनवाए, और खेतों की सिंचाई के लिये सलोतिए ग्राम में पानी का एक भारी एंजिन लगवाया। राजकर्मचारियों के द्वारा प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसके लिये आप समय-समय पर कर्मचारियों को डाटते रहते थे, और शिकायत होने पर उन पर भारी तदारुक करते थे। आपने अपनी जानिब से प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया, और तीस वर्ष तक निर्विघ्नता-पूर्वक राज्य किया।

आधुनिक विज्ञानवाद और प्रकृतिवाद में महाराज बहादुर का खूब विश्वास था। हिंदुओं की सामाजिक कुरीतियाँ देख-देखकर आपको दुःख होता था। इसीलिये आपने अपने राज्य से वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह, जादू-टोना आदि कुरीतियाँ उठवाकर राज्य में विधवा-विवाह जारी करने का प्रयत्न किया था। आपके समय में ३-४ विधवा-विवाह हुए भी। आप अछूतोद्धार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण पक्षपाती थे, और छुआछूत को हिंदुओं का ढकोसला समझते थे। आपने प्रजा की शिक्षा में जातीय पक्षपात बिलकुल नहीं रक्खा। इसका उदाहरण मोची रामचंद्र बी० एस्०-सी० हैं, जिनको महाराज ने औरों की भाँति समान रूप से शिक्षा दिलवाकर दरीख़ाने में बैठक दी, और भोज आदि में शरीक होने की आज़ादी बख़्शी।

महाराज सार्वजनिक कामों में हमेशा योग देते थे। इसी का नतीजा है कि यहाँ सेठ विनोदीरामजी बालचंदजी की तरफ़ से "बालचंद-हास्पिटल" और लक्ष्मण-लाल कस्तूरचंद की तरफ़ से "लक्ष्मण-धर्मशाला" बनवाई गई है, और मुनीम लूनकरनजी की तरफ़ से "लूनकरन-गर्ल्स-स्कूल" बन रहा है। इसी प्रकार आप ही के उद्योग से सेठ विनोदीराम-बालचंदजी ने श्रीछत्रपुर-स्टेशन पर यात्रियों के आराम के लिये एक अच्छी धर्म-शाला बनवा दी है। भवानी-मंडी में जो कई इमारतें नज़र आती हैं, वे भी महाराज ही के उत्साह-प्रदान का फल हैं।

टोंक के वर्तमान नवाब साहब से आपका इतना मेल-जोल था कि दोनों में चचा-भतीजे का संबंध स्थापित हो गया था। इसके सिवा अच्छे-अच्छे आदमियों से महाराज की मित्रता थी, और एक-न-एक मेहमान यहाँ बना ही रहता था। सचमुच महाराज में अतिथि-सेवा का वह सर्वोत्तम गुण था, जो हिंदुओं के प्रधान कर्तव्यों में एक परम पावन कर्तव्य है। इन्हीं गुणों के कारण आपके उच्च व्यक्तित्व की दूर-दूर तक गहरी छाप थी।

आप चार बार योरप-यात्रा कर चुके थे। तीसरी यात्रा में, विलायत ही में, आपके पौत्र श्रीवीरेंद्रसिंहजी का जन्म हुआ। अब की पाँचवीं बार आप हृद्रोग का इलाज कराने को योरप जा रहे थे कि जहाज़ ही में आपका स्वर्गवास हो गया। अब की बार आपकी बीमारी में ताज़ीमी सरदार सेठ लालचंदजी सेठी वाणिज्य-भूषण ने कोई २-३ मास तक रात-दिन निःस्वार्थ भाव से आपकी ख़ूब सेवा की, और अपना तन-मन-धन सेवा में लगा दिया। महाराज जब तीसरी बार योरप गए थे, तब १०-१२ लाख रुपए सेठ विनोदीरामजी बालचंदजी का देना था। उस समय इस दूकान के स्वामियों ने रियासत के साथ बड़ा अच्छा सलूक किया, जिसके कारण राज्य की बुरी हालत, जो एक नाज़ुक अवस्था में आ गई थी, दूर हो गई। इन्हीं सेवाओं से अत्यंत प्रसन्न होकर महाराज ने रायबहादुर सेठ मानिकचंदजी सेठी और लालचंदजी सेठी को ताज़ीम का सम्मान और वाणिज्य-भूषण का ख़िताब प्रदान किया। बाद को सेठ नेमीचंदजी सेठी भी वाणिज्य-भूषण बनाए गए। आपके घर में सब भाइयों और स्त्रियों को महाराज ने पाँव में सोना बख़्शा है, और सब भाइयों की दरीख़ाने में ऊँची बैठक है। इस घराने की रियासत के साथ इतनी सेवाएँ हैं कि जिनके उपलक्ष में महाराज की हार्दिक इच्छा थी कि इनको प्रथम श्रेणी का जागीरदार बनाऊँ। अब आशा है कि वर्तमान महाराज—श्रीराजेंद्रसिंहजी बहादुर—अपने पूज्य पिताजी की इस इच्छा को पूर्ण करेंगे। आप भी बड़े सरल, दयावान् और होनहार नरेश हैं। राजगद्दी पर बिराजते ही आपने क़ैदी छुड़वाए, किसानों का सं० ८४ तक का बक़ाया माफ़ किया, विद्यार्थियों के लिये वज़ीफ़े मुक़र्रर किए, शहर में जल का नल लगवाने का हुक्म दिया, कूँडले के जागीरदार का क़सूर माफ़ किया, और स्वर्गवासी महाराज ने हाल ही में जो 'कर' बढ़ाया था, वह भी माफ़ कर दिया। सातवाँ हुक्म महाराज ने यह दिया है कि स्व० महाराज की मृत्यु के दिन अर्थात् १३ एप्रिल को प्रतिवर्ष राज्य में किसी तरह की हिंसा न होने पावे। इन हुक्मों से प्रजा पर अच्छा असर पड़ा है, और आशा होती है कि भाया शादीलालजी-जैसे सुयोग्य चीफ़ मिनिस्टर की सलाह से आप अच्छा राज्य-प्रबंध करेंगे, तथा अपने पिताजी की विमल कीर्ति को और भी उज्ज्वल बनावेंगे।

कृष्णगोपाल माथुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. साधु-संदेश

१. तुम्हारी सद्भावना द्वारा तुम्हारे शरीर का ही नहीं, बरन् सारे संसार का परिवर्तन हो सकता है।

२. धूर्त मनुष्यों की धूर्तताएँ दूसरों की अपेक्षा उनके ही मस्तिष्क को हानि पहुँचाती हैं।

३. सदैव सुखी जीवन व्यतीत करो। या तो स्वयं संसार के लिये उपयोगी बन जाओ या संसार को अपने लिये उपयोगी बना लो।

४. धनी बनने की लालसा पाप-पुण्य नहीं देखती।

५. अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों के अधीन होना पाप है।

६. दुःख में मृत्यु की कल्पना बड़ी मीठी लगती है।

७. कष्ट पड़ने पर मनुष्य अधिक विवेकी बन जाता है।

८. बल निर्बलों के रक्षण के लिये है, भक्षण के लिये नहीं!

९. बुद्धिमान् होने का इससे सरल उपाय और क्या हो सकता है कि जो तुम औरों को बतलाते हो, उसे स्वयं करो।

१०. अपने-आपको मालिक की मौजों के मातहत कर देना—कम करना, किंतु फल उस पर छोड़ देना—ही दुःखों की उत्तम औषधि है।

११. पाप पुण्य को जन्म देता है।

१२. पापी पापों से नहीं, पापों की पोल खुलने से डरता है।

१३. विलास धनी के लिये रोग और निर्धन के लिये मृत्यु है।

१४. बिल्ली को साथ सुलाकर उसके पंजों की शिकायत करना उचित नहीं।

१५. मूर्ख का हृदय मुँह में और बुद्धिमान् का मुँह हृदय में होता है।

१६. कल्पना की प्रौढ़ता का ही दूसरा नाम कविता है।

१७. गंभीर चिंता का दूसरा नाम तन्मयता है।

१८. मातृ-मंदिर के पुजारी के लिये मा की सूनी गोद ही स्वर्ग है।

१९. स्वतंत्रता अपने अधिकारों की एक प्रतिज्ञा है।

(संकलित)

रामशंकर मिश्र

× × ×

२. खलिहान

(१)

काटि-काटि खेतन सों बाँधि-बाँधि बोझन मैं,
लाय-लाय ढेर करैं गाँव के किनारे पर;
सूखे-सूखे स्वेत-स्वेत दीखत जदपि तऊ,
भरत हरेरी हिए सुखमा निहारे पर।
सुकवि 'सुरेश' करै अधिक बखान कहा,
आछे लगैं मूँगा-मोती महिमा विचारे पर;
कोटि-कोटि कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
वारत किसान खलिहान के अँबारे पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

हुलसि हलावै कोउ परती चलावै कोउ,
दावैं ढेरियावैं ठौर लीपे औ' बुहारे पर ;
भूतन के भय घोरि गोबर सों साँझ समै,
चारों ओर लोक देत लाँक औ' पयारे पर।

रावा छापा करत तयार भई रासिन पै,
भरि-भरि बारि घट धरत किनारे पर ;
राति भरि चोर, छूटे पसुन हटकिबे को,
जागत किसान खलिहान के अँधारे पर।

ठाकुरप्रसाद शर्मा 'सुरेश'

दिमाग़ को तरवतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है ?
किया हो, तो उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है ?
न सूझा हो तो ध्यान में रखिये,

कि,

दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को खूराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल कीजिये

आजकल के वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है।
हर एक मङ्गलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को
कामिनिया ऑईल से सँवारिये।

क़ीमत—प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकती है बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है
३ शीशी का २॥=) पो० खर्च ॥।) आना पृथक्।
आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रूमाल पर कुछ बूँदें छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ½ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्

दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी,
२८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना संवत् १९५० में हुई थी। तब से उसकी बराबर उन्नति होती रही है। इस समय भारत-वर्ष में जिन ग़ैर सरकारी संस्थाओं को लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, उनमें नागरी-प्रचारिणी सभा का भी स्थान है। हिंदी-साहित्य का प्रचार एवं उन्नति करने के लिये इस समय देश में जितनी संस्थाएँ हैं, उनमें सभा का स्थान प्रमुख है। उसका संगठन सुदृढ़ है और अब तक की सेवाएँ बहुमूल्य हैं। उक्त सभा का 'छत्तीसवाँ वार्षिक विवरण' इस समय हमारे सामने है। इसके पढ़ने से जो बातें हमें मालूम हुईं, उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है। नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासदों की संख्या ५७९ है, जिसमें ३७ स्थायी तथा १० आनरेरी हैं। सभापति रायसाहब बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए० तथा मंत्री बाबू माधवप्रसादजी हैं। सभा का आर्यभाषा-पुस्तकालय बराबर उन्नति कर रहा है। इसके हिंदी-विभाग में १०,५१३ पुस्तकें हैं तथा अँगरेज़ी-विभाग में १,५७५। सभा के पुस्तकालय में हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों की संख्या २६७ है। पुस्तकालय में १२९ पत्र-पत्रिकाएँ भी आती हैं। पुस्तकालय की आय १,८९२) के लगभग थी तथा व्यय २,३७०) के समीप। काशी के प्रसिद्ध रईस रायकृष्णदासजी ने 'कलाभवन' की संगृहीत सामग्री को सभाभवन में ही प्रदर्शन के लिये सम्मिलित कर दिया है। इससे सभाभवन की उपयोगिता भी बढ़ गई है और शोभा भी। सभा की ओर से हिंदी-पुस्तकों की खोज का भी काम होता है और इस मद में सरकार की ओर से २,०००) की सहायता मिलती है। संवत् १९८५ में सभा के अन्वेषकों ने ३८५ ग्रंथों की नोटिसें लीं। खोज के काम के निरीक्षक राय-बहादुर बाबू हीरालालजी हैं। इस वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका की पाँच संख्याएँ प्रकाशित हुईं। सभा के सभासदों को पत्रिका मुफ़्त में दी जाती है तथा ग्राहकों से १०) वार्षिक चंदा लिया जाता है। सभासदों के अलावा पत्रिका के ग्राहकों की संख्या केवल १२ है। पत्रिका के संपादक रायबहादुर पंडित गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा हैं। संसार में जो पुरातत्त्व-संबंधी महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं, उनकी एक वार्षिक सूची कर्न-इंस्टीट्यूट प्रकाशित करता है। इस सूची में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित लेखों की नामावली और विवरण का समावेश है। 'हिंदी-शब्दसागर' पूरा प्रकाशित हो गया है। इसके तैयार होने में २० वर्ष लगे हैं। इसमें ९३,११५ शब्द हैं। इसके बनने में १,०८,७२०) के लगभग व्यय हुआ है। इस कोश का एक परिशिष्ट भाग भी प्रकाशित किया जायगा, जिसमें महावरों तथा पौराणिक, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक नामों पर विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान दिया जायगा। इसके अतिरिक्त 'हिंदी-शब्दसागर' का एक संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित किया जायगा। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी इस कोश को शब्द-कल्पद्रुम, शब्दस्तोमहानिधि और सेंटपिटर्स वर्ग में प्रकाशित प्रचंड कोश की समकक्षता करनेवाला बतलाते हैं। कोश-समाप्ति के उपलक्ष्य में विगत वसंत-पंचमी को सभा-भवन में कोशोत्सव भी धूमधाम से मनाया गया था। इसके संबंध में एक नोट 'माधुरी' में निकल चुका है। उसी समय सभा के नवीन भवन का शिलान्यास भी बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। कोश के प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० के प्रति कृतज्ञता और आदर का भाव प्रकट करने के लिये कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह-नामक एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया है। इसमें भिन्न-भिन्न विद्वानों के लेखों का संग्रह है। यह संग्रह बाबू श्यामसुंदर दासजी को समर्पित है। इस अवसर पर बाबू श्यामसुंदर दासजी का जो भाषण हुआ, उसमें उन्होंने कोश को प्रस्तुत करने का सारा श्रेय पं० रामचंद्र-जी शुक्ल और बाबू रामचंद्रजी वर्मा को दिया। सभा का विचार है कि मराठी के ज्ञानकोश का एक संवर्धित और परिवर्धित संस्करण हिंदी में निकाला जाय। इस काम में ४०,०००) का व्यय कूता गया है। नागरी-प्रचारिणी ग्रंथमाला में इस वर्ष कबीर-ग्रंथावली प्रकाशित हुई। पृथ्वीराज-रासो और कीर्तिलता की छपाई का आंशिक काम हो गया तथा 'सूरसागर का संपादन 'रत्नाकर'जी कर रहे हैं। 'मनोरंजन-पुस्तकमाला' में 'रोम का इतिहास' प्रकाशित हो गया है तथा 'तर्कशास्त्र' एवं 'रसखान और घनानंद' की कविताएँ छप रही हैं। 'देवीप्रसाद-ऐतिहासिक पुस्तकमाला' में 'मौर्यकालीन भारत का इतिहास' छप गया है तथा 'मुँहणोत नैणसी की ख्यात' छप रही है। 'सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला' में 'हिंदू-राज्य-तंत्र' तथा 'अकबरी दरबार द्वितीय भाग' प्रकाशित हुए हैं तथा 'हिंदी-रस-गंगाधर' छप रहा है। 'बालावंश पुस्तकमाला' में 'शिखर वंशोत्पत्ति'-नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त पुरानी छपी कई पुस्तकों के नवीन संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। सभा की ओर से प्रायः १०,०००) का व्यय करके एक 'कचहरी-कोश' का भी निर्माण हो रहा है, जिससे अदालतों में नागरी-प्रचार में सरलता होगी। सभा की ओर से अच्छे ग्रंथों के लिखनेवालों को पदक और पुरस्कार भी दिए जाते हैं। इस वर्ष 'कायाकल्प'-ग्रंथ पर श्रीप्रेमचंदजी को तथा 'मौर्य-साम्राज्य का इतिहास'-ग्रंथ पर श्रीसत्यकेतुजी विद्यालंकार को पदक और पुरस्कार दिए गए। इस वर्ष में सभा की कुल आय ४८,२०६) के लगभग थी और व्यय ४६,४३४)। उपर्युक्त आय में श्रीरायकृष्णजी द्वारा प्रदत्त मकान का १५,०००) मूल्य नहीं सम्मिलित है; क्योंकि उस संबंध के दानपत्र की अभी रजिस्ट्री नहीं हुई है। 'कलाभवन' के 'सभाभवन' में सम्मिलित हो जाने से सभा को फिर से स्थान की आवश्यकता बढ़ गई है। नागरी-प्रचार की मदद में पंजाब के बाबात या सोलन राज्य में नागरी-अक्षरों का प्रचार प्रारंभ हो गया है। सभा को इस बात का खेद है कि स्वयं काशीनरेश ने अब तक नागराक्षरों को प्रोत्साहन नहीं दिया है। बिहार की कचेहरियों में उर्दू के प्रवेश पाने को सभा अनुचित समझती है। बनारस की दीवानी अदालतों में सभा के उद्योग से १००७ दावे और दरख्वास्तें नागरी-लिपि में दाखिल हुईं तथा इसी प्रकार कलेक्टरी कचेहरी में १६८६ दरख्वास्तें। ऊपर सभा के कार्य-कलाप का संक्षिप्त विवेचन दिया गया है। वह इस बात को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि सभा किस लगन और उत्साह से नागराक्षरों के प्रचार और हिंदी-साहित्य के अभ्युदय के लिये काम कर रही है। वास्तव में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा इस समय साहित्य-संरक्षण, साहित्य-निर्माण और साहित्य-प्रचार इन तीनों ही कामों को एक साथ धीरे-धीरे संगठित रूप से दृढ़ता-पूर्वक कर रही है। समालोच्य रिपोर्ट में प्रधान मंत्रीजी ने 'हिंदी की अवस्था' पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं। हिंदी-साहित्य-संसार में सभा का तथा उसके साथ काम करनेवाले रायसाहब बाबू श्यामसुंदर दास, रायबहादुर गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा, श्रीरत्नाकरजी आदि का जो प्रतिष्ठित स्थान है, उसको ध्यान में रखते हुए सभा की ओर से 'हिंदी की अवस्था' पर जो विचार प्रकट किए गए हों, उनको विशेष आदर से देखना उचित जान पड़ता है। इसी दृष्टि से हम संक्षेप में 'हिंदी की अवस्था'-संबंधी सभा के विचारों को भी यहाँ पर दिए देते हैं। सभा की राय है कि इधर जिस द्रुतगति से कई वर्षों से हिंदी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति हो रही है, उसी द्रुतगति से संवत् १९८५ में भी हिंदी का काम जारी रहा। यही नहीं इस वर्ष साहित्य-निर्माण का काम संवत् १९८४ की अपेक्षा अधिक भी हुआ और अच्छा भी। रुचि-परिमार्जन के विषय में सभा की राय है 'जिस प्रकार अच्छे ग्रंथों के प्रकाशन से लोगों की रुचि परिमार्जित होती है, उसी प्रकार रुचि के परिमार्जन के अनुसार अच्छे ग्रंथों के प्रकाशन को भी प्रोत्साहन मिलता है। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है। सभा की राय है कि हिंदी के समाचार-पत्रों की भाषा प्रायः शिथिल और बिलकुल बेमुहावरे होती है। उसे इन पत्रों में से बहुतों की गिरी हुई और भद्दी रुचि की भी शिकायत है। वह साप्ताहिक पत्रों को सलाह देती है कि वे अपनी रुचि का परिमार्जन करें और व्यक्तिगत द्वेष के कारण लोगों पर गंदे और भद्दे आक्षेप न किया करें। प्रयाग के लीडर-प्रेस से निकलनेवाले साप्ताहिक पत्र 'भारत' के विषय में प्रधान मंत्री महोदय लिखते हैं—"उसकी भाषा और लेख-शैली आदि में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता प्रतीत होती है। साथ ही लीडर पत्र की भाँति उसकी रुचि और गंभीरता का आदर्श बहुत ऊँचा और अनुकरणीय होना चाहिए।" मासिक पत्रों में सभा की राय में 'सरस्वती, माधुरी, चाँद, विशालभारत, महारथी" आदि अच्छे ढंग से चल रहे हैं। गंदे और कुरुचि-पूर्ण साहित्य के संबंध में मंत्रीजी ने विस्तार के साथ विचार किया है। आपकी राय है—"जो लोग साहित्य-क्षेत्र में काम करते हों, उन्हें केवल इसी लिये लोगों की रुचि बिगाड़ने और गंदे साहित्य का प्रचार करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे साहित्यसेवी हैं और वे पाठकों पर जिस प्रकार का चाहें बोझ लाद सकते हैं"। जो लोग समाज-सुधार के उद्देश्य से अश्लील साहित्य का प्रकाशन उचित बतलाते हैं, उनकी ओर लक्ष्य करके मंत्रीजी लिखते हैं—"यदि यही सिद्धांत मान लिया जायगा, तो केवल इसी बहाने लोग गंदे ग्रंथों से साहित्य-क्षेत्र भर देंगे और हिंदी-साहित्य बदनाम हो जायगा। अतः हम शिष्टता के नाते और साहित्य-क्षेत्र की रक्षा के विचार से आशा करते हैं कि लोग सुरुचिपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन की ओर ही विशेष ध्यान देंगे।" हिंदुस्तानी एकेडेमी के काम से सभा संतुष्ट नहीं दिखलाई पड़ती है; क्योंकि मंत्रीजी का कथन है कि उसका "इस वर्ष भी कोई विशेष और उल्लेखयोग्य कार्य देखने में नहीं आया।" उनका और भी कहना है कि "जिस संस्था के पास इतना प्रचुर धन और इतने अच्छे साधन हों, उससे सर्वसाधारण अपेक्षाकृत अधिक उत्तम कार्यों की आशा रखते हैं।" हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संबंध में मंत्री-जी का कथन है—"सम्मेलन का कार्य पहले की अपेक्षा अधिक उत्तमता तथा उत्साह से होता हुआ दिखलाई देता है। विशेषतः उसके परीक्षा-विभाग की अच्छी उन्नति हो रही है। सुनते हैं, वह एक हिंदी-विश्व-विद्यालय स्थापित करने का उद्योग कर रहा है। यह उद्योग परम प्रशंसनीय है; परंतु यह बहुत बड़े उत्तर-दायित्व का काम है और बहुत सावधानी से तथा सर्व-साधारण की पूर्ण सहानुभूति संपादित करके किया जाना चाहिए।" संवत् १९८५ में हिंदी में जो अच्छे और प्रशंसनीय ग्रंथ प्रकाशित हुए, उनकी एक सूची भी इस वार्षिक विवरण में दी हुई है। 'माधुरी' के पाठक उस सूची को पढ़ने के इच्छुक हो सकते हैं। इसलिये उसे हम यहाँ पर दिए देते हैं—

(१ हिंदू-राज्यतंत्र—काशीप्रसाद जायसवाल (२) समन्वय—भगवानदास एम्० ए० (३) बेंजमिन फ्रैंकलिन—लक्ष्मीसहाय माथुर (४) फेंफड़ों की परीक्षा—शिवशरण शर्मा (५) अफ्रीका-यात्रा—मंगलानंद पुरी (६) महाराणा प्रतापसिंह—गौरीशंकर-हीराचंद ओझा (७) मारवाड़ राज्य का इतिहास—जगदीशसिंह गहलोत (८) स्कंद-गुप्त—जयशंकरप्रसाद (९) विधाता का विधान—रामचंद्र वर्मा (१०) चिरकुमार सभा—रवींद्रनाथ ठाकुर (११) अद्वैतवाद—गंगाप्रसाद उपाध्याय (१२) बिहार के नवयुवक-हृदय—मंगल-प्रसाद सिंह (१३) जैनशिला-संग्रह—हीरालाल जैन एम्० ए० (१४) उदयपुर-राज्य का इतिहास—ओझा-जी (१५) रूपक-रत्नावली—रामचंद्र वर्मा (१६) मौर्य-साम्राज्य का इतिहास—सत्यकेतु विद्यालंकार (१७) दुःखी भारत—लाला लाजपतिराय (१८) आत्मकथा—महात्मा गांधी (१९) गुरुकुल—मैथिली-शरण (२०) हिंदू—मैथिलीशरण गुप्त (२१) हिंदी-माघ—गिरिधर शर्मा (२२) औषधि-विज्ञान—महेंदुलाल (२३) रुबिया—अवध उपाध्याय (२४) हिंदू-जीवन-रहस्य—भाई परमानंद (२५) मध्यकालीन संस्कृति—ओझाजी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी की अवस्था के संबंध में उपर्युक्त विवरण में जो बातें लिखी हैं, हमने यहाँ पर उनका उल्लेख-मात्र कर दिया है। हम भी उन बातों से सर्वांश में सहमत हैं, ऐसा नहीं है। जो पाठक इस विषय में अधिक जानना चाहते हों, उन्हें सभा का ३६वाँ वार्षिक विवरण स्वयं पढ़ना चाहिए। ६५ पृष्ठ के इस विवरण में उन्हें बहुत-सी नवीन सामग्री पढ़ने को मिलेगी। अंत में हम सभा के कार्यकर्ताओं को उनके ठोस कार्य के लिये हृदय से बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि सभा का कार्यक्षेत्र और भी व्यापक और सफल हो जायगा। जगदीश्वर हमारे इस विश्वास को चरितार्थ करे। तथास्तु।

× × ×

२. जहाँगीर-चंद्रिका

कविवर केशवदास ने संवत् १६६९ में 'जहाँगीर-चंद्रिका' नाम का एक काव्य-ग्रंथ बनाया था। यद्यपि इसकी कविता उतनी उत्कृष्ट नहीं है, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ अनमोल है। रामचंद्रिका में जिस प्रकार से सुमति और विमति के द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में सीताजी के स्वयंवर का वर्णन है, उसी प्रकार से 'जहाँगीर-चंद्रिका' में भी उद्योग और भाग्य की बातचीत में जहाँगीर की सभा का वर्णन दिया हुआ है। खेद की बात है कि यह ग्रंथ अब तक अप्रकाशित है। 'माधुरी' के इस अंक में प्रारंभ में जहाँगीर-चंद्रिका के दो छंद जो प्रश्नोत्तर-रूप में हैं, प्रकाशित किए जाते हैं। दूसरे छंद में महाराज वीरबल के बेटे 'धीरवर' का वर्णन है। बहुत लोगों को तो यह भी न मालूम होगा कि वीरबल के बेटे का नाम क्या था? जैसा हम ऊपर कह आए हैं कि कविता की दृष्टि से 'माधुरी' में प्रकाशित छंद भी उत्कृष्ट नहीं हैं, पर उनका ऐतिहासिक महत्त्व तो मानना ही पड़ेगा। खेद है, हमारे पास 'जहाँगीर-चंद्रिका' की जो प्रति है, वह नितांत खंडित और थोड़े ही पृष्ठों में समाप्त है। शायद पं० मायाशंकरजी याज्ञिक के पास संपूर्ण प्रति है। जो कुछ भी हो, 'माधुरी' में जहाँगीर-चंद्रिका के छंद उद्धृत करने में हमारा एकमात्र उद्देश्य यही है कि हिंदी के पाठकों, समालोचकों और प्रकाशकों का ध्यान उक्त ग्रंथ की ओर आकृष्ट हो और सबके सहयोग से वह प्रकाशित हो जाय। केशवदासजी के दो ग्रंथ और भी अभी तक नहीं छपे हैं। इनके नाम हैं 'रत्न-बावनी' और 'रामालंकृत मंजरी पिंगल'। क्या ही अच्छा हो कि इन दोनों ग्रंथों को भी मुद्रण-सौभाग्य प्राप्त हो।

× × ×

३. चेचक

इस वर्ष सारे भारत में चेचक का बड़ा प्रकोप रहा। भारत में ही क्यों, इँगलैंड में, (जहाँ वर्षों से चेचक का कोई केस हुआ ही न था) भी सैकड़ों मौतें हुई हैं।

संसार-भर में शायद ही और किसी रोग से इतनी मौतें हुई होंगी, जितनी चेचक से। भारत में यह रोग बहुत प्राचीन काल से चला आता है। भारतवासी इसके प्रतीकार में इतना असमर्थ थे कि उन्होंने 'शीतला'-देवी के नाम से इसकी पूजा प्रारंभ कर दी, जो आज तक चली आती है। शायद ही कोई गाँव ऐसा हो, जहाँ शीतला-देवी का मंदिर न हो। ऐसे मनुष्य भी बिरले ही मिलेंगे, जिनके शरीर में चेचक के दाग़ न हों। देश में लाखों की आँखें चेचक में चली गई हैं—कितने ही जन्म-भर के लिये अपने हाथ-पैरों से बेकार हो गए हैं—कितनी ही स्त्रियाँ अपनी सुंदरता सदा के लिये खो बैठी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि क्षय, कुष्ठ, हैज़ा, प्लेग और उपदंश के समान ही चेचक भी मनुष्य-जाति का एक बहुत बड़ा शत्रु है।

यों तो चेचक के इक्के-दुक्के केस बारहों महीने सुने जाते हैं, पर भारत में यह रोग Epidemic रूप से मार्च, एप्रिल तथा मई में फैलता है। वर्ष-भर में प्रति १,००० मृत्युओं में से दो का कारण यही रोग होता है, और जितने लोगों के ऊपर इसका आक्रमण होता है, उनमें सैकड़े पीछे २० मृत्युएँ होती हैं। लड़कियों तथा स्त्रियों की अपेक्षा लड़के तथा पुरुष अधिक मरते हैं, तथा दो से चार वर्ष तक की अवस्था के बच्चे सबसे अधिक मरते हैं।

चेचक छूत का रोग है। बहुधा घर में एक केस होते ही औरों के भी आक्रांत होने का पूरा भय रहता है।

चेचक की चिकित्सा न तो पूर्वीय चिकित्सा-पद्धति में है और न पश्चिमीय में। इस देश में तो प्रायः इसकी चिकित्सा करते ही नहीं, क्योंकि जनता—विशेषतः हिंदू-जनता—ने इसे दैवी कोप मान रक्खा है। पश्चिम में इसकी चिकित्सा की जाती है, और इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल-स्वरूप मृत्युएँ कम होती हैं। कम-से-कम चेचक के द्वारा अंधों और लँगड़े-लूलों की जो संख्या-वृद्धि होती है, उसमें निश्चित रूप से कमी की जा सकती है।

यद्यपि चेचक की कोई अव्यर्थ औषधि नहीं निकली है, फिर भी चेचक का आक्रमण रोकना निश्चित रूप से संभव है। टीके द्वारा चेचक रोकने का कुल श्रेय एक अँगरेज़ Jenner को प्राप्त है। Jenner के इस आविष्कार के पूर्व यह बात बहुतों को मालूम थी कि और कई रोगों की तरह चेचक भी जीवन में बहुधा एक ही बार होती है। यदि पहले आक्रमण में जान बच गई, तो या तो दूसरा आक्रमण होता ही नहीं, और यदि हुआ भी, तो बहुत हलका—जिसमें मृत्यु-भय—प्रायः नहीं के बराबर होता है। पहले आक्रमण से मनुष्य-शरीर में कोई ऐसी चीज़ पैदा हो जाती है, जिससे भविष्य में इस रोग से रक्षा हो जाती है। इसी बात को ध्यान में रखकर कुछ लोगों ने सोचा कि जीवन में एक बार चेचक होना तो अनिवार्य है ही—भय केवल इतना है कि यह रोग मालूम नहीं किस अवसर पर आक्रमण करे—संभव है कि वह आक्रमण ऐसे समय पर हो, जब हमारी शारीरिक शक्तियाँ इतनी क्षीण हों कि हम उसका सामना न कर सकें। इसलिये यदि स्वस्थ शरीर में चेचक का विष प्रवेश कराके अपने दाँव पर एक बार चेचक भोग लो जाय, तो बेहतर है। इसी विश्वास पर लोगों ने चेचक के रोगियों का मवाद अपने शरीर में प्रवेश कराना प्रारंभ किया। इससे फ़ायदा तो अवश्य हुआ, पर कभी-कभी रोग इतना भयंकर रूप धारण करने लगा कि टीका लगवाने के पूर्व वसीयतनामा लिखे जाने की नौबत आने लगी। जिस चेचक-रोगी के शरीर से मवाद लिया जाता था, उसके उपदंश-जैसा रोग यदि हुआ, तो उसके फैलने का भी डर रहता था। इसी कारण टीके के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी। फिर भी बहुत-से लोग मवाद प्रवेश पर विश्वास रखते थे; क्योंकि कुल मिलाकर मृत्यु-भय कम ही हो जाता था।

उन दिनों स्वेज़-नहर नहीं बनी थी। इँगलैंड से जब यात्री भारत के लिये चलते, तो उनमें से एक की बाँह में टीका लगा दिया जाता। एक सप्ताह के भीतर इस मनुष्य के मवाद से दूसरे की बाँह में टीका लगाया जाता, और इसी प्रकार यह टीका भारत पहुँचा। प्रवासी अँगरेज़ों के लग पाता। इस प्रकार के टीके को Arm to arm innoculation कहते थे।

जिस प्रकार मनुष्यों के चेचक (Small pox) होती है, उसी प्रकार यह रोग गाय के होता है। इसे कहते हैं Cowpox। ग्वालों को यह रोग गाय से हो जाता है। इसमें हाथों में चेचक-जैसे दाने पड़ जाते हैं, और हलका-सा बुख़ार आने के बाद वे ४-६ दिन में अच्छे हो जाते हैं।

Jenner ने अपने गाँव में यह जनश्रुति सुनी थी कि जिन ग्वालों को Cowpox एक बार हो जाता है, उन्हें फिर चेचक नहीं होती। उसने इस बात की जाँच की, तो इसमें बहुत कुछ सत्य का अंश पाया।

जेनर ने सोचा कि Cowpox चेचक ही का एक हलका रूप है, और यदि Cowpox होने के बाद चेचक से रक्षा संभव है, तो Cowpox का विष मनुष्य में प्रवेश कराने से भी यही फल होना चाहिए।

Jenner ने यह बात अपने गुरु से कही, पर उन्होंने इस पर कोई ध्यान न दिया, उलटे हँसी उड़ाई। पर जेनर के जी में यह बात पैठ गई।

सन् १७९८ ई० चिकित्सा-विज्ञान् के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य साल था। इसी साल Jenner ने Cowpox का टीका एक लड़के को लगाया। कुछ दिन बाद जब उस लड़के की बाँह में चेचक का टीका लगाया गया, तो उसे न तो ज्वर आया, और न चेचक के दाने निकले। अब क्या था! लोगों को विश्वास होने लगा। फिर तो धीरे-धीरे Jenner का टीका उसके जीवन-काल ही में सारे संसार में फैल गया। योरप के जिन देशों में चेचक द्वारा हर साल लाखों मृत्युएँ होती थीं, वहाँ अब चेचक केवल पुस्तकों में रह गई है। इस रोग का अध्ययन करने के लिये विद्यार्थियों को अब हज़ारों मील की यात्रा करनी पड़ती है। जर्मनी में हर साल कई लाख मृत्युएँ इस रोग से होती थीं। १७९८ ई० में टीके और उचित रोगिचर्या के फलस्वरूप केवल ८ मृत्युएँ हुई थीं, और उसके बाद एक-आध केस छोड़ यह रोग वहाँ से सदा के लिये बिदा हो गया।

इतना सब होने पर भी टीके के विरोधी संसार-भर में हैं—भारत में तो विरोध होना कोई आश्चर्य की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ही नहीं। हमने बहुतों को कहते सुना है कि टीका लगाने पर भी असंख्य मृत्युएँ अब तक होती ही हैं। बहुत-से हिंदू तो टीके के इसलिये विरोधी हैं कि इसके लगाने में गाय का उपयोग होता है।

विरोधियों की जानकारी के लिये हम उनसे नीचे लिखी बातों पर विचार करने की प्रार्थना करेंगे—

(१) भारत में जैसी चाहिए, वैसी सफलता अब तक नहीं मिली, उसका एक कारण तो यह है कि एक घर में यदि दो बच्चों के टीका लगाया जाता है, तो चार यों ही छोड़ दिए जाते हैं। इस कारण रोग की जड़ नहीं टूटती।

(२) चेचक का रोगी घर ही में रक्खा जाता है और सब लोग उसके पास आते-जाते हैं।

(३) बहुधा ऐसा होता है कि लगाने पर टीका लगता नहीं। यद्यपि टीका लगानेवालों को यह आज्ञा है कि वे न उठनेवालों के फिर टीका लगावें, पर इसमें जनता के सहयोग के बिना कुछ न हो सकेगा।

(४) परदे की प्रथा के कारण लोग लड़कियों, विशेषकर स्त्रियों के टीका लगवाने से हिचकते हैं।

(५) एक बार टीका लगाने पर उसका असर ७ वर्ष से अधिक नहीं रहता। इसके बाद फिर टीका लगवाना चाहिए। यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि संसार में कोई भी बात पूर्ण नहीं है। टीका लगाने के बाद भी चेचक निकल सकती है, पर ऐसा बहुत कम होता है, और यदि होता भी है, तो रोग का आक्रमण बहुत हलका होता है।

(६) चेचक से मिलते-जुलते दो और रोग हैं। एक का नाम है Chicken pox और दूसरे का Measles टीके से इनकी रक्षा नहीं हो सकती।

जन-संख्या की रिपोर्ट से चेचक के ५,००० रोगियों का हाल सुनिए—

	मृत्यु-संख्या
(अ) जिनके टीका नहीं लगा	३५ प्रतिशत
(आ) जिनके टीका लगा, पर उठा नहीं	२३ ,,
(इ) जिनके एक टीका लगा	८ ,,
(ई) जिनके दो टीके लगे	५ ,,
(उ) जिनके तीन टीके लगे	२ ,,
(ऊ) जिनके चार टीके लगे	½ ,,

(ए) सात वर्ष बाद जिनके फिर टीका लगा ० प्रतिशत

टीके के विरोधी धीरे-धीरे, किंतु निश्चित रूप से कम हो रहे हैं। वह दिन दूर नहीं है, जब इस रोग का संसार से सर्वथा लोप हो जायगा। पर ऐसा होने के लिये निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है—

(१) प्रत्येक बच्चे के और यथा-संभव प्रत्येक व्यक्ति के टीका लगना चाहिए, और यह टीका प्रति सातवें वर्ष दुहराना चाहिए। देश से एक बार रोग लुप्त हो जाने पर इतनी कड़ाई की आवश्यकता न रहेगी।

(२) जिन स्थानों में चेचक फैली हो, वहाँ के लोगों पर निगाह रखनी चाहिए। ऐसे लोगों के लिये Quarantive का प्रबंध होना चाहिए।

(३) स्कूलों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिन घरों में चेचक है, वहाँ के बच्चों को स्कूल जाने से रोकना चाहिए। यदि ऐसे कई बच्चे स्कूल जा चुके हैं, तो स्कूल बंद कर देना चाहिए।

(४) रोगी को सबसे अलग रखना चाहिए। उसकी उचित चिकित्सा होनी चाहिए। उचित तो यह है कि स्थान-स्थान पर इस रोग के लिये अलग अस्पताल बनाए जायँ। रोगी का मल-मूत्र तथा कम दामवाले कपड़े जला देने चाहिए। बाक़ी असबाब स्थानीय Health Officer की सलाह लेकर Disenfect करना चाहिए।

(५) जब तक एक-एक पपड़ी झड़ न जाय और रोगी अच्छी तरह स्नान न कर ले, उसे लोगों से बिलकुल अलग रहना चाहिए।

(६) इस रोग से मृत व्यक्ति को फार्मलिन (Formalin 4%) में भीगे हुए कपड़े से लपेटकर उसका दाह करना चाहिए। उसके बाद Health Officer की सलाह लेकर रोगी के कमरे की उचित सफ़ाई होनी चाहिए।

(७) रोगी की शुश्रूषा करनेवालों को अपना समस्त शरीर एक Apron से ढँका रखना चाहिए, और रोगी के कमरे में, तथा अपने शरीर की उचित सफ़ाई किए बिना कुछ खाना-पीना न चाहिए।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र और पं० सुमित्रानंदन पंत

इस समय हिंदी साहित्य-संसार में पाश्चात्य देशों में प्रचलित Mystic poetry के अनुरूप नए ढंग की कविता का आविर्भाव हो रहा है। प्रत्येक नवीन आंदोलन के सूत्रधार हमारे नवयुवक कवि एतादृशी कविता का धूम-धाम के साथ प्रचार कर रहे हैं। यद्यपि ऐसी कविता कई नामों से पुकारी जाती है, पर इस समय उसका अधिक प्रचलित नाम 'छायावाद' है। प्रत्येक देश का समाज स्वभावतः नई चीज़ को देखकर भड़कता है। उसे अपनाने के पूर्व वह उसके गुण-अवगुणों की ख़ूब बारीक छानबीन कर लेता है। इस छानबीन से यदि 'नई चीज़' समाज को हितकर प्रतीत होती है, तो वह उसका अंगीकार करता है अन्यथा उसका विरोध करता है। साहित्य-समाज की भी यही दशा है। इस समय 'छायावाद' को लेकर भी साहित्य-समाज में ख़ूब चहलपहल है। कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः युवक-साहित्यसेवी दल छायावाद का समर्थक है और ठीक इसके विपरीत प्रायः सभी वृद्ध-साहित्यसेवी या तो छायावाद से विरक्त हैं या उसके विरोधी। कवि तथा कविता-मर्मज्ञ श्रीयुत बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर एवं पं० रामचंद्र शुक्ल, समालोचक-प्रवर पं० पद्मसिंह शर्मा-जैसे विद्वान् प्रचलित छायावाद के बहुत अंशों में विरोधी हैं। जहाँ तक हमारा ख़याल है 'सुकवि-किंकर' के नाम से शायद पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने भी छायावाद के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किए हैं। ऐसी दशा में जब हम पूज्यपाद रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र ('मिश्रबंधु' के एक स्तंभ) बी० ए० को छायावाद की प्रशंसा में कुछ लिखते देखते हैं, तब हठात् हमारा चित्त उस ओर आकर्षित होता है। पं० शुकदेवविहारीजी ने छायावाद के पक्ष में अपनी जो सम्मति दी है, वह उनकी निजी सम्मति है, उसे 'मिश्रबंधुओं' की सम्मति नहीं कह सकते हैं। क्योंकि उन्होंने अभी तक पं० गणेशविहारी मिश्र एवं रायबहादुर पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० की सम्मति नहीं प्राप्त की है। फिर भी छायावाद के संबंध में उनकी क्या राय है, यह उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

"वर्तमान समय में हमारे बहुत-से समालोचक छायावाद को कुछ अनुचित मानते हैं और पंतजी में कुछ छायावाद समझ पड़ता है। कवियों के जीवन-काल में ईर्ष्या तथा विचार-संकुचन के कारण भारतीय बहुतेरे आलोचक उनकी प्रशंसा नहीं करते। हम लोगों का सदा से यह मत चला आया है कि किसी विषय पर रचना करने के कारण हम किसी सत्कवि को बुरा समझेंगे। हम तो रचयिता के विचारों से रचना को देखते हैं और उसका ग्रंथ पढ़ने में उसी की प्रकृति के अनुसार अपना चित्त बनाकर राय देते हैं। यदि वह प्रकृति अनुचित है, तो बात ही और है, किंतु यदि उसका समर्थन हो सकता है, तो मतभेद के कारण अपने मत पर चलकर हम किसी की रचना की उचित प्रशंसा करने से कभी न मुँह मोड़ेंगे। इसी से हमारे बहुतेरे समालोचक नहीं समझ पाते कि हमारा मत क्या है। उन्हें समझना चाहिए कि हम मतवादी न होकर सहृदय समालोचक-मात्र हैं और इसी दृष्टि से आलोचनाएँ लिखते हैं। हमारे अपने मत हमारे रचे हुए समालोचना से इतर ग्रंथों से प्रकट होंगे। इन्हीं कारणों से हम छायावाद और शृंगारवाद या किसी भी विषय को उत्कृष्ट रचना-पूर्ण पाकर उसकी सराहना श्लाघ्य कंठ से करेंगे। अतएव हम देव तथा विहारी की प्रशंसा करते हैं और उनको तुच्छ माननेवाले पं० सुमित्रानंदनपंत महाशय की भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। भूषण, लाल, हरिकेश, सूदन, चंद्रशेखर आदि सभी कवियों को हम श्लाघ्य मानते हैं और उन्हीं सत्कवियों में पंत महाशय को भी स्थान देते हैं। संभव है, हमारा यह मत अन्य वर्तमान महाशयों को उचित न जँचे, पर हमें वह ठीक समझ ही पड़ता है।"

यद्यपि उपर्युक्त अवतरण में छायावाद का समर्थन प्रकट रूप से नहीं है, तो भी छायावादी कवि सुमित्रानंदनजी की प्रशंसा तो उसमें है ही। पंतजी की कविता के विषय में रायबहादुर पं० शुकदेवविहारीजी की राय देखिए—

"यह रचना (पल्लव) वर्तमान काल में तो अद्वितीय है, परंतु प्राचीन सुकवियोंकी रचनाओं से भी तुलना करने में ओछी न पड़ेगी। भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...लता इस कवि में बहुत बढ़ी-चढ़ी है, मानों ...यं सरस्वतीदेवी हंस छोड़कर इस कविरत्न ...जिह्वा पर नृत्य करती हैं।

...में तुलसीदास तथा सूरदास के पीछे अब ...क केवल १० या १५ कवियों को ही महाकवि ...लता आया हूँ; किंतु अब मुक्त-कंठ से कहता ...कि पंतजी भी इन्हीं की टक्कर के कवि हैं। ...मत मिश्रबंधु का न समझा जाकर अभी तक ...केवल मेरा माना जावे; क्योंकि मैं अभी तक यह ...हीं कह सकता कि मेरे अन्य दोनों भाइयों का ...इस विषय में क्या होगा, और उनसे बहस ...के मेरा ही अंतिम मत क्या होगा? इस समय ...वही मत है, जो मैंने ऊपर प्रकट किया है।"

...ऊपर जो अवतरण दिए गए हैं, वे 'पल्लव'-नामक ...क की समालोचना से लिए गए हैं। यह समा-...चना 'सम्मेलन-पत्रिका' की प्रथम भाग की प्रथम ...संख्या में प्रकाशित है। 'पल्लव' की भूमिका में पं० ...सुमित्रानंदजी पंत ने हिंदी के पुराने कवियों तथा ...भाषा के संबंध में अपने भाव विस्तार के साथ लिखे ...हैं। 'पल्लव' के समालोचक महोदय ने इन पर भी अपने ...विचार प्रकट किए हैं। पंतजी ने व्रजभाषा के पुराने ...कवियों पर यह लांछन लगाया है कि उनके पास भावों ...की रिक्तता है। वे केवल सौ-सौ बार की दुहराई हुई ...उपमाओं का ही प्रयोग करना जानते हैं। इस पर ...शुकदेवविहारीजी कहते हैं—

...जो साधारण उपमाएँ पंतजी ने अनुचित ...कही हैं, उन्हें कोई सत्समालोचक उचित नहीं ...कहता है, और उन्हीं के कारण प्राचीन कवियों ...की महत्ता नहीं मानी जाती है। 'आपके चरणार-...विंद की रज से मैं कृतकृत्य हो गया।' इस वाक्य ...में कोई भी मनीषी समालोचक समाभेद-रूपक ...चमत्कार न देखेगा। ऐसी उपमाएँ इस ...प्रकार से दी जा चुकी हैं कि इनका सारा ...रस घिस गया है, और अब ये साधारण ...वर्ण-मात्र समझे जाते हैं। प्राचीन महाकवियों ...ने ऐसे साधारण चमत्कारों पर अवलंबित ...नहीं है। उन्होंने अन्य चमत्कार-पूर्ण वर्णन किए हैं, जिन पर आज तक उनकी महत्ता का समा-लोचक लोग दम भरते हैं।"

नायिका-भेद के संबंध में पंतजी के विचारों की आलो-चना करते हुए समालोचकजी कहते हैं—

"यह संसार केवल योगियों के लिये नहीं है, वरन् योगी और भोगी, दोनों सदा से इसी में रहते आए हैं तथा रहेंगे। कवि लोग दोनों प्रकार के मनुष्यों को आह्लाद प्रदान का प्रयत्न करते आए हैं तथा करेंगे। यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन हिंदी-साहित्य में नायिका-भेद का वर्णन सीमा के बाहर चला गया, फिर भी जिन लोगों ने इस वर्णन को उचित रीत्या करके अनुचित शृंगार का पोषण नहीं किया है, उनके लिये समालोचक लोग पतंजलि का अवतार नहीं बन सकते हैं। यदि पंद्रह-पच्चीस लेखक ही शृंगार-काव्य पर कथन करते, तो इस विषय की इतनी अनुचित वृद्धि न समझी जाती, जैसी कि आजकल समझी जा रही है, और न ऐसे कवियों के प्रतिकूल इतनी आवाज़ें उठतीं, जितनी कि आजकल उठ रही हैं। अतएव कम-से कम पंद्रह-पच्चीस अच्छे शृंगारी कवि तो क्षमा के पात्र हैं ही।"

निदान रायबहादुर पं० शुकदेवविहारीजी पं० सुमि-त्रानंदनजी पंत के उन विचारों से तो अधिकांश में सहमत नहीं हैं, जो व्रजभाषा तथा प्राचीन शृंगारी हिंदी-कवियों के संबंध में हैं, पर स्वयं पंतजी की कविता की वे मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। पंतजी को वह इस समय का अद्वितीय कवि मानते हैं। बहुत-से नवयुवक साहित्य-सेवी तो पंतजी के परम प्रशंसक थे ही, उस मंडली में अब पुराने समालोचक पं० शुकदेवविहारीजी भी आ गए। पंतजी की कविता के संबंध में हम अपना मत और कभी प्रकट करेंगे।

× × ×

५. दश के दशा

इस वर्ष एक प्रकार से ईद कुशल-पूर्वक बीत गई। इससे हिंदू-मुसलमानों के मनोमालिन्य में कमी होने की शुभ-सूचना मिलती है। कांग्रेस के द्वारा बहिष्कार का काम ज़ोरों से चल रहा है। हाल में बटलर-कमेटी की रिपोर्ट निकली थी। उसमें देशी राज्यों की पराधीनता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटिश भारत से देशी राज्यों का पार्थक्य बहुत दृढ़ किया गया है। हाल में 'स्टेट्स पीपुल्स कानफ्रेंस' में श्रीचिंतामणिजी ने बटलर-कमेटी की रिपोर्ट का बड़े ज़ोरदार शब्दों में खंडन किया है। उन्होंने देशी नरेशों को सलाह दी है कि सम्राट् जार्ज के समान अपने प्रभुत्व को वैध-शासन-प्रणाली के प्रति उत्तरदायी मानकर शासन करने में ही उनका कल्याण है, और इसी उपाय से ब्रिटिश भारत से उनका प्रेम-पूर्ण भाई-चारा बना रह सकता है। हाल ही में जेल-कमेटी-रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई है। इसके लेखक पं० जगत-नारायण, हाफ़िज़ हिदायतहुसेन तथा श्रीलुई स्टुअर्ट साहब हैं। इस रिपोर्ट के लिखने में बड़ा परिश्रम किया गया है। पंडितजी और हाफ़िज़ साहब की राय है कि क़ैदियों की नस्ल और ज़ात के ख़याल से पक्ष-पात नहीं होना चाहिए। योरपियन और हिंदुस्थानी, दोनों को एक समान ही सुविधाएँ और असुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए, पर स्टुअर्ट साहब योरपियनों के स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के भय से उनको विशेष सुविधाएँ देने के पक्ष में हैं। सुधार-संबंधी अन्य सिफ़ारिशें महत्त्व-पूर्ण हैं। क़ैदियों को चरख़ा चलाने देने की भी सिफ़ारिश की गई है। षड्यंत्र और बम से संबंध रखनेवाले मुक़द्दमों का प्रारंभ धूमधाम से होने जा रहा है। बंगाल के निर्वाचन में स्वराज्य-दलवालों को अच्छी सफलता मिल रही है। बड़ी व्यवस्थापिका परिषद् तथा अन्य प्रांतीय परिषदों की निर्वाचन-अवधि बढ़ा दी गई है। इससे कांग्रेस-दल में घोर असंतोष फैला है। बंबई की हड़ताल चल रही है। इँगलैंड में लेबर-पार्टी की जीत हो गई है; पर भारतीय नेता इससे विशेष आशान्वित नहीं हैं। उनका ख़याल है कि साइमन-कमीशन के मामले में तो लेबर सरकार भी वही करेगी, जो कंसरवेटिव सरकार करती। सम्राट् के फिर बीमार हो जाने की ख़बर से लोगों को दुःख हुआ है। सम्राट् के जन्मदिन के उपलक्ष्य में जो उपाधि-वर्षा हुई है, उसमें संयुक्त-प्रदेश के मंत्री मोहम्मद-यूसुफ़ को कोई उपाधि नहीं दी गई है। इस पर लोग नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर रहे हैं। अफ़ग़ानिस्थान से शाह अमानुल्ला अपने परिवार के साथ चले आए हैं। भारतवासी उनसे पूर्ण सहानुभूति रखते हैं, और उन्हें इस बात का दुःख है कि शाह साहब काबुल का सिंहासन प्राप्त करने में असमर्थ रहे। इधर देश भीषण निदाघ-आतप में झुलस गया था, अब वर्षा-ऋतु की अवाई की सूचना मिल रही है।

× × ×

६. प्लेग

प्लेग के कारण भारत संसार-भर में बदनाम है। भारत से विदेश में जानेवाले यात्रियों को इस रोग के कारण जो असुविधाएँ होती हैं, वे तो हैं ही, साथ ही व्यापार में न-जाने कितना घाटा होता है। भारत इतना विशाल देश है कि इस रोग को समूल नष्ट करने के लिये अपरिमित धन तथा परिश्रम दरकार है।

योरप में प्लेग का सबसे पुराना प्रामाणिक उल्लेख छठी शताब्दी में मिलता है। चौदहवीं शताब्दी में Black Death (काली मृत्यु) के नाम से यह सारे योरप में फैल गया। जहाँगीर के राजत्व-काल में (१६१२ ई०) भारत में पहली बार प्लेग फैला। १८१५ ई० में कच्छ में प्लेग फिर प्रारंभ हुआ और सिंध तथा गुजरात-भर में १८२१ ई० तक फैला रहा। १८२३ ई० में इसने कुमायूँ में पदार्पण किया। वहाँ उसे लोग 'महामारी' कहते थे। १८३६ ई० में राजपूताना के पाली-नामक स्थान में प्लेग फिर उभड़ा और जोधपुर तथा मारवाड़ में फैल गया। वहाँ लोग उसे 'पाली-प्लेग' कहते थे। इस रूप में यह १८३८ तक रहा।

१८७१ ई० में चीन के यूनान-प्रांत में प्लेग का बड़ा भयंकर प्रकोप हुआ। कैंटन-बंदर से भारत को बराबर सौदागरी जहाज़ आया करते थे। कभी-कभी इन जहाज़ों पर भी प्लेग फैल जाता था। १८९६ ई० में ऐसे ही जहाज़ पर से एक मरा हुआ चूहा किसी ने बंबई के बंदरगाह में फेंक दिया। बस, इसी चूहे ने आज भारत का सर्वनाश कर रक्खा है। इसी साल से प्रारंभ होकर आज तक इस देश से प्लेग कभी गया नहीं। १८९७ ई० से लेकर १९०९ ई० तक सारे भारत में प्लेग से ६१,३३,४७८ मौतें हुईं। इसके बाद यह बीमारी कम अवश्य हो गई, पर अब भी इसके कारण प्रतिवर्ष गाँव के-गाँव उजड़ जाते हैं।

प्लेग में एक कीटाणु होता है। उसका नाम है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Bacillus pestis। यह कीटाणु शरीर में दो तरह से प्रवेश करता है—

(१) रक्त द्वारा।

(२) श्वास द्वारा।

जिस प्रकार मनुष्य के रक्त पर मच्छड़, खटमल, जुए इत्यादि प्राणी अपना निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार चूहे के शरीर पर 'कुटकी'-नामक एक कीट का निर्वाह होता है। इसे अँगरेज़ी में Xynopsilla Cheopis कहते हैं। जब किसी चूहे की मृत्यु प्लेग से हो जाती है, तब उसका रक्त जम जाता है, और कुटकी उसे पी नहीं सकती। इसी से वह उस चूहे को छोड़ दूसरे चूहे पर अपना आसन जमाती है। पहले चूहे के रक्त में प्लेग के कीटाणु थे ही, अब जब दूसरे चूहे को कुटकी काटती है, तब उस चूहे के रक्त में भी वे कीटाणु पहुँच जाते हैं और अंत में उसकी भी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार घटते-घटते चूहे जब इतने कम हो जाते हैं कि कुटकियों का पेट नहीं भरता, तब वे मनुष्यों पर आक्रमण करती हैं।

यही कारण है कि प्लेग के प्रारंभ में पहले चूहे मरते हैं और तब मनुष्य। यदि ये कुटकियाँ न हों, तो गिलटी वाले प्लेग का फैलना बिलकुल असंभव है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिये एक डाक्टर ने बहुत-से पिंजड़ों में प्लेग-ग्रस्त चूहे रक्खे। पिंजड़ों में इस बात का ध्यान रक्खा गया कि कुटकी एक भी अंदर न जाने पावे और चूहे में कुटकियाँ भी डाल दी गईं। फिर इन सब पिंजड़ों में प्लेगग्रस्त चूहों के साथ स्वस्थ चूहे रक्खे गए। जिन पिंजड़ों में कुटकियाँ थीं, उनके स्वस्थ चूहे भी प्लेग द्वारा प्रकांत हो गए; पर जिनमें कुटकियाँ न थीं, उनके चूहे ठीक-तैसे बने रहे।

प्लेग की छूत के विषय में इस निष्कर्ष को साधारण न न समझिए। यह बात मालूम होने के पूर्व गिलटी वाले प्लेग के रोगी के निकट जाने में लोग डरते थे। अब यह निश्चय हो गया है कि यदि सफ़ाई का पूरा ध्यान रखकर रोगी के शरीर तथा कपड़ों से कुटकियाँ निकाल दी जायँ, अथवा यदि रोगी की परिचर्या करने वाला अपने शरीर को अच्छी तरह ढके रहे, तो रोगी के पास जाने में कोई भी भय नहीं है।

यह तो हुई गिलटीवाले प्लेग (Bubonic plague) की बात। फेफड़ेवाला (Pneumonic plague) प्लेग श्वास-प्रश्वास द्वारा फैलता है, और ऐसे रोगी के पास बैठना, या उसका थूक छूना बड़ा ख़तरनाक है।

प्लेग रोकने के तीन उपाय हैं—

(१) प्लेग-ग्रस्त स्थान का परित्याग तथा विशेष अस्पतालों में रोगियों की चिकित्सा।

(२) चूहों का नाश।

(३) एंटी-प्लेग-इनाक्यूलेशन।

देहात में लोग चूहे मरते ही गाँव छोड़कर भाग जाते हैं, पर शहरों में ऐसा करना बड़ा कठिन है। स्मरण रहे कि कभी-कभी प्लेग-ग्रस्त रोगी सब लोगों के साथ गाँव के बाहर भागकर प्लेग अपने साथ ही ले जाते हैं।

चूहों का नाश सहज नहीं है, क्योंकि ये बहुत जल्दी बढ़ते हैं। यदि एक जोड़ा चूहा भोजन तथा रक्षा पाता रहे, तो उससे साल-भर में ८० जोड़े चूहे तैयार हो जायँगे! फिर भी चूहों की वृद्धि रोकी जा सकती है। चूहों को जितनी सुविधा भोजन तथा पानी की मिलेगी, उतना ही वे बढ़ेंगे। यदि लोग अपने-अपने घर के खाद्य-पदार्थ तथा कूड़ा-करकट इस प्रकार ढक कर रक्खें कि वे चूहों की पहुँच के बाहर हों, तो चूहे बढ़ेंगे ही नहीं। कच्ची फ़र्श तथा दीवारों से चूहों की वृद्धि रोकना कठिन है।

साधारणतः लोग अन्न कच्ची मिट्टी की "डहरियों" अथवा जूट के बने हुए बोरों में रखते हैं, और इन दोनों में चूहों को यथेष्ट भोजन मिल जाता है। यदि ये डहरियाँ पक्की बनाई जायँ, तो चूहे बढ़ने ही न पावें। इन पक्की डहरियों की दीवार बाहर से चिकनी होनी चाहिए। यदि यह दीवार तीन फ़ीट ऊँची बनाई जाय, और इसके ऊपर बाहर की ओर निकला हुआ नव इंच चौड़ा चिकनी सतह का छज्जा लगा दिया जाय, तो कोई भी चूहा अंदर नहीं जा सकता।

शहरों में प्लेग बहुधा उन मुहल्लों से प्रारंभ होता है, जहाँ अनाज की मंडियाँ हैं। इन मंडियों में प्रायः ऐसा होता है कि दूकान से मिला हुआ ही गोदाम रहता है, और गोदाम में जितना अन्न नहीं होता, उतने चूहे होते हैं। म्युनिसिपैलिटियों को चाहिए कि गोदाम और दूकान एक साथ न रहने दें। गोदाम हमेशा महल्ले से बाहर होना चाहिए, और वहाँ अन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर बताई हुई पक्की 'डहरियों' में रक्खा जाना चाहिए। ऐसे गोदामों में पानी का कुछ ऐसा प्रबंध होना चाहिए कि एक बूँद भी चूहों को न मिल सके। यदि चूहे कहीं से आ भी गए, तो बिना पानी के ठहर न सकेंगे।

इन उपायों के सिवा चूहों के नाश के लिये चूहेदान, विष तथा बिल्ली के उपयोग सभी जानते हैं। इन पर कुछ लिखना व्यर्थ है। चूहों का नाश बड़ी कार्य-तत्परता तथा सफ़ाई से ही हो सकता है। सफ़ाई और प्लेग की मृत्यु-संख्या का संबंध हांगकांग के एक एपिडेमिक की मृत्युओं से प्रकट है—

जाति	मृत्यु
चीना	१३·४ %
हिंदुस्थानी	७७·० %
जापानी	६०·० %
योरपियन	१८·२ %

प्लेग की चिकित्सा के विषय में कुछ लिखना हमारा काम नहीं। हाँ, Haffkine's Innoculation बड़े फ़ायदे की चीज़ है। चूहों के मरते ही यदि सब लोग यह इंजेक्शन ले लें, तो मृत्यु-भय प्रायः नहीं के बराबर रह जाता है।

योरप में, जहाँ ढाई सौ वर्ष पूर्व प्लेग देश के-देश उजाड़ देता था, आज प्लेग का नाम केवल किताबों में रह गया है। यदि सरकार तथा जनता मिलकर उद्योग करे, तो वह सुदिन यहाँ भी आ सकता है।

जादूगरों का बाबा

इस सुंदर और सचित्र पुस्तक की गुप्त विधियों को सीखकर जो चाहेंगे हो जायेगा। दुर्भाग्य और शत्रु का नाश होगा, मुक़द्दमा में जीत, संतान, रोज़गार और धन की प्राप्ति होगी, अर्थात् जिसके साथ प्रेम है वह व्याकुल होकर स्वयं तुम्हारे पास चला आवेगा। कोई सिद्धि, कोई जप, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। केवल -) का टिकट भेजकर पुस्तक मुफ़्त मँगवाओ। अपना पता साफ़ लिखो।

मिलने का पता—गुप्त विद्याप्रचारक आश्रम, .

२६ P. B. 150, लाहौर

आधा दाम....आख़िरी मौक़ा

केवल एक महीने के लिये

"बृहत् वायोकेमिक विधान" नाम की ३) रुपए की किताब १॥) में पढ़कर डाक्टरी करके ख़ूब रुपया पैदा कीजिए और यश भी लूटिए। ऐसा मौक़ा फिर न मिलेगा। क़रीब ४०० पेज की सजिल्द और सर्वत्र प्रशंसित पुस्तक है। बारह ही चुनी हुई होमियोपैथिक दवाइयों से अगर सब रोग न आराम हों, तो मूल्य वापस—

हितैषी कार्यालय, मुक़ामाघाट E. I. Ry.

महाशक्तियंत्र

यह यंत्र एक कामाक्षा-निवासी तपस्वी द्वारा प्राप्त हुआ है और आज हज़ारों ही गृहस्थ इस यंत्र से अपनी मनोकामना सफल कर चुके हैं। इस यंत्र के द्वारा कठिन-से-कठिन मन इच्छित कार्य सफल होते हैं। जैसे—पृथ्वी में गड़े हुए धन को स्वप्न द्वारा पता लगाना, इम्तहान में पास होना, मुक़द्दमा, शत्रु पर विजय, किसी को वश में करना, व्यापार में मुनाफ़ा होना, संतान होना, नौकरी मिलना, तरक़्क़ी, तब्दीली और सब कामों के अच्छे बुरे परिणाम को रात्रि को स्वप्न द्वारा बतलाता है। मालूम करने की विधि यंत्र के साथ भेजी जाती है। इसके धारण करने से बालकों को किसी प्रकार की व्याधि, जैसे भूत-प्रेत, जादू-टोना, नज़र इत्यादि का भय नहीं रहता।

सिर्फ़ पूजन की दक्षिणा १।) रु० पेशगी भेजकर अथवा वी० पी० द्वारा मँगा लीजिए। वी० पी० ख़र्च अलग।

पता—पं० जगन्नाथप्रसाद तांत्रिक

अध्यक्ष, कश्यपाश्रम नयागंज, कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—श्रीप्रेमचंद

मैनेजिंग-एडीटर

पं० रामसेवक त्रिपाठी

भारतवर्ष में—
वार्षिक मूल्य ६॥)
छमाही मूल्य ३॥)
एक कापी का ॥=)

विदेश में—
वार्षिक मू० ९)
एक कापी का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७
खंड २

आषाढ़, ३०५ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)

संख्या ६
पूर्ण संख्या ८४

कोयल

ऊहे ते या कोयल है मोहीं तैं जुरी रहति
छूरी ऐसी ध्वनि सों करेजो मेरो छ्वै गई ;
कवि "मकरंद" अबकी जु आवै पावै सखी
पीसि डारु अबहीं पुकारि पल द्वै गई।
कुहू - कुहू करति ही डोलति फिरति
रंगु आपनो कुहू धौं कहूँ याही पर च्वै गई ;
काहू बिरहिन के धौं आँगन ह्वै उड़ी
तेहि आँगन की झारतैं झुरसि कारी ह्वै गई।

"मकरंद"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोध्या के गुप्तवंशी राजा

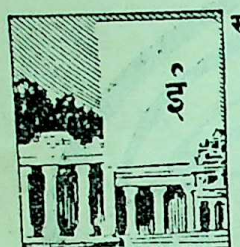

ईस्वी सन् की तीसरी और चौथी शताब्दी में अयोध्या उजड़ी पड़ी थी। इस राजधानी का पता लगाना कठिन था और जब विक्रमादित्य ने इसका जीर्णोद्धार करना चाहा, तो इसकी सीमा निश्चित करना दुस्तर हो गया। लोग इतना ही जानते थे कि यह नगर कहीं सरयू-तट पर बसा हुआ था। कथा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य (अथवा विक्रमाजित=विक्रम + अजित) निर्मलीकुंड के पास डेरा डाले पड़े हुए थे। वहाँ एक काला मनुष्य, जो देखने में राजा प्रतीत होता था, घोड़े पर सवार आया और ज्यों ही उसने कुंड में स्नान किया, उसका शरीर उज्वल होकर तेज से चमकने लगा। विक्रमादित्य को यह चरित्र देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उस मनुष्य से बोले—"आप कौन हैं?" उसने उत्तर दिया—"मैं तीर्थों का राजा प्रयाग हूँ। संगम में पापियों के निरंतर स्नान से मेरा शरीर काला हो जाता है, सो मैं शुद्ध होने के लिये साल में एक बार यहाँ आता हूँ और स्नान करके निर्मल होकर लौट जाता हूँ। इस स्थान का नाम निर्मलीकुंड है।"

परंतु हमारी समझ में यह आता है कि अयोध्या का स्थान निश्चय करने में उसका सबसे पहला सूचक सरयू-नदी थी और दूसरा नागेश्वरनाथ का मंदिर, जिसका उल्लेख विक्रमादित्य को प्राचीन पुस्तकों से मिला था। इन्हीं पुस्तकों से और भी स्थानों का पता मिला, जिनके दर्शनों को आज तक हज़ारों यात्री दूर-दूर से आते हैं।

हमने यह भी देखा है कि ईस्वी सन् की दूसरी और तीसरी शताब्दी में शक्तिशाली मेघ और देवरक्षित कोशल-देश पर शासन करते थे। उनकी राजधानी श्रावस्थी थी। नहीं तो ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी में अयोध्या के उजड़ जाने का कोई कारण देख नहीं पड़ता।

यह विक्रमादित्य गुप्तवंश का चंद्रगुप्त द्वितीय ही हो सकता है। डाक्टर विंसेंट स्मिथ कहते हैं कि भारत की जनश्रुतियों और कहानियों में जिस विक्रमादित्य का नाम बहुत आता है, वह यही हो सकता है, दूसरा नहीं। चंद्रगुप्त द्वितीय पहले शैव था, पीछे भागवत हो गया और अपने शिलालेखों में अपने को परम भागवत कहने में अपना गौरव समझता है। इसमें संदेह नहीं कि मौर्य-सम्राट् गुप्तों से भी बड़े साम्राज्य पर पुरानी राजधानी पाटलीपुत्र से शासन करते थे; परंतु इसके सुदूर पूर्व में होने से कुछ-न-कुछ असुविधा होती ही थी। इसलिये मध्य के किसी स्थान में राजधानी के होने में जो लाभ था, वह प्रत्यक्ष ही है। कुछ मध्य में होने से और कुछ इस कारण से कि चंद्रगुप्त भागवत हो गया था, राजधानी अयोध्या को उठाकर लाई गई। आजकल अयोध्या में गुप्त-राज्य का स्मारक केवल जन्मस्थान की मसजिद के कुछ खंभे हैं। इस विक्रमादित्य में संदेह नहीं है। परंतु गुप्त पाटलीपुत्र से आए थे। प्राच्य विद्या-विशारद विद्वान् लोग इस बात को भूल जाते हैं कि भारत के सम्राट् अपने प्रतिनिधि भोगपतियों (Governors) पर इतना विश्वास नहीं करते थे, जितना अँगरेज़ी सरकार करती है। मुग़ल-सम्राटों के अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत पश्चिम के प्रांतों पर लाहौर से शासन किया जाता था और अकबर और जहाँगीर, दोनों वहाँ साल में कई महीने रहते थे। पठान-सम्राटों के इतिहास से उन्हें विदित हो गया था कि भोग-पति अपनी मनमानी करने पाते, तो स्वतंत्र राजा बन बैठते थे। अशोक ने राजूकों * को पूरे अधिकार दे दिए थे। ये राजूक अँगरेज़ी राज के कमिश्नर के पद के बराबर रहे हों या गवर्नर के। अशोक को अनुभव से यह विदित हो गया था कि अपनी प्रजा राजूकों को सौंपकर वह ऐसा निश्चिंत रहता था, जैसे कोई अपना बच्चा चतुर धाय को सौंपकर सुचित्त हो जाता है। परंतु ऐसा बहुत कम देखने में आता है। समुद्रगुप्त की एक राजधानी झूसी में थी, जो इलाहाबाद के सामने गंगा उस पार अब एक छोटा-सा गाँव है और उसके बनाए हुए दुर्ग के पत्थर कुछ तो अकबर के क़िले में लग गए और कुछ अबतक गाँव में इधर-उधर पड़े हैं। झूसी का प्रसिद्ध कुआँ समुद्रगुप्त के दुर्ग के भीतर रहा होगा। बी० एन्० डबल्यू० रेलवे लाइन के पास हंस तीर्थ से यदि छतनागा तक गंगा के उत्तर तट पर पैदल चलने का कष्ट उठाया जाय और आँखें खुली रहें, तो अब तक ईंट मिलते हैं, जिनमें पक्की नींवें देख पड़ती हैं। जिस स्तंभ के ऊपर हरिषेण की रची प्रशस्ति खोदी है, वह पहले कौशांबी में रहा होगा; परंतु जब यह प्रशस्ति खोदी गई, तो प्रयाग ही में था। चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य अनुमान ई० ३७५ में सिंहासन पर बैठा और ई० ३९५ में उसने मालवा लिया, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। मालवा अत्यंत समृद्ध प्रांत था और उस देश की, वहाँ के रहनेवालों की और वहाँ के शासन की बड़ाई चीनी यात्री फ़ाहियान करता है, जो इसी विक्रमादित्य के शासन-काल में भारत-यात्रा को आया था। डाक्टर विंसेंट स्मिथ का कथन है कि सौराष्ट्र और मालवा प्रांतों को जीतने से साम्राज्य में बड़े धनी और उपजाऊ सूबे तो मिल ही गए, परंतु पश्चिमी समुद्र-तट पर बंदरगाहों की भी राह खुल गई और जल-मार्ग द्वारा मिसर की राह से योरप के साथ व्यापार होने लगा। उसकी सभा और उसकी प्रजा, दोनों को पाश्चात्य योरपीय विचारों का ज्ञान हो गया, जिसे सिकंदरिया के व्यापारी अपने माल के साथ लाते थे।

इससे हमारे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि चंद्रगुप्त द्वितीय की एक राजधानी उज्जैन में भी थी और उज्जैन ही से वह अयोध्या आया था, जिसका वर्णन उसकी सभा के महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश-काव्य के सर्ग १६ में किया है। इस यात्रा में उसने विंध्याचल को पार किया * और हाथियों का पुल बनाकर गंगा उतरा। †

अवध-गज़ेटियर में विक्रमादित्य के राजकाल की एक और जनश्रुति लिखी है। वह यह है कि राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या में अस्सी बरस राज किया। यह मान लिया जाय कि राजधानी अयोध्या में ई० ४०० में आई, तो अस्सी बरस ई० ४८० में बीत गए होंगे, जबकि प्रोफ़ेसर तकाक्सू के अनुसार गुप्तराज की इतिश्री हो गई।

परंतु प्रोफ़ेसर तकाक्सू के अनुमान से एक और बात सिद्ध होती है। कालादित्य वसुबंधु का चेला था और उसे अयोध्या से कोई अनुराग

* पाश्चात्य विद्वानों का यह मत है कि राजूक कुछ दिन [illegible] दिविर कहलाए, पीछे इनका नाम कायस्थ पड़ गया।

* व्यलंघयद् विन्ध्यमुपायतानि पश्यत् पुलिंदैरुपपादितानि।

† तीर्थे तदीये गजसेतुबंधात् प्रतीपगामुत्तरतोऽथ गङ्गाम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न था, जैसा कि चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य को था। कुछ हूणों के आक्रमणों से, कुछ कुमारगुप्त के उत्तराधिकारियों की निर्बलता से गुप्तराजा फिर पुरानी राजधानी को लौट गया और अयोध्या पर जोगियों अर्थात् ब्राह्मण-साधुओं का अधिकार हो गया। इन लोगों ने बल पाकर अयोध्या में निर्बल बौद्ध-सामाज्य का रहना कठिन कर दिया।

हम यहाँ एक बात और कहना चाहते हैं, जो उन लोगों के ध्यान में नहीं आ सकती, जो अयोध्या के रहनेवाले नहीं हैं। जिस टीले पर जन्मस्थान की मसजिद बनी है, उसे यज्ञ-वेदी कहते हैं। १८९७ में गोविंद द्वादशी के पहले, जबकि मसजिद के भीतर बहुत-से लोग कुचल कर मर गए थे और गली चौड़ी की गई तथा टीले पर अस्तर करा दिया गया, तो इस टीले में से जले-जले काले चावल खोदकर निकाले जाते थे और कहा जाता था कि ये चावल दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ के हैं। हम इनको उस यज्ञ के चावल समझते हैं, जो चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य ने राजधानी के जीर्णोद्धार के समय किया था।

प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य ने अयोध्या में ३६० मंदिर बनवाए थे। अब उनमें से एक जन्मस्थान का मंदिर मसजिद के रूप में वर्तमान है।

अवध-प्रांत में गुप्तराज क ? सरा प्रमाण गोंडे के ज़िले में देवीपाटन का टूटा मंडप है।

अयोध्या का इतिहास के कवि कालिदास के जीवन-काल के विचार से विशेष कोई लगाव नहीं है; परंतु यह मान लिया जाय कि वह महाकवि विक्रमादित्य चंद्रगुप्त की सभा का एक रत्न था, तो वह अपने आश्रयदाता के साथ अवश्य अयोध्या आया होगा। हम कुछ अपने विचार इस विषय में यहाँ लिखे देते हैं, परंतु हमें इनके प्रामाणिक होने का कोई विशेष आग्रह नहीं है। इसकी विवेचना फिर कभी की जायगी।

महाकवि कालिदास के लेखों से विदित होता है कि वह किसी सूखे पहाड़ी और रेतीले देश के रहनेवाले थे। यही हमारे गुरुवर महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री एम्० ए०, सी० आई० ई० का मत है। उनकी जन्मभूमि होने का गौरव मंदसौर को प्राप्त हुआ और वह सबसे पहले उज्जयिनी में विक्रमादित्य के दरबार में आए। उनकी प्रतिभा ने उन्हें तुरंत राजकवि के पद पर पहुँचा दिया। हिंदुस्तानी दरबार के कवि लोग सदा राजा के साथ रहते हैं और आजकल भी जब राजा विनोद चाहता है, तो उसे समयानुकूल कविता सुनाते हैं। ऐसे अवसरों के लिये ऋतुसंहार के भिन्न-भिन्न खंड रचे गए थे। यहीं उस ज्येष्ठ महाराजकुमार का जन्म हुआ था, जो पीछे कुमारगुप्त-महेंद्रादित्य के नाम से सम्राट् हुआ और उसी अवसर स्मरणार्थ सात सर्गों में कुमारसंभव (कुमार का जन्म) काव्य रचा गया। जब चंद्रगुप्त झूसी में ठहरा हुआ था, तो कालिदास को पुरुरवस और उर्वशी की कथा की सुध आई और विक्रमोर्वशी-नाटक रच डाला। नाटक के नाम के आदि में विक्रम शब्द अपने आश्रयदाता के नाम को अमर करने के लिये जोड़ा गया।

आर्य-राजाओं की भाँति गुप्त-राजा भी मृगया के बड़े व्यसनी थे। चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य के एक सिक्के में राजा बाण से एक सिंह मार रहा है। अभिज्ञान-शाकुंतल का नायक दुष्यंत जिस वन में शिकार खेलने जाता है, उसमें बनैले सुअर (वराह), अरने (महिषा) और जंगली हाथी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Haridwar. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हैं। यह स्थान आजकल के बिजनौर-प्रांत के उत्तर का हिस्सा है। यहीं मालिनी (आजकल की मालिन) गढ़वाल की पहाड़ियों से निकलकर घूमती हुई गंगा में गिरती है। बूढ़ी गंगा के तट पर हस्तिनापुर यहाँ से पचास मील है। राजा दुष्यंत जब हस्तिनापुर जाने लगता है, तो शकुंतला को एक अँगूठी देता है, जिसके नगीने पर उसका नाम खुदा हुआ है। गुप्त-समय में जो देवनागरी-लिपि प्रचलित थी, उसमें 'दुष्यंत' में पाँच अक्षर होते हैं—दपयनत। विदा होते समय नायक शकुंतला से कहता है कि प्रतिदिन एक-एक अक्षर गिनना और पाँचवें दिन जब पाँचवाँ अक्षर गिनोगी, तो तुमको हस्तिनापुर ले जाने के लिये सवारी आएगी। कालिदास का भौगोलिक ज्ञान बहुत ठीक रहता है और राजा का कहना तभी ठीक उतरेगा, जब कण्व का आश्रम बिजनौर की पहाड़ियों में माना जायगा। इसी आश्रम के पास चंद्रगुप्त द्वितीय अपने राजकवि के साथ अहेर को गया था। राजा धन्वी तो था ही, बड़ा बलवान् भी था। वह हाथी की भाँति पहाड़ पर चढ़ता-उतरता है *। वनरखों को आधीरात के पीछे हँकवा करने की आज्ञा थी। दिन के अहेर के पीछे जो जंतु मारे जाते थे, उन्हें भूनकर राजा के साथ सभासद भी दिन को समय-असमय खाते थे। यह सब चंद्रगुप्त को अच्छा लगता रहा हो, परंतु महाकवि की रुचि के प्रतिकूल था। उसको हँकवे के कारण सोते से जागना बुरा लगता था। उसे हिरन का रूखा-फीका भूना मांस नहीं रुचता था। कहाँ राजसदन का स्वादिष्ट भोजन और कहाँ वन का खाना। कहाँ कोमल गद्दों पर सुख से सोना और कहाँ वन में पयाल पर पड़ना—सो भी नींद-भर सोने न पाना। ये ही बातें उसने नाटक में विदूषक के मुँह से कहलाई हैं।

यह भी विचित्र बात है कि कृष्ण और रुक्मिणी का नाम पहले नाटक मालविकाग्निमित्र में है; परंतु दो बड़े नाटकों (अभिज्ञान-शाकुंतल और विक्रमोर्वशी) में विष्णु के अवतारों का कहीं नाम नहीं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि ये दोनों चंद्रगुप्त के भागवत होने से पहले लिखे गए थे और इसमें भी संदेह नहीं कि चंद्रगुप्त उज्जयिनी ही में भागवत हो गया था।

राजा के धर्म बदलने के पीछे संस्कृत-साहित्य का दूसरा अमूल्य रत्न मेघदूत रचा गया। मेघ की यात्रा रामगिरि से आरंभ होती है, जिसको वनवास में श्रीराम-जानकी के निवास का श्रेय है। चित्रकूट-पर्वत में उनके जगवंद्य चरण-चिह्न हैं। दूत-मेघ को हनुमान की उपमा दी गई है और यक्ष की स्त्री की सीता की *। कालिदास को उज्जयिनी से प्रेम था। उसका आश्रयदाता भी उसे चाहता था। इसलिये वह उज्जयिनी को कैसे छोड़ सकता था। उज्जयिनी मेघ की उस राह में नहीं है, जो प्रकृति के अचल नियमों ने उसके लिये बना रक्खी है। परंतु मेघ को अपनी राह से भटककर उज्जयिनी जाने को कह रहा है, † और उसे यह सूचना दे रहा है कि न जाओगे, तो तुम्हारा जीना अकारथ है ‡।

* गिरिवर इव नागः प्राणसारं बिभर्त्ति। इस प्रशंसा का मर्म उसी की समझ में आ सकता है, जिसने जंगली हाथी को पहाड़ पर से उतरते देखा है। हाथी घुटने तोड़कर पहाड़ की ढाल पर बड़ी तेजी से उतरता है।

* इत्यख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।

† वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां।

‡ वाञ्छितोऽसि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पीछे अयोध्या में दरबार उठ आया और कालिदास हमारे पावन नगर में पहुँचा। यहाँ उसने संस्कृत-भाषा का सबसे उत्तम महाकाव्य रघुवंश रचना आरंभ किया और इसमें उस प्रसिद्ध तेजस्वी राजवंश की मुख्य-मुख्य बातें लिखीं, जो सूर्य भगवान् से चला और जिसमें साठ प्रतापी और अनिंद्य राजाओं के पीछे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र ने अवतार लिया। इसके पीछे इसमें अग्निवर्ण तक सूर्यवंशी राजाओं का संक्षिप्त वर्णन है।

कालिदास अपने स्वामी के साथ हिमालय की तरेटी में देवीपाटन गया था। वह पहले और दूसरे सर्गों में पर्वत का दृश्य लिखता है। उसे चंद्रगुप्त द्वितीय के दिग्विजय का पूरा ज्ञान था, जिसे उसने सर्ग ४ में लिख डाला। उसने झूसी के क़िले से गंगा और यमुना का संगम देखा था (जहाँ से अब भी संगम का दृश्य सबसे अच्छा देख पड़ता है) और उसका वर्णन सर्ग १६ में करता है। वह अपने स्वामी के साथ उज्जैन से अयोध्या आया था। अयोध्या की उजड़ी दशा उसने अपनी आँखों देखी थी। अयोध्या में राजधानी स्थापित करते समय भी वह उपस्थित था, जिसका विवरण सर्ग १६ में लिखा गया है।

दौर्भाग्यवश रघुवंश समाप्त न हो सका *। महाकवि के पास जगन्नियंता का बुलावा आ गया। उसने अपनी अमर आत्मा को अपने इष्ट देव युगल-सरकार को सौंपकर सरयू-वास लिया और अपनी अमूल्य रचना को केवल भारतवासियों के लिये नहीं, वरन् सारे सभ्य संसार के लिये उत्तम साहित्य के अक्षय धन-रूप में छोड़ गया।

सीताराम

* रघुवंश की समाप्ति बेढंगी है। अग्निवर्ण के मरने पर कुछ दिन उसकी रानी ने राज किया। उसके बाद इक्ष्वाकु-वंश के अनेक राजा हुए।

घन

छाए गिरि शृंगनि मुरैलिन के वृंद मंजु
नचत लचत अति सुंदर बरन तन।
डोलति बयारि सीरी लहकि-लहकि अरु
बोलत चहूँघा पिक दादुर मुदित मन।
भनत 'बिशारद' भरित जल नदी नद
हरित-हरित आछे सोहत निखरि बन;
करत अमान मन हरत महान अलि !
घने ये गगन घिरे घुमड़ि-घुमड़ि घन।

बलदेवप्रसाद टंडन "विशारद"

भारतीय राजशास्त्र

(२)

इस प्रकार भारतीय राजशास्त्र और राज-व्यवस्था के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के मतों की समीलोचना करने के बाद अब हमें यह प्रदर्शित करना है कि प्राचीन भारत में राजशास्त्र का कितना विस्तार हुआ था। आधुनिक समय में भारतीय राजशास्त्र के सब ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते। जो ग्रंथ मिलते हैं, उनके द्वारा अन्य अनेक लेखकों व ग्रंथों की सत्ता सिद्ध होती है। प्राप्त ग्रंथों का इस दृष्टि से किया गया अध्ययन अत्यंत उपयोगी है। कुछ प्रसिद्ध नीति-ग्रंथों का इस दृष्टि से अध्ययन कर हम जिस परिणाम पर पहुँचे हैं, उसको यहाँ उपस्थित करना अनुपयोगी न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी-विशेषांक

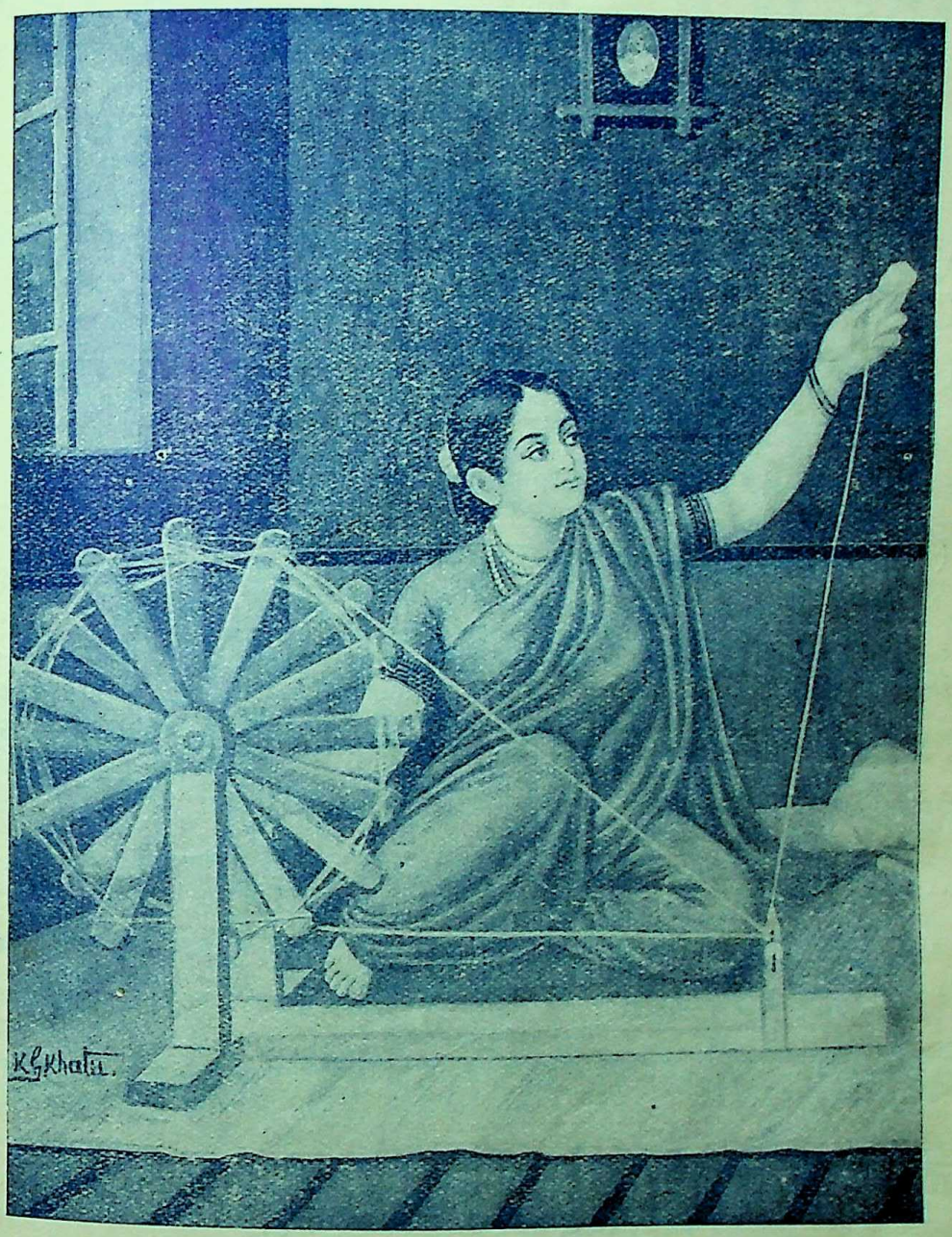

ऐसा विशेषांक आज तक किसी भारतीय भाषा में न निकला होगा

यह अंक ग्राहकों को मुफ़्त में मिलेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषांक में क्या होगा ?

लीजिए, पढ़िए—

(१) विद्वानों के विविध विषयों पर गवेषणापूर्ण मार्मिक लेख होंगे।

(२) नवीन तथा प्राचीन कविताओं का जमघट होगा।

(३) प्रसिद्ध कहानी-लेखकों की दिल को हिला देनेवाली कहानियाँ होंगी।

(४) रोचक भ्रमण-वृत्तांतों का सचित्र वर्णन होगा।

(५) बहुत सी खोज-बीन की सामग्री होगी।

(६) भारतवर्ष के प्रसिद्ध चित्रकारों के

१८ तिरंगे-चौरंगे बहुमूल्य चित्र होंगे।

(यानी एक चित्रावली ४)-५) रु० लागत की इन चित्रों से आप बना सकेंगे)

(७) सैकड़ों ही सादे चित्र होंगे।

(८) छपाई-सफ़ाई गेट-अप, और टाइटिल-चित्र देखते ही आप वाह-वाह करने लगेंगे।

विशेषांक की एक कापी का मूल्य २॥) होगा।

जो सज्जन ३१ अगस्त तक ६॥) रु० भेजकर 'माधुरी' के १ वर्ष के ग्राहक बन जावेंगे उन्हें यह विशेषांक मुफ़्त मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौक़ा न चूकिए !

६॥) रु० फ़ौरन् भेजकर ग्राहक बनिए।

यदि आप केवल विशेषांक लेना चाहें; तो

२॥) रु० भेजकर नाम दर्ज करा लीजिए।

निकलने के १५ रोज़ बाद एक कापी भी

किसी मूल्य पर न मिल सकेगी।

यह अंक स्थायी साहित्य की अमूल्य संपत्ति होगा।

याद रखिए—

दूसरा संस्करण हम नहीं छापते !

साथ ही विश्वास दिलाते हैं कि--

६॥) रु० तो केवल इस अंक की न्यौछावर समझिए।

पता--मैनेजर-'माधुरी'

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप संसार भर में अपने रोज़गार की धूम मचाना चाहते हैं ?

यदि हाँ--तो,

'माधुरी' के विशेषांक में अपना विज्ञापन छपाइए !

कम-से-कम दो लाख आदमी आपका विज्ञापन पढ़ेंगे !!

इस अंक में—

ख़ूब सजाकर, सुंदर स्थानों पर, ख़ास ढंग से, कई रंगों में विज्ञापन छापे जावेंगे।

अपना विज्ञापन आज ही हमारे पास भेजिए।

कमख़र्च, मुनाफ़ा ज़्यादा!

मैनेजर—'माधुरी' लखनऊ.

माधुरी का प्रचार—

इंगलैंड, फ़्रांस, अमेरिका जर्मनी, जापान, चीन, फ़िज़ी और तमाम भारतवर्ष में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले कौटिलीय अर्थशास्त्र को लीजिए—अपने अर्थशास्त्र को प्रारंभ करते हुए आचार्य चाणक्य ने जो प्रथम वाक्य लिखा है, वह यह है—"पृथ्वी की प्राप्ति और पालना करने के लिये जो-जो अर्थशास्त्र पूर्ववर्ती आचार्यों ने प्रचलित किए हैं, प्रायः उन सबका संग्रह कर यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है।[1]" इस वाक्य से स्पष्टतया सूचित होता है कि आचार्य चाणक्य से पूर्व अनेक अर्थशास्त्र विद्यमान थे और अनेक इस प्रकार के आचार्य हो चुके थे, जिन्होंने नवीन अर्थशास्त्रों को स्थापित किया था। चाणक्य ने इन सबका संग्रह करके अपने शास्त्र का निर्माण किया और इसी लिये हम देखते हैं कि इसमें स्थान-स्थान पर पूर्ववर्ती आचार्यों के मत उद्धृत किए गए हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में जिन आचार्यों के मत उल्लिखित हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं—१. भारद्वाज[2] २. विशालाक्ष[3] ३. पराशर[4] ४. पिशुन[5] ५. कौणपदंत[6] ६. वातव्याधि[7] ७. बाहुदन्तीपुत्र[8] ८. काठांको भारद्वाजः[9] ९. कात्यायन[10] १०. घोटमुखः[11] ११. दीर्घश्चारायणः[12] १२. पिशुन[13] १३. पिशुनपुत्रः[14] १४. किजल्कः[15]।

इन आचार्यों के अतिरिक्त पाँच संप्रदायों के मत भी कौटिलीय अर्थशास्त्र में संगृहीत हैं। संप्रदायों के नाम इस प्रकार हैं—१. मानवाः[1] २. बार्हस्पत्याः[2] ३. औशनसाः[3] ४. पाराशराः[4] ५. आम्भीयाः[5]।

इनके अतिरिक्त 'आचार्याः'[6], 'ऊपरे'[7] और 'एके'[8] इन शब्दों से भी कौटिल्य ने अपने से पूर्ववर्ती मतों के उद्धरण दिए हैं।

हमें व्यक्तिगत आचार्यों पर विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह इन सब आचार्यों ने पृथ्वी की प्राप्ति और पालना के लिये पृथक्-पृथक् अर्थशास्त्रों का निर्माण किया था। इनके मत एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं और भारतीय राजशास्त्र में हम इनके मतभेदों का उपयोग करेंगे। यहाँ हमें अर्थशास्त्र-विषयक संप्रदायों पर कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। प्राचीन भारत में दर्शन-शास्त्र के अनेक विध—आस्तिक और नास्तिक संप्रदाय विद्यमान थे, यह हमें ज्ञात है। आस्तिक-दर्शन के ६ संप्रदायों के नाम उल्लिखित करना तो व्यर्थ ही है, पर उनके अतिरिक्त बौद्ध-ग्रंथ दीघनिकाय में ६२ दार्शनिक संप्रदायों का वर्णन है, जो कि भगवान् बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व भारतवर्ष में विद्यमान थे। इनमें सस्स्वतवादी, एकच्च सस्सनिका, अंनान्निका, अमर विक्खेपिका, अधिच्च समुपन्निका, उद्धम-आघतनिका, उच्छेदवादा और दित्थधम्मनिब्बानवादा—ये संप्रदाय मुख्य हैं।[9] इन सब संप्रदायों के दार्शनिक विचार भिन्न-भिन्न थे। प्राचीन भारत के ही नहीं, प्रत्युत प्राचीन संसार के संप्रदायों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनमें एक विशेष प्रकार के सिद्धांतों का विकास होता रहता था। शिष्य अपने आचार्यों से इन सिद्धांतों की शिक्षा लेते थे और फिर अपने शिष्यों को उन्हीं शिक्षाओं को प्रदान करते थे। इस प्रकार संप्रदाय

---

१. 'पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्य एकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्'
२. कौ० अर्थ० १।४, १।१७, १।११
३. कौ० अर्थ० १।४, १।१७, १।११
४. कौ० अर्थ० १।४, १।११
५. कौ० अर्थ० १।४, १।१७, १।११
६. कौ० अर्थ० १।४, १।१७
७. कौ० अर्थ० १।४, १।१७
८. कौ० अर्थ० १।४, १।१७
९. कौ० अर्थ० ५।५
१०. कौ० अर्थ० ५।५
११. कौ० अर्थ० ५।५
१२. कौ० अर्थ० ५।५
१३. कौ० अर्थ० ५।५
१४. कौ० अर्थ० ५।५
१५. कौ० अर्थ० ५।५

१. कौ० अर्थ० १।१, १।११
२. कौ० अर्थ० १।१, १।११
३. कौ० अर्थ० १।१, १।११
४. कौ० अर्थ० १।१६
५. कौ० अर्थ० १।१७
६. कौ० अर्थ० १।३, २।८, ३।४, ३।५, ३।७, ३।१४
७. कौ० अर्थ० ३।७, ३।१४
८. कौ० अर्थ० ३।१४
९. Rhys Davids—Bhuddhism 31-36.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. नारद[1]—इसके जो श्लोक राजनीतिरत्नाकर में दिए हैं, उनमें बहुत-से नारद-स्मृति में नहीं हैं।

६. मनु[2]—प्रायः उद्धृत श्लोक मनुस्मृति के हैं।

७. शुक्रनीति[3]—वर्तमान शुक्रनीति में ये श्लोक नहीं मिलते।

अन्य भी बहुत-से ग्रंथों—स्मृति, सूत्र, दर्शन आदि से उद्धरण चंडेश्वर ने अपने ग्रंथ में दिए हैं, पर राजशास्त्र की दृष्टि से ऊपर लिखे ग्रंथ व आचार्य ही मुख्य हैं।

महामहोपाध्याय श्रीमित्र मिश्र-विरचित वीरमित्रोदय राजनीति में भी इसी प्रकार अनेक प्राचीन आचार्यों के नाम मिलते हैं। इनमें विज्ञानेश्वर, बृहत्पराशर, अपरार्क, गौतम, बृहस्पति, नारद, अंगिरा और कात्यायन मुख्य हैं। परंतु इस 'राजनीति' में जिन ग्रंथों के उद्धरण प्रायः दिए गए हैं, वे पुराण तथा मीमांसा-ग्रंथ हैं।

मध्यकालीन भारत में सोमदेव सूरि ने नीतिवाक्यामृत नाम का प्रसिद्ध नीति-ग्रंथ लिखा था। सोमदेव सूरि-विरचित प्रसिद्ध काव्य यशस्तिलक चंपू में भी राजनीतिशास्त्र के बहुत-से तत्त्वों का समावेश है। इन दोनों ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आचार्य सोमदेव सूरि कौटिलीय अर्थशास्त्र और कामंदकीय राजनीतिसार से तो भली भाँति परिचित थे ही, पर इनके अतिरिक्त गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म और भारद्वाज आदि राजशास्त्र प्रणेताओं के ग्रंथों को भी जानते थे। सोमदेव ने इन आचार्यों द्वारा विरचित नीतिशास्त्रों का ज़िक्र किया है। गुरु संभवतः बृहस्पति का ही नाम है। बृहस्पति, शुक्रा, विशालाक्ष, पराशर और भारद्वाज के राजशास्त्रों का वर्णन तो कौटिलीय अर्थशास्त्र, महाभारत और कामंदकीय नीतिसार में भी मिलता है। सोमदेव की सूची में परीक्षित, भीम, और भीष्म, ये तीन नाम नए हैं। इनमें भी भीष्म के राजशास्त्र का अभिप्राय संभवतः महाभारत-शांतिपर्व के भीष्म द्वारा उपदिष्ट संदर्भों से है। नीतिवाक्यामृत में अपने से पूर्ववर्ती जिन नीति-ग्रंथों के उद्धरण दिए हैं, उनकी संख्या पचास से ऊपर है।

१. जायसवाल द्वारा संपादित राजनीति रत्नाकर पृ० १३, १५, १९, २० आदि

२. तथा पृ० ४, ६, ८, ९, ७८, ८०, ८४ आदि

३. तथा पृ० ८१

इनमें कई आचार्य ऐसे भी हैं, जिनके नाम अन्य ग्रंथों में नहीं मिलते। साथ ही, अनेक उद्धरण इस प्रकार के हैं, जो वर्तमान समय में प्राप्त पुस्तकों में नहीं हैं। उदाहरणरूप में शुक्र और मनु को लिया जा सकता है। इनके जो उद्धरण सोमदेव ने दिए हैं, वे प्रायः आधुनिक समय में उपलब्ध मनुस्मृति और शुक्रनीति में हैं ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव और औशनस-संप्रदायों के अन्य भी अनेक ग्रंथ पुराण-समय में विद्यमान थे, जो इस समय लुप्त हो गए हैं। बार्हस्पत्य-संप्रदाय के राजशास्त्र से बहुत-से श्लोक सोमदेव सूरि ने उद्धृत किए हैं। इनको पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस बृहस्पति के उद्धरण नीतिवाक्यामृत में हैं, उसके सिद्धांतों में और कौटिलीय अर्थशास्त्र में उद्धृत बृहस्पति के मंतव्यों में बहुत समता है। जिस तरह कौटिल्य को ज्ञात बृहस्पति वेदों को ढकोसला समझता था, उसी तरह सोमदेव सूरि का बृहस्पति भी वेदों को बुद्धि और पौरुष से हीन लोगों द्वारा पेट भरने के लिये बनाया गया साधन समझता है।[1] कौटिलीय अर्थशास्त्र में बार्हस्पत्य-संप्रदाय के उद्धरण गद्य में हैं और नीतिवाक्यामृत के अंदर पद्य में। नीतिवाक्यामृत-ग्रंथ पद्य का नहीं है, गद्य का है, यह ध्यान में रखना चाहिए। फिर भी श्लोकों में उद्धरण देना सूचित करता है कि सोमदेव सूरि के सम्मुख बार्हस्पत्य-संप्रदाय का राजशास्त्र पद्य में था। इससे यह परिणाम निकला कि इस संप्रदाय के राजशास्त्र-विषयक कम-से-कम दो ग्रंथ अवश्य थे। अन्य संप्रदायों के संबंध में विचार करके भी हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं। इससे संप्रदायों की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

ऊपर जो विवेचना हमने की है, उससे स्पष्ट हो गया होगा कि प्राचीन भारत में राजशास्त्र-विषयक बहुत बड़ा साहित्य विद्यमान था। आधुनिक समय में ये सब ग्रंथ नहीं मिलते। जो ग्रंथ अब तक उपलब्ध हुए हैं, उनकी संख्या बहुत कम है। कौटिलीय अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, महाभारत का शांतिपर्व, सोमदेव सूरि-कृत नीतिवाक्यामृत, मित्र मिश्र द्वारा रचित वीरमित्रोदय-राजनीति, चंडेश्वर

१. अग्निहोत्रं त्रयो वेदाः प्रव्रज्या नग्नमुण्डिताः।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेऽदो मतं गुरुः॥
नीतिवाक्यामृत पृ० ७६ (बंबई)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राजनीति-रत्नाकर, नीलकंठ का नीतिमयूख, कामंदकीय नीतिसार, भोजराज का युक्ति-कल्पतरु और बृहस्पति-सूत्र—ये ग्रंथ हैं, जो राजशास्त्र-विषय पर अब तक उपलब्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त स्मृति-ग्रंथ, धर्म-सूत्र, पुराण, काव्य आदि साहित्य में भी राजशास्त्र-विषयक निर्देश मिलते हैं। प्रायः संपूर्ण संस्कृत, पाली और प्राकृत-साहित्य भारतीय राजशास्त्र के अध्ययन के लिये उपयोगी है। हम इन सबका उपयोग राजशास्त्र-विषयक इस विवेचना में करने का प्रयत्न करेंगे।

विशुद्ध राजशास्त्र-विषयक जो ग्रंथ वर्तमान समय में मिलते हैं, वे केवल कल्पित विचारों का ही वर्णन नहीं करते, उनके द्वारा अपने समय की वास्तविक राजनीतिक अवस्थाओं का भी परिज्ञान होता है। वस्तुतः प्राचीन भारत में विचारात्मक और क्रियात्मक, दोनों प्रकार से राजशास्त्र का अध्ययन किया जाता था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में दोनों प्रकार के राजशास्त्र के पंडितों का उल्लेख है।[1] अनेक नीतिशास्त्र केवल विचारात्मक ग्रंथ ही नहीं हैं, उनसे क्रियात्मक राजनीति का भी बोध होता है, इसी लिये उनकी क़ीमत बहुत अधिक है। उदाहरण के तौर पर कौटिलीय अर्थशास्त्र को लीजिए। इसका निर्माण आचार्य चाणक्य ने मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त के लिये किया था।[2] चाणक्य स्वयं चंद्रगुप्त का प्रधान मंत्री और पुरोहित था। अतः उसका ग्रंथ केवल विचारात्मक ही नहीं है। इसी प्रकार राजनीति-रत्नाकर का प्रणेता आचार्य चंडेश्वर मिथिलाधीश महाराज हरिसिंह देव (चौदहवीं सदी ई० प०) का प्रधान अमात्य था। वह अपने को 'मंत्रींद्र' कहता है। चंडेश्वर का पिता वीरेश्वर इसी मिथिला-राज्य में 'महासांधि-विग्रहिक'-पद पर नियुक्त था। अतः चंडेश्वर का ग्रथ भी राजनीति के क्रियात्मक ज्ञान पर आश्रित है। आचार्य शुक्र भी इसी प्रकार के क्रियात्मक राजनीतिज्ञ थे। उनका विश्वास था कि उनके ग्रंथ का क्रिया में अनुसरण करने पर राजा अपना शासन-कार्य सम्यक् रीति से चला सकता है।[1] युक्ति-कल्पतरु के लेखक भोज तो स्वयं राजा थे। उनके ग्रंथ के क्रियात्मक मूल्य में तो संदेह करना ही व्यर्थ है। अन्य अनेक नीतिशास्त्रों के संबंध में भी इसी प्रकार क्रियात्मकता प्रदर्शित की जा सकती है।

यद्यपि भारत के राजशास्त्र-कर्ताओं ने वास्तविकता और क्रियात्मकता को सदा अपने सम्मुख रक्खा है, तथापि स्वतंत्र विचारों और विविध सिद्धांतों का उनके ग्रंथों में अभाव नहीं है। राज्य किस प्रकार उत्पन्न हुआ? जनता एक व्यक्ति के शासन में क्यों रहती है? राज्य का स्वरूप क्या होना चाहिए? राज्य का उद्देश्य क्या है? राजा प्रजा से कर क्यों प्राप्त करता है? राजा में स्वामित्वशक्ति किसमें निहित है? इत्यादि विचारात्मक प्रश्नों पर भी कहीं-कहीं मनोरंजक और उपयोगी विचार भारतीय नीति-ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं। हम इस व्याख्यान-माला में इन्हीं विचारों व सिद्धांतों को एक स्थान पर एकत्रित कर क्रमिक तथा स्पष्ट रूप में पेश करने का प्रयत्न करेंगे। राजशास्त्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग अर्थात् क्रियात्मक दृष्टि से शासन-विधि का अध्ययन हम फिर कभी करेंगे। राजनीतिक सिद्धांतों का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करते हुए हमारे सम्मुख सबसे बड़ी कठिनता यह उपस्थित होती है कि भारतीय इतिहास की सब समस्याओं का हल अभी तक नहीं किया जा सका है। भारतीय इतिहास के अनेक काल इस प्रकार के हैं, जिनके संबंध में राजनीतिक घटनाएँ हमें ज्ञात नहीं हैं, या यदि ज्ञात भी हैं, तो अत्यंत अपूर्ण रूप में। जब इतिहास ही हमें पूरी तरह मालूम नहीं है, तो उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों व अवस्थाओं का राजनीतिक सिद्धांतों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, यह कैसे जाना जा सकता है? साथ ही, दूसरी कठिनता यह है कि जो राजनीतिक ग्रंथ इस समय तक मिले भी हैं, उनके काल का ठीक-ठीक निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका है। राजशास्त्रों के कालक्रम के संबंध में विद्वानों में गहरा मतभेद है। बहुत-से विद्वान् महाभारत के शांतिपर्व को कौटिलीय अर्थशास्त्र के पीछे का मानते हैं। उनकी सम्मति में शांतिपर्व का निर्माण गुप्तकाल में हुआ। कुछ ऐति-

१. 'दण्डनीति वक्तृप्रयोक्तृभ्यः', कौ० अर्थ० १।५
२. 'इयमिदानीं आचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्य्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता'
३. 'सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।कौ०अर्थ०२।१०

१. शुक्रनीति-सार ४, ७, ४२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासिक कौटिलीय अर्थशास्त्र को भी ईसा के तीन सदी बाद का बना हुआ मानते हैं। शुक्रनीति के संबंध में भी इसी प्रकार मतभेद है। जहाँ अनेक ऐतिहासिक इसे इस्वी सन् से १५ या २० सदी पूर्व बना मानते हैं, तो दूसरे इसे वर्तमान समय से कुल पाँच या छः सदी पहले की रचना समझते हैं। कुछ महानुभाव तो इस प्रकार के भी हैं, जो इसे मध्यकाल का भी मानने को उद्यत नहीं। स्मृति-ग्रंथों और सूत्र-ग्रंथों के काल में भी एकमत नहीं है। इस अवस्था में यह कैसे संभव है कि हम भिन्न-भिन्न राजनीतिक सिद्धांतों के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाल सकें, या विविध परिस्थितियों में राजनीतिक मंतव्यों में किस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसकी समीक्षा कर सकें। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय राजशास्त्र की विवेचना का समय अभी नहीं आया है। जिस प्रकार श्रीयुत डनिंग ने पाश्चात्य राजशास्त्र-प्रणेताओं के सिद्धांतों की व श्रीयुत सिज्विक ने राजनीतिक संस्थाओं की ऐतिहासिक समीक्षा की है, वैसा अभी हम भारत के संबंध में नहीं कर सकते। इसके लिये अभी अधिक ऐतिहासिक सामग्री और ऐतिहासिक ज्ञान के अधिक सुनिश्चित होने की आवश्यकता है। वर्तमान अवस्थाओं में डनिंग व सिज्विक के ढंग से किया गया हमारा प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। अतः भारतीय राजशास्त्र की विवेचना करते हुए हम विविध सिद्धांतों का संग्रह-मात्र ही कर सकेंगे। इस क्षेत्र में अभी यह कार्य ही पर्याप्त है। आधुनिक ऐतिहासिकों का ध्यान अभी इस कार्य की तरफ़ भी पूरी तरह आकृष्ट नहीं हुआ है।

परंतु यह प्रयत्न करते हुए हमें एक बात का और भी ध्यान रखना चाहिए। भारतीय इतिहास बहुत विस्तृत है। इसमें अनेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन समाविष्ट है। साम्राज्यवाद के भी अनेक रूप भारत में प्रकट हुए हैं। भिन्न-भिन्न समयों में शासन-पद्धति भी भिन्न-भिन्न रही है। बहुत-से कालों में भारत में अनेक राज्य विद्यमान थे, जिनकी शासन-व्यवस्थाएँ भी एक दूसरे से भिन्न थीं। बौद्ध-काल को लीजिए, महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय उत्तरीय भारत में ही कम-से-कम १६ राजतंत्र-राज्य और १० गणतंत्र-राज्य विद्यमान थे। इन गणतंत्र-राज्यों में भी कोई श्रेणितंत्र थे, तो कोई लोकतंत्र। भारतीय इतिहास की राजनीतिक संस्थाओं में भी प्राचीन और मध्यकालों में बड़ा भेद है। योरप की तरह भारत में भी मध्यकाल में सामंत-पद्धति का प्रवेश हो गया था। संपूर्ण राजा एक स्थिति के न रहे थे। इन अवस्थाओं में यह कल्पना करना कि भारत के राजनीतिक विचारकों पर अपने समय का व अपने समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों और संस्थाओं का कोई प्रभाव नहीं होगा, सर्वथा भ्रम-मूलक है। यही कारण है कि कुछ ग्रंथों में सामंतराज्य की राजनीति का वर्णन है, और दूसरे ग्रंथों में साम्राज्य बनाने की इच्छा रखनेवाले विजिगीषु राजा की व साम्राज्यवाद से आत्मरक्षा करने को कटिबद्ध गणतंत्र-राज्य की विविधि प्रकार की राजनीतियों का समावेश है। भिन्न परिस्थितियों के कारण विचारकों के सिद्धांतों में भी भेद आ गया है। एक राजशास्त्र-प्रणेता जहाँ राजा में असाधारण शक्ति देखता है, वहाँ दूसरा लेखक राजा की कुत्ते से तुलना करने में भी संकोच नहीं करता। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है। इसी लिये हमें भारतीय राजशास्त्रों में समन्वय करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उनमें जो भेद हैं, और जिन कारणों से भेद हैं, उन्हें अच्छी तरह समझने का यत्न करना चाहिए। भारतीय राजशास्त्र का अनुशीलन इसी दृष्टि से मनोरंजक और उपयोगी हो सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक रीति से राजशास्त्र के क्रमिक विकास का प्रदर्शित कर सकना अभी संभव नहीं है, तथापि कहीं-कहीं ऐतिहासिक घटनाओं व परिस्थितियों का प्रभाव सुगमता से प्रकट भी हो जाता है। जैसे कि महाभारत शांतिपर्व में गणराज्यों की राजनीति में साम्राज्यवाद से रक्षा करने के लिये विविध उपायों की योजना और कौटिलीय अर्थशास्त्र में संगतंत्र व गणतंत्र-राज्यों के विनाश के लिये प्रयुक्त विविध साधनों का वर्णन। ये दोनों संदर्भ स्पष्ट रूप से दो भिन्न परिस्थितियों की उपज हैं और इन पर हमें इसी दृष्टि से विचार भी करना चाहिए। हम अपने व्याख्यानों में इसी रीति का उपयोग करेंगे।

इस प्रारंभिक विवेचना को समाप्त करने से पूर्व यह बतला देना अनावश्यक न होगा कि प्राचीन राजशास्त्र-प्रणेताओं की दृष्टि में राजनीति-शास्त्र का कितना महत्त्व था। महाभारत-शांतिपर्व के अनुसार संपूर्ण त्याग, दीक्षा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या तथा लोक राजधर्म पर ही आश्रित हैं।[1] यदि दंडनीति न रहे, तो 'त्रयी' का नाश हो जाय, धर्म रह ही न सके, लोक की स्थिति ही संभव न रहे।[2] संपूर्ण जीवलोक का अंतिम आश्रय राजधर्म में ही है। धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग राजनीति पर ही आश्रित हैं। केवल यह त्रिवर्ग ही नहीं, मोक्ष-प्राप्ति के लिये भी राजधर्म अनिवार्य है।[3] संपूर्ण धर्मों का आश्रय-स्थान राजधर्म ही है। यही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।[4] जिस समय नीति शास्त्र का ठीक प्रकार से अनुष्ठान होता है, उसी को सतयुग कहते हैं।[5] इन्हीं भावों को सोमदेव सूरि ने 'उस राज्य को नमस्कार है, जिसका फल धर्म और अर्थ है'[6] इस एक वाक्य द्वारा प्रकट कर दिया है। इसी भाव को लेकर बार्हस्पत्य और औशनस-संप्रदाय के नीतिज्ञ दंडनीति को इतना महत्त्व देते हैं। इसी को सम्मुख रखकर शुक्राचार्य-राजनीति को ही एक-मात्र विद्या स्वीकृत करते हैं।[7] अभिप्राय यह है कि भारतीय विचारकों की दृष्टि में मनुष्यों के चरम लक्ष्य की पूर्ति राज्य द्वारा व राजधर्म द्वारा ही हो सकती है,। प्राचीन ग्रीक-विचारकों, विशेषतया एरिस्टोटल की तरह भारतीय राजशास्त्र-प्रणेता लोग भी राज्य में मानवीय जीवन की परम उन्नति की संभावना अनुभव करते थे और इसी लिये राज्य के लिये संपूर्ण वैयक्तिक हितों को स्वाहा करने के लिये परामर्श देते थे। शांतिपर्व की सम्मति में राज्य के लिये गुरु तक का परित्याग कर देना चाहिए। अपने पक्ष की पुष्टि में वहाँ कुछ पुराने ऐतिहासिक उदाहरण भी दिए गए हैं, जिनमें कि राज्य के लिये प्रिय-से-प्रिय और सम्मानीय-से-सम्मानीय व्यक्तियों को छोड़ देने का वर्णन है। इसी सिद्धांत को दृष्टि में रख राज्य के हित के लिये राजा को पदच्युत करने का परामर्श दिया गया है। ये बातें भारतीयों की दृष्टि में राज्य व राजनीति की महत्ता को सूचित करती हैं।

आचार्य चाणक्य की सम्मति में भी संपूर्ण विद्याओं का मूल दंडनीति है। संसार के कार्य इसके विना नहीं हो सकते। राज्य व राजशासन द्वारा ही जनता धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग के लिये प्रवृत्त होती है। कामंदक का मत है कि दंडनीति के द्वारा ही संपूर्ण भुवन निरंतर अपने मार्ग पर चलता है।[8] शुक्र-नीति के अनुसार राजनीतिशास्त्र "सबको जीवन प्रदान करनेवाला, लोक की स्थिति संपादित करनेवाला, धर्म, अर्थ और काम का मूल तथा मोक्ष का प्रदान करनेवाला है।[9]" "जिस प्रकार विना भोजन के देह नहीं रह सकती, उसी प्रकार लोक की स्थिति राजनीति के विना नहीं रह सकती।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय राज-शास्त्र को बहुत महत्त्व की दृष्टि से देखते थे। कम-से-कम राजशास्त्र के लेखकों की दृष्टि में तो यह बहुत ही गौरव-मय विद्या थी। इसी लिये उन्होंने इसे बहुत ही गंभी-रता के साथ अध्ययन किया, और विचारात्मक व क्रिया-त्मक, दोनों प्रकार से राजशास्त्र का पूर्ण विकास करने का प्रयत्न किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अर्थशास्त्र, दंडनीति, राजधर्म, राजनीति और नीति, ये एक ही विद्या के सूचक विविध शब्द हैं। विविध ग्रंथ-कारों ने इनका एक ही अर्थ में उपयोग किया है।

सत्यकेतु विद्यालंकार

---

१. सर्वे त्यागाः राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः॥
शांतिपर्व ६२।२९

२. मज्जेत्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः॥
शांतिपर्व ६२।२८

३. त्रिवर्गो हि समासक्तो राजधर्मेषु कौरव।
मोक्षधर्मश्च विस्पष्टः सकलोऽत्र समाहितः॥
शांतिपर्व ५५।४

४. सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्मः परायणम्। शांतिपर्व ५५।३

५. दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते।
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्त्तते॥ शांतिपर्व ६९।७

६. अथ धर्मार्थफलाय राज्याय नमः।
७. कौ० अर्थ० १।१

१. महा० शांतिपर्व ५६।४—१०
सप्ताङ्गस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत्।
गुरुर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहन्तव्य एव सः॥ ५६।४

२. महा० शांतिपर्व ५६।२७, ४५

३. दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः कौ० अर्थ० १।५

४. सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजाधर्मार्थकामैर्योजयति।
कौ० अर्थ० १।४

५. कामंदक-नीतिसार १।१

६. सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम्।
धर्मार्थकाममूलं हि स्मृतं मे क्षप्रदं यतः॥ शुक्र० १।५

७. सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्या विना न हि।
यथाशनैर्विना देहस्थितिर्न स्याद्धि देहिनाम्॥ शुक्र १।११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि

मैं सौंदर्य-सरोवर का हूँ राजहंस सुंदर सुकुमार;
त्रिभुवन के अमरासन का हूँ मैं अधिकारी राजकुमार।
हूँ ऋतुपति यौवन-मदमाता मधुवन का छविमय अभिराम;
मैं लावण्य-मुकुल का हूँ अनुराग-मधुप भावुक उद्दाम।
सुरसरि की मैं एक लहर हूँ हर लेता हूँ पातक घोर;
मैं हूँ कवि-कुल-कुमुद-कलाधर बरसाता नित सुधा अथोर।
मधु से भरे मृदुल फूलों की माँग नवल सुंदर मुस्कान;
बैठ लताओं की कुटिया में रचता हूँ मैं गीत अजान।
महासिंधु है मानस मेरा जिसमें रत्न भरे अनमोल;
उठते हैं जिसमें भावों के हौले-हौले मृदु कल्लोल।
हो सवार कंचन-रवि-रथ पर करता हूँ मैं विश्व-भ्रमण;
हँसता हूँ कर अट्टहास मैं देख जगत के जन्म-मरण।
सुखद कल्पना के नभ में मैं उड़ता हूँ बन बादल-जाल;
मेरे गीत-प्रवाहों में बहता है होकर विश्व निहाल।
स्वर्ग-लोक का अमर दूत हूँ विश्व-विजेता तरुण सुजान;
हूँ साधक विख्यात भिखारी प्रबल प्रतापी तपोनिधान।
मैं मनमोहन के समान ले स्वर्ण-बाँसुरी दिव्य ललाम;
गूढ़ रहस्य-गीत गाता हूँ प्रेम-पूर्ण त्रिभुवन-अभिराम।
झरनों से मिल कभी झूमकर फूल-सदृश मैं झरता हूँ;
गगन-गोद में कभी प्रफुल्लित खग-सा मुक्त विचरता हूँ।
हूँ कल्याण-पंथ का पंथी, हूँ विराट मैं हूँ पागल;
इष्ट-देव की पूजा करता स्वर्ण-कुसुम से भर अंचल।
तुंग हिमालय-शैल-शिखर पर बैठा हूँ मैं मोह बिसार;
रस-संलिप्त, विरक्त कभी हूँ विश्व-विदित कवि मैं सुकुमार।

श्रीकेदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास

(१)

'स्वराज्य-सोपान'-नामक दैनिक समाचार-पत्र के संपादक अपने कमरे में बैठे हुए अपनी संपादकीय डाक देख रहे थे। उसी समय चपरासी ने उनको एक कार्ड लाकर दिया। कार्ड को देखकर संपादक ने कहा—"उन्हें भेजो।"

चपरासी चला गया। थोड़ी देर पश्चात एक खद्दरधारी युवक कमरे में प्रविष्ट हुआ। संपादक को देखकर उसने दोनों हाथ जोड़कर 'वंदे' कहा। संपादकजी मुस्किराकर बोले—"आइए शुक्लजी, आप कब पधारे?"

युवक कुरसी पर बैठता हुआ बोला—"कल शाम को आया था।"

संपादकजी विस्मय का भाव दिखाते हुए बोले—"अच्छा! ठहरे कहाँ?"

"एक धर्मशाला में ठहर गया हूँ।"

"यह क्यों, यहीं क्यों न चले आए?"

"बात यह है कि कल समय बहुत हो चुका था। मैंने सोचा, आफ़िस बंद हो गया होगा।"

"आफ़िस बंद हो गया था, तो क्या खुल नहीं सकता था?"

"हाँ, खुल तो सकता था; परंतु मैंने सोचा, क्यों असुविधा उत्पन्न करूँ।"

"असुविधा की कौन बात थी—ख़ैर! अब आप यहाँ आ जाइए। यहाँ दो कमरे बिलकुल ख़ाली पड़े हैं। आप उन्हीं में डेरा जमाइए।"

"अच्छी बात है।"

"तो असबाब कब लाओगे?"

"आज किसी समय ले आऊँगा। आप कहाँ रहते हैं?"

"मैं भी निकट ही रहता हूँ—यहाँ से पाँच मिनट का रास्ता है।"

"तब तो बड़ा अच्छा है।"

"और कोई बात?"

"बस, और कौन बात है। कल से कार्य आरंभ करूँगा।"

"कल से आरंभ करना चाहे परसों से, कोई जल्दी नहीं है, दो-एक दिन आराम कर लो।"

"आराम तो करता ही था। आराम से तबियत ऊबी हुई है। काम करने को जी चाहता है।"

संपादकजी हँसकर बोले—"यह बात है? अच्छा, तो जब से इच्छा हो, तब से आरंभ कर दो।"

"कल ही से करूँगा।"

"कल ही से सही।"

× × ×

शुक्लजी उसी दिन संध्या-समय सी० आई० डी० इंसपेक्टर के पास पहुँचे। इंसपेक्टर ने उन्हें एकांत में ले जाकर पूछा—"आप कब आए?"

शुक्लजी ने कहा—"मैं कल आया था।"

"मेरा पत्र आपको मिल गया था?"—इंसपेक्टर ने पूछा।

"जी हाँ, उसी के अनुसार मैंने यहाँ आना निश्चित किया।"

"अच्छा तो यहाँ आपको क्या करना होगा, यह तो आप जानते ही हैं।"

"जी हाँ, उसमें से पहला काम तो मैं पूरा कर चुका।"

"कौन-सा?"

"मैंने 'स्वराज्य-सोपान' में सहकारी संपादक का स्थान प्राप्त कर लिया।"

"अच्छा! शाबाश, तब फिर अन्य बातें सरल हो गईं।"

"जी हाँ।"

"मैं एक बार फिर समझा दूँ।—आप संपादक पर अपनी दृष्टि रखिए। उनके विचार कैसे हैं, उनके पास कौन-कौन आदमी आते हैं, उनका पत्र-व्यवहार किससे होता है और किस संबंध में होता है, इसका पता रखिएगा। संपादकजी जब कभी बाहर जायँ, तो इस बात का पता लगाकर कि वह कहाँ जा रहे हैं, उसकी सूचना तुरंत मुझे या मेरे सहकारी को—जो उस समय यहाँ मौजूद हो—दीजिए। इनके अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो कुछ आप अपनी बुद्धि और समझ से कर सकें, वह कीजिएगा।"

"बहुत अच्छा।"

"एक बात का ध्यान रखिएगा। अपना भेद किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह आपका कितना ही घनिष्ट मित्र क्यों न हो, कभी मत दीजिएगा। सी० आई० डी० विभाग का पहला सिद्धांत यह है कि अपने अफ़सरों तथा सहकारियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को कभी अपना भेद न दे, चाहे वह अपना मित्र हो अथवा रिश्तेदार!"

"ये बातें मैं समझता हूँ।"

"समझने को तो बहुत-से लोग समझते हैं, पर उनके अनुसार कार्य नहीं करते। बहुतेरे तो इतने गधे होते हैं कि अपने को सी० आई० डी० का आदमी प्रकट करने में कुछ गर्व का अनुभव करते हैं। इस काम में सफलता तभी मिलती है, जब किसी को आपके असली व्यक्तित्व और इरादों का पता न चले।"

"बिलकुल ठीक है। आप निश्चिंत रहें। जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा।"

"तो बस, अब मैं निश्चिंत हूँ। आप जब कोई आवश्यक बात हो—जैसे कोई नया आदमी संपादक के पास आवे और उस पर आपको संदेह उत्पन्न हो अथवा कोई ऐसा पत्र मिले, जिसमें कोई संदेह की बात हो, तो उसकी सूचना मेरे दफ़्तर में दीजिएगा।"

"बहुत अच्छा।"

शुक्लजी चलने के लिये उद्यत हुए। इंसपेक्टर ने खड़े होकर कहा—"यह तो शायद आपको मालूम ही है कि इस नगर में आपका सहकारी कोई नहीं है और मैं तथा मेरे सहकारी आपके अफ़सर हैं।"

"यहाँ की स्थानीय सी० आई० डी०—।"

इंसपेक्टर शुक्लजी का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही बोल उठा—"यहाँ की स्थानीय सी० आई० डी० से आपका कोई संबंध नहीं है। उनके लिये आप उतने ही अपरिचित हैं, जितने कि एक साधारण आदमी के लिये। आप केवल ये दो बातें याद रक्खें—एक तो यह कि आप यहाँ अकेले हैं—आपका कोई सहकारी नहीं है और मैं और मेरा सहकारी आपके अफ़सर हैं। यह मैं पहले बतला चुका हूँ कि अपना रहस्य अपने सहकारी तथा अफ़सरों को छोड़कर किसी पर प्रकट न कीजिए—तो इससे क्या नतीजा निकला?"

"यही कि आप और आपके सहकारी के अतिरिक्त यहाँ और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिस पर मैं अपना व्यक्तित्व तथा अपनी नीति प्रकट करूँ।"

"ठीक! अब आप अपना कार्य आरंभ करें।"

(२)

शुक्लजी को 'स्वराज्य-सोपान' में कार्य करते हुए तीन मास व्यतीत हो गए हैं। पत्र-संपादक शुक्लजी से यथेष्ट स्नेह करने लगे हैं। संध्या-समय कार्य से छुट्टी पाकर शुक्लजी बहुधा संपादकजी के घर पर पहुँच जाते हैं और बहुधा भोजन भी वहीं करते हैं। संपादकजी के दो छोटे बच्चे उनसे हिल गए हैं—शुक्लजी बहुधा उनको खिलाया करते हैं।

एक दिन संध्या-समय शुक्लजी संपादक के मकान पर पहुँचे। उन्होंने संपादकजी के कमरे में पहुँचकर अवाज़ दी—"शांति! क्या कर रही है?"

उनके आवाज़ देते ही एक पंचवर्षीय बालिका घर के भीतर से दौड़ी आई और 'चाचा-चाचा' कहकर उनसे लिपट गई। शुक्लजी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—"क्या कर रही थी?"

लड़की ने कहा—"कुछ नहीं, बैठी थी।"

"खाना खा लिया?"

"हाँ।"

"पिताजी क्या कर रहे हैं?"

"नहा रहे हैं।"

शुक्लजी बालिका को गोद में लिए बाहर आ गए। कमरे के सामने कुछ थोड़ी-सी खुली भूमि थी। वहाँ खूब पानी छिड़का हुआ था और तीन-चार कुरसियाँ पड़ी हुई थीं। शुक्लजी एक कुरसी पर बैठ गए। बालिका थोड़ी देर पश्चात् भीतर चली गई। बालिका के भीतर जाने के पाँच मिनट पश्चात् संपादकजी बाहर आए और बोले—"कहिए शुक्लजी, क्या है?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया।"

"भोजन कर चुके?"

"जी हाँ।"

"न किया हो, तो यहाँ तैयार है—कर लो।"

"नहीं, मैं खा-पीकर आया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा तो फिर बैठो, मैं भोजन करके अभी आता हूँ।"

"हाँ-हाँ, आप भोजन कर आइए—मैं बैठा हूँ।"

संपादकजी चले गए।

बीस मिनट के पश्चात् संपादकजी बाहर आए और शुक्लजी के पास कुरसी पर बैठ गए। नौकर ने पान दिए। पान खाकर संपादकजी पेट पर हाथ फेरते हुए बोले—"आज शाम की डाक से मुझे एक पत्र मिला है। उस पत्र के अनुसार मैं कल शाम को तीन-चार दिन के लिये बाहर जाऊँगा।"

शुक्लजी ढीले-ढाले बैठे थे। संपादकजी की बात सुनकर सजग हो गए। उन्होंने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"कहाँ जाइएगा?"

"बनारस जाऊँगा।"

"कुछ काम है?"

"हाँ, वहाँ मेरे एक संबंधी हैं, उनके यहाँ विवाह है।"

"बच्चे भी जायँगे?"

"नहीं, बच्चों को ले जाना झंझट है। गरमी बहुत पड़ रही है—अकेला ही जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, हो आइए।"

"मुख्य लेख और टिप्पणियाँ आपको लिखनी पड़ेंगी।"

"लिख लूँगा।"

"अन्य सब कार्य तो उपसंपादक लोग कर ही लेंगे।"

"आप निश्चिंत रहें, सब हो जायगा।"

"मुझे अधिक-से-अधिक चार दिन लगेंगे, जिसमें एक दिन के लिये अर्थात् परसों के लिये तो मैं मुख्य लेख दे ही जाऊँगा और हो सका, तो टिप्पणियाँ भी लिख दूँगा। शेष तीन दिन आपको सब लिखना पड़ेगा।"

"कोई बात नहीं, टिप्पणियाँ तो बहुधा मैं ही लिखता हूँ—रह गया केवल मुख्य लेख, सो तीन दिन की तो बात ही है। हाँ, लेख उतने अच्छे न होंगे, जितने आपके होते हैं।"

"नहीं, आप भी अच्छा लिखते हैं। आपने अभी एक दो मुख्य लेख लिखे, दोनों अच्छे थे।"

"अजी अभी मुझे लिखना-विखना आता ही कहाँ है—हाँ, आपकी सेवा में कुछ दिन रहने का सुअवसर मिला, तो कुछ सीख जाऊँगा। कल किसी ट्रेन से आइएगा?"

"रात में दस बजे के लगभग एक ट्रेन जाती है। उसी से जाऊँगा।"

"आपके संबंधी वहाँ किस मुहल्ले में रहते हैं?"

"ठठेरी बाज़ार में रहते हैं—क्यों?"

"मैं भी कुछ दिन बनारस में रहा हूँ। मैंने सोचा, कदाचित् मैं उन्हें जानता होऊँ।"

"वह कोई प्रसिद्ध आदमी तो हैं नहीं, साधारण आदमी हैं, बरतनों की दूकान करते हैं।"

"बरतनवाले तो कई मेरे परिचित हैं। उनका नाम क्या है?"

संपादकजी ने नाम बता दिया। शुक्लजी कुछ क्षण तक सोचकर बोले—"उन्हें मैं नहीं जानता।"

इसके पश्चात् थोड़ी देर इधर-उधर की बातचीत करके शुक्लजी बोले—"अच्छा, तो अब जाता हूँ। टहलता हुआ आफ़िस चला जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, जाओ। मैं भी अब ऊपर छत पर जाकर लेटता हूँ। आठ तो बजा होगा?"

शुक्लजी अपनी रिस्टवाच देखकर बोले—"हाँ, आठ बजके दस मिनट हुए हैं।"

वहाँ से चलकर शुक्लजी सीधे खुफ़िया-पुलीस-इंसपेक्टर के पास पहुँचे। उन्हें देखकर इंसपेक्टर ने पूछा—"कहो, क्या समाचार है?"

"समाचार ये हैं कि कल संपादकजी बनारस जायँगे—दस बजे रात की गाड़ी से।"

"किस काम से जा रहे हैं?"

"उनका कथन तो यह है कि कोई विवाह है, उसमें जा रहे हैं।"

"कहाँ ठहरेंगे?"

शुक्लजी ने पूरा पता बता दिया।

इंसपेक्टर ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"तीन महीने आपको हो गए। आपने अभी तक कोई ऐसी बात न बताई, जिससे कुछ काम निकलता।"

"कोई ऐसी बात ही नहीं हुई, होती तो बताता।"

"हुई क्यों न होगी, पर जान पड़ता है, आपको पता नहीं लगता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो असंभव है। मैं आफ़िस में ही रातदिन रहता हूँ। प्रत्येक आदमी को देखता रहता हूँ। जितनी चिट्ठियाँ आती हैं, उन्हें भी पढ़ता हूँ। केवल संपादक की व्यक्तिगत डाक मुझे पढ़ने को नहीं मिलती।"

"वही तो ख़ास चीज़ है।"—इंसपेक्टर ने मेज़ पर हाथ मारकर कहा।

"वह तो मुझे देखने को मिल ही नहीं सकती।"

"ज़रूरत उसे ही देखने की है। साधारण संपादकीय पत्रों में क्या धरा है?"

"देखिए, चेष्टा करूँगा।"

"इस विभाग में आपकी उन्नति तभी हो सकती है, जब आप कोई काम करके दिखाइएगा।"

"चेष्टा तो मैं ऐसी ही कर रहा हूँ।"

"आपको तीन महीने की मोहलत और दी जाती है। यदि इतने समय में आपने कोई काम न किया, तो फिर आपको यहाँ रखना व्यर्थ होगा। समझे?"

"हाँ, समझ गया। चेष्टा करूँगा।"

"अच्छी बात है—जाइए।"

(३)

संपादकजी के बनारस जाने के दो दिन पश्चात् शुक्लजी महाराज पुनः इंसपेक्टर के पास पहुँचे। इंसपेक्टर ने उन्हें देखकर किंचित् उत्सुकतापूर्ण स्वर में कहा—"कहिए, कोई नई बात?"

शुक्लजी ने 'स्वराज्य-सोपान' का ताज़ा अंक उनके सामने रख दिया और कहा—"इसका मुख्य लेख पढ़ जाइए।"

इंसपेक्टर ने मुख्य लेख पढ़ा। लेख पढ़ चुकने के पश्चात् उसने कहा—"लेख तो बहुत ही कड़ा है। इसके कारण तो संपादक निश्चय फँस जायगा।"

"तो बस, ठीक है। इसी लिये तो लिखा ही गया है।"

"किसने लिखा है?"

"मैंने!"

"अच्छा!"

"जी हाँ! उस दिन आपने कहा था कि कुछ काम करके दिखलाओ, सो फ़िलहाल मुझे यही सूझा। संपादकजी बाहर गए हुए हैं। आजकल मैं ही लिखता हूँ। मैंने सोचा, यह अच्छा मौक़ा है।"

इंसपेक्टर ने किंचित् मुस्किराकर कहा—"ख़ूब! परंतु इससे नतीजा?"

शुक्लजी ने सोचा था कि इंसपेक्टर उनकी इस कार्य-कुशलता पर बहुत प्रसन्न होगा; परंतु जब उसने उपरोक्त प्रश्न किया, तो शुक्लजी का मुँह उतर गया। उन्होंने लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कहा—"नतीजा?"

"हाँ, और क्या, इससे इसके अतिरिक्त और क्या होगा कि संपादक को साल-दो साल की सज़ा हो जायगी। बस!"

"और आप क्या चाहते हैं?"

"ख़ाली संपादक को जेल हो जाने से हमारा कार्य सिद्ध नहीं होता। हम तो यह चाहते थे कि हमें उनके उन साथियों और मित्रों का पता लगता, जिनके विचार राजविद्रोहात्मक हैं। संपादक के जेल चले जाने से यह बात न हो सकेगी।"

शुक्लजी हतबुद्धि होकर इंसपेक्टर का मुँह ताकने लगे। इंसपेक्टर ने कहा—"अब आप मेरा मतलब समझे?"

शुक्लजी अपने शुष्क ओठों पर जिह्वा फेरते हुए बोले—"जी!"

कुछ क्षण तक सोचकर इंसपेक्टर ने कहा—"ख़ैर, अब तो जो होना था हो गया। परंतु अब भी आपके लिये यथेष्ट समय है। इस लेख के संबंध में संपादक को सज़ा होने में तीन-चार महीने लग जायँगे—संभव है, इससे अधिक भी लग जाय। अतएव आप अपना कार्य जारी रख सकते हैं।"

शुक्लजी की जान-में-जान आई। उन्होंने दाँत निकालकर कहा—"हाँ, यह बात तो है। अभी तो काफ़ी समय है।"

× × ×

संपादकजी ने 'स्वराज्य-सोपान' का अंक मेज़ पर रखते हुए कहा—"लेख तो बहुत सुंदर रहा, परंतु कुछ बातें इसमें ऐसी आ गई हैं, जिन पर यदि सरकार चाहे तो मुक़दमा चला सकती है।"

शुक्लजी ने कहा—"चला सकती है तो चलावे, मैं इस बात से ज़रा भी भय नहीं खाता। मैं तो प्रत्येक समय जेल जाने के लिये तैयार रहता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक ने हँसकर कहा—"परंतु इस मामले में तुम्हें नहीं, मुझे जेल जाना पड़ेगा।

"क्यों ?"—शुक्लजी ने अत्यंत विस्मित होने का भाव दिखाते हुए पूछा।

"इसलिये कि पत्र का संपादक, प्रकाशक, मुद्रक, सब कुछ मैं ही हूँ।"

"परंतु लेख तो मैंने लिखा है।"

"तो इससे क्या हुआ। प्रथम तो उसमें तुम्हारा नाम नहीं है, दूसरे उसका उत्तरदाता तो मैं ही हूँ।"

शुक्लजी ने सिर झुका लिया और बहुत सुस्त हो गए।

संपादक ने शुक्लजी को प्रोत्साहित करने के अभिप्राय से कहा—"कोई अधिक चिंता की बात नहीं है। जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

शुक्लजी रोनी सूरत बनाकर बोले—"यदि आप पर कुछ आँच आई, तब तो मुझे बड़ा ही अफ़सोस होगा।"

"अफ़सोस होने की कौन-सी बात है। बहुत होगा, साल-दो साल की सज़ा हो जायगी—सौ काट आऊँगा। जब ओखली में सिर डाला, तो मूसल का क्या भय ?"

"अजी, आप मुझे आगे कर दीजिएगा। मैं साफ़-साफ़ कह दूँगा कि लेख मैंने लिखा है।"

"यह कैसे हो सकता है। प्रथम तो इससे मैं बच नहीं जाऊँगा, और यदि बच भी सकता, तब भी मैं ऐसा न करता। हमारी यह नीति नहीं है। और, हमारी ही क्या, किसी भी अच्छे संपादक की ऐसी नीति नहीं हो सकती।"

"तब तो बड़ा बुरा हुआ।"

"कुछ बुरा नहीं हुआ। जो कुछ हुआ, सब अच्छा हुआ।"

ऊपर से कहने को तो संपादकजी ने कह दिया; परंतु मन में वह शुक्लजी की इस नालायक़ हरकत पर बहुत ही कुढ़े, परंतु अपना रोष उन्होंने इसलिये प्रकट नहीं किया कि कहीं शुक्लजी उन्हें भीरु तथा कायर न समझें।

इसी समय संपादकजी के एक मित्र आ गए। उन्होंने कमरे में प्रवेश करते ही कहा—"कल के अंक में तो बड़े ज़ोर का अग्रलेख लिख मारा !"

संपादकजी किंचित् मुस्किराकर बोले—"आपको पसंद आया ?"

मित्र महोदय कुरसी पर बैठते हुए बोले—"मुझे ही क्या, सभी को पसंद आया। आपको पता हो या न हो, कल हरकारों ने दूने दाम पर अंक बेचे हैं।"

संपादकजी का सारा रोष हवा हो गया। प्रसन्नता के मारे गद्गद होकर बोले—"अच्छा !"

"जी, लेख भी तो ग़ज़ब का लिखा है। मैंने तो उसे तीन-चार बार पढ़ा। ख़ूब लिखा है—वाह वा !"

संपादकजी ने कहा—"वह लेख शुक्लजी का लिखा हुआ था।"

यद्यपि यह कहते हुए संपादकजी को थोड़ा अफ़सोस हुआ; परंतु वह इतने संकीर्ण-हृदय भी नहीं थे कि शुक्लजी को धता बताकर सारा यश स्वयं लूट लेते।

मित्र महोदय शुक्लजी की ओर देखकर बोले—"अच्छा ! तब तो और भी कमाल की बात है। शुक्लजी, आप तो छिपे रुस्तम निकले।"

शुक्लजी दाँत निकालकर बोले—"अजी, मैं क्या हूँ ? यह सब संपादकजी की शिक्षा का फल है।"

"हाँ, फिर इनकी शिक्षा ऐसी-वैसी थोड़ा ही हो सकती है। इस समय आपके जोड़ का संपादक हिंदी में और है कौन ?"

संपादकजी ने संतोष की श्वास छोड़कर मन में सोचा—"चलो, मूलयश तो हमीं को प्राप्त है।" इस विचार ने संपादकजी के हृदय की संकुचित उदारता को बाहर की ओर ठेला। अतएव उन्होंने कहा—"शिक्षा ग्रहण करने के लिये शिष्य में योग्यता भी तो होनी चाहिए। शुक्लजी में योग्यता है, इसलिये इन्होंने शिक्षा को शीघ्र ग्रहण कर लिया। बहुत-से तो ऐसे होते हैं कि वर्षों सीखने पर भी उन्हें एक वाक्य लिखना नहीं आता।"

मित्र ने गंभीरतापूर्वक कहा—"यही बात है ! जब गुरु और चेला, दोनों योग्य होते हैं, तभी कुछ होता है !"

(४)

उपर्युक्त घटना हुए दो मास व्यतीत हो गए। शुक्लजी के लेख की चर्चा आठ-दस दिन रही, इसके पश्चात् क्रमशः लोग उसे भूल गए।

एक दिन प्रातःकाल पुलीस ने संपादकजी का घर और 'स्वराज्य-सोपान' का दफ़्तर घेर लिया। दोनों स्थानों की तलाशी लेने के पश्चात् पुलीस संपादकजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गिरफ़्तार करके ले गई। अपराध वही—पत्र में राजविद्रोहात्मक लेख लिखने का—लगाया गया।

संपादकजी उसी दिन ज़मानत पर छुड़ा लिए गए। उचित समय पर उनका विचार आरंभ हुआ। हुक्म सुनाए जाने के चार दिन पूर्व संपादकजी ने शुक्लजी से कहा—"शुक्लजी, मैं तो अब जेल जा रहा हूँ—"

शुक्लजी घबराहट का भाव दिखाते हुए बोले—"क्या यह निश्चित है ?"

"बिलकुल।"

"यह आपने कैसे जाना ?"

"अरे भाई, यह तो स्पष्ट बात है। जैसी परिस्थिति है, उसके देखते हुए तो बचना असंभव ही है। आगे ईश्वराधीन है। हाँ, तो मेरी अनुपस्थिति में पत्र का समस्त भार आप ही पर रहेगा।"

शुक्लजी चकित होकर बोले—"मुझ पर रहेगा ?"

"हाँ, आप पर रहेगा। मुझे अन्य कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता, जिस पर मैं पूर्ण विश्वास कर सकूँ।"

शुक्लजी मूर्तिवत् बैठे संपादकजी का मुँह ताकते रहे।

संपादकजी कहते गए—"अधिक-से-अधिक दो वर्ष की सज़ा होगी। दो वर्ष तक सब आप ही को करना होगा। यदि कोई योग्य सहकारी मिल जाय, तो उसे रख लीजिएगा। उपसंपादक दो हैं ही। बस, काम चलता रहेगा और एक दया कीजिएगा—जब तक मैं छूट न आऊँ, तब तक कोई लेख ऐसा न लिखिएगा, जो सरकार की दृष्टि में आपत्तिजनक हो; क्योंकि यदि आप भी जेल में पहुँच गए, तो यहाँ का सब काम चौपट हो जायगा। और, घर की देख-रेख भी आप ही रखिएगा। वैसे तो मैंने अपने एक रिश्तेदार को लिख दिया है। वह कल-परसों तक आ जाँयगे। परंतु निरीक्षण आपका ही रहेगा। वह केवल घर का प्रबंध सँभाले रहेंगे।"

शुक्लजी मौन बैठे रहे।

संपादकजी ने कहा—"आप तो गुमसुम बैठे हैं—कुछ 'हाँ-नहीं' तो कहिए।"

शुक्लजी बोले—'हाँ-नहीं' क्या कहूँ। मुझे जब यह ध्यान आता है कि केवल मेरे कारण आप पर यह मुसीबत पड़ी—।"

"इसका ध्यान आप बिलकुल छोड़ दीजिए। यह कार्य ही ऐसा है। इसमें मनुष्य का एक पैर जेलख़ाने में हो रहता है। आपका कोई अपराध नहीं। आपके लेख से पत्र को लाभ ही पहुँचा। जब से वह लेख निकला, तब से ग्राहक-संख्या बढ़ गई है।"

"मुझे तो बड़ा अफ़सोस है।"

"आपका अफ़सोस बेकार-सा है। हम लोगों का तो यह काम ही है। कल मैं आपको संपादक, मुद्रक और प्रकाशक बनाने के लिये डिक्लेरेशन दिलवा दूँगा। बस, फिर मैं निश्चिंत हो जाऊँगा।"

शुक्लजी का कलेजा धड़कने लगा।

इस वार्तालाप के पश्चात् शुक्लजी इंसपेक्टर साहब से मिले और उन्होंने सब वृत्तांत उसे सुनाया। इंसपेक्टर ने कहा—"आप कदापि इस झंझट में न पड़िएगा—अन्यथा आप सी० आई० डी० विभाग से अलग कर दिए जायँगे।"

"परंतु, यदि मैं इस समय स्वीकार न करूँगा, तो पत्र के बंद हो जाने का भय है।"

"बड़ी सुंदर बात है! हम तो यह चाहते ही हैं कि पत्र बंद हो जाय।"

"परंतु कल संपादकजी मेरे नाम से डिक्लेरेशन देने वाले हैं।"

"आप स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दीजिए।"

"मैं जिस परिस्थिति में हूँ, उसके देखते हुए तो यह बहुत कठिन है।"

"परिस्थिति कुछ नहीं, आप यह काम मत कीजिएगा। न हो, कुछ बहाना करके टल जाइए।"

"कहाँ टल जाऊँ ?"

"कहीं बाहर चले जाइए।"

शुक्लजी बोले—"अच्छा, चेष्टा करूँगा।"

इंसपेक्टर ने किंचित् कर्कश स्वर में कहा—"चेष्टा के क्या अर्थ! हम लोग ऐसा शब्द सुनने के कम अभ्यस्त हैं। यह कहिए कि ऐसा ही होगा।"

इंसपेक्टर का यह कथन शुक्लजी को बुरा लगा। उन्होंने कहा—"इस प्रकार एकदम से भाग जाने से लोग मुझे क्या कहेंगे और संपादकजी क्या समझेंगे ?"

"ओफ़ ओह! आप तो बड़े सहृदय मालूम होते हैं! ऐसा ही था, तो आपने लेख लिखकर उन्हें फँसाया ही क्यों ? मैंने तो आपसे लेख लिखने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा नहीं था।"—इंसपेक्टर ने व्यंग्य-पूर्वक मुस्किराते हुए कहा।

शुक्लजी कुछ उत्तर न दे सके। उन्होंने अपना सिर झुका लिया।

इंसपेक्टर पुनः बोला—"इस विभाग में सहृदयता काम नहीं देती। इसमें तो बस, जो आपसे कहा जाय, उसे आँखें बंद करके कीजिए। तभी आप इसमें टिक सकेंगे और उन्नति कर सकेंगे।"

शुक्लजी ने सोचकर कहा—"अच्छी बात है।"

शुक्लजी इंसपेक्टर के पास से चले आए। रात में बड़ी देर तक शय्या पर पड़े-पड़े शुक्लजी इस समस्या पर विचार करते रहे। एक ओर उन्हें संपादकजी की सरलता, अपने ऊपर उनके स्नेह तथा विश्वास का विचार आता रहा, दूसरी ओर इंसपेक्टर की क्रूरता, स्वार्थ तथा हृदयहीनता का ध्यान आता रहा। शुक्लजी ने सोचा—"इंसपेक्टर और संपादकजी में से कौन-सा स्वामी श्रेष्ठ है। एक तो हम पर इतना विश्वास और स्नेह करता है कि यद्यपि हमारे द्वारा ही वह जेल जा रहा है, तथापि वह अपना सर्वस्व हमें सौंप जा रहा है। दूसरा ओर ऐसा स्वामी है, जो प्रथम श्रेणी का स्वार्थी है, जो 'चेष्टा' शब्द कहने पर तोते की तरह आँखें बदल लेता है, जिसका बातचीत हुकूमत और धमकी से पूर्ण रहती है, जो हम पर पूर्णतया विश्वास नहीं करता, जो ज़रा-सी भूल होने पर हमारा शत्रु बन सकता है।"

× × ×

दूसरे दिन शुक्लजी से संपादकजी बोले—"आज तुम्हारी ओर से डिक्लेरेशन दाख़िल हो जाना चाहिए।"

शुक्लजी ने कहा—"अच्छी बात है।"

उसी दिन डिक्लेरेशन फ़ाइल कर दिया गया। डिक्लेरेशन फ़ाइल होने के तीसरे दिन हुक्म सुनाया गया। संपादकजी को डेढ़ साल की सज़ा तथा २००) जुर्माना हुआ।

× × ×

संपादकजी के जेल चले जाने के पश्चात् शुक्लजी ने 'स्वराज्य-सोपान' का संपादन बड़ी योग्यता-पूर्वक किया। डिक्लेरेशन फ़ाइल होने के एक दिन पूर्व शुक्लजी इंसपेक्टर से मिले थे, तब से वह उससे नहीं मिले। एक दिन रास्ते में उससे मुठभेड़ हो गई। इंसपेक्टर ने मुस्किराकर व्यंग्यपूर्वक कहा—"अब तो आप पूरे देशभक्त बन गए?"

"जी हाँ, आप अपना मतलब कहिए।"

"मेरा मतलब? वह भी आपको जल्द मालूम हो जायगा। अफ़सोस केवल इतना है कि एक दिन आपको भी जेल की हवा खानी पड़ेगी।"

"उसके लिये तो मैं स्वयं तैयारी कर रहा हूँ, केवल संपादकजी के आने की देर है।"

"अच्छा!"—इंसपेक्टर ने आश्चर्य से पूछा।

"आपको शक भी है क्या? आख़िर आपकी बातों में आकर मैंने जो पाप किया है, मुझे उसका प्रायश्चित्त भी तो करना है। बिना जेल गए प्रायश्चित्त होगा नहीं।"

"अच्छा! तो जेल जाने के लिये क्या कीजिएगा?"

"कुछ नहीं, जैसा एक लेख पहले संपादकजी को फँसाने के लिये लिखा था, वैसा ही एक फिर लिख दूँगा। और, संपादकजी के छूटने के ठीक दो महीने पूर्व लिखूँगा।"

"यदि आप हमारा काम करते रहते, तो यह नौबत काहे को आती? इस समय चैन करते होते।"

"भगवान् उस चैन से बचावे। उस चैन से यह बेचैनी कहीं अच्छी है।"—इतना कहकर शुक्लजी चल दिए। इंसपेक्टर ओंठ चबाते हुए उनकी ओर ताकता रह गया।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

तू और मैं

मेरी वीणा है सुकुमार,
कोमल स्वर हैं चंचल तार!
सखि, तेरे गंभीर गान में
भरा हुआ वैभव का भार,
सजे हुए उर के उद्गार!
कैसे हम तुम, एक साथ मिल,
विश्व-विपिन में करें विहार,
मिला स्वरों को एकाकार?
मेरी वीणा है सुकुमार!

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचा है तेरा संसार!
तरु के नीचे, इस कुटिया में,
सीमित है मेरा मृदु प्यार!
ऊषा से अनुराग, तुहिन के
रजत-कणों से रस अविकार,
निर्झरिणी से स्वर सुकुमार,
फूलों से ले सुरभि उधार,
बना हुआ है नंदन-कानन
मेरे नयनों में साकार!

× × ×

छोटा-सा सुख, नत मस्तक पर
अपना आँचल सदय पसार,
छू-छूकर वेदनाविपंची
के छोटे-छोटे मृदु तार,
तन्मयता की चरणरेणु पर
बिछा रहा है बारंबार—
मेरे मानस की झंकार!
ऊँचा है तेरा संसार!
तरु के नीचे इस कुटिया में,
सीमित है मेरा मृदु प्यार।

जगन्नाथप्रसाद "मिलिंद"

पुराणों में प्राप्त समय की जटिलता

आर्यों तथा भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का मुख्य आधार आर्यों का प्राचीन साहित्य है। उससे पहले का पता देनेवाला किसी भी भारतीय अन्य जाति का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। आर्यों से पहले का इतिहास भी केवल इन्हीं आर्य-ग्रंथों में दिए हुए विविध प्रसंगों के आधार पर निर्भर है।

आर्य-साहित्य में वेद सबसे प्राचीन हैं। उनके ८,००० बी० सी० से भी अधिक प्राचीन होने के प्रमाण मिले हैं। इतने ही समय की प्राचीन चित्र-लिपि में वेदों के विषय लिखे मिले हैं। उनसे वेदों तथा लेखन-कला की प्राचीनता अनुमान से १० या १२ हज़ार बी० सी० तक पहुँच जाती है। आर्यों के अन्य ग्रंथ वेदों के बाद के हैं। उनके निर्माण के समय भिन्न-भिन्न हैं। आर्य-साहित्य का अधिकांश मुख्य विषय धार्मिक है। जो ग्रंथ धर्म-संबंधी नहीं हैं, उनमें भी धार्मिक भावों की प्रधानता है। इनमें ऊँचे दर्जे की साहित्य-शैली के साथ कवित्व-शक्ति की अनोखी प्रतिभा दिखलाई पड़ती है। धार्मिक भावों को चिरस्थायी तथा साहित्य को अलंकृत करने के आवेश में प्राचीन रचयिताओं ने जटिलता उत्पन्न होने अथवा उपयोगिता नष्ट होने की तनिक भी परवा नहीं की है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बहुत-सी उपयोगी बातें साफ़-साफ़ समझ में नहीं आती हैं।

आर्य-साहित्य में पुराण और इतिहास भी हैं। उनमें समय, अवतार आदि-संबंधी विषय दुरूह हो रहे हैं। प्रत्येक बात धार्मिक चमत्कार-युक्त अत्यंत गूढ़, गंभीर प्राचीनता-सूचक भाव में व्यक्त है। धर्म में विवेक का उपयोग करना विचलित होना-सा है। अतः प्राचीन आर्य-इतिहास छूत-छात से दूर ऊँचे सिंहासन पर रक्खा हुआ है। अनेक पुराण धार्मिक उत्सवों पर सुने भी जाते हैं। परंतु समय आदि-संबंधी पहेलियाँ तथा धार्मिक कथानकों की बहुलता और कितने ही परस्पर के अनमिल वर्णनों के कारण वह केवल धार्मिक कथाओं के समान सुनने के योग्य-सा ही रह गया है। साधारण तौर पर पुराणों का वर्तमान रूप बड़ी ही मनोहर धार्मिक कहानियों का संग्रह-मात्र हो रहा है। उनको ऐतिहासिक प्रणाली पर मनन करने का भाव लुप्त-सा हो गया है। निदान आर्य-हिंदू पूर्णतया भूलते जाते थे कि उनका ठीक समय और क्रमोत्कर्ष प्राचीन इतिहास-पुराणों में भरा पड़ा है और केवल ऐतिहासिक उपयोगिता के विचार से उसका मान करना कर्तव्य है तथा परमात्मा-संबंधी धार्मिक विचारों से उसका संबंध नहीं है। अंत में पाश्चात्यों ने जब आर्य-साहित्य से ही जोड़-तोड़कर आर्य-हिंदुओं के विषय में औंधी-सीधी बातें कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरंभ किया, तब देशी विद्वान् पुराणों की ऐतिहासिक उपयोगिता पर ध्यान देने को विवश हुए। उन्होंने समुचित रीति पर पुराणों तथा अन्य ग्रंथों का मनन करके उत्तम इतिहास लिखे हैं। परंतु बहुत कुछ तोड़-मरोड़ करने पर भी समय आदि-संबंधी जटिलता अब तक प्रायः ज्यों-की-त्यों बनी है। अतएव जो कोई विद्वान् आर्यों के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करता है, वही उलझन में पड़ जाता है। इतिहास के विद्वानों ने अभी तक इतिहास के मुख्य अंग समय, तथा आर्यों के प्रभाव जमानेवाले कई अवतारों, सुर, असुर आदि के भेदों की समस्याओं को केवल अनुमान पर ही अवलंबित कर रक्खा है।

ये विषय आर्य तथा भारत के प्राचीन इतिहास से संबंध रखते हैं। इस लेख में हम इन्हीं पर विचार करते हैं। हमारे विचार के आधार वही हैं, जो सब विद्वानों के सामने हैं। उनकी मधुर जटिलता ने हमारी विचार-धारा को विशेष आनंद दिया है, और उनका समन्वय करने में हमने बहुत समय लगाकर यथाशक्ति प्रयत्न किया है। प्रत्येक समस्या पर अलग स्वतंत्र रूप से विचार किया है। अंत में सबको मिलाने पर ये सभी बातें नियमित प्रणाली के ढंग पर परस्पर समर्थित होती हुई हमको पूर्णरूप से संतोष-जनक समझ पड़ती हैं। अतएव विद्वानों के प्रौढ़ विचार जानने के लिये उनको प्रकाशित करना हमको आवश्यक समझ पड़ता है।

इस लेख में हम पौराणिक समय के दिवस, वर्ष और युग-संबंधी विचार प्रकाशित करते हैं। यदि वे विद्वानों के निर्णय से ठीक जमते तथा इतिहास को किसी रूप में उपयोगी अथवा इस रहस्य के मार्ग-दर्शक होते दिखलाई देंगे, तो अपने श्रम को सफल समझकर हम इसी संबंध के अन्य विषयों के विचार भी यथावकाश क्रमशः शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

इतिहास में समय का प्रश्न मुख्य है। पुराणों में दिव्य वर्षों, युगों और मन्वंतरों में समय देने की अनोखी प्रणाली रक्खी गई है। उनमें जो हज़ारों, लाखों और करोड़ों वर्षों की आयु, युग, मन्वंतर आदि लिखे गए हैं, वे अनेक युक्तियों से बैठालने पर भी संतोषप्रद नहीं होते हैं। उनकी गणना की एक निश्चित-सी प्रणाली अथवा चाभी नहीं मिलने से वर्ष बैठते हैं, तो युग नहीं बैठते और युग बैठते हैं, तो मन्वंतर मस्तिष्क को चकरा देते हैं। साथ ही उनकी अनोखी शैली अलौकिक धार्मिक भावों को बढ़ाती है, अथवा नवीन विचारवालों के मन में अरुचि उत्पन्न कर देती है। ऐसी समय-संबंधी तथा अन्य उलझनों के कारण पुराणों का यथार्थ ऐतिहासिक महत्त्व बहुत कम-सा है। परंतु विचारपूर्वक देखा जाय, तो वे आर्यों के स्वच्छ इतिहास-ग्रंथ हैं। उनमें आर्यों का अति प्राचीन सांगोपांग तथा पूर्ण और उत्कृष्ट इतिहास भरा हुआ है। उनमें समय और क्रम, सब ठीक दिए हैं। परंतु उनके लेखकों ने अपनी साहित्यिक अलंकार और गूढ़ार्थ संबंधी बड़ी ही ऊँचे दर्जे की गंभीर प्रतिभा दर्शाने और इतिहास में भी धार्मिक अलौकिक भावों को स्थायी करने के अभिप्राय से, बिना किसी बात को बिगाड़े, दिव्यकाल, अर्थ और रूपकों के अटके भर दिए हैं, धार्मिक कथाएँ शामिल की हैं और प्रत्येक विषय को उलझा हुआ-सा कर दिया है। कथाओं, रूपकों और अर्थों का निर्णय तो थोड़े-बहुत विचार से हो जाता है, परंतु समय बैठना असंभव हो रहा है। विद्वानों ने समय बैठाले हैं, परंतु विशेष समर्थक आधार न मिलने से उनसे स्वयं उनको ही संतोष नहीं हुआ है।

पुराणों में समय के विभाग यत्रतत्र कुछ भेदों के साथ प्रायः निम्न-चक्र के अनुसार मिलते हैं—

पौराणिक समय

(१) ३० मुहूर्त=१ दिनरात्रि

(२) १५ दिनरात्रि=१ पक्ष (पितरों का १ दिन या रात्रि)

(३) २ पक्ष=१ मास (पितरों का १ दिनरात्रि)

(४) २ मास=१ ऋतु

दिव्य या देवों का समय — मानव या मनुष्यों का समय

(५) १ दिन या रात्रि =३ ऋतु=१अयन (६ मास)

(६) १ दिनरात्रि अर्थात् अहोरात्रि (देवों का दिन उत्तरायण और रात्रि दक्षिणायन है) } २अयन=१ वर्ष =(१२ मास या ३६० दिन)

(७) १ वर्ष =३६० वर्ष

(८) सतयुग { मूल—४,८०० वर्ष=१७,२८,००० वर्ष; संधि—८०० वर्ष = २,८८,००० वर्ष }

(९) त्रेता { मूल—३,६००वर्ष = १२,९६,००० वर्ष; संधि—६०० वर्ष = २,१६,००० वर्ष }

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) द्वापर	मूल—२,४००वर्ष = ८,६४,००० वर्ष	
	संधि— ४०० वर्ष = १,४४,००० वर्ष	
(११) कलि	मूल—१,२००वर्ष = ४,३२,००० वर्ष	
	संधि—२०० वर्ष = ७२,००० वर्ष	
(१२) चतुर्युगी या महत्युग या देवयुग	मूल—१२,०००वर्ष=४३,२०,००० वर्ष	
	संधि—२,००० वर्ष = ७,२०,००० वर्ष	

चक्र में दिए हुए समय-भागों में से नं० १ साधारण है। नं० २ अर्थात् १ पक्ष १५ दिन का होता है और वह पितरों का १ दिन या रात्रि कहलाता है। नं० ३ अर्थात् १ मास में दो पक्ष होते हैं। वे पितरों के एक दिनरात कहे जाते हैं। अर्थात् पितरों के एक दिन और रात्रि हम मनुष्यों के १ मास के बराबर हैं। शुक्लपक्ष अर्थात् चाँदनी रात दिन और कृष्ण-पक्ष अर्थात् अँधेरी रात्रि उनकी रात्रि है। इस पितरों के काल-भाग का कोई विशेष प्रभाव पौराणिक इतिहास के समयों पर सीधे तौर से पड़ता मालूम नहीं होता है। परंतु इसका संबंध चांद्र-मास और वर्ष, चंद्रमा के राज्य और काल तथा देश, और उस समय आर्यों द्वारा चंद्र या उसके कुटुंब का पितर-स्वरूप माने जाने इत्यादि से होना भास होता है।

नं० ४ एक साधारण ऋतु २ मास की होती है। मनुष्यों के १२ मास के १ वर्ष में ६ ऋतुएँ होती हैं।

दिव्य दिवस—

नं० ५ से दिव्य अथवा देवताओं के काल का सिल-सिला आरंभ होता है। पुराणों में ३ ऋतु या ६ मास का एक अयन देवों का एक दिन या रात होना लिखा है। ३ ऋतुओं अर्थात् ६ महीनों का १ अयन होता है। पृथ्वी का उत्तरीय गोलार्द्ध प्रतिवर्ष ३ ऋतु अर्थात् ६ महीने सूर्य के बहुत कुछ सामने रहता है। इसी प्रकार शेष ६ महीने दक्षिणी गोलार्द्ध उसके सामने रहता है। इसी को उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। उत्तरायण में, उत्तर-ध्रुव आर्क्टिक-प्रांत में पृथ्वी का घेरा कम होने तथा सूर्य के सामने पड़ जाने से, लगातार ६ महीने प्रायः २३ घंटे तक प्रकाश रहता है। केवल १ घंटे के लिये धीमा अंधकार होता है। इस प्रकार प्रायः ६ महीने तक दिन ही रहता है। किंतु जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं, तो उत्तर-ध्रुव देशों में सूर्य-प्रकाश की दशा ठीक इसके विरुद्ध हो जाती है। पृथ्वी का पार्श्व मुड़ जाने से उसका उठा हुआ मध्यभाग उत्तर-ध्रुव और सूर्य की किरणों के बीच में पड़ जाता है, जिससे लगातार ६ महीने तक वहाँ प्रायः निविड़ अंधकार रहता है। २४ घंटों में से केवल १ घंटे के लिये धुँधला-सा प्रकाश होता है। इस प्रकार उत्तर-ध्रुव आर्क्टिक-प्रांतों में ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात होती है। ६ महीने का दिन होने पर भी वहाँ सर्दी बहुत है; क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणें सीधी नहीं पड़ती हैं, बहुत तिरछी पहुँचती हैं। आइसलैंड आदि द्वीप उसी प्रांत में हैं। आइसलैंड के निवासी एस्किमो कहलाते हैं। विद्वानों का मत है कि उत्तर-ध्रुव-प्रांत हज़ारों वर्ष पहले ऐसा शीतल नहीं था। वह मनुष्यों के वास के योग्य था, और आर्यों के पूर्वज वहीं के निवासी थे। बहुत समय बीता कि वहाँ बरफ़ और बाढ़ का भीषण तूफ़ान आया था। तब से वह प्रांत मानववास के अयोग्य हो गया है। उसी समय आर्यों के पूर्वज वहां से हटकर साइबेरिया, मध्यएशिया आदि में आए थे, और वहाँ से योरप तथा भारत आदि में फैले थे। वेद के कई मंत्रों में उषस् (प्रातःकिरणों के) काल की बहुत चाव से प्रशंसा की गई है। उन मंत्रों से प्रकट होता है कि उनके निर्माण-समय में आर्यों के पूर्वज शीतल तथा यथेष्ट सूर्य-प्रकाश-रहित भूभाग में रहते थे और उष्ण तथा पूर्ण प्रकाशित देश में बसने को व्यग्र थे। आर्यों में वर्ष का उत्तरायण-भाग उत्तम तथा पुण्य-कार्य के लिये श्रेष्ठ समझा जाता है। ध्रुव-महाराज का निवास अब तक उत्तर-ध्रुव में बतलाया जाता है। इससे प्रमाणित होता है कि आर्यों का मूल-स्थान उत्तर-ध्रुव था और वेद के बहुत कुछ अंश हज़ारों वर्ष पहले वहीं बन चुके थे। इधर पुराणों ने देवताओं के दिन और रात्रि ६-६ महीने अर्थात् एक वर्ष के होना साफ़ लिख ही दिया है। आर्य ही देव-नाम से प्रख्यात थे। अतः अपने देश में हम लोगों के लिये जो ६ महीने की ३ ऋतुएँ शरद, शिशिर और हेमंत हैं, उनमें सूर्य दक्षिणायन रहते हैं, और देव-आर्यों के मूल-स्थान उत्तर-ध्रुव से दूर पड़ जाने से, उस समय वहाँ रात्रि रहती है। यह देवों की एक रात्रि है। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं में ६ महीने सूर्य उत्तरायण होने से उत्तर-ध्रुव में ६ महीने दिन होता है। यही देवों का दिन है। पुराणों में यही लिखा है। यह सत्य है।

नं० ६ में अयनों के आधार पर मनुष्यों का १ वर्ष देवों के एक दिन और रात्रि के बराबर होना माना गया है। साधारण काल-गणना की प्रणाली से वह सत्य ही है। देवों का दिन-रात अहोरात्रि अथवा दिव्यदिवस कहलाता है। इसके आधार पर 'दिव्य'-शब्द को लेकर आगे समय उलझा देने की तैयारी की गई है। यही दिव्य-शब्द पौराणिक दिव्य वर्षों के संबंध की पहली कुंजी है।

प्रतिपालसिंह

व्रज-भावना

(षट्पदी)

लख्यौ गगन मनु खिल्यौ जलज नवनील पुष्पवत ;
ता मधि झरत पराग विमल 'रज' ज्ञान भक्ति सत ।
तेहि हित उडुगन फिरत भ्रमत जिमि स्वेत भ्रमर गन;
तउ पावत नहिं पार प्रेम बिनु हार मान मन ।
नित जो छलकत व्रज में रह्यौ, भर्यौ लबालब नेह-बस ;
बिनु प्रयास गोपिनु पियौ गोपनीय सो रस सरस ।
'नेति-नेति' कहि निगम जासु नित करत निरूपन ;
तिमि ऋषिमुनि सुरसिद्ध धरत सीसहिं जिन चरनन ।
सोइ स्यामा 'रज' स्याम कीर्त्ति निज श्रीमुख गावत ;
हरत ताप-त्रय, तासु भेद गो-लोक न पावत ।
जहँ व्रज-बासी बर रसिकजन करत प्रेम-रस-पान सब ;
मग-सीथ बीनि भल खाय बरु व्रज तजि अनत न जाय अब ।

चंद्रभानुसिंह 'रज'

कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह के पूर्वार्द्ध पर एक दृष्टि

(२)

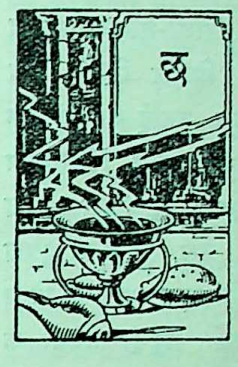

छठा लेख 'हिंदी-साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद' है। इसके लेखक श्रीभास्कर-रामचंद्र भालेराव हैं। आप शायद महाराष्ट्र सज्जन हैं। यह बात कुछ-कुछ आपकी भाषा से भी झलकती है *। लेख में नागरी-भाषा की प्राचीनता के प्रमाण में ईस्वी सन् ७७८ में लिखे गए प्राकृत के ग्रंथ 'कुवलया कथामाला' का उल्लेख किया गया है। उसमें मूल-प्राकृत के उदाहरणों की जो संस्कृत-छाया दी गई है, उसके निम्न-लिखित रूप कुछ सक़ील प्रतीत होते हैं †। यथा—

मूल-प्राकृत	संस्कृत-छाया
तेरे मेरे आउत्ति	तेरे मेरे आओ
अह मालवे दिट्ठे	मालीवयान दृष्टिवान्

इसी के आगे पृ० ८६ पर चंदवरदाई को आदि-कवि कहा है। परंतु आधुनिक शोध से तो वह प्रसिद्ध चंद

---

* "हिंदी-साहित्य का इतिहास-प्रचार, प्राचीन साहित्य-संशोधन तथा नूतन साहित्य-संवर्धन की दृष्टि से... महत्त्व-पूर्ण कहा जा सकता है।"

"यद्यपि उसे अपने कार्य में अन्य संस्थाएँ तथा व्यक्ति भी सहायक हुए हैं।"

(पृ० ८७)

"अपभ्रंश संस्कृत के प्राकृत का प्रत्यक्ष स्वरूप प्राचीन हिंदी है।"

"अवंतिका में पुष्य या पुंड-नामक हिंदी का आदि-कवि होना कहा जाता है।"

(पृ० ८८)

† शायद यह प्रेस के भूतों ने संपादक महाशय को अपनी करामात का नमूना दिखाया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पातत, पातत से पैदा हुआ, नपुंसक, सवथा मूर्ख, अंधे और कोढ़ियों*) की स्त्रियाँ हों, परंतु अपनी अशक्ति से ये उनमें बच्चे पैदा न कर सकें, तो इन पुरुषों के बंधु-बांधव उनमें जिन पुत्रों को उत्पन्न करें, वे अपनी पुरानी जायदाद के भागी हो सकते हैं।" इनमें यदि 'वृद्ध' शब्द को भी स्थान मिल जाता, तो बहुत-से लक्ष्मीपात्र सेठों को सुभीता हो जाती।

पृ० १५० पर सकामा वेश्या से बलात्कार करने पर प्रथम साहसदंड लिखा है। परंतु 'अकामायाः कुमार्या' के साथ ही 'सकामायाः' का उल्लेख होने से उक्त कथन का भी कुमारी वेश्या से ही संबंध समझना चाहिए।

यहाँ पर हम इतना निवेदन करना ही यथेष्ट समझते हैं कि—

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं'
वरना 'तीर्थगृहनागमने षण्णवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥

(कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय २)

अर्थात—ऋतुकाल के छिपाने या उस समय संभोग न करने पर प्रत्येक विवाहित पुरुष को ९६ पण जुर्माना (राज्य में) देना होगा।

नवम लेख 'प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट्' के लेखक श्रीजयशंकरप्रसाद हैं। प्राचीन आर्यावर्त के विषय में रोतरेयालोचन के लेखक आचार्य श्रीसत्यव्रत सामश्रमी महाशय ने भी अपने उक्त ग्रंथ में विशद रूप से विचार किया है। हमें आचार्य सामश्रमीजी का फैलते हुए आर्य-निवास का सप्रमाण वर्णन बहुत ही जँचता हुआ प्रतीत हुआ। श्रीयुत जयशंकरप्रसादजी के उपर्युक्त लेख में यद्यपि स्थान-स्थान पर विदेशी लेखकों के अवतरण आदि देकर स्वतंत्र रूप से विचार किया गया है, तथापि हमारी तुच्छ सम्मति में आपके आर्यावर्त-संबंधी विचार में कुछ स्थलों को छोड़कर अन्यत्र रोतरेयालोचन की छाप स्पष्ट झलकती है। अस्तु, अपने लेख के पृ० १६१ में आपने लिखा है—"वह सिंधु की सभ्यता ऋग्वेद के आर्यों की सप्तसिंधुवाली सभ्यता से भिन्न नहीं प्रमाणित होगी।"

इस पर हमारा नम्र निवेदन है कि यदि वास्तव में ऐसा होता, तो वहाँ से मिली मुहरों पर एकाक्ष-भाषा (अथवा चित्रलिपि) का प्रयोग न होता; क्योंकि ऋग्वैदिक आर्य तो इस कला में अधिक प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। फिर आगे पृ० १७५ पर आप लिखते हैं—

"जैसा पहले कहा गया है, दक्षिणी द्रविड़ों से या उनकी सभ्यता से आर्यों का संघर्ष होना मानने के लिये कोई विशेष कारण नहीं है; क्योंकि एक तो राजपूताना समुद्र बीच का व्यवधान था, दूसरे द्रविड़ों का अधिक आकृति-संबंध भी उन सुमेरियन और सिंधु के अवशिष्ट चिन्हों को छोड़ जानेवाले मनुष्यों से नहीं मिलता।"

इस विषय में हम आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया की ई० स० १९२४-२५ और १९२५-२६ की सालाना रिपोर्टों से क्रमशः सर जान मार्शल के वचन उद्धृत करते हैं—

"Who the people were who evolved it is still an open question, but the most reasonable view seems to be that they were pre-Aryan probably Dravidian people of India known in the Vedas as the Dasyus or Asuras whose culture was largely destroyed in the second or the third Millenium B. C. by the invading Aryans from the north." (page 63)

"There are two classes of the objects found at Mohasyodaro.....one is of the chessmen like objects. The other is of the ringstone.....the *Chessmen* from half an inch to a foot or more in hight, the ringstone from half an inch to three or four feet in diameter.....Taken in conjunction with the circumstances in which some of them were found these facts leave little doubt that they were objects of some cult worship.....but a more probable explanation, in the opinion of the writer, is that they (ringstones) were Yonis and that the *Chessmen* like objects were Lingas. The Yoni and Linga are well known emblems of Shiva through out the length and breadth of India and there can be no question that the Cult is one of the most ancient in the land, going back to a time long before the advent of the Aryans." (page 79)

* अर्थशास्त्र अधिकरण ३, अध्याय ५, सूत्र ३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परंतु उन्होंने स्वयं अभी इसे अपना अनुमान ही माना है।)

इन अवतरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त सिंधु की सभ्यता आर्य-सभ्यता से बिलकुल भिन्न था और संभवतः वह द्रविड़ अथवा वेदोक्त दस्युओं या असुरों की सभ्यता थी।

फिर स्वयं लेखक महाशय ने भी अपने लेख के पृष्ठ १७४ पर लिखा है—"मगध, अंग तथा मीडिया और मेसोपोटामिया के प्रदेश भी आर्य-क्षेत्र कहे जा सकते हैं, किंतु इन प्रदेशों में आर्यों को अनार्यों तथा अपनी ही जाति के भिन्न मतावलंबी अधार्मिकों से बराबर युद्ध और संघर्ष करना पड़ता था।"

अतः जिस प्रकार मगध और वंग में अनार्यों का वास माना गया है, उसी प्रकार उनके एक समाज को सिंधु-तट पर भी बसा हुआ मान लेने में क्या आपत्ति हो सकती है। इसके सिवा उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच में समुद्र का व्यवधान किस समय था, इसका भी तो कोई निश्चय नहीं है। फिर यदि वैदिक काल में वहाँ पर समुद्र का होना कहा जाय, तो भी काम नहीं चल सकता; क्योंकि स्वयं आपने पृ० १५६ पर लिखा है—"तिलक ने ज्योतिष के आधार पर अपने अन्वेषणों से यह प्रमाणित किया है कि बहुत-से वेदमंत्र छः हज़ार वर्ष ईस्वी-पूर्व से पीछे के नहीं हैं। मेगास्थनीज़ के भारतीय इतिहास के विवरण से अविरुद्ध होने के कारण भी हमारी सभ्यता उक्त काल से और पहले की ही मानी जा सकती है।

इसी प्रकार पृ० १७५ पर लिखा है—

"प्राचीन ऋग्वेद में आप कितने ही समयों के तारतम्य को स्पष्ट देख सकेंगे।" ऐसी हालत में संभव है, बीच के किसी समय में वह राजपूताना-समुद्र हट गया हो।

आपके लेख के पृ० १६० पर के उल्लेख से पता चलता है कि आप भी ऋग्वेद के निर्माण-काल के बाद तथा अथर्ववेद और शतपथ-ब्राह्मण के निर्माण के पूर्व, सुमेरियनों द्वारा वर्णित, जल-प्रलय का होना मानते हैं। तथा आपने Dr. E. Trinkler का हवाला देकर यह भी बतलाया है कि यह जल-प्रलय हिमालय तक भी पहुँचा था। जब प्रकृति के प्रभाव से इतनी बड़ी घटना का ऋक् और अथर्व के रचनाकाल के बीच हो जाना संभव है, तब उपर्युक्त 'कितने ही समयों के तारतम्य' के बीच आधुनिक राजपूताने का समुद्र से बाहर निकल आना और वहाँ पर दक्षिणी अनार्यों का आ बसना क्या बड़ी बात है। फिर बहुत-से विद्वान् इन सिंधु-निवासियों को द्रवीडियनों के पूर्वज · प्रोटो-द्रवीडियन मानते हैं। ये सुमेर की तरफ़ से आकर सिंधु के किनारे बस गए थे। आपने स्वयं भी अपने लेख के पृ० १७५ पर लिखा है कि "द्रविड़ एक स्पष्ट महाद्वीप की जाति है, जिसका मूल-उद्गम दक्षिणी अफ्रिका की काला-हारी अधित्यका है।" इस पर क्या यह प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकता कि ये लोग विना सिंधु को पार किए अपने आदि-निवासस्थान दक्षिणी अफ्रिका से दक्षिणी भारत में कैसे पहुँच गए होंगे। अस्तु, जैसा कुछ भी हुआ हो 'कृणुध्वं विश्वमार्यम्' का सिद्धांत स्पष्ट बतलाता है कि आर्य लोग अपने आदि-निवास (स्वर्ग—स्वात—काश्मीर या) अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर तथा बलख के बीच * की रमणीय भूमि से आगे बढ़ विश्व में आर्य-सभ्यता या आर्य-प्रभुत्व का विस्तार करने को सन्नद्ध थे। परंतु श्रीमान् ने अपने लेख के पृ० १७५ पर लिखा है कि "कृणुध्वं विश्वमार्य्यम्" का सिद्धांत स्पष्ट बतलाता है कि "मुख्यतः आर्य-संस्कृति एक थी, जिसे न माननेवाले उसी प्राचीन जाति के लोग भी अनार्य कहलाते थे। ऋग्वेद के आर्यावर्त में वैदिक सभ्यतावाले आर्यों को इन्हीं उच्छृंखल धर्म-विहीनों से युद्ध करना पड़ता था, जो प्रायः दस्युजीवन की ओर अधिक प्रवृत्त रहते थे।" भला इस क्लिष्ट कल्पना से भारत में या सिंधु-तट पर आर्येतर जाति के लोग ही नहीं थे, यह कैसे मान्य हो सकेगा।

पृ० १७०-१७१ पर लिखा है—

"जैसा कि आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी ने अपने पांडित्य-पूर्ण 'रोतरेयालोचन' में निर्देश किया था। उक्त दोनों महोदयों (अविनाशचंद्र दास और सामश्रमीजी) ने सिंधु की सहायक नदियों को ही ऋग्वेद के मंत्र ७५ 'प्रसप्त सप्तत्रेधारि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिंधुरोजसा' तथा—'त्रिः सप्त सस्रा नद्यो'—१०—६४—८ मंत्रों में वर्णित नदियाँ मान लिया है। किंतु मेरा अनुमान है कि ये त्रेधा तीन सप्तक मंत्रार्थ के अनुसार ही अलग-अलग तीन स्थानों में होने चाहिए, और ये तीनों सप्तक अपनी सहायक नदियों के साथ गंगा, सिंधु और सरस्वती के हैं।

* स्मारक-संग्रह पृ० १६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

.....यह गंगा का सप्तक यमुना सदानीरा आदि सहायक नदियों से बनता था।..... सिंधु की सात नदियों का सप्तक प्रसिद्ध है। तीसरा सप्तक सरस्वती का होगा, ऐसा मेरा अनुमान है।..... यह सरस्वती का सप्तक दक्षिण-पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान में ठहरता है *।"

इस पर हमारा निवेदन है कि सामश्रमीजी ने ऋग्वेद के १०वें मंडल के ७५वें सूक्त के आधार पर इन तीन सप्तकों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ५ ॥

अर्थात्—१ गंगा, २ यमुना, ३ सरस्वती, ४ शतद्रु (सतलज) [५ परुष्णी (रावी), २ असिक्नी † (चिनाव) और वितस्ता (झेलम) के मिलने से उत्पन्न हुई] ५ मरुद्वृधा ‡, ६ अर्जकीया (व्यासा) और ७ सुषोमा ×(यह तक्षशिला के पास सिंधु में मिलती थी) इस प्रकार यह सप्तक सिंधु के पूर्व में था।

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्यात्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

अर्थात्—१ तृष्टामा (चित्राल-प्रदेश के पूर्व के पंजकोरा-प्रदेश की नदी), २ सुसर्तु (उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रदेश के स्वात की स्वात-नदी), ३ रसा (स्वात से उत्तर की नदी-विशेष), ४ श्वेती (डेरा इस्माइल ख़ाँ की अर्जुनी-नदी), ५ कुभा (काबुल-नदी), ६ मेहत्नु से युक्त क्रुमु (वर्ण-प्रदेश की कुरम-नदी), ७ गोमती (गोमल) यह दूसरा सप्तक सिंधु से पश्चिम में था।

ऋजीत्येनीरुशती महित्वा परिज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वानचित्रावपुषेव दर्शता ॥ ७ ॥
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधिवस्ते सुभगा मधुवृधे ॥ ८ ॥

अर्थात्—१ ऊर्णावती (कैलास के नीचे के ऊर्णा-प्रदेश की नदी), २ हिरण्मयी, ३ वाजिनीवती, ४ सीलमावती (ये तीनों उत्तर की नदियाँ थीं), ५ रानी (बलूचिस्तान के नीचे के हिस्से की प्रसिद्ध नदी), ६ चित्रा (चित्राल से आकर काबुल-नदी में मिलनेवाली नदी) और ७ ऋजीती (उसी चित्रा के पास की नदी)। यह तीसरा सप्तक सिंधु के उत्तर में था।

संभव है, इनमें के पिछले दोनों सप्तकों की नदियों में से किसी-किसी के आधुनिक नाम और स्थान-निर्देश में भूल हुई हो। परंतु जब तक सरस्वती के सप्तक की नदियों के नाम निर्देश करनेवाली भिन्न ऋचा न उद्धृत की जाय, तब तक इस विषय में कुछ कहना अनुचित ही होगा।

लेख बढ़ जाने के भय से केवल एक बात का और उल्लेख कर हम लेख के विद्वान् लेखक जयशंकरप्रसादजी से बिदा ग्रहण करते हैं—

"महावीर कहकर इंद्र कई जगह संबोधित किए गए हैं.....। यह नृम्ण.....भुवन में ज्येष्ठ उच्चस्थान अर्थात् मेरु-प्रदेश में उत्पन्न हुआ.....यह सम्राट भी हुए.....पिछले काल में इसी कारण सम्राटों का ऐंद्र महाभिषेक होने लगा और इंद्र एक पदवी बन गई।"

नहीं कह सकते कि यहाँ पर 'सम्राट्' से क्या तात्पर्य लिया गया है। आधुनिक विद्वान् अन्यान्य शासकों की सहयोगिता से शासन करनेवाले को सम्राट् और एकाधिपत्य से शासन करनेवाले को 'एकराट' की पदवी देना चाहते * हैं।

यहाँ पर हम वेदों पर आस्था रखनेवालों को भी लेखक के शब्दों में ही एक ख़ुशख़बरी सुना देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते—

---

* स्मारक-संग्रह पृ० १७३

† मि० औरलस्टीन (M. Aurel Stien) लिखते हैं कि असिक्नी (चंद्रभागा) में मिलनेवाली एक मुख्य नदी को आजकल अंस नदी कहते हैं। यह पीर पंचाल के दक्षिण से निकलती है।

‡ औरल स्टीन महाशय ने मरुद्वृधा को काश्मीर-राज्य के अमरनाथ से निकलनेवाली नदी, जो वहाँ के किष्टवार-प्रदेश में अब तक मरूवर्द्धान के नाम से प्रसिद्ध है, सिद्ध किया है। यह चंद्रभागा में मिलती है। उनका अनुमान है कि इसकी दो मुख्य शाखाओं में से एक का नाम मरुद् और दूसरी का वृधा होगा।

× सुषोमा को मि० औरल स्टीन ने सोहान-नदी माना है। यह हज़ारा की पहाड़ियों के बाहरी सिलसिले से निकलकर नमक की पहाड़ियों के उत्तर में सिंधु में मिलती है।

* माधुरी (वि० सं० १९८५) मार्गशीर्ष, पृ० २५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् लेखक ने अपने लेख के पृ० १६७ पर लिखा है कि—

"इसलिये देवों का स्वर्ग तथा पारसीकों का प्रथम आर्य-निवास अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर तथा बलख के बीच की रमणीय भूमि थी। इसी की समीपवर्ती शैलमाला तथा उच्चभूमि मेरु के परिवार-रूप से आर्य-साहित्य में अत्यंत पवित्र मानी गई है।

(पृ० १६५) इस.....मेरु को अब कोहमोर कहते हैं।"

इस प्रकार स्वर्ग का पता चल जाने से अब स्वर्गेच्छुओं को वहाँ पहुँचने में विलंब न करना चाहिए। साथ ही सनातनी ब्राह्मणों को भी, जिन्हें आर्य-समाज के वक्ता स्वर्ग का ठेकेदार या लेटरबक्स कहकर नीचा दिखाने की चेष्टा किया करते थे, चाहिए कि वे मोटर या एरोप्लेन-सर्विस की एक लिमिटेड कंपनी खोलकर यजमानों को वहाँ पहुँचा देने का एकाधिपत्य शीघ्र ही प्राप्त कर लें, वरना समय चूकने पर पछताना पड़ेगा।

१०वाँ लेख 'वर्तमान हिंदी में संस्कृत-शब्दों का ग्रहण'-नामक है। इसके लेखक महामहोपाध्याय श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी हैं। यह लेख सुंदर और ज्ञातव्य बातों से पूर्ण है। इसमें संस्कृत और प्राकृत में से कौन किसकी जननी थी, इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। लेखक महाशय ने पृ० २२१ पर लिखा है—

"और भी कुछ ऐसे शब्द समयानुसार और आवश्यकतानुसार हिंदी-भाषा में अवश्य आते रहेंगे, विशेष कर उन चीज़ों के लिये जो इस देश के लिये नई हैं। वे चीजें जिस देश से आई हैं, उस देश की भाषा के शब्द ही अधिकतर व्यवहार में आवेंगे।" यह सिद्धांत बहुत ही अच्छा है; परंतु आजकल हिंदी-साहित्य का भंडार भरने के लिये विदेशी वैज्ञानिक शब्दों को जिस प्रकार के साँचे में ढाला जाता है अथवा उनके बदले में जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उनसे तो पढ़नेवालों की कठिनता ही बढ़ती है। उदाहरणार्थ 'नाइट्रोजन' के लिये 'नत्रजन', 'ऑक्सिजन' के लिये 'ओषजन' या 'अम्लजन', 'क्लोरीन' के लिये 'प्लव', 'आयोडीन' के लिये 'नैल' और 'एल्यूमिनम' के लिये 'रफट'। अब यदि कोई साधारण जन हिंदी की किसी वैज्ञानिक पुस्तक या पत्रिका को पढ़कर किसी प्रयोग के लिये इन वस्तुओं को एकत्रित करना चाहे, तो उसे वैज्ञानिक कोष की सहायता के बिना सफलता नहीं हो सकती। हाँ, संभव है, आगे काल-परिवर्तन से इनमें की कठिनाइयाँ दूर हो जायँ।

पृ० २२२ पर लिखा है—"बहुत-से हिंदी-प्रेमी नरेशों ने अपने-अपने राज्य में हिंदी-प्रचार की घोषणा की है; किंतु वहाँ नागरी-अक्षर-मात्र प्रचलित हुए हैं, हिंदी-भाषा का कुछ भी प्रवेश नहीं हुआ। यदि उन राज्यों की अदालती हिंदी का नमूना कभी कान में पड़ जाय, तब हिंदी-प्रेमी सज्जनों को यह विचारना पड़े कि हा! क्या यह वही हिंदी है, जिसे हम माता कहकर पूजते हैं?" परंतु हमारी तुच्छ सम्मति में इसके लिये अधिकतर साहित्य के विद्वान् ही दोषी समझे जा सकते हैं; क्योंकि जहाँ तक हमारा ज्ञान है, अब तक हिंदी में एक भी ऐसा सर्वांग-पूर्ण और सर्वमान्य कोष तैयार नहीं हुआ है, जिसमें डिगरी, अपील, इजराय आदि शब्दों के पर्याय-वाची सरल हिंदी-शब्द मिल जायँ। सुना जाता है कि काशी की विख्यात नागरी-प्रचारिणी सभा के कर्णधारों का ध्यान इस ओर गया है। यह हिंदी का सौभाग्य ही है।

यद्यपि लेखक महाशय ने देश की दशा का विचार कर अपने लेख के पृ० २२४ पर लिखा है—

"तात्पर्य यह कि आजकल कुछ लेखक सज्जन जो 'बँगला' का आदर्श लेकर हिंदी में प्रतिशतक ८०-९० शब्द संस्कृत के ठूँसकर उसे एकदम संस्कृत बना रहे हैं, यह प्रवृत्ति मेरी समझ में अच्छी नहीं।"

तथापि अनेक स्थलों पर विद्वान् लेखक की लेखनी ने भी संस्कृत-शब्दों से ही प्रेम प्रकट किया है। लेख के प्रथम पृष्ठ से कुछ नमूने आगे दिए जाते हैं—

"आज सब विवाद हटकर हिंदी पर संपूर्ण विज्ञ देशवासियों का मातृप्रेम प्रकट हो गया। ऐसी दशा में तेईस कोटि हिंदुओं की मातृभाषा हिंदी का सर्वांगपूर्ण और सर्वांश में त्रुटिशून्य होना अत्यंत आवश्यक है।

"जिन विषयों के प्रतिपादन के लिये वा जिन वस्तुओं और मनोभावों के संकेत के लिये हिंदी-भाषा में शब्द नहीं मिलते, उनका प्रतिपादन वा संकेत किस भाषा के शब्दों द्वारा किया जाय?"

पृ० २२७ पर लेखक महाशय ने 'प्रियतद्धिता हिंदी-कर्णधाराः' लिखकर लोगों का उपहास किया है। परंतु कहीं-कहीं आपकी भाषा में भी तद्धितांत शब्दों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग दिखाई दे जाता है। परंतु यह मानना ही पड़ेगा कि वे शुद्ध तद्धितांत शब्द हैं। यथा—

"इस विचार में स्वाभाविक मतभेद मौजूद है"

"कुछ एकदेशीय विद्वान् तो यहाँ तक साहस कर बैठे हैं"

"किंतु क्या पुस्तकों या सामयिक पत्रों-जैसी हिंदी"

"इससे यह स्वाभाविक संदेह होता है कि"

"वैदिक संस्कृत और प्रचलित संस्कृत"

उपर्युक्त उदाहरण दोषदर्शन की नियत से न दिए जाकर केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही दिए गए हैं; क्योंकि यह तो सर्वमान्य ही होगा कि संस्कृत-शब्दों की अधिकता होते हुए भी भाषा सुंदर और महावरेदार लिखी गई है, तथा विषय प्रतिपादन भी अच्छे ढंग से किया गया है। हाँ, यदि 'आज हिंदुस्थान-मात्र के राष्ट्रीय नेता पुराने भेद-भावों को भूलकर माता की सेवा के लिये उत्सुक दिखाई दे रहे हैं', इस वाक्य में 'मात्र' के स्थान में 'समग्र' शब्द का प्रयोग कर दिया गया होता, तो अन्य देशों के राष्ट्रीय नेताओं को अपने तईं (अपनी) माता की सेवा से बहिर्मुख कहे जाने का भ्रम न होता *।

१५वाँ लेख 'मरहठा-शिविर'-नामक है। इसके लेखक श्रीशिवदत्त शर्मा हैं और इसमें दौलतराव सिंधिया के शिविर का हाल है। इसके पृ० २३३-२३४ पर लिखा है—

"उन्होंने (दौलतराव सिंधिया ने) अँगरेज़ों से युद्ध किए और परस्पर संधि हो जाने पर अँगरेज़ी रेजिडेंट उनके साथ रहने लगा, जिसके साथ की अँगरेज़ी सेना का अध्यक्ष ई० सन् १८०९ से कप्तान ब्राटन था। इसने सिंधिया के शिविर के साथ-साथ रहते हुए अपने भाई को, जो इँगलैंड में था, ३२ पत्र लिखे थे। पहला पत्र करोली से २६ दिसंबर सन् १८०८ को और अंतिम अजमेर से २७ फ़रवरी सन् १८०९ को लिखा था। इसके पत्रों से कुछ अंशों में मरहठा-शिविर के एक वर्ष के चरित की झाँकी हो जाती है।..... जो शिविर की व्यवस्था ज्ञात हो सकी है, वह इस प्रकार है।"

फ़ुटनोट में कप्तान ब्राटन का संक्षिप्त हाल भी दिया है। परंतु ये पत्र लेखक को कैसे प्राप्त हुए, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। यदि ये पत्र अप्रकाशित हैं, तो इनकी प्राप्ति का हाल भी अवश्य देना चाहिए था; क्योंकि ऐसे व्यक्तिगत ३२ पत्रों का इँगलैंड से भारत में वापस लाया जाना और फिर लेखक के हाथ पड़ना भी एक मनोरंजक ऐतिहासिक घटना हो सकती है। और, यदि ये पत्र प्रकाशित हो चुके हैं, तो उस पुस्तक या पत्र का नाम दे देना भी अनुचित न होता, जिसका ऐसी अवस्था में यह लेख अनुवाद-मात्र कहा जा सकता है।

अस्तु, यहाँ पर हम स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि स्मारक-संग्रह वास्तव में उपादेय हुआ है। साधारण जनों का किसी विषय में मत न मिलने से उसमें के विद्वत्तापूर्ण लेखों की किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। रही संपादकीय कर्तव्यपालन की बात, सो हमारी तुच्छ सम्मति में तो हमारे श्रद्धेय गुरु महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा ने लेखों के महत्त्व के अनुसार उनका पूर्वापर स्थान नियत करने और उनको ऐसे स्मारक के अनुरूप बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी है। वैसे तो 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' का कोई इलाज ही नहीं है। बिदा ग्रहण करने के पूर्व विद्वान् लेखकों से भी एक बार फिर नम्र निवेदन है कि इस विचार-प्रदर्शन में भूल से यदि कहीं अनुचित शब्दों का प्रयोग हो गया हो, तो वे अपना महत्त्व विचारकर हमें क्षमा करने की कृपा करें।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

---

* यह भी केवल मनोरंजन के लिये ही लिखा गया है। वैसे तो 'पुरुषमात्र' आदि का प्रयोग सर्वत्र मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुविधा

चित्रकार—श्रीयुत उत्तमसिंह तोमर बी० ए०

"माया मिली नहिं राम मिले
दुविधा में गए सजनी सुनौ दोऊ"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व-गत

लेखनी ! मेरे मधुमय गान
चक्रवाल के पार करेंगे एक क्षितिज निर्माण ।
लेखनी ! मेरे—०

बीच-सुंदरी से मिल शशधर ,
जहाँ लिपट वसुधा से अंबर ;
युग-युग की वियोग-ज्वाला का कर देंगे अवसान ।
लेखनी ! मेरे—०

तटिनी के कोमल चरणों पर ,
निर्झर-रूपी कर फैलाकर ;
जहाँ दूर करना चाहेगा गिरि मानिनि का मान ।
लेखनी ! मेरे—०

जहाँ स्वप्न जागृति के द्वारे ,
खड़ा रहेगा हाथ पसारे ;
मिल जावेंगे जहाँ वेदना से पागल के प्राण ।
लेखनी ! मेरे—०

जहाँ लजीले मन में आशा ,
छिपी रहेगी ले अभिलाषा ;
ढुलक-ढुलककर उसे अश्रुकण कर देंगे हैरान ।
लेखनी ! मेरे—०

जहाँ खुदकशी शांति करेगी ,
ऊषा अपनी विभा हरेगी ;
कर देगी संध्या अनंत को अपना यौवन-दान ।
लेखनी ! मेरे—०

रंगमंच दोपहर बनेगा ,
धूमिल-धूलि-वितान तनेगा ;
मृग-मरीचिका जहाँ यवनिका होगी दिव्य—महान !
लेखनी ! मेरे—०

पात्र बनेंगे अवनी, अंबर ,
औ' पिपासु-दल दर्शक-प्रवर ;
जिस नाटक में नर्तक होंगे पतन और उत्थान ।
लेखनी ! मेरे—०

वहीं व्यथा की वीणा लेकर ,
गाकर सकरुण गीत मनोहर ;
'सत्यं शिवं सुंदरम्' का मैं कर दूँगा आह्वान ।
लेखनी ! मेरे मधुमय गान !

श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(१०)

ग्रेजिया डेलेड्डा

आज तक नोबेल-पुरस्कार केवल चार महिलाओं को मिल चुका है। पहलेपहल प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कारक मैडम मेरी कुरी को मिला था, जिन्होंने अपने पति प्रोफ़ेसर पियरी कुरी के साथ-साथ रेडियम का पता लगाया था। प्रोफ़ेसर कुरी स्वयं तो फ्रांस निवासी थे, पर उनकी पत्नी पोलैंड की थीं और इनका म सन् १८६७ ई० में हुआ था। तदनंतर यह पुरष्कार ोडन की उपन्यास-लेखिका सेल्मा लेजर्ल्याफ़ को उन- साहित्य-सेवा के लिये प्राप्त हुआ। अतएव श्रीमती ेड्डा साहित्यिक क्षेत्र की तृतीय महिला हैं, जिन्हें यह १९२६ ई० में प्राप्त हुआ है।

डेलेड्डा आजकल इटली की सर्वश्रेष्ठ स्त्री-लेखिका और मसोलिनी ने इन्हें भी अपने साहित्य-परिषद् alian Academy of Immortals में स्थान ा है। ये रहनेवाली तो हैं इटली के दक्षिण सार्डी- ा-द्वीप की और वहीं इनका जन्म सन् १८७५ ई० में छोटे-से गाँव में हुआ था। विवाह होने के पूर्व ये ने जन्मस्थान में ही रहीं और वहीं प्रकृति-निरीक्षण पाठ पढ़ती रहीं। स्वजातीय कृषकों तथा गड़ेरियों साथ रहकर द्वीप का मनोहर सौंदर्य अनुभव करके ोंने अपने अनेक गल्पों एवं कथानकों का मसाला से लिया और आज तक इनकी पुस्तकों में इनके प्रारंभिक जीवन की छाप मिलती है। इनके जीवन सबसे बड़ी बात यह है कि रवींद्रनाथ की भाँति ोंने भी किसी विश्वविद्यालय अथवा कालेज की ारी नहीं प्राप्त की। रवि बाबू तो कालेज तक गए भी, इनकी सारी पढ़ाई तो गाँव की एक प्रारंभिक पाठ- ा में ही समाप्त हो गई। इसे चाहे सार्डीनिया के सामाजिक कुसंस्कारों का फल कहें, चाहे उनकी पारिवारिक स्थिति का, पर रवींद्रनाथ की भाँति इनकी भी शिक्षा-दीक्षा प्रायः अपने ही अध्यवसाय से घर पर ही हुई। सार्डिनिया और इटली की भाषा एक ही न होने से उन्हें इटलियन लिखने-पढ़ने में अधिक परिश्रम भी करना पड़ा। गृहस्थी के जीवन में ये अपने बच्चों के साथ-साथ इटलियन पढ़ती रहीं; क्योंकि इनका विवाह मैंटुवा-निवासी एक सज्जन से हुआ और तभी से रोम के पोर्टो मारिज़ियों (Porto Maurizio) स्थान में ये रहती हैं। १७ वर्ष की ही अवस्था में इन्होंने 'Fior di Sardegna' (सार्डीनिया का फूल)-नामक उपन्यास प्रकाशित कराया, जो इनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना थी। १८९६ ई० में दूसरा ग्रंथ Anime Oneste (साधु आत्मा) और १९०० में Il Vecchio della Montagna (बूढ़ा पहाड़ी) निकला। तदनंतर इनकी लेखनी में वेग आ गया और १९०३ में 'Elias Portalu'-नामक ग्रंथ लिखने के बाद ही दूसरे साल दो उपन्यास प्रकाशित किए। परंतु इन ग्रंथों में वर्णन बड़ा ढीला, चरित्र-चित्रण असंगठित तथा शैली भी शिथिल थी। पढ़ने से यह अवश्य जान पड़ता था कि लेखिका में मौलिकता है और उसकी लेखनी में शक्ति, पर अनुभव न होने के कारण इनका उपयोग नहीं हो सका था। दूसरी बात यह थी कि इन पुस्तकों में सार्डीनिया का वास्तविक चित्र भी नहीं था, जिसे वहाँ के लोगों ने पसंद नहीं किया। क्योंकि इस द्वीप के निवासी बड़े कट्टर और पुराने ढर्रे के हैं। उन्हें तो पहले यही नहीं पसंद था कि स्त्रियाँ लेखिका बनें, इसी से डेलेड्डा के मातापिता इनके पढ़ते-लिखते रहने से बहुत असंतुष्ट रहते थे। उनका विचार था कि इसके कारण कोई नवयुवक इनसे विवाह न करेगा, क्योंकि गृहिणी-जीवन तथा साहित्यिक होने में परस्पर विरोध रहता है। इस विषय पर बहुत विवाद भी चला, कोई कहता था कि प्रत्येक वस्तु अथवा घटना के वास्तविक रूप को वर्णन करना ही कला है, कोई डेलाक्रोयस (Delacroix) की भाँति कहता कि नहीं "Art is exaggeration in the right place." अर्थात् कला यथास्थान अतिशयोक्ति ही का नाम है।

जो कुछ रहा हो, पर इनके इस समय के नायक-नायिकाओं के चरित्रों में गंभीरता नहीं थी; उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक शक्ति का विकास भी नहीं था। वे केवल समुद्र की तरंगों का अट्टहास देखकर मुग्ध हो जानेवाले जीव थे, जिनमें ज्ञानदृष्टि के अभाव के कारण अदृष्ट का भय अधिक था, विषाद की पीड़ा थी और साहस एवं उत्साह, दोनों की कमी थी। वे फुर्तीले और चंचल अवश्य थे, पर कृत्रिम सुख अथवा माधुर्य से उनके आंतरिक जीवन में सच्चा सुख न था। शीघ्र ही दूसरा उपन्यास Igivochi della Vita (जीवन-क्रीड़ा) नाम से प्रकाशित हुआ और दो वर्ष बाद (१९०८) La via dei male (पाप की राह) निकला। तभी से लेकर लगभग बारह वर्ष तक बराबर इनके उपन्यासों का ताँता बँधा रहा और निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं — Sino al Confine अर्थात् सीमा-पर्यंत (१९१०), Nel Deserto (रेगिस्तान, १९११), Colombe e Spervieri अर्थात् कबूतर और चील (१९१२), Chiaroscuro अर्थात् गोधूली (१९१२), Canne al Vento (१९१३), Le Colpe Altrui (१९१४), Mariana Sirca (१९१५), Le incendio nell' oliveto अर्थात् पानी में आग (१९१८), Il Retorno del Figlio अर्थात् पुत्र का प्रत्यावर्तन (१९१९); परंतु इनकी सर्वोत्तम पुस्तक अगले साल प्रकाशित हुई और लोगों का विचार है कि इसी के कारण इन्हें पुरस्कार भी दिया गया है। इस उपन्यास का नाम है La Madre (माता) और इसकी कथा भी बड़ी करुणापूर्ण तथा शिक्षात्मक है। इससे डेलेडुा का रमणी-हृदय-विषयक मर्मस्पर्शी ज्ञान टपकता है और इसमें मातृप्रेम की भी पराकाष्ठा है। एक धार्मिक प्रवृत्ति की माता जो अपने पुत्र को बहुत प्यार करती है, उससे पादरी बनने का अनुरोध करती है। उसके जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य यही है और इसी के लिये वह अपने प्राणप्रिय इकलौते बेटे को भली भाँति तैयार करती है। अंत में लड़का धर्मगुरु बन जाता है, परंतु नवयुवक-हृदय में धर्म के ऊपर प्रेम को विजय प्राप्त होता है और वह जोशीला पादरी अपनी प्रेयसी के आग्रह से माता के आदेश को तिलांजलि दे देता है। उधर बेटे का विवाह हो जाता है और दूसरी ओर माता के दुःख की गाथा प्रारंभ होती है। जिस गिरिजाघर में बेटा अपने पादरीपन से छुटकारा लेने जाता है, वहीं माता अपने प्राण छोड़ देती है। देखिए, जीवन के लक्ष्य का कितना ऊँचा आदर्श है, जो सर्वथा पुरस्कार के लिये आवश्यक है। इस पुस्तक का अँगरेज़ी में अनुवाद भी The Mother नाम से हो गया है और सर्वत्र इसका बहुत आदर है। इटली के प्रसिद्ध नाट्यकार पिरंडेलो ने इसके विषय में अपनी सम्मति देते हुए कहा है कि इटली के आधुनिक साहित्य में यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।

इनका दूसरा ग्रंथ इसके बाद १९२१ में Il Segreto del l' homo Solitario अर्थात् 'मित्रहीन का रहस्य' नाम से छपा। इनके पहले के लिखे हुए उपन्यासों की भाँति अब इन ग्रंथों में केवल बाह्य सौंदर्य तथा आडंबर ही न था, उनमें जीवन की वेदना थी और प्रणय-पूर्ण कामना की रहस्यमय छवि। Il dio dei Vivent अर्थात् जीवित का देवता (१९२२) में डेलेडुा के धार्मिक गांभीर्य का परिचय मिलता है, जिससे पता चलता है कि जीवन में इनके लिये अब केवल प्रेम अथवा व्यथा-मात्र ही न था, कोई और गूढ़ तथा केंद्रीभूत पदार्थ था। 'जीवित का देवता' कौन है? ईसाई-धर्म के एक महात्मा ने कहा है कि "हमारे देवता मृतकों के देवता नहीं, जीवितों के देवता हैं।" इसी रहस्य का उद्घाटन तथा विवेचन डेलेडुा ने किया है और स्पष्टतया समझाया है कि प्रत्येक पुरुष के भीतर जो एक आदेश देनेवाली शक्ति होती है, जिसके शासन से सारे जीवन की लीला नियंत्रित एवं संगठित होती रहती है, वही विवेचन-शक्ति यह देवता है। डेलेडुा बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति की थी और दूसरे सार्डीनिया-निवासी भी, जिनके जीवन का इन्होंने वर्णन किया है, बड़े धर्म-परायण होते हैं। दूसरे वर्ष Il Flauto nel Bosco (१९२३) अर्थात् 'जंगल में मंगल' प्रकाशित हुआ और इसके एक वर्ष पश्चात् La Danza della Collana अर्थात् 'कंठहार का नृत्य' (१९२४) नामक दूसरा अपूर्व ग्रंथ निकला। इन दोनों में लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि के साथ-साथ उनका आशापूर्ण मनोभाव मिलता है, जो प्रकृति का अनुकरण-मात्र है। इनकी आशावादिता दार्शनिक नहीं, स्वाभाविक है। मानव-जीवन इनके लिये प्रकृति के बाहर नहीं, उसके अंतर्गत उसका एक भाग-मात्र है। जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में सन्निहित शक्ति से प्रकृति भिन्न-भिन्न ऋतुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अपने आह्लाद का प्रदर्शन करती है, उसी भाँति मनुष्य के भीतर भी नवीन सृष्टि की शक्ति अंतर्हित है और आवश्यकतानुसार इसका प्रादुर्भाव होता रहता है। यही संक्षेप में इनके आनंदवाद का मूल-सूत्र है।

पुरस्कार मिलने के थोड़े ही दिन पहले इनके दो और उपन्यास La Fuga in Egitto अर्थात् 'मिसर देश को पलायन' (१९२५) और Il Sigillo de Amore अर्थात् 'प्रणय के चिह्न' (१९२६) प्रकाशित हुए। इन दोनों में भी उसी प्रवृत्ति का विकास हुआ है, परंतु साथ ही एक नए विचार का अंकुर भी दृष्टि-गोचर होने लगता है, जो धार्मिकता के साथ-साथ सदा ही रहता है। वह यह है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य के आंतरिक देवता की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसमें पाप-पुण्य के संग्राम का संघर्ष भी कम होता जाता है। इनके पात्रों में संग्राम की यह शक्ति बहुत मिलती है। वे पाप से युद्ध ठानकर इंद्रियों को दमन करने की चेष्टा करते हैं और यदि दुर्भाग्यवश हार भी जाते हैं, तो हताश नहीं होते और न उनका आत्मविश्वास ही कम होता है। यही विशेषता डेलेड्डा के सभी अच्छे पात्रों में पाई जाती है। गत वर्ष इनकी एक बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तक Annalena Bilsini नाम से निकली है, जिसकी नायिका अन्नालेना बिलसिनी बहुत शक्तिशाली तथा सजीव महिला है। पाप-पुण्य के इस संघर्ष का अतीव उत्तम उदाहरण इस नायिका के चरित्र-चित्रण में मिलता है और इसमें संदेह नहीं कि इसकी सृष्टि में डेलेड्डा की प्रतिभा अपनी मौलिकता की सर्वोच्च श्रेणी पर पहुँच गई है। हमारा तो विचार है कि यदि यह पुस्तक इन्हें पुरस्कार मिलने के पूर्व प्रकाशित हुई होती, तो इस गौरव में इसका पूरा हाथ रहता और निर्णायक लोग इसका अवश्य ही उल्लेख करते।

डेलेड्डा का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखमय है। वह अधिकांश अपने बच्चों के साथ ही रहती और पढ़ने-लिखने में ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। घर के बाहर लोग इन्हें बहुत कम देख पाते हैं, क्योंकि इनका कहना है कि संसार एक उपवन है, जो दूर से देखने पर बहुत रमणीय प्रतीत होता है, पर सन्निकट से देखने पर उसका बहुत कुछ सौंदर्य लुप्त-प्राय हो जाता है। अतएव वह इसे दूर से ही देखना पसंद करती हैं। पर इसका कदापि यह तात्पर्य नहीं कि वह मिलनसार अथवा सौजन्यपूर्ण नहीं हैं। इसके प्रतिकूल वह अपने अतिथियों का बड़ा आदर-सत्कार करती हैं। हाँ, उनके जीवन में आडंबरहीन सरलता का प्राबल्य अलबत्ता है, जो प्रत्येक विद्वान् के लिये आवश्यक है।

डेलेड्डा की वर्णन-शैली ही नहीं, उनके ग्रंथों में चित्रित मनोभावों का विकास भी बड़े स्वाभाविक ढंग का है। अपने देश-निवासियों की दीनता तथा मानव-हृदय का नैराश्य वर्णन करने में वह सिद्धहस्त तो हैं ही, दुःख तथा विषाद के चित्रण के समय उनके शब्दों में एक विचित्र धर्मभाव का संचार हो उठता है, जो इनकी सहृदयता का द्योतक है। इनकी एक छोटी कहानी में एक ऐसा स्थल आया है, जहाँ दो बुड्ढों के सम्मुख प्रत्यक्ष ईसामसीह की मूर्ति आ खड़ी होती है, और इस घटना का इन्होंने सजीव वर्णन करके ऐसा मनोमोहक चित्र खड़ा कर दिया है कि सर्वसम्मति से इनकी छोटी कहानियों में यही सर्वश्रेष्ठ मानी जायगी। दूसरी बात यह है कि यह नीति तथा कला में एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करती हैं, पर यह नहीं कि यह उन लोगों में हों, जो कला की दुहाई देकर नग्न जीवन का चित्र खींचते हैं, जैसा आजकल हिंदी-साहित्य में हो रहा है। बल्कि यह तो उन लोगों की विरोधी हैं, जो केवल लोक-शिक्षा को ही कला का उद्देश्य मानते हैं। जीवन के दुर्गुणों का भी इन्होंने वर्णन किया है और मनुष्य की दुर्बलताओं का भी चित्र खींचा है; पर उस प्रकार नहीं, जैसे आजकल के घासलेटी साहित्य में हो रहा है। प्रसिद्ध जर्मन-कवि गेटी ने कहा है कि "Art does not consist in what a man says, but how he says it." अर्थात् कला का महत्त्व कही हुई बात पर नहीं, उसको कहने की शैली पर निर्भर होता है। इसी दृष्टि से यह कला को एक धार्मिक कर्तव्य समझती हैं, जैसा कि एक स्थान पर इन्होंने स्वयं कहा है—"Sento I' arte come dovere अर्थात् आर्ट को मैं कर्तव्य ही जानती हूँ। अतएव इनके लिये लेखनी उठाना किसी धर्मानुष्ठान का प्रारंभ करना है। यदि इसी भाव से हमारे साहित्य-सेवी भी मातृभाषा की सेवा करने में तत्पर रहें, तो क्या हिंदी का स्थान संसार की भाषाओं में ऊँचा न हो जायगा?

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिदा

१

छाई उदासी थी नगर में घोर हाहाकार था ;
था गरजता रोदन, उमड़ता अश्रु-पारावार था ।
तैयार थे श्रीराम वन को सज रहा दुखसाज था ;
दशरथ-नृपति की राजधानी में व्यथा का राज था ।

२

था ज्वलित विरहानल हवा थी सर्द आहें भर रही ;
करुणा बिलखती थी स्वयं ही मौत भी थी मर रही ।
ऐसे समय में भानुकुल-मणि प्रेम-मग्न चले वहाँ ;
लेने बिदा रनवास में थी मातु-कौशिल्या जहाँ ।

३

छूकर चरण नत मुख हुए वे, बिद्ध-से वर बोल थे ;
नीरज-नयन जलपूर्ण धूमल अमल गोल कपोल थे ।
बोलीं प्रणयविह्वल बनीं, तन, प्राण अपना वार के ,
श्यामल शरीर निहारके, मुख चूमके पुचकारके—

४

"मेरा दुलारा प्राणप्यारा नैनतारा राम तू ;
मैं बलि गई, क्यों आज है यों मलिन मुख छविधाम तू ।
क्या क्षुधित है या तृषित तू संप्रति कलेऊ की नहीं ;
खा ले तनिक मिष्ठान्न प्यारे, मानता मम जी नहीं ।

५

कल है तुम्हारा राजतिलक बड़ा नगर में हर्ष है ;
परिजन स्वजन प्रमुदित सभी हैं, प्रेम है, उत्कर्ष है ।"
बोले ललककर "दो बिदा मा, यही तिलक विशेष है ;
चौदह बरस बन में रहो यह तात का आदेश है ।

६

उनकी शुभाज्ञा पालना ही सर्वथा निज ध्येय है ;
कर्तव्य से हटना मनुज को त्याज्य है, अतिहेय है ।
अतएव है करबद्ध विनती अंब, आयसु दीजिए ;
मैं शीघ्र लौटूँगा, न मन में नेक चिंता कीजिए ।"

७

वे रह गईं निस्तब्ध हो सुनकर कथा यह दुखमयी ;
प्रलयकरी तड़िता सघन घन में कड़क मानो गयी ।
उच्छ्वास के शीतल पवन भरते हृदय में पीर थे ;
था विरह-वाष्प समुत्थ झरते नयन-नीरद नीर थे ।

८

उर थामकर फिर वे अगम दुख-सिंधु में बहने लगीं ;
सहने लगीं भारी व्यथा, यों राम से कहने लगीं—
"जिस मंजु-आनन से बिखरते थे सदा-ही फूल-से ;
हा-हा ! उसी से आज यों निकले प्रचंड-त्रिसूल से ।

९

"पाकर हमें निरुपाय, दुख में गोड़ते हो, गोड़ दो ;
अंधी बनाकर हाय यों सिर फोड़ते हो, फोड़ दो ।
छोड़ा तुम्हें हमने न, पर तुम छोड़ते हो, छोड़ दो ;
बेटा, बुढ़ापे का सहारा तोड़ते हो, तोड़ दो ।

१०

"जीवन बनेगा भार सिर का हाय प्यारे तुम बिना ;
खाने लगेगा भवन ही, हमको दुलारे तुम बिना ।
होकर विलग तुमसे भला क्योंकर हमें कल आयगी ;
मैया तुम्हारी वत्स, गैया-सी सदैव रम्हायगी ।

११

"क्या दैव ने मेरी भरी थी हाय गोद इसी लिये ;
पाला-तुम्हें क्या कष्ट सहकर भी समोद इसी लिये ।
सुख-धन सदन में था बढ़ा यों आज लुटने के लिये ;
तुम थे मिले तो क्या हुआ इस भाँति छुटने के लिये ।

१२

"आज्ञा नृपति की है उधर छुटता इधर ज्यों प्रान है ;
मैं हाँ करूँ कि न हाँ करूँ, सब भाँति दुःख महान् है ।
छाया अँधेरा है दृगों में पथ कहाँ भगवान् है ;
उस ओर है सागर भरा इस ओर घोर कृशान है ।

१३

"निज तात से होकर विलग हा मैं सदन में क्या करूँ ?
कैसे रहेगा हाय मेरा वत्स वन में क्या करूँ ।
निशि में सहेगा शीत, आतप-ताप दिन में क्या करूँ ;
पैदल चलेगा लाल गोदी का विपिन में, क्या करूँ ?

१४

"तन तो नृपति का है तथा मन भी उन्हीं के हाथ है ;
है जा रहा रघुवर विजन को कौन उसके साथ है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे प्राण, तुम पापी बड़े हो अब निकलते क्यों नहीं ;
उस लाडले घनश्याम तन के संग चलते क्यों नहीं।"

१५

इस भाँति जब शोकार्त जननी को विलोका राम ने ;
कहते हुए यों वर वचन दी सांत्वना भगवान् ने—
"जो सुत न निज माता-पिता की उचित सेवा कर सका ;
निज प्रेम श्रद्धाभाव से मानस न उनके भर सका।

१६

"उस पुत्र का संसार में हे अंब, जीवन भार है ;
पर क्या करूँ मैं विवश हूँ सब भाँति मेरी हार है।
मानूँ न आज्ञा तात की तो नष्ट होता धर्म है ;
छोड़ूँ तुम्हें इस भाँति अब, अति ही कठिन यह कर्म है।"

१७

सुनकर गिरा गंभीर वे कुछ धैर्य-पथ पर आ गईं ;
दुख-सिंधु में लघुतोष तिनके का सहारा पा गईं।
कहने लगीं—"आदेश-पालन ही तुम्हारा ध्येय है ;
जाओ, लगाए हूँ उपल उर से, यही अब श्रेय है।

१८

"जाओ ललन जाओ विपिन की गोद है अति सुखसनी ;
अब तक सपूती मैं रही पर आज से होगी बनी।
भगवान्, मेरे लाल के हों सफल साधन सर्वदा ;
घर में रहे अथवा विजन में पर समोद रहे सदा।"

कौशलेंद्र राठौर

निर्वेद या क्रोध

(२)

आचार्य धनञ्जय ने 'दशरूपक' में तत्त्वज्ञान, आपत्ति और ईर्ष्या से उत्पन्न 'निर्वेद' के अलग-अलग उदाहरण दिए हैं। उन्होंने ईर्ष्या से उत्पन्न निर्वेद के उदाहरण में इसी पद्य (न्यक्कारोऽयमेव) का उल्लेख किया है। यही इस निर्वेद-भ्रम का मूल-स्रोत मालूम पड़ता है। काव्य-प्रकाश के अनेक टीकाकार तथा स्वयं श्रीतर्कवागीशजी इसी भ्रांत परंपरा के शिकार हुए हैं। इसी की देखा-देखी अनेक आचार्य बिना किसी सूक्ष्म विचार के इस पद्य में निर्वेद की ध्वनि बताते चले गए हैं। किंतु इस पद्य में निर्वेद होना संभव नहीं है, यह हम स्पष्ट कर चुके।

'तत्त्वज्ञानाऽऽपदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्।
तत्र चिन्ताश्रुनिश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासदीनताः॥'

यह 'दशरूपक' में 'निर्वेद' का लक्षण लिखा है। इसमें 'स्वाऽवमाननम्' इतना ही लक्षण है। श्लोक के प्रथम चरण में निर्वेद के कारणों का निर्देश है, और उत्तरार्द्ध में उसके कार्यों का उल्लेख है। लक्षण केवल द्वितीय चरण में कहा है।

'स्वाऽवमाननं निर्वेदः' यह लक्षण हुआ। 'स्वाऽवमाननम्' में षष्ठी समास है। (स्वस्य अवमाननम् स्वावमाननम्) 'स्वस्य' में षष्ठी है। यह कर्ता में भी हो सकती है, और कर्म में भी। 'अवमाननम्' यह भावप्रत्ययान्त है, अतः 'स्वस्य' उसका कर्ता भी हो सकता है, और कर्म भी। 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस पाणिनि-सूत्र के अनुसार कर्ता और कर्म, इन दोनों के लिये यहाँ षष्ठी हो सकती है। श्लेष अथवा आवृत्ति के द्वारा ये दोनों अर्थ यहाँ वक्ता को विवक्षित है, अतः प्रकृत लक्षण का अर्थ हुआ—'स्वकर्तृकं, स्वविषयकम् अवमाननम् निर्वेदः' अर्थात् अपने-आप अपना तिरस्कार (अपनों का या आत्मीयों का तिरस्कार नहीं) करना 'निर्वेद' कहाता है। स्वयं अपना तिरस्कार करना निर्वेद का स्वरूप (लक्षण) है, और वह (निर्वेद) तत्त्वज्ञान, आपत्ति तथा ईर्ष्या आदि के कारण उत्पन्न होता है, एवं इसके उत्पन्न होने पर चिंता, अश्रुपात, वैवर्ण्य और दीनता आदि होती है।

'हतकेन मया वनान्तरे' इत्यादि पूर्वोक्त पद्य 'निर्वेद' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। "मेरे-जैसे नीच पापी ने उस कमलनयनी को बिना विचारे घोर वनवास दे दिया। अब वह सती मुझसे वैसे ही सदा के लिये दूर हो गई, जैसे पतित पुरुष से वेद-विद्या दूर हो जाती है।"—इस पद्य में सीता का परित्याग करने के बाद राम स्वयं अपना तिरस्कार कर रहे हैं। यह निर्वेद राम को पत्नी-वियोग या लोकापवाद-रूप विपत्ति के कारण उत्पन्न हुआ है, और इससे उन्हें चिंता, अश्रुनिपात, निःश्वास और दीनता आदि सब कुछ हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद के उदाहरण में 'मृत्कुम्भ-बालुकारन्ध्र' इत्यादि पूर्वोक्त पद्य दिया जा सकता है। मैंने मिट्टी के घड़े के समान नश्वर विषय-सुख के लिये अपना जीवन-रूप दक्षिणावर्त शंख चूर्ण कर डाला, इस पद्य में वक्ता अपने को स्वयं धिक्कार रहा है। मिट्टी के घड़े का छेद बंद करने के लिये अमूल्य शंख को फोड़ डालना कितनी बड़ी मूर्खता है? आज निर्विण्ण दशा में वक्ता अपनी इसी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर रहा है।

'राज्ञो विपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः।
आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः॥'

इस पद्य में विपत्ति के कारण दुःख भोगनेवाला अपनी लंबी आयु के लिये रो रहा है। न इतने दिनों तक जीते, न ये दुःख देखने पड़ते। इत्यादि।

'लब्धाः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किम्?
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्?'

इत्यादिक पद्य भी तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद के उदाहरण में दिया जाता है।

'यदि अस्माभिः सकलकामदुघाः श्रियो लब्धास्ततःकिम्?'

अर्थात् यदि हमने संपूर्ण कामवासनाओं की पूर्ति करनेवाली लक्ष्मी पा भी ली, तो उससे क्या? तात्पर्य यह कि जीवन का फल कामभोग और लक्ष्मीप्राप्ति-मात्र नहीं है। यदि हमें आध्यात्मिक ज्ञान और वैराग्य न हुआ, तो लक्ष्मीप्राप्ति आदि सब व्यर्थ है। इस प्रकार प्रकृत पद्य में 'अस्माभिः', 'अस्माकम्' इत्यादि पदों का अध्याहार करने पर निर्वेद का स्वरूप (स्वाऽवमानन) स्फुट होता है।

अब 'न्यक्कारो ह्ययमेव' को देखिए, और यह पता लगाइए कि इसमें रावण ने स्वयं अपना तिरस्कार किया है, या नहीं? शायद कोई कह बैठे कि यहाँ तो आरंभ में ही तिरस्कार मौजूद है। रावण कह रहा है कि "शत्रुओं का होना ही मेरा तिरस्कार है"। जब वह स्वयं शत्रुओं की सत्ता को अपना तिरस्कार बता रहा है, उसके शत्रु मौजूद ही हैं, और साफ़ 'न्यक्कार' शब्द (तिरस्कार का वाचक) इस पद्य में विद्यमान है, तो फिर इससे बढ़कर और क्या प्रमाण चाहिए? क्या इतने पर भी कोई कह सकता है कि रावण यहाँ अपना तिरस्कार नहीं कर रहा है? जब यहाँ स्पष्ट शब्दों में रावण स्वयं अपना तिरस्कार कर रहा है, तब कौन कह सकता है कि यहाँ निर्वेद नहीं? इसमें निर्वेद को छिपाना तो सूर्य पर धूल फेंकने के समान होगा, इत्यादि।

हम बता चुके हैं कि साहित्य और सब शास्त्रों से कठिन है; क्योंकि यहाँ अभिधा-वृत्ति की कोई क़द्र नहीं। अभिधा यहाँ ग्राम्य वृत्ति कहाती है। यहाँ वाक्य के वाच्यार्थ को प्रधानता नहीं दी जाती, बल्कि उसका व्यंग्य-अर्थ प्रधान माना जाता है। यहाँ वक्ता के वाक्य का नहीं, अपितु उसके हृदय का तात्पर्य देखना पड़ता है, और यह समझना पड़ता है कि वक्ता का उक्त वाक्य—उसका वाच्यार्थ चाहे जो कुछ भी हो, इससे कुछ मतलब नहीं—उसके कौन-से मनोभाव का सूचक है। 'न्यक्कारो ह्ययमेव'—इस पद्य में साफ़-साफ़ तिरस्कार वाच्य है; रावण स्पष्ट शब्दों में शत्रुसत्ता को अपना तिरस्कार बता रहा है। परंतु हमें देखना यह है कि उसके इस वाक्य का व्यंग्य-अर्थ क्या है? उसी की यहाँ प्रधानता रहेगी।

सबसे पहली बात तो यह है कि यहाँ वास्तविक तिरस्कार नहीं है, बल्कि शत्रुसत्ता में तिरस्कारत्व का आरोप या अध्यवसान है। जिस प्रकार मुख में चंद्रत्व का आरोप या अध्यवसान कर लेने पर भी वह (मुख) वास्तविक चंद्रमा नहीं हो सकता, उसी प्रकार आरोपित तिरस्कारत्व से भी वास्तविक तिरस्कार नहीं सिद्ध हो सकता। अब देखना यह है कि रावण शत्रुसत्ता को अपना तिरस्कार क्यों समझता है? और, उसके ऐसा समझने से उसके हृदय का निर्वेद व्यंजित होता है, या कुछ और?

एक बाँके हेकड़ का कहना है कि अगर किसी ने मेरी तरफ़ उँगली उठाई, तो मैं इसे अपना तिरस्कार समझता हूँ, और उँगली उठानेवाले का हाथ काट लेना ही उचित समझता हूँ। दूसरे अकड़ख़ाँ कहते हैं कि यदि कोई मेरी ओर आँख उठाए, तो मैं अपना अपमान समझता हूँ, और उसकी आँख निकाल लेना ही अपना कर्तव्य समझता हूँ। अब देखना यह है कि क्या इन दोनों जगहों में वस्तुतः वक्ता अपना तिरस्कार कर रहा है, अथवा अपनी अलौकिक वीरता को ध्वनित करके, अपने मानसिक गर्व का परिचय दे रहा है। समझना यही है कि उक्त वक्ता के हृदय में दीनता, निर्वेद या ग्लानि प्रतीत होती है, अथवा इसके विरुद्ध कुछ और? किसी की ओर देखना या उँगली उठाना साधारण बात है। इसे ये लोग अपना अपमान क्यों समझते हैं? देखने और उँगली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाने में ये तिरस्कारत्व का आरोप क्यों करते हैं ? क्या दीनता के कारण, अथवा गर्व के कारण ?

यू० पी० में एक प्रसिद्ध नवाब साहब आज भी जीवित हैं, जिन्हें गाने-बजाने और नाचने का बड़ा शौक़ है। इतना ही नहीं, आपको शागिर्द बनाने का भी पूरा मिराक़ है। बड़े-बड़े लोगों के—जो आपके दरबार में किसी तरह जा फँसे—आपने गंडा बाँध दिया है। आप जब नाचने खड़े होते हैं, तब यह हुक्म रहता है कि सब लोग हुज़ूर के पैरों पर नज़र रक्खें। यदि किसी कमबख़्ती के मारे ने आपके मुँह की तरफ़ ताक दिया, तो आप अपना तिरस्कार समझते हैं, और ताकनेवाले के कोड़े या बेंत भी लगवा देते हैं। अब जानना यह है कि अपने मुँह की तरफ़ देखने को जो यह नवाब साहब अपना तिरस्कार समझते हैं, इस देखने में जो उन्होंने तिरस्कारत्व का आरोप किया है, (क्योंकि किसी के मुँह की ओर देखना वास्तविक तिरस्कार तो है नहीं) सो क्या दीनता या निर्वेद के कारण ? अथवा अपनी शान को बहुत ऊँचा समझने के कारण ?

शत्रु दुनिया में सभी के होते हैं। अजातशत्रु युधिष्ठिर और महामहर्षि वसिष्ठ के भी शत्रु थे। शत्रुओं का होना कोई तिरस्कार की बात नहीं। फिर रावण शत्रुसत्ता को ही अपना तिरस्कार क्यों समझ रहा है ? आख़िर उसमें ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिसके कारण शत्रुओं की सत्ता ही उसके लिये तिरस्कार बन गई है ? इस प्रश्न का उत्तर आपको रावण के इसी वाक्य में पड़े हुए 'मे' पद की व्यंजना में मिलेगा। 'ध्वन्यालोक' में इस पद्य की व्यंजना बताते हुए लिखा है—'मे यदरय इति सुप्संबंधवचनानामभिव्यञ्जकत्वम्'—अर्थात् 'मे' और 'अरयः' इन पदों में सु प् संबंध और वचन के द्वारा व्यंग्य-अर्थ प्रतीत होता है। इस पर टीका करते हुए श्रीअभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं—'ममाऽरय इति—मम शत्रुसद्भावोनोचित इति सम्बन्धानौचित्यं क्रोधविभावं व्यनक्ति'—अर्थात् मेरे शत्रु हों, यह अत्यंत अनुचित है। इससे रावण के हृदय का क्रोध व्यंजित होता है।

यह तो हुई किताब की बात। अब आप इसे यों समझिए। रावण कहता है कि—मेरे शत्रु हों !! और फिर वे जीते रहें !!! यह अत्यंत अनुचित और अत्यंत आश्चर्य की बात है। जानते हो, मैं कौन हूँ ? मेरे भय से इंद्र और वरुण थर-थर काँपते हैं। यमराज को मेरी ओर आँख उठाकर देखने की हिम्मत नहीं। कुबेर का पुष्पक मैंने छीन लिया। शिवजी के कैलास-पर्वत को मैंने गेंद की तरह उठा लिया। समस्त सुराऽसुरों का मैंने दर्प चूर्ण कर दिया। ऐसा मैं—उसके शत्रु हों ! शिव ! शिव !! और फिर वे जीते रहें !!! यह सब बात 'मे' पद से व्यंजित होती है। रावण ने अपने पुराने अवदान और पौरुष की याद इस 'मे' पद से दिलाई है, एवं उस महत्त्व की ओर इशारा करते हुए अपने साथ शत्रु-संबंध का अनौचित्य सूचित किया है। इतने बड़े, इतने पराक्रमी, ऐसे भयानक त्रैलोक्यरावण रावण के शत्रु हों—यह कितने आश्चर्य की बात है, यह रावण का व्यंग्य-तात्पर्य है। इसी लोकोत्तर महत्त्व को देखते हुए शत्रु की सत्ता को भी वह अपना अनादर समझता है। ठीक उसी तरह, जिस तरह पूर्वोक्त नवाब साहब अपने मुँह की ओर ताकने को अपना तिरस्कार समझकर देखनेवाले के कोड़े लगवाया करते हैं।

जिस प्रकार उक्त नवाब साहब के अपने को तिरस्कृत समझने से वास्तविक तिरस्कार का कोई संबंध नहीं है, वह सिर्फ़ उनके मन की एक शान है, वह अपने को कोई लोकोत्तर फ़रिश्ता समझकर ऐसा करते हैं, उनके इस तिरस्कार समझने से उनके मन की दीनता, ग्लानि या निर्वेद की कहीं गंध तक नहीं है, बल्कि उनका अभिमान, शौटीर्य और गर्व ही उक्त घटना से व्यक्त होता है, उसी प्रकार शत्रु-सत्ता को अपना अपमान समझनेवाले रावण के प्रकृत वाक्य से भी उसका हृदयगत गर्व ही ध्वनित होता है, निर्वेद या दीनता हरगिज़ नहीं। मतलब यह कि निर्वेद के लिये एक तो वास्तविक 'स्वावमानन' (स्वयं अपना तिरस्कार करने) की आवश्यकता है; कल्पित, आरोपित या अध्यवसित तिरस्कार में निर्वेद नहीं हुआ करता। दूसरे, वाक्य का प्रधान तात्पर्य जहाँ 'स्वावमानन' में होता है, वहीं निर्वेद हुआ करता है। तिरस्कार-वाच्य होने पर भी यदि वाक्य का प्रधान तात्पर्य (व्यंग्य) तिरस्कार में नहीं है, तो वहाँ निर्वेद हरगिज़ न होगा। प्रकृत पद्य 'न्यक्कारो ह्ययमेव' में यद्यपि तिरस्कार वाच्य है, परंतु प्रथम तो वह प्रधान तात्पर्य का विषय नहीं; दूसरे, वह वास्तविक तिरस्कार भी नहीं। जब तक आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मे' पद के व्यंग्य (रावण के पूर्व-पौरुष) को ध्यान में न लाएँ, तब तक यह समझ में ही नहीं आ सकता कि शत्रुसत्ता को तिरस्कार का रूप क्यों दिया गया है। यहाँ 'मे' पद का व्यंग्य (लोकोत्तर-वीर्यशालित्व) शत्रुसत्ता में तिरस्कारत्वारोप का साधन है। उसके विना शत्रुसत्ता में तिरस्कारत्व अनुपपन्न रहता है। और, जब 'मे' के व्यंग्य के द्वारा रावण का अलौकिक पुरुषार्थ श्रोता के मन में भासित हो गया और उसने यह समझ लिया कि रावण अपने को इतना बड़ा महामहिम-शाली समझने के कारण शत्रुसत्ता को भी अपना अपमान समझ रहा है, तब उस दशा में किसी मूर्ख के हृदय में भी यह बात नहीं बैठ सकती कि इस समय रावण दीन, दुःखी, निर्विण्ण, चिंतित होकर स्वयं अपना तिरस्कार कर रहा है। उस समय तो उसे रावण के हृदय का मूर्तिमान् गर्व ही सामने दीखेगा।

जिन प्राचीन आचार्यों ने इस पद्य में निर्वेद की ध्वनि मानी है, उन्होंने इसके वाच्य-अर्थ को देखकर ही—स्पष्ट शब्दों में तिरस्कार का उल्लेख देखकर ही—ऐसा किया है। उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि यहाँ तिरस्कार वास्तविक नहीं, अपितु आरोपित (अध्यवसित)-मात्र है। दूसरे, यह कि इस आरोप के लिये जो 'मे' पद का व्यंग्य प्राणभूत है, उसके सामने आते ही निर्वेद हवा हो जाता है।

निर्वेद की ध्वनि माननेवालों के सर्वप्रथम नेता संभवतः आचार्य धनञ्जय ही हैं। आप महाराज मुञ्ज (महाराज भोज के चचा) के सभा-पंडित थे। अलंकार के ही नहीं, अन्य विषयों के भी परिनिष्ठित विद्वान् थे। आपको तथा आपके अन्य अनुयायी आचार्यों को हम अत्यंत आदर और पूजा की दृष्टि से देखते हैं, इन सबको गुरुवत् पूज्य समझते हैं, और अपने अति क्षुद्र ज्ञान-लव को इन्हीं की कृपा का फल मानते हैं; परंतु यह सब कुछ होने पर भी हम अपनी बुद्धि और विवेचना को किसी के नाम पर बेच देने को तैयार नहीं। जो कुछ हमारा मत है, उसे दृढ़ता के साथ प्रतिपादित करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं, और अपने पाठकों से भी यही अनुरोध करते हैं कि वे अपनी स्वतंत्र प्रतिभा के आधार पर हमारी बातों के तारतम्य विचार करें।

'सन्तो विविच्याऽन्यतरद् भजन्ते ;
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।'

हाँ, यदि प्रकृत पद्य के भावार्थ को निम्न-लिखित रूप देकर पद्यबद्ध किया जाय, तो अलबत्ता इससे ईर्ष्याजन्य निर्वेद की ध्वनि निकलने लगेगी—

यथा—

दिगीशदर्पोद्दलनान् सुरद्विषो
निहन्त्यहो मानुष एष तापसः।
विकुण्ठिताः स्वर्ग-विलुण्ठनोत्कटा
भुजाश्च मे हन्त, दुरत्ययो विधिः॥

अर्थात्—दिक्पालों के दर्प का दलन करनेवाले देव-विजयी राक्षसों को यह भिखारी नरकीट मार रहा है, और स्वर्ग की लूट करने में उत्कट मेरी भुजाएँ भी बेकार हो गईं ? हाय, हाय, प्रारब्ध अनिवार्य है।

अब इस दशा में यह निर्वेद का उदाहरण हो जायगा। 'हन्त दुरत्ययो विधिः'—इस अंतिम वाक्य से प्रारब्ध की निंदा के द्वारा अपनी बेबसी (असमर्थता) और दुःख प्रकट होता है, और इसी के द्वारा अपना तिरस्कार भी भासित होता है। 'मानुष एष तापसः' से रावण की राम के प्रति ईर्ष्या प्रतीत होती है। वह राम के लोकोत्तर-पराक्रम को अवश्य जानता है, परंतु ईर्ष्या के कारण उन्हें तापस (भिखारी) और मानुष (क्षुद्र मनुष्य) बता रहा है। इस प्रकार यह ईर्ष्याजन्य निर्वेद होगा। जिन्होंने इसके लिये प्राण दिए हैं, उन राक्षसों के प्रति सहानुभूति और उसके द्वारा उनकी मृत्यु का खेद भी रावण के हृदय में भासित होता है। अतः इसमें ईर्ष्या और निर्वेद की सामग्री एकत्र है, परंतु 'न्यक्कारः' इत्यादि की रचना इससे एकदम भिन्न है। 'दिगीश' में रावण ने अपने लिये मरनेवालों का गुणगान किया है, और उसमें ('न्यक्कारः' में) उन्हें धिक्कार दिया है। इसमें उसने प्रारब्ध-निंदा के द्वारा अपनी बेबसी दिखाई है, और उसमें अपने पराक्रम की याद दिलाकर अपना गर्व दिखाया है। इसमें अपनी भुजाओं का कुंठित होना स्वीकार किया है, और उसमें उन्हें उनकी उदासीनता पर फटकारा है। जैसे कोई राजा अपने शत्रु की चढ़ाई को देखकर अपने यहाँ बेफ़िक्र पड़े वीर को फटकारे कि एक क्षुद्र ग्राम को जीतकर फूले हुए यह सेनापतिजी भी व्यर्थ हैं, जब कि मेरा शत्रु मेरे आदमियों को मारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालता है। इसमें सेनापति को उत्साहित और क्रोधित करने के लिये उसकी व्यर्थता कही गई है। इसी प्रकार 'न्यक्कारः' में 'एभिः' शब्द से भुजाओं का सामने खड़े पुरुष की तरह परत्वेन निर्देश किया है। प्रकृत पद्य में यह बात नहीं है।

इसमें 'मे भुजाः विकुंठिताः' कहकर उनका आत्मत्व सूचित किया और उनका निकम्मा हो जाना—शत्रु के प्रतिकार में असमर्थ हो जाना—कुंठित शब्द के 'क्त' प्रत्यय से सूचित किया है। इसी से रावण की बेबसी और हीनता सूचित हुई। 'न्यक्कारः' में स्वर्ग की लूट से पीन भुजों का गर्वातिरेक तो बताया, परंतु यह नहीं सूचित किया कि राम के पराक्रम के सामने वह विफल हो गए। इसी से वहाँ न तो बेबसी है, न हीनता, न निर्वेद। सारांश यह कि 'न्यक्कारः' इत्यादि पद्य के भाव को यदि 'दिगीश दर्पोद्दलनान्' का रूप दे दिया जाय, तो यह ईर्ष्याजन्य निर्वेद का उदाहरण हो सकता है।

'ईर्ष्या' को कई मानसिक भावों का जंक्शन कहें, तो अत्युक्ति न होगी। ईर्ष्या के बाद निर्वेद, क्रोध और मान आदि अनेक भावों की ओर लाइन घूम जाती है। यदि ईर्ष्या होने के बाद अपनी असमर्थता, क्षीणता, दीनता, प्रारब्ध, निंदा आदि चल पड़ी, तब तो निर्वेद हुआ समझिए; और यदि 'असूया', 'अमर्ष', गर्व आदि की ओर प्रवृत्ति हो गई, तो क्रोध की लाइन समझिए। और, इन दोनों के अलावा कुछ और ही हुआ, तो फिर कोई तीसरी लाइन समझिए। यदि हमारे इस दिग्दर्शन के अनुसार आप विचार करेंगे, तो साफ़-साफ़ समझ में आ जायगा कि कहाँ निर्वेद है, और कहाँ क्रोध। फिर न किसी से कुछ पूछने की ज़रूरत रहेगी, न कहीं बहकना पड़ेगा। 'न्यक्कारोऽह्ययमेव' इत्यादिक पद्य हनुमन्नाटक का नहीं है, बल्कि वहाँ किसी दूसरी जगह से लेकर उसका विकृत रूप उद्धृत किया गया है, यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। बस, आज इतना ही। बाक़ी आयंदः।

शालग्राम शास्त्री

वंचिता

प्रेम का प्रदीप मैं जगाने को गई थी आज,
मंदिर के द्वार असमय ही बंद हो गए;
अंचल में रात के प्रकाशपुंज तारागण,
जाने कौन नींद में अनोखी विधि सो गए।
जान पड़ा मग में, क्षितिज में, गगन में भी,
तम के सदन में स्वजन सब खो गए;
लालसा से लालित सरोज मेरे दृग दोनों,
हँसने को आए, हो हताश पर रो गए।

शंभूदयाल सक्सेना

तुलसीदासजी की सुकुमार सूक्तियाँ

(राम के दर्शन का सीता पर प्रभाव)

प्रिय पाठकगण! अभी आपने रामजी पर सीता के दर्शन के प्रभाव तथा उसके सुंदर एवं सरस श्रेणियों का आनंद उठाया है। अब तनिक भोली-भाली राजकुमारी पर राम तथा लक्ष्मण के अवलोकन द्वारा जो प्रभाव पड़ा है, उसकी उपर्युक्त प्रभाव से तुलना कीजिए और तुलसीदास की सूक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि की 'दाद' दीजिए।

सीता पर राम-लक्ष्मण के दर्शन का जो प्रभाव पड़ा है, वह ठीक वैसा है, जैसा एक भोली-भाली राजकुमारी पर होना चाहिए। उसका हृदय भी उसी के सदृश भोला-भाला है, भला अभी उसमें राम के ख़याल की उड़ान कहाँ? अभी तो उसकी आँखें भी प्रथम दर्शन के साथ ही झेंप गई होंगी। अभी लज्जा ने उस निर्भीकता को आने नहीं दिया, जिससे रामजी के 'बिलोचन चारु अचंचल' हो गए और जिससे अभी तनिक देर पीछे (पर अभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं) स्वयं सीताजी के नेत्रों की भी वह दशा होगी, जिसे कवि ने यों वर्णन किया है—

थके नयन रघुपति छबि देखी ; पलकनहूँ परिहरिय निमेखी ।

आह ! अभी सुख पावा का अनुभव भी तो न था । न-जाने क्या अनुभव था, बेचारी भोली-भाली राजकुमारी क्या जाने ? परंतु प्रभाव यद्यपि अप्रत्यक्ष है, फिर भी स्थायी है । रामजी तो अपनी दशा का अनुभव कर लक्ष्मण से वार्ता करते हुए चल भी दिए और यहाँ वही एक प्रकार के रुकने की हालत बनी हुई है । हाँ, रामजी के हटते ही किसी चीज़ के खो जाने का-सा अनुभव होना आरंभ हुआ और अब पहलेपहल वस्तुतः उस अमूल्य वस्तु के खोते ही हैरानी शुरू हुई । इसी को तो काव्य-शैली में 'कुछ खोकर सीखना' कहते हैं । अस्थायी वियोग का यही तो आनंद है । विना उस वियोग के प्रेमिका की क़द्र भी नहीं होती । इन्हीं रुकावटों से प्रेम-स्रोत का प्रवाह एवं वेग बढ़ता जाता है । इसी 'आँखमिचौनी' के तमाशा और तत्पश्चात् राजाओं की पारस्परिक वार्ता और फिर परशुराम के निराशाजन्य क्रोध की रुकावटों से प्रेम में ऐसी शीघ्रता के साथ परिपक्वता उत्पन्न कर दी गई है कि तीन ही दिवस के अंदर वह प्रेम पूर्णता की अवस्था में पहुँच गया है, जिसका उल्लेख इस लेख-माला के प्रारंभ ही में यवन-नाटक-रचयिताओं के समय, स्थान तथा घटना-क्रम की तुलना में किया गया है ।

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता; कहँ गए नृपकिसोर मनचीता ।

'चितवत चकित चहूँ दिसि' में 'च' का अनुप्रास कैसा अच्छा है । तनिक देर के लिये तो ऐसा जान पड़ता है, मानो 'चितवत' 'चकित' होने के लिये ही बनी है । (यह ठीक भी है कि चितवत उसी को कहते हैं, जिसमें शीघ्र-शीघ्र किंचित् परिवर्तन होता रहता है । दृष्टि का अधिक ठहराव हुआ और 'चितवत' अदृश हो गई ।

(१) चितवत (अ) इसमें ऐसी क्रियायुक्त बनावट है, जिसमें कृत्रिमता का लेश भी नहीं, प्रत्युत एक अल्पवयस्का राजकुमारी (जो अभी राजकुमारी के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्रतीत होती, क्योंकि 'शक्ति' वा 'जगत्-जननी' का जहाँ प्रयोग-बाहुल्य हुआ कि शृंगार-रस पूर्णतः जाता रहा) चकित दशा में सामनें है ।

(ब) परंतु शाब्दिक योजना के विचार से 'मन' और 'चित' ऐसा मज़ा दे जाते हैं, जिसे दिल जानता है ; पर ज़बान कह नहीं सकती ।

(२) चकित (अ) इसमें हृदय की इस हैरानी के सिवा कि राजकुँअर किधर गए, नेत्रों के चारों ओर फिरने का चित्र भी है । कारण कि 'चकित' वस्तुतः 'चक्रित' का लघुरूप है, जिसके अर्थ हैं 'गोल' वा 'चारों ओर' ।

(ब) कैसा छोटा-सा शब्द है । अभी एक राजकुमारी ने दो मनोमोहक मूर्तियों का सौंदर्यानुभव (Aesthetic faculty) के विचार से अवलोकन किया है और फिर वे मूर्तियाँ आँखों की ओट हो गईं । राजकुमारी हैरान (चकित) है कि ये दिल चुरानेवाली सूरतें किधर गईं ; और केवल इसी लिये तो अभी युगल राजकुमारों का प्रभाव सीता पर है । वास्तविक प्रेम का प्रारंभ होते ही दो में से एक ही रह जायगा । सहृदय पाठकगण ! देखा आपने द्वैत तथा अद्वैत के विश्लेषण को ? द्वैत तो केवल सौंदर्यानुभव तक परिमित है और प्रेम में अद्वैत के अतिरिक्त कुछ नहीं । यह तुलसीदास प्रभृति महाकवि का ही काम है कि इन सूक्ष्म बातों का ख़याल रक्खे और उन्हें क्रम से दिखलाता जाय ।

एक बार मेरे एक मित्र ने उपर्युक्त व्याख्या पर आक्षेप करते हुए यह कहा था कि "दोनों राजकुमारों के ख़याल को क्यों लाते हो ? 'गए' क्रिया को सम्मानार्थ समझो, बहुवचन नहीं । फिर प्रेमिका के प्रति सम्मान-सूचक शब्दों का प्रयोग समीचीन ही है ।" मुझे कुछ संदेह अवश्य हुआ, पर दूसरी ही चौपाई में 'श्यामल गौर' दोनों साफ़ मौजूद हैं, अतः संदेह-निवृत्ति के लिये काफ़ी थे । फिर एक चौपाई के बाद 'थके नयन रघुपति छबि देखी' को पढ़ते ही हृदय स्पंदित होकर सहसा बोल उठा कि इस स्थान से ही प्रेम का अंतरसूचक अनुभव शुरू हुआ है ।

(३) चहूँदिसि—पहले जब रामजी की खोज थी, तब 'सकल दिसि' के शब्द प्रयुक्त हुए थे । कारण बतलाया जा चुका है । भय था कि कहीं विष्णु (परमात्मा) के अवतार आकाश पर न उड़ गए हों या पाताल को न चले गए हों । पर अब आँखें उन्हें देख चुकी हैं और दिल को कम-से-कम इतना ढाढ़स है कि चारों ओर ही दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौड़ती है, मानों दिल कहता है कि हैं वे इसी लोक में, चाहे आँखों की ओट भले ही हों। किसी पेड़-पौदे या बेल-बूटे की आड़ में होंगे! पर हाय, हैं कहाँ? नज़र को हैरानी, दिल को हैरानी है! निराकार से साकार होकर भी यह परदा क्यों है?

पर पाठकगण! तनिक ठहरिए। अभी इतनी आध्यात्मिक उड़ान पर न जाइए। वह तो मैंने केवल संकेत की रीति पर बतलाया है कि शृंगार में भी तुलसीजी आध्यात्मिक कल्पना को सदैव अप्रकटतः स्थिर रखते हैं। अस्तु। साधारण शृंगार के विचार से साधारण बात ही काफ़ी है। पहले देखा न था, इस कारण नज़र अधिक छान-बीन करती हुई हर तरफ़ (सकल दिसि) दौड़ती थी। अब देख चुकी है, इस कारण खोज में किंचित् कमी है। विश्वास है कि हैं यहीं, अतः 'चहुँ दिसि' का परिमित शब्द पर्याप्त है।

सीता—ठीक है। इस समय जिस शृंगारी अवस्था में सीताजी राजकुमारी-सीता हैं, उसमें अप्रकट प्रभाव चाहे कुछ हो, परंतु प्रकट रीति पर वह विदेहकुमारी नहीं हैं, प्रत्युत मट्टी-पानी ('सिया' और 'सीता' के अर्थ पहले बतलाए जा चुके हैं) की एक जीवित मूर्ति हैं, जो मानवी विचारों से ओत-प्रोत है। देखिए, 'सकल दिसि' और 'चहूँ दिसि' में एक अंतरसूचक कारण यह भी है। जिस समय 'सकल दिसि' लिखा गया था, तो वहाँ नारदजी की भविष्यवाणी के स्मरण होने के कारण आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विचार विद्यमान था और अब शृंगार की आनंदमयी गहराई में उस विचार का प्रभाव है। अतः स्वाभाविकतया 'सकल दिसि' संकुचित होकर 'चहुँ दिसि' रह गया।

कहँ गए नृपकिसोर मनचीता—आह, यह प्रश्न भी 'सकल दिसि' वाली खोज में न था। वहाँ तो एक नन्हीं हिरनी के निर्बल हृदय की-सी व्यग्रता थी, जिसमें अभी किसी प्रश्न का आविर्भाव न हुआ था। प्रश्न के लिये तो किंचित् शांति की आवश्यकता है। पर यह स्मरण रहे कि यहाँ भी प्रश्न जिह्वा पर नहीं है, प्रत्युत हृदय में ही निहित है। अलबत्ता चितबन की खोज अवश्य ही हृदयगत भावों की व्याख्या कर रही है। ('सकल दिसि' से 'चहुँ दिसि' में सीमित हो जाने का एक कारण यह आनुपातिक शांति भी है)।

नृपकिसोर—(१) 'नृप' और 'भूप' का अंतर पहले प्रकट किया चुका है।

(२) इस संपूर्ण दृश्य में विशेषणात्मक संज्ञाओं का परिवर्तन विचारणीय है। अभी जब सखियों में पारस्परिक वार्ता हो रही थी, तो एक सखी ने राम को 'नृप-सुत' कहा था। उस समय वह नाम इस कारण उपयुक्त था कि वह सखी कुछ अधिक शांत प्रतीत होती थी। उसे जिस बात ने प्रथमतः प्रभावित किया था, वह मुनिजी के साथ होने के कारण राम की आचारी शिक्षा थी। तत्पश्चात् द्वितीय चौपाई में उस पर शृंगार का प्रभाव पड़ा था। अब क्योंकि सीता सर्वथा शृंगार की आनंदमयी मंजिल में हैं, अतः यहाँ 'किसोर'-शब्द अत्यंत समीचीन तथा सरस प्रतीत होता है। 'सुत' एक साधारण शब्द है, जिसमें कौमार्य वा युवावस्था की विशेषता नहीं है।

(३) देखिए, पहली सखी ने भी 'वय' और 'किसोर' ही बतलाया था, पर 'वय' और 'किसोर' का अंतर क़ायम रक्खा था। फिर यहाँ केवल 'नृप-किसोर' क्यों है? धन्य तुलसीदासजी! कौन नहीं जानता कि शृंगारी दृष्टि में आयु घटती है, बढ़ती नहीं? किशोरीजी ने दोनों राजकुमारों को किशोर ही देखा तो क्या आश्चर्य? कौन नहीं जानता कि 'बारी उमिरिया' के साथ कितने शृंगारी गीत गाए जाते हैं? एक उर्दू-कवि ने भी ख़ूब कहा है—

वह जो कमसिन हैं, अदाएँ हैं निराली उनकी;
इस प मचले हैं कि हम दर्दे-जिगर देखेंगे।

और यहाँ भी दोनों राजकुमार दिल चुराकर नज़र से ओझल हैं। क्या दर्दे-जिगर देखना अभीष्ट है? नहीं-नहीं। यहाँ वैसा शृंगार नहीं, जिसमें जान-बूझ कर सदाचार की सीमा से बाहरवाली छेड़-छाड़ हो। रामजी भाई से बातचीत करते हुए उपर्युक्त सीमा के विचार से ही विवशतः हट गए हैं। अगर कुछ दर्दे-जिगर (शब्द कटु है) है भी, तो उतना ही आकस्मिक और स्वाभाविक जिसे न देखना मंज़ूर, न दिखलाना। पहले अधिक विस्तार के साथ इस पवित्र शृंगार (जिसमें अमृत और अधिक-से-अधिक सुरा की मादकता भी है) की तुलना प्रेम-विष के साथ की जा चुकी है। अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर कमसिनी वही है। आकस्मिक क्रियाओं का प्रभाव भी अधिक सूक्ष्म है, पर है कुछ वैसा ही।

मनचीता—(१) पं० रामेश्वर भट्ट ने पहले 'चीता' का अर्थ 'चाहे गए' किया है, पर अंततोगत्वा नोट में यह लिख दिया है कि 'चीता' 'चिंता' का अपभ्रंश भी हो सकता है और अर्थ यह हो सकते हैं कि दिल में हैरानी पैदा करनेवाले राजकुमार कहाँ गए ? मेरे विचार में दूसरा अर्थ अधिक समीचीन है ; क्योंकि उस समय 'चकित' के साथ यही भाव अधिक स्पष्ट है। फिर 'चाहे गए' में लक्ष्मण कैसे शामिल हो सकते हैं ?

(२) 'चीता' का अनुप्रास अन्य शब्दों के साथ कितना सुंदर है, मानो वे सभी शब्द 'चितवत' चकित, चहूँदिसि' इस '(मन) चीता' के लिये ही बने हैं। शाब्दिक योजना भी पहले दो और अंतिम शब्द में बहुत ही सरस है। तनिक देर के लिये यमकालंकार का भ्रम उत्पन्न कर मानो 'चितवत' को 'चीता' की 'चित' से ही व्युत्पत्ति प्रतीत होने लगती है।

भट्टजी ने व्याकुलता के तीन कारण लिखे हैं—(१) 'कहाँ गए ?' की स्वाभाविक व्याकुलता, (२) सखियों से भेद छिपाने की व्याकुलता और (३) राजा के प्रण की व्याकुलता। पर क्योंकि अंतिम व्याकुलता के कारण का राजकुमारों से कोई सीधा संबंध नहीं है, इससे यहाँ इस व्याकुलता का प्रयोजन स्पष्ट नहीं जान पड़ता, यद्यपि गौणरूप से तो व्याकुलता के अनेक कारण हो सकते हैं। अतः इस समय तो सामयिकता एवं प्रेम-प्रस्फुटन की आकस्मिकता के विचार से पहला ही कारण बहुत ठीक है।

पाठकगण ! यहाँ एक विशेष सौंदर्य है। व्याकुलता के प्रकट एवं अप्रकट कारण सीता के हृदय में इतनी देर तक क़ायम रहे कि वह अंततः अपने हृदयस्थ व्याकुलता को अनोखे और अछूते शृंगारी ढंग पर अपने प्रेम-पात्र का विशेषण बनाकर ही छोड़ती है।

मन—यह कई बार कहा जा चुका है कि उभय पक्ष के विचार से शृंगार के सभी प्रभाव मन तक ही महदूद रक्खे गए हैं। अन्यथा अगर मन से गुज़र कर बुद्धि तक पहुँच होती, तो नैतिक बंधनों का अस्तित्व ही न रह जाता। तब क्या आश्चर्य था कि आत्मा का नितांत पतन ही होकर रहता। विपाक्त सांसारिक प्रेम के प्रभाव से प्रायः ऐसा ही हुआ भी करता है।

चीता—आह, तुलसी की-सी विश्लेषणात्मक बुद्धि मुझमें कहाँ ? पाठकवर्ग ! मेरी बेपरवाही तो आपने देखी कि मैं बराबर अपनी व्याख्या में 'दिल' के साथ 'चुराने' का शब्द ही प्रयुक्त करता चला आया हूँ। दिल को चुरा लेना और विशेषतः सीता-जैसी पवित्र कन्या के दिल को चुरा लेना कोई साधारण बात नहीं है। यह साधारण शृंगार की कविता नहीं है कि "जिसको देखा उसी पर मरने लगे।" एक हिंदी-कवि ने भी आवेश में आकर सीताजी के मुख से धनुषयज्ञ में ऐसा कहला दिया कि "मैं तो राम को ही व्याहूँगी, धनुष टूटे तो क्या और न टूटे तो क्या।" पर सीता ऐसी कच्ची मट्टी की बनी मूर्ति नहीं है कि तनिक ठेस से टूट जाय, देखिए कि यद्यपि नारद की भविष्यद्वाणी के स्मरण से प्रेमोत्पत्ति हो चुकी है और इस कारण चिंता भी स्वाभाविक ही है, पर क्या मजाल कि दिल हाथ से निकल जाय। व्याकुलता की पराकाष्ठा की दशा में भी तुलसीदास ने सीता से जो शब्द कहलाए हैं, वे ये हैं कि महाराज जनक की सभा में बुद्धिमानों के होते हुए भी यह अंधेर हो रहा है ! वह तो व्याकुलता की दशा में निर्जीव धनुष से विनय करने तक के लिये उद्यत हो जाती है, पर ऐसे विचार का लेश भी नहीं कि पिता का प्रण निभे वा न निभे परंतु मेरी कामनाओं की पूर्ति अवश्य हो। ये है हिंदू-रमणियों की सहृदयता, जो पतियों से एक बार संयुक्त होने पर फिर उनसे आयुपर्यंत वियुक्त होना नहीं चाहतीं, प्रत्युत मरण के पश्चात् भी अपना संबंध सुस्थिर रखने की अभिलाषा रखती हैं।

न-जाने पाश्चात्य जगत् कब इस ओर आएगा, यद्यपि वहाँ भी ऐसे विचार बहुत समय से प्रसरित हो रहे हैं ? मैं पहले अपनी इसी लेखमाला में पौर्वात्य तथा पाश्चात्य प्रेम के अंतरसूचक दृष्टिकोण की, जिसमें जगत्प्रसिद्ध आंग्ल-उपन्यास-कर्त्री मेरी कोरेली के एक उपन्यास से तुलना की है, विस्तृत व्याख्या कर चुका हूँ। इस समय थेकरे का प्रसिद्ध उपन्यास Vanity Fair सामने है। उसमें भी थेकरे ने उपन्यास की नायिका अमीलिया के मुख से उसके स्वर्गीय पति जार्ज के परम मित्र मेजर विलियम डाबिन (जिसने अमीलिया को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनों से चाहते रहने पर भी अपने प्रेम को निस्स्वार्थतावश गुप्त रखते हुए अब जार्ज के मरने के दश वर्ष पश्चात् अपने उस आंतरिक प्रेम को प्रकट किया था) के प्रति ये शब्द कहलाए हैं—"तुम मुझ पर ज़ुल्म कर रहे हो। जार्ज ही इहलोक और स्वर्गलोक, दोनों में मेरा पति है। मैं किस प्रकार दूसरे से प्रेम कर सकती हूँ ? ए प्यारे विलियम ! मैं उसी की अब भी हूँ, जिसकी तब थी, जब तुमने मुझे पहलेपहल देखा था। उसी ने मुझे बतलाया था कि तुम कितने सहृदय और उदार हो। उसी ने मुझे तुमसे भगिनी-भ्राता-जैसा प्रेम करना सिखलाया था। फिर क्या तुम मेरे और मेरे बच्चे के सर्वाधार नहीं रहे अर्थात् हमारे सबसे प्यारे, सबसे सच्चे और सबसे अच्छे रक्षक ?...उसके और मेरे मित्र बने रहो।" यह है अब सूफ़ियाजी की भाषा में द्वितीय श्रेणी की पति-पूजा। थेकरे की वार्ता का यह परिणाम दिखलाता है कि मेजर की वासना जाती रही और उसने कहा कि "मैं परिवर्तन नहीं चाहता। मैं प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। मुझे मालूम हो गया कि वह प्रेम मुझे किसी अन्य रूप में न मिलेगा। बस, मुझे सिर्फ़ अपने पास रहने दो कि मैं तुम्हें अक्सर देख सकूँ।" इस प्रस्ताव को अमीलिया "हाँ...अक्सर" कहकर स्वीकार करती है। इस स्वीकृति में भी वासना का किंचित् लेश है। फिर भी उसमें आदर्श की पवित्रता का बहुत-कुछ समावेश है। इतना भी कम न होता, पर थेकरे इसे भी क़ायम न रख सका। क्या करता ? उसकी इस आदर्शवादिता पर अर्वाचीन युग का कौन उपन्यास-प्रेमी प्रसन्न होता ? अतः थेकरे ने पुस्तक को समाप्त करने के पूर्व अमीलिया का उसी मेजर से विवाह होना दिखला दिया है, जिसे उसने भाई कहा था। आदर्श-हिंदू-रमणी तो ऐसा कभी न कर सकती थी और यह कहते हुए हमारा मस्तक संसार में निस्संदेह ऊँचा हो जाता है—

जहँ बिलोकि मृग शावकनयनी ;
जनु तहँ बस कमल सित सैनी।

यह चौपाई भी काव्यकला का एक चमत्कार है। कैसी दो-रुखी तस्वीर है। वस्तुतः ऐसा सूक्ष्म और सुंदर चित्रण तुलसीदास ही कर सकते हैं। देखिए, 'चकित चितवन' में सिर्फ़ दिल की बेचैनी नहीं है, बल्कि कुछ लुत्फ़ भी है। करुणा में भी रस होता ही है। अस्तु।

मैंने उपर्युक्त चौपाई में दोरुख़ का होना कहा है। जो रुख मुझे अधिक पसंद है, पहले उसी की व्याख्या करता हूँ। जिस समय पहलेपहल राम और सीता की आँखें चार हुई थीं, तो इसके पूर्व कि सीता की आँखें लज्जा से झुक गई हों और वह स्वयं निस्तब्धता की दशा में होकर राम की आँखों के लिये 'सियमुख शशि भए नयन चकोरा' हो गई हों, राम की आँखें उनकी आँखों में बस गई होंगी—ज़रूर बस गई होंगी। जब वह निस्तब्धता तनिक दूर हुई और आँखों में खोज की चंचलता पैदा हुई, तो वही राम की श्वेत कमल-जैसी आँखें चारों तरफ़ दिखाई देती हैं, मानो जिधर नज़र उठती है वहीं श्वेत कमलों की वर्षा-सी होती हुई दिख रही है। यह नितांत स्वाभाविक भी है। किसी चीज़ के आँख में समा जाने के बाद अगर आप आँखों को अन्यत्र फेरें भी, तो कुछ उसी आकार के गोल टुकड़े हर तरफ़ उड़ते हुए नज़र आते हैं। फिर इतने प्रबल प्रभाव का होना तो इस बात से विदित ही है कि आँखें 'नृपकिसोर मनचीता' की ही खोज कर रही हैं। कैसी सुंदर काव्यकल्पना है। राम की आँखों का श्वेत कमल की माला बनकर चारों ओर बरसना कविताजन्य अमृत की वर्षा से कम नहीं है।

स्मरण रहे कि हिंदी-कविता के विचार से प्रेमिका की आँख में तीन रंग अपने अनेक प्रभावों के साथ होते हैं। श्वेत रंग का प्रभाव है अमृत अर्थात् जीवन का, लाल रंग का प्रभाव है मदिरा अर्थात् मस्ती का और सिर्फ़ स्याह रंग का प्रभाव है विष अर्थात् मृत्यु का। कैसा सुंदर संकेत है कि केवल अमृतवाले अंश का प्रभाव सीता पर है और फलतः वह प्रेम, जो सीता में है, उनके अमरत्व का कारण है। दूसरी बात यह भी है कि अभी जिस समय सीताजी ने रामजी की आँखों को देखा है, तब वह प्रेम के प्रभाव से सुर्ख़ भी न हुई थीं, क्योंकि दृष्टि पड़ते ही तो सीता की आँखें लज्जा से झुक गई होंगी। नेत्ररूपी कैमरे में जो प्रतिबिंब पड़ा है, उसमें अभी आँखों के लाल डोरे नहीं थे। हाँ, तनिक देर बाद ऐसा हुआ; क्योंकि तनिक ही आगे चलकर कुंज से निकलने के पश्चात् का जो रूपक बाँधा गया है, उसमें राम की आँखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये लिखा है—"नव सरोज लोचन रतनारे।" इन प्रेम के सूक्ष्म प्रभावों तथा अनेक अंतरात्मक श्रेणियों का क्रम से रखना तुलसीदास की कविता का कमाल है। किसी शृंगारी उड़ान में कल्पना के एक अंश को आकाश पर पहुँचा देना उससे सहल है कि संपूर्ण श्रेणियाँ अपनी संपूर्ण सूक्ष्मताओं के साथ क्रम से दिखलाई जायँ।

आह, अगर समूचा चित्र खिंच गया होता, तो खोज बंद हो जाती, जैसा कि आगे जब सीताजी ने महाराज राम को आँख भरकर देख लिया, तो आँखें बंद कर लीं, और ऐसी ध्यान-मग्ना हो गईं कि नेत्रों का खुलाना सखियों के लिये भी एक मुशकिल बात बन गई। इसी कारण तो तुलसीजी ने सीता की आँखों में केवल प्रेम-पात्र की आँखों का चित्र बसाया है कि खोज की लालसा-पूर्ण मंज़िल में कुछ अधिक सरसता आ जावे। फिर शृंगार में 'आँख लड़ना हो' पारस्परिक दर्शन का पहला दर्जा समझा जाता है। न-जाने, आँख को आँख के लिये कैसा चुंबकीय आकर्षण होता है। मित्रवर 'सेहर' अपनी मसनवी शकुंतला में कहते हैं—

किस दुश्मने जाँ से लड़ गई आँख;
क़ाबू में जो अब नहीं रही आँख।
हेराँ जो किसी के हुस्न से है;
वा होके बनी है आरसी आँख।

कुछ वैसा ही आँख लड़ने का दृश्य यहाँ भी है। मगर 'दुश्मने-जाँ' नहीं, प्रत्युत अधिक-से-अधिक 'मन-चीता' से आँख लड़ी है। आँख यहाँ भी क़ाबू में नहीं है, बल्कि तलाश में फिर रही है और कुछ देर बाद जब प्रेम-पात्र को देखने का कार्य पूर्ण हो जायगा, तो सीता की आँखें भी हैरानी से वा होके (खुलके) 'आरसी बनेंगी'—पलकनहूँ परिहरिय निमेषी। कविवर बिहारी-लालजी का भी यह एक प्रसिद्ध दोहा है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात;
भरे भवन में करत हैं, नयनन ही सों बात।

जिसमें कुशल कवि ने केवल आँखों के संकेतों से अनेक भावों को प्रकट करते हुए प्रेमिक-प्रेमिका की वार्ता दिखलाई है और लोगों की मौजूदगी में लज्जा को क़ायम रखते हुए वार्ता के एक अत्यंत सुंदर दृश्य को 'गागर में सागर भरते हुए' बाँध दिया है।

तुलसीदासजी भी पहले नेत्रों का ही आकर्षण दिखलाते हैं, पर नीति के विचार से आँखों का लड़ना और उनका सांकेतिक वार्तालाप नहीं दिखलाते, जिनका केवल धनुषयज्ञ में उल्लेख है—

प्रभुहिं चितै पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।

और तत्पश्चात् रामजी के लिये भी लिखा है—

देखी बिपुल बिकल बैदेही; निमिष बिहात कलप सम तेही।
अस जिय जानि जानकी देखी; प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी।

किंतु वहाँ भी 'आँखमिचौनी' का दृश्य दिखलाते हुए उनके नेत्रों को पारस्परिक वार्तालाप से पृथक् ही रक्खा है। हाँ, जब सहसा आँखें लड़ ही जायँ, तो दूसरी बात है। अन्यथा विचारपूर्वक जब एक देखता है, तो दूसरे की दृष्टि अन्यत्र ही होती है। यही बात आदि से अंत तक क़ायम रक्खी गई है।

अब दूसरा रुख़ यह है कि पहली चौपाई में कवि ने सीता की हैरानी और उनकी 'चकित चितवन' का चित्र खींचा था। अब उसी चित्र में मानो शृंगार का रंग भरा जा रहा है। मनोहर राजकन्या की दृष्टि शीघ्रता से चारों ओर तलाश में दौड़ रही है और साथ ही उसकी अल्पवयस्का मृगी की-सी आँखें भी उसी प्रकार चंचल हैं। फिर, क्योंकि उनका रंग श्वेत कमल के सदृश है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ-जहाँ राजकुमारी देखती है, वहाँ-वहाँ श्वेत कमल की वर्षा हो रही है। यदि आप किसी लट्टू को तेज़ी से घुमावें, तो दो बातें अवश्य देखेंगे। एक तो सिर्फ़ जो रंग विशेषतः अधिक है, वही नज़र में रह जायगा। दूसरे लट्टू पृथक् न जान पड़ेगा, प्रत्युत एक लट्टू की माला-सी चारों ओर घूमती नज़र आवेगी। ठीक वही दोनों बातें तुलसीजी भी यहाँ दिखलाना चाहते हैं। इसी लिये कमल की श्रेणी बाँधा है, और उधर केवल श्वेत कमल के रंग से उपमा दी है।

श्वेत रंग की उपमा से मानो इस रुख़ में सीताजी के अंदर अभी केवल सौंदर्यानुभव के अमृतजन्य माधुर्य को दिखलाया है वा अधिक-से-अधिक गौण रीति पर प्रेम का हो वैसा माधुर्य समझिए। अभी यहाँ भी लाल रंग के डोरे नहीं हैं अर्थात् प्रेम की मादकता का पता भी नहीं। फिर मेरे विचार में तो यह लाल रंगवाली मादकता सीता के संबंध से धनुषयज्ञ में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दिखलाई गई, क्योंकि वहाँ भी धनुष-भंग से पहले जो अंतिम चित्र सीता का खींचा गया है, उसमें आँखों को दो मछलियों की तरह सीता के 'मुखरूपी चंद्र' में खेलती हुई बाँधा है। यह अंतर भी विचारणीय है। रामजी पुरुष हैं। उनका प्रेम शीघ्र उन्नत होता है और उसमें मादकता का होना भी संभव है। पर सीताजी प्रभृति पवित्र एवं सरलमना राजकन्या में प्रेम को सिर्फ़ हैरानी की बेबसी तक सीमित रक्खा गया है। विदेह की कन्या के लिये स्वाभाविकतया इसी क़दर ठीक भी है। यदि निमग्नता है, तो भी अमृत की मदिरा की नहीं। इस शृंगार की रंगामेज़ी में (रंगामेज़ी तो दोनों रुख़ों में है) प्रत्येक वस्तु का रंग ही दूसरा हो गया है। 'चितवत' से 'बिलोकि' में कैसी सुंदर उन्नति है। सीता अब 'मृगशावकनयनी' बन गई है। तनिक विचारपूर्वक ध्वन्यात्मक रचना का आनंद उठाइए। ऐसे 'स्वर' ('र' की आवृत्ति के साथ) प्रयुक्त हुए हैं कि चख के चक्र और कमल के क्रम का ध्वन्यात्मक मानचित्र भी स्वतः उपस्थित हो जाता है।

मैं नहीं कह सकता कि वस्तुतः तुलसीजी की दृष्टि इन दोनों रुख़ों में से किस पर थी, पर मुझे पहला रुख़ इस कारण अधिक रुचिकर प्रतीत होता है कि तद्द्वारा सीताजी की आँखों के चित्र के साथ ही उनमें बसी हुई आँख का चित्र भी सामने आ जाता है, मानो शृंगार की 'दो आतशा-शराब' तैयार हो जाती है। दूसरे रुख़ में तो सिर्फ़ एक-रुख़ी तस्वीर हो रहती। इसके अतिरिक्त यह कि हम राम को (जिनकी खोज में सीताजी व्याकुल हैं) तलाश करने की जगह केवल सीताजी के सुंदर एवं चकित चित्र के देखने में ही संलग्न हो जाते हैं जो कवि का तात्कालिक प्रयोजन नहीं हो सकता। फिर कौन जाने कि तुलसीदासजी की विस्तृत दृष्टि दोनों रुख़ों पर साथ-साथ रही हो कि सीताजी तो राम की खोज में और उनकी आँखों में राम की आँखें बसी हुई, और हम सीताजी के दर्शन में व्यस्त और हमारी दृष्टि में सीता के नेत्ररूपी श्वेत कमल की माला फिरती हुई। पर यहाँ मुझे यह भी कहना है कि सीता जगत्-जननी हैं और इस कारण तुलसीजी उनके किसी अवयव-विशेष पर हमारी दृष्टि को इतनी देर तक नहीं ठहराना चाहेंगे। यही कारण है कि सीताजी का सर्वांग-चित्रण रामायण-भर में कहीं नहीं है। केवल वनोवास में रामजी के मुख से कुछ कहलाया है, पर वह भी उपमाओं के रूप में। इससे मुझे निश्चय है कि तुलसीदासजी ने यह चौपाई पहले रुख़ को दृष्टि में रखते हुए लिखी है।

श, स, ल के माधुर्य का ध्वन्यात्मक रूप भी कैसा मनोहर है। ये चौपाइयाँ माधुर्य-गुण की अनोखी मिसालें हैं।

'बरस' का शब्द है कि अमृत की वास्तविक वर्षा है।

'जनु' के शब्द से उपमा का पुनः प्रारंभ होता है। इसी कारण तो उसे संपूर्णतः उत्पन्न करने में विचार-शक्ति को एक सुंदर सीमा तक प्रयत्न करना पड़ता है ('जनु' की शेष व्याख्या पहले हो चुकी है)।

'शावक' के साथ सीता के भोलेपन की याद दिलाकर कैसी पवित्रता पैदा कर दी है। आँखें भी 'अभी नई हैरानी' में पड़कर सुंदर सरसता का संचार कर रही हैं।

लता ओट तब सखिन लखाए; स्यामल गौर किसोर सुहाए।

स्मरण रहे कि सीताजी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। उनके नेत्रों की व्याकुलता से ही सखियाँ उनके दिल का हाल जान लेती हैं। 'कहँ गए नृपकिसोर मन-चीता'—ये शब्द भी अधिक-से-अधिक सीताजी की हृदयरूपी जिह्वा के ही हैं। नहीं, नहीं, प्रत्युत कवि ने उनके व्याकुल चितवन की व्याख्या की है। यदि आप इन शब्दों को सीता की हृदयरूपी जिह्वा के शब्द भी मानें, तो भी राम और सीता को हृदयरूपी जिह्वा के विवरणों की तुलना एक सरस साहित्यिक समस्या है। एक ओर काव्य-कल्पना और हार्दिक अनुभव के साथ प्रेमिका के रूप-गुण की सुंदर व्याख्या तथा उनके अद्वितीय होने की स्वीकृति; और दूसरी ओर केवल थोड़े शब्दों में नन्हें दिल की व्याकुलता का दृश्य। एक ओर भ्राता से सुस्पष्ट वार्ता और दूसरी ओर शब्दों का जिह्वा पर आना मुशकिल! एक ओर अपनी प्रकृतियों एवं क्रियाओं की स्वकीय व्याख्या और दूसरी ओर शब्दों की जगह केवल दशा से हृदयस्थ भावों का आकस्मिक प्रकटीकरण। एक ओर कुछ-न-कुछ स्वाधिकार और दूसरी ओर भावावेश में थोड़ी देर के लिये कठपुतली-सी बनकर सखियों के संकेतों पर चलना और उन्हीं के कथन से अपने भावों को समझना। फिर पैरों की गति का भी बंद हो जाना, निस्तब्धता की दशा पर नेत्रों में व्याकुलतामयी चंचलता का शेष रहना इत्यादि-इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखियाँ तुरंत ताड़ जाती हैं कि खोज किसकी है। परेशाँ निगाहें किधर दौड़ रही हैं। कवि राजकुमारों को बेल-बूटों में छिपा देता है कि हैरानी और बढ़े, खोज में भावावेश उत्पन्न हो, हृदय में प्रेम को परिपक्वता मिले और रंगमंच पर आँखमिचौनी का दृश्य दिखाई दे। पाठकों का दिल बार-बार यह देखकर कितना लुत्फ़ उठा रहा है कि देखो वह उसी ओर सीता की नज़र गई, अब राम अवश्य दिखलाई पड़ेंगे; पर कदाचित् भावावेश के कारण व्याकुल दृष्टि चूक जाती है कि राम उस बेल के पीछे ही तो हैं, पर सीता उनको नहीं देख पाती। आह, एक आवरण और है, जो अभी बतलाया जा चुका है। वह है कमल-दल के रूप में सीता की आँखों में बसी हुई राम की आँखें, जो देखने पर चारों ओर बरसती मालूम होती हैं।

लता ओट—मैं कई बार लिख चुका हूँ कि तुलसीदासजी प्रकृति से सिर्फ़ नाटक के परदे का ही काम नहीं लेते, प्रत्युत उसे भावोत्पत्ति का एक साधन बना देते हैं और मनुष्य एवं प्रकृति को ऐसा एक दूसरे के साथ लपेट देते हैं कि एक की दूसरे से सौंदर्य-वृद्धि हो। यहाँ भी राम-सीता एवं प्रकृति को परस्पर संबद्ध कर दिया गया है। यह लता क्या है? प्रेम की आँखमिचौनी में प्रेम-पात्र को छिपाकर खोजनेवाले को कुछ ज़्यादह परेशान कर रही है, दिल में प्रेम तथा खोज के आवेग को कुछ अधिक बढ़ा रही है, नज़र को तलाश के लिये ज़रा और उत्सुक बना रही है और राम के सौंदर्यवाले दृश्य को अधिक सुंदर कर रही है।

कला (Art) के अतिरिक्त नैतिक विचार दृष्टि से भी यह आवरण उत्तम ही है और यही बात तुलसीदासजी के श्रृंगार को अन्य कवियों के श्रृंगार से पृथक् करती है।

तब—कितना लघु परंतु सार्थक शब्द है। इससे प्रकट है कि खोज की व्याकुलता के पश्चात्, जब सखियों ने सीता की व्याकुलता का अनुभव किया, तब राम को दिखलाया। आँखमिचौनी में ऐसी ही खोज के पश्चात् जब कोई साथी ज़रा मदद कर देता है, तो निराशा के बाद सफल खोज में बड़ा मज़ा आता है। तनिक पहले दिखला देने से वह सारा मज़ा, जिसका वर्णन उपर्युक्त चौपाइयों में है, किरकिरा हो जाता। अगर उसी समय सखियाँ सीताजी को उस ओर प्रेरित कर देतीं, तो आँखमिचौनी का मज़ा न रहता और प्रेम की परिपक्वता में एक कसर बाक़ी रह जाती। फिर तनिक देर और न दिखलातीं, तो कौन जाने, निराशा में वह आँखों की खोज भी मिट जाती और सहने में ख़तरा पैदा हो जाता।

सखिन लखाए—'लता' और 'लखाए' का अनुप्रास तथा 'सखिन' और 'लखाए' का शाब्दिक सादृश्य ('ख' के कारण) कितना सुंदर है, मानो ये सभी शब्द परस्पर सापेक्ष बने हुए हैं।

लखाए—इससे दूसरे का दिखलाना स्वयं प्रकट होता है। वस्तुतः सखियों में सहानुभूति भी है, केवल उपदेश-प्रदता नहीं।

'सखिन लखाए' में गौण रीति पर कुछ व्यंग्य-मिश्रित हास्य भी है। आख़िर भेद खुल गया और व्याकुलता में वही सखियाँ काम आईं। आगे 'भूपकिसोर देख किन लेहू' और 'पुनि आउब यहि बेरिया काली' में जो बहुत साफ़ छेड़-छाड़ है, वह शायद यहीं से शुरू है। फिर स्टेज पर सब सखियों का एक साथ ही उँगली उठाकर दिखलाना एक विचित्र दृश्य पैदा करता है। सभी आँखें उसी लता की ओट में छिपे हुए राजकुमारों की ओर उठ गईं (एक सखी से 'सखिन' इसी लिये प्रयुक्त हुआ है)। सब सखियाँ एक साथ ही काम करती हैं, एक साथ बोलती, एक साथ चलती और एक साथ संकेत करती हैं। पहले भी सबने एक साथ ही पूछा था। कारण कि सबमें वही एक ख़याल एक बार दौड़ जाता है। इन तमाम बातों से कवि का अभिप्राय सरसता को उतने ही गुणा करना और स्टेज पर उतनी ही अधिक सरसता उत्पन्न कर देने का है। मानो Charms केवल शब्दात्मक गायन तक समाप्त नहीं है, प्रत्युत सखि-समूह की संपूर्ण प्रगति Charms बन गई है! ['फ़िसाना अजायब' में जाने आलम को भी इसी भाँति सखियों ने पेड़ों की ओट से दिखलाया था, पर तुलना से विदित होगा कि एक में कुछ कृत्रिमता और दूसरे में पूर्ण स्वाभाविकता है।]

यहाँ एक बात और विचारणीय है। पहले 'संग सखी सब सुभग' और 'पूछहिं सब मृदु बैन' इत्यादि में 'सब' पर विशेष बल दिया गया था, जो अब यहाँ नहीं है। कारण कि उसी एक सखी के अतिरिक्त, जिसने राम को पहले ही देखा था और जो अभी तक निमग्नता की दशा में थी, शेष सभी सखियाँ एक ही भाव के अधीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। अब राम के देखने के पश्चात् कोई तो (प्रेमविवश) प्रेमोन्माद से प्रमत्त होगी, कोई निमग्नता की दशा में अचेत होगी, कोई सोचती होगी कि सीता को राम किस प्रकार मिलें इत्यादि। अतः इसी ख़याल से 'सब' का शब्द चौपाई में नहीं रक्खा गया।

लखाए—यह शब्द संकेत के लिये कितना समीचीन है। आह, परेशान निगाहें बार-बार चूक जाती रही होंगी। इसी कारण सखियों के लखाने की ज़रूरत है। ज़्यादह परेशानी में आँख के सामने की चीज़ दिखाई नहीं देती। फिर लताओट होने में तो और भी मुश्किल है। इस मौन संकेत से जाने आलम को दिखलाते समय सखियों की वार्ता की तुलना कीजिए, तो पवित्र प्रेम और कृत्रिम चंचलता का अंतर साफ़ मालूम हो जायगा। दोनों स्थानों पर बेलबूटों की आड़ से ही दिखलाने का दृश्य है।

वियोग में अभिलाषा, स्मृति और चिंता, ये तीन दशाएँ हुआ करती हैं और उपर्युक्त पंक्तियों में इन्हीं तीनों दशाओं का राम के 'लताओट'-जनित वियोग में दिग्दर्शन हुआ है।

राजबहादुर लमगोड़ा

दिमाग़ को तरवतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है? किया हो, तो उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है? न सूझा हो तो ध्यान में रखिये,

कि,

दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को ख़ूराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल कीजिये

आजकल के वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है।
हर एक मङ्गलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को
कामिनिया ऑईल से सँवारिये।

क़ीमत—प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकती है - बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है
३ शीशी का २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्।
आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रूमाल पर कुछ बूँदें छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) १ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्

दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

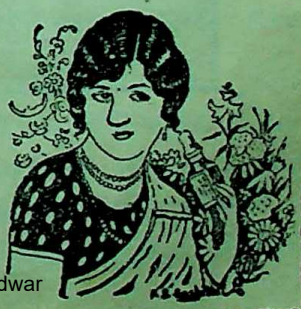

सोल एजेंट—**दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी,**
२८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वप्रेम की विषमता

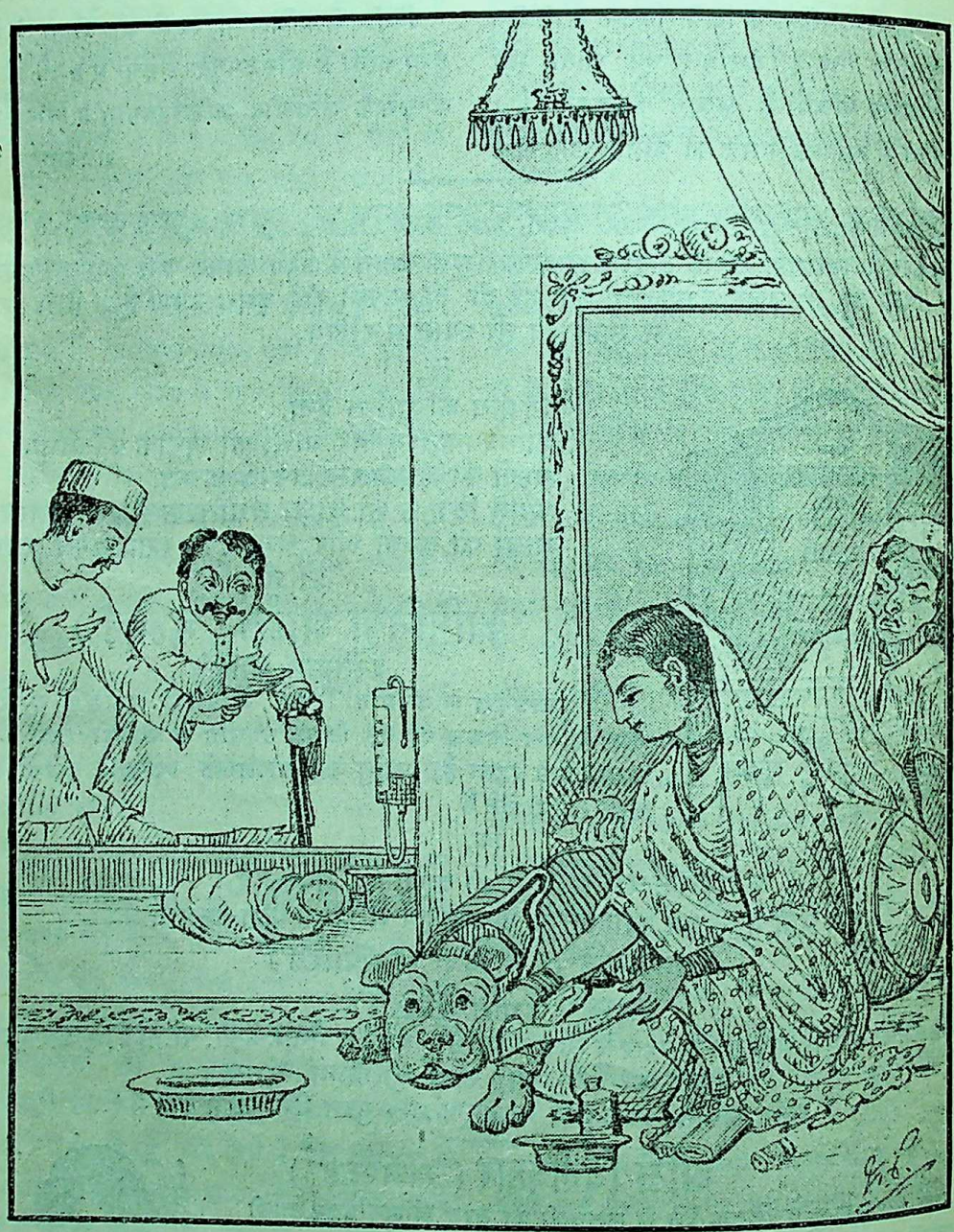

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरुक्षेत्र

(महाकाव्य)

वनवास

(१४)

"झाँकती उसी की ज्योति सूर्यचंद्र बनकर,
निर्मल गगन बीच फैल-फैल अभिराम ;
फेंकती विचित्र जाल, फाँसती अपार सृष्टि,
भिन्न-भिन्न रूप धर बुद्धि उसकी तमाम।
जानते उसे न हैं कदापि नारकी मनुष्य,
चीन्हते उसे हैं ज्ञानध्यान-मठ के ग़ुलाम ;
हम हैं अजान कुछ जानते नहीं अधम,
अपराध की तरह लोट करते प्रणाम।

(१५)

"गल जायगी बरफ़-सी विपत्ति की अनल,
बार-बार कहती यही उमंग-अभिलाष ;"
लोटने लगे नकुल बंधु के चरण धर
पाकर प्रसन्नता की सत्यधर्म की मिठास।
प्यार करने लगे युधिष्ठिर, न पारथ, थे—
लेने गए कंद-मूल था प्रबल उपवास ;
दुर्दशा विलोक शुष्क देह औ' दरिद्रता की,
सहदेव कहने लगे तनिक हो उदास—

(१६)

"आज जिस वन के शिथिल हैं सुमनदल,
व्याकुल तड़पते वहाँ दुखी विराट हम ;
मानस गगन बीच थी उदय शशि-ज्योति,
आज हृद-राज्य में बिलखता अधम तम।
देख-देखकर लोग प्यार करते थे जिसे,
मार वह खा रहा, सितम है महासितम !!
जो प्रसिद्ध था उषा-विनोद नाम धरकर,
दूर फेंकता उसे जगत कहके अधम !!!

(१७)

"सुख तो चले गए सहस्र वज्रपात कर,
विधि-वामता, अभाग्य ! हाय रे दिवस फेर !
स्वारथ कुटिल दस्यु लूटता नयन काढ़,
सुनता न तात मात बंधु की करुण टेर !
एक भी अमित्र मित्र मित्र-सा हुआ न हाय,
क्या कहें विपत्ति में न कोई सिंह और शेर ;
डींग हाँकते हैं पर काम एक आते हैं न,
विश्व है जवाहिर न, काँच का विचित्र ढेर।

(१८)

'तिमिर गुफा में बैठ सोचता यही सदैव,
क्या न कट जायँगे विपत्ति के अधम जाल ?
फट जायँगे उठे हुए कुटिल मेघ-प्राण ?
घट जायँगे विपत्ति-श्रोत के नवीन ताल ?
क्षीरसिंधु का विहार छोड़ करुणा महान,
क्या न दौड़ आयगी विलाप सुनके विशाल
मा की गोद पर क्या न लोट-लोट फिर हम,
पायँगे चमकता जगत में स्व-भाग्य भाल ?"

(१९)

कुछ सोचकर कहने लगे वृकोदर यों—
"तम के निकट खेलता प्रकाश है विमल,
आज ग्रीष्म और कल वर्षा लुभावनी है,
होगी फिर जल की बहार दिव्य कल-कल,
व्यर्थ सोचना समय फेर, यह विधि-खेल,
कीचड़ में खिलता सुगंधित सुखी कमल ;
विश्व में प्रसन्न मुख हँसते रहो सदैव,
दुःखभाव को प्रसन्नमान-पद से कुचल।

(२०)

"तानके भयंकर गदा प्रचंड वीर हम,
जब घूम जायँगे समेट सर्व शक्तिबल ;
रुक जायगा समीर, झुक जायँगे सबल,
गिरि बह जायँगे तुषार की तरह गल।
एक ललकार में पतंग-से उड़ेंगे अरि,
लग जायगी नवीन क्रांति मूर्ति की अनल ;
जलने लगेगा धक्-धक् यह क्षुद्र जग,
अमृत झरेगा झर-झर बनके गरल।

(२१)

"भूमि बन जायगी करालिनी-समान, और,
फैल जायगा सभी तरफ़ लाल-रक्त-रंग ;
लेंगे ढूँढ़ कामना का कंटकित जय-मार्ग,
खेद क्या, छिड़ेगा जब भीषण भविष्य-जंग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड्ग-हस्त-शक्ति भी गिरेगी भयभीत बन,
भीम की विलोक बलिदान की नई उमंग ;
छूट जायँगे विकट प्राण रण-वाहिनी के,
क्षण में दिखायँगे भुजंग-रंग बदरंग।

(२२)

"अट्टहास की जगह खायगा मसान-वीर,
कफ्फन-विहीन शव का वदन फाड़-फाड़ ;
खून से नहा पिशाचिनी अनेक कूद-कूद,
तोड़-तोड़ खायँगी मृतक मांसहीन हाड़ ।
नाचेंगे पिशाच भूत प्रेत रक्त पान कर,
लग जायगा घृणित लोथ शव का पहाड़ ;
नाश ! नाश ! सर्वनाश ! का विलोक दृश्यपट,
रोयगा कुटिल भूप .खूब मार-मार धाड़ ।"

(२३)

प्रेम से सुधार द्रौपदी मृदुल पत्र-पट,
कहने लगी प्रसन्न भीम का विलोक वेष—
"बल्कल-वसन तरु-पात की मृदुल सेज,
भूल-सी गई हृदय की कुटिल कटु ठेस ।
नाद सुन आपका धरणि फटती है, और
घूमता जगत, अग्निमय वन-परदेश ;
आह, प्राणनाथ ! गम क्या, सनाथ है हृदय,
है हृदय में न दुःख का प्रहार लवलेश ।

(२४)

"प्यार से पसार निज सुंदर युगल कर,
मत्त वनभूमि का समेटती सदा दुलार ;
झरने सिखाने गीत कोकिलवधू के साथ,
देखते नयन नित्य दिव्य खग-दरबार ।
फूलदल पर जब झूम-झूम भृंगदल,
प्रेम से बजाते हैं हृदय के सुधी सितार ;
मैं सनाथिनी, हूँ झूलती हृदय-दोल पर,
देखती मुझे प्रसन्नवदना कली-कतार ।

(२५)

"भाग्य घट मध्य भर शीतल पवित्र नीर,
सींचती स्व-स्नेह तरु-मूल पा प्रभातकाल ;
करती हूँ अर्चना लटें पसारकर नित्य,
प्रतिशोध-प्रणपूर्ण हो दिनेश ! हे विशाल !
खोलकर घूँघट प्रकृति-संगिनी सदैव,
गाती कुछ, देकर मधुर 'एवमस्तु' ताल ;
देखती उसी समय घूम-घूम जिस ओर,
हिलती प्रत्येक तरु की लदी कुसुम-डाल ।"

(२६)

कुछ कहना ही चाहते थे धर्मराज, किंतु
सहसा सुनापड़ी विकल सिंह की दहाड़ ;
हो रहे चकित सब, भीम ने घुमा के दृग,
देखा, दूर—सामने जो प्रेत-सा खड़ा पहाड़ ।
झाँकता है उसकी गुफा से एक वीर सिंह,
हाँफता गरम से, रुधिर-दृग फाड़-फाड़
देखता; रुधिर पान की विकट कल्पना में
लीलना ही चाहता है सहदेव को पछाड़ ।

(२७)

फेंक के गदा, चकित, रोषज्वाल मध्य ऊल,
भीम ने किया जो उस सिंह पर आक्रमण ;
झपटा तो वह भी, कुतूहल से सब लोग,
देखने लगे अतीत काल का सा शिशु-रण ;
.खूब थी 'दहाड़' औ' 'पछाड़' की चपेट चोट,
किंतु इसमें लगा न एक भी मधुर क्षण,
खींच दीर्घ केश, फाड़ भीषण कपोल गोल,
जीभ खींच ली, हुए प्रसन्न पांडु-पुत्र-गण ।

(२८)

एक ओर था रुधिर धार का नवीन कुंड,
एक ओर थी सुहावनी ललित चुमकार ;
राग और रंग था, किसी दिवस खेद-दुख,
होती थी किसी दिवस युद्ध-कल्पना विहार ।
देश था न परदेश, कानन विशाल यह,
वनवास-भूमि, कौरवों का द्यूत उपहार ;
मार थी विपत्ति को, अदृष्ट की न परवाह,
काटता यहीं था दुखकाल पांडु-परिवार ।

(असमाप्त)

"गुलाब"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया में नवयुग का आरंभ

कभी वह भी ज़माना था, जब सारे संसार में एशिया की महत्ता और प्रभाव छाया हुआ था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि एशिया महाखंड के दो महान् देशों (भारतवर्ष और चीन) ने ही संसार में सभ्यता फैलाने का सर्वोत्कृष्ट कार्य किया था। उस समय सारा एशिया उन्नत, सभ्य और सब प्रकार से संपन्न था, और उसे अपने महाखंड में हिंदुस्थान तथा चीन-जैसे विशाल, उन्नतिशील, विविध विद्याओं और कलाओं में पारंगत महत्वपूर्ण देशों के रखने का गौरव प्राप्त था। पर समय ने पलटा खाया और उसके साथ एशिया-महाखंड के भाग्य ने भी जवाब दे दिया। उसका पतन तथा संसार के दूसरे राष्ट्रों का उत्थान शुरू हुआ, और अवस्था यहाँ तक पहुँच गई कि जिन महादेशों और राष्ट्रों को एशियावालों ने उन्नति, सभ्यता और मनुष्यता का सबक पढ़ाया था, वही इतने दबंग और शक्तिशाली बन गए कि एशियावालों—अपने गुरुओं—को ही न केवल अपना शिकार बनाने लगे, बल्कि उनके सर्वनाश पर तुल गए। योरप के साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने एशियावासियों पर जैसे-जैसे भयंकर अत्याचार किए और आज भी कर रहे हैं, उन्हें सोच-समझ और याद कर किसी भी मनुष्य का हृदय दहल उठेगा। इतिहास के पन्ने इन योरपीय राष्ट्रों—ख़ासकर ग्रेटब्रिटेन—के भयंकर काले कारनामों से भरे पड़े हैं, और संसार में आज कोई शक्ति, कोई युक्ति और कोई ज़रिया नहीं है, जिसके द्वारा इन राष्ट्रों के मुखों पर पुती हुई कालिख दूर की जा सके। आज भी पश्चिम के ये सभ्यताभिमानी साम्राज्यवादी राष्ट्र एशिया को अपने चंगुल से नहीं छोड़ना चाहते, और अपनी अनेक चालबाज़ियों एवं विविध कूटनीतियों से उसे अपनी क्रीड़ा-स्थली बनाए रखना चाहते हैं। पर अब वे दिन गए; अब एशिया जाग उठा है। उसमें समता, स्वतंत्रता और भ्रातृभाव के भावों की प्रबल जागृति हो उठी है, और एक-एक करके इस महाखंड के सभी राष्ट्र स्वतंत्र होकर संसार में अपना मस्तक ऊँचा उठाते जा रहे हैं। आज यहाँ के राष्ट्रों में न केवल राजनीतिक जागृति हो रही है, बल्कि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक—सर्वतोमुखी जागृति हो रही है, और वह दिन अब दूर नहीं, जब एशिया के एक छोर से दूसरे छोर तक सभी राष्ट्र स्वतंत्र होकर आपस में एक दूसरे को गले से गले लगाएँगे, तथा परस्पर मैत्री एवं भाई-चारे का संबंध स्थापित कर संसार में किसी के सामने नत-मस्तक न होंगे। उस समय न यहाँ साम्राज्यवादियों के अत्याचार देख पड़ेंगे, और न पूँजीपतियों की नादिरशाही; न भूख की आह सुनाई पड़ेगा, और न पीड़ितों की कातर व्यथा! उस समय यहाँ शांति, समता और स्वतंत्रता का साम्राज्य होगा। उस समय यहाँ के किसान और मज़दूरों को पेट-भर अन्न, ठंडा जल, स्वच्छ वायु और प्रकाशमय मकान तथा साफ़-सुथरे कपड़े मिलेंगे। उस समय वे घृणा और करुणा के पात्र नहीं समझे जायँगे, बल्कि प्रेम और आदरणीय माने जायँगे। नीचे एशिया के विभिन्न राष्ट्रों की जागृति का कुछ विवरण दिया जाता है, उससे एशिया के वर्तमान जागरण और भावी अभ्युदय का पता लग जायगा।

रूस

रूस में जब तक ज़ारशाही शासन-पद्धति प्रचलित रही, तब तक वह एक योरपीय राष्ट्र गिना जाता था, उसे अपने को एक योरपीय राष्ट्र कहने में ही गौरव जान पड़ता था। पर ज़ारशाही के अंत और सोवियट-शासन-पद्धति के क्रम-विकास के साथ-साथ उसकी प्रवृत्ति योरप की ओर से मुड़कर एशिया की ओर फिरी—और यहाँ तक फिरी कि आज अपने को वह स्वयं ही एक एशियाई राष्ट्र घोषित करता है। वह कहता है कि हमारी संस्कृति और सभ्यता एशियाई है, और इसलिये हम एशियाई हैं। सभ्यता और संस्कृति चाहे उसकी एशियाई न हों या बहुत थोड़ी हों; पर उसका संबंध और स्वार्थ वर्तमान समय में एशिया से उतना अधिक घनिष्ठ होता जा रहा है, तथा उसका भू-विस्तार योरप की अपेक्षा एशिया में इतना अधिक है कि किसी भी व्यक्ति को उसे एक एशियाई राष्ट्र मानने में ज़रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एतराज़ नहीं हो सकता। साथ ही एशियाई राष्ट्रों को रूस-जैसे उदार, उन्नतिशील और श्रेष्ठ राष्ट्र को, जिसने एशिया के विभिन्न पीड़ित और परतंत्र राष्ट्रों को स्वतंत्र करने में पूरी मदद पहुँचाई है, एक एशियाई राष्ट्र मानने तथा उससे अधिक-से-अधिक मैत्री एवं घनिष्ठ संबंध स्थापित करने में भला क्या हिचक हो सकती है? सच तो यह है कि जापान एक एशियाई राष्ट्र होकर भी योरपीय या पश्चिमी राष्ट्र बनकर पश्चिम के साम्राज्यवादियों के साथ एशिया के सर्वनाश में लगा हुआ है; और रूस पूरा नहीं, तो अर्द्ध-योरपीय राष्ट्र होकर भी एशियाई राष्ट्र बनकर जी-जान से एशिया से योरपियनों की जड़ उखाड़कर, उसे पूर्ण स्वाधीन कर देना चाहता है। रूस ने एशिया के विभिन्न राष्ट्रों के लिये जो-जो कार्य किए हैं, उसके लिये वह गौरव, प्रशंसा और बधाई का पात्र है। चीन के स्वातंत्र्य-संग्राम में चीन को रूस ने इतनी अधिक मदद पहुँचाई है कि उसके लिये चीन सदा उसका ऋणी रहेगा। स्व० डा० सनयात सेन के जीवन-काल में तथा उनके बाद भी रूस ने हर प्रकार से चीन की मदद की। उसने हज़ारों चीनियों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा देने के लिये रूस में सहूलियतें पैदा कीं; चीन में अपने यहाँ के योग्य-से-योग्य विद्वानों, वैज्ञानिकों, शिल्पज्ञों, सेनानियों आदि को भेजकर चीन की राष्ट्रीय सरकार के संघटन, मज़बूती, राष्ट्रीयता-प्रचार और दृढ़ता-संचय में बहुत अधिक हाथ बटाया; चीन को, सुदूर देश टर्की से (अप्रत्यक्ष रूप से), दो लाख सैनिकों की बड़ी भारी सहायता दिलाई। यही नहीं, बल्कि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सबसे पहला काम उसने जो किया, वह चीन में अपने अधिकार-प्राप्त स्थानों से स्वयं अपना अधिकार हटाकर चीन को अपना एक प्रेमी भाई बना लेना था। चीन की निजी जागृति के साथ-साथ रूस की इन्हीं सहायताओं और उदारताओं का यह फल है कि चीन आज पूर्ण स्वतंत्र हो गया और अब अपने देश से साम्राज्यवादी विदेशियों को निकाल बाहर करने पर तुल गया है।

पर एशिया में रूस ने केवल चीन की ही मदद नहीं की है, उसने टर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्थान, टर्किस्थान तथा मध्य-एशिया के कई छोटे-छोटे राष्ट्रों के उद्धार और उत्थान के उद्योग में भी प्रशंसनीय सहायता पहुँचाई है। ईरान अँगरेज़ों और रूसियों के प्रभाव-क्षेत्र के रूप में दो टुकड़ों में बटा हुआ था। रूस ने अपने 'प्रभाव-क्षेत्र' (Sphere of influence) से स्वेच्छया अपना अधिकार उठा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अँगरेज़ों को भी अपने 'प्रभाव-क्षेत्र' से अपना फ़ौलादी पंजा उठाना पड़ा। अफ़ग़ानिस्थान को भी समय-समय पर वांछनीय सहायता पहुँचाकर रूस ने उसे अच्छी तरह अपना लिया, और उसका उत्साह ख़ूब बढ़ाया। शाह अमानुल्लाख़ाँ की गत यात्रा के समय, रूस में सोवियट-सरकार ने उनका जिस प्रकार स्वागत-सत्कार किया और वहाँ के राष्ट्रपति से उनकी जो बातें हुईं, वे इन दोनों राष्ट्रों की घनिष्ठ मैत्री एवं परस्पर उन्नतिशील भाई-चारे के संबंध की परिचायक हैं। अफ़ग़ानिस्थान में इस समय कई विभागों में रूसी लोग काम कर रहे हैं, और सोवियट-सरकार ने अफ़ग़ानिस्थान को व्यापारिक, सैनिक तथा अन्य सब प्रकार की सहूलियतें अपने देश में देने का केवल वचन ही नहीं दिया है, बल्कि वह उसे कार्यरूप में परिणत भी कर रही है। इतना ही नहीं, बल्कि रूस ने टर्किस्थान तथा मध्य-एशिया के कई छोटे-छोटे राष्ट्रों को, जिन पर बहुत दिनों से उसका अधिकार था, बिलकुल स्वतंत्र कर दिया है। इस प्रकार अपनी उदारता, सहृदयता, परोपकारिता आदि गुणों के अनेक ज्वलंत उदाहरण पेश कर रूस ने प्रायः समस्त एशिया पर अपने सौजन्य का सिक्का जमा लिया है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि रूस का एशियाई राष्ट्रों के प्रति इस सौजन्य-व्यवहार का वास्तविक रहस्य क्या है? क्या वह बिलकुल निःस्वार्थ-भाव से—पीड़ितों की सहायता करना अपना कर्तव्य-मात्र समझकर ही—एशिया के प्रति इतनी उदारता और सहानुभूति दिखला रहा है? इस प्रश्न का उत्तर बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूस की शासन-प्रणाली और उसके शासक-मंडल के सूत्रधारों की प्रवृत्ति ऐसी ही बन गई और बनाई जा रही है कि पीड़ित राष्ट्रों—साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों के फ़ौलादी पंजों से बुरी तरह से प्रताड़ित राष्ट्रों—के प्रति उदारता, सहानुभूति और सहायता देकर सहृदयता के भाव प्रदर्शित करना उसके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक-सा हो गया है, और उसके इस गुण के लिये एशिया को उसका ऋणी रहना पड़ेगा; पर वास्तविक और प्रधान कारण इसके सिवा एक दूसरा भी है। और, यह उसके स्वार्थ का कारण होते हुए भी एशियावालों के लिये पारमार्थिक कारण सिद्ध हो रहा है। वह कारण है एशिया से अमेरिका और योरप के साम्राज्यवादी, ख़ासकर अँगरेज़ों के प्रभुत्व को समूल नष्ट कर देना। इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों की जड़ एशिया से वह क्यों उखाड़ना चाहता है, उसका कारण स्पष्ट है। अमेरिका और योरप के साम्राज्यवादी राष्ट्र—जब से रूस में सोवियट शासन-प्रणाली (मज़दूरों और किसानों की सरकार) प्रचलित हुई है तब से—उसके घोर शत्रु बन बैठे हैं, और जी-जान से उसके विनाश के हेतु तुले हुए हैं। ग्रेटब्रिटेन संसार में सबसे ज़बर्दस्त साम्राज्यवादी, वहाँ के रहनेवाले सबसे अधिक भयंकर पूँजीपति तथा एशिया में उसका सबसे अधिक राज्य, प्रभाव एवं आतंक और रूस साम्राज्यवाद, पूँजीवाद आदि का घोर विरोधी। यही कारण है कि ग्रेटब्रिटेन उससे जला करता है, और उसका सर्वनाश करने के लिये रोज़ एक-न-एक नई युक्ति निकालता रहता है। ऐसी अवस्था में सिद्धांततः संसार के साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का क़िला तोड़ने एवं ज़रूरतन ग्रेटब्रिटेन आदि साम्राज्यवादी राष्ट्रों से अपनी रक्षा के लिये प्रयत्न करना रूस का स्वाभाविक कर्तव्य है। इसके लिये उसके पास दो ही सर्वोत्तम उपाय हो सकते थे। एक तो अपने राष्ट्र और शासन-मंडल को हर प्रकार से संघटित, शक्तिशाली और अन्य सब साधनों से सुसज्जित करना, और दूसरे, संसार के अधिक-से-अधिक राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करना। उसने इन दोनों उपायों का अवलंबन किया। अपने देश और सरकार को वह बहुत हद तक संघटित, बलिष्ठ और श्रेष्ठ बना चुका है और अभी उस मार्ग पर बढ़ता ही जा रहा है। रहा दूसरा उपाय—सो उसके लिये उसने अनुकरणीय उद्योग किया है, जिसके फल-स्वरूप एशिया में अपना काफ़ी प्रभाव स्थापित कर आज वह इतने आदर के साथ देखा जा रहा है।

अमेरिका तथा योरप के प्रायः सभी राष्ट्र साम्राज्यवादी और स्वतंत्र हैं। इस कारण वे न तो रूस की ओर आकृष्ट ही हो सकते हैं, और न रूस से उनकी पट ही सकती है। पर एशिया की दशा ठीक इससे विपरीत थी। यहाँ के प्रायः सभी राष्ट्र परतंत्र, पीड़ित और पश्चिमी साम्राज्यवादियों एवं पूँजीपतियों के चंगुल में बुरी तरह से फँसे हुए थे। इस परिस्थिति को रूस ने अच्छी तरह समझा और स्थिति को अपने अनुकूल समझ इसी तरफ़ अपना क़दम बढ़ाया। एशियाई राष्ट्रों के लिये यह बिलकुल स्वाभाविक था कि जो राष्ट्र उनके प्रति अत्यंत उदारता, सहानुभूति और त्याग का अनोखा भाव दिखला रहा हो, जो उन्हें स्वतंत्र करने और कराने में पूरी मदद दे रहा हो, उसकी तरफ़ वे न केवल आकृष्ट हों, बल्कि मैत्री और भाई-चारे का घनिष्ट संबंध स्थापित करें। उधर रूस अधिक-से-अधिक राष्ट्रों की सहानुभूति और मैत्री का भूखा था ही। यही सर्वोपरि—सर्वप्रधान—बात है, जिसके कारण रूस एशियाई राष्ट्रों के प्रति इतना सौजन्य दिखला रहा है, और एशियावाले उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

अपनी अंतर-राष्ट्रीय परिस्थिति को अधिक-से-अधिक अपने अनुकूल बनाने के सिवा अपनी आंतरिक स्थिति के सुधारने में भी वह बड़े ज़ोरों से जुटा हुआ है। सामाजिक बुराइयों को दूर करना, निरक्षरता का नामोनिशान मिटा देना, धार्मिक ढोंगों का अंत कर देना, किसानों और मज़दूरों को अधिक-से-अधिक सुखी और संपन्न करना, सैनिक संघटन में दुनिया के किसी भी सर्वोत्कृष्ट देश से पीछे न रहना आदि दिशाओं में उसके कार्य बड़ी प्रबल गति से हो रहे हैं और विभिन्न राष्ट्रों के हमलों, घरेलू लड़ाइयों, साम्राज्यवादियों की अनेक अवरोधक चालबाज़ियों एवं भयंकर आर्थिक कठिनाइयों में फसे रहने पर भी, गत ८-१० वर्षों में, उसने जो उन्नति की है, वह अभूतपूर्व है। एशियाई राष्ट्रों पर उसके इस उन्नतिशील और क्रांतिकारी जीवन का भी बहुत प्रभाव पड़ रहा है, और जैसे-जैसे उसकी जितनी अधिक उन्नति होगी, एशियाई राष्ट्रों पर वैसे-ही-वैसे उसका प्रचुर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

टर्की

एक योग्य राष्ट्रपति की अध्यक्षता में एक स्वतंत्र राष्ट्र, बहुत थोड़े ही समय में, कितनी अधिक उन्नति कर सकता है, इसका यदि किसी को अनुमान करना हो, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे वर्तमान टर्की की अत्यंत उन्नतिशील प्रगति पर ध्यान देना चाहिए। केवल ८-९ वर्षों में, टर्की के राष्ट्रपति ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा ने टर्की को जिस उच्च आसन पर लाकर बिठा दिया है, वह एक आश्चर्य-जनक दृष्टांत है। टर्की को स्वतंत्र करने के बाद मुस्तफ़ा कमाल ने अच्छी तरह सोच और समझ लिया कि बीसवीं सदी में कोई राष्ट्र किस स्थिति में रहकर अपनी रक्षा कर सकता है, किस प्रकार संसार में अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा की मुहर लगा सकता है, और कितना उन्नत एवं परिवर्तनवादी बनकर अपनी प्रजा को अधिक-से-अधिक सुखी कर सकता है। इन बातों को महसूस करना था ही कि मुस्तफ़ा कमाल ने अपने देश में अपनी कमालकारी क्रांति की लकड़ी फेर दी। सैकड़ों वर्षों से जो मिथ्या धार्मिक ढोंग फैला हुआ था, समाज में जो अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं, स्त्रियों को अशिक्षित और परदा-रूपी कारागार में बंद रखकर जो यंत्रणाएँ दी जाती थीं, अशिक्षा का जो भयंकर अंधकार फैला हुआ था, शिल्प-कला, विज्ञान आदि की जो शोचनीय अनभिज्ञता व्याप्त थी—सभी पर मुस्तफ़ा कमाल ने एक साथ ज़बर्दस्त कुठाराघात किया—और ऐसा कुठाराघात किया कि टर्की में आज इन सब संकुचित विचारों, ढोंगों, अज्ञानों आदि का दुर्ग ढह कर चूर-चूर हो गया। आज वहाँ नई रोशनी की शत-प्रति-शत बातें विद्यमान हैं। आज वहाँ की जागृति, वहाँ का जीवन और वहाँ की प्रगति एक दर्शनीय वस्तु हो रही है, और दूसरे राष्ट्रों को टर्की के मुस्तफ़ा कमाल-जैसा अत्यंत शक्तिशाली, त्यागी और देशभक्त नेता पाने पर ईर्ष्या हो रही है। मुस्तफ़ा कमाल की शक्ति, प्रतिभा, बुद्धि और स्वातंत्र्य-प्रियता न केवल प्रशंसनीय हैं, बल्कि प्रत्येक राष्ट्र-निर्माता के लिये पूर्णरूपेण अनुकरणीय है।

मुस्तफ़ा कमालपाशा एक संकुचित विचार के आदमी या निरे स्वार्थी राष्ट्रपति नहीं हैं। वह सारे एशियाई राष्ट्रों को पश्चिमी साम्राज्यवादियों के चंगुल से मुक्त होकर पूर्ण स्वतंत्र देखना चाहते हैं, और इसके लिये वांछनीय यत्न कर रहे हैं। चीन को जो सहायता उन्होंने दी थी, उसका ज़िक्र पहले किया जा चुका है। इस समय आपने अफ़ग़ानिस्थान से फिर एक नई संधि की है। और अफ़ग़ानिस्थान के सैनिक संघटन आदि के लिये अपने यहाँ के योग्य-से-योग्य आदमियों को भेजकर उसे समुचित सहायता पहुँचा रहे हैं। आशा है, इसी प्रकार अन्य परतंत्र राष्ट्रों को स्वतंत्र करने और स्वतंत्र को शक्तिशाली बनाने में वह समुचित सहायता प्रदान करेंगे।

अफ़ग़ानिस्थान

अफ़ग़ानिस्थान के उत्कर्ष का पता संसार को सबसे अधिक अफ़ग़ानिस्थान के बादशाह अमानुल्लाख़ाँ की गत यात्रा से लगा है। बादशाह अमानुल्लाख़ाँ ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा-जैसे ही बड़े उन्नत विचार के आदमी हैं। आपकी प्रजा-वत्सलता, स्वातंत्र्य-प्रियता, धार्मिक सहिष्णुता आदि बातें बड़ी प्रशंसनीय हैं। १९१९ ई० तक अफ़ग़ानिस्थान अँगरेज़ों के संरक्षण में था, और उसे उनका मुखापेक्षी बनकर रहना पड़ता था। पर बादशाह अमानुल्लाख़ाँ ने गद्दी पर बैठते ही अपने देश को पूर्ण स्वतंत्र घोषित किया, और फिर एक ही वर्ष बाद अँगरेज़ों के संरक्षण से भी अपने को पूर्ण स्वतंत्र कर लिया। इसके बाद अफ़ग़ानिस्थान से अनियंत्रित शासन-प्रणाली को उन्होंने स्वेच्छा से ही अंत करके, नियंत्रित राजतंत्र-शासन-प्रणाली स्थापित कर अपनी स्वातंत्र्यप्रियता और प्रजा-वत्सलता का ज्वलंत नमूना पेश किया। उन्होंने अफ़ग़ानिस्थान की शोचनीय दशा और दुनिया के वर्तमान वायुमंडल का मिलान किया, तथा महसूस किया कि उनके यहाँ बहुत सुधारों की आवश्यकता है। यह सोचकर वह अपने देश को सब प्रकार से उन्नतिशील बनाने में जुट गए। टर्की, रूस, जर्मनी, फ़्रांस आदि देशों में सैकड़ों अफ़ग़ान-युवकों को आधुनिक युग की विभिन्न प्रकार की उन्नत विद्याएँ सीखने को भेजा, और इन देशों से अनेक योग्य विद्वानों को बुलाकर अफ़ग़ानिस्थान में भी लोगों को सब प्रकार से शिक्षित और संपन्न बनाने लगे। यह क्रम अंत तक जारी था। शासन-व्यवस्था, सैनिक संघटन, वाणिज्य-व्यवसाय, शिल्प-विज्ञान, तार, डाक, सड़कें आदि की अधिक-से-अधिक उन्नति करने के लिये अनेक प्रयत्न किए जा रहे थे। अफ़ग़ान-नरेश की गत योरप-एशिया-यात्रा का एक मुख्य उद्देश्य यह भी था कि वह उन राष्ट्रों की प्रगति आदि बातों को देखकर अनुभव प्राप्त करें कि अफ़ग़ानिस्थान को और भी अधिक उन्नत किस प्रकार बनाया जा सकता है!

इँगलैंड के प्रबल शत्रु रूस और इँगलैंड की 'सोने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिड़िया' भारत के मध्य-स्थित होने, अंतर-राष्ट्रीय राजनीति में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेने और उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की प्रगति ने, संसार की राजनीति में, अफ़ग़ानिस्थान की महत्ता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। अफ़ग़ान-नरेश ने अपनी गत यात्रा में अपनी राजनीति-विशेषज्ञता, बुद्धि-विचक्षणता, निर्भीकता, स्वतंत्र्य-प्रियता आदि गुणों द्वारा योरपीय तथा एशियाई राष्ट्रों में अपने देश की इस महत्ता का सिक्का और भी अच्छी तरह जमा दिया है। अब उसकी गणना संसार के प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में होने लगी है, और उसकी इज़्ज़त सबकी दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ गई है। हर्ष की बात तो यह है कि वह जिस वेग से आगे बढ़ रहा है, उसे देखकर यही आशा होती है कि उसकी महत्ता वर्तमान समय की अपेक्षा और भी अधिक बढ़ जायगी।

ईरान

गत योरपीय महायुद्ध के बाद एशिया में स्वतंत्रता की प्रथम रमणीय रश्मि टर्की में, दूसरी अफ़ग़ानिस्थान में और तीसरी ईरान में आलोकित हुई। चीन की भाँति ईरान को भी योरपीय राष्ट्रों—ख़ासकर इँगलैंड और रूस—ने अपने प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट रक्खा था। इन विदेशी राष्ट्रों की अपनी अदालतें, अपना क़ानून—सब कुछ अपना था। ईरान की अदालतें उनके मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती थीं। ईरान के बादशाह बड़े लापर्वाह, आरामतलब और निरंकुश होते थे। उन्हें प्रजा की हित-चिंता का कुछ भी ख़याल न था, और वे प्रायः योरप में जाकर मौज किया करते थे। पर ईरानी जनता को स्वतंत्रता की विमल वायु के स्निग्ध और सुखकर स्पर्श ने जगा दिया, और सेनापति रज़ाख़ाँ पहलवी के नेतृत्व में उसने वहाँ के बादशाह को निकाल भगाया। प्रजातंत्र-शासन की स्थापना हो गई। नए-नए सुधार, नई-नई बातें की जाने लगीं। रेल, तार, जल-जहाज़, हवाई जहाज़ का निर्माण आरंभ हो गया। जर्मनी, इटली आदि देशों से योग्य-योग्य व्यक्तियों को बुलाकर प्रजा को शिक्षित बनाया जा रहा है। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार के लिये पूरी कोशिश की जा रही है। विदेशी राष्ट्रों को अपने 'प्रभाव-क्षेत्रों' से हट जाने को भी कहा गया था। रूस ने तो स्वयं ही अपने 'प्रभाव-क्षेत्र' से अपना अधिकार छोड़ दिया था, पर अन्य राष्ट्रों को भी—मुख्यतः इँगलैंड को—ईरान से अपना अधिकार उठा लेना पड़ा। फल-स्वरूप गत १० मई, १९२८ ई० से किसी भी विदेशी राष्ट्र का ईरान में अब कोई प्रभाव या अधिकार नहीं रहा, विदेशी अदालतें उठा दी गईं, और ईरान सब प्रकार से पूर्ण स्वतंत्र हो गया। इस राजनीतिक उद्धार के उपलक्ष्य में वहाँ ख़ूब ख़ुशियाँ मनाई गईं। अब ईरान भी अपने अध्यक्ष श्रीरज़ाख़ाँ पहलवी के नेतृत्व में ख़ूब आगे बढ़ेगा। वह विदेशों से मैत्री और समानता की संधियाँ कर अपनी जड़ मज़बूत कर रहा है। अफ़ग़ानिस्थान से भी उसकी एक ऐसी ही संधि हो चुकी है।

चीन

एशिया का सबसे बड़ा भूखंड और सबसे बड़ी जन-संख्यावाला देश चीन है। इस दृष्टि से उसको एशिया में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पर इतना बड़ा देश होते हुए भी, दैवदुर्विपाक से कहिए या अपनी संकुचित मनोवृत्ति के कारण, वह इधर सैकड़ों वर्षों से ख़ूब लूटा-खसोटा गया, ख़ूब अत्याचार-पीड़ित किया गया, और उसका सर्वनाश कर डाला गया। शुरू में मंचूशाही द्वारा उस पर अत्यंत निरंकुशता के साथ शासन होता रहा। उसके बाद मंचूशाही के साथ ही वहाँ विदेशशाही का साम्राज्य भी स्थापित हो गया, और इँगलैंड, जर्मनी, फ़्रांस, इटली, बेल्जियम, रूस, अमेरिका, जापान आदि राष्ट्र अपने को मालामाल करने के लिये उचित-अनुचित सब प्रकार के मनमाने अत्याचार उस पर करने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने चीन में अपना इतना अधिक प्रभाव जमा लिया कि वहाँ के बादशाह को अपने हाथ की कठपुतली बना ली, और उनसे मनमाना जितनी ज़मीन, नगर और सहूलियतें प्राप्त करनी चाहीं, मंज़ूर करा लीं। अनेक अन्यायपूर्ण और असमान संधियाँ कीं। फल-स्वरूप चीन इन दर्जनों विदेशियों द्वारा अनेक प्रकार से सताया और लूटा जाने लगा। इन विदेशी राष्ट्रों ने अपना मतलब गाँठने के लिये चीन पर जैसे-जैसे अत्याचार किए हैं, संसार में बहुत कम राष्ट्रों पर वैसे अत्याचार हुए हैं, और जब तक इति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास का अस्तित्व रहेगा, इन राष्ट्रों का नाम सदा उनके चीन में किए गए अत्याचारों के लिये कलंकित रहेगा। धीरे-धीरे चीनी जनता की नींद टूटी, और वह अपने ऊपर होनेवाले इन अत्याचारों को भली भाँति महसूस कर उनसे छुटकारा पाने का यत्न करने लगी। महर्षि सनयात सेन के नेतृत्व में अनेक सुधार आरंभ हो गए, और चारों ओर जागृति-ही-जागृति दिखलाई पड़ने लगी। अंत में उस आदर्श-नररत्न और महान् त्यागी वीरात्मा का परिश्रम सफल हुआ, तथा १९१२ ई० में एक ज़बर्दस्त क्रांति द्वारा मंचूशाही का क़िला ध्वंस करके प्रजातंत्र की स्थापना हो गई। पर विदेशियों का प्रभाव अभी तक वैसा ही बना रहा। विदेशी चीन में प्रजातंत्र की स्थापना से अपना भविष्य अंधकारमय देख बहुत घबराए, और लगे अपने अनेक दाव-पेंचों द्वारा चीनी लोगों में फूट डालने। पारस्परिक मतभेद के कारण चीन उत्तर और दक्षिण-चीन के नाम से दो हिस्सों में बँट गया। दक्षिण-चीन में प्रजातंत्र की नींव क़ायम रही, पर उत्तर में देशद्रोही स्वार्थी सेनापतियों ने अपना अधिकार जमा लिया। अपनी सत्ता बनाए रखने के लिये विदेशी राष्ट्र यह कभी नहीं चाहते थे कि चीन के इन दोनों राष्ट्रों में एकता स्थापित हो जाय, और इसलिये वे उत्तर के देशद्रोही सेनापतियों—ख़ासकर चांग-सो-लिन, जो वहाँ का सबसे प्रबल सेनापति था—को ख़ूब धन दे-देकर अपनी ओर मिलाए रहे तथा उससे अधिक-से-अधिक अधिकार प्राप्त करते रहे। पर दक्षिण की प्रजातंत्र-सरकार विदेशी तथा उत्तर के सैनिकों की एक-एक चाल को अच्छी तरह देखती-समझती रही। उसने देखा कि ये लोग यों बात सुननेवाले नहीं हैं, इसलिये अच्छी तरह से सैनिक संघटन कर या जिस प्रकार से वे मानें, वह मनाने को तुल पड़ी। गत ढाई-तीन वर्षों से चीनियों का यह घनघोर स्वातंत्र्यसंग्राम चल रहा है। इस बीच उन्हें अनेक कठिनाइयों का बड़ा ज़बर्दस्त सामना करना पड़ा; पर उन सबको कुचलते हुए वे बराबर बड़ी वीरता और दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते ही गए। उनकी इसी देशभक्ति, स्वातंत्र्य-प्रियता, दृढ़ता और वीरता का यह परिणाम है कि उन्होंने उत्तर के सारे देशद्रोही सेनापतियों को विजित कर समस्त चीन-महादेश (मंचूरिया-मात्र को छोड़कर) में प्रजातंत्र-सरकार (राष्ट्रीय) का झंडा फहरा दिया है*।

चीन की इस विजय से एशिया का भविष्य बहुत ही आशापूर्ण और उज्ज्वल हो गया है, और संसार की राज-नीति में उथल-पुथल-सी मच गई है। चीन की राष्ट्रीय सरकार के सामने विदेशियों को चीन से बाहर निकाल भगाने की एक और समस्या है, पर यह कोई बहुत जटिल समस्या नहीं है; क्योंकि समस्त चीन पर अधि-कार हो जाने से राष्ट्रीय सरकार की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है, और वह भयंकर-से-भयंकर आपत्ति का भी सामना करने को तैयार है। अभी कुछ ही दिन हुए, वहाँ की सरकार की ओर से विदेशियों के नाम यह पत्र लिखा गया है कि सभी विदेशी राष्ट्र शीघ्र-से-शीघ्र अपनी सेनाएँ चीन से वापस मँगा लें; अगर वे अपनी सेनाओं को वापस नहीं बुलाते, तो चीन-सरकार को बाध्य होकर चीन का भीतरी भाग विदेशियों के लिये बंद करना पड़ेगा, तथा नई सेनाओं को चीन में आने देने से रोकने के लिये मजबूर होना पड़ेगा। इसके साथ ही उसने यह भी कहा है कि विदेशियों के साथ पहले जितनी असमान संधियाँ हुई हैं, उन सबका अंत कर सभी विदेशी राष्ट्रों को मित्रता और समानता की संधि कर लेनी चाहिए। राष्ट्रीय झंडे के नीचे समस्त देश के आ जाने के कारण अब चीन में विदेशियों से सहानुभूति रखने वाला एक आदमी भी उस समय न मिलेगा, जब चीन-सरकार विदेशियों के लिये भीतरी चीन को एकदम बंद कर देगी। इसलिये बेहतर तो यह है कि वे सभी अन्यायपूर्ण संधियों का अंत करके समानता की संधियाँ कर लें; नहीं तो बाद को विदेशी राष्ट्र चाहे जैसे मानेंगे, चीन-सरकार उन्हें मनवाने के लिये उसी प्रकार मजबूर करेगी, और इस बार विदेशियों के सब अधिकारों, सब अत्याचारों और सब असमान संधियों का अंत करके ही वह दम लेगी। चीन में सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा-संबंधी तथा अन्य सब प्रकार के सुधार बहुत पहले से आरंभ हो गए हैं, और वह बहुत आगे बढ़ गया है। अब पूर्व

* चीन को इस स्वातंत्र्य-संग्राम में रूस से जो सहायता मिलती रही है, उसका संक्षिप्त विवरण इस लेख के रूसवाले भाग में दिया जा चुका है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्र होने और सब झंझटों से मुक्त होने पर वह रही-सही बातों को लेकर बड़े वेग से आगे बढ़ेगा, तथा समुचित उन्नति करके समस्त संसार में अपना तथा एशिया का मस्तक फिर ऊँचा करेगा।

जापान

एशिया का वर्तमान समय में सबसे अधिक प्रबल और उन्नत राष्ट्र (यदि रूस को छोड़ दें, तब) जापान है। जिस प्रकार रूस आज एशियाई राष्ट्र बनकर एशिया वालों को काफ़ी मदद पहुँचा रहा है, उसी प्रकार अगर जापान ने भी एशियाई राष्ट्रों की मदद की होती, तो इस समय एशिया की दशा कुछ और ही होती, और दुनिया एशिया की महानता, शक्ति और एकता पर दंग रह जाती। दर-असल रूस और जापान एशिया के दो ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र हैं, इनका एशिया में इतना अधिक प्रभाव है कि ये जो चाहें, कर सकते हैं। पर एशिया का यह महादुर्भाग्य है कि उसकी एक ऐसी शक्ति आज अपने भाइयों के बीच से अलग होकर पश्चिमी साम्राज्यवादी और पूँजीपति ख़ूँख़्वार राष्ट्रों के गुट में जा मिली है और उन्हीं की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए संसार के परतंत्र और पीड़ित राष्ट्रों को और भी घोर यातना-पाश में आबद्ध करने पर कटिबद्ध रहती है। आज तक किसी भी एशियाई राष्ट्र को उसने कभी कुछ भी सहायता नहीं की, बल्कि उलटे उन्हें उलटे उस्तुरे से मूँड़ने की ही चेष्टा करता रहा। अपने पड़ोसी चीन का—जो कभी उसका गुरु रह चुका है और जिसकी अनेक कृपाओं के लिये वह चिरऋणी है—उसके सर्वनाश करने में उसने कुछ भी नहीं उठा रक्खा। अभी हाल ही में चीनियों पर उसने जो अत्याचार किए हैं, वे उसके साम्राज्यवाद-प्रेम और पूँजीपतिशाही के ज्वलंत दृष्टांत हैं। इसी प्रकार कोरिया में वह जो धाँधली मचाए हुए है, उसे भी दुनिया अच्छी तरह जानती है। एशिया को अपने एक ऐसे उन्नत और शक्तिशाली राष्ट्र के ऐसे आचरण पर हार्दिक परिताप है। पर क्या किया जाय? जापान योरपीय राष्ट्र तथा अमेरिका के साथ रहने, उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने में ही अपनी अधिक भलाई सोचता है, हालाँकि उसकी यह धारणा बहुत हद तक निर्मूल और मिथ्या है। यदि वह अपनी क्षुद्र स्वार्थपरता को छोड़कर एशियावालों के साथ मिले, उनकी आवश्यकताओं और तकलीफ़ों की ओर ध्यान दे तथा सहानुभूति प्रदर्शित करे, तो सारे एशिया का नेतृत्व उसी वक़्त उसके हाथ आ जायगा। फिर समस्त संसार एशियाई राष्ट्र-संघ से काँप उठेगा। उस समय दुनिया की कोई एक या संयुक्त-शक्ति न होगी, जो रूस, जापान, टर्की, अफ़ग़ानिस्थान, ईरान (और अब चीन) की संयुक्त-शक्ति—एशियाई संघ—का मुक़ाबला करने की बात भी सोचे। पर जापान को यह श्रेय प्राप्त करना अच्छा नहीं लगता। उसकी सराहनीय समझदारी, उन्नत प्रवृत्ति, शक्ति-शालीनता और श्रेष्ठता का एशिया को गौरव था, और उसे उससे, उसके अभ्युत्थानकाल में, बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधी थीं, पर अब वे सारी काफ़ूर हो गईं। पर इतना बतला देना अनुचित न होगा कि आज जापान एशियाई राष्ट्रों से चाहे जितना अपने को अलग रक्खे और चाहे उन पर मनमाना अत्याचार भी क्यों न कर ले, पर उस दिन के आने में अब बहुत देर नहीं है, जब उसे झख मारकर पश्चिम के साम्राज्यवादी तानाशाहों का साथ छोड़ अपने एशियाई भाइयों के साथ मिलना पड़ेगा।

अखिल-एशिया-संघ

लगभग तीन वर्ष हुए, एशिया में अखिल-एशिया-संघ की स्थापना हुई। उसका पहला अधिवेशन १९२७ ई० में टोकियो (जापान) में तथा दूसरा अधिवेशन गत वर्ष (१९२८ ई० में) शांघाई (चीन) में हुआ। उसका तीसरा अधिवेशन इस वर्ष काबुल (अफ़ग़ानिस्थान) में होनेवाला है, और बहुत संभव है, चौथा और पाँचवा अधिवेशन क्रमशः अंगोरा (टर्की) और तेहरान (ईरान) में हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि एशिया-संघ की शक्ति अभी बहुत परिमित और संकुचित-सी है; पर यह स्पष्ट है कि निकट भविष्य में उसकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ जायगी। यह संतोष की बात है कि सदा एशिया के विरुद्ध चलनेवाला जापान भी इस संघ के साथ है। चाहे इस संघ में उसका अस्तित्व बे-मन और अन्यमनस्कता से ही क्यों न हो, पर उस प्रकार भी उसका इसके अंदर रहना संघ के लिये लाभदायक ही है। अभी तो इस संघ की शैशवावस्था तथा एशियाई राष्ट्रों का जागरण-काल है, और इस कारण इन्होंने अधिक सजगता, लगन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिश्रम के साथ इस संघ को शक्तिशाली बनाने का यत्न भी नहीं किया है। पर इस वर्ष की एशियाई राजनीतिक परिस्थिति से बोध होता है कि इस संघ की शक्ति शीघ्र ही बहुत अधिक बढ़ जायगी। रूस, टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्थान के बीच परस्पर संधियाँ हो चुकी हैं, और इन चारों राष्ट्रों का एक गुट्ट-सा बन गया है। इधर अब चीन—एशिया की महाशक्ति—भी स्वतंत्र हो गया है। उसकी भी रूस, टर्की आदि उपर्युक्त राष्ट्रों से संधियाँ होंगी, जिसके स्पष्ट मायने हैं कि उस गुट्ट और फिर इसी के एक प्रकार से दूसरे रूप अखिल-एशिया-संघ की शक्ति ख़ूब बढ़ जायगी। ये पाँचों राष्ट्र एशिया में योरपियनों द्वारा होनेवाली धाँधागर्दियों को अच्छी तरह महसूस करते हैं, और उनकी हार्दिक इच्छा है कि इनका सर्वथा अंत हो। अफ़ग़ानिस्थान के बादशाह अमानुल्लाख़ाँ एशियाई राष्ट्रसंघ के प्रबल पक्षपाती हैं। अपनी गत योरप और एशिया की यात्रा में उन्होंने इस बात की स्पष्ट घोषणा भी कर दी है, तथा अपने आचरणों से भी उन्होंने दिखला दिया है कि योरपीय राष्ट्रों की अपेक्षा एशियाई राष्ट्रों के प्रति उनकी अधिक सहानुभूति, अधिक प्रेम और अधिक घनिष्ठता है। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि अफ़ग़ान-नरेश एशियाई संघ को, जिसका इस वर्ष का अधिवेशन उन्हीं की राजधानी काबुल में होनेवाला भी है, ख़ूब पुष्ट और बलवान् बनाने का समुचित प्रयत्न करेंगे। यह संतोष और हर्ष की बात है कि एशिया-संघ में, जहाँ जापान-जैसा साम्राज्यवादी राष्ट्र शामिल है, हिंदुस्थान-जैसे ग़ुलाम राष्ट्र के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं, और यही बातें इस संघ के उज्ज्वल भविष्य को सूचित करती हैं। ईश्वर करे, यह संघ दिनोंदिन अधिकाधिक बलवान् हो और न केवल एशिया के परतंत्र राष्ट्रों को ही स्वतंत्र करे, बल्कि संसार के सभी पीड़ित राष्ट्रों का भी उद्धार करे।

उपसंहार

संक्षेप में ऊपर यह बतलाया गया है कि एशिया में नवयुग का किस प्रकार आरंभ हो गया है, और उसके विभिन्न स्वतंत्र राष्ट्र अपनी उन्नति और कल्याण के लिये कितने प्रयत्नशील हैं। पर ऊपर केवल उन्हीं स्वतंत्र एशियाई राष्ट्रों की बातें मुख्यतः लिखी गई हैं, परतंत्रों का ज़िक्र नहीं किया गया है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि एशिया के परतंत्र राष्ट्रों में अभी तक नवयुग और नवजीवन का आरंभ नहीं हुआ है। नहीं, एशिया के स्वतंत्र-परतंत्र, प्रायः सभी राष्ट्रों में नवयुग का आरंभ हो गया है, और उनमें योरप की सर्वनाशिनी नीति से रक्षा करने का भाव उत्पन्न हो गया है। भारतवर्ष अपनी पूर्ण स्वतंत्रता के लिये बड़ी संलग्नता से लगा हुआ है, और यह संभव नहीं कि एशिया में जब टर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्थान और चीन स्वतंत्र हो गए, रूस जब उसकी सहायता के लिये हर प्रकार से तैयार है, जब स्वयं हिंदुस्थान स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये पूरा प्रयत्न कर रहा है, और सर्वोपरि जब स्वयं ब्रिटिश-साम्राज्य डावाँडोल हो रहा है, तो हिंदुस्थान अब और अधिक दिनों तक इसी प्रकार परतंत्र बना रहे! वास्तव में देखा जाय, तो एशिया में अब एक-मात्र हिंदुस्थान की ही समस्या सबसे जटिल और ज़बर्दस्त है, और इसके उद्धार के साथ ही सारे एशिया का उद्धार होना अवश्यंभावी एवं निश्चित है। उस समय एशिया में हिंदुस्थान का स्थान सर्वोपरि हो जायगा, और वह सारे एशिया का नेतृत्व ग्रहण करेगा। समय की गति स्पष्ट बतला रही है कि संसार की परिस्थिति दिनोंदिन हिंदुस्थान और एशिया के अनुकूल एवं ग्रेटब्रिटेन तथा योरप-अमेरिका के प्रतिकूल होती जाती है, और हिंदुस्थान के स्वातंत्र्य-संग्राम पर इसका समुचित प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। उधर एशिया के टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्थान में जब इतनी जागृति और जीवन है, तब यह कदापि संभव नहीं कि अरब और ईराक़ पर उनका प्रभाव न पड़े, और वे इसी परिस्थिति में अवस्थित रहें। यही नहीं, बल्कि ज़माना ऐसा आ गया है कि तिब्बत-जैसे एक प्रकार से संसार से परे रहनेवाले देश में भी जागृति आरंभ हो गई है। अँगरेज़ों की कोशिशें वहाँ भी ज़ारी हैं, और वे उसे हड़पना चाहते हैं; पर उन्हें याद रखना चाहिए कि एक तो तिब्बत स्वयं ही अँगरेज़ों की चालबाज़ियों से जानकार और सजग है; दूसरे, चीन का उस पर इतना कुछ प्रभाव है, और उसके द्वारा इतना प्रभाव डाला भी जा सकता है कि वह अब विदेशियों के चंगुल में नहीं फस सकता। इस प्रकार जिधर भी कोई देखना चाहे, एशिया में उधर ही, इस समय, उसे जागृति और जीवन की रुचिर रश्मियाँ झिलमिलाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई मिलेंगी। ईश्वर करे, एशिया के सभी राष्ट्र शीघ्र-से-शीघ्र पूर्ण स्वतंत्र हों, परस्पर एक सूत्र में बँधकर गले-से-गले मिलें, और संसार से साम्राज्यवाद का नामोनिशान मिटाकर पीड़ितों के उद्धारक और संसार में विश्व-प्रेम एवं स्थायी शांति के संस्थापक बनने का श्रेय प्राप्त करें।

देवव्रत

रौद्र-शृंगार

१

दोनों दे रहे हैं करवाल एक दूसरे को,
दोनों ही लगाते रक्त-रोचना ललाट पर;
दोनों हिल-मिलके सजाते रण-साज-बाज,
गाज गिरती है आज भोग के कपाट पर।
दोनों जयमाला पहनाते हैं परसपर,
भेंटते गले से पहले के प्रेम-घाट पर;
दोनों भुजदंड ठोंक दौड़ते न देख फिर,
दुंदुभी विजै की सुन चंडी की उचाट पर।

२

दोनों धँस धमक धरा में वारिधारा इव,
कसके दिखाते हाथ मृत्यु की न भीति है;
दोनों ही दिशाएँ चीर छोड़-छोड़ जी की पीर,
भासमान तेज की करा रहे प्रतीति हैं।
संतति-समान कर्म में लगाए दोनों ध्यान,
खाए पान प्रीति का निभाते धर्मनीति हैं;
होकर सवार वक्ष चीर वैरियों का मानों,
रति विपरीत की सिखाते नई रीति हैं।

मातादीन शुक्ल

विरहोद्गार

बजती है, बजने दे, उर की करुण-रागिनी रुके नहीं;
हाहाकार मचाकर जग में, उलझ शून्य में मिले कहीं।
किंतु पूर्व ही पवन-संग वह प्रियोच्छ्वास से टकराए;
'उसके' उर की जलती दारुण ज्वाला को उकसा जाए।

× × ×

कोमल कुचली तड़प रही है पीड़ित भग्न हृदय की आह;
मर्मस्थल में छिपी वेदना छोड़ रही उच्छ्वास-प्रवाह।
सिसक रहा है कंपित उर-शिशु, सह न सकेगा दुस्सह चोट;
झाँक रहा है वह अनंत में, पड़ा-पड़ा परदे की ओट।

× × ×

आओ, साथ कराहें, 'सनसन' करते आओ दुखी समीर;
झरने! तुम भी आओ, रोवें—बरसा दें प्रलयंकर नीर।
मेघ! अग्नि की वर्षा कर दे, जल उठ झट तू नग्न नदीश!
तमोमग्न जग होवे, फिर यह दुखद सृष्टि न उठावे शीश।
नहीं चाह होती जीने की, प्रिया बिना सूना संसार;
लिए प्रेम निस्सीम हृदय में, जाऊँ जीवन के उस पार।

× × ×

आओ अब तुम भी 'सांध्य' सूर्य!
कर सृष्टि स्वर्णमय पथ की;
प्रियतमा निकट पहुँचा तो दो,
धर बागडोर निज रथ की।

सत्यव्रत शर्मा 'सुजन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

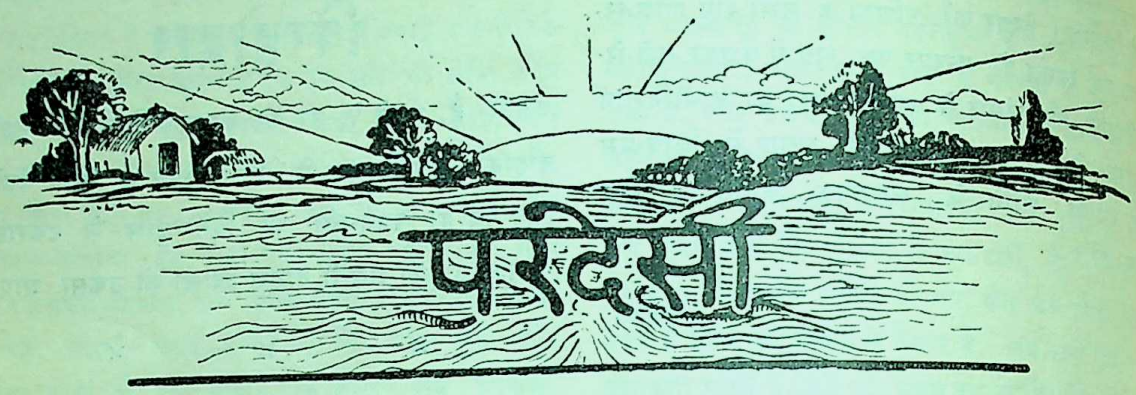

(उपन्यास)

उन्नीसवाँ परिच्छेद

इधर कुछ दिनों से फागुन की मीठी हवा बह रही थी। सुनहली संध्या की शोभा से मुग्ध होकर छैलबिहारी ने बाहर बरामदे में दो कुरसियाँ लगवाईं, और ललित के साथ बैठ गए। नए खिले हुए कुसुमों के स्निग्ध सौरभ से मद-विह्वल मलय-पवन बाँस के हरे-हरे पेड़ों की पत्तियों से छनकर आ रही थी और शरीर को मधुर पुलक से कंटकित कर रही थी। बग़ीचे के बीच में एक छोटा-सा जलाशय था। उसमें दो हंस सुसंयत विलास के साथ तैर रहे थे। अनेक छोटे-छोटे कमल खिलकर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। जगह-जगह केले के पेड़ लगे हुए थे। नारियल, आम, जामुन, अमरूद, कमरख और युकेलिप्टस के पेड़ भी यथेष्ट थे। दो-एक अर्जुन के पेड़ भी दिखलाई देते थे। बेला, जुही मौलसिरी, चंपा, चमेली, गुलाब, गुलफ़ानूस आदि फूल सर्वत्र खिले हुए थे। विलायती फूल भी कम नहीं थे। विशेषकर 'नाइट-क्लोन' के एक पासवाले पेड़ में असंख्य छोटे-छोटे, पीले-पीले फूलों की बहार देखने में आ रही थी, और उनकी सुगंध घ्राणेंद्रिय को विशेष-रूप से तृप्त कर रही थी। ये छोटी-छोटी लज्जावती कुसुम-रानियाँ संध्या-समय ही अपने यौवन की छटा और महक व्यंजित करती हैं। हाइडेंजिया और पेटूनिया भी कसरत से फूले हुए थे। सारी प्रकृति मद से झूमती हुई-सी मालूम पड़ती थी। झिल्लियों की अश्रांत झनकार लोरियाँ सुनाती हुई मानो उसे सुलाने की चेष्टा कर रही थी। दो मोर गंभीरतापूर्वक इधर-उधर टहल रहे थे। कुंज-कुंज में नाना प्रकार के पक्षी बोल रहे थे। मुग्ध होकर ललित ने कहा—"तुम अच्छा वैराग्य-व्रत धारण किए हो बिहारी भैया! अगर यह वैराग्य है, तो फिर भोग क्या है? कालिदास के मेघदूत का सारा रस ही निचोड़कर तुमने यहाँ संचित कर रक्खा है। कदली-स्तंभ, अनति-प्रौढ़ वंश, नीलकंठ, मोर, कोयल, हंस, कमल, यूथिका-जालकानि, आम्र और जंबू-कुंज, सभी तो वर्तमान हैं! अभाव है, तो सिर्फ़ ललित वनिताओं और क्लांत कर्णोत्पलवाली पुष्पलावियों का। जब और सब उपकरण मौजूद हैं, तो इन दोनों ने क्या बिगाड़ा! इन्हें भी लाकर यह नंदन-कानन सुशोभित करो।"

छैलबिहारी के ब्रह्मचर्य के तेज से प्रदीप्त अपूर्व सुंदर मुखमंडल में कुछ लालिमा छा गई। फिर भी उन्होंने स्वाभाविक स्वर में कहा—"आज वसंती हवा की मादकता ने और तुम्हारे संग ने मेरे संयम के मूल में आघात कर डाला है। एक नई अनुभूति आज मेरे हृदय में उत्पन्न हो रही है ललित। बहुत संभव है, कुछ दिनों से, अज्ञात रूप से, यह मेरे हृदय में अधिकार करती आई हो; पर आज मैं इसका स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ। तुम चाहे कुछ भी कहो, ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। इससे भलाई की आशा नहीं की जा सकती।"

ललित बोला—"ब्रह्मचर्य की भी कोई हद होती है भैया। और, फिर तुम्हें तो यह किसी तरह शोभा नहीं देता। धन, स्वास्थ्य, सौंदर्य, हृदय की सरसता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सभी अपूर्व गुणों के होते हुए भी तुम अविवाहित हो। ऐसे ब्रह्मचर्य की कोई सार्थकता नहीं है। इस दीन-हीन, दलित-गलित देश के असंख्य दरिद्र भिखारी श्रीहीन, कांतिहीन, सत्त्वहीन, जन्मरोगी संतान पैदा करने में लगे हैं, और तुम्हारे समान जो लोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के यथोचित विकास के कारण वास्तव में संतानोत्पादन के अधिकारी हैं, वे अविवाहित रहना चाहते हैं। यह क्या कम अंधेर है !"

छैलबिहारी ने अवज्ञा की हँसी हँसकर कहा—"तुम क्या यह समझते हो कि कैसी भी कोई स्त्री मिले, उसके साथ विवाह कर लेने से गृहस्थाश्रम का कर्तव्य पूरा हो जाता है ? देश की वर्तमान अवस्था में किसी योग्य स्त्री का मिलना कोई आसान बात नहीं है।"

ललित ने पूछा—"आप योग्यता किसे कहते हैं ?"

छैलबिहारी ने उत्तर दिया—"जिस स्त्री का स्वास्थ्य अच्छा हो, मानसिक वृत्तियाँ उन्नत हों, जो सांसारिक प्रलोभनों से अपनी रक्षा कर सके, जिसे प्रेम से अधिक कर्तव्य का ज्ञान हो—ऐसी स्त्री को मैं योग्य कहता हूँ।"

ललित ने पूछा—"स्त्री के सौंदर्य को तुम कोई महत्त्व नहीं देते ?"

छैलबिहारी ने कहा—"नहीं, सौंदर्य के प्रश्न को मैं बिलकुल गौण समझता हूँ।"

ललित बोला—"अच्छी बात है। पर ज़रा सम्हल कर रहना भैया। जीवन का मार्ग जटिल है। तुम ठीक ही कहते हो कि लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते।"

ललित के व्यंग्य-वाण ने छैलबिहारी के मर्म में आघात किया ; पर वह चुप हो रहे, और जलाशय में हंसों की क्रीड़ा देखने लगे। शून्य दृष्टि से यह दृश्य देखते-देखते उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि उनका समस्त जीवन व्यर्थता के विकराल चट्टान में टकराकर चकनाचूर होने को है। कोई सुख नहीं है, कोई आशा नहीं है। ज्ञान का भूत उनकी इच्छा के विरुद्ध उनकी छाती पर चढ़ बैठा है। वह उससे मुक्ति पाकर इस अनंतमयी विपुला पृथ्वी का आलिंगन करना चाहते हैं, पर यह भौतिक माया अपनी छाया के आवरण में उनका हृदय ढकती जाती है। वह अपने गहन हृदयांधकार के रहस्य में आनंदमय प्रकाश के अविरल स्रोत का पता लगाने की चेष्टा में हैं, पर अंधकार के दलदल में अधिक-अधिक फँसते जा रहे । हाय, कैसे उनका त्राण होगा ! किस अलौकिक माया के बल से वह अपनी आत्मा का अज्ञात, कठोर बंधन छिन्न करने में सफल होंगे।

कुछ देर तक दोनों स्तब्ध भाव से बैठे-बैठे प्रकृति के अभिनय सौंदर्य-सागर की तरंग-लीला देखते रहे। अचानक कुछ सोचकर छैलबिहारी अपनी कुर्सी को कुछ पीछे हटाकर ललित की ओर मुँह करके बोले—"देखो ललित, इस वैराग्य-कुटी की प्रेतात्मा मेरी मूलात्मा को चाट-चाटकर उसे पत्थर के समान जड़ बनाने की चेष्टा में है। इधर कुछ दिनों से मेरा चित्त बहुत चंचल हो उठा है, और हृदय में एक भयंकर भीति पैठ गई है। इस कारण मेरी इच्छा है कि कुछ दिनों के लिये किसी ऐसे स्थान में चलें, जहाँ कर्म-कोलाहल के बीच जीवन के आनंद का मुक्त स्रोत निर्झर की तरह उन्मत्त होकर बह चला हो। तुम हँसोगे, पर मेरी हालत इतनी ख़राब हो गई है कि इस शांतोद्यान की ज्ञान-चर्चा से मैं अब सिनेमा के जीवन की तुच्छ भावुकता को भी कहीं अच्छी समझ रहा हूँ। मैं पहले ही कह चुका हूँ और तुम भी यह बात मान गए हो कि मुझे लक्षण अच्छे नहीं देख पड़ते। अचानक मेरी मति इस प्रकार मारी जाने के कारण, बहुत संभव है, मुझे शीघ्र ही जीवन अथवा मृत्यु के किसी भयंकर चक्र के फेर में पड़ना पड़े। पर कुछ भी हो, विज्ञान के इस प्रेत-लोक से मैं मुक्ति पाना चाहता हूँ—चाहे किसी भी उपाय से हो। रोग की विशेष अवस्था में शराब भी पीने को दी जाती है। मुझे भी चाहे इसी तरह राग-रंगमय जीवन की शराब पीनी पड़े, पर नहीं— अब यह हालत किसी तरह नहीं सही जाती।"

उनकी शांत, स्निग्ध और स्वाभाविक सुंदर, आँखों से उन्मादों की तरह एक प्रकार की भयंकर ज्योति विकीर्ण होने लगी। संध्या के समय इस निर्जन उद्यान में उनकी स्थिति की विभीषिका और आँखों की कौंदती हुई ज्योति देखकर ललित आतंक से कंपित हो उठा। उनके लिये बहुत दुःखित होकर वह बोला—"तुम्हें क्या हो गया है बिहारी भैया ? ज़रा शांत होओ !"

ललित की स्नेहपूर्ण भर्त्सना से छैलबिहारी का नशा उतर गया। अपनी उत्तेजना के कारण वह बहुत लज्जित हो गए, और झेंप मिटाने के लिये हँसकर बोले—"मेरी बात सुनकर तुम बेतरह घबराए हुए जान पड़ते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन घबराने की कोई बात नहीं। यहाँ से कुछ दिनों के लिये बाहर चलने में हर्ज ही क्या है? चलो, एक बार मेरठ चलकर अपने कालेज के जीवन की पुरानी सुख-स्मृतियों को फिर नए सिरे से जागरित करें।"

पर ललित को उर्मिला की याद आ रही थी। उससे बिदा होते समय उसकी आँखों में जो करुण वेदना छलक पड़ी थी, उसका रस उसके हृदय में उमड़-उमड़ आता था। उसकी स्निग्ध, सुंदर और कमनीय मूर्ति उसके मन को प्रबल वेग से अपनी ओर खींचती थी। उसने प्रस्ताव किया—"मेरठ में क्या करोगे? चलो एक बार तुम्हें लखनऊ की सैर करा लावें। वहाँ कौंसिलरों का वाक्-युद्ध भी देखोगे, और जीवन का कोलाहल भी।"

छैलबिहारी को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी।

बीसवाँ परिच्छेद

लखनऊ जाने की बात जब तय हो गई, तो रात-भर ललित बिछौने पर लेटे-लेटे इसी संबंध में सोचता रहा। इधर उसे ऐसा ख़याल हो गया था कि उर्मिला से विच्छिन्न होने के कारण मानों उसे धीरे-धीरे भूलता जाता हूँ, और उसकी तरफ़ से उदासीन होता जाता हूँ। इस बात से उसे अत्यंत शांति और तृप्ति मिल रही थी, और ऐसा मालूम हो रहा था कि उसे भूलने में समर्थ होने के कारण एक अचिंतनीय, वीभत्स, विकराल पाप के कलंक से छुटकारा मिल रहा है। अपने मन के ऊपर विजय प्राप्त करने के उल्लास से उसकी छाती फूली उठती थी। पर आज छैलबिहारी ने जब अपनी वैराग्य-कुटी की 'प्रेतात्मा' का उल्लेख किया, तो न-जाने क्यों उसे अचानक ऐसा मालूम होने लगा कि उर्मिला के प्रति उसके हृदय में प्रारंभ में जो वासना की प्रबल धारा उमड़ी थी, वह बीच में विच्छेद हो जाने के कारण सूखी नहीं, बल्कि अंतःसलिला नदी की तरह उसके अनजान में अधिक-अधिक गहरी होती आई है, और आज फिर अकस्मात् भीषण रूप से, गद्गद रव से मुखरित होती हुई, इठलाती, बल खाती हुई बाहर को फूट निकली है। हाय, उसकी आत्मविजय का सारा गर्व मिट्टी में मिल गया। पर, फिर भी, तृष्णा का एक अनिर्वचनीय सुख उसे आकुल करने लगा।

माधवी के संबंध में कोई बात भी अब तक छैल-बिहारी के साथ नहीं हो पाई थी। उन्होंने कौन वर उसके लिये ढूँढ़ रक्खा है, यह बात भी उसे नहीं मालूम हुई थी। पर उर्मिला की चिंता ने इस मुख्य चिंता को भी भुला दिया। इसका एक कारण यह भी था कि छैलबिहारी की आज की बातों से एक विशेष बात का आभास मिला था। उनकी बातों से उसके हृदय में यह अस्पष्ट आशा जागरित हुई थी कि उनके आदर्श के अनुकूल होने से, माधवी को एक बार देखने पर वह संभवतः स्वयं विवाह करने के लिये सम्मत हो जायँगे। इसलिये उसने इस चिंता को दबा दिया था।

पर यह जो पुरानी वासना फिर से जागरित हो उठी है, उसके लिये क्या किया जाय! रह-रहकर उर्मिला के स्निग्ध कंठ-स्वर, सरस स्नेह, करुण, कांत तथा कमनीय मुखमंडल की स्मृति उसे बेकल किए देती थी। आनंद और वेदना, शंका और आशा बारी-बारी से उसका हृदय धर दबाते थे। आज तक उर्मिला के स्नेह का आस्वादन वह भाई के बतौर करता आया था। पर आज पाप के अंकुर ने वासना के रस द्वारा सिंचित होकर जो विकराल मूर्ति धारण कर ली थी, उसका क्या उपाय होगा—यह सोचकर उसके हृदय में उत्कट भय का संचार होने लगा। पर, फिर भी, एक अज्ञात सुख की कल्पना और आशा से वह बार-बार पुलकित हो रहा था। लखनऊ जायगा, उर्मिला को देखेगा, उसकी सरस आँखों की प्यारी चितवन का रस पान करेगा, उसके साथ बातें करके उसके चिर-दुःखित हृदय के तप्त श्वास के ताप से झूमने लगेगा। पारस्परिक प्रेम का आभास दोनों में से एक भी नहीं व्यक्त करना चाहेगा। पर फिर भी आत्माओं की अंतर-तरंगों का मिलन अनजान में संघटित होता रहेगा। चर्चा दूसरे विषयों की होगी, पर धारा स्निग्ध, मधुर प्रेम की बहेगी। चंदो उसे प्रेम के साथ पराँठे पकाकर खिलावेगी, बीच-बीच में अपना संयत हास्य व्यक्त करती रहेगी, और पूछती जायगी कि कौन-सी तरकारी और चाहिए? किस चीज़ का अचार लाऊँ? कितने पराँठे और खाओगे? इत्यादि। बड़े आनंद से दो-चार दिन कट जायँगे।—ऐसी अनेकानेक भ्रांत कल्पनाएँ उसके निद्राहीन, उत्तप्त मस्तिष्क में उत्पात मचा रही थीं।

वह फिर सोचने लगा—दो-चार दिन तो इस तरह आनंद के साथ कट जायँगे। पर फिर—फिर क्या होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन तो मुझे लखनऊ से लौटना ही पड़ेगा। लौटकर फिर इसी ज्वाला से जलता रहूँगा, और रात-दिन बेचैन होकर तड़पा करूँगा। कहाँ तक इस प्रकार दिन कटेंगे? इस चरम समस्या का क्या समाधान हो सकता है? कैसे हृदय से इस पापांकुर का मूलोच्छेद होगा? कब तक यह असह्य वासना मन-ही-मन सड़ा करेगी? हाय, जब उर्मिला मुझे चाहती है और मैं उर्मिला को चाहता हूँ, तो क्यों स्वाभाविक, सरल उपाय से हम लोगों का अनंतकालिक मिलन संघटित नहीं होने पाता? जो बात बाहर से इतनी सरल और सुसाध्य जान पड़ती है, उसके बीच में बाधाओं का कैसा अच्छेद्य पर्वत विद्यमान है! कैसे-कैसे भयंकर पाषाणों से यह पर्वत छाया हुआ है! पाषाण के ऊपर पाषाण—उसके ऊपर पाषाण, फिर आगे चलकर पाषाण!

इस चिंता के समाप्त होते-न-होते एक दूसरी चिंता उठ खड़ी हुई।—अच्छा, क्या उर्मिला सचमुच मुझे चाहती है? उसका प्रेम भी क्या ऐसा ही उद्दाम है, जैसा मेरा? उसकी स्निग्ध सरसता को देखकर मैं कैसे यह अनुमान कर रहा हूँ कि उसे रात-दिन मेरी ही चिंता लगी रहती है? यह भी तो देखा जाता है कि किसी-किसी स्त्री का स्वभाव ही स्नेहमय होता और वह सब पर समान रूप से अपना स्नेह बरसाती है। स्नेह बरसाने में ही उसे आनंद मिलता है, और उसका प्रतिफल वह किसी से नहीं चाहती। चंदो का प्रेम क्या इसी तरह का नहीं है? वह अपनी भाभी को प्यार करती है, उनके बाल-बच्चों को प्यार करती है, छोटी बहन को अपने प्राणों से भी अधिक चाहती है, अपने भैया के प्रति अत्यधिक स्नेह का भाव प्रकट करती है। और तो क्या, नौकर-चाकरों तक से प्रेम का बर्ताव रखती है। मुझे भी निर्धन, संसार के स्नेह से वंचित और निराश्रय जानकर अगर उसने सबकी तरह अपने स्वाभाविक स्नेह से कृतार्थ किया हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? पर मेरे बिदा होते समय की वह अनुनय-विनय, वह क्लांत करुणा क्या कुछ विशेष भाव नहीं प्रकट करतीं? वह कैसे भूला जा सकता है! नहीं, कुछ भी हो, चंदो का मेरे प्रति जो प्रेम है, वह दूसरे लोगों से भिन्न है। वह भी मुझे उसी तरह चाहती है, जिस तरह उसे मैं चाहता हूँ। वह भी मुझे बराबर उसी दृष्टि से देखती आई है, जिस दृष्टि से मैं उसे देखता हूँ। बल्कि मैं तो आज इस दृष्टि से देखने लगा हूँ, पर वह प्रारंभ से ही यह विशेष भाव मन में पोषित किए थी।

सोचते-सोचते उससे निश्चित रूप से कुछ न सोचा गया, और वह व्याकुल होकर फूट-फूटकर रोने की इच्छा करने लगा। वह मन-ही-मन कहने लगा—हे भगवान्, बाधा, व्यर्थता और असफलता के मूल-रसों से तुमने मेरा जीवनांकुर सिंचित किया है, पर अब यह वृक्ष कहाँ तक बढ़ता रहेगा! संसार से मैं सदा अलग रहा हूँ, पर यह क्षुब्ध वासना क्यों मुझे उसके पंक की ओर ढकेल रही है? अपना कराल रुद्र अस्त्र लेकर मेरे जीवन के वृक्ष को छिन्न कर डालिए, और इस वासना को जड़ से उखाड़ फेंकिए। अगर ऐसा नहीं करना चाहते, तो मुझे शक्ति दीजिए कि मैं अपने सामने खड़ी हुई समस्त बाधाओं को छिन्न करके, समस्त संसार और समाज के साथ विद्रोह करके, अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं निकाल लूँ। इस प्रकार क्षुब्ध कल्पनाओं को लेकर, जी मसोसकर, सड़े-सड़े, पड़े-पड़े रहकर जीवन बिताना मेरे लिये अत्यंत दुस्साध्य और संकटपूर्ण हो रहा है। या तो शक्ति दो, या मौत।

इस प्रकार रात-भर उसे नींद नहीं आई। सुबह को आँख लगी। सूर्य निकलने के बाद बहुत देर तक वह सोता रहा। जब उठा, तो आँखें लाल और चढ़ी हुई थीं, और सारे शरीर में दुर्बलता जान पड़ी, जैसे किसी ने रातभर उसे हथौड़े से पीटा हो।

इलाचंद्र जोशी

लय

अपने को, अपनी पीड़ा को तुम्हें पिला दूँ प्राणाधार;
भाव-अभाव-भेद मिट जाए, मिलन-विरह हों एकाकार।
जीवन-मरण, अतृप्ति-तृप्ति के पार बसे कोई संसार;
तीनों मिलें एक प्याले में घुल-मिल प्रियतम, प्रेमी, प्यार।

कल-कल वीणा में कहती है
सागर से सरिता की धार—
"विनिमय नहीं, किंतु लय ही है
सकल साधनाओं का सार।"

हरिकृष्ण "प्रेमी"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसावाद

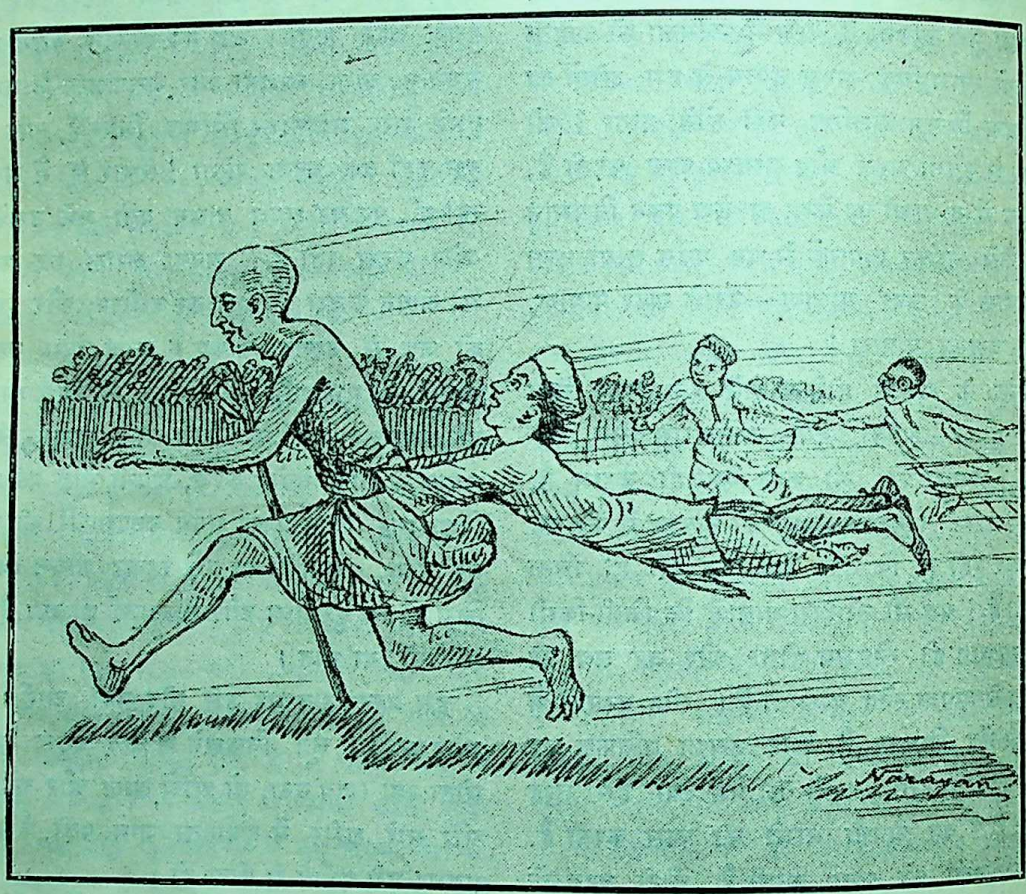

१. अहिंसावाद के विरोधी—ठहरिए ! ठहरिए अहिंसावाद की उपयोगिता अब संदिग्ध हो गई है।
२. अहिंसावाद के आचार्य—नहीं, मैं ठहर नहीं सकता, भारत का कल्याण अहिंसावाद से ही होगा। मैं देश के कोने-कोने में इसका प्रचार करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी

'मनोरमा के नवंबर-मास के अंक में बाबू श्रीशिवनंदनसहायजी का गोस्वामी तुलसीदासजी के संबंध में एक लेख निकला है। आपका यह लिखना सचमुच ठीक है कि "गोस्वामीजी के किसी विशेष जीवनचरित्र पर सर्वथा सत्यता की छाप देने में बहुत कुछ सावधानी और सोच-विचार की ज़रूरत है।"

सच तो यह है कि गोस्वामीजी के जीवनचरित्र के संबंध में जितनी खींचातानी हो रही है, उतनी और किसी भी कवि के संबंध में नहीं हुई है, फिर भी निश्चयात्मक रूप से अब तक कोई बात ठीक नहीं हो सकी है।

बाबा वेणीमाधवजी के 'मूल-गोसाईं-चरित्र' की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका आदि में यथेष्ट आलोचना हो रही है, और उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर भी समुचित प्रकाश डाला जा रहा है। अतः उस पर कुछ और लिखकर इस लेख का कलेवर बढ़ाना अभीष्ट नहीं। प्रस्तुत लेख में तो उन नवीन ज्ञातव्य बातों पर, जो अब तक हिंदी-संसार के सामने नहीं आई हैं, प्रकाश डालना है।

गत वर्ष सोरों-निवासी श्री० पं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री * का एक लेख देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसमें शास्त्रीजी ने बड़े ही अच्छे रूप में तुलसीदासजी के संबंध की बहुत-सी ज्ञातव्य और प्रामाणिक बातें लिखी हैं। आपने उस लेख में लिखा है—"गोस्वामीजी का जन्म सोरों (शूकरक्षेत्र) के मुहल्ला योग-मार्ग में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम था। यह दोनों माता-पिता तुलसीदासजी को जन्म देकर अल्प-समय में ही स्वर्गवासी हो गए थे। तब अनाथावस्था में नगर के चौधरी, सनाढ्यकुलरत्न, सर्वशास्त्रज्ञ श्री० पं० नरसिंहजी ने इनको पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया और गृहस्थ बनाया था।"

गोस्वामीजी के एक भाई और थे, जिनका नाम अब भी पुष्टमार्गीय वैष्णवों (गोकुलिया गोसाईंयों) के प्रतिमंदिर में और प्रतिघर में आदरपूर्वक लिया जाता है। इनका शुभ नाम है नंददासजी। यह महानुभाव गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य थे।

श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी का जन्म सं० १५७२ वि० में हुआ था। आप आद्याचार्य श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पुत्र थे। आपको अपने पिताजी की गद्दी १५

* गोस्वामीजी के संबंध में उक्त शास्त्रीजी का भी एक लेख 'माधुरी' में प्रकाशनार्थ आया है। वह भी शीघ्र ही छपेगा।
—संपादक 'माधुरी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष की अवस्था में, सं० १५८७ वि० में, मिली थी, और आप सं० १६४२ वि० में स्वर्गवासी हुए थे। श्रीवल्लभाचार्य अपने जीवन में केवल ८४ ही शिष्य कर सके थे, परंतु श्रीबिट्ठलनाथजी ने २५२ शिष्य किए। इन आचार्यों ने अपने शिष्यों के संक्षिप्त परिचय, कुछ स्मरणीय घटनाओं के सहित, लेखबद्ध करते जाने का आदेश दे रक्खा था। उन्हीं लेखों के ये संग्रह '८४ वैष्णवों की वार्ता' और '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के नाम से उस संप्रदाय में आज तीन सौ वर्ष से भी अधिक से सुरक्षित और विख्यात हैं, और धार्मिक दृष्टि से प्रत्येक मंदिर में पूजे जाते हैं।

इस संप्रदाय के श्रीसूरदासजी आदि ८ महाकवि भी शिष्य थे। इनको अष्टछाप कहा जाता था। इन्हीं में हमारे चरितनायक के भाई नंददासजी भी थे।

यद्यपि नंददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई ही थे, फिर भी हिंदी-संसार में इनके भाई-भाई होने के संबंध में अनेक संदेहात्मक और भ्रमोत्पादक बातें फैली हुई हैं। कोई गोस्वामीजी की जन्मभूमि तारी, हस्तिनापुर कहते हैं, तो कोई हाजीपुर (चित्रकूट), राजापुर (बाँदा) और सोरों। कोई आपको कान्यकुब्ज-ब्राह्मण कहते हैं, तो कोई सरवरिया और सनाढ्य।

(अ) माननीय 'मिश्रबंधुओं' ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु-विनोद' में नंददासजी को किसी तुलसीदासजी का भाई और ब्राह्मण होना लिखा है।

(ब) श्री० पं० मयाशंकरजी याज्ञिक उन्हें भाई-भाई तो मानते हैं; किंतु लिखते हैं कनौजिया के स्थान पर 'सनौड़िया'। 'सनौड़िया'-शब्द भूल से लिख गया मालूम होता है।

(स) रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी का कहना है कि '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर यह बात चल पड़ी है कि रासपंचाध्यायीवाले नंददासजी तुलसीदासजी के भाई थे।

अब निष्पक्ष होकर देखना यह है कि वास्तव में ठीक बात क्या है। पहली शंका (अ) का तो उत्तर यह है कि संभव है, प्रेस के भूतों की कृपा से किसी एक संस्करण में 'सनाढ्य'-शब्द छपने से रह गया हो; परंतु तीन सौ वर्ष की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों में वह स्पष्ट रूप से पाया जाता है, जिन्हें संशय हो, वे श्रीनाथद्वारा और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय, बंबई में जाकर तथा उन्हें देखकर अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं।

दूसरी शंका (ब) तो बिलकुल ही निराधार और हास्यास्पद है; क्योंकि प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों में स्पष्ट 'सनौड़िया' (सनाढ्य)-शब्द लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त सोरों और व्रज में अधिकांश सनाढ्य ब्राह्मणों की ही आबादी है।

तीसरी शंका (स) वाली वार्ता के आधार पर जो बात चल पड़ी है, वह मिथ्या थोड़े ही है, ठीक ही है। वार्ता को पढ़ने और निष्पक्ष होकर विचार करने से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि नंददासजी और तुलसीदासजी भाई-भाई और सनाढ्य-ब्राह्मण थे।

श्री० बिट्ठलनाथजी ने सं० १५९५ वि० से १६४२ वि० तक अपने संप्रदाय का प्रचार किया था, और इसी समय के भीतर नंददासजी ने भी इनसे दीक्षा ली थी। गोस्वामीजी का भी कविता-काल इसी समय के अंतर्गत माना जाता है। यथा—

संबत सोरह सै इकतीसा;
करौं कथा हरिपद धरि शीसा।
(रा० बा० कां०)

अब पाठकों के अवलोकनार्थ वार्ता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं। विचार किया जाय कि इन पंक्तियों से क्या प्रतिध्वनित होता है। क्या यह समस्त वर्णन गोस्वामीजी के अतिरिक्त किसी और तुलसीदासजी का भी हो सकता है?

(क) "सो वे नंददास पूर्व में रहते सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नंददास हते सो वे नंददास पढ़े बहुत हते।".....

(ख) "सो तब कितनेक दिन में वह संग कासी में आय पहुँच्यौ तब नंददास के बड़े भाई तुलसीदास हते सो तिन ने सुनी जो यह संग श्रीमथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आय के पूछ्यौ जो उहाँ श्रीमथुराजी में श्रीगोकुल में नंददास नाम करिके एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है सो पहिले उहाँ सुन्यो हतो सो काहू ने देख्यौ होय तो कहो। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही जो एक सनोड़ीया (सनाढ्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण है सो ताको नाम नंददास है सो वह पढ्यौ बहुत है सो वह नंददास तो श्रीगोसाईंजी को सेवक भयौ है।"

(ग) "और एक समय नंददास को बड़ो भाई तुलसीदास ब्रज में आयौ ता पाछे श्रीमथुराजी में तुलसीदास आये सो तब आयके पूछी जो यहाँ श्रीगुसाईंजी को सेवक नंददास कहाँ रहत है.....तब तुलसीदास ने नंददास के पास आयके कह्यौ जो नंददास तू ऐसो कठोर क्यों भयो है.....तेरो मन होय तो अजुध्या में रहियो तेरे मन होय तो प्रयाग में रहियो चित्रकुट में रहियो।"

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह गोस्वामी तुलसीदासजी ही से संबंध रखते हैं, किसी दूसरे तुलसीदास से नहीं। तुलसीदासजी का ब्रज में आना, नंददासजी की खोज करना, उनसे प्रीतिपूर्वक अपने साथ चलने का अनुरोध करना और अयोध्या, प्रयाग तथा चित्रकूट का नामोल्लेख करके उन स्थानों में रहने का आग्रह करना आदि अंश उनके भाई-भाई के संबंध को भली भाँति पुष्ट करते हैं।

इस किंवदंती से भी कि—

"कहा कहौं छबि आज की भले बने हौ नाथ;
तुलसी-मस्तक जब नवै धनुष-बाण लो हाथ।"

उपर्युक्त कथन ही सिद्ध होता है।

हाँ, राजापुर को तुलसीदासजी का जन्मस्थान सिद्ध करनेवाले महानुभावों के सामनें यह कठिनाई अवश्य आती है कि राजापुर (बाँदा) की ओर अधिकांश में सरवरिया-ब्राह्मण ही रहते हैं। अस्तु, उनके अतिरिक्त गोस्वामीजी को अन्य ब्राह्मण कैसे मान लें। और, यही कारण है कि कल्पनाओं के आधार पर गोस्वामीजी को सरवरिया-ब्राह्मण लिख मारा, और 'नंददासजी के भाई तुलसीदास कोई और तुलसीदास होंगे' ऐसा कहकर, उनके भाई-भाई होने में संशय उत्पन्न कर भ्रम डाल दिया गया; अन्यथा 'वार्ता' की प्रमाणिकता में संदेह करने का कोई कारण ही नहीं रह जाता है। और, सच बात तो यह है कि कल्पनाओं का महत्त्व तभी तक रहता है, जब तक कोई ऐतिहासिक और प्रामाणिक बात नहीं मिलती। समुचित प्रमाण मिल जाने पर तो वास्तव में उनका कुछ मूल्य नहीं रह जाता है।

कुछ महानुभाव यह कहकर भी कि गोस्वामी तुलसीदासजी रामभक्त और नंददासजी कृष्णभक्त थे, उनके भाई-भाई होने में संदेह करते हैं; किंतु यह भी लचरदलील और बेसिर-पैर की बात है। एक भाई का रामभक्त और दूसरे भाई का कृष्णभक्त होना अनहोनी बात नहीं। खोजने से ऐसे एक-दो नहीं, सैकड़ों उदाहरण इतिहास में मिल सकते हैं, और आजकल भी तो हम एक ही घर में पिता को सनातनधर्मी, एक भाई को आर्यसमाजी और दूसरे भाई को राधास्वामी-मत का प्रत्यक्ष देखते हैं।

श्री० पं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री से यह भी मालूम हुआ है कि नंददासजी का एक विस्तृत जीवन-चरित नाथद्वारे में था, परंतु वह बिट्ठलनाथजी की दूसरी पीढ़ी में गृह-कलह के कारण अन्य पुस्तकों के साथ स्थानांतरित होकर नष्ट हो गया है। तो भी प्रचलित किंवदंतियों से भी बहुत कुछ पता चलता है। नाभाजी द्वारा रचित भक्तमाल की प्रियादास-कृत टीका में 'नंददासजी का जन्मस्थान रामपुर लिखा है'। इस पर लेखकों ने रामपुर-स्टेट तथा बरेला के निकट किसी ग्राम की कल्पना कर ली है, यह ठीक नहीं।

सोरों (शूकरक्षेत्र), ज़िला एटा के समीप रामपुर एक नगर था। १९वीं शताब्दी में वर्तमान सोरों-निवासी समस्त ब्राह्मणों के पूर्वज उसी ग्राम में रहते थे, और उसी ग्राम में नंददासजी का जन्म हुआ था। पश्चात् नंददासजी के पिता सोरों के मुहल्ला योगमार्ग में आबाद हो गए थे। पीछे नंददासजी ने धनसंपन्न होने पर रामपुर को हस्तगत किया था, और उसका नाम बदलकर रामपुर से श्यामपुर रख दिया था। इसकी पुष्टि सोरों और उसके निकटवर्ती गाँवों में प्रचलित इस कहावत से कि 'नंददास सुकल कियो रामपुर से श्यामपुर' भली भाँति होती है।

गोस्वामीजी ने अपने ग्रंथों में अपने विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं लिखा है। उस समय परिपाटी ही ऐसी थी। दो-एक कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों ने ऐसा ही किया है। फिर भी गोस्वामीजी की कविता में कहीं-कहीं उनके गुरु, कुल, ग्राम आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनि मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ;
समझी नहिं तसि बालपन, तब हौं रह्यों अचेत ।

× × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा ;
समुझि परी कछु मति अनुसारा ।

(रा० बा० कां०)

बंदउँ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि ;

कोई-कोई विनयपत्रिका और कवितावली के आधार पर, बाल्यावस्था में गोस्वामीजी के मातापिता के मर जाने अथवा उनसे त्यागे जाने की कल्पना करते हैं, और कोई-कोई मूल-नक्षत्र में जन्म होने से माता-पिता द्वारा उनका फेंक दिया जाना और वैरागी साधु नरसिंह-दासजी को पड़े मिलना तथा उनके द्वारा शूकरक्षेत्र में पालापोसा जाना बताते हैं । यथा—

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाउँ ।

(वि० पत्रिका, २७५)

जनक जननि तज्यो जनमि काम बिनु

(वि० पत्रिका, २२७)

जायो कुलमंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी-जनक को ॥ २१५ ॥

(कवितावली)

हम कहते हैं, इतनी क्लिष्ट कल्पना किस लिये ? जब नंददासजी उनके भाई सिद्ध हो चुके हैं, तब वहाँ से परंपरा क्यों न मिला लीजिए । देखिए, निम्न-लिखित बातों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि राजापुर गोस्वामीजी की जन्मभूमि थी या सोरों—

(अ)—राजापुर यदि गोस्वामीजी का जन्मस्थान होता और सोरों केवल उनका गुरुस्थान, तो वैराग्य लेने के पश्चात् गोस्वामीजी सोरों से असहयोग और राजापुर से सहयोग कदापि न करते । दूसरे, यह कैसे संभव है कि राजापुर घर होते हुए भी वह कुटी बनाकर, अपनी प्रारंभिक वैराग्यावस्था में भी, वहाँ आराम से रह सकते और उनके संबंधी—विशेषतः उनकी स्त्री—कुछ भी विघ्न-बाधा न पहुँचाते ; क्योंकि गोस्वामीजी विवाहित थे, यह तो सिद्ध ही है । यदि वह घर या घर के नज़दीक रहे होते, तो यह कभी संभव न था कि उन पर गृहस्थाश्रम में लौट आने के लिये भरपूर आग्रह न किया जाता या दबाव न डाला जाता । किंतु इसका विवरण कहीं भी नहीं मिलता ।

(ब)—अयोध्या, चित्रकूट, काशी आदि अनेक स्थानों का गोस्वामीजी ने अपने जीवन में अनेक बार और भली भाँति भ्रमण किया था; किंतु अपने जन्मस्थान (सोरों) को जब से गए, फिर नहीं आए, और यह है भी स्वाभाविक ।

इन बातों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी की जन्म-भूमि सोरों ही थी, राजापुर नहीं ।

कहते हैं, एक बार नंददासजी के पुत्र कृष्णदासजी अपने चाचा गोस्वामी तुलसीदासजी को लिवाने राजापुर गए थे, और उनसे अनेक प्रकार अनुनय-विनय भी की थी, किंतु गोस्वामीजी नहीं आए; हाँ, एक पत्र पर एक पद लिखकर दे दिया था, जिसे लेकर कृष्णदासजी लौट आए थे । वह पद यह है—

नाम राम रावरोई हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहुँ टेरे ।
जननी जनक तज्यो जनि कर्म बिनु बिधिहूँ सृज्यो हौं अबेरे ;
मोह से कोउ-कोउ कहत रामहिं को सो प्रसंग केहि केरे ।
फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि दुसह दुखित मोहिं हेरे ;
नाम प्रसाद लसत रसाल फल अब हौं मधुर बहेरे ।
साधत साधु लोक-परलोकहि सुनि-गुनि जल घनेरे ;
'तुलसी' को अवलंब नामहिं को एक गाँठ बहु फेरे ।

नंददासजी के वंशजों का सं० १८९० वि० तक रहने का शोध मिलता है । इसके पश्चात् वंश-विच्छेद हो जाने के कारण उनकी संपत्ति आदि जिस वंश को मिली थी, वे उपाध्याय (हरू के) कहे जाते हैं ।

सोरों में अब भी जिस किसी को कर्ण-रोग हो जाता है, तो इन्हीं महान् पुरुषों के प्राचीन गृहों के ध्वंसावशेषों (खँडहरों) की मिट्टी लाकर लगा देते हैं । लोगों को विश्वास है कि तुलसीदासजी का जन्मस्थल होने के कारण पुण्यभूमि के प्रताप से रोग दूर हो जाता है ।

गोस्वामीजी के गुरु श्रीनरसिंहजी का स्थान अब भी सोरों में विद्यमान है, और वह नरसिंहजी के मंदिर के नाम से विख्यात है । लोगों ने भ्रमवश उन्हें वैरागी (रामानंदी) लिख मारा है, किंतु यह ठीक नहीं । वह गृहस्थ, सनाढ्य-ब्राह्मण थे, और उनके वंशज अभी विद्यमान हैं, तथा चौधरी की उपाधि से विभूषित हैं । श्रीनरसिंहजी धन-संपन्न होने के साथ-ही-साथ सहृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विद्वान् भी थे। अतएव मातृ-पितृहीन अपने सजातीय बालक (गो० तुलसीदासजी) की रक्षा, दीक्षा, पालन-पोषण आदि का उन्होंने समुचित प्रबंध किया था। इसके अतिरिक्त यह भी एक बात ध्यान देने की है कि यदि गोस्वामीजी किसी रामानंदी साधु के शिष्य होते, तो रामायण के प्रारंभ ही में—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि
मङ्गलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।
भवानीशङ्करौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

इस प्रकार मंगलाचरण न करते, और श्रीरामानुज स्वामी या रामानंद स्वामी का कहीं-न-कहीं नामोल्लेख अवश्य ही कर जाते। किंतु ऐसा न करके वह अपना स्मार्त वैष्णवमत प्रतिपादन कर गए हैं, और स्मार्तों की ही रामनवमी वह मनाते भी थे।

गोस्वामीजी का विवाह सोरों के ही एक उपनगर बदरिया-नामक ग्राम में हुआ था। गोस्वामीजी के ग्रंथों की भाषा में भी व्रजभाषा का बाहुल्य है। इससे भी उपर्युक्त बात ही पुष्ट होती है। और भी अनेकानेक प्रमाण हैं। जिन्हें संशय हो, वे सोरों-निवासी पं० गोविंदवल्लभजी शास्त्री से पत्र-व्यवहार कर या स्वयं सोरों जाकर तथा अनुसंधान कर अपनी शंकाओं का निवारण कर सकते हैं।

हिंदी-संसार में फैले हुए भ्रम को दूर करने के उद्देश्य से ही यह लेख लिखा गया है। आशा है, प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी और विशेषकर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' के अन्वेषण-प्रेमी महानुभाव इस पर निष्पक्ष-भाव से विचार करके, समुचित प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

गौरीशंकर द्विवेदी

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवाई

डोंगरे का बालामृत

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा० ख० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

पीठा होने से बालक इसे चाव से पीते हैं।
इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न बढ़ता है।
नक़्क़ालों से सावधान रहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. समाज-शास्त्र और इतिहास

दुखी भारत—लेखक, लाला लाजपतराय; प्रकाशक, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ संख्या ४७७; मूल्य ५)

लंदन के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'टाइम्स' के भूतपूर्व यशस्वी संपादक श्रीयुत हेनरी विकहम स्टीड ने अपने आत्म-चरित में लिखा है कि योरप का गत महायुद्ध तोपों और बारूद के गोलों द्वारा उतना नहीं लड़ा गया, जितना कि समाचारपत्रों और काग़ज़ के गोलों से। स्टीड महोदय की सम्मति में, इस महायुद्ध में, मित्र-राष्ट्रों और विशेषतः ग्रेट-ब्रिटेन की विजय का मुख्य हेतु उनका प्रचार-विभाग है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस वर्तमान युग में काग़ज़ी प्रचार का बड़ा महत्त्व है। ब्रिटिश लोग इस बात को ख़ूब अच्छी तरह समझते हैं, और इसी लिये भारत में अपने शासन को स्थिर रखने के लिये वे आवश्यक समझते हैं कि यहाँ अपने शासन के लाभों का अच्छी तरह प्रचार कर अपने लिये अनुकूल वातावरण तैयार कर लिया जाय। भारत में ब्रिटिश लोगों का साम्राज्यवाद तब तक नहीं स्थिर रह सकता, जब तक संसार के अन्य देश भारतीयों के लिये ब्रिटिश-शासन को लाभदायक न समझने लगें। यही कारण है कि वे निरंतर भारतीयों को असभ्य तथा अपना शासन स्वयं करने के अयोग्य कहते रहते हैं, और अन्य देश भी यही समझने लगे हैं। जर्मनी के राजनीति-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत ब्लुंशली तक ने—विदेशी शासन भी कभी-कभी लाभदायक होता है—इसका उदाहरण देते हुए भारत में अँगरेज़ी-राज्य का उल्लेख किया है। गत योरपीय महायुद्ध के समय तथा पश्चात् जब संसार के उन्नत देश पराजित एवं साम्राज्यवाद के शिकार हुए देशों के स्वातंत्र्य के दावों पर विचार कर रहे थे, तब भारत पर कोई ध्यान भी न देता था। कारण यह कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों ने लोगों के दिलों पर यही अच्छी तरह जमा दिया था कि भारतीय लोग असभ्य हैं, और ब्रिटिश उन्हें सभ्य बना रहे हैं—उनके हित को सम्मुख रखकर शासन कर रहे हैं। यह सब ब्रिटिश-प्रचार-विभाग की महिमा है। मिस मेयो की प्रसिद्ध किताब 'मदर इंडिया' इसी प्रचार-विभाग की प्रेरणा तथा सहायता से लिखी गई थी। इसमें यह अच्छी तरह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया था कि भारत आज भी उन्नत सभ्य राष्ट्रों से सदियों पीछे है, आज भी यहाँ की हालत मध्यकाल की दशा के समान या उससे भी बुरी है। भारत इस बीसवीं सदी में रहने योग्य नहीं है। संसार की सभ्यता के विकास के लिये भारत एक बड़ी भारी बाधा है। ब्रिटिश लोग इस असभ्य देश पर स्वार्थवश शासन नहीं कर रहे हैं। वे तो अपना बहुत कुछ नुकसान उठाकर, मानव-सभ्यता के विकास के उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य से प्रेरित होकर, बड़े त्याग के साथ असभ्य भारतीयों को सभ्यता प्रदान कर रहे हैं—उन्हें सभ्य संसार में रहने योग्य बना रहे हैं। यह कल्पना कर सकना कठिन नहीं है कि इस पुस्तक का क्या असर हो सकता था। योरप और अमेरिका के जिन लोगों की सहानुभूति भारत के स्वराज्य-आंदोलन के साथ थी, वे एकदम चौंक उठे। उनमें भारतीयों की स्वराज्य की योग्यता के लिये संदेह उत्पन्न हो गया। ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों की कूटनीति सफल हो गई। ब्रिटिश-प्रचार-विभाग अपना कार्य कर गया।

परंतु प्रसन्नता की बात है कि भारतीयों ने इस पुस्तक का उत्तर देने और इसका विषैला प्रभाव दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। अनेक पुस्तकें 'मदर इंडिया' के जवाब में लिखी गईं। भारतीयों ने भी, इस बीसवीं सदी में प्रचार का कितना महत्त्व है, इस बात का अच्छी तरह अनुभव किया। भारत के यशस्वी नेता लाला लाजपतराय ने भी 'अनहैपी इंडिया' (Unhappy India)-नामक एक पुस्तक 'मदर इंडिया' के जवाब में लिखी। लालाजी की इस पुस्तक ने बड़ा नाम पैदा किया। इससे मिस मेयो द्वारा फैलाया हुआ विष बहुत कुछ दूर हो सका। लालाजी की अँगरेज़ी-पुस्तक योरप और अमेरिका में बहुत नाम पैदा कर चुकी है। उसका बहुत प्रचार हुआ है। 'दुखी भारत' लालाजी की इसी अँगरेज़ी-पुस्तक का हिंदी-अनुवाद है। 'अनहैपी इंडिया'-जैसी प्रसिद्ध और उपयोगी पुस्तक का इतनी शीघ्रता के साथ हिंदी-अनुवाद प्रकाशित कर इंडियन प्रेस, प्रयाग ने हिंदी-भाषा का बड़ा उपकार किया है। इसके लिये उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। हिंदी-भाषा के लिये यह सचमुच गौरव की बात है।

लालाजी ने मिस मेयो की बातों का जिस प्रकार उत्तर दिया है, उसका संक्षेप के साथ भी यहाँ उल्लेख कर सकना बहुत कठिन है। पर लालाजी की युक्ति-शैली को बता देना शायद उपयोगी होगा। जो बुराइयाँ मिस मेयो ने वर्णन की हैं, उनमें से अधिकांश ब्रिटिश-शासन की कृपा से हैं। भारत में शिक्षा की कमी है, भयंकर दरिद्रता है, और निस्संदेह पारस्परिक फूट भी है। ये सब बातें ठीक हैं। पर क्या ब्रिटिश-शासन से पहले भी ये बातें भारत में थीं? नहीं। ब्रिटिश-राज्य शुरू होने पर भारत में शिक्षा का प्रबंध अब से बहुत अधिक था; लोग अब से बहुत अधिक सुखी और समृद्धि-शाली थे। उस समय पारस्परिक फूट भी न थी। ये सब बातें ब्रिटिश लोगों की कृपा से भारत में आईं। ब्रिटिश-सरकार ने हिंदू-मुसलमानों को आपस में लड़ाया, जाति-गत प्रश्न उत्पन्न किए, ब्राह्मण और ब्राह्मणेतरों की समस्या उत्पन्न की। भारत की वर्तमान भयंकर दरिद्रता ब्रिटिश-आर्थिक नीति का परिणाम है। ब्रिटिश लोगों ने भारत के व्यवसायों को नष्ट किया। ब्रिटिश-शासन से पूर्व भारत संसार के सबसे अधिक समृद्ध देशों में से एक था। संसार के बाज़ार में इसकी धाक थी। प्राच्य संसार का भारत व्यापारी-नेता था। भारत की इस गौरवास्पद स्थिति को ब्रिटिश लोगों ने नष्ट किया, और इस देश के निवासियों को रोटी तक का मुहताज बना दिया। यही बात शिक्षा के संबंध में भी कही जा सकती है। लालाजी ने इन सब बातों को ऐतिहासिक प्रमाणों और अँगरेज़-लेखकों के लेखों से सिद्ध किया है।

इसी प्रकार, बेशक, भारत में पशुओं से भी बदतर अछूतों की सत्ता है, निस्संदेह भारत के मंदिरों में देवदासियाँ रहती हैं, यहाँ अनाचार की कमी नहीं है। पर क्या योरप और अमेरिका इस अंश में भारत से अच्छे हैं? क्या वहाँ कामोत्तेजना भारत से कम है? क्या वहाँ नीग्रो और अन्य काली जातियों के साथ घृणास्पद व्यवहार नहीं किया जाता? इस संबंध में लालाजी ने जो घटनाएँ या गणनाएँ एकत्रित की हैं, वे सचमुच अद्भुत हैं। उनके पढ़ने से अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि आंतरिक दृष्टि से भारत की अवस्था योरप और अमेरिका से ख़राब नहीं है। यदि पाश्चात्य देश इन सब बुराइयों के रहते हुए भी स्वराज्य के योग्य हैं, तो भारत को इन बातों में योरप और अमेरिका से अनेक अंशों में अच्छा होते हुए भी क्यों स्वराज्य के अयोग्य बताया जाता है?

निस्संदेह लालाजी की शैली तथा विषय का प्रतिपादन अत्यंत उत्तम है। 'मदर इंडिया' का इससे बढ़कर और क्या उत्तर दिया जा सकता था? पर एक बात है, जिसे हम इस ग्रंथ के विषय के संबंध में कहना आवश्यक समझते हैं। प्रो० विनयकुमार सरकार ने अपने प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ 'फ़्यूचरिज़्म आफ़ यंग एशिया' (Futurism of Young Asia) में इसी विषय का प्रतिपादन करने के लिये जिस युक्तिशैली का उपयोग किया है, यदि लालाजी उसे भी दृष्टि में रखते, तो बहुत उत्तम था। योरप में जो उन्नति हमें अब दिखाई देती है, वह है कितने दिन की ? अब से अधिक-से-अधिक एक सदी पूर्व तक ही योरप की क्या अवस्था थी ? किसी दृष्टि से देखिए, योरप सभ्यता में भारत से बहुत पीछे था, वहाँ की आंतरिक अवस्था बहुत ख़राब थी। पिछली सदी की ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा—जिनमें भारत की राजनीतिक दासता सबसे मुख्य है—भारत पीछे रह गया, और योरप आगे निकल गया। पर अब भी भारत बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। इसलिये भारत पर इस ढंग के कमीने आक्षेप कर उसे स्वराज्य के सर्वथा अयोग्य बताना कितना युक्ति-शून्य है ! यदि लालाजी इस युक्ति का भी विस्तार कर सकते, तो हमारी सम्मति में यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता।

'दुखी भारत' लालाजी की मूल-पुस्तक का अनुवाद है। हमें खेद है, इस ग्रंथ के अनुवादक महोदय अपने प्रयत्न में पूरी तरह नहीं सफल हो सके। मूल-पुस्तक की भाषा का सौंदर्य हिंदी-अनुवाद में नहीं स्थिर रह सका। अँगरेज़ी के मुहाविरों का अनुवाद करने में अनुवादक ने बड़ी भद्दी भूलें की हैं। अच्छा होता, यदि इंडियन प्रेस के संचालक इस अनुवाद को हिंदी और अँगरेज़ी के कुछ प्रामाणिक विद्वानों को दिखला लेते। अँगरेज़ी से हिंदी में अनुवाद करते हुए जो कठिनाइयाँ आती हैं, उन्हें हम अच्छी तरह अनुभव करते हैं। इसलिये पुस्तक के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए इस अनुवाद पर और अधिक परिश्रम की आवश्यकता थी।

हम प्रत्येक हिंदी-प्रेमी से सानुरोध निवेदन करेंगे कि इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। इस एक ग्रंथ के अनुशीलन से उन्हें जितनी उपयोगी बातें ज्ञात होंगी, उतनी अन्यत्र प्राप्त कर सकना असंभव है। इस ग्रंथ का जितना भी प्रचार हो, उतना ही कम है।

सत्यकेतु

× × ×

२. कविता

स्वप्न—लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी और प्रकाशक, उन्हीं का हिंदी-मंदिर, प्रयाग ; मूल्य ॥) ; पृष्ठ-संख्या १०५

प्रस्तुत पुस्तक को श्री० त्रिपाठीजी ने काश्मीर में रचा है। आपने अपनी छोटी-सी भूमिका में (जो तीन पेज में आ गई है) लिखा है कि "पहले इसे कई प्रकार के छंदों में लिखने का विचार था, और दूसरा सर्ग मैंने भिन्न-भिन्न छंद में लिखा भी था, पर अंत में पाँचों सर्ग एक ही छंद में कर दिए"। इससे ज्ञात होता है कि आपने कदाचित् इसे महाकाव्य का रूप देना चाहा था; क्योंकि छंदांतर के साथ महाकाव्य ही सर्गबंध रहता है। आपने इसे अपनी उत्तर-यात्रा का स्मृति-चिह्न बताया है। कदाचित् इसी विचार से कि इसमें जिन दृश्यों का वर्णन आपने किया है, वे उत्तरीय देश अर्थात् काश्मीर में ही विशेषतः पाए जाते हैं। इसकी सूचना चतुर्थ अनुच्छेद में आपने स्पष्ट रूप से दे भी दी है, और लिखा है कि "उसका वर्णन मैंने अनेक पद्यों में किया ; फिर भी उन दृश्यों से जितना सुख मैंने अनुभव किया था, उसे पूर्ण रूप से उड़ेल देने में मैं सफल नहीं हुआ हूँ, और बिना काश्मीर गए उनकी सरसता पाठकों की समझ में भी अच्छी तरह नहीं आ सकेगी। तो भी स्मृति और कल्पना का आनंद उठाया ही जा सकता है।" वास्तव में किसी दृश्य को देखकर उसका ऐसा यथार्थ वर्णन करना कि वह पाठकों के सामने साकार चित्रित हो जाय, एक बड़े कला-कुशल, मर्मज्ञ और भाषा एवं भावों पर अधिकार रखनेवाले सिद्धहस्त कवि का ही काम है। त्रिपाठीजी ने स्वयं लिखा है कि "मैं कवि नहीं, पर सत्कवियों का सेवक और सुकविता का अनुरागी हूँ।" इससे आपके रसिक, नम्र एवं शुद्ध हृदय का परिचय मिल जाता है। यद्यपि त्रिपाठीजी कवि होने से इनकार करते हैं, तो भी उनकी कवि-प्रतिभा अपनी कवि-क्षमता दिखलाती हुई इसका विरोध करती है।

अब हम इस छोटे-से खंड-काव्य की—जैसा त्रिपाठीजी ने इसे कहा है—सम्यक् आलोचना करते हुए पाठकों से निवेदन करना चाहते हैं कि वे इसे स्वयमेव पढ़कर आनंद उठावें। पुस्तक देखने योग्य है। छपाई-सफ़ाई एवं आकार-प्रकार में भी अच्छी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे प्रथम हमें यह कहना है कि त्रिपाठीजी ने इस खंड-काव्य के लिये जो छंद चुना है, वह पढ़ने एवं लय के साथ कहने में बहुत रोचक और मनोरंजक नहीं है। यदि इस छंद के स्थान पर किसी दूसरे ललित छंद में यह काव्य लिखा गया होता, तो इसमें और ही रोचकता आ गई होती। अस्तु, यों तो सभी छंद अच्छे हैं।

अब इसकी भाषा के विषय में हमें सूक्ष्मतः यह कहना है कि वह कहीं-कहीं भाषा-व्याकरण के सानुकूल न रहकर खटकनेवाली हो गई है, यद्यपि कविता में भाषा अपने उस रूखे रूप में नहीं मिलती, जिस सच्चे रूप में वह गद्य में मिलती है। इसकी भूमिका की भाषा को देखते ही चित्त कुछ खिन्न-सा हो जाता है; क्योंकि उसमें भी भाषा की भूलें कुछ ऐसी रह गई हैं कि उनसे लेख की रोचकता को धक्का पहुँचता है। उदाहरण लीजिए—पृष्ठ नं० २—"काश्मीर में जिन-जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभा लिया था, उनका वर्णन..."—यहाँ यदि 'उनका' के स्थान पर 'जिन-जिन' के मुक़ाबले में 'उन-उन दृश्यों का' ऐसा होता, तो और रोचक होता। आगे आप लिखते हैं—"फिर भी उन दृश्यों से जितना सुख मैंने अनुभव किया था"...। यह वाक्य खटकनेवाला है। इसके स्थान पर यदि यों लिखा गया होता—"फिर भी उन दृश्यों से जितने सुख का मैंने अनुभव किया था, अथवा उन दृश्यों से जितना सुख मैंने अनुभवित किया था या मुझसे अनुभवित हुआ था"—तो अच्छा होता। इसी प्रकार इन्हीं तीन पृष्ठों में और भी कई भूलें रह गई हैं। स्थानाभाव से हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं।

ख़ैर, इसे छोड़िए, और आइए, काव्य की भाषा देखें। कविता में भाषा के बहुत-से दोष छिप भी जाते हैं, तो भी यहाँ कुछ ऐसे स्थान मिलते हैं, जो खटक ही जाते हैं। केवल थोड़े-से ही उदाहरणों का यहाँ पर देना हम पर्याप्त समझते हैं। पृष्ठ ९, पंक्ति ४ में 'उसके करके याद मनोहर' में 'उसके' शब्द के आगे आनेवाले भृकुटि-विलास आदि, जिनका 'उसके' के पास ही रहना अच्छा था, बहुत दूर डाल दिए गए हैं और फिर इन वचन एवं मुख आदि के साथ कर्मकारक का चिह्न 'को' अवश्य होना चाहिए था; क्योंकि पूर्ण वाक्य इसी प्रकार है—"उसके मनोहर भृकुटि-विलास, सप्रेम विलोकन, रसमय वचन, सदा विहसित मुख को याद करके".....व्रजभाषा की कविता में विभक्तियों का ऐसा लोप होता है, किंतु खड़ी बोली के लिये वह क्षम्य नहीं प्रतीत होता। संभव है, कवियों के ऐसा लिखते रहने से खड़ी बोली में भी आगे चलकर यह प्रथा प्रचलित एवं मान्य हो जाय। अस्तु।

कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो लेखक के स्वनिर्मित एवं नए-निराले हैं। वे भी कर्ण-कटु प्रतीत होते हैं, यथा—'नोकवती' (पृष्ठ ३८, छंद-संख्या ३३, पंक्ति ५वीं), 'प्राणित', 'निरलस' इत्यादि-इत्यादि।

कुछ प्रयोग भी अप्रयुक्त हैं। यथा—"थामे नहीं हँसी थमती है" (पृष्ठ २४, छंद-संख्या ५, पंक्ति ७वीं)। इसके स्थान पर यदि "रोके नहीं हँसी रुकती है"—ऐसा होता, तो अच्छा था। कहीं-कहीं व्रजभाषा के कवियों के समान आपने भी शब्दों को आकृति बदल दी है, और ऐसा आपने प्रायः छंदोभंग एवं तुकदोष निवारणार्थ ही किया है। यह अच्छा है, किंतु भाषा की शुद्धता में कुछ अंतर आ जाता है। यथा—मलाह (पृष्ठ ३०, छंद-संख्या १६, पं० ५वीं) एवं प्रतिक्षण (पृष्ठ ५३, छंद सं० २०, पं० ४)। यहाँ यद्यपि आपने शब्द शुद्ध ही रक्खा है, तो भी यह ज्ञात होता है कि आपके मन में 'मन' का तुक जोड़ने के लिये प्रतिक्षन ही शब्द था, किंतु देखनेवाले को यहाँ तुक-शैथिल्य ही प्रतीत होगा।

कहीं-कहीं आपने समास भी बड़े विलक्षण-से किए हैं। समास में वचन और कारक का नितांत लोप हो जाता है, किंतु आपने ऐसा नहीं किया। जैसे—'बूँदों-द्वारा' में (पृष्ठ-सं० १८, छं० ३५, पं० ५)। यहाँ या तो बूँदों के द्वारा होना चाहिए, या 'बूँदद्वारा'—। कहीं-कहीं विभक्तियों का भी प्रयोग व्यर्थ ही किया है, और वह केवल वर्ण एवं मात्रा-पूर्ति के लिये। साथ ही प्रायः आपने विभक्ति को उसके शब्द से अलग करते हुए यति रक्खी है, जो अरुचिकर है। यथा—किधर को जाऊँ (पृ० २१, छं० ४९, पं० १)। दुपहरी पर यति देते हुए उसके अधिकरण-कारक के चिह्न 'में' को दूसरे पद में दिया है (पृ० १८, छं० ३४, पं० ५-६), इत्यादि-इत्यादि।

अब इसके आगे हम भावों एवं कल्पनाओं पर विचार करते हैं। इस 'स्वप्न' में बड़े सुंदर भावों की योजना है, वस्तुतः प्रत्येक नवयुवक के हृदय में उनसे अच्छी जागृति उत्पन्न होगी। देश की दशा के चित्रदृश्य बड़े ही मार्मिक और सुंदर हैं। शृंगार-विषयक भाव उतने अच्छे ढंग से नहीं चित्रित हो सके। हमें निम्नोल्लिखित छंद बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचिकर प्रतीत होते हैं, यथा—छंद नं० २८, ३२ और ३४; द्वितीय सर्ग में छंद २,४, ६,९,११,१३ और ३७ इत्यादि, पाँचवें सर्ग में छंद नं० ४, ५ और १२ इत्यादि।

यद्यपि यहाँ कल्पना का क्षेत्र संकीर्ण-सा ही है, तो भी उसमें पर्याप्त रोचकता एवं सराहनीय प्रतिभा है। यह अवश्य है कि इस स्वप्न का देखनेवाला व्यक्ति बड़ा ही भावुक और उदार है। हम तो पाठकों से यही प्रार्थना करते हैं कि वे इस 'स्वप्न' का आनंद एक बार अवश्य ही उठावें।

इसमें त्रिपाठीजी ने सीधी-सादी भाषा में अपने हृदय के भावों को भली भाँति व्यक्त किया है। सरलता, सुबोधता और सच्ची सहृदयता ही इस काव्य के मुख्य गुण है। यदि इसमें काव्य-चातुर्य तथच चमत्कार कुछ थोड़े काव्य-कला-कौशल के साथ दिखलाया गया होता, तो इसके सत्काव्य होने में रंचमात्र भी संदेह न था।

कहना पड़ता है कि इसमें काव्य को सुशोभित करनेवाले दूसरे गुणों की कुछ न्यूनता है। तुक तो इसमें प्रायः उत्तम श्रेणी के हैं ही नहीं। ध्वनि और व्यंजना, जो उत्तम काव्य में प्राधान्य रखते हैं, इसमें नहीं आ सके। ज्ञात होता है कि कवि ने अपने मनोवेगों से उत्कृष्ट होनेवाले सराहनीय भावों के प्रकाशन पर ही विशेष ध्यान दिया है, और इसे एक उच्च साहित्यिक काव्य-ग्रंथ न रखकर एक सामयिक और लोकोपकारी काव्य के ही रूप में रखने का प्रयत्न किया है। और, उसमें वह सफल भी हुए हैं। शृंगार और करुणा का इसमें अच्छा सामंजस्य है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी बड़ा ही चित्रोपम और चित्ताकर्षक है—वह है भी तो कवि का एक अनुभवित विषय। हम मुक्त-कंठ से इसकी प्रशंसा करते हैं। खड़ी बोली के लिये यह रचना अवश्य ही श्लाघ्य है। तथास्तु।

रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

× × ×

३. कथा-साहित्य

रूपक-रत्नावली (प्रथम भाग)—लेखक एवं प्रकाशक, श्रीयुत रामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्नमाला, काशी; पृष्ठ-संख्या १९४; मूल्य १)), सजिल्द १।); कागज़ और छपाई उत्तम।

महाकवि कालिदास का शकुंतला-नाटक, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, हर्षदेव की रत्नावली और भवभूति के मालती-माधव तथा उत्तर-रामचरित, संस्कृत-साहित्य के सुप्रसिद्ध एवं अद्वितीय नाटक माने जाते हैं। इन नाटकों के गद्य एवं पद्यानुवाद भी हो चुके हैं, जो हिंदी साहित्य-संसार के अमूल्य रत्न समझे जाते हैं। किंतु किसी ऐसे संस्करण का—जिसमें उपर्युक्त पाँचों नाटकों का कथाभाग मिल सके, छायानुवाद निर्विवाद-रूप से उत्कृष्ट हो, भाषा परिमार्जित एवं मधुर हो और भावों को रक्षा का भार ज़िम्मेदारी के साथ निबाहा गया हो—मेरे विचार से सचमुच ही अभाव था।

सुविज्ञ लेखक ने इस कमी की पूर्ति बड़े ही धैर्य, अध्ययन एवं परिश्रम से की है। एक ओर संस्कृत-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट नाटकों की प्रतिभा-पूर्ण कल्पनाएँ, कौशल-पूर्ण काव्य-कलाएँ एवं अग्राह्य भाव, दूसरी ओर लेखक का शब्द-सौष्ठव, सफल योजना तथा वाक्य-विन्यास, दोनों ही सोने में सुगंध-सरीखे हैं।

वर्माजी उक्त पुस्तक का 'दूसरा भाग' भी लिखना चाहते हैं, जिसमें विक्रमोर्वशीय, स्वप्नवासवदत्ता, मृच्छ-कटिक आदि अन्य सुविख्यात नाटकों का कथा-भाग रहेगा। विचार सराहनीय है, और इससे हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि भी होगी।

× × ×

४. पत्र-पत्रिकाएँ

आर्य-महिला—संपादक, पं० कालीप्रसाद शास्त्री; प्रकाशक, भारतधर्म-प्रेस, काशी; वार्षिक मूल्य ५); पृष्ठ-संख्या लगभग ८५ प्रतिमास; कागज़ और छपाई सुंदर।

यह श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद् की प्रमुख पत्रिका है, जो गवर्नमेंट और स्टेटों के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत की जा चुकी है। 'आर्यमहिला' में विविध विषयों से संबंध रखनेवाले प्रायः सभी आवश्यक स्तंभ हैं। लेख कहानी एवं कविताएँ सुरुचिपूर्ण और शिक्षाप्रद हुआ करती हैं। अनुभवी सज्जनों द्वारा लिखे गए विद्वत्तापूर्ण निबंध भी प्रायः निकला करते हैं। वेदमूलक सनातन-धर्म के सुदृढ़ सिद्धांत ही इस पत्रिका के पुण्य-प्राण हैं।

गत वर्ष 'आर्य-महिला' का संपादन शिथिल-सा पड़ गया था। कई संख्याएँ पिछड़ गई थीं। किंतु शास्त्रीजी के आते ही पत्रिका में संतोष-जनक परिवर्तन हुआ। कई संख्याएँ एक ही मास में निकाली गईं। चित्र भी भाव-पूर्ण और लेख इत्यादि भी अच्छे। संपादकीय टिप्पणियाँ भी, जैसी कि हमें आशा है, अधिक सुसंस्कृत रूप में निकलने लगेंगी।

पत्रिका सुंदर है। काशी की इस अनोखी 'आर्य-महिला' को कौन साहित्य-मर्मज्ञ न अपनाएगा।

रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

176996

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुक्मिणी-हरण

N. K. Press, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. स्वयंवर-काल में कन्याओं का वैवाहिक स्वातंत्र्य

यंवर का अर्थ है—स्वयं, अपने आप वरण करना—स्वीकार करना। अर्थात् जिस प्रणाली के द्वारा कन्या अपने पति का स्वयं—पिता द्वारा नहीं—वरण करे, उसे स्वयंवर कहते हैं।

यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि स्वयंवर-काल में कन्या अपने पिता के द्वारा निमंत्रित राजकुमारों में से, अपने मन के अनुसार, किसी एक कुमार को वरण कर लेती थी। परंतु संस्कृत-ग्रंथों के देखने से ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि कन्या ने स्वयंवर के पूर्व ही किसी एक राजकुमार से विवाह करना निश्चित कर लिया, और स्वयंवर में सबके सम्मुख उसे जयमाला पहनाई। उदाहरण के लिये सुप्रसिद्ध दमयंती-स्वयंवर को ही लीजिए। दमयंती ने यद्यपि नल के ही साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया था, फिर भी स्वयंवर का स्वाँग रचा गया।

यहाँ यह आशंका नहीं की जा सकती कि संभव है, दमयंती के पिता को उसका यह निर्णय ज्ञात न रहा हो; क्योंकि जब इंद्रादि देवों का दूत बनकर नल दमयंती के पास गया है, और उससे इंद्रादि देवों को ही वरण करने की प्रार्थना की है, तो दमयंती ने दूत-रूप नल को उत्तर दिया है—

अपि द्रढीयः शृणु मत्प्रतिश्रुतम्,
स पीडयेत्पाणिमिमं न चेन्नृपः।
हुताशनोद्बन्धनवारिकारिताम्,
निजायुषस्तत्करवै स्वैरिताम् ॥
(नैषध-चरित, ९ । ३५)

अर्थात—"हे दूत ! तुम मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनो। यदि राजा नल मुझे वरण नहीं करेगा, तो मैं अग्नि में जल कर, फाँसी लगाकर अथवा जल में डूबकर अपने प्राण त्याग दूँगी, पर और किसी को नहीं वरण करूँगी।"

जो कन्या एक दूत के सामने अपने विचार इस दृढ़ता से प्रकट कर सकती है, यह संभव नहीं कि उसके विचार पिता तक न पहुँचे हों।

अब विचारने की बात है कि जब दमयंती ने नल से ही विवाह करने का निश्चय कर लिया था, तो फिर सैकड़ों राजकुमारों का बुलाना और स्वयंवर करना क्या अर्थ रखता है ?

मैं बहुत विचारने पर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वह युग शक्ति का युग था, और उन दिनों 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' थी। अतएव उस समय कन्या के पिता के लिये 'कस्मै विदेयेति महान् वितर्कः' था।

N. K. Press, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि कन्या का पिता जिसे कन्या न दे, उसी से उसकी शत्रुता और वही उसे खाने को तैयार ! इस अवस्था में वह क्या करे ?

बहुत संभव है, इस समस्या को हल करने के लिये ही 'स्वयंवर' का आविष्कार हुआ हो, और बाद में अन्य अनेक बातों की भाँति यह भी रिवाज़—रूढ़ि—बन गया हो। स्वयंवर में कन्या अपनी सम्मति से पति का निर्वाचन करती है। ऐसी अवस्था में उसका पिता किसी प्रकार के दोष—अन्य राजाओं की अप्रसन्नता आदि—का उत्तरदायी नहीं है। इस विवेचन से नल के साथ विवाह निश्चय हो जाने पर भी स्वयंवर-विधान का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

यदि मेरा यह अनुमान ठीक है, तो इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि स्वयंवर-काल में कन्याओं की स्व-विवाह-विषयक सम्मति का इतना अधिक मूल्य था कि उसके सामने, अपने और पराए, सभी को सिर झुकाना पड़ता था, और उन दिनों, आज की तरह, पापी पिता अपनी ८ वर्ष की बच्ची को ६० वर्ष के यमाहूत वृद्ध के साथ, भेड़-बकरी की भाँति, उसकी सम्मति के बिना नहीं बाँध सकता था।

क्या हिंदू-समाज की आँखें खुलेंगी, और वह अपनी पुत्रियों की दशा पर दया करेगा ?

कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"

× × ×

२. माई चौथ

स्त्रियाँ इसे 'माई चौथ' कहती हैं। परंतु यह माघ-महीने की कृष्ण-चतुर्थी होने के कारण इसका नाम वास्तव में 'माघी चौथ' है। 'माई चौथ' या 'माही चौथ' इसके बिगड़े हुए नाम हैं। यह चौथ सब चौथों में बड़ी मानी जाती है। इसे 'तिलकुटा चौथ' भी कहते हैं। इसे सब स्त्रियाँ मानती हैं। इस दिन तिल और गुड़, शक्कर आदि मिलाकर—कूटकर खाया जाता है; इसी लिये इसका नाम तिलकुटा चौथ हुआ। तिलों का विधान इस चतुर्थी के लिये संभवतः इसलिये किया गया है कि यह शीत-ऋतु के मुख्य मास 'माघ' में आती है। तिल और गुड़, दोनों की प्रकृति गर्म है। शीत-काल में गर्म पदार्थ हितकर होते हैं।

इसे इस प्रकार मनाया जाता है कि सूर्योदय से चंद्रोदय-पर्यंत निराहार उपवास करना पड़ता है। चंद्रमा के उदय होने पर स्त्रियाँ उसे अर्घ्य देकर फिर भोजन करती हैं। भोजन अन्न का होता है, फलाहार नहीं। भोजन में गुड़ या लड्डू अवश्य होते हैं। इस दिन प्रायः चूरमा बनाया जाता है। दिन को एक छोटा-सा चौका लगाकर जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ मिल-मिलकर कहानियाँ कहती और सुनती हैं, तिलकुटा बाँटती हैं। सधवा स्त्रियों को कहानी सुनते समय नाक में नथ पहनना आवश्यक बात होती है। जो कहानी कही जाती है, वह यह है—

एक देवरानी और एक जेठानी थीं। देवरानी बेचारी ग़रीब थी, परंतु जेठानी पैसेवाली थी। देवरानी अपनी जेठानी के घर काम करने जाती और वहाँ से खाने-पीने की चीज़ें लाकर अपना गुज़र-बसर करती। माही चौथ के दिन वह अपनी जेठानी के घर कामधंधा करने नहीं गई, और दिन-भर मकान लीपने-पोतने तथा माथा-चोटी नहाने में लगी रही। दिन डूबने के समय उसका घरधनी आया और खाने के लिये माँगा, तो उसने कहा कि आज व्रत होने के कारण मैं जेठानीजी के यहाँ काम-काज करने नहीं गई, मकान लीपने-पोतने और नहाने-धोने में लगी रही। यह सुनकर उसके पति को बड़ा ही क्रोध आया। पास में रक्खे हुए एक पटे को उठाकर उससे उसे इतना मारा कि बेचारी अधमरी-सी हो गई। आख़िर वह एक ओटले (चबूतरे) पर, घर के आँगन में, जा सोई। थोड़ी देर बाद श्रीगणेशजी महाराज पधारे। उन्होंने सोचा, भक्त की परीक्षा लेनी चाहिए। बेचारी मेरे लिये इस तरह पिटी है। गणेशजी ने कहा—"पाटले पीटी, ओटले सूती ! विनायक बाबा शौच कहाँ फिरें ?" उस बेचारी ने कहा—"महाराज ! यह झोपड़ी पड़ी है, जहाँ इच्छा हो...।" मलोत्सर्ग से निपटकर गणेशजी ने फिर पूछा—"अब मैं किस चीज़ से शुद्ध करूँ ?" वह बेचारी झुँझलाई हुई थी, उसने कहा—"अगर कुछ भी नहीं दिखता, तो मेरे सिर से शुद्ध कर लो।" गणेशजी ने वैसा ही किया। गणनायक के इस कृत्य से बजाय इसके कि उसके सिर में मल लगे, वहाँ उसके बाल-बाल में अमूल्य मोती-हीरे चमकने लगे, और जहाँ शौच गए थे, वहाँ स्वर्ण का ढेर हो गया। चलते-चलते गणेशजी उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झोपड़ी को लात मार गए। तत्काल वहाँ महल और अट्टालिकाएँ नज़र आने लगीं।

सुबह उसकी जेठानी ने अपने बच्चों से कहा, जाओ, पूछो, तुम्हारी चाची कल काम करने क्यों नहीं आई ? बालक वहाँ आए, परंतु जब झोपड़ी के स्थान पर महल-मंदिर देखे, तो उन्होंने अपनी माता से लौटकर कहा—"मा ! वहाँ तो कांचन महल खड़े हैं।" जेठानी वहाँ दौड़ी-भागी आई और अपनी देवरानी से क्रोध-पूर्वक कहने लगी—"राँड ! तू मेरा सारा धन चुरा-चुराकर ले आई, और यह महल बनवा लिया ; नहीं तो तेरे पास महल बनवाने को आया कहाँ से, जब कि टुकड़े भी मेरे यहाँ मज़दूरी करके खाती थी।" उसने दीनता प्रदर्शित करते हुए कहा—"मैंने आपके धन को चुराना तो दूर, छुआ तक भी नहीं—आँखों से देखा ही नहीं। मैं कल मारी-कुटी सोई थी कि विनायक बाबा पधारे, और यह सब कुछ कर गए। उन्होंने शौच के लिये स्थान पूछा, तो मैंने घर बता दिया, और पोंछने के लिये कुछ माँगा, तो अपना सिर बता दिया। वह मुझ पर प्रसन्न हुए, और यह सब ऋद्धि-सिद्धि उन्हीं महाराज की दया है।"

यह सुनते ही वह अपने घर आई और आते ही अपने पति से कहने लगी—"तू मुझे भी पीट !" उसके पति ने कहा—"वह ग़रीब थी, इसलिये किसी कारण उसके पति ने पीटा होगा ; किंतु तू जान-बूझकर सब कुछ होते हुए क्यों पिटना चाहती है ?" वह बोली—"नपूते ! तू तो मुझे पीट—और ज़रूर पीट।' उसका पति इनकार करता रहा। परंतु जब साल-भर बाद माई चौथ आई, उस दिन तो अपने को पीटने के लिये उसने ख़ूब ही आग्रह किया। उसके पति ने उसे ख़ूब पीटा। वह पिटकर सो रही। श्रीगणेशजी आए, उन्होंने कहा—"पाटले पीटी, ओटले सूती ! विनायक बाबा शौच कहाँ फिरें ?" उसने कहा—"महाराज, लीपी-पोती तिदरियों में और चौबारों में, जहाँ इच्छा हो।" गणेशजी ने वैसा ही किया। फिर पूछा—"अब शुद्ध कहाँ होऊँ ?" वह बोली—"महाराज ! मैंने आज ही सिर धोया है, मेरे सिर से पोंछिए।" श्रीगणेशजी घर-घर का तिलकुटा खाकर आए थे, अतएव उसको तथा उसके घर को विष्टा-ही-विष्टा से भर दिया। चलते समय उसकी हवेली को लात मार गए, सो वह झोपड़ी बन गई। उसने उठकर देखा, तो सारा घर मैले से भरा है। उसके बदन में आग लग गई। झुँझलाती हुई वह घर का मैला साफ़ करने लगी, किंतु ज्यों-ज्यों वह उठाती, त्यों-त्यों वह दुगना होता। यह दशा देखकर उसके पति ने कहा—"राँड ! पहले ही कहा था कि बैठे-ठाले आफ़त मत मोल ले।" उसने श्रीगणेशजी की प्रार्थना कर कहा—"नाथ ! क्षमा करो, और अपनी नाराज़ी को समेट लो।" गणेशजी ने कहा—"जब तक तू अपने धन का आधा हिस्सा अपनी स्त्री के हाथों उसकी देवरानी को न दे देगा, तब तक यही हाल होगा।" उसने अपना आधा धन देवरानी को दे दिया, मगर एक नौ करोड़ का हार छुपा लिया, और सोचा कि इसे गणेशजी कैसे जानेंगे ? उसने कहा—"अब तो अपनी माया समेटो।" गणेशजी ने कहा—"उस नौ करोड़ के हार का भी आधा उसे दे।" जब उस हार का आधा हिस्सा उसे दिया, तब पिंड छूटा। चौथ माता जैसी देवरानी को आई, वैसी सबको आना और जैसी जेठानी को आई, वैसी किसी को न आना।

गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विनोद

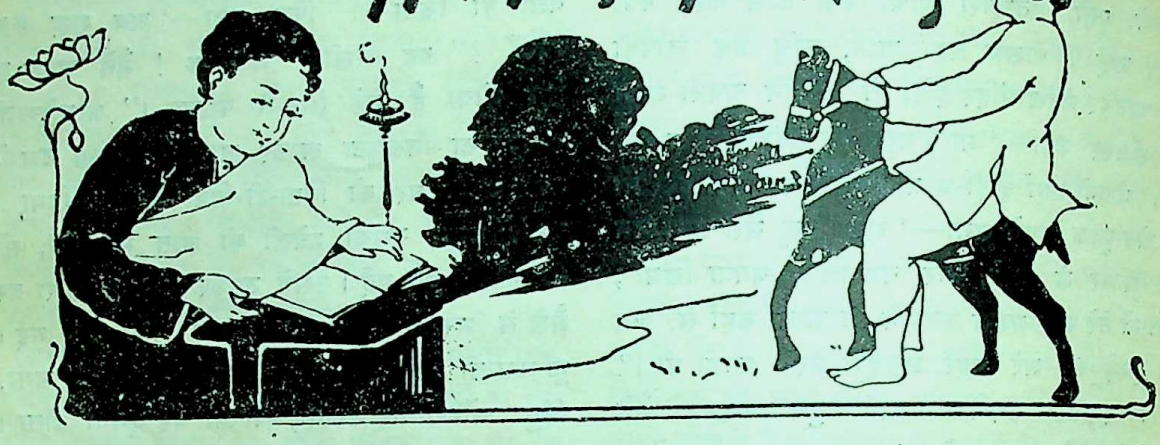

१. आँधी

(१)

आसमान में धूल उड़ाती,
अँधियाली सब दिश फैलाती;
बड़े वेग से हवा बहाती,
आँधी आई धूम मचाती।

(२)

पेड़ों के पत्ते हैं झड़ते,
ऊँचे आसमान में उड़ते;
नहीं भूमि पर वे हैं गिरते,
टिड्डे-से दिखलाई पड़ते।

(३)

बड़े-बड़े बड़-पीपल पाकर,
जो थे मोटे औ' ज़ोरावर;
तेज़ हवा के झोंके खाकर,
देखो, गिरते हैं थर्राकर।

(४)

बड़ा बुरा यह अंधड़ आया,
कितने छप्पर को उलटाया;
बहुत घरों को हाय! गिराया,
भारी-सा उत्पात मचाया।

(५)

भागो मुन्नू, रहो न बाहर;
झोंके में, बस, गर्दा आकर,
आँख नाक सब देवेगी भर;
'राघव' छिपो कहीं तुम जाकर।

श्रीराघवप्रसादसिंह

× × ×

२. बगुला और सारस

एक समय एक बगुला और एक सारस एक ही तालाब में रहते थे। बगुला बहुत शांत जीव था। वह सदा बैठा-बैठा न-मालूम किस बात की चिंता किया करता था। कभी-कभी तो वह चिंता में इतना लीन हो जाता कि उसे यह तक न मालूम होता कि संसार में हो क्या रहा है। सारस प्रसन्न स्वभाव का जीव था। वह कभी किसी बात की चिंता न करता था, सदा इधर-उधर घूमा करता था। बगुला को वह बहुत बुद्धिमान् पक्षी समझता था।

एक दिन उसने बगुले से पूछा—"क्यों भाई! क्या आप बराबर एक ही पैर से खड़े रहते हैं?"

बगुला कुछ नहीं बोला। सारस ने सोचा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सो गया होगा। परंतु कुछ देर के बाद बगुला बोला—"नहीं, मैं कभी-कभी दूसरे पैर पर भी खड़ा होता हूँ।" सारस की समझ में यह उत्तर न आया। उसने सोचा, बगुला हमसे अधिक चालाक है। वह कुछ दिन तक विनयी और नम्र बना रहा। परंतु फिर एक दिन उसने सोचा कि यद्यपि मैं बगुले-जैसा चालाक तो नहीं हूँ, तथापि कई बातों में मैं उससे बढ़कर हूँ। बगुला बड़ा शांत और धीमा मालूम होता है। मैं समझता हूँ, वह दौड़ न सकेगा। रहो, मैं उसे दौड़ने को कहता हूँ।

ऐसा सोचकर प्रसन्नता-पूर्वक उसने बगुले के पास जा अपना विचार प्रकट किया। कुछ देर के बाद बगुला भी दौड़ने को राज़ी हो गया। सारस उसी समय अपने सभी मित्रों को उस अवसर पर उपस्थित रहने का निमंत्रण दे आया। सभी जानवर यह दौड़ देखने को बड़े उत्सुक थे। उन्होंने आना स्वीकार कर लिया।

दौड़ के दिन मार्ग में चिह्न लगा दिया गया। चिह्न के एक ओर बड़े जानवर बैठे, और दूसरी ओर छोटे। यह प्रबंध इसलिये किया गया था कि एक ऐसे ही अवसर पर बड़े-बड़े जानवरों ने छोटे-छोटे जानवरों को खाना प्रारंभ कर दिया था। इसीलिये अब की बार छोटे जानवर बिना ऐसा प्रबंध कराए आने को तैयार नहीं थे।

हंस दौड़ शुरू करानेवाला चुना गया। राजहंस न्यायकर्ता बना। उल्लू पुलीस का काम करने और मार्ग साफ़ करने पर नियुक्त हुआ। सभी उत्सुक थे। बगुला और सारस एक सीध में खड़े थे। इसी समय हंस ने कहा—"एक, दो, तीन—जाओ।" दौड़ प्रारंभ हो गई।

वे बराबर वेग से दौड़ने लगे और बहुत देर तक एक सा दौड़ते रहे। एक समय एक मेंढक मार्ग में उछल पड़ा। उल्लू ने उसे शीघ्र ही मुख में रख लिया। वे आगे बढ़े जा रहे थे। प्रत्येक आगे बढ़ने के प्रयत्न में था। दोनों के मित्र उनको उत्तेजित कर रहे थे। परंतु अंत में बगुला आगे निकल गया, और तीन गज़ की दूरी से सारस को हरा दिया।

उस समय सारस इतना लज्जित हुआ कि छिपने का यत्न करने लगा। विजय की उसे बहुत ही दृढ़ आशा थी, पर मित्रों के सामने इस प्रकार हारना पड़ा। वह इस हार से बहुत दुःखी हुआ।

पर बगुले को इसकी कुछ प्रसन्नता न हुई। उसने फिर इस विजय की बात ही नहीं की। कुछ दिनों में फिर सारस भी पूर्ववत् रहने लगा।

श्रीबन्धनप्रसादसिंह

× × ×

३. सदाचरण

(१)

विजयनगर में एक ग़रीब ब्राह्मण रहता था। उसके दो पुत्र थे। बड़े का नाम था प्रताप और छोटे का कुमार। प्रताप क्रोधी और मूर्ख था; कुमार, साहसी और बुद्धिमान्। यदि कोई अतिथि आता, तो प्रताप उसे अपमान-पूर्वक निकाल देता; परंतु कुमार उसे सम्मान-पूर्वक बिठाता, कुशल पूछता, जलपान कराता, तब कहीं जाने देता। लेकिन प्रताप से वह बहुत डरता था।

विजयनगर के राजा चंद्रकेतु बड़े प्रजावत्सल थे। लगभग चौदह वर्ष पहले उनके एक पुत्र हुआ था। जब वह दो वर्ष का हुआ, तभी उसकी माता मर गई थी। एक दिन वह उसे दासियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरोसे छोड़कर कहीं बाहर चले गए थे। जब वह वहाँ से लौटे, तो मालूम हुआ कि वह कहीं खो गया है; परंतु इसका पता न लगा कि कैसे खो गया है। उन्होंने बहुत खोज कराई, परंतु कहीं पता न लगा। अंत में वह निराश होकर बैठ रहे। उनके मंत्रियों ने बहुत आग्रह किया कि आप दूसरा विवाह कर लीजिए; परंतु उन्होंने किसी की बात न सुनी। वह कहते—यदि मेरे भाग्य में पुत्र होता, तो वही क्यों खोता। उन्हें संतान की चिंता ही न थी। यदि कोई पूछता—आपके राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा, तो वह हँसकर उत्तर देते—"बालकों की क्या कमी है। क्या नगर-भर में एक भी बालक राज्य करने योग्य न मिलेगा?"

विजयनगर का एक एक बच्चा उनके नाम से परिचित था। वह दोपहर के समय वेष बदलकर बाहर निकलते और ढूँढ़-ढूँढ़कर ग़रीबों का दुःख दूर किया करते। उनके गुणों पर सारी प्रजा मुग्ध थी।

(२)

एक दिन प्रताप और उसका पिता, दोनों कहीं गए हुए थे। गरमी के दिन थे, बड़ी तेज़ धूप पड़ रही थी। कुमार बैठा हुआ पढ़ने का अभ्यास कर रहा था। इसी समय एक आदमी द्वार पर आकर खड़ा हो गया। उसके वस्त्र पसीने से तर हो रहे थे। उसने कहा—"क्या मुझे थोड़ी देर विश्राम कर लेने दोगे?" कुमार को प्रताप का भय बना हुआ था; परंतु जब उसने आगंतुक के मुख की ओर देखा, तो उसे दया आ गई। तुरंत आगे बढ़कर कहा—"अवश्य। आपके चरणों से मेरा घर पवित्र हो जायगा।" इतना कहकर वह आगंतुक को अंदर ले गया और आसन बिछाकर उस पर उसे बिठा दिया। इसके पश्चात् वह दौड़कर कुछ दूध ले आया। वह दूध उसके पिता ने प्रताप के लिये रक्खा था, परंतु उसने इसकी कोई चिंता न करके, दूध उस आदमी को पिला दिया। दूध पिलाकर कुमार ने उसे बिछौने पर लिटा दिया और पंखा झलने लगा। परंतु अभी आधा घंटा भी व्यतीत न हुआ होगा कि प्रताप आ पहुँचा। उस आदमी को अपने बिछौने पर सोया देखकर वह आग-बबूला हो गया, और जब उसे यह मालूम हुआ कि उसका दूध भी कुमार ने उसे दे दिया है, तब तो उसके क्रोध का पार न रहा वह कुमार पर गालियों और लातों की वर्षा करने लगा। कुमार शांतिपूर्वक सब सहने लगा; परंतु आगंतुक को अभी निद्रा नहीं आई थी। कुमार की दशा देखकर उसका हृदय चूर-चूर हो गया। उसने प्रताप को रोककर कहा—"भाई, इसमें इस बेचारे का क्या दोष है? धूप तेज़ होने के कारण मैं आप ही थोड़ी देर विश्राम करने के लिये आ गया था। यह मुझे बुलाने थोड़ा ही गया था। क्षमा करो, लो, मैं जाता हूँ।"

इतना कहकर वह चला गया; परंतु कुमार को, अतिथि का अपमान होने के कारण, मन-ही-मन बड़ा दुःख हुआ। संध्या-समय जब ब्राह्मण घर आया, तो उसने उसे सब बातें कह सुनाईं। ब्राह्मण प्रताप के स्वभाव को भली भाँति जानता था, सुनकर चुप हो रहा।

(३)

दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण के यहाँ कुछ सिपाही आए, और कहने लगे—"ब्राह्मणदेव, आपको महाराज चंद्रकेतु ने बुलाया है!" ब्राह्मण जानता था कि महाराज व्यर्थ किसी को कष्ट नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते। अतः वह तुरंत सिपाहियों के साथ हो लिया। थोड़ी देर में सिपाहियों ने उसे राजमहल में ले जाकर खड़ा कर दिया। महाराज वहाँ पहले से बैठे थे। ब्राह्मण को देखकर वह उठ खड़े हुए, और उसे बिठाकर बोले—"कहिए ब्राह्मणदेव, आप कुशल से तो हैं?" ब्राह्मण ने कहा—"हाँ, महाराज, आपकी कृपा से मुझे कोई भी कष्ट नहीं। बताइए, इस सेवक के लिये क्या आज्ञा है?" महाराज ने कहा—"मुझे केवल यह पूछना है कि वे दो बालक क्या तुम्हारे पुत्र हैं?" ब्राह्मण ने जान लिया कि महाराज ही कल मेरे यहाँ आए थे। उसने कहा—"महाराज, बड़ा बालक तो मेरा ही है; परंतु छोटा, जिसका नाम कुमार है, मेरा नहीं है। वह मुझे आज से ठीक बारह वर्ष पहले, एक वृक्ष के नीचे, पड़ा हुआ मिला था।" महाराज को अपने खोए हुए पुत्र की याद आ गई। ब्राह्मण ने फिर कहा—"महाराज, उसके गले में एक माला भी थी, वह मेरे पास अभी तक रक्खी हुई है। यदि आज्ञा हो, तो लाऊँ?" महाराज ने कहा—"तुम्हें कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है, मैं स्वयं ही तुम्हारे साथ चलता हूँ।" इतना कहकर महाराज चंद्रकेतु अपने मंत्री शूरसेन को साथ लेकर ब्राह्मण के साथ चल दिए। घर पहुँचकर ब्राह्मण ने एक संदूक़ से वह माला निकालकर महाराज के सामने रख दी। महाराज उसे अच्छी तरह देख भी न पाए थे कि मंत्री बोल उठे—"महाराज, यह तो वही माला है, जिसे आपने राजकुमार के लिये बनवाई थी।" महाराज ने कहा—"भूलते तो नहीं हो?" मंत्री ने प्रसन्न होते हुए सिर हिलाकर कहा—"नहीं महाराज, मैंने अपने हाथ से उन्हें यह माला पहनाई थी।" महाराज के निकट ही कुमार बैठा हुआ यह सब देख रहा था। उसकी समझ में न आया कि बात क्या है। महाराज को निश्चय हो गया कि कुमार मेरा ही पुत्र है। उन्होंने उठकर कुमार को हृदय से लगा लिया।

(४)

आज कुमार विजयकेतु का राजतिलक है। चारों ओर उत्सव मनाए जा रहे हैं। प्रजा हर्षित होकर कुमार विजयकेतु को आशीर्वाद दे रही है। सब ओर आनंद-ही-आनंद दिखाई दे रहा है। कुमार विजयकेतु अकेले राजप्रासाद में बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। इसी समय शूरसेन ने आकर उनसे पूछा—"कुमार, आज तुम कुछ चिंतित जान पड़ते हो, इसका क्या कारण है?" कुमार ने कहा—"मंत्रीजी, मैं यह सोच रहा हूँ कि बड़े भाई के रहते, राज्य मुझे क्यों दिया जा रहा है?"

शूरसेन मन-ही-मन कुमार की प्रशंसा करते हुए बोले—"कुमार, अब उन बातों को जाने दो। तुम महाराज के पुत्र हो और वह एक ग़रीब ब्राह्मण के।" कुमार ने कहा—"परंतु मैं तो उन्हें अब भी अपना बड़ा भाई समझता हूँ। आप ही सोचिए, पिता न होते हुए भी उन्होंने (ब्राह्मण ने) कैसे यत्नपूर्वक मेरा पालन किया है। क्या मेरा यही कर्तव्य है कि उनके उपकारों को भुला दूँ?"

कुमार की बातें सुनकर मंत्री ने कोई उत्तर न दिया। वह महाराज के पास पहुँचे, और उन्हें सब बातें कह सुनाईं। शूरसेन की बातें सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"कुमार के विचार बहुत उत्तम हैं। यदि तुम्हारी सलाह हो, तो मैं प्रताप को उसका मंत्री बना दूँ? मुझे

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास है कि मंत्री होने की बात सुनते ही उसके आचरण सुधर जायँगे।" शूरसेन ने महाराज की बात का प्रसन्नता से अनुमोदन किया।

इसके पश्चात् महाराज चंद्रकेतु ने प्रताप को बुलाकर कहा—"पुत्र, मैं तुम्हें कुमार का मंत्री बनाता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम उसे अपना छोटा भाई समझकर सर्वदा उसके हित की कामना करते रहोगे। परंतु इतना ध्यान रखना, कभी शूरसेन का अनादर न होने पाए। कारण, वह वृद्ध हैं, इसलिये सदा तुम्हारे कल्याण में ही लगे रहेंगे।"

प्रताप को बड़ी लज्जा आई। वह कुछ उत्तर न दे सका। इसी समय कुमार आकर उसके पैरों पर गिर पड़ा। प्रताप उसे उठाकर बोला—"भाई, मुझे अधिक लज्जित न करो। मैं अपनी भूल के लिये क्षमा चाहता हूँ।"

(५)

अब कुमार राजा हो गए और प्रताप उनके मंत्री। उन्होंने अपने पिता (ब्राह्मण) को भी अपने पास बुला लिया। प्रजा कुमार विजयकेतु और प्रतापसिंह को प्राणों से भी अधिक चाहने लगी।

शांतिकुमारी वर्मा मालवीय

× × ×

४. चूहा और नेवला

एक चूहे को न खाना था मिला,
खोज हारा, हो गया दुबला बहुत;
बहुत दिन गुज़रे व' मरने पर तुला,
नाज की कोठी दिखाई तब पड़ी।
नाज पाने के लिये व्याकुल हुआ,
'छेद कोठी में करूँ'—इच्छा हुई;
की बड़ी मिहनत, सफल भी हो गया,
छेद कोठी में हुआ, दिल खिल गया।
छेद होकर नाज में वह घुस गया,
बहुत दिन उसमें रहा, खाया किया;
हो गया मोटा न कमज़ोरी रही,
लालसा बाहर निकलने की हुई।
की बड़ी कोशिश निकलने के लिये,
पर न बाहर आ सका उस छेद से;
क्योंकि मोटा हो गया था वह बहुत,
और पतला छेद था पहले बना।
एक नेवला बैठकर था देखता,
किस तरह वह हो रहा बेकाम है;
अंत में हँसते हुए उसने कहा—
"बात मेरी तो सुनो टुक कान दे।
"हो छुड़ाना चाहते इस क़ैद से,
जल्द अपने-आपको भाई! अगर;
तो बनो दुबले, प्रथम जैसे रहे,
समझ में मेरी य' एक उपाय है।"
राह चूहे को बड़ी अच्छी जँची,
छोड़ भोजन हो गया दुबला पुनः;
निकलकर बाहर यही उसने कहा—
"हेतु जीने के कमाना चाहिए।"

श्रीरामलोचन शर्मा 'कंटक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

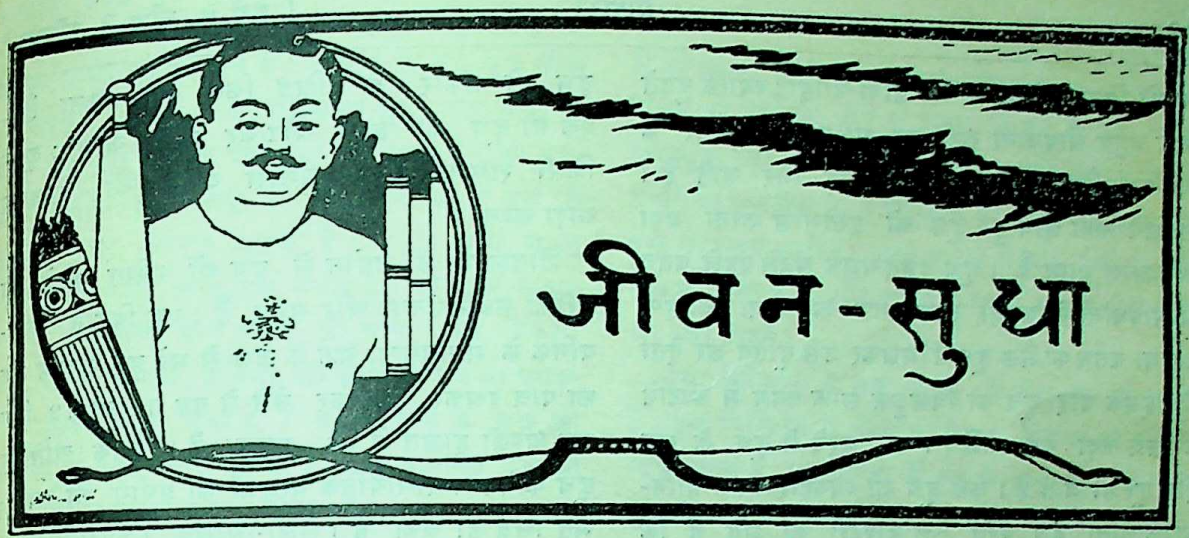

दूध का सेवन और रोगों की चिकित्सा

दूध संसार के सर्वोत्तम अमूल्य पदार्थों में से है। यदि दूध न होता, तो देहधारियों का जीवन बड़ा कठिन हो जाता। दूध में प्राणिमात्र को जीवित रखने की शक्ति है। बालक के पैदा होने से पूर्व माता के स्तनों में दूध आ जाता है। जीवन के प्रारंभ-काल में दूध ही बालक का एक-मात्र सहारा होता है। पर यदि दूध शुद्ध रीति से काम में नहीं लाया जाता, तो अमृत से विष हो जाता है। कोई वस्तु तो ऐसी होती है, जो साधारण असावधानी से नहीं बिगड़ती; पर कोई ज़रा में ही बिगड़कर विषवत् हो जाती है। दूध ऐसी ही वस्तु है। यदि थोड़ी-सी भी असावधानी हो जाय, तो वह किसी काम का नहीं रहता। हमारे यहाँ दूध दुहने तथा बेचने की रीतियाँ बहुत बुरी हैं। विशेषतः भारतीय ग्वालों का गोपालन तथा गोदोहन तो महाअनर्थकारी है। भला गउओं को बंद मकान में बाँध रखना, उनको खाने को कम देना, उनका गोबर-मूत्र उनके पास ही सड़ने देना इत्यादि कामों से उत्तम दूध की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

दूसरी ओर बाज़ार में शुद्ध दूध मिलना असंभव-सा हो गया है। अहीर तथा हलवाई बासी दूध से मलाई उठाकर बचे हुए नीले-से पानी को सस्ते मूल्य में बेचकर धनवान् होने का यत्न करते हैं। अदूरदर्शी कंजूस लोग तथा निर्धन आदमी इस दूध का सेवन कर अपने परिवार-भर का स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं। हलवाई की दूकान पर दही लेने जाइए। आप देखेंगे, एक मैली-कुचैली कूँडी में दही जमा हुआ है, ऊपर पानी तैर रहा है और उसमें बीसों मक्खियों का बलि हो रहा है। यही हाल दूध का होता है। इस प्रकार हमारे देश में दूध-जैसा अमृत विषवत् बनाकर व्यवहार में लाया जाता है। इन्हीं सब कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए महात्मा गांधी इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दूध, दही और घी का खाना बिलकुल छोड़ देना चाहिए। परंतु विचारने की बात है कि इनके बिना शरीर-रक्षा बड़ी कठिन हो जायगी। कितनों के मतानुसार मांस, मछली तथा अंडे के सदृश पोषक और शक्तिवर्द्धक वस्तु दूसरी नहीं है। निस्संदेह मछली तथा मांस शरीर-पुष्टि के लिये हितकर हैं, तथा इनके गुण वैद्यक-ग्रंथों में भी पाए जाते हैं। परंतु शुद्ध दूध के सामने ये सारी अखाद्य वस्तुएँ कोई चीज़ नहीं।

आम तौर पर दूध हाथ से ही दुहा जाता है। यह काम हाथ से ही बड़ी सरलता से हो सकता है। सन् १७६२ ई० में अमेरिका में दूध दुहने के लिये एक यंत्र का आविष्कार किया गया था, परंतु उससे सफलता-पूर्वक काम नहीं चल सका। गोदोहन का काम चाहे हाथ से किया जाय या किसी यंत्र से, परंतु यह कार्य बड़ी सफ़ाई के साथ किया जाना चाहिए। आयुर्वेद में धारोष्ण अर्थात् तुरंत दुहे हुए दूध के अनेक गुण लिखे हैं। निस्संदेह धारोष्ण दूध अत्यंत गुणकारी होता है। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध को विना छाने कभी नहीं पीना चाहिए; क्योंकि दुहते समय बहुत सावधानी रखने पर भी गाय के शरीर के बाल तथा मैल आदि बर्तन में अवश्य गिर जाते हैं। इसलिये विना छाने हुए दूध को इस्तेमाल करना बड़ा हानिकारक होता है। दूध दुहते समय सबसे पहले बर्तन को सावधानी से अच्छी तरह साफ़ कर लेना चाहिए, अन्यथा बर्तन का मैल दूध में मिलकर उसे दूषित कर देता है। इसके बाद दूध को बिलकुल साफ़ बर्तन में औटाने के लिये चढ़ा देना चाहिए। गर्म करने से दूध के सब दोष दूर हो जाते हैं। कच्चे दूध का व्यवहार करना हानिकारक होता है। परंतु कुछ डाक्टरों का मत है कि औटाने से दूध का तत्त्व-पदार्थ (Vitamins) नष्ट हो जाता है; औटा दूध क़ब्ज़ भी करता है। इसलिये कच्चा ही दूध पीना चाहिए। परंतु अधिकतर डाक्टरों का मत यही है कि दूध को सर्वदा गर्म करके ही व्यवहार में लाना चाहिए।

साधारणतः दूध को पाँच तरह से व्यवहार में लाते हैं—दूध, दही, मट्ठा, मक्खन और घी। दही आदि अन्य दूध से बनी वस्तुओं के गुण तथा उपयोग किसी दूसरे समय आपके सम्मुख रक्खूँगी। दूध बहुत देर तक रक्खा रहने से बिगड़ जाता है। उसमें प्रथम एक प्रकार की मिठास (Milk Sugar or Lactore) पड़कर एक प्रकार का अम्ल पदार्थ (Lactic Acid) उत्पन्न हो जाता है। ऐसे दूध को खाने से बिगड़ी हुई खटाई का-सा स्वाद आता है। इस दूध में छोटे-छोटे टुकड़े होकर कुछ जम जाता है। साधारण बोल-चाल में इसे 'दूध फट जाना' कहते हैं। इसलिये दूध को देर तक असावधानी से नहीं रखना चाहिए। दही जमाने के लिये दूध को औटाकर रखने से दही मोठा तैयार होता है, और यदि खट्टा दही जमाना हो, तो दूध को कच्चा ही जमा देना ठीक होता है। दूध की रक्षा की जितनी प्रणालियाँ हैं, उनमें से तीन उत्तम समझी जाती हैं। उनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जाता है।

(१) दूध के साथ क्षार तथा अन्य रासायनिक पदार्थों को मिलाना।

(२) औटाना और ठंडा करना आदि बाहरी क्रियाओं का प्रयोग करना।

(३) दूध को गाढ़ा करके जमाना। इस रीति में दूध दो प्रकार से रक्षित किया जा सकता है—एक तो दूध को केवल औटाकर गाढ़ा करना; दूसरे किसी रासायनिक रक्षणशील वस्तु को मिलाकर गाढ़ा करना।

शीतलता के प्रयोग से दूध को रक्षित करने का तरीक़ा सबसे उत्तम और सरल है। एक विद्वान् रासायनिक के मतानुसार, बर्फ़ के जल से भरे हुए पात्र में दूध का पात्र रखकर ठंडा कर लेने से वह १२ या १४ दिन तक अच्छी हालत में रह सकता है। इसके अतिरिक्त दूध के रक्षार्थ रासायनिक वस्तुओं का प्रयोग भी फलीभूत सिद्ध हो चुका है। सेली-सिलिक (Salicylic) नामक एसिड इस कार्य के लिये बहुत उत्तम है। यह एसिड १ सेर दूध में पाँच ग्रेन मिला देने से गर्म किया हुआ दूध २४ घंटे तक असली हालत में रह सकता है। यदि एसिड अधिक मात्रा में (१० या १२ ग्रेन तक) मिलाया जाय, तो दूध ४ या ५ दिन तक रह सकता है। दूध में बोरिक-एसिड अथवा सुहागा (Borax) भी मिलाया जा सकता है, पर इन पदार्थों को एक साथ व्यवहार में लाना हानिकर होता है। गर्म किया हुआ दूध देर तक मीठा बना रहता है, पर उसके गुण बदल जाते हैं। बंद बर्तन में दूध को औटाना अच्छा होता है; पर सब बर्तन बिलकुल साफ़ होने चाहिए, अन्यथा दूध बिगड़ जाता है।

अधिक दिनों तक दूध को रक्षित करने के अब तक जितने उपाय निकले हैं, उनमें दूध को गाढ़ा करके जमाने का प्रयोग ही सबसे उत्तम है। इस विधि को संयुक्त-राज्यांतर्गत न्यूयार्क-शहर के एक निवासी ने निकाला था। १० या १२ वर्ष लगातार परीक्षण करके उन्होंने, सन् १८६० ई० में, इस कार्य में सफलता प्राप्त की थी। इस विधि के अनुसार दूध जमाने के लिये पहले उसे थोड़ी चीनी के साथ औटाते हैं। जब सिर्फ़ चौथाई हिस्सा रह जाता है, तो उसे वायुशून्य टिन के डिब्बों में भर देते हैं। बस, दूध जमकर तैयार हो जाता है। डेन्मार्क आयरलैंड आदि देशों में इस प्रकार के जमे दूध का बड़ा व्यवसाय होता है। पर इस कार्य में स्विटज़रलैंड ने सबसे अधिक दक्षता प्राप्त की है।

दुग्ध-चिकित्सा

कितने ही डाक्टरों का मत है कि दूध के सेवन से सब प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में दूध इस लोक का अमृत है। शरीर-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र तथा आरोग्य-शास्त्र का कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है, जिसमें दूध की मुक्त-कंठ से प्रशंसा न की गई हो। वैद्यक-शास्त्र में दूध के गुणों का बड़ा विस्तृत वर्णन है। काली गाय, सफ़ेद गाय, पीली गाय, लाल गाय, जंगल-देश की गाय, अनूप-देश की गाय तथा अन्य प्रकार की गाय, भैंस, बकरी, भेड़ी, घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी, स्त्री आदि के दूध का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। काली गाय के दूध की आयुर्वेद में बड़ी प्रशंसा लिखी है, तथा धारोष्ण दूध को अमृत-समान महागुणकारी लिखा है।

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघुशीतं सुधासमम् ;
दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत्।

अर्थात् गाय का धारोष्ण दूध बल बढ़ानेवाला, हलका, ठंडा, अग्नि-दीपक तथा अमृत के समान गुणकारी होता है। परंतु यदि दुहने के बाद शीतल हो गया हो, तो विना गर्म किए कभी नहीं पीना चाहिए। दुग्ध-चिकित्सा पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सभी लेखकों तथा डाक्टरों ने अपने-अपने अनुभव के अनुसार दूध के गुणों का वर्णन किया है। हमारे यहाँ वैद्यक-शास्त्र में पहले ही से यह बात लिखी है कि कोई भी रोग ऐसा नहीं, जो निरंतर दूध के सेवन से समूल नष्ट न हो जाय। जीर्णज्वर, मानसिक रोग, संग्रहणी, दाह, प्यास, उदावर्त, शूल, हृदय-रोग, उन्माद, शोष, मूर्च्छा, भ्रम, गोला, बस्ति-रोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतीसार, योनि-रोग, ग्लानि, गर्भस्राव, निर्बलता, श्वासकास, प्रमेह, सूज़ाक, वातपित्त, रक्तविकार, क्षय आदि रोगों में दूध बड़ा गुणकारी माना गया है।

दूध बड़ी सरलता से पचनेवाली तथा शरीर को शीघ्र पुष्ट बनानेवाली चीज़ है। जिन बालकों की पाचन-शक्ति कमज़ोर होती है, उन्हें दूध का भोजन दिया जाता है। ऐसे कमज़ोर बच्चों को ऊपर का दूध बहुत फ़ायदा करता है। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि जिन लोगों के भोजन में दूध का भाग अधिक रहता है, वे बल-संपन्न और नीरोग होते हैं। ऊँटनी तथा बकरी का दूध खानेवाले बलिष्ठ और रोगमुक्त रहते हैं। शरीर में यूरिक एसिड (Uric Acid)-नामक एक विषैला तत्त्व रहता है। जिन लोगों के शरीर में यह विषैला तत्त्व अधिक मात्रा में होता है, उनके मूत्र में बड़ी दुर्गंध आती है। दूध इस एसिड को नष्ट कर देता है। एक तो दूध में यह एसिड बिलकुल नहीं होता ; दूसरे उसमें इसके नष्ट करनेवाले तत्त्वों का समावेश है। इसलिये जो रोगी दीर्घकाल तक दूध का सेवन करते हैं, उनके शरीर से यह विषैला तत्त्व निकल जाता है, और गठिया आदि दूसरी बीमारियाँ भी नहीं होतीं।

दुग्ध-चिकित्सा से सब प्रकार के रोग नष्ट हो सकते हैं। इस चिकित्सा में रोगी को केवल दूध का ही भोजन दिया जाता है। अमेरिका में दूध के सेवन से रोगों को मिटानेवाली एक संस्था है। वह रोगी को दूध पिला-पिला कर ही अच्छा करती है। चाहे रोगी को दूध न पचे, उलटी द्वारा निकल जाय अथवा अरुचि पैदा कर दे, तथापि रोगी को दूध ही पिलाया जाता है। दुग्ध-चिकित्सा प्रारंभ करने से पूर्व दो-तीन बातें जाननी आवश्यक हैं। किसी-किसी पुरुष को नियमानुसार शुद्ध दूध देने पर भी वह उलटी द्वारा बाहर निकल जाता है। ऐसे रोगी के पेट में अम्लतत्त्व की कमी होती है, इसलिये दूध पिलाने से पूर्व रोगी के पेट में अम्लतत्त्व उत्पन्न कर लेना चाहिए। नींबू का रस पी लेने अथवा एक-दो नारंगी खा लेने से यह कमी पूरी हो जाती है। बड़ी खट्टी नारंगी इसके लिये बड़ी गुणदायक होती है। अम्लतत्त्व के अभाव की पहचान यह है कि दूध अच्छा नहीं लगता, अथवा पेट में जाकर वायु उत्पन्न करके गुड़-गुड़ शब्द करता है। ऐसी दशा में जब तक दूध में रुचि न हो जाय, तब तक बराबर नींबू का रस पिलाना चाहिए। परंतु विना ज़रूरत पीना गुणकारी नहीं होता। कोई-कोई लोग दूध तथा नींबू का संयोग हानिकारक समझते हैं। यह उनकी भूल है। निस्संदेह दूध में नींबू का रस अधिक मिलाने से वह फट जाता है, पर ५ या ७ बूँद रस मिलाने से दूध स्वादिष्ट तथा शीघ्र पचनेवाला हो जाता है। यदि रोगी को नींबू का रस रुचिकर न हो, तो उसे दूध न पिलाकर थोड़ा-थोड़ा उत्तम मट्ठा पिलाना चाहिए। इससे भी रोग नष्ट हो जायगा।

दुग्ध-चिकित्सा आरंभ करने से पहले दो या तीन दिन तक निराहार-व्रत करना आवश्यक है। उपवास के दिनों में पानी पीने में कोई हानि नहीं। उपवास के बाद प्रसन्नचित्त और दृढ़ विश्वासपूर्वक दूध का इलाज शुरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए। रोगी को प्रथम थोड़ा-थोड़ा दूध देना चाहिए, बाद में धीरे-धीरे दूध की मात्रा रोज़ बढ़ाते रहना चाहिए। एकदम अधिक दूध पिलाना ठीक नहीं होता। रोगी को एक बार में आधा सेर के क़रीब दूध पिलाना चाहिए, और दो या तीन घंटे के बाद रोगी की शक्ति के अनुसार बराबर दूध देते रहना चाहिए। पहले दिन ढाई या तीन सेर तक दूध रोगी पी सकता है, पर शनैः-शनैः बढ़ाते रहने पर रोगी १६ सेर या २० सेर तक दूध प्रतिदिन पीते देखे गए हैं। किस मनुष्य को कितना दूध एक दिन में देना चाहिए, यह रोगी की रुचि तथा शक्ति पर निर्भर है; क्योंकि सब मनुष्यों की प्रकृति तथा बल एक समान नहीं होता। दूध को पानी की तरह एकदम नहीं पी लेना चाहिए, अपितु थोड़ा-थोड़ा मुँह में देर तक रखकर उसे मुँह की राल के साथ ख़ूब मिलाकर पीना चाहिए। यह बात सब लोग जानते हैं कि भोजन को ख़ूब चबाकर, राल के साथ मिलाकर, खाने से वह जल्दी पचता है, तथा शरीर में उसका असली तत्त्व रक्त में मिलकर शरीर को पुष्ट करता है। यही बात दूध की है। इसलिये दूध के तीन-चार प्याले एकदम सपाटे के साथ कभी नहीं पीना चाहिए। ऐसा करने से पेट रबर की थैली की तरह फूल जाता है। पीते समय प्रत्येक घूँट मुँह में थोड़ी देर रखकर दूध को धीरे-धीरे दाँतों से चबाकर ख़ूब स्वाद लेकर पेट में उतारना चाहिए। एक अनुभवी अमेरिकन डाक्टर का कहना है कि "दूध पानी की तरह पीनेवाली वस्तु नहीं है। इसके एक-एक घूँट को अन्न का एक-एक ग्रास समझकर दाँतों से ख़ूब चबाना चाहिए। ऐसा दूध शरीर का इतना पोषण करता है कि उसका वर्णन भी करना कठिन है।" वास्तव में यह सत्य है। पेट में पहुँचकर जब दूध का जल सूख जाता है, तब वह पेट के रस के साथ मिलकर दही के पनीर के सदृश हो जाता है। यदि थोड़ा-थोड़ा करके दूध न पिया जाय, तो वह पेट में पहुँचकर मट्ठा-सा बँध जाता है, और पचने में बड़ी देर लगती है।

जिन दिनों दूध का सेवन जारी हो, उन दिनों दूध के सिवा अन्न, मिठाई, फल, बादाम शहद इत्यादि कोई पदार्थ या दूध के साथ कोई भी दवा नहीं खानी चाहिए। यदि दूध का सर्वोत्तम लाभ उठाना है, तो उसके सिवा चा, कहवा, पान, सुपारी, तंबाकू आदि भी कुछ नहीं खाना चाहिए। दूध-सेवन के दिनों में यदि विश्राम करने की इच्छा हो, तो इच्छानुसार विश्राम करना चाहिए। विश्राम से शरीर में दूध का प्रभाव अच्छा पड़ता है, और शुद्ध रक्त बनकर शरीर बलवान् हो जाता है। इस प्रकार रोगी को तब तक दूध ही पिलाते रहना चाहिए, जब तक सारी बीमारी या कमज़ोरी दूर होकर शरीर पुष्ट न हो जाय। कमज़ोर तथा दुबले आदमियों का शरीर निरंतर दूध के सेवन से स्थूल तथा पुष्ट हो जाता है। परंतु दूध का सेवन तब तक बंद नहीं करना चाहिए, जब तक शरीर में रक्त बढ़ने से मुख पर सुर्ख़ी न आ जाय, शरीर का रंग गोरा, स्वच्छ और तेजयुक्त न हो जाय। रोग को निर्मूल कर पाचनशक्ति को बढ़ाना दूध का मुख्य काम है, परंतु इसमें कुछ समय लगता है। जब दूध के सेवन से पाचनशक्ति ठीक और बलवती हो जाती है, तब शरीर का वज़न एकदम बढ़ने लगता है। देखा यहाँ तक गया है कि ऐसा वज़न एक-एक दिन में एक पाव से लेकर ८ या १० सेर तक बढ़ता रहता है। कुछ लोगों को शंका होती है कि ऐसा वज़न शीघ्रता से बढ़कर चिरस्थायी होकर किसी काम का होगा, या नहीं। निस्संदेह अधिक दूध के सेवन से शीघ्रता के साथ पुष्ट किए गए शरीर के स्नायु एकदम से दृढ़ हो जाना संभव नहीं; पर धीरे-धीरे बढ़ाया हुआ वज़न अवश्यमेव चिरस्थायी होता है, और शीघ्रता से बढ़ा हुआ वज़न भी आरोग्य-रक्षा के नियमों का पालन करने से कुछ दिनों में चिरस्थायी हो जाता है।

दुग्ध-चिकित्सा के आरंभ में यदि फ़ायदा न मालूम पड़े, तो निराश न होना चाहिए। भला विचार करने की बात है कि पुरानी बीमारी एकदम कैसे दूर हो जायगी। उसके लिये कुछ समय की आवश्यकता है। दूध का सेवन यदि विश्वास और आग्रह के साथ जारी रक्खा जाय, तो शरीर नीरोग हुए बिना रह ही नहीं सकता। शरीर चाहे कितना ही दुबला हो गया हो, हड्डी-हड्डी देख पड़ने लगी हों, आँखें कोटर में धँस गई हों, जीवन अंधकारमय हो गया हो, दूध के सेवन में वह शक्ति है, जो गए हुए स्वास्थ्य को शर्तिया लौटा लाती है। एक विशेष बात यह जान लेनी चाहिए कि कितने लोगों को दूध का सेवन करते समय कई बुरे लक्षण दिखाई देते हैं, पर उनसे डरना नहीं चाहिए। किसी-किसी का पेट दूध पीने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन जाता है, और ज़रा भी दूध पीने की जगह नहीं मालूम होती। इसका कारण यह है कि दूध का जल-भाग पेट में जाकर भारीपन लाता है। थोड़ी देर में जब वह भाग शरीर के रक्त में मिलने लगता है, तो अफरापन दूर हो जाता है। परंतु यदि वास्तव में क़ब्ज़ ही जान पड़े, तो सबसे सरल तथा उत्तम उपाय यह है कि दूध का परिमाण बढ़ा देना चाहिए। इससे मोटी आँते धुलकर साफ़ हो जाती हैं और क़ब्ज़ जाता रहता है। जो दूध का परिमाण नहीं बढ़ा सकते, उन्हें अंजीर या भुने हुए गेहूँ खाना चाहिए। काले मुनक्के खाने से भी क़ब्ज़ ठीक हो जाता है। यदि इतने से भी फ़ायदा न हो, तो कभी-कभी थोड़े सन के बीज खाने चाहिए। पर एक दिन में एक चम्मच से अधिक बीज खाना हानिकर होगा। यदि दूध के सेवन से आरंभ में दस्त शुरू हो जायँ, तो अपनी शक्ति के अनुसार गरम जल, क़ब्ज़ दूर करने वाले यंत्र से, पेट में पहुँचाकर आँतों में भरा मल धो डालना चाहिए। यदि दस्त न रुकें, तो जब तक दस्त न बंद हों, दूध का सेवन रोक देना चाहिए। इस प्रकार दूध का सेवन करने से जब पूरी आरोग्यता प्राप्त हो जाय, तब प्रारंभ में अच्छे-अच्छे फल, मेवे और हलका अन्न खा कर रहना लाभदायक होगा। बाद में अपना साधारण भोजन प्रारंभ करने से कोई हानि नहीं।

विद्यावती शुक्ला

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सा

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

ठि० लारो रोल० जोरूसबर्ग (एम्० ए०)
१३।१२।२८
मेरी पत्नी बाई रतनकु० के ता० ७।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ। बच्चे की तबियत अच्छी है।

नारायणदास रामा—
ठि० मुकुर्जी जेठा मारकेट, पाठलदास गली के नाके पर
बंबई—१३।१२।२८
आपकी दवाई के प्रभाव से मेरी धर्मपत्नी के पुत्र का जन्म हुआ। अब दस मास का हुआ है।

अमृतलाल माषजी—

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

फ़ैजपुर, (जि० खानदेश) ता० १०।१२।२८
आपकी दवा के प्रभाव से मेरी लग्निकु० के ता० ४।१२।२८ के रोज़ पुत्र का जन्म हुआ।

केशवजी माणिकचंद—
छोटा उदयपुर ता० १९।१२।२८
आपकी गर्भरक्षक दवाई सेवन करने से गर्मी कमती हुई, दस्त का बंद, कुष्ठ दूर हुआ, प्रदर, धातु का जाना बंद हुआ, शरीर में ताक़त आई, क्षुधा लगती और खाना भी हज़म होता है। अब पेट, पेडू में दर्द और पेशाब में जलन नहीं होता।

पुराणी पुरुषोत्तमदास रामचंद्र

२२

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

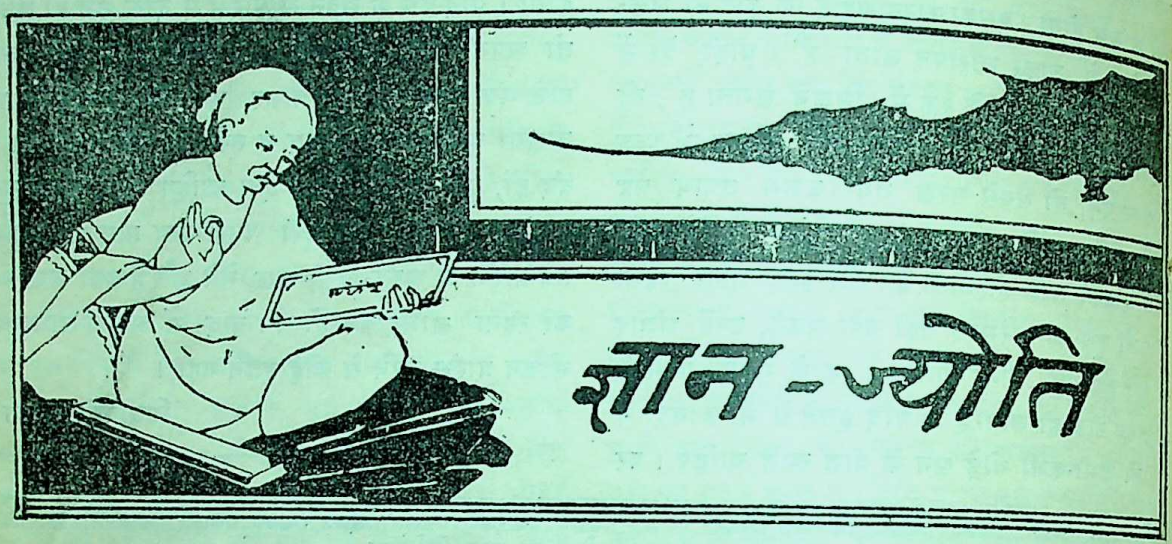

हिंदुओं की जाति-पाँति और इस्लाम का भारत में प्रवेश

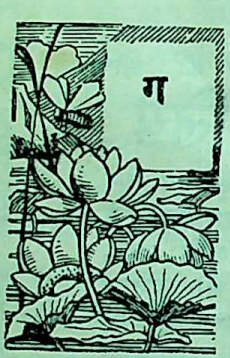

गत दिसंबर महीने में मैंने 'हिंदू-पंच' में एक लेख लिखा था। उसमें मैंने यह दिखलाने का यत्न किया था कि भारत-जैसी ज्ञान-भूमि में इस्लाम-जैसे मोटे धर्म का प्रवेश विशेष प्राकृतिक नियमों के अनुसार हुआ है। इतिहास की सभी घटनाएँ कारण और कार्य के सूत्र में पिरोई हुई हैं। यदि हिंदुओं में जाति-पाँति का भेद-भाव न होता और हिंदू-जाति जाति-पाँति के छोटे-छोटे दरबों में विभक्त न हुई होती, तो इतना महान् हिंदू-राष्ट्र मुट्ठी-भर मुसलमानों से कभी पराजय को प्राप्त न होता। ईश्वर उन करोड़ों मनुष्यों का इस्लाम के द्वारा उद्धार करना चाहता था, जिनको हिंदुओं ने अछूत ठहराकर पशुओं से भी बदतर हालत में रहने को विवश कर रक्खा था। इस्लाम को थोड़ी बहुत सफलता अवश्य हुई, परंतु कालांतर में जाति-पाँति-रूपी विष का असर उसे भी ले डूबा—

वह दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा,
न जेहूँ प' ठहरा न सेहूँ प' अटका।
किए पार थे जिसने सातों समंदर,
वह डूबा दहाने में गंगा के आकर।—(हाली)

मेरे उक्त लेख की आलोचना महाशय मंगलदेवजी शर्मा ने मार्गशीर्ष (जनवरी, २९) की माधुरी में की है। शर्माजी कहते हैं कि हिंदुओं के पतन का कारण जाति-पाँति नहीं, बरन् 'फूट और प्रमाद' है। शर्माजी, फूट और प्रमाद तो रोग का बाहरी लक्षण है। क्या जाति-पाँति का ही दूसरा रूप फूट नहीं? फूट का अर्थ है एकता का न होना, और जाति-पाँति एकता को नष्ट करती है। जब मनुष्य केवल जन्म के कारण दूसरों से उच्च समझा जाने लगता है, तो उसमें प्रमाद का आना स्वाभाविक है; क्योंकि उसे उस उच्चता को प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता। Divide and Rule (फूट डालकर राज्य करना) के सिद्धांत पर जब जाति-पाँति का विभाग कर दिया गया, तो फिर निष्कंटक राज्य स्थापित हो जाने से प्रमाद उत्पन्न होना अवश्यंभावी था। और, वही प्रमाद विदेशियों के सामने उनके नतमस्तक होने का कारण बना।

आप कहते हैं—"क्या कभी अछूत किसी हिंदू-राजा से इसलिये फ़िरंट हो गए कि वह उनके साथ उच्च वर्णस्थ लोगों का रोटी-बेटी का संबंध नहीं होने देता था"।

महाशय, जिन लोगों को अछूत, अंत्यज और शूद्र बनाकर उनकी आत्मा तक को कुचल डाला गया था, उन बेचारों में संयुक्त होकर अत्याचारियों से फ़िरंट होने की शक्ति ही कहाँ रह गई थी। उनसे विद्याध्ययन, धन-संचय और साफ़-सुथरा रहने का अधिकार छीना जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था। ऐसी अवस्था में वे कर ही क्या सकते थे? उनकी आत्मा पर ब्राह्मण के देवत्व का इतना आतंक बैठाया गया था कि वे उसके अत्याचार के विरुद्ध चूँ तक न कर सकते थे। इस्लाम आया, और उसने इन 'भूदेवों' के देवत्व की पोल खोली। इनके सोमनाथों को तोड़कर, इनके यज्ञोपवीत और चोटियाँ काटकर, इनके मुँह में गोमांस तक ठूँसकर अछूतों पर सिद्ध कर दिया कि ये भी तुम्हारी तरह तुच्छ जीव हैं। इनके उच्च वर्णस्थ या 'परमात्मा के मुख से निकले हुए होने' की बात केवल कपट और ढकोसला है। यदि ये सच-मुच लोकोत्तर प्राणी होते, तो मुसलमानों के सामने इस प्रकार मिट्टी में न लोटते। आज भी हम देखते हैं, पंजाब आदि प्रांतों में, जहाँ मुसलमानों का प्राबल्य है, अछूतों की दशा हिंदू-प्रधान प्रांतों के अछूतों से कहीं अच्छी है। क्या इस्लाम इन निस्सहाय लोगों के लिये ईश्वरीय कृपा नहीं?

'द्विज' नाम पर इतरानेवालों से अछूतों को यह कहने की ज़रूरत नहीं कि हमारे साथ रोटी-बेटी का संबंध करो। वे अब ऐसा कहकर अपना अधिक अपमान नहीं कराना चाहते। यह तो आप-जैसे हिंदू-धर्म की रक्षा के ठेकेदारों को आप सोचना चाहिए कि इन सात करोड़ को, छूत-छात और ऊँच-नीच का भाव दूर करके, हिंदू-समाज में रखने का इस समय क्या उपाय है। एसेंबली के अछूत-प्रतिनिधि श्रीयुत एम्० सी० राजा पिछले दिनों मुझे लाहौर में मिले थे। उस समय उन्होंने कहा था कि जिस कार्य को आपका मंडल करना चाहता है, यदि हिंदू उसे स्वीकार कर लें, तो फिर हमें अपना अलग आंदोलन चलाने की आवश्यकता ही न रहे। उन्होंने हमें मंडल का प्रचार दक्षिण में भी करने के लिये अनुरोध किया था। पंजाब में अछूत-आंदोलन के दो नेता हैं। एक तो आदि-धर्म मंडल के प्रधान बाबू मंगूरामजी, और दूसरे सिख-अछूत-जाति के मुखिया सूबेदार सोहनसिंहजी। दोनों हमारे मंडल के सदस्य हैं। वे अनेक बार मुक्तकंठ से कह चुके हैं कि यदि जन्माभिमानी हिंदू आपके मंडल के उद्देश्य को स्वीकार करके इस पर आचरण करने लग जायँ, तो हम अपने आंदोलनों को आज बंद कर देने को तैयार हैं। यू० पी० के अछूतों की भी हमारे मंडल के साथ पूरी-पूरी सहानुभूति है। तो क्या इससे यह स्पष्ट नहीं कि वे वर्णधारी हिंदुओं के साथ रोटी-बेटी का संबंध करने को सहर्ष तैयार हैं। हाँ, इतनी बात ज़रूर है कि वे आपके कान में आकर यह बात नहीं कह सकते। आज से बीस साल पूर्व मुसलमान भी अछूत समझे जाते थे। बड़े-बड़े तिलकधारी उनसे छू जाने पर अपवित्र हो जाते थे। पर जब से उन्होंने ज़ोर पकड़ा है, उन पर सरकार की कृपा-दृष्टि हुई है, तब से मालवीयजी-जैसे कट्टर जन्माभिमानी भी उनका कृपा-पात्र बनने की चिंता में रहते हैं। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्य में जब आज के दलित भाइयों की राजनीतिक महत्ता बढ़ेगी, तो उच्च वर्ण और रक्त की पवित्रता का ढकोसला खड़ा करनेवालों के अपने-आप ढाँच ढीले हो जायँगे। उस समय ये लोग पछताएँगे कि हमने इन सात करोड़ के साथ रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करके क्यों न इनको हिंदू-समाज का हाड़-मांस बना लिया। भाई मंगलदेवजी, ज़रा अपने को एक अछूत डोम की स्थिति में रखकर विचार कीजिए। तब आपको पता लगेगा कि जो उपदेश आप 'शर्मा' बनकर दे रहे हैं, मनुष्यता की दृष्टि में उसका क्या मूल्य है।

मैं मानता हूँ कि केवल अछूत ही मुसलमान नहीं बने, वर्णधारियों में से भी कई लोग मुसलमान बनाए गए। परंतु इनकी संख्या मुसलमान बननेवाले अछूतों की तुलना में पासंग के बराबर भी नहीं। बात असल में यह है कि जब मैलेरिया से शरीर दुर्बल हो जाता है, तो फिर उसमें नाना प्रकार के दूसरे रोग भी सुगमता से प्रवेश करने लगते हैं। इसी प्रकार जब जाति-पाँति की फूट के कारण हिंदू-समाज-रूपी शरीर दुर्बल हो गया और उसका एक बहुत बड़ा अंग—अछूत और शूद्र—इस मैलेरिया के शिकार हो गए, तो फिर जन्माभिमानी द्विजों को मुसलमान बनाना कुछ भी कठिन न था—उसी प्रकार, जिस प्रकार पृथ्वीराज के मुहम्मद ग़ोरी द्वारा पराजित हो जाने के बाद जयचंद को जीतना कुछ भी मुश्किल न रहा। आप कहते हैं कि अछूत लोग 'राजनीतिक और आर्थिक कारणों और किसी हद तक सामाजिक कारणों से' मुसलमान हुए हैं, जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था के अत्याचार से नहीं। मैं पूछता हूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या इन 'राजनीतिक और आर्थिक' कारणों की तह में वह सामाजिक विषमता नहीं, जो जाति-पाँति के कारण उत्पन्न होती है, और जिसके कारण शूद्रों और अछूतों को मानसिक, शारीरिक और आर्थिक उन्नति के उन साधनों और अधिकारों से वंचित रक्खा जाता था, जो ईश्वर के प्यारे 'भूदेवों' को प्राप्त थे ? जिन ग़रीबों को छुआ तक नहीं जाता था, जिनको विद्याध्ययन का अधिकार नहीं था, जिन्हें धन कमाने की आज्ञा तक न थी, और जिनकी देश के राजप्रबंध में कुछ भी सुनवाई न थी, वे राजनीतिक और आर्थिक कारणों से मुसलमान क्यों न बनते ?

मुसलमानों में कुरैशी और जुबैरी आदि नाम जो आपने गिनाए हैं, वे सब वंशों के नाम (Family names) हैं। इनके रखने में कोई हर्ज नहीं। अँगरेज़ों में राबसन, स्मिथ, पीटरसन आदि वंश-नाम हैं। परंतु ये सब वंश एक दूसरे के यहाँ रोटी-बेटी का सबंध करते हैं। भारत के मुसलमानों में हिंदुओं के संसर्ग से जाति-पाँति का रोग उत्पन्न हुआ है। दूसरे इस्लामी देशों में यह रोग बिलकुल नहीं। वहाँ तो एक भाई जूते बनाता है, दूसरा क़ाज़ी है, तीसरा सिपाही है, और चौथा व्यापार करता है; लेकिन सब इकट्ठे रहते और खाते-पीते हैं। भारत के मुसलमान अपनी इस कमज़ोरी का अनुभव करते और उसे मानते भी हैं। मेरे जिस लेख से रुष्ट होकर आपने माधुरी में लेख लिखा है, वह लाहौर के उर्दू-पत्रों में भी छपा था। उसे पढ़कर अहमदी मुसलमानों ने मुक्त-कंठ से भारतीय मुसलमानों की इस दुर्बलता को स्वीकार करते हुए उसे दूर करने पर ज़ोर दिया था। जाति-पाँति तोड़कर विवाह करने के संबंध में इस्लाम की क्या राय है, यह आपको अमृतसर के प्रसिद्ध मुसलमान-पत्र 'अहले हदीस' के नीचे दिए उद्धरण से मालूम हो जायगा। उसमें किसी ने प्रश्न किया है—

"सवाल नं० ६९—अयूब कहता है कि सैयद की लड़की से निकाह करना जायज़ है। अशरफ़ कहता है कि जायज़ नहीं। शरीअत इसके लिये क्या फ़ैसला करती है ?

जवाब नं० ६९—सैयदा (सैयद-पुत्री) के साथ ग़ैरसैयद का निकाह जायज़ है। हज़रत अली की लड़की उम कलसूम का हज़रत उमर रज़ी अल्लाह अनहम के साथ हुआ।"

इसी प्रकार जन्म से वर्ण-व्यवस्था माननेवाले महात्मा गांधी भी कहते हैं—"A shudra may marry a Brahman girl." अर्थात् शूद्र-पुरुष ब्राह्मण-लड़की से विवाह कर सकता है।

मलकाने और राँघड़ अछूत नहीं थे, पर दूसरे राजपूत उन्हें अपने से नीच समझकर उनसे घृणा अवश्य करते थे। जन्म की ऊँच-नीच का जितना भाव राजपूतों में है, उतना शायद ब्राह्मणों में भी नहीं है। इस दूषित भाव के कारण ये लोग आपस ही में लड़कर मरते रहे हैं। मैं ऊँची जाति का राजपूत हूँ, वह नीची जाति का राँघड़ है, वह मेरे सामने घोड़े पर कैसे बैठ सकता है, इत्यादि बातों ने ही इनके वैभव को मिटा दिया। राजपूतों का इतिहास राजनीतिक भूलों और जाति-पाँति की मूर्खताओं का एक दुःखांत नाटक है। इतने बड़े वीर और योद्धा होने पर भी ये लोग सदा मुसलमानों के अधीन रहे, इसका प्रधान कारण यही जाति-पाँति थी। बाक़ी रहा काश्मीरी ब्राह्मणों का मुसलमान होना, सो उसका कारण मैं माधुरी की किसी गत संख्या में 'बुलबुलशाह और वर्ण-व्यवस्था'-शीर्षक लेख में लिख चुका हूँ। यदि हिंदू जाति-पाँति की तंग कोठरियों में बंद न हो गए होते तो ये शुद्धि द्वारा मुसलमानों को भी आत्मसात् कर जाते। परंतु यह जाति-पाँति का बोदा क़िला इनको ले डूबा। इनकी इस टूटी झोंपड़ी में दूसरे धर्म से आनेवाले के लिये कोई जगह ही न थी।

अब आइए ईसाइयत की ओर। दो-चार उँगली पर गिने जानेवाले ब्राह्मणों को छोड़कर और कितने ब्राह्मण ईसाई बने ? मदरास में, पंजाब और उड़ीसा में इस समय जो ईसाई हैं, क्या उनमें अब्राह्मणों और अछूतों की संख्या ही अधिक नहीं ? आप कैसे कहते हैं कि ब्राह्मण अधिक ईसाई हुए हैं ? नीलकंठ या माइकेल मधुसूदनदत्त के ईसाई होने का कारण पुराणों की युक्ति और तर्क से हीन शिक्षा या लोभ हो सकता है, परंतु शूद्रों और अछूतों के गाँव-के-गाँव के ईसाई होने का प्रधान कारण जाति-पाँति के अत्याचार के सिवा और कुछ नहीं। आपकी यह बात मेरी समझ में नहीं आई कि "मुसलमान और ईसाई, हिंदुओं में से समता और भ्रातृभाव का नाश करने के ज़िम्मेदार हैं।" क्या मुसलमान इन्हें कहते हैं कि तुम जाति-पाँति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंधनों में जकड़े रहो, और दूसरों को अछूत और नीच समझो ? क्या इस्लाम के भारत में आने के पहले हिंदुओं में समता और भ्रातृभाव था ? यह तो ऐसी ही बात है, जैसे किसी हिंदू के पेट में दर्द हो रहा हो, और वह इसका कारण अँगरेज़ी-राज्य को ठहराए।

आप पूछते हैं, ईसाइयों के आगमन के पहले भी बंगाल और मदरास में नमः शूद्र और अब्राह्मण थे। तब क्यों नहीं जन्म-मूलक वर्ण-व्यवस्था के अत्याचार के मरसिए गाए गए ? भाई साहब, कारण स्पष्ट है। उस समय उनके ज़बान न थी। आपके स्मृतिकारों ने उनको पशुओं से बदतर बना रक्खा था। विद्याहीन, धनहीन, सत्ताहीन व्यक्ति अत्याचारी के विरुद्ध आवाज़ हो क्या उठा सकता था। उसकी पुकार को सुननेवाला ही कौन था ? ईसाई आए। उन्होंने अछूतों को शिक्षा दी, उनको मनुष्य बनाया, और जन्माभिमानियों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्हें आश्रय दिया। बस, वे बोलने लगे। आप तो तभी तक प्रसन्न थे, जब तक वे ग़रीब चुपचाप आपके अत्याचार सहते जा रहे थे। अब वे पुकार करने लगे हैं, तो आप अपना दोष स्वीकार करने के स्थान में ईसाइयों को दोषी ठहराते हैं।

आप जाति-पाँति तोड़ने को हिंदुओं के लिये प्राणघातक और एक बिलकुल नई चीज़ बताते हैं। मुझे आश्चर्य है कि यह बात आपने कैसे लिख दी ! क्या आप नहीं जानते कि शुक्राचार्य, शृंगी, यमदग्नि, पिपलाद, अगस्त्य, रायिक और सौभरी आदि ऋषि-मुनियों ने तथा प्रियव्रत, नीप, ययाति, कक्षीवान् आदि क्षत्रियों ने जाति-पाँति तोड़कर विवाह किए थे ? क्या आप परशुराम, वशिष्ठ, पराशर और व्यास आदि को—जाति-पाँति-तोड़क विवाहों की संतानों को—महापुरुष नहीं मानते ? क्या वे लोग वेद-शास्त्र को आपसे कम जानते थे ? इसलिये आपका जाति-पाँति-तोड़क आंदोलन को पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव और विदेशियों की फूट डालने की चाल कहना व्यर्थ है। भगवान् बुद्ध, कबीर, नानक, दादू, दयानंद—सबने जाति-पाँति के विरुद्ध प्रचार किया है। क्या वे सब अँगरेज़ों के दूत या मिशनरी थे ? आप अपने दोष को स्वीकार नहीं करना चाहते ; व्यर्थ में इधर-उधर की युक्तियाँ गढ़कर दूसरों पर लांछन लगाने का यत्न करते हैं। मैं पूछता हूँ, क्या कारण है कि आज तक किसी भी शूद्र या अछूत ने आपकी वर्ण-व्यवस्था को अच्छा नहीं कहा ? क्यों द्विजों को ही इसकी रक्षा की फ़िक्र रहती है ? यदि यह चीज़ समस्त मनुष्य-समाज के लिये कल्याणकारिणी हो, तो अवश्य शूद्र भी इसे पसंद करें। इससे स्पष्ट है कि यह कुछ लोगों की स्वार्थ-सिद्धि के लिये ही बनाई गई थी। जिस अँगरेज़ी-राज्य (जान बुल) को आप कोस रहे हैं, वह अछूतों और शूद्रों के लिये इस समय ईश्वरीय कृपा है। आपके सुशासन में तो वे बेचारे लिख-पढ़ तक न सकते थे, उनके कान में सीसा भर दिया जाता था, उनकी जीभ काट डाली जाती थी; पर जान बुल की कृपा से वे डिप्टी, वकील, डाक्टर और एसेंबली के मेंबर तक बन गए हैं। ऐसी दशा में आपका जान बुल को कोसना माने ही क्या रखता है ?

मैंने लिखा था कि यदि जाति-पाँति का ढकोसला उड़ा दिया जाय, तो जो लोग हिंदुओं से मुसलमान बने हुए हैं, वे फिर हमारे अंदर आ सकते हैं ; हसन निज़ामी आदि का प्रचार कुछ नहीं कर सकता। इस पर आप कहते हैं कि "कोई किसी को नेस्तोनाबूद करने में कभी कामयाब नहीं हुआ।" मैं पूछता हूँ, क्या आपको मालूम नहीं कि किसी समय सारा मध्य-एशिया, सारा अफ़ग़ानिस्थान और सारा ईरान बौद्ध या कम-से-कम ग़ैर-मुसलमान था ? क्या वह इस समय बौद्धों की दृष्टि से नेस्तोनाबूद नहीं ? भारत के सात करोड़ मुसलमान, जो किसी समय हिंदू-समाज के अंग थे, क्या हिंदू-धर्म की दृष्टि से नेस्तोनाबूद नहीं हो गए ? आपकी बात पर मुझे काशी के एक पंडित की बात याद आती है। पंडितजी ने एक सभा में कहा था—"लोग कहते हैं, हिंदू दिन-पर-दिन मुसलमान होते जा रहे हैं, पर हमें तो कहीं उनके मुसलमान होने का पता नहीं लगता। हम तो काशी में जैसे पहले हिंदुओं की भीड़ देखते थे, वैसे ही अब देखते हैं। हमारे मंदिर में चढ़ावा भी वैसे ही आ जाता है, जैसे पहले आता था।" ऐसे मनुष्यों को तो किसी के मरने-मिटने का पता तभी लगता है, जब उनकी अपनी जान पर आकर बनती है। उसके पहले तो वे दूसरों को मरते देखकर भी चैन की वंशी बजाया करते हैं।

आप कहते हैं, जाति-पाँति तोड़ने से अखिल-हिंदू-संसार का भारी अनिष्ट हो जायगा। मैं नहीं समझता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अखिल हिंदू-संसार से आपका क्या अभिप्राय है। भारत में सब मिलाकर बाईस करोड़ हिंदू हैं। इनमें से ७ करोड़ अछूत निकाल दीजिए। बाक़ी रहे १५ करोड़। अब इन १५ करोड़ में से आर्य-समाजी, ब्राह्म-समाजी, राधा-स्वामी, सिख, जैन, देव-समाजी, प्रार्थना-समाजी और स्वतंत्र विचार के हिंदुओं की संख्या ८ करोड़ से कम नहीं। ये लोग जाति-पाँति को बिलकुल नहीं मानते। कोई कहार, कोई तरखान, कोई तेली, कोई माली जो शूद्र कहलाते हैं, जाति-पाँति को कभी पसंद नहीं कर सकते। बाक़ी रह गए ७ करोड़ पुराने ढर्रे के लोग। उनमें से भी बहुत-से समझदार जाति-पाँति के विरुद्ध हैं। ऐसी अवस्था में आप पाँच-छः करोड़ लोगों के लिये पंद्रह-सोलह करोड़ हिंदुओं के हितों को बलि देना चाहते हैं। क्या आप उनको हिंदू नहीं समझते? आप कहते हैं कि जाति-पाँति तोड़ने से संगठन नहीं होगा, वरन् हिंदुओं को मज़बूत बनाने का उपाय करना चाहिए। मैं कहता हूँ, हिंदुओं को मज़बूत बनाने के लिये ही तो जाति-पाँति तोड़ने पर ज़ोर दिया जा रहा है, और आप कड़वे दाख़ की तरह उससे डरते हैं।

आप कहते हैं, योरप में भी और मुसलमानों में भी एक नाई एक नवाब की बेटी से विवाह नहीं कर सकता; फिर हिंदुओं में जाति-पाँति तोड़कर सबको एक करने का यत्न क्यों किया जाता है? मेरा निवेदन है कि नाई और नवाब श्रेणियाँ (Classes) हैं, ज़ातें (Castes) नहीं। योरप में एक लुहार-लड़का—जैसे कि इटली का मुसोलनी—अपने विद्या-बल और धन-दौलत के प्रताप से लार्ड (नवाब) बन सकता है। फिर वह लार्ड लोगों के यहाँ ब्याह-शादी कर सकता है। परंतु हिंदुओं में एक चमार परम विद्वान् और अति धनवान् होने पर भी ब्राह्मण की लड़की से विवाह नहीं कर सकता। श्रेणियाँ बदली जा सकती हैं, परंतु ज़ातें नहीं बदल सकतीं। अमीर, ग़रीब, विद्वान् और मूर्ख, सभी जातियों में होते हैं। योरप के सोशियालिस्ट और कम्यूनिस्ट लोग तो इस श्रेणी-विभाग को भी बराबर कर देना चाहते हैं। पर हिंदुओं में श्रेणियाँ और ज़ातें, दोनों हैं। इसलिये योरपीय और हमारी समाज में भेद है। हमारी जाति-पाँति हमें उत्साह-हीन बनाकर नैराश्य-सागर में डुबा रही है। योरप में उच्च बनने की उमंग से लोग उद्योगशील बन रहे हैं।

आप कहते हैं, सब हिंदुओं को आपस में प्रेम और सहायता करनी चाहिए। परंतु मैं कहता हूँ कि जिस समाज में जन्म से ब्राह्मण और क्षत्रिय कहलानेवाले के सिवा और कोई भी शिल्पकार, श्रमजीवी या किसान संभ्रांत जीवन नहीं व्यतीत कर सकता, जिसमें सुनार, कहार, नाई, माली, रंगरेज़, चमार, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, दरज़ी आदि शिल्पियों को अपनी जाति प्रकट करते इसलिये डर होता है कि जाति के बताते ही वे जन्माभिमानी द्विजों की दृष्टि में गिर जायँगे—ऐसे समाज में आपके उपदेश को सुन कर प्रेम कैसे पैदा हो सकता है? एक चमार चाहे कितना ही कुलीन, सदाचारी, लिखा-पढ़ा धनी हो, उसकी जाति का पता लगते ही एक दूसरों की रोटी बनाकर गुज़र करनेवाला ब्राह्मण भी उससे घृणा करने लगता है। यह मनोवृत्ति हिंदू-द्विज ने माता के दूध के साथ प्राप्त की है। स्मृतियों ने यह विष हिंदू-समाज को खिलाया है। यही कारण है कि पंजाब आदि प्रांतों में सौ पीछे ९५ शिल्पकार मुसलमान हैं। जब तक जाति-पाँति है, तब तक छूत-छात कभी नहीं दूर हो सकती। जाति-पाँति को क़ायम रखते हुए छूत-छात को उड़ाने का यत्न करना मानो रोग के मूल-कारण को दूर न करके उसके बाहरी लक्षणों की चिकित्सा करना है। आपने जिस प्रकार की सहानुभूति अछूतों से प्रकट करने को कहा है, वह तो उस सहानुभूति के सदृश है, जो एक मालिक अपने ग़ुलाम पर या एक ग्वाला अपनी गाय पर करता है। आप चाहते हैं कि वे रहें तो अछूत के अछूत; हाँ, उनकी अवस्था पहले से कुछ अच्छी हो जाय। आप उनको बराबरी का अधिकार नहीं देना चाहते। तभी तो आप कहते हैं कि "गाँव का ठाकुर एक वक़्त चमारों को बेगार में पकड़वाता है", लेकिन दूसरे ही दिन उनकी शादी-ग़मी में सहायता भी करता है। ठीक है, एक समय मालिक टट्टू को चाबुक से पीटता भी है, और दूसरे दिन उसको खिला-पिलाकर मोटा-ताज़ा भी करता है। यदि आप अछूतों को मनुष्य समझते, तो उनके भी ठाकुर (मालिक) बनने के अधिकार को स्वीकार करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कहते हैं—"जाति-पाँति-तोड़क मंडल हिंदुओं में वैरभाव और तनातनी पैदा कर रहा है", तथा मेरी उक्तियाँ हृदय विदीर्ण करनेवाली होती हैं। मंडल वैर-भाव पैदा कर रहा है या प्रेम-भाव, इसका पता तो आगे जाकर लगेगा; परंतु मैं पूछता हूँ कि क्या जाति-पाँति ने इस समय प्रेम-भाव उत्पन्न कर रक्खा है ? क्या ब्राह्मण-अब्राह्मण, जाट-बनिया, कायस्थ-भूमिहार इत्यादि दलबंदियाँ, जिनका भयंकर रूप कौंसिलों और एसेंबली के गत चुनाव में देख पड़ा था, इसी जाति-पाँति-रूपी विषवृक्ष का कड़वा फल नहीं ? हो सकता है, मेरी उक्तियाँ कुछ लोगों को हृदय-विदारक जान पड़ती हों; परंतु इसमें मेरा दोष नहीं। यदि वे लोग अपने जन्माभिमान को छोड़कर, अपने को दूसरे हिंदुओं-जैसा ही समझें, तो मेरी ये सर्व-हितकारी बातें उन्हें कभी न चुभें। मेरी उक्तियों से केवल उन्हीं लोगों को दुःख हो सकता है, जो अयोग्य होते हुए भी केवल जन्म के कारण भूदेव और ठाकुर बने बैठे हैं। वे अपनी मुफ़्त में मिली हुई गद्दी को नहीं छोड़ना चाहते। अन्यथा मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी उक्तियों से जितने लोगों को दुःख होता होगा, उनसे सैकड़ों गुना अधिक ऐसे लोग हैं, जो इनमें अखिल हिंदू-संसार की सच्ची हित-कामना देखते होंगे। इस प्रजातंत्र-युग में केवल वही जाति जी सकती है, जो प्रत्येक मनुष्य को उन्नति का पूरा अवसर देती है, जो झूठे जन्माभिमान का स्थान क्षमता और योग्यता को प्रदान करती है। जाति-पाँति-तोड़क मंडल हिंदू-समाज में वही समता और भ्रातृभाव लाना चाहता है। जगदीश्वर करे, हमारे भाई हृदय की संकीर्णता को छोड़कर हिंदू-मात्र को अपना बराबर का भाई समझने लगें।

संतराम

दांपत्य-प्रेम की कुंजी ! बीसवीं सदी का आश्चर्य आविष्कार !!

संतान-वृद्धि-निग्रह-रसायन

भारत के प्रमुख नेताओं तथा सुसंचालित पत्रों ने देश की निर्धनता का उपाय अधिक बच्चों की पैदायश का रोकना ही बताया है। अतएव कृत्रिम किंतु अस्वाभाविक यंत्रों का प्रयोग अथवा दुःसाध्य ब्रह्मचर्यपरिपालन ये ही दो उपाय भी बताए हैं। परंतु पहला स्वास्थ्य और दांपत्य-प्रेम का नाशक और दूसरा एकांत दुःसाध्य अतएव असंभव है। इसी दुरूह सिद्धि को आयुर्वेद-पारंगत ने आविष्कार कर असाध्य को साध्य कर दिखाया है। पूर्वोक्त रसायन के प्रयोग से न तो स्वास्थ्य को ही धक्का लगता है और न सहवास-सुख से ही वंचित होना पड़ता है। प्रत्युत स्त्री-पुरुषोंमें अपूर्व शक्ति का संचार एवं दांपत्य-प्रेम का पारावार उमड़ चलता है। तसदीक़ की कोई आवश्यकता नहीं। जो दंपति अविश्वासवश परीक्षा लेना चाहें, आवें। अन्यत्र मूल्य जमाकर परीक्षा कर सकते हैं। केवल एक दंपति के लिये उपयुक्त १०) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

पीनोन्नतस्तनी सौभाग्य सुभगा

छोटी-छोटी अवस्था में ही शिथिल-यौवनसाम्राज्या युवतियों के लिये उनके पतियों का असमय वैराग्य यमयातना-तुल्य हो जाता है। पूर्वोक्त दोनों औषधें योनि-व्याधि को नष्ट, गुप्तेंद्रिय का नव्य-संकोचन एवं शिथिल स्तनों को कंदुक-कठोर कर युवतियों को फिर से पूर्ण कामिनी और मानिनी बनाती हैं। दोनों का १०) मात्र, अलग ५) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

नोटः—औषध-मूल्य मनीऑर्डर द्वारा पेशगी आने पर पोस्टेज आदि माफ़। कठिन-से-कठिन चिकित्सा एवं बड़ी-से-बड़ी औषधि-प्राप्ति का एक-मात्र पता— १२

मैनेजर, आयुर्वेदभवन, हुसेनगंज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकार—अज्ञात] [**स्वरकार**—श्रीराजाराम भार्गव

राग मेघ-मलार—ताल चौताल

काफ़ी ठाठ का षाडव-राग है। आरोही व अवरोही में धैवत वर्ज्य है। षड्ज वादी स्वर है, व पंचम संवादी है। रिषभ को आंदोलित करते हैं। गंधार गुप्त रहता है, अर्थात् केवल गंधार का कण लगाते हैं। इस राग में मत-भेद भी है। एक मत से गंधार और धैवत, दोनों स्वर वर्ज्य कर देते हैं, जिससे इसका स्वरूप सूरदासी मलार से भिन्न हो जाता है। सूरदासी मलार में सारंग का अंग अधिक है। अतएव इस राग में धैवत व गंधार को छोड़ देना ठीक होगा। यह चतुर पंडित का मत है। आजकल धैवत को भी गंधार के साथ वर्ज्य करके मेघ-मलार गाते हैं। इस राग में जब धैवत को मिला देते हैं, तो इसी को सूरदासी मलार कहते हैं। मध्यम व रिषभ की संगत इसमें की जाती है, और इस कारण राग का स्वरूप दरसता है। इस राग के स्वरों को धीरे-धीरे उच्चारण करना चाहिए, इसीलिये इसे विलंबित लय व तार व मध्य-स्थान के स्वरों से गाते हैं। यह राग वर्षाऋतु में अति सराहनीय है।

आरोही स र म प, न सं। अवरोही सं न प, म र स

गीत

तू लागी मान करन सजनी आए हैं लाल मनावनहारे;
चढ़ देखो अटा पर उमगी घटा कारी खड़े भीजैं नंददुलारे।

×		०		२		०		३		४	
										स	ऽ
										तू	—
र	—	र	र	र	प	म	—	र	—	म	ऽ
ला	ऽ	गो	मा	न	क	र	ऽ	ऽ	ऽ	न	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र	—	स	—	स	स	—	म	र	म	र	स
स	ऽ	ज	ऽ	नी	आ	ऽ	ए	ऽ	हैं	ला	ऽ
रम	—	म	प	—	प	प	म	प	न	प	सं
लऽ	ऽ	म	ना	ऽ	व	न	ऽ	ऽ	हा	ऽ	ऽ
—	—	न	—	प	म	र	म	र	स	स	—
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रे		

अंतरा

										ग	प
										ध	ढ़
—	न	प	न	न	सं	—	सं	--	सं	सं	सं
ऽ	दे	ऽ	खो	अ	टा	ऽ	प	ऽ	र	उ	म
मंरं	मं	रं	सं	—	न	प	प	प	रं	संरं	—
गीऽ	ऽ	घ	टा	ऽ	का	ऽ	री	ख	ढ़े	ऽऽ	ऽ
मंरं	—	मंरं	रं	मं	रं	न	सं	—	—	—	—
भीऽ	ऽ	जैंऽ	नं	ऽ	द	दु	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
न	—	प	—	म	—	र	म	र	स	स	—
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रे		

अमृत के तीन बूँद—कहाँ ? मृत्युलोक में !!

१—कल्पलता-बटी

पुरुष को चाहे जैसा प्रमेह (वीर्य-विकार) हो, स्त्री को चाहे जैसा प्रदर हो, एक हफ़्ते में जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। हज़ारों स्त्री-पुरुष चंगे होकर ज़िंदगी का मज़ा लूट रहे हैं। हमारा दावा है कि "कल्पलता" आपके वीर्य-विकार-संबंधी हरएक मर्ज़ पर जादू का-सा असर करेगी। मूल्य ३)

२—कामकल्प (तिला)

जो लोग नामर्दी की ज़िंदगी से बेज़ार हो चुके हों, बचपन में भूल से या जवानी के चक्कर में कुटेवों से अपना सब कुछ खो चुके हों और जो हर तरफ़ से निराश हो गए हों, उन्हें यह तिला पहले ही दिन जादू का-सा चमत्कार दिखलाता है। ख़ास तौर पर बुड्ढों को जवानी की ताक़त देने में अक्सीर है। हमारे अनुरोध से एक बार ज़रूर आज़माइए। मूल्य २)

३—संजीवन-सुधा

इसे घरेलू डाक्टर ही समझिए। आजकल के चलते हुए हर मर्ज़ पर रामबाण है। बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष, हरएक को हर मर्ज़ में एक-सी लाभदायक है। लोभ छोड़कर बिला ज़रूरत भी एक शीशी मँगाकर रख लीजिए। मूल्य छोटी शी० ॥।), बड़ी शी० १।); डाकख़र्च सब दवाओं का अलग पड़ेगा।

नोट—असाध्य रोगों का इलाज ठेके पर करते हैं। मिलिए या पत्र लिखिए।

आयुर्वेदविज्ञानाचार्य, राजवैद्य,

पं० गयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेदवाचस्पति

अध्यक्ष—श्रीऔषध आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, गणेशगंज, लखनऊ (नं० ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. बिना तार का तार

संसार विचित्रताओं का भांडार है। इस सुरम्य भूमंडल के गर्भ में ऐसा-ऐसी अद्भुत शक्तियाँ तथा चमत्कार भरे पड़े हैं, जिन्हें मनुष्य स्वप्नावस्था में भी नहीं सोच सकता—उन्हें मालूम करना तो दूर रहा। दिन-पर-दिन ऐसी-ऐसी बातों का पता चल रहा है, जिन्हें सुनकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। न-मालूम कितने अनमोल रत्न, जिन्हें हम अपने लिये लाभदायक बना सकते हैं, इस प्रकृति-नटी के अनंत गर्भ में छिपे पड़े हैं। लगभग ५०० वर्ष पूर्व से मनुष्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, और वे अभी इस प्राकृतिक प्रयोगशाला का अन्वेषण करने में लगे हुए हैं, तथा अपने अटूट परिश्रम के पश्चात् उन्होंने कुछ बातें मालूम भी कर ली हैं। विमान, विद्युत्-शक्ति, वाष्प-शक्ति आदि ज्ञात हुईं, जिन्होंने मनुष्य-जीवन में एकदम परिवर्तन पैदा कर दिया। इसी से मेटीरियलिज़्म (Materealism) अथवा तत्त्ववाद का जन्म हुआ। वैज्ञानिक लोग बराबर चेष्टा करते गए, और उन्हें नई-नई बातों का ज्ञान होता गया।

वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किए हुए रत्नों में (Wireless telegraphy) भी एक उज्ज्वल रत्न है, जिसने सारे संसार को आश्चर्य-चकित कर दिया है। इसके द्वारा एक ही सेकंड में हज़ारों मील की ख़बर मिल जाती है। पहले तो मनुष्य Telegraphy को ही देख कर चकित हुए थे कि एक ठोस तार द्वारा ख़बर किस प्रकार आ जाती है; पर जब उन्होंने देखा कि तार की भी आवश्यकता नहीं है, तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। जिन मनुष्यों ने विज्ञान-शास्त्र का भली भाँति अध्ययन किया है, वे तो इसका कारण भी जानते हैं; पर साधारण जनता इन बातों से अनभिज्ञ है, और इस कारण वे इसे तांत्रिक विद्या समझते हैं। इस कारण उनके हितार्थ मैं कुछ इस विषय पर लिखता हूँ।

बिना तार के तार का जन्म सन् १८७० ई० से कहा जा सकता है। इसी समय प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स क्लार्क मैक्सवैल (James Clerk Maxwell) को ज्ञात हुआ कि इस आकाश में विद्युत्-तरंगें उपस्थित हैं, जो कभी-कभी ब्रह्मांड में चक्कर लगाया करती हैं, और फिर लोप हो जाती हैं। इस पर लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यह विद्युत्-तरंगें क्या हैं, किस प्रकार उत्पन्न हुईं और यह किस प्रकार चलती हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने खोज के बाद मालूम किया है कि यह अपार विश्व एक ऐसे हलके तथा सूक्ष्म पदार्थ से भरा हुआ है, जिसे हम किसी प्रकार न जान ही सकते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न देख ही सकते हैं। यह सूक्ष्म पदार्थ सर्वव्यापी है। कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ पर यह न हो। उन लोगों ने इस पदार्थ का नाम ईथर (Ether) रख दिया। मनुष्य कुछ दिन पहले से इस बात को मालूम करना चाहते थे कि सूर्य से प्रकाश और उष्णता किस प्रकार पृथ्वी पर आती है। ईथर के ज्ञात होते ही यह सब रहस्य खुल गया। उन्हें इनका कारण ज्ञात हो गया, और यह भी ज्ञात हो गया कि संसार की जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब किस प्रकार से उत्पन्न होकर कार्य करती हैं। उन लोगों का मत है कि जिस प्रकार वायु में तरंगें उत्पन्न हो जाने से शब्द उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार ईथर में तरंगें उत्पन्न कर देने से प्रकाश, गरमी, विद्युत्, आकर्षण आदि शक्तियों का आविर्भाव होता है। प्रकाश या गरमी आदि का आकार उत्पन्न तरंगों के आकार पर निर्भर है। इसमें कई आकार की तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं। किसी का आकार (Wave Length) बड़ा और किसी का छोटा। यह सब शक्तियाँ एक ही मूल-कारण से उत्पन्न होती हैं; पर तरंगों के आकार में भिन्नता होने के कारण ये भिन्न-भिन्न शक्तियों में परिणत हो जाती हैं। जो सबसे बड़े आकारवाली तरंगें होती हैं, वे ही (Wineless Waves) का कार्य करती हैं; इससे छोटे आकार वाली गरमी का, उससे छोटी प्रकाश का और सबसे छोटी तरंगें, जो अब तक ज्ञात हुई हैं, A. B & X Ray (एक्स-रे) का कार्य करती हैं।

यह सब तरंगें ईथर में १,९८,००० मील प्रति-सेकंड के वेग से चलती हैं। जिस प्रकार तालाब में एक पत्थर डाल देने से तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार एक ईथर की तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं। हम इन तरंगों को मालूम कर सकते हैं। प्रकाश की और गरमी की तरंगों को हम अपने शरीर द्वारा ज्ञात कर सकते हैं; पर बाक़ी को सब तरंगें हम और-और आश्रयों का आश्रय लेकर ज्ञात कर सकते हैं। सन् १८८८ में प्रोफ़ेसर हरटज़ (Hertz) को अचानक एक बात ज्ञात हुई। एक दिन वह अपनी प्रयोगशाला में बैठे हुए विद्युत्-संबंधी कोई प्रयोग कर रहे थे। उसमें उन्हें एक विद्युत्-सी चिनगारी (Spark) लेना था। जैसे ही उन्होंने विद्युत् की चिनगारी उत्पन्न की, वैसे ही पास के रक्खे हुए एक तार के चक्कर के दोनों सिरों के बीच में भी चिनगारी उत्पन्न हो गई, और प्रयोग करते-करते उन्हें यह ज्ञात हुआ कि विद्युत्-चिनगारी उत्पन्न होने से एक प्रकार की शक्ति चारों ओर फैल जाती है। प्रोफ़ेसर ने इस बात से यह नतीजा निकाला कि विद्युत्-चिनगारी के उत्पन्न होने से पास के ईथर में तरंगें उत्पन्न होकर चारों ओर फैल गईं, और फिर धीरे-धीरे प्रयोग द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि बड़ी विद्युत्-चिनगारियों से अधिक शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं, और छोटी से कम शक्तिशाली।

इस प्रकार पता चलता है कि यदि कोई इस प्रकार के यंत्र बना लिए जायँ, जिनसे ईथर में तरंगें उत्पन्न की जा सकें और जिससे ईथर में स्थित तरंगों को मालूम किया जा सके, तो एक दूर के स्थान से भी अपने समीप यंत्र रखकर बातचीत की जा सकती है। Wireless का मूल-तत्त्व ज्ञात हो जाने पर ऐसे यंत्र बनाना कुछ अधिक कठिन कार्य नहीं रह गया। कुछ वर्षों पश्चात् वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के यंत्र बना लिए। एक से तो विद्युत्-शक्ति द्वारा ईथर में तरंगें उत्पन्न कर दी जा सकती हैं, और दूसरे से उन्हें मालूम किया जा सकता है। हरटज़ के तत्त्वानुसार बड़ी विद्युत्-चिनगारी से शक्तिशाली तरंगें और छोटी से कम शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं। इसी तत्त्व का आश्रय लेकर Morse System of Telegrayhy द्वारा आपस में बातचीत की जा सकती है, जिसमें कि (— ·) इन दो चिह्नों द्वारा शब्द कहे जा सकते हैं। इसमें (—) यह चिह्न तो उस तरंग के लिये काम में लाया जाता है, जो बड़ी विद्युत्-चिनगारी द्वारा उत्पन्न होती है, और (·) यह चिह्न उस तरंग के लिये, जो छोटी विद्युत् तरंग द्वारा उत्पन्न होती है। जिस प्रकार Telegraphy में इन्हीं (· —) के द्वारा बातचीत हो सकती है, उसी प्रकार बेतार के तार द्वारा भी हो सकती है।

मैंने इस लेख में इन तरंगों के उत्पन्न करने और मालूम करने के यंत्रों का हाल लेख के विस्तार-भय के कारण नहीं दिया है। किसी और लेख में यह सब बताया जायगा।

नरेंद्रकुमार गर्ग

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. बहिरों के उच्चारण में सुगमता

बहिरे बच्चों को उनके उच्चारण किए हुए शब्दों के शुद्धाशुद्ध रूप का यथावत् ज्ञान कराने के लिये एक नवीन विधि अभी हाल ही में मालूम की गई है। बच्चे फ़ोन को हाथ में लेकर उसके सामने जो शब्द बोलते हैं, वे यंत्र के भीतरी परदों पर टकराकर सूक्ष्म विद्युत्तरंगें पैदा करते हैं, जिनके द्वारा प्रकाश की किरणों के विविध समूह उद्भूत होकर आईनों में प्रतिबिंबित होते हैं। इस प्रकार बिजली की सहायता से शब्दों की लहरें प्रकाश की लहरों में रूपांतरित हो जाती हैं, जिन्हें देखकर वे अपने-अपने बोले हुए शब्दों का शुद्धाशुद्ध रूप जान लेते हैं।

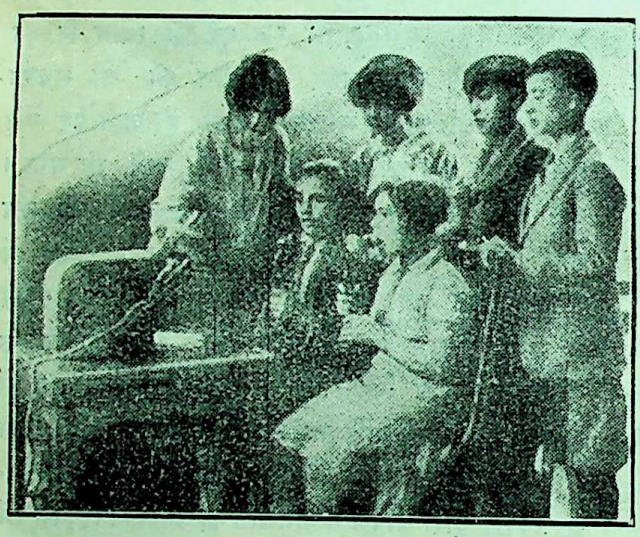

बहिरों के उच्चारण में सुगमता उत्पन्न करनेवाली विधि

× × ×

३. रासायनिक विश्लेषण करनेवाली मशीन

नवीन आविष्कारों द्वारा क्रमशः मनुष्यों और पशुओं के सब काम छीने जा रहे हैं। भारत में बैलों और घोड़ों की जगहें क्रमशः मोटरें लेती जा रही हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में विश्लेषणकारी का स्थान लेनेवाली एक मशीन, जो युगांतर उपस्थित करने जा रही है, बड़ी आश्चर्य एवं कौतूहलजनक है। इँगलैंड के डाक्टर एच्० एस्० हैटफ़ील्ड ने एक ऐसी मशीन तैयार की है, जिसके भीतर रक्खे हुए टेस्ट-ट्यूबों के भीतर आप कोई रासायनिक द्रव्य डाल दीजिए, तो मशीन के

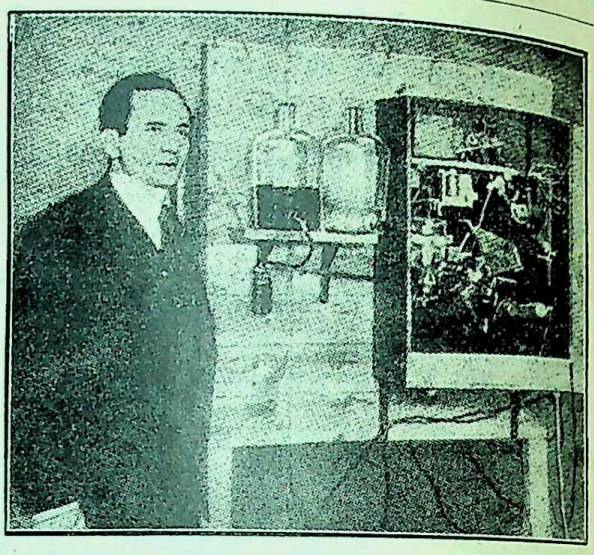

रासायनिक विश्लेषण करनेवाली मशीन

भीतर की बोतलों में से दवाइयाँ निकल-निकलकर बिजली के द्वारा अपना काम ख़ुद करने लगेंगी, और बिना अधिक समय लगाए ही आपको रक्खे हुए द्रव्य का प्रकारात्मक एवं मात्रात्मक विश्लेषण करके बता देंगी। अर्थात् आप यह जान जायँगे कि उस द्रव्य में कौन-कौन से रासायनिक तत्त्व किस-किस मात्रा में विद्यमान हैं। अब बेचारे केमिकल एनालिस्ट को शीघ्र ही प्रयोग-शाला से बिदा लेनी पड़ेगी, और उदर-पोषण के लिये किसी दूसरे मार्ग की तलाश करनी पड़ेगी। प्रस्तुत चित्र में आविष्कर्ता महाशय अपनी मशीन के सामने खड़े हैं।

× × ×

४. टेलीफ़ोन में दी हुई ख़बर लिख लेनेवाली मशीन

प्रायः घर से बाहर जानेवाले लोगों को अपने घरवालों को ताकीद कर देनी पड़ती है कि जब टेलीफ़ोन की घंटी बजे, तो रिसीवर उठाकर 'हलो' कहकर पूछें—"कौन बोल रहा है, और कहाँ से?" व्यापार-कुशल लोगों और दफ़्तरों के आफ़िसरों को अपना बैठने का स्थान छोड़ने में यही प्रश्न उपस्थित रहता है कि यदि कहीं से टेलीफ़ोन द्वारा कोई ख़बर आई और उस वक़्त पास में कोई न हुआ, तो घंटी बजकर रह जायगी और ख़बर मालूम न हो सकेगी। इसलिये अक्सर एक क्लार्क इसी काम के लिये मुक़र्रर किया जाता है। स्वीडननिवासी एक इंजीनियर ने, जिनका नाम जे० जो० लार्सन है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

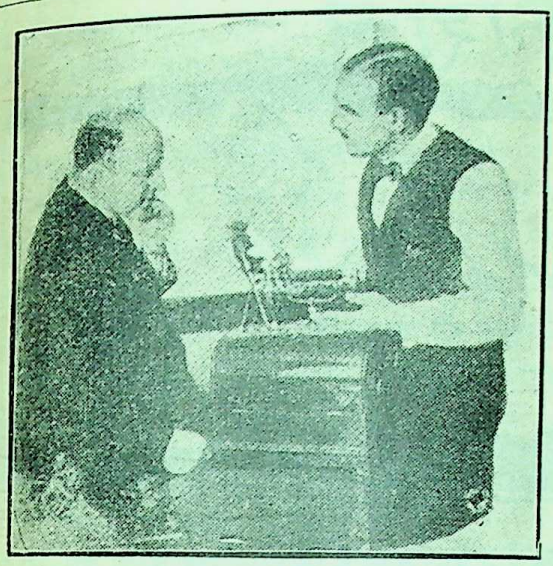

टेलीफ़ोन में दी हुई ख़बर लिखनेवाली मशीन

एक ऐसी मशीन का आविरकार किया है, जो आपकी अनुपस्थिति में टेलीफ़ोन की घंटी बजते ही रिसीवर को उठाकर, दूर पर बातचीत करनेवाले को सूचना दे देगा कि वह बोले, मशीन लिखने को तैयार है। ख़बर आते ही वह एक सुई से मशीन में लगे हुए काग़ज़ के खर्रे पर, जो इसी काम के लिये विशेष रूप से तैयार किया जाता है, उस ख़बर को लिख लेती है। मालिक के बाहर से लौटकर आने पर यह मशीन एक जीवित क्लर्क की भाँति सब ख़बरें क्रम से लिखी हुई सामने पेश कर देती है। प्रस्तुत चित्र में आविष्कर्ता महाशय एक आगंतुक को अपनी मशीन की करामातें और पुर्ज़े दिखाकर आश्चर्य-चकित कर रहे हैं। देखनेवाला दाँतों-तले उँगली न दाबे, तो क्या करे ?

रामनारायण मिश्र

मुफ़्त में यह जेब घड़ी लीजिए इनाम

और दाद के अंदर चुरचुराहट करनेवाले दाद के ऐसे दुःखदायी कीड़े भी इस दवा के लगाते ही मर जाते हैं। फिर वहाँ पर दाद होने का डर नहीं रहता है। इस मलहम में पारा आदि विषाक्त पदार्थ मिश्रित नहीं हैं। इसलिये लगाने से किसी तरह की जलन नहीं होती, बल्कि लगाते ही ठंडक और आराम मिलने लगता है। दाम १ शीशी ।=), इकट्ठी ६ शीशी मँगाने से १ सोने की स्लेट निबवाली फाउंटेन पेन मुफ़्त इनाम—८ शीशी मँगाने से १ बी जर्मन टाइमपीस मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥=) जुदा। १२ शीशी मँगाने से १ रेलवे रेग्युलेटर जेब घड़ी मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च ॥।≡) जुदा। २४ शीशी मँगाने से १ सुनहरी रिस्ट-वाच तस्मे-सहित मुफ़्त इनाम। डाक-ख़र्च १।) जुदा लगेगा।

आम के आम और गुठलियों के दाम—मुफ़्त में मँगा लो यह चार चीज़ें इनाम

१ ठंडा चश्मा गोगल
२ रेशमी हवाई चद्दर
३ रेलवे जेब घड़ी
४ सुनहरी रिस्टवाच

"मजलिसे हैरान केश तैल"

इस तैल को तैल न कह करके यदि पुष्पों का सार, सुगंध का भंडार भी कह दें, तो कुछ हर्ज नहीं है। क्योंकि इस तैल की शीशी का ढक्कन खोलते ही चारों तरफ सुगंधि फैल जाती है। मानों पारिजात के पुष्पों की अनेकों टोकरियाँ फैला दी गई हों। बस हवा का झकोरा लगते ही ऐसी सुमधुर सुगंधि आने लगती है जो राह चलते लोग भी लट्टू हो जाते हैं। ख़ास कर बालों को बढ़ाने और भ्रमर सरीखे काले लंबे चिकने बनाने में यह तैल एक ही है। दाम १ शीशी ॥।), ४ शीशी मँगाने से १ ठंडा चश्मा मुफ़्त इनाम, डाक-ख़र्च ॥।=) ६ शीशी मँगाने से १ रेशमी हवाई चद्दर मुफ़्त इनाम, डा० ख० १।) जुदा—८ शीशी मँगाने से १ रेलवे जेब घड़ी मुफ़्त डा० ख० १॥।) १२ शीशी मँगाने से १ रिस्टवाच मुफ़्त इनाम डा० ख० २)रु०

पता—जे० डी० पुरोहित ऐंड संस, पोस्टबॉक्स नं० [illegible], कलकत्ता (आफ़ीस नं० ७१ क्लाइव स्ट्रीट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. कृषि-कमीशन

(१)

वर्तमान वायसराय लार्ड इरविन जब भारतवर्ष में आए, तो उनके आदेश से एक शाही कृषि-कमीशन की नियुक्ति हुई। कारण यह बताया गया कि हमारे वर्तमान वायसराय इँगलैंड के सबसे बड़े कृषि-विशेषज्ञ हैं। उन्होंने इँगलैंड के कृषि-विभाग द्वारा अनेक सुधार किए हैं। वह यहाँ भी अनेक सुधार कर किसानों के दुःख दूर करने की उत्कट अभिलाषा रखते हैं। खेती के पशु-धन को वृद्धि के लिये वायसराय महोदय का वक्तव्य सरकारी कृषि-संबंधी अँगरेज़ी-मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसमें भी उन्होंने यही अभिलाषा प्रकट की है। इसके अतिरिक्त इस देश में पदार्पण करते समय वह कई गाँवों में भी गए थे, और उन्होंने कृषि-कमीशन से जनता को बड़ी आशा दिलाई थी। कमीशन ने बहुत समय उपरांत ९०० पृष्ठों का एक पोथा प्रकाशित किया। उसके तैयार करने में सरकार ने बहुत बड़ी रक़म भी ख़र्च की। सर गंगाराम भी इस कमीशन के सदस्य थे; पर दैव-योग से उनकी मृत्यु हो जाने के कारण कमीशन में भारतीय सदस्य तीन ही रह गए, जिनमें एक तो एक छोटे-से राज्य के राजा थे, और अन्य दो सज्जन थे श्रीयुत एल्० के० हैदर और श्रीयुत वी० एस्० कामठ। इनके संबंध में कहा जाता है कि इस विषय का ये कुछ भी ज्ञान नहीं रखते।

इस कमीशन ने पाँच मुख्य सिफ़ारिशें की हैं—

(१) कृषि की उन्नति

(२) कृषि की खोज के लिये धन

(३) गाँव

(४) गाँव के उद्योग-धंधे और मज़दूरी

(५) कृषकों का परिश्रम

इन बातों पर लक्ष्य रखते समय कमीशन ने सरकारी कृषि-विभागों के कार्य की प्रशंसा की है, और कहा है कि उनके कार्यक्षेत्र की वृद्धि होनी चाहिए। भारतवर्ष में खेती होनेवाली तमाम ज़मीन पर इन विभागों द्वारा निरीक्षण होना चाहिए। ये विभाग भारतवर्ष-भर के किसानों को खेतीबारी के संबंध में सलाह दें, और उनकी हर प्रकार से सहायता करें।

इस कमीशन ने स्पष्ट ही कहा है कि कृषि-विभागों का मुख्य काम अच्छी फ़सल बढ़ाना है; हलकी पैदावार का अत्यधिक होना ही ध्येय नहीं है। सरकारी सूचनाओं से यह भी पता चलता है कि किसानों ने अच्छी पैदावार बढ़ाने में कृषि-विभागों से सहायता ली है। यह बतलाया गया है कि ९०,००,००० एकड़ ज़मीन में विभिन्न फ़सलें ऊँची ज़ात की होती हैं। यद्यपि इतने बड़े देश में ज़मीन बहुत थोड़ी है, तथापि इसी प्रकार काम होता चला जाय, तो बहुत बड़ी आशा है। रुई, गेहूँ, चावल, पाट और मूँगफली की फ़सल में उन्नति हुई है। दाल और तेलहन की पैदावार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ऊँचे दरजे की हो, इसका प्रयत्न हो रहा है। बीज खेतों में अच्छा पड़ना चाहिए। छोटे-छोटे महाजन तो कभी किसानों को अच्छा बीज बोने के लिये देते ही नहीं हैं। अब यह काम कृषि-विभागों ने अपने हाथ में लिया है। वही किसानों को बीज बाँटते हैं। यदि बड़े-बड़े महाजन इस काम को हाथ में लें, तो देश-भर की पैदावार में अपूर्व उन्नति हो सकती है। उनके लिये यह बड़ा लाभदायक व्यवसाय है। कमीशन की यह सिफ़ारिश भी उचित जान पड़ती है कि किसानों के प्रचलित औज़ारों में ही सुधार करना लाभदायक है। नए औज़ारों की भरती न कर पुराने औज़ारों में सुधार करना सहल होगा। जो नए औज़ार किसान व्यवहार में लावें, वे भारत के ही बने होने चाहिए। भारतवर्ष के औज़ारों का व्यवहार करने से उनकी दुरुस्ती भी हो सकती है। कमीशन ने रेलवे के अधिकारियों से सिफ़ारिश की है कि वे किसानों के औज़ारों और कलों पर कम-से-कम किराया लेने की उदारता प्रकट करें। विलायत से आनेवाले कृषि के औज़ार और कलों पर कोई जकात नहीं लगती है; पर विदेशी लोहे पर भारी संरक्षण-जकात लगाई गई है, जिससे विदेशी लोहे से बननेवाले औज़ार इस देश में सस्ते नहीं पड़ते हैं। पर यह मामला जकात का होने के कारण कमीशन ने कोई सिफ़ारिश नहीं की। लेकिन इतना सब होते हुए कमीशन ने ज़मींदार और ताल्लुक़ेदारों के ज़ुल्म, सरकारी अफ़सरों के अत्याचार और सरकारी मालगुज़ारी के संबंध में चुप्पी-सी साध ली है। कमीशन की यह सिफ़ारिश बड़ी उपयोगी है कि बंबई और बरार-प्रांतों के समान समस्त प्रांतों में रैय्यतवारी प्रथा जारी कर दी जाय, बड़े-बड़े ज़मींदारों के पंजों से सहस्रों निरीह किसानों को मुक्त किया जाय, और साथ ही भारतवर्ष के सभी प्रांतों में मालगुज़ारी एकबारगी घटा दी जाय। किसानों की पैदावार के भाव पर कर न लगाकर उनकी वास्तविक आय पर ध्यान दिया जाय। उनके सब ख़र्च आदि काटकर एक तिहाई आमदनी सरकार लगान में वसूल कर सकती है; लगान लगाने का अधिकार प्रांतीय कौंसिलों को सौंप देना चाहिए। बंदोबस्त किसानों को पीस डालते हैं। इसका उचित निर्णय तो प्रांतीय कौंसिलें ही कर सकती हैं। प्रांतीय कौंसिलों से जो लगान वसूल होना तय हो, उसे ही सरकार वसूल करे, तो किसानों की उन्नति में बहुत बड़ा सुधार होगा; पर कमीशन ने इन असली बातों पर कुछ भी नहीं कहा। सहकार-मंडल का आंदोलन किसानों की वर्तमान परिस्थिति में क्या कर सकता है, इस पर कमीशन का कहना है कि उसे आशा है कि गाँव की जनता को कुचलनेवाला ऋण का भार संगठित सहकारी मंडलों की वृद्धि और किसानों के योग्यता पाने पर ही दूर होगा। किसान स्वयं ही अपने को योग्य बना सकते हैं। उन्हीं पर सारी ज़िम्मेदारी है। प्रत्येक उचित उपाय से उनमें मितव्ययिता पैदा करनी चाहिए। उन्हें यह चाहिए कि जो कुछ भी आमदनी हो, उसमें से कुछ बचाने का प्रयत्न करें। इससे फिर उन्हें दूसरों से पूँजी के लिये हाथ नहीं फैलाने पड़ेंगे। फिर सहकारी मंडल भी उनकी सहायता करेगा।

सहकारी मंडल (को-आपरेटिव सोसाइटीज़) पर कमीशन ने ख़ूब ज़ोर दिया है। हम भी इन्हें बहुत आवश्यक समझते हैं। पर ये मंडल तभी सफलता दे सकते हैं, जब सरकार लगान में उचित सुधार करे, और छोटे-छोटे किसानों को ज़मीन छिन जाने के भय से मुक्त कर दे। सहकारी मंडल ने इस देश में अभी तक बहुत कुछ काम किया है। रिपोर्ट से जाना जाता है कि १९२६-२७ में, ब्रिटिश-भारत में, ६७,००० एग्रीकल्चरल प्राइमरी सोसाइटीज़ थीं, जिनके २२,५०,००० से भी अधिक सदस्य थे। और, इन सोसाइटीज़ की पूँजी २५ करोड़ रुपए थी। अब तक तो और भी सोसाइटीज़ खुल गई होंगी। पर देखने से पता चलता है कि सभी प्रांतों में एक-सा काम नहीं हुआ है। सोसाइटीज़ की संख्या-वृद्धि होने पर भी उनका जितना चाहिए, उतना उपयोग नहीं हुआ है। कारण, सोसाइटीज़ के कार्यकर्ताओं ने पूरी निगरानी और देखरेख नहीं रक्खी, और सभी सदस्यों ने अपने कर्तव्य को भली भाँति नहीं पहचाना। यदि कोई काररवाई की गई, तो सदस्यों ने अपना अपमान समझा, और क्रोध प्रकट किया। इसका अंत सिवा विनाश के क्या हो सकता है। इन्हीं सब कारणों से, इस आंदोलन से, जितनी सहायता किसानों को मिलनी चाहिए थी, उससे वे वंचित रहे।

जी० एस० पथिक

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ तिल

प्रतिवर्ष प्रचुर परिमाण में हमारे देश से तिल और तिल के तेल की रफ़्तनी विदेशों को होती है। तिल के तेल का उपयोग नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्यों के तैयार करने में किया जाता है। हमारे देश में तिल का व्यवसाय भी खूब प्रचलित है। अतएव तिल की खेती का विशेष प्रचार होने से इसके द्वारा पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है। इसके लिये विशेष परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है। इस देश में तिल दो प्रकार का पाया जाता है—काला और सफ़ेद। तिल की खेती के योग्य भूमि तैयार करने में किसी खाद की ज़रूरत नहीं पड़ती, बल्कि अधिक उर्वरा भूमि होने से इसकी फ़सल अच्छी नहीं होती। पहले भूमि को अच्छी तरह से हल से जोत देना चाहिए, और तब आश्विन-मास के शेष भाग में इसका बीज बोना चाहिए। बीज बोने पर इस बात का ध्यान रखना होगा कि जिस खेत में बीज बोया गया है, वह बिलकुल सूख न जाय, और साथ ही इसके इस बात पर भी लक्ष्य रखना होगा कि जिस दिन बीज बोया जाय, उस दिन वृष्टि की संभावना न हो। बोने के एक दिन पूर्व रात में बीज को पानी में भींगने देना चाहिए, और खेत में दूर-दूर बोना चाहिए। अधिक पास-पास बीज बोने से वृक्ष अच्छी तरह नहीं बढ़ पाते, और फ़सल भी अच्छी नहीं होती। बीज बोने के बाद सात-आठ दिन में अंकुर उग आता है। इस समय यदि वर्षा न हो, तो जल से इसे सींचना चाहिए। एक बीघे में एक सेर से डेढ़ सेर तक बीज लगता है। फाल्गुन-मास में तिल पक जाता है, और तब इसके वृक्ष को उखाड़कर सूखने देना चाहिए। फिर झाड़कर तिल बाहर कर लेना चाहिए। ज़मीन अच्छी होने पर प्रति बीघे ६ से ८ मन तक तिल पैदा होता है। इसके बाद तिल से तेल तैयार किया जाता है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

कौन-सी बीमारी आपको कष्ट देती है ?

संपूर्ण विवरण के साथ "ढाका आयुर्वेदिक फार्मेसी, ८, ८।१ आरमीनियन स्ट्रीट, ढाका" को लिख भेजिए। विना संकोच के सभी बातें लिख भेजिए ; क्योंकि आपका पत्र बिलकुल गोप्य रहेगा, और रोग-व्यवस्था मुफ़्त दी जायगी।

दी ढाका आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटेड

संपूर्ण भारत में सर्वोपरि, सबसे सस्ती और सबसे अधिक विश्वास-योग्य फ़ैक्टरी है, जिसमें सभी ओषधियाँ पूर्णतः ऋषियों के आयुर्वेदिक विधान के अनुसार तैयार की जाती हैं।

आज ही लिखिए

हम आपको स्वस्थ और प्रसन्न चाहते हैं

अश्वगंध मकरध्वज गोलियाँ
क्षीणता और धातु संबंधी कमज़ोरी में, मूल्य १) शीशी

स्वप्न-शांति-वटी
स्वप्न-दोष को नाश करने के लिये एक अचूक औषध है। मूल्य ॥=) शीशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैंक

रुपयों में व्यापार करनेवाली संस्था को बैंक कहते हैं। बैंक आफ़ इँगलैंड के स्थापित होने के पहले इँगलैंड में देहाती जनता अपना फालतू पैसा सुनारों के पास जमा करती थी। ये सुनार लोग पैसा जमा करनेवालों को रसीद देते थे। ये रसीदें गोल्ड-स्मिथ-नोट्स कहलाती थीं। इन रसीदों का पैसा बाज़ार में मिल जाता था। सुनार लोग इस फालतू पैसे को ऋणियों को ज़्यादा सूद पर क़र्ज़ देते थे। पीछे से नागरिक व्यापारी लोग इस व्यवसाय को करने लगे, और प्राइवेट बैंकर कहलाने लगे। इँगलैंड की तरह भारतवर्ष में भी बैंकों के खुलने के पेश्तर महाजन लोग बैंकिंग का काम और महाजनी करते थे। बैंकिंग और महाजनी में केवल यही भेद था कि बैंक जनता से सूद पर रुपया क़र्ज़ लेकर सूद पर क़र्ज़ देते हैं, परंतु महाजन क़र्ज़ नहीं लेते थे। वे अपने तथा दूसरों के बिना ब्याज अमानत में रक्खे हुए रुपयों को सूद पर क़र्ज़ देते थे। वर्तमान समय में महाजन लोग भी अमानत पर सूद देने लगे हैं।

बैंकों का कार्य, भारत में, पहलेपहल कलकत्ते में विदेशी व्यापारियों ने आरंभ किया था। बैंकों का काम रुपया उधार देना, और लेना, हुंडी लिखना और लिखाना, सरकार को आर्थिक सहायता देना और नोट चलाना है। बैंक ग्राहकों के लिये सूदी या बिना सूदी चलतू और मुद्दती अमानत के खाते खोलकर रुपया उधार लेते हैं। ये ग्राहक बहुधा ऐसे लोग होते हैं, जो अपनी बचत को किसी आमदनी के कार्य में नहीं लगा सकते या लगाना नहीं चाहते हैं, और ज़मीन, मकान वा दीगर जायदाद—सोना, चाँदी, ज़ेवर, गवर्नमेंट प्रामिसरी नोट, लिमिटेड कंपनियों के हिस्से, गवर्नमेंट सिक्यूरिटीज़ या दूसरे प्रकार की चीज़ों—की ज़मानत पर उन ग्राहकों को कुछ अधिक सूद पर उधार देते हैं, जो क़र्ज़ लिए हुए धन से कोई फ़ायदेमंद रोज़गार करना चाहते हों। ग्राहकों के लिये हुंडी लिखते और ख़रीदते हैं, और उनके लिये आढ़त का काम करते हैं। बैंकों को ब्याज, आढ़त और हुंडावन से आमदनी होती है।

बैंक कई प्रकार के होते हैं। जैसे—ज्वाइंट-स्टाक बैंक, पोस्ट-आफिस-सेविंग बैंक, एक्सचेंज बैंक, इम्पीरियल बैंक, कोआपरेटिव सेंट्रलबैंक और विलेज कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज़। ज्वाइंट स्टाक मिली हुई पूँजीको कहतेहैं। इस लिये ज्वाइंट स्टाक बैंक वह संस्था है, जिसमें पैसेवाले लोगों ने मुनाफ़ा उठाने की ग़रज़ से अपनी पूँजी व्यापार करने के लिये एकत्र की है। बैंकों के क़ायदे के अनुसार, ग्राहकों को रुपया उठाने के समय अथवा दूसरों को दिलाने के लिये चेक का उपयोग करना पड़ता है; क्योंकि बैंक चेक ही से रुपया देते हैं। चेक एक प्रकार का आज्ञापत्र है। चेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा रुपया देने से बैंक को जोखिम का अंदेशा नहीं रहता है; क्योंकि जाली चेक होने से अथवा उसमें किसी प्रकार की लिखने की ग़लती होने से बैंक उसका रुपया देने को बाध्य नहीं किया जा सकता है, और न हरजाने का देनदार हो सकता है। सुबीते के लिये तथा धोखेवालों से बचने के लिये बैंक चेक-फ़ार्म छपाकर ग्राहकों को विना मूल्य देता है और उनका हिसाब एक किताब में रखता है। खाता खोलते समय बैंक ग्राहकों से सही करा लेता है, और वही सही के दस्तख़तों वाले चेक से रुपया देने का ज़िम्मेदार रहता है। चेक दो प्रकार के होते हैं—एक बेयरर और दूसरा आर्डर बेयरर। चेक की रक़म चेक को बैंक में पेश करनेवाले को दी जाती है, परंतु आर्डर के चेक पर उस धनी के नाम बेचान हुए विना रक़म नहीं दी जाती है। ग्राहकों को चेक फ़ार्म पर तारीख़, रुपया मिलनेवाले का नाम शुद्ध तथा स्पष्ट रक़म अंकों और अक्षरों में तथा अपने हस्ताक्षर स्पष्ट अक्षरों में लिखने चाहिए।

पोस्ट-आफ़िस-सेविंग बैंक छोटी आमदनीवालों का पैसा सुरक्षित रीति से जमा करने के लिये हिंदुस्थान में खोले गए हैं।

एक्सचेंज-बैंक—एक्सचेंज-बैंक भारत के व्यापारियों का पैसा विदेशी व्यापारियों को और विदेशी व्यापारियों का पैसा भारत में हुंडी द्वारा भेजने का कार्य करते हैं। ये बैंक विदेशी व्यापार को सहायता पहुँचाते हैं।

इंपीरियल बैंक—इंपीरियल बैंक की स्थापना बंगाल, बंबई और मदरास के प्रेसीडेंसी-बैंकों के मेल से की गई है। इंपीरियल बैंक लंबी मुद्दत के लिये क़र्ज़ नहीं दे सकता है। दो भले आदमियों के हस्ताक्षर होने पर किसी की हुंडी ले सकता है, लेकिन स्थायी संपत्ति की ज़मानत पर क़र्ज़ नहीं दे सकता। वह ब्रिटिश और भारत सरकार की सिक्युरिटियों, रेलवे के हिस्सों और भारत की म्युनिसिपैलिटियों तथा पोर्ट-ट्रस्टों के डिबेंचरों की ज़मानत पर क़र्ज़ दे सकता है, और सोना-चाँदी ख़रीद और बेच सकता है।

कोआपरेटिव (सहकारी) बैंक वह संस्था है, जो किसानों के फ़ायदे के लिये बड़ी-बड़ी रक़में जमा करती है, किसानों को ग़ैर-वाजिब ब्याज देने से तथा पराधीनता से बचाती है, उनमें विद्या-प्रचार करती है, उन्हें व्यापार की ओर उत्साहित होने की शिक्षा देती और उनमें परमावश्यक सहयोग को बढ़ाती है।

कोआपरेटिव बैंक एक पारस्परिक संस्था है, जिसके जन्मदाता, कार्यकर्ता तथा अधिकारी सब साधारण वर्ग के लोग रहते हैं। यह संस्था सबसे प्रथम उन लोगों की सहायता करती है, जिन्हें सहायता न मिलने के कारण साहूकारों के चंगुल में फँसना पड़ता है। यह संस्था ग़रीब आदमियों के माल को ख़रीदने व फ़रोख़्त करने के ख़याल से अच्छे स्थापित बैंकों की बराबरी करने की कोशिश करती है।

ज्वाइंट स्टाक बैंक और कोआपरेटिव बैंक में भेद

ज्वाइंट-स्टाक बैंक	कोआपरेटिव बैंक
(१) यह धनवान् आदमियों का बैंक है। इनमें बड़ी-बड़ी रक़में जमा की जाती और क़र्ज़ दी जाती हैं।	(१) ग़रीब आदमियों का बैंक है। थोड़ा-थोड़ा रुपया जमा किया जाता है, और छोटे-छोटे क़र्ज़ दिए जाते हैं।
(२) हर किसी को, जिस पर मैनेजर का भरोसा होता है, क़र्ज़ दिया जाता है।	(२) रजिस्टर्ड सहकारी समितियों के सिवा और किसी को क़र्ज़ नहीं दिया जाता।
(३) साहूकार और ऋणी, दोनों को फ़ायदा नहीं होता; क़र्ज़ लेनेवाले को नुक़सान होता है; बैंक को फ़ायदा होता है।	(३) क़र्ज़ देनेवाले और क़र्ज़ लेनेवाले, दोनों को फ़ायदा होता है; क्योंकि क़र्ज़ लेनेवाली समितियाँ बैंक की साझेदार रहती हैं।
(४) बैंक का कारोबार सुचारु रीति से चलाने के लिये एक निपुण मैनेजर की आवश्यकता रहती है, जिसको एक बड़ा वेतन देना पड़ता है।	(४) एक मामूली शिक्षित उद्यमी आदमी पूर्ण संतुष्टता के साथ काम कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वाइंट स्टाक बैंक	कोआपरेटिव बैंक
(५) क़र्ज़ देने के सिवा कई प्रकार के व्यापारिक धंधे करने से बैंक को कमीशन, बट्टे, हुंडावन और सूद से आमदनी होती है।	(५) दिए हुए क़र्ज़ पर सूद ही आमदनी का एक ज़रिया है; क्योंकि बैंक केवल क़र्ज़ देने का काम करता है।
(६) इसकी रजिस्ट्री कंपनी-ऐक्ट के अनुसार हुई है।	(६) इसकी रजिस्ट्री कोआपरेटिव सोसाइटीज़-ऐक्ट के अनुसार हुई है।

भारत के सेंट्रल कोआपरेटिव बैंक निम्न-लिखित श्रेणी में विभक्त किए जा सकते हैं—(१) वे बैंक, जिनके सभासद कुछ चुने हुए लोग हो सकते हैं, (२) जिनके सभासद सहकारी समितियाँ ही हो सकती हैं, और (३) जिनके सभासद चुने हुए लोग और सहकारी समितियाँ, दोनों रहते हैं। तीसरे दरजे के बैंकों में एक निश्चित रक़म, जो बहुधा ज़्यादा परिमाण में रहती है, रजिस्टर्ड सोसाइटियों को साझेदार बनाने के लिये अलग सुरक्षित रक्खी जाती है। इनके प्रतिनिधि डायरेक्टरों में ज़्यादा रहते हैं। यही बैंक भारतवर्ष की वर्तमान दशा में सबसे ज़्यादा हितकारी है। दूसरे दरजे के बैंक बैंकिंग यूनियन कहलाते हैं, इनको साधारण रीति से सहयोगी संस्था कह सकते हैं; क्योंकि इनमें सेंट्रल बैंक और सोसाइटियों को, बहैसियत साहूकार और क़र्ज़दार, अपने-अपने निजी फ़ायदे के लिये झगड़ा करने का अवसर नहीं है। इन संस्थाओं का क्षेत्र बहुत थोड़ा रहता है, और इनमें व्यक्तिगत साझेदारी नहीं रहती है, यही इसमें और दूसरी सहकारी संस्थाओं में अंतर है। इस तरह के बैंक का इंतिज़ाम करने में बहुत कम ख़र्च लगता है; क्योंकि इनमें देखरेख का काम बहुत ही कम रहता है। इनको सुचारु रीति से चलाने के लिये निपुण आदमियों की आवश्यकता है। जहाँ पर लोग सच्चे सहयोगी रंग से रँगे हुए हैं, वहीं इसका प्रचार किया जाना चाहिए।

सेंट्रल बैंक का काम करने का क्षेत्र बहुधा तहसील या ज़िले के बराबर होता है। एक सेंट्रल बैंक सुचारु रीति से २०० या २५० सहकारी समितियों से कारोबार कर सकता है। सेंट्रल बैंक अपनी काम चलाने की पूँजी हिस्सों से, अमानतों से, क़र्ज़ से और रिज़र्व फंड से एकत्र करते हैं। हिस्सों की पूँजी जुदे-जुदे हिस्सेदारों से और मातहत सहकारी समितियों से वसूल की जाती है। हिस्सों की क़ीमत १०) से ५००) तक रहती है। मातहत सभाओं के हिस्सों की क़ीमत की अपेक्षा जुदे-जुदे आदमियों के हिस्सों की दर्शनी क़ीमत एक ही बैंक में ज़्यादा रहती है। कोआपरेटिव सोसाइटीज़-ऐक्ट, सन् १९१२ की दफ़ा ५ के मुताबिक़ कोई भी जुदा आदमी किसी भी सभा (बैंक) की कुल हिस्सों की पूँजी के एक पंचमांश से ज़्यादा के हिस्से नहीं ख़रीद सकता, या किसी भी तरह ५०,००) से ज़्यादा के हिस्से, सिवा स्थानीय सरकार की ख़ास मंज़ूरी लिए बिना, नहीं ख़रीद सकता। मेंबरों के लिये राय देने के जुदे-जुदे तरीक़े जुदे-जुदे प्रांतों में हैं। किसी प्रांत में प्रत्येक हिस्से पर एक राय है, कहीं प्रत्येक हिस्सेदार को एक वोट रहती है, कहीं राय देने का क्रम हिस्से की संख्या के मुताबिक़ सावधानी से रक्खा गया है।

बैंक अपने मेंबरों से अथवा बाहरी लोगों से अमानत लेता है। जितनी ज़्यादा लंबी अवधि जमा करने की होती है, उतनी ही ऊँची दर से उस रक़म पर क्रमशः सूद दिया जाता है। अमानत जमा करने पर जमा करने वाले को अमानत-रसीद मिलती है। इस रसीद में जमा करनेवाले का नाम, रक़म, ब्याज की दर, अमानत का समय आदि स्पष्ट शब्दों में लिखा जाता है। अमानत-काल पूरा होने पर यह रसीद लौटाकर रुपया अथवा नई रसीद अमानतदार को मिलती है।

बैंक अपने प्रांतीय सहकारी बैंक अथवा ज्वाइंट स्टाक बैंक या बैंकरों से खाता खोलकर आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर क़र्ज़ लेता है। ये बैंक रजिस्टर्ड सहकारी समितियों को क़र्ज़ देने के सिवा कोई दूसरा व्यवसाय नहीं कर सकते हैं। ख़ालिस मुनाफ़े में से पूँजी बढ़ाने के लिये या आवश्यकता पड़ने पर जल्द रुपया मिलने के लिये तथा दूसरी आवश्यकताओं को पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिये अलग रक्खी हुई रक़म को रिज़र्व फ़ंड कहते हैं।

विलेज-कोआपरेटिव क्रेडिट-सोसाइटीज़ (देहाती सहकारी साख-समितियाँ) अपने उन सभासदों को, जिनको अलग-अलग निज की साख के बल पर, वाजिब शर्तों पर, आवश्यक खेती के लिये काफ़ी ऋण नहीं मिलता है, रक़म देती हैं। ये समितियाँ अपने मेंबरों को उनकी संगठित अपरिमिति (ज़िम्मेदारी) देनदारी की साख पर ऋण देती हैं, अपने मेंबरों के लिये अपरिमिति ज़मानत की साख के बल पर स्थानीय सहानुभूति रखनेवालों से अमानतें तथा सहकारी बैंकों से क़र्ज़ लेती हैं, और अपने मेंबरों को उनकी मनकूला जायदाद रेहन करके या एक-दो ज़मानतदारों की ज़मानत पर क़र्ज़ देती हैं। सभासदों को अपनी समिति के मामूली हिस्से ख़रीदने पड़ते हैं। इन हिस्सों की अदाई क़िस्तबंदी से की जाती है। समिति की निज की पूँजी बनाने के लिये—जिससे समिति की हैसियत बढ़े—और सभासदों को किफ़ायतशारी सिखाने के लिये सभासदों से हिस्से मोल लिवाए जाते हैं। परिश्रमी, ईमानदार, अच्छी चाल-चलनवाला, उस मौज़े या पड़ोस के गाँव का रहनेवाला बालिग़—जो अपने घर का कर्ता हो, जिसके पास आमदनी का ज़रिया हो, और जो अपने हक़ और ज़िम्मेदारी समझता और सहकारी मुख्य सिद्धांतों को जानता हो—आदमी समिति का सभासद हो सकता है। क़ायदे के अनुसार एक समिति में सभासदों की संख्या कम-से-कम १० होना चाहिए। सहकारी साख ईमानदारी पर निर्भर है, इसलिये ईमानदारी सहकारी साख की जड़ है। विना परिश्रम किए सभासद अदाई की इच्छा रखते हुए भी ऋण अदा नहीं कर सकते। इसी प्रकार अच्छी चाल-चलन का होना बड़ा आवश्यक है। क्यों? कोई आदमी ईमानदार और परिश्रमी भी हो, तो भी नैतिक धैर्य की कमी होने से वह फिर लालच-वश ख़र्च करने लगता है, क़र्ज़ की अदाई के लिये बचत नहीं करता है, परिश्रम से की हुई कमाई का अपव्यय करता और अदाई की मंशा रहने पर भी ऋण नहीं अदा कर सकता है। समिति की सफलता के लिये सभासदों को परस्पर एक दूसरे पर नज़र रखने की बड़ी आवश्यकता रहती है और जब तक सभासद एक ही गाँव के रहनेवाले न हों, तब तक आपस में देखभाल और निरीक्षण का कार्य भली भाँति नहीं हो सकता है। सभासदों के आम जलसे को कुल अधिकार रहते हैं। सभासदों का भरती करना, अलग करना, साल के अंदर ऋण लेने या देने की हद तथा पंचायत मुक़र्रर करना इत्यादि बड़े-बड़े कुल काम सभासद आम जलसे में करते हैं; परंतु साधारण कार्य—जैसे सभासदों को उनके उत्पादक तथा आवश्यक कार्यों के लिये क़र्ज़ देना और समय पर ऋण वसूल करना इत्यादि—पंचायत करती है। समिति का मुनाफ़ा उसके दिए हुए और लिए हुए क़र्ज़ के सूद की दर पर निर्भर रहता है। मुनाफ़े में से एक चौथाई समिति के बचत फ़ंड में रहता है, थोड़ा हिस्सों की पूँजी पर डिवीडेंड में दिया जाता है। कुछ हिस्सा फ़ीसदी सार्वजनिक कार्यों में लगाया जा सकता है, और बाक़ी मुनाफ़ा दूसरे फंडों में जाता है। रिज़र्व फ़ंड का कुछ (बचत फ़ंड) रजिस्ट्रार के आदेशानुसार, किसी सुरक्षित संस्था में, कुछ समिति की पूँजी में और कुछ सहकारी सेंट्रल बैंक में, जिससे समिति क़र्ज़ लेती है, जमा किया जाता है, जिससे समिति का स्थायित्व ज़ाहिर हो और सेंट्रल बैंक की आर्थिक स्थिति दृढ़ हो। इन समितियों का उद्देश्य अपने सभासदों की आर्थिक और नैतिक उन्नति करने का है।

रामकृष्ण तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. आज

निर्जन कुटिया में रहता हूँ त्याग विश्व का हाहाकार,
किसे बुलाऊँ ?—मुझ छोटे का है सूना छोटा संसार।
प्राण फँसे हैं लघु परिचय का अतिघन फैल रहा है जाल,
कण-कण के मोहक स्वर में सुस्मृति का नाच रहा कंकाल।
सुखविरहित जीवन में कब तक हिलमिलकर ढो सकता भार,
प्रकृत रुदन कृत्रिम हँसने का जब करने लगता बेगार।
कब तक छिपती मेरी छलना होकर वह परदे में मौन,
खोकर निज विश्वास जगत के अंतर से—रह सकता कौन ?
दीवाने की करुण-कहानी से किसको होगा अनुराग,
कौन जलावेगा निज नंदन अपने कर से लाकर आग ?
है जीवन के क्षुब्ध अजिर में झुलस रहा पागल चुपचाप,
किसे सुनावे, क्षितिज चरण-सा बढ़ता जाता है संताप !!
कैसे उलझी सुलझ सकेगी थककर बैठ गया मैं हार,
जीवन की निराश घड़ियों का होता है कितना विस्तार !!
छोड़ रही है माया ममता अंतस्तल का चिर-अधिवास !
क्या आधार रहेगा जीवन का उजड़े दुखिया के पास ?

श्रीकैलासपति त्रिपाठी

× × ×

२. चोटी और दाढ़ी

हिंदुओं में जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अंत्यज, सबके लिये शिखा रखना आवश्यक है, लाज़िमी है और इसका रखना अनादिकाल से चला आता है—चोटी रखना धर्म और न रखना पाप है—उसी तरह मुसलमानों के लिये दाढ़ी की महिमा है। नहीं कहा जा सकता कि मुसलमानों की पैदायश से पूर्व पहले यहूदी और फिर ईसाई दाढ़ी को कैसा समझते थे और अब उनकी बाइबिल प्रभृति धर्म-पुस्तकों में दाढ़ी के विषय में क्या आज्ञा है ? किंतु इसमें संदेह नहीं कि दाढ़ी का आविष्कार अथवा प्रचार मुसलमान-मत के साथ-साथ जारी हुआ है। पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के दौर-दौरे ने चाहे मुसलमानों का कट्टरपन बढ़ाया है, किंतु मज़हबी रिवाजों के पालन करने में वे लोग भी ढीले पड़ते जा रहे हैं। मुल्लाओं और मौलवियों को छोड़कर पढ़े-लिखे मुसलमानों में अब दाढ़ी मुड़ाना फ़ैशन होता जा रहा है। वही क्यों, यह भी फ़ैशन में दाख़िल होता जा रहा है कि दाढ़ी को सफ़ाचट्ट कराने के साथ ही मूछों को भी या तो साफ़ जवाब दे दें अथवा अधकट्टी रक्खें। ख़ैर, मुसलमानों के रिवाज से इस लेख का विशेष संबंध नहीं।

मुझे यहाँ विचार करना है हिंदुओं की दाढ़ी के लिये। कोई तीस-पैंतीस साल पहले की बात होगी। मेरे बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने के पूर्व का ज़िक्र है। मैं उन दिनों बूँदी-राज्य के तोशाख़ाने का मैनेजर था। राज्य के यावत् कामों में जो कपड़ा ख़र्च होता था, वह राज्य के द्रव्य से मेरे ही हाथों से होता था, और उसकी ख़रीद करते थे एक मुसलमान महाशय। उनके पास लिखने-पढ़ने के कार्य पर एक लाला कारकुन थे। लालाजी के दाढ़ी थी और चोटी भी। लालाजी बड़े सज्जन थे और सरलता की भी उनमें पराकाष्ठा थी। मियाँ साहब प्रायः उनसे मज़ाक किया करते और वह जवाब देने में असमर्थ होकर खिसियाकर रह जाते थे। एक दिन उनकी दाढ़ी का मज़ाक़ हुआ। मैंने कहा—"हिंदू स्वर्ग ऊपर मानते हैं और मुसलमान इसी भूतल पर। अंत समय में इनको हिंदू समझकर भगवान् के पार्षद इन्हें चोटी पकड़कर ऊपर की ओर खींचेंगे और मुसलमान फ़रिश्ते इन्हें दाढ़ी से मुसलमान मानकर नीचे को। जो हिंदू दाढ़ी और चोटी, दोनों रखते हैं, उनकी यह दशा होती है।" मेरा प्रयोजन यही था कि हिंदुओं को दाढ़ी न रखना चाहिए। पुराने ज़माने में ऋषि-मुनियों के पंचकेशी रखने में दाढ़ी के बाल अवश्य बढ़ जाया करते थे; किंतु इस तरह दाढ़ी का फ़ैशन किसी पुराण या इतिहास में देखने में नहीं आया। दाढ़ी का प्रचार हिंदुओं में मुसलमानों की देखादेखी हुआ है और सो भी धीरे-धीरे। पुराने-पुराने चित्रों—बूँदी-राजघराने के राजाओं के चित्रों—में पाया जाता है कि पहले दोनों कानों के और कनपटी के नीचे के बाल बढ़ाकर ठोडी के पास, होठों के नीचे, एक छोटी लाइन छोड़ा करते थे। धीरे-धीरे वह आदत सकड़ी की जाने लगी, और अंत में दोनों ओर की दाढ़ी पास-पास आ पहुँची। हाँ, अब तक के रिवाज में मुसलमानों से अपने को अलग करने केलिये दोनों दाढ़ियों के मध्य अस्तुरे से बाल काटकर एक बहुत ही पतली-सी पगदंडी अवश्य रक्खी जाती है, किंतु अब धीरे-धीरे दाढ़ी का रिवाज घटता जा रहा है। और, एक दिन, अवश्य ही, ऐसा आवेगा कि क्या हिंदुओं में और क्या मुसलमानों में दाढ़ी का चलन कहानी रह जायगा। अथवा चित्रों से पता लगेगा कि शाही ज़माने में हिंदू भी मुसलमान-बादशाहों की ख़ुशामद करने के लिये दाढ़ी रखने लगे थे।

यद्यपि इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि हिंदुओं के यावत् रिवाज विज्ञान-मूलक हैं। आस्तिक विद्वान् हिंदू पता लगावें कि चोटी रखने में क्या विज्ञान है, तो अच्छी बात है। आजकल के पढ़े-लिखे हिंदुओं में आस्था उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है, क्योंकि अब हमारा यही नियम है कि पहले हम अपनी सब पुरानी बातों को वाहियात समझते हैं; किंतु जब हमारे पश्चिमी गुरु उनमें विज्ञान बतलाते हैं, तब हम अवश्य उन्हें मानते और उनकी प्रशंसा के ढोल पीटने लगते हैं। किंतु मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो स्नान करने के अनंतर भोजन करने से सुस्ती छुड़ाते और लोटा-भर पानी पीने के अनंतर आचमन करने से गले का कफ छुड़ाया करते हैं।

हाँ, यह अवश्य है कि शिखा रखने का रिवाज अनादिकाल से चला आता है। चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा मेहतर—प्रत्येक हिंदू के लिये आवश्यक है—उसका धर्म है कि वह शिखा रक्खे। थोड़े बंगालियों को छोड़कर अब भी इसका प्रचार उसी दृढ़ता से है कि बिना चोटी के हिंदू नहीं रह सकता। बंगालियों ने अपनी चोटियाँ कब से कटा डालीं अथवा उनमें से इसका लोप क्योंकर हुआ, सो बतलाना इतिहास के खोजियों का काम है। संभव है कि मुसलमानों के अत्याचार से यह दशा हुई हो। बंगालियों को छोड़कर समस्त हिंदू-जनता चोटी रखती है और अँगरेज़ी पढ़े-लिखे विद्वानों में से जो लोग चोटी से शर्माते हैं अथवा जिनके साहब बहादुर बनने में चोटी विघातक समझी जाती है, वे चार बाल अवश्य ही बड़े रखकर बड़े-बूढ़ों की नाराज़गी से बच जाया करते हैं। बहुत वर्षों की बात है। काला-काँकर-नरेश परम देश-हितैषी स्वर्गीय राजा रामपालसिंहजी (अत्रभवान्) विलायत जाते समय मार्ग में पुरानी इमारतें देखने की इच्छा से किसी मसजिद में गए। अत्रभवान् और उनके समस्त साथी हैट, बूट और कोट से लैस थे। मुजावर के कहते ही इन्होंने फ़ौरन् अपने-अपने हैट उतारकर हाथ में ले लिए। उनके साथ एक वसंतसिंह साहब भी थे। इनके हैट के नीचे चोटी छिपी हुई थी। यह टोपी उतारने में झेंपे। राजा साहब ने अपने 'हिंदुस्थान' में अपना यात्रा-वर्णन प्रकाशित करते समय इस झेंप का बड़ा मज़ाक़ उड़ाया था।

कुछ भी हो, किंतु हिंदू-समाज में चाहे वह सनातन-धर्मावलंबी हो अथवा आर्य-समाजी, शिखा रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है। बिना शिखा-बंधन के कोई भी व्यक्ति वेद-मंत्रों के उच्चारण के साथ संध्या-वंदनादि धार्मिक कर्म करने का अधिकारी नहीं हो सकता। इतिहास इसकी साक्षी दे रहा है कि तपस्वी विष्णु-गुप्त चाणक्य ने नंदवंश का नाश करने की प्रतिज्ञा करते समय अपनी शिखा की गाँठ खोली थी और प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर बाँधी थी। इसका प्रयोजन यही था कि जब तक मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन कर, नंदवंश का विनाश करने में कृतकार्य न होऊँगा, कर्मकांड का अधिकारी नहीं। और, संध्या-वंदनादि उपासना अमुक-अमुक दिनों तक न करने से ब्राह्मण की शूद्र संज्ञा हो जाया करती है। ऐसे बड़े विद्वान् की इस प्रतिज्ञा से हिंदुओं में शिखा रखने का जितना महत्त्व है, वह आँखों के सामने आ जाता है। इससे सिद्ध है कि हिंदू-मात्र को शिखा अवश्य रखना चाहिए, और सदा उसकी गाँठ बँधी रहना आवश्यक है। हाँ, शायद दो-एक समय ऐसे भी हैं, जिनमें चोटी की गाँठ खुली रखने की आज्ञा है—एक भोजन के समय और दूसरे मैथुन के समय। इन बातों से वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ़नेवाले महाशय लाभ उठा सकते हैं।

इतना तो निश्चय है ही कि चोटी इतनी लंबी हो, जिसकी गाँठ बँध सके। गाँठ तीन आरे देकर बाँधी जाय। यह नियम द्विजों के लिये है और सिर के ऊपर उसकी गोलाई इतनी होना आवश्यक है, जितना स्थान गाय के खुर से ढँक सके।

रिवाज पुराना नहीं है। मुसलमानों के शासन में जब से हिंदुओं में दाढ़ी का रिवाज आरंभ हुआ, पुराने चित्रों से साबित होता है कि चोटी के सिवा तमाम सिर मुँड़ाया जाता था। हाल के ज़माने में भी स्वर्गीय महादेव गोविंद रानाडे और लोकमान्य तिलक-जैसे अँगरेज़ी के धुरंधर विद्वान् भी सिर पर गोक्षुर के बराबर शिखा और शेष माथा घुटा हुआ रखते थे। किंतु शिखा का महत्त्व और उसकी आवश्यकता को न समझकर आजकल के शिक्षित और अर्द्धशिक्षित हिंदू चोटी रखते हुए लज्जित होते हैं। लोक-लज्जा से वे भले ही दो-पाँच बाल चोटी की जगह के बड़े रख लें, किंतु महिलाओं की-सी माँगें बनाने के लिये उनके माथे पर एलबर्ट फ़ैशन अवश्य होना चाहिए। यह रिवाज आज-कल देशव्यापी होता जा रहा है। साहब बहादुर बनने के लिये अँगरेज़ी शिक्षितों की देखादेखी बिना पढ़े ढोर भी उनकी नक़ल करते हैं। और, ज़माना पास आता जाता है, जिसमें लोग शिखा रखने के लिये अपने बड़े-बूढ़ों की हँसी उड़ाया करेंगे।

इस नए फ़ैशन ने केवल शिखा को ही इस तरह मुस्तफ़ी होने पर लाचार किया हो, सो नहीं; किंतु अब मूछें रखने में भी लोगों को अपनी प्राणप्यारियों के नाराज़ होने का ख़याल होने लगा है। लार्ड कर्ज़न सच पूछो, तो हिंदुओं की मूछें अपने साथ ले गए। सिर के बाल रखना और मूछें मुड़ाना 'कर्जोनियन' फ़ैशन है, और शिक्षितों की मनुष्य-गणना में आधे के लगभग मुछमुंडे निकलेंगे। हाल ही में एक हिंदी-मासिक पत्र के विशेषांक में हिंदी-लेखकों के चित्र छपे थे। मैंने उन्हें गिनकर ही यह परिणाम निकाला है। मदरास-प्रांत के विषय में मैं नहीं कहता, किंतु अन्य प्रांतों में अग्निहोत्री ब्राह्मण और हिजड़ों के सिवा सब मूछें रखते थे। मूछ मर्दमी का चिह्न है, और मूछों की लाज से ही मनुष्य हारने में शर्माता है। एक-एक मूछ के बाल के लिये लाख-लाख रुपया पुरानी कहावत है। फिर मैं नहीं कह सकता कि उधर सिर पर एलबर्ट फ़ैशन के बालों की माँगें और इधर सफ़ाचट मुँह हमारे शिक्षित समाज में स्त्रीत्व ला रहे हैं या नहीं। इसका विचार उन महाशयों को करना चाहिए। मेरी समझ में तो हिंदुओं का पुरुषार्थ उनकी मूछों के साथ ही बिदाई ले रहा है। हाँ, एक नया रिवाज और चला है। वह है नाक की सीध में आधी लबों तक कतरी हुई छोटी-छोटी मूछें और आधी सफ़ाचट।

सिर के बालों के विषय में मैं 'आपबीती' कहना भूल गया। बहुत वर्षों का ज़िक्र है। मैं एक दिन अपने सजातीय वृद्ध पुरुषों के पास बिरादरी की किसी तक़रीब में बैठा हुआ था। वे सब ही प्रायः मेरे पिता की उम्र के थे। मेरे पिता का देहांत हो चुका था। ज़माने की हवा से मैं भी न बच सका। मेरे सिर पर कतरे हुए बाल थे। उन मुरब्बियों ने इस रिवाज की निंदा की। उनकी निंदा में अवश्य ही प्रेम और उपदेश भरा हुआ था। मैंने उनको उत्तर दिया—"नागरों का रिवाज न सिर के बाल रखना है और न दाढ़ी रखना।" उन सबके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाढ़ियाँ थीं। मैंने कहा—"आप लोगों ने मुँह पर बाल रखकर उस रिवाज को तोड़ा और मैंने मुँह की जगह सिर पर बाल रख लिए। अभी तक दोनों बराबर हुए।" वे मेरी धृष्टता पर हँसकर कहने लगे—"लड़का कहता तो सत्य है।" वे बाल मेरे सिर पर संवत् १९४० तक रहे। जिस समय मैं बंबई में 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार' का संपादन करता था, फ़र्रुख़ाबाद के आर्यसमाजी चौबे तोतारामजी प्रायः मुझसे मिलने प्रेस में आया करते थे। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा थी और वह सज्जन भी बड़े थे। वह मुझसे कहा करते थे—'आप पुरानी चाल के इतने हिमायती होकर सिर पर बाल किस शास्त्र से रखते हैं?" मैं उत्तर देता था—"महाराज, यह गधापचीसी है। जवानी का अंश चालीस वर्ष की उमर तक रहा करता है। चालीस पूरे होने पर कटा दूँगा और फिर नहीं रक्खूँगा।" हुआ भी ऐसा ही। मैं इसी ज़माने में नासिक गया। वहाँ श्राद्ध करने में बाल कटाना आवश्यक था। मेरे मुँह के और सिर के बाल कट गए और तब से चौबेजी महाराज की आज्ञा का पालन हुआ।

लेख बेशक बड़ा हो गया, किंतु यदि दाढ़ी और मूछों को रंग से काली करने के विषय में यहाँ चार पंक्तियाँ न लिखी जायँ, तो लोग कहेंगे कि लेख अधूरा रह गया। यह पुरानी चाल है कि बुढ़ापे को छिपाकर जवानी दिखाने के लिये शौक़ीन बूढ़े वस्मा अथवा अन्यान्य रंगों से उन्हें काला करते हैं। इसमें चेहरे की जिल्द काली हो जाती है। रंग लगाने से काले बाल शीघ्र सफ़ेद होते हैं और सिवा महीने में पाँच-सात दिन ख़राब जाने के जिल्द की बीमारियाँ हो जाती हैं। लगाने के दूसरे ही दिन से जो खूँटियाँ निकलती हैं वे सफ़ेद होती हैं और इस तरह बुढ़ापा तो चुग़ली खाता ही रहता है और लगाने में जो झंझट और कष्ट उठाना पड़ता है, सो नफ़े में। बुढ़ापा छिपाए से नहीं छिप सकता और—"चंद्र-वदनि मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जायँ" इसके शिकार बनना पड़ता है। इस रंग में चाहे जैसा हो, नील अवश्य होता है। नील घोर अपवित्र है और वह शौक़ीन हिंदू-द्विजों के मुँह पर लगाई जाती है।

लज्जाराम

× × ×

३. चार वैदिक ऐतिहासिक पुरुष

इस पुण्यभूमि भारतवर्ष का इतिहास परम प्राचीन है। वेदादि शास्त्रों में अनेकों नरेन्द्रों का विस्मयकारी चरित्र दृग्गोचर होता है; परंतु उनकी आनुपूर्वी में निश्चित सम्मति देना कठिन है। वेद में इतिहास माननेवाले और न माननेवाले दोनों ही हैं। दोनों ही युक्तियों द्वारा स्वमत पोषण करते हैं। सूत्र-काल से भी पहले होनेवाले यास्काचार्य के समय में भी ऐतिहासिक मत प्रचलित था। यास्क एक इतिहास* दिखाते हैं कि कुरुवंशीय ऋष्टि-षेण-नामक एक राजा के (वंश में) दो कुमार थे—देवापि और शंतनु। छोटे शंतनु के राज्य लेने पर देवापि तपस्या के निमित्त चले गए। इसके अनंतर शंतनु के राज्य में बारह वर्ष तक वर्षा न हुई, तो ब्राह्मण बोले कि राजन्, भाई का अतिक्रमण करके स्वयं राज्य करने से आपने अधर्म का आचरण किया है, इसी से वर्षा नहीं होती है। शन्तनु के प्रार्थना करने पर देवापि ने वर्षा-निमित्तक यज्ञ में पुरोहित-पद स्वीकार किया। यास्काचार्य यहाँ पर इस मंत्र को उद्धृत करते हैं—

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्। स उत्तरस्मा दधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि॥

अर्थात् ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि होता बने और देवताओं के विचारों को जाननेवाले उन्होंने आकाश से इस पार्थिव समुद्र की ओर को दिव्य जल की वर्षा की।

राजर्षि विश्वामित्र के समकालीन एक वशिष्ठ मुनि थे, जिनसे इनका वैमनस्य हो गया था। विश्वामित्र ने वशिष्ठ को यातुधान-जैसे कठोर शब्द कहे, तो वशिष्ठजी

* तत्रेतिहासमाचक्षते। देवापिश्चार्ष्टिषेण शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीयानभिषेचयाञ्चक्रे। देवापिस्तपः प्रतिपेदे। ततः शन्तनो राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचुर्ब्राह्मणा अधर्मस्त्वया चरितो ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितम्। तस्मात्ते देवो न वर्षतीति। स शन्तनुर्देवापिं शिशिक्षे राज्येन तमुवाच। देवापिः पुरोहितस्तेसानि याजयानि त्वेति।

निरुक्तम्। नघण्टुककाण्डम्, अ० २, पा० ३ खण्ड १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोले कि नहीं, मैं यातुधान * नहीं हूँ, और यदि हूँ तो आज ही मेरी मृत्यु हो जाय। तुमने मुझे झूठा दोषारोपण किया, इस से मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हारे दस पुत्रों से तुम्हारा वियोग हो जाय। तदनन्तर विश्वामित्र ने क्षत्रिय-बल से ब्राह्मण-बल को अच्छा समझकर तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त किया था। यास्काचार्य लिखते हैं कि विश्वामित्र † ऋषि पिजवन के पुत्र सुदा राजा के पुरोहित हुए। पौरोहित्य में उपार्जित धन को लेकर विपाट् और शतद्रू के संगम-स्थान पर पहुँचे। उनके पीछे-पीछे और भी (सेवक वा तस्कर ?) चल दिए। तब विश्वामित्र ने नदियों की स्तुति की कि—:

"रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरी रुप मुहूर्त मेवैः'

अर्थात् सोमरस पीनेवाले मेरी प्रार्थना करने पर, हे जलपूर्ण नदियो! थोड़ी देर तक शान्त हो जाओ।" जब नदियों ने इस प्रार्थना को न सुना, तो वे सिंधु से बोले—

"प्र सिन्धु मच्छा बृहती मनीषाऽवस्यु रह्वे कुशिकस्य सूनुः

अर्थात् कुशिक का पुत्र मैं विश्वामित्र अपनी रक्षा की इच्छा से सिंधु से प्रार्थना करता हूँ।" इसके आगे कथा इस प्रकार है कि पहले तो नदियों ने नकारात्मक उत्तर दिया, परंतु अंत में बोलीं कि—

"आ ते कारो श्रृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन

अर्थात् हे स्तुति करनेवाले ऋषे! हम तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार करती हैं, तुम दूर तक रथ पर बैठकर चले आओ।"

यद्यपि निरुक्तादिकों में इतिहास की विशेष चर्चा नहीं है, तथापि कहीं-कहीं पर प्रसंगवश पूर्व इतिवृत्त दिए भी हैं। परोक्ष * भूत में कही गई बातें भी एक प्रकार की इतिहास की सामग्री हैं।

त्वष्टा का पुत्र वृत्रासुर था, इसका इंद्र के साथ युद्ध अनेक बार वर्णन किया गया है, यथा—

"वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार" तथा वज्र मेको विभर्त्ति हस्त आहितम् तेन वृत्राणि जिघ्नते

अर्थात् वज्रधारी इन्द्र वृत्रवंशीय असुरों को मारते हैं।"

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि त्वष्टा ने इंद्र के घातक पुत्र की कामना से यज्ञ किया इत्यादि। यास्काचार्य ने वृत्र की निरुक्ति इस प्रकार की है—

"यदवृणोत् तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते।
यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते।
यदवर्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते।"

इसी निरुक्ति को भागवत में इस प्रकार लिखा है—

"येनाऽऽवृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्टमूर्त्तिना;
स वै वृत्र इति प्रोक्तः पपः परमदारुणः।"

पुरूरवा भी बड़े प्राचीन राजा थे। उर्वशी उनके गुणों पर मुग्ध थी, उसने राजा से कहा था कि—

"ॐ यद्विरूपा चरं मर्त्येष्ववसं रात्राः शरदश्चतस्रः;
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि।
(ऋग्वेद)

---

* अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि
यदि वायु स्ततर पूरुषस्य
अधा स वीरै र्दशभि र्वियूया
यो मा मोघं यातुधनेत्याह (वेद)

† तत्रेतिहासमाचक्षते। विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। स वित्तं गृहीत्वा विपाट् च्छतुद्र्योः सम्भेद मायया ऽवनुययुरितरे। स विश्वामित्रो नदीस्तुष्टाव गाधा भवतेति।

निरुक्तम्। नैघण्टुकाकाण्डम्, अ० २ पा० ७ खं. ३

* अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरुद्भ्यः सम्प्रादिसाञ्चकार।
स इन्द्र एत्य परिदेवयाञ्चक्रे
न नून मस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्
अन्यस्य चित्त मभि संचरेण्य मुताधीतं विनश्यति
(नै० अ० १ पा० २)

तथा

शाकपूणिः सङ्कल्पय ञ्चक्रे सर्वा देवता जानामीति तस्मै देवतोभयलिङ्गा प्रादुर्बभूवं तां न जज्ञे। तां पप्रच्छ विविदिषामि त्वेति। सा स्मा एतामृचमदिदेशैषा मद्दैवतेति
(नैघण्टुककाण्ड अ० २ पा० २)

प्रत्याख्यायाऽन्तत आशुश्रुवुः। ..... खंड ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे स्पष्ट है कि उर्वशी ने केवल घृत भोजन करने आदि की शर्त्त मंजूर कराकर राजा के साथ वास स्वीकार किया था। भागवत में भी लिखा है—

उर्वश्युवाच— ..... घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यात्
२२।१४।९

एक बार गंधर्वों ने कुछ उपाय करके राजा की शर्त तुड़वा दी थी, इससे उर्वशी वहाँ से चली गई। उसके वियोग में संतप्त राजा इधर-उधर घूमा करते थे। एक दिन उर्वशी के अकस्मात् दर्शन होने पर वे बोले कि हे उर्वशी, मैं तेरे वियोग से दुखी होकर अपने प्राण त्यागना चाहता हूँ, तो उर्वशी बोली—

ॐ मा पुरूरवो मा मृथा मा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवासो उक्षन् न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता (वेद)

अर्थात् हे राजन्, न तो मरो, न पशुओं के खाद्य बनो। देखो, स्त्रियों के साथ मैत्री स्थिर नहीं होती, इनका हृदय तो भेड़ियों के हृदयों की तरह होता है। इसी मंत्र को भागवत में यों स्पष्ट किया है—

"मा मृथा पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे;
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा *।
३६।१४।९

कृष्णदत्त भारद्वाज

---

* यहाँ पर केवल चार नामों का ही उल्लेख किया गया है। वेद में इस प्रकार बहुत कथानक प्राप्य हैं। लेखक के मत में यदि वेद में इतिहास पाये जायँ, तो इससे उसके अपौरुषेयत्व में बाधा नहीं। श्रीभगवान् सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी को वेद देते हैं। (यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्। यो वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै)। इस सृष्टि में दिए गए वेद में क्या पूर्व सृष्टि के ऋषि, महर्षि, राजर्षि, देवर्षि, अवतार आदिकों के विषय में वर्णन असंगत है। यह सृष्टि भी तो ब्रह्माजी ने वैसी ही बनाई है, जैसी कि पहिले थी (धाता यथापूर्वमकल्पयत्)। वेद तो ब्रह्माजी के लिये सृष्टि-कार्य में परम सहायक है। ब्रह्माजी को भी उस 'आम्नाय' का उपदेश करनेवाले श्रीभगवान् जगत् के परम गुरु हैं। पतंजलिजी ने कहा है—

"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।"

उनके भुवन कल्याणकारी उपदेश को भला कौन पौरुषेय कहेगा?

डॉ० वामन गोपाल का

सार्सापरिला

बिगड़े लोहू को सुधारकर शरीर में शुद्ध रक्त की वृद्धि करता है। इसके सेवन से दूषित रक्त और सभी विकार, गर्मी, चांदी-प्रमेह वग़ैरह सब निर्मूल होते हैं। ७८ वर्षों से हज़ारों लोग लाभ उठा रहे हैं। अनेक सुवर्णपदक मिले हैं। मूल्य १।)।

डॉ० गौतमराव केशव की
शक्तिवर्द्धक
फ़ॉस्फ़रसपिल्स

प्रो० डॉ० गौतमराव केशव एंड संस बंबई

आश्चर्यजनक ईजाद
टाइपराइटर में नवीनता

गुजराती टाइपराइटर का सेट

गुजराती-भाषा में आप चिट्ठी लिफ़ाफ़ा आदि कोई चीज़ छाप सकते हैं। हूबहू टाइपराइटर के मानिंद हरूफ़ होंगे। १०-१२ हर मिनट में छापे जा सकते हैं। डुप्लीकेट (दुहरी) कापी भी उतारी जा सकती है। क़ीमत ८) मय डाकख़र्च।

पता—सुधामुखी ट्रेडिंग कंपनी,
८ दीवान लेन, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक़दमेबाज़

(१)

घाघ बने फिरते हैं फँसते बड़े घरों में,
रक़म करारी वहाँ सुख पूज आते हैं ;
हम छोटे लोगों पर दृष्टि डालते ही नहीं,
लेनी हो बेगार तो भले ही चले आते हैं।
बड़े असमंजस से देते यदि रुपए दो,
जग जीत भारी एहसान वे जमाते हैं ;
अपने असामी से जो कहीं दिलवाया कुछ,
बदले में काम लेके "हक़" जमा जाते हैं।

(२)

सीधे ग्राम्यजन हाथ गह किसी जालिए का,
साथ उसके ही कोर्ट की शरण आते हैं ;
चालें उसकी न नेक जानते उसी के हाथ,
श्रद्धापूरबक निज गला कटवाते हैं।
बिना उसकी सलाह पाई एक देंगे नहीं,
उसके इशारे पर रक़म कटाते हैं ;
आएगी इन्हें कभी सुबुद्धि भला दीनानाथ,
आप भी सुमार्ग उन्हें नहीं दिखलाते हैं।

(३)

तुमसे न चोरी, सर्वव्यापक हो नाथ तुम,
दून की न लेके दुख तुमसे ही रोवें क्यों न ;
भरम गँवाना भाग्य ही में लिखा लाए यदि,
जगतपिता के सोहीं तब उसे खोवें क्यों न।
दुनिया के सामने करेंगे अश्रुपात नहीं,
नदियाँ उन्हीं की बहा प्रभु-पग धोवें क्यों न ;
नरम कदापि खेवें नहीं नर कीट सोहीं,
खोजना जो आश्रय तो प्रभु-मुख जोवें क्यों न।

(४)

काम इस भाँति का किया कदापि पहले न,
हाथ यों पसारने में लाज अस्तु आती है ;
गौरव गुमान मान स्वाभिमान की प्रवृत्ति,
पूर्व मरी खेने के ही आकर दबाती है।
आए अब तक हैं निभाते मित्रता को आप,
दिल्लगी अनोखी जाने आज क्यों सुहाती है ;
मरना किसी का बना आपको मज़ाक़ वाह,
बान ये कहाँ की कौन सुयश बढ़ाती है।

(५)

यमयातनाएँ सह विष खाके मरना भी,
स्वीकृत परंतु नर्म खेना नहीं भाता है ;
आत्मघातरूपी महापाप बुज़दिलापन,
हेय अति अस्तु नहीं वह भी सुहाता है।
जीवन-समर मध्य अंत तक लड़ना ही,
वीरता दिखाना एक निज मन आता है ;
विनती खुशामद वा भिक्षा-वृत्ति त्याग अस्तु,
"वज्र" उपालंभ अब जिह्वा पर लाता है।

(६)

स्त्रियों के उपालंभ सदृश न जानिएगा,
गरम चुनौती सुनो तक ये न आएगी ;
आपकी निठुरता वा त्रुटियों का चित्र खींच,
विना ए[illegible] के आपको दिखाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व का प्रबंध कोई दिल्लगी नहीं जनाब,
करते जो भूलें सभी आपको बताएगी ;
मानेंगे सुधरेंगे न अपने को आप यदि,
करतूत क़लई सभी तो खुल जाएगी।

(७)

कहिए मचा रक्खा है ऐसा अंधाधुंध कैसा,
बेतुका प्रबंध कैसा अजब निकाला है ;
सिद्ध न्याय तर्कपूर्ण कारणों से कीजिए तो,
निकल चुका कि बुद्धि का ही या दिवाला है ?
बूढ़े हो गए हैं आप श्रमशक्ति रही नहीं,
इससे बढ़े हैं पाप कलि बोलबाला है !
चुपचाप देखते हैं हाथ भी हिलाते नहीं,
शहंशाहे-आलम का शासन निराला है।

(८)

"ताज़ी घोड़े घायल हुए हैं बोझ नीचे दब,
तौक़ ज़र्री लाकर गधे के गले डाला है" ; (हाफ़िज़)
विद्याशील विनय सुगुणयुक्त शिष्ट नर,
भूखों मर रहे सह कठिन कसाला है।
जाहिल गँवार सेठ साहूकार कहलाते,
लक्षाधीश बने गर्व उनका दुबाला है ;
धारमिक दास, पापी शासक बने हैं आज,
आप निज बान भूले बैर क्या निकाला है।

(९)

दुःख देके नाश करना ही जो अभीष्ट रहा,
व्यर्थ कष्ट करके ये पुतला बनाया क्यों ?
जीवन घृणित यदि उसका चलाता रहा,
कीट पशु त्याग नर-तनु से सजाया क्यों ?
करके निराश तरसाना जो तुम्हें था इमि,
मूर्ख रखते सुमार्ग ज्ञान का दिखाया क्यों ?
सीधा-सादा रचते महाजन दुकानदार,
बी० ए० या वकील का पुछल्ला ही लगाया क्यों ?

(१०)

ज्ञान-चक्षु खोलके चढ़ाके ऊँचे नभ पर,
आश बड़ी देके हो निराश किए डालते ;
मीठा दिखला के ईंटा मारना कहाता यही,
पहलू तिही का कर अवसर टालते।
कहीं का न रक्खा बड़ा किया उपकार वाह,
रहते हो दुःख नित नए साँचे ढालते ;
पीसते ग़रीब को ही डाल काल-चक्र मध्य,
दीनबंधु कहला के वैर यों निकालते।

(११)

बना व्यवसाय-हीन रक्खा भलेमानसों को,
दर-दर दिन-रात ठोकरें खिलाते हो ;
मुँह पेट तक को न करते सहारा नेक,
आठ-आठ आँसू प्रतिपल ही रुलाते हो।
गए गुज़रे हैं कोई शूद्र श्रमजीवियों से,
आठों याम उन्हें क्षोभ-अग्नि में जलाते हो ;
"वज्र" से भी कठिन कठोर हिय रखते हो,
दीन पर गाज गेरने से न अघाते हो।

(१२)

कहाँ तक रोऊँ जान खोऊँ नाथ तुम सोहीं,
नेक बिनती है ध्यान धर सुन लीजिए ;
मेरी दौड़ केवल तुम्हीं तलक बस जानों,
दुनिया विरुद्ध बात मानिए पतीजिए।
तुम्हें छोड़ रूठूँ मचलूँ मैं मान कहाँ करूँ,
आरत हो गालियाँ दूँ किसे बता दीजिए ;
जो कुछ हूँ बुरा-भला हूँ तो आप ही का नाथ,
मारिए-जिलाइए जो चाहे प्रभु कीजिए।

(१३)

मेरे द्वारा कार्य कुछ, करना जो स्वीकार ;
तो कर गहिए शीघ्र नतु, डूबत मैं मझधार।

"वज्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. महाराणा प्रताप और महाराज छत्रशाल

भारत में मोग़ल-साम्राज्य की जड़ को पूर्ण दृढ़ता के साथ स्थापित करनेवालों में बादशाह अकबर का स्थान सबसे ऊँचा है। अकबर वीर थे, बुद्धिमान् थे और सबसे बढ़कर उनके हृदय में सहानुभूति और उच्च कोटि की मनुष्यता के भावों का सम्मिश्रण था। एक ओर उनका शासन सुदृढ़ था और दूसरी ओर खूब लोकप्रिय भी। हिंदू-प्रजा इस बात को भूलने लगी थी कि अन्य धर्मावलंबी शासक का शासन असह्य होता है। प्रकट में हिंदू-संस्कृति पर किसी प्रकार का आक्रमण न था। अकबर हिंदू और मुसलमान-संस्कृतियों का लोकप्रिय समन्वय करके भारतीय राष्ट्रीयता का अभिनव सूत्रपात कर रहा था। अकबर की यह नीति एकमात्र हिंदू-संस्कृति की जड़ को भीतर-ही-भीतर ढीली कर रही थी। पर अधिकांश हिंदू इस बात को समझने में असमर्थ थे, और प्रायः एक स्वर से अकबर के अनुयायी और समर्थक थे। ठीक इसके विपरीत औरंगज़ेब ने मोग़ल-साम्राज्य की जड़ को स्वयं काट डाला। औरंगज़ेब भी वीर और बुद्धिमान थे; पर उनमें हृदय की मनुष्योचित वह विशालता न थी, जो अकबर में थी। उनका शासन प्रारंभ में आतंक-पूर्ण था, पर लोकप्रिय नहीं। उनके समय में हिंदू-प्रजा को यह बात एक क्षण को भी न भूलती थी कि अन्य धर्मावलंबी शासक का शासन असह्य होता है। औरंगज़ेब प्रकट रूप से हिंदू-संस्कृति का मूलोच्छेद करना चाहता था। वह हिंदू-संस्कृति का मटियामेट करके भारत में एकमात्र आतंक-पूर्ण मुसलमान राष्ट्रीयता की विजय-वैजयंती फहराना चाहता था। हिंदू लोग उसके अभिप्राय को भली भाँति समझते थे, और प्रायः एकस्वर से उसके विरोधी थे। अकबर और औरंगज़ेब के शासन-काल की इन विषम परिस्थितियों पर ध्यान रखते हुए जब हम महाराणा प्रतापसिंह और महाराज छत्रशाल के वीरोचित कार्य-कलापों पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें उक्त दोनों पुरुष-सिंहों की अपेक्षा-कृत कठिनाइयों और सुविधाओं के समझने में सरलता होती है। महाराणा प्रताप अपने देश को स्वतंत्र देखना चाहते थे, जहाँ हिंदू-संस्कृति भली भाँति फूलती-फलती रहे। पर हिंदू-संस्कृति के अनुयायी उनके इस उद्देश्य-साधन में उनके सहायक न थे, बरन् बाधक थे। विकट परिस्थिति थी। छत्रशाल का उद्देश्य भी प्रायः वैसा ही था, जैसा प्रताप का। पर छत्रशाल को हिंदू-संस्कृति की रक्षा के लिये अकेले नहीं लड़ना पड़ा। छत्रशाल के समान ही और कुछ अंशों में उनसे बढ़कर अन्य हिंदू-नृपतियों ने हिंदू-संस्कृति के लिये उसी समय औरंगज़ेब से युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठान रक्खा था। छत्रशाल के मार्ग में भी बाधाएँ थीं, पर प्रताप की अपेक्षा बहुत कम। परिस्थिति उनके अनुकूल अधिक थी। प्रताप अपने मनोरथ में सफल हुए। उनका देश पराधीन नहीं हुआ। उन्होंने हिंदू-संस्कृति की रक्षा अपने व्यक्तिगत शौर्य के बल पर की; पर सौभाग्य से उनका प्रधान शत्रु अकबर हृदयवान् बादशाह था। वह स्वयं हिंदू-संस्कृति से घृणा नहीं करता था। ऐसी दशा में प्रताप की सफलता में अकबर की सहिष्णुता का भी आंशिक श्रेय है। छत्रशाल की सफलता में परिस्थितियों की अनुकूलता का अधिक श्रेय है। इस नृपति की वीरता असंदिग्ध है। इसका शौर्य अनुपम था, और संगठन-शक्ति आश्चर्यजनक। उत्तरीय भारत में, अकबर के समय में, हिंदू-संस्कृति की रक्षा के प्रति उदासीनता थी। स्वयं राजस्थान अकबर का सहायक था। प्रताप ने इन प्रतिकूल परिस्थितियों में वही काम किया, जो छत्रशाल ने उस समय किया जब राजस्थान औरंगज़ेब से फिरंट था, प्रातःस्मरणीय गुरु गोविंदसिंह का कृपाण पंजाब में चमक रहा था, और महाराज शिवाजी की 'भवानी' का विकट तांडव दक्षिण में उथल-पुथल मचा रहा था। प्रताप और छत्रशाल, दोनों ही चरित्रवान् वीर पुरुष थे। दोनों ही अपने-अपने समय की विभूति थे। दोनों ने ही अपने-अपने कार्यक्षेत्र में ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिससे उनकी भविष्य-संतान को लज्जित होना पड़े। जब तक संसार

चेतक पर महाराणा

(चित्रकार—पं० गौरीशंकर मालवीय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हिंदू-संस्कृति की सत्ता बनी है, तब तक इन दोनों पुरुषों का नाम अमर है। अपने उज्ज्वल-यशोशरीर से आज भी यह दोनों नर-रत्न हिंदू-संस्कृति के विकास-मार्ग को प्रकाशित कर रहे हैं। आज हिंदू-जाति में पुनः जीवन का संचार हुआ है, तब वह अपने सर्वस्व 'प्रताप' और 'छत्रशाल' को कैसे भूल सकती है। आज भारत के कोने-कोने में इन दोनों पुरुष-पुंगवों की जो जयंतियाँ मनाई जा रही हैं, वे ही इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि प्रताप और छत्रशाल आज भी जीवित हैं। वे कभी मर नहीं सकते हैं। वे भारत के अतीत इतिहास के गौरव थे, वर्तमान इतिहास की स्पंदन-शक्ति हैं और भविष्य-इतिहास का निर्माण उन्हीं के द्वारा होगा। महाराणा प्रताप और महाराज छत्रसाल की जय हो।

× × ×

२. भारत के पंच रत्न

भारतीय राजनीति के कार्यक्षेत्र में इस समय महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, श्रीसुभासचंद्र बोस और पं० जवाहरलाल नेहरू का प्रमुख स्थान है। महात्माजी का इस समय देशव्यापी दौरा हो रहा है। इसमें इन्हें सर्वत्र सफलता मिल रही है। महात्माजी इस समय अपनी सारी शक्ति खद्दर के प्रचार में लगा रहे हैं। मानना पड़ेगा कि इनके व्यक्तित्व का प्रभाव यदि हटा दिया जाय, तो फिर खद्दर-आंदोलन की स्पंदन-शक्ति ही बंद हो जाय। पं० मदनमोहनजी मालवीय ने अछूतोद्धार-आंदोलन को बहुत प्रबल बना दिया है। इस आंदोलन को कट्टर सनातनधर्मावलंबियों में यदि कोई सफल बना सकता है, तो वह हमारे मालवीयजी ही हैं। अछूतोद्धार को सफल बनाते हुए मालवीयजी सनातनधर्म की सच्ची सेवा कर रहे हैं। सनातनधर्म महान् है, उसमें कूट-कूट कर उदारता के भाव भरे हुए हैं, इसीलिये वह अछूतोद्धार का समर्थक है। सनातनधर्मोद्धार और अछूतोद्धार एक ही वस्तु हैं, उनमें भिन्नता नहीं है। नागरी-लिपि और हिंदी-भाषा का प्रचार तथा हिंदू-विश्वविद्यालय की स्थापना मालवीयजी की अमर कीर्ति के प्रधान स्तंभ हैं; परंतु अछूतोद्धार का महत्त्वमय आंदोलन इन दोनों स्तंभों से भी विशाल और सुंदर है। पं० मोतीलालजी राजनीति के दाँव-पेंचों द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग को सरल बनाने में दत्तचित्त हैं। सरकार के दमन के प्रतिवाद में वे कौंसिलों के बायकाट का समर्थन कर रहे हैं। इस काम में उनका कुछ विरोध हो रहा है, परंतु उनके विरोधी प्रतिवाद का पुरुषोचित कोई दूसरा उपाय भी नहीं बतला रहे हैं। मोतीलालजी व्यावहारिक जगत् के मनुष्य हैं। इँगलैंड की राजनीति का उन्होंने अध्ययन किया है। उक्त देश में प्रचलित राजनीति की चालों को वे समझते हैं। इन्हीं चालों को वर्तमान भारत की परिस्थिति के अनुकूल बनाकर नेहरूजी सरकार से मोर्चा लेने के पक्ष में हैं। गांधीजी संसार की सत्य विभूति हैं, मालवीयजी हिंदू-जगत् के धर्मप्राण हैं, और नेहरूजी राष्ट्रीय भारत के संयत स्पंदन हैं। भारत को इस त्रिमूर्ति का अभिमान है। परंतु ये तीनों ही नेता वृद्ध हैं। नवयुवक-मंडली के भूषण श्रीजवाहरलालजी तथा सुभाषचंद्रजी बोस हैं। दोनों प्रायः समवयस्क, समान स्वार्थत्यागी और महान् प्रतिभा-संपन्न हैं। दोनों की नसों में जो रक्त प्रवाहित होता है, उसके कण-कण में राष्ट्रीयता व्याप्त है। इन दोनों का जीवन राष्ट्रीयतामय है। वृद्ध त्रिमूर्ति से इन दोनों में, एक बात में, भिन्नता है। त्रिमूर्ति औपनिवेशिक स्वराज्य से संतुष्ट हो सकती है, पर सुभाष और जवाहर भारत को संपूर्ण स्वाधीन देखने के लिये लालायित हैं। इससे कम में उनका संतोष नहीं है। अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिये यदि जीवन का उत्सर्ग करना पड़े, तो उसके लिये भी ये तैयार हैं। इन दोनों पुरुष-पुंगवों का प्रभाव जिस प्रकार से बढ़ रहा है, उसको देखते हुए कुछ लोगों का अनुमान है कि शीघ्र ही देश के राजनीति-आंदोलन की बागडोर इन्हीं के हाथों में आ जायगी। ये दोनों नेता बात करने की अपेक्षा काम करने को अधिक पसंद करते हैं। अखिल भारतीय राष्ट्र-महासभा का जो अधिवेशन आगामी दिसंबर-मास में, लाहोर में, होनेवाला है, उसके सभापतित्व के लिये इन दोनों ही वीर नेताओं का नाम लिया जा रहा है। पं० जवाहरलाल की व्याख्यान-शक्ति उतनी अच्छी नहीं है, परंतु उनका चरित्र इतना ऊँचा है और वे इतने कर्मठ पुरुष हैं कि देश पर उनके व्यक्तित्व का आतंक छा गया है। महात्मा गांधी का उन पर अपार स्नेह है। नवयुवक-मंडली के तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण हो हैं। अधिक संभावना यही है कि राष्ट्रीय महासभा के सभापति वही चुने जायँगे। सुभाष बाबू भारत के सर्वस्व होते हुए भी बंगाल के हृदय हैं। उनका दमकता हुआ भव्यरूप और स्फूर्तिप्रदायिनी व्याख्यान-शक्ति श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर देती है। उनका आदर्श त्याग, और देश-प्रेम के लिये कष्ट-सहन ऐसे काम हैं, जो बरबश जनता को उनके चरणों पर मस्तक नवाने को विवश करते हैं। सुभाष बाबू स्वर्गीय देशबंधुदास के परम प्रिय पात्र थे। हाल में बंगाल के निर्वाचन में जो सफलता मिली है, सुभास बाबू को उसका प्रधान श्रेय है। 'फारवर्ड' का संचालन तथा इस समय 'लिबर्टी' का अभ्युदय इन्हीं की वीरता के नमूने हैं। त्रिमूर्ति में शांत वृद्ध भारत की प्रौढ़ और गंभीर भावना अंकित है तथैव सुभाष और जवाहर में तरुण भारत की उमंगों का उज्ज्वल भविष्य लहरें ले रहा है। वृद्ध कहते हैं, भारत पर सब कुछ वार दो; परंतु समझ-बूझकर। तरुण कहते हैं, हिचकिचाहट की ज़रूरत नहीं, स्वदेशोद्धार के लिये सर्वस्व निछावर कर दो।

× × ×

३. विशेषांक

जगदीश्वर की अपार अनुकंपा से इस संख्या के साथ-साथ 'माधुरी' का सातवाँ वर्ष समाप्त होता है। 'माधुरी' ने अपने सात वर्ष के जीवन-काल में हिंदी-साहित्य की जो कुछ सेवा की, उसके विषय में हमें कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। फिर भी इस बात के लिये हम हिंदी-संसार के कृतज्ञ हैं कि उसने हमें पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करने में अनुदारता नहीं दिखलाई। विगत वर्ष माधुरी का श्रावण का अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया था। इस अंक के विषय में हिंदी-संसार की जो कुछ भी राय थी, वह सब पर प्रकट है। उसके विषय में भी हम यहाँ पर कुछ नहीं लिखना चाहते हैं। 'माधुरी' के आठवें वर्ष की प्रथम संख्या (श्रावण का अंक) फिर विशेषांक के रूप में निकलने जा रही है। हमारा यह नूतन विशेषांक विगत विशेषांक से आकार और प्रकार में किसी भी प्रकार से न्यून न होगा। पृष्ठ-संख्या तो उतनी ही होगी, जितनी गत वर्ष थी; परंतु रंगीन चित्रों की संख्या इस बार पहले की अपेक्षा अधिक होगी। गत वर्ष रंगीन चित्रों की संख्या १२ थी, एवं व्यंग्य चित्रों की ६। इस वर्ष रंगीन चित्र १८ होंगे तथा व्यंग्य चित्र २४। सादे चित्र प्रायः उतने ही होंगे, जितने गत वर्ष थे। पाठ्य-सामग्री का चुनाव करने में हम उस अनुभव से पूर्ण लाभ उठाने का उद्योग करेंगे, जो हमें गत वर्ष के विशेषांक का संपादन करने से प्राप्त हुआ है। मैनेजर माधुरी ने हमें विश्वास दिलाया है कि पत्रिका की अच्छी छपाई और उत्कृष्ट काग़ज़ के व्यवहार तथा सुंदर प्रदर्शन के मामले में वे यथाशक्ति कोई बात उठा न रखेंगे। निदान हम माधुरी के इस नूतन विशेषांक को पहले की अपेक्षा भी अधिक सुंदर बनाने का उद्योग करेंगे। विशेषांक के संबंध में सत्परामर्श देने की क्षमता रखनेवाले सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे अविलंब अपनी सम्मति भेजकर हमें कृतार्थ करें। जो सम्मतियाँ हमें उचित जँचेंगी, उनसे हम अवश्य लाभ उठावेंगे। मनीषी लेखकों और सहृदय कवियों से भी हमारी प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएँ शीघ्र भेजने की कृपा करें, जिसमें 'विशेषांक' में हम उनका उचित स्थान पर समावेश कर सकें। 'माधुरी' के उदार पाठकों से एक और प्रार्थना है कि विशेषांक के कुछ विलंब से निकलने के कारण वे धैर्य-च्युत न हों। 'माधुरी' के साधारण अंक की अपेक्षा विशेषांक आकार में प्रायः तिगुना होगा, इसलिये उसके प्रकाशन में कुछ विलंब का होना अवश्यंभावी है।

× × ×

४. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

गोरखपुर में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन धूमधाम के साथ हो रहा है। संभवतः सभापति के चुनाव का प्रश्न भी छिड़ चुका होगा। हमारी अब भी यही दृढ़ सम्मति है कि सभापति का पद यथासाध्य वृद्ध साहित्य-सेवियों को ही मिलना चाहिए। हमें यह देखकर बहुत खेद होता है कि आजकल के युवक साहित्य-सेवी अपने वृद्ध साहित्य-सेवियों का वैसा सम्मान नहीं करते हैं, जैसा कि करना चाहिए। कुछ लोग तो वृद्ध साहित्य-सेवियों की रचनाओं को आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन भी नहीं पसंद करते हैं। उनका कथन है कि वृद्ध साहित्य-सेवियों की रचनाओं में शिथिलता होती है, और वे अप-टु-डेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
111026

नहीं होती हैं। इस कथन में कुछ सार हो सकता है, परंतु वृद्ध साहित्य-सेवियों के इस कथन में भी बहुत कुछ तथ्य है कि आधुनिक युवक साहित्य-सेवियों की रचनाओं में आडंबर, प्रदर्शन और कृत्रिमता की चुनाचुनी के घटाटोप में सार पदार्थ थोड़ा ही मिलता है। कुछ भी हो, वृद्ध साहित्य-सेवियों का सम्मान न करना भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है। जिन साहित्य-सेवियों ने घोर अंधकार के समय में दीपक का प्रकाश फैलाया था, वे आधुनिक युवक साहित्य-सेवियों के विद्युदालोक के पास भी न फटकने पावें, यह धारणा हमें उचित नहीं जँचती है। हम चाहते हैं कि रायबहादुर लाला सीताराम, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, पं० लज्जाराम मेहता अथवा बाबू शिवनंदनसहाय-जैसे वृद्ध साहित्य-सेवियों में से कोई सज्जन इस बार गोरखपुर-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बनाए जायँ। यदि केवल प्रचार और प्रदर्शन ही सम्मेलन का चरम लक्ष्य हो, तो सभापति-आसन के लिये महात्मा गांधी से अधिक उपयुक्त पात्र न मिलेगा। सौभाग्य से जिन दिनों सम्मेलन होगा, उन्हीं दिनों में महात्माजी इन प्रांतों का दौरा भी कर रहे होंगे।

× × ×

५. भूल-सुधार

ज्येष्ठ की माधुरी में, परदेसी-उपन्यास के अठारहवें परिच्छेद में, भूल से कई बार 'ईश्वर' छपा है। पाठकों से प्रार्थना है कि उक्त परिच्छेद में जहाँ-जहाँ यह शब्द अशुद्ध छपा है, वहाँ-वहाँ 'ईथर' (Ether) पढ़ें, और ऐसा ही अपनी-अपनी प्रति में संशोधन भी कर लेने की कृपा करें। वास्तव में इसमें वैज्ञानिक खोज का महत्त्व लेखक ने दिखाया है। पुनः लेखक ही ने इस भूल की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, अतएव हम उनके कृतज्ञ हैं।

इसी प्रकार वैशाख की संख्या में श्रीयुत पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्यजी के लेख "कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह के पूर्वार्द्ध पर एक दृष्टि" में, पृष्ठ ४७४ के पहले कालम की ३२वीं पंक्ति के आगे दूसरे कालम की प्रारंभ की पंक्तियों तक—"अतः या तो आप इसे—(अध्याय ७, श्लोक १३७)" तक—का मेटर लेखक की इच्छा के विरुद्ध छप गया है। लेखक महाशय ने इसे निकाल देने को कहा था, लेकिन भूल से वह छप गया। पाठकगण कृपया संशोधन कर लें। दोनों भूलों के लिये हमें वास्तव में खेद है।

× × ×

६. सुकवि रहीम की पुण्य तिथि

गत वर्ष 'माधुरी' के श्रावणवाले विशेषांक में हमने 'संवत् १९८६ में रहीम की त्रिंशत वार्षिक पुण्य तिथि'-शीर्षक एक संपादकीय नोट लिखा था। उक्त नोट में हमने हिंदी-संसार से प्रार्थना की थी कि संवत् १९८६ में कविवर रहीम की त्रिंशत वार्षिकी पुण्य तिथि मनाई जाय। हमारे शब्द इस प्रकार थे—

"आगामी वर्ष संवत् १९८६ में रहीम की मृत्यु हुए ३०० वर्ष हो जायँगे। ऐसी दशा में हमारा अत्यंत नम्र प्रस्ताव है कि आगामी वर्ष रहीम की तीन सौ वर्ष पर पड़नेवाली पुण्य तिथि धूम-धाम से मनाई जाय। उस अवसर पर भिन्न भिन्न स्थानों में सभाएँ की जायँ और उनमें रहीम के काव्य पर आलोचनाएँ पढ़ी जायँ, और व्याख्यान दिए जायँ, एवं रहीम की कविताओं का एक सुंदर और सस्ता संस्करण निकाला जाय। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा, एवं प्रयाग के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से हमारा विशेष रूप से अनुरोध है कि इस मामले में उक्त दोनों संस्थाएँ कुछ-न-कुछ अवश्य करें। हिंदी के पत्र संपादकों से भी निवेदन है कि हमारे इस प्रस्ताव की अपने पत्रों में चर्चा करके हमें कृतार्थ करें, और रहीम जैसे एक महाकवि के यशोविस्तार में सहायक बनें।"

जिन कारणों से हमने इस प्रस्ताव को उपस्थित किया था, उनका स्पष्टीकरण हमने इन शब्दों में किया था—

"हिंदी के पुराने कवियों में महाकवि रहीम का स्थान बहुत ऊँचा है। वे स्वयं तो एक कुशल कवि थे ही साथ में वे अन्य कवियों के लिये कल्पवृक्ष के समान थे। हिंदी-कविता उनकी बहुत ऋणी है। उन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिंदी-कविता में हिंदू-संस्कृति की संपूर्ण रक्षा की है। खेद है रहीम कवि का आदर अभी हिंदी-साहित्य-संसार में उतना नहीं हुआ, जितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि होना चाहिए। रहीम का उचित आदर करके न केवल हम अपने कर्तव्य का ही पालन करेंगे, वरन् हम अपने मुसलमान भाइयों को यह दिखलाने में समर्थ होंगे कि धार्मिक मतभेद से साहित्य-क्षेत्र में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे हम हिंदू-मुसलिम-समस्या को सरलता से सुलझा सकेंगे।"

खेद है, हमारे इस प्रस्ताव पर उस समय हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं ने ध्यान नहीं दिया था। इस समय संवत् १९८६ वर्तमान है। एक बार हिंदी-संसार का ध्यान हम इस ओर फिर आकर्षित करते हैं। हम चाहते हैं कि आगामी आठ-दस महीनों में सुकवि रहीम की पुण्य तिथि अवश्य मनाई जाय। यदि विशेष आयोजन असंभव हो, तो हम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के कर्णधारों से निवेदन करेंगे कि सम्मेलन के अवसर पर रहीम की पुण्य तिथि मनाने का एक दिन अलग निर्दिष्ट कर दिया जाय, और उस दिन के अधिवेशन में सारी चर्चा रहीम के संबंध में की जाय। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा से हमारा अनुरोध है कि वह रहीम के संबध में एक अच्छी लेखमाला निकालने का आयोजन करे। हिंदी के भिन्न-भिन्न पत्र-संपादकों से भी हमें पूर्ण आशा है कि वे इस मामले में दिलचस्पी लेंगे, और अपने प्रतिष्ठित पत्रों में, इस संबंध में, कुछ लिखेंगे। 'साहित्य-समालोचक' पत्र ने इस अवसर पर 'रहीम-अंक' निकालने का निश्चय किया है। हर्ष की बात है कि सहयोगी 'विशाल भारत' ने अपने हाल के आषाढ़वाले अंक में, इस संबंध में, एक संपादकीय नोट लिखा है। इस मामले में हमारे और 'विशाल भारत' के विचार बिलकुल एक हैं, जैसा कि उक्त पत्र के निम्न-लिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा—

"इसलिये यदि हम केवल साहित्य-सेवा की ही दृष्टि से देखें, तो भी महाकवि रहीम की स्मृति को ताज़ा बनाए रखना हमारा परम कर्तव्य है, पर हम एक अन्य दृष्टि से भी इसे आवश्यक समझते हैं। हम लोग हिंदू-मुसलमानों के विभेदों पर ही विशेष ध्यान देते रहे हैं और इसी का परिणाम है हिंदू-मुसलमानों के झगड़े। यदि हम सांप्रदायिकता को दूर करना चाहते हैं, तो हमें उन शक्तियों और साधनों से काम लेना पड़ेगा जो इन दोनों मतों के अनुयायियों को एकता के में बाँध सकती हैं। इसलिये इन दोनों सं को एक प्लेटफ़ार्म पर लाने का कोई भी मौ हाथ से न जाने देना चाहिए। हमारी समझ साहित्य भी राष्ट्र के निर्माण का एक मुख्य साधन है और जो साहित्य राष्ट्र के निर्माण में बाधक हो, उसे हमें दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। महाकवि रहीम ने भी कबीर की तरह ही दोनों संस्कृतियों के मेल के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न किया था। उनके विषय में यहाँ तक कहा जाता है कि वे वैष्णवधर्म के अनुयायी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। क्या उनकी त्रिशतवर्षीय पुण्य तिथि को हम लोग हिंदू-मुसलमान साथ मिलकर नहीं मना सकते? हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का ध्यान हम इस ओर आकर्षित करते हैं और आशा करते हैं कि उसके अधिकारी इसके लिये कुछ प्रयत्न करेंगे।"

× × ×

७. "सौर पंचांग"

इधर कई वर्षों से यह पंचांग काशी के ज्ञानमंडल कार्यालय से प्रकाशित होता है। भारतवर्ष—विशेषतः उत्तर-भारत—में अन्य कितने ही पत्रे और पंचांग व्यवहार में आते हैं, तथापि किसी में कुछ त्रुटि दिखाई देती है, तो किसी में कुछ। इस कारण किसी तिथि-विशेष अथवा पर्व का निश्चय करने में कभी-कभी बड़ा झमेला पड़ जाता है। हमारे ख़याल से इस पंचांग द्वारा वह झमेला बहुलांश में दूर हो सकता है। ज्योतिष के सर्व मान्य ग्रंथ सूर्यसिद्धांत के अनुसार यह पंचांग बना है इसी से इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है। पुनः इसमें बहुत-से उपयोगी और साधारण जनता के दैनिक व्यवहार आनेवाली बातें भी इस ढंग से दी गई हैं कि थोड़ा-सा विचार करने पर मतलब हल हो जाता है, और छोटी छोटी बातों के लिये पंडितों और ज्योतिषियों का द्वार नहीं खटखटाना पड़ता। पंडितों के लिये तो इसमें पका-पकाया मसाला ही मौजूद है। सौर-तिथि और चांद्र-तिथि, दोनों ही इसमें दी हैं, लेकिन सौर-तिथि की कल्पना, देश-भेद के अनुसार, इसमें ऐसी की गई है कि कई लोगों में सुविधा होती है। पंचांग देखने और रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri